पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?

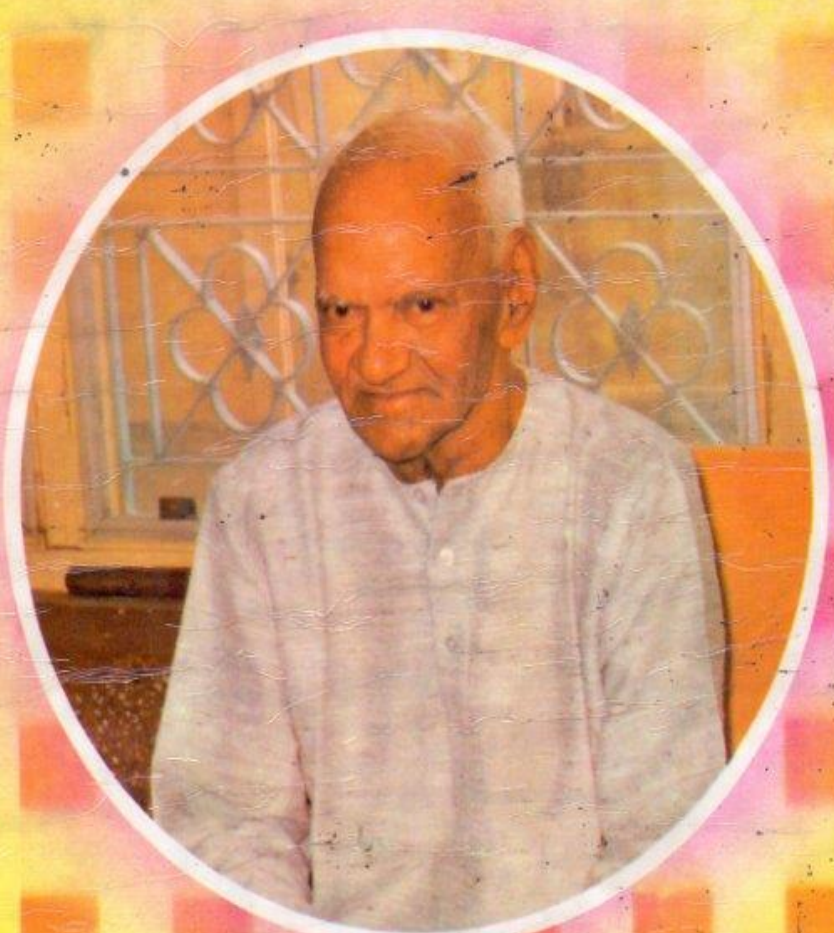

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने?

सम्पादक
ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्बाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज एवं समाज से राष्ट्र बनता है। अपनी समाज व्यवस्था पर आज सर्वतोमुखी अस्तव्यस्तता का साम्राज्य है। नीति-नियम और मर्यादा की कसौटी पर व्यक्ति के निजी चिन्तन-चरित्र को कसकर देखा जाय तो वह खरा कम, खोटा अधिक दिखाई देता है। पारस्परिक सहयोग और सद्भाव समाप्त-सा हो गया प्रतीत होता है। सम्पन्नता कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में आयी है किन्तु वह अनीति से कमाई हुई प्रतीत होती है एवं चतुरता जो स्वार्थपरक है, वही बढ़ी-चढ़ी दिखाई देती है। सुविधा-साधनों की चमक-दमक चकाचौंध पैदा करती एवं कौतूहल बढ़ाती दिखाई देती है। वह ठोस आधार कहीं दिखाई नहीं देता, जिसे प्रगति का मूलभूत आधार कहते हैं। व्यक्ति का निजी जीवन और पारस्परिक व्यवहार उच्च आदर्शों पर आधारित न होकर जब तक परिस्थितियों पर टिका होगा, समाज परावलम्बी ही बना रहेगा तथा उसका प्रगति-समृद्धि की दिशा में वांछित उत्थान कर पाना नितान्त असम्भव ही प्रतीत होगा ।

आज हमारे राष्ट्र की आजादी को ५० वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। इसके लिए लाखों व्यक्तियों ने अपनी कुर्बानी दी, किसी ने परिवार खोया, किसी ने अपना जमा-जमाया व्यवसाय-कारोबार एवं किसी ने शहादत द्वारा स्वयं को राष्ट्र देवता की बलिवेदी पर शहीद कर दिया। इतनी बड़ी कीमत अदा करने के बाद आज जब हम राष्ट्र को पुनः आर्थिक दासता की, परावलम्बन की, सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों की गिरावट लाने वाली, प्रतिगामी बनाने वाली बेड़ियों से जकड़ा पाते हैं तो लगता है कि एक सांस्कृतिक क्रांति अभी और जरूरी है-जिसमें हमें नेताओं की कम व स्वजेताओं की अधिक आवश्यकता है। परमपूज्य गुरुदेव जो कि स्वयं एक क्रांतिकारी, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी रहे हैं, बापू एवं श्री अरविन्द घोष के काफी समीप रह उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं, अपनी आगभरी लेखनी से वाङ्मय के इस खण्ड में इसी स्वाधीनता की माँग करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन को अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता बताया है। यही एकमात्र आधार है, जिससे नवीन समाज व अखण्ड समृद्धि की ओर गतिशील राष्ट्र के नवनिर्माण की कल्पना की जा सकती है। जब भी धर्मतन्त्र व राजतंत्र के साथ कार्य करने की बात आती है तो सभी इसे साम्प्रदायिक मोड़ देते हुए घातक बताते हैं, किन्तु आचार्यश्री का कहना है कि यह एक त्रुटिपूर्ण चिन्तन है। धर्मतंत्र व राजतंत्र के सहगमन के बिना एक आदर्शवादी राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता एवं यही आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। सस्ती नेतागिरी करने वालों एवं खरीदने वालों की दसों दिशाओं में भरमार है। वजनदार कीमती व्यक्तित्व उस दिशा में न बहें, वही श्रेयस्कर है। हड़ताल के लिए राष्ट्र को विखण्डित करने के लिए हल्ला मचाने वालों की कहीं कमी नहीं। हमें उत्पादन बढ़ाने पर और जन-जन को श्रम-परायण बनाने की सत्प्रवृत्तियों पर अधिक ध्यान देना चाहिए, यह पूज्यवर का मत है। वस्तुतः यही किसी राष्ट्र की समृद्धि का मूलभूत आधार भी है। जनमानस का परिष्कार कैसे हो, इसे एक विचार-क्रान्ति का रूप देते हुए परमपूज्य गुरुदेव इक्कीसवीं सदी की पूर्ववेला को राष्ट्र के भावनात्मक नव-निर्माण की, अध्यात्म के माध्यम से सारे विश्व के नवसृजन-नवोन्मेष की बात कहते हैं जो गले उतरती है, क्योंकि वैसा ही कुछ दृश्य विश्वपटल पर दिखाई दे रहा है।

एक सौभाग्य की बात है कि भारत में प्रजातंत्र है। २५०० वर्षों की गुलामी के बाद जब हमें बाहरी आक्रामकों एवं अधिनायकवादी व्यवस्था से मुक्ति मिली तो हमने लोकतांत्रिक प्रणाली में श्वास ली। इसमें सर्वश्रेष्ठ बात यह थी कि जनता अपनी मनमर्जी से अपना प्रतिनिधि चुन सकती थी। इतना बड़ा अधिकार उपलब्ध होते हुए भी यदि उसका दुरुपयोग हुआ एवं वह जाति-पाँति या आतंक-धन के प्रलोभन पर टिकी चुनाव प्रक्रिया बन गयी हो तो समझना चाहिए कि प्रजातंत्र सफल नहीं हुआ। प्रजातंत्र की सफलता एक दूरदर्शी-जिम्मेदार वोटर पर तथा न्याय व लोकहित का ध्यान रखने वाले स्वजेता स्तर के चुने हुए प्रतिनिधियों पर निर्भर है। ऐसे समर्थ प्रजातंत्र की वकालत करते हुए जाग्रत जनसमुदाय को ही पूज्यवर ने विशेष रूप से संबोधित कर इसमें लिखा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव ने नेता की परिभाषा करते हुए लिखा है कि वह समाज का नेतृत्व करने वाला ऐसा मार्गदर्शक होता है जिसे समाज की अगणित समस्याओं का ज्ञान होता है। साथ ही वह क्षमता भी होती है कि वह उनका हल भी निकाल सके। यह नेतृत्व आज एक धन्धे का-कारोबार का रूप ले चुका है। सबकी छवि प्रामाणिकता की कसौटी पर कसने पर धुँधली दिखाई पड़ती है। पूज्यवर लिखते हैं कि अब सृजेताओं की, नव-सृजन की बागडोर सँभालने वाले व्यक्तियों की जरूरत है। जो सचमुच ही समाज व देश के लिए कुछ करना चाहते हैं, उनके लिए समाज सेवा का असीमित क्षेत्र कार्य करने के लिए खुला पड़ा है। समाज सेवा चूँकि अंतः की कसक से की जाती है, उसमें पद-प्रतिष्ठा की टकराहट कहीं भी दिखाई नहीं देती। आज राजनीति का परिमार्जन अज्ञान-अभाव से जूझने वाले, धर्मतंत्र से लोकशिक्षण कर सकने वाले, अपने आचरण से शिक्षण देने वाले, राष्ट्र को पतन के गर्त्त से उबारने वाले, मिशनरी स्तर के कार्यकर्त्ताओं द्वारा ही सम्भव हो सकेगा। पद-प्रतिष्ठा से कोसों दूर रह, समाज संस्कृति के लिए कार्य करने वालों ने ही किसी समाज या राष्ट्र को ऊँचा उठाया है। पूज्यवर ने उन्हीं का आह्वान किया है, उनके मन्यु को जगाने का प्रयास किया एवं व्यापक स्तर की क्रान्ति की उनसे अपेक्षा की है।

आज की समस्त समस्याएँ जो राष्ट्र को ग्रसित किए हुए हैं, किस कारण जन्मी हैं व उनका समाधान किस प्रकार सम्भव है, इस पर बड़ी व्यापक दूरदर्शितापूर्ण दृष्टि डालकर परमपूज्य गुरुदेव ने वे समाधान बताए हैं, जिनकी जड़ें हमारी संस्कृति के आधारभूत तत्वों में विद्यमान हैं। आशावाद की झलक दिखाते हुए वे लिखते हैं कि नवसृजन की चेतना असमर्थ नहीं है। भ्रष्ट चिन्तन व दुष्ट आचरण मिटकर ही रहेगा, यदि देवमानव संगठित हो विश्व राष्ट्र को समर्थ-सशक्त बनाने का बीड़ा जुटा लेंगे एवं यह भावनात्मक नवनिर्माण से, आस्थाओं के परिशोधन से ही होगा, इसमें किसी को संदेह नहीं होना चाहिए ।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

–ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. समस्याएँ अनेक—हल एक **१.१**

समस्त समस्याओं का एक ही हल १.१
मानव की आज की समस्याएँ व उनका समाधान १.३
अगणित युग समस्याओं का एकमात्र समाधान १.५
हमारी अनेक समस्याओं का एक समाधान १.७
समाधान के लिए ठोस प्रयास का आह्वान १.१०
विपन्नताओं से कैसे उबरें ? १.११
समस्याओं की गहराई में उतरें १.१३
कल्याण का मार्ग १.१५
यह परिस्थिति तो बदलनी ही होगी १.१६
आध्यात्मिक लक्ष्य और उसकी प्राप्ति १.१७
सामाजिक कुरीतियाँ कैसे मिटें ? १.१८
धर्म आवश्यक भी है और उपयोगी भी १.१८
आर्थिक तंगी की समस्या और उसका समाधान १.१९
नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला १.२०
हमें मानसिक चिन्तायें क्यों घेरती हैं ? १.२१
आरोग्य रक्षा कैसे सम्भव हो ? १.२२
अनेक समस्याएँ—एक हल १.२३
यह आवश्यक है उपेक्षणीय नहीं १.२४
अगणित समस्याएँ और उनके हल १.२५
प्रगति का राजमार्ग १.२९
प्रगति से पहले अवगति की रोक-थाम १.३३
तथ्यों को समझें, दृश्यों में न उलझें १.३४
इन विभीषिकाओं से कौन जूझेगा ? कैसे जूझेगा ? १.३६
कठिन समस्याओं के सरल समाधान १.३७
नवसृजन की चेतना असमर्थ नहीं है १.३८
देवमानवों का अवतरण १.४०
उन्नति के लिए शिक्षा ही नहीं, विद्या भी अनिवार्य १.४१
भव्यसमाज के नव-निर्माण का एकमात्र आधार—अध्यात्म १.४४
व्यक्तिपरक सन्दर्भ १.४७
समाजपरक संदर्भ १.५८
कठिन समस्याओं के सरल समाधान १.६७
समाज का नव निर्माण आत्मिकी के पुनर्जीवन द्वारा ही सम्भव १.६९
भवितव्यता कैसे साकार हो ? १.७१
उपेक्षित समस्याएँ जो हल करनी ही होंगी १.७३
भ्रष्टाचार की गहरी जड़ें अब उखाड़नी ही होंगी १.७५
खुल जा सिमसिम १.७७

२. अनाचार से कैसे निपटें **२.१**

समाज-सुधार की अनिवार्य आवश्यकता २.१
हमारा समाज असभ्य एवं अविवेकी न हो २.३
समाज को सुधारा और उभारा जाय २.६
आत्मविस्मृति की यह स्थिति कब तक रहेगी ? २.८
अवांछनीयता की जड़ कैसे कटे २.१०
अनाचार का विषवृक्ष उगते ही काटें २.१२
दुष्प्रवृत्तियाँ इस प्रकार पनपती हैं २.१४
समय से पहले की रोकथाम २.१७
प्रतिरोध अनिवार्य रूप से आवश्यक २.१९
रोकथाम भी और प्रतिरोध भी २.२१
बचिये नहीं निपटिये २.२३
असुरता के, अपराधी प्रवृत्ति के स्रोतों को बन्द किया जाय २.२५
क्रूरकर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है २.२९
अपराध न समाज से छिपता है न अपने आपसे २.३१
बढ़ते अपराध और उनका उपचार २.३४
अपराधों का कारण गरीबी ही नहीं है २.३६
तस्करी—एक अपराधपूर्ण कुटिल व्यापार २.३८
विदेशों में राष्ट्र सम्मान से खेलते ये धूर्त २.४०
बिना टिकट यात्रा—एक देश-द्रोह २.४१
बढ़ते बाल अपराध २.४२
किशोरों एवं युवकों की बढ़ती दुष्प्रवृत्तियाँ २.४३
किशोरों में यह प्रवृत्ति न पनपने दी जाय २.४५
बढ़ते अपराधों की परोक्ष पृष्ठभूमि २.४५
निरंकुश भोगवाद—अपराधी प्रवृत्तियों को बढ़ाता है २.४७
अवांछनीयता का उन्मूलन इस प्रकार सम्भव होगा २.४९
ऐसा हम भी कुछ करें २.५२
सफल जन-आन्दोलन की पृष्ठभूमि २.५३
जैसों के साथ तैसा बरतना आवश्यक नहीं २.५४
अहिंसक प्रतिरोध एक आवश्यक अस्त्र २.५५
अहिंसक प्रतिरोध सर्वोत्तम रणनीति २.५७
अहिंसक प्रतिरोध की सफलता का रहस्य २.५९
अनीति के विरोध में जनता की आवाज २.६०
अवांछनीयताएँ आन्दोलनों के बिना हटती नहीं २.६१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आन्दोलनों की असीम सामर्थ्य और आश्चर्यजनक परिणति २.६२
आन्दोलनों की सफलता, उनके स्तर और लक्ष्य पर निर्भर २.६२
सौजन्यता-आन्दोलन, जिसने जापानियों को अनुकरणीय व्यक्तित्व का बना दिया २.६४
आत्मरक्षा का उपाय २.६६
आततायियों को रोका जाय २.६७
बदला किससे लें ? २.६९
घनिष्टता तो साधें, पर विवेक की कसौटी पर २.७१
सुरक्षा और पुनर्निर्माण के लिए २.७१
भावनाओं का जागरण आवश्यक है २.७२

३. हमारा लोकतंत्र सशक्त और समर्थ कैसे बने ? ३.१

हमारा संविधान और लोकतंत्र ३.१
कितने जागरूक हैं, अपनी स्वतन्त्रता के प्रति हम ? ३.१
स्वराज्य बनाम सुराज्य ३.३
स्वाधीनता के बाद स्वराज्य की स्थापना ३.५
राष्ट्रीय प्रगति के लिये उत्तरदायी प्रमुख आधार ३.६
लोकतंत्रात्मक राज्य सफल तभी होगा, जब ३.७
अब हमें ऐसे नेता चाहिए ३.११
समाज निर्माण हेतु नेता नहीं सृजेता चाहिए ३.१२
नेता नहीं सृजेता बनें ३.१६
अभिनेता नहीं युग सृजेता बनें ३.१७
अभिनेता नहीं, नेता बनें ३.१८
देश को अभिनेता नहीं, नेता चाहिए ३.२०
जनसमुदाय का उच्चस्तरीय नेतृत्व ३.२२
नेतृत्व इस तरह अर्जित करें ३.२४
नेता नहीं, नागरिक चाहिए ३.२६
सफल नेतृत्व—एक साधना ३.२८
राजनेता जननेता भी तो बनें ३.२९
जननेतृत्व विचारशीलों का पुनीत कर्त्तव्य ३.३२
लोकमानस के प्रति शासन तन्त्र का उत्तरदायित्व ३.३२
राष्ट्रीय उन्नति का प्रधान स्तम्भ—नागरिकता ३.३६
नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला ३.३७
सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता और सुव्यवस्था ३.४०
मालिकों को जगाओ—प्रजातन्त्र बचाओ ३.४२
प्रजातन्त्र की सफलता वोटरों के परिष्कृत दृष्टिकोण पर निर्भर है ३.४८
प्रजातन्त्र का लाभ दूरदर्शी मतदान से ही सम्भव ३.४९
मत (वोट) यों मत पटकिये, वह बड़ा कीमती है ३.५२
प्रत्याशियों के चरित्र और तरीकों का भी जनता ध्यान रखे ३.५३
जनतन्त्र को स्वार्थतन्त्र बनने से बचाएँ ३.५५
सामन्ती समर्थता जनशक्ति से बढ़कर नहीं ३.५८
प्रजातन्त्र की सफलता के लिए हम यह करें ३.६०
शासन-मुक्त समाज ही आदर्श समाज है ३.६४
राजनीति पर किसका अंकुश हो ? ३.६६
राजनीति धर्म पर आधारित हो ३.६८
राजनीति धर्मतन्त्र की पक्षधर बने ३.७०
राजनीति और धर्मनीति का समन्वय ३.७२
राजनीति से बढ़कर समाज सेवा की दिशा ३.७३
परिवर्तन की आवश्यकता और भारत की प्रकृति ३.७६
जनता के सुप्रीम कोर्ट में समस्याओं के समाधान की गुहार ३.७८
शासनतन्त्र के लिये कुछ व्यावहारिक सुझाव ३.८०
प्रजा को शासन सँभालने योग्य बनाया जाय ३.८३
प्रजातन्त्र की सफलता के कुछ सुनिश्चित मापदण्ड ३.८४
सत्ता और पूँजी की प्रस्तुत विपत्तियों में अनुपयुक्त भूमिका ३.८७
हम राजनीति में भाग क्यों नहीं लेते ? ३.८९

४. व्यक्तिवाद नहीं—समूहवाद ४.१

हमारा चिन्तन समाजपरक हो ४.१
समाज के साथ ही व्यक्ति का उत्कर्ष सधेगा ४.३
सबकी उन्नति में अपनी उन्नति ४.१२
सामाजिक उन्नति में व्यक्ति की उन्नति सन्निहित ४.१४
सबके कल्याण में ही अपना कल्याण निहित है ४.१६
स्वयं का नहीं सबका हित सोचें ४.१७
व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व ४.१८
सामूहिक उत्कर्ष का एकमात्र आधार—आत्मीयता का विस्तार ४.२०
अपनी इच्छा ही नहीं, दूसरों का हित भी देखें ४.२३
सामूहिकता की भावना विकसित कीजिये ४.२५
निकृष्ट स्वार्थ के विषधर से बचे रहिये ४.२८
स्वार्थपरता एक अनैतिक मूर्खता ४.२९
हमारा दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं विशाल हो ४.३१
सहचरों की घनिष्टता ४.३४
कर्मों का सामूहिक फल ४.३४
स्वार्थ ही नहीं परमार्थ को भी साधें ४.३५
सामाजिक प्रगति का एकमात्र आधार ४.३८
मिल-जुलकर आगे बढ़िए ४.४१
सबके हित में अपना हित ४.४३
हम एकता की ओर बढ़ें ४.४५
आत्मतुष्टि ही नहीं परोपकार भी ४.४७
परमार्थ में स्वार्थ भी समाहित है ४.४९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख स्वार्थ में नहीं, परमार्थ में ४.५१
सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन का उच्चस्तरीय परमार्थ ४.५२
परमार्थ भावनाएँ टालिये मत ४.५४
पुण्य परमार्थ में औचित्य का समावेश हो ४.५६
परमार्थ प्रयत्नों में मानव जीवन की सार्थकता ४.५७
अतिमहत्त्वपूर्ण तीन सेवा साधनाएँ ४.५९
श्रेष्ठतम सेवा—पतन निवारण ४.६१
सेवा हमारी जीवन नीति बने ४.६३
सेवाविहीन जीवन—निन्दनीय ४.६४
समाज का ऋण चुकाना ही श्रेयस्कर ४.६५
सेवा साधना के प्राथमिक सिद्धान्त ४.६८
समाज का ऋण चुकाना ही होगा ४.६९
समाज देवता की आराधना—सेवा साधना ४.७१
समाज सेवा का परिवार निर्माण से आरम्भ ४.७२
सेवाधर्म हर दृष्टि से नफे का उपक्रम ४.७५
यह रिश्तेदारी न भूलें ४.७७
धरती पर स्वर्ग को प्राप्त कीजिये ४.७७
समाज सेवा साधना स्तर की हो ४.७९
सेवा का अवसर हर समय ४.८१
हम सेवा का महत्त्व भी समझें, स्वीकारें ४.८२
जीवन को सेवामय बनाइए ४.८४
लोकसेवा आत्म-विज्ञापन का आडम्बर न बनने पाये ४.८६
लोकमानस को कैसे बदला जाय ? ४.८७
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ४.८९
हमारी सहानुभूति गहरी और सजीव हो ४.९०
सहिष्णुता : एक सामाजिक गुण ४.९१
दुराग्रही नहीं, सहिष्णु बनें ४.९४
सहिष्णुता का दूसरा नाम तप साधना ४.९६
सहानुभूति, मनुष्य का दैवी गुण ४.९७
हमारे हृदय सहानुभूति से भरे रहें ४.९९
स्नेह और सहानुभूति—
आत्मा की भूख और प्यास ४.१००
बुद्धिमान ही नहीं, संवेदनशील भी बनें ४.१०१
संवेदनाओं के स्रोत सूखने न पायें ४.१०३
सौजन्यता की अभ्यर्थना ४.१०४
जड़ता छोड़े—प्रगतिशीलता अपनाएँ ४.१०६
व्यक्ति का ही नहीं समाज का भी निर्माण ४.१०७
अपना ही नहीं कुछ समाज का भी हित, साधन करें ४.१०९

५. राष्ट्रीय प्रगति के कुछ अनिवार्य मापदण्ड ५.१
राष्ट्र निर्माण प्रचण्ड पुरुषार्थ से ही सम्भव ५.१
प्रगति का एक ही आधार—प्रचण्ड पुरुषार्थ ५.२
समृद्धि का मूलमंत्र प्रचण्ड पुरुषार्थ ५.३
प्रगति और कर्मठता एक ही तथ्य के दो पक्ष ५.५
नागरिकों के स्तर पर राष्ट्र की प्रगति निर्भर ५.७
उनकी श्रम निष्ठा अनुकरणीय है ५.९
व्यक्ति की प्रगति समाज की उन्नति में ५.११
राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार—चरित्रनिष्ठा ५.१३
व्यक्ति और समाज का सर्वोपरि बल—चरित्र ५.१५
सच्चरित्रता संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति है ५.१६
चरित्र बल बढ़े तो राष्ट्र ऊँचा उठे ५.१७
चरित्र-उत्थान के बिना राष्ट्रोन्नति असम्भव ५.१९
राष्ट्रीय-चरित्र भी विकसित किया जाय ५.२०
तात्कालिक नहीं दूरवर्ती हितों को प्रश्रय मिले ५.२१
राष्ट्रोत्थान में नैतिकता की अनिवार्य आवश्यकता ५.२३
अनुशासन का उल्लंघन न करें ५.२५
कर्त्तव्य-धर्म की मर्यादा मत तोड़िये ५.२६
अनुशासन में रहा कीजिये ५.२८
अनुशासन ही समाज को आगे बढ़ाता है ५.३०
नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन न करें ५.३२
नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला ५.३३
नैतिकता को ऊँची उठाओ ५.३४
दिखावटी और वास्तविक नैतिकता ५.३६
राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में आपका योग ५.३७
राष्ट्र का आर्थिक अभ्युदय एवं नैतिक मूल्य ५.३९
व्यक्ति और समाज की समृद्धि के शाश्वत आधार ५.४०
लोकमानस का परिष्कार आवश्यक ५.४२
महत्त्व लोकमानस के परिष्कार का भी समझें ५.४४
विश्ववसुधा के मुकुट पर चमकते ये मुक्तकमणि ५.४५
सम्मान आदर्शवादिता को ही मिलना चाहिए ५.४६
आदर्शों की पराकाष्ठा हमारी सांस्कृतिक धरोहर ५.४८
आदर्शों की कथनी ही नहीं, करनी भी ५.५०
व्यक्ति एवं समाज निर्माण का केन्द्र बिन्दु उत्कृष्टतावादी जीवन दर्शन ५.५१
व्यक्ति और समाज की प्रगति का आधार सहयोग-सहकार ५.५३
मानवी प्रगति का एक-ही आधार—सहयोग-सहकार ५.५४
उदार सहकारिता से ही हमारी उलझनें सुलझेंगी ५.५६
सत्प्रवृत्तियों में मूर्धन्य सहकारिता ५.५७

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहकार पर निर्भर सुख-समुन्नति ५.५६
संघर्ष पर उतरें या सहयोग करें ५.६१
संसार उपयोगितावाद पर नहीं, सहयोग और सद्भाव पर जीवित ५.६३
जीवन का माधुर्य सहकारिता में है ५.६५
मानवी प्रगति सहकारिता से ही द्रुतगामी बनेगी ५.६८
सहयोग और सहकार से ही समस्या सुलझेगी ५.६९
हम सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत बनें ५.७१
हम अपने उत्तरदायित्व समझें और उन्हें निबाहें ५.७३
समाज के ऋण को भी चुकाया जाय ५.७५
जनशक्ति को नव-सृजन में जुटाया जाय ५.७७
राष्ट्र धर्म ५.७९
राष्ट्र के उत्थान हेतु मनीषा आगे आयें ५.८०
विभूतिवान आगे आयें, नवसृजन की बागडोर सँभालें ५.८२
समाज परिवर्तन में बुद्धिजीवियों की भूमिका ५.८४
प्रबुद्ध व्यक्ति अपना महत्त्व और दायित्व समझें ५.८५
समाज सुधार के लिए प्रबुद्ध वर्ग आगे बढ़े ५.८७
समाज के नवनिर्माण में मनीषी समुदाय की भूमिका ५.८९
राष्ट्र निर्माण जागरूक बुद्धिजीवियों से ही सम्भव ५.९१
राष्ट्रोत्कर्ष हेतु संत-समाज का योगदान अपेक्षित ५.९२
राष्ट्र का विकास बिना आत्म-बलिदान के नहीं हो सकता ५.९४
भारतमाता की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा के लिए ५.९५
देशभक्त नव-निर्माण के कार्य में जुट जायें ५.९६

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्याएँ अनेक—हल एक

समस्त समस्याओं का एक ही हल

राष्ट्र को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने के लिए आदर्शवाद, नैतिकता, मानवता, परमार्थ, देशभक्ति एवं समाजनिष्ठा की भावनाओं की जाग्रति नितान्त आवश्यक है। इसके अभाव में अन्य साधन-सामग्री चाहे कितने ही विपुल परिमाण में उपलब्ध क्यों न हो, हमारी आन्तरिक दुर्बलता को दूर न कर सकेगी। आदर्शहीन, कपटी, दुष्ट, दुराचारी, कायर और स्वार्थी लोगों के हाथ में साधन, सामग्री लग जाय तो इसके आधार पर उनकी बुराई ही अधिक बढ़ती है और उससे अहित ही अधिक होता है। इसलिए सुरक्षा और प्रगति के साधन जुटाते हुए इस बात का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि मानव अन्तःकरण में सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों की भी अभिवृद्धि निरन्तर होती रहे।

धैर्य और साहस का मूल्य तोप और तलवार से बढ़कर है। देशभक्ति और बलिदान की भावनाओं से ओत-प्रोत नागरिक टैंकों और जहाजों से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इसके विपरीत कंजूस, मुनाफाखोर, जखीरेबाज, कायर, डरपोक, देशद्रोही, उत्पाती, अपराधीवृत्ति के लोग राष्ट्रीय संकट के समय शत्रु के बमों से अधिक हानिकारक और भयावह सिद्ध होते हैं। आस्तीन में छिपा बैठा हुआ छोटा-सा सँपोला, जंगल में रहने वाले भयंकर विषधर से अधिक घातक होता है। जनता की मानसिक कमजोरी हथियारों की कमजोरी की अपेक्षा अधिक दुष्परिणाम प्रस्तुत करती है।

शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में अनेक प्रकार की समस्याएँ और उलझनें आज अपने चारों ओर बिखरी हुई हमें दीखती हैं। इन सब का हल एक ही है, आन्तरिक संकीर्णता और दुर्बलता को मिटाना। बौद्धिक क्रान्ति ही समस्त क्रान्तियों की जननी है। विचार बदलते ही सारी परिस्थितियाँ बदल जाती हैं।

शारीरिक कमजोरी और बीमारी को दूर करने के लिए तात्कालिक रूप से कोई दवा-दारू, इलाज, उपचार कारगर हो सकता है, पर यदि स्थिर स्वास्थ्य चाहते हैं तो आहार-विहार पर कठोर नियन्त्रण रखे बिना काम नहीं चलेगा। मन की लिप्सा ही इन्द्रियों को ढीला छोड़ती है। यदि स्वभाव में संयम और नियमितता का समुचित समावेश हो जाय तो रोग मुक्त रहते हुए दीर्घजीवन का आनन्द लाभ किया जा सकता है। स्वास्थ्य के लिए किए जाने वाले बाहरी सारे प्रयत्न एक ओर रखे जायें और मन का संयम एक ओर रहे तो संयम का ही पलड़ा भारी रहेगा।

बौद्धिक दृष्टि से अपने पिछड़ेपन का कारण, ज्ञान के महत्व को ठीक तरह न समझ पाना ही होता है। लोग स्वास्थ्य को बेकार समझते हैं, विद्याध्ययन का उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना या प्रमाणपत्र लेना मात्र मानते हैं। यदि ज्ञान, संयम को आत्मा की भूख बुझाने वाला आवश्यक आहार मान लिया जाय तो मनुष्य अन्य आवश्यक कार्यों की तरह अध्ययन के लिए भी नित्य समय निकालता रहे। यह बात यदि आदत में सम्मिलित हो जाय तो विषम परिस्थितियों में रहते हुए भी ज्ञानोपार्जन की सुविधा मिलती रहती है और हर कोई अपनी मनोभूमि को उच्च भूमिका में विकसित कर सकता है। ज्ञान संसार का सर्वश्रेष्ठ धन है। जितनी दिलचस्पी धन उपार्जन में रहती है यदि उतनी ही अभिरुचि ज्ञान संचय में उत्पन्न हो जाय तो हमें सुसंस्कृत एवं प्रबुद्ध कहलाने की स्थिति प्राप्त होने में कोई कठिनाई न रहेगी।

आर्थिक कठिनाइयों के बाहरी अनेक कारण भी होते हैं। कई बार मजबूरियाँ भी परेशानी का कारण होती हैं। पर आमतौर से आलस, पूरा मनोयोग न लगाना, समय की बर्बादी और अपनी स्थिति से अधिक खर्च करने लगना ही अर्थ संकट का प्रधान हेतु पाया जाता है। जो लोग उपार्जन के लिए तत्परतापूर्वक श्रम करते हैं, वे कम आमदनी होते हुए भी आनन्द से गुजारा करते हैं। इसके विपरीत जिन्हें फिजूलखर्ची की आदत है और जो आवश्यक सतर्कता नहीं बरतते वे अधिक कमाने पर भी ऋणी और चिन्ताग्रस्त बने रहते हैं। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए बाह्य साधनों की जितनी आवश्यकता है उससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि अपना मन काबू में रहे। वे दुर्गुण और व्यसन आदत में शामिल न होने पायें जो अर्थ-संकट उत्पन्न होने के प्रमुख कारण होते हैं।

सामाजिक क्षेत्र में लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध न होने, द्वेष, मनोमालिन्य और असहयोग रहने का केवल यही कारण नहीं है कि लोग बुरे हैं, जमाना खराब है। ऐसा होता तो सभी के साथ सभी का दुर्व्यवहार ही रहता। पर देखा यह भी जाता है कि अनेकों को अगणित मित्र, सहयोगी और प्रशंसक घेरे रहते हैं। परस्पर सहायता भी करते हैं और सहयोगपूर्वक आनन्द एवं उत्कर्ष से लाभान्वित होते हैं। यदि जमाना ही बुरा है तो वह सबके लिए बुरा होना चाहिए था। वस्तुस्थिति यह है कि हमारे अपने खोट और दोष ही मनोमालिन्य पैदा करते हैं।

अपने स्वभाव की खराबियाँ साधारणतः समझ में नहीं आतीं पर यदि अधिक ध्यानपूर्वक उन्हें ढूँढ़ा, खोजा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय तो वे त्रुटियाँ पकड़ में आ सकती हैं जिनके कारण द्वेष, उपेक्षा और असहयोग का वातावरण उत्पन्न होता है। अपने स्वभाव को मधुर, आकर्षक, शिष्ट और उदार बना कर अपने सहयोगियों, प्रशंसकों और मित्रों की संख्या में आशातीत वृद्धि हो सकती है। भविष्य को उज्ज्वल बनाने में, प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने में; सन्मित्रों का भारी हाथ होता है और वे उन्हें ही मिलते हैं जिन्होंने अपने स्वभाव में आवश्यक सुधार कर लिया है। क्रोधी, चिड़चिड़े, ईर्षालु, निन्दक, स्वार्थी, छिद्रान्वेषी, एकाकी, डरपोक प्रकृति के लोगों को तो मित्रों से वंचित ही रहना पड़ता है।

हमारी सामाजिक कुरीतियाँ आजकल आर्थिक कमर तोड़ डालने वाली और भारी परेशानी उत्पन्न करने का माध्यम बनी हुई हैं। इन मूर्खताओं की जड़ हमारी मानसिक कमजोरी में ही गढ़ी रहती है। विवाह-शादियों में होली की तरह गाढ़ी कमाई के पैसे स्वाहा किये जाते हैं। इसमें केवल एक अन्ध-परम्परा और मरणोन्मुख रिवाज ही कारण बनी हुई है।

समाज सुधार की अगणित समस्याओं का हल, भावना की जाग्रति पर ही संभव है। बाल विवाह के विरुद्ध कानून मौजूद है, पर भारी संख्या में बाल-विवाह हर साल खुलेआम होते हैं। दहेज के विरुद्ध कानून मौजूद है, पर इतना लम्बा समय बीत जाने पर भी न तो दहेज विरोधी कोई मुकदमा सफल हुआ और न वह कुकर्म रुका। अस्पृश्यता विरोधी कानून के अनुसार छूत-छात को दंडनीय अपराध माना गया पर वह बुराई अभी भी चिन्ताजनक रूप में विद्यमान है। जब हत्या, चोरी, डकैती या बलात्कार सरीखे कड़ी सजा वाले अपराधों को पूर्णरूपेण कानून नहीं रोक पा रहा है तो फिर सामाजिक कुरीतियों को मिटाने वाले कमजोर कानून किस हद तक सफल होंगे यह विचारणीय है। वस्तुतः इस प्रकार के सुधार जनभावना की जाग्रति पर ही निर्भर हैं। कुरीतियों के विरुद्ध यदि मानस प्रखर हो उठे तो उनका दस दिन ठहर सकना भी संभव न रहे।

आत्मिक और चारित्रिक क्षेत्र में आज चोरी, तस्करी, बेईमानी, ठगी और दंभ की जो प्रवृत्तियाँ चल रही हैं वे न व्यक्ति के लिए लाभदायक हैं न समाज के लिए। इनसे अपराध बढ़ते हैं, अशान्ति और अव्यवस्था फैलती है। सरकार का काम और खर्च बढ़ता है तो जनता से ही टैक्स के रूप में वसूल होता है। अपराधी को भी इसमें स्थायी लाभ नहीं। धोखा देकर थोड़े दिन थोड़ा लाभ कमाया जाता है, उसके बदले में सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है और वह अविश्वासी आदमी उपेक्षित एवं घृणास्पद बनकर दरिद्रता, असफलता और परेशानी में फँसा रहता है। इसके विपरीत यदि ईमानदारी और सचाई की नीति पर दृढ़ता से अड़ा रहा जाय तो आरंभ में थोड़े दिन कठिनाई भले ही रहे पर जब लोग उसे परख लेते हैं तो जी-जान निछावर करने को तैयार हो जाते हैं। सज्जन व्यक्ति प्रतिष्ठा भी प्राप्त करता है, घाटे में भी नहीं रहता और शक्ति भी प्राप्त करता है। लोक और परलोक दोनों ही उज्ज्वल बनते हैं।

बेईमान इंजीनियर चाहे कितना ही सुयोग्य क्यों न हो, रिश्वत लेने पर उतारू रहे तो उसके द्वारा बनवाये हुए काम, नासमझ लोगों द्वारा ईमानदारी के साथ बनाये हुए कामों से भी खराब सिद्ध होंगे। बेईमान व्यापारी निकम्मी, मिलावटी, नाप-तौल में कम, महँगी वस्तुएँ बेचकर जनता का अहित ही करेगा। रिश्वतखोर सज कर्मचारी शासन को नष्ट करते हैं और जनता में असंतोष फैलाते हैं। कोई कितना ही सुशिक्षित, समुन्नत या समृद्ध क्यों न हो यदि ईमानदार नहीं है तो उसके द्वारा सबका अहित ही होगा। दुराचारी पुरोहितों द्वारा धर्म की हानि ही होती है। कायर सैनिक शत्रु का ही मनोरथ पूर्ण करते हैं। कामचोर मजदूर उत्पादन और अच्छाई का स्तर घटा कर राष्ट्रीय समृद्धि को क्षति ही पहुँचाते हैं। किसी भी क्षेत्र में लीजिए यदि उसके कार्यकर्ता बेईमानी और अनीति को अपनाये होंगे तो उनकी बाहरी दौड़धूप व्यर्थ सिद्ध होगी, उनके कार्यों का परिणाम अन्ततः दुःखद और घातक ही होगा। बेईमान नेता अपने नेतृत्व की रक्षा के लिए देश को रसातल तक पहुँचा देने वाली करतूतें करते हुए संकोच नहीं करते।

प्रगति पथ की सब से बड़ी बाधा बेईमानी, अनैतिकता, स्वार्थपरता एवं संकीर्णता ही है। शारीरिक दुर्बलता, आन्तरिक अशान्ति, सामाजिक विद्वेष, आर्थिक कठिनाई की जड़ अनैतिकता है। अपराध, पतन, पाप, संघर्ष एवं संकट की बाढ़ का कारण केवल दुष्प्रवृत्तियाँ ही हैं। अगणित समस्याएँ केवल इस एक ही विकृति के कारण उत्पन्न होती हैं और उनका समाधान भी इस एक समाधान के द्वारा ही हो जाता है। उत्कर्ष के लिए क्रान्तियाँ आवश्यक मानी जाती हैं। सबसे बड़ी सब क्रान्तिओं की जननी बौद्धिक एवं नैतिक क्रान्ति ही है। भावनाओं में परिवर्तन होते ही सब कुछ बदल जाता है।

हमारे सामने राष्ट्र की सुरक्षा का प्रश्न खड़ा हुआ है। उसे हल करने के लिए प्रगति और शक्ति चाहिए। इन दोनों का आधार है—भावनाओं का जागरण। साधन-सामग्री भी बढ़नी चाहिए, पर इसका सदुपयोग तो भावनाओं पर ही निर्भर है। सबल राष्ट्र की रचना के लिए उसके नागरिकों का सबल होना आवश्यक है। स्वास्थ्य, धन, विद्या, संगठन, शस्त्र आदि के माध्यम से राष्ट्र बलवान बनते हैं, पर इनकी उपलब्धि के लिए प्रखर मनोबल अनिवार्य है। हम इस मूलभूत तथ्य की उपेक्षा न करें। जनमानस की प्रसुप्त, उत्कृष्ट भावनाओं को जगाने का प्रयत्न करें तो उसके आधार पर जाग्रत हुई शक्ति हमारी ही नहीं सारी मनुष्य जाति की अगणित समस्याओं को हल कर सकती है। सुरक्षा समस्या को हल करना तो उस जन-जाग्रति के लिए नितान्त सरल और सहज है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव की आज की समस्याएँ व उनका समाधान

जिधर भी दृष्टि पसार कर देखा जाय उधर आज अभाव, असंतोष, चिंता, क्लेश, कलह का बाहुल्य दिखाई पड़ता है। यों वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ अगणित प्रकार के सुविधा-साधन बढ़ गये हैं पर उनमें न व्यक्ति की शांति बढ़ी और न समाज की प्रगति हुई। विज्ञान की उपलब्धियों पर विचार करें तो प्रतीत होता है कि आज से हजार वर्ष पहले के मनुष्य की अपेक्षा अब की सुविधा-सामग्री इतनी अधिक है कि मनुष्य लोक को देवलोक की तरह कल्पित किया जा सकता है। पूर्व काल में रेल, मोटर, डाक-तार, बिजली, प्रेस, रेडियो, मशीनें, कल-कारखाने, जहाज आदि कहाँ थे ? साबुन, माचिस से लेकर पेन, साइकिल तक दैनिक जीवन में अनेकों चीजें विज्ञान की देन हैं। चिकित्सा एवं शिक्षा के साधन बहुत बढ़ गये हैं। इस उत्पादन के साथ-साथ मनुष्य की सुविधा एवं प्रसन्नता बढ़नी चाहिए थी। आर्थिक विकास भी इन हजार-पाँच सौ वर्षों के भीतर आश्चर्यजनक हुआ है। इसका लाभ मिलने से मानसिक सुख-समृद्धि की बढ़ोत्तरी होनी चाहिए थी, पर दीखता है कि उलटी और कमी हुई है। लोग अपने आपको आर्थिक अभावग्रस्त, रुग्ण, चिंतित, एकाकी, असहाय एवं समस्याओं से घिरा हुआ अनुभव करते हैं। भौतिक प्रगति को देखते हुए लगता है कि पिछले हजार वर्षों में हम बहुत अधिक साधन सम्पन्न हो गये। पर बारीकी से विचार करने पर प्रतीत होता है कि इस अवधि में हम कहीं अधिक पिछड़े, गिरे एवं बिगड़े हैं। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, पारिवारिक सौजन्य सामाजिक सद्भाव, आर्थिक संतोष एवं आंतरिक उल्लास के सभी क्षेत्रों में भारी अवसाद एवं गतिरोध उत्पन्न हुआ है। इस दृष्टि से आज की सुविधा, सम्पन्नता और पूर्व काल की असुविधा-भरी परिस्थितियों की तुलना की जाय तो भी लगता है कि वे असुविधा भरे समय के निवासी आज के हम लोगों की तुलना में असंख्य गुने सुखी एवं संतुष्ट थे। तब की और अब की परिस्थितियों में उतना ही अंतर आ गया है जितना स्वर्ग और नरक में माना जाता है। वस्तुतः आज हमें नारकीय परिस्थितियों में ही रहना पड़ रहा है। लोगों के स्वास्थ्य बेतरह गिरते चले जा रहे हैं, रुग्णता और दुर्बलता ने हर शरीर में अपना अड्डा जमा लिया है। चारपाई पर पड़े कराहते रहने की स्थिति भले ही न आ पाई हो पर किसी प्रकार की रुग्णता ने घर जरूर बना रखा होगा। स्वस्थ व्यक्ति में जितनी कार्यक्षमता होनी चाहिए उतनी आज कितने व्यक्तियों में है ? टूटे-फूटे स्वास्थ्य को लेकर किसी तरह जिन्दगी के दिन पूरे हो रहे हैं।

इस स्थिति का कारण बहुमूल्य पौष्टिक भोजनों का न मिलना नहीं है। भील और वनवासी, किसान और मजदूर जिन्हें बहुत घटिया किस्म का भोजन मिलता है, अपेक्षाकृत अधिक मजबूत एवं नीरोग दीखते हैं। यदि आहार की पौष्टिकता ही आरोग्य का आधार रही होती तो सम्पन्न लोगों में हर कोई बलिष्ठ और निर्धनों में से हर एक रुग्ण, अस्वस्थ दिखाई पड़ता। आरोग्य संकट का एक मात्र कारण है—हमारा आहार-विहार संबंधी भ्रष्टाचार। असंयमी और उच्छृंखल रीति-नीति अपनाकर हम प्रकृति से जितने ही दूर हटे हैं उतने ही अस्वस्थ्य होते चले गये हैं। यह भूल दवा-दारू की लीपा-पोती से नहीं सुधर सकती। खोया स्वास्थ्य पुनः पाना हो तो हमें प्रकृति की शरण में लौटना पड़ेगा। आहार-विहार संबंधी संयम अपनाना होगा। यह कार्य दृष्टिकोण के परिवर्तन से ही संभव है।

मानसिक अस्वस्थता आँखों से दिखाई नहीं पड़ती, इसलिये लोग उसके सम्बन्ध में प्रायः बेखबर रहते हैं। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो शरीर से भी कहीं अधिक रुग्ण एवं दुर्बल मन पाये जायेंगे। अनिद्रा, सिर दर्द, स्मरणशक्ति की कमी, मूढ़ता, उन्माद जैसे मस्तिष्कीय रोगों की बाढ़ तो आ ही रही है। चिन्ता, भय, निराशा, आवेश, अधीरता, हड़बड़ी, सनक, शक्कीपन, अव्यवस्था, निरुत्साह जैसे मनोविकार अधिकतर लोगों को अपना शिकार बनाये हुए अनेक व्यक्तिगत जीवनों को पतनोन्मुख बनाये हुए हैं।

भावनात्मक अस्वस्थता के कारण अधिकांश लोग प्रफुल्लता, उल्लास, साहस, पुरुषार्थ, उदारता, वीरता, सहृदयता, सज्जनता जैसे मानवोचित गुणों से वंचित हो रहे हैं। फलस्वरूप मनुष्य के शरीर में रहते हुए भी उनकी जीवात्मा पाशविक स्तर का जीवनयापन कर रही है। ईश्वर प्रदत्त विभूतियों से वह तनिक भी लाभ नहीं उठा पाते और कीट-पतंगों जैसा आहार-निद्रा प्रधान हेय जीवन जीकर इस संसार से विदा हो जाते हैं। जिन लोगों के साथ उनका सम्पर्क रहता है, वे कुढ़ते, पछताते और असंतोष ही प्रकट करते रहते हैं। न उसे किसी से संतोष, न उससे किसी को संतोष। ऐसे निरर्थक एवं निंदनीय जीवन स्तर बने रहने का कारण भावनात्मक अस्वस्थता ही है। काश, मनुष्य की भावनाएँ उदात्त एवं उत्कृष्ट रही होतीं तो सामान्य परिस्थितियों और सामान्य साधनों के रहते हुए भी उसने महापुरुषों जैसा, नर-रत्नों जैसा प्रकाश एवं आनन्द-भरा जीवन जिया होता।

सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में जो विकृतियाँ-विपन्नताएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे कहीं आकाश से नहीं टपकी हैं, वरन् हमारे अग्रणी, बुद्धिजीवी एवं प्रतिभासम्पन्न लोगों की भावनात्मक विकृतियों ने उन्हें उत्पन्न किया है। जनमानस में छाए हुए अविवेक एवं अवसाद के कारण ही वे दुष्प्रवृत्तियाँ पनप और फल-फूल रही हैं।

स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह हैं। मूँछ न होने या अन्य अंगों में थोड़ा प्रकृति प्रदत्त हेर-फेर होने के कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके मानवीय स्तर एवं अधिकार में कोई अंतर नहीं आता। फिर भी एक अविवेक सामाजिक मान्यता बन कर हमारे मनों में छा गया है और स्त्री जाति को पिंजड़े में बंद पक्षी या रस्सी से बाँधे हुए पशु की तरह घरों में कैद रखा जा रहा है। उसे शिक्षा, स्वावलम्बन आदि सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। दृष्टि दूषण के कारण आज हमारा आधा समाज अर्धांश पक्षाघात से पीड़ित मरीज की तरह अपनी आधी शक्ति को निरुपयोगी बनाये हुए है। उसकी आधी सामर्थ्य बिल्कुल बरबाद जा रही है। जबकि संसार की अन्य सभी जातियाँ अपनी जनसंख्या का पूरा-पूरा लाभ ले रही हैं और प्रगति पथ पर अग्रसर हो रही हैं, तब हमें अपने आधे समाज का भार निर्जीव लाश की तरह ढोना पड़ रहा है। यह मोटे तथ्य हैं। उस पर थोड़ा जोर देने से वस्तुस्थिति को हर कोई समझ सकता है। इतने पर भी दृष्टिदोष की बीमारी हमें वह सोचने-करने नहीं दे रही है जिससे हम सशक्त समाज के रूप में विकसित हो सकें। इस दृष्टिदोष को सुधारे बिना हमारा सामाजिक कल्याण हो नहीं सकेगा। हम इस गई-गुजरी स्थिति से ऊँचे उठ न सकेंगे।

आज धर्म के नाम पर ८० लाख व्यक्ति आलस्य और प्रमाद का जीवन जी रहे हैं। मंदिर, मठ, तीर्थ एवं दान-पुण्य के नाम पर समय और धन जितना व्यय होता है यदि उसका ठीक तरह उपयोग होने लगे तो हमारी सामाजिक, नैतिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति इतनी गतिशील हो जाय कि प्राचीनकाल का गौरव पुनः प्राप्त करने में कुछ कठिनाई शेष न रह जाय। हमारे धार्मिक नेता अलग-अलग सम्प्रदाय चला कर अपना-अपना अलग पूजा-प्रतिष्ठा का गोरखधंधा छोड़ दें और एक ही मंच से सारे हिन्दू समाज को संगठित एवं समर्थ बनाने में लग जायें तो इसका इतना बड़ा परिणाम सामने आये, जिसे देख कर संसार आश्चर्यचकित रह जाय।

हमारे अन्य नेता भी अपना व्यक्तिगत वर्चस्व बनाये रखने के लिए भाषावाद, प्रांतवाद, जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद की अलगाववादी प्रवृत्ति को बढ़ा रहे हैं। फूट और विघटन के बीज बो रहे हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में संलग्न रह कर ऐसे लोग ही सरकारी मशीन और जनता को अपने अनुसरण के लिये प्रोत्साहन देकर देश में विविध-विधि भ्रष्टाचार का सृजन कर रहे हैं। यदि इनका दृष्टिकोण सुधर जाय और वे अशोक, राम, युधिष्ठिर, जनक, अश्वघोष, चाणक्य जैसे निस्पृह राज-नेताओं का उदाहरण प्रस्तुत करने लगें तो राजनैतिक स्थिति का स्वरूप ही बदल जाय। गाँधी, पटेल, सुभाष, नेहरू, मालवीयजी, लाजपतराय, तिलक जैसे राजनेता स्वाधीनता का वरदान दिला सके। उसी प्रकार का उच्च भावना सम्पन्न नेतृत्व यदि आज भी हमारे पास रहा होता तो रामराज्य के वे सपने मूर्तरूप धारण कर रहे होते, जिन्हें गाँधीजी ने कोमल कल्पनाओं के साथ सँजोया था। जो राजनैतिक गुत्थियाँ आज उठ खड़ी हुई हैं, वे छुटपुट योजनाओं, आयोगों, उपायों एवं समझौतों से नहीं सुलझेंगी। अग्रणी नेतृत्व को सद्भाव सम्पन्न बनाना ही एकमात्र उपाय है, जिससे देश की वास्तविक एवं सुस्थिर प्रगति संभव हो सकती है।

यही बात अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में लागू होती है। विश्व नेता संघ बना कर सारी दुनिया को एक विश्व परिवार बना लें। विभिन्न देशों के बीच होने वाले आक्रमणों एवं संघर्षों की संभावना समाप्त कर दें। विश्व न्यायालय बना लें। संपत्ति, भूमि और ज्ञान का उचित वितरण कर दें तो अकाल, भुखमरी, बीमारी, अशिक्षा जैसे कष्टों का संसार से अंत हो जाय। जितनी जनसंख्या सेना में भर्ती है, अस्त्र-शस्त्र तथा सेना-सामग्री बनाने में जितना धन खर्च होता है, वह सब मानव कल्याण के कामों में लगने लगे तो समस्त संसार में स्वर्गीय सुख-शांति की स्थापना में देर न लगे। यह कार्य युद्धों में एक दूसरे को जीतने से नहीं वरन् सार्वभौम विचार करने की शैली बदलने से संभव होगा। इन दिनों परमाणु अस्त्रों से तीसरे महायुद्ध की तैयारी हो रही है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की महत्वाकांक्षाएँ इसी दिशा में संलग्न हैं। तीसरा सर्वनाशी महायुद्ध अणु आयुधों से हुआ तो वैज्ञानिक आइन्सटीन की यह भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य होकर रहेगी कि "चौथा युद्ध पत्थरों से लड़ा जायेगा।" तब चिरसंचित मानवीय सभ्यता का एक प्रकार से लोप हो जायगा और मनुष्य को अपना विकास आदिम युग की जंगली अवस्था से फिर आरंभ करना होगा।

इन तथ्यों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से किसी विचारशील को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि मनुष्य की व्यक्तिगत एवं सामूहिक समस्त समस्याओं, कठिनाइयों, उलझनों, विपत्तियों का एकमात्र कारण उसके दृष्टिकोण का, भावना स्तर का विकृत हो जाना ही है। इसे सुधारे बिना अन्य समस्त छुटपुट उपचार-आयोजन कुछ क्षणिक प्रयोजन भले ही पूरा करें, वास्तविक एवं चिर समाधान उपस्थित नहीं कर सकते। आज या जब कभी भी वास्तविक एवं चिरस्थायी और सुदृढ़ विश्वशान्ति की आवश्यकता अनुभव की जायगी और उसके लिये दूरदर्शितापूर्ण हल खोजा जायगा तो वह हल एक ही होगा—"मानव मात्र की विचार पद्धति में उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता के अनुरूप परिवर्तन प्रस्तुत करना।"

भावनाशीलों को इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये पूर्व भूमिका का संपादन करना है। सद्भावना, उत्कृष्ट विचारणा, विवेकशीलता एवं सत्यनिष्ठा की स्थापना के लिए जनमानस में उत्कंठा तथा श्रद्धा का सृजन करना होगा। यह आकांक्षा जितनी ही तीव्र होती जायगी, उज्ज्वल भविष्य की संभावना उतनी ही निकट आती चली जायगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अगणित युग समस्याओं का एकमात्र समाधान

इन दिनों व्यक्ति और समाज के सामने प्रस्तुत अगणित समस्याओं और भयावह विभीषिकाओं के सम्बन्ध में विचार करते हुए आश्चर्य होता है कि पदार्थ समुच्चय और प्राणि समुदाय में जब हिल-मिलकर सहयोगपूर्वक रहते हैं तब एक दूसरे के पूरक बनने की सृष्टि व्यवस्था का व्यतिरेक क्यों हो रहा है।

खोजने पर पता चलता है कि नीति-नियमों की मर्यादा का उल्लंघन ही व्यक्ति के निजी जीवन में अनेकानेक आधि-व्याधियों, क्लेश-कलहों, विक्षोभ-विद्रोह, अभाव-अतिक्रमणों का निमित्त कारण बना हुआ है। असंयम शरीर का, असंतुलन मस्तिष्क का, आलस्य उत्कर्ष का, अपव्यय समृद्धि का, कपट सद्भाव का, अनाचार सहयोग का मार्ग अवरुद्ध करता है। संकटों की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। सड़ी कीचड़ में मक्खी, मच्छर, कृमिकीटक एवं विषाणु उत्पन्न होते हैं। इनमें से एक-एक करके अलग-अलग निपटना कठिन है। नाली की कीचड़ साफ कर डालने से ही वे सभी उपद्रव शान्त होते हैं जो अलग-अलग आकार-प्रकार में भिन्न-भिन्न प्रकार के कष्ट देते हैं। पेट का अपच अधिकांश रोगों का उद्गम केन्द्र है। रक्त दूषित होने पर अनेक नाम रूप वाले चर्म रोग, रक्त दोष उत्पन्न होते हैं। यदि निपटना ही हो तो विष वृक्ष की जड़ काटनी चाहिए। टहनियाँ काटने से तो फिर नई कोपलें फूटेंगी और स्थिति कुछ ही समय बाद फिर वैसी ही बन जायगी।

पौराणिक रक्तबीज असुर का रक्त जहाँ भी गिरता था, हर बूँद में एक नया दैत्य उपज पड़ता था। सहस्रबाहु के बारे में कहा जाता है कि उसकी एक भुजा कटने पर दूसरी उसी स्थान पर तत्काल उग आती थी। प्रस्तुत समस्याओं के सम्बन्ध में भी यही बात है। न व्यक्ति के लिए अपनी उलझनें सुलझा सकना शक्य हो रहा है और न सामूहिक समस्याओं के, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के कोई हल निकल रहे हैं। प्रायः राजनैतिक आधार पर ही हल खोजे जाते हैं। सुविधाएँ बढ़ाने या दबाने, दण्ड देने की कूटनीति ही हर समस्या के समाधान में चित्र-विचित्र तरीकों से प्रयुक्त होती रहती है। फलतः कभी-कभी तात्कालिक हल ही निकलते से लगते हैं। किन्तु आकर्षण या दबाव घटते ही फिर सारी परिस्थितियाँ ज्यों की त्यों हो जाती हैं।

व्यक्ति के सामने अस्वस्थता, दरिद्रता, परिवार कलह, असंतोष, आशंका, छल, आक्रमण जैसी चिन्ताएँ ही सिर पर चढ़ी रहती हैं और नारकीय स्तर का खिन्न, उद्विग्न वातावरण बनाये रहती हैं। भारतीय समाज में महँगाई, चोर-बाजारी, हरामखोरी, रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, कुरीतियाँ, मूढ़ताएँ, गुण्डागर्दी जैसे कारणों से जन-जीवन दुष्कर हो रहा है। हर क्षेत्र में नेता लोग अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने के लिए कुछ न कुछ सही-गलत उपद्रव खड़े करते-कराते रहते हैं। वर्ग-विद्वेष उभारने में उन्हीं के कुचक्र षड़यंत्र कार्यान्वित होते रहते हैं। साहित्यकार, कलाकार, सम्पत्तिवान, बुद्धिजीवी, प्रतिभाशाली लोग किसी भी समाज के हृदय, मस्तिष्क माने जाते हैं। उनके हाथ की सामर्थ्य यदि विष व्यवसाय से बचकर अपनी क्षमता आदर्शवादी उत्कर्ष में लगा सके तो बिना किसी शासकीय सहायता के मात्र जनसहयोग से ही सृजन का इतना बड़ा काम हो सकता है कि समूचे समाज को स्वल्प साधनों से भी उत्कर्ष के उच्च शिखर पर पहुँचाया जा सके। किन्तु देखा ठीक विपरीत जा रहा है। प्रतिभाएँ अपने साधनों समेत पतन-पराभव की खाई इसलिए खोदने में लगी हुई हैं कि उनका वैभव कामचलाऊ न रहकर कुबेर, सिकन्दर के समतुल्य बन सके। यही वह रीति-नीति है जिसे बड़ों की देखा-देखी छोटे भी अपना रहे हैं और शिक्षित-अशिक्षित, धनी-दरिद्र सभी अनाचारी घुड़दौड़ में एक दूसरे से आगे निकलने की बाजी बद रहे हैं।

संकटों और विग्रहों के मूल में साधनों की कमी कारण लगती भर है पर वस्तुतः व्यक्तित्वों का पिछड़ापन एवं निकृष्टता से सना हुआ दृष्टिकोण ही आधारभूत कारण है। उसी ने श्रम साधन और बुद्धि वैभव को हेय प्रयोजनों के साथ जोड़ा है फलतः विष बीज बोने पर अमृत फल पाने का स्वप्न कहीं भी साकार नहीं हो रहा। अशिक्षा, गरीबी, बीमारी, बेकारी आदि की लानतें जितनी जल्दी दूर की जा सकें उतना ही अच्छा। इन्हें भगाने के लिए जितना योजनाबद्ध पुरुषार्थ बन सके उतना ही उत्तम। किन्तु साथ ही एक बात और भी नोट करके रखी जानी चाहिए कि इन चारों का निराकरण कर देने पर भी व्यक्ति या समाज के सुखी-समुन्नत होने की आशा नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, फ्रांस, अमेरिका जैसे समृद्ध देशों का उदाहरण सामने है। वहाँ साधनों की प्रचुरता रहते हुए भी कुत्साएँ और कुण्ठाएँ पिछड़े देशों की तुलना में कम नहीं अधिक ही हैं। इसके विपरीत जापान, इस्राइल जैसे छोटे देश अपनी नैतिक विशिष्टता के कारण स्वल्प साधनों से ही समुन्नत जीवन जी रहे हैं। अस्तु, साधनों की बहुलता को महत्व देते हुए भी यह भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अन्ततः मनुष्य का व्यक्तित्व ही उपार्जन और उपभोग का आधारभूत कारण है। यदि उस केन्द्र में पिछड़ापन घुसा बैठा रहा तो भ्रष्ट चिन्तन एवं दुष्ट आचरण के नजारे दीखते रहेंगे और सामर्थ्य का अवांछनीय प्रयोजनों में उपयोग होने से अनेकानेक संकट उत्पन्न होते रहेंगे। पानी का स्रोत रुके नहीं तो मेड़ बाँधने से क्या काम चलेगा। एक जगह रोकने पर दूसरी जगह फूटेगा। एक समस्या सुलझ न पाये और दूसरी उठ खड़ी हो तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझना चाहिए कि फोड़ा नासूर हो गया और सृजन के भीतर कैन्सर जड़ पकड़ गया।

व्यक्ति, समाज और विश्व के सम्मुख उपस्थित छोटी-बड़ी अनेकानेक समस्याओं, विपत्तियों और विभीषिकाओं का आधारभूत कारण एक है—मानवी चेतना का पथभ्रष्ट होना, दृष्टिकोण के दूषित होने से हेय स्तर की ललक-लिप्साएँ उभरती हैं और उनकी पूर्ति के लिए संकीर्ण स्वार्थपरता, निष्ठुर अनुदारता एवं अनीति आक्रामकता के तौर-तरीके अखित्यार करने पड़ते हैं। अनीति भरे स्वार्थ साधन के लिए दूसरों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सताना ही होगा। छद्म छुपा नहीं रहता फिर आक्रमण का घाव तो बनेगा ही। घृणा, विक्षोभ से लेकर विग्रह जैसी अनेकों कष्टकारक, दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। आक्रमण, प्रत्याक्रमण का कुचक्र बनता है और प्रतिशोधों का सिलसिला ऐसा चल पड़ता है जिसका कहीं अन्त नहीं। अनाचारी पहले आक्रमण में ही कुछ कमा लेता है। इसके बाद तो चिरकाल तक अविश्वास, असहयोग और प्रतिशोध ही समय-समय पर उभरते हैं। ऐसे वातावरण में किसी को स्नेह, सद्भाव और सहयोग का, प्रगति एवं प्रसन्नता के लिए नितान्त आवश्यक वातावरण तो मिलेगा ही कैसे ? आशंका और आत्मरक्षा के लिए ही मन सदा भयभीत, आतंकित बना रहेगा। यही है वह विश्लेषण-पर्यवेक्षण जिसे आज व्यष्टि और समष्टि के सामने प्रस्तुत असंख्यों समस्याओं का एकमात्र कारण कहा जा सकता है।

यदि संकीर्ण स्वार्थपरता के स्थान पर उदार आत्मीयता की प्रतिष्ठापना की जा सके तो इतने भर से व्यक्ति और समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान निकल आयेगा। संयम अपनाते ही इन्द्रिय निग्रह पर ध्यान जायेगा, प्रकृति के अनुरूप आहार-विहार रखने की बात सूझेगी और छेद बन्द कर देने पर उपार्जित संपदा का अपव्यय रुक जायगा। स्वस्थ रहने के सभी साधन शरीर संरचना के कण-कण में भरे पड़े हैं। फिर कोई कारण ऐसा न बचेगा जो काया को दुर्बल, रुग्ण रखे या अकाल मृत्यु के मुख में धकेले। इसी प्रकार मानसिक तनाव, चिन्ता, भय, क्रोध, आशंका जैसे उद्वेगों के सम्बन्ध में भी मनःस्थिति और परिस्थिति का तालमेल बिठाने वाली कला हाथ लगते ही, विक्षोभों में से एक का भी अस्तित्व शेष न रहेगा। प्रतिकूलताएँ आसमान से नहीं बरसतीं, मनुष्य की अपनी गढ़ी और उगाई हुई होती हैं। दुष्ट, दुरात्माओं से निपटने के लिए संघर्ष जैसे कठोर उपाय भी अपनाये जा सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि अपनी ही भ्रष्टता के विरुद्ध वैसा ही प्रतिरोध-विद्रोह खड़ा न किया जा सके।

विचार तंत्र का सही उपयोग सीखा जा सके तो मस्तिष्क स्वयं तो उद्विग्न रहेगा ही नहीं, वरन् दूसरों के उद्वेगों को शान्त करने, भ्रान्तों को दिशा देने में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करता रहेगा। दूरदर्शी विवेकवान व्यक्ति स्वनिर्मित उद्वेगों से बचे ही रहते हैं। वास्तविक विपत्तियाँ आने पर भी उनसे हँसते-हँसाते निपट लेते हैं। जबकि असंतुलित व्यक्ति राई-रत्ती कारणों को पहाड़ जैसा बनाकर बौखलाते अपना तथा दूसरों का अनिष्ट करते देखे गये हैं।

आलस्य और फिजूलखर्ची ही दरिद्रता के पिता-माता हैं। आर्थिक संकट उन्हीं पर बरसता है जो इन दो दुर्गुणों के चंगुल में जकड़े रहते हैं। योग्यता बढ़ाते चलने, काम में श्रम और मनोयोग जोड़े रहने, प्रामाणिकता सिद्ध करते रहने, आमदनी से खर्च घटाकर रखने जैसे मोटे-मोटे अर्थ सिद्धान्त अपना लिये जायें और विलासी ठाठ-बाट से, कुरीतियों के जंजाल से, बड़े लोगों का अन्धानुकरण करने से बचते हुए सादा जीवन-उच्च विचार की नीति अपनाई जा सके तो कम आमदनी वाले व्यक्ति भी सुखी-संतुष्ट जीवन जी सकते हैं।

परिवार की संख्या वृद्धि और प्रसन्न करने के लिए कुछ भी करते रहने की प्रवृत्ति निश्चित रूप से भारभूत सिद्ध होती है। धनी और निर्धन दोनों ही इस मोहग्रस्तता से अपना और परिवार का अहित करते हैं। होना यह चाहिए कि जिन परिजनों की जिम्मेदारियाँ ऊपर हैं। उन्हें प्रसन्न, सम्पन्न नहीं सुसंस्कृत, स्वावलम्बी, सद्गुणी बनाने का प्रयत्न किया जाय। एक आँख दुलार की दूसरी सुधार की रखी जाय। पारिवारिकता एक आध्यात्मिक गुण है जिसका अभ्यास घर-कुटुम्ब में किया जाता है और व्यवहार समूचे प्राणिजगत के लिए। यह सभी निर्धारण विशुद्ध आध्यात्मिक हैं, जिन्हें अपनाकर कोई भी व्यक्ति शरीर को स्वस्थ, मन को प्रफुल्ल, धन को सन्तोषजनक, परिवार को सुविकसित उद्यान की तरह मनोरम, शान्तिदायक देख सकता है। सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र भी दैनिक जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। यदि दृष्टिकोण में आध्यात्मिकता का समावेश रहे तो जीवन की सभी दिशाधारा हरी-भरी, फल-फूलों से लदी हुई, उत्साहवर्द्धक, सन्तोषजनक एवं आनन्ददायक बनकर रहेगी। परिस्थितियाँ मनचाही न होने पर भी मनःस्थिति की उत्कृष्टता अपनाकर व्यक्ति सदा-सर्वदा हँसता-हँसाता, उठता-उठाता दृष्टिगोचर हो सकता है। अध्यात्म नकद धर्म है। उसे अपनाकर इस हाथ दे उस हाथ ले का अनुभव विश्वासपूर्वक किया जा सकता है।

सामाजिक, राष्ट्रीय स्तर की व्यापक समस्याएँ भी नैतिक दृष्टि धूमिल होने और निकृष्टता की मात्रा बढ़ जाने के कारण ही उत्पन्न होती हैं। आत्मीयता, उदारता सहकारिता, सद्भावना की उदात्त दृष्टि रखी जा सके—अधिकार की तुलना में कर्तव्य को प्राथमिकता मिल सके—मिल-बाँट कर खाने की आदत पड़ सके तो कोई कारण नहीं कि राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जटिलता चुटकी बजाते हल न हो सके। मनुष्यों की अनुदारता की तरह राष्ट्रों की संकीर्णता ही दूसरों की उपेक्षा करके अपना विलास बढ़ाने में लगेगी तो विग्रह एवं संघर्ष को जन्म देगी ही। इन उलझनों को न कूटनीतिक चतुरता सुलझा सकती है, न प्रलोभनों, आदतों का माहौल ही चिरस्थायी समाधान प्रस्तुत कर सकता है। विश्व संकट के विभिन्न नाम, रूपों के पीछे संकीर्ण स्वार्थपरता की असुरता ही डरावने कुचक्र रचती रहती है। आत्मिक की द्वारा अनुप्राणित दृष्टिकोण को व्यापक बनाने, जन-जन के मन-मन में उतारने का एक काम सम्पन्न किया जा सके तो समस्त संसार को यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि चिरकाल से उलझी हुई समस्त समस्याओं का स्थायी समाधान निकल आया और उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित मार्ग मिल गया।

हमारी अनेक समस्याओं का एक समाधान

मनुष्य का जीवन आज जितना उलझन भरा है, उतना संसार के इतिहास में पहले नहीं रहा। ऐसे अवसर आते रहे हैं जिनमें दुर्भिक्ष एवं राजनैतिक आक्रमणों से जनता में खलबली मची हो पर वह सब कुछ ही दिनों के लिए रहा है और उसका प्रभाव भी शारीरिक कष्टों तक ही सीमित रहा है। मनुष्य का मन निरन्तर उलझन ग्रस्त रहे, चिन्ता और परेशानियों से उसके मनःक्षेत्र में निरन्तर अशान्ति की ज्वाला जलती रहे तथा जीवन का आनन्द रस सूख कर उसके स्थान पर उद्वेगों की भरमार रहे ऐसी व्यापक मानसिक स्थिति का वातावरण अब से पहले कभी नहीं रहा है।

यह परेशानियाँ साधारण शारीरिक कष्टों या अभावों से अधिक त्रासदायक एवं दुष्परिणाम उत्पन्न करने वाली हैं। धन के अभाव में मनुष्य को गरीबी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है, पर देखा गया है कि यदि अन्य सद्गुण पास में हों तो वह गरीबी का जीवन कष्टकारक नहीं वरन् सुविधाजनक और शान्तिदायक हो जाता है। ऋषि-मुनि और सन्त-महात्मा अपरिग्रही, त्यागमय और कम से कम वस्तुओं से चल सकने वाला जीवन क्रम अपनाते हैं और इससे उन्हें कष्ट होना तो दूर उलटे सुविधा अनुभव होती है। उनके उपदेशों में सादा जीवन उच्च विचार की प्रेरणा रहती है। मितव्ययता और सादगी पर वे पूरा जोर देते हैं क्योंकि अन्तःकरण के विकास एवं मनःक्षेत्र के परिष्कार का इस सादगी से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इसी प्रकार कुछ अत्यन्त तीव्र वेदना वाले शारीरिक कष्टों को छोड़कर अन्य सामान्य श्रेणी की अस्वस्थता एवं बेचैनी भी उतनी असह्य नहीं होती जितनी कि मानसिक पीड़ा दुःख देती है। भौतिक जगत में दो ही दुःख हैं—दरिद्रता और शारीरिक कष्ट। यह दोनों ही सह्य हैं और यदि सह्य न भी हों तो इनके दुष्परिणाम इस वर्तमान स्थूल शरीर तक ही सीमित हैं। परन्तु मानसिक चिन्ता, परेशानी एवं उलझनों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है, उनका कष्ट भी अधिक होता है और परिणाम भी दूरवर्ती होते हैं। गोदी सूनी करके नन्हे-मुन्ने, हँसते-खेलते बालक के मर जाने पर माता को कितना शोक होता है, किसी कारण समाज में अपमानित हो जाने, प्रतिष्ठा घट जाने से कितनी पीड़ा होती है। शत्रुता बढ़ जाने पर द्वेष की आग कितनी दाहक होती है। निर्धारित कार्यक्रम में असफलता मिलने पर कितनी निराशा होती है, उसका अनुमान भुक्तभोगी ही लगा सकते हैं। अपमान, असफलता, शोक, द्वेष, भय, ईर्षा, वियोग, विछोह, निराशा, चिन्ता आदि मानसिक आघातों का मनुष्य को इतना तीव्र कष्ट होता है कि वह आत्महत्या तक करने को तैयार हो जाता है। गरीबी या बीमारी के कारण कोई व्यक्ति न तो उतना अशान्त होता है और न आत्महत्या करने की स्थिति आने जितना दुखी होता है। तात्पर्य यह है कि मानसिक कष्टों का त्रास ही गहरी अशान्ति का कारण है। आज इसी आपत्ति की अत्यधिक वृद्धि हुई है और जनसाधारण का जीवन नरकतुल्य बना जा रहा है।

गरीबी एवं बीमारी का महत्व कम नहीं है—उनके कारण भी असुविधा होती है और प्रगति रुकती है पर मानसिक कष्टों का दुःख एवं प्रतिरोध निश्चय ही अत्यधिक है। गरीबी से प्रगति उतनी नहीं रुकती जितनी चिन्ता एवं अन्तर्व्यथा से रुकती है। इन मानसिक कष्टों का प्रभाव मनुष्य की सूक्ष्म चेतना पर पड़ता है, जिसके कारण उसके उच्चकोटि के सद्गुण नष्ट होते हैं। साहस, शौर्य, धैर्य, उत्साह, पुरुषार्थ, उदारता, आशावादिता, क्षमा, सन्तोष, सद्भाव, आत्मीयता, दया, करुणा, सेवा, आस्तिकता, आत्म विश्वास आदि अनेकों सत्प्रवृत्तियाँ मानसिक अशान्ति के कारण सूखने लगती हैं और तेजी से समाप्त हो जाती हैं। इन विशेषताओं के अभाव में मनुष्य नरपशु बनता चला जाता है। उसके महापुरुष होने की, कोई आदर्श स्थापित करने की संभावना नहीं रहती।

मानसिक अशान्ति से जीवन रस सूखता है। जैसे उदर की ऊष्मा शरीर के रक्त-माँस को सुखा कर उसे अस्थिपिंजर मात्र बना देती है, उसी प्रकार आन्तरिक असन्तोष एवं उद्वेग के ज्वर में सद्गुण, मस्तिष्क की मौलिकता एवं उर्वरा शक्ति भी नष्ट होती है। उलझनों में उलझे हुए मस्तिष्क दिन-दिन विकृत होते जाते हैं, अर्ध-विक्षिप्त दशा उनकी रहती है। क्रोधी, तुनकमिजाज, सनकी, दुराग्रही, अड़ियल, अविश्वासी, अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने वाले, क्रूर, कुकर्मी, उदण्ड प्रकृति के लोग प्रायः अर्ध विक्षिप्त होते हैं। यह स्थिति थोड़ी और बढ़े तो उनके पागल होने में सन्देह नहीं रहता। मन की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शान्ति और कोमलता को यह उलझनें ही नष्ट करती हैं और इन उलझनों का कारण मानवता की मर्यादाओं का उल्लंघन ही है।

लोग यह सोचते हैं कि मानवता, नैतिकता, आस्तिकता, धार्मिकता के बंधनों में अपने आपको बाँधने से हमारी स्वच्छन्दता में अड़चन पड़ती है। अनीतिपूर्वक अधिक धन कमाने और दूसरों को पतन की पीड़ा में धकेलने में हिचक किये बिना मनमाने विलास एवं ऐश्वर्य का उपभोग नहीं हो सकता, इसलिए हम इन धर्म बन्धनों में अपने आप को नहीं बाँधते, आज धर्म की ओर सर्वत्र नाक-भौं सिकोड़ी जा रही हैं। इसे मूर्खता माना जाता है। बुद्धिमानी उसी नीति को समझा जाता है जिस पर चलकर मनुष्य अधिक धन कमा सके, अधिक ऐश्वर्य का उपयोग कर सके। जीवन दर्शन में ऐसी आस्था जम जाने से, आत्म नियन्त्रण के बन्धन टूट जाने में मनुष्य सत् और असत् का, नीति और अनीति का, कर्म और कुकर्म का भेद भूल जाता है। फलस्वरूप उसके अधिकांश विचार और कार्य ऐसे होते हैं जो आत्मा के मूलभूत स्वभाव के विपरीत होते हैं। समाज व्यवस्था में बाधक होने के कारण लोक निंदित होते हैं। जिन्हें अपने कार्यों से हानि पहुँचती है उनके अभिशाप आक्रमणकारी आघात के रूप में अपने ऊपर चोट करते हैं। राजदंड, समाजदण्ड एवं उस पीड़ित के प्रतिशोध का भय करता है। वह अनीति उपार्जित धन अनेकों प्रकार से कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा करता है। यह कुचक्र तेजी से घूमता है। इस मार्ग में प्राप्त हुई सफलताएँ निरन्तर अधिक कुकर्म करते चलने की प्रेरणा देती हैं। इस सत्यानाश की सड़क पर दौड़ता हुआ मनुष्य अन्य दंडों से छुटकारा पाने का कोई मार्ग न पाकर मानसिक उलझनों में निरन्तर घिरा रहता है। शराब आदि नशे पीकर वह उस अन्तर्द्वन्द्व से छुटकारा पाना चाहता है, पर नशा उतरते ही वह उद्वेग इसे फिर ज्यों का त्यों आ घेरता है।

अन्तर्द्वन्द्व के उद्वेगों का स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। इस घुटन से जीवन के मूलभूत सूक्ष्म रसों की समाप्ति होती है। फलस्वरूप ऐसा व्यक्ति भीतर ही भीतर खोखला होता जाता है। बाहर से उसका रंग-रूप सुन्दर लगे यह बात दूसरी है पर वह जीवन तत्व जो रोगों में रक्षा कराने, उन्हें मिटाने में प्रधान काम करता है, घट जाने से आये दिन बीमारियाँ घेरे रहती हैं। उसका मूल कारण अन्तःप्रदेश में रहता है इसलिए दवा-दारू से भी कुछ काम नहीं चलता। देखा गया है कि छोटे-छोटे मर्ज भी कीमती दवाएँ बहुत समय तक सेवन करने पर भी अच्छे नहीं होते। इसका कारण दवाओं की गुणहीनता नहीं, वरन् व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर में उद्वेगों के कारण उत्पन्न हुई दुर्बलता है। उसी कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं। वे मूल कारण को दूर किये बिना साधारण दवा-दारू से अच्छे नहीं हो सकते। आज रोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। चिकित्सकों और चिकित्सालयों की भारी वृद्धि हो रही है पर इससे जनसाधारण के स्वास्थ्य में कुछ भी सुधार होता दिखाई नहीं पड़ता। जन-साधारण का स्वास्थ्य आज जिस बुरी तरह गिर रहा है उतना अतीत काल में आज तक कभी नहीं गिरा। इस गिरावट का कारण गरीबी या खाद्य पदार्थों का अभाव नहीं है। इस सम्बन्ध में तो हम अपनी गत पीढ़ी के पूर्वजों की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधाजनक स्थिति में हैं। मूल कारण आन्तरिक उलझनें हैं जिसने स्वास्थ्य की अन्तःभूमिका को ही चौपट कर दिया है।

पीढ़ी दर पीढ़ी हम स्वास्थ्य की दृष्टि से बुरी तरह गिरावट की ओर चल रहे हैं। बच्चे जन्म से ही दुर्बलता और अस्वस्थता साथ लेकर आते हैं। यह उन्हें पैतृक विरासत प्राप्त हुई है। वंशानुक्रम विज्ञान के ज्ञाता जानते हैं कि बालक अपने पिता, पितामह आदि पूर्वजों की शारीरिक ही नहीं मानसिक विरासतें भी अपने साथ लेकर आते हैं। जो त्रुटियाँ और दुर्बलताएँ पूर्वजों ने जीवन भर के कुकर्मों के फलस्वरूप पाई थीं, वे इन बालकों को जन्म से अनायास ही उपलब्ध रहती हैं। आज बालकों की बहुत बड़ी संख्या शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता में ग्रस्त है। आये दिन लड़कों की उद्दण्डता के समाचार हमारी चर्चा का विषय होते हैं। उनके अशिष्ट व्यवहारों एवं अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों से सारा परिवार असंतुष्ट रहता है। इस अव्यवस्थिता में बेचारा बालक स्वतः उतना दोषी नहीं है। उसके रक्त के साथ जो कुसंस्कार आये हैं वे अपनी प्रतिक्रिया इस रूप में प्रकट करते हैं। पिता अत्यधिक कंजूस रहा हो तो यह आवश्यक नहीं कि उसका लड़का कंजूस ही हो। वैज्ञानिकों के मतानुसार उसका लड़का कैन्सर या ग्रन्थि रोगों का रोगी हो सकता है। चिन्तातुर या कलह में जलती रहने वाली माता का बालक यदि श्वाँस, प्लूरिसी, अन्त्रदाह रोग से पीड़ित हो तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं। इसी प्रकार पूर्वजों के अन्य मानसिक विकार कोई अन्य रूप धारण करके बालकों में प्रकट हो सकते हैं। बालकों में जो आज उद्दण्डता, अवज्ञा, चोरी, फिजूलखर्ची, विलासिता, कायरता आदि दुर्गुणों का बाहुल्य दीख पड़ता है, वस्तुतः उनके पूर्वजों की किन्हीं नैतिक त्रुटियों के प्रतिफल ही होते हैं।

लोग अपने बच्चों के लिए बहुत धन, चलता हुआ व्यापार या मकान, जायदाद छोड़ जाना चाहते हैं ताकि वे सुखपूर्वक अपना जीवनयापन कर सकें। पर वे यह भूल जाते हैं कि जो दुर्गुण हम उन्हें विरासत में दे रहे हैं, वे इतने भयावह हैं कि उनकी अग्नि में वह धन-सम्पत्ति कुछ ही दिनों में जल-भुन कर भस्म हो जायगी। धन से कोई व्यक्ति तभी लाभ उठा सकता है जब उसे बढ़ाने, सुरक्षित रखने एवं सदुपयोग करने की कला से भली प्रकार विज्ञ हो। यदि ऐसा न हुआ तो वह अनायास प्राप्त धन स्वयं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो नष्ट होता ही है, साथ ही जिसके पास था उसे अनेकों अनाचार एवं उद्वेग भी उपहार में देगा। सचाई यह है कि सन्तान के लिए धन-जायदाद छोड़ने की अपेक्षा, उनके अन्तःप्रदेश में शान्तचित्त और स्वस्थ भावनाओं की स्थापना अधिक महत्वपूर्ण है। पर यह सब संभव तभी है जब माता-पिता आत्मनियन्त्रण स्वीकार करें, सद्विचार एवं सदाचार का अनुकरण करें। बालकों के लिए इस मानसिक सम्पत्ति को यदि कोई माता-पिता छोड़ सके तो यह उनके चिरस्थायी स्वास्थ्य, नीरोगता, मानसिक सद्गुण, पुरुषार्थ, दूरदर्शिता, उदार हृदय आदि अनेकों दिव्य सम्पत्तियाँ देने का सत्परिणाम उत्पन्न कर सकता है। यह दौलत, साधारण मकान-जायदाद छोड़ने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान हैं।

अनैतिकता से उत्पन्न मानसिक उलझनें लोगों के बीच पारस्परिक सद्भावों को नष्ट करती हैं। एक दूसरे के प्रति अविश्वास करता है, सन्देह की दृष्टि से देखता है, सशंकित रहता है और यह भय करता है कि यह मेरे साथ कोई विश्वासघात करेगा। यह अविश्वास प्रधानतः अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण ही होता है। चूँकि अन्य लोग भी उसी दुर्बलता से ग्रस्त हैं और वे भी ऐसी ही आशंका अपने प्रति करते हैं। कोई छोटी-सी बात प्रमाणस्वरूप मिल जाने से एक दूसरे के प्रति और भी अधिक अविश्वास करते हैं। बात बढ़ते-बढ़ते छल, कपट और ईर्ष्या, द्वेष तक जा पहुँचती है। एक दूसरे को अपना शत्रु मानने लगता है। शत्रुता का आरम्भ इसी कायरता से होता है। पीछे कई निमित्त मिलते जाते हैं और आग में लकड़ी पड़ने से अधिक उग्रता से जलने वाली अग्नि की तरह उस शत्रुता का विस्तार होता जाता है।

घर-घर में आज ईर्ष्या-द्वेष का, क्रोध-कलह का, सन्देह-अविश्वास का वातावरण फैला हुआ है। फलस्वरूप कोई अपना मित्र दिखाई नहीं पड़ता, सब शत्रु ही शत्रु, सब दुष्ट ही दुष्ट दिखाई पड़ते हैं। ऐसे वातावरण को ही नरक कहते हैं। आज सर्वत्र नरक के दृश्य उपस्थित हैं। जिस घर में देखिए, जिस ग्राम या समाज में देखिए दुर्भाव का बोलबाला है। राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इसी विभीषिका का नग्न नृत्य हो रहा है। एटमबम, गैस, सारी दुनिया को कुछ छटांक मात्रा में ही मार डालने वाला विष इसी विभीषिका की उपज है। दुनिया को धीरे-धीरे सामूहिक आत्महत्या की ओर यह विभीषिका ही घसीटे लिये जा रही है।

मनुष्य जीवन में सब से मधुर यदि कोई वस्तु है तो वह है—स्नेह, सद्भाव, आत्मीयता। एक दूसरे के प्रति जहाँ इस प्रकार की भावना रखता है, वहाँ स्वर्ग का साक्षात्कार होता है। गरीबी और अभावग्रस्त स्थिति में भी मनुष्य इन तत्वों के होने पर भारी सन्तोष और शान्ति अनुभव करता है। इस तत्व को सुरक्षित रखने के लिए ही आध्यात्मिकता, धार्मिकता एवं आस्तिकता का सारा विधान बना हुआ है। दूसरों के प्रति स्नेह-सद्भाव एवं आत्मीयता बनी रहे एवं बढ़ती रहे, इसके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य दूसरों के शरीर में भी अपनी ही आत्मा को देखे। उनके सुख-दुःख को भी अपना ही सुख-दुःख माने। जिस प्रकार अपने बाल-बच्चे एवं परिजन 'अपने' लगते हैं, वैसे ही और लोग भी अपने लगें तो उनसे सहज ही स्नेह उत्पन्न होगा। जिसके प्रति सच्चा स्नेह होता है, उसके साथ कुछ नेकी-भलाई-उदारता का परिचय देने की इच्छा स्वभावतः ही होती है।

नवजात शिशु के पेट में कोई गड़बड़ी उत्पन्न हो जाय इस भय से माता अपनी जिह्वा इन्द्री पर पूरा काबू रखकर अपना आहार चलाती है। अपने स्वाद की उपेक्षा करके वह बालक के स्वार्थ का ही ध्यान रखती है। यही मातृ बुद्धि जब सारे समाज के प्रति होने लगती है, तो मनुष्य स्वभावतः संयमी और संतोषी हो जाता है। माता अपने भोजन, वस्त्र, सुविधा तथा साधनों में कमी करके भी जिस प्रकार अपने प्यारे बालकों के लिए खुशी-खुशी अधिकाधिक साधन-सामग्री जुटाती है और उस प्रयत्न में उसे जो त्याग करना पड़ता है, अभाव भोगना पड़ता है उससे खिन्न होना तो दूर—उलटे अधिक प्रसन्नता अनुभव करती है। यह त्याग का, दान का, परमार्थ का, पुण्य का, उदारता का, सेवा का सिद्धान्त है। आत्मभाव के विस्तार से ही संयम, त्याग, स्नेह तथा सेवा-भावना की वृद्धि होती है।

एक दूसरे को प्यार करे, एक दूसरे के साथ सद्भाव एवं सहृदयता का व्यवहार करें, न्यायोचित मार्ग से जितनी साधन-सामग्री जुट सके, इसी में सन्तोष करे तो उसके लिए इस संसार में मानसिक उलझनों जैसी कोई समस्या शेष नहीं रह जाती। यदि मन प्रसन्न रहे, उद्वेगों से छुटकारा प्राप्त कर सके तो जीवनयापन बहुत ही सरल, सुविधाजनक एवं शान्तिपूर्ण हो सकता है।

आज लोगों के सामने अनेक समस्याएँ मौजूद हैं। उनके सुलझाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये जाते रहे हैं पर गुत्थी और उलटी उलझती जाती है। स्वास्थ्य की समस्या सामने है। दिन-दिन तन्दुरुस्ती गिरने और बीमारियाँ बढ़ने का प्रश्न सामने है। उसे सुलझाने के लिए चिकित्सक, चिकित्सालय तथा औषधि निर्माण बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है पर मूल कारण असंयम पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आर्थिक अभाव और तंगी सब लोग अनुभव करते हैं, इसके लिए उद्योगों के विकास का प्रयत्न किया जा रहा है, नौकरियाँ बढ़ाई जा रही हैं पर तंगी दूर नहीं होती। कारण विलासपूर्ण अपव्यय रोकने और उपलब्ध साधनों का श्रेष्ठ सदुपयोग करने की कला की जानकारी नहीं होती।

परस्पर छीना-झपटी और असद्व्यवहार के कारण एक दूसरे को कष्ट देते हैं, इसे रोकने के लिए कानून, पुलिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और न्यायालय खुल रहे हैं। पर यह पकड़ इतनी कमजोर है कि पहले तो अधिकांश छोटे-मोटे अनैतिक कार्य अपराध ही नहीं माने जाते हैं, माने जाते हैं तो उसका दंड विधान इतना कम है कि उसमें अपराधी को कोई पश्चाताप नहीं होता। अपराध कर चुकने पर भी बहुत कम अपराधी पकड़े जाते हैं जो पकड़े जाते हैं वे भी कानूनी दाँव-पेच के कारण दंड से बच जाते हैं। यह कानूनी व्यवस्था अपराधों को नहीं रोक सकती। अपराध तो ईश्वर के भय और धर्म-अधर्म के भले-बुरे परिणामों के प्रति निष्ठा रखने में ही बन्द हो सकते हैं। शासन तन्त्र अपराधियों को रोकने में अपनी सारी शक्ति लगा करके भी जो सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, वह आस्तिकता एवं धार्मिकता के प्रसार से संभव हो सकती है। पाप और अपराधों को रोकने का यही एकमात्र मार्ग है।

सामाजिक कुरीतियों में समय की, शक्ति की, धन की भारी बर्बादी होती है। दहेज, मृत्यु-भोज, पर्दा, जेबर आदि अनेकों कुरीतियाँ ऐसी हैं जिनकी हानि से सभी परिचित हैं और उनकी निन्दा भी करते हैं। प्रस्ताव पास करके, लेक्चर देकर उनका उन्मूलन करने की बात सोची जाती है। पर जब तक विवेक और साहस को समुचित मात्रा में जाग्रत न किया जाय तो इस भेड़ियाधसान से ऊपर न उठ सकेंगे। दुःखी रहते हुए भी उसी लकीर को पीटते रहेंगे।

नशेबाजी, जुआ, चोरी आदि अनेकों बुरी आदतों में लोग ग्रसित हैं, अश्लीलता और मानसिक व्यभिचार को, गन्दी पुस्तकों, गन्दे चित्रों और सिनेमाओं द्वारा व्यापक रूप में फैलाया जा रहा है। स्त्रियों की फैशनपरस्ती पुरुषों की कुदृष्टि को और भी भड़काती है। इन बुराइयों की निवृत्ति के लिए छुटपुट प्रयत्न भी होते रहते हैं पर जब तक जनमानस में व्यापक रूप में उच्च दृष्टिकोण के आधार पर जीवनयापन करने की आवश्यकता अनुभव न कराई जाय तब तक चेचक के रोगी को रक्तशोधक दवा न देकर फुन्सियों पर पट्टी बाँधने या मुरझाये हुए पेड़ की जड़ को सींचने की बजाय पत्तों पर पानी छिड़कने के समान सारे प्रयत्न व्यर्थ ही सिद्ध होंगे।

मानव-जीवन को भगवान ने समस्याओं, चिन्ताओं और उलझनों से मुक्त करके भेजा है। नर तनु धारण का उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त करने की प्रक्रिया में सफलता प्राप्त करना है। पर हमारे सामने मानसिक उलझनें उतने विशाल रूप में उपस्थित हैं कि उनके कारण आन्तरिक एवं बाह्य जीवन में क्लेश और कलह का नारकीय दृश्य उपस्थित हो रहा है। मनुष्य को सुखी बनाने के लिए पत्ते सींचने की ओर अनेक प्रयत्न चल रहे हैं पर गुत्थी तब तक न सुलझेगी जब तक जड़ को सींचने की व्यवस्था न की जाय। सारी उलझनों का एक ही कारण है—आस्तिकता, मानवता, धार्मिकता एवं नैतिकता का अभाव। इस अभाव की जितने अंशों में पूर्ति की जायगी उतनी ही मात्रा में इस भूलोक में स्वर्गीय सुख-शान्ति अवतरित होने लगेगी।

समाधान के लिए ठोस प्रयास का आह्वान

मनुष्य को आज इतनी अधिक सुविधाएँ और साधन सम्पदाएँ प्राप्त हैं कि दो सौ वर्ष पूर्व का मनुष्य इनकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। पहले की अपेक्षा उसके साधनों और सुविधाओं में निरन्तर वृद्धि ही होती जा रही है। इसके उपरान्त भी मनुष्य अपने को पहले की तुलना में अभावग्रस्त, रुग्ण, चिन्तित और एकाकी ही अनुभव कर रहा है। भौतिक प्रगति होने पर, सुविधा साधनों में अभिवृद्धि होने के बाद होना तो यह चाहिए था कि मनुष्य पहले की अपेक्षा अधिक सुखी और अधिक सन्तुष्ट रहता किन्तु हुआ इसके विपरीत ही है। यदि गंभीरतापूर्वक मनुष्य की आन्तरिक स्थिति का विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि वह पहले की तुलना में सुख-सन्तोष की दृष्टि से और अधिक दीन-दुर्बल हो गया है। शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक सन्तुलन, पारिवारिक सौजन्य, सामाजिक सद्भाव, आर्थिक सन्तोष और आंतरिक उल्लास की दृष्टि से सभी क्षेत्रों में मनुष्य जाति नई-नई समस्याओं और संकटों से घिर गई है।

आज की सुविधा सम्पन्नता और प्राचीनकाल की परिस्थितियों में तुलना की जाय और मनुष्य के सुख-सन्तोष को भी दृष्टिगत रखा जाय तो पिछले जमाने के असुविधा भरी परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्ति अधिक सुखी और सन्तुष्ट जान पड़ेंगे। इन पंक्तियों में भौतिक प्रगति तथा साधन-सुविधाओं की अभिवृद्धि को व्यर्थ नहीं बताया जा रहा है, न ही उनकी निन्दा की जा रही है। कहने का आशय इतना भर है कि परिस्थितियाँ कितनी ही अच्छी और अनुकूल क्यों न हों, यदि मनुष्य के आंतरिक स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ तो सुख-शांति किसी भी उपाय से प्राप्त नहीं की जा सकती।

वर्तमान युग की समस्याओं और संकटों के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराया जा सकता। परिस्थितियाँ तो पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक अच्छी, अनुकूल और सहायक हैं। फिर क्या कारण है कि व्यक्ति और समाज इन दिनों दुःख-दारिद्रय, दैन्य-दुर्बलता, संकट-समस्याओं तथा विपत्तियों-आपदाओं से बुरी तरह ग्रस्त है ? इसका कारण अन्तर में ही खोजना पड़ेगा और यह मानना पड़ेगा कि बाहर से मनुष्य जितना साधनसम्पन्न और समृद्ध होता गया, भीतर से वह उतना ही रुग्ण बनता चला गया। अयोग्य व्यक्ति अधिकार और मूढ़-मन्दमति लोग हथियार मिलने पर जिस प्रकार अनर्थ मचाते हैं ठीक वैसी ही स्थिति इन दिनों मनुष्य की है। साधन-सुविधाओं के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़े-चढ़े अम्बार ने उसे और अधिक अहंवादी, कुटिल, स्वार्थी, संकीर्ण तथा भ्रष्ट बना दिया है।

सर्वतोमुखी पतन और पराभव के इस संकट का निराकरण करने के लिए एक ही उपाय कारगर हो सकता है, वह है व्यक्ति और समाज का भावनात्मक परिष्कार। भावना स्तर में अवांछनीयताओं के घुस पड़ने से ही तमाम समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं का यदि समाधान करना है तो सुधार की प्रक्रिया भी वहीं से आरम्भ करनी पड़ेगी, जहाँ से ये विभीषिकाएँ उत्पन्न हुई हैं। अमुक समाधान सामयिक उपचार तो हो सकता है पर चिरस्थायी समाधान के लिए आधार को ही ठीक करना पड़ेगा।

इस समाधान के लिए सुलझे हुए विचारशील व्यक्तियों को लोकसेवा की दृष्टि से आगे आना चाहिए। सुविधाएँ बढ़ाकर जनजीवन को सहज और सरल बनाने को भी सेवा में सम्मिलित किया जा सकता है और पीड़ित जनों की सहायता-सुश्रूषा करना भी सेवाधर्म के अन्तर्गत आता है। किन्तु इस तरह की सेवाओं से भी बढ़कर महत्वपूर्ण है—जनमानस का परिष्कार। यदि यह कार्य किया जाय तो अभावग्रस्त रहते हुए भी सुविधा-साधनों का लाभ उठाया जा सकता है, उन्हें अर्जित किया जा सकता है, इसके बिना सुविधा-संवर्द्धन और पीड़ा-निवारण के प्रयास भी सामयिक और अस्थायी उपचार ही सिद्ध होंगे। उदाहरण के लिए, भूखे व्यक्ति को एक बार भोजन करा दिया जाय तो उस समय तो उसका पेट भर जायेगा, लेकिन जब उसे दुबारा भूख लगेगी तो पहले की गई सेवा उस समय व्यर्थ हो जाएगी। तब उसका कोई परिणाम या प्रभाव काम करता नहीं दीखेगा। इसी समस्या को गहराई से देखा जा सकता है कि कहीं वह व्यक्ति बेकार तो नहीं है, निकम्मा या कामचोर होने के कारण ही तो भिक्षाजीवी नहीं बन गया है ? इन कारणों का पता लगाकर इन्हें दूर किया जाय तो वह समाधान अधिक स्थायी समाधान देने वाला होगा।

मनुष्य समाज की अन्य समस्याओं के संदर्भ में भी इसी प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपनी आस्थाओं और मान्यताओं के अनुरूप ही व्यक्ति परिस्थितियों को सुखद या दुःखद बना लेता है। दृष्टिकोण के अनुसार ही मनुष्य की जीवनधारा बहती है। एक ही स्टेशन से चलने वाली दो रेलगाड़ियाँ थोड़ी दूर जाकर पटरियाँ बदलने से दो विभिन्न दिशाओं में चल पड़ती हैं। पटरी बदलने वाले एक छोटे से यंत्र का यह प्रभाव होता है कि दिल्ली से चलने वाली एक रेलगाड़ी कलकत्ता पहुँच जाती है और दूसरी उससे सर्वथा विपरीत दिशा में बम्बई जा पहुँचती है। हिमाचल पर्वत से ही निकली सिन्धु, ब्रह्मपुत्र और गंगानदी अलग-अलग सागरों में जाती हैं। केवल इस कारण कि पहाड़ की ढलान दो विभिन्न दिशाओं में है। इसी प्रकार एक ही परिस्थिति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न ढंग से प्रभावित करती है। एक ही परिस्थिति में जन्मे दो व्यक्तियों में से कोई सन्त-महापुरुष बन जाता है और कोई चोर-डाकू। अस्तु, स्थायी समाधान केवल विचारों, आस्थाओं और मान्यताओं के परिष्कार द्वारा ही संभव है।

पिछले दिनों विश्व के कतिपय राजनेता परिवर्तन का आधार दमन और बाहरी दबाव बताते रहे। उन्होंने इस नीति को अपनाया भी। आरम्भ में थोड़ी-बहुत सफलता मिलती भी दिखाई दी लेकिन अन्ततः असफलता ही हाथ लगी। जहाँ-कहीं थोड़ी-बहुत सफलता मिलती भी दिखाई दी तो वह मात्र इस कारण कि बाहरी दबाव निरन्तर बना रहा। उन दिखाई देने वाले परिवर्तनों के साथ यह संभावना बराबर बनी रही कि दबाव हटते ही लोग फिर अपने रूप में आ जायेंगे। कहीं-कहीं यह दबाव दीर्घकाल तक चला और श्मशान की-सी शांति छाई रही, किन्तु जिन लोगों ने दमन किया, अपने शत्रुओं या विपक्षियों को दबाया, उन्हें मारा, हिंसा की बाद में उन्हीं के साथ उन्हें दबाते मिले।

रक्तपात, दमन और हिंसा का चाव ही कुछ ऐसा है कि कोई शिकार न मिलने पर वह अपने ही साथियों को दबाने और फाड़ने लगता है। भेड़िया हिंसक जानवर है। दूसरे जानवरों का शिकार कर वह पेट भरता है और जब कोई शिकार नहीं मिलता तो अपनी ही जाति के भेड़ियों को मारकर खाने लगता है। इसके विपरीत घास-पात खाने वाली भेड़ें चारा-पानी न मिलने पर एक दूसरे की गर्दन पर सिर रख लेती हैं और मृत्यु का वरण कर लेती हैं। मरना भेड़ियों को भी पड़ता है और भेड़ों को भी पर भेड़िये के मरने में भेड़ की-सी सौम्यता और गरिमा कहाँ दिखाई देती है ? यह विचार अब गलत ही सिद्ध हुआ है कि बाहरी दबाव से किसी को सुधारा या ठीक किया जा सकता है। परिवर्तन केवल आंतरिक स्तर पर प्रभाव डालने वाले प्रयासों से ही संभव है और उस स्तर को प्रभावित करने के लिए विचारों के बीज, प्रेरणाओं की खाद तथा प्रोत्साहन का वातावरण बनाया जाना चाहिए।

मनुष्य जाति की अनेकानेक समस्याओं को लेकर चिन्तित और उसमें सुधार लाने के लिए उत्सुक जनों को चाहिए कि वे समाधान के बाहरी प्रयासों की अपेक्षा ठोस और आंतरिक परिवर्तन लाने के लिए अधिक ध्यान दें। तभी भौतिक प्रगति सार्थक और फलवती सिद्ध होगी।

विपन्नताओं से कैसे उबरें ?

यह पिछले अन्धकार युग की ही देन है कि व्यक्ति संकीर्णता की परिधि में बेतरह जकड़ गया है। निजी स्वार्थ ही सब कुछ बन गया है। हर कोई मात्र अपनी ही लक्ष्य सिद्धि चाहता है, चाहे वह असम्भव अथवा अवांछनीय ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्यों न हो ? इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए जो अनीति बरतनी पड़ती है, उसके सम्बन्ध में भी चिर अभ्यास के कारण किसी भी प्रकार की हिचक नहीं होती। परमार्थ कार्य एक विडम्बना मात्र बनकर रह गया है। पुण्य के विज्ञापन की एक भरमार आ जाती है। लोकमंगल की चर्चा तो बहुत होती है पर उसके लिए निजी क्षेत्र में अभीष्ट उत्साह उभरता कहीं नहीं दीखता। समाज कल्याण के सभी कार्यों के लिए प्रायः यही सोचा जाता है कि ये कार्य सरकार के करने के हैं। उसी पर इसके लिए दबाव आना चाहिए और उसे अनुदान मिल सके, उतनी ही प्रगति की आशा करनी चाहिए। स्थिति ठीक यही है। इसके बने रहने पर द्रुतगति से वास्तविक उत्थान की आशा नहीं की जा सकती।

व्यक्ति और समाज की समस्यायें अनेक हैं। आवश्यकतायें और कठिनाइयाँ भी अनेकानेक। इन सबको कोई सरकार जादू की छड़ी घुमाकर हल नहीं कर सकती। समस्याओं को देखते हुए सरकारी सहायता की तुलना नगण्य स्तर की ही समझी जा सकती है। फिर सरकारी पैसे के निर्धारित कार्य के लिए उचित स्थान तक पहुँचने में बाधक बना हुआ भ्रष्टाचार भी तो कम सशक्त नहीं है। उसकी जड़ें तो बड़ी गहरी प्रशासन की शाखा-प्रशाखाओं तक फैली हैं। सतर्कता और सावधानी का अभाव भी ऐसा कारण है जिसका अवरोध हलका करके नहीं समझना चाहिए।

भूतकाल की विपन्नताएँ और आज की समस्याएँ मिलकर इतना दुष्प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं कि उनसे जूझना काफी कठिन प्रतीत होता है। उसके लिए जो साधन प्रयुक्त किए जा रहे हैं, उन्हीं पर अवलम्बित रहा जाय तो लगता है कि समग्र परिवर्तन का लक्ष्य बहुत समय तक अभी दूर ही बना रहेगा।

सुधार, परिष्कार और उत्कर्ष की अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत सरकार पर आश्रित रहने की अपेक्षा एक नयी शक्ति का उदय-उद्भव होना चाहिए। वह है, जनशक्ति, भावना शक्ति, सामाजिकता की अभिव्यक्ति। इस क्षमता के उदय होने पर इतनी बड़ी सामर्थ्य हस्तगत होगी कि उन सभी समस्याओं से निपटा जा सकता है, जो मात्र सरकारी प्रयासों पर निर्भर रहने से कदाचित् ही इस शताब्दी के समापन के पूर्व हल हो सकें।

देश के प्रत्येक नागरिक के मन में एक बात भरी जाय कि उसे जिस प्रकार अपनी शारीरिक और पारिवारिक समस्याओं से निपटना पड़ता है, उसी प्रकार एक तीसरे पक्ष पर भी ध्यान देना चाहिए, वह पक्ष है—'समाज-कल्याण'। निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना बुरा नहीं। पर वह यदि इतने भर तक ही सीमित रहा जाये तो फिर जनमानस के लिए, सामूहिक सुधार, परिष्कार के लिए कुछ करने की आवश्यकता ही प्रतीत न होगी। ऐसी दशा में व्यक्तिगत प्रयत्नों का जो लाभ जनकल्याण निमित्त मिलना चाहिए था, उसकी कोई आशा नहीं रखनी चाहिए और भूतकाल की तरह भविष्य भी अन्धकारमय ही बना रहेगा।

हर व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि निजी समस्याओं का समाधान कर लेने भर से वह समाज ऋण से उऋण नहीं होता। व्यक्तिगत सुविधा-साधन उत्कर्ष प्रयासों में भी अनेकानेक लोगों का श्रम-सहयोग सम्मिलित रहता है, तभी कोई व्यक्ति सुविधायें जुटा पाते और प्रगतिशील कहला सकते हैं। इस वस्तुस्थिति को समझने के उपरान्त हर किसी के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि समाजोत्कर्ष के कार्यों में भी हाथ बँटाये। इसमें आवश्यक नहीं कि व्यक्ति सम्पन्न होने पर ही कोई बहुमूल्य अनुदान प्रस्तुत करे। यह कार्य तो थोड़े समयदान और अंशदान के सम्मिलित रूप द्वारा बड़े परिमाण में बन पड़ना सम्भव हो सकता है।

समय सभी के पास समान मात्रा में है। उसका सही विभाजन कर पाने पर हर किसी को लोकहित के लिए अपनी योग्यता और परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ कर सकने का सुयोग मिल सकता है। चौबीस घण्टों में आठ घण्टे उपार्जन श्रम के निमित्त सुरक्षित रखे जा सकते हैं और सात घण्टे सोने के लिए पर्याप्त होते हैं। पाँच घण्टे नित्य कर्म, परिवार व्यवस्था आदि में लग सकते हैं। इसके बाद भी चार घण्टे ऐसे बच जाते हैं जिन्हें ऐसे ही बेतुके खर्चों में खर्च करते रहने की अपेक्षा उन्हें क्रमबद्ध रूप से समाज कल्याण के लिए लगाया जा सकता है। ४ घण्टा प्रतिदिन सभी वयस्क व्यक्ति लोकमंगल प्रयासों के लिए लगाने लगें, तो वह शक्ति प्रतिदिन २० करोड़ व्यक्तियों के श्रम के बराबर हो जाती है। इतनी बड़ी श्रम शक्ति को सुनियोजित कर किन्हीं भी योजनाओं को हाथ में लिया और बिना किसी प्रकार की धनराशि व्यय किये उसे पूरा किया जा सकता है। ऐसा है लोकमंगल के लिये अर्पित किये गये श्रमदान का चमत्कार।

श्रम के अतिरिक्त दूसरी आवश्यकता साधनों की पड़ती है। इसके लिये माह में एक दिन की कमाई राष्ट्र निर्माण के लिए निकाली जाती है, तो यह किसी के लिये भी भारी न होगा। २९ दिन की कमाई में अपना मासिक निर्वाह खर्च सरलतापूर्वक चल सकता है। अपने राष्ट्रीय उत्कर्ष के लिए इतना त्याग करते रहना किसी के लिए भी असह्य नहीं होना चाहिए।

एक परिवार संचालक की औसत आमदनी बीस रुपये ही मानी जाय और वर्तमान सात लाख गाँवों में १०० घर औसत के हिसाब से कुल सात करोड़ घर माने जायें, तो हर घर से २० रुपये मिलने पर वह राशि एक सौ चालीस करोड़ रुपये हर मास की आमदनी हो जाती है। इसे सुनियोजित रूप से, योजनाबद्ध रूप से कार्यान्वित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जा सके और बीस करोड़ व्यक्तियों का श्रम निःशुल्क मिलता रहे तो इतने भर से उतना कुछ होने लगेगा जिसकी कि कई पंचवर्षीय योजनाओं की राशि से भी तुलना नहीं की जा सकती।

क्या उपरोक्त कल्पना अव्यावहारिक है ? क्या यह मात्र कपोल कल्पना है ? इसके उत्तर में एक ही बात कही जा सकती है कि यदि जनमानस को देशभक्ति की भावना से गहराई तक न अनुप्राणित किया जा सके तो ही इसे दिवास्वप्न कहा जा सकता है अन्यथा इसकी यथार्थता और व्यावहारिकता में किसी प्रकार का सन्देह करने की गुंजायश नहीं है।

विगत स्वतन्त्रता संग्राम में यह प्रयोग आंशिक रूप से चरितार्थ हो चुका है। अब हम स्वतंत्रता की चालीसवीं वर्षगाँठ मना रहे हैं। क्या हम कुछ संकल्प इस अवसर पर नहीं ले सकते कि जनमानस को बदलने व विपन्नताओं से उबरने के लिए ऐसा कुछ कर दिखायेंगे जिसे पीढ़ियाँ वर्षों तक याद रखें ?

समस्याओं की गहराई में उतरें

देश के समक्ष इन दिनों की सबसे बड़ी तात्कालिक समस्या यह है कि समाज परिकर में छायी विपन्नताओं से किस प्रकार छुटकारा पाया जाय और उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिये क्या किया जाय, जिससे निरापद और सुविकसित जीवन जीना सम्भव हो सके ?

समाज विज्ञानियों द्वारा प्रस्तुत कठिनाइयों का कारण अभावग्रस्तता को मान लिया गया है। इसी मान्यता के आधार पर यह सोचा जा रहा है कि साधन-सुविधाओं वाली सम्पन्नता की अधिकाधिक वृद्धि की जाय, जिससे अभीष्ट सुख-साधन उपलब्ध होने पर प्रसन्नतापूर्वक रहा जा सके। मोटेतौर पर अशिक्षा, दरिद्रता एवं अस्वस्थता को प्रमुख कारणों में गिना जाता है और इनके निवारण के लिये कुछ नये रीति-निर्धारण का औचित्य भी है, पर देखना यह है कि वस्तुस्थिति समझे बिना और वास्तविक व्यवधानों की तह तक पहुँचे बिना जो प्रबल प्रयत्न किये जा रहे हैं या किये जाने वाले हैं, वे कारगर भी हो सकेंगे या नहीं ?

दरिद्रता को ही लें। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक समर्थता इतनी अधिक है कि उसके सहारे अपना ही नहीं, परिकर के अनेकों का भली प्रकार गुजारा किया जा सके और बचत को सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने वाले पुण्य-परमार्थ में भी लगाया जा सके। प्रगतिशीलजनों में से अनेकों ऐसे हैं, जिनके पास न तो कोई पैतृक सम्पदा ही थी और न बाहर वालों की ही कोई कहने लायक सहायता मिली, फिर भी वे अपने मनोबल और पुरुषार्थ के आधार पर आगे बढ़ते और ऊँचे उठते चले गये, सफलता के उस उच्च शिखर पर जा पहुँचे, जो जादुई जैसा लगता है।

वस्तुतः उन सफलताओं के पीछे एक ही रहस्य काम कर रहा होता है कि उन्होंने अपनी उपलब्धियों का सुनियोजन किया और बिना भटके नियत उपक्रम अपनाते रहे। जनसहयोग भी उन्हीं के पीछे लग लेता है, जिनमें सद्गुणों का, सत्प्रवृत्तियों का बाहुल्य होता है। इसी विधा का अनुकरण करने के लिये यदि तथाकथित दरिद्रों को भी सहमत किया जा सके तो वे आलस्य-प्रमाद की, दीनता-हीनता की केंचुल उतारकर, अभीष्ट दिशा में अपने बलबूते ही इतना कुछ कर सकते हैं, जिसे सराहा और संतोषप्रद माना जा सके।

इसके विपरीत यदि बाहरी अनुदानों पर ही निर्भर रहा जाय, तो जो मिलता रहेगा, वह फूटे घड़े में पानी भरते रहने की तरह व्यर्थ रहेगा और कुछ पल्ले पड़ेगा नहीं। दुर्व्यसनों के रहते, आसमान से बरसने वाली कुबेर की सम्पदा भी अनगढ़ व्यक्तियों के पास ठहर न सकेगी। अनुदानों का वान्छित लाभ न मिल सकेगा।

अशिक्षा का कारण यह नहीं है कि पुस्तकें, कापियाँ, कलमें मिलना बन्द हो गयी हैं या इतनी निष्ठुरता भर गयी है कि पूछने पर कुछ बता देने के लिये कोई तैयार नहीं होता, वरन् वास्तविक कारण यह है कि शिक्षा का महत्व ही अपनी समझ में नहीं आता और उसके लिये उत्साह ही नहीं उमँगता। पिछड़े क्षेत्रों में खोले गये स्कूल प्रायः छात्रों के अभाव में खाली पड़े रहते हैं और नियुक्त अध्यापक रजिस्टरों में झूठी हाजरी लगाकर, खाली हाथों वापस लौट जाते हैं। यदि उत्साह उमँगे, तो जेल में लोहे के तसले को पट्टी और कंकड़ को कलम बनाकर विद्वान बन जाने का उदाहरण हर किसी के लिये वैसा ही चमत्कार प्रस्तुत कर सकता है। उत्कण्ठा की मनःस्थिति रहते, सहायकों की सहायता की कमी भी रहने वाली नहीं है।

समर्थता, व्यायामशालाओं में या टॉनिक बेचने वालों की दुकान में नहीं पायी जा सकती। उसके लिये संयम, साधना और सुनियोजित दिनचर्या अपनाने से ही अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। दूसरों का रक्त अपने शरीर में प्रवेश करा लेने पर भी उस उपलब्धि का अन्त थोड़े ही समय में हो जाता है। अपने निजी रक्त उत्पादन के सुव्यवस्थित हो जाने पर ही काम चलता है।

अधिक उत्पादन, अधिक वितरण के लिये किये गये बाहरी प्रयास तब तक सफल न हो सकेंगे जब तक कि मनुष्य का विश्वास ऊँचे स्तर तक न उभारा जाय। भूल यही होती रहती है कि मनुष्य को दीन-दुर्बल, असहाय-असमर्थ मान लिया जाता है और उसकी अनगढ़ आदतों को सुधारने की अपेक्षा अधिक साधन योजनायें बनती और चलती रहती हैं। लम्बा समय बीत जाने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी जब स्थिति यथावत् बनी रहती है, तब प्रतीत होता है कि कहीं कोई मौलिक भूल हो रही है।

एक भ्रम यह भी जनसाधारण पर हावी हो गया है कि सम्पदा के आधार पर ही प्रगति हो सकती है। यह भ्रम इसलिये भी और पनपता और बढ़ता गया है कि धनियों को ठाठ-बाठ से रहते और गुलछर्रे उड़ाते देखकर यह अनुमान लगा लिया जाता है कि वह सुखी और समुन्नत भी है, पर लबादा उतारकर जब इस वर्ग को नंगा किया जाता है तो पता चलता है कि उसके भीतर एक अस्थि पंजर ही किसी प्रकार साँसें चला रहा है। प्रसन्नता के नाम पर उन्हें चिन्तायें ही खाये जा रही हैं। ईर्ष्या, आशंका से लेकर अपने एवं अपनों के दुर्गुण-दुर्व्यसन स्थिति को पूरी तरह उलट कर रखे दे रहे हैं। यह स्थिति उन्हें औसत नागरिक की तुलना में कहीं अधिक उद्विग्न, रुग्ण और चिंतित बनाये रहती है। जीवन के आनन्द का बुरी तरह अपहरण कर लेती है।

मुड़कर देखने पर प्रतीत होता है कि जब तथाकथित शिक्षा का, सम्पदा का, विज्ञान स्तर की चतुरता का इतना विकास नहीं हुआ था, तब मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, सुखी, संतुष्ट और हिल-मिलकर मोद मनाने की स्थिति में था। बढ़ी हुई समृद्धि ने तो यह सब भी छीन लिया, जिसे मनुष्य ने लाखों वर्षों के अध्यवसाय के सहारे, सभ्यता और सुसंस्कारिता के उच्चस्तरीय संयोग से दूरदर्शिता के साथ अर्जित किया था।

यहाँ सुविधा-साधनों को दुर्गति का कारण नहीं बताया जा रहा है, वरन् यह कहा जा रहा है कि यदि उनका सदुपयोग बन पड़ा होता, तो स्थिति उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी होती, जिस समय साधन कम थे। तब विकसित भाव-चेतना के आधार पर स्वल्प उपलब्धियों का भी श्रेष्ठतम उपयोग कर लिया जाता था और अपने साथ समूचे समुदाय को, वातावरण को सच्चे अर्थों में समृद्ध-समुन्नत बनाये रहने में सफलता मिल जाती थी। ऐसे ही वातावरण को सतयुग कहा जाता रहा है।

तथाकथित प्रगति का विशालकाय सरंजाम जुट जाने पर भी भयानक स्तर की अवगति का वातावरण क्यों कर बन गया ? इसका उत्तर यदि गंभीरता से सोचा जाय तो तथ्य एक ही हाथ लगेगा कि बुद्धि-भ्रम ने ही यह भ्रम सँजोये हैं। फिर बुद्धि को क्या कोसा जाय ? नहीं, इसका निर्धारण तो भाव-संवेदनाओं के आधार पर होता है भावनाओं में नीरसता-निष्ठुरता जैसी निकृष्टतायें घुल जायें तो फिर तेजाबी तालाब में जो कुछ गिरेगा, देखते-देखते अपनी स्वतंत्र सत्ता को उसी में जला-घुला देगा। भाव-संवेदना में विषाक्तता का घुल जाना, उस क्षेत्र में विकृतियों का जखीरा जम जाना ही एकमात्र ऐसा कारण है, जिसके रहते समृद्धि और चतुरता का विकास-विस्तार होते हुए भी, उल्टी सर्वतोमुखी विपन्नता ही हाथ लग रही है। सुधार तलहटी का करना पड़ेगा। सड़ी कीचड़ के ऊपर तैरने वाला पानी अपेय होता है। दुर्भावनाओं के रहते दुर्बुद्धि ही पनपेगी और उसके आधार पर दुर्गति के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगेगा नहीं। वस्तुतः सामने प्रस्तुत समस्याओं में से अधिकांश की जड़ें अपने भीतर होती हैं। ऐसी घटनाएँ कम ही होती हैं जिन्हें दुर्घटना या आक्रमण कहा जा सके। ऐसी विपन्नताएँ सामने आने पर हड़बड़ाने की अपेक्षा धैर्यपूर्वक यह सोचना चाहिए कि तात्कालिक संकट का निवारण करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ? उपाय अवश्य सूझ पड़ेगा और उनका सहारा लेने पर, संकट से उबरने का अवसर भी मिल जाएगा।

यदि कमजोरी अपनी है तो उसे सुधारनी चाहिए अन्यथा शरीर में घुसा हुआ विष आज नहीं तो कल, इस रूप में नहीं तो उस रूप में सामने आये बिना न रहेगा। दूसरों को सुधारना कठिन है। जो प्रतिकूल हैं उन्हें अनुकूल बनाने में कठिनाई हो सकती है किन्तु यह सरल है कि अपने जिन दुर्गुणों के कारण दूसरे विरोध करते हैं या द्वेष मानते हैं, उन गल्तियों को आत्म-निरीक्षण द्वारा स्वयं समझकर सुधारा जाय।

उत्तेजित मस्तिष्क में एक और भी दुर्गुण है कि वह वस्तुस्थिति को नहीं समझने देता। अपने को निर्दोष और दूसरों को दोषी ठहराने के लिए वकीलों जैसे तर्क करता है। इससे सामने वाले को सहमत करना और अनुकूल बनाना कठिन पड़ता है। ऐसी दशा में यही उचित है कि किसी मध्यवर्ती को दोनों ओर की बात सुनाकर समाधान निकालने का प्रयत्न किया जाय।

समस्याओं के पीछे अधिकतर अपने ही दोष होते हैं। निजी व्यक्तित्व में शेष दुर्गुण भरे हों तो उसी स्तर के मित्र-सहयोगी मिलेंगे। उनकी बढ़ोत्तरी और सलाह ऐसी होगी, जिससे उलझन सुलझे नहीं वरन् और अधिक उलझे। इसलिए अपने स्वभाव और व्यवहार को ऐसा रखना चाहिए, जिनके कारण घनिष्ठता क्षेत्र में सज्जनों का ही प्रवेश होने पाए। उनका सान्निध्य एवं सहयोग अपने को सुधारने एवं ऊपर उठाने में ही सहायक होता है।

भले या बुरों से घनिष्ठता बढ़ाने और समस्या उत्पन्न करके समाधान से सहायता लेने की अपेक्षा तीसरा एक और भी मार्ग है कि पूरी तरह आत्मनिर्भर रहा जाय। सीधे रास्ते चला जाय। सज्जनोचित व्यवहार किया जाय। इतने पर भी यदि समस्याएँ उत्पन्न होती हैं तो उनको महत्व न दिया जाय वरन् अपने दृष्टिकोण एवं व्यवहार में जितना हेर-फेर करने की आवश्यकता हो उसे कर लिया जाय। इसके उपरान्त साहस से काम लिया जाय। अपने ऊपर भरोसा रखा जाय और सोचा जाय कि इस संसार का नियम ही अनुकूलता-प्रतिकूलता, आते-जाते रहने का है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे बदला नहीं जा सकता। अतः परिस्थिति के अनुसार तालमेल बिठाने के लिए सूझ-बूझ का परिचय दिया जाय।

दिन के बाद रात आती है और रात के बाद दिन। दोनों के अपने-अपने उपयोग हैं और अपने-अपने तकाजे। हमें समय के अनुरूप बदलना चाहिए और किसी आग्रह विशेष पर अड़े नहीं रहना चाहिए।

नीति और कर्त्तव्य पालन के सम्बन्ध में दृढ़ता अपनाना आवश्यक है। बाकी यह सोचना चाहिए कि हर किसी को बदल सकना अपने हाथ की बात नहीं है। परामर्श किया जा सकता है पर इतना आग्रह न किया जाय कि टकराव की स्थिति उत्पन्न हो। सामान्य लोक-व्यवहार में ऐसी ही कामचलाऊ नीति अपनानी पड़ती है। मात्र अनीति से असहयोग करना ही पर्याप्त है। विरोध की परिस्थितियाँ हों तो संघर्ष भी किया जा सकता है।

कल्याण का मार्ग

मानव-जीवन की श्रेष्ठता का सदुपयोग इसमें है कि उसे उच्च आदर्शों के लिये प्रयुक्त किया जाय। उच्च आदर्शों का निर्धारण इसी उद्देश्य से हुआ है कि उन पर चलते हुए मनुष्य सुख-शान्ति का परिपूर्ण रसास्वादन कर सके। सड़क इसलिये बनाई जाती है कि उस पर चलने वाला पथिक बिना भूले-भटके, काँटे और ठोकरों से बचता हुआ, सुनिश्चित रीति से चलता हुआ गन्तव्य स्थान पर पहुँच सके। नीति, धर्म और सदाचार की सड़क इसलिये बनाई गई है कि उस पर कदम बढ़ाते हुए शान्ति और सन्तोषपूर्वक सरल और आनन्दमय परिस्थितियों का रसास्वादन करते हुए निर्दोष लक्ष्य तक यथासमय पहुँचा जा सके।

सचाई और भलाई का मार्ग सबके लिये सीधा और सरल है। कम समझ, अशिक्षित और भोले लोग भी उस पर चल सकते हैं। झूठ बोलने और बेईमानी, ठगी करने के लिये चतुरता की आवश्यकता है। तीक्ष्ण बुद्धि चाहिए, अन्यथा बनावटी बातें पकड़ में आ जाती हैं, उपहास होता है, निन्दा, भर्त्सना एवं अप्रतिष्ठा का भागी बनना पड़ता है। झूठ कभी न कभी पकड़ में आता ही है, बेईमानी देर-सवेर में खुलती ही है। तब वह धूर्तता, मूर्खता जैसी प्रतीत होती है। यह सारी कठिनाइयाँ सचाई का मार्ग अपनाने वाले के सामने नहीं आतीं। सच बोलना सबके लिये सरल है। जो बात जैसी देखी या सुनी है, भावना अथवा मान्यता में है, उसे ज्यों की त्यों प्रकट कर देने में चतुरता की कोई आवश्यकता नहीं है।

ईमानदारी का व्यवहार करना कठिन क्यों होगा ? पूरा नापना, पूरा तौलना, जो वस्तु जिस प्रकार की जिस भाव की है उसे वैसी ही बता देने से किसी को क्यों अड़चन पड़ेगी ? चतुरता, बेईमानी करने, धोखा देने और सामने वाले को उसका पता न चलने देने की प्रक्रिया पूरी करने में अभीष्ट होती है। पाप करके उसे छिपाये रहने में इतनी अधिक मानसिक शक्ति खर्च होती है जितनी का सदुपयोग करके मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है।

यह हो सकता है कि बेईमानी की अपेक्षा प्रारम्भ में ईमानदार आदमी घाटे में रहे, सब लोग बेईमान होते हैं यह मानकर उस पर भी अविश्वास किया जाना सम्भव है। पर कुछ ही दिन में वस्तुस्थित प्रकट हो जाती है। सच्चे और ईमानदार आदमी को कसौटी पर कसकर जब खरा मान लिया जाता है तब वह सबसे अधिक लाभ में रहता है। हर कोई उस पर भरोसा करता है, सब ओर से उसके साथ प्रेम, उदारता, सहयोग और सज्जनता का व्यवहार होता है। दूसरों की श्रद्धा, मन का सन्तोष और आत्मा का आशीर्वाद पाकर ऐसा व्यक्ति सच्ची शान्ति प्राप्त करता है। हो सकता है कि आर्थिक दृष्टि से बेईमानों की तुलना में वह घाटे में रहे, हो सकता है कि ढोंगियों की तरह उसे सस्ती वाह-वाही न मिले, पर जो कुछ भी उसे उपलब्ध हुआ होगा वह ठोस एवं चिरस्थायी बना रहेगा।

दूरदर्शिता का अभाव ही मनुष्य को अनीति के मार्ग पर आकर्षित करता है। तत्काल बहुत अधिक लाभ प्राप्त करने के मोह में लोग धूर्तता का अवलम्बन करते हैं। हो सकता है कि उस समय दूसरे लोग उस धूर्तता को पहचान न सकें, धोखे में आ जायें, ठगी के शिकार बन जावें पर ऐसा सदा तो नहीं होता रह सकता। काठ की हाँड़ी आखिर कब तक चढ़ेगी, उसे आज नहीं तो कल नष्ट-भ्रष्ट होना पड़ेगा। इसी प्रकार आज मौज-मजा करने के नाम पर देर तक काम देने वाली अपनी शक्तियों को जल्दी खर्च कर डालना आरम्भ में सुखकर अधिक लगने पर भी अन्ततः बड़ा कष्टकर सिद्ध होता है।

आज सज्जनों का उपहास किया जाता है और दुर्जनों को बुद्धिमान माना जाता है। यह दृष्टिकोण जन-मानस की अदूरदर्शिता और हीनता का चिन्ह है। दुर्जनता की अभिवृद्धि से न व्यक्ति का भला हो सकता है, न समाज का, न राष्ट्र का, न संसार का। तात्कालिक क्षणिक लाभ प्राप्त करने के बदले में यदि अपना भविष्य अन्धकारमय बना लिया जाय तो इसमें क्या बुद्धिमत्ता रही। ऐसी मूर्खता तो कोई भी सिरफिरा आदमी कर सकता है। अपनी उपलब्ध साधन-सामग्री को बेच खोंचकर एक-दो दिन मौज-मजा तो कोई भी कर सकता है। ऐसी बेवकूफी करने वालों की प्रशंसा कौन करता है ? अपना और अपने समाज का भविष्य अन्धकारमय बनाने के मूल्य पर जिस दुर्जनता को आज अपनाया जा रहा है, उसे निसंदेह नासमझी ही कहा जायगा। खेद है कि हम सब सामूहिक रूप से इसी नासमझी के शिकार बनते चले जा रहे हैं।

सज्जनता का मार्ग ही सबके लिये श्रेयस्कर हो सकता है। उसी में व्यक्ति का चिरस्थायी उत्थान और कल्याण सन्निहित रहा है। असंख्यों बार यह परीक्षण हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चुके हैं कि दुष्टता किसी के लिये भी लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। जिसने भी उसे अपनाया वह घाटे में रहा और वातावरण दूषित बना। अब यह परीक्षण आगे भी चलते रहने से कोई लाभ नहीं। हम अपना जीवन इसी पिसे को पीसने में, परखे को परखने में न गँवावें तो ही ठीक है। अनीति को अपनाकर सुख की आकांक्षा पूर्ण करना किसी के लिये भी सम्भव नहीं हो सका तो हमारे लिये ही अनहोनी बात सम्भव कैसे होगी ?

जीवनयापन के महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करते हुए यही निष्कर्ष निकलना उचित होगा कि स्वार्थपरता, विलासिता, संकीर्णता और असज्जनता की नीति अपनाने से नहीं उदारता, दूरदर्शिता एवं आदर्शवाद का अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर सिद्ध होगा। उसी से हमारी व्यक्तिगत समस्यायें सुलझेंगी और उसी से प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। सामूहिक-सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं का हल भी इसी तथ्य पर निर्भर है कि मानव अन्तःकरण में श्रेष्ठता एवं सदाचार के प्रति आस्था उत्पन्न हो। आधार के नष्ट हो जाने पर बाहरी समस्त उपाय व्यर्थ सिद्ध होंगे। विश्वशान्ति और किसी भी प्रकार सम्भव न हो सकेगी। भीतर भरी हुई बुराइयाँ अगणित मार्ग बनाकर बाहर निकलेंगी और अपराधों से उत्पन्न होने वाली अशान्ति सदा बनी ही रहेगी। शान्ति तो सदाचार की प्रतिक्रिया है। यदि हमें सचमुच ही शान्ति और प्रगति अभीष्ट हो तो इसके लिये सदाचार के प्रति अगाध निष्ठा ही उत्पन्न करनी पड़ेगी।

यह सत्पथ जब से हमने छोड़ा है, तब से अगणित उलझनें सामने आ उपस्थित हुई हैं। वे घट नहीं रहीं, वरन् बढ़ती ही जाती हैं। मनुष्य को सुखी बनाने के लिये अगणित प्रकार की प्रक्रियायें तेजी के साथ बढ़ाई जा रही हैं। मानवीय प्रतिभा और पुरुषार्थ का उपयोग उन साधनों को बढ़ाने में लगा हुआ है, जिनके बारे में यह सोचा जाता है कि इनका बढ़ना उपयोगी सिद्ध नहीं हो रहा है। सम्पत्ति, शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान, उत्पादन, कानून आदि का विकास होने पर भी कष्टों और समस्याओं का अन्त होता नहीं दीखता क्योंकि मनुष्य की बढ़ती हुई दुर्बुद्धि इतनी तेजी से बिगाड़ का सरंजाम इकट्ठा कर लेती है कि बनाव की दिशा में की जाने वाली प्रगति छोटी ही पड़ती जाती है। कष्ट और असन्तोष में दिन-दिन वृद्धि ही होती जाती है।

यह परिस्थिति तो बदलनी ही होगी

आज हमारे भावनात्मक स्तर का बुरी तरह अधःपतन हुआ है। स्वार्थपरता की इतनी प्रमुखता इतिहास में कभी नहीं मिली जितनी आज है। आध्यात्मिक भावनाओं की प्रचुरता का प्रतिफल यह होता है कि व्यक्ति अपने लिए कठोर और दूसरों के लिए उदार बनता है। स्वयं संयम और सादगी का—त्याग और तपस्या का आदर्श अपनाकर बहुत ही स्वल्प साधनों में काम चला लेता है और अपनी शेष प्रतिभा एवं क्षमता का लाभ दूसरों को पहुँचाता है। यह उदारता—यह धर्म-बुद्धि जिस व्यक्ति या समाज में बढ़ेगी वहाँ सुख-शान्ति का अवतरण उसी अनुपात से होगा। इसके विपरीत स्वार्थ बुद्धि की—असुरता की भावना यह रहती है कि अपने लिये अधिक-अत्यधिक, असीम सुख-सुविधाएँ किसी भी उचित-अनुचित मार्ग से उपलब्ध की जाएँ। फिर इसके लिए दूसरों का उत्पीड़न चाहे कितना ही क्यों न करना पड़े। यही असुर-बुद्धि कहलाती है, इसका जितना विस्तार एवं पोषण होता है, वातावरण उतना ही विषाक्त होता चलता है।

स्वर्ग और नरक इसी धरती पर हैं। उनकी झाँकी साधनों में नहीं भावनाओं में की जाती है। स्वर्ग के बारे में पौराणिक कल्पना यह है कि वहाँ भोजन, वस्त्र, निवास, मनोरंजन, ऐश-आराम के उपकरण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं और वहाँ श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव के दिव्य प्राणी देवता निवास करते हैं। जहाँ देवता निवास करेंगे वहाँ सुख-साधनों की कमी रहेगी ही क्यों ? फिर थोड़ी कमी भी रह जाय तो वह अपनी सद्भावनाओं से उस अभाव में भी आनन्द को समुचित मात्रा में प्राप्त कर लेंगे। नरक के बारे में ही यह कल्पना व्यक्त की गई है कि वहाँ पग-पग पर उत्पीड़न, त्रास, असन्तोष, क्लेश और कलह रहता है। दुष्कर्मकर्ता पापी लोग वहाँ निवास करते हैं और उस क्षेत्र की व्यवस्था पाषाण हृदय वाले दुष्ट यमदूत करते हैं। यह कल्पना इस पृथ्वी पर ही साकार होती है। जहाँ सज्जनता एवं सद्भावना का बाहुल्य रहेगा वहाँ स्वर्ग और जहाँ दुर्बुद्धि एवं दुष्टता बढ़ी हुई होगी वहाँ नरक का प्रत्यक्ष दृश्य दृष्टिगोचर होता रहेगा।

स्वार्थ उतना ही उचित है जिससे दूसरों की भावनाओं, आवश्यकताओं और अधिकारों का हनन न होता हो। जीवन धारण करने के लिये और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जितनी साधन-सामग्री अभीष्ट है, उतना कमाने के लिये मनुष्य उचित मार्ग पर चलता हुआ प्रयत्न करे, यह औचित्य की मर्यादा है। उस उपार्जित सामग्री का श्रेष्ठतम उपयोग करे, यह दूरदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता है। जीवन की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो समय, ज्ञान, धन एवं प्रभाव बचता है, उसे लोकहित के लिये लगादे यह उदारता और श्रेष्ठता है। मनुष्य का कर्तव्य यह है कि मर्यादा, दूरदर्शिता और श्रेष्ठता की भावनाओं से अपनी मनोभूमि भरी रखे और उसी प्रेरणा के अनुरूप अपना जीवनक्रम निर्धारित करे। मानवता का सच्चा स्वरूप यही है ! यही है।

इस आदर्श का व्यतिक्रम करके मनुष्य जब लालची और उच्छृंखल, स्वार्थी और अनैतिक गतिविधियाँ अपनाता है तो वह अपने आदर्श से पतित एवं कर्तव्य से भ्रष्ट मानव ही असुर कहलाता है। जहाँ असुरता रहेगी वहाँ नरक उत्पन्न होगा। साधन-सामग्रियों की प्रचुर उपलब्धि से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

भी नरक हटता नहीं। स्वर्ग झोंपड़ियों में भी रह सकता है और नरक के लिये राजमहलों में भी कोई रोक नहीं। रावण की लंका सोने से बनी थी। सुख-साधनों की वहाँ क्या कमी रही होगी ? पर दुर्बुद्धि के कारण वहाँ सदा नरक ही रहा। राजा-रईसों, अमीर-उमरावों, सामन्त और सेठों के लिए कौन-सा सुख साधन कम है पर उनके समीपवर्ती लोग बता सकते हैं कि वे बेचारे कितने षड़यन्त्रों, कुचक्रों, प्रतिशोधों, आशंकाओं और आत्म-प्रतारणाओं की धधकती भट्टियों में निरन्तर किस बुरी तरह जलते रहते हैं।

सुधार के नाम पर अब तक भारी प्रयत्न हुए हैं उनके बावजूद स्थिति ज्यों की त्यों है। स्थिति का स्वरूप तो बदल जाता है पर आधार जहाँ का तहाँ बना रहता है। जिस प्रकार पोशाक के फैशन बदलते रहते हैं, वैसे ही बुराइयाँ अपना नया रंग-रूप धारण करती हैं। हुक्का बन्द हो गया तो सिगरेट चल पड़ी, भाँग घटी तो चाय आ गई, वेश्या नृत्य बन्द हुए तो सिनेमा चढ़ दौड़ा, पिण्डारी ठगों का अन्त हुआ तो रिश्वतखोर, भ्रष्टाचारी उठ खड़े हुए, कन्या विक्रय बन्द हुआ तो वर बिकने लगे, देवता के आगे पशुबलि रुकी तो परीक्षण करने के लिये, औषधियों के लिए असंख्य जीवों का प्राण हरण किया जाने लगा, राजा मिटे तो नेता आ विराजे, स्वरूप बदल रहे हैं पर तथ्य ज्यों के त्यों हैं।

बुराई हट नहीं रही है, रूप बदल रही है। बहुरूपिये—नट—जिस प्रकार बराबर अपनी वेषभूषा बदल कर—नया सुन्दर चेहरा बनाकर जन मनोरंजन करते हैं, उसी प्रकार दुष्ट-वृत्तियों का रंग-ढंग मात्र बदल जाता है। कभी जमींदार-साहूकारों के सिर पर चढ़कर बुराई नाचती है तो कभी अफसर, इन्जीनियर उसके वाहन बन जाते हैं। जिनको भी अवसर मिलता है वे उसका भरपूर लाभ उठाते हैं। जिन्हें अवसर नहीं मिलता वे दूसरों को कोसते हैं, विरोध करते और लड़ते हैं। पर जब उन्हें वैसा ही अवसर मिलता है, तो वे भी वही करने लग जाते हैं, जिसकी निन्दा की जा रही थी। जब अपनी कन्या विवाह योग्य होती है तो दहेज को बुरा कहा जाता है, पर जैसे ही अपना लड़का विवाह योग्य हुआ कि वह विरोध, समर्थन के रूप में बदल जाता है और दहेज की माँग की जाने लगती है। इस प्रकार दुर्बल आधार पर खड़े हुए, व्यक्तित्व जरा-जरा से प्रलोभनों, आकर्षणों पर फिसल जाते हैं, जरा-सी कठिनाई आने पर—पथभ्रष्ट हो जाते हैं।

व्यक्ति और समाज की दशा जिन समस्याओं और कठिनाइयों के कारण उलझन भरी स्थिति में पड़ी हुई है उसे सुलझाने का एकमात्र आधार आदर्शवाद को कहने सुनने भर की वस्तु न रहने देकर व्यावहारिक जीवन में ओत-प्रोत करना ही हो सकता है। आज इसी की आवश्यकता सर्वोपरि अनुभव की जा रही है।

आध्यात्मिक लक्ष्य और उसकी प्राप्ति

हमारा बाह्य जीवन अनेक भागों में विभक्त होता रहता है, पर उसकी जड़ एक ही जगह रहती है। सारे शरीर में रक्त भ्रमण करता है पर उसका उद्गम हृदय स्थल ही होता है। आहार से पोषण सारी देह के सब अंगों का होता है पर उस आहार का पाचन संस्थान पेट ही तो है। पेट खराब हो जाय तो देह के किसी अंग को पोषण न मिलेगा। हृदय रुग्ण हो जाय तो रक्त संचार की व्यवस्था बिगड़ेगी और उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ेगा। इसी प्रकार मानसिक स्तर में श्रेष्ठता या निकृष्टता की प्रधानता हो जाने पर तदनुसार जीवन के समस्त भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है। उत्कृष्टता एवं निकृष्टता की परिस्थितियाँ सामने उपस्थित होती हैं। अतएव इस तथ्य को हमें समझ ही लेना चाहिए कि बाह्य परिस्थितियों में सुधार या परिवर्तन करने की इच्छा रखने वाले को अपना आन्तरिक स्तर सुधारने के लिए सबसे पहले कदम उठाना चाहिए।

आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, शारीरिक विभागों में बँटा हुआ जीवन अनेकों प्रकार की विभिन्न समस्याओं से आच्छादित रहता है। अगणित प्रश्न सामने उपस्थित रहते हैं और बहुत-सी उलझनें सुलझाने के लिए चिन्ता बनी रहती है। इसके लिए तरह-तरह के उपाय भी किये जाते हैं। कठिनाइयों को हल करने और सुविधाओं को उत्पन्न करने; असफलताओं से बचने और सफलताओं से लाभान्वित होने के लिये कौन क्या नहीं करता। अपनी-अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार हर कोई विपन्नताओं को हटाकर सम्पन्नता के लिये चेष्टा करता है, पर ये चेष्टायें सफल तभी होती हैं जब आन्तरिक स्तर में आवश्यक अनुकूलतायें मौजूद हों। गुण, कर्म, स्वभाव के प्रतिकूल रहने पर अभीष्ट मनोरथ प्रायः नहीं ही सफल होते।

जिनका दैनिक जीवन पाप, द्वेष, दुराचार, दुष्टता और अनीति में डूबा रहता है, कुविचारों से जिनका मन और कुकर्मों से जिनका शरीर निरन्तर दूषित बना रहता है, उनका अन्तःकरण भी गन्दा रहेगा और उस गन्दगी में दिव्य तत्वों का अवतरण कैसे सम्भव हो सकेगा ? साधना में शक्ति तब आती है जब श्रद्धा और विश्वास, संयम और सदाचार का पुट भी समुचित मात्रा में लगता चले। दैनिक जीवन की पवित्रता ही इस बात की कसौटी है कि किसी व्यक्ति ने वास्तविक तत्वज्ञान को हृदयंगम किया है या नहीं। यह निष्ठा जिसके भीतर उतरेगी, उसके गुण, कर्म, स्वभाव में श्रेष्ठता एवं सज्जनता की मात्रा अन्य व्यक्तियों की तुलना में बढ़ी-चढ़ी ही होगी। ऐसा पवित्र और आदर्श जीवन बिताने वाले के लिए आत्मिक प्रगति नितान्त सरल है। ईश्वर का दर्शन, आत्म साक्षात्कार उसके लिए जरा भी कठिन नहीं है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर सर्वव्यापी है। विश्व के कण-कण में वह समाया हुआ है। उसे देखने या प्राप्त करने के लिये कहीं दूर देश में जाना नहीं पड़ता। जो मलीनतायें जीव और ईश्वर के बीच में दीवार बन कर खड़ी हैं यदि उन्हें गिरा दिया जाय तो अत्यन्त निकट निवास करने वाले परमात्मा का दर्शन तत्काल हो सकता है। विवेक की आँखों से हम उसे हर वस्तु में, श्रेष्ठता, जीवन एवं सौंदर्य रूप में निहार सकते हैं। सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परमात्मा सत्य, शिव और सुन्दर अनुभूतियों में सहज ही हमें परिलक्षित हो सकता है। इसके लिए हमें अपना ही अज्ञान हटाना और अपना ही ज्ञान जाग्रत करना है। मलीनताओं के हटते ही अपना इष्टदेव अपने चारों ओर थिरकता हुआ, अपनी अन्तरात्मा में रास रचाता हुआ, परमानन्द की नित्य अनुभूतियों के साथ हमारे सामने आ उपस्थित होता है, उसे बाहर ढूँढ़ने जाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति किसी के लिए भी कठिन नहीं है, अपने भीतर सुधार करने पर वे सब साधन सहज ही जुट जाते हैं, जिनके आधार पर स्वर्गानुभूति, जीवनमुक्ति, शान्ति, सद्गति, सिद्धि एवं ईश्वर प्राप्ति की विभूतियाँ उपलब्ध हो सकें।

सामाजिक कुरीतियाँ कैसे मिटें ?

सामाजिक जीवन में अनेकों कुरीतियाँ, बुराइयाँ, दुष्प्रवृत्तियाँ और अन्ध परम्पराएँ फैली दीखती हैं। बाहर से वे सामाजिक खराबी दीखती हैं और लगता है कि सामाजिक स्तर पर किये प्रयत्नों से ही इन्हें हटा दिया जा सकेगा। पर थोड़ा बाराकी से देखने पर पता चलता है कि व्यक्तिगत दोष ही यथा अवसर अनेक रूपों में प्रकट होते हैं, कभी ये सामाजिक, कभी राजनैतिक, कभी धार्मिक मालूम पड़ते हैं। अवसर के अनुरूप उनकी शक्ल दिखाई पड़ती है पर उनकी जड़ एक ही है—पतनोन्मुख हीन-वृत्ति।

प्रत्येक समाज में स्वस्थ्य परम्पराएँ मौजूद हैं, उत्कृष्ट आचरणों के लिये हर समाज में पर्याप्त स्थान और क्षेत्र मौजूद हैं। साथ ही कुछ न कुछ बुराइयाँ और मूर्खताएँ भी हर समाज के लोगों में प्रचलित हैं। दोनों में से किसी को भी चुन लेना व्यक्तियों की अपनी अभिरुचि के ऊपर निर्भर हैं। जिनका मन दुष्प्रवृत्तियों से, संकीर्णताओं, भीरुता और स्वार्थ भावनाओं से भरा है वह कुरीतियों को ही अपनायेंगे। किन्तु जिनमें साहस और विवेक मौजूद है उनके लिए भिन्न प्रकार का मार्ग अपनाने एवं आचरण करने की पूरी-पूरी सुविधा मौजूद है। विवश किसी को किसी काम के लिए कोई नहीं कर सकता। इस जमाने में ऐसे सामाजिक बन्धन किसी के ऊपर भी नहीं हैं।

बुरी से बुरी और अच्छी से अच्छी बातें समाज में होती रहती हैं। हमारा मन जिन्हें अपनी रुचि के अनुकूल मान लेता है, उन्हीं का अनुकरण करता है, उन्हें ही परम्परा मानता है, जो बातें अपनी रुचि के प्रतिकूल हैं, उन्हें अपवाद मानता है, उपेक्षणीय एवं उपहासास्पद समझता है। कोई भी प्रथा सर्वमान्य या निरापवाद नहीं है। अपनी मानसिक या नैतिक दुर्बलताओं के कारण भली परम्पराओं की तुलना में बुरी ही हम चुनते हैं, और बहाना यह करते हैं, क्या करें, प्रथा पर चलना पड़ता। लोकापवाद और समाज निन्दा इसके लिये हमें विवश करती है। यह बहाना सर्वथा असंगत है। सही बात यह है कि यदि कोई आदर्श कार्य करने का साहस करे तो उसकी विवेकशीलता को हर जगह सराहा जायेगा और कमजोर तबियत के आदमी उससे प्रेरणा पाकर अनुसरण करने का साहस प्राप्त कर सकेंगे।

हमें स्वस्थ परम्पराओं को जन्म देना चाहिए। समाज का, व्यक्ति का वास्तविक हित जिसमें होता है उसी मार्ग को अपनाना चाहिए। अपना मन सदा नीति, न्याय और औचित्य के पक्ष में रखना चाहिए। कुकर्म करते हुए एक छोटे बच्चे से भी, अपनी अन्तरात्मा से भी डरना चाहिए। पर सत्कर्म का, अच्छी प्रथा-परम्पराओं का आरम्भ करते हुए हमें सारे समाज की, सारी दुनिया की भी परवाह नहीं करनी चाहिए। अनीति और अनाचार के विरुद्ध यदि अकेले ही लड़ने को खड़ा होना पड़े तो उसमें झिझकना नहीं चाहिए। शंकराचार्य, दयानन्द, बुद्ध, गाँधी, ईसा, लूथर, मार्क्स, गैलेलियो आदि आरम्भ में अकेले ही थे पर जब उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्ण बातें कहीं तो उन्हें असंख्य लोगों ने स्वतः शिरोधार्य कर लिया। जो काम बहुत लोग मिलकर नहीं कर सकते, इन्होंने अकेले ही कर दिखाया।

धर्म आवश्यक भी है और उपयोगी भी

मानव-जीवन में धर्म एवं सदाचार ही वह तथ्य है जिस पर चलते हुए सुख-शान्ति के साथ स्वयं जीने और दूसरों को जीने देने की प्रक्रिया सम्पन्न हो सकती है। धर्म का एक अर्थ विशेषता या स्वभाव भी है। जिस मार्ग पर चलते हुये लक्ष्य को प्राप्त कर सकना सम्भव होता है, उसे धर्म कहते हैं। धर्म को जीवन का प्राण ही कहना चाहिए। इसका परित्याग करके मनुष्य पशु ही नहीं पिशाच भी बन जाता है। इसलिये ऐसे आदमी को—धर्म-कर्त्तव्यों का परित्याग करने वालों को इस देश में सदैव घृणा की दृष्टि से देखा गया है। शास्त्र का वचन है कि जो धर्म का पालन करता है, उसकी धर्म ही रक्षा करता है, पर जो उसे नष्ट कर देता है उसे नष्ट किया हुआ धर्म ही नाश कर देता है। यह सिद्धान्त सर्वथा सत्य है। जिसने धर्म त्यागा उसे सभी विभूतियाँ त्याग कर चली जाती हैं। उसे दुःख-दुर्भाग्य ही सदा घेरे रहते हैं। ऐसे लोग आग में जलते रहने जैसी बेचैनी और नरक जैसी यंत्रणाग्रस्त मनोभूमि लेकर जिन्दगी के दिन ज्यों-त्यों करके पूरे करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म का प्रधान चिन्ह है सदाचार एवं कर्त्तव्य-पालन। मनुष्य अपने इस आदर्श एवं उत्तरदायित्व को ठीक तरह अपनाये रहें, इसी उद्देश्य के लिए समस्त धर्म-तन्त्र की विशालकाय रचना हुई है। उपासना, शास्त्र-श्रवण, पाठ, पूजा, कथा, कीर्तन, सत्संग, प्रवचन, व्रत, उपवास, तीर्थ-यात्रा, व्रत, नियम, संयम, त्यौहार, संस्कार आदि समस्त प्रक्रियाएँ इसी उद्देश्य को लेकर विनिर्मित हुई हैं कि मनुष्य वासना और तृष्णा के आकर्षणों एवं प्रलोभनों का मुकाबला करता हुआ अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग बना रहे। यदि यह उद्देश्य पूरा न होता हो तो सारा धार्मिक कर्मकाण्ड एक प्रकार से निष्प्राण, निरुद्देश्य ही सिद्ध होता है।

ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था रखने, उसका चिन्तन, मनन, ध्यान और भजन करने का उद्देश्य यही तो है कि मनुष्य अपने चारों ओर, अन्दर और बाहर उस निष्पक्ष, न्यायकारी और सुनिश्चित कर्म फल देने वाली शक्ति को उपस्थित समझे। पाप कर्मों के दण्ड से डरे और मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर उसके कठोर प्रतिफल का ध्यान रखते हुए अनीति न करे। यदि उपासक में ईश्वरीय न्याय और कर्मफल की सुनिश्चितता पर आस्था न हो तो वह भक्ति भावना निरर्थक ही सिद्ध होगी। उस निरर्थक उपासना से ईश्वर की प्रसन्नता एवं कृपा किसी को भी प्राप्त न हो सकेगी। धर्म कर्मों से जिस स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि, वरदान, देव कृपा, सुख-शान्ति, समृद्ध, साक्षात्कार आदि लाभों की प्राप्ति होती है, वह केवल उन्हीं के लिये सम्भव है जिन्होंने धर्म के मूल स्वरूप को समझा है, उसे अपने जीवन में धारण किया है और चरित्र को उज्ज्वल बनाया है। लौकिक और पारलौकिक जीवन की समस्त विभूतियाँ सदाचार के ही फलस्वरूप प्राप्त होती हैं और धर्म को सदाचार का प्रेरक एवं उत्पादक माना गया है। इसलिये यह निष्कर्ष निकाला गया है कि धर्म से विभूति एवं सुख-शान्ति प्राप्त होती है। कोई व्यक्ति धर्म की बाह्य प्रक्रियाओं को तो पूरा करे, पर सदाचार के प्रति आस्था न रखे, कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्व और मर्यादाओं का उल्लंघन करे तो यही कहा जायगा कि इसने धर्म का आधार ही तोड़ दिया। जड़ कट जाने पर किसी पेड़ में लगने वाले फूलों और फलों की आशा नहीं रखी जा सकती, इसी प्रकार कुकर्मी 'धर्मात्मा' को उन समस्त लाभों से वंचित रहना पड़ता है, जो धर्म-मार्ग पर निष्ठापूर्वक चलने वाले को अनायास ही मिलते रहते हैं।

मनुष्यों को ऊँचा उठाने और उसे नीचा गिराने में उसकी भावना ही एकमात्र कारण होती है। भावना-स्तर को मानवीय आदर्शों के अनुरूप बनाये रहने में धर्म की समस्त प्रक्रिया सहायक होती है, इसीलिए उसे इतना महत्व मिला हुआ है। हमें कारण को समझना चाहिए, तथ्य को पहचानना चाहिए। मूल आधार का ध्यान न रखकर बाह्य क्रिया-काण्ड को ही सब कुछ मान लिया जायेगा तो उद्देश्य की पूर्ति कैसे सम्भव होगी ? निष्प्राण धर्म-कर्म से यह कैसे आशा की जायेगी कि वह सजीव-धर्म—आदर्श जीवन से मिलने वाले लाभों को प्रदान कर सके। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये उसकी स्तुति या पूजा ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसकी आज्ञाओं का पालन भी आवश्यक है।

परिस्थिति जो भी हो, रास्ता एक ही है। जनमानस में धर्म भावना की जाग्रति हुए बिना मानव जीवन को आच्छादित किये रहने वाली अगणित कठिनाइयों और समस्याओं का समाधान और किसी प्रकार न हो सकेगा। आवरण में, घटाटोप में जो धर्म की आत्मा आज धुँधली और छिपी हुई सी प्रतीत होती है उसे पुनः उसके शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठापित करना होगा। धर्म अफीम की गोली नहीं है। परस्पर विद्वेष और असहिष्णुता उत्पन्न करने वाली कट्टरता को साम्प्रदायिकता कहा जा सकता है, पर जिसका एकमात्र उद्देश्य ही प्रेम, दया, करुणा, सेवा, उदारता, संयम एवं सद्भावना को बढ़ाना है उस धर्म को न तो अनावश्यक कहा जा सकता है और न अनुपयोगी। वस्तुतः धर्म ही मानवता का प्राण है उसके बिना जीवित रहते हुए भी वह सड़ी हुई लाश वाले मुर्दे की तरह घृणित बन जाती है।

आर्थिक तंगी की समस्या और उसका समाधान

पिछली पीढ़ियों से हमारे पूर्वजों की आजीविका आज की अपेक्षा बहुत कम थी तथा यातायात के साधनों के अभाव, यन्त्रों के न होने तथा उत्पादन और संगठित अर्थ-संस्थानों के बिना सीमित आमदनी में ही उन्हें गुजारा करना पड़ता था। फिर भी वे हमारी अपेक्षा अधिक सुखी, सन्तुष्ट, स्वस्थ और प्रसन्न थे। इस शताब्दी में उद्योग, उत्पादन, श्रम, निर्माण एवं शासन का क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ जाने से सबकी आजीविका बढ़ी है, जो साधन पूर्व पुरुषों को उपलब्ध नहीं थे वे हमें प्राप्त हैं। यह सब होते हुए भी हर कोई आर्थिक तंगी अनुभव करता है और इसी समस्या को सुलझाने के लिए निरन्तर सचेष्ट एवं चिन्तित रहता है।

कारण यह है कि अब हर व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाता चला जा रहा है। इस तथाकथित सभ्यता ने मनुष्य का मन विलासिता और आडम्बर की ओर मोड़ा है। सोचने का तरीका अब यह हो गया है कि जिसके पास जितने अधिक महँगे तथा जितने अधिक सुखोपभोग के साधन होंगे वह उतना ही बड़ा आदमी, उतना ही प्रतिष्ठित माना जायेगा, फलस्वरूप अपनी स्थिति और हैसियत का ध्यान न रख कर, आवश्यकता और उपयोगिता का ध्यान न रखकर, इस प्रकार खर्च किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है जो आमदनी की अपेक्षा अधिक हो जाता है। खर्च की कोई सीमा नहीं, किसी भी काम में चाहे जितना खर्च किया जा सकता है। आवश्यक एवं उपयोगी कार्यों की सीमा हो सकती है पर विलासिता और आडम्बर का कहीं अन्त नहीं। जितना चाहें उतना उनको बढ़ाया जा सकता है। आमदनी चाहे जितनी नहीं बढ़ सकती, ऐसी दशा में सन्तुलन का ध्यान जहाँ न रखा जायेगा वहाँ आर्थिक तंगी बनी ही रहेगी।

बुद्धिमत्ता कमाने में नहीं खर्च करने में परखी जाती है। आमदनी तो अनायास भी हो सकती है, पैतृक उत्तराधिकार में प्राप्त होकर या परिस्थितियों के कारण बिना अधिक प्रयत्न के भी बहुत लाभ हो जाना सम्भव है, पर खर्च में सदुपयोग एवं औचित्य का ध्यान रखना केवल दूरदर्शी लोगों के लिये सम्भव होता है। जिन्हें मितव्ययिता का ध्यान है, जो केवल उचित आवश्यकताओं के लिए ही खर्च करने का ध्यान रखते हैं वे न तो कभी गरीब होते हैं और न ऋणी। ऐसे ही लोगों को संजीदा और समझदार कहा जा सकता है।

आमदनी किन उपायों से बढ़े इसके उपायों को लोग खोजते रहते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे उपयोगी और सबसे महत्वपूर्ण उपाय यह है कि अपने गुण, कर्म और स्वभाव को इतना सुधारा और सज्जनतापूर्ण, सरल और सौम्य बना लिया जाय कि हर किसी का आकर्षण अपनी ओर हो। उदार और सहयोगी व्यवहार करने की इच्छा जाग्रत हो। संसार में जो भी आगे बढ़ा है, उसे अपने साथी, सम्बन्धियों के स्नेह-सहयोग का ही सबसे बड़ा लाभ मिला है। यह लाभ दुष्ट, दुर्गुणी, अशिष्ट और अव्यवस्थित लोगों को नहीं मिल सकता, इन त्रुटियों के कारण सब लोग उनसे भीतर ही भीतर खिंचे रहते हैं। सहयोग का अवसर आने पर उपेक्षा बरतते हैं। ऐसी स्थिति में सुयोग्य लोगों को भी पिछड़ा पड़ा रहना होता है जबकि कम योग्यता के व्यक्ति अपनी सज्जनता के कारण आशाजनक जन-सहयोग प्राप्त करके प्रगति पथ पर तेजी के साथ अग्रसर होते हैं। इस प्रगति में आर्थिक प्रगति भी सम्मिलित है।

विश्वव्यापी आर्थिक तंगी की समस्या जिस विकराल रूप में आज मानव जाति के सामने प्रस्तुत है, उसका समाधान करने के लिये आमदनी बढ़ाने के अगणित उपाय व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से किये जा रहे हैं। उन उपायों में मानवीय सद्गुणों की अभिवृद्धि का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य भी सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। इसकी उपेक्षा करने से तंगी का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहेगा। दुर्गुणों की सुरक्षा के सामने बेचारी नियमित आजीविका सदा स्वल्प ही प्रतीत होती रहेगी।

नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला

परस्पर दुर्भाव की धारणाओं के कारण संघर्ष और विद्वेष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके फलस्वरूप अवांछनीय, अनैतिक और अशोभनीय घटनायें आये दिन घटित होती हैं। आज सर्वत्र अधिकारों की माँग प्रबल हो रही है, दूसरों से अधिक सुविधायें प्राप्त हों यह अपेक्षा की जाती है, पर कर्त्तव्यों का किसी को ध्यान नहीं। कर्तव्यों की उपेक्षा करते हुए अधिकारों की माँग करने से कलह का जन्म होता है। शान्ति का तरीका यह है कि अधिकारों की उपेक्षा करते हुए कर्तव्यों का पालन पूरी तरह किया जाय।

नागरिक जीवन की सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हर व्यक्ति दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह पालन करे, अपनी नैतिक जिम्मेदारियों को तत्परता के साथ निभाने के लिये कटिबद्ध रहे। सामाजिक सुख-शान्ति और प्रगति का यही आधार है। जिस देश में नागरिक अपने कर्तव्यों का ठीक तरह पालन करते रहते हैं, वही सबल राष्ट्र कहलाता है, जिस समाज में चरित्रवान लोगों का बाहुल्य रहता है, वही सभ्य कहा जाता है। किसी व्यक्ति या समूह की उत्कृष्टता केवल इसी आधार पर नापी जा सकती है कि उसमें कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति कितनी आस्था है। झूठे और लवार, चालाक और बेईमान, धूर्त और ढोंगी, आलसी और कायर लोग चाहे कितने ही साधन सम्पन्न क्यों न हों उनका तथा उनके समूह का स्तर सदा गिरा हुआ ही रहेगा। चिरस्थायी उन्नति, संतुष्टि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकना उनके लिए कदापि सम्भव न हो सकेगा।

एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करने से परस्पर स्नेह, सन्तोष, सद्भाव और प्रसन्नता की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रेम का उद्गम सज्जनता और सद्व्यवहार होता है। दुष्टता और दुर्बुद्धि की भावनायें मन में रहें तो किसी के प्रति सच्चा सद्व्यवहार बन ही न पड़ेगा। नीति और चतुरता के माध्यम से जो नकली, बनावटी एवं झूठा शिष्टाचार बरता जाता है, वह देर तक किसी को भ्रम में नहीं रख सकता, उसकी कलई सहज ही खुल जाती है। किन्तु जहाँ स्वाभाविक, सरल एवं सच्ची सद्भावनायें रहती हैं वहाँ प्रेम और विश्वास स्वयमेव उत्पन्न होता है। जब कुछ व्यक्तियों के बीच प्रेम और विश्वास का सम्बन्ध बन जाता है तो वे आपस में मित्र कहलाते हैं और सच्चे मित्रों द्वारा एक दूसरे के प्रति बरते जाने वाले सद्व्यवहार से जितना अधिक सुख मिलता है, उसकी तुलना संसार के और किसी सुख से नहीं की जा सकती।

सामाजिक मर्यादाओं का पालन करना मनुष्यत्व का और उच्छृंखलता बरतना पशुता का चिन्ह माना गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिए यह उचित ही है कि मानवीय उत्तरदायित्वों की रक्षा करने के लिए दूसरों का ध्यान रखते हुए अपने आचरण को ऐसा रखा जाय जो प्रत्यक्ष पर परोक्ष रूप में असुविधाजनक न हो। शिष्टाचार सिखाने की कई पुस्तकें भी मिलती हैं और अच्छे लोगों के आचरणों को देखकर एवं उनके प्रवचनों को सुनकर भी इसे सीखा जा सकता है। इस प्रकार सद्व्यवहार को एक अच्छी आदत के रूप में एक सीमा तक अपनाया जाना सरल हो सकता है पर वास्तविक नागरिकता एवं नैतिकता आध्यात्मिक आदर्शों पर ही अवलम्बित रहती है। मनोभूमि में यदि दूसरों के प्रति सच्चा आदर, सच्चा स्नेह, सच्चा सौजन्य न हो तो ठगों, धूर्तों और चापलूसों जैसी बनावट कुछ अधिक काम की सिद्ध न हो सकेगी।

सभ्यता का अर्थ है—सज्जनता। प्रेम और आत्मीयता की दृष्टि जितनी उद्दात्त होगी, उतनी ही सज्जनता व्यवहार में आ सकेगी। स्वार्थी, कंजूस, लोभी और निष्ठुर हृदय व्यक्ति का कला की तरह दूसरों को प्रभावित करने के लिए शिष्टाचार बरत लेना आसान है, पर जिस सज्जनता के कारण व्यक्ति कुछ घाटे में रहता है, थोड़ा कष्ट भी उठाता है वह उन्हीं के लिए संभव है जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखकर, परमार्थ, सेवा एवं उदारता को एक सर्वश्रेष्ठ मानवीय कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया हुआ है तथा लोकहित को ध्यान में रखकर जो अपनी सुख-सुविधाओं में कमी कर सकते हैं। दूसरों के प्रति उदार और अपने प्रति कठोर बने बिना सज्जनता का आचरण बन पड़ना सम्भव नहीं है। जिसके लिये अपनी सुख-सुविधायें ही सर्वोपरि हैं, वह क्यों किसी की कठिनाई या सुविधा का विचार करेगा ? स्वार्थ को घटाकर ही परमार्थ की बात बनती है। नागरिक सभ्यता का वास्तविक आधार यही है कि मनुष्य अपनेपन का दायरा बढ़ा कर—मानव मात्र तक—प्राणिमात्र तक व्यापक बनादे। सब के सुख में अपना सुख समझकर प्रसन्नता का और दूसरों के दुःख में दुःखी होकर जो करुणा का अनुभव कर सकता है, वस्तुतः वही मनुष्यता का उत्तरदायित्व अनुभव कर सकेगा और उसी के द्वारा सज्जनता एवं नागरिकता का, शिष्टाचार एवं भलमनसाहत का सच्चा व्यवहार बन पड़ना सम्भव हो सकेगा।

मानव जाति में चल रहे समस्त संघर्षों, क्लेशों, कलहों, द्वेष, दुर्भावों का कारण एक ही है—संकीर्ण स्वार्थपरता। अपराध और पापों की पृष्ठभूमि भी यही है। घर और परिवारों में मनोमालिन्य इसी कारण रहता है। मुकदमे-फौजदारी, तनाव और दुश्मनी का आधार यही है। फूट और विघटन इसी से पनपते हैं। प्रेम और मैत्री का दर्शन दुर्लभ रहने का निमित्त यह एक ही है। मानवीय सभ्यता के स्थान पर पशुता और पैशाचिकता की प्रवृत्तियाँ बढ़ते जाने का इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं। आनन्द और उल्लास इस संसार की किसी भी वस्तु में नहीं, यदि यह कहीं है तो एक ही स्थान पर है—प्रेम और आत्मीयता में। कोई भी पदार्थ या व्यक्ति हमारे प्रेम एवं ममत्व के दायरे में आ जाता है वही प्रिय लगने लगता है। यदि कोई चाहता हो कि इस संसार में सर्वत्र प्रसन्नता का ही वातावरण दृष्टिगोचर हो तो उसके लिए एक ही मार्ग है कि अपनी संकीर्णता को उदारता में, स्वार्थ को परमार्थ में परिणित करे।

इस संसार में सद्भाव और सौजन्य बढ़े, अपराधों और पापों की सत्ता हटे, इसका एक ही आधार हो सकता है—सज्जनता की अभिव्यक्ति। सच्ची नागरिकता और वास्तविक नैतिकता इसी को कहते हैं। विश्वशान्ति की समस्या का हल इसी आधार पर सम्भव है। मनुष्य-मनुष्य के बीच अटल हुए सद्भाव को रोकने के लिए, पारस्परिक सद्भाव की अभिवृद्धि से प्राप्त होने वाले आनन्द को बढ़ाने के लिए, आत्मीयता को व्यापक बनाया जाना आवश्यक है। मानवीय सद्गुण ही तो बाह्य जीवन में सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न किया करते हैं।

हमें मानसिक चिन्तायें क्यों घेरती हैं ?

मानव-जीवन अनेक भागों में विभक्त है। इन सभी विभागों में सन्तुलित प्रगति होते रहने में ही सुख-शान्ति की सम्भावना रहती है। पिछले पृष्ठों पर आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक विषयों पर चर्चा की जा चुकी है। इन सब क्षेत्रों में जो असंख्य गुत्थियाँ और समस्याएँ दीख पड़ती हैं, उनका प्रत्यक्ष कारण अलग-अलग दीखता है। पर थोड़ी गहराई से ध्यान दौड़ाने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक ही दोष असंख्य मार्गों में होकर फूटता और असंख्य समस्यायें उत्पन्न करता है।

पाचन तन्त्र के दूषित हो जाने पर जिस प्रकार शरीर में अगणित बीमारियाँ उपजती हैं इसी प्रकार मनुष्य का भावना स्तर गिर जाने से संसार में अगणित आपत्तियाँ आती हैं। तात्कालिक उपचार के रूप में सामने प्रस्तुत कारणों को दूर करने या अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था का होना आवश्यक है पर इससे स्थायी हल नहीं निकल सकता। आत्मिक दुर्भावनाओं की बढ़ोत्तरी से इस स्वर्ग जैसी दुनिया को नरक के रूप में परिणित किया है। यदि इन परिस्थितियों को हटाकर सुख-शान्ति, प्रगति और सुरक्षा का वातावरण उत्पन्न करना हो तो उस कारण को हटाना पड़ेगा, जिसके कारण विपत्तियों का आक्रमण होता है। दुर्बुद्धि के हटाये बिना मानव जीवन में प्रस्तुत किसी भी कठिनाई का स्थायी हल न हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस संसार की रचना ऐसी नहीं कि मनुष्य जो कुछ चाहे वही मिल जाय। योग्यता, श्रम और परिस्थितियों पर बहुत कुछ निर्भर रहता है। अगणित आकांक्षाओं में से मुट्ठी भर भी तो पूरी नहीं हो पातीं। स्थिति और इच्छा के बीच सामंजस्य जोड़ कर, तालमेल मिला कर, समझौते की लचकीली नीति अपनाते हुये जिन्दगी के दिन पूरे करने पड़ते हैं। जो अपनी आकांक्षाओं के प्रति अत्यधिक आतुर हैं उनके लिये इस संसार में केवल असफलता, खिन्नता और निराशा जैसा ही अनुभव होता रहेगा। ऐसे लोगों को असन्तोष, चिन्ता, द्वेष और लोभ की आग में जलते हुए ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कमी, शिकायत, परेशानी, निन्दा और निराशा की ही चर्चा ऐसे लोगों की जवान पर चढ़ी रहेगी। मनोभूमि की गन्दगी उन्हें चारों ओर दुर्गन्ध उठने जैसा ही अनुभव कराती रहेगी।

इसके विपरीत जिन्होंने अपने मन को सुसंस्कृत बना लिया है। वे जानते हैं कि अभाव के लिये दुःखी रहने की अपेक्षा जो प्राप्त है, उसका सदुपयोग करना और आनन्द लेना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है। उन्नति का प्रयत्न किया जाय यह उत्तम है, पर इसके लिए इसकी क्या आवश्यकता है कि जो प्राप्त है उसे तुच्छ और क्षणिक समझा जाय ? समस्याएँ एक तरीके से नहीं सुलझतीं तो उन्हें दूसरे, तीसरे या चौथे तरीके से सुलझाना चाहिए। जैसा हम चाहते हैं वैसी ही परिस्थितियाँ बनें यह आग्रह अनुचित है। परिस्थितियों के अनुभव से दूसरी तरह के हल सोच लेने की दूरदर्शिता जिनमें रहती है, वे खिन्नता और निराशा को नहीं अपनाते। परिस्थितियों के अनुसार अपने को बदल और ढाल लेते हैं।

संसार की समस्त परिस्थितियाँ अपने अनुकूल बन जायें, जो हम चाहते हैं वह प्राप्त हो जाय, यह मान कर चलने वालों को दुःख, निराशा और असफलता का ही पग-पग पर सामना करना पड़ता है। दूसरे लोग, यहाँ तक कि भाग्य और ईश्वर भी उन्हें दुश्मन दीखते हैं। पर ईश्वर की इच्छा से अपनी इच्छा मिलाकर, संसार को नाट्यशाला मानकर अपना अभिनय उत्साहपूर्वक करते रहने में जिन्हें प्रसन्नता होती है, उनके लिये यहाँ सब कुछ शान्ति और सन्तोषदायक ही प्रतीत होता है। दुनिया में बिखरे हुये काँटे नहीं बीने जा सकते, वे तो बिखरे ही रहेंगे। अपने पैरों में जूते पहनकर उन काँटों से बचाव हो सकता है। अपने को बदल लेने से यहाँ सब कुछ ही बदल जाता है। दुःख और असन्तोष के स्थान पर पलक मारते-मारते सुख और सन्तोष की स्थिति बन जाती है।

मानसिक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली अगणित चिन्ता और वेदनाओं का एक ही समाधान है, अपने दृष्टिकोण में आवश्यक सुधार करना। आत्मनिर्माण के लिये, पुनर्निर्माण के लिये इसी आवश्यकता को ही सर्वोपरि माना गया है।

आरोग्य रक्षा कैसे सम्भव हो ?

रोग न तो स्वाभाविक हैं और न ईश्वर प्रदत्त। बीमारी के लिये किन्हीं दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। प्रकृति की नियत मर्यादाओं का उल्लंघन करते रहना ही रोगों का एकमात्र कारण होता है। अन्न, फल, दूध जैसे स्वाभाविक पदार्थ, बिना बहुत जलाये-भूने यदि प्राकृतिक रूप में लिये जाते रहें, कड़ी भूख लगने पर आधा पेट भोजन, एक चौथाई जल, एक चौथाई हवा की गुंजायश रखते हुए उचित मात्रा में, नियत समय तक ही ग्रहण करें तो अपच का प्रश्न ही उत्पन्न न हो। अपच न होगा तो रक्त दूषित होने से लेकर जीवनी-शक्ति कम पड़ने तक कोई भी बीमारी होने का प्रश्न ही न उठे। समय-कुसमय, भूख से अधिक मात्रा में, बिना चबाये, मिर्च-मसालों से सराबोर, तेल-घी में भून, जलाकर स्वत्वहीन पदार्थ खाने से पेट खराब होता है और पाचन क्रिया ठीक न होने पर दुर्बलता तथा बीमारियाँ जोर पकड़ने लगती हैं।

ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करने से शरीर की जीवनी-शक्ति घटती है और भीतर ही भीतर खोखला हुये शरीर पर कोई भी रोग कभी भी आक्रमण कर सकता है। दीपक में तेल-बत्ती ठीक होने पर भी यदि उसे तेज हवा में रख दिया जाय, तो वह असमय ही बुझ जाता है। इसी प्रकार दीर्घ-जीवन की सभी संभावनाओं से युक्त मानव-शरीर भी असंयम, विलासिता, अव्यवस्था और अनियमितता के झोंके लगने पर अकाल मृत्यु का ग्रास बन सकता है। व्यसन और व्यभिचार दीर्घ-जीवन के शत्रु हैं। चिन्ता, क्रोध, द्वेष और विक्षोभों से भरा हुआ मन शरीर की नस-नाड़ियों को चकमका कर रख देता है। अशान्ति और उद्वेगों के कारण आरोग्य पर भारी कुप्रभाव पड़ता है और सब सुख-सुविधाओं के होते हुये भी मनुष्य अपनी काया को तेजी से घुलाता चला जाता है।

बीमारियाँ कमजोर शरीर पर ही हमला करती हैं। जिस रक्त में जीवन-तत्व समुचित मात्रा में मौजूद हैं, वह रोग उत्पन्न करने वाली बाह्य परिस्थितियों का सहज ही मुकाबला कर सकता है। शुद्ध रक्त पर सर्प का विष तक असर नहीं करता। रोग कीटाणुओं की छूत उन्हें ही लगती है, जिनके रक्त में पहले से ही अशुद्धता भरी हो। बाहरी सफाई या बचाव की भरपूर व्यवस्था रखने पर भी भीतरी कमजोरी या खराबी किसी भी रोग का रूप धारण करके फूट पड़ सकती है। स्वास्थ्य की समस्या का समाधान औषधियों से सम्भव नहीं। चिकित्सक सामयिक कष्टों को दूर कर सकते हैं, उफनते हुये वेग को रोक सकते हैं, पर आहार-विहार की उपेक्षा करते रहने पर वे भी कमजोरी या बीमारी की जड़ काट सकें, यह उनके बस-बूते की बात नहीं है। असंयमी मनुष्य कुपथ्य करके किसी न किसी बीमारी को निमंत्रित करते ही रहते हैं। बेचारी दवाएँ कहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक बचाव कर सकती हैं। असंयम का कुल्हाड़ा यदि आरोग्य की जड़ निरन्तर काटता ही रहे तो बाह्य उपचार का पत्ते सींचने जैसा प्रयत्न क्या उपयोगी सिद्ध होगा ?

शरीर के कल-पुर्जे भगवान ने ऐसे सुन्दर ढंग से बनाये हैं कि सदुपयोग करने वाले के लिए उनमें बिगाड़ उत्पन्न होने का कोई खतरा नहीं हो सकता। दुरुपयोग करने से तो पत्थर और लोहा भी टूटने-फूटने लगता है फिर बेचारे शरीर की तो बिसात ही क्या है। हम नीरोग तो रहना चाहते हैं, दीर्घजीवी होने की भी इच्छा करते हैं पर इसका मूल्य चुकाने से कतराते हैं। असंयम बरतते हैं और आरोग्य चाहते हैं, यह तो बबूल बोकर आम पाने की इच्छा जैसी ही बात हुई। यह नीति अपनाने पर यदि असफलता मिलती है तो किसी दूसरे को दोष देने से काम न चलेगा। अपना सुधार—अपनी आदतों और प्रवृत्तियों का सुधार ही आरोग्य रक्षा का एकमात्र उपाय है। जिसने यह जान लिया और मान लिया वह अपना धन्वन्तरि आप ही है। उसे आरोग्य सम्बन्धी शिकायत कभी किसी से न करनी पड़ेगी। खोया हुआ स्वास्थ्य पुनः सँभालना इसी सुधार पर निर्भर रहता है। जो चाहे सो प्रयोग करके इस तथ्य की सचाई को प्रसन्नतापूर्वक परख सकता है। अपना, अपने मन का सुधार ही जीवन की हर समस्या को सुधारने का एकमात्र उपाय है।

अनेक समस्याएँ—एक हल

जीवन के किसी भी क्षेत्र की, किसी भी समस्या को लिया जाय तो उसकी जड़ यही मिलेगी कि मनुष्य का भावना स्तर नीचा रहने से वहाँ अनेकों विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं और उनका तब तक कोई स्थायी हल नहीं निकल सकता जब तक कि वास्तविक कारण में सुधार न किया जाय। जड़ को सींचे बिना पत्ते हरे नहीं हो सकते। व्यक्तित्व का सुधार, निर्माण एवं विकास किये बिना प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही पड़ा रहेगा।

जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तीयता, विभाजन, फूट, गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, गन्दगी, भ्रष्टाचार, अपराध, व्यभिचार, आलस, धोखा-धड़ी, बेईमानी, असुरक्षा, वर्ग-संघर्ष, असमानता, पिछड़ापन, दहेज, पर्दा, बाल-विवाह, नशा, माँसी, जैसी अगणित समस्याएँ देश में फैली पड़ी हैं। इन्हें हल करने के लिए विविध-विधि सरकारी और गैर सरकारी प्रयत्न चलते हैं, उन्हें चलना भी चाहिए। परन्तु यह पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि इनका वास्तविक हल मानवीय अन्तःकरण का स्तर ऊँचा उठने से ही सम्भव हो सकेगा। सब समस्याओं की जड़ मनुष्य के मन में रहने वाली दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, उनके रुकने, सुधारने और बदलने से सब कुछ सहज ही बदल और सुधर सकता है। यदि यह न हो सका तो समस्याएँ स्वरूप बदलती रहेंगी, एक ओर से रुकती और दूसरी ओर फूटती रहेंगी। शरीर में विष भरा हो तो वह किसी बीमारी का बहाना लेकर बार-बार प्रकट होता ही रहेगा। एक रोग की दवा की जाय तो उसके अच्छा होते-होते दूसरा नया रोग उठ खड़ा होगा। रक्त शुद्धि से ही सब बीमारियाँ मिटती हैं। इस प्रकार मन की शुद्धि से समाज में फैले हुए अगणित पाप-तापों का समाधान सम्भव होता है।

जिस प्रकार अच्छा बीज, उर्वर जमीन और उचित खाद-पानी पाकर ठीक तरह बढ़ता और फलता-फूलता है, उसी तरह जीवन के खेत में सद्गुणों के बीज उचित पुरुषार्थ की अनुकूल परिस्थितियों का खाद-पानी पाकर विभूतियों एवं समृद्धियों से पल्लवित, पुष्पित और फलित होते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियों के होते हुए भी दीनता एवं हीनता से ऊपर नहीं उठ पाते। दुर्भाग्य उन्हें जीवन सहचर की तरह हर जगह घेरे-घेरे ही फिरता रहता है। इसलिये जीवन विकास की बात सोचने के साथ-साथ ही हमें यह भी सोचना चाहिए कि व्यक्तित्व का सुसन्तुलित निर्माण करने की दिशा में आवश्यक प्रयत्न किये जाते रहें।

यह सोचना गलत है कि किसी भी तरीके से धन कमा लेने और मनमाना खर्च करने की सुविधा रहे तो बस फिर आनन्द ही आनन्द रहेगा। सच बात यह है कि दुर्गुणी व्यक्तियों के पास यदि धन बढ़े भी तो इससे उनके लिये अगणित समस्याएँ तथा चिन्ताएँ उत्पन्न होंगी। धन का सच्चा लाभ सदुपयोग से मिलता है और ऐसा सदुपयोग केवल सत्प्रकृति के व्यक्तियों से ही सम्भव होता है।

आये दिन ऐसी घटनायें देखने और सुनने में आती रहती हैं कि धन-सम्पत्ति की छीन-झपट के प्रश्न को लेकर सम्पन्न परिवारों में फौजदारी, मुकदमेबाजी, शत्रुता एवं हत्या-डकैती की दुर्घटनाएँ घटित होती हैं। लड़के कुपात्र निकल जाते हैं और जुआ, शराब, व्यभिचार एवं अनेक प्रकार के व्यसनों में पूर्वजों की कमाई को उड़ा डालते हैं। अत्यधिक कमाने की तृष्णा में संलग्न व्यक्ति समय-कुसमय का, आराम-विश्राम का ध्यान छोड़कर दिन-रात बेतरह जुटे रहते हैं और अपने स्वास्थ्य को खराब कर लेते हैं। लोभवश बेईमानी करके कितने ही व्यक्ति लोकनिन्दा और परलोक में पाप के भागी बनते हैं। इस प्रकार के अनेकों और दुःख उन लोगों को सहन करने पड़ते हैं, जिनके पास धन तो है पर उसका सदुपयोग कर सकने लायक सद्बुद्धि नहीं है।

धन, शिक्षा, शिल्प, कौशल, पद, यश आदि विभूतियों का उपार्जन, मन को लक्ष्य में तत्परतापूर्वक संलग्न करने, परिश्रम से प्रेम करने, समय फालतू न गँवाने, चित्त को अपने अभीष्ट विषय में लगाये रहने से ही सम्भव होता है। अपने अभीसिप्त विषय पर जिसका जितना मन लगेगा, उसके लिए जितना श्रम किया जायेगा उतनी ही सफलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलेगी। परोपकार के श्रेष्ठ सत्कर्म कर सकना, यश और पुण्य कमाना भी उन्हीं के लिये सम्भव होता है जिनकी मनोभावनायें पूरी तरह उस लक्ष्य में तन्मय रहती हैं।

ईश्वर प्राप्ति और आध्यात्मिक लक्ष्य की पूर्ति केवल वे लोग कर पाते हैं जो अपनी मनोभूमि को प्रयत्नपूर्वक दैवी गुणों से सुसज्जित और आसुरी वृत्तियों से रहित करने में प्राणपण से संलग्न होते हैं। जिन्होंने इस प्रकार आत्मनिग्रह की उपेक्षा की, दोष-दुर्गुणों के सुधारने की अपेक्षा करके केवल थोड़ा पूजा-पाठ करना ही पर्याप्त समझा—उनके लिये उस महान लक्ष्य की प्राप्ति कभी सम्भव नहीं होती।

प्रगति की दिशायें अनेक हैं, अनेक क्षेत्रों में जीवन बँटा हुआ है, पर उन सबका उचित विकास ऐसे स्वभाव की अपेक्षा रखता है जिसके कारण प्रतिकूलतायें, अनुकूलताओं के रूप में परिवर्तित होती रहें। साधन-सामग्री की आवश्यकता सभी लोग अनुभव करते हैं और इन्हें प्राप्त करने के लिए जो सम्भव होता है सो करते भी हैं। पर इस तथ्य की उपेक्षा ही होती रहती है कि सत्प्रवृत्तियों के फलस्वरूप ही स्थायी सुख-शान्ति के साधन उपलब्ध होते हैं। जितना प्रयत्न बाह्य साधनों को जुटाने में किया जाता है उतना ही यदि आत्मनिर्माण के लिये भी किया जाने लगे तो प्रगति की सम्भावना हजारों गुनी अधिक बढ़ सकती है।

जो भीतर होता है वही बाहर प्रस्तुत रहता है। हम अपने अन्तःकरण को दैवी सम्पत्तियों से सुसज्जित करें तो कोई कारण नहीं कि बाह्य जीवन में सुख-शान्ति की समृद्धि और सिद्धि-विभूति की प्रचुरता से वंचित रहना पड़े।

यह आवश्यक है उपेक्षणीय नहीं

आत्मिक प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण बना रहे इसके लिए यह आवश्यक है कि दुष्टता की प्रवृत्तियों का शमन करने के लिए हम प्रयत्नशील रहें। उपेक्षा करने से तो विपत्ति और भी बढ़ेगी। अनीति पर यदि अंकुश न रहे, दुष्टता पर यदि नियन्त्रण न रहे तो वह दिन-दूनी रात-चौगुनी गति से अपना विस्तार करेगी। इसलिए मानव-समाज में बढ़ती जाने वाली दुष्प्रवृत्तियों की ओर से आँखें मूँद कर नहीं बैठे रहना चाहिए। अन्यथा संसार में जो पाप-ताप की ज्वालायें बढ़ेंगी, उनकी चपेट में अपना छप्पर भी आये बिना न रहेगा। दूषित वातावरण में अच्छे व्यक्ति की भी शान्ति सुरक्षित नहीं रहती।

अपनी व्यक्तिगत सुख-शान्ति एवं सुरक्षा की दृष्टि से भी विचार करें तो आवश्यक प्रतीत होगा कि व्यापक क्षेत्र में फैली हुई बुराइयों के प्रतिरोध के लिए समुचित ध्यान रखा जाय और कुछ काम किया जाय। युग-निर्माण की बात केवल पुण्य-परमार्थ की दृष्टि से नहीं, स्वार्थ की, सुरक्षा की बात ध्यान रख कर भी सोचनी चाहिए। मुहल्ले में व्यापक व्यभिचार फैला हो तो उसकी चर्चा और प्रेरणा से अपने घर के लड़के-लड़कियों पर भी बुरा प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। स्कूल में बच्चे गन्दी गाली दें तथा दूसरी बुरी आदतों में लिप्त हों तो अपना बच्चा भी वहाँ से उन बुराइयों को सीख कर आयेगा। चोर-उठाईगीरों की संख्या अपने क्षेत्र में बढ़ेगी तो किसी दिन अपने कपड़े, बर्तनों के उठ जाने का भी अवसर आ ही सकता है।

वातावरण में फैली हुई विचारधारायें और बुराइयाँ हवा और सर्दी-गर्मी की तरह अपने ऊपर भी आक्रमण करती हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि बुराइयों से अपने बचाव का मोर्चा छोटा न रखा जाय। घर में ही सब कुछ बचाव नहीं हो सकता, बाहरी परिस्थितियों को बिगड़ने न देने के लिए भी प्रयत्न करना आवश्यक है। युग निर्माण योजना के अन्तर्गत समाज-सुधार पर जो अधिक जोर दिया जाता है इसका कारण परमार्थ तो है ही, विश्वशान्ति, जन-कल्याण और सामूहिक प्रगति का लक्ष्य तो है ही, पर साथ ही यह तथ्य भी सन्निहित है कि हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ तो तभी सुरक्षित रह सकेंगे जब समाज का वातावरण उत्कृष्ट विचारधाराओं से प्रभावित हो।

जिधर भी दृष्टि पसार कर देखते हैं, इस सुन्दर सुसज्जित दुनिया में एक ही कमी दीखती है—उच्च भावनाओं, उदारता, आत्मीयता एवं कर्तव्यनिष्ठा की। इस अभाव के कारण परमात्मा की यह सुन्दर कृति, वसुधा-मरघट-सी डरावनी और नरक-सी वीभत्स दीखती है। अविश्वास, सन्देह, आशंका और विपत्ति की घटायें ही चारों ओर घुमड़ती दिखती हैं। यह सब कुछ विकसित और गतिशील दीखता है पर एक ही वस्तु मूर्छित, निर्जीव, पतनोन्मुख एवं मुरझाई दीखती है, वह है—मनुष्य की अन्तरात्मा। इसी की उपेक्षा सबसे अधिक हो रही है। सब कुछ बढ़ाने की योजनायें बन रही हैं पर मनुष्यत्व का, चरित्र और आदर्शवाद का भी उत्कर्ष हो इसकी न तो आवश्यकता समझी जाती है और न चेष्टा की जाती है। कहने-सुनने की, लिखने-बाँचने की परिधि में जहाँ-तहाँ कुछ किया भी जा रहा है, पर उसके पीछे कोई ठोस पृष्ठभूमि न होने से वह भी एक मनोविनोद मात्र बनकर रह जाता है।

दुःख इस बात का है कि—इस संसार की—इस मानव-जीवन की—सबसे प्रमुख, सबसे महत्वपूर्ण, सबसे आवश्यक सबसे उपयोगी समस्या—सद्भावनाओं की अभिवृद्धि के लिए हम कोई ठोस आधार क्यों नहीं ढूँढ़ते ? उसके लिए ठोस प्रयत्न क्यों नहीं करते ?

रामायण-काल पर दृष्टिपात करते हैं तो राम, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, हनुमान, जटायु आदि के आदर्शवाद को ही उस स्वर्गीय आनन्द को उत्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हुए पाते हैं, जिसके स्मरण मात्र से हम आज भी पुलकित और भाव विभोर हो जाते हैं। यदि इन महापुरुषों ने ऊँचे आदर्शवाद का परिचय न दिया होता, हर एक ने अपने-अपने संकुचित स्वार्थ की दृष्टि से सोचा होता तो राज-घरानों में होते रहने वाले षड़यन्त्रों से बढ़कर वहाँ और कोई विशेषता दृष्टिगोचर न होती। अपने माता-पिता की प्रसन्नता के लिए रामचन्द्रजी ने जिस प्रकार का उदार दृष्टिकोण रखा, उससे आज तक बच्चों को मातृ-पितृ भक्ति की शिक्षा मिल रही है। लक्ष्मण और भरत का भ्रातृ प्रेम, कौशल्या और सुमित्रा का अपने बच्चों को सन्मार्ग पर कष्ट उठाने के लिए प्रोत्साहन, सीता का पतिव्रत, उर्मिला का अपने पति के आदर्शवादी बनने का सन्तोष, हनुमान का न्यायपक्ष के लिए अपना जीवन दान करना, जटायु जैसे दुर्बल पक्षी का अन्याय से संघर्ष करते हुए प्राण देना आदि कतिपय महानताएँ ऐसी हैं जिनके होने से ही रामायण, रामायण कहला सकने योग्य बनी है।

सभ्य समाज की रचना इस आदर्शवाद को हृदयंगम करने से ही सम्भव हो सकती है, जिसे हमारे पूर्व पुरुषों ने बड़ी श्रद्धा, भावना के साथ अपने जीवन का लक्ष्य बनाये रखा था। हो सकता है कि महानता के मार्ग पर चलते हुए किसी को कष्ट और कठिनाइयों की अग्नि परीक्षा में होकर गुजरना पड़े, पर उसे आत्मिक-शान्ति और कर्तव्य-पालन की प्रसन्नता हर घड़ी बनी रहती है। इस मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति को असुविधा हो सकती है पर समाज का विकास इसी त्याग और बलिदान के ऊपर निर्भर रहता है। चरित्रवान व्यक्ति ही किसी समाज की सच्ची सम्पत्ति होते हैं। हम अतीत काल में विश्व के सुदृढ़ आदर्शवाद के आधार पर ही हो रहे हैं। अतः जबकि हम अपनी उस पुरानी महानता और उज्ज्वल परम्परा को पुनः लौटाने चले हैं तो हमें आदर्शवाद का ही अवलम्बन करना होगा। धैर्य और कर्तव्य को दृढ़तापूर्वक जीवन में धारण करना पड़ेगा।

हमें प्रतीक्षा है उस समय की जबकि लोग आपस में ऐसे व्यवहार रखेंगे जैसे प्राचीन भारत में रखे जाते थे। माँ-बाप, भाई-बहन, भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहू, स्त्री-पुरुष, स्वजन-सम्बन्धी, बन्ध-बान्धुओं के बीच ऐसे प्रचुर एवं प्रेमपूर्ण सम्बन्ध होंगे, जिन्हें देखकर देवता भी ईर्षा करें। पुरुष स्त्रियों के प्रति, स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति अत्यन्त ही पवित्र भावनाएँ रखा करेंगे। व्यापारी और ग्राहक के बीच उचित मुनाफे पर ठीक वस्तुओं का ईमानदारी के साथ क्रय-विक्रय होगा। मजदूर पूरा काम करने में और मालिक पूरी मजदूरी देने में कसर न रखेंगे। आलस्य को, काम से जी चुराने को मानवीय अपराध समझा जायगा और हर आदमी पसीना बहाये बिना रोटी खाना पसन्द न करेगा। मनुष्य परस्पर सहिष्णु, सहनशील, एक दूसरे की स्थिति और कठिनाई को समझने वाले तथा उदार व्यवहार करने वाले होंगे। छल, चोरी, व्यभिचार, बेईमानी, दगाबाजी, विश्वासघात, अनीति, अन्याय आदि से लोग वैसी ही घृणा करेंगे जैसे अखाद्य और अभक्ष को भूखा रहने पर भी कोई नहीं खाता। संयम, सदाचार और नियमित जीवन के कारण सब लोग नीरोग और दीर्घजीवी रहेंगे। सन्तोषी और परिश्रमी होने के कारण उन्हें किसी बात का घाटा न रहेगा। परस्पर स्नेह और सद्भावों के कारण आपसी व्यवहार स्वर्गीय जैसे मधुर हो जावेंगे।

अगणित समस्याएँ और उनके हल

बात आश्चर्य की-सी लगती है कि सुविधा-साधनों से भरापूरा, बुद्धिमान, सुरक्षा-साधनों से सम्पन्न मनुष्य अनेकानेक समस्याओं से घिरा हुआ क्यों रहता है ? जबकि पशु-पक्षी कुदकते-फुदकते आनन्द भरा जीवन जी लेते हैं, तो मनुष्य पर ही क्या विपत्ति आई, जिसके कारण वह जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ा हुआ और संकटग्रस्त दीख पड़ता है ?

शारीरिक दृष्टि से वह पिछली पीढ़ियों की तुलना में अधिक दुर्बल और रुग्ण होता चला जाता है। बीमारियाँ पीछा नहीं छोड़तीं। अपच और जुकाम से बचा हुआ तो कोई विरला ही दीखता है। गहरी नींद, कड़ाके की भूख का आनन्द तो कदाचित् ही किसी को आता होगा।

मानसिक क्षेत्र में उसकी उद्विग्नता का ठिकाना नहीं; चिन्ताएँ, उद्विग्नताएँ, महत्वाकांक्षाएँ, ईर्ष्या, द्वेष, लालच, तृष्णा आदि से मस्तिष्क को बचाकर जो हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सके, ऐसा कदाचित् ही कोई भाग्यवान दीख पड़े। मनोविकारों में कामुकता, सम्पन्नता, विलासिता, प्रतिद्वन्द्विता, अपराध, अनाचार की ओर धकेलने वाले दुष्प्रवृत्तियों ने कदाचित् ही किसी का मस्तिष्क अछूता छोड़ा हो। तनाव, सनक और अर्द्धविक्षिप्तता हर किसी के सिर पर चढ़ी रहती है। हँसती-हँसाती, खिलती-खिलाती जिन्दगी जो लोग जी रहे हैं, ऐसे भाग्यवान अँगुलियों पर ही गिने जा सकते हैं।

आर्थिक तंगी में महँगाई और बेरोजगारी तो कारण हैं ही, जो काम धन्धे में लगे हैं, 'ऊपर की आमदनी' भी कर लेते हैं, उन्हें अपव्यय और दुर्व्यसनों की लत इस प्रकार पड़ गई है कि वे भी सदा पैसों की तंगी अनुभव करते रहते हैं। कर्ज लेते और चतुरता के, छल-छद्म के इतने चित्र-विचित्र तरीके अपनाते हैं कि आश्चर्य होता है। फिर भी वे पैसे की रट लगाये ही रहते हैं। जो पास में है, जो सहज उपलब्ध होता है, उससे उनका समाधान ही नहीं होता।

परिवार कदाचित् ही हिलमिल कर रहते हों। सदस्यगण पूर्ण संतुष्ट रहते हों, ईर्ष्या-द्वेष और मनोमालिन्य की भरमार न हो, किसी को किसी से शिकायत न हो, जब इतना तालमेल तक नहीं बैठ पाता, तो वे एक-दूसरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सहायता में योगदान दे सकें, ऐसा कैसे बन पड़े ? उत्तराधिकार में छीना-झपटी बनी ही रहती है। बड़ों की अवज्ञा की, छोटों की उपेक्षा की शिकायत बनी ही रहती है। ऐसी दशा में 'घर में स्वर्ग अवतरित होने' की उक्ति किस प्रकार कहाँ सार्थक हो। जिसका जितना बड़ा परिवार है उसे उतनी ही चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। रोजगार, दाम्पत्य जीवन में तालमेल, दुर्व्यसन और कुसंग बचाव, हारी-बीमारी, परस्पर कलह की समस्याएँ घर में ही इतनी अधिक होती हैं कि उनके सामने व्यापारिक, सामाजिक उतार-चढ़ावों के प्रश्न पीछे पड़ जाते हैं।

समाज में सहकार-सद्भाव के नाम पर उथला उल्लू बनाने वाला चापलूसी शिष्टाचार ही शेष रह गया है। मित्र बन कर शत्रु के काम करने की आदत अधिकांश लोगों की पड़ गई है। किसी को उधार देना उनके साथ सदा के लिए सम्बन्ध तोड़ लेना है। परिवार के सदस्यों तक से जब किसी को किसी से कोई आशा नहीं तो बाहर वाले लोगों से तो कुछ अपेक्षा कैसे की जा सकती है। यहाँ तक कि सत्परामर्श तक की नहीं।

लोक व्यवहार में कुरीतियाँ इतनी अधिक हैं कि भलमनसाहत का जीवन दुर्लभ हो रहा है। विवाह-शादियों में लेन-देन, धूम-धाम का जो दबाव पड़ता है, उससे घर की आर्थिक स्थिति बुरी तरह लड़खड़ा जाती है। शिक्षा कितनी महँगी और खर्चीली है, इसे बच्चों को पढ़ाने वाले भुक्तभोगी ही जानते हैं। जिनके साथ भी घनिष्ठता बनायी जाय, वही जेब पर हाथ साफ करता है। चिकित्सा अब इतनी महँगी हो गई है कि मामूली-से दुःख-दर्द में सैंकड़ों, हजारों का बजट बैठता है। बाजार से ठीक दाम पर ठीक चीज खरीद सकना किसी असाधारण चतुर का ही काम है, अन्यथा दुकानदारों से निपटना एक अन्य टेढ़ी खीर है। पुलिस, न्यायालयों में फरियाद करने पर वर्षों तक कोई सुनवाई नहीं होती।

धर्म के नाम पर भ्रम-जंजाल और लूट-खसोट का ही व्यवसाय चलता है। धूर्त और मूर्ख का एक जोड़ा उस क्षेत्र में बन गया है कि मूर्ख थोड़ा खर्च करके मनचाही मनोकामनाएँ पूरी करने की फिराक में रहता है और धूर्त के चंगुल में जो कोई भावुक प्रकृति का फँस जाय, उसकी हजामत उलटे उस्तरे से बनाता है। दृष्टि पसार कर जिधर भी देखा जाय पाखण्ड और विडम्बना की तूती बोल रही है। सीधी और सही बात कहने वालों को कोई टके सेर नहीं पूछता। असली भगवान और असली धर्म-अध्यात्म तत्वज्ञान का स्वरूप समझाने वाले तक दृष्टिगोचर नहीं होते। उस क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को भटकाव ही हाथ लगता है।

हर स्तर के अपराध आकाश चूम रहे हैं। माँसाहार और मद्यपान अब प्रगतिशीलता के, बड़प्पन के चिन्ह बन गये हैं। छल-प्रपंच तो एक प्रकार का प्रचलन है। लूट, डकैती, हत्या जैसे कुकृत्य संगठित व्यवसाय बन गये हैं। पैसे देकर किसी भी निर्दोष की रास्ता चलते नृशंस हत्या करायी जा सकती है। व्यभिचार, गर्भपात, तलाक के बढ़ते हुए उभार ने दाम्पत्य जीवन की पवित्रता, वफादारी और निष्ठा मटियामेट कर दी है। इस सम्बन्ध में पुरुष ही अग्रगामी हैं; पर दंड कुचक्र में फँसी महिलाओं को सहना पड़ता है।

मनुष्य, जिसे ईश्वर का युवराज, ज्येष्ठ पुत्र कहा जाता था, जिसकी आत्मा में परमात्मा की ज्योति जलती थी, जो आत्मकल्याण और लोकमंगल की प्रतिज्ञाएँ लेकर आया था, जिसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष विभूतियों के भण्डार भरे पड़े बताये जाते हैं, जो अपनी नाव में बिठाकर असंख्यों को पार उतारने में समर्थ है, उसकी यह दयनीय, खेदजनक और विस्मयभरी स्थिति कैसे बन गई ? साधनों से, संसार में कुबेर के भण्डार भरे पड़े है; पर असंख्यों को आधे पेट क्यों सोना और अकाल मृत्यु क्यों मरना पड़ता है ? यह विडम्बनाएँ ऐसी हैं, जिनका कारण ढूँढ़ने में असमंजस होता है। समर्थ पर असमर्थता का घेरा क्यों ? प्रतिभावान पर पतन और पराभव का आक्रमण किसलिए ?

इस प्रकार से असंख्य गुत्थियों से घिरे सृष्टि के मुकुटमणि मनुष्य की अन्तरंग और बहिरंग दुर्दशा देखकर चकित रह जाना पड़ता है कि कबीर की उलटवाँसी जैसी असंभव के साथ जुड़ा हुआ संभव किस प्रकार इतना प्रबल हो रहा है ? संसार की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति इस प्रकार निकृष्टता के दलदल में फँसकर आत्महत्या करने जैसी स्थिति की दशा में क्यों दौड़ रही है ?

अनेकानेक विपत्तियों का एक कारण है—आस्था का उल्लंघन, मर्यादाओं का व्यतिरेक। इस सृष्टि के सभी प्राणी अपनी-अपनी निर्धारित क्रम-व्यवस्था के अनुकूल आचरण करते हैं और उस अनुशासन निर्वाह के फलस्वरूप जीवन को सरलतापूर्वक जीते और उपलब्ध परिस्थितियों में मोद मनाते हैं। प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था सभी जीवधारियों के लिए की है। मनुष्य को तो वरिष्ठ होने के कारण उसने कुछ अतिरिक्त ही दिया है, कोताही नहीं की।

वर्जनाओं का उल्लंघन ही इस बात का दण्ड है कि वह दुःख भोगे और अशांत, उद्विग्न रहे। संयम अपनाने पर इन सभी विभीषिकाओं से बच सकता है, जो आये दिन हैरानी में डालती और चित्र-विचित्र व्यथाएँ सहने के लिए विवश करती हैं।

सभी प्राणी अपना नियत आहार करते हैं। शाकाहारी घास-पात पर गुजारा करते हैं और माँसाहारी अपने पेट, दाँत, नख आदि के अनुरूप माँस खाते हैं। किसी को पकाने की जरूरत नहीं पड़ती। पेट भर जाने पर वे स्वाद वश अतिरिक्त ठूँसने का प्रयत्न नहीं करते। सिंह पेट भरा होने पर उसे पचाने के लिए पड़ा रहता है। पास में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेकों हिरन, सुअर आदि घूमते रहते हैं किसी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। गाय को माँस खिलाया जाय तो भूखी मर जाने पर भी उस अखाद्य का भक्षण न करेगी। कुत्ता बीमार होता है तो मिली हुई रोटी को कहीं अन्यत्र पंजों से गड्ढा खोद कर बाद के लिए छिपा आता है; पर मनुष्य है जो पेट द्वारा भूख की तीखी माँग होने की अपेक्षा किये बिना स्वादवश मनचाही वस्तुएँ उदरस्थ करता है। यह नहीं सोचता कि पेट की माँग है या नहीं, उसकी स्थिति पचाने की है या नहीं। जायकों पर मन लहराता है और जो भी चटोरेपन की पूर्ति करने के लिए मिलता है, उसे खाता रहता है। यह पेट पर प्रत्यक्ष अत्याचार है। जानवरों पर उतना ही बोझ लादा जाता है, जितना वे ले चलने में समर्थ हैं। इससे अधिक लादने पर वे अशक्त, घायल होते और समय से पूर्व ही मर जाते हैं। यह दया-भाव, विवेक-आचरण, न्याय-निर्वाह यदि पेट के साथ भी चलता रहे तो किसी को भी बीमार न पड़ना पड़े, पेट विद्रोह पर उतारू न हो, अपच के कारण उनमें विषों की उत्पत्ति न हो और उसके कारण भीतरी अवयवों का गलना शुरू न हो, रक्त में विकृति भर जाने पर जहाँ-तहाँ रोगों का उभार देखने को न मिले। सूजन, दर्द, व्रण आदि और कुछ नहीं, पेट पर किये गये अत्याचारों के ही प्रतिफल हैं। विषाक्तता जहाँ भी रुक जाती है, वहीं बीमारियाँ उत्पन्न करती है। यदि हम पेट को मित्र मानें, उसके साथ शत्रु जैसा व्यवहार न करें, तो निश्चय ही हम ८० प्रतिशत रोगों से बचे रहते हैं। इसके लिए बहुत बड़ा रहस्य नही ढूँढ़ना, न कोई बहुमूल्य दवाएँ ही खरीदनी हैं, मात्र इतना भर करना है कि जीभ पर अंकुश लगाना है। विवेक द्वारा सुपाच्य पदार्थों का चयन करना है और पेट का परामर्श मानते हुए उस पर उतना ही बोझ लादना है, जितना वह ले चलने की स्थिति में हो और जितना ले चले। यह बात कुछ भी कठिन नहीं है। अपने ऊपर थोड़ी कड़ाई करके खाने सम्बन्धी बुरी आदतें छोड़ देने और जिह्वा को स्वाद का नहीं, औचित्य का ध्यान रखने भर के लिए सहमत कर लिया जाय तो समझना चाहिए कि शारीरिक कष्टों में से अधिकांश से छुटकारा मिला। रक्त शुद्ध होने की दशा में बाहर के रोगों का आक्रमण भी अधिक समय नहीं ठहरता। शुद्ध रक्त बीमारियों से सहज ही शरीर की रक्षा करता है और जो आक्रमण होते हैं, उनसे सहज ही निपट लेने में समर्थ होता है। शरीर क्षेत्र में आदर्शों का उल्लंघन ही उसे बीमारियों के कुचक्र में फँसाता है।

मानसिक उद्विग्नता भी चिन्तन में अवांछनीयताएँ भर लेने के कारण उत्पन्न होती हैं। 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त मन में गहराई तक बिठा लिया जाय तो व्यक्ति न तो तृष्णाग्रस्त हो, न लालची, अहंकारी। औसत भारतीय स्तर का जीवन इतना खर्चीला नहीं है, जिसे मनुष्य सामान्य श्रम से पूरा न कर सके। स्वभाव में नम्रता और मिलनसारी हो तो अहंकारवश किसी से उलझने की नौबत न आये। दूसरा कोई गरम हो रहा हो तो उसे आवेश ज्वर से ग्रस्त समझकर वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा किसी ज्वर पीड़ित, तपते हुए आदमी को ठंडा पानी पिला कर या पंखा झलकर शांत किया जाता है। अपने को उत्तेजित न होने देना और सामने वाले को स्नेह-सम्मान मिश्रित शैली से तर्क, तथ्य, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए गलतफहमी का समाधान प्रस्तुत कर देने से लड़ाई-झगड़ों की जड़ कट जाती है। झझंटों में प्रायः बड़े स्वार्थ बाधक कम ही होते हैं। अधिकतर गलतफहमियाँ ही काम करती हैं। शान्तचित्त से दूसरे की मान्यता को समझ लिया जाय, उसे प्रेमपूर्वक समझा दिया जाय, तो बात बढ़ती नहीं है। विग्रहों का, मतभेद और मनोमालिन्यों का सहज समाधान निकल आता है। यहाँ इस बात के लिए भी तैयार रहना है कि झंझटों के बढ़ने में अपनी ओर से जो गलती हुई हो, उसे मान लिया जाय और खुले मन से उसे स्वीकार करते हुए भूल के लिए खेद प्रकट कर दिया जाय।

बाहर के लोग अपने दुर्व्यवहार से जितना हैरान हैं, उसमें प्रायः अपने ही कटु वचन या अशिष्ट व्यवहार काम करते हैं। शान्त, सुशील, सभ्य, सौजन्ययुक्त व्यवहार करने के लिए अपने को प्रशिक्षित-अभ्यस्त कर लिया जाय तो कीचड़ में ईंट डालने से छींटें पड़ने की उक्ति चरितार्थ न हो।

मानसिक उद्विग्नताओं में एक बड़ा कारण है अपनी बढ़ी-चढ़ी भौतिक महत्वाकांक्षाएँ। यदि औसत भारतीय स्तर का, संतोषी जीवन जीने तक की इच्छा सीमित कर ली जाय और उस मर्यादा परिसीम्रन के रहते न तो कामुकता की कल्पनाएँ मन को उद्विग्न करें, न कुदृष्टि पनपे और न अपराधी स्तर के कुकृत्य कर बैठने का अवसर आये। ठीक इसी प्रकार बहुत धन संग्रह करने की, सज-धज, ठाट-बाट दिखाने और आतंक जताने का उद्वेग भीतर से न उठे तो मनुष्य सच्चे अर्थों में नीतिनिष्ठ, चरित्रवान बन सकता है और सज्जनों की पंक्ति में अग्रणी रह सकता है। ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिशोध, कुचक्र, षड्यंत्र दूसरों के प्रति परायापन मानने से उठते हैं और उन्हें अकारण नीचा दिखाने के षड्यंत्र रचते हैं; पर यदि सबके प्रति स्नेह, सौजन्य भरी आत्मीयता हो तो इस प्रकार के अनावश्यक, अवांछनीय उद्वेग मन में न उठें।

कर्तव्यपालन में संतोष किया जाय और परिस्थितिवश जिस भी प्रकार गुजारा करने में काम चला लिया जाय तो उद्वेगों के जंजाल में श्रम और शक्ति का अनावश्यक अपव्यय न होगा। गुजारे भर से संतुष्ट रहने के उपरान्त जो सामर्थ्य बचती है, उसे यदि परमार्थ प्रयोजन में लगाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहा जाय तो लोगों के हृदय जीते जा सकते हैं और श्रद्धा भरा सम्मान प्रचुर परिमाण में अर्जित किया जा सकता है।

सज्जनोचित जीवन निर्वाह न तो जटिल है, न कठिन। यदि अपने भीतर सज्जनता, सादगी, मिलनसारी, शिष्टता, उदारता जैसे गुण हों, तो अनायास ही मित्रों की संख्या बढ़ती जायेगी और शत्रुओं के उत्पन्न होने का प्रश्न ही न उठेगा। कोई व्यक्ति एकपक्षीय शत्रुता देर तक चलाता नहीं रह सकता। यदि अपने मन में सद्भावना न सही उपेक्षा भर हो तो शत्रु ठंडे पड़ जाते हैं। आग ईंधन डालने से भड़कती है। शत्रुता का भी यही हाल है। अपनी ओर से छेड़छाड़ न चलती रहे, तो वह स्वाभाविक रूप से शान्त हो जायेगी।

परिस्थितिवश आंशिक उद्वेग जितने उत्पन्न होते हैं, उसकी तुलना में विकृत मनःस्थिति असंख्य गुने विग्रह खड़े करती और मनःक्षेत्र में अशांति भरे आवेश उत्पन्न करती है। अपने से सम्पन्नों के साथ तुलना करने पर हर व्यक्ति अपने को पिछड़ा और दरिद्र अनुभव करता है; किन्तु यदि वह तुलना अपने से छोटों के साथ की जाने लगे तो प्रतीत होगा कि जहाँ हम हजारों से पीछे हैं, वहाँ लाखों से अच्छे-ऊँचे भी हैं। मन को संतोष देने का यही तरीका सर्वोत्तम है। कुविचारों को सद्विचारों से काटा जा सकता है। इच्छाओं की पूर्ति असंभव है। तृष्णाओं का स्वभाव ऐसा है कि वे गहरी खाई की तरह जिन्दगी भर के प्रयत्नों से भी पटती नहीं। जिस प्रकार सुरसा के बढ़े हुए मुँह से हनुमान छोटा रूप बना कर बाहर निकल आये थे, उसी प्रकार तृष्णाओं में मन भटकाने की अपेक्षा यही उत्तम है कि हम भौतिक जीवन की महत्वाकांक्षाओं को सीमित करें और उनके स्थान पर आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं का स्तर बढ़ायें। उनकी पूर्ति भी सरल है और श्रेय भी अधिक। आत्म-परिष्कार का, पुण्य और लोकमंगल के लिए किये गये पुरुषार्थ का परमार्थ हर किसी से बन पड़ सकता है। इच्छा होने पर ऐसे प्रयास आर्थिक कठिनाइयों या व्यस्तताओं के बीच बन सकती है। यह मात्र उत्कंठा का विषय है। अवसर तो हर घड़ी चारों ओर खड़े रहते हैं। जितना श्रम और मनोयोग लिप्सा-लालसाओं में लगाया जाता है, उतना यदि सदुद्देश्यों के निमित्त लगाया जा सके, तो व्यक्ति आत्मसम्मान और लोकसम्मान की दृष्टि से कहीं अधिक ऊँचा उठ सकता है।

स्वार्थी व्यक्ति भले ही अधिक शौक-मौज के साधन जुटा ले; पर उसकी अन्तरात्मा कोसती ही रहती है कि मनुष्य जीवन जैसा सुरदुर्लभ सुयोग पाकर भी पेट-प्रजनन जैसी पशु-प्रवृत्तियों से ऊँचा न उठा जा सका, आगे न बढ़ा जा सका। इस आत्म-प्रताड़ना से बचने का एक ही उपाय है कि आरम्भ में ही भौतिक महत्वाकांक्षाओं की निरर्थकता और लक्ष्य पूर्ति का प्रयोजन सिद्ध करने वाली सत्प्रवृत्तियों का महत्व समझा जाय और जीवनयापन की एक सुनिश्चित रूपरेखा बना ली जाय। उद्देश्यरहित जीवन सदा भटकावों में मारा-मारा फिरता है, जो न करना चाहिए था, वह करता रहता है और जो करना चाहिए था उसे भुला बैठता है। यही मूलभूत कारण मानसिक उद्विग्नता का है। यदि इस प्रलोभन जंजाल से बचा जा सके, तो व्यक्ति हर स्थिति में हँसती-हँसाती, खिलती-खिलाती जिन्दगी जी सकता है।

लोगों में से अधिकांश को आर्थिक तंगी की शिकायत करते सुना जाता है। इसके दो ही उपाय हैं कि या तो आमदनी बढ़ायी जाय या खर्च घटाया जाय। अपने देश की स्थिति ऐसी नहीं है, जिसमें अनुपयुक्त तरीके अपनायें बिना प्रचुर धन कमाया जा सके। श्रमिक शोषण, कर-चोरी, मुनाफाखोरी जैसे अवलम्बन लेकर ही व्यवसायियों में से अधिकांश सम्पन्न बनते हैं। व्यवहार में यह बातें एक प्रचलन बन गई हैं जिससे अखरती नहीं; किन्तु वास्तविकता यही है कि सम्पन्नता सीधे तरीके से हस्तगत नहीं हो सकती। नौकरी में भी उतना ही पैसे मिलता है, जिससे स्तर के अनुरूप गुजारा हो सके। रिश्वत आदि के सहारे ही फालतू पैसा जमा होता है। एक स्थान पर ऊँची दीवार खड़ी करने के लिए यह आवश्यक है कि कहीं दूसरी जगह उतना ही गहरा गड्ढा किया जाता है। एक की अमीरी अनेकों की गरीबी का कारण बनती है। बड़े कारखाने, बड़ी मशीनें, अनेकों के हाथ से गृह कुटीर उद्योगों के अवसर छीन लेते हैं। यदि वे ही कार्य व्यक्तिगत रूप से या सहकारी समितियों की तरह किये या कराये गये होते तो जापान की तरह अपना देश भी कुटीर उद्योगों में सुसम्पन्न बन जाता। व्यावसायिक सम्पन्नता देखने भर में ही निर्दोष मालूम पड़ती है; वस्तुतः वैसी है नहीं। नौकरी भी गुजारा ही दे सकती है। भारत, अमेरिका नहीं है, जहाँ श्रम के बदले पर्याप्त पैसा पाया जा सकता हो। इन सब बातों पर विचार करते हुए यही उचित है कि मध्यवर्ती औसत स्तर के भारतीय जैसा जीवनक्रम अपनाया जाय और सस्ते निर्वाह में काम चलाने की योजना बनायी जाय। जितना कमाया जा सकता हो, उसी के भीतर खर्च का बजट बनाकर चला जाय।

यदि आमदनी नहीं बढ़ सकती तो खर्च घटाने का तरीका सरल है। खर्चों में बहुत बड़ा भाग विलासिता और ठाठ-बाट का रहता है। इसमें बड़ी कटौती की जा सकती है। ठाटबाट और शान-शौकत का व्यामोह छोड़ा जा सकता है। सबसे बड़ी बात है परिवार को न बढ़ाना। नये बच्चे न पैदा करने की आवश्यकता हर नर-नारी को समझाया जाय। जो सदस्य घर में हैं, उन्हीं को पर्याप्त मान कर संतोष किया जाय। उनमें से बूढ़ों का ऋण चुकाने के लिए उनको सम्मान, सहयोग दिया जा सकता है। समर्थों और वयस्कों में से हर एक को कुछ कमाने के लिए प्रेरित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया और मार्गदर्शन दिया जा सकता है। मुफ्तखोरी दरिद्रता से भी बुरी है। हर किसी के मन में यह लगन पैदा करनी चाहिए कि वह कुछ कमाने लगे। अल्पवयस्कों को छोड़कर हर किसी में यह उत्साह भरना चाहिए कि वह सुसंस्कारी और स्वावलम्बी बने। परिवार का वातावरण और व्यवस्थाक्रम ऐसा बनाना चाहिए, जिससे प्रत्येक सदस्य को इन दोनों उपलब्धियों के लिए अवसर मिलता रहे।

खर्चे बढ़ाने में कुरीतियों का जंजाल और भी भारी है। विवाह-शादियों में दोनों पक्षों का इतना पैसा बर्बाद होता है कि उनमें परिवार की आर्थिक कमर टूट जाती है। अन्य सदस्यों को जो स्वास्थ्य-संरक्षण, स्वास्थ्य-संवर्द्धन आदि का अवसर मिलना चाहिए उस अपव्यय के कारण सभी की प्रगति का रास्ता बन्द हो जाता है। यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि खर्चीली शादियाँ दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। उसमें दोनों पक्ष एक-दूसरे का शोषण करता है। बेटे वाला दहेज, उपहार, लम्बी बारात की आवभगत माँगता है और बेटी वाला बदले में कीमती कपड़ों और जेवरों की अपेक्षा अपनी बेटी के निमित्त करता है। दोनों पक्षों को समझाना और समझाया जाना चाहिए कि गरीब लोगों द्वारा अमीरी का स्वाँग बनाया जाना नितान्त कृत्रिम, फूहड़पन और ओछे दृष्टिकोण का चिन्ह है। विवाहों के बाद भी अलन-चलन चलते रहते हैं और उसमें ढेरों पैसा खराब होता रहता है। मृतक भोज भी ऐसी ही बेतुकी प्रथा है। जिस घर में मृत्यु हो चुकी है, आँसू बहाना और विलाप होना बन्द नहीं हुआ, उसी घर में खर्चीली दावत का प्रबन्ध किया जाय और लोग हया-शर्म छोड़ कर उस मुर्दे के माँस जैसी दावत को खाने जा पहुँचें तो कितनी बुरी बात है।

ऐसी-ऐसी अनेकों खर्चीली कुरीतियाँ अपने समाज में प्रचलित हैं। उनका उन्मूलन किया ही जाना चाहिए, भले ही सड़े दिमाग के रूढ़िवादी इस परिवर्तन का, सुधार का विरोध करते रहें। बड़ों के कुटुम्बी-संबंधियों के परामर्श को उसी सीमा तक माना, अपनाया जाना चाहिए, जिस सीमा तक कि विवेकयुक्त हों; मात्र रूढ़ियों की लकीर पीटने की बात हो और उसके लिए विवश किया जा रहा हो, तो प्रहलाद की तरह तन कर खड़ा हो जाना चाहिए और अनीति को स्पष्टतया अमान्य कर देना चाहिए।

मितव्ययिता के और भी कई तरीके हैं। मात्र वे ही चीजें खरीदी जायें, जिनके बिना काम न चलता हो। ऋण लेने की आदत तो डालनी ही नहीं चाहिए। उससे फिजूलखर्ची बढ़ती है और व्यक्ति की दरिद्रता उजागर होती है।

तंगी से निपटने और अर्थ संतुलन बनाने के यह सीधे और सरल तरीके हैं। मनुष्य को दरिद्रता के पाश में जकड़ कर दुःखी और बदनाम कराने से बचाने के लिए इसी मार्ग को अपनाया जाना चाहिए। इंद्रिय संयम, मानसिक संयम की तरह परिवार संयम और अर्थ संयम भी नितान्त आवश्यक है। जो इन अंकुशों को नहीं अपनाते, उनका जीवनक्रम महावत रहित हाथी की तरह, बेलगाम घोड़े की तरह कुमार्ग पर चलकर अपना और दूसरों का अनर्थ करता है।

प्रगति का राजमार्ग

प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध आलस्य और प्रमाद का है। जो अपने शरीर को श्रमशीलता में व्यस्त नहीं रखते वे इस संसार में सर्वत्र भरी हुई उपलब्धियों में से किसी को भी हस्तगत नहीं कर पाते। ईश्वर का दिया हुआ सबसे बड़ा वरदान मनुष्य जीवन है। जीवन एक जंजीर है, जो समय की कड़ियों को जोड़-जोड़ कर बनी है। बुद्धिमत्ता इसमें है कि समय के एक-एक क्षण का श्रेष्ठतम सदुपयोग किया जाय। सामाजिक व्यवस्था में कुछ वर्जनाएँ हैं और कुछ मान्यताएँ।- इनमें से जो शाश्वत, सनातन हैं वे उपयोगी भी हैं और न्यायनिष्ठ भी किन्तु प्रचलनों में से सभी ऐसे नहीं हैं। उनमें से बहुत से अन्धकार भरे मध्यकालीन सामन्त युग की देन हैं। हमें देखना चाहिए कि उनमें से कितनी उपयुक्त हैं कितनी अनुपयुक्त। घपले में इन दिनों सभी गुड़-गोबर एक हो गया है। इसका विवेचन-विश्लेषण करते हुए हमें औचित्ययुक्त मर्यादाओं का पालन करना चाहिए और जो अनुचित तत्व आ मिले हैं, उन्हें कूड़े-करकट की तरह बुहार फेंकना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन की वफादारी ऐसी है जो पति-पत्नी को समान रूप से पालन करनी चाहिए। स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करें और पुरुष पत्नीव्रत धर्म का। मनुष्य जाति के दोनों अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों के कर्तव्य और अधिकार एक जैसे हैं। नारी को दबाया जाय और नर को उच्छृंखल छोड़ दिया जाय—इसमें न न्याय है न औचित्य। पर्दे से यदि शील-सदाचार की रक्षा होती है तो स्त्रियों की तरह उसे पुरुषों को भी पहनना चाहिए। नारी के लिए वैधव्य पालन उपयुक्त है तो नर पर भी वही प्रतिबन्ध लागू होना चाहिए।

इसी प्रकार वंश और जाति के आधार पर ऊँच-नीच का चलना किसी प्रकार औचित्य की कसौटी पर खरा सिद्ध नहीं होता। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर व्यवसाय की एकता के कारण कभी वर्ग-भेद चला था उसमें यह सोचा गया था कि वंश परम्परा के आधार पर व्यवसाय अपनाये जाते रहेंगे पर अब व्यवसाय परिवर्तन का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा तो जातियों का आधार ही समाप्त होता है। फिर मनुष्य-मनुष्य के बीच वंश के आधार पर ऊँच-नीच की मान्यता किस कारण चलती रहे ? दुष्कर्मियों को हेय ठहराया जा सकता है और उनका बहिष्कार किया जा सकता है। सुधारने पर उस दंड को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाप्त हुआ समझा जा सकता है, किन्तु कोई व्यक्ति अमुक वंश में जन्म लेने के कारण सदा ऊँचा या सदा नीचा माना जाता रहे, इसके पीछे न कोई तर्क है, न कारण।

नीति-सदाचार की समर्थक मर्यादाओं को हर किसी को पालन करना चाहिए। नागरिकता और समाजनिष्ठा के अन्तर्गत आने वाली सभी मर्यादाएँ मान्यता देने योग्य हैं, पर जिनके पीछे न्याय, औचित्य आदि की कोई पृष्ठभूमि नहीं है, उन्हें गले से पत्थर की तरह बाँधे रहने का—उनके लिए दूसरों को उकसाने का कोई कारण नहीं।

सचाई, समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी, उदारता और न्यायनिष्ठा—यह मानवी सत्परम्पराओं में आती हैं। संयम और सदाचार सनातन हैं। पिछड़ों को उठाना और पीड़ितों के घावों पर मरहम लगाना यह सज्जनोचित सद्व्यवहार है। इन्हीं मान्यताओं को अपनाया जाना चाहिए। रोटी के प्रकरण में स्वच्छता ही परखने योग्य है। किस वर्ण के व्यक्ति ने उसे बनाया, किसने छुआ इसका औचित्य सिद्ध नहीं होता। यह सफाई और स्वच्छता का विषय है। इसमें प्रथाओं को महत्व देने की क्या आवश्यकता है ? यदि प्रतिबंध लगाने हों, तो नशेबाजी जैसे कुप्रचलनों को अमान्य ठहराया जाना चाहिए और उन दुर्व्यसनों से ग्रसित लोगों के प्रति सामाजिक आक्रोश उभारना चाहिए। इसी प्रकार व्यवसाय में छल, प्रपंच और कर्मचारियों में रिश्वत जैसे प्रचलनों के विरुद्ध वातावरण बनाना चाहिए। समाज की सुव्यवस्था के लिए ऐसे ही नीति और सदाचारपरक कार्यों की प्रशंसा और अनाचारों की भर्त्सना का क्रम चलना चाहिए। समाज का गौरव ऐसे ही आधार अपनाने से बनता है न कि हानिकारक रूढ़ियों के परिपोषण से। यही कारण है कि लोगों ने समाज का दबाव मानना अस्वीकार कर दिया और मनमर्जी बरतने का स्वेच्छाचार आरंभ कर दिया है। उसमें समाजगत रूढ़िवादिता और मूढ़-मान्यता ही प्रधान कारण है। जहाँ मानवी कर्तव्यों और अधिकारों में प्रचलित परिपाटियों का उल्लंघन होता है, वहाँ किसी को भी बुरा मानने या उनका अनुगमन करने की आवश्यकता नहीं है। हमें ऐसे नये समाज का गठन करना चाहिए, जिसमें न्याय और विवेक को मान्यता मिले और रूढ़ियों के कारण किसी को मानवी अधिकारों से वंचित नहीं रहना पड़े। वर्तमान काल में सामाजिक कुरीतियों के कारण भी लोगों को अनीति का कम शिकार नहीं बनना पड़ता है। इन्हें पुरातन प्रचलन के नाम पर अपनाने के लिए बाधित होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। हमारा संयम विवेक पर आधारित होना चाहिए।

दिनचर्या के प्रसंग में हमारा कोई क्षण आलस्य-प्रमाद में नहीं बीतना चाहिए। विश्राम के नाम पर आलस्य को कहीं भी आश्रय नहीं मिलना चाहिए। कार्यरत रहना हर मनुष्य का स्वभाव होना चाहिए। काम जो भी हाथ में भी लिया गया हो, उसमें तत्परता और तन्मयता का समुचित समावेश होना चाहिए। काम की अच्छाई और पूर्णता को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना चाहिए और उसे इस प्रकार समग्रता के साथ सम्पन्न करना चाहिए कि किसी को अँगुली उठाने का साहस न पड़े। अपना मन भी न धिक्कारे। यदि समय पर सही काम ढंग से किया गया होता, तो उसके बिगड़ने या घटिया कहलाने का लांछन क्यों लगता।

कामों को बीच-बीच में बदलते रहने से दिनचर्या में नवीनता आ जाती है। उससे विश्राम की आवश्यकता भी पूरी हो जाती है। थकान सताने लगे तो थोड़ा सुस्ताने में भी हर्ज नहीं; पर वह भी नियत अवधि के अन्तर्गत ही होना चाहिए। थकान और विश्राम के बहाने बहुत समय तक आलस्य में पड़े समय बिताना किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। स्मरण रखने योग्य बात है कि जो समय को गप-शप में, आवारागर्दी में, यारबाजी में, दुर्व्यसनों में गँवाते हैं, वे अपने भविष्य के साथ खिलवाड़ करते हैं। संसार के प्रगतिशील और समुन्नत व्यक्तियों में से प्रत्येक अपने समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने की योजना बनाते और उस पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ रहते हैं। जो समय को बर्बाद करते हैं, वे स्वयं बर्बाद हुए हैं।

आलस्य में पड़ा मनुष्य अवांछनीय चिंतन और अनुपयुक्त कार्यों का आश्रय लेता है; उसे कितने ही दुर्गुण और दुर्व्यसन घेर लेते हैं, जबकि व्यस्त व्यक्ति को अपने नियोजित कार्यों से ही फुरसत नहीं मिलती और अनुपयुक्त आदतों से, अनुपयुक्त व्यक्तियों से सहज ही बच जाते हैं। अच्छे व्यवसायी अपना बही-खाता ठीक रखते हैं। बैंकों में हिसाब तब बन्द होता है, जब मार्जन सही मिल जाता है। सरकारें और संस्थाएँ बजट के अनुरूप व्यय करती हैं। समय के सम्बन्ध में भी हमारी दृष्टि ऐसी ही पैनी रहनी चाहिए, जिसमें अस्तव्यस्तता और अव्यवस्था के लिए कहीं कोई गुंजायश न रहे। आधे-अधूरे मन से बेगार भुगतने की तरह जो काम किये जाते हैं, उनमें समय भी बहुत बर्बाद होता है और परिणाम या परिमाण देखने पर यही प्रतीत होता है कि समय का अधिकांश भाग अस्तव्यस्तता में ही नष्ट हो गया। ऐसे लोग उपहासास्पद ही बनते हैं और गये, गुजरे, पिछड़े, प्रमादी माने जाते हैं।

ईश्वर की दी हुई सम्पदाओं में समय, श्रम के अतिरिक्त विचार भी एक बड़ी शक्ति एवं सम्पदा है। आमतौर से लोग विचारों को किसी ऊँचे लक्ष्य पर नियोजित नहीं करते और बेतुके, बेहूदे, अनावश्यक, असंगत विचारों की कल्पनाओं से मस्तिष्क भरे रहते हैं, भूतकाल की गई-बीती बातों का स्मरण करते हैं, उनकी चर्चा करते और अकारण कथा-गाथाएँ सुनाते रहते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि जो बीता, सो बीता, उसे वापस लौटने की कोई संभावना नहीं। उनका इतना ही लाभ है कि ठोकर खाकर जो हानि उठायी हो, उसे आगे न दुहरायें। जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयास को योजनाबद्ध रूप से कार्यान्वित करने पर लाभ उठाया हो, उसे अगले दिनों अपनी कार्यव्यवस्था में सम्मिलित रखें। गई-बीती बातों की स्मृति मस्तिष्क में भरे रहने से उसकी वह क्षमता नष्ट होती है, जिसके सहारे आज की समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता था या भविष्य के लिए कोई उपयोगी ताना-बाना बुना जा सकता था, ढाँचा खड़ा किया जा सकता था।

विचारों को व्यर्थ की कल्पना उड़ाना नहीं मानना चाहिए। उनकी रचनात्मक शक्ति से अवगत होना चाहिए। विचार बीज है और प्रयास उससे उत्पन्न हुआ अंकुर। प्रयास ही पथ प्रशस्त करते हैं और अनुरूप परिस्थितियाँ सामने ला खड़ी करते हैं। विचार वस्तुतः सूक्ष्म रूप से कर्म ही हैं। जो जैसा सोचता रहता है, समयानुसार वह वैसा ही बन भी जाता है।

संसार के इतिहास में जिहोंने भी जिस दिशा में प्रगति की है, उनने अपने निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए समय को नियोजित रखा है। शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि मात्र ३५-३६ वर्ष से भी कम ही जी सके पर उन्होंने ही समय में उनने इतने काम कर दिखाये, जिनकी गाथा सुनकर आश्चर्य होता है। इसके विपरीत शतायु व्यक्तियों में भी कितने ही ऐसे हैं जो इतनी लम्बी अवधि को भी भारभूत होकर जी सके। विदेशों में प्रचलन है कि श्रमिक लोग भी रात्रि पाठशालाओं में दो घंटे रोज पढ़ते हैं और अपने अभीष्ट विषय में ऊँची डिग्रियाँ प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी सफलताएँ आसमान से नहीं टपकतीं। समय का ठीक विभाजन कर लेने और नियमित समय पर नियत काम से जुट जाने पर काम-काजी लोग भी आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं। जिस दिशा को व्यक्ति पकड़ता है उसी में प्रगति करता जाता है।

उद्देश्यपूर्ण विचार मात्र कल्पना की रंगीली उड़ानें बन कर नहीं रह जाते वरन् जो अभीष्ट है उसके उपाय खोजते हैं, सहायक ढूँढ़ते हैं, साधन जुटाते हैं, श्रम करते हैं, अपने संकल्प साहस के बल पर अभीष्ट प्रयोजन तक पहुँचकर रहते हैं। अमेरिका के राष्ट्रपतियों में अब्राहम लिंकन जैसे कई ऐसे हुए हैं जो गरीबी की स्थिति में जन्मे, उच्च शिक्षा प्राप्त करने तक के साधन न जुटा सके किन्तु संकल्प के धनी होने के कारण अनेकों कठिनाइयों से जूझते हुए प्रगति पथ पर आगे बढ़े और उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच कर रहे।

औसत आदमी न लक्ष्य निर्धारित करता है और न किसी दिशाधारा में आगे बढ़ने के लिए प्रयास करता है, फलस्वरूप हवा के साथ उड़ते रहने वाले पत्ते की तरह कभी इधर, कभी उधर उड़ता रहता है और दिशाविहीन रहकर किसी प्रकार अस्त-व्यस्त जीवन पूरा कर लेता है। सफलता के नाम पर अंधे के हाथ बटेर पड़ने की तरह किसी प्रकार की कुछ उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें तो बात अलग है पर ऐसी योजनाबद्ध प्रगति नहीं कर पाता, जिससे अपने को भी संतोष हो और दूसरे भी प्रेरणा ग्रहण कर सकें।

व्यावहारिक जीवन में संयम ही अध्यात्म है। तत्वज्ञान की दृष्टि से उसकी परिभाषा दूसरी भी हो सकती है पर व्यावहारिक रूप में इतना समझ लेना ही पर्याप्त है कि अभिनन्दनीय, अनुकरणीय लक्ष्य निर्धारित किया जाय और उनमें बिना विचारों के इधर-उधर छितराये अर्जुन के मत्स्यवेध की तरह नियत क्रिया-कलापों में जुट जायें। जिनने एकाग्रता, एकनिष्ठा का महत्व समझा उन्होंने अभीष्ट प्रयोजन में सफलता भी पाई। जो एक दिशा को अपना नहीं सकते, कभी पूरब कभी पश्चिम, कभी उत्तर कभी दक्षिण चलते-छितराते रहते हैं, भरपूर प्रयत्न नहीं करते। ऐसे लोग हर काम में असफलता मिलने की शिकायत करें तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं माना जाना चाहिए।

अधूरा चिन्तन करने वाले मात्र ब्रह्मचर्य को ही संयम कहते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि उसे जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश देना पड़ता है। इन्द्रिय संयम ऐसा है जो विचारों की विशृंखलता पर आरंभिक अंकुश लगाता है। स्वाद और कामुकता पर नियन्त्रण कर लेने से शरीर और मन की डावाँडोल स्थिति में स्थिरता आती है। बेतुके विचारों पर एक सीमा तक नियंत्रण होता है। यह शुरूआत है। समग्रता का अन्त नहीं। संयम को—जिसे व्यावहारिक जीवन का अध्यात्म ही कहा जा सकता है, उसे इन्द्रिय संयम तक सीमित न रखकर समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम तक विकसित करना पड़ता है। यही वह छिद्र है जिसमें होकर मनुष्य की विशिष्टता फूटे घड़े में भरे हुए पानी की तरह बिखर जाती है और मनुष्य मात्र छूँछ रह जाता है। जो इन पर नियन्त्रण कर सका उसे आत्मजयी कहना चाहिए। शास्त्रकारों ने आत्मजयी की तुलना विश्वविजय से की है। जो अपने को नियन्त्रित, अनुशासित रख सकता है उसी के लिए यह संभव है कि दूसरों को भी दिशा और प्रकाश दे सके—उपयुक्त मार्ग पर चला सके।

यों समय, साधन, श्रम, कौशल आदि सभी का अपना महत्व है और कार्य की प्रगति एवं सफलता में इन सभी का योगदान अपने-अपने स्थान पर रहता है। किन्तु मनोयोग की समग्रता के बिना यह सभी उतने काम नहीं आते जितना आना चाहिए। मनोयोग का सर्वोपरि महत्व जो समझ सकें, उन्हें यह भी समझना चाहिए कि उसे बढ़ाना और लक्ष्य के लिए नियोजित कर सकना तभी संभव है, जब अन्य लुभावने विषयों से उसे हटाने का प्रयास पूरा कर लिया जाय। पानी की ढलान नीचे की दशा है। छोटे बच्चे रंगीन खिलौने पर मचलते देखे गये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। मन की भी यही स्थिति है, उसे इन्द्रिय विषयों में आसक्ति होती है। लोभ, मोह और अहंकार की पूर्ति में जो बड़प्पन अनुभव होता है, वह आकर्षक लगता है। समझा जाता है कि सभी लोग हमारी इन सफलताओं पर मुग्ध होंगे, बड़प्पन का लोहा मानेंगे और प्रशंसा के ढेर लगा देंगे। पर सच बात यह है कि हर व्यक्ति अपने-अपने कामों में इतना व्यस्त है कि उसे दूसरे की प्रगति या अवगति से कुछ लेना-देना नहीं। शहरों की सड़क पर नित्य बरातें निकलती रहती हैं। उन पर ढेरों खर्च होता रहता है। सज-धज में न जाने कितना ध्यान दिया जाता है और न जाने कितना पैसा खर्च किया जाता है पर दुकानदारों या निकलने वाले मुसाफिरों को उनमें कोई लगाव नहीं होता। सिर्फ यह सोचते हैं कि यह बला कब आगे बढ़े और हमारे ऊपर जो घेराबन्दी लग गई है वह टले। किन्तु इस स्थिति को ओछे लोग भाँप नहीं पाते और यही अनुमान लगाते रहते हैं कि हमारी सजधज की छाप सारे शहर पर पड़ेगी और हमारे बड़प्पन में चार चाँद लगेंगे। इसी भ्रम जंजाल में मन की बाल बुद्धि ओछे, बचकाने कामों में भटकती रहती है और यह नहीं सोच पाती कि यदि समय, श्रम, कौशल और मन को इस बचकानी खिलवाड़ में से बचाया जा सके और किसी सारगर्भित प्रयोजन के लिए उनका प्रयोग किया जा सके तो इसका सत्परिणाम कितना महत्वपूर्ण एवं संतोषप्रद हो सकता है।

जिन लोगों ने महत्वपूर्ण सफलताएँ—जिस भी दिशा में पाई हैं उन्हें मन को व्यर्थ के जाल-जंजालों में समेट कर एक लक्ष्य पर केन्द्रीभूत करना पड़ा है। पहलवान, विद्वान, विज्ञानी, शोधकर्ता, कलाकार आदि किसी विषय में प्रवीण-पारंगत होने वालों से उनकी सफलता का रहस्य पूछा जाय तो वे एक ही उत्तर देंगे कि हमने अपने निर्धारित कार्य में पूरा मन लगाया और वह लग सका तभी जब उसे अनेक भटकावों से रोक कर निगृहीत किया गया। एकलव्य बाण विद्या में इसलिए प्रवीण हो सका कि उसने उस प्रयोजन में अपने को तन्मय कर दिया। प्रत्यक्ष द्रोणाचार्य जो कुशलता अपने वास्तविक शिष्यों को—कौरव, पाण्डवों को न उपलब्ध करा सके वह उसने प्राप्त कर ली। यह गुरुभक्ति का या एकाग्रता, तन्मयता का चमत्कार समझा जा सकता है।

व्यक्तिगत समस्याओं की तरह ही सामूहिक समस्याओं का दौर है। उसके कारण समूचे समाज की स्थिति डाँवाडोल है। हर किसी को उनके कारण भय, आतंक, अविश्वास एवं अनिश्चय की स्थिति त्रास दे रही है। कल किसके ऊपर क्या स्थिति आ पड़े ? इसके संबंध में कोई निश्चित नहीं है। युद्ध, अपराध, छल, भ्रष्टाचार से विश्व का कोई कोना सुरक्षित नहीं। अपने आप को सज्जन, शान्तिप्रिय रखने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि अनाचारियों का आतंक उसकी शान्ति भंग न कर देगा।

इन सब कारणों को भी सामूहिक रूप से उसी अनाचार में गिना जाता है, जिसे असंयम या आतंक कहा जा सकता है। शिकायत की जाती है कि सरकारी कर्मचारी रिश्वत के बिना कोई काम नहीं करना चाहते। गुण्डे संगठित रूप से आक्रमण करते हैं और अगला व्यक्ति पिटता रहता है और अन्य लोग हिमायत में नहीं आते। युद्ध और महायुद्ध होते हैं। उनके आक्रमणकर्ता जनता में से आये हुए जनसाधारण ही होते हैं। भ्रष्टाचार बरतने वाले अपने ही लोग होते हैं, कहीं आसमान से नहीं टपकते। व्यवसाय क्षेत्र में चलने वाली जालसाजी करने वाले भी अपने ही लोग हैं। अपने-अपने आरंभिक जीवन में जो देखा, सुना, समझा है वही बड़े होने पर इस रूप में कार्यान्वित होता है, जिसे हम सामूहिक अनाचार कहते हैं।

समूह कोई अलग वस्तु नहीं है वह जनसमुदाय से मिलकर बनता है। जनता का स्तर जिस प्रकार का होगा उसी में से निकले व्यक्ति कोई भिन्न प्रकार का चिंतन या आचरण कर सकेंगे, इसकी आशा नहीं की जा सकती। सरकारी कर्मचारी पद सँभालने से पूर्व नवयुवक और किशोर या विद्यार्थी ही थे, उनने अपने चारों ओर जिस प्रकार का प्रचलन देखा उसे ही स्वाभाविक मानकर अपना लिया। इसी प्रकार व्यवसायी, चोर-उचक्के भी आरंभ में सामान्य बालक, विद्यार्थी या युवक ही थे। उनको उचित प्रशिक्षण एवं वातावरण न मिला तो उन कामों पर उतारू हो गये, जिसे दुष्टता कहा जा सकता है और जिसके कारण उन्हें अपराधी कहा जाता है। राजनेता उन्हीं के वोटों से चुने जाते हैं जो जाति-बिरादरी के नाम पर या व्यक्तिगत लोभ-लालच से प्रभावित होकर वोट देते हैं। यदि उनमें औचित्य का बोध नहीं है तो प्रजातंत्र के रहते ऐसी सरकार कैसे पा सकते हैं, जो सर्वथा स्वच्छ और लोकहित के अतिरिक्त और कुछ न सोचे ? लड़ाकू, विग्रही, आतंकवादी, डाकू, हत्यारे यह कलाएँ कहीं अन्यत्र से नहीं सीखते। वातावरण में संव्याप्त उच्छृंखलता ही अपने बालकों में आरंभ से ही छोटी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने की गुंजायश छोड़ती है, जो आगे चलकर ऐसा अनर्थ करें जिसका त्रास जनसमुदाय को सहना पड़े। एक बार होने वाले अत्याचार का विरोध करने के लिए समीपवर्ती लोग ही उठ खड़े हों तो मुट्ठी भर गुण्डे अपने से हजारों गुने लोगों को आतंकित न कर सकें। युद्धोन्माद उत्पन्न करने में सरकारों के विरुद्ध वहीं की जनता बगावत कर दे तो फिर किस बलबूते वे समीपवर्ती देशों पर आक्रमण करने का साहस कर सकें ?

सामूहिक अनाचारों के विरुद्ध समाचार-पत्र जनता की आवाज बुलन्द करते रहें तो उन्हें दबा देने या करते रहने वालों का भी भण्डा फोड़े हुए बिना न रहेगा और वे मनमानी करने से बाज आयें। साहित्यकार उसी प्रकार की रचनाएँ करें जो पाठकों के मन में दया, करुणा, मैत्री एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहकारिता की भावना भरें। अनाचारों के विरुद्ध लड़ मरने के लिए शौर्य-साहस उत्पन्न करें, तो जिस तेजी से आज अनाचारी वर्ग बढ़ रहा है। उस सीमा तक पहुँचने की नौबत न आये। धर्माचार्य यदि कथापुराणों के मनगढ़न्त किस्से, कहानियाँ कहकर भ्रमजंजाल न फैलाएँ और छुटपुट कर्मकाण्डों के फलस्वरूप स्वर्ग में स्थान रिजर्व होने का प्रलोभन देना बन्द कर दें। इसके स्थान पर संयम, सदाचार, सहयोग, अनीति के विरुद्ध संघर्ष करने की, सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने की, विधि-व्यवस्था बनाने की चेष्टा करें तो धर्मश्रद्धा का समुचित प्रतिफल जनसाधारण को मिल सकता है और नागरिकों की, धर्म प्रेमियों की नीति-निष्ठा परिपक्व हो सकती है।

समाज में मूर्धन्य लोग अपनी प्रतिभा को, नीति निष्ठा को उभारने वाले आयोजनों के निमित्त नियोजित करें। अध्यापक आरम्भ से ही निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा कराने के अतिरिक्त छात्रों से अपने व्यक्तिगत चरित्र और प्रयत्न के आधार पर उत्कृष्ट स्तर की नागरिकता उत्पन्न करें तो कोई कारण नहीं कि बड़े होने पर वे लोग अपनी प्रवृत्तियों को रचनात्मक दिशा न दे सकें। समाज में सुख-शान्ति और सुरक्षा उत्पन्न करने वाले क्रिया-कलापों को बल न दें।

अपराधों की, अपराधियों की भर्त्सना की जानी चाहिए और साथ ही बड़ी प्रताड़ना की व्यवस्था भी की जानी चाहिए पर यह भूल न जाना चाहिए कि स्वास्थ्य और शिक्षा की तरह नैतिक मान्यताओं की गहरी प्रतिष्ठापना जनमानस में करने के प्रयासों को बढ़ाया जाना भी आवश्यक है। दान-दक्षिणा के नाम पर निठल्ले लोगों का पोषण होता है। पर यह प्रयत्न नहीं किया जाता कि चरित्रनिष्ठा को प्रधानता देने वाले साहित्य का सृजन, प्रशिक्षकों का उत्पादन एवं उपयुक्त वातावरण बनाने के लिए, नमूने के केन्द्र बनाने के लिए उस धर्म चेतना को नियोजित किया जाय।

संयम ही सदाचार है और उसी को अध्यात्म कहा जा सकता है। इस दिशा में काम करने वालों को सम्मानित किया जाय और भ्रष्टाचार फैलाने वालों को मात्र जुर्माने की सजा देकर ही कर्तव्य को समाप्त न किया जाय वरन् उनकी बदनामी का भी ऐसा प्रयत्न और प्रदर्शन किया जाय ताकि उनके स्वभाव एवं चरित्र की जन-साधारण को जानकारी मिले और अनजान भी जानकारी प्राप्त करके सावधान रहें।

जिस प्रकार इन दिनों अर्थ उपार्जन की दिशा में हर किसी का मन और प्रयास लगा हुआ है, उसी प्रकार चिन्तन की ऐसी प्रचण्ड प्रेरणा भी मिलनी चाहिए कि लोग नीतिनिष्ठा को धन उपार्जन की तुलना में किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण न समझें।

प्रगति से पहले अवगति की रोक-थाम

सड़क पर चलने वाला कोई पगला, राहगीरों पर ईंट-पत्थरों की मारामार मचा सकता है और कितने ही सिर और कितने ही पंजर तोड़-फोड़ कर रख सकता है। यह सरल है। कठिनाई तब पड़ती है, जब उस टूट-फूट को नये सिरे से ठीक करना पड़ता है। पिछले दिनों लोकमानस पर दुहरा उन्माद चढ़ा है। एक वैज्ञानिक उपलब्धियों का और दूसरा प्रत्यक्ष को—तत्काल को ही सब कुछ मान बैठने का। उस गहरी खुमारी और लड़खड़ा देने वाली बदहवासी में यह सोचते भी नहीं बन पड़ा कि इस विक्षिप्तता से उन्मत्त होकर, जो कर गुजरने का आवेश चढ़ दौड़ा है, उसका क्या परिणाम होगा ? अनाचारी इसी उन्मादग्रस्त स्थिति में कुछ भी कर गुजरते हैं और पछताते तब हैं, जब कुकृत्यों के दुष्परिणाम भयानक प्रतिक्रिया के साथ सामने आ खड़े होते हैं।

इन दिनों भी ऐसा ही कुछ घटित हुआ है। जिन पर जीवन निर्भर रहता है, उन्हीं को बीन-बान कर चकनाचूर करके रख देने की 'सनक' लोगों पर चढ़ी है, फलस्वरूप यह संकट आ खड़ा हुआ है कि अगले दिनों जीवित तक रह सकना कैसे बन पड़ेगा ? विपन्न-विग्रह के घटाटोपों से कैसे निपटा जायेगा ? प्रकृति के साथ क्रूर मजाक करने पर उसका प्रतिफल तो भुगतना ही पड़ेगा। अग्नि में हाथ डालने पर झुलसने से कैसे बचा जाय ? इन दिनों अगणित संकटों और झंझटों का सामना करना पड़ रहा है। उनका निमित्त कारण अपना भटकाव ही है, जिसे कोई चाहे तो अनर्थ-आचरण भी कह सकता है। गलती करने वाले पर ही यह दायित्व भी लद जाता है कि वही सुधारे भी। उलटी चाल चलने वाले को अपनी रीति-नीति सुधारने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं।

अगली शताब्दी में उज्ज्वल भविष्य की संरचना करने के लिए कुछ तो नया भी खरीदना पड़ेगा; पर साथ ही यह भी देखना होगा कि किन कारणों से विग्रह हुआ और उनका सुधार बन पड़ा या नहीं। यदि इतना भर मंथन कर लिया जाय, तो समस्या का अधिकांश हल अनायास ही निकल सकता है।

उदाहरण के लिए, आधी जनसंख्या इन दिनों प्रायः अनुत्पादक स्थिति में रह रही है। दिन गुजारने के लिए घरेलू काम-धंधों में ही प्रायः जिन्दगी गुजर जाती है। उसका न तो पुरुष जितना आर्थिक उत्पादन दीख पड़ता है और न बौद्धिक कौशल। घर से बाहर बिखरी हुई असंख्य समस्याओं के समाधान में उसका योगदान नहीं के बराबर है। अशिक्षा, गरीबी, प्रतिगामिता आदि से निपटने में भी उसका योगदान नहीं बन पड़ता। समुन्नत देशों की महिलाएँ अपने-अपने देशों की प्रगति में लगभग आधा योगदान देने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में श्रेय प्राप्त कर रही हैं। इस विपन्नता को मूकदर्शक की तरह देखते नहीं रहा जा सकता है। नारी को जितनी क्षमता ईश्वर ने प्रदान की है, उसको समुन्नत और सुव्यवस्थित कर सकें, तो देखते-देखते अपना कौशल, उत्पादन और पुरुषार्थ दूना हो सकता है, अन्य उपायों से दूनी प्रगति करना सरल नहीं है।

दूसरी बड़ी समस्या इन दिनों आवश्यक प्रजनन को रोकने की है। अब से दो हजार वर्ष पहले संसार भर की आबादी तीस करोड़ के लगभग थी। अब वह ६०० सौ करोड़ हो गई; बीस गुनी अधिक। जितनी भूमि एक व्यक्ति के हिस्से में आती थी, अब कुछ ही दिनों में उतनी भर से २० को काम चलाना पड़ रहा है। यह उपक्रम रुका नहीं है; वह गुणन चक्र के अनुसार दो से चार, चार से आठ, आठ से सोलह का क्रम बनाते हुए संतुलन को अस्त-व्यस्त करने की सीमा तक पहुँचने जा रहा है। यदि कामुकता की दुष्प्रवृत्ति को निरुत्साहित कर, प्रजनन पर रोक-थाम हो सके, तो डूबने वालों को तिनके का सहारा मिल सकता है। यह क्रम यदि घटने की राह पकड़ ले, तो फिर अनेकानेक विग्रहों और संकटों से सहज छुटकारा मिल सकता है।

अपव्यय इन दिनों चरम सीमा पर है। नशेबाजी से, फैशन-परस्ती से, आभूषणों की सजधज से, शेखीखोरी जताने के लिए ओढ़े गये खर्चीले विवाहों से कितना धन और समय बर्बाद होता है, यह किसी से छिपा नहीं है। श्रृंगारिक सजधज से न केवल पैसा बर्बाद होता है, वरन् कामुक उत्तेजना को भी प्रश्रय मिलता है व्यभिचार का पथ-प्रशस्त होता है। धूम-धाम वाली, दहेज और जेवर की भरमार वाली शादियाँ समाज की आर्थिक कमर बेतरह तोड़-मरोड़ कर रखे दे रही हैं। इन दुराग्रहों से पीछा छुड़ाने में क्या किसी को बड़ा मोर्चा डालना पड़ेगा ? सिर पर छाई हुई अवांछनीयता को उतार फेंकना किसी के लिए भी कठिन क्यों होना चाहिए ? सादा-जीवन उच्च-विचार वाला उपक्रम अपनाने से किसी पर क्या इतना बोझ लदता है, जिसे कठिन या असंभव माना जाय ? अपनी इस भूल का सुधार कर लेने भर से दुःखदायी दरिद्रता से आधा छुटकारा मिल सकता है।

अमीरी जताने का उद्धत अहंकार यदि काबू में रहे, तो धन-कुबेर बनने की हविस क्यों सभी पर बेतरह छाई रहे ? औसत नागरिक स्तर का निर्वाह करने में क्या किसी के बड़प्पन में कमी आयेगी ? वरन् सच तो यह है कि उसे अपेक्षाकृत अधिक नीतिवान, अधिक प्रसन्न और अधिक संयमी, उदारचेता कहलाने का अवसर मिलेगा। जो पैसा और समय तथाकथित बड़प्पन का लबादा ओढ़ने में खर्च होता है, सादगी द्वारा उसे बचाया जा सके, तो उस बचत से ही पिछड़े हुओं का इतना काम चल सकता है कि कहीं किसी को भी गयी-गुजरी स्थिति पड़े रहने के लिए बाधित न होना पड़े।

सेना में सभी सैनिकों को एक जैसी सुविधा मिलती है; इससे न किसी की इज्जत घटती है और न बढ़ती है। समानता प्रकारान्तर से शालीनता का ही एक लक्षण है। सन्तों की जमात एक जैसा ही निर्वाह करती है। उनमें से कोई सदस्य असाधारण सजधज अपनाये, तो उसकी प्रतिष्ठा घटेगी ही, बढ़ेगी नहीं, कोई समय था, जब शान, ठाट-बाट के साथ जुड़ती थी; पर अब राजा-सामंतों की जैसा स्वाँग बनाने वाले को नाटक का नट होने जैसी ही भर्त्सना मिलेगी। साम्यवादी-समाजवादी विचारधारा ने लोकमानस को ऐसा ढाल दिया है कि असाधारण अमीरों पर आये दिन ढेरों लांछन लगते हैं। उन्हें चोर, बेईमान कहने तक में लोग नहीं चूकते, भले ही उनकी कमाई औचित्य की मर्यादा में ही आती हो। ऐसों पर निष्ठुरता और संकीर्ण-स्वार्थपरता का आरोप तो लग ही जाता है। निश्चित रूप से इस प्रकार दौलत फूँकना रोका जा सकता है और उतने भर से असंख्यों को ऊँचा उठने का अवसर मिल सकता है।

यदि इस प्रकार उद्धत-प्रदर्शनों को रोका जा सके, तो खाई और टीलों की ऊबड़-खाबड़ जमीन समतल दीखने लगे और उस पर अच्छे-खासे उद्यान या भवन खड़े हो सकें। सम्पन्नता का उपयोग उद्धत प्रयोजनों के अतिरिक्त ही कुछ अच्छा हो पाता है।

अर्थव्यवस्था में कौटुम्बिक उत्तराधिकार का उतना ही औचित्य है कि असमर्थों को उससे निर्वाह मिलता रहे। व्यावसायिक पूँजी के रूप में भी उसे मान्यता मिल सकती है; पर कमाऊ उत्तराधिकारियों के सिर पर पूर्वजों की कमाई को लाद दिया जाय, इसका क्या औचित्य हो सकता है ? कानून किनने बनाये और किनके लिए बनाये—यह बहुत ही विवादास्पद है, पर न्याय यही कहता है कि जमा भले ही किसी ने किया हो; उसका उपयोग वहीं होना चाहिए, जहाँ, उसकी नितान्त आवश्यकता है। ऐसे कुछ ही सुधार यदि कर लिए जायें, तो संसार पर छाये हुए संकटों में से अधिकांश का तो अनायास ही समाधान हो सकता है।

तथ्यों को समझें, दृश्यों में न उलझें

भगवान ने अपने बाद चेतना का दूसरा स्तर मनुष्य का ही बनाया है। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ इतनी समर्थ हैं कि उसे सृष्टि का सर्व-समर्थ प्राणी कहा जाना उचित ही है। यह उसके काय-कलेवर की विशेषता है। सचेतन अदृश्य सत्ता का, यदि लेखा-जोखा लिया जाय, तो प्रतीत होगा कि न केवल भौतिक जगत पर, वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदृश्य क्षेत्र के रूप में जाने जाने वाले सूक्ष्म जगत पर भी उसका असाधारण अधिकार है। दृश्य और अदृश्य दोनों ही लोकों पर उसका अधिकार होने से मानवी सत्ता को सुर-दुर्लभ भी कहा जाता है। किसी ने सच ही कहा है कि मनुष्य भटका हुआ देवता है। उसके अन्तराल में दैवी-शक्तियों का तत्वतः समग्र निवास है; पर दृश्य-जगत के जाल-जंजाल में स्वयं को भूल जाने के कारण ठोकरें खाता और जहाँ-तहाँ भटकता है।

गड़बड़ी वहाँ से प्रारंभ होती है, जहाँ वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर अपने को कलेवर मात्र समझता है। वाहन को अधिपति मान बैठता है और गोबर भरी मशक में अपने को समाया भर मानता है। दर्पण में अपनी छवि तो होती है, व्यक्तित्व नहीं, शरीर कुछ तो है; पर सब कुछ नहीं। उसकी इच्छा-आवश्यकता को भी पूरा किया जाना चाहिए; पर मात्र उसी के लिए सब कुछ निछावर कर देना भूल है। अच्छा होता सवार और घोड़े का सम्बन्ध भी समझ लिया होता। भेड़ों के झुण्ड में पले सिंह ने अपने को भेड़ मान लिया था। यह कथा सुनी तो बहुतों ने है; पर यह अनुभव कोई बिरले ही करते हैं कि यह उपहासास्पद कथा-उक्ति सीधी अपने ही ऊपर लागू होती है।

परमाणु मोटी दृष्टि से एक अत्यन्त ही छोटा, अदृश्य स्तर का, प्रकृति का अत्यन्त कनिष्ठ घटक मात्र मालूम पड़ता है। इतने पर भी वस्तुस्थिति यह है कि उसमें एक समूचे ग्रह-पिण्ड जितनी शक्ति भरी पड़ी है। मनुष्य असंख्य परमाणुओं, जीवाणुओं, रसायनों, विद्युत आवेशों का भण्डार है। प्रायः साढ़े पाँच फुट ऊँचे, ६० किलोग्राम औसत भार के इस काय-कलेवर में संभवतः उतने ही गोलक हो सकते हैं, जितने कि इस समूचे ब्रह्माण्ड में तारे, ग्रह-उपग्रह आदि हैं। इस समूची शक्ति का अनुमान लगाया और आँकलन किया जाय, तो उसे अकल्पनीय ही कहना होगा। एक औसत मनुष्य प्रायः उतना ही हो सकता है, जितना कि यह समूचा ब्रह्माण्ड प्रकृति-सम्पदा से भरा पड़ा है।

ब्रह्माण्ड को 'महतो महीयान्' कहा गया है; पर पिण्ड को 'अणोरणीयान्'। यदि आकार की न्यूनाधिकता पर ध्यान न दिया जाय, तो मानवी-सत्ता भी परमात्म-सत्ता के समतुल्य जा पहुँचती है। भगवान को जितने भी प्रमुख अवतार लेने पड़े हैं, वे सभी मनुष्य आकृति में ही हुए हैं। स्वर्गीय देवता अपनी जगह विराजमान हो सकते हैं; पर धरती पर देवताओं की भी कभी कमी नहीं रही। महामानवों के रूप में उनके अस्तित्व का परिचय समय-समय पर मिलता रहा। मनुष्य ही देव के स्वरूप में सृजन और दैत्य के रूप में ध्वंस के ऐसे कृत्य दिखाते रहे हैं, जिनकी विशालता और विभीषिका पर ध्यान देते ही दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। क्षुद्रता का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्हें इसी कारण देखा जाता है कि वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाता है। यदि मनुष्य 'आत्मबोध' प्राप्त कर ले और समझ ले कि मैं कौन हूँ ? क्या हूँ ? और क्या कर सकता हूँ ? तो समझना चाहिए कि उसे क्षुद्र से महान, नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम बनने से कोई नहीं रोक सकता।

आँखों पर जिस रंग का चश्मा लगा लिया जाय, समस्त संसार उसी रंग का दीख पड़ता है। संसार के दृश्य कैसे ही क्यों न हों; पर यदि अपनी आँख की पुतली काम करना बन्द कर दे, तो फिर सर्वत्र अन्धकार ही दीख पड़ेगा। कान बहरे हो जायें, तो कहीं किसी शब्द का अस्तित्व न रहेगा। अपने दृष्टिकोण के अनुरूप सारा वातावरण दीख पड़ता है। हर व्यक्ति का अपना संसार अलग से रचा हुआ है और वह उसी में विचरण करता है। स्वर्ग और नरक दोनों ही मात्र अनुभूतियाँ हैं, जिनको हर व्यक्ति इच्छानुसार अपने लिए विनिर्मित करता एवं बदलता रहता है।

यह संसार जड़ पदार्थों का बना है, उसमें भले-बुरे जैसा कहीं कुछ नहीं है। जड़ पदार्थों का अपना स्वरूप भर है। उनके सुख और दुःख की अनुभूति तो मनुष्य की खुद की गढ़ी हुई है। पाप-पुण्य पदार्थ तो कैसे करेंगे ? उसका सदुपयोग, दुरुपयोग ही पाप-पुण्य की अनुभूति गढ़ते हैं। इंजन कितना ही समर्थ या कीमती क्यों न हो, उसे चलाने की क्षमता तो सजीव मनुष्य में ही होती है। रेलगाड़ी अपने बलबूते किसी निर्दिष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकती। अधिक से अधिक कोई दुर्घटना करने की निमित्त भर बन सकती है। संसार भर का वातावरण जड़ पदार्थों से विनिर्मित होने के कारण अपने बलबूते कुछ भला-बुरा नहीं कर सकता। सचेतन सत्ता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करने वाला मनुष्य ही हर परिस्थिति के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है।

तथ्यों को समझते हुए हमें जैसा भी कुछ भला-बुरा भविष्य विनिर्मित करना हो, उसी के अनुरूप जनमानस विनिर्मित करना चाहिए। सतयुग और कलियुग में लोगों के शरीर निर्वाहक्रम में कोई बड़ा अन्तर नहीं होता, फिर भी जो जमीन-आसमान जैसा अन्तर दीख पड़ता है, उसका सृजनकर्ता वस्तुतः मनुष्य ही है। वह न केवल अपने भाग्य का निर्माता आप है, वरन् उसी का सामूहिक चिन्तन, क्रिया-कलाप, प्रवाह वैसा ही कुछ बनाकर खड़ा कर देता है, जैसा कि सोचा या चाहा गया था। हमें मुरझाये पत्ते सींचने की योजना नहीं बनानी चाहिए, वरन् जड़ तक खाद-पानी पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूछा जाता है कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना के लिए क्या करना होगा ? यदि प्रश्न का सही उत्तर अपेक्षित हो, तो वह एक ही हो सकता है 'दृष्टिकोण का परिवर्तन'।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यों मन समझाने के लिए ऐसा भी कुछ सोचा जा सकता है कि प्रयत्न क्या करने होंगे ? पदार्थों के सरंजाम जुटाने में किस प्रकार के प्रयास-परिवर्तन करने होंगे ? उत्तर उन प्रश्नों के भी हो सकते हैं और कार्यक्रम तदनुरूप भी बन सकता है। योजनाएँ बनाने वाले इन्हीं गोरखधंधों को उलझाने-सुलझाने में लगे भी रहते हैं; किन्तु यह सतरंज की गोटियों को इधर-उधर हटाते-उठाते रहने का मनोरंजन भर है। वस्तुतः उस सारे खेल में बाजी हारना-जीतना खिलाड़ियों की मानसिकता पर निर्भर रहता है। गोटियाँ व्यर्थ ही बदनाम होती या सम्मान पाती रहती हैं।

मोटी बुद्धि दृश्यों, पदार्थों, घटनाओं को ही सब कुछ मानती है। चिन्तन, दृष्टिकोण, उत्साह, साहस जैसी अदृश्य प्रवृत्तियों के संदर्भ में हर किसी के लिए यह अनुमान लगाना कठिन होता है कि पर्दे के पीछे काम करने वाले मदारी की अँगुलियाँ ही समूचे प्रहसन की निमित्त हैं। तमाशों का सूत्रधार तो मानसिकता का बाजीगर ही होता है। समस्याओं का वास्तविक हल उसी के हाथ है। बन्दी कठपुतलियों के साथ माथा-पच्ची करना कुछ अर्थ नहीं रखता। फिर भी बच्चों को चाबी के खिलौनों की हलचलें ही प्रभावित करती हैं। उन्हें यह कहाँ पता होता है कि उसके भीतर जमे हुए पुर्जे ही यह चित्र-विचित्र हलचल करते हैं।

इन विभीषिकाओं से कौन जूझेगा ? कैसे जूझेगा ?

प्रत्यक्ष समस्याओं में अनेक ऐसी हैं, जो देखने में अत्यन्त भयावह मालूम पड़ती हैं और जिनका समाधान भी सरल नहीं दीख पड़ता। सारी दुनिया उनके कारण चिन्तित है। मूर्धन्यजनों को बहुत माथा-पच्ची करने के उपरान्त भी कोई हल नहीं सूझ पड़ता।

इन समस्याओं में सर्वप्रथम है—वातावरण में सतत् घुल रहा जहर। औद्योगिक कारखाने वायु को विषमय बना रहे हैं। लगता है कि कहीं शुद्ध वायु के अभाव में घुटन से ही जीवों को दम न तोड़ना पड़े। औद्योगिक उत्पादनों के विषैले रसायन जलाशयों में बहाये जाते हैं। वही पानी घूम-फिर कर पीने के काम आता है। मंद विष पीते रहने पर, देर-सबेर उनका प्रतिफल मरण ही हो सकता है। रासायनिक खादें और कीटनाशक विष आहार में सम्मिलित होकर स्वास्थ्य को चौपट करते रहते हैं। वायु-प्रदूषण के कारण वातावरण का तापमान दिन-दिन बढ़ता जाता है, विश्व का हिमभण्डार पिघलाने और समुद्रों में बाढ़ आने की चुनौती देता है। पृथ्वी के ऊपर का सुरक्षा कवच भी फटता जा रहा है और खतरा बढ़ रहा है कि अन्तरिक्षीय मारक किरणें कहीं धरातल को भून कर न रख दें।

प्रदूषण का शोषण वृक्ष-वनस्पतियों के माध्यम से होता है। उन्हें बेतरह काटा जा रहा है। इससे धरती के रेगिस्तान बन जाने, भूमि की उर्वरता समुद्र में बहकर पहुँच जाने, भयंकर बाढ़ें आने, वर्षा का अनुपात घट जाने जैसी कितनी ही प्रकृति के कोप से उत्पन्न होने वाली विभीषिकाएँ क्रमशः निरन्तर बढ़ती जा रही हैं।

उद्योगों में कोयला, खनिज तेल आदि का इतना अधिक दोहन हो रहा है कि उस चिरसंचित भूगर्भ वैभव का अन्त निकट आता जा रहा है। ईंधन के अभाव में कारखाने एवं द्रुतगामी वाहन भविष्य में कैसे चलते रहेंगे ? यह एक बड़ा प्रश्न है। फिर इसी प्रयोजन के लिए धातुएँ भी तो असाधारण मात्रा में प्रयुक्त होती हैं। उनकी खदानें भी तो सीमित हैं। जिस तेजी से उनका दोहन हो रहा है, उसे देखते हुए लगता है कि निकट भविष्य में धातुओं की उपलब्धि भी दुर्लभ हो जायेगी।

धरती को तेजी से वनस्पति उत्पादन से छीन कर आवासीय प्रयोजन के लिए, कारखाने, दफ्तरों के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। उपजाऊ भूमि की कमी पड़ती जाने पर पशु-पक्षियों तथा अन्य जीव-जन्तुओं का निर्वाह कठिन हो जायेगा और धरती का संतुलन भी गड़बड़ा जाएगा।

पशुओं, वृक्षों और मनुष्यों के निर्वाह का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है। इन तीनों में से एक घटेगा-मिटेगा, तो शेष दो का भी सफाया हो जायेगा। वृक्षों की पत्तियों से, पशुओं के, मनुष्यों के मल-मूत्र से धरती की उर्वरता कायम रहती है और उसी के आधार पर जीवधारियों को आहार उपलब्ध होता है। बादल अपने आप बरसने का जितना उपक्रम अपनाते हैं, उससे कहीं अधिक पृथ्वी की परिस्थितियाँ उन पर बरसने का दबाव डालती हैं। यदि वह दबाव न रहे, तो जिस प्रकार रेगिस्तानों में वर्षा नहीं होती, उसी प्रकार अन्यत्र भी बूँद-बूँद पानी के लिए तरसना पड़ेगा। पानी और हवा के बिना तो जीवन थोड़े समय भी स्थिर नहीं रह सकता। फिर आहार की उपज भी नहीं हो सकती और निर्वाह-साधनों के अभाव में न मनुष्य जी सकता है और न प्राणियों-वनस्पतियों में से ही किसी का जीवन स्थिर रह सकता है। वर्तमान प्रवाह-प्रचलन पूरे जोर से ऐसी ही दिशा-धारा अपना रहा है, जिसके कारण भविष्य हर प्रकार अन्धकारमय ही दीख पड़ता है।

ऐसा क्यों हो रहा है ? क्यों करना पड़ रहा है ? इसके संबंध में एक बात बहुत जोर देकर कही जाती है कि मनुष्यों की जनसंख्या बेहिसाब बढ़ रही है। उनके लिए तदनुरूप ही बढ़े-चढ़े साधन चाहिए। आहार, जल, मकान, कारखाने, व्यवसाय, विद्यालय, चिकित्सालय आदि-आदि अनेकों साधन चाहिए। उस संदर्भ में हाथ सिकोड़ा जाय, तो उत्पन्न होते जाने वाले मनुष्य समुदाय की व्यवस्थाएँ कैसे बनें ? मनुष्यों की अभिवृद्धि अनायास ही रुकती भी तो नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों एक नया व्यवसाय और जन्मा है—'युद्ध'। बीसवीं सदी में दो विश्वयुद्ध एवं प्रायः २०० क्षेत्रीय युद्ध हो चुके हैं। इनमें कितनी युवाशक्ति मरी, कितने परिवार अनाथ हुए, इसकी बात तो अलग, युद्ध सामग्री बनने में जो जनशक्ति, धनशक्ति, बुद्धिशक्ति लगी उतने साधनों से इसी धरती को न जाने कितना समुन्नत बनाया जा सकता था। अभी भी जो तैयारियाँ चल रही हैं उससे प्रतीत होता है कि सृजन प्रयत्नों की तुलना में ध्वंस की तैयारियाँ कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर हैं।

अर्थ-संतुलन ऐसा गड़बड़ाया है कि गरीब अधिक गरीब और अमीर अधिक अमीर बनते जा रहे हैं। अर्थ-लिप्सा में, मंडियाँ हथियाने के लिए धनाध्यक्षों की हविश अनेक प्रकार के उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद रचते हैं और उनके परिणामस्वरूप दुःख बढ़ते चले जा रहे हैं।

इस सबका परिणाम यह हुआ है कि जनसाधारण का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य बेतरह गड़बड़ाने लगा है। दोनों ही क्षेत्रों में इतने अधिक रोग बढ़ रहे हैं कि उनके निवारण के लिए बनने वाले चिकित्सक, आविष्कार, अस्पताल सभी बौने पड़ते जा रहे हैं। लगता है अगले दिनों पूर्ण स्वस्थ रह सकना अत्यंत कठिन हो जायेगा।

शिक्षा का उद्देश्य नौकरी भर रह जाने से बेकारी-बेरोजगारी की बाढ़ रोक सकना कठिन हो जायेगा। महँगी ठाट-बाट के लिए व्याकुल बनाने वाली पढ़ाई अपना संतुलन बिठाने के लिए वेतन की ही तरह रिश्वत को भी समानान्तर साधन बनां रही है। बताया जाता है कि जनता की भलाई के नाम पर सरकार जो कुछ करती है, उसका ८५ फीसदी नौकरशाही तंत्र पर खर्च हो जाता है। शेष १५ प्रतिशत भी उपयुक्त व्यक्तियों तक पहुँचता होगा कि नहीं, इसमें संदेह है। बिचौलिए उसमें से भी बड़ा अंश हड़प जाते हों, तो कोई आश्चर्य नहीं।

कहने को प्रजातंत्र का प्रचलन है और सत्ता का सूत्र संचालक मतदाता माना जाता है। पर यह कोई रहस्य नहीं रहा कि मतदाता जिन विभ्रमों और दबावों के बीच रह रहा है, उसे देखते हुए उसके लिए विवेकपूर्ण निर्णय कर सकने का धरातल भी तो नहीं रह गया है। शासन संचालन को देखते हुए नये सिरे से सोचना पड़ता है कि राजतंत्र, अधिनायकवाद आदि की तुलना प्रजातंत्र को मिल भी सकती है या नहीं ?

प्रत्यक्षवाद ने आदर्शों पर से आस्थाएँ बुरी तरह डगमगा दी हैं। जैसे भी बने स्वार्थ साधन ही प्रमुख दृष्टिकोण रह गया है। मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई उत्कृष्टता की चर्चा तो कहने-सुनने को मिल जाती हैं; पर उसका व्यावहारिक प्रचलन मुश्किल से ही कहीं देखने को मिलता है। हम पाखण्ड, प्रपंच ही भक्ति और भगवान का, क्रिया-कृत्यों और धर्म-कलेवरों का रूप धारण करता जा रहा है। इन परिस्थितियों में हर सोचने वाले का मन टूटता और संदेह होता है कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना का उद्देश्य किस प्रकार, किस आधार पर पूरा हो सकेगा ?

कठिन समस्याओं के सरल समाधान

भूमि में उर्वरता की समुचित मात्रा हो, तो उस पर खेत, उद्यान आदि की विविध सुषमा-हरीतिमा उगाई जा सकती है। यदि वह ऊसर हो, नमक उगलती हो, फिर घास का एक तिनका तक जमने वाला नहीं है। भूमि से संबंधित कोई भी सम्पदा उपार्जित करने के लिए भूमि का सही, समतल होना आवश्यक है।

संसार में अगणित प्रकार की सुविधा-सम्पदाओं का अभिवर्द्धन आवश्यक होता है। पर उसके लिए उस मानवी चेतना का स्वस्थ, समुन्नत होना आवश्यक है, जो वैभव उत्पादन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यदि भूमि पर, साधनों पर आधिपत्य जमाकर बैठे हुए अथवा योजनाएँ बनाने वाले लोग विकृत मस्तिष्क के होंगे, तो वे कुछ बना सकना तो दूर, विग्रह और ध्वंस ही खड़े करेंगे। उलझी हुई समस्याओं का समाधान तो उनसे बन ही कैसे पड़ेगा ?

इन दिनों पतन-पराभव का संकट, विग्रह का वातावरण बनकर खड़े हुए अराजकता स्तर के असमंजसों की चर्चा विगत पृष्ठों पर की गयी है। इनका निवारण-निराकरण इन्हीं दिनों किया जाना आवश्यक है। देर करने का समय है नहीं, अन्यथा अवसर चूकने पर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगेगा नहीं। क्षयजन्य रुग्णता को दूर करने की प्राथमिकता तो दी जाती है; पर अगला कदम यही होता है कि रुग्णता से क्षीण, जर्जर काया को सही स्थिति में लाया जाय और जीवनी-शक्ति को इतना बढ़ाया जाय, जिससे दुर्बलता दूर हो सके और स्वस्थ-समर्थ मनुष्य की तरह जीवनयापन कर सकना संभव हो सके।

मस्तिष्क विकृत, हृदय निष्ठुर, रक्त दूषित, पाचन अस्त-व्यस्त हो, शरीर के अंग-प्रत्ययों में विषाणुओं की भरमार हो, तो फिर वस्त्राभूषण की भरमार, अगर-चंदन का लेपन और इत्र, फुलेल का मर्दन बेकार है। वस्त्र-आभूषण जुटा देने और तकिये के नीचे स्वर्ण-मुद्राओं की पोटली रख देने से भी कुछ काम न चलेगा। जबकि स्वस्थ, सुडौल होने के कारण सुन्दर दीखने वाला शरीर गरीबी में भी हँसती-हँसाती जिन्दगी जी लेता है; आये दिन सामने आती रहने वाली समस्याओं से भी निपट लेता है; और किसी न किसी प्रकार, कहीं न कहीं से प्रगति के साधन जुटा लेता है। वस्तुतः महत्त्व साधनों या परिस्थितियों का नहीं, व्यक्तिगत स्वस्थता, प्रतिभा और दूरदर्शिता का है। वह सब उपलब्ध रहे, तो फिर न अभावों की शिकायत करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ेगी और न जिस-तिस प्रकार के व्यवधान सामने आने पर भी अभ्युदय में कोई बाधा पड़ेगी।

औसत नागरिक स्तर का जीवन स्वीकार कर लेने पर सुविस्तृत खेतों, देहातों में रहा जा सकता है और वायुमण्डल वातावरण को प्रफुल्लता प्रदान करते रहने, संतुष्ट रखने में सहायक हुआ जा सकता है। प्राचीनकाल की सुसंस्कृत पीढ़ी इसी प्रकार रहती थी और मात्र हाथों के सहारे बन पड़ने वाले श्रम से जीवनयापन के सभी आवश्यक साधन सरलतापूर्वक जुटा लेती थी। न प्रदूषण फैलने का कोई प्रश्न था और न शहरों की ओर देहाती प्रतिभा पलायन का कोई संकट। न देहात दरिद्र, सुनसान, पिछड़े रहते और न शहर गंदगी, घिच-पिच, असामाजिकता के केन्द्र बनते थे। आज भी उस पुरातन नीति को अपनाया जा सके, तो जिन समस्याओं के कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है, उनके उभरने के कारण शेष न रहे।

'सादा जीवन-उच्च विचार' का सिद्धान्त अपनाते ही प्रस्तुत असंख्य समस्याओं में से एक के भी पैर न टिक सकेंगे। अपराधों की भरमार भी क्यों न हों, जब हर व्यक्ति ईमानदारी, समझदारी और बहादुरी की नीति अपनाकर श्रमशीलता, सभ्यता और सुसंस्कारिता को व्यावहारिक जीवन में स्थान देने लगेगा, तो देखते-देखते समस्याओं के रूप में छाया अंधकार मिटता चला जाएगा। गुजारे के लायक इतने साधन इस संसार में मौजूद हैं कि हर शरीर को रोटी, तन को कपड़ा, हर सिर को छाया और हर हाथ को काम मिल सके। तब गरीबी-अमीरी की विषमता भी क्यों रहेगी ? जाति-लिंग के नाम पर पनपने वाली विषमता का अनीति-मूलक और दुःखदायी प्रचलन भी क्यों रहेगा ?

मनुष्य स्नेह और सहयोगपूर्वक रहने के लिए पैदा हुआ है। लड़ने, मरने और त्रास देने के लिए नहीं। यदि आपाधापी न मचे, तो फिर एकता और समता में बाधा उत्पन्न करने वाली असंख्य कठिनाइयों में से एक का भी, कहीं अस्तित्व दृष्टिगोचर न हो। युद्ध प्रयोजनों में जो सम्पदा, शक्ति और प्रतिभा का नियोजन हो रहा है, उन सब को यदि बचाया जा सके और उन समूचे साधनों को नवसृजन प्रयोजनों में लगाया जा सके, तो समझना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी के उज्ज्वल भविष्य के संबंध में जो कल्पनाएँ की गई हैं, वे सभी दस वर्ष के भीतर नये सिर से, नयें ढाँचे में ढलकर साकार हो जायेंगी।

बिजली का अतिशय उत्पादन के लिए अब अणु ईंधन को व्यवहार में लाया जाने लगा है। इसकी बढ़ोत्तरी चल पड़े, तो आणविक राख एवं विकिरण का एक नया महादैत्य पैदा हो जायेगा, जिससे जान बचाना मुश्किल पड़ेगा। इसका विकल्प एक ही हो सकता है कि स्थानीय साधनों से छोटे बिजलीघर, जनरेटर स्तर के बनाये जायँ और उनके उत्पादन से एक दो हार्स पावर से चलने वाले छोटे कुटीर उद्योग लगाकर उनके संयुक्त सम्मिश्रण से आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय। इसी प्रकार के उत्पादन का उपयोग करने के लिए हर उपभोक्ता को सहमत किया जाय।

शासन तंत्र प्रायः ऐसी खर्चीली और कर्त्तव्यविमुख नौकरशाही के आधार पर चल रहे हैं, जिसके कर्मचारी, मालिकों के भी मालिक बनकर रह रहे हैं। ऐसी दशा में जन-कल्याण की वास्तविक व्यवस्था बन पड़ने की आशा तो एक प्रकार से अत्यन्त ही क्षीण स्तर की रह जाती है। होना यह चाहिए कि सहकारिता के आधार पर विकेन्द्रीकृत शासन एवं सेवा-भावना के आधार पर समूची व्यवस्था का संचालन हो। ऐसा शासन ही आदर्श हो सकता है और उसी के माध्यम से भौतिक एवं आत्मिक प्रगति का समग्र प्रयोजन पूरा हो सकता है।

समाज के सामने असंख्यों विकृतियाँ और व्यक्ति के सामने असंख्य समस्याओं के अम्बार खड़े हैं। उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग समस्या मानकर, उनके पृथक्-पृथक् समाधान सोचने में यद्यपि विश्व की मूर्धन्य प्रतिभाएँ अपने-अपने ढंग से उपाय खोजने और उपचार खड़े करने के लिए भारी माथा-पच्ची कर रही हैं; पर उनसे कुछ बन नहीं पा रहा है। न अस्पतालों, चिकित्सकों, औषधि, आविष्कारों पर असीम धनशक्ति-जनशक्ति लगाने से रोग काबू में आ रहे हैं और न पुलिस, कानून, कचहरी, जेल आदि अपराधों को कम करने में समर्थ हो रहे हैं। गरीबी हटाओ का नारा तो बहुत आकर्षक है; पर वस्तुतः अचिन्त्य-चिन्तन, दुर्व्यसनों आदि के रहते बैंकों के भारी कर्ज और ढेरों अनुदान बाँटने पर भी समस्या का वास्तविक हल हाथ लग नहीं रहा है। अगले दिनों जनमानस यह देखकर रहेगा कि अगणित समस्याएँ उत्पन्न कहाँ से होती हैं ? उस रानी मक्खी को खोजना है, जो आये दिन असंख्यों अण्डे-बच्चे जनती है और जिनकी भरण-पोषण में छत्तों की समस्त मधुमक्खियों के लगे रहने पर भी समस्याएँ जहाँ की तहाँ बनी रहती हैं।

नवसृजन की चेतना असमर्थ नहीं है

छोटी, सामयिक, स्थानीय एवं वैयक्तिक समस्याओं के उपाय-उपचार छोटे रूप में भी सोचे और खोजे जा सकते हैं; पर जब विपन्नताएँ व्यापक हों, तो उनसे निपटने के लिए बड़े पैमाने पर व्यापक तैयारियाँ करनी होती हैं। नल का पानी कुछ लोगों की जल-आवश्यकता पूरी कर सकता है; किन्तु सूखाग्रस्त विशाल भूखण्डों का स्थायी समाधान बड़े उपायों से ही बन पड़ता है। भगीरथ ने यही किया था। वे हिमालय में कैद जलराशि को गंगा के रूप में विशाल क्षेत्र में दौड़ने के लिए कटिबद्ध हो गये। फलस्वरूप उसके प्रभाव में आने वाले क्षेत्र समुचित जल व्यवस्था बन जाने से सुरम्य और समृद्धिशाली बन गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथाकथित बुद्धिमान और शक्तिशाली इन दिनों की समस्याओं और आवश्यकताओं को तो समझते हैं, पर उपाय खोजते समय यह मान बैठते हैं कि यह संसार मात्र पदार्थों से सजी पंसारी की दुकान भर है। इसकी कुछ चीजें इधर की उधर कर देने, अनुपयुक्त को हटा देने और उपयुक्त को उस स्थान पर जमा देने भर से काम चल जायेगा। समूचे प्रयास इन दिनों इसी दृष्टि से बन और चल रहे हैं। वायु-प्रदूषण दूर करने के लिए कोई ऐसी नयी गैस खोजने का प्रयत्न हो रहा है, जो हवा के भरते जा रहे विष को चूस लिया करे। खाद्यान्न की पूर्ति के लिए खादों के ऐसे भीमकाय कारखाने खुल रहे हैं, जो एक के दस पौधे उगा दिया करें। पर मूल कारण की ओर ध्यान न जाने से अभाव, असंतोष एवं विग्रह किस प्रकार निरस्त होगा, इसे सोचने की न जाने क्यों किसी को फुरसत नहीं है।

चोट की मरहम-पट्टी की जा सकती है, पर समस्त रक्त में फैले हुए "रक्तकैन्सर" को मरहम-पट्टी से कैसे ठीक किया जाय ? एक दिन तो कोई किसी को मुफ्त में भी रोटी खिला सकता है, पर आये दिन की आवश्यकताएँ तो हर किसी को अपने बलबूते ही हल करनी पड़ेंगी। उसके लिए किसी भी दानवीर के सदावर्त भण्डार में सभी लोगों का गुजारा चलता रहे, यह संभव नहीं।

व्यक्ति के सामने शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक स्तर की असंख्य समस्याएँ आये दिन नये-नये रूप में आती रहती हैं। उन सबसे निपटने के लिए अपनी ही सूझ-बूझ को इस स्तर तक विकसित करना चाहिए, जिससे आँगन का कूड़ा रोज साफ करते रहने की तरह आवश्यक समाधानों को भी सोचा और अपनाया जा सके।

वस्तुतः मनुष्य का चिन्तन, चरित्र और व्यवहार बुरी तरह गड़बड़ा गया है। उसकी स्थिति तो विक्षिप्तों जैसी हो गई है, उसी से ऐसे ऊटपटांग काम होने लगे हैं, जिनके कारण अपने और दूसरों के लिए विपत्ति ही विपत्ति उत्पन्न हो गयी है। पगलाये हुए व्यक्ति द्वारा की गयी तोड़-फोड़ की मरम्मत तो होनी ही चाहिए; पर साथ ही उस उन्माद की रोक-थाम भी होनी चाहिए, जिसने भविष्य में भी वैसी ही उद्दण्डता करते रहने की आदत अपनाई है।

मनुष्य को अड़चनों से निपटने के लिए योजना बनानी और तैयार करनी चाहिए। निराश होने से तो मात्र आशंकाओं का आतंक ही बढ़ेगा। यहाँ यह तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है कि सामान्यजन अपनी निजी समस्याओं को ही किसी प्रकार सँभालते, सुधारते रहते हैं, पर व्यापक-विपत्ति से मिलजुल कर ही निपटना पड़ता है। बाढ़ आने, महामारी फैलने जैसे अवसरों पर सामूहिक योजनाएँ ही काम देती हैं। पुरातन भाषा में ऐसे ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन को युग परिवर्तन अथवा अवतार अवतरणों जैसे नामों से पुकारा जाता रहा है। ऐसे तूफानी परिवर्तनों को महाक्रान्ति भी कहते हैं। क्रान्तियाँ प्रतिकूलताओं से निपटने के लिए संघर्ष रूप में उभरती हैं। पर महाक्रान्तियों को दूरगामी योजनाएँ बनानी पड़ती हैं। अनीति के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने के साथ-साथ नवसृजन के निर्धारण करने एवं कदम उठाने पड़ते हैं। इस अपने समय में अदृश्य में पक रही खिचड़ी को महाक्रान्ति के रूप में जाना जाय और युग परिवर्तन कहा जाय, इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य की संरचना जैसा कुछ नाम दिया जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं।

अत्यधिक विशालकाय सुविस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करने वाले ६०० करोड़ मनुष्य के चिन्तन को अवांछनीयता से विरत करके वांछनीयता के साथ जोड़ देने वाले कार्य को कोई एक व्यक्ति न कर सकेगा; पर इस तथ्य पर अविश्वास नहीं करना चाहिए। ऐसे अवसर भूतकाल में भी अनेक बार आये हैं। जब मनुष्य निराश होने लगते हैं, तब उनमें नये सिरे से, नई हिम्मत भरने के लिए प्रभात काल के अरुणोदय की तरह नये तूफानी प्रवाह उदय होते रहे हैं, जिनके लिए बड़ी उथल-पुथल भी असंभव नहीं होती।

पूर्णमासी को समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे ऐसे लगते हैं, मानों वे प्रशान्त सागर को ज्वार-भाटों के सहारे आकाश तक उछाल कर रहेंगे। मनुष्य के लिए यह सब कर सकना कठिन हो सकता है; पर उस प्रकृति के लिए तो ऐसी उठक-पटक, क्रीड़ा-विनोद मात्र है, जो आये दिन विशालकाय ग्रह-पिण्ड रचने और मिटाने का खेल-खिलवाड़ करते रहने में अलमस्त बालक की तरह निरत रहती है। स्रष्टा की सत्ता और क्षमता पर जिन्हें विश्वास है, उन्हें इसी प्रकार सोचना चाहिए कि गंदगी कितनी ही कुरुचिपूर्ण क्यों न हो, वह तूफानी अन्धड़ के दबाव और मूसलाधार वर्षा के प्रवाह के सामने टिक नहीं सकेगी। बिगाड़ रचने में मनुष्य ने अपनी क्षुद्रता का परिचय कितना ही क्यों न दिया हो ? पर इस सुन्दर भूलोक के नन्दन वन का संस्थापक, उसे इस प्रकार वीरान न होने देगा जैसा कि कुचक्री उसको विस्मार कर देने के षड्यंत्र रच रहे हैं। अनाचारियों की करतूतें निश्चय ही रोमांचकारी होती हैं। पर विश्व को संरक्षण देने वाली ऐसी देव-सत्ताएँ भी सर्वथा निष्क्रिय नहीं, जिनको सृष्टि का संतुलन बनाये रहने का काम सौंपा गया है।

मृत्यु की विभीषिका आये दिन भयंकर मार-काट मचाती और असंख्यों को हर क्षण निष्प्राण करती रहती है। इतने पर भी उसकी चुनौती को सृजन का देवता सदा से स्वीकार करता रहा है। मरने वालों की तुलना में जन्मने वाले सदा अधिक रहे हैं। यदि ऐसा न होता, तो प्राणियों की वृद्धि रुक गयी होती और धीरे-धीरे समस्त जीवधारी मर-खप कर कब के समाप्त हो गये होते; जबकि वे निरन्तर अपनी वंश-वृद्धि ही करते चले आ रहे हैं। यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथ्य बताते हैं कि निराश और चिन्तित करने वाला वातावरण कितना ही निराशाजनक क्यों न हो, विचारशीलों में से एक को भी हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मनुष्य मात्र भ्रष्ट चिन्तन और भ्रष्ट आचरण पर ही उतारू रहता है। मनुष्यता समय-समय पर ऐसी आश्चर्यजनक करवटें लेती रही है, जिसके अनुसार देवमानवों का नया बसन्त, नई कोपलें, नई कलियाँ और नये फल-फूलों की सम्पदा लेकर सभी दिशाओं में अट्टहास करता दीख पड़ता है। महामानवों, देवपुरुषों, मनीषियों, सुधारकों, सृजेताओं का ऐसा उत्पादन होता है, मानो वर्षा ऋतु ने अगणित वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं की नई फसल उगाने की सौगन्ध खाई हो ? अगले ही दिनों नये सृजेताओं की एक नई पीढ़ी हम में से ही विकसित होगी, जिसके सामने अब तक के सभी सन्तों, सुधारकों और शहीदों के पुरुषार्थ छोटे पड़ जायेंगे।

देवमानवों का अवतरण

इतने कामों को करेगा कौन ? होंगे कैसे ? नरक को स्वर्ग में उलट देने की प्रक्रिया का आखिर माध्यम क्या होगा ? उस योजना के क्रियान्वित होने की विधि-व्यवस्था किस प्रकार बन पड़ेगी ? ऐसे अनेकों असमंजस भरे प्रश्न इन दिनों असंख्यों के मन में उठ रहे होंगे। उठने स्वाभाविक भी हैं; क्योंकि विशाल पर्वत जैसे टीले और समुद्र जैसे गहरे खंदक को समतल बना देने की बात सचमुच ही आश्चर्यजनक है। कई बार तो वैसा बन पड़ने का विश्वास तक नहीं होता; पर आस्थावानों को अविश्वास करने का कोई कारण नहीं। संव्याप्त अंधकार की गहरी और लम्बी निशा में जब हाथ को हाथ नहीं सूझते, पलट कर सो जाने के अतिरिक्त और कुछ समझ में नहीं आता; तब न जाने क्या आश्चर्य होता है कि ब्रह्ममुहूर्त, उषाकाल और अरुणोदय का सिलसिला आरंभ होकर दोपहर के तपते दिनमान में बदल जाता है। इसे कहते हैं—असंभव का संभव होना। जब ऐसे ही अगणित चमत्कार इस सृष्टि में आए दिन होते हम देखते रहते हैं, तो किसी को प्रतिकूलताओं को उलट कर अनुकूलता में बदल जाने पर क्यों आश्चर्य करना चाहिए ? बाल की नोक से भी छोटा शुक्राणु जब कुछ ही दिनों में हँसता-खेलता शिशु और फिर बाद में पराक्रमी प्रौढ़ बन सकता है, तो उपयोगी परिवर्तन की बात पर किसी को क्यों अविश्वास करना चाहिए ?

युग बदलते ही रहे हैं। पिछला सतयुग यदि आलसी-निद्रा से विरत होकर फिर अपना कारोबार सँभाल ले, तो उसमें असंभव-संभव जैसी निरर्थक ऊहापोह क्यों करनी चाहिए ? मनुष्य के लिए तो एक चींटी उत्पन्न करना तक असंभव है; पर भगवान इसी अपने धरातल पर क्षण-क्षण में कोटि-कोटि संख्या में चित्र-विचित्र आकृति-प्रकृति के प्राणी उत्पन्न करता रहता है। आस्तिकों को तो कम से कम यह तथ्य भूलना ही नहीं चाहिए। वर्तमान युग परिवर्तन किसी व्यक्ति विशेष की योजना नहीं है। इसके पीछे महाकाल का दुर्धर्ष संकल्प काम कर रहा है। प्रकृति ने नयी संरचना के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना आरंभ कर दिया है। इस दिव्य दर्शन को जो आँखें समय रहते देख सकें, उन्हें बड़भागी ही कहा जायेगा और जो समय की चुनौती स्वीकार करने में अपने पैर आगे बढ़ा सकें उनके लिए तो अंगद-हनुमान, नल-नील जैसी उपमा देने से कम में बात बनती ही नहीं।

इन्हीं दिनों एक प्रचण्ड शक्तिशाली जाज्वल्यमान तारक प्रकट हो रहा है, जिसकी लपलपाती लपटें संसार भर के जीवन्त और संवेदनशील मनुष्यों को झकझोर कर खड़े करेंगी और कार्य क्षेत्र में उतारने के लिए बाधित करेंगी। यह देव-समुदाय देखने में भले ही रीछ-वानरों जैसा हो; पर पुरुषार्थ ऐसा करेगा, जिसे असंभव को संभव बनाने जैसा माना जा सके। ईश्वर-विश्वासी जानते हैं कि भगवान का अनुग्रह जहाँ साथ है, वहाँ असंभव जैसी कोई चीज शेष नहीं रह जाती।

जब आवेश की ऋतु आती है, तो जटायु जैसा जीर्ण-शीर्ण भी रावण जैसे महायोद्धा के साथ निर्भय होकर लड़ पड़ता है। गिलहरी श्रद्धामय श्रमदान देने लगती है और सर्वथा निर्धन शबरी अपने संचित बेरों को देने के लिए भाव-विभोर होती है। सुदामा को भी तो अपनी चावल की पोटली समर्पित करने में संकोच बाधक नहीं हुआ था। यह अदृश्य में लहराता दैवी-प्रवाह है, जो नवसृजन के देवता की झोली में समयदान, अंशदान ही नहीं, अधिक साहस जुटाकर हरिश्चन्द्र की तरह अपना राजपाट और निज का, स्त्री बच्चों का, शरीर तक बेचने में आगा-पीछा नहीं सोचता। दैवी आवेश जिस पर भी आता है, उसे बढ़-चढ़ कर आदर्शों के लिए समर्पण कर गुजरे बिना चैन नहीं पड़ता।

यही है महाकाल की वह अदृश्य अग्नि शिखा, जो चर्मचक्षुओं से तो नहीं देखी जा सकती है; पर हर जीवन्त व्यक्ति से समय की पुकार कुछ महत्वपूर्ण पुरुषार्थ कराये बिना छोड़ने वाली नहीं है। ऐसे लोगों का समुदाय जब मिल-जुलकर अवांछनीयताओं के विरुद्ध निर्णायक युद्ध छेड़ेगा और विश्वकर्मा की तरह नई दुनिया बनाकर खड़ी करेगा, तो अंधे भी देखेंगे कि कोई चमत्कार हुआ। पतन के गर्त में तेजी से गिरने वाला वातावरण किसी वेधशाला से छोड़े गये उपग्रह की तरह ऊँचा उठ कर अपनी नियत कक्षा में द्रुतगति से परिभ्रमण करने लगेगा।

अपने युग का अवतार हर किसी को दो संदेश सुनाएगा, एक आत्म-परिष्कार और दूसरा सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन। ध्वंस और सृजन की यह दुहरी प्रक्रिया इन्हीं दिनों तेजी से चलेगी और निरर्थक टीलों को गिराती, भयंकर खड्डों को पाटती हुई सब कुछ समतल करती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चली जायेगी; ऐसा समतल जिस पर नन्दनवन और चन्दनवन जैसे अगणित उद्यान लगाये जा सकें।

अन्तरिक्ष से धरती पर उतरने वाली युग-चेतना गंगावतरण की तरह धरती पर गिरेगी, मत्स्यावतार को पीछे छोड़ देने वाली गति से आगे बढ़ेगी। उसका कार्यक्षेत्र असीम होगा। जल, थल और नभ की समूची परिधि उसकी पकड़ में होगी।

फिर होगा क्या ? उत्तर एक ही है—विचार परिवर्तन, करुणा से ओत-प्रोत भावसंवेदना, व्यक्तित्वों में संयम और कार्यक्रम में आदर्शवादी पराक्रम। बस इतने भर नवगठन से अपनी दुनिया का काम चल जायेगा। उससे वे सभी समस्याएँ, जो इन दिनों सुरसा, सिंहिका, ताड़का और सूर्पणखा जैसी विकरालता धारण किए हुए हैं, अपना अस्तित्व गँवाती चली जायेंगी। फिर सृजन, अभ्युदय, उत्थान ने तो निश्चय किया है कि साधनों के अभाव वाले सतयुग की तुलना में आज अपेक्षाकृत अधिक साधन सम्पन्न और बुद्धि कौशल प्राप्त होने के कारण वह मात्र सतयुग की पुनरावृत्ति न करेगा, वरन् धरती पर स्वर्ग उतार कर रहेगा।

दुर्गावतरण की पुरानी कथा का अब नया संस्करण नई सज-धज के साथ, नये सिरे से, नये रूप में प्रकट होने के लिए सहमत हीं नहीं, उतारू भी हो गया है। देवमानव अपनी संयुक्त शक्ति को पहली बार संगठित करेंगे। उन्हें अनुभव हो गया है कि पिछले दिनों उन्होंने ज्ञान, कर्म और भक्ति की साधना तो की; पर यह भूल गये कि उन्हें संगठित शक्ति का अभिनव जागरण करना चाहिए और जहाँ तक उनका प्रभाव पहुँचे, वहाँ उन्हें उच्चस्तरीय आलोक का मुक्तहस्त से विस्तार करना चाहिए। उनने अपनी पिछली भूलों को सुधारने का निश्चय किया है और कार्यक्रम बनाया है, कि जिन भी मनुष्यों में जीवट पाया जायेगा, उन सभी में देवत्व का उदय किये बिना वे चैन से नहीं बैठेंगे।

लगता है, विश्व-चेतना ने अपनी रीति-नीति और दिशा-धारा में उज्ज्वल भविष्य की संरचना कर सकने वाले सभी तथ्यों का परिपूर्ण समावेश कर लिया है। उसी का उद्घोष दसों-दिशाओं में गूँज रहा है। उसी की लालिमा का आभास अन्तरिक्ष के हर प्रकोष्ठ में परिलक्षित हो रहा है। न जाने किसका पांचजन्य बज रहा है और एक ही ध्वनि निःसृत कर रहा है—बदलाव—बदलाव—बदलाव, उच्चस्तरीय बदलाव—समग्र बदलाव। यही होगी अगले समय की प्रकृति और नियति। मनुष्यों में से जिनमें भी मनुष्यता जीवित होगी, वे यही सोचेंगे-यही करेंगे। उसकी परिवर्तन-प्रक्रिया अपने आप से आरंभ होगी और परिवार-परिकर को प्रभावित करती हुई समूचे समाज को महाकाल के अभिनव निर्धारण से अवगत और अनुप्राणित करेगी।

उन्नति के लिए शिक्षा ही नहीं, विद्या भी अनिवार्य

समस्याओं में एक और पक्ष ऐसा है, जो तुरत समाधान चाहता है। शिक्षा की बहुत थोड़ी आवश्यकता ही स्कूल-कॉलेजों के माध्यम से पूरी हो पाती है। एक शब्द में इसे यों भी कहा जा सकता है कि इससे लिखा-पढ़ी, हिसाब-किताब जैसे ही काम चल पाते हैं। यह भी हो सकता है कि उनके मस्तिष्क में वे जानकारियाँ भी कुछ अधिक मात्रा में भर गयीं हों, जो आमतौर से व्यावहारिक जीवन में कभी काम नहीं आतीं। इतिहास, भूगोल, रेखागणित आदि ऐसे ढेरों विषय हैं, जो निजी जीवन में कदाचित् ही कभी कुछ काम आते हों ? किन्तु प्रचलन यही है कि स्कूलों की कक्षा पास होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेने पर ही किसी को शिक्षित कहलाने का अधिकार मिलता है। यद्यपि उसमें काम का कम और बेकाम का अधिक होता है। नौकरी न लगने पर तथाकथित शिक्षित लोग अपने और दूसरों के लिए समस्या बनते हैं। शारीरिक श्रम के काम करने में उन्हें बेइज्जती मालूम पड़ती है। आदत भी छूट जाती है। ऐसी दशा में शिक्षित बेकार अपने और दूसरों के लिए अधिक गंभीर समस्या बनते हैं। इसकी तुलना में अशिक्षितों को अपेक्षाकृत कम परेशानी का सामना करना पड़ता है।

शिक्षा की गुण-गरिमा जितनी भी गायी जाय, उतनी ही कम है। विद्या को ज्ञानचक्षु की उपमा दी गयी है। उसके अभाव में मनुष्य अन्धों के समतुल्य माना जाता है। विद्या को सर्वोपरि धन माना गया है। उसमें अमृत की प्राप्ति होती है, ऐसा कहा जाता रहा है। पर उसमें यह सभी विशेषताएँ तब उत्पन्न होती हैं, जब उसके द्वारा मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव का, व्यक्तित्व का विकास हो; प्रतिभा को समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने में सहायता मिले। अन्यथा भ्रष्ट-चिन्तन और दुष्ट-आचरण से मनुष्य और भी अधिक खतरनाक होता जाता है। उसे ब्रह्मराक्षस की संज्ञा दी जाती है।

इस तथ्य पर नये सिरे से विचार करना पड़ेगा कि शिक्षा के नाम पर ऐसे ही कुछ अगड़म-बगड़म चल रहा है, या उसमें व्यक्तित्व को निखारने वाले, व्यावहारिक सभ्यता के ढाँचे में ढालने वाले, प्रतिभा को प्रखर बनाने वाले लक्ष्यों का किसी स्तर तक समावेश बन पड़ रहा है ? इन्हीं के आधार पर व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र को समुन्नत बनाने का अवसर मिलता है। यदि मानवी गरिमा के अनुरूप विभूतियों का समावेश न हो सके, तो मात्र बहुज्ञ होने के नाम पर, उद्धत अहंमन्यता से सम्बन्धित दुर्गुण सँजो लेने पर कोई अशिक्षित से भी गया-गुजरा सिद्ध हो सकता है। वह ऐसे दुःस्वभाव का आदी बन जायेगा, जिससे हर किसी का, हर प्रकार अहित ही हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है। शिक्षा की इन रचनात्मक और ध्वंसात्मक दोनों ही शक्तियों से हमें भली प्रकार अवगत होना चाहिए।

समाज को इच्छानुरूप ढालने वाले मूर्धन्यों ने अपने समाज की शिक्षा पर पूरी तरह ध्यान केन्द्रित किया है। जर्मनी, रूस, चीन, इजराइल, यूगोस्लाविया जैसे नवोदित देशों ने शिक्षा को इच्छित ढाँचे में ढालने के उपरान्त ही यह सफलता पायी, जिसके फलस्वरूप वे अपने देशवासियों का चिन्तन, चरित्र एवं स्वभाव-अभ्यास ऐसा ढाल सके, जिसके सहारे सर्वसाधारण में नये सिरे से, नई जीवट उत्पन्न कर सके।

अपने देश में इस प्रकार की शिक्षा की कमी सर्वत्र अनुभव की जा रही है; पर जिनके हाथ में नीति-निर्धारण एवं व्यवस्था-संचालन की क्षमता है, उन्हें वर्तमान परिस्थितियों में किसी बड़े परिवर्तन के लिए सहमत कर सकना कठिन दीखता है। ऐसी दशा में एक ही विकल्प शेष रह जाता है कि देश के मनीषियों, विचारशीलों को इस अभाव की पूर्ति का भार अपने जिम्मे लेना चाहिए और समझदार लोगों के सहयोग से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाना चाहिए। परमार्थ भी जीवन का एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष है। उसे और भी अधिक उभारा जा सकता है और व्यक्तित्वों में उत्कृष्ट प्रगतिशीलता बढ़ाने के लिए केन्द्रीभूत किया जा सकता है।

प्राचीनकाल में शिक्षा उसे कहते थे, जो निर्वाह साधनों को जुटाने और उनका सही प्रयोग कर सकने की विधा समझाकर अपना प्रयोजन पूरा करती थी। इसी के साथ वह प्रकृति-संपदा और चेतना के क्षेत्र में प्राणियों तथा मनुष्य की रीति-नीति में कायाकल्प जैसा परिवर्तन उत्पन्न करती थी। इसे जागरूकता, विचारशीलता या विवेकनिष्ठा भी कहा जा सकता है।

नशेबाजों को अर्द्धमूर्छित कहा जाता है। यों उनके हाथ-पाँव आँख, कान आदि अवयव तो साधारण रीति से काम करते दिखाई पड़ते हैं, पर विवेक-बुद्धि काम नहीं करती। सभ्यता एवं सुसंस्कारिता से सम्बन्धित जागरूकता को वे भुला बैठते हैं। ऐसी ही स्थिति प्रायः अनगढ़ जनों की होती है। मानवी गरिमा के अनुरूप चिन्तन किस प्रकार करना चाहिए ? अपना चरित्र स्तर कैसा रखना चाहिए ? व्यवहार में शालीनता का समुचित समावेश किस प्रकार रखना चाहिए ? वह सब औचित्य वे भूल जाते हैं। उनीदों से, खुमारीग्रस्तों से जैसी भूलें होती रहती हैं, वैसी ही वे आये दिन पग-पग पर करते रहते हैं।

आत्म-विस्मृति का लांछन ऐसा है, जिसके रहते मनुष्यों को नरपशु, वनमानुष आदि के नाम से ही जाना जा सकता है। मनुष्यता, सभ्यता एवं सुसंस्कारिता से आरंभ होती है। यही है अपने स्तर के गुण, कर्म, स्वभाव के सम्बंध में बरती जाने वाली जागरूकता। इसके अभाव में मनुष्य गयी-गुजरी स्थिति में ही पड़ा रहता है। प्रगति का द्वार तो उसके लिए बन्द ही रहता है। सुविकसित जनों की तुलना में उसकी रीति-नीति उपहासास्पद, हेय एवं तिरस्कृत ही बनी रहती है।

हमें यह मानकर चलना चाहिए कि इन दिनों सर्वत्र भौतिकवाद का ही बोल-बाला है। मनुष्य अपने आपको मन समेत इन्द्रियों का समुच्चय शरीर मानता है। इसीलिए उसकी जो कुछ इच्छा, अभिलाषा, आकांक्षा, चेष्टा होती है, वह शरीर की परिधि तक ही सीमित होकर रह जाती है। पढ़ना, करना और सोचना उसी छोटी परिधि में सीमाबद्ध रहता है। आत्मा भी कोई चीज है, इस क्षेत्र में उससे कुछ सोचते, करते भी नहीं बन पड़ता। वस्तुतः यह कार्य विद्या के क्षेत्र में आता है। सभ्यता शरीर को और सुसंस्कारिता, मन को प्रभावित करती तथा परिष्कृत बनाती है। यह पक्ष उपेक्षित है। जब उसकी महत्ता, आवश्यकता तक समझी न जा सकेगी, तो फिर कोई कुछ करेगा भी क्यों ?

शिक्षा को लोक व्यवहार का, उपार्जन प्रक्रिया, सुविधा-संग्रह का एक प्रयोजन भर माना जा सकता है। इतने भर से किसी का जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता और सज्जनता-शालीनता की विधा के अभाव में, मनुष्य का भावनात्मक-स्तर पशुवत् ही बनकर रह जाता है।

विद्या की एक सांगोपांग रूपरेखा बनानी पड़ेगी और उसे जन-जन के मन-मन में प्रविष्ट करने की इतनी बड़ी-इतनी व्यापक योजना बनानी पड़ेगी; जो स्कूली शिक्षा की कमी पूरी करने में समर्थ हो सके। इसके लिए विचारशील भाव-सम्पन्नों का समय, श्रम, मनोयोग एवं पुरुषार्थ प्रायः उतनी ही मात्रा में नियोजित करना पड़ेगा, जितना कि सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों में, शरीर साधन जुटाने के लिए शिक्षा के नाम पर लगाया जाता है। इन्हीं योजनाओं को बड़ी उमंगों के साथ, बड़ी तैयारियों का समन्वय करते हुए व्यापक स्तर पर क्रियान्वित करना इन्हीं दिनों अभीष्ट है। यों तो जीवनयापन के लिए अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं। आये दिन समस्याएँ सुलझानी पड़ती हैं। इतने पर भी प्राथमिकता देने योग्य एक ही तत्व है—साँस चलना, प्राण बचे रहना। यदि उसका प्रबंध न हो सके; तो समझना चाहिए, अब-तब में जीवन का अन्त ही होने वाला है। घुटन के बीच भला कोई कितने समय जीवित रह पायेगा ?

लगता तो यही है कि व्यक्ति, समाज और संसार के सामने अगणित समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं और सर्वग्राही चुनौती बन रही हैं। सघन अन्धकार में प्रकाश की किरण कहीं से फूटती नहीं। न विज्ञान कोई समुचित उत्तर दे पाता है और न बुद्धिमानों की विलक्षण बुद्धिमत्ता ही काम आती है।

अपराधों का बढ़ना, जनसंख्या का दिन-दूना रात-चौगुना होता विस्तार, शारीरिक और मानसिक रोगों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्धड़, हर जगह विषाक्तता बिखेरता प्रदूषण, दरिद्रता और निरक्षरता जैसे अनेकों कारण हैं, जो त्रास-संताप के आधार बने हुए हैं। राजनीति क्षेत्र से भी निराशा ही हाथ लगती है, अराजकता ही नंगा नाच करती है। धर्म प्रचारकों, पुरोहितों ने कभी सतयुग का मेरुदण्ड बनकर अपनी गरिमा जतायी थी, पर अब तो वहाँ भी वंश और वेश ही अपनी जय-जयकार करा रहा है। कर्त्तव्यों को पीछे धकेल दिया गया और अधिकारों को चौगुना-सौगुना कहकर जताया जा रहा है और भी न जाने कहाँ-कहाँ, क्या-क्या अनर्थ हो रहा है; पर यह सूझ नहीं पड़ता कि इनका निराकरण कौन करेगा ? कैसे करेगा ?

यह तथ्य हजार बार समझा और लाख बार समझाया जाना चाहिए कि मानवी चेतना के विभ्रम और व्यामोह-ग्रस्त हो जाने से ही सब कुछ उलट-पुलट हो गया है। सोचने, करने और प्रचलन में उतारने की बात मात्र एक ही है कि मानवी गरिमा को भुला न दिया जाय। संकीर्ण स्वार्थपरता को सीमित कैसे रखा जाय ? सहकारिता, उदारता जन-जन को प्रिय लगे और उसके लिए उत्साह उभरे। तात्कालिक लाभ को इतना महत्त्व न मिले कि उसकी आतुरता के आगे दूरदर्शी विवेकशीलता के पैर न टिक सकें। पूर्वाग्रह इतने हठी न हों, जो स्वतंत्र-चिन्तन के लिए कहीं कोई गुंजायश ही न रहने दें। यदि इस स्तर का मानसिक संतुलन बिठाया जा सके, तो मनुष्य के पास इन दिनों भी इतनी समझ, सम्पदा और दक्षता मौजूद है, जिसके सहारे विनाश को विकास में बदला जा सके।

इसी स्तर की प्रखर प्रतिभा अगले दिनों इस प्रकार घन-घोर रूप से बरसने वाली है कि उसके प्रभाव से सभी प्रभावित होंगे, यही समाधान सोचने और सही कदम उठाने लगेंगे। व्यक्तित्वों में देवत्व का अनुपात बढ़ेगा, तो कोई कारण नहीं कि अपनी इस धरती पर स्वर्गोपम-वातावरण, सतयुगी सुख-शान्ति का अभिनव सृजन करता दिखाई न पड़े।

दन्त कथा है कि दो सहेलियाँ थीं—एक विद्या, दूसरी शिक्षा। विद्या राजकुमारी थी और शिक्षा नौकरानी। दोनों की शक्ल-सूरत मिलती-जुलती थी। एक दिन दोनों वन-सरोवर में नहाने गयीं। कपड़े उतार कर किनारे पर रख गयीं। नहाते समय शिक्षा को सूझा कि मेरे लिए यही अवसर है कि राजकुमारी बन बैठूँ।

शिक्षा उतावली में निकली और राजकुमारी के कपड़े पहन कर राजमहल जा पहुँची। उसने लोगों को यह भी बता दिया कि राजकुमारी डूबकर मर गयी है। उसे चुड़ैल की योनि मिली है। अब जहाँ-तहाँ छिप कर बैठी रहती है और किसी परिचित को पहचान लेती है, तो उस पर हमला करने से नहीं चूकती। लोगों ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया। षड्यंत्र सफल हो गया। राजकुमारी नंगी कैसे-कहाँ जाती ? लाज बचाने के लिए वह तब से लेकर अब तक जंगलों में भटकती, किसी प्रकार कहीं लुक-छिप कर जीवनयापन कर रही है।

विद्या को अमृतवर्षिणी कहा गया है और शिक्षा अन्नपूर्णा कहलाती है। स्कूलों-कॉलेजों में जो पढ़ा-पढ़ाया जाता है, उसका प्रमुख प्रयोजन अधिक पैसा कमा सकने की दक्षता बढ़ा लेना भर है। विद्या का उद्देश्य और प्रतिफल भिन्न है। वह व्यक्तित्व को उभारती, प्रतिभा को जगाती, दृष्टिकोण को उत्कृष्टता से जोड़ती और अन्तःकरण को आत्मीयता एवं उदारता से लबालब भरती है। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि लोगों ने विद्या का, संजीवनी विद्या का महत्त्व भुला दिया एवं उसे अनावश्यक ठहराकर उपेक्षित एवं तिरस्कृत बना दिया है। यही वह मूलभूत कारण है, जिसने इस सुन्दर संसार को बुरी तरह दीन-हीन एवं अपराधी प्रवृत्ति का बना दिया है। परिणाम जो अवश्यंभावी था, वह विश्व विनाश के रूप में सामने प्रस्तुत भी है।

महापरिवर्तन जब भी कभी आरम्भ होगा, तब उसका स्वरूप एक ही होगा कि विद्या को जीवित-जाग्रत किया जाय। उसके प्रचार-विस्तार का इतना प्रचंड प्रयास किया जाय कि लम्बे समय से छाये हुए कुहासे को हटाया जा सके और उस प्रकाश को उभारा जाय, जो हर वस्तु का यथार्थ स्वरूप दिखाता और किस का, किस प्रकार सहयोग होना चाहिए—यह सिखाता है।

प्राचीनकाल में साक्षरता का, भाषा और लिपि का महत्त्व तो सभी समझते थे और उसे पुरोहित-यजमान मिल-जुल कर हर जगह सुचारू रूप से पूरा कर लेते थे। पुरोहितों की आजीविका हेतु 'शिक्षार्थियों के अभिभावक दान-दक्षिणा के रूप में जो दे दिया करते थे, वही अपरिग्रही, मितव्ययी जीवन जीने वाले ब्राह्मणों के लिए पर्याप्त होती थी। शिक्षा-साक्षरता के लिए कोई विशेष योजना या व्यवस्था नहीं बनानी पड़ती थी।

संजीवनी विद्या का दायित्व ऋषि वर्ग के मनीषी उठाते थे। जो अधिकारी होते थे, उन्हें अपने आश्रमों, गुरुकुलों, आरण्यकों में बुलाते थे। उपयुक्त वातावरण में उपयुक्त अभ्युदय की समुचित योजना चलाते थे।

बालकों का जो साक्षरता स्तर का प्रशिक्षण चलता था, उसके लिए गाँव-गाँव छोटे-बड़े देवालय बना लिये जाते थे। उपयुक्त-स्तर के शिक्षार्थियों के लिए वहीं श्रद्धासिक्त वातावरण में पढ़ाई पूरी हो जाती थी। तब शिक्षा और आजीविका का कोई सीधा संबंध नहीं था। पढ़ाई जानकारी बढ़ाने के लिए होती थी और कमाई के लिए कृषि, पशुपालन, कुटीर-उद्योग, क्रय-विक्रय जैसे कौशल काम आते थे। शिल्प-कला जैसे क्रिया-कलाप भी इसी क्षेत्र में सम्मिलित रहते थे। इसलिए पढ़ाई के लिए सामान्य स्तर का प्रयत्न किशोरावस्था तक पूरा हो जाता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्दरपूर्ति-आजीविका के लिए तरुण-स्तर के लोग अपनी योग्यता एवं आवश्यकता के अनरूप ही काम-धंधे खोज लेते थे।

विद्या का—प्रज्ञा का युग इन्हीं दिनों तूफानी गति से बढ़ता चला आ रहा है। उसका लक्ष्य निश्चित और निर्धारित है—हर मस्तिष्क में नये सिरे से, नयी हलचल उत्पन्न करना। अपनायी हुई मान्यताएँ-धारणाएँ कितनी ही पुरातन या अभ्यस्त हों, वह उन्हें उखाड़ कर ही रहेगा। साथ ही वह दूरदर्शी विवेकशीलता की ऐसी वर्षा करेगा, जिसके प्रभाव से औचित्य का ही सर्वत्र स्वागत किया जावेगा। विवेक और औचित्य के दो आधार ही नवयुग की स्थापना करेंगे। हर कोई उन्हीं को स्वीकार-अंगीकार करेगा; भले ही उन्हें समय की अनिवार्य आवश्यकता ने नये सिरे से ही प्रतिपादित क्यों न किया हो ?

भव्यसमाज के नव-निर्माण का एकमात्र आधार—अध्यात्म

बुद्धिवादियों का एक वर्ग बहुत समय से यह कहता आया है कि सभी प्रकार की विपत्तियाँ आर्थिक कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि आर्थिक सुविधा हो—सम्पन्नता बढ़े तो फिर न तो किसी को पिछड़ा रहना पड़ेगा और न चोरी, बेईमानी अपनानी पड़ेगी। इस वर्ग के लोग उत्पादन बढ़ाने और खर्च में किफायत करने पर उतना जोर नहीं देते जितना सम-वितरण पर। उनका कहना है कि जिनके पास पैसा है, उनसे लेकर सबको बाँट दिया जाय तो अमीरी बँट जायेगी। सब लोग सम्पत्तिवान बन जायेंगे, फलतः अन्य समस्याओं के साथ नैतिक समस्याओं का भी समाधान हो जायगा। इस वर्ग के लोग अपने को साम्यवादी कहते हैं।

दूसरा वर्ग शिक्षा की कमी को पिछड़ेपन का कारण मानता है। वह शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ नैतिकता सहित राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का स्वप्न देखता है। तीसरा वर्ग शासन-पद्धति के सम्बन्ध में यह कहता है कि राज्य के हाथ में असीम शक्ति होती है, वह कठोर दण्ड व्यवस्था के सहारे अपराधी तत्वों को रोक सकता है। राष्ट्रीय सम्पत्ति का मनमाना उपयोग करके वह समृद्धि और प्रगति का द्वार खोल सकता है। कई व्यक्ति देशों, वर्गों की संकीर्णता को पारस्परिक विग्रह का कारण मानते हैं और एकता के लिए इन सभी विभेदों को मिटाकर विश्व-राज्य, विश्व धर्म, विश्व-व्यापार का सृजन होने पर सुख-शान्ति के मार्ग की कठिनाइयाँ दूर होने की बात सोचते हैं।

समस्याओं के सामयिक कारण व्यक्तियों की भूलें अथवा दुष्टताएँ होती हैं। परिस्थितियाँ भी कई प्रकार की विपन्नता उत्पन्न करती हैं। मूर्धन्य व्यक्ति प्रस्तुत साधनों के सहारे उनके हल भी निकालते रहते हैं। टूट-फूट की मरम्मत और विकृतियों की काँट-छाँट चलती रहती है। पर चिरस्थायी समाधान का मार्ग नहीं मिलता। हजामत बनाते-बनाते नये बालों की उपज जिस प्रकार उत्पन्न हो जाती है, उसी तरह उलझनें नये या पुराने रूप में फिर उठ खड़ी होती हैं। शान्ति एक सुखद सपना भर बनी रहती है। उसके लिए आशा-अपेक्षा तो की जाती रहती है पर वैसी स्थिति बनती नहीं, जिसमें व्यक्ति को सुरक्षा और समाज को सुव्यवस्था की स्थिति में रहते हुए देखा जा सके।

समाधान के उपयुक्त सुझावों में से सभी आंशिक रूप से सही हैं। उन सभी प्रतिपादनों के कार्यान्वित होने से मनुष्य जाति के सामने प्रस्तुत कठिनाइयों में से कितनों का ही एक सीमा तक समाधान निकल सकता है, पर वह होगा आंशिक और सामयिक ही क्योंकि उनमें उन भौतिक कारणों का ही निराकरण सुझाया गया है, जो प्रत्यक्षतः बहुत-सी विपत्तियों और उलझनों के कारण प्रतीत होते हैं। यह फुन्सियों पर मरहम लगाने की तरह है। मोटी बुद्धि से फुन्सी अपने आप ही अपना कष्ट-कारण है, जबकि बात कुछ और ही होती है। रक्त विकार से फुन्सियाँ उठती हैं। रक्त-विकार के कारणों में पेट में जमी विषाक्तता बहुत बड़ा कारण होती है। यदि जुलाव करा दिया जाय, रक्त-शोधक उपचार किये जाएँ तो फुन्सियाँ अपने आप सूखने लगती हैं। तब बहिरंग उपचार से अथवा सामान्य मरहम से भी वे अच्छी हो जाती हैं। उसके विपरीत यदि रक्त-विकृति बनी रहे तो मरहम लगाते रहने पर भी वे बहुत दिन में अच्छी होती हैं और एक के अच्छे होते दूसरी नई उठ खड़ी होती हैं। फुन्सियों का निराकरण स्थायी रूप से करना हो तो उस मूल कारण तक जाना होगा जहाँ से अनेक प्रकार के रोग उठते और रूप बदल-बदल कर सामने आते रहते हैं। दाद, खाज, छाजन, चेचक, गठिया सूजन, जकड़न आदि में प्रधानतया रक्त विकार ही निमित्त होता है। यद्यपि, इन सब रोगों के लक्षण, स्वरूप और कष्ट-अनुभव भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उपचार इनका अलग-अलग भी हो सकता है। पर पूरी तरह निवृत्ति प्राप्त करनी हो तो रक्त-शोधन के लिए प्रयत्न करना होगा और उस उद्गम को सुधारना होगा जहाँ उसकी जड़ जमी हुई होती है।

मनुष्य की मूल सत्ता 'चेतना' है। इस चेतना का उद्गम आस्थाएँ, मान्यताएँ, इच्छाएँ होती हैं। इन्हीं से व्यक्तित्व का स्वरूप बनता है। व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उसे आस्थाओं और अभिरुचियों के आधार पर बना हुआ पाया जायगा। मान्यताएँ ही इच्छाएँ उत्पन्न करती हैं। इच्छा की पूर्ति का आदेश मस्तिष्क को मिलता है तो वह वफादार नौकर की तरह अभीष्ट वस्तु या परिस्थिति प्राप्त करने के लिए ताना-बाना बुनने लगता है। शरीर की हलचलें मस्तिष्क के निर्देश पर गतिशील होती हैं। मोटी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टि से तो शारीरिक कृत्यों को ही देखा जा सकता है। चमड़े की आँखें तो घटनाओं, हलचलों, पदार्थों और प्राणियों को ही देखती हैं, इसलिए वे कार्यों को ही महत्व देती हैं। उन्हीं के आधार पर निन्दा और प्रशंसा होती है। दण्ड और पुरस्कार उन्हीं के आधार पर मिलते हैं। लौकिक दृष्टि से यही सम्भव है और यही उचित भी है।

परन्तु यदि थोड़ी गहराई से देखा जाय तो वस्तुस्थिति दूसरी ही मिलेगी। विचारों की शक्ति अत्यन्त प्रचण्ड है। वही मनुष्य को किसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है। निर्णय निर्धारित वहीं होते हैं। क्या करना है, क्या नहीं करना है, इसका फैसला करना पूरी तरह से मस्तिष्क के हाथ में है। शरीर के अन्य किसी अवयव का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता। पंच-तत्वों से बनी काया तो मात्र उस निर्देश का परिपालन करती है जो मस्तिष्क द्वारा दिया जाता है। शरीर एक उपकरण मात्र है, कुछ करते हुए तो उसे ही देखा जाता है, पर वस्तुतः वह जड़ तत्वों का बना होने से कुछ सोचने में सर्वथा असमर्थ होता है। उसे अपने मालिक की आज्ञानुसार ही चलना पड़ता है।

मूर्ति गढ़ने में छैनी-हथौड़ा की हलचल दृष्टिगोचर होती है, हाथ उन्हें चलाते हैं। किन्तु मूर्तिकार के अतिरिक्त किसी अन्य अनाड़ी व्यक्ति के हाथों में वे छैनी-हथौड़ा थमा दिये जायें और मूर्ति गढ़ने को कहा जाय तो वह हर्गिज नहीं गढ़ सकेगा। क्योंकि उसका मस्तिष्क मूर्तिकला से प्रशिक्षित नहीं होता। लेखन कार्य कलम-कागज की सहायता से चलता है पर किसी अनपढ़ के हाथ में इन उपकरणों को थमा देने से कुछ भी लिखा नहीं जा सकेगा। प्रेरणाएँ मस्तिष्क से मिलती हैं। शरीर के अवयव स्वामिभक्त सेवक की तरह उसका परिपालन करते हैं। इसलिए यदि गम्भीरता से देखा जाय और सत्कर्मों तथा दुष्कर्मों का कारण तलाश किया जाय तो शरीर को या उसके किसी अंग को उसका निमित्त मानने के स्थान पर मस्तिष्क को उसकी निन्दा, प्रशंसा का पात्र माना जाना चाहिए। विचारों में ही वह शक्ति है जो व्यक्तित्व का स्वरूप निर्धारण करती है। उसके उत्थान-पतन की दिशा देती है। गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर ही मनुष्य की विशेषता का निर्माण होता है। उसी स्तर की हलचल, गति-विधियाँ होती हैं और उसी आधार पर दूसरों का सहयोग-असहयोग, सम्मान-तिरस्कार मिलता है। इसी सबको मिलाकर पिछड़ेपन या प्रगतिशीलता की स्थिति बनती है। उत्थान और पतन का वास्तविक आधार इस मानसिक स्थिति को—चिन्तन की दिशाधारा को, मन, बुद्धि एवं वित्त के त्रिवर्ग को दिया जा सकता है। मनःस्थिति ही परिस्थिति के रूप में प्रकट-परिणत होती है, व्यक्ति वैसा ही बनता है जैसा कि सोचता है।

समस्याएँ और कठिनाइयाँ अपने आप आसमान से नहीं टपकती हैं। वे मनुष्यों की गतिविधियों से उत्पन्न होती हैं। यह गतिविधियाँ—हलचलें हाथ-पैरों की ही दिखाई पड़ती हैं—उनमें मस्तिष्क की स्थिति और प्रेरणा का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं भी होता, तो भी उसके लिए वहीं पूरी तरह से उत्तरदायी होता है। विषम परिस्थितियों को सुधारने के लिए अवांछनीय हलचलों को रोका जाना चाहिए, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यह रोक-थाम केवल शारीरिक प्रतिबन्धों से सम्भव नहीं। रोकने का तरीका जो भी अपनाया जाय यदि मस्तिष्क ने उसे स्वीकारा नहीं किया, तो फिर कोई दूसरा ढंग निकाल लिया जायेगा और पहले ही जैसी अवांछनीयता, उनसे ही मिलती-जुलती हरकतें होने लगेंगी। मनुष्य की चतुरता सर्वविदित है। वह बाह्य प्रतिबन्धों को तोड़ने के लिए किसी न किसी प्रकार का रास्ता खोज ही लेता है।

कानून हर बुरे काम के विरुद्ध बने हुए हैं और उन्हें करने वाले अपराधियों के लिए जेल, पुलिस, कचहरी का पूरा प्रबन्ध है। जाँच-पड़ताल के लिए इन्सपेक्टरों की—गुप्तचरों की सरकारी मशीन काम करती है, उस मशीन को रोकथाम के साधन भी दिये जाते हैं और उस पर खर्च भी बहुत होता है। इतने पर भी हर अपराध का पूरी तरह बोलबाला बना रहता है। पकड़ में तो दस प्रतिशत भी नहीं आते। जो पकड़े जाते हैं उनमें से तीन चौथाई तिकड़म-तरकीब से छूट जाते हैं। जिनको दण्ड मिलता है उनकी संख्या समस्त अपराधियों में एक प्रतिशत भी नहीं होती। फिर दण्ड पाने के बाद वे और भी अधिक निर्लज्ज हो जाते हैं। जेल जाकर तो वहाँ अन्य साथियों से पूरा प्रशिक्षण पाकर लौटते हैं और सुधरने की बजाय अपने फन में पूरे माहिर दीखते हैं। ऐसे लोग नौसिखिये न रह कर पूरे उस्ताद बन जाते हैं। यहाँ जेल, पुलिस को न तो व्यर्थ बताया जा रहा है और न उसका उपहास किया जा रहा है। कहना इतना ही है कि संसार में असंख्य प्रकार की विपत्तियाँ उत्पन्न करने के लिए जो दुष्प्रवृत्तियाँ मूल कारण हैं, उन्हें मिटाने के लिए, हलचलें रोकने के लिए प्रतिबन्धात्मक कार्यवाहियाँ पर्याप्त नहीं हैं। मुख्यतः मनुष्य का चिन्तन परिमार्जित किया जाना चाहिए, दृष्टिकोण इस प्रकार बदला जाना चाहिए जिससे उस को नीतिमत्ता के लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगें। मनुष्य निजी विवेक के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उसका गौरव एवं लाभ नीतिमत्ता अपनाने में है। दुष्प्रवृत्तियों को अपनाने से जो दुष्परिणाम उसे भुगतने पड़ेंगे, उनका कल्पना चित्र यदि सही रूप में सामने हो तो फिर उसके फैसले नीति समर्थक होंगे। इस तरह स्वेच्छा से छोड़ी हुई दुष्प्रवृत्तियाँ ही छूटती हैं। मन उन्हें पकड़े रहे तो जड़ जमी रहेगी और वह बाढ़ का पानी इस रास्ते फूटता रहेगा। मजबूत काल कोठरियों से सुरंगें लगाकर दिन-रात पहरा देने वाले सन्तरियों की आँखों में धूल झोंककर, हथकड़ी, बेड़ियों सहित जेल तोड़कर कई डाकू चतुरता के सहारे भाग निकलते हैं साधारण कानूनी प्रतिबन्धों के साथ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँख-मिचौनी तो सारे जीवन भर खेलते रहते हैं। यदि हाथ में सत्ता और डराने की शक्ति हो तब तो स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है। तब फिर नीति-नियमों को पालन कराने वाली मर्यादा एवं प्रतिरोध की क्षमता और भी अधिक कुण्ठित हो जाती है।

जितना प्रयास दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रतिबन्धों एवं निरीक्षण के द्वारा किया जाता है, उससे कई गुना प्रबन्ध विचारों का स्तर एवं प्रवाह परिष्कृत करने के लिए किया जाना चाहिए। यदि वैसा हो सके तो फिर हर व्यक्ति स्वयं अपना पहरेदार, निरीक्षक, मजिस्ट्रेट, जेलर आदि बन जायेगा। स्वयं ही अपना मार्गदर्शक, पुरोहित, धर्मोपदेशक रहेगा और किसी से अपनी चौकीदारी कराने के स्थान पर उलटा दूसरों की चौकीदारी करने लगेगा। यदि चिन्तन का स्तर ऊँचा उठाया जा सके—दृष्टिकोण में उत्कृष्टता का समावेश सम्भव हो सके तो निश्चित रूप से क्रिया-कलाप में सज्जनता और शालीनता की ही झलक मिलेगी। उस स्थिति में आदर्शवादी, मानवीय गरिमा को बढ़ाने वाले सराहनीय और अनुकरणीय आचरण ही बन पड़ेंगे। जिसका चिन्तन ऊँचा है, वह निकृष्ट गतिविधियाँ अपना ही नहीं सकता। पतन की -दिशा में उसके पैर बढ़ेंगे ही नहीं। शारीरिक सुविधा संवर्द्धन की तुलना में मनःस्तर को सुसंस्कृत और नीतिवान बनाया जाना अधिक महत्वपूर्ण है। सुविधा-संवर्द्धन आकाश-पाताल जितना क्यों न कर लिया जाय, पर आन्तरिक दुर्बुद्धि बनी रहे, हेय लिप्साओं का ही मनःक्षेत्र पर आधिपत्य बना रहे, तो फिर रावण, कंस, हिरण्यकश्यपु, भस्मासुर, वृत्रासुर, दुर्योधन आदि के समतुल्य वैभव प्राप्त कर लेने पर भी अपने लिए और दूसरों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियाँ ही उत्पन्न की जाती रहेंगी।

यहाँ एक और बात समझने योग्य है कि मस्तिष्क भी अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है। शरीर पर जिस प्रकार मन का आधिपत्य है, ठीक उसी प्रकार मन की कठपुतली को नचाने वाला मदारी अन्तःकरण है। लड़के हाथ में डोरी थामे रहते हैं और उनके इशारों पर पतंग आसमान में तैरती, उछलती, कूदती दिखाई पड़ती है। ठीक इसी प्रकार मस्तिष्क में अन्तःकरण के निर्देश मिलते हैं और वह कुशल वकील की तरह अपने मुवक्किल के लाभ में तरह-तरह की तरकीबें ढूँढ़ना, सामग्री इकट्ठी करना और साधन बनाना आरम्भ कर देता है। अन्तःकरण से तात्पर्य है भावना क्षेत्र—इसी में मान्यताएँ, आस्थाएँ और आकांक्षाएँ विनिर्मित होती हैं। विचार तो तर्कों, तथ्यों, प्रमाणों और उदाहरणों के सहारे आसानी से बदले जा सकते हैं। भय और लोभ के दबाव से भी विचार बदले जा सकते हैं। पर आस्थाओं की बात दूसरी है। उनकी जड़ें बहुत गहरी होती हैं और वे विवशता में चुप ही रहने पर भी बदलती नहीं हैं। भीतर ही भीतर अपना काम करती रहती हैं और अवसर आते ही फिर उछल पड़ती हैं। किसी की आन्तरिक आस्था नीति-नियमों पर वास्तव में न हो, तो बाहर से वह धर्मोपदेशक का काम करते रहने पर भी भीतर ही भीतर पूर्ण नास्तिक जैसा बना रहेगा और गुप्त रूप से अनेकों छल-छन्द रचकर अपने अनैतिक स्वार्थों को पूरा करता रहेगा। ऐसी दशा में मस्तिष्क उसका पूरा-पूरा सहयोग देगा। कुटिलता भरे कुचक्र रचने और छलपूर्ण दुष्कर्म करते रहने की सुविस्तृत भूमिका बना कर खड़ी कर देगा।

ऐसा प्रायः होता भी रहता है। लोग देशभक्ति की—लोकहित की—समाज कल्याण की दुहाई देते रहते हैं। दूसरों को लम्बे-चौड़े उपदेश देते हैं किन्तु स्वयं उस कथन के सर्वथा विपरीत आचरण करते हैं। जिन तर्कों से दूसरों को प्रभावित करते हैं उनका स्वयं के ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता। इसका कारण आस्था-क्षेत्र में अनीति अपनाने से लाभ मिलने की मान्यता का गहराई तक जमे रहना ही होता है। इसके विपरीत ऐसे असंख्य मनुष्य पाये जाते हैं जो शारीरिक सुविधाओं, सम्पदाओं और मानवीय प्रसन्नताओं के समस्त अवसरों को लात मार कर उच्च-स्तरीय आदर्शों की रक्षा करते हैं। घोर कष्ट सहते, हानि उठाते और प्राण तक गँवाते हैं। शरीर सुख और मानसिक स्वार्थ अत्यन्त स्पष्ट होते हुए भी वे उसका परित्याग करके स्वेच्छापूर्वक विपत्ति उठाते और तपस्वी जीवन बिताते हैं। यह सब आस्थाओं का ही चमत्कार है। आदर्शवादियों, ऐतिहासिक महामानवों, ऋषियों, युग पुरुषों और देवात्माओं का अन्तःकरण ही प्रबल होता है। वे शरीर, मन और परिवार की—लोभ और मोह की—अभाव और कष्ट की परवाह न करते हुए अपनी महान गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। प्रलोभन के तर्क उनको तनिक भी प्रभावित नहीं करते। तथाकथित चतुरता, बुद्धिमत्ता उनके गले तनिक भी नहीं उतरती। वे कष्टसाध्य परिस्थितियों में रहते हुए वैभव, सम्पत्ति की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी और सन्तुष्ट पाये जाते हैं। उनके चेहरे पर हर स्थिति में सन्तुलन भरी मुस्कान नाचती रहती है। यह आस्थाओं की उत्कृष्टता का चमत्कार है।

आस्थाएँ व्यक्तित्व के अत्यन्त गहरे मर्मस्थल में जमी होती हैं। चेतना की इसी भूमिका को अन्तःकरण कहते हैं। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अचेतन की अति गहरी परत है। तर्क मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं। अन्तःकरण उनसे अप्रभावित रहता है। इस क्षेत्र को कुरेदने, सुधारने, बदलने, उठाने के लिए कुछ अधिक ऊँचे स्तर की—आस्थावर्ग की विचार प्रक्रिया ही काम करती है। इस स्तर का चिन्तन अध्यात्म कहलाता है। इसके लिए सामान्य ज्ञान पर्याप्त नहीं होता। उसके लिए तत्वज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार की दार्शनिकता को ब्रह्मविद्या का नाम दिया जाता रहा है। आत्म-विज्ञान का—अध्यात्म का—यही कार्यक्षेत्र है।

स्तर के अनुरूप मस्तिष्कीय कल्पना को, मन और तथ्य को, ध्यान में रख कर निर्णय करने वाली क्षमता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि कहते हैं। आदतों का जमघट चित्त कहलाता है। उसमें पुराने ढर्रे पर लुढ़कते चलने का आग्रह बना रहता है। इस सब से ऊपर है 'अहं तत्व'। इसको अँग्रेजी में 'ईगो' कहते हैं। आत्मविज्ञान में इसे अन्तःकरण या अन्तरात्मा कहा जा सकता है। इसमें चिन्तन, तत्वदर्शन एवं आत्मदर्शन स्तर की बातें ही प्रवेश कर पाती हैं जो उपयुक्त निर्णय इस क्षेत्र में हो सकते हैं उस दूरदर्शी विवेकशीलता को 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' कहते हैं। आस्थाओं का परिमार्जन, परिष्कार करने वाले तत्वज्ञान को योग और उलट-पुलट करने वाले समर्थ क्रिया-कलाप को—प्रचण्ड उपचार को तप कहते हैं। योग को सिद्धान्त और तप को व्यवहार कह सकते हैं। दोनों को मिलाकर समग्र अध्यात्म-विज्ञान बनता है।

अध्यात्म को मोटी दृष्टि उपेक्षणीय और महत्वहीन मानती रही है। यह उसकी भारी भूल है। यह वह चाबी है जिसके सहारे मानवी-सत्ता की घड़ी के सब कलपुर्जे घूमते हैं। आस्थाओं के अनुरूप मस्तिष्क काम करता है—मस्तिष्क के निर्देश पर शरीर चलता है। शरीर की हरकतें परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। यह परिस्थितियाँ सुविधायें और विपत्तियाँ बन कर सामने आती हैं। तथ्यों को समझा जा सके तो इस निर्णय पर पहुँचना होगा कि उलझी परिस्थितियाँ सुधारने के लिए मनुष्यों की गतिविधियाँ सज्जनोचित होनी चाहिए। यह तब संभव है जब विचार पद्धति का परिष्कार—दृष्टिकोण का उत्कर्ष किया जाय। यह कार्य विचारों से विचारों की काट करने से भी एक सीमा तक पूरा होता है, पर समग्र समाधान आस्थाओं में उत्कृष्टता के तत्व भर देने से ही चिरस्थायी हो सकता है। उथले स्तर के सुधार सामयिक ही सिद्ध होते हैं और तनिक-सा अवसर मिलते ही पुरानी दुष्टता फिर अपना परिचय देने लगती है।

अन्तःकरण का स्तर ऊँचा उठाने वाला विज्ञान 'अध्यात्म' है। प्राचीनकाल में उसी के सहारे इस देश के नागरिक देव-संज्ञा में पहुँच गये थे और उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र को स्वर्गोपम बनाया था। अब हमें फिर उसी प्रकार के उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा उठी है। फिर से उन्हीं महान परम्पराओं का अनुकरण करना होगा, जिनके आधार पर हमारे महान पूर्वज स्वयं शान्ति से रहते और समुन्नत बनते थे। साथ ही अपने अनुभवों से समस्त संसार को सुसम्पन्न और सुसंस्कृत बनाने में महान योगदान देते थे। आज की विपत्तियों और सामाजिक समस्याओं का चिरस्थायी समाधान अध्यात्म-विज्ञान को अपनाने में ही है। उसी के सहारे उज्ज्वल भविष्य के—स्वर्णिम सतयुग के अवतरण का—भव्य समाज के निर्माण का उद्देश्य पूरा हो सकता है।

यद्यपि समाज में फैली हानिकारक बुराइयों को दूर करने के लिए कानून, अदालत, पुलिस, जेल आदि के अनेकों उपाय किये जा रहे हैं, पर हालत दिन-पर-दिन बिगड़ती ही चली जा रही है। इसलिए अब आवश्यकता है मार्ग को बदलने की। इसके लिए हमको अपनी भावनाओं, मान्यताओं, आस्थाओं का सुधार करना होगा। केवल मस्तिष्कीय तर्कों के बजाय अन्तःकरण की आवाज पर भी ध्यान देना होगा। जब हम स्वार्थ और परमार्थ, भोग और त्याग में समन्वय रखकर गतिविधियाँ अपनाने लगेंगे, तभी मौजूदा विपत्तियों से छुटकारा मिल सकेगा। वही अध्यात्मवादी मार्ग होगा।

व्यक्तिपरक सन्दर्भ

आज का व्यक्ति समस्याओं के जाल में दिन-दिन जकड़ता चला जा रहा है। क्या धनी, क्या निर्धन, क्या विद्वान, क्या अशिक्षित, क्या रुग्ण तथा स्वस्थ सभी स्तर के मनुष्य अपने को अभावग्रस्त और संकटग्रस्त स्थिति में पाते हैं। भूखे का पेट दर्द दूसरी तरह का और अतिभोगी का दूसरे ढंग का, पर कष्ट पीड़ित तो दोनों ही समान रूप से हैं।

भौतिक दृष्टि से विज्ञान ने मनुष्य के लिए अगणित प्रकार की प्रचुर साधन-सुविधायें उपलब्ध करा दी हैं। अब से कुछ शताब्दियों पूर्व लोग कहीं लम्बी यात्रा पर निकलते थे तो यह मान कर चलते थे कि पता नहीं अब लौट कर परिवार वालों को देख भी सकेंगे या नहीं। इसलिए वे यात्रा पर निकलते समय परिवार की व्यवस्था इस प्रकार बनाकर चलते थे मानों अब उनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। पर अब तो मनुष्य कुछ ही दिनों में चन्द्रमा की यात्रा करके भी सकुशल वापस लौट आने में समर्थ है। कहने का आशय यह कि प्राचीनकाल की तुलना में आज साधन-सुविधाओं में आकाश-पाताल जितना अन्तर हो गया है। इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

साधनों के विकास और सुविधाओं के अम्बार लग जाने पर यह होना चाहिए कि मनुष्य सुखी रहता। लेकिन देखते हैं, मनुष्य पहले की तुलना में और भी ज्यादा दुःखी और संकटग्रस्त हो गया है। उसके चारों ओर समस्याओं का जाल जकड़ता जा रहा है। क्या धनी और क्या निर्धन, क्या विद्वान और क्या अशिक्षित, क्या स्वस्थ और क्या रुग्ण, सभी मनुष्य अपने का अभावग्रस्त और संकटग्रस्त स्थिति में अनुभव करते हैं। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन और संसार के सभी क्षेत्रों में समस्यायें ही समस्यायें बिखरी पड़ी हैं। विभिन्न वर्ग के—विभिन्न स्तर के व्यक्तियों की समस्यायें भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। वे एक दूसरे से किसी रूप में सम्बद्ध भी नहीं लगतीं पर उनके मूल में यदि देखा जाय तो एक ही कारण प्रतीत होगा वह है—अनात्मवादी दृष्टिकोण।

प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम ही अन्धकार है। जब प्रकाश बुझ जाता है तो अन्धकार आ जाता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब प्रकाश जलने लगता है तो अन्धकार भाग जाता है। इन दिनों साधन-सुविधाओं की दृष्टि से पर्याप्त प्रगति हुई है पर जिस आधार पर सुख-शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत किया जा सकता है और उस दृष्टिकोण का अभाव ही समस्याओं का कारण बना हुआ है। अन्धकार को दूर भगाने के लिए कितने ही साधन जुटाये जायें, कितनी ही तैयारियाँ की जायँ, जब तक प्रकाश जलाने का प्रयास न किया जाय तब तक अन्धकार बना ही रहेगा। कितने ही साधन इकट्ठे कर लिए जायें, कितनी ही सुविधायें बढ़ा ली जायें पर अनात्मवादी दृष्टिकोण को निरस्त करने के लिए जब तक अध्यात्म की ज्योति नहीं जगाई जायगी, तब तक वे प्रयास व्यर्थ ही होते चले जायेंगे।

कठिनाइयों एवं समस्याओं के सामयिक एवं छुट-पुट उपचार तो अनेक ढंग से निकल आते हैं किन्तु टिकाऊ हल अध्यात्म के सहारे से ही निकल सकता है। सड़ी कीचड़ में रेंगने वाले कीड़े उपजते हैं और गन्दगी के ढेर में मक्खी की उत्पत्ति होती है। हर कीड़े और मच्छर को मारने के लिए लाठी लिये फिरना बेकार है। मार देने पर भी वे उपज पड़ेंगे। आधार बना रहेगा तो उत्पत्ति का क्रम रुकेगा नहीं। इन कृमि-कीटकों से छुटकारे का एक ही उपाय है कि कीचड़ और गन्दगी को साफ कर दिया जाय।

परमात्मा ने अपने पुत्रों को इस विश्व उद्यान में बहुत कुछ पाने-कमाने के लिए भेजा है। समस्याएँ उसकी भूलों से सचेत करने वाली लालबत्ती की तरह हैं। यदि हम मनुष्योचित दृष्टिकोण अपनाएँ और शालीनता का जीवन जियें तो अवरोधों से जूझकर शक्ति नष्ट करने की समस्या न रहेगी और तब प्रगति पथ पर अनवरत गति से बढ़ते हुए पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करना ही अपने सामने एकमात्र कार्य रह जायगा। आइये, विचार करें कि हमारे व्यक्तिगत जीवन में आये दिन कौन-कौन समस्यायें त्रास देती हैं, वे क्यों उत्पन्न होती हैं और उनका स्थिर समाधान क्या हो सकता है।

मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की सारी समस्याएँ इन पाँच वर्गों के अन्तर्गत आती हैं—(१) शारीरिक, (२) मानसिक (३) आर्थिक (४) पारिवारिक तथा (५) आत्मिक।

स्वास्थ्य समस्या—सर्वप्रथम समस्या स्वास्थ्य संकट की है। हममें से अधिकांश को शारीरिक दुर्बलता घेरे रहती है और बीमारियों का दौर चढ़ा रहता है विचारणीय है कि ऐसा क्यों होता है ? सृष्टि में असंख्य प्राणी हैं। वे जन्मते-मरते तो हैं पर कोई बीमार नहीं पड़ता। मनुष्य और उसके शिकन्जे में कसे हुए थोड़े से पालतू पशुओं को छोड़कर स्वच्छ निर्वाह करने वाले जीव-जन्तुओं में से किसी को दुर्बलता या रुग्णता की व्यथा नहीं सहनी पड़ती। बुढ़ापे और मृत्यु से सामना तो सबको पड़ता है पर जब तक जीता है तब तक समूचा प्राणी जगत नीरोग ही जीता है। अकेले मनुष्य पर दुर्बलता और रुग्णता की घटायें छाई रहती हैं। इस अपवाद का कारण एक ही है—उसका आहार-विहार सम्बन्धी असंयम, प्रकृति के निर्देशों का धृष्टतापूर्वक उल्लंघन।

जीभ का चटोरापन—स्वाद के नाम पर अभक्ष्य पदार्थों को समय-कुसमय अनावश्यक मात्रा में उदरस्थ करते रहने से पेट की क्षमता नष्ट होती है और वह बेचारा अत्याचार पीड़ित दीन-दुर्बल की तरह अपना काम निपटाने में असमर्थ हो जाता है। पेट की अपच हजार बीमारियाँ उत्पन्न करती है यह तथ्य सर्वविदित है। लुकमान सही कहते थे कि 'मनुष्य अपने असमय मरने और गढ़ने के लिए अपनी कब्र आप खोदता है।' इन्द्रिय असंयम से वह अपने शक्ति भण्डार को होली की तरह जलाता है और बर्फ की तरह अपने पौरुष को गलाकर समाप्त करता है। अस्त-व्यस्त दिनचर्या, आलस्य, प्रमाद, गन्दगी जैसे दुर्गुण अपनाने वाले, प्रकृति की प्रेरणाओं और नियत मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाले नियति की दण्ड व्यवस्था से बच नहीं सकते। उन्हें रुग्णता की व्यथा सहनी ही पड़ेगी।

इसका निवारण दवा-दारू की जादूगरी से नहीं हो सकता, यदि असंयमी जीवन जीने पर भी दवादारू के सहारे स्वास्थ्य रक्षा सम्भव रही होती तो अमीरों ने और चिकित्सकों ने अब तक हाथी जैसा स्वास्थ्य संजो लिया होता। प्रकृति की अवज्ञा करने वाले उद्दण्ड अपराधी क्षमा नहीं होते और आये दिन रुग्णता से कराहते हैं। रोगी का उपचार करने के लिए औषधि के साथ साथ परहेज रखना भी आवश्यक होता है, आरम्भ से वह जब बहुत ही रुग्ण हो तो परिचारक या घर के अन्य सदस्य उसके खान-पान पर नियंत्रण रख सकते हैं। लेकिन जरा स्वस्थ होते ही उसे वह नियन्त्रण स्वयं ही करना होता है। स्वादलिप्सा और चटोरापन के कारण यदि यह जरा-सी भी बदपरहेजी, असावधानी या असंयम कर दे तो रोग पुनः अपने भीषण रूप में खड़ा हो सकता है। अर्थात् न केवल स्वस्थ रहने के लिए वरन् रोग से मुक्त होने के लिये भी संयम का सहारा लेना पड़ता है। अपना भला-बुरा आप सोचना पड़ता है। यह विवेक अध्यात्म का ही अंग है। यदि हमें सचमुच ही स्वास्थ्य की स्थिरता अपेक्षित हो तो उसका एकमात्र उपाय प्राकृतिक जीवन है। आहार-विहार का संयम कड़ाई से पालन करने के अतिरिक्त और किसी उपाय से स्वास्थ्य रक्षा की समस्या हल नहीं हो सकती।

कहना न होगा कि इन्द्रिय लिप्साओं से छुटकारा पाना, सुव्यवस्थित जीवनक्रम अपनाना, शारीरिक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली अध्यात्म प्रक्रिया ही है। आत्म संयम और आत्मानुशासन का नाम ही अध्यात्म है। उसका प्रयोग यदि विवेकशीलता और दूरदर्शिता अपनाते हुए स्वास्थ्य प्रयोजन के लिए किया जाता रहे तो हममें से किसी को भी न तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बलता घेरेगी और न रुग्णता छाई रहेगी। अब से हजार वर्ष बाद जब भी स्वास्थ्य संकट से निपटना आवश्यक प्रतीत होगा और उसका स्थिर समाधान खोजा जायगा तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि जीवनचर्या का निर्धारण अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से किया जाय और शारीरिक सम्पदा का उपयोग करने में प्रकृति के निर्देशों का पालन करने के लिए कड़ाई के साथ संयम बरता जाय। जिस दिन यह तथ्य हृदयंगम कर लिया जायगा, उसे व्यावहारिक जीवन में उतार लिया जायगा, उस दिन स्वास्थ्य संकट का अन्धकार कहीं भी दृष्टिगोचर न होगा।

मानसिक उद्विग्नता—स्वास्थ्य समस्या के समान ही मानसिक उद्विग्नता मनुष्य जीवन की दूसरी बड़ी समस्या है। शांत, सन्तुष्ट, संतुलित और प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति विरले ही दिखाई देते हैं। अधिकांश व्यक्तियों के माथे पर त्यौरियाँ चढ़ी होती हैं आँखों में बुझापन, चेहरे पर अवसाद, वाणी में निराशा, मस्तिष्क में अस्थिरता और हृदय में अशांति के बादल घटाटोप छाए रहते हैं। निराशा, क्षोभ, असन्तोष और क्लान्ति की छाया मन-मस्तिष्क में अन्धकार फैलाए रहती है और उस उल्लास का दर्शन कहीं भी नहीं होता जो परमात्मा के ज्येष्ठपुत्र और सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी के नाते दिखाई देना चाहिए। मानसिक अशांति के लिए दूसरों के व्यवहार और परिस्थितियों को भी सर्वथा निर्दोष तो नहीं कहा जा सकता, पर यह स्वीकार करना ही होगा कि इसमें बहुत बड़ा कारण अपने चिन्तन तन्त्र की दुर्बलता ही रहती है। हम अपनी ही इच्छा की पूर्ति चाहते हैं, हर किसी को अपने ही शासन में चलाना चाहते और हर परिस्थिति को अपनी मर्जी के अनुरूप चलने की अपेक्षा करते हैं। यह भूल जाते हैं कि यह संसार हमारे लिए ही नहीं बना है, इसमें व्यक्तियों का विकास अपने क्रम से हो रहा है और परिस्थितियाँ अपने प्रवाह से बह रही हैं। हमें उनके साथ तालमेल बिठाने की कुशलता प्राप्त करनी चाहिए।

कहा जा सकता है कि हम प्रसन्न और प्रफुल्लित रहने के लिए तो बहुत प्रयत्न करते हैं। दुःख और उदासी को कौन पसन्द करता है और जान-बूझकर कौन चिन्तित होना चाहेगा ? लेकिन परिस्थितियाँ ही ऐसी बन जाती हैं कि हमें चिन्ता और व्यथा होने लगती है। दूसरे लोग हमें खुश देखना पसंद करते नहीं इसलिए वे हमारे सामने तरह-तरह की समस्यायें खड़ी कर देते हैं। बात ठीक भी लगती है और मनुष्य को परिस्थितियों तथा दूसरों के व्यवहार से एक सीमा तक प्रभावित भी होना पड़ता है। लेकिन सबसे बड़ा कारण हमारी चिन्तन शैली का त्रुटिपूर्ण होना ही है। इन तथ्यों को समझने के लिये कुछ उदाहरण लेना उचित रहेगा। पहले परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तोष को ही लें। अपनी तुलना यदि अपने से अच्छी स्थिति वालों के साथ की जाय तो स्थिति गरीबों जैसी प्रतीत होगी ही और चित्त दुःखी बना रहेगा। यदि अपने से निम्न स्थिति वाले से तुलना की जाय तो अपनी स्थिति दूसरे कितने ही व्यक्तियों से अच्छी दिखाई देगी। वस्तुतः गरीबी और अमीरी सापेक्ष शब्द हैं। अधिक सम्पन्न व्यक्ति की तुलना में प्रत्येक व्यक्ति गरीब ठहरेगा और अधिक गरीब की तुलना में प्रत्येक व्यक्ति अपने को संपन्न अनुभव करेगा। यदि अपने दृष्टिकोण को इस सिद्धांत के अनुसार ढाल दिया जाय तो परिस्थितियों के कारण होने वाले असंतोष और घुटन से बचा जा सकता है।

मानसिक शान्ति दुःखद परिस्थितियों में भी बनाये रखना सम्भव है। सुखों की अपनी उपयोगिता है। साधन-सम्पन्नता के सहारे प्रगतिक्रम से सुविधा होती है, यह सर्वविदित है, पर यह भी भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि कठिनाइयों की आग में पककर खरा और सुदृढ़ बना जाता है। सोने को अग्निपरीक्षा में और हीरे को खराद पर चढ़ने में कठिनाई का सामना तो करना पड़ता है पर उसका मूल्यांकन उससे कम में हो भी तो नहीं सकता। कठिनाइयों के कारण मनुष्य में धैर्य, साहस, कौशल, पराक्रम जैसे कितने ही सद्गुण विकसित होते हैं, जागरूकता बढ़ती है और बहुमूल्य अनुभव एकत्रित होते हैं। अभावों और संकटों में दुर्बल मनःस्थिति के लोग तो टूट जाते हैं पर जिनमें जीवन है वे चौगुनी-सौगुनी शक्ति के साथ उभरते देखे गये हैं। सम्पन्नता की अपनी उपयोगिता है और विपन्नता का अपना महत्व है। यदि दोनों का समुचित लाभ उठाया जा सके तो यह उभयपक्षीय अनुदान प्रगति के पथ पर अग्रसर करने के लिए अपने-अपने ढंग से सहायता करते दिखाई पड़ेंगे।

नमक और मीठा परस्पर विरोधी हैं तो भी उनसे स्वाद सन्तुलन बनता है। तानों और बानों के धागे एक दूसरे से विपरीत दिशा में चलते हैं पर उनका गुंथन उपयोगी वस्त्र बनकर सामने आता है। रात्रि और दिन की स्थिति में भिन्नता ही नहीं विपरीतता भी है, पर उनके समन्वय से ही समय चक्र घूमता है। विपरीतताओं और अनुकूलताओं का समन्वय ही संसार है। जीवन शृंखला इन विचित्रताओं की कड़ियों से मिलकर बनी है। हमें दोनों की उपयोगिता समझनी चाहिए।

पुण्यात्माओं से बहुत कुछ सीखा जाता है और पापियों को सुधारने की नीति अपनाकर आत्मपरिष्कार करते हुए अपनी करुणा, सहृदयता, सेवा भावना को विकसित होने का अवसर मिल सकता है। दुरंगी दुनिया की विचित्रता से खिन्न होने की अपेक्षा यह अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण है कि उसके सहारे खट्ठे-मीठे अनुभव प्राप्त किये जायें और इन परस्पर विरोधी परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के लाभ लिये जायें। जिनका चिन्तन आध्यात्मिक स्तर का होगा वे समुद्र में आने वाले ज्वार-भाटे से भी भयभीत न होंगे वरन् इतना भर सोचेंगे कि किस स्थिति का किस प्रकार सामना किया जाय और उससे क्या लाभ उठाया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक सन्तुलन बना रहे तो घाटा, शोक, विरोध, अभाव जैसी विपन्नता भी विचलित न कर सकेगी। क्रांतिकारी शहीदों ने फाँसी के तख्ते हँसते हुए चूमे थे। बढ़े-चढ़े त्याग, बलिदान प्रस्तुत करने वाले महामानवों के चेहरे पर विषाद की एक लहर उत्पन्न नहीं होती। यदि घटनाओं में ही सारी शक्ति रही होती तो वे सभी पर एक जैसा असर डालतीं। पर देखा जाता है कि उसी स्थिति में एक व्यक्ति सिर धुनता है और दूसरा बिना किसी हैरानी के काम करता है। यह मानसिक स्तर का ही परिचय है।

संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जिसे सब सुख हों किसी बात का अभाव न हो। सारी परिस्थितियाँ मनोनुकूल ही हों, कोई कष्ट न हो, कभी असफलता न मिले, कोई जिसका विरोधी न हो, ऐसा मनुष्य इस पृथ्वी पर ढूँढ़े न मिलेगा। जहाँ अनेक सुख-साधन मनुष्य को भगवान् ने दिये हैं वहाँ कुछ थोड़े अभाव रखे हैं। विवेकशील व्यक्ति जीवन में उपलब्ध सुख-सुविधाओं का अधिक चिन्तन करते हैं और उन उपलब्धियों पर सन्तोष प्रकट करते हुए प्रसन्न रहते हैं और उस कृपा के लिए ईश्वर को धन्यवाद देते रहते हैं। थोड़े से अभाव एवं कष्ट इन्हें वैसे ही कौतूहल-वर्द्धक लगते हैं जैसे माता अपने सुन्दर बालक के माथे पर काजल की बूँद लगाकर 'डिठोना'—बना देती है कि कहीं इसे 'नजर' न लग जाय।

इसके विपरीत अनेकों लोग उपलब्ध, अनेकों सुख-साधनों को तुच्छ मानते हैं और जो थोड़े से कष्ट एवं अभाव हैं, उन्हें ही पर्वत तुल्य मानकर अपने आपको भारी विपत्तिग्रस्त अनुभव करते हैं। ऐसे लोग निरन्तर असन्तुष्ट रहते हैं, अपने सभी सम्बन्धित लोगों पर दोषारोपण करते हैं। ईश्वर को गाली देते हैं कि उनने हमें अमुक अभाव क्यों दिया ? भाग्य को कोसते हैं कि वह इतना दुर्भाग्यपूर्ण क्यों है ? माता-पिता और अभिभावकों को बुरा कहते हैं कि उन्होंने अमुक साधन नहीं जुटाये, जिससे हम उन्नतिशील स्थिति में होते ? मित्रों और अफसरों को कोसते हैं कि उन्होंने उन्नति के लिये असाधारण सहयोग देकर बड़ा क्यों नहीं बना दिया ? परिस्थिति, ग्रहदशा, दुनिया की बेवफाई, कलियुग का जमाना आदि जो भी उनकी समझ में आता है उसे बुरा-भला कहते हैं और कठिनाइयों का दोष उनके मत्थे मढ़ते रहते हैं।

ऐसे लोगों की अधिकांश मानसिक शक्ति इसी रोने-झींकने में ही चली जाती है। उनके बहुमूल्य समय का बहुत-सा भाग इस कोसते रहने की प्रक्रिया में ही नष्ट हो जाता है। जिस समय का उपयोग वे अपनी कठिनाइयों को पार करने का उपाय सोचने और प्रयत्न करने में कर सकते थे, उसको वे अपनी खिन्नता बनाये रखने और बढ़ाने में करते हैं। यह तरीका अपने समय और बल को नष्ट करने का ही है, इसमें लाभ कुछ नहीं उलटे उन कीमती शक्तियों के नष्ट होने की हानि ही है, जिन्हें यदि बर्बाद होने से बचा लिया गया होता तो वे कठिनाई का एक बहुत बड़ा भाग आसानी से हल कर देतीं।

जीवन को शान्तिपूर्ण रीति से व्यतीत करने का तरीका यह है कि हम अपनी कठिनाइयों का मूल्य बढ़ा-चढ़ाकर न आँकें। वरन् उतना ही समझें जितनी कि वे वास्तव में हैं, तो हमारी अनेकों दुश्चिन्ताएँ आसानी से नष्ट हो सकती हैं।

एक विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होता है। फेल होने के समाचार से उसका मानसिक सन्तुलन डगमगा जाता है। वह इस असफलता को वज्रपात जैसा मानता है सोचता है कि सारी दुनिया मुझे धिक्कारेगी, मूर्ख या आलसी समझेगी, मित्रों के सामने मेरी सारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी, अभिभावक कटु शब्द कहकर मेरा तिरस्कार करेंगे। यह कल्पना उसे असह्य लगती है, चित्त में भारी क्षोभ उत्पन्न होता है और रेल के आगे कटकर, नदी में कूदकर या और किसी प्रकार वह अपनी आत्महत्या कर लेता है। घर में कुहराम मच जाता है, वृद्ध माता-पिता रो-रोकर अन्धे हो जाते हैं, एक उल्लासपूर्ण हँसते-खेलते घर का वातावरण शोक, क्षोभ और निराशा में परिणित हो जाता है। इस विपन्न स्थिति को उत्पन्न करने में सारा दोष उस गलत दृष्टिकोण का है, जिसके अनुसार एक छोटी-सी सफलता का मूल्य इतना बढ़ा-चढ़ाकर आँका गया।

एक दूसरा विद्यार्थी भी उसी कक्षा में अनुत्तीर्ण होता है। उसे भी दुःख तो होता है वह वस्तुस्थिति का सही मूल्यांकन कर लेता है और सोचता है कि इस वर्ष बोर्ड का परीक्षा-फल ४३ प्रतिशत ही तो रहा है। मेरे समान अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या ५७ प्रतिशत है वर्तमान परिस्थितियों में अनुत्तीर्ण होना एक साधारण-सी बात है, इसमें सदा विद्यार्थी ही दोषी नहीं होता वरन् प्रायः शिक्षकों की उदासीनता, बिना पढ़े हुए विषयों के पर्चे आ जाना और नम्बर देने वालों की लापरवाही भी उसका कारण होती है। इस वर्ष अनुत्तीर्ण हो गये तो अगले वर्ष अधिक परिश्रम करने से अच्छे डिवीजन में उत्तीर्ण होने की आशा रहेगी, आदि बातों से अपने मन को समझा लेता है और अनुत्तीर्ण होने की खिन्नता को जल्दी ही अपने मन से हटाकर आगे के कार्यक्रम में लग जाता है।

दोनों ही छात्र एक ही समय एक ही कक्षा में अनुत्तीर्ण हुए थे। एक ने आत्महत्या कर ली दूसरे ने उस बात को मामूली मानकर अपना साधारण क्रम जारी रखा। फेर केवल समझ का था, परिस्थिति का नहीं। यदि परिस्थिति का होता तो दोनों को समान दुःख होना चाहिए था और दोनों को आत्महत्या करनी चाहिए थी। पर ऐसा होता नहीं, इससे स्पष्ट है कि परिस्थितियों के मूल्यांकन में गड़बड़ी होने से मानसिक सन्तुलन बिगड़ा और उसी से दुर्घटना घटित हुई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमें चाहिए कि अपनी कठिनाइयों को बढ़ा-चढ़ा कर न देखें, वरन् उनकी दूसरे अधिक आपत्तिग्रस्त लोगों के साथ तुलना करके अपने आपको अपेक्षाकृत कम दुःखी अनुभव करें। आपको आर्थिक कठिनाई रहती है, सभ्य सोसायटी के लोगों जैसा जीवनयापन करने में आर्थिक स्थिति कुछ दुर्बल मालूम पड़ती है। थोड़ा आर्थिक अभाव अनुभव होता है और चिन्ता रहती है। इस स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के कई उपाय हो सकते हैं। एक यह कि कुछ अधिक उपार्जन करने का प्रयत्न किया जाये। वर्तमान समय में जितना श्रम, समय और मनोयोग व्यवसाय में लगाया जाता है उससे अधिक लगाया जाय, कोई और सहायक धंधा ढूँढ़ा जाय या वर्तमान व्यवसाय में ही जो आय बढ़ाने के उपाय सम्भव हों, उन्हें दौड़-धूप करके जुटाया जाय। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि अपने खर्चे कम किये जायें। दुनिया में सभी तरह के गरीब-अमीर लोग रहते हैं, अपनी-अपनी आमदनी के अनुसार जीवनयापन करने की योजना बनाते हैं। यदि अपनी आमदनी कम है तो क्यों न कम खर्च का बजट बनाकर काम चलाया जाय ? खर्चा घटा लेने से कुछ सुविधायें कम हो सकती हैं पर उस कमी का दुःख उतना न होगा जितना बढ़े हुए खर्च की पूर्ति न होने पर दिन-रात चिन्तित रहने के कारण होता है।

यदि दोनों प्रकार के प्रयत्न करते हुए भी समस्या हल नहीं होती तो किसी प्रकार कामचलाऊ रास्ता निकालकर उसी में प्रसन्न और सन्तुष्ट रहने की कोशिश करनी चाहिये। अपने से अधिक दुःखी लोगों के साथ अपनी तुलना करने से मनुष्य यह अनुभव कर सकता है कि कुछ कष्ट होते हुए भी भगवान् की उस पर बड़ी कृपा है कि उसने उतना दुःखी नहीं बनाया, जितने अन्य लोग दुःखी हैं। अस्पतालों में पड़े हुऐ बीमार, अंग-भंग, साधनविहीन, संकट-जंजालों में फँसे हुए, पारिवारिक उलझनों में बुरी तरह उलझे हुए अनेकों व्यक्ति इस संसार में बहुत ही दयनीय स्थिति में जीवनयापन करते हैं। उनसे अपनी तुलना की जाय तो प्रतीत होगा कि उनकी अपेक्षा अपनी स्थिति हजार गुनी अच्छी है। यदि पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों से अपनी तुलना की जाय तब तो निश्चय ही यह प्रतीत होगा कि अपने को प्राप्त सुविधाएँ इतनी अधिक हैं कि इन थोड़ी-सी कठिनाइयों को नगण्य ही माना जा सकता है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति अभी हमें बुरे और अपने शत्रु प्रतीत होते हैं, उनके कुछ अपकारों की बात सोचना छोड़कर यदि उनके उपकारों को, उनके द्वारा किए हुये सद्व्यवहार को स्मरण करें तो निश्चय ही वे हमें शत्रु नहीं मित्र दिखाई पड़ेंगे। पिता-माता ने हमें एम. ए. तक नहीं पढ़ाया, यदि वे उतनी शिक्षा दिला देते तो आज हम ऊँची सर्विस प्राप्त करते, यह विचार मन में आने पर माता-पिता शत्रु जैसे प्रतीत होते हैं, उनके प्रति अपना द्वेष एवं दुर्भाव उत्पन्न होता है। पर यदि हम अपनी विचारधारा बदल दें और जिन आर्थिक कठिनाइयों में रहते हुए, उतने बड़े कुटुम्ब का पालन करते हुए, हमारा पालन-पोषण किया एवं जितनी सम्भव थी उतनी शिक्षा की व्यवस्था की तो उनके उपकारों के प्रति मन श्रद्धा से झुक जायगा और वे मित्र नहीं देवता के समान उपकारी प्रतीत होंगे।

दृष्टिकोण में थोड़ा अन्तर कर देने से हम असन्तुष्ट और खिन्न जीवन को सन्तोष में परिणित कर सकते हैं। ईश्वर ने सुर-दुर्लभ मानव-तन प्रदान करके इतनी बहुमूल्य सम्पदा हमें प्रदान की है कि उसका मूल्य लाखों-करोड़ों रुपयों में भी नहीं कूता जा सकता। जैसा शरीर, कुल, सम्मान, विद्या, परिवार आदि अपने को प्राप्त है, उसमें से प्रत्येक की विशेषता और सुविधा का चिन्तन करें—साथ ही यह भी सोचें कि यदि यह बातें उपलब्ध न होतीं तो उनके अभाव में अपना जीवन कितना नीरस होता—तो इस चिन्तन से हमें प्रतीत होगा कि हमारी वर्तमान परिस्थिति दुःख-दारिद्र से भरी नहीं, सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है।

परिस्थितियों के अतिरिक्त हमारी मानसिक अशान्ति का एक कारण यह भी है कि हमें अच्छे व्यक्तियों का अभाव दिखाई देता है। यह भी चिन्तन दोष की ही फलश्रुति है। प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अच्छाइयों और बुराइयों से मिलकर बना हुआ है। किसी में बुराइयाँ ही हों ऐसा भी नहीं है और यह भी नहीं है कि किसी व्यक्ति में समस्त अच्छाइयाँ हों। हर व्यक्ति में अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी हैं। अपनी दृष्टि जिस पक्ष पर जाती है वही पक्ष हमें दिखाई देने लगता है और अपनी पसन्द के अनुसार हम अच्छाइयाँ या बुराइयाँ खोज लेते हैं यदि बुराइयाँ ही ढूँढ़ी जायें तो वे भगवान में भी मिल जायेंगी और अच्छाई देखनी हो तो सिंह सरीखे हिंसक पशु में भी उसका अभाव न दिखेगा। दूसरे व्यक्ति इसलिए दुष्ट और घृणित लगते हैं कि उनमें दोष ही दोष देखे गए हैं। अपने प्रिय स्वजन अच्छाइयाँ देखते रहने के कारण प्राणप्रिय लगने लगते हैं। यहाँ तक कि उसकी बुराइयाँ भी अच्छी दिखाई देने लगती हैं। अतएव दोष दर्शन, छिद्रान्वेषण की आदत छोड़ कर गुण दर्शन की वृत्ति विकसित कर ली जाय तो कल तक जो व्यक्ति शत्रुवत् लगते थे वही मित्रवत् लगने लग जायेंगे।

जो लोग अपने आपको बड़ी कठिनाइयों और शत्रुओं के बीच में घिरे हुए देखते हैं, वस्तुतः उनकी विचार और भाषण की शक्ति प्रतिगामी होती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने आपको विरोधियों, हानि पहुँचाने वालों, काम बिगाड़ने वालों से घिरा हुआ मानकर परेशान होता है। वह यह नहीं समझता कि यह परेशानी मेरे स्वयं के आन्तरिक जीवन की बाह्य छाया मात्र है। जिनकी मानसिक शक्तियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरोगामी होती हैं उसे चारों ओर अपने मित्र, सहायक दिखाई पड़ते हैं। वह कठिनाइयों से नहीं घबराता। दूसरों में अच्छाइयाँ ही नजर आती हैं। फलतः जीवन की भीषण, विपरीत परिस्थितियों में भी वह सफलता प्राप्त कर लेता है। सब उसके सहायक बन जाते हैं।

वस्तुओं के काले पहलू का दर्शन करने, दूसरों के दोष, छिद्र आदि देखने, प्रतिगामी, दृष्टिकोण के अभ्यास करते रहने पर थोड़े समय के बाद ऐसी स्थिति हो जाती है कि बाह्य कारण न पाकर मनुष्य अपने बुरे विचार, असद्भावों, दूषित दृष्टिकोण का केन्द्र स्वयं को ही बना लेता है। यह बड़ी जटिल स्थिति हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप गम्भीर शारीरिक या मानसिक रोग हो जाते हैं। इस तरह के लोग 'मेलेन्कोलिया' जैसे रोगों से पीड़ित हो जाते हैं। दूसरों से लड़ने की आदत पक्की हो जाने पर मनुष्य जब अपने सामने लड़ने का कोई आधार नहीं पाता तो वह अपने आप से लड़ने लगता है। जो व्यक्ति अपनी शक्ति के दिनों में दूसरों को मारते-पीटते हैं, बालकों पर लात, घूँसे, बैंत उड़ाते हैं, वे वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाने पर अपना सिर फोड़ते हैं, शरीर को ताड़ना देते हैं और यहाँ तक कि कई व्यक्ति आत्म-हत्या तक कर लेते हैं। आत्महत्या अपने प्रति घृणा, हीनभाव, दोष दर्शन की चरमावस्था है।

इसके विपरीत सद्भावना उच्च विचारों वाला मनुष्य हर परिस्थिति में शान्ति, सन्तोष-प्रसन्नता अनुभव करता है। उसके विचारों से स्वयं उसका ही नहीं वरन् अन्य लोगों का भी हित साधना होता है। भला मनुष्य चारों और भलाई की सुगन्ध बिखेरता है और बुरा मनुष्य बुराई का गन्दा कीचड़ ही उछालता रहता है।

भलाई, उत्कृष्टता, स्वच्छता आदि सब ईश्वर, प्रकृति, नैतिक विधान की धरती पर मिलते हैं वे अनादि हैं, स्थिर हैं, अनन्त हैं। सृष्टि की रचना में कहीं भी गन्दगी, बुराई, अपवित्रता नहीं है। संसार के तत्व चिन्तकों, दार्शनिकों, हमारे ऋषियों ने यह सब अनुभव किया और कहा "मंगलमय भगवान की मंगलमय कृति यह सृष्टि है" फिर भला दूषित, अपवित्र तत्व कहाँ से आये।

हम अपने भीतर दृष्टिकोण को बदलें तो बाहर जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह सब कुछ बदला-बदला दिखाई देगा। आँखों पर जिस रंग का चश्मा पहना होता है बाहर की वस्तुएँ उसी रंग की दिखाई पड़ती हैं। अनेक लोगों को इस संसार में केवल पाप और दुर्भाव ही दिखाई पड़ता है। सर्वत्र उन्हें गन्दगी ही दीख पड़ती है। इसका प्रधान कारण अपनी आन्तरिक मलीनता ही है। इस संसार में अच्छाइयों की कमी नहीं, श्रेष्ठ और सज्जन व्यक्ति भी सर्वत्र भरे हैं, फिर हर व्यक्ति में कुछ न कुछ अच्छाई तो होती ही है। छिद्रान्वेषण छोड़कर यदि हम गुण अन्वेषण करने का अपना स्वभाव बना लें तो घृणा और द्वेष के स्थान पर हमें प्रसन्नता प्राप्त करने लायक भी बहुत कुछ इस संसार में मिल जायगा। बुराइयों को सुधारने के लिए भी हम घृणा का नहीं, सुधार और सेवा का दृष्टिकोण अपनायें तो वह कटुता और दुर्भावना उत्पन्न होगी जो संघर्ष और विरोध के समय आमतौर से हुआ करती है।

दूसरों को सुधारने से पहले हमें अपने सुधार की बात सोचनी चाहिए। दूसरों से सज्जनता की आशा करने से पूर्व हमें अपने आपको सज्जन बनाना चाहिए। दूसरों की दुर्बलताओं के प्रति एकदम आगबबूला हो उठने से पहले हमें यह भी देखना उचित है कि अपने भीतर कितने दोष-दुर्गुण भरे पड़े हैं। बुराइयों को दूर करना एक प्रशंसनीय प्रवृत्ति है। अच्छे काम का प्रयोग अपने से ही आरम्भ करना चाहिए। हम सुधरें, हमारा दृष्टिकोण सुधरे तो दूसरों का सुधार होना कुछ भी कठिन न रह जायगा।

दूसरों के द्वारा अपने प्रति जो उपकार हुए हैं उनका यदि हम विचार करते रहें तो यही अनुभव होगा कि हमारे निकटवर्ती सभी लोग बड़े उपकारी, सेवाभावी और स्वर्गीय प्रकृति के हैं। इनके साथ रहने से अपने को सुख ही सुख अनुभव करना चाहिए। इसके विपरीत यदि उनके दोष ढूँढ़ने लगें और उन घटनाओं का स्मरण किया करें जिनमें उन्होंने कुछ उपकार किये हों तो हमें अपने सभी स्वजन-सम्बन्धी बड़े दुष्ट प्रकृति के अपकारी, असुर, एक शत्रु प्रतीत होंगे और ऐसा लगेगा कि इन लोगों का सम्पर्क हमारे लिए नरक के समान दुःखदायी है।

इस संसार का निर्माण सत् और तम, शुभ और अशुभ, भले और बुरे तत्वों से मिलकर हुआ है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो पूर्णतः बुरा या पूर्णत भला हो। समय-समय पर यह भली-बुरी परिस्थितियाँ दबती और उभरती रहती हैं। धूप-छाँह की तरह प्रिय और अप्रिय अवसर आते-जाते रहते हैं। इनमें से किसे स्मरण रखा जाय और किसे भुलाया जाय यही विचार करना बुद्धिमत्ता का चिन्ह है। यदि हम दुःखों को, अभावों को, असफलताओं को, दूसरे के अपकारों को ही स्मरण किया करें तो यह जीवन नरकमय दुःखों से भर जायगा। हर घड़ी खिन्नता, निराशा और असंतुष्टि चित्त में छाई रहेगी। पर यदि दृष्टिकोण बदल लिया जाय और प्रिय प्रसंगों, सफलताओं, प्राप्त साधन सम्पदा के लाभों और दूसरों के किये हुए उपकारों को स्मरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि भले ही थोड़े अभाव आज हों पर उनकी तुलना में सुखदायक वातावरण ही अधिक है, दुर्भाग्य की अपेक्षा सौभाग्य की ही स्थिति अपने को अधिक उपलब्ध है।

जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने के लिए सुविधा-सामग्रियों की आवश्यकता अनुभव की जाती है, सो ठीक है। इसके लिये भी प्रयत्न करना चाहिए। यह भी न भूल जाना चाहिए कि जो प्राप्त है उसका सुदपयोग किया जाय। उपलब्ध साधनों का सुदपयोग यदि हम सीख जायें,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर वस्तु का मितव्ययितापूर्वक उपयोग करें, उसका पूरा-पूरा लाभ लें तो जो कुछ प्राप्त है वही हमारे आनन्द को अनेकों गुना बढ़ा सकता है। अपनी धर्म-पत्नी, जैसा भी कुछ वह है यदि उसे अधिक शिक्षित, अधिक सुयोग्य बनाया जाय और उसके स्वभाव तथा गुणों का अपने कार्यक्रमों में ठीक प्रकार उपयोग किया जाय, तो यही पत्नी जो आज व्यर्थ का बोझ जैसी मालूम पड़ती है—अत्यन्त उपयोगी एवं लाभदायक प्रतीत होने लगेगी। जितनी आजीविका आज अपने को प्राप्त है, यदि उसके खर्च की विवेक और मितव्ययितापूर्वक ऐसी योजना बनाई जाय कि प्रत्येक पैसे से अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके तो यह आज की थोड़ी आजीविका भी आनन्द और सुविधाओं में अनेक गुनी वृद्धि कर सकती है। इसके विपरीत यदि अपना दृष्टिकोण अस्त-व्यस्त है, तो बड़ी मात्रा में सुख-साधन उपलब्ध होते हुए भी वे कुछ लाभ न पहुँचा सकेंगे वरन् 'जी के जंजाल' बनकर परेशानियाँ और उलझनें ही उत्पन्न करेंगे।

सुखी जीवन की आकांक्षा सभी को होती है। वह उचित और स्वाभाविक भी है, पर उसकी उपलब्धि तभी सम्भव है जब हम अपने दृष्टिकोण की त्रुटियों को समझें और उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। सुधरा हुआ दृष्टिकोण स्वल्प साधनों और कठिन परिस्थितियों में भी शान्ति और सन्तोष को कायम रख सकता है। गरीबी में भी लोग स्वर्ग का आनन्द उपलब्ध करते देखे जाते हैं। पर यदि दृष्टिकोण अनुपयुक्त है, तो संसार के समस्त सुख-साधन उपलब्ध होते हुए भी हमें सुखी न बना सकेंगे। अतएव सुखी जीवन की आकांक्षा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित है कि अपने दृष्टिकोण को परिमार्जित बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहे।

आत्मिक दृष्टिकोण मानसिक सन्तुलन की दृष्टि के परिष्कार की प्रेरणा देता है। यदि उसे अपनाया जा सके तो मनुष्य जीवन में शोक-संतापों की, उद्वेगों की समस्या का सहज ही समाधान हो सकता है। यह कार्य इच्छित परिस्थितियाँ बना देने से सम्भव नहीं हो सकता। इच्छाओं की कोई सीमा नहीं, एक की पूर्ति होते ही दूसरी उससे भी बड़ी दिखाई देती है और अभाव, असन्तोष जहाँ का तहाँ बना रहता है। यदि साधन जुटा देने भर से सुख-सन्तोष प्राप्त करना सम्भव रहा होता तो सभी साधन सम्पन्न व्यक्ति सन्तुष्ट पाये जाते किन्तु वे तो अभावग्रस्त लोगों की अपेक्षा और भी अधिक विक्षुब्ध पाये जाते हैं। मनुष्य की दूरदर्शिता जब कभी गम्भीरतापूर्वक आजीवन प्रसन्नता बनाये रहने का उपाय खोजेगी, तब उसे एक ही मार्ग मिलेगा कि अध्यात्मवाद की नीति अपनायी जाय और मनःक्षेत्र को परिष्कृत किया जाय।

आर्थिक कठिनाइयाँ—शारीरिक अस्वस्थता और मानसिक उद्विग्नता की समस्याओं पर विचार करने के उपरान्त आइए अब आर्थिक समस्या पर विचार करें। यह हर किसी के सामने मुँह बाये खड़ी है। ऐसे लोग कोई बिरले ही मिलेंगे जो अपने को आर्थिक दृष्टि से सन्तुष्ट कह सकें। हर व्यक्ति अपने इस अभाव को दूर करने के लिए बहुत चिन्तित दिखाई पड़ता है। बहुत हाथ पैर-पीटने पर भी बात उतनी नहीं बनती जितनी आवश्यकता अथवा इच्छा है। इसे दरिद्रता का व्यापक संकट कहा जा सकता है। इस समस्या पर भी विचार किया जाना चाहिए और उसका स्थिर समाधान खोजा जाना चाहिए।

पहले यह विचार करना होगा कि धन आखिर है क्या ? मानवी बल और बुद्धिबल का विभिन्न प्रयोजनों में प्रयोग करने से जो उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं, उन्हें सम्पत्ति कहा जा सकता है। धन की सही परिभाषा यही है। अर्थशास्त्र का आरम्भ यहीं से होता है। जुआ, सट्टा, लाटरी, ब्याज, उत्तराधिकार, गढ़ा खजाना आदि के रूप में बिना श्रम की सम्पत्ति कई लोग प्राप्त कर लेते हैं। पर उसे अपवाद कहना चाहिए। इस प्रकार की सम्पदा के प्रति औचित्य की मान्यता बदली जानी चाहिए अन्यथा विडम्बना बनी रहेगी। आज नहीं तो कल वह दिन आकर ही रहेगा जब अर्थशास्त्र का शुद्ध अध्यात्म सम्मत सिद्धान्त ही सर्वमान्य होगा। शारीरिक और मानसिक श्रम का उचित मूल्य ही लोग धन के रूप में प्राप्त कर सकेंगे।

अधिक धन उपार्जित करके अधिक सुख-साधन प्राप्त करने की इच्छा हो तो अपनी शारीरिक श्रम-क्षमता और मानसिक-दक्षता बढ़ाई जानी चाहिए। इस दृष्टि से जो जितना आगे बढ़ेगा वह उतना अधिक प्राप्त करेगा। अपना दुर्भाग्य यह है कि हम श्रम से जी चुराने की प्रवृत्ति अपनाते हैं और आरामतलबी से समय गुजारना चाहते हैं। श्रम की अप्रतिष्ठा हमारा सामाजिक दोष है। हरामखोरों को बड़ा आदमी एवं भाग्यवान कहा जाता है। श्रमजीवी अभागे और अछूत माने जाते हैं। यह प्रवृत्ति बदली जानी चाहिए। सम्पन्नता को खरीदने के लिए श्रम-क्षमता विकसित की जानी चाहिए।

शरीर की तरह ही मस्तिष्क भी उपार्जन का साधन है। शिक्षा, शिल्प, कला, कौशल, व्यावहारिक मधुरता आदि वरिष्ठताओं के सहारे अधिक धन कमाया जा सकता है। हम लक्ष्मी पूजन जैसे किसी आकस्मिक संयोग से धन प्राप्त करने की बात सोचते हैं और चाहते हैं कि अकर्मण्यता, अदक्षता जहाँ की तहाँ बनी रहे। आलस्य प्रमाद में कमी न पड़े और प्रचुर मात्रा में धन ऐसे ही आसमान से छप्पर फाड़ कर निकल पड़े। यह अनात्मवादी मान्यता ही अर्थसमस्या की मूल कारण बन जाती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण सम्पन्नता का औचित्यपूर्ण मार्ग सुझाता है। हमें अधिक परिश्रम के लिए उत्साह उत्पन्न करना चाहिए। हरामखोरी और कामचोरी को भी नैतिक अपराधों की श्रेणी में गिनना चाहिए। दक्षता बढ़ाने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए अधिक सोचने, अधिक जानने और अधिक सुयोग्य बनने के लिए सदैव सचेत रहना चाहिए। इस बढ़ी हुई दक्षता की कीमत पर निश्चय अधिक धन प्राप्त किया जा सकेगा और उससे उचित सुख-सुविधा का उपयोग किया जा सकेगा। आर्थिक प्रगति का यही राजमार्ग है। इसे छोड़कर सस्ते में सरलतापूर्वक बहुत जल्दी अधिक धन प्राप्त करने की बात सोचना प्रकारान्तर से अनैतिक एवं अपराधी प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए अग्रसर होना है।

श्रम से जी चुराकर बैठे-ठाले अमीर बनने की आकांक्षा व्यक्तिगत रूप से अनीति के मार्ग पर धकेलती है और समाज में भी वैसी ही दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। यदि बिना श्रम किये सम्पदा कमाई और इकट्ठी की गई तो उसका स्रोत अनैतिक और अवांछनीय ही हो सकता है। चोरी, जुआ, सट्टा, भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, आदि इसी स्तर के स्रोत हैं, जिनमें बिना श्रम किये लाभ उठाने की भावना काम करती है। एक व्यक्ति इस प्रकार सम्पन्न हो जाता है तो समाज में दूसरे लोग उसे देखकर स्वयं भी सम्पन्न होने की इच्छा रखने लगते हैं और बिना मेहनत के अमीर बनने के लिए अनैतिक उपाय काम में लाना शुरू कर देते हैं।

ठगी, चोरी, बेईमानी, लूट, डकैती, मिलावट, कम-तौल, मुनाफाखोरी, करचोरी, तस्करी आदि अनैतिक अपराधों के पीछे उनके कर्त्ताओं की यही प्रवृत्ति काम कर रही होती है कि बिना उचित क्षमता एवं श्रमशीलता के स्वल्पकाल में अधिक धन कमा लिया जाय। कमजोर प्रकृत्ति के लोग मिलावट, कम तौलना जैसे सरल अपराध कर पाते हैं, दुस्साहसी भयंकर कुकृत्य कर गुजरते हैं। दिशा एक है, प्रयोग करने की स्थिति भर अलग है। यह गम्भीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए कि यह अपराधी प्रकृत्ति मानवी चरित्र का सर्वनाश करती है, उसकी प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा नष्ट करके अस्पर्श्य-संक्रामक रोग से ग्रसित की तरह उसे घृणास्पद बना देती है।

अनैतिकता अपनाकर जीवनयापन करने वाला—मनुष्य अमीर भले ही हो जाय पर उनका व्यक्तित्व दिन-दिन पतन के गर्त में गिरता जायगा। आत्म प्रताड़ना उसे जर्जर बना देती है। अपनी नजर में गिरा हुआ मनुष्य किसी अन्य की नजर में ऊँचा नहीं उठ सकता। आत्मा और परमात्मा की अदालत में जघन्य अपराधियों की तरह लज्जित होकर खड़े होने वालों को अमीरी कितनी महँगी पड़ती है इसे गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयत्न किया जाय तो कदाचित् किसी की हिम्मत उस मार्ग पर चलने की न हो। अवांछनीय धनलिप्सा ही समस्त दुष्कर्मों की जननी है। ऐसा धन व्यसन, अनाचार, विलासिता, फिजूलखर्ची जैसे अनुपयुक्त मार्गों में खर्च होता है और उससे अन्य प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

उपार्जन की क्षमता बढ़ाने के अतिरिक्त आर्थिक सन्तुलन का दूसरा उचित उपाय यह है कि आमदनी के अनुरूप खर्च किया जाय और बजट बनाकर चला जाय। सादगी से रहा जाय। अपनी सीमित आमदनी से दूसरे समझदार लोग जिस स्तर का जीवनयापन करते हैं उसका अनुसरण किया जाय। यदि आमदनी नहीं बढ़ सकती तो खर्च सीमित रखने चाहिए, विशेषतया नये खर्चे तो सिर पर लादने ही नहीं चाहिए। बच्चों की संख्या बढ़ाना भी आर्थिक संकट मोल लेने जैसा ही है। इसके कारण सारा परिवार अर्थाभाव में पिसता है। बच्चों का विकास भी नहीं हो पाता। उनकी आत्मा इस दयनीय स्थिति के लिए उन्हीं मूर्खों को कोसती है, जो सन्तानोत्पादन से पूर्व इस नये उत्तरदायित्व के निर्वाह में असमर्थ होते हुए भी अन्धेरे में कदम बढ़ाते चले गये।

आध्यात्मिक सिद्धान्त के अनुसार परिवार में क्रियाशीलता बढ़ाकर भी संकट की चिन्ता से बचा जा सकता है। 'एक कमाये सब खायें' की परम्परा अपने घरों में चल रही है। इसे छोड़कर छोटे गृह उद्योगों की व्यवस्था हर घर में की जा सकती है और खाली समय में कुछ कमा लेने का उत्साह हो तो ऐसे रास्ते सहज ही निकल सकते हैं जिससे आजीविका में वृद्धि की जा सके।

किन्तु यह आय नहीं बढ़ सकती तो खर्च सीमित रहने चाहिए, विशेषतया नये खर्च तो सिर पर लादने ही नहीं चाहिए। ऋण लेने की आदत भी तभी पड़ती है, जब आमदनी से अधिक खर्च बढ़ जाय। आपत्तिकाल में या किसी व्यवसायिक प्रयोजन से लिए ऋण लेना अलग बात है किन्तु खर्च बढ़ा लेना और उन्हें ऋण लेकर पूरा करना ऐसा अविवेक है, जिसका दुष्परिणाम एक दिन दिवालिया बन जाने, बेईमान कहलाने और तिरस्कार सहने के रूप में ही सामने आता है। आध्यात्मिक आदर्श अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखने, आमदनी के अनुसार खर्च करने और अधिक उपार्जन के लिए योग्यता बढ़ाने, अधिक श्रम करने की ही प्रेरणा देते हैं।

अपने देश में सामाजिक कुरीतियाँ अर्थ संकट उत्पन्न करने का बहुत बड़ा कारण हैं। विवाह-शादियों में होने वाले अपव्यय कुरीतियों में सर्वप्रथम हैं। अलन-चलन, मृतक भोज, धर्माडम्बर की आड़ में कुपात्रों से जेब कटाते रहना, जैसी अनेक मूर्खतायें अपने समाज में प्रचलित हैं, जिनके कारण असाधारण रूप से धन की बर्बादी होती है और लोगों को दरिद्र एवं बेईमान बनना पड़ता है और सभी कुप्रथायें भी ऐसी ही हैं जिनको चौधरी, पंचों की—लोकचर्चा की परवाह किये बिना एक ही झटके में उखाड़ फेंकना चाहिए। यह साहस विवेकवान तथा आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं।

अविवेकी लोग ओछे रास्ते अपनाकर धनी बनना चाहते हैं किन्तु अनाचार एक दिन प्रगट होकर ही रहता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब ग्राहकों के असहयोग का संकट उस उपार्जन को ठप्प करके रख देता है। कामचोर और बेईमान कर्मचारी कभी उन्नति नहीं कर सकते। ईमानदारी की नीति पर चलते हुए ही हर व्यक्ति प्रामाणिक बन सकता है। अपने श्रम एवं उत्पादन का प्रामाणिकता के आधार पर अधिक मूल्य पा सकता है एवं अधिक सम्मान भी।

अर्थ क्षेत्र में श्रमनिष्ठा, मनोयोगपर्वूक कार्य संलग्नता, ईमानदारी, प्रामाणिकता, सादगी, मितव्ययिता यह सभी गुण अध्यात्म आदर्शों के अनुरूप हैं। इन्हें अपनाये बिना अर्थ संकट से बचे रहने का, अर्थउपार्जन और सन्तुलन का और कोई मार्ग नहीं। अनीति की कमाई का आकर्षण और मूर्खतापूर्ण अपव्यय की आदत ही अर्थ सम्बन्धी विकृतियों का कारण बनती है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण का व्यक्ति इन दोनों से सहज ही बच जाता है।

अनुत्पादक तथा जमाखोरी को आर्थिक सन्तुलन के लिए विष माना जाता है। 'कमाया सौ हाथ से जाय पर दान हजार हाथ से करें' की नीति अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। वह सन्तोष हानिकारक है जिससे मनुष्य—अकर्मण्य बनता है और उत्पादन से हाथ सिकोड़ता है। हर व्यक्ति को राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने के लिए अथक् परिश्रम करना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि वह उपार्जन एकाकी उपयोग में न लगकर सार्वजनीन हित साधन में लगता रहे। निषेध एकाकी उपयोग का है उसी के सम्बन्ध में कहा गया है कि "जो आप कमाता और आप ही खाता है वह चोर है।" यह अध्यात्म सम्मत अर्थनीति ही व्यक्ति और समाज की सुख-शान्ति में वृद्धि कर सकती है और इसी को अपनाकर अर्थ संकट से सदा-सर्वदा के लिए छुटकारा पाया जाता है।

पारिवारिक विग्रह—चौथी समस्या पारिवारिक है। गृह कलह से लोग अशान्त पाये जाते हैं। ऐसे परिवार थोड़े से ही मिलेंगे जिनमें स्नेह, सौजन्य, सद्भाव, सहयोग का वातावरण हो और छोटे-छोटे घरों में स्वर्गीय हर्षोल्लास का जीवन जिया जा रहा हो। बाहर से एक दिखते हुए भी मनोमालिन्य, असहयोग, उपेक्षा, अवज्ञा, आपाधापी की स्थिति बनी रहती है और अनुशासनहीनता पनपती रहती है। इन कारणों से परिवार संस्था नष्ट-भ्रष्ट होती चली जा रही है।

परिवार संस्था के महत्व को भुला दिये जाने के कारण ही पारिवारिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। आज परिवार की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करना भर ही पर्याप्त समझा जाता है। अच्छा खिला दिया, बढ़िया पहना दिया, शिक्षा और मनोरंजन के साधन जुटा दिये, बस इतने मात्र से ही पारिवारिक उत्तरदायित्व पूरे हुए समझ लिये जाते हैं। परिवार के सदस्यों की बाहरी आवश्यकतायें सुविधापूर्वक पूरी होते रहने से उनमें ऐसा अभ्यास पड़ जाता है कि कोई असुविधा होते ही वे विग्रह पैंदा करने लगते हैं। जब परिवार को धर्मशाला और होटल से अधिक कुछ बनाने की चेष्टा ही नहीं की जाती तो रहने, खाने में कोई भी असुविधा होते ही कलह उत्पन्न होना अस्वाभाविक कैसे कहा जायगा ? परिवार का उद्देश्य और महत्व समझा जाना चाहिए। समाज और व्यक्ति के बीच की कड़ी परिवार है। वही वह खदान है जिसका वातावरण सुसंस्कृत बना रहे तो उसमें से नररत्न निकलते रहेंगे, अपना गौरव और समाज का वर्चस्व बढ़ाते रहेंगे। परिवार घटकों का समूह ही समाज है। स्कूली शिक्षा से जानकारी भर बढ़ती है। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर बनने वाला चरित्र तो परिवार की पाठशाला में ही बनता है। इसी व्यायामशाला में अभ्यास करके व्यक्तित्व ढालने की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इन तथ्यों की उपेक्षा कर देने के दुष्परिणाम ही पारिवारिक समस्याओं के रूप में सामने आते हैं।

आज परिवार की आर्थिक आवश्यकता पूरी करने भर का ध्यान रखा जाता है। अच्छा खिला-पहना दिया, पढ़ाई और शादी के साधन जुटा दिये, उत्तराधिकारियों के लिए धन छोड़ दिया तो पारिवारिक उत्तरदायित्वों की इतिश्री समझ ली गई। इसका अर्थ तो यह हुआ कि परिवार के सदस्य भौतिक यन्त्र मात्र हैं, जिनकी आवश्यकताओं के लिए भौतिक साधनों तक जुटा दिया जाना पर्याप्त है। मोटर के लिए पेट्रोल, लुबरीकेशन, ग्रीस, पानी आदि जुटा देना पर्याप्त है, पर मनुष्य मशीन तो नहीं है। उसके भीतर जीवन और चेतना भी है। उस कल्पवृक्ष का पनपना और परिष्कृत बनना सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों का खाद-पानी पाकर ही सम्भव हो सकता है। यह साधन जुटाये जा सकें तो गरीबी में रहते हुए भी किसी परिवार के सदस्य नैष्ठिक नागरिकों की—श्रेष्ठ सज्जनों की श्रेणी में गिने जा सकने योग्य बन सकते हैं।

परिवारों के सृजन और परिपोषण के लिए अध्यात्म दृष्टिकोण से ही तो परिस्थितियाँ ऐसी बनेंगी जिसमें पलने वाले आजीवन अपने सौभाग्य को सराहते रहेंगे। विवाह वासना के लिए नहीं, विशुद्ध रूप से दो आत्माओं के बीच घनिष्ठता, मैत्री एवं सहयोग के लिए किए जायें और उसी आदर्श को दोनों पक्ष निबाहें तो निश्चित रूप से उनके बीच उच्चस्तरीय आत्मीयता विकसित होगी। वे दोनों हर स्थिति में सन्तुष्ट रहेंगे और कर्तव्य उत्तरदायित्व को समझते हुए पूरे परिवार को समुन्नत बनाने में जुटे रहेंगे। ऐसे लोग सन्तानोत्पादन के लिए लालायित नहीं हो सकते। वे स्वतः ही समझेंगे कि घर के बड़ों की सेवा, बराबर वालों का सहयोग और छोटों को अनुदान देने की जिम्मेदारियाँ पूरा करना आवश्यक है। उनकी पूर्ति के लिए ही जब पर्याप्त धन और समय नहीं है, तो अनावश्यक अतिथियों की घुसपैठ क्यों होने दी जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधुनिक वातावरण में पनप रहे परिवारों में आये दिन खींचतान, आपाधापी, द्वेष, दुर्भाव का विकृत वातावरण बना रहता है। फलतः उस घुटन में जो भी रहते, पलते हैं, दुर्बुद्धि ग्रसित होते जाते हैं। यदि इस स्थिति को बदला जा सके और इस पाठशाला में सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों के आधार पर दैनिक कार्य व्यवहार का ढाँचा खड़ा किया जा सके तो घर का हर व्यक्ति नित्य-नियमित रूप से श्रमशीलता, स्वच्छता, मधुरता, मितव्ययिता, सहकारिता, सेवा, सहायता, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता जैसे सद्गुणों को अपनाता और पनपाता चला जायगा। परिवारों की नर्सरी में ठीक तरह उगाया गया पौधा जिस बगीचे में भी लगेगा, वहीं फलेगा-फूलेगा और अपने सुन्दर फूलों और मधुर फलों से लदा हुआ श्रेष्ठ वातावरण उत्पन्न करेगा।

परिवारों का सृजन और संचालन अध्यात्म दृष्टिकोण अपनाकर किया जाय तो उसमें सद्भावना हिलोरें ले रही होंगी। सत्परम्परायें पनप रही होंगी और उनमें रहने-पलने वाले अपने को धन्य अनुभव कर रहे होंगे। किन्तु यदि वासना के लिए विवाह, मोह के लिए सन्तान, लाभ के लिए उपार्जन और अहंकार का आधिपत्य चरितार्थ किया जा रहा होगा तो हर घर में नारकीय वातावरण ही बना रहेगा और उससे दम घुटने जैसी व्यथा सहन करते हुए हर सदस्य क्रमशः अधिक विकृत ही बन रहा होगा।

इस भौतिकवादी दृष्टिकोण ने पाश्चात्य देशों में परिवार संस्था का दम घोंट दिया है। वहाँ वासना के लिए विवाह होते हैं और इसी पशु प्रकृति से टकराकर हर-दिन जोड़े जुड़ते-बिछुड़ते हैं। पति-पत्नी में से किसी को विश्वास नहीं होता कि हम लोगों का आज का सहचरत्व कल तक भी स्थिर रह सकेगा या नहीं। अविश्वास और अनिश्चय से भरे दाम्पत्ति जीवन कितने नीरस, कितने अस्थिर, कितने बनावटी होते हैं और पति-पत्नी के बीच कितनी बड़ी दीवार खड़ी रहती है, इसे कोई उन तथाकथित सभ्य लोगों के बीच रहकर भली प्रकार देख सकता है। अभिभावकों को अपनी सन्तान की अवज्ञा मिलती है और सन्तान को अभिभावकों की उपेक्षा। ऐसी दशा में संयुक्त परिवारों का वह स्वर्गीय वातावरण कैसे स्थिर रह सकता है जो भारत की अपनी मौलिकता और अपनी विशेषता है। जिसके लिए आज भी समस्त संसार की आशा भरी दृष्टि लगी हुई है और सोचा जा रहा है कि इसी पद्धति को पुनर्जीवित करके ही व्यक्ति का निर्माण और समाज का विकास सम्भव हो सकेगा।

परिवार संस्था को नवजीवन मिल सके तो वह अपने छोटे-छोटे घरों में—स्वर्गीय अनुभूतियों को अपनी इसी धरती पर दृश्यमान कर सकते हैं। यह नर जीवन गृह विज्ञान के नाम से प्रचलित सुव्यवस्था और सुसज्जा का प्रकरण पूरा कर लेने भर से नहीं मिल सकता। इसके लिए अध्यात्म दृष्टिकोण का गहराई तक समावेश करना होगा। घर को आदर्शवादिता की प्रयोगशाला, पाठशाला, व्यायामशाला के रूप में विकसित करना होगा। आहार-विहार से लेकर दैनिक क्रियाकलाप और पारस्परिक व्यवहार में ऐसे सूत्रों का समन्वय करना होगा जिसके सहारे परिवार के सदस्यों में से हर एक को उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए अदम्य उत्साह पैदा हो सके।

धन अपनी जगह उपयोगी हो सकता है, सुव्यवस्था की भी सराहा जा सकता है, पर स्मरण रहे इतने भर से ही परिवार संस्था प्राणवान न हो सकेगी। नई उच्च शिक्षा दिलाकर सन्तान को कमाऊपूत बना देना उचित है। उनके लिए प्रचुर साधन जुटा देने का भी महत्व हो सकता है, पर ध्यान रहे यदि उनमें सद्गुणों का बीजारोपण न हो सका—सद्भावनायें विकसित न की जा सकीं, स्वभाव में सज्जनता का समावेश न हुआ तो वे समृद्ध बन जाने पर भी व्यक्तित्व घटिया होने के कारण सदा उलझनों में ही उलझे रहेंगे। स्वयं कुढ़ते रहेंगे और—साथियों को भी कुढ़ाते रहेंगे। ऐसे व्यक्ति न स्वयं चैन से रहते हैं और न सम्पर्क में आने वाले किन्हीं को चैन से रहने देते हैं। स्वयं गिरते हैं और साथियों को भी गिराते हैं। ऐसी संतानें बढ़ाकर कोई मिथ्या अहंकार भले ही कर ले कि हमने पीढ़ियों को पदवीधारी या कमाऊ बना दिया, वस्तुतः ऐसे उत्पादन पर किसी की आत्मा गर्व अनुभव नहीं कर सकती। परिवार तो वही धन्य है जिसमें से श्रेष्ठ परम्पराओं का निर्वाह कर सकने वाले चरित्रवान, आदर्शवादी नर रत्नों का उद्भव हो सके। ऐसे सुसंस्कृत परिवार केवल वही बन सकते हैं, जिनमें अध्यात्म दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी गई हो। इसकी उपेक्षा की जाती रहे तो फिर यह सोचना व्यर्थ है कि भारत के प्राचीन आदर्शों की मूर्तिमान प्रयोगशाला के रूप में स्वर्गीय उल्लास की प्रतिच्छवि प्रस्तुत करने वाले देव मन्दिरों के रूप हमें अपने परिवारों में विकसित कर सकने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।

परिवार संस्था को यदि सच्चे अर्थों में जीवित रखना है, उसे मात्र भेड़ों का बाड़ा नहीं रहने देना है, तो रास्ता एक ही है कि उसका सृजन और संचालन अध्यात्म आदर्शों की प्रमुखता देते हुए किया जाय। शरीर के अवयवों जैसा पारस्परिक सघन सहयोग घर के सदस्यों के बीच पनपे, अधिकारों की उपेक्षा और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का आदर्श यदि परिवार का हर व्यक्ति निबाहे, तो उस उद्यान के सभी पेड़-पौधे शोभा-सुषमा से हरे-भरे दिखाई पड़ेंगे। अपने सुगन्ध-सौन्दर्य से सारे वातावरण को हर्षोल्लास से भर रहे होंगे।

आत्मिक विडम्बना—व्यक्तिगत जीवन की पाँचवी समस्या आत्मिक विकास की है। आत्मिक जीवन में परमात्मा का अनुग्रह आन्तरिक शांति, आत्मसंतोष एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मलाभ होने की तृप्ति को सफलता का चिन्ह माना जाता है। सिद्धियाँ और चमत्कार इसी स्तर पर पहुँचे हुए व्यक्तियों में देखे जाते हैं। वे महामानव बनते हैं। जीवात्मा, महात्मा, देवात्मा और परमात्मा के स्तर पर विकसित होने का लाभ इसी मार्ग पर चलते रहने वालों को प्राप्त होता है। स्वर्ग और मुक्ति का आनन्द इसी प्रगति के साथ सम्बद्ध है। जीवन लक्ष्य की पूर्ति के लिए आत्मशक्ति को प्राप्त करना होता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूजा-उपासना के उपचार काम में लाये जाते हैं, जो उचित भी हैं और आवश्यक भी। किन्तु यह ध्यान में रखा जाय कि यह उपचारात्मक कर्मकाण्ड साध्य नहीं साधन हैं। इनका उद्देश्य अन्तरात्मा के गहन स्तर में अध्यात्म की आस्थाओं के लिए जगह बनाना और उन्हें विकसित होने की पृष्ठभूमि बनाना भर है। चापलूसी करने, प्रलोभन देने या रिझाने वाले उपक्रम बनाने से उस परमात्म सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता जो सर्वान्तर्यामी और सृष्टि संचालक होने की महानता धारण किये हुए है। उसे उपचारात्मक बालक्रीड़ाओं से वशवर्ती नहीं किया जा सकता।

ईश्वरी अनुग्रह प्राप्त करने का—अन्तरात्मा में परमात्मा के अवतरण का एकमात्र आधार यही है कि दोनों का स्तर एक जैसा हो। सजातीय ही आपस में—घुलते हैं। दूध में पानी मिल सकता है। सन्तों का सन्त समागम होता है और दुष्टों की दुर्जन गोष्ठी दुरभिसंधियाँ रचती हैं। ईश्वर की समीपता का लाभ उसी स्तर की मनोभूमि बनाये बिना और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। आत्मिक प्रगति और आत्मशक्ति के कारण दिव्य जीवन का लाभ मिलता है और उसी के सहारे उन विभूतियों की उपलब्धि होती है जो ईश्वरीय अनुग्रह के कारण मिलने वाली फलश्रुतियों के रूप में समझी-समझायी और बतायी हैं।

आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार कलुष-कषायों के ईंट से चुनी गई है। दोनों अति समीप होते हुए भी अति दूर इसीलिए बने हुए हैं कि अपनाई गई असुरता खाई बनकर बीच में अड़ गई है। उसे पाटे बिना दोनों का मिलन सम्भव नहीं। अंगार पर राख की परत जम जाती है तो वह देखने में काला लगता है और छूने में गुनगुना भर रहता है। यदि परत को हटा दिया जाय तो अंगारा फिर पूर्व स्थिति में आ जायगा और उसकी चमक तथा गर्मी वैसी ही दृष्टिगोचर होगी जैसी कि पहले रहती थी। आत्मा परमात्मा का अंश हैं। अंश में अंशी की सारी विशेषतायें विद्यमान हैं। विक्षेप उसी अवांछनीयता द्वारा उत्पन्न किया हुआ है जिसे माया, भ्रांति, अवांछनीयता आदि के नामों से पुकारते हैं।

वेदान्त दर्शन के अनुसार परिष्कृत आत्मा ही ब्रह्म है। ब्रह्मविद्या की सुविस्तृत चर्चा करने के लिए जिस तत्वज्ञान का सृजन हुआ है, गहराई से उसका अध्ययन किया जाय तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि अध्यात्म विद्या का इतना विशाल कलेवर अन्तःकरण पर चढ़ी हुई प्रवृत्तियों को मिटाने और इसकी जगह पर उच्चस्तरीय आस्थाओं को प्रतिष्ठापित करने के लिए ही खड़ा किया है। इसी मार्ग पर चलते हुए आत्मा को परमात्मा बनने का अवसर मिलता है। अपनी संकीर्णताओं और दुर्बलताओं की बेड़ियाँ काट डाली जायें और अन्तःकरण में उत्कृष्ट आदर्शवादी मान्यतायें प्रतिष्ठापित कर ली जायें तो ही नर से नारायण, अणु से विभु और आत्मा से परमात्मा हुआ जाता है क्योंकि मनुष्य की मूल सत्ता तो वही है।

पूजा-पाठ आरम्भिक और योग-तप को उच्चस्तरीय उपासना पद्धति बताई और अपनायी जाती है। गहराई से देखने पर इस समूची प्रक्रिया का उद्देश्य आत्म सुधार और आत्म परिष्कार के लिए अन्तःभूमिका में अभीष्ट पृष्ठभूमि बनाना भर है। जिसकी उपासना इस मूल प्रयोजन को जितनी मात्रा में पूरा कर देती है, उसे उतनी ही मात्रा में आत्मोत्कर्ष का लाभ मिलता है। इस आत्मोत्कर्ष को ही दूसरे शब्दों में आत्म साक्षात्कार, एवं ईश्वरीय अनुग्रह के नाम से पुकारा जाता है। जिसकी उपासना इस मूल प्रयोजन को पूरा नहीं करती, रिझाने वाले उपचारों तक भटकती रहती है, उसके पल्ले कुछ पड़ता नहीं। ऐसे ही लोग साधना की निरर्थकता का रोना रोते और असफलता की शिकायत करते पाये जाते हैं। पूजा-उपचारों से देवता के प्रसन्न होने और मनचाहे वरदान देने की आशा लगाये रहने वाले व्यक्ति भ्रांतियों की भूल-भुलैयाँ में चक्कर भर काटते रहते हैं, उन्हें वह लाभ नहीं मिलता जो आत्म-साधना से मिल सकता है, मिलता रहा है।

आत्मचिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्म-विकास की चार दीवारों पर आत्मिक प्रगति का भवन खड़ा होता है। हवाई किला बनाकर कल्पना की उड़ानें तो उड़ी जा सकती हैं पर यदि मजबूत महल बनाना है और उसमें निवास करने का वास्तविक आनन्द लेना हो तो जमीन पर उसकी सुदृढ़ आधारशिला रखी जानी चाहिए। ईश्वरीय अनुग्रह की अमृत वर्षा तो सर्वत्र अनवरत रूप में होती रहती है, उसके लिए माँगने कहीं नहीं जाना है और अनुरोध-आग्रह किसी से नहीं करना है। साधना का उद्देश्य एक ही है—आत्मशोधन। दुष्कर्म से स्थूल शरीर, दुर्बुद्धि से सूक्ष्म शरीर और दुर्भावों से कारण शरीर में विकृतियाँ भर जाती हैं और समूचा व्यक्तित्व पतन के गर्त में जा गिरता है। इसी दुर्गति के खड्ड में पड़े हुए लोग नित्य उदय होने वाले सूर्य के प्रकाश से वंचित रहते हैं। ईश्वरीय अनुग्रह से वंचित रहते हैं। ईश्वरीय अनुग्रह से वंचित रहने का कारण हमारी अपनी ही अकृतज्ञता होती है। कठोर चट्टान पर अनवरत वर्षा होते हुए भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हरियाली उत्पन्न नहीं होती। इसमें बादलों से अनुरोध करना व्यर्थ है। चट्टान को ही कोमल रेत में बदलना पड़ेगा।

ईश्वर से विविध प्रार्थनायें की जाती हैं। उपासनाओं के अनेकानेक विधि-विधान हैं। इनमें प्रकारान्तर से आत्मशोधन के सभी संकेतों की ही भरमार है। वेदान्त दर्शन के अनुसार अपना परिष्कृत आत्मा ही—परमात्मा है। यह परिष्कार ही साधना विज्ञान की पृष्ठभूमि है। ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत तत्वज्ञान की सुविस्तृत विवेचना के लिए दर्शनशास्त्र का सृजन हुआ है। उसके अनेक निर्धारणों पर पैनी दृष्टि डाली जाय और खोजा जाय कि अध्यात्म जीवन का इतना विशालकाय कलेवर किसलिए खड़ा किया गया है ? तो प्रश्न के उत्तर में एक ही निष्कर्ष उभर कर आवेगा कि अन्तःकरण पर चढ़ी हुई प्रवृत्तियों को निरस्त करके उस जगह दैवी विभूतियों को, उच्चस्तरीय आस्थाओं को प्रतिष्ठापित किया जाय। यही एकमात्र वह मार्ग है जिस पर चलते हुए आत्मा की परमात्मा बनने का अवसर प्राप्त होता है। नर से नारायण, पुरुष से पुरुषोत्तम, अणु से विभु, लघु से महान बनने का एक ही उपाय है कि अपनी तुच्छताओं, संकीर्णताओं, दुर्बलताओं की बेड़ियाँ काट डाली जायें और महानता के उन्मुक्त आकाश में विचरण किया जाय।

धुँधले दर्पण में मुँह दिखाई नहीं पड़ता—गँदले पानी की तली में पड़ी हुई वस्तु ओझल रहती है। अन्तर की मलीनताओं के कारण ही आत्मा मूर्छित पड़ा रहता है और परमात्मा खोजने से भी नहीं मिलता। वासना और तृष्णा के आचरण आँखों पर पट्टी बाँधे रहते हैं। लोभ-मोह के रस्सों के भव बन्धनों में जकड़े रहते हैं। संकीर्ण स्वार्थपरता का ग्राह ही जीव रूप गज को अपने मुँह में निगले रहता है। इनसे छुटकारा मिल सके और उदात्त चिन्तन की दृष्टि मिल सके तो समझना चाहिए कि—जीवन मुक्त हो गया—मुक्ति मिल गई। परिष्कृत दृष्टिकोण का नाम ही स्वर्ग है। जो अपनी मौलिक गरिमा को समझ सका, विश्व उद्यान में अपनी जैसी कर्तव्यपरायणता निश्चित कर सका, अपनी बहिरंग एवं अन्तरंग गतिविधियों को उच्चस्तरीय बना सका, समझना चाहिए उसने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक व्यथा वेदनाओं की नरक वैतरणी पार कर ली और स्वर्ग के राज्य का आधिपत्य प्राप्त कर लिया। स्वर्ग एवं मुक्ति उस विवेकसम्मत दूरदर्शी दृष्टिकोण में सन्निहित हैं जिसे अध्यात्म के नाम से जाना-माना जाता है।

महामानव, सिद्ध पुरुष, महात्मा, देवात्मा, अवतारी, चमत्कारी आदि के नाम से जिन विशिष्ट आत्माओं के चरणों में जनसाधारण की श्रद्धांजलि अर्पित होती है, जो स्वयं भार ढोते और दूसरों को अपनी नाव पर बिठाकर भवसागर से पार लगाते हैं, उन्हें ही ऋषि एवं देव मानव कहते हैं। इनकी एक ही विशेषता, एक ही सफलता होती है कि उन्होंने अपने कषाय-कल्मषों को धो डाला होता है, क्षुद्रता का परित्याग कर महानता को अपना लिया होता है। ऐसे आप्त पुरुषों में भगवान की दिव्य ज्योति-आलोक पाया-जाता है और उनके सम्पर्क में आने वालों को पारस छूकर लोहा-सोना बनने जैसा लाभ प्राप्त होता है।

महामानवों का सहयोग, देवताओं का वरदान, ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिकता को व्यावहारिक जीवन में उतारने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। मनुष्य जीवन की पाँचवी सफलता है आत्मिक प्रगति के अवरोध का निवारण। इसी उलझन के कारण मनुष्य को पशु जीवन जीना पड़ता है और नारकीय यातनायें सहनी पड़ती हैं। इसका समाधान भी आध्यात्मिक आदर्शों को अपना लेने के अतिरिक्त और किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है।

यदि हम जीवन की उलझनें सुलझाना चाहते हैं, समस्याओं का हल पाना चाहते हैं, तो अध्यात्म की रीति-नीति अपनाने के लिए साहस जुटाना चाहिए। इसी पथ पर चलते हुए मनुष्य जीवन का सच्चा आनन्द और सच्चा लाभ किया जा सकता है।

सुखी जीवन का उपाय एक ही है, समस्त समस्याओं का समाधान एक ही है कि हमारी आस्था बदलें, उनमें उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश हो और उसका प्रतिफल व्यक्तित्व में बढ़ते हुए देवत्व के रूप में परिलक्षित हो। देव समाज के लिए स्वर्गीय परिस्थितियाँ सुरक्षित हैं। सन्त इमर्सन कहते थे कि "मुझे नरक में भेज दो, मैं वहीं अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।" उनका यह दावा मिथ्या नहीं था। उत्कृष्टवादी के लिए सामान्य परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सुख-शान्ति का सृजन कर सकना नितान्त सरल, स्वाभाविक एवं सम्भव है। यदि हम अध्यात्मवादी रीति-नीति अपना सकें तो निश्चित रूप से आधुनिक जीवन में प्रस्तुत अनेकानेक समस्याओं का समाधान पा सकते हैं।

समाज परक संदर्भ

यह संसार भगवान का सुरम्य उद्यान है। मनुष्य उसका ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार है। उसे इस उपवन की उल्लास भरी सैर करने भेजा है। पर्याप्त सुविधा-साधन देकर वहाँ की परिस्थितियाँ अधिक अच्छी बनाने में कुशलता दिखाने का काम सौंपा गया है। इस स्थिति में मनुष्य प्राणी को निरन्तर हर्षोल्लास ही हर्षोल्लास की अनुभूति होनी चाहिए। बुद्धि-वैभव में वह क्षमता है कि मरुस्थल में फूल खिला सके। फिर क्या कारण है कि उससे सम्पन्न होते हुए भी मनुष्य में रोना-रुलाना, कलपना-कलपाना पाया जाता है ?

सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व पाने वाला मनुष्य प्राणी इस धरती को स्वर्ग बना सकने की संभावनाओं से पूरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह सुसज्जित है। यहाँ निर्वाह ही नहीं आनन्द और उल्लास के प्रचुर साधन पग-पग पर उपलब्ध हैं। मनुष्य का इस पृथ्वी पर एकछत्र राज्य है। उसकी उपलब्धियों पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है, किन्तु इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह है कि हर समस्या को सहज ही सुलझा सकने में समर्थ मनुष्य को किसी कारण इतनी अधिक गुत्थियों में जकड़ना पड़ा है, जो सुलझाने में नहीं आतीं और डरावनी काली घटाओं की तरह निरन्तर अधिक सघन होती चली जाती हैं।

प्रगति के नाम पर जहाँ मनुष्य ने अनेक वस्तुयें कमाई हैं, वहाँ समस्यायें भी कम नहीं बढ़ाई हैं—कठिनाइयों ने भी कम उन्नति नहीं की है। अब के कुछ शताब्दी पूर्व तक मनुष्य इतने विवश और निराश नहीं थे जितने कि अपने प्रगतिशील कहे जाने वाले समय में उत्पन्न हुए हम लोग हैं। तब साधन भले ही कम रहे हों पर लोग मिल-जुलकर रहते थे और एक दूसरे के प्रति सहयोग-सद्भाव की उदार आत्मीयता अपनाकर अधिक सुखी और संतुष्ट रहते थे। लगता है वह सौभाग्य अपने हाथों से कोई और महादैत्य क्रमशः छीनता ही चला जा रहा है।

सिंह-व्याघ्र के आक्रमण-आतंक की बात समझ में आती है। साँप-बिच्छू का, प्रकृति का भय समझ में आता है पर मनुष्य ही मनुष्य के शोषण का शिकार बने, मनुष्य ही मनुष्य का रक्तपान करने में संलग्न दिखाई पड़े मनुष्य को मनुष्य के ही आतंक से काँपना पड़े यह स्थिति अत्यन्त विलक्षण है। सहकारी स्वभाव होने पर भी अपराधों और आक्रमणों की धूम क्यों बनी रहे ? इस विचित्रता का उत्तर तो प्राप्त किया ही जाना चाहिए।

राजनीति के क्षेत्र में विग्रहों का अन्त नहीं। शासन तन्त्र चलाने वाले नेताओं के मस्तिष्क पर इतना दबाव रहता है कि वे चैन से एक दिन भी नहीं रह पाते। तनाव के कारण उनका स्वास्थ्य क्षीण होता है और प्रायः अकाल में ही काल कवलित होना पड़ता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल खोजने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करते हैं पर कुछ बन नहीं पाता। एक सिरे को ढकने की बात बन नहीं पाती कि दूसरा सिरा उघड़ कर नई चिन्ता उत्पन्न कर देता है।

सामाजिक समस्यायें भी अपने युग में कम नहीं। समाज के मूर्धन्य व्यक्ति उनसे चिन्तित हैं और समाधान के लिए अपने ढंग से प्रयत्न करते हैं। पर देखने में यही आ रहा है कि एक गुत्थी सुलझने नहीं पाती कि दूसरी नई उठकर खड़ी हो जाती है। एक रोग अच्छा नहीं हो पाता कि दूसरा नया उठ खड़ा होता है। एक युद्ध समाप्त होने नहीं पाता कि नये युद्ध की नींव पड़ जाती है।

व्यक्तियों का विकृत चिन्तन ही उसके लिए और समाज के लिए समस्यायें उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए युद्ध और उपद्रवों को ही लें। एक वर्ग दूसरे वर्ग से यह खौफ खाये बैठा है कि कहीं वह उसे हानि न पहुँचा दे, इसलिए वह दूसरे वर्ग या राष्ट्र को दबाकर रखने के लिये तरह-तरह के उपाय खोज लेता है। युद्ध इसीलिए लड़े जाते हैं कि कहीं कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़प न ले। एक तरह से युद्ध की समस्या का समाधान करने के लिए युद्ध लड़े जाते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध इसलिये लड़ा गया था ताकि युद्ध समाप्त हो जाये। युद्ध समाप्त हुआ भी पर कुछ ही वर्षों में फिर दूसरा विश्व युद्ध लड़ा गया। उनके पीछे भी यही तर्क दिये गये। द्वितीय विश्वयुद्ध में कुछ और अधिक आश्वस्त होने लायक स्थिति बनी पर अब तीसरे विश्वयुद्ध की तैयारियाँ भीतर ही भीतर चल रही हैं।

यह वस्तुस्थिति का विश्लेषण मात्र है, निराशा उत्पन्न करने या मनोबल गिराने के लिए कही गई बात नहीं है। इस विश्लेषण से अच्छी तरह अनुभव किया जा सकता है कि समस्याओं के बाहरी समाधान कितने थोथे और कितने उथले हैं। इन दिनों जो भौतिक प्रगति हुई है उस पर प्रसन्नता व्यक्त की जा सकती है। जिस दिशा में हम बढ़ रहे हैं और सफलता पायी है, वह सराहनीय है। पर यह नहीं भुला दिया जाना चाहिए कि भौतिक उपलब्धियों का सदुपयोग कल्याणकारी हो। चाकू से फल भी छीले जा सकते हैं और किसी की हत्या भी की जा सकती है। सुई से कपड़ों की सिलाई भी होती है और चुभाने से दर्द भी होता है। यदि सामाजिक विग्रह का मूल कारण समझा जा सके तो उपलब्ध साधनों से ही स्थिति को बदला जा सकता है।

यहाँ हमें समझना होगा कि समाज की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं, व्यक्तियों का समूह ही समाज है। व्यक्ति जैसे होंगे वैसा ही समाज बनेगा। वैयक्तिक समस्यायें ही इकट्ठी होकर सामाजिक समस्यायें बन जाती हैं। आज की परिस्थितियों में समाज और राष्ट्र एक ही बात है। किसी जमाने में वे दो भी थे पर आज तो सामाजिक परम्पराओं को राष्ट्रीय मानकर चलने में किसी को कोई बड़ी आपत्ति नहीं है। सामाजिक, राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी असंख्य समस्याओं का वर्गीकरण किया जाय तो उन्हें पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) जन स्वास्थ्य की समस्या, (२) अपराध और युद्ध, (३) आर्थिक सन्तुलन—सम्पत्ति की कमी, (४) बढ़ती हुई जनसंख्या, (५) स्वार्थपरता और विकृत आग्रह। इन पाँचों के अन्तर्गत उन समस्त समस्याओं को लिया जा सकता है जो अनेक राष्ट्रों के सामने अनेक आकृति-प्रकृति की बनकर आती रहती हैं। इन्हीं को सुलझाने के लिए समाजसेवी, बुद्धिजीवी, राजनेता, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री विभिन्न ढंगों से सोचते, विभिन्न उपाय खोजते और विभिन्न कदम उठाते देखे जाते हैं। कल्याणकारी एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुरक्षात्मक योजनाओं का निर्धारण उन्हीं प्रयोजनों के लिए होता है। इन्हीं समाधानों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न होते और कूटनीतिक आदान-प्रदान चलते हैं। इतने पर भी देखा यही जाता है कि बात कुछ बन नहीं रही है और वांछित समाधान निकल नहीं रहे हैं।

कुछ समय पहले यह समझा जाता था कि समृद्धि बढ़ने से समाज की इन समस्याओं का हल निकल आयेगा, किन्तु यह प्रयोग सुसम्पन्न कहे जाने वाले देशों में हो चुका है। अमेरिका और योरोप के अनेक देश भौतिक प्रगति के हर क्षेत्र में पिछड़े देशों की तुलना में अत्यधिक ऊँचाई तक बढ़ गये हैं। पर वहाँ के लोगों की अशांत मनःस्थिति, बढ़ती हुई अपराधी प्रवृत्ति तथा दूसरी सामाजिक विकृतियों को देखकर लगता है कि मात्र भौतिक उन्नति को सब कुछ मान बैठना भूल है। समुन्नत कहलाने वाले देशों में उन व्यक्तियों की संख्या दिन-दिन बढ़ रही है, जो थकान और तनाव की मनःस्थिति से निरन्तर क्षुब्ध रहते हैं और नींद की गोली खाकर कुछ देर आधी-अधूरी नींद ले पाते हैं। स्वाभाविक स्नेह-सद्भाव घट जाने से संयुक्त परिवार प्रणाली के आनन्द को गँवा बैठे हैं। अनिश्चित और अविश्वस्त दाम्पत्य जीवन को कृत्रिम आकर्षणों के सहारे मधुर बनाने के प्रयोग सर्वथा असफल हो रहे हैं और परिवार संस्था टूट रही है। रोज तलाक, रोज विवाह की विडम्बना ने दाम्पत्य जीवन का आनन्द ही नष्ट कर दिया। सन्तान और अभिभावकों के बीच स्नेह-श्रद्धा के सूत्र अत्यन्त दुर्बल पड़ गये। पशु-पक्षियों में बच्चों और अभिभावकों का रिश्ता शिशु काल तक ही सीमित रहता है। समर्थ होते ही वह रिश्ता टूट जाता है। मनुष्य समाज में भी यही बात बढ़ रही है। विवाह का उद्देश्य काम-कौतुक बन रहा है। यह पशुता की ओर लौटना हुआ। फिर पशु-जीवन से बढ़कर पारिवारिक जीवन का आनन्द भी कैसे मिलेगा ? भटका हुआ मनुष्य, निष्ठारहित, परिवार—आदर्शविहीन समाज की दुर्गति ही होनी चाहिए। उसे हम तथाकथित समृद्ध देशों के आन्तरिक खोखलापन में झाँककर देख सकते हैं। यों वहाँ भी भौतिक प्रगति के नगाड़े बज रहे हैं और उपलब्धियों की गर्वोक्तियाँ की जा रही हैं।

यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मानवी सत्ता दो भागों में विभक्त है—एक भौतिक शरीर पक्ष है। दूसरा आत्मिक चेतना का। भौतिक निर्वाह के लिए सुविधा साधन चाहिए और आत्मिक सन्तोष के लिए आदर्शवादी वातावरण। दोनों साधन जहाँ जुटेंगे वहाँ सच्ची प्रगति मानी जा सकेगी और वहीं सुख-शांति की सम्भावना बढ़ेगी। यहाँ एक बात और भी समझ लेने की है कि चेतना मुख्य है और कलेवर गौण। आत्मिक प्रगति के हित स्वल्प साधनों में भी हँसते-हँसते ऋषि जीवन जिया जा सकता है पर प्रचुर साधनों के होते हुए भी आन्तरिक विकृतियाँ असुर स्तर के उद्वेग-अनाचारों का सृजन करती रहेंगी।

सम्पत्ति एक प्रकार की आग है जिसे अध्यात्म के चिमटे से ही पकड़ा जाना चाहिए। नंगे हाथ अंगार पकड़ लेने की चेष्टा में खतरा ही खतरा है। वासना-तृष्णा से, लोभ-मोह से, संकीर्ण स्वार्थपरता से घिरा हुआ व्यक्ति कितना ही साधन-सम्पन्न क्यों न हो अपनी उपलब्धियों का सदुपयोग न कर सकेगा। दुरुपयोग के दुष्परिणाम उसे पग-पग पर भुगतने पड़ेंगे। यही हो रहा है। हम अपनी प्रत्येक उलझन, समस्या, कठिनाई के पीछे उसी अनास्था को ताण्डव नृत्य करते देख सकते हैं।

राजतन्त्र की समर्थ सत्ता के माध्यम से समाधान निकालने की बात भी इसी पृष्ठभूमि पर सोची जा सकती है। आज सर्वत्र शासनतन्त्र में जनतान्त्रिक पद्धति ही कार्य कर रही है। इस स्थिति में जनसाधारण में आध्यात्मिक दृष्टि का विकास करके ही आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना सम्भव है। अपने मतदान का मूल्य और महत्व समझने वाले नागरिकों का चुना हुआ लोकतन्त्र रामराज्य की स्थापना करता है और उसी से सतयुगी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। अधिनायकवाद और राजतन्त्र की बात दूसरी थी पर प्रजातन्त्र में तो प्रजा ही अपने शासन की व्यवस्था आप करती है। भ्रष्ट प्रलोभनों और उद्देश्यों से प्रेरित होकर मतदान करने वाले वोटर ही वस्तुतः प्रजातन्त्र की जड़ खोदते हैं और अवांछनीय शासन-तन्त्र खड़ा करने के लिए हावी होते हैं।

बात घूम-फिरकर वहीं आ जाती है कि उत्कृष्ट शासन का आधार विवेकवान नागरिकों के दृष्टिकोण पर निर्भर है। शासन स्वरूप कितना ही शक्तिशाली हो पर उसका संचालक नियुक्त करने का अधिकार तो मतदाताओं के हाथ में ही सुरक्षित रहता है। स्वस्थ प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए सर्वमान्य और सर्वोपरि उपाय एक ही है कि प्रजातन्त्र के प्रयोजनों को अपने उत्तरदायित्व का भान हो और उसका उपयोग करते समय राष्ट्र की इस पवित्र थाती का पवित्रतम उपयोग करने की बात को ध्यान में रखें।

यह दृष्टि विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक कही जा सकती है। इसी बात को ऐसे भी कहते हैं कि स्वच्छ शासन की स्थापना उन प्रयोजनों के लिए ही सम्भव है जिन्हें परिष्कृत दृष्टिकोण वाले 'अध्यात्मवादी' की संज्ञा दी जा सकती है। शासनतन्त्र द्वारा राष्ट्रव्यापी, विश्वव्यापी समस्याओं का स्थिर समाधान इस पर निर्भर है कि नागरिकों, सरकारों और मूर्धन्य नेतृत्व द्वारा अध्यात्मवादी आदर्शों को किस सीमा तक अपनाया गया है।

गहराई से देखा जाय तो वे सामाजिक समस्याएँ स्वतन्त्र रूप में कुछ नहीं, वैयक्तिक समस्याओं का ही सामूहिक रूप हैं। असंयम से व्यक्ति दुर्बल और रुग्ण होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। उसी को सामूहिक रूप से बीमारी या हमारी अकाल मृत्यु की व्यापक समस्या कहा जा सकता है। मानसिक विकृतियाँ व्यक्तिगत जीवन में मनोविकारों और उद्वेगों के ग्रसित रहने एवं लड़ने-झगड़ने के लिए प्रेरित करतीं हैं। यही दुष्प्रवृत्ति सामूहिक जीवन में दंगों, उपद्रवों का रूप धारण करती हैं और अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए भड़काती हैं। उपद्रवों और अपराधों की राष्ट्रीय समस्या का प्रकारान्तर में व्यक्तियों की दुर्बुद्धि का सामूहिक अभिशाप कहा जा सकता है।

व्यक्ति की दरिद्रता देश की गरीबी और व्यक्तिगत अनैतिक धन की आकांक्षा राष्ट्रीय अर्थ असंतुलन का आधार है। सुसंस्कारी आधार से भटके हुए परिवार कुत्साओं और कुंठाओं से घिरे रहते हैं। अविवेकपूर्वक बच्चों का अन्धाधुन्ध उत्पादन राष्ट्रीय संकट बनकर खड़ा होता है। विकास के लिए जितने पैर पीटे जाते हैं, उससे ज्यादा नये रोजी-रोटी तथा सुविधा माँगने वाले उत्पन्न हो जाते हैं। विकास की उपलब्धियाँ नई आवश्यकता पूरी करने में सफल नहीं हो पातीं, फलतः समस्याएँ जहाँ की तहाँ अड़ी बैठी रहती हैं।

व्यक्तिवाद के आधार पर पनपने वाली स्वार्थपरता समूह रूप से असंगठित और सहकारिता की उपेक्षा करने वाले प्रयोजनों की समस्या बनती है। मुनाफाखोरी, कामचोरी, आपाधापी, सार्वजनिक प्रयोजनों की उपेक्षा, सहकारिता में अनुत्साह, वर्ग स्वार्थ और संघर्ष जैसे आचरणों से ही कोई देश दुर्बल बनता है। इन्हीं को किसी राष्ट्र का आन्तरिक खोखलापन कहा जा सकता है। व्यक्तिगत जीवन में आत्मिक दुर्बलता और सामूहिक जीवन में प्रयोजनों की चारित्रिक कमजोरी का नाम दिया जा सकता है। संक्षेप में व्यक्ति की छोटी दीखने वाली समस्याएँ ही सामूहिक रूप से विशालकाय, राष्ट्रीय अथवा सामाजिक समस्याएँ कही जाती हैं। इन्हीं दुर्बलताओं से शिक्षा, सम्पत्ति, आदि साधनों से सम्पन्न देश आन्तरिक दृष्टि से दुर्बल बने रहते हैं। इसके विपरीत जिन देशों में आन्तरिक दृढ़ता, भावनात्मक एकता, साहसिक प्रखरता एवं चरित्रनिष्ठा होती हैं, वे स्वल्प साधनों के सहारे अपना वर्चस्व सिद्ध करते हैं और न अन्तर्द्वन्द्वों में टूटते हैं और न बाहरी आक्रमणों से हारते हैं।

जिन सत्प्रवृत्तियों की यहाँ चर्चा की जा रही है उनको समन्वय की सामाजिक प्रखरता अथवा सामूहिक आध्यात्मिकता कह सकते हैं। कर्तव्य पालन के लिए जागरूक, आदर्शों के प्रति निष्ठावान एवं उदार आत्मीयता से प्रेरित होकर सेवा-सहायता के लिए आतुर उत्साह को आध्यात्मिकता माना गया है। यही है वह दिव्य क्षमता जिसे आत्मशक्ति कहते हैं। यही व्यक्ति को लौह पुरुष बनाती है और उसी के सहारे राष्ट्रों की सुरक्षा लौह प्राचीरों से अधिक सुनिश्चित बनी रहती है। पूर्व वर्णित पाँचों सामाजिक समस्याओं के हल इसी माध्यम के निकल सकते हैं।

जन स्वास्थ्य—राष्ट्रीय अस्वस्थता की समस्या का समाधान करने के लिए सफाई, कृमिनाश एवं अस्पतालों का प्रबन्ध किया जाता है। सरकार आर्थिक स्थिति के अनुरूप कर्मचारियों की संख्या नियत रखती है और सुविधा-साधन जुटाती है। पर वे अस्पताल थोड़े से ही बीमारों को भर्ती कर सकते हैं। जो इनसे लाभ उठाते हैं उनकी तुलना में वे कहीं अधिक हैं जिन्हें यातायात की तथा दूसरी कठिनाइयों के कारण वह सहायता नहीं मिल पाती। जो इनमें चिकित्सा कराते हैं वे सभी अच्छे भी कहाँ हो पाते हैं। जो अच्छे हो जायें उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें उसी कष्ट की पुनरावृत्ति न होगी अथवा दूसरे नये रंग-रूप का रोग फिर न उठ खड़ा होगा।

यहाँ अस्पतालों की निरर्थकता नहीं बताई जा रही है और न यह कहा जा रहा कि उन्हें न खोला जाय और लाभ न उठाया जाय। प्रतिपादन केवल इतना है कि यदि जनसाधारण ने अप्राकृतिक जीवन न छोड़ा—आहार-विहार का असंयम न सुधारा तो उपचार केवल सामयिक चमत्कार उत्पन्न भले कर दें, स्वास्थ्य समस्या का स्थायी समाधान न निकलेगा। असंयमी लोग प्रकृति की अवज्ञा का दण्ड भुगतेंगे और आये दिन बीमार पड़ेंगे। नई बीमारी और नई दवा का कुचक्र अपनी धुरी पर यथावत् घूमता रहेगा। संकट टलेगा नहीं।

सफाई कर्मचारी एक ओर कचरा साफ करेंगे दूसरी ओर वहाँ रहने वाले अथवा उधर से निकलने वाले फिर गन्दगी बरसाने लगेंगे। हर आदमी के साथ एक मेहतर घूमे तो बात दूसरी है अन्यथा गन्दगी फैलाने की आदत सरकार की सफाई योजना को सफल न होने देगी। मक्खी-मच्छर आदि हानिकारक कीड़े गन्दगी की उपज हैं, डी. डी. टी. से एक दिन जितने मच्छर मारे जायेंगे दूसरे दिन सड़ी गन्दगी उतने ही नये पैदा कर देगी।

स्वास्थ्य रक्षा के लिए जो उपाय किये जाते हैं वे आवश्यक तो हैं पर पर्याप्त नहीं। होना यह चाहिए कि शिक्षा संस्थाओं से लेकर धर्मतन्त्र सहित प्रचार के प्रत्येक साधन से लोकमानस को स्वच्छता, संयम, श्रमनिष्ठा जैसे आरोग्यरक्षक आदतें सीखने के लिए प्रशिक्षित किया जाय। सामाजिक संगठन वैसा वातावरण बनायें और बीमार पड़ना भी एक अपराध घोषित किया जाय। बार-बार बीमार पड़ने वालों को दया का पात्र और सहायता का अधिकारी तो माना जाय पर साथ ही उनकी असावधानी और अव्यवस्थितता को कड़ाई से कसा भी जाय। जितने प्रयत्न गन्दगी साफ करने के लिए किये जाते हैं, जितने प्रबन्ध चिकित्सा-उपचार के होते हैं उससे भी अधिक प्रयत्न इस स्तर के होने चाहिए कि हर मनुष्य स्वच्छता, संयम, श्रम निष्ठा जैसे आधारों का महत्व ही न समझे वरन् उन्हें जीवन नीति का अंग मानकर चले। यह कार्य कठिन कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकता है पर उतना कठिन नहीं है जितनी कि अस्वस्थता के कारण उत्पन्न होने वाली रुग्णताजन्य पीड़ा और आर्थिक हानि। समस्या के कारण को समझा जाय और उसका स्थिर समाधान ढूँढ़ा जाय तो एकमात्र यही निष्कर्ष निकलेगा कि जीवनयापन की उस पद्धति को अपनाया जाय जिसे शरीर क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली आध्यात्मिकता कहा जा सकता है। अध्यात्म एक मान्यता है जो विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न रूपों में परिलक्षित होती है। क्षरीर क्षेत्र में बरती जाने वाली सतर्कता और संयमशीलता अध्यात्म की प्रेरणा कही जायेगी। यही है वह आधार जिसे अपनाकर स्वास्थ्य संकट से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा मिल सकता है।

अपराध और युद्ध—मानसिक उद्वेगों से पीड़ित व्यक्ति उद्धत आचरण करते हैं। अपना स्तर गिराते हैं और दूसरों को कष्ट देते हैं। कभी-कभी मर्यादाओं के लिए अनास्थावान बनकर ऐसे लोग मानवी और सामाजिक शील-सदाचार को रौंदते हुए अपराधी बनते, गुण्डागर्दी अपनाते, आतंक उत्पन्न करते और चोरी-ठगी पर उतारू पाये जाते हैं। नृशंस क्रूर कर्म करने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। इस प्रकार के उद्धत आचरण रोकने के लिए पागलखाने, जेलखाने बनाये गये हैं और उन्हें रोकने-पकड़ने की व्यवस्था की गई हैं। पर देखना यह है कि क्या यह प्रतिबन्धात्मक उपाय पर्याप्त हैं। देखा यही जाता है कि कड़े कानून, कठोर दंड और अपराध सूत्रों की खोज-बीन की व्यवस्था रहते हुए भी वे दुष्प्रवृत्तियाँ रुक नहीं रही हैं। आत्महनन से लेकर परपीड़न तक के वर्गों में विभाजित होने वाले अपराध घट नहीं बढ़ ही रहे हैं। दण्ड भय से बच निकलने की असंख्य तदवीरें सोची और निकाली जाती रहती हैं और छिपे एवं खुले रूप में वह सब होता रहता है, जिसे रोकने के लिए खर्चीले एवं कुशलतापूर्ण उपाय बरते जाते हैं।

यहाँ भी दण्डनीति एवं रोकथाम के प्रयत्नों का उपहास नहीं उड़ाया जा रहा और न उन्हें अनावश्यक ठहराया जा रहा है। वे प्रयत्न तो होने ही चाहिए वरन् उन्हें अधिक विस्तृत एवं प्रामाणिक किया जाना चाहिए। सोचने की बात इतनी भर है कि क्या मनुष्य की दुर्बुद्धि से उत्पन्न अनाचारों, दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए कानूनी पकड़ पर्याप्त है ? यह तभी हो सकता है जब हर आदमी के पीछे पुलिसमैन लगाया जाय और वह पुलिसमैन भी किसी अन्य लोक का निवासी हो।

अपराध मात्र उतने ही नहीं जितने न्याय संहिता में दण्डनीय ठहराये गये हैं। छोटे और व्यक्तिगत अपराधों पर कानूनी अंकुश नहीं है। नशा, पानी, असंयम बरतना, अस्वच्छ रहना, अनुशासनहीनता, अस्त-व्यस्तता, आलस्य, प्रमाद, कटुभाषण, अशिष्ट आचरण, दुर्व्यसन, द्वेष, दुर्भाव, जैसी व्यक्तिगत अवांछनीयताओं पर सरकारी अंकुश नहीं हैं पर वे आदतें व्यक्ति और समाज के लिए कम हानिकारक नहीं। अवांछनीयताएँ ही बढ़कर विक्षोभकारी विभीषिकाएँ उत्पन्न करती हैं। ऐसी ही छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को गया-गुजरा बनाती और समाज को खोखला करती हैं। पागल की तोड़-फोड़ हमें चौंकाती है पर सनकी एवं उद्धत प्रकृति के मनुष्य धीरे-धीरे कितनी विसंगतियाँ खड़ी कर देते हैं उसे खोजा जाय तो और भी अधिक हानि हुई दृष्टिगोचर होगी।

अग्निकाण्ड से शहतीर जल जाने की चर्चा होती है, पर घुन द्वारा उसे खोखली करके धराशायी बना देने को सामान्य कहकर टाल दिया जाता है। बड़े अपराधों की भयंकरता सर्वविदित है किन्तु छोटे अपराध जिन्हें नैतिक एवं नांगरिक मर्यादाओं का उल्लंघन कह सकते हैं, कम भयानक नहीं हैं। खेत को हिरन चर गये अथवा फसल को कीड़ों ने साफ कर दिया विश्लेषण की दृष्टि से दो प्रसंग हो सकते हैं पर हानि की दृष्टि से दोनों को ही समान रूप से हानिकारक ठहराया जायगा। अवांछनीयता हो तो अपराधी दुष्प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति और समाज दोनों को असामान्य क्षति उठानी पड़ती है।

इसका नियन्त्रण जनसाधारण का दृष्टिकोण बदलने से ही सम्भव होगा। आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता की आस्थाएँ ही अन्तःकरण को परिष्कृत करती हैं और उन्हीं प्रेरणा से मनुष्य सज्जनता अपनाने के लिए विवश होता है। सुसंस्कृत व्यक्ति पर न सामाजिक अंकुश की आवश्यकता पड़ती है और न सरकारी रोक-थाम की। वह आन्तरिक सदाशयता से प्रेरित रहता है, अपना स्तर ऊँचा उठाता है और दूसरों को हानि पहुँचाना तो दूर उलटे लोकमंगल के अनेक आधार खड़े करता है।

चढ़ती हुई अनैतिकता का विकसित रूप अपराधों की बाढ़ के रूप में देखा जा सकता है। इसे न सम्पन्नता रोक सकती है न दण्डनीति। अमेरिका की साधन-सम्पन्नता सर्वविदित है फिर भी वहाँ अपराधों का ज्वार ऊपर उठ रहा है। दण्ड नीति में कमी कहाँ है। हर अपराध के विरुद्ध कड़े कानून मौजूद हैं। फिर भी जेलखानों के भीतर तक अपराध होते रहते हैं। सामयिक उपचार जो हो रहे हैं वे उत्साहपूर्वक काम में लाये जायें पर साथ ही यह आवश्यकता भी समझी जाय कि मानवीय अन्तःकरण को सुसंस्कृत बनाने के लिए समस्त साधन झोंक दिये जायें। चिकित्सा पर होने वाले खर्च की तुलना में अन्न, वस्त्र का खर्च स्वभावतः अधिक होता है। अपराधों की रोकथाम और अपराधियों को दण्ड देने पर जितना ध्यान दिया और खर्च किया जाता है, उससे कम नहीं अधिक ही प्रयत्न सभ्यता एवं संस्कृति को हृदयंगम कराने के लिए होने चाहिए। इस प्रयत्न को पुराने शब्दों में आध्यात्मिकता का प्रसार कहा जायगा। वस्तुतः यही वह आधार है जिसके सहारे हर व्यक्ति को 'पुलिसमैन' बनाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं आदर्शवाद अपनाने वाले ही दूसरों को सही नागरिक बनकर रहने के लिए विवश कर सकते हैं। अपनी छाप छोड़कर वे सम्पर्क क्षेत्र को शालीनता से भरापूरा बना सकते हैं। ऐसी दशा में न तो दुष्प्रवृत्ति के पनपने की आशंका रहेगी और न उनकी रोकथाम के लिए उतना खर्चीला ढाँचा खड़ा रखने की आवश्यकता पड़ेगी।

अपराधी दुष्प्रवृत्तियों और हेय अवांछनीयताओं का स्थायी उन्मूलन करने के लिए अध्यात्म की पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करना न तो असंभव है और न कठिन। वातावरण में व्यक्तित्वों का अंतरंग और बहिरंग ढाँचा-ढालने की पूरी क्षमता है। समाज के मूर्धन्य व्यक्ति यदि इसकी आवश्यकता अनुभव कर सकें तो बुद्धिजीवी, अर्थशास्त्री, साहित्य सृजेता, धर्माध्यक्ष, शासनाधिकारी एवं कलाकार व प्रतिभाशाली विभूतियों के संयुक्त प्रयास से ऐसा वातावरण सहज ही बन सकता है, जिसमें जन-साधारण को उत्कृष्ट चिन्तन एवं आदर्श कर्तृत्व अपनाने की ही इच्छा उत्पन्न हो और वैसे ही कदम उठें।

मानवी चिन्तन यदि मोड़ा जा सके तो भय, आशंका और अविश्वास के कारण पनपने वाली हिंसा और प्रतिहिंसा की जड़ें कट जायेंगी। आये दिन जो दंगे, फ़िसाद, वर्ग संघर्ष, क्षेत्रीय युद्ध और विश्वयुद्ध के बादल घुमड़ते रहते हैं उनका दर्शन भी न होगा। घृणा के स्थान पर आत्मीयता, द्वेष के स्थान पर प्रेम—शोषण के स्थान पर सहयोग की स्थापना की जा सकती है। ऐसा हो सके तो आन्तरिक सुव्यवस्था और सीमा-सुरक्षा के लिए समस्त संसार में जितनी धन शक्ति खर्च करनी पड़ रही है, उसे शिक्षा, सिंचाई जैसे उपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है। तब अपनी दुनिया में एक भी आदमी अशिक्षित, एक भी विभुक्षित, एक भी रुग्ण और एक भी उद्विग्न दिखाई न पड़ेगा। परस्पर घात-प्रतिघात में लगी हुई शक्ति यदि सृजन-सहयोग में लगा सके तो उसका दोहरा लाभ होगा। ध्वंस के दुष्परिणामों से छुटकारा मिलेगा और सृजन की सुखद सम्भावनाएँ बढ़ेंगी।

छोटे-से परिवार में सभी लोग मिल-जुलकर स्नेह-सद्भावपूर्वक गुजारा कर लेते हैं। उसमें बाल-वृद्ध, समर्थ-असमर्थ, विकसित-अविकसित सभी स्तर के लोग रहते हैं, पर किसी को एक दूसरे से भय नहीं रहता। एक दूसरे के प्रति सन्देह-अविश्वास नहीं करते, दुर्भाव नहीं रखते और दुलार-सहयोग में कमी नहीं देखते। पारस्परिक सद्भाव सम्पन्नता से घर के हर सदस्य को अपने-अपने ढंग का आनन्द और संतोष मिलता है। सभी एक दूसरे से लाभ उठाते हैं और उस मिली-जुली उदार सहकारिता से पूरा परिवार सुदृढ़-सुविकसित बनता चला जाता है। सुसंस्कृत परिवारों में कई प्रकार की कठिनाइयाँ रहते हुए भी स्वर्गीय वातावरण बना रहता है। उसके सदस्यों को व्यक्तिगत उत्कर्ष का लाभ मिलता है और उन घटकों का सम्मिलित रूप समूचे समाज को समुन्नत बनाने में अप्रत्यक्ष किन्तु असाधारण योगदान करता है। विचारणीय यह है कि मानवी स्वभाव में सहकारिता कूट-कूट कर भरी होने पर भी वह लाभ समाज को क्यों नहीं मिलता, जो सुसंस्कृत परिवारों को मिलता है ? आज समाज के सम्मुख सर्वग्रासी विभीषिकाएँ क्यों प्रस्तुत हैं ? यह प्रश्न भी कम गम्भीर और कम विचारणीय नहीं है।

यदि हम तथ्यों की ओर से आँखें फेर न लें तो यह समझा जा सकता है कि हमारे द्वारा विकृत दृष्टिकोण तथा निकृष्ट रीति-नीति अपनाई गई। फलतः अगणित अभिशाप कठिनाइयों की घटा घिर आई। यह समझ लिया जाय तो उसी निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि प्रस्तुत कष्टकारक उलझनों को सुलझाने के लिए हमारा क्रिया-कलाप बदलना चाहिए। यह परिवर्तन उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व के उसी समन्वय से संभव है, जिसे तत्वज्ञानियों ने अध्यात्मवाद का नाम दिया है और जिसे बोलचाल की भाषा में आदर्शवाद कहा जा सकता है। मनुष्य को मानवतावादी होना चाहिए। उसे व्यक्तिवादी आपाधापी से विमुख होकर समूहवादी रीति-नीति अपनानी चाहिए। इसी को शास्त्रीय शब्दों में अध्यात्मवाद और राजनैतिक शब्दों में समाजवाद कह सकते हैं। अच्छा है इस तत्व-दर्शन का नामकरण मानवतावाद किया जाय।

ज्ञान, विज्ञान और उद्योग की दिशा में गगनचुम्बी प्रगति हो रही है। उसके लिए मूर्धन्य लोग जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। इन प्रयासों का प्रतिफल भी सामने है। भौतिक प्रगति को एक वरदान कहने में किसी को कोई संकोच नहीं हो सकता, किन्तु इतना ही तो सब कुछ नहीं है। आवश्यकता उस सद्भावना और दूरदर्शिता की भी है, जिसके सहारे इन उपलब्धियों का सदुपयोग किया जा सके। यही वह मर्मस्थल है जहाँ हम चूकते, भटकते और गिरते हैं। फलतः वह वहाँ पहुँचा देगी जहाँ से सर्वनाश के, महाकाल के कराल दाँतों में पिस जाने और सभ्यता की उपलब्धियों को गँवा बैठने के अतिरिक्त और कुछ हाथ में न रह जायगा। समझदारी की माँग है कि समय रहते रोग की भयंकरता को समझा जाय और निदान-विश्लेषण के सहारे कारणों को ढूँढ़ निकाला जाय।

कोई कारण नहीं कि मनुष्य मिल-जुलकर न रह सकें। ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका हल न्याय और औचित्य को अपनाकर विवेकपूर्वक न खोजा जा सके। देश और देश का लड़ना आवश्यक नहीं। मनुष्य का मनुष्यों से, वर्गों का वर्गों से झगड़ना, मात्र बढ़ी हुई दुर्बुद्धि के कारण ही होता है। इस पर अंकुश लग सकता है। विवेक और सृजन की शक्तियाँ मिल-जुलकर विध्वंसकारियों को मात दे सकती हैं। असुरता इतनी प्रबल नहीं है कि जो देवत्व को सर्वदा के लिए हरा सके। सद्भावना के समर्थक बिखरे रहते हैं। यदि एकजुट होकर एकत्व का प्रसार और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृजन का विस्तार करने के लिए कटिबद्ध हो जायें तो मनुष्य जाति का भविष्य उज्ज्वल बनाने वाली विश्वशान्ति की सम्भावनाएँ कल्पना न रह कर कल ही सुनिश्चित यथार्थता बन सकेंगी। तब इसे अध्यात्मवाद की विजय कहा जा सकेगा।

अर्थ सन्तुलन—विश्वव्यापी अर्थ संकट वास्तविक नहीं पूर्णतया कृत्रिम है। धरती माता की उर्वरता इतनी न्यून नहीं है कि अपनी सन्तानों का भरण-पोषण न कर सके। कुछ लोगों ने सम्पत्ति के, उपार्जन के साधनों को अपने कब्जे में कर रखा है फलतः सर्वसाधारण को उनसे वंचित रहना पड़ रहा है। अपने देश में भूदान की, भूमि वितरण की दिशा में जो कदम बढ़ाये जा रहे हैं वे ही सार्वभौम बन सकते हैं। अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि विशालकाय भूखण्डों में खाली जमीनें पड़ी हैं और उस पर थोड़े लोगों का आधिपत्य है। यदि मनुष्य-मनुष्य के बीच भाई-चारा हो और प्रकृति सम्पदा पर उसके सभी पुत्रों का अधिकार स्वीकार कर लिया जाय तो उस भूमि से संसार की समस्त आबादी को लाभ मिल सकता है। धनाधीशों के हाथ में रुकी हुई पूँजी यदि सार्वजनिक उद्योगों में लग सके तो उससे संसार के हर आदमी को रोजी-रोटी मिल सकती है। जो बुद्धि एवं पूँजी व्यक्तिगत स्वार्थ साधनों में, सुखोपभोग में लगी है उसको यदि लोकमंगल के लिए नियोजित किया जा सके तो संसार में अज्ञान और दारिद्र्य के टिके रहने का कोई कारण ही शेष न रहे।

क्या ऐसा नहीं हो सकता ? निश्चित रूप से हो सकता है। व्यक्तिवादी स्वार्थपरता की असुरता से यदि संगठित देवत्व लड़ पड़े और आधिपत्य की आपाधापी आत्मीयता के विराट विस्तार में लग सके, हर व्यक्ति अपने को समाज का अविच्छिन्न घटक मानकर सर्वहित में अपना हित अनुभव करने लगे तो उसका चिन्तन एवं कर्तृत्व लोकमंगल में लगेगा। साधनों को बाँटकर जो आनन्द पाया जाता है वह कितना बहुमूल्य है ? इसे आज तो समझ पाना कठिन हो रहा है। किन्तु यदि वह व्यवहार में आने लगे तो उसके सुखद परिणामों को देखकर हम अपनी ही दुनिया की स्वर्गलोक से तुलना करने लगेंगे।

यह कार्य तब तक अति कठिन बना रहेगा जब तक इसे कूटनीति एवं अर्थनीति के सहारे हल कर लेने की बात सोची जाती रहेगी। प्रयत्न राजनैतिक भी होते रहें और चेष्टा आर्थिक विकास की भी चलती रहे पर स्थिर समाधान मात्र अध्यात्मवाद की प्रतिष्ठापना में देखा जाय। मानवी सत्ता जड़ नहीं चेतन है। चेतन को चेतना ही उठाती गिराती है। यदि हमारी आस्थाएँ उपभोग की लिप्सा पर अटकी रहें तो धन सम्पदा पर एकाधिकार की, असीम उपभोग और उद्धत अपव्यय की प्रकृति बनी रहेगी। इससे कुछ लोगों की अमीरी रह सकती है, कुछ की मनमानी चल सकती है पर सार्वजनीन अर्थसंकट का अन्त न हो सकेगा। उपार्जन, वितरण और उपभोग पर यदि अध्यात्मवादी अंकुश रखा जा सके तो ही हम सब दरिद्रता के अभिशाप से स्थाई मुक्ति पा सकते हैं।

जनसंख्या वृद्धि—बढ़ती हुई जनसंख्या की विश्वव्यापी समस्या के दो पहलू हैं—(१) बढ़ी हुई जनसंख्या की समुचित व्यवस्था तथा (२) परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण। इस समस्या के उचित समाधान न खोजे जा सकें तो असंतुलन और विक्षोभ चरम सीमा तक पहुँच जावेंगे। ऐसी स्थिति में उसके संतुलन के लिए किसी महायुद्ध अथवा किसी प्राकृतिक प्रकोप द्वारा नर संहार ही एकमात्र हल हो सकता है, जिसकी कल्पना तक से हृदय काँपने लगता है।

उपर्युक्त समस्या के उपयुक्त हल में आध्यात्मिक प्रक्रिया हर दृष्टि से समर्थ है। संसार के विस्तृत भूखण्डों और प्राकृतिक सम्पदा का उपयोग विवेकसम्मत ढंग से किया जा सके तो वर्तमान जनसंख्या की समुचित व्यवस्था कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु इसमें विकसित मानसिक स्थिति और उदार अन्तःकरण जैसे आध्यात्मिक गुणों का अभाव ही एकमात्र रुकावट है।

जनसंख्या की वृद्धि के लिए विभिन्न अंग खोजे और अपनाये जावें। यह ठीक है कि उसके पीछे सन्निहित मूल मान्यतायें भी बदलनी चाहिए। जब तक यह मान्यता बनी है कि अपना अर्थात् अपने रक्त से पैदा हुआ—तब तक अपनत्व के विस्तार और अपने अधिकारों—स्वत्वों की रक्षा के लिए प्रजनन की आवश्यकता अनुभव की ही जाती रहेगी। किन्तु यदि आध्यात्मिक स्तर पर अपनत्व की अनुभूति की जा सके तो मनुष्यमात्र क्या प्राणिमात्र अपने परिवार के रूप में दिखने लगता है। फिर किसी अभाव की पूर्ति अथवा भय, आशंका के निवारण के लिए अपनों की संख्या बढ़ाने के प्रयास में निरर्थक प्रजनन सहज ही बन्द हो जावेगा। जो कार्य ढेरों शक्ति लगाकर भी असंभव दिखता है, वही आध्यात्मिक दृष्टिकोण विकसित करके सहज ही पूरा किया जा सकता है।

व्यक्तिवादी आपाधापी जितनी बढ़ेगी उतनी ही विषमता बढ़ेगी। एक ओर खड्डे होंगे दूसरी ओर टीले। टीले आकर्षक हो सकते हैं, खड्डों की भयंकरता आतंकित कर सकती है। उपयोगिता तो समतल भूमि की है, उसी में फसल बोई-उगाई जा सकती है और उसी में फल-फूलों से लदे हुए बगीचे लहलहा सकते हैं। अमीरों की चकाचौंध हतप्रभ हो सकती है गरीबी देखकर आँखें बरस सकती हैं, पर इससे अवांछनीयता में तो कोई अन्तर नहीं आता। हमारे प्रयास समतल भूमि बनाने के लिए होने चाहिए। मानव समाज की प्रगति एकता-समता के आधार पर ही सम्भव है, अन्यथा एक ओर अहंकार अट्टहास कर रहा होगा, दूसरी ओर पिछड़ेपन के सींखचे में कसी हुई अधिकांश जनता चीत्कार करती हुई मरती-खपती चली जायगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विलगाव के कारण उत्पन्न होने वाले विग्रहों को यदि समझा जा सके तो बुद्धिमत्ता इसी में प्रतीत होगी कि संसार को एक परिवार बनाया जाय और हर मनुष्य को उसका सदस्य होने का गौरव अनुभव करने दिया जाय। हममें से हर व्यक्ति अपने को विश्व नागरिक माने, समस्त संसार को अपना घर और समस्त मनुष्य जाति को एक परिवार के अन्तर्गत समेटें, तो वह दिन आ सकता है जिसमें हम सब देव जीवन का आनन्द लेते हुए मानवता को धन्य बना रहे हों और सुख-शान्ति के सुनहरे स्वप्नों को साकार होते हुए देख रहे हों।

विलगाव ने धर्मक्षेत्र में अनेकानेक सम्प्रदाय, मत-मतान्तर खड़े किये हैं। क्या यह पृथकता आवश्यक है ? यदि एक सूर्य से संसार भर को प्रकाश मिल सकता है तो फिर एक धर्म समस्त मानव जाति के लिए पर्याप्त क्यों नहीं होना चाहिए ? सभी धर्म अपने को ईश्वरकृत कहते हैं और ईश्वर एक है। ऐसी दशा में एक विश्वधर्म अथवा मानव धर्म होने में किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए। सभी धर्मों में सारतत्व है, उस सार की एकता अपना लेने में कोई पूर्वाग्रह पक्षपात क्यों बाधक होना चाहिए ? प्रथा परम्पराएँ तो समयानुसार सदा से बदलती रही हैं और वे कभी स्थिर न रह सकेंगी। परिस्थितियाँ बदलने के साथ-साथ प्रथा-परम्पराओं में परिवर्तन होते रहे हैं और होते रहेंगे। आज की परिस्थितियों के अनुरूप आचार संहिता और प्रक्रिया बनाई जा सकती है और धर्म की आत्मा को शाश्वत सनातन रूप में ही शिरोधार्य किया जा सकता है। ऐसा धर्म सार्वजनीन होगा और सार्वभौम बनेगा। भारतीय धर्म का निर्माण इसी आदर्श के अनुरूप हुआ। उसमें मानव धर्म कहलाने की, विश्व धर्म के रूप में स्वीकार किये जाने की परिपूर्ण पात्रता विद्यमान है। समय ने, विवेक ने, न्याय ने यदि वही कुछ परिवर्तन चाहा तो उसे स्वीकार करने में भी हिचक की आवश्यकता नहीं है।

विश्व की एक मानव भाषा हो तो वे दीवारें सहज ही टूट जायेंगी, जिसने एक क्षेत्र के मनुष्यों को दूसरे क्षेत्र वालों के साथ विचार-विनिमय करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। भाषा की भिन्नता के कारण दो क्षेत्रों के निवासी गूँगे-बहरे की तरह मात्र इशारों से ही थोड़ा बहुत काम चला सकते हैं। मद्रासी और बंगाली में, मराठा और पंजाबी के बीच भाषा को दीवार मुँह पर पट्टी बाँधने जैसी रोक लगा देती है। अफ्रीकी और रूसी अपनी-अपनी भाषा में एक दूसरे से बात करने लगें तो वह उच्चारण निरर्थक ही सिद्ध होगा। दुभाषियों के सहारे काम चलते हैं अथवा किसी जानी-पहचानी भाषा का सहारा लेना पड़ता है। यदि यह बाधा न रहे, सर्वत्र एक भाषा बोली जाने लगे तो सामान्य लोक व्यवहार का वार्तालाप ही नहीं गम्भीर ज्ञान-विज्ञान का आदान-प्रदान भी अति सरल हो सकता है। एक लिपि में लिखी जाने वाली एक विश्व भाषा यदि बन सके तो प्रेस और प्रकाशन उद्योग में आशातीत क्रान्ति हो सकती है। फिर क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद, प्रकाशन की कठिनाई, महत्वपूर्ण विचारधारा का एक सीमित क्षेत्र में अवरुद्ध रहने का व्यवधान सहज ही मिट सकता है और देखते-देखते मानवी ज्ञान की परिधि गगनचुम्बी हो सकती है।

बिलगाव-बिखराव—छुट-पुट, पृथक्-पृथक् राष्ट्रों की सत्ता एक विश्वराष्ट्र में विलीन हो सकती है। जिस प्रकार एक देश में कई प्रान्त, कई जिले होते हैं, उसी प्रकार एक विश्वराष्ट्र के अन्तर्गत समस्त देश बने रहें और उनकी सीमा रेखाएँ भौगोलिक आधार पर नये सिरे से निर्धारित कर ली जायें तो उसमें किसका क्या हर्ज होगा ? विश्व राष्ट्र की फौज ही सर्वत्र सुरक्षा व्यवस्था की उत्तरदायी होगी और देश-देशों के बीच आये दिन होते रहने वाले युद्धों के लिए कहीं कोई कारण शेष नहीं रहेगा। भूमि पर, प्रकृति सम्पदा पर किसी क्षेत्र के निवासी, अपना अधिकार न रख सकेंगे। तब ऐसी दशा में किसी क्षेत्र की अमीरी, किसी को गरीबी, किसी को अपच से, किसी को भुखमरी से मरना नहीं पड़ेगा। जलमार्ग, थलमार्ग, नभमार्ग से सर्वत्र सबको जाने की सुविधा हो। जनसंख्या की सुविधा-साधनों के अनुरूप बसावट कर दी जाय। खनिज तथा दूसरे प्रकृति साधनों का उपयोग सभी लोगों के लिए सुलभ बनाया जाय। हर किसी को श्रम करना पड़े और हर किसी को उत्पादन में हिस्सा मिले तो फिर विषमता कहीं रहेगी ही नहीं। तब विद्वेष और विद्रोह के कारण ही बचे नहीं रहेंगे। युद्ध कौन करेगा ? आज की सर्वनाशी युद्ध विभीषिका में अणु अस्त्रों का समावेश हो जाने से मानवी अस्तित्व के लिए संकट खड़ा हो गया है। इनकी सामयिक रोकथाम जिस किसी भी उपाय से संभव हो, की जानी चाहिए। पर इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अन्तिम विश्व शांति की स्थापना, युद्धों की पूर्णतया समाप्ति 'विश्व राष्ट्र' का निर्माण होने से ही सम्भव होगी।

एक धर्म, एक संस्कृति, एक भाषा, एक राष्ट्र की आवश्यकता पर जितनी गम्भीरता से विचार किया जायगा उतनी ही उसकी उपयोगिता सिद्ध होती चली जायगी। यह अध्यात्म का प्रतिपादन है। अद्वैत सिद्धान्त में सर्वत्र एक ही आत्मा का अस्तित्व माना गया है। सब में एक ही आलोक के प्रतिबिम्ब जगमगा रहे हैं। हम सब मणि-माणिकों की तरह पृथक् होते हुए भी एक सूत्र में बँधे हुए हैं। हम सब एक हैं। एक एकात्मक भाव ही आत्मविकास की स्थापना है। सीमित अहंता को क्षुद्रता का चिन्ह माना गया है। बिलगाव की, संकीर्ण स्वार्थपरता की अध्यात्म तत्व ज्ञान ने पग-पग पर भर्त्सना की है और उसके असीम दुष्परिणामों का विस्तारपूर्वक दिग्दर्शन कराया गया है। संकीर्णता के सीमाबन्धन ही असंख्य समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। उसी के कारण मानवी गरिमा का ह्रास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता है और अनेकानेक संकट खड़े होते हैं। स्नेह-सौजन्य की, एकता और समानता की नीति अपनाई जा सके तो वर्तमान साधनों से ही अपने संसार में, अपने युग में, सुख-सम्पदा का बाहुल्य और आनन्द का सर्वत्र हर्षोल्लास बिखरता देखा जा सकता है।

कमी साधनों की नहीं, समस्या संकटों की नहीं, कठिनाई एक ही है कि आध्यात्मिक दृष्टिकोण की उपेक्षा की गई और उसका उपहास बनाया गया। यों अभी भी अध्यात्म की चर्चा खूब होती है और उसके नाम पर आडम्बर भी बहुत बनते हैं पर उस रीति-नीति को व्यावहारिक जीवन में उतारने का प्रयास नहीं किया जाता। अध्यात्म को व्याख्याओं से धूमिल कर दिया गया है, फलतः वह भ्रान्तियों का केन्द्र बनकर रह गया है। आवश्यकता इस बात की भी है कि अध्यात्म के वास्तविक स्वरूप से जनसाधारण को परिचित कराया जाय।

यह तथ्य हममें से प्रत्येक को हृदयंगम करना चाहिए कि उत्कृष्ट चिन्तन के आधार पर परिष्कृत व्यक्तित्व बनाने वाले दृष्टिकोण का नाम अध्यात्म का तत्वदर्शन है। आदर्शवादी गतिविधियों को कार्यान्वित करने की प्रखर कार्य पद्धति को वैयक्तिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली उदात्त कर्तव्यपरायणता को अध्यात्म का व्यवहार पक्ष कह सकते हैं। यही वह आधार है जिसे अपनाकर व्यक्ति और समाज की समस्त समस्याओं का हल पाया जा सकता है और समूची मानवी जाति को स्थायी सुख-शांति से लाभान्वित किया जा सकता है।

कहा जा चुका है कि संसार के सामने विशालकाय समस्याएँ, अपराध, युद्ध, अभाव, अशिक्षा आदि की हैं। इन्हें परिस्थितिवश उत्पन्न हुआ माना जाता है, जबकि वे विकृत मनःस्थिति की उपज हैं। सुधार उद्‌गम केन्द्र का किया जाना चाहिए। समस्याओं की जड़ काटी जानी चाहिए। मानवी मस्तिष्क यदि दुर्बुद्धिग्रस्त रहेगा और दुष्प्रवृत्तियों से हमारी कार्यपद्धति मिलेगी तो उनकी प्रतिक्रिया असंख्य समस्याओं के रूप में उसी प्रकार बनी रहेगी जैसी कि आज है। बाह्य उपचारों से क्षणिक सहायता तो मिल सकती है पर विग्रहों का स्थायी समाधान नहीं निकल सकेगा। प्रगति पर प्रसन्नता व्यक्त करने की बात है। हम जिस दिशा में बढ़े हैं उनकी सराहना कौन नहीं करेगा ? इस बात में दो राय नहीं हो सकती कि भौतिक साधनों को बढ़ाने में हम जुटे हैं और उसमें आशाजनक सफलता पाई है। पर यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि साधनों के बढ़ने के साथ-साथ उनके सदुपयोग का उत्तरदायित्व भी बढ़ता है। भौतिक प्रगति के समानान्तर आत्मिक प्रगति भी होनी चाहिए अन्यथा उपभोग का संकट उत्पादन की उपलब्धियों को लाभदायक होने के स्थान पर और भी अधिक हानिकारक बना देगा।

सामाजिक सुख-शान्ति की धुरी भी आध्यात्मिकता ही है। उसे कहने-सुनने की विडम्बना बनाकर नहीं रखा जाना चाहिए वरन् व्यावहारिक जीवन में उतारा जाना चाहिए। अध्यात्म कथा-पुराणों के द्वारा सिखाया ही जाना चाहिए पर उसे सुनने-सुनाने की फलश्रुति में सीमाबद्ध नहीं किया जाना चाहिए। आज तो श्रवण और पठन तक ही अध्यात्मवादी आदर्शों का माहात्म्य मान लिया गया है, कथा सुनने और सुनाने भर से लोक स्वर्ग जाने की उपहासास्पद आशा करते हैं, जबकि वह प्रशिक्षण विशुद्ध रूप से व्यावहारिक जीवन की रीति-नीति में समाविष्ट किए जाने के लिए ही विनिर्मित हुआ है। उसका मर्म समझे बिना, तत्व अपनाये बिना ही आध्यात्मिकता की दुहाइयाँ देने से कोई और लाभ नहीं निकल सकता। ऐसा करने वाले से तो उस ओर से लोगों को अरुचि हो जाती है, अध्यात्म को उसके सही स्वरूप में समझा, समझाया जाना चाहिए। यदि ऐसे हो सके तो हर क्षेत्र में इस ऋषि प्रणीत पद्धति का लाभ उठाया जानां सम्भव है।

वस्तुएँ अथवा भौतिक उपलब्धियाँ तभी लाभदायक होती हैं, जबकि उनके समानान्तर आत्मिक प्रगति के प्रयास भी किये गये होंगे। यह कला अध्यात्मवाद के द्वारा ही सीखी जा सकती है और उसी आधार पर समस्त समस्याओं को हल किया जा सकता है। हमारी आस्थायें बदलें, उनमें उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश हो और उनका प्रतिफल व्यक्तित्व के स्तर में होती हुई वृद्धि के रूप में दिखाई दे तो मनुष्य में देवत्व का उदय हो सकता है और धरती पर स्वर्ग अवतरित हो सकता है।

व्यक्तिगत सुख-सन्तुष्टि की तरह सामाजिक सुख-शान्ति का आधार भी आध्यात्मिकता है उसे कहने-सुनने की बिड़म्बना बनाकर नहीं रखना चाहिए वरन् व्यावहारिक जीवन में उतारा जाना चाहिए। आज तो उस विषय में कुछ सुनकर अथवा पढ़कर ही आध्यात्मिक दायित्वों को पूरा हुआ मान लिया जाता है जबकि उसका लाभ उठाने के लिए उसे जीवन में समुचित स्थान दिया जाना चाहिए यदि यह तथ्य समझ लिया जाय, अध्यात्म का सही रूप समझने-समझाने एवं व्यवहार में लाने का क्रम चल पड़े तो व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं के स्थाई समाधान पाये जा सकते हैं।

विज्ञान के विकास से लेकर अर्थ साधन बढ़ाने तक के अनेकानेक प्रयत्न समस्याओं के समाधान के लिए चल रहे हैं यह सब उचित है और यह चलते भी रहें पर हमारे ध्यान में यह तथ्य बना ही रहना चाहिए कि अध्यात्म का आश्रय लिए बिना न तो व्यक्तिगत उलझनें सुलझेंगी और न सामूहिक समस्याओं का समाधान निकलेगा। यदि प्रगति और शांति की वस्तुतः आवश्यकता और आकांक्षा हो तो यह तथ्य समय रहते स्वीकार कर लिया जाना चाहिए कि अध्यात्मवाद के प्रकाश से ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्त समस्याओं को हल किया जा सकता है और उसे जीवन में प्रसन्नतापूर्वक, तत्परतापूर्वक अपनाया जाना चाहिए।

कठिन समस्याओं के सरल समाधान

भूमि में उर्वरता की समुचित मात्रा हो तो उस पर खेत, उद्यान आदि की अनेकानेक सुषमा, हरीतिमा उगाई जा सकती है। यदि वह ऊसर हो, नमक उबलता हो, तो उस पर घास का एक तिनका तक जमने वाला नहीं। बालू, ईंट और खारी जमीन पर मकान, कारखाने तक खड़े नहीं किये जा सकते हैं। भूमि से सम्बन्धित कोई भी सम्पदा उपार्जित करने के लिए भूमि का सही-समतल होना आवश्यक है। रेगिस्तान में, पहाड़ी चट्टानों में, समुद्र के तटवर्ती नमक वाले क्षेत्र में सुविधाएँ मिलना तो दूर, उसके खाई-खन्दक सामान्य क्रिया-कलाप में भी बाधा उत्पन्न करते हैं।

सुविधा सम्वर्द्धन की योजनाएँ बनाने से पूर्व सर्वप्रथम उपयुक्त भूमि का चयन करना पड़ता है। संसार में अगणित प्रकार की सुविधा सम्पदाओं का अभिवर्द्धन आवश्यक होता है, पर उसके लिए उस मानवी चेतना का स्वस्थ, संतुलित, समुन्नत होना आवश्यक है, जो वैभव उत्पादन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यदि भूमि पर, साधनों पर आधिपत्य जमाकर बैठे हुए अथवा योजनाएँ बनाने वाले लोग विकृत मस्तिष्क के होंगे तो वे कुछ बन सकना तो दूर विग्रह और ध्वंस ही खड़े करेंगे, उलझी हुई समस्याओं का समाधान तो उनसे बन ही कैसे पड़ेगा ?

इन दिनों पतन-पराभव का, संकट-विग्रहों का वातावरण बना कर खड़े हुए अराजकता स्तर के असमंजसों की चर्चा बहुधा की जाती है। इनका निवारण-निराकरण इन्हीं दिनों किया जाना आवश्यक है। देर करने का समय है नहीं, अन्यथा अवसर चूकने पर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगेगा नहीं। बात इतने पर ही समाप्त नहीं होती। क्षयजन्य रुग्णता को दूर करने को प्राथमिकता तो दी जाती है, पर अगला कदम यही होता है कि रुग्णता से क्षीण-जर्जर काया को सही स्थिति में लाया जाय और जीवनीशक्ति को इतना बढ़ाया जाय, जिससे दुर्बलता दूर हो सके और स्वस्थ-समर्थ मनुष्य की तरह जीवनयापन कर सकना सम्भव हो सके।

मस्तिष्क विकृत, हृदय निष्ठुर, रक्त दूषित, पाचन अस्त-व्यस्त हो, शरीर के अंग-प्रत्यंगों में विषाणुओं की भरमार हो, तो फिर वस्त्राभूषणों की भरमार, अगर, चन्दन का लेपन और इत्र-फुलेल का मर्दन बेकार है। शस्त्र-सज्जा जुटा देने और तकिये के नीचे स्वर्ण मुद्राओं की पोटली रख देने से भी कुछ काम न चलेगा। पंच, ग्राम प्रधान, विधायक या प्रतिनिधि चुनाव में विजयी घोषित कर देने से भी प्रसन्नता, प्रफुल्लता का मानस कहाँ बन पाता है। जबकि स्वस्थ, सुडौल होने के कारण सुन्दर दीखने वाला शरीर गरीबी में भी हँसती-हँसाती जिन्दगी जी लेता है, आये दिन सामने आती रहने वाली समस्याओं से भी निपट लेता है, प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में बदल लेता है और किसी न किसी प्रकार, कहीं न कहीं प्रगति के साधन जुटा लेता है। वस्तुतः महत्व साधनों या परिस्थितियों का नहीं व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रतिभा और दूरदर्शिता का है। यह सब उपलब्ध रहे, तो फिर न अभावों की शिकायत करनी पड़ेगी और न जिस-तिस प्रकार के व्यवधान सामने आते रहने पर भी अभ्युदय में कोई बाधा पड़ेगी। यही बात इन सब विपन्नताओं के सम्बन्ध में है, जो आज हर दिशा में सुरसा मुँह फाड़े महाविनाश का तुमुलनाद करती है। वे समस्याएँ जो अतिविकट दीखती हैं, यदि दृष्टिकोण सुधरे, तो किसी के भी समाधान में कहीं कोई अड़चन न रहे।

औसत नागरिक स्तर का जीवन स्वीकार कर लेने पर सुविस्तृत स्रोतों, देहातों में रहा जा सकता है और वायुमण्डल, वातावरण को प्रफुल्लता प्रदान करते रहने, संतुष्ट रखने में सहायक हो सकता है। प्राचीनकाल की सुसंस्कृत पीढ़ी इसी प्रकार रहती थी और मात्र हाथों के सहारे बन पड़ने वाले श्रम से जीवनयापन के सभी आवश्यक साधन अति सरलतापूर्वक सभी जुटा लेते थे। न प्रदूषण फैलने का कोई प्रश्न था और न शहरों की ओर देहाती प्रतिभा पलायन का कोई संकट। न देहात दरिद्र, सुनसान, पिछड़े रहते थे और न शहर गंदगी, घिचपिच, असामाजिकता के केन्द्र बनते थे। आज भी उस पुरातन रीति-नीति को अपनाया जा सके, तो जिन समस्याओं के कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है उनके उभरने का कोई कारण शेष न रहे। स्थानीय साधनों से बने मकान न केवल सस्ते होते हैं वरन् हर दृष्टि से सुविधाजनक भी सिद्ध होते हैं। अमीरी बटोरने की हविश ही औद्योगीकरण के लिए उत्तेजित करती है। बड़े कारखाने लगते, विष उगलते, पानी में जहर मिलाते, अत्यधिक ईंधन खपाते और देहाती उद्योगों का सफाया करके बेकारी, बेरोजगारी का माहौल बनाते हैं। पुरातन देहात प्रधान कुटीर उद्योगों पर निर्भर रीति-नीति को आमूल-चूल बदल डालने में मनुष्य का विकृत चिन्तन ही एकमात्र कारण है। यदि वह भविष्य में भी इसी प्रकार बना रहा, तो उपरोक्त समस्याओं में से किसी का भी महाविनाश से पूर्व समाधान होने की संभावना नहीं है।

'सादा जीवन—उच्च विचार' का सिद्धान्त अपनाते ही प्रस्तुत असंख्य समस्याओं में से एक के भी पैर न टिक सकेंगे। अपराधों की भरमार भी तब क्यों हो जब हर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति ईमानदारी, समझदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी की नीति अपनाकर श्रमशीलता, सभ्यता और सुसंस्कारिता को व्यावहारिक जीवन में स्थान देने लगेगा। गुजारे के लायक इतने साधन इस संसार में मौजूद हैं कि हर पेट को रोटी, हर तन को कपड़ा, हर सिर को छाया और हर हाथ को काम मिल सके तब गरीबी-अमीरी की विषमता भी क्यों रहेगी ? जाति-लिंग के नाम पर पनपने वाली विषमता का अनीतिमूलक और दुःखदायी प्रचलन भी क्यों रहेगा ?

मनुष्य स्नेह और सहयोगपूर्वक रहने के लिए पैदा हुआ है। लड़ने, मरने और त्रास देने के लिए नहीं। यदि आपा-धापी न मचे तो फिर एकता और समता में बाधा उत्पन्न करने वाली असंख्य कठिनाइयों में से एक का भी कहीं अस्तित्व दृष्टिगोचर न हो। शुद्ध व्यवसाय की बलिवेदी पर जो प्रचुर साधन, प्रबंध, श्रम-कौशल का हनन करना पड़ता है, उसकी फिर क्या आवश्यकता है।

समाज के सामने असंख्यों विकृतियाँ और व्यक्ति के सामने असंख्य समस्याओं के अम्बार खड़े हैं। उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग समस्या मानकर उनके पृथक्-पृथक् समाधान खोजने में, यद्यपि विश्व की मूर्धन्य प्रतिभाएँ अपने-अपने ढंग से समाधान खोजने और उपचार खड़े करने के लिए भारी माथा-पच्ची कर रही हैं, पर उनसे कुछ बन नहीं पा रहा है। न अस्पतालों, चिकित्सकों द्वारा भारी धनराशि खर्च कर रोग काबू में आ रहे हैं और न पुलिस, कानून, कचहरी आदि अपराधों को काबू में कर सकने में समर्थ हो रहे हैं। आत्मघाती दुर्व्यसनों के रहते बैंकों से भारी कर्ज व अनुदान बँटने पर भी गरीबी मिट सकेगी नहीं। इसके लिए समस्याओं के मूल में जाना होगा एवं यह सोचना होगा कि यदि जीवनक्रम जब भी न बदला गया तो सामूहिक आत्मघात सुनिश्चित है। अध्यात्म ही समस्त समस्याओं का एकमात्र समाधान सुझा सकता है। उसके पास ही सारे तालों की वह कुंजी है, जो द्वार खोलकर प्रगति का पथ प्रशस्त कर सके। वैयक्तिक ही नहीं, सरकारी और सामाजिक स्तर पर सुख-समृद्धि बढ़ाने के-प्रगति और सुरक्षा के जो प्रयत्न किये जाते हैं, उनकी सफलता भी तभी सम्भव है जब व्यक्तियों के भावनात्मक विकास का भी प्रयत्न चलता रहे। अधोगामी प्रवृत्ति के मनुष्य अच्छे को भी मिट्टी में मिला देते हैं। बाह्य प्रयत्नों से बाह्य प्रदर्शन तो ठीक बन जाते हैं पर वास्तविक सुधार तभी होते हैं, जब सच्चे हृदय से उनका स्वागत व सहयोग किया जाये। जब सहयोग के अभाव में बड़ी-बड़ी योजनायें भी कार्यान्वित नहीं हो पातीं, पर यदि जनसाधारण में सत्प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने का उत्साह हो तो बिना सरकारी या बाहरी सहयोग के भी बात कुछ बन सकती है।

वृक्षारोपण योजना के अन्तर्गत हर वर्ष सरकारी प्रयत्नों से लाखों, करोड़ों वृक्ष लगाये जाते हैं और वे पानी की कमी या ठीक देखभाल न होने से सूख जाते हैं। यदि स्थानीय लोग इस पवित्र कार्य का महत्व समझें और पानी लगाने या देखभाल करते रहने का उत्तरदायित्व अपने कन्धे पर ले लें तो उनके ऊपर कोई विशेष भार नहीं पड़ेगा। पारी बना ली जाये तो बहुत दिन के बाद एक-एक का नम्बर आयेगा। पर इतने कार्य से सारा देश तीन-चार वर्षों में वृक्षों की हरियाली और फूलों की मधुरिमा से सुसज्जित हो सकता है। वर्षा की कमी, लकड़ी का अभाव, शुद्ध वायु की समस्या, भूमिक्षरण, नयनाभिराम हरियाली, फलों की उपलब्धि आदि अनेकों लाभों से सारी जनता लाभान्वित हो सकती है और प्रचुर सरकारी धन व्यय होने पर भी असफलता रहती है वह प्रश्न ही उत्पन्न न हो। बीज बोने और पौधे लगाने में कुछ पैसे यदि खर्च होते भी हों तो धर्म के नाम पर करोड़ों-अरबों रुपया खर्च करने वाली जनता उसे भी सहज ही पूरा कर लेगी। इस प्रकार यदि जनभावना जाग्रत हो उठे तो वृक्षारोपण जैसी उपयोगी योजना बात की बात में हल हो सकती है किन्तु यदि उसका अभाव रहे तो केवल सरकार के बलबूते कोई बड़ा काम बन पड़ेगा, ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा की समस्या को ही लें। सरकार ने इसके लिए छुटपुट प्रयत्न किये हैं। अध्यापक रखे हैं जो स्वेच्छा से इस कार्य में सहयोग दें, उनके लिए कुछ पुरस्कार-प्रलोभन भी रखा है। पर इतने भर से कुछ बन नहीं पड़ रहा है। यदि देश का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति एक वर्ष में पाँच निरक्षरों को साक्षर बनाने की व्रत ले ले तो पाँच वर्ष के भीतर सारी जनता साक्षर बन सकती है, फिर एक भी व्यक्ति कहीं निरक्षर दिखाई न देगा। एक वर्ष में पाँच व्यक्तियों को साक्षर बनाने का कार्य इतना कठिन नहीं है कि उसके लिए समय निकाल सकना असम्भव प्रतीत हो। लोग ढेरों समय आलस्य और गपशप में लगाते हैं, क्या उसमें से एक घण्टा पवित्र काम के लिए नहीं निकल सकता ? इच्छा हो तो सब कुछ हो सकता है। यदि शिक्षा प्रसार का पुनीत कार्य अपने भावनात्मक स्तर में उपयोगी और आवश्यक जँच जाये तो हम उस कार्य में संलग्न रहकर राष्ट्र की एक भारी आवश्यकता को सहज ही पूरा कर सकते हैं।

अन्न की कमी और खाद्य-समस्या राष्ट्र की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पहेली है, उसे सुलझाने के लिए सरकार उत्पादन बढ़ाने की योजनायें चलाने और विदेशों से अन्न मँगाने में बहुत धन खर्च करती है। फिर भी वह उलझन सुलझती नहीं। यदि सप्ताह में एक दिन एक समय अन्न न खाने का अर्थात अर्द्ध उपवास रखने की प्रक्रिया को जनभावना में स्थान मिल सके तो पेट भी ठीक रहे, स्वास्थ्य सुधरे, आध्यात्मिक लाभ हो और अन्न की कमी का कठिन प्रश्न तत्काल हल हो जाये। जितनी कमी देश में रहती है वह सप्ताह में एक दिन अर्द्ध उपवास करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की प्रक्रिया अपनाने से ही तुरन्त पूरी हो सकती है और इस कार्य में लगने वाला सरकारी धन सहज ही बच सकता है।

नैतिक शिक्षा की समस्या अत्यन्त पेचीदा दिखाई पड़ती है। स्कूलों में गणित, भूगोल आदि की पढ़ाई तो होती है पर नीति, सदाचार, संयम, अनुशासन, धर्म-कर्तव्य, संस्कृति, आस्तिकता जैसे संस्कार डालने का कोई प्रबन्ध नहीं रहता, वस्तुतः इस प्रकार का उच्च शिक्षण कर सकना, त्यागी, तपस्वी और आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले धार्मिक व्यक्तियों, साधु-ब्राह्मणों का काम है। इस देश में लगभग ८० लाख व्यक्ति तो धर्म द्वारा आजीविका चलाने वाले ही मौजूद हैं। थोड़ा-बहुत समय सेवाभाव से धर्म कार्यों में देते रहने वाले व्यक्ति भी कम से कम इतने तो माने ही जा सकते हैं। इस प्रकार डेढ़ करोड़ से ऊपर की धर्म सेना आज भी पूरी तरह सुसज्जित है। इन लोगों के पास समय भी है, रुचि भी है और योग्यता भी। कमी केवल भावना की है। यदि यह लोग यह स्वीकार कर लें कि जनमानस में आदर्श जीवन की प्रेरणा भरना ही सच्चा धर्म कार्य एवं ईश्वर का प्रिय पूजन है, तो यह धर्म शिक्षा का भारी कार्य कर सकते हैं। इस समय देश की जनसंख्या ६० करोड़ है। इसमें दस करोड़ ऐसे अबोध बच्चे हो सकते हैं जो अभी शिक्षा के योग्य नहीं हो पाये हैं। उन्हें छोड़कर शेष ८० करोड़ जनसंख्या रह जाती है। एक करोड़ शिक्षक जहाँ मौजूद हों वहाँ इन ८० करोड़ शिक्षार्थियों पर सहज ही नियन्त्रण प्राप्त किया जा सकता है। धर्म, सदाचार, कर्तव्य पालन और सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन देखते-देखते हो सकता है। एक करोड़ की धर्म सेना शिक्षा और प्रेम से ही नहीं, विरोध और संघर्ष से भी समाज के हर क्षेत्र में फैली हुई दुष्टता और दुर्बुद्धि का प्रतिरोध करके उसे समाप्त कर सकती है।

ढोंग, शेखी प्रदर्शन और अहंकार की पूर्ति के लिए होने वाला भारी अपव्यय यदि छिछोरेपन का घृणास्पद चिन्ह माना लिया जाये और सादगी की सभ्य परिपाटी अपनाई जाने लगे, तो इन व्यर्थ कार्यों पर पानी की तरह बहने वाला पैसा आसानी से बच जाये। इस बचत का यदि जीवन के महत्वपूर्ण कार्यों में सदुपयोग होने लगे तो जनजीवन की स्थिति ही दूसरी दिखाई देने लगे। यहाँ सर्वत्र स्वर्ग ही स्वर्ग बिखरा दृष्टिगोचर हो।

जो निर्माण कार्य करोड़ों रुपया खर्च करने पर भी ठीक तरह पूरे नहीं होते वे श्रमदान की जनभावना द्वारा बिना किसी खर्च के पूरे हो सकते हैं। उत्साह से भावनापूर्ण मनोबल के साथ कार्य करें तो गाँवों का विकास द्रुतगति से होने लगेगा। धर्म के आडम्बर में जो हर वर्ष अरबों रुपया खर्च होता है यदि उसे सच्चे धर्म के लिए लगाया जाने लगे तो इस देश का बच्चा-बच्चा धर्मात्मा बन सकता है।

वस्तुतः सब समस्याओं की जड़ मनुष्य के मन में रहने वाली दुष्प्रवृत्तियाँ हैं, उनके रुकने, सुधरने और बदलने से सब कुछ सहज ही बदल और सुधर सकता है। यदि यह न हो सका तो समस्यायें स्वरूप बदलती और बढ़ती रहेंगी। शरीर में विष भरा हो तो वह किसी बीमारी का बहाना लेकर बार-बार प्रकट होता ही रहेगा। इस प्रकार मन की शुद्धि से समाज में फैले हुए अगणित पाप-तापों का समाधान सम्भव हो सकता है। सुधार के उपचार उसी स्तर पर चलने चाहिए।

समाज का नव निर्माण आत्मिकी के पुनर्जीवन द्वारा ही सम्भव

आत्मीयता, एकता, पारिवास्किता की समंन्वित प्रक्रिया ही लोकजीवन में आत्मिकी का प्रयोग है। इसें अपनाया जा सके तो न केवल सारी सामाजिक समस्याओं के अगणित ताले एक 'मास्टर की' से खुल सकते हैं, वरन् सर्वतोमुखी प्रगति की दिशा में इतना काम अँगुली पर गिने जा सकने जितने दिनों में सम्भव हो सकता है जितना कि मानवी उत्कर्ष के क्षेत्र में अब तक बन पड़ा है। विश्व राष्ट्र, विश्व भाषा, विश्व न्याय, विश्व सम्पदा, विश्व धर्म की स्थापनाएँ आज जो स्वप्नलोक जैसी लगती हैं यदि आत्मिकी को लोकमान्यता मिल सके तो यह सभी परिवर्तन संस्थापन बिना अनावश्यक समय गँवाये कुछ ही समय में कार्यान्वित हो सकते हैं।

प्रथा-परम्परायें मनुष्य ने ही बनाई हैं। वही उनके सुधार, परिवर्तन एवं अभिनव संस्थापन में भी पूरी तरह समर्थ है। अनगढ़ पदार्थ को उसी ने अपने श्रम कौशल से वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है। शिक्षा, चिकित्सा, कृषि उद्योग, परिवहन जैसी सामान्य सुविधाओं से लेकर आश्चर्यजनक आविष्कार तक उसी ने विनिर्मित किये हैं, समाज, शासन, परिवार, प्रथा परम्परा एवं अर्थ-विनिमय का समूचा तंत्र उसी की लगन और सूझ-बूझ का प्रतिफल है। जो इतना कर सका, जिसने समुद्र में डुबकी लगाने तथा आकाश में उड़ने जैसे कौतुक बाजीगरों की तरह कर दिखाये, उसके लिये यह तनिक भी कठिन नहीं है कि वर्तमान प्रचलनों में घुसी हुई विकृतियों को झाड़-झंखाड़ों की तरह उखाड़ फेंके और उसके स्थान पर अभिनव स्थापनाओं के कल्प वृक्ष उद्यान लगाये।

फिर कठिनाई क्या है, जिसके कारण सूझ-बूझ एवं सहमति होते हुए भी विकृतियों से निपटना और सत्प्रवृत्तियों को अपनाना सम्भव नहीं हो पा रहा है ? इस प्रश्न का उत्तर मात्र एक ही है—अनौचित्य से पिण्ड छुड़ाने एवं औचित्य को अपनाने में जिस दूरदर्शी साहसिकता की आवश्यकता है, वह न भीतर से उग पा रही है और न बाहरी दबाव से विवशता बनकर सामने आ रही।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्थाओं को कौन बदले ? संचित कुसंस्कारिता में चिरकाल से रमे रहने पर आत्मसात हुई आदत कैसे छूटे ? उत्कृष्टता की पक्षधर आस्थाओं को हृदयंगम करना और अभ्यास में लाना किस प्रकार संभव हो ? हठीली आदतों से कौन निपटे ? इन प्रश्नों के उत्तर कहने-सुनने में सरल हो सकते हैं पर उन निर्धारणों को आस्थाओं में बदलना, स्वभाव का अंग बनाना एवं सहज अभ्यास की स्थिति तक पहुँचना निश्चय ही टेढ़ी खीर है। दूसरों को समझाने-बुझाने, डराने, धमकाने में जो लोग सफल होते रहते हैं, जो दूसरों से उनकी इच्छा के विपरीत भी बहुत कुछ करा लेते हैं; वे भी जमी हुई आस्थाओं को बदलने-सुधारने में अपने को असमर्थ पाते हैं। कैसी है यह विचित्र विवशता और विडम्बना ?

समय की कठिनाई ऐसी है जिसमें एक ओर कुँआ, दूसरी ओर खाई जैसी स्थिति बन गई है। अभ्यस्त प्रचलन जारी रहे तो बढ़ती हुई निकृष्टता की सर्वभक्षी महाप्रलय जैसी विभीषिका सामने है। यदि बदले तो उसके लिए न भीतर का हठीला सहमत होता है और न कहीं बाहर से हंटर चटकता दीखता है। ऐसी स्थिति में अन्धकार से पीछा छूटने-प्रकाश का दर्शन होने जैसा कुछ बनता नहीं दीखता। दूसरी ओर यथास्थिति बने रहना भी असह्य हो गया है।

समाधान निकालना है तो आत्मिकी को उतनी ही समर्थ एवं व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए, जितनी कि भौतिकी को मान्यता प्राप्त है। बिजली दैनिक जीवन की सहचरी बनकर रह रही है। अन्यान्य वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा विनिर्मित उपकरण हर घड़ी प्रयोग में आते हैं। सिलाई की मशीन, माचिस, बटन, कलम, स्याही, कपड़ा, जूता, सुई, साबुन जैसी जीवनचर्या की अंग बनी हुई वस्तुएँ स्मरण दिलाती हैं कि विज्ञान आरम्भिक दिनों में कौतूहल रहा होगा किन्तु अब वह अन्न-जल की तरह अविच्छिन्न बनकर रह रहा है। ठीक यही स्थिति आत्मिकी की होनी चाहिए। उसे कथा-वार्ता, पूजा-उपचार, कर्मकाण्ड-आयोजन स्तर तक सीमित न रहने देकर आस्था से लेकर सामान्य व्यवहार वाले व्यक्तित्व के हर क्षेत्र में प्रवेश मिलना चाहिए। उत्कृष्टता को अब जीवन-नीति बनना चाहिए। मान्यताओं, आदतों और गतिविधियों का समूचा प्रवाह ही ऐसा बनना चाहिए जो मनुष्य को उसकी गरिमा वाले लक्ष्य तक पहुँचाने में समर्थ हो सके। यही है समय की आवश्यकता। यही है विनाश से बच निकलने का एक मात्र उपाय। यही है उज्ज्वल भविष्य के सुनिश्चित निर्धारण की आधारशिला। इसे अपनाये जाने में जो भी व्यवधान हो हमें समूची तत्परता एवं तन्मयता के साथ उन्हें निरस्त करना चाहिए, अनुकूलता उपार्जन में कुछ भी उठा न रखना चाहिए।

आत्मिकी का विशालकाय ढाँचा इसी गलाई-ढलाई के लिये-तत्वदर्शी, महामनीषियों ने मानव प्रकृति की विलक्षणता को ध्यान में रखते हुए सृजा था। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए उस महाविज्ञान का समूचा सिराजा ही बिखर गया। भ्रान्तियों, मूढ़-मान्यताओं, अवांछनीयताओं ने इस विद्या को पूरी तरह निगल लिया। धर्म और अध्यात्म के नाम पर कहा-सुना तो बहुत कुछ जाता है, उसके ढोल-ढमाके भी खूब बजते हैं पर यथार्थता और उपयोगिता की कसौटी पर कसने से सारी कलई देखते-देखते खुलती चली जाती है। अध्यात्म के स्थान पर जो कुछ प्रचलित है उसे 'छाया' भर कहा जा सकता है। खिलौने तो शेर-हाथी आदि के भी खरीदे और सजाये जाते हैं पर नयनाभिराम लगने के अतिरिक्त वैसे पुरुषार्थ का परिचय नहीं दे सकते जैसा कि जीवित होने की स्थिति में वे देते। आत्मिकी आज ऐसी ही उपहासास्पद स्थिति में पड़ी हुई अवास्तविकता बनकर जी रही है। उसके प्रयोगों का प्रतिफल कहीं किसी को उपलब्ध नहीं होता। सभी मरणोत्तर जीवन में स्वर्ग मुक्ति के कल्पवृक्ष, कामधेनु के सपने सँजोये बैठे रहते हैं। जब कभी लोग सोचते हैं कि हर क्षेत्र में पुरुषार्थ का प्रतिफल मिलता है, तो आध्यात्मिक उपचारों को अपनाने पर खाली हाथ क्यों रहना पड़ता है ? तो शंका का समाधान करने वाले 'गुरुजन' कुछ ऐसा ब्रह्म ज्ञान बघारते हैं, जिसे न उगलते बनता है न निगलते। असंख्यों धर्मप्रेमी अध्यात्म साधक आज ऐसी ही असमंजस भरी श्रद्धा-अश्रद्धा के झूले में झूलती हुई स्थिति में त्रिशंकु की तरह अधर में लटके हैं। वास्तविकता के अभाव की पूर्ति न शास्त्र कथनों से होती है, न आप्त वचनों से, न गुरुजनों के आश्वासनों से। ऐसी दशा में आत्मिकी यदि साँप निकल जाने पर बनी हुई लकीर की तरह अपना अस्तित्व बनाये हुए हो और उसे पकड़ने के इच्छुक लकीर पीटकर मन बहला रहे हों तो उसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जायेगा।

सुना गया है कि कोई संगीत अध्यापक थे। वे एक वर्ष में कोर्स पूरा कराते और दस रुपया मासिक फीस लेते थे। भरती के दिन सभी छात्र आवेदन पत्र भरते, फीस जमा करते, प्रवेश पाते चले गये। अन्त की परीक्षा में बैठे एक छात्र ने अध्यापक के अधिक निकट पहुँचकर अपनी विशेष स्थिति बताई। कहा उसे बहुत कुछ संगीत पहले से ही आता है इसलिये उसे कम समय में कोर्स पूरा कराया जाए और कम फीस ली जाए।

अध्यापक सज्जन थे। सहमत हो गये, किन्तु छात्र को सीखा हुआ संगीत सुनाने के लिए कहा ताकि वस्तु स्थिति को समझा सके। छात्र ने गा-बजाकर अपना अभ्यास सुनाया। अध्यापक स्तब्ध रह गये। छात्र ने उत्तर पूछा। तो उससे अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कहा गया—"दूना समय लगेगा और दूनी फीस देनी पड़ेगी, क्योंकि जो सीखा गया है वह आदि से अन्त तक गलत है, जो सीखा है उसे भुलाने में एक वर्ष लगेगा, साथ ही सिखाने की अपेक्षा भुलाने में अधिक परिश्रम करने के कारण फीस भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूनी देनी पड़ेगी। जब भुलाने का कार्य पूरा हो जायेगा तब सही शिक्षा का प्रारम्भ होगा और उसमें भी एक वर्ष लगेगा। नौसिखिये जितना एक साल में सीख लेंगे, उतना उसके लिए दो वर्ष में सम्भव हो सकेगा।"

ठीक यही स्थिति आत्मिकी के सम्बन्ध में है, लोगों ने उस सन्दर्भ में जो मान्यताएँ बना रखी हैं, जो अभ्यास अपना लिए हैं, उनमें प्रायः भ्रान्तियों, मिथ्या प्रलोभनों का ही बाहुल्य है। ऐसी दशा में अभीष्ट परिणाम किस प्रकार उपलब्ध हो ? सही आधार अपनाने पर ही तो सही परिणाम निकलेंगे। बालू के महल बनाने से मन बहलाव भर हो सकता है, उनमें निवास करने की सुविधा नहीं मिल सकती। इस क्षेत्र में चल रहे आज के प्रचलनों को प्रायः आमूल-चूल बदलना होगा और उसे ऐसे नये आधारों पर प्रतिष्ठित करना होगा, जो भौतिकी की तरह सिद्धान्त और प्रयोग के दोनों ही परीक्षणों में अपनी वास्तविकता सिद्ध कर सके। आत्मिकी से जन-जन को लाभान्वित करने, प्रस्तुत समस्याओं के समाधान में उसकी सामर्थ्य का चमत्कार देखने से पूर्व यह आवश्यक है कि प्रचलित ढकोसलों को उलटकर उनके स्थान पर पूर्वकाल जैसा वास्तविक ढाँचा इस स्तर का खड़ा किया जाए जो हर चुनौती का सामना कर सके, अविश्वास को श्रद्धा में और उपहास को विश्वास में बदल सके। इसके बिना युग समस्याओं के समाधान में वैसा प्रयोग हो ही नहीं सकेगा, जैसा कि समय की माँग को देखते हुए आवश्यकता अनुभव की जा रही है। आत्मिकी को समर्थ बनाने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि उसका वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया जाए, प्रयोग का प्रयास और परिणाम का विश्वास तो इसके बाद ही बन पड़ेगा।

इन दिनों आत्मिकी के बारे में चल रहे अन्धविश्वासों ने जनमान्यता कुछ विचित्र स्तर की बना दी है, समझा जाता है कि आसमान में रहने वाले देवी-देवता बेकार बैठे रहते हैं, उन्हें पूजा कराने की भारी उत्कण्ठा है जो उनकी इस आवश्यकता को छोटे रूप में भी उपेक्षापूर्वक भी पूरी कर दे, उसी को वे अपना भक्त मान लेते हैं और मनोकामना पूर्ण करने के लिए आँख-मूँद कर दौड़ पड़ते हैं। उचित-अनुचित जैसा भी कुछ उन्हें नहीं सूझता। पूजा लेने और वरदान देने भर का धंधा उन्होंने अपनाया हुआ है, इसी भ्रमग्रस्तता में देव पूजा के नाम पर आत्मिकी का अधिकांश आडम्बर कागजी रावण की तरह अपना विशालकाय ढकोसला रचे खड़ा है।

आत्मिकी का पुनर्जीवन समय की सर्वोपरि आवश्यकता समझी जानी चाहिए। नोट किया जाना चाहिए कि व्यक्ति और समाज को प्रस्तुत दुर्दशा से उबारने और उज्ज्वल भविष्य की संरचना में सफल होने के लिए आत्मिकी को उसी स्तर पर प्रयोग में लाना होगा जिस स्तर पर भौतिकी का उपयोग हो रहा है।

देवताओं के पूजा लोलुप मंत्रों के बाजीगरी, कौतुक छुट-पुट, कर्मकाण्डों से स्वर्ग मुक्ति जैसी मान्यताओं में से एक भी ऐसा नहीं है जो अपनी यथार्थता प्रमाणित कर सके। इस मकड़ी के जाले के स्थान पर ऐसे आधारों की प्रतिष्ठापना करनी होगी जिसके परिणाम-प्रतिफल नकद धर्म की तरह भौतिकी की परिणतियों की तरह प्रत्यक्ष देखे जा सकें। इस निर्धारण में नया कुछ नहीं करना है। मात्र ऋषि युग की धारणाओं और प्रयोग विधियों को फिर से खोजना और अपनाना भर पड़ेगा। इसे खोये को ढूँढ़ लेना—भूले को याद करना भर समझा जा सकता है। यह प्रयत्नसाध्य तो है, पर कष्टसाध्य या असम्भव नहीं।

भवितव्यता कैसे साकार हो ?

उज्ज्वल भविष्य का उद्घोष सुनकर समस्याओं की वेदना से विकल जन-जीवन को सहसा अपने कर्ण कुहरों पर विश्वास नहीं होता। उसका संतप्त मन सोच नहीं पाता कि नवयुग के अरुणोदय का आधार क्या है ? आतंक, अलगाव, अस्थिरता की घनी अमावस में जी रहे लोग यदि प्रभात के माधुर्य भरे उल्लास की ठीक अवधारणा न कर सकें तो उनका कोई दोष नहीं। एक छोटे से काल खण्ड की घटनाओं, परिस्थितियों का सांख्यकीय गुणन करके युगों की परिवर्तित स्थिति का आकलन नहीं हो सकता। छोटे से पात्र में कुछ बूँद जल लेकर कोई महासागर के विशाल आगार में स्थाई विशाल जलराशि की हलचलें कहाँ माप सकता है।

अपनी चिन्तन चेतना का विस्तार करके विचित्रताओं, विभिन्नताओं की उलझन से भरे जखीरे को उलट-पुलट कर देखने से पता चलेगा कि कहीं न कहीं ये सभी एक दूसरे से जुड़ी हैं। इनके पीछे कोई न कोई एक मूल कारण अवश्य है। मनीषी, अभोरी क्लीवलैण्ड अपने चिन्तन कोष 'हू किल्ड सोसायटी' में स्थिति का विश्लेषण करते हुए दृष्टिकोण की विकृति को इसका जिम्मेदार ठहराते हैं। इस छोटे से बिल से समस्याओं के अनन्त साँप-बिच्छू निकल पड़े होंगे, यह पहेली जैसा लगता हुआ भी कठोर सत्य है। इतना ही नहीं कहीं न कहीं इसी की तह में मानवीय जीवन की पहेली का हल भी छुपा हुआ है।

सामान्य सन्दर्भ में प्रत्येक समस्या किसी न किसी अभाव से उपजती दीखती है। इसके औचित्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु देखना यह है कि क्या इसके निवारण भर से ही काम चल सकेगा। यदि अभीष्ट सुविधा-साधन विनिर्मित कर दिये जायें तो क्या उन समस्याओं का समाधान हो जायेगा, जो इन दिनों हर किसी को संत्रस्त किये हुए हैं। इस संदर्भ में हुए अनेकों प्रयोगों के परिणामों का कड़ुवा-मीठा अनुभव दुनिया उठा चुकी है, उठा रही है। तीसरी दुनिया के नेतृत्व का दावा करने वाले देशों ने प्रायः अपने अभाव को दूर कर लिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। अमेरिका जैसे देशों को तो टनों साधन बाहुल्य भार घटाने के लिये नष्ट करने पड़ते हैं। किन्तु अपने अभाव दूर करने का दावा प्रस्तुत करने वाले इन देशों को भी समस्याओं के कँटीले जाल में फँसी मछली की सी तड़पन का तीखा अनुभव उठाने के लिये विवश होना पड़ रहा है।

अभाव का एक दूसरा पहलू है—अशक्तता। दोनों एक दूसरे के इतना नजदीक हैं, इस कदर गहराइयों से जुड़े हैं कि एक के बिना दूसरे का सोचा भी नहीं जा सकता। अभावग्रस्त ही अशक्त है और अशक्त ही अभावग्रस्त। जिसने एक को दूर किया वह दूसरे का अधिपति सहज बन बैठता है। तीसरे विश्व के स्वप्नदर्शी देशों के सम्बन्ध में इस सत्य का अनुभव किया जा सकता है। इन क्षणों में जबकि एकमात्र धन शक्ति का ही चलन है, आर्थिक नियमन का शिकंजा हर छोटे-बड़े को कँपाने के लिये पर्याप्त है, इस अनुभूति की तीव्रता बढ़ जाती है।

उपरोक्त देशों के अतिरिक्त पिछड़े देशों में भी सुसम्पन्न वर्ग है। इसके ऊपर भी निगाह दौड़ाई जा सकती है। यों कहना चाहिये कि मौलिक दृष्टि से पिछड़े हुए और साधन सम्पन्न वर्गों को पृथक् करके यह देखा जा सकता है कि आखिर अभाव और अशक्तता के निवारण से मानवीय समस्याओं के समाधान में किस सीमा तक योगदान मिल सकता है।

बारीकी से देखने पर बात इतनी भर समझ में आती है कि पिछड़े और समृद्ध कहे जाने वाले वर्गों की समस्याओं के स्वरूप तो अलग-अलग हैं, पर विपन्नता और उद्विग्नता की दृष्टि से कोई भी कम परेशान नहीं है। किसी की भी उलझन दूसरे की तुलना में कम नहीं है। हाँ उन कठिनाइयों के नाम, रूप अवश्य अलग-अलग हैं। गरीबों के लिये, अभाव अभिशाप है तो अमीरों के लिये वैभव कम संकट नहीं है। एक अशक्तता के पाषाण खण्ड पर सिर पटक-पटक कर रो रहा है, दूसरा शक्ति के उन्माद में विक्षिप्त है। वैभव का उपयोग कहाँ किया जा सकता है, उसके उपार्जन और संग्रह का औचित्य किन मर्यादाओं से बँधा है ? इसे भुला देने से अवांछनीय मात्रा में अनुचित रीति से कमाया हुआ धन एकत्र होता है। उसकी प्रतिक्रिया अनियंत्रित विलासिता के रूप में सामने आती है। दुर्व्यसन बढ़ते हैं। उपभोग की आतुरता चरम सीमा तक पहुँचती है व उपार्जन से लेकर उपभोग तक का सारा का सारा ढाँचा विकृतियों से चकनाचूर हो जाता है। फलतः वैभव के रसास्वादन की तुलना में अनेकों गुना विग्रह और संकट पल्ले पड़ते हैं। सम्पन्नता का यह व्यापार दरिद्रता से भी महँगा पड़ता है।

एक भूख से संत्रस्त-दूसरा अपच का मरीज। एक को कुपोषण की शिकायत है, दूसरे इन्द्रिय शक्ति के दुरुपयोग से खोखले हो रहे हैं। यौन रोग, मधुमेह, अनिद्रा, रक्तचाप, हृदय रोग प्रायः सुसम्पन्न वर्ग को ही होते हैं और वैभवजन्य सभ्यता की देन समझे जाते हैं। नैतिक खोखलेपन में भी अमीर ही गरीबों से आगे हैं। असन्तोष और विक्षोभ की मात्रा भी उन्हीं के पास ज्यादा है। समझदार लोगों के द्वारा जो प्रपंच रचे जाते हैं, उनके कुचक्र में पिसकर तो अगणित लोगों का कचूमर निकल जाता है। शोषण की बाजीगरी से वे उतना कमा लेते हैं, जितना कोई चोर-उठाईगीरा अनेकों जन्मों में नहीं कम सकता। सम्पन्नता से एक प्रकार की विपत्तियाँ पैदा होती हैं—दरिद्रता से दूसरी तरह की। इसके विपरीत दोनों ही पक्षों में सुखी और संतुष्ट लोग भी पाये जाते हैं। झोपड़ियों में भी स्वर्ग बरसता है। किसान और मजदूर स्वल्प साधनों में निर्वाह करते हुए हँसते-हँसते सुखी-संतुष्ट जीवनयापन करते हैं। अफ्रीका के मसाई वनवासी अर्धनग्न स्थिति में रहते, साधनहीनता का जीवन जीते हुए भी अपनी काया को इतना बलिष्ठ रखते हैं कि भयानक बबर शेरों से भाले के सहारे गुत्थम-गुत्था करके विजय प्राप्त कर सकें। प्राचीन भारत के ऋषियों और तत्वज्ञानियों का जीवन प्रत्यक्षतः अभावग्रस्त स्थिति में गुजरता था, पर इससे उनकी गरिमा, प्रतिभा, प्रतिष्ठा पर कोई आँच नहीं आती थी। समस्याओं में उलझने की जगह उनका समय औरों की गुत्थी सुलझाने में बीतता था।

आज समस्याओं की गुत्थी व्यक्ति विशेष की हो अथवा वृहदाकार समुदाय की। इसका यथार्थवादी पर्यवेक्षण यही बताता है कि समस्याओं की जड़ें अभाव और अशक्तता तक सीमित नहीं हैं। इनके अंकुर जहाँ से निकलते हैं, वह है अज्ञान-जिसे विकृत दृष्टिकोण, विचारहीनता, कोई भी नाम क्यों न दिया जाय, दूर किये बगैर कोई उपचार नहीं। शक्ति का ठीक अर्जन और समुचित उपयोग जीवन दृष्टि पाये बगैर नहीं बन पड़ते। इसके बगैर अर्जन-शोषण होता है और उपभोग-उन्माद। यह फिर कोई एक व्यक्ति करे अथवा समूचा समुदाय—इससे सिवा इसके कोई फर्क नहीं पड़ता कि परिणति का दायरा विशाल से विशालतर होता जाता है।

उज्ज्वल भविष्य की भवितव्यता के उद्घोष का तात्पर्य है—जीवन दृष्टि प्रदान करने का उद्घोष। समस्याओं की पीड़ा से छटपटाते आज के समाज की बिलखन, व्याप रही पीड़ा के कारुणिक रव का संवेदनापूर्ण निदान यही है। जीवन दृष्टि देने की योजना किसी व्यक्ति विशेष का प्रयास न होकर महाकाल की है। यदि इस तथ्य को समझा जा सके तो व्यक्ति और समाज की समस्याओं का निराकरण इसमें झाँकता हुआ नजर आयेगा। फिर यह सुस्पष्ट हो जायेगा कि व्यक्ति की अन्तःचेतना को स्पर्श किया जाय क्योंकि उसके व्यक्तित्व में आदर्शवादी आस्थाओं का पुनर्जीवन भवितव्यता के प्रकाशमय संसार में जीने का अनिवार्य शुल्क है। इसे चुकाने और समस्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समस्याओं से छुटकारा पाने की शुभ घड़ी यही है, इसे दिये बगैर प्रगति के लिये किये जाने वाले प्रश्न हमें मृगतृष्णाओं में ही भटकाते रहेंगे।

उपेक्षित समस्याएँ जो हल करनी ही होंगी

इन दिनों वैभव और विलास को सर्वोपरि मान्यता मिली हुई है। विभिन्न प्रकार के प्रयासों द्वारा इन्हीं दोनों को अधिक मात्रा में अधिक जल्दी हस्तगत कर लेने के लिये छटपटाहट देखी जाती है। ऐसे उपाय अपनाये और मार्ग खोजे जाते हैं, जबकि क्रिया-प्रक्रिया उपयोगी-उपार्जन और श्रेष्ठतम सदुपयोग पर केन्द्रित रहनी चाहिये। गौरव-गरिमा इसकी समझी जानी चाहिए कि प्रतिभा, प्रखरता और प्रामाणिकता का बढ़ा-चढ़ा अनुपात जीवनचर्या में सम्मिलित हो।

भ्रान्त मान्यताओं और आदतों को यदि बदला जा सके तो समझना चाहिए कि अपने लिये सतयुग का आगमन हो गया भले ही दूसरे लोग कलियुग में निवास करते रहें। स्वर्ग और नरक किसी स्थान विशेष में नहीं हैं। वे दृष्टिकोणों का औचित्य-अनौचित्य भर हैं। उत्थान और पतन के दोनों मार्ग में से किसी को भी चुन सकता है और देवमानवों जैसा या नर-पशुओं जैसा जीवन जी सकता है। मनुष्य अपने भाग्य और भविष्य का निर्माता स्वयं जो है।

मान्यताओं और आदतों के रूप में व्यक्ति का विकास बन पड़ता है। इन्हीं के सहारे शारीरिक, मानसिक और आर्थिक विकास का सरंजाम जुटता है। यदि वे भली हों तो सुखद उपलब्धियाँ हाथ लगेंगी। यदि उनमें दुष्टता के तत्व घुस पड़े, तो समझना चाहिये कि अपना स्तर गया-गुजरा ही रहेगा और रोग, शोक, दरिद्र, विग्रह जैसे संकटों से जीवनचर्या घिरी और भरी रहेगी।

संयमशीलता और दिनचर्या पर स्वस्थता अवलम्बित है। जो आहार-विहार में अनुशासन बरतता है, वह बीमार नहीं पड़ता और न अकाल मृत्यु से मरता है। इसके विपरीत बहुमूल्य खाद्य-पदार्थ, दवाओं की भरमार, सुविधाओं के अम्बार रहने पर भी अस्वस्थता ही घेरे रहेगी। सौन्दर्य और कुछ नहीं, मात्र स्वच्छता का ही दूसरा नाम है। कुरूपता गन्दगी को कहते हैं। ईश्वर की सृष्टि में सभी वस्तुयें अपने स्थान पर सुन्दर और उपयोगी हैं। यहाँ तक कि मल-मूत्र, गोबर-गैस प्लांट जैसे उचित स्थान पर पहुँच कर बढ़िया खाद बनाता और बहुमूल्य ऊर्जा उत्पन्न करता है। घर का कचरा जहाँ-तहाँ बिखरा पड़ा हो, बर्तन-उपकरण बिखरे पड़े हों तो दीखने में बुरे लगेंगे और आपकी बदनामी करेंगे, किन्तु यदि उन्हें सुव्यवस्थित, सजाकर क्रमबद्ध रूप से रखा जाय तो शोभायमान लगेंगे, सुन्दर दीखेंगे। मनुष्य के अंग-अवयवों की बनावट कैसी ही क्यों न हो, पर यदि उसने अपने शरीर, वस्त्र, घर और प्रयोग में रखे जाने वाले सामानों को बड़े स्वच्छ, सुसज्जित तरीके से रखा है, तो वहाँ पहुँचने वाले पर उस सुव्यवस्था की गहरी छाप पड़ेगी। अष्टावक्र, चाणक्य, सुकरात आदि की गणना कुरूपों में होती है, पर उनकी व्यवस्था, दूरदर्शिता, शालीनता को देखकर उनके व्यक्तित्व को सर्वांग सुन्दर होने पर भी यदि चलन-व्यवहार अस्त-व्यस्त है, तो वहाँ का वातावरण कुरूपता ही दर्शाता रहेगा।

स्वास्थ्य और सौन्दर्य यह दोनों हर मनुष्य को अभीष्ट हैं, पर वे इसके लिये बाहरी साधनों पर निर्भर रहना चाहते हैं। स्वास्थ्य के लिये दवाओं पर और सुन्दरता के लिये सज्जा-साधनों पर। इस भ्रान्ति को मिटाने के लिये प्रबल प्रयत्न किया जाना चाहिए अन्यथा मनुष्य की इन दो समस्याओं का समाधान हो ही न सकेगा कि वह स्वस्थ रहे, सुन्दर दीखे। अस्वस्थता और कुरूपता तब तक उस पर चढ़ी ही रहेगी, जब तक कि आहार-विहार का संयम और साधन-उपकरणों को सुव्यवस्थित रखने की सुरुचि का वास्तविक स्वरूप समझा और समझाया न जायगा। लोग स्वास्थ्य के नाम पर कितना खर्च करते हैं। सुन्दर दीखने के लिये कितने अनावश्यक साधन जुटाते हैं। दोनों के लिये ढेरों धन और समय खर्च करते हैं, पर हाथ में केवल निराशा और असफलता ही रहती है। यथार्थता से अवगत कराने के लिये विचारशील लोगों का प्रचार तंत्र अधिकाधिक सक्रिय होना चाहिए। सरल उपाय यह है कि अपना नमूना प्रस्तुत किया जाय। अपने प्रभाव क्षेत्र में जो भी आते हैं, उन सबको अपनी रीति-नीति में ऐसा ही परिवर्तन करने के लिये सहमत किया जाय।

संसार की बड़ी समस्याओं में दो और हैं—एक बढ़ी हुई जनसंख्या के अनुरूप खाद्य सामग्री जुटाना। दूसरा निरन्तर उत्पन्न होती रहने वाली गन्दगी को ठिकाने लगाना। धरती का विस्तार सीमित है, उसमें भी वन, पर्वत, ऊसर, टीले, खड्ड, रेगिस्तान आदि ढेरों जगह घेरे हुए हैं। ऐसी दशा में जो उपयोगी जमीन बची रहती है, उसी में रहने का और खाद्य उपजाने का प्रबन्ध किया जाना है। अच्छा होता कि जनसंख्या की वृद्धि रुकती। लोग स्थिति को समझते और धरातल पर अधिक प्राणियों के रहने की गुंजायश न रहने के तथ्य को समझते। वर्तमान परिस्थितियों में प्रजनन के उभार पर कठोर नियंत्रण लगाने की आवश्यकता है। हर बुद्धिमान नर-नारी को यह युग धर्म समझना और समझाना चाहिये कि नये प्रजनन को कड़ाई से रोका जाय। बहु प्रजनन की भर्त्सना की जाय और उसके कारण उत्पन्न होने वाली विभीषिका स्तर की समस्याओं से जन-जन को अवगत कराया जाय। इतने पर भी दीखता यही है कि अनजान और अनगढ़ लोग एक सीमा तक ही अपनी मूर्खता छोड़ सकेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनसंख्या बढ़ती ही रहेगी, उस पर सीमित रोकथाम ही हो सकेगी। ऐसी दशा में हमें खाद्य उत्पादन, उसके संरक्षण और उपयोग के सम्बन्ध में नई नीति अपनानी होगी।

कम भूमि में, कम समय में अधिक मात्रा में उत्पन्न हो सकने वाली फसलों को प्रमुखता देनी होगी। आलू, शकरकंद, राजमा, चुकन्दर आदि अच्छी फसलें देते हैं। बैंगन, टिण्डे, लौकी, तोरई जैसी शाक-भाजियाँ भी अधिक उत्पन्न होने वाली फसलें हैं। बरसाती अनाजों में ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के उत्पादन में सरलता है। गेहूँ, चावल जैसे बढ़िया खाद्यों की तुलना में हमें जल्दी उत्पन्न होने वाले खाद्यों का उत्पादन और उपयोग करने की आदत डालनी चाहिए। सप्ताह में एक दिन या आधे दिन के उपवास का भी प्रचलन करना चाहिए। इससे खाद्य समस्या के हल में तो सहायता मिलती ही है। पेट को थोड़ा विश्राम मिलने से स्वास्थ्य सुधार वाला बड़ा लाभ भी हस्तगत होता है। ऊसर स्तर की भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये प्रयासों का अब एक नया विज्ञान निकला है। ऊपर की परत खोद कर उस पर उपयोगी खाद बिछा देने से आरंभ में कुछ खर्चा तो जरूर आता है; पर पीछे वह उपजाऊ बनी भूमि हर साल अच्छी आमदनी देने लगती है। खाद्य उत्पादन का नया क्षेत्र मिलता है। शाक-सब्जी और सस्ते अन्न से निर्वाह करने की आदत इन दिनों अपनाये जाने योग्य सामयिक बुद्धिमत्ता है। एक साल में कई फसल लेने की योजना बननी चाहिए। गेहूँ वर्ष में एक ही फसल देता है। धान को पानी की आवश्यकता अधिक पड़ती है। अगले दिनों पानी की भी कमी पड़ती जायेगी। इसलिये हमारा कृषि प्रचलन कम समय में अधिक उत्पादन पर निर्भर होना चाहिए। तम्बाकू, अफीम जैसी अनुपयोगी फसलों में कटौती होनी चाहिये, ताकि खाद्य उत्पादन के लिये अधिक भूमि मिल सके। जलाशयों में सिंघाड़ा, कमल तथा शैवाल जैसे उत्पादन भी उदर पूर्ति में किसी कदर सहायक सिद्ध हो सकते हैं। माँसाहार के लिये पशु पालने पर उनके लिये की गयी व्यवस्था जगह बहुत घेरती है। माँसाहार महँगा, दुष्पाच्य एवं अनैतिक तो ही ही साथ ही मानवीय करुणा, संवेदना के विरुद्ध भी पड़ता है। इसलिये हमारी निर्भरता शाकाहार पर ही बढ़नी चाहिए।

खाद्य की तरह कचरे की समस्या है। पशुओं का तथा मनुष्यों का मलमूत्र नित्य निकलता है। उसे ठीक तरह ठिकाने न लगाये जाने पर सड़कर बदबू और बीमारी उत्पन्न करता है। गन्दगी का दृश्य भी अरुचिकर होता है। इसका समाधान एक ही है कि गन्दगी को खाद में बदल दिया जाय। उसे सड़ाने के लिये गड्ढे बनाये जायें, गन्दगी उन्हीं तक पहुँचायी जाय और खाद के काम लाई जाय। इसमें दुहरा लाभ है—एक तो स्वच्छता बढ़ती है और दूसरे नैसर्गिक खाद अधिक मात्रा में मिलने लगने से जहाँ उपज अधिक होती है, वहाँ फसल को कीड़ा लगने जैसे संकटों का सहज निराकरण होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई की सुव्यवस्था न रहने से वहाँ गन्दगी, बीमारी की भरमार रहती है। इसे हटाने के लिये व्यक्तिगत श्रमदान के अतिरिक्त हर गाँव में उत्साही सेवाभावियों की एक श्रम सेवा समिति भी गठित होनी चाहिए, जो गन्दगी से जूझने में अपना प्रमुख मोर्चा बनाये। साथ ही उपयोगी फसलों के बीज तथा पौध उपलब्ध कराने का कार्य भी हाथ में ले। श्रम सेवा मण्डल तालाबों को हर साल खोदकर उनकी मिट्टी निकालता रह सकता है ताकि पशुओं के लिये, मकान आदि बनाने के लिये पर्याप्त पानी उनमें संचित रह सके। कुओं की नालियों की सफाई का काम भी ऐसा है जो नियमित रूप से होते रहना चाहिए अन्यथा सड़ा हुआ पानी बीमारियाँ बढ़ाने का निमित्त कारण बनेगा।

ग्राम सेवा की तरह वृक्षारोपण का कार्य भी हाथ में लेना चाहिए। गाँवों के इर्द-गिर्द हरियाली रहनी चाहिए और बड़े-बड़े वृक्षों के कुञ्ज खड़े किये जाने चाहिए। इससे पर्यावरण प्रदूषण रुकता है, प्राणवान साँस लेने का लाभ मिलता है। वर्षा में जमीन का कटाव रुकता है। वर्षा अधिक होने का सुयोग बनता है। जलावन के लिये लकड़ियाँ, पशुओं के लिये चारा और मनुष्यों के लिये फल-फूलों का उपहार मिलता है। वृक्ष हर दृष्टि से हमारे मित्र हैं। उनकी छाँव से हर प्राणी को विश्राम पाने का अवसर मिलता है। सड़कों के किनारे अथवा जहाँ-कहीं भी खाली जगह दिखाई पड़े, पेड़ लगाने का उत्साह उभरना चाहिए। लगाने वाले को तुरन्त लाभ भले ही न मिले, पर इस आरोपण से अनेकों के अनेक विधि लाभ जुड़े हुए हैं। इसके लिये सभी में उत्साह उत्पन्न करना चाहिए। यहाँ तक कि घर, आँगन, छत, छप्पर पर भी गमलों-टोकरियों में घरेलू शाक-वाटिका लगाने का प्रचलन प्रत्येक घर में चल पड़ना चाहिए।

ग्राम सुधार के अनेक लाभ हैं। यदि वे चल पड़ें, तो ग्रामीण जनता को शहरों की ओर भागने और वहाँ की घिचपिच में दिन गुजार कर स्वास्थ्य गँवाने की आवश्यकता न पड़े। ग्रामीण उद्योग बढ़ाने की अभी काफी गुंजायश है। परिवहन के लिये बैलगाड़ियों का प्रचलन नये सिरे से किया जाना चाहिए। इससे कृषि कार्य से बचे हुए समय में पशुओं को भी काम मिल सकेगा। उन्हें पालने वाले अधिक लाभ उठा सकेंगे। गाँव की जरूरतें गाँव में ही पूरी करने का आन्दोलन चले, तो हर किसी को काम मिल सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में फैली हुई बेकारी सहज दूर हो सकती है।

कुटीर उद्योगों के विस्तार के लिये आवश्यक यह है कि उपभोक्ताओं को देहाती क्षेत्र में उत्पन्न हुई वस्तुओं का ही उपयोग करने को प्रधानता देने की दृष्टि रखनी चाहिए। जो अनिवार्य हैं, उन्हीं बड़े कारखानों में बनी वस्तुओं का उपयोग किया जाय। चीनी के स्थान पर गुड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उपयोग होने लगे, तो वह एक अतिरिक्त उद्योग फिर पुनर्जीवित हो सकता है, जो इन दिनों बड़े चीनी मिलों के हाथों चला गया है। खद्दर आन्दोलन में गाँधीजी ने भारत को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि रखी थी। उस दृष्टिकोण को अपनाये रहने की अभी भी उतनी ही आवश्यकता है। ग्राम स्वराज्य की कल्पना इसी आधार पर साकार हो सकेगी। बड़े मिलों के उत्पादन अमीर लोगों ने खड़े किये हैं। उस उत्पादन को विदेश भेजा जाय। भारत की गरीबी और बेकारी का निराकरण इसी तथ्य पर निर्भर समझा जाय कि देहाती उत्पादन देहातों में ही खपे। जिन्हें भी ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति सहानुभूति-संवेदना है, वे कम से कम इतना तो कर ही सकते हैं कि बढ़िया चमक-दमक की वस्तुयें खरीदने की अपेक्षा कुटीर उद्योगों को पनपाने के लिये उन्हीं की उत्पादित सामग्री खरीदें। शौकीनी फैशन-परस्ती का रुझान छोड़कर खादी अपनाने जैसे ग्राम सेवी दृष्टिकोण को अपनाकर सादगी को आधार बनायें। इसमें सस्तापन भी है, आदर्शवाद भी और पिछड़े देहातों को काम देकर उनका स्तर ऊँचा उठाने की सदाशयता भी।

कुटीर उद्योगों का जाल हर गाँव तक फैलना चाहिए अन्यथा मात्र कृषि पर निर्भर रहने से किसानों को, कृषि मजदूरों को कई-कई महीने खाली रहना पड़ेगा। ठालीपन बुरी आदत है। उससे दुष्प्रवृत्तियाँ ही उभरती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि खाली दिनों में कुछ काम न मिलने से गरीबी का अनुपात निश्चित रूप से बढ़ता है। जापान जैसे देश कुटीर उद्योगों के सहारे ही सुसम्पन्न बने हैं। वही मार्ग अपने लिये भी खुला पड़ा है। यहाँ यह बात और भी ध्यान रखने योग्य है कि कुटीर उद्योगों के साथ सहकारिता आन्दोलन भी चलना चाहिए, ताकि कच्चा माल उचित मूल्य पर मिल सके और बनी हुई वस्तुयें इसी तंत्र के माध्यम से खरीद लिये जाने पर उन्हें उपयुक्त मण्डियों में भेजा जा सके और समय पर उचित मूल्य मिल सके। निर्माता को ही कच्चा माल खरीदने और बनी वस्तुयें बेचने जाना पड़े, तो उसमें समय भी भारी बर्बाद होगा और विनिर्मित वस्तुओं का मूल्य बढ़ाना पड़ेगा। कुटीर उद्योगों का भविष्य सहकारिता के साथ जुड़ने पर ही उज्ज्वल हो सकता है।

दुर्व्यसनों से बचे रहने के लिये आवश्यक है कि बचत का महत्व समझा जाय। आवश्यक खर्च की तरह ही थोड़ी बचत का भी नियमित बजट रखा जाय, ताकि आड़े समय जिस-तिस के सामने हाथ न पसारना पड़े। हारी, बीमारी, विवाह, शादी, बच्चों की शिक्षा, आजीविका के नये माध्यम अपनाना आदि कार्यों के लिये समय-समय पर पैसे की आवश्यकता पड़ती रहती है। बचत करते रहने वाले ऐसे समयों पर हैरान नहीं होते, वरन् आवश्यकतानुसार स्वजन-संबंधियों की आपातकालीन सहायता भी कर सकते हैं। बचत को सदा बैंकों में रखना चाहिए, ताकि सुरक्षा भी रहे, ब्याज भी मिले और देश को उद्योग बढ़ाने में सहायता भी मिले।

भ्रष्टाचार की गहरी जड़ें अब उखाड़नी ही होंगी

आज समग्र राष्ट्र व्याप्त भ्रष्टाचार से त्रस्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपने नाग-पाश में पूरे जन-जीवन को ही कसता जा रहा है। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जो इसके प्रभाव से अछूता हो। राजनीति और प्रशासन का तो हम शुद्ध रूप से नहीं ही दिख सकते। ऐसा लगता है कि प्रत्येक कार्यालयों में माँगने वालों के कई मुँह हो गये हैं, राजनीति में लोगों के मुखौटे बदल गये हैं और वाणिज्य-व्यवसाय के लोगों के पेट-मुँह सुरसा से भी बड़े हो गये हैं।

ऐसा नहीं कि भ्रष्टाचार किसी समय में नहीं था। सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'सत्य की ओर' में मिस्र के पिरामिड़ों के लेखों का उद्धरण दिया है, जिसमें लिखा है कि देश की हालत बहुत खराब है, मुकदमों की भरमार है, शासन में भ्रष्टाचार है, लोग एक दूसरे की वस्तुओं का अपहरण कर लेते हैं ..... पिरामिड जो कि लगभग ४००० वर्ष पुराने हैं। अँग्रेजी राज्य में भी अँग्रेज अफसर डालियाँ स्वीकार करते थे और कुछ सरकारी पदाधिकारी घूसखोरी के लिए काफी बदनाम थे। १९४५ में अब सरदार पटेल अहमद नगर जेल से छूटे तो उन्होंने चारों तरफ देखकर, एक थकी हुई मुस्कान के साथ कहा, "सब चीज की कमी है, सिवा भ्रष्टाचार के।" स्वाधीनता के बाद यह दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अब हमारी अर्थव्यवस्था का एक अंग बनाया गया है।

भ्रष्टाचार का तात्पर्य केवल गैर कानूनी धन-लाभ से ही नहीं है, बल्कि उन सभी पद्धतियों से है जो ईमानदारी, निष्पक्ष और सामान्य प्रशासन के सरल संचालन में अड़चनें पैदा करती है। इसका अर्थ न केवल सोने के लालच से है, बल्कि अधिकार और इज्जत पाने की हविश से भी है। इसके शस्त्रागार में अनेक हथियार हैं जैसे—चापलूसी, खर्चीला मनोरंजन जिसमें कम नैतिकता वाली महिलाओं का भी समावेश है, कीमती उपहार और अन्त में धन। धन की शक्ति काफी होती है जो सत्ताधारियों को आपके साथ रजामन्द करा देता है। क्या कोई अर्थशास्त्री इस बात का अनुमान लगा सकता है कि स्वतंत्रता के इन कार्यों में कितना धन भ्रष्टाचार की पूजा में चढ़ गया। श्री संमानमू ने जो भ्रष्टाचार के प्रश्न पर विचारार्थ संगठित संसदीय समिति के प्रमुख थे, पता लगाया था कि विकास पर खर्च किये गये १५०० करोड़ रुपयों में से ५०० करोड़ रुपये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ठेकेदारों या उसके लोगों की जेबों में जाता है। अनुमानतः ठेके के कार्यों में असली काम पर ४४ पैसे से अधिक नहीं लग पाता, बाकी ५६ पैसे ठेकेदार के मुनाफे पैरवी और संबद्ध अधिकारियों के हिस्सों पर खर्च होता है। कुछ लोग तो इस ५६ प्रतिशत से भी संतुष्ट नहीं हैं। पुलों और बाँधों के लोहा, सीमेन्ट, ईंट आदि चुराये ही जाते वरन् बहुत से निर्माण कागज पर किये जाते हैं और उसका पूरा बजट भ्रष्टाचार के पेट में पच जाता है। हाँ जब कभी कोई पुल या बाँध टूट जाता है तो संसद के अन्दर और बाहर खूब छातियाँ पीटी जाती हैं। उनको भी कमीशन बिठाल कर दफना दिया जाता है।

बहुत से विभाग तो भ्रष्टाचार के गढ़ ही हैं। अन्य विभाग भी हैं जो इससे मुक्त नहीं हैं। कहते हैं कि हरेक प्रार्थनापत्र, परमिट, पदोन्नति, स्थानान्तरण के मूल्य निश्चित हैं। कार्यालयों में लोग काम नहीं करेंगे केवल युद्ध दृष्टि से यह देखा करेंगे कि कब कोई जरूरतमन्द आ सकता है जिसको कि मुर्गा बना सकें। स्वतंत्रता के बाद अधिकांश पदार्थों की कमी पैदा हो गई, जिसके फलस्वरूप तरह-तरह के कन्ट्रोल लागू किये 'समाजवादी नारे' के अन्तर्गत लगता है कि ये कमियाँ आगामी अनेक वर्षों तक हमारी अर्थव्यवस्था का भी एक पहलू बनी रहेंगी। इनके लिए अनिवार्य रूप के अधिकाधिक नियंत्रण लागू होते रहते हैं जिससे कोई भी उत्पादक उद्योग ऐसा नहीं है जिसमें सरकारी परमिट या लाइसेन्स की जरूरत न हो। हम लोग चारों ओर कन्ट्रोल से घिरे हैं और उनसे परेशान हैं। अनुमान है कि एक नई फैक्टरी योजना के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों से, लगभग ४० लाइसेन्स व परमिट प्राप्त करने पड़ते हैं। वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों में तथा निजी उद्योगों में तो यह यहाँ तक घुस गया है कि जब कोई चीज शुद्ध मिल नहीं सकती। अधिकाधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, जिसके लिए कालाबाजारी, जमाखोरी और जखीरेबाजी बढ़ रही है। लोग छल-कपट, प्रपंच, अत्याचार, अनाचार सभी तरीकों से जल्दी धनवान बनने की कोशिश में हैं। नकली दवाइयाँ बेची जा रही हैं। अभी हाल ही में कानपुर के एक अस्पताल में नकली ग्लूकोज से ५१ आदमी की जान ले ली है। अब तो अस्पतालों में बिना पैसे के बीमारों को सीट नहीं मिलती, स्कूल-कॉलेजों में एडमीशन नहीं हो पाता, रेल में टिकट नहीं मिलता है। ऐसा जीवन त्रस्त है कि इससे छुटकारा नहीं है। पिछले महायुद्ध के बाद जब इटली की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई तो वहाँ की सरकार ने, भ्रष्टाचार और काला बाजार रोकने के लिए कड़े कानून बनाये। किन्तु इसकी एक अजीब प्रतिक्रिया हुई। भ्रष्टाचारी अफसरों और चोर बाजारियों ने हड़ताल कर दी और जुलूस निकाला। लगता है भारत में भी यह दिन बहुत दूर नहीं। अब तो यह अधिकारिक तौर पर माना जाने लगा है कि काले धन ने समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न कर दी है। फलस्वरूप मुद्रा स्फीति हो गई है।

लोक-तान्त्रिक पद्धति में सरकार का यह कार्य होता है कि जनता की इच्छाओं और माँगों को निर्दिष्ट कर उनमें समन्वय स्थापित करे और विधानमण्डल का कार्य होता है कि सरकार की नीतियों को माने। लेकिन इन नीतियों का अनुपालन कार्यपालिका करती है। कोई कार्य तब तक ठीक नहीं हो सकता जब तक कार्यपालिका उसे निष्ठापूर्वक पालन न करे। संसद-कानून और नियम बना सकता है, मंत्री आदेश दे सकता है, लेकिन यदि कार्यपालिका उसमें कोई रुचि नहीं लेती तो फिर कुछ भी नहीं होता। भ्रष्ट-प्रशासन सरकार की प्रवृत्तियों को पंगु बना देती है क्योंकि शरीर कैसे काम कर सकता है यदि हाथ काम करना बन्द कर दे, आँखें देखें नहीं और कान सुनें नहीं ?

अधिकांशतः यह भी कहा जाता है कि व्यापक-विकास के कार्यक्रम में भ्रष्टाचार अत्यन्त स्वाभाविक है। सम्भवतः लोगों को नहीं मालूम है कि अफ्रीका के नये देशों में भी विकास की गति हमसे तीव्र है और प्रशासन भी भ्रष्टाचारहीन है। वास्तव में मध्यपूर्व व एशिया के कुछ एक देशों को छोड़कर ऐसा भ्रष्टाचार कहीं नहीं है। अशिक्षा भी भ्रष्टाचार का कारण नहीं है। भ्रष्टाचार में लिप्त सभी लोग तालीम और अकल वाले हैं।

भ्रष्टाचार के लिए राष्ट्रीय चरित्र को भी दोष देना उचित नहीं है। पिछले सौ-सौ वर्षों में जिस देश ने राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी और विनोबा भावे जैसे महान लोगों को उत्पन्न किया, उसकी भूमि अत्यन्त उर्वरा है।

आज की परिस्थितियों को देखते हुए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि समाज की अन्य संस्थाओं जैसे धार्मिक संगठनों, सामाजिक संस्थानों व व्यावसायिक संघों को आगे आना चाहिए और अपना उत्तरदायित्व संभालना चाहिए। जनता में नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना होनी चाहिए। भारत में धर्म असंगठित है और व्यावसायिक संगठन या संगठन संघ आर्थिक माँग छोड़कर दूसरा काम जानते ही नहीं हैं। समाज में व्याप्त इस अनैतिकता की कुप्रवृत्ति को रोकने के लिए हमें जनता के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को उमड़ना होगा। इसके लिए शीर्ष स्तर पर भी वैसी निष्ठा की आवश्यकता होगी। प्रत्येक स्तर पर लोगों के दृष्टिकोण को परिवर्द्धित और परिमार्जित करना होगा।

रास्ता और तरीका कोई भी क्यों न हो अपराध अपराध है और हमारे समाज के लिए वह अभिशाप ही है क्योंकि जिस समाज के लोग अपने स्वार्थ के लिए काम करते हैं, अपने लिए दूसरों का शोषण करते हैं किसी की मजबूरी का नाजायज लाभ उठाते हैं वे समाजद्रोह ही करते हैं। जनजीवन में लगी इस दीमक को यों ही बिना ध्यान दिये नहीं छोड़ देना है अन्यथा सारे समाज को पंगु बना देगी, आवश्यकता इस बात की है कि भ्रष्टाचार को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर रूप में निर्मूल करने के लिए हम सजग बनें। विचारशील व्यक्तियों को भी इस संदर्भ में अपना दायित्व स्मरण रखना चाहिए।

खुल जा सिमसिम

व्यक्ति और समाज के समक्ष इन दिनों इतनी अधिक समस्याएँ हैं कि उनकी गणना कर सकना कठिन है। परिस्थितियों, अभावों, विग्रहों आदि के जो स्वरूप उभरते हैं, उनका स्वरूप व्यक्ति और समाज के सम्मुख स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार चित्र-विचित्र रूप धारण करता रहता है। उन सब को गिनकर, उनके पृथक्-पृथक् समाधान ढूँढ़ना ऐसा है जैसा शरीर भर पर उगी हुई चेचक की एक-एक फुन्सी के लिए एक-एक चिकित्सक नियुक्त करना और एक-एक दवा का प्रबंध करना। क्योंकि हर फुन्सी एक दूसरे से भिन्न आकार की होती है। पर उनकी भिन्नता को देखते हुए चिकित्सकों और दवाओं में भिन्नता होने की योजना बनाना कुछ अप्रासंगिक भी नहीं लगता। इस भ्रम-जंजाल से उबरा जा सके, तो एक सरल समाधान मिल जाता है कि पेट और रक्त को अशुद्ध बनाये हुए विजातीय द्रव्यों को निकाल बाहर किया जाय और फिर उन्हें संचित न होने दिया जाय। उतने भर से न केवल चेचक की सामयिक कठिनाई से उबरा जा सकता है, वरन् भविष्य में भी अन्य किसी रोग के न आने के संबंध में निश्चित हुआ जा सकता है।

जीवनीशक्ति का भण्डार कम पड़ जाना ही विभिन्न भागों में दीख पड़ने वाली दुर्बलताओं और रुग्णताओं का प्रमुख कारण है। बाहरी विषाणुओं के आक्रमण करने में सफलता ऐसी ही स्थिति में मिलती है। भीतर के अपने जीवाणु भी इस आधार पर घटने, सिकुड़ने और दुर्बल रहने लगते हैं। इससे भीतर के अपने जीवकोश विषाणु बनाते और रोग उत्पन्न करने लगते हैं। जीवनी शक्ति की कमी न हो तो मनुष्य प्रकृति प्रकोपों एवं अनुपयुक्त वातावरण में भी गुजारा कर लेते हैं, इतना ही नहीं वह बाहर से आक्रमण करने वाले विषाणुओं से भी निपट लेते हैं। अच्छा हो जीवनीशक्ति को घटने न देकर अपनी समर्थता को सुरक्षित रखने पर ध्यान केन्द्रित किया जाय। इस प्रयोजन में जितनी सफलता मिलेगी, उसी अनुपात से विभिन्न आकृति-प्रकृति के रोगों की आशंका से निवृत रहा जा सकेगा।

दरिद्रता अनेक अभावों की जननी है। एक-एक अभाव को पूरा करने के लिए एक-एक उपाय अपनाना भी बुरा नहीं है। पर समुचित समाधान तभी बन पड़ेगा; जब अभावों की सूची को एक कोने पर रखकर सम्पन्नता संवर्द्धन के लिए प्रयत्न किया जाय। उस प्रकार की सफलता मिल जाने पर आये दिन नित नये रूप में आ खड़े होने वाले अनेक अभावों से एक बार ही निपटा जा सकेगा।

हमारे इस संसार में अनगिनत काँटे और कंकड़ बिछे पड़े हैं। उनके कारण चुभन और ठोकर का खतरा बना ही रहता है। इन सभी को बीन सकना और जमीन को साफ-सुथरा बना सकना किसी के लिए जन्म भर में भी संभव नहीं हो सकता। सस्ता और सरल तरीका यह है कि अपने पैरों में जूते पहन लिये जायें तो बेधड़क रूप से किसी भी रास्ते पर बढ़ते चला जाय, भले ही वह कंकड़ों और काँटों से भरा ही क्यों न हो।

हर प्रश्न को हल करने के लिए गणित के अलग-अलग सिद्धान्त नहीं गढ़े जा सके हैं। जो निर्धारण लम्बे समय से चला आ रहा है, उसी के सहारे अनेक सवाल हल किये जाते रहते हैं। मानवी प्रगति और सुख-शान्ति के भी कुछ सुनिश्चित सिद्धान्त हैं। उन्हें अपनाये रहने, व्यतिक्रम न करने पर राजमार्ग पर चलते हुए निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचना सम्भव हो सकता है। जल्दबाजी में नई पगडंडी खोजने और कँटीले झाड़-झँखड़ों से गुजरने में देर भी लगती है और परेशान भी बहुत होना पड़ता है। इसलिए जीवन चेतना के साथ जुड़े हुए अविच्छिन्न शाश्वत सिद्धान्तों को अपनाये रहने में ही भलाई है। लालची लाभ तो बहुत नहीं पाते, पर हर घड़ी चिन्ताओं में फँसे रहते हैं और ऐसा कुछ कर नहीं पाते, जिसके सहारे संतोष की उपलब्धि हो एवं सभ्य-समुन्नतों में गणना हो सके। अत्यधिक चतुरता कई बार ऐसे घाटे का कारण बनती है और हैरान करती, कठिनाइयों में फँसाती भी देखी गई है। जेलखानों में बंद कैदियों की जाँच-पड़ताल करने पर इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि उनने संतुलन गँवाया, आवेशग्रस्त हुए और आतुर भावावेश में ऐसा कुछ कर बैठे, जो उन्हें नहीं करना चाहिए था। ऊँची छलाँगें लगाने वालों में से सफलता किन्हीं विरलों को ही मिलती है। अधिकांश को औंधे मुँह गिरना और हड्डी-पसली तुड़ा लेने जैसा घाटा उठाना पड़ता है।

उपरोक्त प्रतिपादनों का एक ही तात्पर्य है कि नवयुग की आकांक्षा के अनुरूप हम सन्तुलित ढंग से जियें और जीने दें तो विग्रह, उपद्रवों से सहज ही बचे रहा जा सकता है। आतुर लालसा और लिप्साएँ ही ऐसा कुछ करने के लिए प्रेरित करती हैं, जिसमें मानवी गरिमा के उपयुक्त मर्यादाओं को तोड़ने एवं निर्धारित अनुशासन को तोड़-मरोड़ डालने की उमंग उठती और विक्षिप्तों की तरह कुछ भी कर गुजरने, किसी भी ओर चल पड़ने के लिए प्रेरित करती है। इन आवेशों, आवेगों पर काबू पाया जा सके और सज्जनोचित जीवन जिया जा सके, तो न ही व्यक्तिगत जीवन को तोड़-मरोड़ कर रख देने वाला संकट हो और न समाज में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हों, जिन्हें समस्याओं, विक्षिप्तिताओं, विपत्तियों के रूप में अवांछनीय स्तर के संकट खड़े करने का अवसर उभरे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों जो अगणित प्रकार के अनाचार, अतिवाद, असंतुलन एवं विग्रह उमड़ते-घुमड़ते दीख पड़ते हैं, वे अनायास ही किसी अदृश्यलोक से नहीं आ टपके हैं। इन्हें मनुष्य ने स्वयं ही सृजा और पोषण देते हुए गगनचुम्बी बनाया है। यदि उसने मर्यादाओं में रहना अंगीकार किया होता, निर्धारित अनुशासन पाला होता तो शान्ति से रहने और स्वाभाविक प्रगति का वरण करने में कहीं किसी प्रकार का संकट देखने एवं शिकायत करने जैसा अवसर आने का प्रश्न ही न उठता।

गिनती गिनना भूल जाने पर नये सिरे से गिनना आरंभ किया जाता है। रास्ता भूल जाने पर भटकाव को छोड़ना और वापस लौटना पड़ता है। तभी उस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है जो कि निर्धारित लक्ष्य पर देर से सही, पर पहुँचा तो जा सके। संसार भर में निवास करने वाले ६०० करोड़ मनुष्यों में से प्रत्येक के साथ अगणित शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। उनमें से प्रत्येक का हल खोजना और उनके लिए समाधान ढूँढ़ना लगभग उतना ही कठिन है, जितना कि आकाश और पाताल को किसी एक कुलाबे से मिलाकर जोड़ना।

संभव इतना ही है कि उन मानसिक विकृतियों के संबंध में विचार किया जाय जो चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को प्रभावित करने के उपरान्त ऐसी उलझनें विनिर्मित करती हैं, जिनका भौतिक आधार पर कोई निश्चित समाधान ही संभव नहीं। संभव इतना है कि उस मनःस्थिति के साथ अवांछनीय रूप से जुड़ी हुई प्रक्रिया को समझा और समझाया जाय जो कि विचार क्षमता को दैत्य के चुंगुल से छुड़ाकर देवता के हवाले करे। दृष्टिकोण और क्रियाकलाप में मानवीय गरिमा के अनुरूप सात्विकता, सदाशयता का समावेश करे। इतने भर से एक ही चाबी उन जैसे मजबूत तालों को खोल देगी और 'खुल जा सिमसिम' के अलीबाबा के इशारे से एक नया माहौल विनिर्मित करेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनाचार से कैसे निपटें

समाज-सुधार की अनिवार्य आवश्यकता

हमारे समाज में जहाँ अनेकों अच्छाइयाँ हैं वहाँ कितनी ही बुराइयाँ भी हैं। अच्छाइयों को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहने की निष्ठा जहाँ हममें होनी चाहिए वहाँ इतना साहस भी रहना चाहिए कि जिन कुरीतियों को अनुचित एवं हानिकारक समझते हैं उनका परित्याग कर सकें। समय के परिवर्तन के साथ-साथ रीति-रिवाजों और प्रथा-परम्पराओं को बदलने की भी आवश्यकता होगी, यदि यह परिवर्तन एवं सुधार कार्य रुक जाय तो समाज में सड़न पैदा हो जाती है। काल प्रभाव से जो प्रथाएँ असामयिक हो चुकी हैं उनका त्याग अथवा सुधार अनविार्य है।

जाड़े में गरम कपड़े पहने जाते हैं पर गर्मी आते ही हलके वस्त्र पहनने पड़ते हैं और जाड़े वाले ऊनी कपड़े तब निरुपयोगी हो जाने के कारण उठाकर रख देने पड़ते हैं। बरसात में छाता आवश्यक होता है पर सर्दी में उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। स्वस्थ मनुष्य जो कुछ खाता है, वह बीमार होने पर नहीं दिया जा सकता। खुशहाली के दिनों में जैसा खर्च करते हैं अकाल पड़ जाने पर उसमें बहुत किफायत करनी पड़ती है। समयानुसार परिवर्तन की बात सभी स्वीकार करते हैं इसी में बुद्धिमत्ता भी है। वैदिक-काल में यज्ञों को आवश्यक धर्म-कृत्य माना जाता था। कालांतर में उस विधान में विकृति आई और लोग यज्ञों के नाम पर पशुबलि करने लगे। देवी-देवताओं पर भी बलि चढ़ाई जाने लगी। एक अच्छी यज्ञ-प्रथा जिसमें लोग अपनी बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों रूपी पशुता की बलि दिया करते थे—समय के परिवर्तन के साथ-साथ पशुबलि जैसे घृणित कार्य में बदल गई। इसे सुधारने के लिए भगवान बुद्ध आये। उनने अहिंसा का आंदोलन चलाकर पशुबलि की प्रथा-परम्परा का उन्मूलन करके रख दिया। कुछ दिन बाद अच्छी प्रथायें भी रूढ़ि बन जाती हैं और लोग अपनी बुराइयों को मिलाकर उन अच्छाइयों को भी विकृत कर देते हैं, तब उन्हें भी सुधारना आवश्यक हो जाता है।

बुद्ध द्वारा प्रचारित अहिंसा का सिद्धांत बड़ा अच्छा था, पर कालांतर में लोग उसके कारण कायर, अकर्मण्य और आत्मरक्षा योग्य पौरुष से भी हीन होने लगे। तब भगवान शंकराचार्य ने उसमें सुधार करने का आंदोलन आरम्भ किया। उन्होंने बुद्ध धर्म की मान्यताओं का, अहिंसा के विकृत स्वरूप का विरोध करके पुरुषार्थपूर्ण वेदांत का प्रतिपादन किया और बुद्ध धर्म की जड़ हिला दी।

बहुत समय बीतने पर जब वेदांत भी मिथ्या अहंकार का रूप धारण करने लगा और लोग समाज से विरक्त होकर शुष्क व्यक्तिवादी बनने लगे, अपने मतलब से मतलब रखने लगे तो उसकी बुराइयों को देखते हुए संतों ने भक्तिवाद का प्रचलन किया। सामूहिक कीर्तनों, मंदिरों एवं धर्मोत्सवों का प्रसार करके उन्होंने हिन्दू समाज में उस समय फैली हुई पृथकवादी विचारधाराओं को सामूहिकता एवं संगठन के रूप में मोड़ा जिससे विश्रृंखलित हिन्दू समाज परस्पर मिलने-जुलने का महत्त्व समझे और विदेशी आक्रमणों का जो ताँता उस समय लगा हुआ था उसके विरुद्ध संगठित होने का प्रयत्न करें।

सिक्ख धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप भक्तिवादी है। गुरुनानक की वाणियाँ ग्रंथ साहिब में भक्तिवाद की ही धारा हैं पर वस्तुतः उस संगठन ने हिन्दू समाज पर हो रहे विधर्मी आक्रमणों से रक्षा का बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया। उस समय राजनैतिक एवं सामाजिक संगठन संभव नहीं था। जनता को धार्मिक झंडे के तले ही इकट्ठा किया जा सकता था। भक्ति-काल में यही प्रयत्न होते रहे। इसके बाद वह भक्तिवाद भी कालांतर में ढोंग-पाखंड का केन्द्र बन गया। निकम्मे, आलसी एवं धूर्त लोग इसी बहाने लोगों की श्रद्धा का पोषण करने लगे। उसमें सुधार की आवश्यकता अनुभव हुई तो स्वामी दयानंद ने आर्य समाज का आंदोलन आरम्भ किया और कितनी ही कुरीतियों का उन्मूलन करके सुधार की एक महत्वपूर्ण धारा प्रवाहित कर दी।

यह सुधार कार्य सदा से होता रहा है। समय-समय के ऋषि उस समय की परिस्थितियों को देखकर विभिन्न स्मृतियों की रचना करते रहे हैं। आजकल हिन्दू कानून याज्ञवल्क्य स्मृति के आधार पर बना हुआ है। इससे पूर्व कालों में मनुस्मृति, पाराशर स्मृति आदि अनेकों स्मृतियाँ कार्यान्वित रही हैं। समय बदलने के साथ-साथ ऋषियों को स्मृतियाँ भी बदलने की आवश्यकता अनुभव होती रही और तदनुसार उन्होंने सामयिक विधानों को बदल देने में भी संकोच नहीं किया। मानवता के नैतिक गुणों को प्रतिपादन करने वाला आध्यात्मिक धर्म अपरिवर्तनशील है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, दान, परोपकार, तप, संयम आदि के आध्यात्मिक नियम हर युग में एक-से रहते हैं पर खान-पान, वेषभूषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवहारिक धर्म में सामयिक स्थिति के अनुसार हेर-फेर होता रहता है। एक समय में अच्छी रही वस्तु समयानुसार जब जीर्ण-शीर्ण हो जाती है तो उस फटी-पुरानी को बदल कर उसके स्थान पर नई को लाया जाता है। बूढ़े बैलों को पैशन देकर नये बछड़े खरीदने का क्रम हर किसान के यहाँ चलता रहता है। हमारा शरीर जब बूढ़ा हो जाता है, उस समय चूँकि यह शरीर पुराना है इसलिए बढ़िया है, उसे नहीं छोड़ेंगे, ऐसा सोचा जाय तो इस दुनिया में बूढ़े बीमार ही भरे पड़े रहेंगे और तब हर दिशा में अस्पताल जैसी पीड़ा-परेशानी ही बिखरी दिखाई देगी।

हर परिवर्तन असुविधाजनक होता है पर उसके किए बिना काम नहीं चलता। सरकारी कर्मचारियों की बदली होती रहती है तो उसमें कुछ अड़चन और परेशानी जरूर होती है पर यह अनिवार्य है। सब कर्मचारी अपने-अपने स्थान पर जमे बैठे रहें तो उनके राग-द्वेष का अनुचित प्रभाव जनता पर पड़ने लगेगा, इसलिए बहुत खर्च पड़ने और परेशानी होने की बात को जानते हुए भी कर्मचारियों का परिवर्तन होते रहना आवश्यक माना जाता है। रीति-रिवाजों का हेर-फेर भी इसी प्रकार अनिवार्य एवं आवश्यक होता है। अपरिवर्तनवादियों को उसमें बहुत अड़चन जैसी बात दीखती है और वे विरोध भी करते हैं पर उनके विरोध को सहन करते हुए भी समाज को आगे ही बढ़ना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं।

यवन काल में जब कुमारी कन्याओं का अपहरण शासकों की वासनाअग्नि तृप्त करने के लिए आम बात बनी हुई थी तब छोटी लड़कियों को बहू के रूप में परिणित कर देने की उपयोगिता सोची गई। यद्यपि उससे होने वाली शारीरिक और मानसिक हानि को सब लोग समझते थे, पर अपहरण जैसे आघात को सहने की अपेक्षा वह हानि कम महत्त्व की समझी गई और बाल-विवाह चल पड़ा। पंडित काशीनाथ ने 'शीघ्रबोध' में ८, ९, १० वर्षों की कन्याओं के विवाह का प्रतिपादन श्लोक बनाकर कर दिया और यहाँ तक लिख दिया कि बारह वर्ष के अधिक बड़ी कन्या हो जाने पर भी विवाह न करने से उसके अभिभावक रौरव नरक को जाते हैं। विचार की दृष्टि से बात बिल्कुल अटपटी है। कहाँ तो वैदिक काल में पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करने के बाद लड़के-लड़कियों के विवाह करने की सुदृढ़ परम्परा और कहाँ यहाँ आठ वर्ष की कन्या का विवाह करने पर स्वर्ग का पुण्य मिलने की उपहासास्पद व्यवस्था। पर उस समय वही उचित था। बाल-विवाह की सामयिक उपयोगिता सबकी समझ में आ गई और उसका प्रचलन कुछ ही दिनों में हो गया। किसी समझदार ने उसका विरोध नहीं किया। पर्दा प्रथा भी इसी आधार पर बनी। स्त्रियों को घर से बाहर न जाने देने, घर के भीतर ही रहने, यज्ञ आदि किसी सामूहिक कार्य में भाग न लेने की प्रथा इसलिए चलाई गई कि अपनी बहू-बेटियों के रूप-लावण्य की चर्चा बाहर न फैलने पाये और आततायियों का दाँत उन पर होने से भयंकर आपत्तियाँ आने से बचाव हो सके। वह परिस्थितियाँ आज नहीं रहीं। आज हमारी बहिन-बेटियों की इज्जत सुरक्षित है फिर बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा की क्या उपयोगिता रह जाती है ? यह तर्क किसी काम का नहीं कि यह पुरानी प्रथा है। ब्रह्मचर्यपूर्वक पच्चीस वर्ष तक विद्याध्ययन करके विवाह करने वाली बात को एक समय बदलकर बाल-विवाह जैसे अटपटी बात को स्वीकार कर लिया गया तो अब वैसी परिस्थिति न रहने पर सनातन वैदिक परम्परा को पुनः लाने में क्यों आपत्ति होनी चाहिए ? पर्दा भारतीय संस्कृति के सर्वथा विपरीत है। प्राचीन काल की महिलाओं के रहन-सहन का वर्णन जिन धर्म ग्रन्थों में मिलता है, उनमें पर्दा का कहीं संकेत भी नहीं है। चित्रों में भी कोई प्राचीनकाल की भारतीय नारी घूँघट काढ़े नहीं दिखाई देती। फिर मध्य-काल की एक सामाजिक प्रथा को हम अतीत से चली आने वाली सनातन प्रथा की तुलना में क्यों महत्त्व दें ? पर्दा प्रथा और बाल-विवाह की कोई उपयोगिता किसी भी दृष्टि से जब दिखाई नहीं देती तो उनके लिए आग्रह क्यों किया जाय ?

किसी समय संग्रहीत धन को सुरक्षित रखने के लिए बैंक जैसे कोई विश्वस्त संस्थान न थे। घर में धन रहने पर चोरी होने का डर रहता था। इसलिए लोग अपनी संग्रहीत कमाई को सोने-चाँदी के जेवर बनाकर हर घड़ी अपने साथ रखते थे और शरीर पर धारण किये रहते थे आज स्थिति भिन्न है। बैंकों में पैसा सुरक्षित भी रहता है, जेवर बनाने में टाँका, बट्टा, मजूरी, टूट-फूट, घिसन आदि में नुकसान भी बहुत होता है, साथ ही शत्रुता, ईर्ष्या, देखा-देखी में गरीबों को भी उनकी आकांक्षा जगने से किसी भी प्रकार धन प्राप्त करने की अभिलाषा, चोरी, डकैती, हत्या आदि का खतरा पैदा होता है। गंदगी बढ़ती है एवं नाक में पहने जाने वाले जेवरों से तो साँस लेने एवं नासिका छिद्रों की सफाई तक में बाधा पड़ती है, जो आरोग्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक है। इन बुराइयों को जानते हुए भी, जेवर की अनुपयोगिता समझाते हुए भी यदि हम केवल प्रथा-परम्परा के आधार पर उसे अपनाये रहते हैं तो इसमें कौन-सी बुद्धिमत्ता की बात कही जा सकती है ?

किसी समय साधु और ब्राह्मण वर्ग के लोग परम निःस्वार्थ, त्यागी, तपस्वी, अपरिग्रही और लोकसेवी होते थे। वे साधना और स्वाध्याय द्वारा आत्मबल एकत्रित करते थे और लोक-शिक्षण एवं सामाजिक उत्कर्ष के धर्म आयोजनों में निरंतर लगे रहते थे। जनमानस में सद्ज्ञान का प्रकाश करना ही उनका लक्ष्य होता था और इस कार्य में वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राणपण से अहिर्निशि संलग्न रहते थे। ऐसे देव पुरुषों के भरण-पोषण की, व्यवस्था की सामग्री श्रद्धापूर्वक दान-दक्षिणा के रूप में उन्हें दे दी जाती थी। उस समय निश्चय ही ब्रह्मभोज या साधु, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देने का बड़ा महत्त्व था।

आज परिस्थितियाँ बदल गईं। आत्म-निर्माण, तपश्चर्या, ज्ञान-साधना एवं लोकसेवा से सर्वथा विहीन व्यक्ति ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने या रंगीन कपड़े पहनकर साधुवेश धारण कर लेने मात्र से अपने को दान लेने का अधिकारी मानते हैं। जनता भी परिस्थितियों के परिवर्तन का ध्यान न रखकर प्राचीनकाल के सच्चे साधु-ब्राह्मणों की तरह उनका सम्मान करती है। इससे लाभ कुछ नहीं हानि अधिक है। निठल्ले लोगों को मुफ्त में पैसा मिलने से आलस्य, अकर्मण्यता, व्यसन, अहंकार आदि अनेकों बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, जो दान सत्कर्मों में लगना चाहिए था, वह कुपात्रों के हाथ में चला जाने से समाज का अहित ही होता है। देने वालों की गाढ़ी कमाई तो बर्बाद हो ही जाती है। समय की माँग है कि इस स्थिति को बदला जाय। पुरानी परम्परा मात्र का अंधानुकरण न किया जाय।

प्राचीनकाल में ज्ञान, सुरक्षा, व्यवसाय और शारीरिक श्रम की परम्पराओं को सुविकसित करने के लिए राष्ट्रीय आवश्यकताओं को चार भागों में बाँटा गया था और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों में गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर बँटे हुए लोग अपना-अपना काम पीढ़ी दर पीढ़ी ठीक प्रकार चलाते जाते थे। इससे प्रत्येक कार्य सुव्यवस्थित रीति से चलता था। सभी वर्णों के लोग परस्पर समान स्थिति में रहते और समान सम्मान एवं समान अधिकार का उपभोग करते थे।

समय के फेर से यह वर्गीकरण ऊँच-नीच, छूत-छात और जाति-पाँति की वर्तमान विभीषिका के रूप में बदल गया। किसी वंश में जन्म लेने मात्र से किसी को ऊँच, किसी को नीच समझा जाने लगे। कर्म की महत्ता छोड़कर लोग वंश को महत्त्व देने लगे। सवर्ण कहे जाने वाले लोगों में से कई व्यक्ति आचरण बहुत ही गर्हित होने तथा अन्य वर्णों के लिए निर्धारित कार्य करने पर भी अपने को उच्च वर्ण का मानने लगे और इसी भ्रमपूर्ण मान्यता का अहंकार भी करने लगे। कितने ही सत्कर्म करने वाले सुयोग्य और सुविकसित लोग इसलिए तिरस्कृत किये जाने लगे कि इनने किसी छोटे वंश में जन्म लिया था। यह मान्यताएँ न विवेकसंगत हैं, न न्यायसंगत, न शास्त्रसंगत। केवल भ्रम और रूढ़िवादिता ही इन मान्यताओं का आधार है।

हमारे समाज में ऐसी अनेकों कुरीतियाँ एवं अंध-परंपराएँ प्रचलित हैं और जातीय जीवन में घुन की तरह लगी हुई उन्हें निरंतर खोखला बनाती चली जा रही हैं। आज समय की पुकार है कि इन मान्यताओं को बदला जाय और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए समाज को सुसंस्कृत बनाने के लिए आवश्यक परिवर्तन के लिए तैयारी की जाय।

हमारा समाज जितना श्रेष्ठ और प्राचीन है उतनी ही कुरीतियाँ और बुराइयाँ भी उसमें प्रवेश कर गई हैं। जिस प्रकार सिर में पड़ जाने वाले जुओं को बीन-बीनकर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक रीति-रिवाजों को भी विवेक की कसौटी पर कसना होगा, जो उपयुक्त हों उनको प्रोत्साहन देने और जो अनुपयुक्त हों उनका परित्याग करने के लिए हमें तत्पर होना होगा। दूरदर्शी किसान अपनी खेती में उपजने वाले धान्य को सींचता रहता है पर हानिकारक घास-पात को खोदता-हटाता भी रहता है। यदि ऐसा न किया जाय तो निरर्थक घास-पात बढ़ जाने से धान्य की फसल ही नष्ट हो जायगी। समाजरूपी खेत में जहाँ सत्प्रवृत्ति की फसल को सींचा और रखाया जाना आवश्यक है, वहाँ कुरीतियों के घास-पात को उखाड़ने की भी नितांत आवश्यकता रहेगी। हमें इस ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए।

एक मानसिक दुर्बलता लोगों में यह देखी जाती है कि उन्हें पुराना ढर्रा ही पसंद होता है। नई व्यवस्था पर चलते हुए उन्हें झिझक एवं संकोच का अनुभव होता है। अच्छाई को अच्छाई मानते हुए भी वे संकोचवश उसे कर नहीं पाते और बुराई को बुराई समझते हुए भी उसको हटाने का साहस उनमें नहीं होता। वे सोचा करते हैं कि इस परिवर्तन का लोग उपहास या विरोध करेंगे। अनेक तरह की बात कहेंगे और तरह-तरह के प्रश्न पूछेंगे, उनका उत्तर देने या समाधान करने का साहस अपने में न होने से झेंप उठानी पड़ेगी और हमारी अप्रतिष्ठा बढ़ेगी। पर यह मान्यता सर्वथा थोथी और निरर्थक है। वीर और साहसी पुरुष जो अनुपयुक्त प्रथाओं को तोड़कर उपयुक्त प्रथाओं की स्थापना में अग्रसर होते हैं वे जन नेतृत्व करने वाले महापुरुष एवं युग प्रवर्तक समझे जाते हैं।

हमारा समाज असभ्य एवं अविवेकी न हो

असभ्य समाज में अविवेकी लोगों में रहने वाला कोई श्रेष्ठ व्यक्ति भी शांति लाभ नहीं कर सकता। कोई असाधारण मनस्वी उन्हें सुधारने में अपनी असाधारण प्रतिभा व्यय करते हुए कुछ अनुकूलता तो उत्पन्न कर सकता है और ऐसा भी हो सकता है कि सर्पों के लिपटे रहने पर भी अप्रभावित रहने वाले चंदन वृक्ष की तरह अपनी मानसिक शांति को स्थिर रख सके। पर ऐसा होता कम ही है, कोई विरले ही लोग इस उच्च स्थिति के होते हैं। महात्मा इमर्सन जैसे लोग अँगुलियों पर गिनने लायक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही होते हैं, जो यह दावा कर सकें कि-'मुझे नरक में भेज दो, मैं अपने लिए वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा।'

बुरे लोगों के बीच रहते हुए सज्जनों को भी कष्ट ही होता है। जहाँ नरबलि चढ़ाने की प्रथा है उन निर्दय, अविवेकी, जंगली, असभ्य लोगों की बस्ती में रहने वाले भलेमानुस को भी अपनी सुरक्षा कहाँ अनुभव होगी ? बेचारा डरता ही रहेगा कि किसी दिन मेरा नम्बर न आ जाय। गन्दे लोगों के मुहल्ले में रहने वाले सफाई पसन्द व्यक्ति का भी कल्याण कहाँ है चारों ओर गंदगी सड़ रही होगी, बदबू उठ रही होगी तो अपने एक घर की सफाई रखने से भी क्या काम चलेगा ? दूसरों के द्वारा उत्पन्न की हुई गंदगी हवा के साथ उड़कर उस स्वच्छ प्रकृति मनुष्य को भी प्रसन्न न रहने देगी। बाजार में हैजा फैले तो स्वास्थ्य के नियमों का पालन करने वाले भी उसकी चपेट में आते हैं। मुहल्ले में आग लगे तो छप्पर भी उसकी लपटों में आता है।

एक गाँव के कुछ लोग साम्प्रदायिक दंगा करें या कोई और उपद्रव करें तो सरकार उसका सामूहिक जुर्माना सारे गाँव पर करती है और शांतिप्रिय लोगों को भी वह दंड चुकाना होता है। तब शांतिप्रिय लोगों को भी कानून में निर्दोष नहीं माना जाता क्योंकि किसी व्यक्ति का इतना ही कर्तव्य नहीं है कि वह शांति के साथ सभ्यतापूर्वक स्वयं रहे वरन् यह भी उसका कर्तव्य है कि जो दूसरे उपद्रवकारी हैं उन्हें समझावे या रोके, न रुकते हों तो प्रतिरोध करे। यदि किसी ने अपने तक ही शांति को सीमित रखा है, दूसरे उपद्रवियों को नहीं रोका है तो यह न रोकना भी नागरिकशास्त्र के अनुसार, मानवीय कर्तव्य शास्त्र के अनुसार एक अपराध है और उस अपराध का दंड यदि सामूहिक जुर्माने के रूप में वसूल किया जाता है तो उस शांतिप्रिय व्यक्ति की यह दलील निकम्मी मानी जायगी कि मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कसूर है ? कोई मैंने थोड़े ही अपराध किया है ?

हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वयं अपराध न करना ही हमारी निर्दोषता का प्रमाण नहीं है। अपराधों और बुराइयों को रोकना भी प्रत्येक सभ्य एवं प्रबुद्ध नागरिक का कर्तव्य है। यदि किसी की आँखों के आगे हत्या, लूट, चोरी, बलात्कार आदि नृशंस कृत्य होते रहें और वह मौन पत्थर की तरह चुपचाप खड़ा देखता रहे, कोई प्रतिरोध न करे तो यह निष्क्रियता एवं अकर्मण्यता भी कानूनन अपराध मानी जायगी और न्यायाधीश इस जड़ता के लिए भी दंड देगा। इसे कायरता और मानवीय कर्तव्यों की उपेक्षा माना जायगा। गाँवों में जिनके पास बंदूकें रहती हैं उनका यह कर्तव्य भी हो जाता है कि यदि गाँव में दूसरों के यहाँ डकैती पड़े तो डाकुओं से मुकाबला करने के लिए उन बंदूकों का उपयोग करें। यदि वे बंदूक वाले डरके मारे अपने घरों में चुपचाप जान बचाये बैठे रहें और डकैती बिना प्रतिरोध पड़ती रहे तो इस कांड में डकैती की तरह उन डरपोक बंदूकधारियों को भी अपराधी माना जायगा और सरकार उनकी बंदूकें जप्त कर लेगी।

समाजशास्त्र के अनुसार प्रत्येक सभ्य नागरिक का यह पवित्र कर्तव्य है कि बुराइयों से वह स्वयं बचे और दूसरों को बचावे। अपराध स्वयं न करें और न दूसरे को करने दे। जो स्वयं तो पाप नहीं करता पर पापियों का प्रतिरोध नहीं करता वह एक प्रकार से पाप का पोषण ही करता है। क्योंकि जब कोई बाधा देने वाला ही न होगा तो पाप और भी तीव्र गति से बढ़ेगा ? हम सब एक नाव में बैठे हैं, यदि इन बैठने वालों में से कोई नाव के पेंदे में छेद करे या उछल-कूद मचाकर नाव को डगमगाये तो बाकी बैठने वालों का कर्तव्य है कि उसे ऐसा करने से रोकें। यदि न रोका जायगा तो नाव का डूबना और सब लोगों का संकट में पड़ना संभव है। यदि उस उपद्रवी व्यक्ति को अन्य लोग नहीं रोकते हैं तो उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं है कि क्या करें, हमारा क्या कसूर है, हमने नाव में छेद थोड़े ही किया था। छेद करने वाले को न रोकना भी स्वयं छेद करने के समान ही घातक है। मनुष्य समाज परस्पर इतनी घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है कि अपना स्वयं का पाप ही नहीं, दूसरों का पाप भी दूसरों को भुगतना पड़ता है। जयचंद और मीरजाफर की गद्दारी से सारे भारत की जनता को कितने लंबे समय की गुलामी की यातनायें सहनी पड़ीं।

हमारे समाज में यदि चारों ओर अज्ञान, अविवेक, कुसंस्कार, अंधविश्वास, अनैतिकता, अशिष्टता का वातावरण फैला रहेगा तो उसका प्रभाव हमारे ऊपर न सही तो अपने परिवार के अल्प विकसित लोगों पर अवश्य पड़ेगा। जिस स्कूल के बच्चे गंदी गालियाँ देते हैं उसमें पढ़ने जाने पर हमारा बच्चा भी गालियाँ सीखकर आवेगा। गंदे गीत, गंदे फिल्म, गंदे प्रदर्शन, गंदी पुस्तकें, गंदे चित्र कितने असंख्य अबोध मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और उन्हें कितना गंदा बना देते हैं, इसे हम प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख सकते हैं। दो वैश्यायें किसी मुहल्ले में आकर रहती हैं तो वे सारे मुहल्ले में शारीरिक या मानसिक व्यभिचार के कीटाणु फैला देती हैं। शारीरिक न सही, मानसिक व्यभिचार तो मुहल्ले के अधिकांश निवासियों के मस्तिष्क में घूमने लगता है। यदि मुहल्ले वाले उन वैश्याओं को हटाने का प्रयत्न न करें तो उनके अपने लड़के बर्बाद हो जावेंगे। बुराई की उपेक्षा करना पर्याप्त नहीं हैं, पाप की ओर से आँखें बंद किये रहना सज्जनता की बात नहीं है। इससे तो अनाचार की आग ही फैलेगी और उसकी लपटों से हम स्वयं भी अछूते न रह सकेंगे।

समाज में पनपने वाली दुष्प्रवृत्तियों को रोकना केवल सरकार का ही काम नहीं है, वरन् उसका पूरा उत्तरदायित्व सभ्य नागरिकों पर है। प्रबुद्ध और मनस्वी लोग जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुरा२ के विरुद्ध आवाज उठाते हैं वह आज नहीं तो कल मिटकर रहती हैं। अँग्रेजों के फौलादी चंगुल में जकड़ी हुई भारत की स्वाधीनता को मुक्त कराने के लिए, गुलामी के बंधन तोड़ने के लिए जब प्रबुद्ध लोगों ने आवाज उठाई तो क्या वह आवाज व्यर्थ चली गई। देर लगी, कष्ट आये पर वह मोर्चा सफल ही हुआ। समाजगत अनैतिकता, अविवेक, अंधविश्वास और असभ्यता इसलिए जीवित हैं कि उनका विरोध करने के लिए वैसी जोरदार आवाजें नहीं उठतीं जैसी राजनैतिक गुलामी के विरुद्ध उठी थीं। यदि उसी स्तर का प्रतिरोध उत्पन्न किया जा सके तो हमारी सामाजिक गंदगी निश्चय ही दूर हो सकती है, सभ्य समाज के सभ्य नागरिक कहलाने का गौरव हम निश्चय ही प्राप्त कर सकते हैं।

हम अपनी सामाजिक कुरीतियों पर ध्यान दें तो लगता है कि लोहे की गरम सलाखों से बनी हुई जंजीरों की तरह वे हमें जकड़े हुए हैं और हर घड़ी हमारी नस-नस को जलाती रहती हैं। घर में तीन-चार कन्याएँ जन्म ले लें तो माता-पिता की नींद हराम हो जाती है। वे जैसे-जैसे बढ़ने लगती हैं, वैसे ही वैसे अभिभावकों का खून सूखता चला जाता है। विवाह ! आह विवाह ! ! कन्या का विवाह उनके माता-पिता के यहाँ डकैती, लूट, बर्बादी होने के समान है। आजकल साधारण नागरिकों की आमदनी इतनी ही मुश्किल से हो पाती है कि वे अपना पेट पाल सकें। जितना धन दहेज के लिए चाहिए उतना जमा करना तभी संभव है जब या तो कोई आदमी अपना पेट काटे, नंगा रहे, दवा-दारू के बिना भाग्य भरोसे बीमारी से निपटे, बच्चों को शिक्षा न दे या फिर कहीं से बेईमानी करके लावे।

यह तो एक कुरीति की चर्चा हुई। ऐसी अगणित कुरीतियाँ हमें घेरे हुए हैं। स्वास्थ्य सुधार के लिए, शिक्षा के लिए, मनोरंजन के लिए, दूसरों की भलाई के लिए, आत्म-कल्याण के लिए हम कुछ कर नहीं पाते। आधी से अधिक कमाई उन व्यर्थ की बातों में बर्बाद हो जाती है जिनका प्रयोजन नहीं, कोई लाभ नहीं, कोई परिणाम नहीं। धर्म के नाम पर हमारे मनों में उच्चकोटि की भावनाएँ उठती हैं, दान देने की जो श्रद्धा उत्पन्न होती है उसका लाभ, ज्ञान और धर्म बढ़ाने वाले, पीड़ित और पतितों को राहत देने वाले कार्यों की वृद्धि के रूप में विकसित होना चाहिए था, पर होता इससे सर्वथा विपरीत है। काल्पनिक भय दिखाकर संडे-मुसंडे लाल-पीले कपड़े पहनकर लोगों को ठगते रहते हैं। भोले लोग समझते हैं धर्म हो गया, पुण्य कमा लिया, पर वास्तविकता ऐसी कहाँ होती है। मृत्युभोज, पशुबलि, बाल-विवाह, नीच-ऊँच, सयाने-दिवाने, भूत-पलीत, कन्या विक्रय, स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गंदे गीत, होली में कीचड़ उछालना, दिवाली पर जुआ खेलना आदि अगणित ऐसी कुरीतियाँ हमारे समाज में प्रचलित हैं, जिनके कारण अनेक रोगों से ग्रसित रोगी की तरह हम सामाजिक दृष्टि से दिन-दिन दुर्बल होते चले जा रहे हैं।

ऊपर धार्मिक मान्यताओं के आधार पर प्रचलित कुरीतियों की कुछ चर्चा की गई है। राष्ट्रीय दृष्टि से स्वार्थपरता, व्यक्तिवाद, असहयोग, संकीर्णता हमारा एक प्रमुख दोष है। सारी दुनिया परस्पर सहयोग के आधार पर आगे बढ़ रही है मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह परस्पर सहयोग के आधार पर ही बढ़ा और समुन्नत हुआ है। जहाँ प्रेम, ममता, एकता, आत्मीयता, सहयोग और उदारता है, वहीं स्वर्ग हुआ। समाजवाद और साम्यवाद की मान्यता यही है कि व्यक्ति को अपने लिए नहीं समाज के लिए जीवित रहना चाहिए। सामूहिक सुख-शांति बढ़ाने के लिए अपनी समृद्धि और सुविधा का त्याग करना चाहिए। धर्म और अध्यात्म की शिक्षा भी यही है कि व्यक्ति अपने लिए धन, वैभव जमा न करके अपनी प्रतिभा, बुद्धि, क्षमता और संपदा को जीवन-निर्वाह की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए ही उपयोग करे और शेष जो कुछ बचता हो सबको सामूहिक उत्थान में लगा दे। जिस समाज में ऐसे परमार्थी लोग होंगे वही फलेगा, फूलेगा और वही सुखी रहेगा। जहाँ स्वार्थपरता, आपाधापी, जमाखोरी की प्रवृत्ति पनप रही होगी वहाँ अनैतिकता के सभी कुकर्म बढ़ेंगे और फैलेंगे। सामान्य नागरिकों के स्तर से अत्यधिक ऊँचे स्तर का सुखोपभोग करने की प्रवृत्ति जहाँ भी पनपेगी वहीं शोषण, अन्याय, दुराचार, द्वेष, संघर्ष, ईर्ष्या आदि बुराइयाँ विकसित होंगी।

विवेक, न्याय, अनुशासन, संयम, ईमानदारी, समाजनिष्ठा, सद्व्यवहार, आत्मगौरव जैसे सद्गुणों का नाम ही सभ्यता है। इसी को संस्कृति कहते हैं। भारतीय संस्कृति तो निश्चित रूप से यही है, इसी के आधार पर हम प्राचीनकाल में महान थे। हमें व्यक्ति और समाज में उन्हीं गुणों का आविर्भाव एवं विकास करना होगा। पोशाक, वेश-भूषा, शिक्षा, धन, पद आदि की दृष्टि से हम भले ही अपने को सभ्य मानते रहें पर यह तो विडंबना मात्र है। सच्ची सभ्यता मानवीय गुणों के सामूहिक विस्तार पर ही निर्भर रहती है और उसी के आधार पर कोई समाज या राष्ट्र फलता-फूलता है और तभी उससे संबंधित नागरिकों का सच्चा हित साधन होता है।

सामाजिक कुरीतियों और सामूहिक दुष्प्रवृत्तियों का कायम रहना सज्जनों के लिए भी विपत्ति का कारण ही रहेगा। व्यक्ति कितनी ही उन्नति कर ले, पतित वातावरण में वह उन्नति भी बालू की भीति की तरह अस्थिर रहेगी। इसलिए हमें जितनी व्यक्तिगत उन्नति की चिंता है, उतनी ही सामाजिक उन्नति का भी ध्यान रखना होगा और उसके लिए हर संभव प्रयत्न करना होगा। इस दिशा में की गई उपेक्षा हमारे अपने लिए ही घातक होगी। अपने समाज के सुधार पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना अपना स्वास्थ्य एवं उपार्जन की समस्याओं का सुलझाना। समाजगत पापों से हम निर्दोष होते हुए भी पापी बनते हैं। भूकंप, दुर्भिक्ष, युद्ध, महामारी आदि के रूप में ईश्वर भी हमें सामूहिक दंड दिया करता है और सचेत करता है कि हम अपने को ही नहीं सारे समाज को भी सुधारें। स्वयं ही सभ्य न बनें, सारे समाज को भी सभ्य बनावें, राष्ट्र समर्थ और सशक्त तभी बनेगा।

समाज को सुधारा और उभारा जाय

निर्माण का मोर्चा एकाकी ही नहीं चलता रह सकता, उसके साथ सुधार का प्रकरण भी जुड़ा रहना चाहिए। खेत में खाद, पानी भी लगता है और उसकी निराई, गुड़ाई, रखवाली भी होती है। इस काट-छाँट के बिना न कोई खेत पनप सकता है न उद्यान। समाज में सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन हेतु ज्ञान, कर्म, भक्ति की शिक्षा देना, कथा-प्रवचन करना भी आवश्यक है पर है एकपक्षीय एकांगी ही। रसोईघर की तरह शौचालय, स्नानघर, कूड़ेदान और नाली को साफ-सुथरी रखना चाहिए, अन्यथा वहाँ उत्पन्न हुई सड़न, जो श्रेष्ठ है उसे भी बिगाड़ने, बरबाद करने में कोई कमी शेष न रहने देगी।

पुराने मकान जहाँ-तहाँ से जीर्ण होकर टूटते-फूटते रहते हैं। उनकी हाथोंहाथ मरम्मत करा देने से इसी घर से मुद्दतों काम लिया जा सकता है किन्तु यदि बिगड़ने की उपेक्षा बरती जाय तो जिस प्रकार एक खड़ा हुआ अवयव दूसरे समीपवर्ती अंगों को भी काटने योग्य बना देता है पीछे बड़ी परेशानी का कारण बनता है, उसी तरह समाज का सारा ढाँचा गड़बड़ा जाएगा। इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा है कि सुधार के लिए आवश्यक साधनों-उपकरणों को सदा तैयार रखा जाय।

द्रोणाचार्य हाथ में शास्त्र और कंधे पर शस्त्र रख कर चलते थे। गुरु गोविन्दसिंह ने एक हाथ में माला और दूसरे में भाला रखने की नीति अपनाई थी, सज्जनों को प्यार एवं विवेक से भी समझाया जा सकता है। किन्तु पशु प्रवृत्ति के लिए प्रताड़ना ही एकमात्र शिक्षा विधि है। हिंसक पशुओं को धमकाये बिना न आत्मरक्षा का साधन सधता है और न उन्हें सर्कस में कोई कौतूहल दिखा सकने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। जिस प्रकार समाज को अध्यापकों, साहित्यकारों, शिल्पियों की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार पुलिस और सेना को भी सशक्त बनाना पड़ता है। कचहरी, जेल का प्रबंध इसीलिए किया जाता है कि उद्दंडता पर नियंत्रण किया जा सके, अन्यथा वे विरोध न होने की दशा में दूने-चौगुने उत्साह से कुचक्र रचते एवं अनाचार फैलाते हैं। खेत का पानी मेड़ बाँध कर रोका न जाय तो वह पौधे सींचने की अपेक्षा जमीन को काटकर खाई-खड्ड बना देगा।

अपना देश, धर्म और समाज विश्व के प्राचीनतम निर्धारणों में से है। इसलिए स्वाभाविक ही है कि उसमें विकृतियों का अनुपात बढ़े और वह पूर्वजों की गरिमा पर कलंक कालिमा लगाने में निरत रहे और विनाश के विष बीज बोये। यही कारण है कि सदा-सदा से सुधारक वर्ग की आवश्यकता अनुभव की जाती रही है। उसे सेना या पुलिस की उपमा दी जाती है। यदि वह सतर्क न रहे तो किसी की सम्पदा एवं इज्जत सुरक्षित न रहे। सुधारक रूपी सफाई कर्मचारी अपनी झाड़ू-टोकरी को निरन्तर गतिशील न रखें तो समाज रूपी नगर में हैजा जैसी महामारी फैलने में देर न लगे।

धर्मोपदेशकों, संत, सदाचारी, परमार्थी पुण्यात्माओं की भक्ति भावना को जितना महत्त्व और सम्मान दिया जाता है उससे किसी भी प्रकार सुधारकों की गरिमा कम नहीं है। वे अगर अपना काम मुस्तैदी से न करें तो फिर समझना चाहिए कि वही स्थिति फिर आ पहुँचेगी जिसमें राम ने ऋषि आरण्यकों में अस्थि समूहों के पर्वत खड़े देखे थे और तपसी वेषधारी भगवान ने भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की थी "निशिचर हीन करहुँ महि"। समाज सुधारकों को इसी वर्ग के रघुवंशी, तेजस्वी, क्षत्री कहा जा सकता है जो अपनी जान हथेली पर रखकर अनीति से टकराते और उसे उखाड़ फेंकने के उपरान्त दम लेते हैं।

भारत दो हजार वर्ष तक इसलिए पराधीन नहीं रहा कि यहाँ योद्धाओं या शास्त्रों की कमी थी। बात यह हुई कि समाज को कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं, अन्धविश्वासों ने जराजीर्ण कर दिया था और वह आक्रान्ताओं के छोटे-मोटे आघात भी न सह सका।

सामाजिक कुरीतियों में कितनी तो ऐसी हैं, जिनकी भयंकरता किसी प्राणघातक महामारी से कम नहीं आँकी जा सकती। बाल-विवाह, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, स्त्रियों को पालतू पशुओं की श्रेणी में रखा जाना वह अनर्थ है जिसके कारण आधी जनसंख्या की स्थिति अपंग, असहाय जैसी हो जाती है और अविकसित नारियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी अधिक अयोग्य सन्तानें जनती जाती हैं। यह पतन का एक क्रमबद्ध सिलसिला है जिसे हर कीमत पर रोका जाना चाहिए। दहेज, खर्चीली शादियाँ, वर विक्रय, कन्या विक्रय, वधू विवाह, वेश्यावृत्ति इन्हीं कुरीतियों का प्रतिफल है। मध्यकाल में तो विधवाओं के भरण-पोषण के दायित्व से बचने के लिए परिवार वाले उन्हें सती हो जाने के लिए उकसाते थे और नशा पिलाकर अर्द्धमूर्च्छित स्थिति में पति की चिता पर धकेल देते थे। यह अनाचार राजाराम मोहनराय ने अपनी भावज की लोमहर्षक मृत्यु के रूप में देखा था। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस नारी वध को वे किसी भी कीमत पर रुकवा कर रहेंगे। इसके लिए उनने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साहित्य लिखा, आन्दोलन चलाया और सरकारी सहायता लेकर कानून बनवाया। सती प्रथा विरोध और विधवा विवाह की मान्यता उन्हीं के भागीरथ प्रयत्नों से संभव हो सकी।

मात्र अनीति रोकना ही काफी नहीं, उसका उत्तरार्द्ध सत्प्रवृत्तियों की स्थापना से बनता है। महर्षि कर्वे ने नारी शिक्षा के लिए ऐसा कारगर प्रयत्न किया कि न केवल महाराष्ट्र में वरन् समूचे देश में उसकी हवा फैली। जयपुर वनस्थली में हीरालाल शास्त्री ने बालिका विद्यालय की शानदार स्थापना की जो अब विश्वविद्यालय स्तर तक जा पहुँचा है। अलीगढ़, सासनी की एकाकी महिला लक्ष्मी देवी ने जंगल में वीरान पड़ी भूमि को समतल बनाकर कन्या गुरुकुल बनाया। गाँवों से कन्याओं को लाने पहुँचाने, पढ़ाने तक का आद्योपान्त कार्य उन्होंने किया और कन्या शिक्षा की लहर एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँची। प्रयत्नकर्ताओं का ही प्रभाव है कि जो कार्य कभी निरन्तर असंभव प्रतीत होते थे वह सरल और संभव ही नहीं व्यापक भी हो गये। आज की बढ़ती नारी शिक्षा हेतु श्रेय इन्हीं शुभारंभ करने वाले नर-रत्नों को दिया जा सकता है।

दूसरी भयावह कुरीति है जाति-पाँति के आधार पर ऊँच-नीच की मान्यता। यह सवर्ण और असवर्णों में अपने अपने ढंग से सर्वत्र फैली हुई है। परिणाम यह हुआ है कि एक समाज हजारों टुकड़ों में बँटकर रह गया। जाति-पाँति के साथ सम्प्रदायवाद और भाषावाद का जहर भी घुलकर त्रिदोष जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी।

इस अराजकता जैसी अव्यवस्था से लोहा लेने के लिए कितने ही सुधारक कटिबद्ध होकर आगे आये और उन्होंने कुप्रचलनों के दुष्परिणाम सर्वसाधारण को समझाते हुये उससे विरत करने तक घनघोर प्रयत्न किया और वह प्रयत्न इतना सफल रहा कि उस कृत्य में अनेक भावनाशील जुट गये। स्वामी दयानंद का नाम इस संदर्भ में बढ़-चढ़कर लिया जा सकता है। महात्मा गाँधी का हरिजन सेवक संघ, ठक्कर बापा जैसे समर्थ समर्पितों की टोली साथ लेकर उस प्रयास में निरत ही रहा। इसके पूर्व कबीर, रैदास, तिरुवल्लुवर जैसे संत इस सुधार के लिए मजबूत पृष्ठभूमि बनाते रहे। सिख धर्म, बौद्ध धर्म, आर्य समाज आदि ने भी इस संदर्भ में बढ़-चढ़कर काम किया। अब संविधान और शासन में भी इस प्रकार के भेदभाव को दण्डनीय अपराध ठहरा दिया है, तो भी प्रगति वैसी नहीं हुई जैसी कि होनी चाहिए थी। कानून तो दहेज और रिश्वतखोरी, व्यभिचार आदि के विरुद्ध भी बना हुआ है पर मूढ़मति और धूर्तराज उस शिकंजे से अपने आपको किसी प्रकार बचा ही लेते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि प्रज्ञा अभियान इन कमियों की पूर्ति करने के लिए अपने को पूर्णाहुति की तरह समर्पित करें और किसी भी परिवार में जाति भेद स्त्री उत्पीड़न की कहीं कोई भी घटना घटित न होने पाये। परिवार, व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी है, भावी पीढ़ियों और वर्तमान जन समुदाय में से नररत्न निकालने की खदान भी। इसलिए परिवार निर्माण में जहाँ श्रमशीलता, मितव्ययता, शिष्टता, सहकारिता, उदारता जैसे सद्गुणों का समावेश आवश्यक है, उतना ही यह भी अभीष्ट है कि नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र की किसी भी दुष्प्रवृत्ति को प्रश्रय न मिले। समाज सुधार के लिए मार्टिन लूथर ने जिस प्रकार काम किया था और पोप के पंडावाद के शोषण को उखाड़ फेंका था। उसी प्रकार की विचार क्रान्ति-धर्मक्रान्ति अपने देश में भी होनी चाहिए। मात्र वंश और वेश के कारण किसी को सम्मान मिले और देवताओं का एजेण्ट बनकर कोई जनसाधारण को भ्रम-जंजाल में न फँसायें। निषिद्ध व्यापारों में एक भिक्षा व्यवसाय की कड़ी भी जुड़नी चाहिए। लोकसेवी ब्राह्मण कहलाते हैं। उन्हें निर्वाह प्राप्त करने का अधिकार है। इसी प्रकार जो अपंग, असमर्थ या विपत्तिग्रस्त हैं, उन्हें भी स्वावलम्बी न होने तक सहायता ग्रहण करते रहने का अधिकार है, पर जो ऋद्धि-सिद्धि, स्वर्ग-मुक्ति कमाने की स्वार्थ साधना में निरत होते हुए भी भगवान की दुहाई देकर अपनी श्रमशीलता से बचते हैं, मुफ्त का सम्मान और धन लूटते हैं, उन्हें रास्ते पर लाया जाना चाहिए और बताना चाहिए कि देश के ७ लाख गाँवों के लिए ६० लाख संत-महात्मा यदि लोकसेवी के रूप में उभरें तो नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक स्थिति में उत्साहजनक परिवर्तन कर सकते हैं।

समाज को ऊँचा उठाने के लिए शिक्षा क्रान्ति आवश्यक है। निरक्षरों को साक्षर बनाया जाय, वयस्क नर-नारियों के लिए प्रौढ़ पाठशाला चलायी जायें। स्कूली बच्चों को अवकाश के समय में बाल संस्कारशाला में सम्मिलित किया जाय ताकि जो कमी स्कूली पढ़ाई में रह जाती है, उसकी पूर्ति हर गाँव, हर मुहल्ले में स्थापित संस्कारशालाओं में पूरी की जा सके। ७८ करोड़ की आबादी में ७० प्रतिशत अशिक्षित भरे पड़े हैं। इन सबको शिक्षा और संस्कार प्रदान करने के लिए हर सुशिक्षित से शिक्षा-ऋण वसूल करने का अभियान चलाया जाय। यदि लोग अध्यापन के लिए निःशुल्क सेवाएँ देने लगेंगे और प्रतिभाशाली लोग जनसम्पर्क बनाकर अशिक्षितों को पढ़ाने के लिए तैयार कर सकेंगे, तो जनआन्दोलन के रूप में शिक्षा समस्या का समाधान हो सकेगा।

शेखावाटी के स्वामी केशवानन्द ने यही किया था। उन्होंने घर-घर में अनाज के मुट्ठी फण्ड रखवाये थे और उसी संग्रहीत अन्न के सहारे हर गाँव में पाठशाला स्थापित करायी थी। वह सिलसिला उनके जीवन भर चलता ही रहा। इसी आधार पर अनेक हाईस्कूल, कॉलेज खुले और सफलतापूर्वक चले। राठा-हमीरपुर में भी स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अकेले ही अपने उस पिछड़े देहात में एक कॉलेज खड़ा किया। हम सभी को इस सामयिक शिक्षा चुनौती को स्वीकार करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मविस्मृति की यह स्थिति कब तक रहेगी ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व हमें अपने भविष्य को बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। हमारी गतिविधियों, क्रियाकलापों और प्रयासों पर ऐसी शक्तियों का प्रभुत्व था जो केवल अपने लाभ के लिए ही हमारा उपयोग जानती थीं। छलछद्म से ही अथवा कूटनीति और शस्त्रबल से विदेशी सरकार भारतीय जनता को उन्हीं क्षेत्रों में काम करने की छूट देती थी, जिससे उसके व्यापारिक हित सधते थे। इस विवशता के कारण चारों और दीनता और दरिद्रता का साम्राज्य फैला हुआ था। न हम अपना हित-अनहित सोच सकते थे और सोचते भी तो उस सम्बन्ध में कुछ करने से मजबूर थे। राष्ट्र के आर्थिक पहलू से लेकर सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक सभी पहलुओं पर पराधीनता की विवशता छायी हुई थी।

दासता का यह अभिशाप सभी क्षेत्रों में पिछड़ेपन के रूप में फलित हुआ। यद्यपि अँग्रेजी सभ्यता के संसर्ग से भारतीय समाज ने कई लाभ भी अर्जित किये। उदाहरण के लिए आधुनिक विज्ञान का प्रवेश, अँग्रेजी सभ्यता के साथ ही हुआ। मुगल काल तक हमारे देश में इस बात की कोई जानकारी ही नहीं पहुँच सकी थी कि पश्चिम में विज्ञान ने मनुष्य को क्या वरदान बाँट दिये हैं। उन वरदानों को, किंवा विज्ञान की शक्ति को साथ लेकर ही अंग्रेजों ने इस देश में पाँव रखा और मेहमान बनकर आने वाले घर के मालिक बन बैठें, वाली उक्ति चरितार्थ हुई।

विज्ञान की शक्ति ने अतिथि-व्यापारियों को यहाँ का शासक बना दिया—यह दुर्भाग्य घटित हुआ। कहा जाता है कि दुर्भाग्यजनित परिस्थितियाँ अपने दुष्परिणामों के साथ कुछ न कुछ वरदान भी दे जाती हैं। इन वरदानों को अधिक सरल भाषा में सीख-समझ भी कहा जा सकता है। यह सत्य भारतीय समाज के साथ भी घटित हुआ और पराधीनता के साथ अँग्रेजी सभ्यता के ससंर्ग से एक नये दृष्टिकोण का उदय भी हुआ। विज्ञान की शक्ति से लाभ उठाने की प्रेरणा भी उत्पन्न हुई। रूढ़िवादिता के प्रति विद्रोह को भावना जन्मी और शिक्षा के महत्त्व को साधारण स्तर पर समझा जाने लगा। भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व के समाज का यदि अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि तत्कालीन समाज दो भिन्न छोरों पर आसीन था। शासक और शासित, प्रभुता सम्पन्न और निम्न श्रेणी के वर्ग विभाजन की रेखा खाई बनकर इस प्रकार खींची हुई थी कि एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध ही नहीं जुड़ पाता था, न कभी इन दोनों वर्गों में कोई सम्वाद या सम्पर्क स्थापित हो पाता था।

यों उच्च और निम्न वर्ग सभी काल में सभी समाजों में होते हैं परन्तु एक-दूसरे से इतने पृथक् नहीं रहते जितने कि मध्यकाल में अपने देश में रहे। विदेशी शासकों ने किसी न किसी रूप में एक-दूसरे से सम्बन्ध सूत्र जोड़े ही। भले ही वे सम्बन्ध स्वामी-सेवक, जमींदार-खेतिहर, अफसर-नौकर के रूप में स्थापित हुए हों। इससे पूर्व भारत में परलोक को ही सब कुछ समझा जाता था और उसी की चिन्ता करते हुए इस लोक को सदा महत्त्वहीन माना जाता था। अँग्रेजों के ऐश्वर्य, उनके ठाट-बाट और उनकी उपलब्धियों को देखकर लोगों को दीनता के साथ ही सही, यह अनुभव तो हुआ कि इस लोक का जीवन भी कुछ अर्थ रखता है और उसे महत्त्व दिया जाना चाहिए। निस्संदेह उस समय ऐहिक जीवन को अर्थपूर्ण बनाने की सामर्थ्य आदमी में नहीं थी, परन्तु उसका अनुभव तो होने लगा ही।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण जाग्रत होने के साथ ही विज्ञान की शक्ति का परिचय भी हमें मिला। बैलगाड़ी से आगे बस मोटर, विमान की कल्पना उससे पूर्व के भारतीय मस्तिष्क में सम्भवतः नहीं थी। अँग्रेजी सभ्यता के संसर्ग ने न केवल उस कल्पना को जन्म दिया वरन् उससे साक्षात् भी कराया। यह बात और है कि इस तरह की व्यवस्था अपने हितों को ध्यान में रखकर ही की गयी होगी, इन सब लाभों से बड़ा लाभ सोचने-विचारने के ढंग में परिवर्तन आने के रूप में हुआ। तब तक 'बाबा वाक्य प्रमाणम्' की ही परम्परा थी और परम्परा सो परम्परा। उसमें उचित-अनुचित का विवेक लाभ-हानि देखने की क्या आवश्यकता ? इसी प्रवृत्ति का सर्वव्यापी अनुकरण किया जा रहा था। परम्पराओं के प्रति अन्धभक्ति आज भी मिटी नहीं है, परन्तु उनके सम्बन्ध में औचित्य की दृष्टि से पुनः विचार करने की आवश्यकता सभी विचारशील व्यक्ति अनुभव करते हैं। उन दिनों तो विचारशील वर्ग-समाज का बौद्धिक नेतृत्व करने वाला ब्राह्मण भी परम्पराओं को अकाट्य प्रमाण मानकर चलने का आदी था।

परम्पराओं के प्रति वस्तु-परक, व्यावहारिक और औचित्य की दृष्टि से सोचने की प्रवृत्ति ब्रिटिश काल में ही जन्मी। राजा राममोहन राय का ब्रह्मसमाज, केशव चन्द्र सेन का प्रार्थना समाज, एनीबेसेण्ट की थियोसॉफी और स्वामी दयानन्द का आर्य समाज जैसे सुधारवादी आन्दोलन ब्रिटिश काल में ही उद्भूत हुए। इन सुधार आन्दोलन में कहीं न कहीं अँग्रेजी सभ्यता का प्रभाव जरूर रहा था।

जनसाधारण के लिए शिक्षा की सुलभ व्यवस्था भी उन्हीं दिनों विकसित हुई। प्राचीनकाल में गुरुकुल और आश्रमों के रूप में जीवन निर्माणकारी शिक्षा सर्वसुलभ रही थी। परन्तु मध्यकाल में वह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी और केवल उन्हीं परिवारों के लिए शिक्षा सुलभ रह सकी जो घर पर अपने बच्चों के लिए पढ़ने की व्यवस्था कर सकते थे। अध्यापकों को वृत्ति देकर अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए नियुक्त कर सकते थे अथवा वे ही बच्चे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पढ़ पाते थे जिनके अभिवावक स्वयं शिक्षित होने के साथ-साथ अपनी सन्तान के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता अनुभव कर सकते थे। अँग्रेजी शिक्षा चाहे जितनी दोषपूर्ण रही हो पर उससे पूर्वापेक्षा अधिक आसानी से लोग अपने बच्चों को पढ़ने, लिखने की सुविधा प्राप्त करने लगे। यद्यपि सर्वसाधारण में शिक्षा के प्रति रुचि जाग्रत नहीं हुई फिर भी जिनमें रुचि थी और समर्थ साधनों के अभाव में जो अपनी आकांक्षा पूरी नहीं कर पा रहे थे उसके लिए वह अवरोध हटा।

इस दृष्टि से ब्रिटिश काल में शैक्षणिक प्रगति भी हुई। उसे नाममात्र के लिए ही उपयोगी और लाभदायक समझा जाय पर उसे उपलब्धि के तौर पर एकदम नकारा नहीं जा सकता। इस विवेचन का उद्देश्य यह नहीं है कि दासता का वह युग अच्छा था अथवा उसमें सचमुच कोई प्रगति हुई। इन स्थितियों के निर्माण में विदेशी शासन ने जहाँ-कहीं भी थोड़ा बहुत सहयोग किया उसका उद्देश्य अपना स्वार्थ साधना ही रहा था लेकिन जैसा कि कहा जा चुका है दैन्य और दुर्भाग्य अपने घातक प्रहारों के साथ कहीं न कहीं ऐसे चिन्ह जरूर छोड़ जाते हैं, जिन्हें शुभ कहा जा सके। यद्यपि उनके लिए महँगी कीमत चुकानी पड़ती है और विदेशी दासता के रूप में तो हमें अपनी आत्मा बेचनी पड़ी। इसलिए उपरोक्त उपलब्धियों और परिवर्तनों को सुखद वरदान किसी भी तरह नहीं कहा जा सकता।

जो भी हो, देश के विचारशील वर्ग में यह जाग्रति आयी कि गुलामी की जिन्दगी से आजादी की मौत अच्छी है। राष्ट्र में यह बोध उत्पन्न हुआ कि स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और यह संकल्प जगा कि हम उसे लेकर रहेंगे। इस बोध ने राष्ट्र की आहत आत्मा, सोये हुए स्वाभिमान को जगाया और सारा देश संगठित होकर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने लगा। पचास वर्ष से ऊपर के कई व्यक्तियों को हम आज भी कहते हुए सुनते हैं कि इस जमाने से तो अँग्रेजों का राज अच्छा था। अतीत की यादों में पलायन कर जाने की इस प्रवृत्ति का कारण आज की महँगाई और उस जमाने के सस्ते मूल्य हों अथवा आज की ढीली-पोली व्यवस्था के स्थान पर तब की सख्त और कठोर व्यवस्था हो, वही व्यक्ति भी आज के समय में अतीत को सुनहरा बताते और उसके गीत गाते हैं। उन दिनों स्वतन्त्रता के संकल्प को देश अपनी श्वाँस-श्वाँस में भर रहा था और इन आदर्शों को अपना जीवन सूत्र बनाये हुए था कि गुलामी की जिन्दगी से आजादी की मौत वेहतर है। कहने का अर्थ यह है कि सारा राष्ट्र एक स्वाभिमान से भर उठा, जन-जन में स्वतन्त्रता के लिए बढ़-चढ़कर उत्सर्ग करने की होड़ जाग उठी।

देश स्वतन्त्र हुआ, शासन सत्ता विदेशी हाथों से निकलकर अपने हाथों में आयी। यह राजनैतिक स्वतन्त्रता थी, राजनैतिक दृष्टि से आज भी हम स्वतन्त्र हैं। पर राजनीति के सिंहासन पर बैठकर विदेशी हाथों ने हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को जिस प्रकार निचोड़ा उसे धो, पोंछकर अपना रंग भरने की चेष्टा की और उस कुचेष्टा में जितनी सफलता प्राप्त की उससे हम अभी तक कहाँ मुक्त हो पाये हैं अर्थात् उन दिनों अँग्रेजी दासता राजनीति से नीचे और गहरी उतरती हुई जिस प्रकार सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानसिक स्तर तक बैठती चली गयी, उसका कुप्रभाव अभी ज्यों का त्यों छाया हुआ है।

सभ्यता, संस्कृति और भाषा किसी भी देश के राष्ट्रीय स्वाभिमान को जीवित रखने वाले जीवन तत्त्व हैं। अंग्रेजी शासन का यदि कोई सबसे बड़ा दुष्प्रभाव पड़ा है तो वह यह कि हम इस जीवन तत्त्वों के मूल्य और महत्त्व को हीन करते गये, इस स्थिति तक हमारा पतन हुआ कि हमने अपना मनोबल तक गिरा लिया। यह सब यदि अँग्रेजी शासन काल में हुआ होता तो भी यह सोच कर संतोष किया जा सकता था कि मजबूरी है क्या किया जाय ? शोचनीय तो यह है कि आज जबकि अपने निर्माण का अधिकार हमें स्वयं ही मिला हुआ है, तब भी हम स्वयं को हीन समझते हुए पश्चिमी सभ्यता के साँचे में ढलने के लिए अपने हाथ-पैर कटाने को तैयार बैठे हुए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि काट रहे हैं।

हमारे सामाजिक जीवन में चतुर्दिक छाया हुआ अँग्रेजी सभ्यता का प्रभाव इस बात का प्रतीक है कि हम अपने ही प्रति कितने अविश्वास से भर गये हैं ? प्रत्येक संस्कृति की अपनी मौलिक विशेषतायें होती हैं, भारतीय संस्कृति की मौलिक विशेषता है अपनत्व का विस्तार, परमार्थ भावना का विकास। इसी प्रकार जीवन को धर्म और अध्यात्म प्रधान बनाने का दृष्टिकोण। यदि इन विशेषताओं को तथाकथित सभ्य लोगों में खोजने के लिए निकला जाय तो शायद ही कहीं इनके दर्शन हों। सभ्य और सुसंस्कृत की परिभाषा ही बदल कर यह हो गयी है कि जो व्यक्ति जितना अधिक आत्मकेन्द्रित हो वह उतना अधिक सुसंस्कृत अर्थात् 'मैच्योर' है। अपने पड़ौसी तक को न जानना, अथवा परिचित व्यक्ति को जान-बूझकर अपरिचत की दृष्टि से देखना उच्च स्तर की सोसायटी का प्रमाण है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'आत्मवत सर्वभूतेषु' के जीवनादर्श को प्रतिपादित करने वाली भारतीय संस्कृति इतनी संकीर्ण अथवा स्वकेन्द्रित होने के लिए तो प्रेरित नहीं कर सकती।

इन उच्चादर्शों को समग्र रूप से जीवन में उतार पाना सहज संभव नहीं है यह माना जा सकता है परन्तु जीवन की दिशा एकदम उससे विपरीत तो नहीं जानी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन मूल्यों को ग्रहण करने वाले व्यक्ति में इतनी अनुदारता और स्वार्थपरता भी नहीं होनी चाहिए कि पत्नी की बीमारी को स्वयं के लिए शांति भंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का कारण समझे और उसे चुपचाप पड़ी रहने के लिए कहने लगे। यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है, अन्यथा यहाँ तक सुना गया है कि पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर उच्च वर्ग के कई व्यक्ति विवाहित जीवन और यौन आदर्शों को भी उसी तुला पर तौलने लगे हैं, जिस पर कि पश्चिमी लोग। कहाँ तो विवाह को जन्म-जन्मातरों का बंधन, पवित्र साहचर्य मानने वाला भारतीय आदर्श और कहाँ माता-पुत्र के स्नेह वात्सल्य में भी वासना की सड़ांध सूँघने के लिए प्रयत्नशील पश्चिमी जीवन मूल्य।

अपने स्वरूप और गौरव-गरिमा के विसमरण तथा पश्चिमी सभ्यता के आकर्षण में उत्पन्न हुई चौंधियाहट पराधीनता से भी बुरी स्थिति है। किसी विचारक ने कहा है कि—'परिस्थितिजन्य दासता से वैचारिक गुलामी कई गुना भयंकर है क्योंकि इस स्थिति में हम दास होते हैं फिर भी स्वयं को दास अनुभव नहीं करते वरन् उसी में अपना गौरव समझने लगते हैं।

मुट्ठी भर लोग बाहुबल और संख्या बल में भी अधिक हिन्दुओं को रौंदते रहें और यहाँ तक कि उन पर अपनी प्रभुता भी जमा ली। फिर भी हिन्दू धर्म चौके-चूल्हे तक और ऊँच-नीच तक ही समझा जाता रहा। जिस धर्म दर्शन ने 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का सन्देश दिया उसकी कौन-सी शिक्षा का यह अर्थ लगाया जाय कि वंश और व्यवसाय विशेष के कारण कोई व्यक्ति इतना ऊँचा है कि दूसरा व्यक्ति उसकी छाया पर भी पाँव नहीं रख सकता और कोई व्यक्ति इतना नीचा है कि उसका मुँह देखना भी पाप हो गया। जिस किसी भी अंन्धयुग में यह मान्यता प्रतिष्ठित की गयी उस युग ने हिन्दू समाज को एक अभिशाप दे दिया जिससे वह आज तक भी अभिशाप है।

उस अंभिशाप के दुष्परिणाम तत्काल ही सामने आने लगे पराजय के रूप में, विघटन, दुर्बलता और प्रतिगामिता के रूप में। सच है कि विवशता के कारण स्वीकार की गयी पराधीनता से स्वेच्छा या स्वीकार किया गया बंधन अधिक घातक होता है क्योंकि स्वेच्छया स्वीकार के साथ ही आत्मसमर्पण भी हो जाता है। इन दिनों हमारे जीवन मूल्यों में जो पतन होते दिखाई दे रहे हैं, उसका कारण ही है कि हमने अँग्रेजी सभ्यता से प्रभावित, सम्मोहित होकर वाह्य सुखों को ही सर्वोपरि उपलब्धि मान लिया है। इधर एक और विडम्बना देखी जा रही है पश्चिमी देशों के लोग वाह्य सुखों से ऊबकर आन्तरिक सुख—आत्मिक संतोष की प्राप्ति के लिए भारत की ओर निहार रहे हैं तथा वहाँ से मार्गदर्शन मिलने की अपेक्षा कर रहे हैं। वहीं हम उनके द्वारा फेंके गये जीवन मूल्य, उत्सर्जित कर दिये गये आदर्शों को छाती से चिपटाने में ज्ञान समझने लगे हैं। इन विषम परस्थितियों में आवश्यकता इस बात की है कि हम आत्म-विस्मृति की मूर्छा से जगें तथा सही मार्ग अपनायें।

अवांछनीयता की जड़ कैसे कटे?

विकासवादी डार्विन के अनुसार मनुष्य क्षुद्र योनियों में होते हुए बन्दर से मनुष्य बना है। धार्मिक मान्यताओं के हिसाब से वह चौरासी लाख निम्नस्तरीय योनियों में भ्रमण करते हुए मानवी काया के चरम शिखर तक पहुँचा है। जन्म मिल जाने पर भी पूर्व संचित कुसंस्कारों से पूरी तरह छुटकारा नहीं मिलता, पशु-प्रवृत्तियों के बीजांकुर जड़ जमाये बैठे रहते हैं और अनुकूल अवसर मिलते ही उनकी पूर्व परम्परा उभर पड़ती है। यदि सुधार अनुशासन, प्रशिक्षण का विशिष्ट प्रयत्न न किया जाय, तो अनगढ़ मनुष्य भी स्वेच्छाचारिता अपना लेता है और उस प्रकार का दृष्टिकोण, क्रिया-कलाप अपना लेता है जैसा कि पशुओं के आचरण में देखा जाता है।

भगवान की इसे मनुष्य पर विशेष अनुकम्पा ही समझनी चाहिए कि उसे उच्चस्तरीय संरचना वाला शरीर और मस्तिष्क मिला है। इन्हीं के आधार पर वे ऐसे प्रयास कर सका और उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सका, जो अन्य शरीरधारियों में बलिष्ठ समझे जाने वालों के लिए भी सम्भव नहीं हैं। इतने पर भी कुछ काम मनुष्य को स्वयं भी करने पड़ते हैं, जिनके आधार पर उसका आचरण सभ्य और मानस सुसंस्कृत बन सके। इसे शिक्षा या विद्या कहते हैं यह मानवी प्रयास है इसका दार्शनिक ढाँचा और आचार-व्यवहार तो पूर्ववर्ती देव मानव बना गये हैं, पर उसे गहराई से समझना, स्वभाव—अभ्यास में उतारना और व्यवहार में चरितार्थ करने की विधि-व्यवस्था मनुष्य को वैयक्तिक या सामूहिक रूप से स्वयं ही बनानी पड़ती है। यदि वह न बन पड़े, तो जन सामान्य की स्थिति वही बनी रहेगी जो नर-वानरों या वन-मानुषों की होती है। वे कुछ भी सोचते, कुछ भी करते और कुछ भी रीति-नीति अपना सकते हैं। अनगढ़ता यदि उद्दण्ड हो उठे, तो वह नृशंसता का रूप धारण कर लेती है। नर-पिशाच कहे जाने वालों के क्रिया-कृत्य ऐसे ही होते हैं।

माली अपने उद्यान में पेड़-पौधों को काटता-छाँटता रहता है, उनकी कलमें बनाता और लगाता रहता है, यथासमय खाद-पानी देता और पशु-पक्षियों से उसकी रखवाली करता है, तभी वह स्थिति बन पड़ती है, जिसमें उद्यान हरा-भरा, फला-फूला, नयनाभिराम दीख पड़े और श्रम की सार्थकता बढ़े-चढ़े लाभ के रूप में प्रस्तुत करे। ऐसा सुयोग न बन पड़ने पर वही पौधे जंगली बन जाते हैं, कुरूप दीखते हैं और लाभ देने के स्थान पर मार्ग में अवरोध बनकर अड़ते हैं, ढेरों जमीन घेर लेते और अपने नीचे साँप-बिच्छू जैसे जीव-जन्तु पालते रहते हैं, काँटे बिखेरते और उधर से गुजरने वालों की राह रोकते हैं। सुसंस्कृत उद्यान और अनगढ़ झाड़-झंखाड़ों के बीच जो अन्तर होता है, वहीं उन लोगों के बीच पाया जाता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो पशु-प्रवृत्तियों का आवरण अपने ऊपर से नहीं हटा सके और मानवोचित आचार संहिता के ढाँचे में अपने को नहीं ढाल सके।

मनुष्य भी बन्दरों की तरह अनुकरण प्रिय प्राणी है। बन्दर दूसरों की तरह नकल करते देखे जाते हैं। तोते भी सुनी बोली को दुहराने लगते हैं। मनुष्य का अपना मौलिक चिन्तन, विवेक और दृष्टिकोण आदर्शवादी स्तर का प्रयत्नपूर्वक ही बनता है। हीरे को खराद पर घिसकर चमकीला बनाया जाता है। लोहा खदान से मिट्टी मिली हुई स्थिति में निकलता है। उसे भट्टी में गलाकर फौलाद बनाया जाता है। यही बात अन्य सभी धातुओं के सम्बन्ध में भी है। वे भी खदान से खोदते समय मिट्टी-पत्थर मिली होती हैं। अग्नि संस्कार के उपरान्त ही वे अपने वास्तविक स्वरूप में स्वच्छ बनती है। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यह बात पूरी तरह लागू होती है। जन्मजात सुसंस्कार लेकर तो कोई विरले ही निकलते हैं। उसे सुसंस्कृत बनाने के काम अभिभावक, अध्यापक मिलकर करते हैं, साथ ही उसमें वातावरण भी सहायता करता है। दर्शनीय आभूषण गढ़ने के लिए स्वर्णकार को कितना परिश्रम करना पड़ता है ? कितने कौशल का परिचय देना पड़ता है, इसे सभी जानते हैं। श्रेष्ठता सम्पन्न व्यक्तित्व का निर्माण भी ऐसा ही कार्य है, जो अनायास ही नहीं हो जाता। उसके लिए संरक्षकों को असाधारण प्रयत्न करना पड़ता है। यदि उनमें इस कौशल का अभाव है, तो फिर संचित कुसंस्कार ही पनपेंगे और चारों ओर फैला हुआ कुप्रचलनों का माहौल उसे बढ़ाने में और हवा देगा।

पानी का स्वभाव नीचे गिरना है। जनसाधारण की मनोदशा भी पतनोन्मुख प्रयासों में बहती देखी जाती है। अधिकांश लोग वासना, तृष्णा और अहंता की कीचड़ में कण्ठ तक धँसे देखे जाते हैं। उन्हें लोभ, मोह और दर्प के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं, पेट प्रजनन से आगे बढ़कर और कुछ सोचने या करने का उनमें न तो विवेक होता है और न साहस। ऐसी दशा में जो इस प्रवाह में बहने लगते हैं, वे भी उन्हीं कृत्यों में लग जाते हैं, जिनमें आम लोग लगे देखे जाते हैं। वातावरण का प्रभाव इसी को कहते हैं।

कीचड़ में कमल उगना एक सुयोग है। आमतौर से तो उसमें गन्दे कीड़े ही कुलबुलाते रहते हैं। जिन्होंने लोक प्रवाह में बहने के लिए आत्मसमर्पण कर दिया, समझना चाहिए कि उनके लिए नर-पशु स्तर का जीवनयापन ही भाग्य विधान जैसा बन गया। वे खाते, सोते, पाप बटोरते और रोते-कलपते मौत के मुँह में चले जाते हैं। स्रष्टा ने मनुष्य जन्म का बहुमूल्य जीवन धरोहर के रूप में दिया था, होना यह चाहिए था कि इस सुयोग का लाभ उठाकर अपनी अपूर्णता पूर्णता में बदली गयी होती और विश्वमानव की सेवा-साधना में संलग्न रहकर देवमानव की भूमिका में प्रवेश करके धन्य बना जाता, असंख्यों को सन्मार्ग में चलाकर सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन का अजस्र पुण्य कमाया गया होता। यह तो बन नहीं पड़ता, उलटे पाप का पिटारा सिर पर लादकर लम्बे भविष्य को अन्धकारमय बनाया जाता है ।

जीवन का महत्त्व और सदुपयोग यदि आरम्भ से ही समझा और समझाया जा सके, तो उन कुसंस्कारों के घटने और मिटने का अवसर मिलेगा, जो मनुष्य को बुरी तरह पशु-प्रवृत्तियों से आच्छादित किए रहते हैं, जिनके कारण संकीर्ण स्वार्थपरता के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। वासना और तृष्णा की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ इच्छा और आकांक्षा उठती नहीं।

जिस प्रकार छोटे बालकों की शरीर व्यवस्था पर अभिभावकों को अधिक ध्यान देना पड़ता है, उनके आहार-विहार, वस्त्र, सफाई आदि के प्रबन्ध का समूचा उत्तरदायित्व स्वयं ही उठाना पड़ता है, उसी प्रकार यह भी उतना ही आवश्यक है कि उठती आयु से ही सुसंस्कारों का परिमार्जन आरम्भ कर दिया जाय। अबोध अवस्था मानवी दायित्व समझने और अपनाने में समर्थ नहीं होती। बालकों को शिष्टाचार का कोई ज्ञान नहीं होता। नीति-मर्यादा भी वे नहीं समझते। उसी प्रकार उन्हें उन आचार-विचारों की भी कोई जानकारी नहीं होती, जो सभ्यता के क्षेत्र में प्रवेश करते ही जानने और मानने पड़ते हैं। इस स्वाभाविक अनजानपन को घटाने और हटाने का भी उन्हें ही प्रयत्न करना चाहिए, जो उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करते हैं। बालकों को स्वयं इस बात की जानकारी नहीं होती, वह उन्हें ऊपर से उपलब्ध करानी पड़ती है। जैसे कोई बालक माता के पेट से सुशिक्षित उत्पन्न नहीं होता, समझ विकसित होने पर ही अभिभावक उसे पढ़ाने की व्यवस्था करते हैं। इसी प्रयास के साथ-साथ यह भी होना चाहिए कि उसे नागरिक कर्तव्य और सामाजिक दायित्व का क्रमशः बोध और अभ्यास कराया जाता रहे। इसके लिए उन्हें किसी अलग विद्यालय में भेजने की या अलग से अध्यापक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह कार्य अभिभावक एवं परिवार के अन्य सदस्य ही मिल-जुलकर करते रह सकते हैं।

बच्चों की समझ कम होती है, पर वे अनुकरण करने की प्रवृत्ति साथ लेकर आते हैं। इसी आधार पर वे बोलना, खड़े होना, चलना आदि सीखते हैं। इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए उनके सामने परिवार के सदस्य ऐसा व्यवहार करें, जिसका अनुकरण करते हुए उन्हें भी शालीनता सम्वर्द्धन का अभ्यास करना पड़े। इसके लिए आवश्यक है कि बच्चों को सुयोग्य व्यक्तियों के साथ रहने का अधिक अवसर मिले। आमतौर से गाड़ी में लिए फिरने और खिलौनों से खिलाने, झूला झुलाने आदि की आवश्यकता पूरी कर देने पर ही कर्तव्य की इतिश्री मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ली जाती है, जबकि होना यह चाहिए कि सभ्यता का, शिष्टाचार का पाठ भी छोटी आयु से ही पढ़ाना आरम्भ किया जाय। प्रायः घर में कई बच्चे होते हैं। उन सबको साथ-साथ रहने, खेलने का अवसर देने पर यह शिक्षण सरल पड़ता है। जिन घरों में बच्चे एकाकी होते हैं, उन्हें समवयस्कों के साथ सहयोग की, सद्भाव की रीति-नीति समझने में कमी ही रह जाती है। इसलिए जिन घरों में बच्चे अकेले हों, वहाँ यह प्रयत्न किया जाय। सामूहिकता के सहारे अनेक सद्गुण सीखे जा सकते हैं। एकाकीपन के कारण विकास रुक जाता है। जहाँ सरस्वती शिशु जैसी छोटे बालकों की पाठशालायें उपलब्ध हैं, वहाँ तनिक बड़ा होते ही बच्चों को भेजने का प्रबन्ध करना चाहिए। छोटे बच्चे उतनी जल्दी पाठ्य पुस्तकें तो नहीं पढ़ सकते, पर पारिवारिक शिष्टाचार, समूह में रहने की प्रवृत्ति और सामान्य ज्ञान से अपनी जानकारियाँ तो बढ़ाते ही हैं। यही है वह समय, जिसमें सुसंस्कारिता के बीजारोपण का प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए।

जैसे-जैसे बाल-विकास का क्रम आगे चले वैसे-वैसे उस प्रशिक्षण प्रयास को और तीव्र करना चाहिए। इसके लिए छोटी-छोटी कहानियाँ सुनाना, छोटी-छोटी कवितायें याद कराना अधिक सरल पड़ता है। इतना ही वे समझ सकते हैं और यही उनके अनुकूल भी पड़ता है। इसी आधार पर आगे चलकर समाजनिष्ठा की मजबूत इमारत खड़ी होती है।

प्रकाश के अभाव का नाम ही अन्धकार है। जहाँ शालीनता के शिक्षण का अभाव रहा, जहाँ नीतिमत्ता को स्वभाव का अंग बनाने में कमी रही, समझना चाहिए कि वहीं दुष्टता-दुर्जनता पनपी। अनेक लोगों में अनेक प्रकार के दुर्गुण देखे जाते हैं। इन्हें पशु-प्रवृत्तियों का उद्दण्ड उभार ही समझना चाहिए। यह खरपतवार इसलिए उपजते हैं कि खेत के माली आरम्भ से ही उन्हें उखाड़ने और खाली जमीन पर सुरक्षित पुष्पों के, सद्गुणों के आरोपण का प्रयत्न नहीं करते। यह उपेक्षा दूर हो सके, तो समयानुसार हर व्यक्ति सज्जनता से भरा-पूरा हो सकता है।

जब तक बच्चे घर में रहते-पलते हैं, तब तक अभिभावक और परिवारीजन ही उनको सामान्य-ज्ञान के साथ नीति-नियमों का अभ्यास कराते हैं। यह आरम्भ स्वच्छता और व्यवस्था के दो प्रभावों तक सीमित रहता है, पर इनमें भी वे बीजांकुर भरे पड़े हैं, जो आगे चलकर अन्यान्य सद्गुणों की पृष्ठभूमि बन सकते हैं। स्वच्छता में सौन्दर्यप्रियता की अभिरुचि सन्निहित है। इसमें अस्वच्छता का निषेध भी है। अस्वच्छता की परिस्थितियाँ ही मलीनता की द्योतक हैं। जो गन्दगी को सहन करता है, उसे हटाने के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आगे चलकर उसी कारण स्वभाव में अनेकों अवांछनीयताओं को भी पाल लेता है। इसी प्रकार वस्तुओं, कपड़ों, उपकरणों, पुस्तकों को जहाँ-तहाँ बिखेर देने की आदत आगे चलकर आलस्य-प्रमाद का स्वभाव पनपा देती है। ऐसे लोग समय का मूल्य नहीं समझते। किसी काम को योजनाबद्ध रूप से नहीं करते। उपभोग में संयम नहीं बरतते। बात-बात में अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं। इन्हीं अस्त-व्यस्तताओं का आगे चलकर इस रूप में परिपाक होता है, जिन्हें असज्जनोचित, अमानवीय, असभ्य स्तर ही कहा जा सकता है। यही है वह विष बीज जो अंकुरित होने और फलने-फूलने पर समाज को स्वार्थीजनों से भर देता है। स्वार्थपरता अपनी सीमा से बाहर जाकर उद्दण्डता का रूप धारण कर लेती है और अनाचार पर उतारू होती है। अपराधी प्रवृत्तियाँ ऐसे ही लोगों में पनपती हैं और फिर वे अपनी छूत अन्यान्यों को लगाकर अपने जैसे अनेकों उद्दण्डों का निर्माण करते हैं। उनका गिरोह बनता है। प्रथम आक्रमण में प्रत्येक आक्रान्ता कुछ लाभ उठा लेता है क्योंकि जिस पर हमला होने वाला है, उसे उसकी पूर्व जानकारी नहीं होती। एक प्रकार से बेखबर और असावधान रहता है। असावधान पर हमला प्रायः कारगर होता है। इसी लालच में उसके साथ दूसरे अनाचारी भी जुड़ जाते हैं और एक अच्छा-खासा गिरोह बन जाता है। यह प्रवृत्ति इसलिए और भी बढ़ती जाती है कि उसके प्रतिरोध का कोई संगठित प्रयत्न नहीं होता। दुर्जन हमला बोलने और अनुचित लाभ उठाने के लिए संगठित हो जाते हैं, पर सज्जन अपने आप में ही संतुष्ट रहते हैं। वे संगठन की और संघर्ष की आवश्यकता नहीं समझते। इसलिए भी अवांछनीय तत्त्वों को आक्रमण करने और सफल होने का अवसर मिलता है।

अनाचार का विषवृक्ष उगते ही कार्टे

इन दिनों अनाचार-भ्रष्टाचार अपेक्षाकृत अधिक उभार और विस्तार पर है, इसका एक बड़ा कारण यह है कि अनाचारी अपना आतंक सहज जमा लेते हैं और पीड़ित पक्ष से कुछ करते-धरते नहीं बनता। इसका प्रतिफल यह होता है कि अनाचारियों को जो सफलता मिलती है, उससे उनकी हिम्मत और अधिक बढ़ जाती है। एक को देखकर दूसरे के मन में भी यही लालच उभरता है, इस प्रकार सिलसिला आगे बढ़ता जाता है और अनाचारियों का गिरोह जहाँ-तहाँ खुला खेलने लगता है।

दूसरी ओर सज्जन अपने को एकाकी एवं असहाय अनुभव करते हैं। प्रतिरोध की क्षमता अपने में पैदा नहीं कर पाते, ऐसी दशा में उन्हें दया-क्षमा जैसे सिद्धांतों की याद आ जाती है और उनका स्मरण करके किसी प्रकार चुप बैठे रहने की नीति अपनाते हैं। इसका परिणाम और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी भयंकर होता है, उन्हें कायर समझ लिया जाता है, डरपोक-बुजदिल कहकर उनकी खिल्ली उड़ायी जाती है, अवसर पाते ही उन पर फिर हमला किया जाता है। इस प्रकार बार-बार आक्रमण होने या आशंका रहने के कारण तथाकथित भले आदमी अपनी हिम्मत गँवा बैठते हैं, मन-मसोस लेते हैं। संघर्ष की बात सोचना बन्द कर देते हैं और परिस्थितियों के आगे सिर झुका लेते हैं। उनकी दुर्गति देखकर दूसरे भी डर जाते हैं और आक्रमणकारियों से किसी प्रकार जान बचाने के लिए उनकी हाँ में हाँ मिलाने, उनके समर्थन तक में उतारू हो जाते हैं कि आक्रान्ता न केवल उस पराजित को वरन् अन्यान्य दुर्बल दीखने वालों पर भी हावी होने लगते हैं। बहुसंख्यक सज्जन इसी प्रकार पिटते रहते हैं और मुट्ठी भर आतंकवादी सबके सिर पर सवार रहते हैं।

ऐसी स्थिति आ बनने पर तो एक ही उपाय है कि जिन्हें आघात सहना पड़ रहा है वे किसी भी हालत में अपनी पराजय स्वीकार न करें। घुटने न टेकें और अनीति से समझौता न करें। आक्रमण का प्रत्याक्रमण सम्भव न हो, घूँसे का जवाब लाठी से देते न बन पड़ रहा हो तो भी इतना तो करना ही चाहिए कि आत्मसमर्पण किसी भी हालत में न करें, कम से कम असहयोग तो जारी रखें ही। सीता रावण के यहाँ कैद थी, अकेली थी, असहाय थी तो भी उन्होंने रावण के दबाव, प्रलोभन और आकर्षण को स्वीकार न किया। यह स्थिति तो कम से कम बनी ही रहनी चाहिए। अपने को भले ही घाटा पड़े, कष्ट उठाना पड़े, पर सच्चाई की आवाज तो ऊँची रहनी ही चाहिए। यदि विरोध में साथ देने वालों का संगठन बन सके तो उस गुट से बहुत काम चल जाता है। राम के साथी लक्ष्मण रहे, इस घनिष्ठता को देखकर अंगद, हनुमान, सुग्रीव जैसों के हौंसले बढ़े और वे भी उनके साथ हो गये। बाद में तो रीछ-वानरों तक ने उनका साथ दिया—इस प्रकार न्याय पक्ष अकेला न रहा, उसने अपने आकर्षण से अनेकों सहयोगी जुटा लिये। कहते हैं कि सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है। वह अकेला भी अड़ा रहे तो सहयोग के अनेकानेक आधार बनते हैं। टिटहरी समुद्र से अण्डे वापस लेने के लिए जब प्राणप्रण से जुट गई और चोंच में बालू भरकर समुद्र पाटने के लिए कटिबद्ध हो गई तो उसका साहस देखकर अगस्त्य मुनि सहायता के लिए दौड़े और न्याय को विजय दिलाने के लिए वह सब कुछ कर गुजरे जो उनके लिए सम्भव था।

सत्य परायणों और न्यायनिष्ठों को समय-समय पर दूसरों की सहायता भी मिलती रही है, इतिहास इसका साक्षी है। यदि ऐसा न हुआ होता तो बहुसंख्यक कुकर्मियों ने इस संसार की समूची शालीनता का भक्षण कर लिया होता। सत्यनिष्ठ एकांकी होने के कारण सर्वत्र पराजित-पराभूत हो गये होते किन्तु ऐसा हुआ नहीं। प्रहलाद-पथ के अनुयायी कष्ट सहकर भी अपनी विजय ध्वजा फहराते हैं। ईसा मर कर भी मरे नहीं, सुकरात की काया नष्ट होने पर भी उनका यश, वर्चस्व और दर्शन अपेक्षाकृत और भी प्रखर हुआ, व्यापक बना। गोवर्धन पर्वत उठाये जाने का संकल्प आरम्भ में असम्भव लगता रहा होगा, पर समय ने सदुद्देश्य का साथ दिया और सत्यसंकल्प ने विजय दुंदुभी बजाई।

यह साहस उस पक्ष में जगना चाहिए, जिसे अनीतिपूर्ण आक्रमण सहना पड़ता है, वे झुकें नहीं तो सज्जनों की सहानुभूति और दैवी-अनुकम्पा उनका साथ देगी। यदि यह हस्तगत न हो सके तो अकेली अपनी अन्तरात्मा ही इतनी बलिष्ठ है कि उसकी संकल्प शक्ति अन्त तक अनाचार से टक्कर लेती रहती है। कुकर्मी अपनी मौत मरते हैं, उनके पाप ही उन्हें खा जाते हैं।

इतने पर भी एक काम जनसाधारण को करना होगा कि अनाचार के विषवृक्ष उगने न पायें। इसके लिए आग लगने पर कुँआ खोदने की नीति काम न देगी। यदि ऐसा संभव हुआ तो पुलिस, कचहरी, कानून और जेल की व्यवस्था रहते दुष्कर्मों का अन्त हो गया होता। प्रताड़ना आवश्यक तो है, पर उनकी आवश्यकता तब पड़ती है जब दुर्घटना घटित हो चुकी होती है। अपराधी को दण्ड मिल सकता है, पर पीड़ित को जो सहना पड़ा उसकी क्षतिपूर्ति कैसे होगी ? उसके कारण जिस विक्षोभ का, प्रतिशोध का, आतंक का वातावरण पैदा हो चुका होगा, उसका परिमार्जन किस प्रकार होगा ? क्रिया अपनी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। अनाचारी को सफलता मिलने पर इस मार्ग को अन्य अनेकों उद्दण्ड अपना लेते हैं। दुर्बलों में से अनेकों उस आशंका से भयभीत हो जाते हैं, यह ऐसी प्रतिक्रिया है जिससे दुर्घटनायें होकर समाप्त नहीं हो जातीं वरन् वे अपने अवांछनीय प्रभाव से अनेकों को प्रभावित करती हैं और समाज का संतुलन बिगड़ता है, चिन्तन का प्रवाह खड़ी दिशा में बहते रहना कठिन पड़ता है।

उपयुक्त यही है कि रोग उभरने की स्थिति उत्पन्न होने से पहले स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का कड़ाई से परिपालन करते हुए वह अवसर ही न आने दिया जाय, जिसमें बीमारी का कष्ट सहना पड़े और चिकित्सकों को दरवाजा खटखटाना पड़े। चोरी होने से पहले यदि चौकीदारी की व्यवस्था ठीक कर ली जाय तो उस क्षति से बचा जा सकता है, जो चोरी के कारण होती है।

दुष्टता की दुर्बुद्धि उपजने और अनर्थ करने की स्थिति तक पहुँचने से पूर्व किया यह जाना चाहिए कि जहाँ से यह उपजते हैं, उन पशु-प्रवृत्तियों के संचित कुसंस्कारों का समय पर सुधार-परिमार्जन कर लिया जाय अन्यथा वे धीरे-धीरे बढ़ते-परिपक्व होते ओर अभ्यास में उतरकर इस स्थिति तक पहुँचते हैं कि कुकर्मों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्दण्डता अपनाने लगें। समय रहते चेतना ही उचित है। रोग की जड़ गहरी पहुँच जाने पर फिर उसकी जड़ उखाड़ना बहुत ही कठिन पड़ता है।

अभिभावक और अध्यापक इस दिशा में बहुत काम कर सकते हैं, वे बचपन से ही नई पीढ़ी को ऐसे संस्कार दे सकते हैं, जिनसे कुकर्मों के दुष्परिणामों और सत्कर्मों के सत्परिणामों को जान सकना सम्भव हो सके। इसके लिए परिवार का और पाठशाला का वातावरण ऐसा बनाना चाहिए, जिसके सम्पर्क में आने पर नवोदित बालक मानवी गरिमा और महत्ता के प्रति आकर्षित हो सके। अपने को हर दृष्टि से समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने के लिए प्रयत्नरत हो सकें। उन्हें इस बात का ज्ञान हो कि स्वेच्छाचार-अनाचार बरतने पर मनुष्य किस प्रकार हर किसी की दृष्टि में गिर जाता है और गया-गुजरा-अनगढ़ समझा जाने वाला किस प्रकार पग-पग पर तिरस्कार, उपहास और विरोध का भाजन बनता है।

किशोरावस्था भले-बुरे व्यक्तित्व का निर्माण करने की दृष्टि से अतिशय महत्त्वपूर्ण है, उसमें जोश उफनता रहता है किन्तु बौद्धिक परिपक्वता का अभाव रहने से भटकाव की भारी गुंजाइश रहती है। इस आयु में एक नये वर्ग से पाला पड़ता है, वह है—साथी-संगियों का। स्कूलों में समवयस्क लड़कों का साथ होता है, उनका सान्निध्य रहने, पढ़ने, खेलने, सीखने में सम्पर्क सघन होने के कारण परिचय कुछ ही समय में घनिष्ठता में परिणत होने लगता है। यह स्कूल की परिधि से बाहर भी चलता है और बचे हुए समय में एक-दूसरे के घर आने-जाने से लेकर जहाँ-तहाँ घूमने जाने तक के प्रोग्राम बनने लगते हैं। इसी अवधि में गुण-दोषों का भी आदान-प्रदान चल पड़ता है, प्रतिभावान अल्प-प्रतिभावानों पर हावी होते हैं, उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं, साथ ही अपने स्वभाव-व्यक्तित्व की छाप भी एक-दूसरे पर छोड़ते हैं, यह छाप भली भी हो सकती है और बुरी भी। इस बीच कहीं अवांछनीयता नहीं पनप रही है—इस बात पर अभिभावकों और अध्यापकों को समान रूप से ध्यान रखना चाहिए।

इन दिनों सुसंस्कारी वातावरण में पले सुसंस्कृत स्तर के बच्चे कम ही पाये जाते हैं, क्योंकि आम लोगों पर अनुपयुक्तता ही सवार रहती है। उनके स्वभाव-आचरण गये-गुजरे स्तर के होते हैं, भले ही वे शिक्षा, व्यवसाय, पद, वैभव आदि की दृष्टि से बढ़े-चढ़े ही क्यों न हों। उत्कृष्टता का वातावरण जहाँ नहीं है, वहाँ निकृष्टता का बोलबाला होना ही चाहिए। यह अनुपयुक्तता बड़ों में परिपक्व होकर बालकों को विरासत में मिलती है, ऐसे परिवारों के किशोर भी उन बुराइयों से घिरे होते हैं, जो उनके बड़ों में पनपती रही हैं। स्वभाव अपने जैसों को सहज ढूँढ़ और घसीट लेता है, जिनमें बुरी आदतें नहीं हैं, उन्हें भी अपनी प्रतिभा के बल पर अपने जैसा बना लेता है। अनुपयुक्तता से ग्रसित अपने सहयोगी बनाने-बढ़ाने के लिए विशेष रूप से लालायित रहते हैं, इस चपेट में भोले लड़के आ जाते हैं और उस घनिष्ठता का प्रसाद-परिणाम दुष्प्रवृत्तियों के रूप में प्राप्त करते हैं। नशेबाजी, गुण्डागर्दी, घर में पैसे की चोरी, आवारागर्दी, गन्दी कामुक हरकतें, दादागीरी जैसी अनेक बुराइयाँ उनमें जड़ जमा लेती हैं, जो आरम्भ में अच्छे परिवार में पले होने के कारण इस प्रकार की बदफैली से कोसों दूर थे। कुसंग उन्हें कुछ से कुछ बनाता है। किशोरों में इस प्रकार की अनुपयुक्तता सहज जड़ जमाती है, घर वाले इस सन्दर्भ में अनजान रहते हैं, कारोबार की व्यवस्था में लगे रहते हैं, साथ ही यह भी सोचते हैं कि लड़का बड़ा हो गया उसमें समझदारी, जिम्मेदारी आ गई होगी और अपना भला-बुरा भविष्य स्वयं देखने-समझने लगा होगा, पर देखा यह गया है कि बहुत करके इन्हीं दिनों पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियाँ पनपती हैं। तेजी से स्वभाव में प्रवेश करती हैं, व्यक्तित्व को अनुपयुक्त ढाँचे में ढाल देती हैं। पता तब चलता है जब बच्चों को लम्बा समय दुष्प्रवृत्तियों के चंगुल में फँसे हुए निकल जाता है, बच्चे छिपते रहते और बड़े उन पर विश्वास करके खोजबीन का प्रयत्न नहीं करते हैं। बड़ी आयु वालों में सोच-समझ अधिक होती है और उत्साह कम, इसलिए वे अवांछनीयता की दिशा में तेजी से कदम नहीं बढ़ाते किन्तु किशोर का उत्साह और भाव संवेदना चरम सीमा पर होता है। वे उत्कर्ष के झंझट भरे मार्ग पर चलने की अपेक्षा सस्ती और मनोरंजन करने वाली, गर्व फुलाने वाली अवांछनीयता की ओर तेजी से आकर्षित होते और देखते-देखते उसके चंगुल में फँस जाते हैं। यही है वह काला केन्द्र बिन्दु जो अच्छे-भले बालकों को कुमार्गगामी बना देता है। वे पढ़ने-लिखने में मन लगाने की अपेक्षा कौतुक-कौतुहलों में अधिक ध्यान केन्द्रित करने लगते हैं और उन्हीं के आदी बन जाते हैं।

विश्वव्यापी अपराध वृद्धि के सर्वेक्षण से पता चलता है कि उद्दण्डता की नींव किशोरावस्था में पड़ती है। उस अवधि में वह चुपके-चुपके बढ़ती और पकती रहती है, उन दिनों हरकतें छोटी होती हैं। बालकों द्वारा की गई होने के कारण उनकी दर-गुजर भी कर दी जाती है, पर जैसे ही वे प्रौढ़ होते हैं, वह पलती हुई विषाक्तता भयंकर कुकृत्यों के रूप में फूट पड़ती है और सारे समाज को ग्रस्त-आतंकित करती है। अच्छा होता इस विभीषिका की रोकथाम का उपाय-उपचार किशोरावस्था पर कड़ी नजर रखने के साथ ही किया जाता।

दुष्प्रवृत्तियाँ इस प्रकार पनपती हैं

कुसंग की हानि और सत्संग की सुसंभावना सर्वविदित है। यों हर व्यक्ति इन दिनों व्यस्त है, समस्याओं और आवश्यकताओं के अत्यधिक बढ़ जाने से निजी कामों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को निपटाना ही कठिन पड़ता है। इसलिए समझदार व्यक्तियों को प्रायः खाली नहीं पाया जाता, वे ठाली नहीं रहते—ऐसी दशा में उनके साथ अधिक समय गुजारने की संभावना नहीं रहती। जिसके पास ठाली समय है जो कभी भी गपशप के लिए उपलब्ध हो सकता है—समझना चाहिए कि वह जीवन विद्या के सम्बन्ध में अनजाने हैं। ऐसे लोगों में सद्गुण भी नहीं पाये, जाते, फिर उनकी संगति से लाभ क्या ? जिनके सम्पर्क से लाभ है, वे इस स्थिति में नहीं रहते कि अपने योजनाबद्ध कामों को छोड़कर जिस-तिस के साथ गपशप लड़ाते रहें, ज्ञान या अज्ञान की बात कहने में अपना बहुमूल्य समय गँवाते रहें, इस कठिनाई के बीच यह सुयोग्य मिलना कठिन है कि सत्संग का सुयोग सरलतापूर्वक पाया जा सके। साथी-सहचर ढूँढ़ते फिरने वालों को प्रायः आवारा लोगों की संगति हाथ लगती है। उससे लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होती है। किसी के व्यक्तित्व को गिराने में, उसे दुर्गुणी बनाने में अक्सर ठाली लोगों की संगति ही सबसे अधिक विपत्ति ढाती और अनर्थ करती देखी गई है।

कहा गया है कि खाली दिमाग शैतान की दुकान होती है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि ठाली-बैठे पाये जाने वाले व्यक्ति गये-गुजरे स्तर के होते हैं। वे अपना सूनापन काटने के लिए किसी को भी साथी बनाने की फिराक में रहते हैं। आरम्भ में मीठी बातें कहकर, सब्ज-बाग दिखाकर, कुछ प्रलोभन देकर आकर्षित करते हैं, जब शिकंजा कस जाता है तो उसे कुमार्ग पर धकेलने में अपनी चतुरता का परिचय देते हैं, ऐसी दशा में मंडलियाँ प्रायः कुकर्मों की ही योजनायें बनती और अवसर पाते ही उसे कार्यान्वित करती देखी जाती हैं। पतन का सामान्य उपक्रम यहीं से आरम्भ होता है।

यों पूर्व जन्मों की संचित पशु-प्रवृत्तियाँ और वातावरण का प्रभाव भी गिरने-गिराने में ही सहायता करते हैं। पानी का स्वभाव ढलान की ओर बहने का होता है। छोड़ी गई चीज नीचे की दिशा में ही गिरती है, उठने-उठाने के लिए तो विशेष योजना बनाने और विशेष साधन जुटाने की ही आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए उपयुक्त अवलम्बन ढूँढ़ निकालना साधारणतया कठिन ही पड़ता है और श्रमसाध्य भी होता है। फिर भी जहाँ चाह वहाँ राह निकलने वाली उक्ति प्रयत्नशीलों के लिए सार्थक ही होकर रहती है।

कुसंग से बचने और सुसंग से लाभ उठाने का सरलतम तरीका यह है कि जीवन विद्या के हर पक्ष पर प्रकाश डालने वाले सत्साहित्य को पढ़ते रहने में रुचि उत्पन्न की जाय, जब भी खाली समय दीख पड़े तभी उन्हें पढ़ने में लगा जाय। यों ऐसी पुस्तक कम ही मिलती हैं, बिरले ही बुकसेलर उन्हें रखते और बेचते हैं। बाजारू माँग घटिया वस्तुओं की ही होती है, अपराधी प्रवृत्ति भड़काने, कामुक उत्तेजना देने वाली, दिवास्वप्नों में उलझाने वाली, अप्रासंगिक कथा-कहानियों वाली पुस्तकें ही प्रायः हर पुस्तक विक्रेता के यहाँ भरी पड़ी पाई जाती हैं, उनकी बिक्री भी होती है और लाभ भी मिलता है। ऐसी दशा में खपत और नफे को प्रधान मानने वाले लेखक, प्रकाशक, विक्रेता वैसे ही साहित्य को प्रमुखता देते हैं, इतने पर भी तलाश करने वाले सत्साहित्य भी जहाँ-तहाँ से ढूँढ़ ही निकालते हैं। उन्हें सामर्थ्यानुसार खरीदा जा सकता है, जिनके पास वे मिल सकें उनसे माँगकर पढ़ा जा सकता है। पुस्तकालयों का भी सहारा लिया जा सकता है, ऐसी पुस्तकों को एक बार में पढ़कर ही नहीं फेंक देना चाहिए वरन् उन्हें धर्मग्रन्थों की तरह बार-बार पढ़ने का पुण्य-माहात्म्य समझकर गम्भीरतापूर्वक धीरे-धीरे मनन-चिन्तन करते हुए पढ़ना चाहिए। उनसे जितना सम्भव हो और आवश्यक हो उतना ग्रहण करना चाहिए। अवांछनीयता के उन्मूलन में और सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन में इस प्रकार के सत्साहित्य से सहायता लेनी चाहिए। इन दिनों सत्संग तो कठिन है, ऐसे मनीषी ढूँढ़े नहीं मिलते जो समय को समझें और व्यक्ति के स्तर को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त परामर्श दें। इस अभाव की पूर्ति सत्साहित्य के बिना और किसी प्रकार होनी सम्भव नहीं। जो बिना पढ़े हैं वे दूसरे पढ़े लोगों से सुनकर अपनी सद्ज्ञान पिपासा पूरी करते रह सकते हैं।

इस माहात्म्य को ध्यान में रखते हुए समझ यह भी लेना चाहिए कि भटकाव उत्पन्न करने वाली और पतन को प्रेरणा देने वाली पुस्तकों की हानि भी कम नहीं है। कुमार्गगामिता को प्रेरणा देने वाला साहित्य पढ़ने वाले की मानसिकता को पतन के गर्त में गिरा कर रहता है।

पतनोन्मुख प्रेरणायें देने वाले साधनों की, मनोरंजनों की कमी नहीं। नाटक, सिनेमा, अभिनय, नृत्य आदि में उत्कर्ष के कम और अपकर्ष के तत्व अधिक रहते हैं। रेडियो-दूरदर्शन भी इससे बचे नहीं हैं, ऐसी दशा में सर्वथा उपयोगी माध्यम का मिल सकना तो कठिन है, पर अपने में इतनी विवेक बुद्धि जाग्रत की जा सकती है कि चयन के मूल में जो श्रेष्ठ है उसी को देखा जाय। यदि मिला-जुला देखने को मिलता है तो फिर अपनी परख खरे-खोटे की होनी चाहिए। राजहंस की तरह नीर-क्षीर विवेक की परख अपने भीतर उत्पन्न कर ली जाय तो मिले-जुले माहौल में भी वह चुना जा सकता है, जो उपयोगी और उत्कर्ष की प्रेरणा देने वाला हो। दृष्य और श्रव्य में प्रभावित करने की असाधारण क्षमता है। इस तथ्य को समझते हुए वही देखा जाय जो उपयोगी है, वही सुना जाय जो सद्विचारों के बीजारोपण एवं उत्पादन में सहायक हो।

परिपक्व आयु में भला-बुरा समझने की बुद्धि समयानुसार परिपक्व हो जाती है, तब अवांछनीयता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आक्रमण का उतना खतरा नहीं रहता, किन्तु किशोरावस्था तो ऐसी बारूद है जिसमें अवांछनीयता की छोटी-सी चिन्गारी भी ज्वाला-माल बनकर धधकती है। अच्छे वातावरण का प्रभाव तो धीमी गति से होता है। वटवृक्ष देर में बढ़ता और विकसित होता है किन्तु बरसाती खरपतवार तो दो-चार दिन में ही समूची जमीन को घेर लेते हैं—इस तथ्य से सभी को अवगत होना चाहिए।

लड़कियों की समस्या और भी अधिक पेचीदा है। यों आमतौर से लड़कियाँ घरों में रहती हैं, इसलिए उनके शील-सदाचार पर अँगुली उठने जैसे प्रसंग कम ही आते हैं, पर सहशिक्षा से लेकर अनेकों से मिलने-जुलने से सम्बन्धित उत्सवों में ऐसा माहौल बनता है जिससे उन्हें गलत ढंग से सोचने की बात बन जाती है। विवाहितायें अपने सरस संस्मरण सुनाती हैं, कुमार्ग पर चलने से कितनी मौज उड़ाने, धन कमाने का अवसर मिलता है—जैसे प्रसंग सुनकर कई भोली-भावुकों के मन डगमगाने लगते हैं, कई बार मनचले लड़के भी सब्जबाग दिखाकर उनका मन मोह लेते हैं। प्रेमपत्रों का आदान-प्रदान चल पड़ता है, लड़कियाँ तो लोकलज्जा से उन पत्रों को कहीं दिखा नहीं पातीं, पर लड़के उन्हें जहाँ-तहाँ दिखाकर बदनाम करने, विवाह में अडंगा लगाने जैसी धमकियाँ देकर उनसे अनुचित स्वार्थसिद्ध करते रहते हैं। कई बार तो इस प्रकार के कुचक्रों में फँसी लड़कियों की जिन्दगियाँ ही बर्बाद हो जाती हैं। इसका पश्चाताप उन्हें जीवनभर करना पड़ता है। इन खतरों से नासमझ किशोरियों को सावधान करते रहना घर की वयस्क महिलाओं का, समझदार सहेलियों का, अध्यापिकाओं का कर्तव्य है। भावुकता तो सभी किशोरों में जीवन के अन्य समयों की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में पाई जाती है, पर किशोरियों की भावुकता और अनुभवहीनता मिलकर ऐसी समस्या बना देती है, जिसमें उनके लिए हर प्रकार खतरा ही खतरा है। लड़के तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं, उनके लिए सामाजिक नियम भी ढील छोड़ देते हैं, पर लड़कियों के सम्बन्ध में बरती जाने वाली अनुदारता तो उनके लिए विपत्ति बनकर ही सामने आती है। थोड़ी-सी चूक भी उनके लिए जिन्दगी भर तक तिरस्कृत करने वाली, दुःख देने वाली है। इसलिए लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को अधिक सतर्क किया और सावधान रखा जाना चाहिए। विशेषतया अवांछनीय लड़कों या लड़कियों के साथ अनावश्यक घनिष्ठता बढ़ने देने की बात को ध्यान में रखना चाहिए। यों नागरिक स्वतन्त्रता की बात सिद्धांतः सब प्रकार मान्यता देने योग्य है पर यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इस सन्दर्भ में अतिवाद न बरता जाय, अनावश्यक घनिष्ठता की छूट न दी जाय। भले ही वह बहन-भाई, सहेली-सहेली आदि रिश्तों की आड़ ले रहे हों। मर्यादाओं का अतिक्रमण न होने देने में ही सबकी सब प्रकार भलाई है। लड़कियों के सम्बन्ध में तो यह जागरूकता और भी अधिक रखी जानी चाहिए।

विलासिता, सजधज और ठाठ-बाट की आड़ में बढ़ता हुआ खर्च किसी को भी कुमार्ग पर धकेल सकता है। सीमित और आवश्यक खर्च की पूर्ति तो सही हो सकती है, पर असाधारण खर्च की पूर्ति के लिए तो गलत तरीके ही अपनाने होते हैं।

अपराधी मनोवृत्ति पनपने और परिपक्व होने से पहले स्वभावगत दोष-दुर्गुण पनपते हैं, आलस्य-प्रमाद उनमें से प्रमुख हैं। आवेश-ग्रस्तता, तुनकमिजाजी, उत्तेजना, बात-बात में आक्रोश प्रकट करने की मनोवृत्ति भी ऐसी है। इस प्रकार का स्वभाव मस्तिष्क पर तनाव बनाये रखता है, सामने प्रस्तुत कामों को ठीक तरह नहीं करने देता। दूसरों को सहयोग प्राप्त करने में भी असफलता मिलती है, सभी काम आकुल-व्याकुल मनःस्थिति में अस्त-व्यस्त पड़े रहते हैं। फलतः अधूरे कामों की शृंखला जुड़कर सभी क्रिया-कलापों को असफल बना देती है। असफलता मन में असंतोष, समुदाय में तिरस्कार-उपहास का वातावरण बनाती है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति भीतर और बाहर से टूटने लगता है, इसकी एक परिणति तो यह होती है कि व्यक्ति दीन-हीन स्थिति अपना ले और हर काम से उदास होकर निठल्लापन अपना ले। साधु-बाबा आदि का वेश बनाकर परावलम्बी जीवन जिये, संसार को मिथ्या-माया कहने लगे, वैराग्य का लबादा ओढ़ ले और ज्यों-त्यों करके दिन गुजारे। दूसरी प्रतिक्रिया यह होती है कि किसी प्रकार धन अर्जित करने के लिए अपराधी, आततायी जीवन जीने लगे। ऐसे लोगों की अन्तःचेतना सदा विक्षुब्ध रहती है, उसको काबू में रखने के लिए नशेबाजी का सहारा लेना पड़ता है। आरम्भ में सिगरेट-गाँजा आदि से काम चलाता है, पर स्थिति अधिक बिगड़ने पर शराब, स्मैक, हैरोइन आदि बड़े नशे करने पड़ते हैं। उनकी आदत छूटती नहीं, घर की पूँजी चुक जाती है, कर्ज मिलता नहीं—ऐसी दशा में छोटे-बड़े अपराध करते रहना ही एकमात्र उपाय रह जाता है। दुर्गुणों का अन्त अपराधी प्रवृत्तियों में पूरी तरह जकड़ जाने के रूप में ही होता है। यही है दुःखद दुर्भाग्य जिसका आरम्भ किशोरावस्था से छोटे रूप में होता है और फिर वह बढ़कर समूचे व्यक्तित्व को ही अपने चंगुल में पूरी तरह जकड़ लेता है। तब न दूसरों का समझाना काम देता है और न अपना मनोबल ही ऐसा रहता है कि अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों से लोहा ले सके, उनसे पीछा छुड़ाकर अपने को सभ्य नागरिक की श्रेणी में बिठा सके। ऐसे लोगों का अन्त किस प्रकार होता है—यह उन लोगों से पूछा जा सकता है जिनका ऐसे लोगों से वास्ता पड़ा है और उनका अन्त देखा है।

अपराधी प्रवृत्ति एक प्रकार की छूत वाली बीमारी है। जो पहले परिवार के नवोदित सदस्यों पर आक्रमण करती है। कुकर्मी लोगों की संतानें भी अनैतिक कार्यों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही रुचि लेती हैं और उन्हीं की अभ्यस्त बनती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा भी होता है कि जिनके साथ उनकी घनिष्ठता है, उन्हें भी उसी पतन के गर्त में गिरने का कुयोग बने। ऐसे लोग प्रयत्नपूर्वक अपना सम्पर्क क्षेत्र बढ़ाते हैं और उद्धत आचरणों के फलस्वरूप तत्काल लाभ मिलने के सब्जबाग दिखाते हैं। आरम्भ में हिचकने वालों की हिम्मत बढ़ाने के लिये कितने ही इस आधार पर बड़े-बड़े लाभ प्राप्त कर लेने के मनगढ़न्त वृतान्त सुनाते हैं। जिन्हें सच मानने और उस प्रकार का आचरण करने में अपनी भी योग्यता देखकर सहज ही तैयार हो जाते हैं। गिरोह बनता है और साथियों की सहायता से अपराधी लोगों का समुदाय बनता है। संगठित प्रयत्नों की सफलता सर्वविदित है। अनाचार पर उतारू लोग भी आक्रामक नीति अपनाकर आरम्भिक सफलता तो प्राप्त कर ही लेते हैं, पीछे भले ही उसके भयानक दुष्परिणाम भुगतने पड़ें।

समय से पहले की रोकथाम

रोग बढ़ने पर चिकित्सा में भारी खर्च करना पड़े, भारी मुसीबत उठानी पड़े, इससे पूर्व यही अच्छा है कि समय रहते ऐसा रहन-सहन अपनाया जाय, जिसके कारण रोग होने की संभावना ही न रहे। नीति, अपराधी प्रवृत्ति पनपने से पूर्व अपनाई जानी चाहिए। जिस वातावरण में दुष्प्रवृत्तियों का उत्पादन और अभिवर्द्धन होता हो, उन्हें पनपने नहीं दिया जाना चाहिए। पनप रही हों और उन अड्डों पर नियन्त्रण कर सकना अपनी स्वल्प शक्ति के लिए सम्भव न हो तो इतना तो करना ही चाहिए कि अपने को उस माहौल के प्रभाव से यथासम्भव दूर ही रखा जाय, रुचि न ली जाय तो दूषित प्रभावों से बहुत हद तक बचा जा सकता है। आत्मरक्षा की सामर्थ्य तो सभी में होती है। रुचि न लेने पर अनाचारियों के चंगुल से सरलतापूर्वक बचा जा सकता है।

लालची प्रकृति के लोग ही ठगे जाते हैं। हर किसी को हर कोई नहीं ठग सकता। जो ईमानदारी और परिश्रम की कमाई से संतुष्ट हैं, जिन्हें हराम का, मुफ्त का, लूट का पैसा नहीं चाहिए, वे जालसाजी के चंगुल में फँसने से सहज ही बच जाते हैं। वे आकर्षक प्रस्तावों और प्रलोभनों पर ध्यान ही नहीं देते। ललचाने वालों की उपेक्षा करते हैं। उनके जाल में फँसने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। ऐसी दशा में ठगों की दाल प्रायः नहीं ही गलती। धूर्तों की यह विशेषता होती है कि वे उन लोगों को ताड़ लेते हैं, जिनकी प्रकृति अति भावुकता की, अति उत्साह की होती है। कहते हैं कि जहाँ घाव होता है, वहाँ मक्खी बैठती है। नमी पाकर मच्छर उपजते हैं। यदि अपने स्वभाव को इतना परिपक्व बना लिया जाय कि अनैतिक, अनुचित लोभ देने वाले आकर्षणों से बच सका जाय तो फिर धूर्तों का समुदाय आस-पास फिरते रहने पर भी अपना कुछ बिगाड़ न सकेगा। समान प्रकृति के लोग ही प्रायः अपने जैसे स्वभाव वालों को फुसलाते हैं और धूर्तों और मूर्खों का जोड़ा बन जाता है। हानि उठाने और हानि पहुँचाने का सिलसिला प्रायः इसी प्रकार बनता है। यदि रास्ते पर से काँटे नहीं बीने जा सकते तो कम से कम पैरों में जूते पहनकर अपना बचाव तो किया ही जा सकता है।

अनाचारियों के प्रभाव में आना, उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना, सम्मान देना, आरम्भ में ऐसा लगता है कि इस बहाने इन लोगों से अपनी रक्षा होती रहेगी। वे अपना समझेंगे और आक्रमण न करेंगे। जरूरत पड़ी तो इनसे कुछ सहायता भी मिल सकती है। दूसरे कमजोरों पर इस मैत्री की चर्चा करके उन्हें आतंकित भी किया जा सकता है। इस प्रकार सोचने वाले प्रायः भ्रम में रहते हैं। आततायी, परिचित और निकटवर्ती लोगों को ही अपना शिकार बनाते हैं, क्योंकि उनकी मनःस्थिति और परिस्थिति से वे अधिक अच्छी तरह परिचित होते हैं। उन कमजोरियों को जानते हैं, जिनके आधार पर आक्रमण किया जा सकता है, सफलता पाई जा सकती है। सरल को छोड़कर कठिन को अपनाने के चक्कर में कौन पड़े ? सीधे पेड़ ही काटे जाते हैं। टेढ़े-तिरछे को काटने के झंझट में लकड़हारे भी नहीं पड़ते। अपरिचितों पर हाथ छोड़ने से पहले सौ बार सोचना पड़ता है कि कहीं उलझने पर लेने के देने न पड़ें। किन्तु जिनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी है, उन पर घात लगाने में सरलता भी रहती है और सफलता भी मिलती है। इसलिए देखा गया है कि अपराधी प्रकृति के लोग पहले अपने परिचितों, निकटवर्तियों पर ही हाथ साफ करते हैं। इस कटु सत्य को समझते हुए समझदारों को चाहिए कि वे अवांछनीय तत्त्वों से बचे रहने का प्रयत्न करें। साधारण दुआ सलाम की बात दूसरी है, पर घनिष्ठता की स्थिति तो भूलकर भी नहीं बनने देनी चाहिए। उनके साथ बैठक-उठक का, मेल-जोल का, जाने-बुलाने की स्थिति तो आने ही नहीं देनी चाहिए। साँप-बिच्छू जैसे घातक प्राणियों के समीपवर्ती लोग ही अधिक घाटा उठाते हैं।

कोई समय था जब शत्रु और मित्र की पहचान सरलतापूर्वक हो जाती थी। शत्रु बोलचाल बन्द कर देते थे। कटु शब्द बोलते थे, निन्दा करते थे, झगड़े पर आमादा रहते थे। हानि पहुँचाने का अवसर ढूँढ़ते और समय-समय पर चोट करते थे। इस व्यवहार के आधार पर सरलतापूर्वक जाना जा सकता था कि शत्रु कौन है ? उससे किस प्रकार बचा जाय, कैसे निपटा जाय, इसके उपाय भी सोचे जाते थे और प्रयत्न भी किये जाते थे।

मित्र की पहचान तो और भी सरल थी। वे कठिन समय में सहायता करते थे। हित चिन्तन में, हित साधन में निरत रहते थे। कष्ट-कठिनाइयों से बचाते और आ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ने पर उनसे बचाने में शक्ति भर सहायता करते थे। उनका सद्भाव निःस्वार्थ होता है। कुछ झपट लेने की अपेक्षा अपनी ओर से जो बन पड़ता था, उसे देने की बात ही सोचते थे। गिरने से बचाते और ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे। इन लक्षणों को देखते हुए यह सहज समझा जा सकता था कि कौन मित्र है ? उस पर भरोसा भी रखा जाता था और यह माना जाता था कि अपने पास हित-चिन्तक सहयोगी के रूप में बहुमूल्य सम्पदा है।

आज का प्रचलन इसके सर्वथा विपरीत है। शत्रुओं ने मित्र बनकर घात करने का धन्धा अपना लिया है। वह इस आधार पर अपना स्वार्थ अधिक अच्छी तरह, अधिक सरलतापूर्वक सिद्ध कर लेते हैं। शत्रु से सावधान रहा जाता है, पर मित्र पर तो आमतौर से विश्वास ही किया जाता है। उसकी बातों पर भी भरोसा किया जाता है। उसके क्रिया-कलापों को भी संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जाता। इस सुविधा का लाभ उठाकर मित्र रूपधारी लोग शत्रुता जैसी घात आसानी से लगा लेते हैं। विश्वासघात स्तर के अपराध इन दिनों जितने होते हैं, उतने इससे पूर्व कभी नहीं होते थे। इस प्रचलन को देखते हुए प्रत्यक्ष शत्रुओं की अपेक्षा परोक्ष शत्रुओं से सावधान रहने की अधिक आवश्यकता है। हर किसी के साथ मित्रता जैसी घनिष्ठता बना लेने का यह समय है नहीं। जिनसे मित्रता पलने लगी हो, उनके सम्बन्ध में तो बार-बार समीक्षा करते रहने की आवश्यकता है, अन्यथा सरलता, सज्जनता बरतने वाले बुरी तरह मरते-मारे जाते देखे जाते हैं।

धनी और महिलाओं पर घात लगाने में मित्र वेशधारी ही कमाल करते देखे गये हैं। उधार माँगने, साझा करने के अनेकों बहाने गढ़ लिए जाते हैं। भलमनसाहत इसमें साथी का और अपना भला सोचती है और उनके हाथों पूँजी फँसा देने में संकोच नहीं करती, उनके निमित्त जमानत देने वाले भी इसी प्रकार फँसते और जमानत वाला पैसा स्वयं चुकाते देखे गये हैं। फर्जी जायदाद बेचने, नकली जेवर गिरवी रखने के अतिरिक्त और भी कितनी ही प्रकार की हेरा-फेरी है, जिन्हें मित्र बनकर ही आसानी से किया जा सकता है। ठगे जाने वालों और जोखिम उठाने वालों में अधिकांश वे होते हैं, जो मित्रों द्वारा ठगे गये। ऐसी घटनायें जिनके सामने नहीं आयी हैं, वे दूसरे इस प्रकार के जोखिम उठाने वालों से पूछकर इस प्रचलन को जान लें कि इन दिनों किस प्रकार की मित्रता कितनों को कितना खतरा पैदा करने वाली सिद्ध हुई है ?

जिनके साथ पुराने परिचय हैं, जिनकी आदतों का, स्वभाव का, चाल-चलन का पहले से ही बहुत अधिक परिचय है उनकी बात दूसरी है अन्यथा कुकरमुत्ते की तरह यकायक उगने वाली मित्रता और देखते-देखते बन जाने वाली घनिष्ठता से ही अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता है। इस प्रकार हथेली पर सरसों जमाने का बाजीगरी खेल वे ही खेलते हैं, जिन्हें जल्दी-जल्दी अपना स्वार्थ सिद्ध करके नौ-दो ग्यारह होना है। जहाँ ऐसी मैत्री उभर पड़े, वहाँ समझना चहिए कि कोई कुचक्र उसके साथ जुड़ा हुआ है। उस बढ़ती दोस्ती से हाथ पीछे न हटाया गया तो समझना चाहिए कि किसी बड़े अनर्थ का शिकार बनने में देर नहीं है।

नई पीढ़ी के लड़के अपनी कुदृष्टि वाली घात को सफल बनाने के लिए किन्हीं लड़कियों के साथ किसी प्रकार निकटता बनाने की कोशिश करते, बहन, भतीजी, भान्जी का रिश्ता जोड़ते हैं। बात कुछ भेंट उपहार देने से आरम्भ करते हैं। मेले-तमाशों में साथ ले जाने में सफल हो जाते हैं। यहीं से अवांछनीय हरकतों का सिलसिला चल पड़ता है। जब तक बात छिपी रहे, तब तक तो खैर, पर ऐसे प्रसंग प्रकट हुए बिना नहीं रहते। चर्चा का विषय बनने पर लड़के-लड़की के परिवार की इज्जत पर अँगुली उठने लगती है और जब विवाह-शादी का समय आता है, तब वही बदनामी ऐसे संकट खड़े करती है, जिनकी कभी पहले कल्पना भी नहीं की गई थी। विवाह कर लेने की सौ-सौ कसमें खाने वाले अक्सर कहीं से नया आकर्षक प्रस्ताव आने पर उस खिलवाड़ को पूरी तरह भूल जाते हैं, जो उन्होंने प्रेम-प्रसंग चलने के दिनों की थी। इस स्थिति में लड़के तो पल्ला झाड़कर अलग हो जाते हैं, पर लड़कियों को जिस संकट का सामना करना पड़ता है, उसे जान सकना दूसरों के लिए कठिन है।

मित्रता की परिधि में आने वाले लोगों में सभी एक जैसे नहीं होते। उनमें कुछ अच्छे एवं उपयोगी भी होते हैं, जिनके मिलने से शक्ति सामर्थ्य में अनेक गुनी वृद्धि होती है। महत्वपूर्ण कार्य सधते हैं। संघ शक्ति का महत्त्व सर्वत्र माना गया है, पर संशयावस्था में भले-बुरे का चयन करने के पीछे कोई कसौटी होनी चाहिए। वह यह है कि घनिष्ठता साधने वाला व्यक्ति आदर्शों की उत्कृष्टता अपनाने की, आत्मशोधन की, लोक-कल्याण की चर्चा करता है या किसी भी प्रकार स्वार्थ साधने के लिए परामर्श देता है। आदमी के पेट में जो कुछ होता है, वही उसके मुँह से निकलता है। वार्तालाप में वे बातें उभरकर ऊपर आती हैं जो पेट में होती हैं। शराब पीकर आने वाले के मुँह से बदबू आती है। इस प्रकार दुरात्मा मधुर वार्तालाप करते हुए उन प्रयोजनों की ओर आकर्षित रहते, आकर्षित करते दीख पड़ते हैं, जो नीति-मर्यादाओं का उल्लंघन करके किसी भी प्रकार स्वार्थ सिद्ध कर लेने वाली बात का समर्थन करते हैं। यही वह कसौटी है, जिस पर कसने से कुछ ही दिनों में प्रकट हो जाता है कि घनिष्ठता साधने का उद्देश्य क्या है ? सच्चे मित्र वे ही हो सकते हैं, जो नीति पर चलते हैं और दूसरों को नीति पर चलाते हैं। इसके विपरीत जिनको अनीति करते और अनीति करने के लिए प्रेरित करते पाया जाय, समझना चाहिए कि इनकी घनिष्ठता में खतरा ही खतरा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकर्षक लगने वाली सभी वस्तुयें उपयोगी नहीं होतीं। सर्प, बिच्छू, कातर, कनखजूरे जैसे प्राणी देखने में सुन्दर लगते हैं, पर उनके गुणों को देखने पर पता चलता है कि वे समीप आने वाले को कितना त्रास देते हैं। प्रथम पहचान में ही न किसी का मित्र बनना चाहिए और न किसी को बनाना चाहिए। चरित्र के बारे में बरीकी से देखना, समझना और परखना चाहिए। मात्र शालीनता के प्रति आस्था रखने वाले और आदर्शों का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन करने वाले ही इस योग्य होते हैं कि उनसे घनिष्ठता का सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

प्रतिरोध अनिवार्य रूप से आवश्यक

कुछ लोग अपराधों के अभ्यस्त हो जाते हैं, लगातार दुष्कृत्य करते और उनसे लाभ उठाते रहने के उपरान्त उनकी मान्यता बन जाती है कि आक्रमण में लाभ ही लाभ है। अनीति अपनाकर अधिक लाभ उठाया जा सकता है। कम परिश्रम में अधिक लाभ उठाने का चस्का ऐसा है, जो एक बार किसी को लग जाने पर बाद में उसे छुड़ाना-छोड़ना कठिन होता है। गुण्डों की भी एक बिरादरी है, वे अपने संगी-साथी ढूँढ़ लेते हैं, गिरोह बना लेते हैं और सम्मिलित रूप से षड्यन्त्र बनाते, कुचक्र रचते और अनेक उपायों से भोले-भालों पर आक्रमण करते हैं और उनसे अनुचित लाभ उठाते हैं। सामान्य लोगों की प्रकृति किसी प्रकार झंझटों से बचे रहने की होती है, वे अनीति सहकर भी इसलिए चुप हो जाते हैं कि कौन विरोध करके अधिक उपद्रव बढ़ाये, अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना को आमन्त्रित करे। इस भलमनसाहत दिखाने वाली बात के पीछे डरपोकपन-कायरता का पुट भी रहता है—इसी कमजोरी का लाभ उठाकर अवांछनीय तत्त्वों के हौंसले बढ़ते हैं और वे अधिक उत्साहित होकर बड़े कदम उठाते हैं। जिस प्रकार आग में ईंधन पड़ते रहने से वह भड़कता है, उसी प्रकार जनसाधारण को डरपोक पाकर आक्रमणकारी अपनी गतिविधियों को और भी अधिक व्यापक बनाते जाते हैं। इस लाभ को उठाने में उनके साथी-सहचर भी अनेक बन जाते हैं, इस प्रकार गुण्डों के गिरोह प्रायः बढ़ते ही जाते हैं। रोकथाम के कारगर प्रयत्न न होने पर अवांछनीयता की यह अभिवृद्धि स्वाभाविक भी है।

देखना यह है कि दुष्टता की इस अभिवृद्धि को दिनदिन अधिक व्यापक बनने से रोका कैसे जाय ? मोटा उत्तर यह हो सकता है कि सरकार इसे रोके, पुलिस उन लोगों को पकड़े, मुकदमा चलाये और जेल पहुँचाये। पर यह सब कहना जितना सरल है उतना करने में आसान नहीं है। अपराधों की रोकथाम करने की जिम्मेदारी जिनकी है उन लोगों में से सभी ईमानदार और कर्तव्य पालन करने वाले होते हों ऐसी बात नहीं है। अनुचित लाभ उठाने का चस्का, जिस पर अवांछनीय तत्त्वों को लाभ हुआ है—हो सकता है कि वैसी ही प्रवृत्ति उन लोगों में भी घुस पड़ी हो जो अनाचारियों से तालमेल बिठाकर अपनी साझेदारी का द्वार खोलते हों। ऐसी दशा में स्थिति और भी विषम हो जाती है, एक ओर जनता की कायरता दूसरी ओर पकड़ने वालों की साँठ-गाँठ। इस ओर दुहरा प्रोत्साहन मिलने से तसकरों को दोनों ओर से प्रोत्साहन मिलता है। चुप रहने की नीति अपनाने पर यह कुचक्र और भी अधिक बढ़ जाता है।

सोचना यह है कि दुःखद परिस्थितियों को रोका कैसे जाय ? इसके लिए कई उपाय हो सकते हैं, जहाँ तक सरकारी अपराध निरोधक तन्त्र का प्रश्न है उसकी उपयुक्तता तभी बन सकती है, जब उनका नियंत्रक तन्त्र वस्तुतः ईमानदार हो और सच्चे मन से रोकथाम का इच्छुक हो। यदि ऐसा न हो तो ऊपर वाले की शिथिलता पर साझेदारी रहने की दशा में तो सब कुछ ढकोसला ही बनकर रह जाता है। अपराधियों को पकड़ने की दौड़-धूप दिखावा मात्र बनकर रह जाती है। वास्तविक अपराधी पकड़े नहीं जाते, पकड़े जाते हैं तो मुकदमें में खमियाँ रहने या गवाह न मिलने की स्थिति में छूट जाते हैं जमानत करा लेते हैं, छूटने पर वे अपने पकड़े जाने में सहायता करने वाले पर और भी अधिक क्रुद्ध होकर अधिक घातक प्रहार करते हैं। इस प्रकार अपराधियों को सरकारी तन्त्र द्वारा पकड़े जाने की व्यवस्था तभी कारगर सिद्ध हो सकती है, जब उसके पीछे कर्तव्यपरायणता एवं ईमानदारी का गहरा पुट हो।

देखना यह है कि क्या सरकारी समुचित सहायता न मिलने पर भी बड़े स्तर पर बढ़ती अपराधी प्रवृत्ति की रोकथाम में कुछ कारगर भूमिका हो सकती है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि 'नागरिक पुलिस' के रूप में एक वर्ग ऐसा गठित किया जाय जो अपराधियों को प्रताड़ित करने में सहायता करे। पुलिस को आमतौर से शिकायत रहती है कि अपराधों की सम्भावना से अवगत होते हुए भी उन्हें समय रहते सूचना नहीं मिल पाती। फलतः उनके लिए समय से पूर्व दबोचना सम्भव नहीं होता। इस शिकायत को दूर करने का दायित्व यह सेवा-दल स्तर का संगठन अपने कन्धों पर उठाये। यदि इससे कुछ कम सधने की संभावना दीखती हो तो उसके सम्बन्ध में जनता का पूरा सहयोग मिले, अकेला व्यक्ति डरकर चुप हो सकता है, पर यदि विरोध के मोर्चे पर एक संगठन बन गया हो तो हर किसी का हौंसला बढ़ सकता है और गुण्डागर्दी का विरोध हो सकता है, पुलिस का यथासंभव सहयोग मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अपराधियों के विरुद्ध गवाहियाँ न मिलने की समस्या का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हल भी जनस्तर पर ही करना पड़ेगा। जिन्हें अपराधियों की वास्तविक जानकारी है, उन्हें गवाही देने की हिम्मत करनी चाहिए। समझना चाहिए कि यह भी समाज की एक महत्त्वपूर्ण सेवा है, मानवता के साथ, सामाजिकता के साथ जुड़ी हुई एक बड़ी जिम्मेदारी है कि अपराधियों को पकड़वाने से लेकर उन्हें दण्ड दिलाने तक की घटनाओं को इस बहाने दब जाने की स्थिति न आने दें कि उन्हें गवाहियाँ नहीं मिलीं। जिस समाज में इतना भी साहस न होगा, उसे दबते-पिसते और अनीति सहने की शिकायत भी क्यों करनी चाहिए ? अपनी सहायता आप करने पर ही दूसरे लोग सहायता करने के लिए आगे आते हैं—इस तथ्य को समझते हुए ही अनीति प्रतिकार की योजना बनानी चाहिए।

मोर्चा खाली देखकर ही थोड़े से आक्रमणकारी भी चढ़ दौड़ते हैं और मनमानी सफलता प्राप्त कर लेते हैं। यह स्थिति न आने दी जाय तो अपराधों की रोकथाम का प्रयोजन बड़ी सीमा तक सरल हो सकता है। जहाँ चौकीदार और चौकसी का प्रबन्ध सही होता है, वहाँ चोरी की घटनायें प्रायः कम ही होती हैं, जहाँ सन्नाटा छाया रहता है, वहीं घात अधिक लगती है। अपराध विरोधी नागरिक दल यदि संगठित, सजग और कटिबद्ध रहें तो वह अपने बलबूते भी ऐसा माहौल बना सकता है जिसके रहते अपराधियों की दाल गलना कठिन हो जाय। जहाँ प्रतिरोध की सम्भावना देखते हैं, वहाँ से आततायी भी कन्नी काटते हैं। आधी संभावना तो संगठित नागरिक-पुलिस का गठन होने पर भी टल जाती है। अनाचारी प्रायः रात के अन्धेरे में ही घात लगाते हैं, दिन में तो उनका हौंसला भी पश्त रहता है। अन्धकार वहाँ समझा जा सकता है, जहाँ रोकटोक करने के लिए कटिबद्ध व्यक्ति या संगठन नहीं है। अन्धेरे में ही कृमिकीटक पलते हैं, वही चमगादड़-छछूँदर घर बनाते हैं। गन्दगी में मक्खियाँ और सीलन में मच्छर अपना वंश बढ़ाते हैं। प्रतिरोध की सम्भावना न रहने पर ही अनाचार का हौंसला बढ़ता है—इस तथ्य को समझते हुए हर जगह, हर गाँव-मुहल्ले में ऐसे शूरवीर साहसियों के संगठन खड़े करने चाहिए जिसे अपराध निरोधक तन्त्र समझा जा सके। उनका नाम 'सेवा-दल' जैसा कुछ भी रखा जा सकता है।

इस दल का प्रथम कार्य प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा की जिम्मेदारी और अनीति से निपटने की साहसिकता उत्पन्न करने वाली भावनायें जगाना होना चाहिए। जनसाधारण के मन में से भय की भावना को हटाया जाय और उस शौर्य-साहस को जगाया जाय जो अनीति को सहन करने से इन्कार कर सकने की मुद्रा अपना ले। इस प्रकार का सार्वजनिक मनोबल बढ़ाने के लिए उसी स्तर का साहित्य पढ़ाने-सुनाने, नाटक-अभिनय दिखाने, काव्य-संगीत आदि के आयोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि ऐसे साहसिक घटनाक्रम प्रत्यक्ष घटित नहीं होते, वैसे प्रतिरोध सामने देखने में नहीं आते तो भी उस अभिनय की पूर्ति प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर जनसाधारण के मन में जमाये जाने चाहिए। यह विशेषता जन्मजात रूप से उत्पन्न की जानी चाहिए, यह भी ईमानदारी-समझदारी के समान ही एक अतिमहत्त्वपूर्ण गुण है। उसके बिना मनुष्य का प्रगति करना तो दूर, जीवित रहना भी कठिन है। यह भावना नागरिक में, हर स्त्री-बच्चे में भरी जानी चाहिए। जंगल में आदिवासी हिंसक पशुओं के बीच झोंपड़ी डालकर ही निर्वाह कर लेते हैं—यह हिम्मत का खेल है। उन्नति के लिए भी और सुरक्षा के लिए भी इसकी महती आवश्यकता है, गुण्डों से निपटना भी इसी मनोबल के आधार पर सम्भव हो सकता है। जहाँ इस स्तर का नागरिक सहयोग मिलेगा वहीं सुरक्षा समितियाँ भी साहसपूर्वक काम कर सकेंगी अन्यथा उस दल में शामिल होने वालों को उनके घर वाले ही डराकर रोक देंगे और जो प्रयत्न रोकथाम के, पहरेदारी के आरम्भ हुए भी हैं तो वे जीवन्त न रह सकेंगे।

निजी रूप से हर व्यक्ति को अपने निकटवर्तियों-पड़ौसियों से इस स्तर की घनिष्ठता स्थापित करनी चाहिए कि वे एक-दूसरे के दुःख-दर्द में, आड़े समय में काम आ सकें और साथ दे सकें। जहाँ इस प्रकार के सहयोग की भावना रहती है, वहाँ भी अघोषित सुरक्षा की पंक्ति बन जाती है और उस बाड़ को लाँघकर भीतर प्रवेश करने की हर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। जहाँ असहयोग, उदासी, उपेक्षा रहती है, वहाँ टकराव की स्थिति भले ही न बने, पर बिलगाव की भावना तो रहती ही है। ऐसे असंगठित समुदाय एक-एक करके पिटते रहते हैं और कोई किसी की सहायता के लिए आगे नहीं आता। यह स्थिति किसी भी क्षेत्र में न बन पाये—इसका ध्यान हर समुदाय के मूर्धन्य लोगों को विशेष रूप से रखना चाहिए। इस प्रकार संभावना और साहस का माहौल बनाना भी सुरक्षा का प्राथमिक एवं कारगर उपाय है।

गन्दगी बनी रहने पर मक्खी, मच्छर, जुँये, खटमल, पिस्सू जैसे कृमि-कीटक उत्पन्न होते रहेंगे, इनकी उपज तब तक नहीं रोकी जा सकती, जब तक कि सफाई के लिए कीटमारक रसायनों का समुचित प्रबन्ध न हो। गुण्डागर्दी सबसे सरल और फायदेमन्द धन्धा है, रौब गाँठने, डराने, चापलूसी बटोरने का अवसर मिलता है। मुफ्त का माल भी बड़ी मात्रा में सहज ही हाथ लगता है, यह चस्का जिनको लग गया है, वे छोड़ने का नाम नहीं लेते, जब तक कि उनका कार्य कठिन न बन जाय। प्रतिरोध समर्थ बनकर सामने खड़ा न हो जाय, उन पर समझाने-बुझाने का तो यत्किंचित ही प्रभाव पड़ता है फिर भी वह प्रयास छोड़ा नहीं जाना चाहिए। मनुष्य के अन्दर भलमनसाहत भी कहीं न कहीं, किसी न किसी कोने में छिपी रहती है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे जगाने का प्रयत्न किया जाता रहे तो यह भी हो सकता है कि कुकर्मी भी अपना रास्ता बदल दें और भले आदमियों की राह अपना ले।

बड़ी बात दुर्जनों को समझाकर सज्जनता के मार्ग पर लाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उनके गिरोह को छिन्न-भिन्न करने से लेकर घात लगाने की चलती प्रक्रिया में कारगर अवरोध खड़े कर देना। इसके लिए जनसाधारण को साहस जगाने वाला प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, प्रतिरोध कर सकने वाली साहसिक मण्डलियों का गठन किया जाना चाहिए और सरकारी तन्त्र तक यह आवाज पहुँचाई जानी चाहिए कि उसके भागीदार अधिकारी-कर्मचारी उस कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करें, जिसके लिए उन्होंने जिम्मेदारी कन्धे पर उठाई है। इस कार्य में उन्हें जहाँ भी कठिनाई अनुभव हो रही हो, उसे दूर करने के लिए जागरूक नागरिकों को समुचित प्रयत्न करना चाहिए। जनता का साहस, सुरक्षा बलों का पराक्रम और सरकारी तन्त्र का समुचित योगदान यदि मिलने लगते तो गुण्डागर्दी का उन्मूलन उतना कठिन न रहेगा जितना अब है।

रोकथाम भी और प्रतिरोध भी

किशोरावस्था तेरह-चौदह वर्ष से आरम्भ होती है, पर वह चली जाती है पच्चीस-छब्बीस वर्ष तक। बिना मूँछ वाले ही नहीं मूँछ वाले तरुण भी किशोरों में गिने जाते हैं। कारण कि उनमें जोश तो असाधारण रहता है, पर होश की कमी पाई जाती है। होश का तात्पर्य है—दूरदर्शिता, विवेकशीलता। यह अनुभवजन्य होता है। अनेकों के साथ अनेक प्रकार की घटित हुई भली-बुरी घटनायें बताती हैं कि किसी क्रिया का क्या परिणाम होता है ? किस प्रवाह में बहने पर कहाँ पहुँचा जा सकता है ? यह बहुज्ञता से सम्बन्धित है। इसे बाह्य क्षेत्र में घटित होने वाली घटनाओं के द्वारा प्रस्तुत हुए परिणामों को देखकर अधिक सरलतापूर्वक जाना जा सकता है, पर यह कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है। कितने ही विचारशील ऐसे भी होते हैं जो चिन्तन, मनन और कल्पना शक्ति के आधार पर उचित-अनुचित का निष्कर्ष निकाल लेते हैं। उनका पूर्व संचित ज्ञान और सज्जनों के साथ विचार-विनिमय भी बहुत कुछ सिखा देता है। सत्साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने पर भी मनीषियों के निर्धारणों, प्रतिपादनों से भी ऐसा कुछ सीखा जा सकता है, जो बड़ी आयु के विचारशील बहुधा प्राप्त कर पाते हैं।

सही मार्ग पर चलते हुए प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचना और गलत दिशा में चल पड़ने पर अनेकानेक संकटों का सामना करना ऐसा तथ्य है जिसे जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही उत्तम है। इस संदर्भ में जहाँ जितनी कमी पाई जाती है, वहाँ उतनी ही कच्ची-पक्की किशोरावस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। यही वह अवधि है जिसे किसानों के बीज बोने वाली अवधि कहते हैं। मौसम के कुछ ही दिन ऐसे होते हैं जिनमें बीज बोने पर समुचित रीति से फसल उगती है। यदि यह समय चूक जाय तो समझना चाहिए कि फसल की बहुत बड़ी सम्भावना तिरोहित हो गयी। इस तथ्य को समझते हुए समझदार किसान बीज बोने की अवधि का विशेष रूप से ध्यान रखते हैं और उसे हाथ से नहीं जाने देते। किशोरावस्था को भी ठीक ऐसा ही अवसर माना जाना चाहिए। उसमें स्कूली शिक्षण ही नहीं साथ-साथ यह प्रयत्न भी चलना चाहिए कि सभ्यता, सुसंस्कारिता पनपे और नागरिकता, सामाजिकता की मर्यादाओं का स्वभाव में समुचित समावेश चल पड़े।

उठती आयु के किशोर प्रायः स्कूल से चलकर घर तक और घर से चलकर स्कूल तक ही आते-जाते हैं। खेलकूद की आवश्यकता वे पास-पड़ौस में ही पूरी कर लेते हैं। अभिभावकों की नजर भी इन पर रहती है, पर आयु अठारह वर्ष से ऊपर निकल जाने और पच्चीस के लगभग पहुँचने तक स्थिति में भारी अन्तर आ जाता है। पढ़ना है तो कालेज जाना पड़ता है, जो घर से दूर होता है। जाने-आने में समय लगता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, स्काउटिंग खेलकूद आदि अन्यान्य प्रसंगों का भी समावेश होता है। इनमें भी समय लगता है। फिर पढ़ाई के सम्बन्ध में अन्य साथियों के घर पूछताछ करने की भी उपयोगिता समझी जाती है। ऐसे ही अनेक प्रसंगों को जोड़कर घर से बाहर रहने का वास्तविक या अवास्तविक कारण गिना देने का अवसर रहता है। इसी बचे हुए समय में यदि नव-युवक चाहे तो कुसंग में पड़ने के लिए अधिक समय निकाल सकते हैं। छोटे बच्चों का तो किसी दिशा में रुझान ही होता है, पर बड़ी आयु के किशोर तो उसे चरितार्थ भी कर सकते हैं। पढ़ाई के लिए, जेब खर्च के लिए कुछ पैसा भी उनके पास रहता है उसे वे चाहें तो गलत कार्यों में खर्च करते रह सकते हैं। अभिभावकों तक वस्तुस्थिति को छिपाते रहने में भी अपनी विकसित बुद्धि के सहारे सफल हो सकते हैं। नशेबाजी इन्हीं दिनों कुसंगति के कारण आरम्भ होती है। सिनेमा देखने का चस्का इसी खाली समय में लगता है। अश्लील हरकतों से लेकर आवारागर्दी तक के अनेकों दुर्व्यसन पल्ले बँध जाते हैं। यदि किन्हीं को सुयोग मिला तो वे शालीनता के वातावरण एवं समुदाय के साथ भी अपनी घनिष्ठता बना लेते हैं। इन्हीं दिनों अपने चिन्तन को किसी भली-बुरी दिशा के साथ जोड़ा जाता है। जड़ जमने की यह अवस्था है। बाद में तो व्यक्ति कमाने-धमाने के फेर में लग जाता है और जो स्वभाव आरम्भिक दिनों में बन गया है, उसी के अनुरूप आचरण करता रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चूँकि सज्जनता का वातावरण एवं अवसर कम है। सब ओर दुःस्वभाव, कुप्रचलन एवं अनाचार का ही बोलबाला है। ऐसी दशा में बहुमत का दबाव और अनाचार का आकर्षण युवकों को अधिक प्रभावित करता है। मानवी मर्यादाओं का उल्लंघन करने की, उच्छृंखलता अपनाने की आदत उन्हें यही से पड़ जाती है। यह आरोपण आगे चलकर विष-वृक्ष के रूप में परिणत होता है।

उठती आयु के किशोरों की अपेक्षा बढ़ते और पकती आयु के युवक कुविचारों को अनाचार के रूप में क्रियान्वित करने में अधिक सफल होते देखे गये हैं। इन दिनों विशेष देखभाल की जरूरत है। संकट से बचाने का ठीक समय यही है। इसके लिए सतर्कता, जांच-पड़ताल, रोकथाम की तो आवश्यकता है ही साथ ही यह प्रयत्न भी होना चाहिए कि उन्हें सुसंगति भी मिले। समय का कार्यक्रम ऐसा बने जिससे उपयोगी कार्यों की व्यस्तता ही छाई रहे। अच्छी प्रकृति वाले सज्जनों के साथ ही बैठना-उठना बन पड़े। अच्छा हो दोस्तों का चुनाव लड़कों के ऊपर न छोड़ा जाय, उनकी टोली बनाने में अभिभावक तथा अध्यापक भी रुचि लें। साथ ही उनके साथ वार्तालाप करते रहने का भी उपक्रम चलायें। देखा यह गया है कि आयु बढ़ने के साथ-साथ अभिभावकों और किशोरों के बीच अनावश्यक संकोचशीलता पनपने लगती है। इससे विचारों के आदान-प्रदान में, वस्तुस्थिति समझने और समझाने की व्यवस्था में अड़चन खड़ी हो जाती है। फलतः सुधार-परिवर्तन की संभावनायें भी घट जाती हैं। अच्छा हो यह स्थिति कहीं भी न बने। जिस प्रकार छोटे बालकों और अभिभावकों के बीच प्यार-दुलार का, हँसने-हँसाने का उपक्रम चलता रहता है, उसी प्रकार उसमें थोड़ा सुधार करके आयु के अनुरूप स्तर का विचार विनिमय चलता रहे और रोकथाम से लेकर आवश्यक सुझाव पूछने या देने का सिलसिला चलता रहे।

जिन्होंने पढ़ाई आरम्भ ही नहीं की या थोड़ा पढ़कर स्कूल से नाम कटवा लिया, उनकी समस्या और भी अधिक जटिल है। वे पूरे मन से, पूरी शक्ति से, पूरे समय घर का काम तो करते नहीं, घर वाले भी उन पर वैसा दबाव नहीं देते। उपेक्षा की मनःस्थिति में किया काम भी अस्तव्यस्त ही रहता है। ऐसी दशा में परिवार वाले खीझते रहते हैं और रुष्ट होकर असहयोग जैसी स्थिति बना लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि युवक आवारागर्दी में जहाँ-तहाँ घूमने लगते हैं और पढ़ने वाले छात्रों की अपेक्षा इन अध-कचरे, अस्त-व्यस्त युवकों की समस्या और भी अधिक जटिल बन जाती है। अशिक्षा और अनगढ़ स्थिति उन्हें एक प्रकार से और भी अधिक जटिल बना देती है। उन्हें सँभालने में उस दशा में और भी अधिक कठिनाई होती है, जबकि परिवार वाले स्वयं अशिक्षित और समस्याओं से निपटने में अपने पिछड़ेपन के कारण अक्षम हैं।

युवकों को एक उपयोगी मोड़ देने की योजना यह है कि उनके लिए सर्वत्र व्यायामशालायें स्थापित की जायें। उनमें सम्मिलित होने के लिए हर उठती उम्र वाले को सहमत किया जाय। स्वास्थ्य रक्षा में व्यायाम के योगदान से विस्तारपूर्वक अवगत कराया जाय। यह दिलचस्प विषय ऐसा है, जिसमें यदि नई पीढ़ी को मोड़ा जा सके तो वे अपने शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी सुधार सकते हैं। अपना भविष्य बिगड़ने से बचा सकते हैं और प्रगति मार्ग पर चल पड़ने का एक नया आधार प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले दिनों व्यायाम के लिए मात्र कसरत तक सीमित थे। उनसे दण्ड-बैठक कुश्ती आदि का अभ्यास कराया और पहलवान बनाया जाता था। अब इस समग्रता के युग में उनके साथ स्वास्थ्य संरक्षण और स्वास्थ्य संवर्द्धन के अनेकानेक पक्ष जुड़ गये हैं। इस आधार पर दुर्बलता और रुग्णता से भी छुटकारा पाया जा सकता है तथा सामान्य स्वास्थ्य असामान्य बलिष्ठता में विकसित किया जा सकता है। पाठशालाओं की तरह व्यायामशालाओं का भी महत्त्व समझा जाना चाहिए। उन्हें हर जगह स्थापित ही नहीं सक्रिय एवं सक्षम भी बनाया जाना चाहिए। उन्हें चरित्रनिष्ठा एवं अनौचित्य के विरोध का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

समर्थता उभरते देखकर अवांछनीय तत्त्वों की हिम्मत टूटती है, आक्रामकों के इरादे बदलते हैं। जिनने आक्रामक नीति अपनाई हुई है, उन्हें भी अपने पैर पीछे हटाने में ही भलाई दीखती है। बिना चोट पहुँचाये वह प्रयोजन सिद्ध होता हैं, जो दाँत खट्टे कर देने की स्थिति में ही बन पड़ता है। शक्ति का प्रदर्शन भी शक्ति के प्रयोग को रोकता है। फटा बाँस फटकारते रहने पर भी जंगली जानवर भाग खड़े होते हैं। किसान खेतों में 'काग-भगाऊ' दिखावा बनाकर खड़े कर देते हैं। उसे देखकर चिड़ियायें नहीं उतरतीं और लोमड़ी-खरगोश जैसे छोटे जानवर खेत में प्रवेश करने से कतराते हैं। व्यायामशालाओं में कसरत करने वालों और लाठी चलाना सीखने वालों को देखकर अनाचारियों की हिम्मत पस्त होती है। साहस का दिखावा भी बल प्रयोग जितना काम कर जाता है। नवयुवकों की व्यायामशाला और समर्थ नागरिकों का सेवादल जैसा संगठन बनना भी गुण्डा तत्वों की रोकथाम का एक कारगर एवं सस्ता उपाय है। कनस्तर बजा करके छोटे लोमड़ी, खरगोशों से ही नहीं बड़े हिरन, शूकरों से भी खेत की रक्षा कर ली जाती है। प्रसिद्ध है कि चोर के पैर नहीं होते, वह घर का बच्चा जग जाने और रोने-चिल्लाने की आवाज भर सुनकर भाग खड़ा होता है। यही बात उन अत्याचारियों के सम्बन्ध में भी लागू होती है, जो कमजोर असंगठित वर्ग को ही आमतौर से अपना शिकार बनाते हैं। जहाँ उन्हें विश्वास होता है कि प्रतिरोध की आशंका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है, वहीं वे अपना शिकंजा कसने का प्रयत्न करते हैं। जब उन्हें प्रतीत होता है कि यहाँ तो दाँत खट्टे कर देने वाली प्रतिरोधक शक्ति मौजूद है, वहाँ से वे सहज ही किनारा कस लेते हैं और अपनी जान बचाते हैं। इस तथ्य से सर्वसाधारण को विशेषतया उत्पीड़न ग्रस्तों को बचाया जाना चाहिए। यदि इतना भर जनसाधारण को सिखा दिया जाय तो मनोबल बढ़ने भर से आधी मात्रा में गुण्डागर्दी का समापन हो सकता है।

साँप जब तक अपनी आत्मरक्षा के लिए आवश्यक नहीं समझता तब तक काटता नहीं। खतरे को अपने से दूर रखने के लिए वह गरदन उठाकर फुँसकारता ही रहता है । इस फुँसकार के पीछे यह तथ्य भी सम्मिलित रहता है कि वह जरूरत पड़ने पर काट भी सकता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि फुँसकार किसी बनावटी की है, बिना जहरीले साँप की है, तो फिर लोग चिढ़कर उसे और भी अधिक परेशान करने का प्रयत्न करते हैं। समझदारों को अत्याचारियों से बचने के लिए आवश्यक शक्ति भी एकत्रित करनी पड़ती है और साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि शक्ति के प्रदर्शन से काम चल जाय, उसका प्रयोग न करना पड़े तो अच्छा है। सतर्कता, सुरक्षा, व्यवस्था, संगठन और साहसिकता ऐसे तत्व हैं, जिनके सहारे अत्याचारियों के अतिक्रमण का खतरा बहुत कुछ कम हो जाता है। यों उन्हें समझाने-बुझाने का क्रम भी समाप्त नहीं करना चाहिए। मनुष्य मनःस्थिति और परिस्थिति बदलने पर अपने आचरण में परिवर्तन भी कर सकते हैं।

बचिये नहीं निपटिये

सन्तजनों और उत्कृष्ट भावनाशीलों के लिए यही आदर्श उपयुक्त है कि अपराधियों को भूले-भटके माना जाय। उनके लिए भी करुणा और ममता सँजोये रखी जाय, किये हुए आक्रमणों से उत्पन्न आक्रोशों को भुला दिया जाय और क्षमाशीलता का परिचय दिया जाय। हृदय परिवर्तन की आशा रखी जाय और अपने सद्व्यवहार से निष्ठुरजनों के पसीजने-पिघलने की आशा रखी जाय। सन्त-जन ऐसा करते भी रहे हैं, उनकी इस ममता और करुणा को चरितार्थ किये जाने के अनेक उदाहरण भी मिलते हैं। पानी में बहते बिच्छू को एक सन्त ने हाथ पर रखकर बाहर निकाला, उसने डंक मार दिया और फिर पानी में बह चला—सन्त ने फिर निकाला। इसी प्रकार अन्त तक वही उपक्रम चलता रहा।

यह नीति उच्चस्थिति पर पहुँचे हुए सन्तों के लिए उपयुक्त भी है। उनका आत्मबल बढ़ा-चढ़ा होता है इसलिए वे अपने प्रयोग की सफलता पर विश्वास भी रख सकते हैं, पर आवश्यक नहीं कि वह आशा सफल होती रहे। ईसा, मंसूर, सुकरात जैसे अनेकों उदारचेताओं को इस प्रयोग में अपने प्राण गँवाने पड़े हैं। आक्रांताओं की पीछे भले ही निन्दा होती रही हो, क्षमाशीलता को भले ही सराहा जाता रहा हो, पर तत्काल तो यही देखा गया कि क्षमाशीलता के प्रयोग प्रायः प्रत्यक्ष रोकथाम की दृष्टि से असफल ही रहते हैं आक्रान्ताओं द्वारा सन्तों को सताया और उस पर गर्व जताया जाता रहा है, इससे उनका अहंकार बढ़ा है और दूसरों पर ऐसे ही आक्रमण करते रहने का दुस्साहस हुआ है। इस दृष्टि से सर्वसाधरण के लिए व्यावहारिक उपचार की दृष्टि से इसे अनुपयुक्त ही ठहराया जाता रहा है। जलती आग को बुझाया जाता है, यदि उसे छूट दी जाती रहे तो छोटी चिन्गारी दावानल का भयंकर रूप धारण कर सकती है और सर्वनाश के दृश्य उपस्थित कर सकती है। हिंसक जन्तुओं से निपटना ही पड़ता है और उन्हें भगाने का उपाय अपनाना पड़ता है। साँप, बिच्छू शिक्षा देने से कहाँ मानते हैं, उनसे बचना सम्भव न हो सके तो डण्डे से निपटाना पड़ता है। जुँये-खटमल, पिस्सू जैसे कृमि-कीटकों से पीछा छुड़ाना भी अहिंसा व्रत धारण करके सम्भव नहीं हो सकता। पूजा-पाठ द्वारा शत्रु को भगा देने का प्रयोग आक्रमणकारियों को रोकने में सफल नहीं हो सका और सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर गजनवी के आक्रमण से धराशायी हो गया। यदि क्षमा ही सर्वत्र कारगर रही होती तो फिर सुरक्षा सेना की, पुलिस की, जेल-फाँसी आदि की आवश्यकता ही न पड़ती। अनाचारियों को किसी सन्त-सज्जन के सुपुर्द करके उन्हें सुधार लिया जाता। क्षमा अपवाद हो सकती है। दया-अहिंसा का उपयोग सन्तों के लिए विशिष्ट आदर्श उपस्थित करने की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है, पर उसे लोकव्यवहार में निर्विवाद रूप से सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

आक्रमण होने से पूर्व अपनी स्थिति इस स्तर की बना लेनी चाहिए जिसे देखते हुए हर कोई चढ़-दौड़ने की हिम्मत न करे। हमला करते हुए उसे सौ बार विचार करना पड़े कि इसमें घाटा भी उठाना पड़ सकता है और लेने के देने पड़े—यह भी आ सकता है। यदि इतना अनुभव कराया जा सके तो बहुत अंशों में आक्रमण की संभावना रुक सकती है। बहुत बार साँप को काटे बिना भी छेड़ने वालों को भगा देने में सफलता मिल जाती है, वह उठकर फुसकारता है ओर ऐसी मुद्रा बनाता है जिससे छेड़ने वालों को जान बचाकर भागने के अतिरिक्त और कुछ करते-धरते न बन पड़े। नासमझ, उद्धत जानवरों को पीट-पीटकर ही काबू में लाया जाय—यह आवश्यक नहीं। फटा बाँस जमीन पर फटकारते रहने पर भी घुड़की देने वाले बन्दरों को आगे बढ़ने से रोका जा सकता है। खेत खाने वाली चिड़ियों को कनस्तर बजाकर भी भगा दिया जाता है। माली अपने बगीचे के फलों की रखवाली इसी नीति को अपनाकर करते हैं। तोते-कौए मरते तो नहीं, पर इस प्रकार का माहौल देखकर वे भाग खड़े होते देखे गये हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर व्यक्ति अपने को ऐसा चुस्त-दुरुस्त रखे जिससे प्रतीत हो कि वह किसी भी आक्रमण का सामना करने के लिए तैयार है। यह कार्य प्रायः एकाकी होने पर नहीं बन पड़ता, समूह में अपनी शक्ति होती है। मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे का साथ देने की क्षमता बनाये रहने पर आधी मुसीबत टल जाती है। आक्रामक अपना हाथ रोक लेते हैं और बढ़ते कदमों को पीछे हटा लेने पर विवश होते हैं। निजी हौंसला बुलन्द रखने के अतिरिक्त अपने जैसे ही साहसी लोगों का संगठन बना लेना चाहिए और उनके साथ-साथ रहने, साथ-साथ उठने-बैठने के अवसर बनाते रहने चाहिए। बर्रों के छत्ते में हाथ डालने में डर लगता है, पर यदि वह अकेली पास आ डटे तो उसका कचूमर निकालने के लिए कोई भी तैयार हो जाता है। मधुमक्खियों के छत्ते से आमतौर से लोग बचकर ही निकलते हैं। बन्दर समूह में रहते हैं और एक को छेड़ने पर दूसरे भी उनकी सहायता के लिए इकट्ठे हो जाते हैं—इस कारण लोग बन्दरों के झुण्ड को छेड़ते नहीं वरन उससे बचकर ही निकलने में अपनी भलाई देखते हैं।

यह सोचना सही नहीं है कि दुरात्माओं से दोस्ती का प्रयत्न करने पर वे अपने को बख्श देंगे। उन्हें कुछ भेंट-उपहार देकर भी अनुगृहीत नहीं किया जा सकता। सामान्य लोगों की अपेक्षा अनाचारी लोग अधिक धूर्त होते हैं, वे वस्तुस्थिति को समझने में चूक नहीं करते। दबकर खुशामद करने वालों को वे कमजोर मान बैठते हैं और उसी पर अधिक हमला करते हैं। भूत-प्रेतों का आतंक उन्हीं पर अधिक छाया रहता है, जो उनकी पूजा-पत्री आये दिन करते रहते हैं। जो उन पर विश्वास नहीं करते, साहस के बल पर उनसे निपट लेने का मनोबल रखते हैं, उसका पाला प्रायः उनसे नहीं ही पड़ता, इसलिए उनसे रिश्ता जोड़ने की अपेक्षा कतराते रहना ही अधिक लाभदायक रहता है। उनका समर्थन एवं सहयोग करने की बात सोचनी ही नहीं चाहिए, इससे दूसरों की भी हिम्मत टूटती है, दुरात्माओं का मनोबल बढ़ता है और अपने पक्ष वाले लोग हताश होते हैं—इसलिए दुर्जन की नीति तो अपनानी ही नहीं चाहिए। एकाकी होने पर भी अपनी हिम्मत सँजोये रहना चाहिए। यदि यह नीति अपनाई न गई होती तो किसान अपने दूर वाले खेतों पर अन्धेरे-उजाले में काम करने कैसे जाते ? वनवासी-आदिवासी लोग जंगलों में छोटे झोंपड़े बनाकर किस प्रकार जिन्दगी काटते ? उन्हें तो जिन्दगी खतरों के बीच ही गुजारनी पड़ती है, वे लाठी के बल पर ही खतरों की सम्भावनाओं से निपटते रहते हैं। कठिन संभावनाओं का सबसे बड़ा साथी-सहयोगी अपना मनोबल ही है। हिम्मत वालों का सहयोग देने के लिए दूसरे भी कितने ही तत्पर हो जाते हैं, जबकि कायरों का साथ देने के लिए, उनका समर्थन करने के लिए आमतौर से कोई तैयार नहीं होता। कहावत है कि 'जो अपनी सहायता आप करता है, उसी की दूसरे भी सहायता करते हैं, भगवान भी जिसने हिम्मत हारी, समझना चाहिए कि वह हर मोर्चे पर हार गया।

राजनीति में साम, दाम, दण्ड, भेद के चारों प्रयोग अपनाये जाते हैं, उनमें से एक यह भी है कि अनाचारियों के गिरोह को छिन्न-भिन्न करने का, उनमें फूट डालने और उन्हें अलग-अलग रास्तों पर चल पड़ने के लिए किन्हीं माध्यमों को अपनाया जाय। ऐसे व्यक्ति आमतौर से निठल्ले होते हैं, यदि उन्हें किसी उपयोगी काम में लगा देने की सम्भावना बन सके तो उनका तथा दूसरों का सिर दर्द आधा हलका हो जाता है। जिनके लिए इस प्रकार के दूरगामी परिणाम उत्पन्न कर सकने वाले उपक्रम बनाने सम्भव हों, उन्हें उस प्रकार की सम्भावनायें भी तलाश करनी चाहिए।

यों हर किसी में कुछ अच्छे गुण भी होते हैं, पर जिनमें दुर्गुण अधिक बढ़ जाते हैं, उन्हें बुरे लोगों में गिना जाने लगता है। संगति से, वातावरण से गुण-दोषों का विकास-विस्तार होता है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि जो कुमार्ग पर चल पड़े हैं, उन्हें भी कुसंग से किसी प्रकार छुटकारा मिले और वे अच्छी संगति अपनायें, अच्छे वातावरण में रहने लगें। अपनी कार्यपद्धति में ऐसे उपक्रमों का समावेश करें जो रचनात्मक, उत्पादक एवं उपयोगी हों। मात्र सलाह या शिक्षा देकर तो कदाचित ही किसी को सुधारा-सँभाला जा सकता है, पर यदि संगति, वातावरण और क्रिया-कलाप बदल सके तो ऐसी संभावना बढ़ सकती है, जिसमें विनाशकारी कृत्यों से विरत होकर किन्हीं उपयोगी कार्यों में समय, श्रम और बुद्धिबल को लगाना सम्भव हो सके—सुधार का एक यही उपयुक्त तरीका है।

उपेक्षा, असहयोग, विरोध और संघर्ष—इन चार उपायों से प्रतिपक्षियों का मुकाबला करने की जानी-मानी परम्परा है। अपनी स्थिति और सामने प्रस्तुत परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए जो उपयुक्त लगे उसका उपयोग करना चाहिए। सतर्कता बरतना एक बात है। मनोबल तो हर हालात में टकराव की संभावना देखकर बनाये ही रहना चाहिए, साथ ही विरोधी का भय अपने मस्तिष्क पर हावी नहीं होने देना चाहिए—उपेक्षा इसी को कहते हैं। अपने स्तर का मूल्यांकन किया जाय, अपने को तुच्छ न माना जाय ताकि विरोधी का बढ़ा-चढ़ा और भयावह रूप अपने सिर पर सवार होने न लगे। हर आदमी को आये दिन कितनी ही समस्यायें सुलझानी पड़ती हैं और कितने ही अवरोधों-टकरावों का सामना करना पड़ता है। ऐसी दशा में यदि कोई विरोधी आड़े आते हैं तो उनके लिए भी समय आने पर देखा जायेगा—ऐसी मान्यता बनानी चाहिए। भयभीत तो किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए, इस प्रकार की उपेक्षा से भी प्रतिपक्षी का मनोबल टूटता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी हिम्मत तो तब बढ़ती है जब अपने को उत्तेजित, असंतुलित, भयभीत या आतुर पाता है।

असहयोग दूसरा हथियार है जिससे प्रतिपक्षी का मनोबल गिराया जाता है। सहयोग की सभी अपेक्षा करते हैं, यदि वह न मिले तो आक्रान्ता हतप्रभ रह जाता है। अनीति के आगे सिर झुकाने, डरने, घिघियाने या चापलूसी करने लगने से देखा गया है कि उद्दण्ड लोग अधिक दबाते चले जाते हैं और अधिक डराने, अधिक सताने का उपक्रम करते हैं। असहयोग से भी प्रतिपक्षियों की हिम्मत टूटती है और उनके कदम रुकते हैं। दुष्टता के हलके पड़ने जैसी संभावना भी रहती है।

विरोध मौखिक भी होता है और आक्रमण को असफल बनाने वाली रणनीति अपनाने के रूप में भी उसका प्रयोग होता है। विरोध में निन्दा होती है, निन्दा भी मनोबल गिराने का एक कारगर उपाय है। इससे भी अधिक कड़ा कदम संघर्ष है, प्रतिरोध इसी का नाम है। तनकर खड़े हो जाना, आक्रमणों को असफल बनाने वाले उपायों को कार्यान्वित करना संघर्ष है। यह अवसर के अनुरूप निर्धारण किया जाता है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि मार-काट जैसे प्रत्याक्रमण की नौबत न आये, क्योंकि इससे आक्रमण-प्रत्याक्रमण का सिलसिला चल पड़ता है और फिर उस कुचक्र की एक श्रृंखला चल पड़ती है जो मुद्दतों तक नहीं टूटती। इसमें आक्रमण से भी अधिक आहत होता है, इसलिए ऐसे प्रसंगों से यथासंभव बचना ही चाहिए। फिर भी आत्मरक्षा के लिए आक्रमणकारी का कड़ा मुकाबला करना हर व्यक्ति का कानूनी और नैतिक अधिकार है। इसे भी आतंक अस्त्र के रूप में अपनाया जा सकता है, यदि अहिंसक प्रतिरोध का कोई उपाय बन पड़े तो और भी अधिक उपयुक्त है।

अनेक झंझटों में गलतफहमियाँ भी एक बड़ा कारण होती हैं। हो सकता है कि वे कल्पना-आशंका से उपजी हों या किन्हीं ने जानबूझकर षड्यन्त्र के रूप में उत्पन्न की हों। ऐसी स्थिति में वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने की साहसिकता अपनानी चाहिए और यथार्थता उजागर करनी चाहिए। इस माध्यम से भी बहुत से झंझट निपट जाते हैं।

अनीति के निराकरण में कानून भी सहायता करता है। पुलिस, अदालत इसी के लिए हैं—जहाँ यह माध्यम आवश्यक हो गया हो वहाँ कानून की शरण भी ली जा सकती है, पर उसमें पर्याप्त साक्षियाँ जुटाने, सबूत इकट्ठे करना आवश्यक होता है, जिन्हें आहत पक्ष प्रायः जुटा नहीं पाता। डरपोक लोग वस्तुस्थिति जानते हुए भी झंझट में न पड़ने के भय से सबूत में पेश होने से कतराते हैं। ऐसी दशा में पुलिस, कचहरी भी कुछ कर नहीं पाते। जहाँ लिखित सबूत हैं, मजबूत साक्षियाँ वहाँ तो कचहरी जाना भी किसी कदर कारगर होता है, पर उसमें भी लम्बा समय लग जाता है और बहुत-सा समय तथा धन खर्च करने की आवश्यकता पड़ती है। कोई और चारा न हो तो यह मार्ग अपनाना ही उत्तम है। अच्छा यह है कि समाधान करा देने वाले माध्यम ही तलाश किये जायें, उन्हें न्यायोचित भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। प्राचीनकाल में पंचायतें भी कितने ही झंझट निपटा दिया करती थीं। जहाँ अभी भी उनका अस्तित्व है, वहाँ उनका आश्रय भी लिया जा सकता है। अनीति को निरस्त करने के लिए धीमे या कड़े कदम तो उठाने ही चाहिए।

असुरता के, अपराधी प्रवृत्ति के स्रोतों को बन्द किया जाय

कैंसर क्रोनिक स्टिमुलश से बढ़ता है, जिसका अधिकांश कारण धूम्रपान (स्मोकिंग) है। क्रोनिक सविसाइटिस (स्त्री-रोग), पेट का फोड़ा (पेप्टिक अल्सर) आदि से भी ५ प्रतिशत कैंसर हो सकता है। पर डॉक्टरों की राय में इन सबका कारण अपनी ही चिन्तायें, उतावलापन और मिर्च-मसालों वाला गरिष्ठ आहार होता है एक बार क्रोनिक स्टिमुलश पैदा हो जाने के बाद वह कोश (सेल्स) को विकृत करना प्रारम्भ करता है। १ से २, २ से ४ इस क्षिप्र गति से बढ़ता हुआ यह रोग सारे शरीर पर उसी तरह छा जाता है जिस तरह दहेज, रिश्वत, मिलावट, अन्धविश्वास, अशिक्षा और बाल-विवाह आदि कुरीतियाँ भारतीय जीवन को आच्छादित किये हैं। यदि प्रारम्भ में ही इसे नष्ट न किया गया तो कैंसर का ठीक होना कठिन हो जाता है। हमारी सामाजिक बुराइयाँ और आंतरिक दुर्वासनायें भी ऐसी ही बुरी होती हैं जो यदि जड़ पकड़ गईं तो मरणोपरान्त ही पिंड छोड़ती हैं। भारतवर्ष की इन बुराइयों को नष्ट करने का यही समय है। यदि इन्हें अभी नष्ट नहीं किया गया तो शारीरिक स्वास्थ्य की तरह या तो धर्म नष्ट हो जायेगा या फिर पराधीनता की तरह समाज का ही पतन हो जायेगा।

भारतवर्ष के पराधीन होने का भी यही कारण था कि हमारी आंतरिक बुराइयों ने हमारी समर्थता की जड़ें काटीं और हम विदेशियों का सामना करने में असमर्थ हो गये। एक ऐसा समय आया जब भूल अनुभव की गई। संघर्ष हुआ और इस तरह अँधेरे इतिहास का अन्त हुआ। हमारा देश पुनः स्वाधीन हो गया।

हम विदेशी सत्ता से स्वाधीन हो गये किन्तु वह स्वाधीनता अक्षुण्ण रहेगी ? इस बात की निश्चित गारण्टी तब तक नहीं दी जा सकती जब तक भारतीय समाज कुरीतियों, अन्धविश्वास, अनैतिकता, बेईमानी, छल, कपट, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, तृष्णाओं, वासनाओं और दुष्प्रवृत्तियों से ग्रसित बना रहेगा। बुराइयाँ मनुष्य को रोग के कीटाणुओं की तरह खा जाती हैं, इसलिए बुद्धिमान लोग समय रहते उनसे बचने का प्रयत्न करते हैं। यह एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुःसाध्य कार्य है इसलिये इस कार्य को बहुत सावधानी, सजगता और योजनाबद्ध तरीके से पूरा करना पड़ता है।

मनुष्य जीवन की एक विस्तृत प्रक्रिया का नाम समाज है। हम जिस गाँव में, मुहल्ले या नगर में रहते हैं—समाज वहीं तक सीमित नहीं। हमारा प्रान्त, हमारा देश, पड़ौसी देश और सारा विश्व एक समाज है। समाज की सीमायें विशाल हैं। अपने आप तक सीमित सुधार की प्रक्रियायें सरल हो सकती हैं किन्तु हम इस व्यापक समाज से इतने प्रभावित और बँधे हुए हैं कि उसकी हर छोटी-बड़ी बुराई से हमारा टकराव हर घड़ी होता रहता है। हमारी सज्जनता, हमारी शुद्धता, हमारा सौष्ठव तभी स्थिर रह सकता है जब सारा विश्व-समाज ही शुद्ध, सज्जन और सौम्य हो। इस जटिल समस्या को हल करना तभी सम्भव है जब विश्व संस्कृति की सभी भलाई वाली शक्तियाँ निरन्तर क्रियाशील रहें और बुराइयों पर उसी प्रकार दबाव डालती रहें, जिस तरह शरीर में उत्पन्न होने वाले रोग, शोक और बीमारियों का संहार औषधियों से करते रहते हैं।

हम शरीर को एक समाज मानते हैं और उसकी गतिविधियों के द्वारा बाह्याभ्यन्तर असुरता से टक्कर लेने के निष्कर्ष निकालते हैं। जब शरीर में बाहरी कीटाणुओं से या भीतरी किसी कारण से कोई रोग हो जाता है तो एण्टीबायटिक्स दवाइयों द्वारा उस पर सीधा घातक प्रभाव डाला जाता है। यह औषधियाँ शरीर के सारे रक्त का दौरा करती हैं और जहाँ कहीं भी रोग-कीटाणुओं को छिपा हुआ पाती हैं, मार गिराती हैं। सामाजिक बुराइयाँ चाहे वह बाहर से थोपी गई हों या आंतरिक हों, इसी तरह नष्ट की जा सकती हैं। उनकी विरोधी शक्ति तैयार की जानी चाहिए, जिससे उन्हें मारकर भगाया जा सके। उदाहरण के लिए माँसाहार ऐसी दुष्प्रवृत्ति है जो भारतीयों पर विदेशियों ने थोपी, पर दहेज, पर्दा प्रथा, अन्धविश्वास हमारी आंतरिक बुराइयाँ हैं और उनसे छुटकारे का एक ही मार्ग है कि अच्छे लोग माँसाहार के विरुद्ध शाकाहार और जीव-दया की भावना को उभारें और दहेज, अन्धविश्वास आदि के स्थान पर बिना दहेज विवाह, शुद्ध आस्तिकता आदि का व्यापक प्रसार करें, स्वयं इन आदर्शों का पालन करें व साथी, सहयोगी, सम्बन्धी सबको उसके लिए प्रोत्साहित करें।

कई बार इस संघर्ष में अपनी भी हानि होती है। औषधिशास्त्र कहता है—यदि १०० शत्रु नष्ट करने में एक अपना भी मारा जाय तो कुछ हर्ज नहीं, पर सीधे मुकाबले का रास्ता छोड़ना नहीं चाहिए। पेट में कई बार राउन्ड बाल्ज पैदा हो जाते हैं। यह परजीवी (पैरासाइट) कीड़े (वैक्टीरिया) आँतों को उस तरह खाने लगते हैं जैसे फैशनपरस्ती, नशेबाजी, वासनायें स्वास्थ्य को खाने लगती हैं। इस स्थिति में डाक्टर कोई दस्तावर औषधि देते हैं और रक्त में होने वाले विषैले प्रभाव से शरीर को बचाते हैं। इन औषधियों में तीव्रता होती है, वह पेट की सारी गन्दगी झाड़ फेंकती हैं। यह क्रिया कुछ तीव्र होती है, इससे पाचन वाले अम्ल (एसिड्स) भी पटक जाते हैं पर उनका चला जाना भी रोग के आक्रमण से हो जाने वाली हानि की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी है। इसलिए सीधे संघर्ष में कुछ लोगों को शारीरिक या मानसिक कष्ट भी हो, तो भी प्रसन्नता अनुभव करनी चाहिए।

कई बार डाक्टर उचित इलाज का पता नहीं लगा पाते, तब वे प्रभावित अंग से रोग के कीटाणु निकालकर उन्हें कल्चर प्लेट पर रखते हैं और उन पर कई एण्टी-बायटिक्स औषधियों की एक-एक बूँद रखते जाते हैं, जो औषधि अधिक कीटाणुनाशक हुई, बाद में उसी का प्रयोग किया जाता है। समाज में जब इस तरह ला-इलाज बुराइयाँ उठें तब विचारशील लोगों को कई प्रयोग करने चाहिए जो स्थिति के अनुरूप, जो भी उचित हो, उस उपाय को कारगर ढंग से अपनाना चाहिए।

बुराइयों से सतर्कता तो प्रत्येक स्थिति में रखनी ही चाहिए अन्यथा पता न चलेगा और वे भीतर-ही-भीतर हमें नष्ट कर दे सकती हैं। शराब पीने वालों में चर्बी की एक सतह जिगर के कोषों के ऊपर जम जाती है। उससे जिगर के कोषों को खाद्य (आक्सीजन) मिलना बन्द हो जाता है। शराब पीने वाले को पता नहीं चलता और भीतर ही भीतर सिरोसिस ऑफ लिवर बीमारी हो जाती है। इसलिए मनुष्य को अपने स्वभाव, समाज की प्रत्येक गतिविधि पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ और बीमारी पककर फूटी तो उसका सँभालना कठिन हो जाता है।

जहाँ भी ऐसा वातावरण उठ रहा हो, बुद्धिशीलता की माँग है—उसे नष्ट किया जाये। यह कार्य प्रतिलोम वातावरण अर्थात अच्छाइयों की मात्रा बढ़ाकर पूरा किया जाता है। डाक्टर और स्वास्थ्य-विशेषज्ञ जानते हैं कि जीवाणु दो प्रकार के होते हैं—(१) एयरोबिक अर्थात जिन्हें जिन्दा रहने के लिए आक्सीजन आवश्यक है। (२) एनएयरोबिक अर्थात जिन्हें आवश्यक नहीं। कोई अंग सड़ जावें (ग्रैगीन) क्लास्टेडियम बेसलाई, क्लास्टेडियम एडेमेन्टीस एवं क्लास्टेडिक सेप्टिकी जो एक एयरोबिक हैं, उनको मारने के लिए एयरोबिक वातावरण पैदा करना आवश्यक है। अर्थात यदि समाज में अच्छाइयों की प्रचुरता को व्यापक बना दिया जाये तो अनेक बुराइयाँ वातावरण न मिलने के कारण ही नष्ट हो जायेंगी।

उदाहरण के लिये असंयम आलस्य को परिश्रम और उद्योग द्वारा, वासना और असंयम को व्यायामशालाओं और बौद्धिक शक्तियों के ऊर्ध्वीकरण, स्वाध्याय, ज्ञानार्जन आदि के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। सादगी का वातावरण पैदा किया जाये तो उससे फैशन के नाम पर होने वाला अपव्यय भी रुके और बालकों की उच्छृंखलता तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुण्डागर्दी भी रुक सके। सदाचार, साहस और ईमानदारी को सम्मानित नहीं किया जाये तो दुराचार, संकीर्णता और बेईमानी बढ़ती है। सज्जन व्यक्तियों का सम्मान बढ़ाकर ऐसी बुराइयों को सहज ही दूर किया जा सकता है।

बुराई न बढ़े, उसके लिये यह भी आवश्यक है कि उन्हें पोषण न मिले। गुण्डा तत्वों से डरकर लोग न चाहते हुए भी उन्हीं का समर्थन और हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं। इससे उनका कुनबा और भी फलने-फूलने लगता है। यदि लोग उनका समर्थन और पोषण बन्द कर दें तो वह अपने आप मरकर नष्ट हो जायें।

अपराधों के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं हो सकती, उन्हें घटाया और मिटाया ही जाना चाहिए। इसके लिए उन कारणों को ढूँढ़ना चाहिए जो मनुष्य की सरल सज्जनता को अस्त-व्यस्त करके उसे नर-पशु या नर-पिशाच बनाने के लिए घसीट ले जाते हैं। इसमें सबसे पहला कारण व्यक्ति की अविवेकशीलता है। उसने नैतिक मूल्यों और सामाजिक मर्यादाओं के पालन में होने वाले सत्परिणामों पर विचार नहीं किया होता और न अपराधों के फलस्वरूप दूरगामी दुष्परिणामों का ज्ञान होता है। अज्ञानग्रस्त मनःस्थिति बनाये रखने में वह व्यक्ति तो दोषी है ही जिसने धर्म, अध्यात्म, नीति और कर्तव्य जैसी मानवी जीवन के अविच्छिन्न तथ्यों का यथार्थ स्वरूप समझने में भूल की साथ ही वह सामाजिक वातावरण भी कम उत्तरदायी नहीं है जिसमें इस प्रकार के शिक्षण और अनुगमन के लिए उचित आधारों का समन्वय किया ही नहीं गया है। विकृत वातावरण बनाये रखने के लिए जो भी वर्ग उत्तरदायी हो, उसे अपराधी और अवांछनीय तत्त्वों का जन्मदाता माना जाना चाहिए। दण्ड देते समय या सुधार करते समय उस वातावरण को अथवा उसके सृजेताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए, जिनके कारण सामान्य स्तर के मस्तिष्क अवांछनीय गतिविधियों में नियोजित कर दिये गये।

जहाँ तक वातावरण का सम्बन्ध है आमतौर से लोग आर्थिक तंगी को अपराधों की जननी बताकर गइराई में उतरने के झंझट से बचना चाहते हैं। आर्थिक कठिनाई भी अपराध वृद्धि या अनैतिक कार्यों के लिए बाध्य करने वाली हो सकती है पर उस अकेली को ही सब विकृतियों की जननी मान बैठना वस्तुस्थिति से आँखें बन्द कर लेने के बराबर है।

अपराधों का बौद्धिक वातावरण बनाने वाले वे लोग हैं, जो पर्दे के पीछे छिपे हुए तार हिलाते रहते हैं और जनमानस को तरह-तरह के खेल खिलाते रहते हैं। कठपुतली के नाच में दर्शक उन लकड़ी के खिलौनों को अभिनयकर्ता भले ही मानें पर विचारशील लोग पर्दे के पीछे छिपे बाजीगर के हस्त-कौशल को ही श्रेय देते हैं। मनुष्य के चिन्तन प्रवाह को दिशा देने वाले कुछ तत्व इसी स्तर के हैं, उन्हें व्यक्ति और समाज के मर्मस्थलों को छूने वाले बाजीगर कह सकते हैं। असल में वातावरण के निर्माण का अधिकांश श्रेय इन्हीं के हाथों को, इन्हीं के मस्तिष्कों को दिया जाना चाहिए। रोग का इलाज करना ही यदि अभीष्ट हो—रोगी को मार डालने का आग्रह आवेश न हो तो हमें बढ़ते हुए अपराधों के मूल में काम करने वाले कारणों को भी तलाश करना चाहिए और उन्हें निरस्त करने के लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए।

आर्थिक कठिनाइयों के मत्थे समाज की सारी विकृतियों को थोप देना यथार्थ चिन्तन से इन्कार करना है। साधु और ब्राह्मण भूतकाल में गरीबी का जीवन जीते रहे हैं पर उन्होंने कभी आर्थिक तंगी को अनैतिकता से नहीं मिलाया। अभी भी बनवासी और पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग शहरी लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक अभावग्रस्त जीवनयापन करते हैं पर उनकी नैतिकता सुसम्पन्न और विद्या बुद्धि के धनी लोगों की तुलना में हजार गुनी अधिक समुन्नत स्तर की होती है। अपराधी तत्त्वों का यदि आर्थिक स्थिति के हिसाब से वर्गीकरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि निर्धन वर्ग के अपराधी नगण्य हैं वे मध्यम वर्ग और उच्चवर्ग के ही होते हैं। उनकी बढ़ी हुई तृष्णा, उच्छृंखलता और साधन सम्पन्नता एक से एक बढ़े-चढ़े चातुर्यपूर्ण अपराध करने का द्वार खोलती है।

देश की-जनसाधारण की आर्थिक स्थिति न सुधारी जाय, इसकी वकालत कोई नहीं कर सकता। सम्पन्नता और सुविधा बढ़नी ही चाहिए ताकि सुखपूर्वक जीवनयापन किया जा सके। बात इतनी ही कही जानी चाहिए। निर्धनता ही अपराधों की जननी है ऐसा कहना तथ्यों को झुठलाने के समान है। ऐसा प्रतिपादन निहित स्वार्थ ही कर सकते हैं। धनी और निर्धन के बीच विद्रोह-संघर्ष कराने का लक्ष्य जिन्होंने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाया हो उनके मुँह यह प्रतिपादन शोभा दे सकता है। इसी प्रकार पर्दे के पीछे छिपे हुए वे लोग जो अवांछनीय वातावरण बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। अपनी खाल बचाने के लिए मुसीबत की जिम्मेदारी आर्थिक तंगी की बहती गंगा में बहाकर अपने हाथों को पाक साफ सिद्ध कर सकते हैं। यही क्रिया कौतुक सस्ते बहकावे का कुछ हद तक प्रयोजन पूरा कर भी दे तो भी उससे कुछ उद्देश्य पूरा न होगा। अमेरिका जैसे धनी देशों में उनकी सुसम्पन्न अर्थव्यवस्था व्यक्तिगत और समाजगत नैतिकता को किस तेजी से खोखली करती चली जा रही है इसे कोई भी आँख वाला पलक उठाकर देख सकता है। अर्थ व्यवस्था ही यदि नैतिकता का आधार रही होती तो भारत के राव राजा, अमीर अमराव, सेठ साहूकार, धनी मानी, शासक सत्ताधारी उच्चकोटि के नीतिवान रहे होते और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका, जापान, ईरान, अरब जैसे धन कुबेर देशों ने विश्व का नैतिक मार्गदर्शन किया होता।

बौद्धिक और भावनात्मक क्षेत्र को दूषित करने वाले लोगों में प्रथम श्रेणी के अपराधी उन साहित्यकारों और कलाकारों को विदा किया जाना चाहिए जिन्होंने जनसमाज की दुर्बलता को भड़का कर अपने स्वार्थ साधन की सस्ती तरकीबें ढूँढ़ी। कामुक और अपराधीवृत्ति को भड़काने वाले—प्रकारान्तर से उसी कुमार्ग पर चलने की शिक्षा देने वाला साहित्य बाजार में पटा पड़ा है। प्रेस और प्रकाशन का तीन चौथाई व्यापार इसी स्तर का चल रहा है। पत्र पत्रिकाओं में जो तस्वीरें, कहानियाँ, रचनायें छपती हैं उनका वर्गीकरण किया जाय तो उस विश्लेषण में कुरुचि और कुत्सा भड़काने वाले तत्त्व ही अधिक मिलेंगे। इतनी व्यापकता के साथ पथ भ्रष्ट करने वाली सामिग्री का उत्पादन आखिर जाना तो जनता के ही पेट में है और उस विषाक्त बौद्धिक आहार का परिणाम क्या हो सकता, इसका अनुमान लगा सकना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए।

साहित्य का ही दूसरा पथ है—कला। उसके अन्तर्गत चित्रकला, अभिनय, संगीत, वाद्य, आदि का समावेश होता है। चित्रकला का अपना स्तर क्या है यह देखना हो तो चित्र प्रकाशकों और चित्र विक्रेताओं से पूछताछ करनी चाहिए वे बतावेंगे कि अर्द्धनग्न और दूषित भाव भंगिमा को उत्तेजक रूप में व्यक्त करने वाली तस्वीरें ही अब कलेण्डर के चित्रों के रूप में प्रधानतया बिकती हैं। लड़के उन्हें चावपूर्वक ले जाते हैं। उन्हें कापियों में छिपा कर रखते और कमरों में टाँगते हैं। यहाँ प्रकाशन उनकी कामुक प्रवृत्तियों को कुसमय में ही बेतरह भड़काकर उन्हें एक से जुड़े हुए दूसरे अपराधों के साथ आबद्ध करता चला जाता है।

सिनेमा में कला का अब एक प्रकार से केन्द्रीकरण हो गया है। नाटक, लोकनृत्य आदि मर गये या मर रहे हैं कला अब सिनेमा में ही सीमित हो चली है। कलाकार शब्द से अभिप्राय अब फिल्मों में काम करने वाले नट-नटनियों से ही होता है। यह सिनेमा नैतिक मूल्यों को किस मुस्तैदी से विस्मार करता चला जा रहा है उसे देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं। विवाह मर्यादा नारी शालीनता और भाई-बहन के पवित्र सम्बन्धों की जड़ उखाड़ डालने के लिए यह आधुनिक चाणक्य उस घटना की पुनरावृत्ति कर रहे हैं, जिसमें उस महाब्राह्मण ने पैर में कुशा गड़ जाने पर कुश वर्ग को समूल नष्ट करने का संकल्प किया था। न जाने इस कला व्यवसाय के किस महारथी को नारीशील सौजन्य ने क्या चोट पहुँचाई है, जिससे उसने इस झंझट को नष्ट करके मुक्त प्रेमयुक्त यौन सम्बन्ध की भूमिका तैयार करने के लिए कला की देवी को कुटनी के रूप में नियुक्त कर दिया है।

कुरुचिपूर्ण फिल्मों के दर्शकों की संख्या पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों की और रेडियो सुनने वालों की संख्या से भी अधिक है। यह प्रचार तंत्र कला का आश्रय लेकर और भी अधिक शक्तिशाली हो गया है। यह तन्त्र किस स्तर के कथानक प्रस्तुत करता है और उसका जनमानस पर क्या प्रभाव पड़ता है इस तथ्य से अब हर विचारशील परिचित है। देश में अनैतिकता और अपराधों की वृद्धि में हमारा कला मन्च कितना उत्तरदायी है यह समझने की किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए। सुरुचिपूर्ण फिल्में कितनी हैं ? आदर्शवादिता को लेकर कला क्षेत्र में कितनी हलचलें हो रही हैं ? उसका लेखा-जोखा लेने वाले को पहाड़ खोदने पर चुहिया ही हाथ लगेगी ?

धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र विचार निर्माण और चरित्र-निर्माण के उत्तरदायित्व को सम्भालते हैं। वे अब देवताओं से मनोकामनाएँ पूर्ण कराने के दलाल मात्र रह गये हैं। स्वर्ग और मुक्ति के स्वाँग दिखाकर भावुक लोगों को कर्मकाण्डी टंट-घण्ट में उलझा देना इनका प्रमुख क्रिया-कलाप रह गया है। अन्धविश्वास फैलाना और मुफ्त के माल चरना यही है। हमारे धर्मिक क्षेत्र का प्रमुख उत्पादन जिसके लिये तरह-तरह की रंग-बिरंगी दुकानें खुलती जा रही हैं और नये-नये शिगूफे छोड़े जा रहे हैं। धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में जीविकोपार्जन करने वाले ८० लाख व्यक्ति यदि प्रस्तुत विकृतियों के समाधान में लग गये होते तो गन्दगी फैलाने वालों का कुछ न कुछ तो संशोधन-परिमार्जन होता ही। पर यहाँ भी दुर्भाग्य का पूरा ही साम्राज्य छाया हुआ है। सुधार के स्थान पर पलायनवाद, भाग्यवाद, परावलम्बन, अकर्मण्यता, कल्पना लोक की उड़ान, अन्धविश्वासों का पोषण, कुरीतिवादी मूढ़ताओं का समर्थन, अवांछनीयताओं का परिपोषण, कर्मकांड के परमार्थ प्रयोजन का स्थानापन्न स्थापन, पाप कर्मों के फल से छुटकारा, देवताओं की पूजा-पत्री द्वारा मनोकामनाओं की पूर्ति जैसे अपने ढंग की चित्र-विचित्र अवांछनीयताएँ ही फैलाई जाती रहती हैं। इनका दुष्परिणाम भी लोकमानस में नैतिकता की प्रतिष्ठापना पर बुरा ही पड़ता है।

राज्यसत्ता के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा का है, जिससे लोकमानस को उत्कृष्ट बनाया जा सकता है। उनमें नैतिकता एवं सामाजिकता की आदर्शवादिता को कुशलतापूर्वक समाविष्ट किया गया होता तो पीढ़ियों का निर्माण कुछ दूसरी ही तरह का हो सकता था। तर्क गढ़ने वाली शिक्षापद्धति के स्थान पर उसमें स्वावलम्बन के तत्व रहे होते तो युवकों का असन्तोष इस प्रकार दुःखदायी उपद्रवों के रूप में न फूटता जैसा कि आज सर्वत्र फैलता दीखता है।

जेलों को न तो सुधार गृह बनाया जा सका और न वे आतंक उत्पन्न करने वाली कठोरता का ही केन्द्र रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकीं। उनकी लँगड़ी-लूली स्थिति और भी अधिक दयनीय है। अब वे अपराधों के ट्रेनिंग दीक्षागृह की ही भूमिका प्रस्तुत कर रही हैं जो एक बार जेल में आता है, प्रशिक्षित और निर्भय अपराधी के रूप में परिपक्व बनता है कानून भी ऐसे ढीले-पोले हैं कि अधिकांश अपराधी सहज ही दण्ड भोगने से बच जाते हैं। इस प्रकार कानून और न्याय का—पुलिस और जेल का भय भी लोगों के मनों में से उठता चला जा रहा है।

बढ़ती हुई अपराधी मनोवृत्ति को—गतिविधियों को रोका जाना चाहिए। इसके लिए अपराधियों पर ही क्रोध उतारने से काम न चलेगा और न दुर्घटनाओं की भर्त्सना करना काफी होगा। वरन् बढ़ती हुई अनैतिकता के पीछे उन कारणों को ढूँढ़ना पड़ेगा जो व्यक्ति और समाज को औचित्यपूर्ण मर्यादाओं का उल्लंघन करने के लिए बहकाते फुसलाते हैं।

जिन लोगों पर लोकमानस के सुव्यवस्थित बनाये रहने का उत्तरदायित्व है, उन्हें विशेष रूप से अपने कर्तव्य पालने के लिए बाध्य किया जाय यदि वे पर्दे के पीछे रह कर अवांछनीय वातावरण उत्पन्न करते हैं और भोले लोगों को अपराधी का कठपुतली जैसा नाच नचाने के लिए बाजीगर की भूमिका प्रस्तुत करते है तो बख्शा उन्हें भी नहीं जाना चाहिए। अपराधों की जड़ तक पहुँचकर ही उनका उन्मूलन करना होगा, पत्ते काटने से क्या काम चलेगा ?

क्रूरकर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है

मानवी सत्ता, असुरता और देवत्व दोनों से मिलकर बनी है। परमात्मा ने यह छूट केवल मनुष्य को ही दी है कि वह चाहे तो दिव्य दैवी प्रवृत्तियाँ अपनाये अथवा आसुरी-पाशविक वृत्ति अपनाकर नरपशु से नरपिशाच बन जाये, यह चयन सुविधा मनुष्य के विवेक की परीक्षा के लिए ही मिली है। वह कौन-सी प्रवृत्ति अपनाता है यह उसकी मनमर्जी की बात है। परन्तु जिस किसी भी वृत्ति को वह अपनाता है उसका पुरस्कार या दण्ड निश्चित रूप से मिलता है।

मनुष्य की प्रकृति में दोनों तत्व विद्यमान हैं। जिस पक्ष को समर्थन, अवसर और पोषण मिलता है वही पक्ष सुदृढ़ होता जाता है। सद्गुण, सद्भाव और सद्विचारों की दिव्य भावनाओं का अभ्यास मनुष्य को देवता बना देता है और इनकी पुष्टि होती जाती है तो व्यक्ति नर से नारायण बनता जाता है। इसके विपरीत यदि वह दुष्ट संगति, दुराचारण, आसुरी क्रियाकलाप और पाप प्रवृत्तियों को अपनाता है तो धीरे-धीरे निकृष्ट से निकृष्टतम बनता चला जाता है। पशु से भी बढ़कर पिशाच का रूप धारण करता है और जघन्य कृत्य करके ही उसके भीतर बैठा असुर मोद मनाता है। ऐसे कुकृत्य जिन्हें सुनकर ही एक सहृदय व्यक्ति काँप उठे वह उन नृशंस कृत्यों को अपने अहंकार की पूर्ति समझने लगता है।

१४३० ई० में ट्रांसलवानिया के पहाड़ी प्रदेशों के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होने वाला काउण्ट ड्राक्युला ऐसा ही नर-पिशाच था उसने १४७६ तक राज्य किया। ४६ वर्षों के इस शासन काल में उसने ऐसी-ऐसी अमानवीय क्रूरतायें बरती कि उसे इतिहासकारों ने 'लाद दि इम्पेलर' अर्थात् आदमी के शरीर को छेदने वाला कहा। जिस किसी भी व्यक्ति पर वह अप्रसन्न हो जाता उसे सजा देने के लिए वह क्रूरतम तरीका अपनाता था। वह लोगों को लकड़ी के बड़े-बड़े आदमकद खूटों पर कीलों से ठोकवा देता और उनकी पीड़ा तथा तड़प को देखकर प्रसन्न होता था।

यह उसका मनोरंजन भी था। वह प्रायः अपने महल में प्रीतिभोज दिया करता। भोज की मेज के चारों ओर काठ की बनी सूलियों पर जीवित मनुष्यों के शरीर कीलों से टँगे होते थे। लोग यातना और पीड़ा से चीखते-चिल्लाते रहते और उन्हें देख कर ड्राक्युला बड़ा आनन्द विभोर होता हुआ भोजन करता रहता। सड़ती लाशों और बासी खून की सड़ांध भरी बदबू में ड्राक्युला को जैसे महक-सी आती थी।

दरबार में भी वह इसी प्रकार सूलियों पर जीवित लोगों को कीलों से ठुकवा देता तथा शासन प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं पर विचार करता रहता। दरबारी बड़े सहमे और डरे रहते थे क्योंकि इससे जरा भी विरोध या अरुचि प्रकाशित करने का अर्थ था उनकी भी वही दशा। एक बार किसी नये दरबारी ने ड्राक्युला से कह दिया—इन लाशों से बहुत बदबू आती है। उसने ड्राक्युला को यह कार्य कहीं एकांत में करने की सलाह दी ताकि दरबार में आने वालों को दुर्गन्ध का सामना न करना पड़े। ड्राक्युला ने इस सुझाव को सुनकर जोरों से अट्टहास किया और बड़ा उल्लास व्यक्त करते हुए उसने तुरन्त आदेश दिया कि इस आदमी को भी एक खूँटे पर ठोक दिया जाय। यह दरबारी घबड़ा कर माफी माँगने लगा जीवन दान की दया याचना करने लगा तो ड्राक्युला ने इस पर दया भाव जताते हुए इतना भर किया कि उसका खूँटा कुछ ऊँचा गढ़वाया और उसे ऊँचे खूँटे पर जड़वा दिया। इस दया को जताते हुए उसने कहा था—अब तुम्हें कभी भी दूसरों की बदबू नहीं मिलेगी। घबड़ाने की जरूरत नहीं थी।

ड्राक्युला ने इस प्रकार क्रूरतापूर्वक नृशंस हत्यायें करने के नये-नये ढंग ईजाद किए थे। इसमें उसे बड़ा आनन्द आता था। हत्याओं के एक ही तरीके से जब वह ऊब जाता तो दूसरे तरीके भी अपनाने लगता। कई बार वह दूध पीते हुए बच्चों को उनकी माताओं के सीने पर ही कील से जड़वा देता। माँ-बाप के सामने ही उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अबोध और प्यारे-प्यारे बच्चों को मारकर उन्हें अपने बच्चों का माँस खाने के लिए मजबूर कर देता। एक बार उसने अपने राज्य के सभी गरीब, बूढ़े और बीमार लोगों को सेना द्वारा इकट्ठा कराया तथा उन्हें जिन्दा जलवा दिया।

ड्राक्युला के नाम और आतंक का इतना दबदबा था कि उसकी चर्चा आज भी ट्रांसलवानियाँ में होती है तो लोग मारे दहशत के चर्चा वहीं बन्द करने का आग्रह करने लगते थे। इतिहासकारों ने ड्राक्युला को अब तक के विश्व का सर्वाधिक क्रूर, नृशंस और अत्याचारी शासक माना है।

१६२० से १६६६ तक लिपजिंग (जर्मनी) के सेशन कोर्ट में न्यायाधीश रहा बेनेडिक्ट कार्पजे बड़ी कठोर और क्रूर प्रकृति का था। लोग उसे भी ड्राक्युला का अवतार बताते हैं। जो भी हो परन्तु उसका जीवन ड्राक्युला से अदभुत समानता रखता था। ड्राक्यूला ने ४६ वर्ष तक शासन किया, कार्पजे भी ४६ वर्ष तक न्यायाधीश रहा। उसने इस काल में ३० हजारे पुरुषों और २२ हजार स्त्रियों को फाँसी पर चढ़ाया। छोटे से छोटे अपराध, जुआ, चोरी और उठाईगीरी तक में वह मृत्युदण्ड देता था। जैसे मृत्युदण्ड से नीची सजा कोई हो ही नहीं। स्त्रियों को तो उसने जादू-टोने के संदेह तक में पकड़वा कर फाँसी पर चढ़ा दिया।

कार्पजे ने औसतन प्रतिदिन पाँच व्यक्तियों को फाँसी पर चढ़वाया और फाँसी देखने के लिए वह स्वयं वधस्थल पर पहुँचता। फाँसी लगने का दृश्य देखने में उसे बहुत रस आता था। इसके साथ ही वह यह व्यवस्था भी देखता कि मृतकों का माँस खाने के लिए शिकारी कुत्ते तथा दूसरे जानवर यथा समय पहुँचे हैं अथवा नहीं। दया या क्षमा शब्द तो जैसे कार्पजे ने कहीं सीखा ही नहीं था फिर भी वह अपने आपको धार्मिक कहता था।

निष्ठुर नृशंसता के ये दो इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण हैं, जिनमें केवल, आदमी को मरते हुए देखने का आनन्द लिया जाता रहा। व्यक्तिगत जीवन में भी यह नृशंसता समय-समय पर घुलती रहती है और सामाजिक जीवन में भी विष घोलती रहती है। लेकिन एक बात तय है कि जो व्यक्ति इस प्रकार की अमानवीच क्रूरता को छोटे या बड़े किसी भी रूप में अपनाते हैं, वे जीवन में कभी भी चैन से नहीं बैठ पाते हैं।

इस शताब्दी में नृशंस सामूहिक हत्याओं के लिए हिटलर का नाम बड़ी घृणा और तिरस्कार के साथ लिया जाता है। उसने लाखों निरपराध व्यक्तियों को मरवाया। परन्तु वह जीवन भर चैन से नहीं बैठ सका यहाँ तक कि अपनी छाया से, अपने पदचाप की प्रतिध्वनि तक से डरता रहा। कहते हैं कि वह इतना सशंकित रहता था कि रात में चार-पाँच घण्टे की नींद लेते समय भी तीन-चार बार उठ बैठता और अपने सिरहाने रखी रिवाल्वर तथा अन्य सुरक्षा प्रबन्धों की जाँच करके देखता।

ऐसे व्यक्ति मरने के बाद भी उसी प्रकृति के बने रहते हैं। अशान्त, व्यथित और आत्म-प्रताड़ना से आन्दोलित उनका जीवन नारकीय बन जाता है। बजाय अपनी गलतियों को सुधारने के वे मरने के बाद भी प्रेत-पिशाच बनकर लोगों को अपने दुष्ट आचरण द्वारा सताते रहते हैं।

इटली के तानाशाह मुसोलिनी के सम्बन्ध में विख्यात हैं कि वह मरने के बाद प्रेत बनकर अपने खजाने की रखवाली करता रहा है। युद्ध में हारने के बाद वह अपनी जान बचाकर स्विट्जरलैण्ड की तरफ भागा था। अरबों रुपये की सम्पत्ति, सोने की छड़ें, हीरे, जवाहरात, पोण्ड, पेंस और डालरों के रूप में उसके पास जमा थी। लेकिन वह भागने में सफल नहीं हुआ और कम्युनिस्ट सेनाओं द्वारा गोली से उड़ा दिया गया।

इसके बाद उसने प्रेत-पिशाच का रूप धारण कर लिया और अपने खजाने की रखवाली करने लगा। अशरीरी होने के कारण खुद तो वह खजाने का लाभ उठा नहीं सकता था, लेकिन वह दूसरों को भी उसका लाभ नहीं उठाने देना चाहता था। कहा जाता है कि उसी ने प्रेत-पिशाच बनकर खुद अपना खजाना छुपाया और उसकी रखवाली करने लगा। जिन्होंने भी उसका पता लगाने की कोशिश की मुसोलिनी के प्रेत ने उनके प्राण लेकर ही छोड़े। उस खजाने को ढुँढ़वाने और प्राप्त करने के लिए सरकार ने कितनी ही समितियाँ गठित कीं परन्तु सभी खोजी दल अकाल कवलित हो गये।

मरने के बाद उस प्रेत-पिशाच पर क्या बीतती होगी यह तो कहा नहीं जा सकता परन्तु व्यक्ति के अपने नृशंस क्रूर कर्म उसे स्वयं तड़पा-तड़पाकर मारते हैं। ट्रान्सलवानियाँ के शासक काउण्ट ड्राक्युला ने अपने जीवनकाल में जिस प्रकार लोगों की नृशंस हत्या की उससे भी भयंकर तरीके से उसे मारा गया। तुर्की सेनाओं ने जब ट्रांसलवानियाँ को जीतकर ड्राक्युला को बन्दी बना लिया तो उसके शरीर से रोज माँस का एक टुकड़ा काट लिया जाता और वही उसे कच्चा चबाने के लिए मजबूर किया जाता।

जर्मनी के नृशंस-क्रूर न्यायाधीश कार्पेज को कुछ ऐसे लोगों ने पकड़ लिया, जिनके सम्बन्धियों को निरपराध होते हुए भी उसने सजा दी थी और फाँसी पर चढ़वाया था। उन लोगों ने कार्पेज को एक ऐसे कमरे में छोड़ दिया जहाँ हजारों बिच्छू पहले से ही रख दिये गये थे। कोई तीन दिन में उसकी मृत्यु हुई। उस कोठरी में से कार्पेज की आवाज आना बन्द हुई, तब लोगों ने उसे बाहर निकाला। उसके शरीर पर ऐसा कोई स्थान नहीं बचा था जहाँ बिच्छुओं ने दंश नहीं लिया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह तो हुई बाहरी दण्ड व्यवस्था—प्रतिशोध परक वृतान्त। इनसे बचा भी जा सकता है परन्तु परमात्मा ने एक ऐसा न्यायाधीश इसी शरीर में बिठा दिया है जो व्यक्ति के कर्मों को देखता रहता है और यथा समय दण्डित भी करता है। कहते हैं कि मृत्यु के समय अपने जीवन भर के कर्मों की याद आती है और वे स्मृतियाँ व्यक्ति को दग्ध करने लगती हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि पराभव के समय व्यक्ति को अपने सारे क्रूर कर्म याद आते हैं और वह अपने ही कर्मों के प्रेत से डर कर अपने आपका उत्पीड़न करने लगता है।

सन् १९१८-१९ की घटना है। रूस में कम्युनिस्ट क्रान्ति हो चुकी थी। जारशाही के स्तम्भ एक-एक कर ढहते जा रहे थे और लोग, जो निरीह गरीब तबके का निर्ममता के साथ शोषण करते रहे थे, एक-एक कर भाग रहे थे अपने बचाव के लिए। ऐसे ही भागने वाले व्यक्तियों में एक था करेलिया प्रदेश का जागीरदार इवाना। वह अपनी पत्नी अन्ना, बेटी काल्या और पुत्र कोल्या के साथ करेलिया के बीहड़ प्रदेश में नदी के तट पर भागते हुए किसी सुरक्षित स्थान की तलाश कर रहे थे।

सेण्ट पीटर्स वर्ग से कुछ मील दूर ग्रेनाइट पत्थरों से बनी एक काटेज में उन्होंने शरण ली। उन लोगों के साथ उनका एक पुराना सेवक बूढ़ा मल्लाह भी था। इवान ने अपनी वासना पूर्ति के लिए सैकड़ों महिलाओं के साथ अनाचार किया था, उनमें से कइयों ने तो आत्महत्या कर ली थी, अनेक अबोध बालिकायें इस क्रूर कर्म को सहन न कर पाने के कारण मर गयी थीं। यही हाल अन्ना का था, अपने चरित्र पर परदा पड़ा रहे इसलिए उसने अपने बाप और भाई तक को मरवा डाला था।

इसके अलावा भी जागीरदार ने हजारों निरपराध व्यक्तियों को मरवा डाला था। उस काटेज में दोनों को अपने अतीत की याद आने लगी। संयोग की बात यह कि जिस काटेज में उन्होंने शरण ली, वह काटेज कभी इवान का विलास महल रह चुका था। वहाँ का एक-एक पत्थर इवान के क्रूर कर्मों का साक्षी था। ये क्रूर कर्म इतने वीभत्स और भयावह रूप में याद आ रहे थे कि वे सब लोग जिन्हें उसने सताया था, प्रेत बनकर उससे बदला लेने के लिए उतारू लगने लगे। इस स्थिति में इवान ने अपनी पत्नी, बच्चों को बूढ़े मल्लाह के साथ रवाना कर दिया। रास्ते में अन्ना इतनी विक्षिप्त हो उठी कि अपने कपड़े फाड़ने लगी, बाल नोंचने लगी और नदी पार करते समय नाव में से कूद पड़ी।

इवान का भी यही हाल हुआ। उसने भी आत्म प्रताड़ना या अतीत में किये गये क्रूर कर्मों की स्मृति से बुरी तरह भयभीत होकर नेवा झील में कूदकर आत्महत्या कर ली। स्मरणीय है दोनों पति-पत्नी अपनी क्रूरता के शिकार व्यक्तियों को नदी झील में ही फेंका करते थे। शासन और सेना से भले ही वह बच गये परन्तु अपनी अन्तरात्मा में बैठे न्यायधीश से बचना कहाँ सम्भव रहा ?

तत्वविदों का कथन है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है। वह, चाहे तो देवता भी बन सकता है और यदि चाहे तो नर-पिशाच भी। परन्तु इनके परिणामों में चुनाव की कोई सुविधा नहीं है। जिन्होंने भी असुरता पकड़ी और नृशंसता अपनायी उन्हें अन्ततः उसका दण्ड भुगतना ही पड़ा। भले ही वे तत्काल अपने अहंकार को सन्तुष्ट कर सके हों पर परिणाम में उससे भी भयंकर यातना तथा इति में उनकी दुःखद स्मृतियों के अलावा और कुछ भी नहीं मिल पाया है।

अपराध न समाज से छिपता है न अपने आपसे

अपराध विज्ञान का एक सामान्य और सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अपराधी कितना ही चतुर और कितना ही चालाक क्यों न हो, जब वह अपराध करता है तो अपराध स्थल पर कोई न कोई ऐसा चिन्ह अवश्य छोड़ जाता है जिससे कि वह पकड़ में आ जाता है। इस सिद्धान्त के मूल में अन्तरात्मा के विरुद्ध किये जाने वाले कार्य में, आत्मा की प्रताड़ना के कारण अंतःकरण में होने वाली हड़बड़ाहट ही है। अपराधी को उस समय दोहरे मानसिक द्वन्द्व से गुजरना पड़ता है। एक तो अपराध करते हुए कोई देख न ले, कोई ऐसा सूत्र न छूट जाय जिससे उसकी पहचान हो सके। दूसरा संघर्ष अपनी आत्मा से ही करना पड़ता है जो उसे किये जा रहे अनुचित कार्य के लिए अनवरत् लताड़ती-फटकारती ही रहती है। इन दोहरे द्वन्द्वों के कारण वह इतना घबरा उठता है कि अपराध स्थल पर कोई न कोई चूक अवश्य कर जाता है।

अब तो अपराधी की खोज के लिए अंगुल मुद्रायें (फिंगर प्रिण्टस) भी काफी सहायक होते हैं। यह मुद्राएँ अपराध स्थान पर अपराधी द्वारा कहीं न कहीं जरूर छूट जाती हैं। यद्यपि अपराधी अपनी ओर से पूरी सावधानी बरतते हैं कि उनका कोई चिन्ह घटना स्थल पर छूटे नहीं परन्तु अँगुलियों की छाप कहीं न कहीं अवश्य छूट जाती है, जिससे वे पकड़ में आ जाते हैं।

ऐसे कितने ही अपराध हुए हैं जिनमें अपराधी ने अपना कोई सूत्र घटना पर नहीं छोड़ा किन्तु वे अंगुल मुद्रा के कारण पकड़ में आ गये। २ जून, १९४८ को वर्कशायर (इंग्लैण्ड) में ६४ वर्षीय श्रीमती फ्रीमैन की हत्या हुई। अपराधियों ने हत्या करने के बाद अपनी पहचान के सूत्र बड़ी सफाई से मिटा दिये थे। अपराधियों को खोजने के लिए चैपमैन तथा हिश-लैम्प नामक पुलिस अधिकारियों को नियुक्त किया गया। पुलिस अधिकारी जब घटना स्थल पर पहुँचे तो उन्हें ऐसा कोई सूत्र नहीं मिला जिसे लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाँच को आगे बढ़ाया जा सके। बहुत बारीकी से पड़ताल करने के बाद फिंगर प्रिण्ट ब्यूरो के प्रधान एफ० आर० चैरिल ने सब ओर से निराशा व्यक्त की। ७७ कमरे वाले इस आलीशान मकान में दुबारा खोज की गयी तो मृत महिला के विस्तर पर एक छोटा-सा कार्ड बोर्ड का टुकड़ा मिला। इस कार्ड बोर्ड पर बहुत हलके निशान दिखाई दिये बड़ी सावधानी से उन निशानों को रसायन द्वारा उभारकर फोटो लिया गया यह कार्ड बोर्ड का टुकड़ा एक ऐसे कागज के डिब्बे का था जिसे पचासों बार खोला और बन्द किया गया था। पता नहीं वे निशान किसके थे ? फिर भी निशान मिले वे किसी व्यक्ति के दायें अँगूठे तथा मध्यमा के निशान थे।

इन निशानों को स्काटलैण्ड यार्ड के फिंगर प्रिण्ट रिकार्ड से मिलाया गया तो पता चला कि ये निशान कुख्यात सेंधमार जार्ज रसेल कीट की अँगुलियों के थे। वह वर्षों से अपराधी जीवन व्यतीत कर रहा था। इस हत्याकाण्ड में जार्ज रसेल के फिंगर प्रिण्ट के अलावा अन्य कोई व्यक्ति न तो प्रत्यक्षदर्शी था और न ही अन्य कोई दूसरे प्रमाण थे, जो उसे अपराधी सिद्ध करा सकते थे। परन्तु गुप्तचर अधिकारियों ने सारे काण्ड को इस प्रकार सूत्र दर सूत्र मिलाया कि जार्ज रसेल को अपराधी घोषित किया गया और उसे सजा दी गयी।

कई बार तो अंगुल-मुद्रायें प्रत्यक्षदर्शियों से भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध होती हैं। अंगुल-मुद्राओं का वैज्ञानिक आधार यह है कि मनुष्य शरीर के सभी अंग सारे चिन्ह समयानुसार बदलते, बनते, मिटते रहते हैं। हथेली अथवा अंगुलियों पर पड़ी रहने वाली हस्तरेखाएँ भी बदलती रहती हैं किन्तु उनके अतिरिक्त जो बारीक असंख्य रेखायें होती हैं वे कभी नहीं बदलतीं। इसके साथ ही किसी एक व्यक्ति की रेखायें दूसरे व्यक्ति से मेल भी नहीं खातीं यहाँ तक कि एक ही समय पर एक साथ जन्मे दो हमशक्ल जुड़वाँ भाइयों की रेखाएँ भी एक-सी नहीं रहतीं पिछले दिनों लन्दन में ही एक ऐसा काण्ड हुआ जिसमें अपराधी का पता चल गया था। उसे देखने वाले प्रत्यक्षदर्शी भी थे परन्तु समस्या यह थी कि अपराधी का एक दूसरा भाई भी था, जो स्वयं अपने भाई का अनुगमन करता था। यह निश्चित नहीं किया जा रहा था कि वास्तविक अपराधी कौन है ? उस स्थिति में अंगुल मुद्रायें सहायक सिद्ध हुईं और वास्तविक अपराधी को दण्ड दिया जा सका।

घटना स्थल पर अपराधी की अंगुल-मुद्रायें कैसे अंकित हो जाती हैं। इस संदर्भ में अपराध विज्ञानियों का कहना है कि मनुष्य के हाथ में से एक अदृश्य द्रव निरन्तर द्रवित होता रहता है। व्यक्ति जब अपराध करता है तो इस द्रव की मात्रा बढ़ जाती है। मात्रा बढ़ जाने का कारण अपराधी में चलते रहने वाला मानसिक द्वन्द्व, पकड़े जाने का डर तथा आत्मा की फटकार के कारण उत्पन्न हुई घबराहट ही बताया जाता है। इसलिए अपराधी की अंगुल मुद्रायें उस स्राव के कारण अधिक स्पष्टता से अंकित हो जाती हैं। इसी आधार पर सैकड़ों व्यक्तियों की अंगुल मुद्राओं के बीच भी अपराधी की अंगुल मुद्रायें पहचानी जा सकती हैं।

भारत की राजधानी दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में २५ अगस्त १९६९ को हुई, चोरी इतनी सफाई से की गई थी कि अपराधी का कोई चिन्ह ही पता नहीं चल रहा था। वहाँ काँच के एक टूटे हुए टुकड़े पर पड़े अदृश्य अंगुल मुद्राओं के द्वारा ही अपराधी को पहचाना और पकड़ा जा सका। अन्य सूत्रों के आधार पर अपराधी की कद काठी का ही अनुमान लगाया जा सकता था। अपराधी ने खिड़की में लगी लोहे की सलाखों को मोड़कर एक वर्ग-फीट जगह बनायी थी और उसी में से वह अन्दर घुसा था। राष्ट्रीय संग्रहालय में हुई इस चोरी में १ लाख ७५ हजार रुपये मूल्य के गुप्त एवं मुगलकालीन रत्नजड़ित आभूषण तथा स्वर्ण मुद्रायें चोर ले गये थे।

अपराध विज्ञान के विशेषज्ञ इतना ही अनुमान लगा सके कि अपराधी अकेला था, नाटे कद का तथा शक्तिशाली और पुष्ट देह का स्वामी था। खोज इससे आगे न बढ़ने पर सेण्ट्रल फिंगर प्रिण्ट ब्यूरो कलकत्ता से फिंगर प्रिण्ट एक्सपर्ट्स् बुलाये गये जिन्होंने काँच के एक टूटे हुए टुकड़े पर तीन अदृश्य अंगुल मुद्रायें देखीं। उन्हें ग्रेपाउडर से उभारा गया और चित्रित कर लिया गया।

इसी आधार पर उक्त घटना के ७० दिन बाद आंध्र प्रदेश के सिकन्दराबाद जिले के पिकेट ग्राम में छुपे हुए अपराधी यादगिरि को ५ नवम्बर को गिरफ्तार किया गया तथा उसके पास से चोरी गया माल बरामद हुआ। अपराध विज्ञानी अंगुल-मुद्राओं के अंकित होने का कारण जिस अदृश्य और सूक्ष्म द्रव को मानते हैं बताया जाता है कि वह द्रव किसी संगीन अपराध के समय अपराधी के हाथों से अनजाने ही बड़ी तेजी से बहने लगता है।

किसी भी दुष्कर्म में प्रवृत्त होते समय पहले व्यक्ति की अन्तरात्मा धिक्कारती है, परन्तु जब उस आवाज को कुचलकर बार-बार दुष्कर्म किये जाते हैं तो अन्तरात्मा की वह ध्वनि, चेतावनी क्षीण पड़ने लगती है। ऐसी स्थिति में अपराधी को न घबराहट होती है और न भय। माना जाय कि उस द्रव के निसरण का कारण घबराहट या भय ही है तो वैसी स्थिति में जबकि ऐसा कोई द्वन्द्व नहीं चलता, अंतःकरण की आवाज मर सी जाती है तो कोई द्रव नहीं बहना चाहिए परन्तु इस दशा में भी अंगुल मुद्राओं के अंकन में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया है। बड़े से बड़े पुराने और कुशल अपराधियों की अँगुलियाँ उसी प्रकार अपनी छाप छोड़ देती हैं जैसे नये अपराधी की। कहीं यह प्रक्रिया अन्तरात्मा द्वारा अपनी बात न मानने, अनीति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पथ न छोड़ने के कारण समाज द्वारा दण्डित कराये जाने के लिए छुड़वायी गयी सूक्ष्म पहचान हो।

उपरोक्त अपराध घटनाओं में तो उन्हीं अपराधों को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया गया है। जिनमें हाथ के निशान अंकित होने की संभावना कहीं न कहीं रहती ही है लेकिन अपराधी जब दूर रहकर वार करता है जैसे गोली चलाता है या विष देकर किसी की हत्या करता है तो भी बच नहीं पाता। हालांकि इन तरीकों में अंगुल मुद्राओं का कोई भय नहीं रहता फिर भी अपराधी को पकड़ ही लिया जाता है। १९५० में पंजाब की रियासत के राजा रणजीत सिंह की हत्या उनकी रानी पलविंदर कौर ने ही कर दी थी। कोई प्रमाण नहीं था कि यह हत्या रानी ने ही की है और न ही किसी को संदेह हो सकता है क्योंकि किसी ने कभी भी राजा-रानी में मनमुटाव या मतभेद जैसी कोई बात देखी ही नहीं थी।

घटना इस प्रकार है—रणजीतसिंह और पलविंदर कौर उस दिन शिकार पर गये थे, शाम को वापस कैंप पर केवल महारानी ही लौटीं। उन्होंने अपने अन्य साथियों को बताया कि मैं और महाराजा अपने शिकार के पीछे अलग-अलग रास्तों पर निकल गये थे। महाराजा के वापस न आने पर महारानी भी बहुत चिंतित दिखाई दे रही थीं। देर रात तक उन लोगों ने कैंप पर महाराजा का इन्तजार किया। जब महाराजा का एक प्यादा यह सूचना लेकर आया कि महाराजा एक कुएँ में गिर गये हैं। सभी लोग दौड़े गये और रस्सी डालकर महाराज को कुएँ में से निकाला गया परन्तु तब तक महाराज की मृत्यु हो चुकी थी।

लेकिन पोस्टमार्टम की रिपोर्ट मृत्यु का दूसरा ही कारण बता रही थी। डाक्टरों के अनुसार महाराजा की मृत्यु कुएँ में गिरने के कारण नहीं वरन् एक नुकीले तीर के कारण हुई थी। पुलिस का विचार था कि उन दिनों कुछ आदिवासी कबीलों की महाराजा से रंजिश चल रही थी और यह तीर आदिवासियों द्वारा ही इस्तेमाल किया जाता है। सूत्र-दर-सूत्र घटना की कड़ियाँ इस प्रकार मिलाई गयीं कि लगता था किसी आदिवासी ने महाराजा पर उस समय तीर चलाया जब वह पानी पीने के लिए कुएँ पर झुके थे। प्रहार के कारण महाराजा कुएँ में गिर गये और उनकी मृत्यु हो गयी।

उस तीर को, जिसका अगला सिरा महाराजा की पीठ में घुसा हुआ मिला था, अपराध विज्ञान की लेबोरेट्री में भेजा गया। अपराध विज्ञानी डा० दत्त ने निरीक्षण किया तो पाया कि तीर का अगला हिस्सा अत्यन्त नुकीला, ठोस और ताँबे का बना हुआ था और वह एक पेचदार, खोखली ट्यूब से बना है। आगे जाँच की गयी तो पता चला कि वह तीर नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार की रायफल की गोली है जो ताम्बे से बनती है क्योंकि उस रायफल से निकली गोली की गति व मारक शक्ति इतनी तेज तथा गर्म होती है कि सीसे की गोली पिघल जाती है। इसीलिए रायफल में ताँबे की गोली प्रयुक्त की जाती है।

यह रायफल उक्त क्षेत्र में केवल रियासत के राजघराने में ही थी। केस ने नया मोड़ लिया तो उसके आधार पर पलविंदर कौर को गिरफ्तार किया गया और उसे सेशन से सात साल की सजा दी गयी। यद्यपि यह केस आगे हाईकोर्ट में भी ले जाया गया। पता नहीं वहाँ क्या निर्णय हुआ परन्तु इन सभी घटनाओं से यह सिद्ध है कि अपराधी अपराध करने के लिए कितनी भी योजनायें बनायें, कैसी भी सावधानी बरतें परन्तु प्रायः वे कहीं न कहीं ऐसी चूक जरूर कर जाते हैं जिससे कि उनका राज खुल जाता है।

कदाचित् कोई व्यक्ति इतनी सावधानी बरते कि वह पुलिस और कानून की निगाहों से बच निकले तो भी उसे अपराध का दण्ड तो मिलता ही है। समाज न भी दे, परन्तु जिनके प्रति अपराध किया गया है, उनकी आत्मा, स्वयं अपनी आत्मा और ईश्वरीय नियम अपराधी को उसके किये का दण्ड देते हैं। अभी कुछ वर्ष पूर्व की घटना है। अर्जेण्टाइना के एक ग्रामीण क्षेत्र में किसी व्यक्ति ने एक ग्रामीण की गोली मारकर हत्या कर दी। गोली इतनी नजदीक से मारी गयी थी कि मृत व्यक्ति की खोपड़ी को छेदते हुए पीछे खड़े वृक्ष के तने में जा घुसी।

हत्यारा पकड़ लिया गया। प्रत्यक्षदर्शी गवाह, साक्ष्य और प्रमाणों के बावजूद भी वकीलों ने कुछ ऐसे कानूनी पेच निकाल लिये कि अपराधी को संदेह का लाभ मिल गया और वह बरी हो गया। इस घटना के तीन वर्ष बाद वही व्यक्ति अपने खेत पर खड़ा होकर मेंड़ पर लगा वृक्ष कटवा रहा था। यह वही वृक्ष था जिसके नीचे उस मजदूर की गोली मारकर हत्या की गयी थी।

जब वृक्ष को काटा जा रहा था तो वृक्ष कटकर कुछ इस प्रकार जमीन पर गिरा कि उसमें तीन वर्ष पूर्व फँसी गोली बंदूक से छूटी गोली की तरह उसी खेत मालिक की कनपटी पर लगी जिसने कि मजदूर की गोली मारकर हत्या की थी। पेड़ से छूटी हुई गोली के कारण वह व्यक्ति घटना स्थल पर ही मर गया। इस विचित्र घटना को जिस किसी ने भी सुना सृष्टि नियंता की न्याय प्रक्रिया का यह अद्भुत ढंग देखकर दाँतों तले अँगुली दबाकर रह गया।

अनीति, अनाचार के शिकार होकर अपने प्राण खो बैठने वाले व्यक्ति की आत्मा भी कई बार अपराधी को पकड़वा देती है। एडिनबरा में १९०५ में एक अद्भुत हत्याकाण्ड हुआ वहाँ की एक मकान मालिकन मिस जूरी की हत्या उसी मकान में रह रहे किरायेदार चार्ली ने कर दी। चार्ली एक पुलिस अधिकारी था और उसी थाने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इचार्ज था जिसमें कि जूरी की हत्या की रिपोर्ट दर्ज करायी गयी थी। अतः चार्ली ने इस रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं की और केस फाइल हो गया। यह सारा घटनाक्रम मार्च १९०५ का है।

इसके बाद उस मकान में जो भी किरायेदार आता जूरी की आत्मा उस केस को पुनः चालू कराने तथा अपराधी को दण्ड दिलवाने के लिए कहती। लेकिन लोग जूरी की आकांक्षा को पूरा करने के स्थान पर डर के मारे वह मकान छोड़कर चले जाते। सन् १९२० में उसी बंगले में मि० डिक्सन नामक एक पुलिस अधिकारी आया, जूरी की आत्मा ने उससे भी वही कुछ कहा जो अन्य किरायेदारों से कहती रहती थी। मि० डिक्सन ने उन बातों को सहजता और गम्भीरता से लिया। उन्होंने एडिनबरा के उस थाने में दबा दी गयी १५ वर्ष पुरानी वह फाइल फिर निकलवायी। उसमें जूरी के नौकर द्वारा यह शिकायत दर्ज करायी गई थी कि किसी ने उसकी मालकिन को गला घोंट कर मार डाला है। इस रिपोर्ट पर तत्कालीन थाना अध्यक्ष ने यह टिप्पणी लिखवायी थी कि जिस समय जूरी की हत्या हुई उस समय चार्ली गश्त पर गया हुआ था और अनुमान किया जाता है कि मिस जूरी ने अपने अकेलेपन से ऊब कर स्वयं आत्महत्या कर ली है।

जूरी की आत्महत्या द्वारा दिये गये निर्देशों के आधार पर मि० डिक्सन ने सारे मामले की फिर से जाँच कराई और सारे प्रमाण एकत्रित किये गये। सभी प्रमाण चार्ली के विरुद्ध जाते थे। इस आधार पर चार्ली को गिरफ्तार किया गया। गिरफ्तार करने के बाद चार्ली ने स्वीकार कर लिया कि उसी ने जूरी की हत्या की थी क्योंकि जूरी से उसके अवैध सम्बन्ध थे। प्रेम का ढोंग रचकर चार्ली जूरी से जल्द ही विवाह करने का वादा करते हुए यह सब करता रहा था। इन सम्बन्धों के कारण जूरी गर्भवती हो गयी थी और शादी के लिए दबाव डालने लगी थी। उससे छुटकारा पाने के लिए ही चार्ली ने जूरी की हत्या कर दी और अपने पुलिस अधिकारी होने का लाभ उठाया।

व्यक्ति के अपने अपकर्म ही भूत बनकर उसका पीछा करते रहते हैं और जब तक वह व्यक्ति उस दुष्कर्मों का फल नहीं भोग लेता तब तक उनसे पीछा नहीं छूटता। २४ जनवरी, ७६ की घटना है मझगवाँ बिहार के सोनपुर गाँव में एक बनिये के यहाँ नौकरी कर रहे २६ वर्षीय युवक भवानी ने १६ वर्षीया दुलारी के साथ मौका देखकर अपनी वासना पाशविक ढंग से पूरी की और इसके बाद दुलारी की हत्या करके नहर में फेंक दी। इस घटना का किसी को पता नहीं चला और न पुलिस को ही हत्या का कोई सुराग ही मिल सका कि किसने हत्या की थी ?

लेकिन भवानी के कानों में उस निर्दोष युवती की चीत्कार, हमेशा गूँजती रहती, मूक याचना भरी निगाहें, चेहरे पर विवशता के भाव, आतंक की काली छाया आदि कुल मिलाकर वह सारा दृश्य भवानी की आँखों के आगे कौंध जाता। अंतरात्मा की प्रताड़ना और पश्चाताप की व्यथा-वेदना भवानी अधिक नहीं झेल सका और मार्च ७६ तक मझगाँववासियों ने भवानी को सड़कों पर पागलों की तरह चिल्लाते-चीखते देखा। यही नहीं कुछ दिनों बाद भवानी ने विक्षिप्तावस्था में अपने गले में फाँसी लगा ली।

इस जन्म में कोई व्यक्ति पापकर्मों के दण्ड से बच जाने में सफल भी हो जाता है तो भी उसका दण्ड अगले जन्म में सुनिश्चित रूप से मिलता है। आप्तवाक्य कि—"पूर्व जन्म के पाप ही इस जन्म में असाध्य और कष्टकर रोगों के रूप में पीड़ित करते हैं।" अगले जन्म में यह दण्ड तो भोगना ही पड़ता हैं। इसी जन्म में जो मानसिक बोझ, व्यथा पश्चाताप की आग दहकती रहती है वही कम नहीं होती।

क्षणिक प्रलोभन या आवेश में आकर कोई अपराध कर बैठना सौ में से निन्यानबे बार समाज के सामने अपराधी की तरह खड़ा कर देता है। उससे बच भी गये तो अन्तरात्मा की मार पीड़ित आत्मा के प्रतिशोध और सृष्टि संतुलन बनाये रखने वाले नियमों की पकड़ से बचकर कहाँ जाइयेगा ?

बढ़ते अपराध और उनका उपचार

सभी देशों में अपराध जिस गति से बढ़े हैं उसे देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस संगठन 'इन्टरपोल' ने वर्तमान समय को ही 'अव्यवस्था का युग' करार दे दिया है। विश्व के सभी देशों में अपराध बरसाती नदी के जलतल की तरह तेजी से बढ़ रहे हैं। भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति में सबसे बढ़ा-चढ़ा देश संयुक्त राज्य अमेरिका अपराधों की वृद्धि में भी सबसे आगे हैं। दूसरा नम्बर पिछले युग का सबसे समर्थ साम्राज्यवादी राष्ट्र ब्रिटेन का है।

पिछले दिनों संयुक्त राज्य अमेरिका में हर १७ मिनट में एक शीलहरण, हर १७ सेकिण्ड में एक लूट-खसोट, हर पच्चीस सेकिण्ड में एक चोरी, हर ४१ सेकिण्ड में एक कार, स्कूटर चोरी, हर दो मिनट में एक घातक हमला और एक डकैती, हर ५४ सेकिण्ड में एक घातक अपराध, हर ३१ मिनट में एक हत्या और हर मिनट में ८ गम्भीर अपराध हुए। अब तो यह दर और भी बढ़ गयी है। १९६९ में प्रति १,००,००० व्यक्तियों पर २४७१ अपराध हुए। यह दर बहुत चौंकाने वाली है। कई महानगर तो अपराधों के नगर बनकर रह गये हैं। न्यूयार्क ऐसा ही एक नगर है जो कभी अपनी भव्यता और महत्ता के कारण विश्वविख्यात था। आज अपनी उस भव्यता और महत्ता के होते हुए भी अपराध वृद्धि के कारण लोगों का अपने प्रति लगाव खोता जा रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका में १९६० से १९९० के बीच बड़े, अपराध ३०० प्रतिशत बढ़े हैं। यही नहीं सहनशीलता, दया और ममता की प्रतिमूर्ति कही जाने वाली महिलाओं में भी यह अपराध वृत्ति तेजी से फैलती जा रही है। पुरुषों की तरह ही उपार्जन और उग्रतावादी आन्दोलनों में उनके स्वाभाविक नारीत्व को झुलसा दिया है। ऐसा वहाँ के समाजशास्त्रियों का मत है।

वहाँ महिलाओं को हत्या, दुकानों से चीजें उठाते व बैंकों में डाका डालने के अपराध में गिरफ्तार किया गया। आँकड़ों के अनुसार बारह वर्ष से कम आयु की युवतियों के अपराधों में १९६९-७० में २५६.५ प्रतिशत वृद्धि हुई है, जबकि इसी आयु के युवकों में यह वृद्धि ७९.५ प्रतिशत ही थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य का अपनी भावनात्मक महत्ता को भुलाकर मात्र भौतिक सुख और शुष्क बुद्धिवाद की ओर भागना कितना हानिकारक हो सकता है ? महिलाएँ जिन्हें भावनाओं की देवियाँ कहा जाता है वे ऐसे अपराधों में प्रवत्त हों यह कम चिन्तनीय नहीं।

अकेले इंग्लैण्ड में १५ लाख अपराध हुए। इसका अर्थ है १,००,००० व्यक्तियों पर २५०० अपराध हुए। हर १९ मिनट में एक डकैती, हर तीन घण्टे में एक हत्या और हर २२.५ सेकिण्ड में एक सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध, हर ३७.५ मिनट में एक हत्या और हर ७ सेकिण्ड में वहाँ पर एक चोरी होने की वारदात हुई।

हमारे देश में उतने अपराध तो नहीं होते हैं जितने इन देशों में हो रहे हैं। किन्तु हमारे यहाँ अपराध जिस गति से बढ़ रहे हैं वह चिन्ता का विषय ही है। भारत में हर वर्ष लगभग ग्यारह लाख व्यक्ति किसी न किसी अपराध में पकड़े जाते हैं। केन्द्रीय जाँच विभाग के आँकड़े बताते हैं कि हमारे देश में जिस गति से अपराध बढ़ रहे हैं वह निश्चित रूप से चिन्ताजनक है।

१९६९ में देश में ७८,००० से भी अधिक बाल अपराधी पकड़ गये। इनमें १६०० सात वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के थे। यही नहीं चोरी, हत्या, डकैती, लूट आदि की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं। दिल्ली जैसे महानगरों की स्थिति तो और भी विकट है। सन् १९९२ में वहाँ पर केवल ३०० पुलिस कर्मचारी थे, आज उनके स्थान पर हजारों पुलिस कर्मचारी हैं फिर भी उनकी संख्या कम लगती है। अकेले दिल्ली नगर में १९७१ में ११० व्यक्तियों की हत्याएँ हुईं जबकि १९९२ में केवल दो व्यक्तियों की। १९९२ में १६ चोरियाँ हुई थीं जबकि १९७१ में १६,२५०। यह वृद्धि बढ़ते हुए अपराधों की तस्वीर प्रस्तुत करती है। जन जीवन की सुरक्षा दिन पर दिन घटती जा रही है।

.ये सब तो वे अपराध हैं जो थाने में दर्ज हुए हैं। कई अपराध ऐसे भी हैं, जिनकी सूचना ही वहाँ तक नहीं पहुँच पाती है। सामाजिक स्वास्थ्य व सामाजिक हित के क्षेत्रों में कितने ही ऐसे अपराध चल रहे हैं कि जो किसी एक व्यक्ति विशेष के साथ न होकर सारे समाज के साथ होते हैं किन्तु कुछ ऐसी रीति से उनका कोई दण्ड अपराधियों को मिल नहीं पाता। खाद्य पदार्थों में मिलावट, जमाखोरी, चोर बाजारी, भ्रष्टाचार, तस्कर, व्यापार, जुआ, सट्टा आदि ऐसे ही अपराध हैं, जो आज समाज को जर्जर किये दे रहे हैं।

अभी तक समूचे अपराधों की रोकथाम या अपराधियों को दण्ड दिलाने के लिए एक ही व्यवस्था है और वह है पुलिस की। सारी दुनिया में अपराधों को रोकने व अपराधियों को दण्ड देने के लिये यही व्यवस्था चल रही है। अमेरिका में शहरों के लिए २५४९८४ व १,१८५६४ सिपाही थे यानी शहरों व गाँवों का औसत प्रति १०,००० व्यक्तियों पर २१ व ११ का था। इंग्लैण्ड में प्रति १००० व्यक्तियों पर ४५ पुलिसमेन हैं। हमारे देश में बहुत कम पुलिस कर्मचारी हैं। १९६८ में हमारे देश में ६१७१७३ पुलिस के सिपाही थे। यह औसत प्रति १०,००० व्यक्तियों पर १२ का बैठता है।

इन बढ़ते अपराधों को रोकने के विषय में विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इतने पुलिस कर्मचारी होते हुए भी अपराध बढ़ ही रहे हैं, तो आगे के लिए इस होने वाली अपराध वृद्धि की रोकथाम के लिये पुलिस के सिपाहियों की संख्या में वृद्धि करने पर कोई विशेष लाभ होने वाला नहीं है क्योंकि पुलिस तो उभर आये रोग की मरहम पट्टी या सामयिक दवादारू करने जैसा ही काम करती है। रोग को समूल नष्ट करना उसके बस का नहीं। अपराध करने पर अपराधी को पकड़ना और सजा देना एक बात है और व्यक्ति अपराध की ओर प्रवृत्त ही न हो ये दो भिन्न-भिन्न बातें हैं। दूसरे तथ्य के साथ ही अपराध कम होते हैं पहले से नहीं।

भौतिक व वैज्ञानिक दृष्टि से बढ़े-चढ़े अमेरिका जैसे देश में अपराधों की बाढ़ आने से यह बात पहले ही साफ हो जाती है कि अपराधों के मूल में व्यक्ति की गरीबी नहीं होती है और न भौतिक सुख-सुविधाओं के अभाव में अपराध बढ़ते हैं।

अपराध बढ़ने के पीछे यदि कोई कारण है तो वह यही है कि भौतिक सुख-सुविधा के साथ-साथ मनुष्य की आन्तरिक विशालता की वृद्धि नहीं हुई। उन, सुख-सुविधाओं को स्वयं सही तरीके से भोगने व दूसरों को भोगने देने का पात्रत्व उसमें विकसित नहीं हो सका। सब निर्माणों की ओर अंधाधुन्ध जुटा रहने वाला मनुष्य अपने निर्माण की ओर ध्यान नहीं दे पाया। यह बात आइने की तरह साफ है कि जहाँ अच्छे आदमी होंगे वहाँ अपराध कम होंगे।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इसीलिये भारत की प्रगति के लिए स्वराज्य की ही नहीं सुराज्य व रामराज्य की बात भी आवश्यक बतायी थी। हमारी सरकार यह अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करती है कि हमारे देश में पुलिस की संख्या कम है। उसकी संख्या बढ़ाने के लिये वह प्रयत्नशील भी है। जनता और पुलिस का पारस्परिक सहयोग भी अपराधी को पकड़ने व उचित दण्ड दिलाने के लिए आवश्यक है किन्तु उन्हीं से अपराधों की वृद्धि रुक जायेगी यह बात सोचना अपने आपको अँधेरे में रखना है। अपराध वृद्धि रोकने के लिये आवश्यक बातें हैं व्यक्ति के निर्माण की समग्र प्रक्रिया का होना, उसके सामने अपने आदर्श स्वरूप होना बार-बार उसे मानवीय गौरव गरिमा व उच्चता का भाव होते रहना।

डण्डे के बल पर, भय के सहारे अपराध नहीं रोके जा सकते। अपराध रोकने के लिए तो मनुष्य के मन को उस दिशा में मोड़ना आवश्यक है, जो उसे ऊँचा उठाये। मनुष्य के सामने जब शाश्वत मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बनी रहती है तो वह अपराधों की ओर उन्मुक्त ही नहीं होता, यदि ऐसी स्थिति आती भी है तो वह अपने पर संयम रखता हुआ उन परिस्थिति के सामने हारकर अपने आपको नीचे नहीं गिराता।

हमारी पाप, पुण्य, परलोक, पुनर्जन्म, मनुष्य को ईश्वर का अमृत पुत्र मानना, देवत्व की ओर सहज प्रवृति को श्रेयस्कर मानने वाली धार्मिक व सांस्कृतिक आस्थाएँ निराधार, कपोलकल्पित व निरुपयोगी नहीं थीं। संस्कारों, पर्वों, त्यौहारों के द्वारा मनुष्य को निरन्तर अच्छे बनते रहने की सद्प्रेरणाएँ देनें वाली हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ यों ही नहीं बाँधी गयीं थीं। इनका बड़ा मूल्य था, बड़ी भूमिका थी मनुष्य को ऊँचा उठाने की।

इसे हमारा दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि हम पाश्चात्य सभ्यता व भौतिक प्रगति की चकाचौंध के आगे हमारी उन महान परम्पराओं को ही बिसार बैठे, उनका मूल्य ही समझ न सकें। बहुत सम्भव था उन सोने जैसी परम्पराओं पर थोड़ा विकृतियों का मैल चढ़ गया हो तो उनका परिमार्जन किया जा सकता है। किन्तु उन्हें व्यर्थ मान बैठना सबसे बड़ी भूल होगी। आज वे ही परम्पराएँ पाश्चात्य जगत को भी उसकी कई जान लेवा समस्याओं से मुक्ति दिला सकती हैं।

अपराधों की वृद्धि रोकने के लिये आवश्यक है, व्यक्ति निर्माण। व्यक्ति अपने सामने जैसा आदर्श रखकर चलता है वह वैसा ही हो जाता है। मनुष्य मन का स्वभाव है कि बुराइयों को जितना शीघ्र ग्रहण कर लेता है अच्छाइयों को उतना शीघ्र नहीं। पतित होने में देर नहीं लगती, देर ऊपर उठने में लगती हैं, मेहनत भी उसमें करनी पड़ती है। किन्तु ऊपर उठने में जो सुख संतोष उसे मिलता है वह नीचे गिरने में नहीं मिलता। उलटे नीचे गिरने पर उसे आत्म प्रताड़ना मिलती है। अतः यदि उसके सामने अपना आदर्श स्वरूप रहा तो वह ऊपर उठने का ही प्रयास करेगा।

नैतिक व सांस्कृतिक पुनरुत्थान आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इन मर्यादाओं के प्रति ज्यों-ज्यों मनुष्य की आस्थाएँ समाप्त होती जाती है, त्यों-त्यों समाज में कई समस्याएँ उठ खड़ी होने लगती हैं। अपराध वृद्धि की समस्या भी उसी से जुड़ी हुई है। इन आस्थाओं की पुनर्प्रतिष्ठा होने के साथ ही अपराध कम होते जायेंगे।

अपराधों का कारण गरीबी ही नहीं है

जब कुविचार मन में आते हैं तब उसका प्रतिफल कुकर्मों के रूप में सामने आता है। मन में पाप रहेगा तो शरीर से भी पाप ही बन पड़ेंगे। मन को उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत रखने के लिए प्राचीनकाल में अनेक उपाय किये जाते थे और यह प्रयत्न किया जाता था कि कोई ऐसे माध्यम पनपने न पावें, जो जनता की अपराधी मनोवृत्ति को भड़कावें। इस प्रकार के प्रतिबन्ध जब तक कठोर रहें और उच्च भावनाओं को हृदयंगम करने वाली शिक्षा सर्व सुलभ रही तब तक हमारे समाज का स्तर ऊँचा रहा। आज जब इस दिशा में शिथिलता बरती जाने लगी तो बाँध टूटने से चारों ओर फैलने वाले पानी की तरह अनाचार भी बेतरह बढ़ने लगा।

पिछले दिनों दैनिक हिन्दुस्तान ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था—"राजधानी में बढ़ती हुई गुण्डागर्दी ने यहाँ की विशिष्ट अपराध स्थिति के सर्वेक्षण और उसे सुधारने के उपायों पर विचार करने के लिए बाध्य किया है।" ..... एक विवरण के अनुसार भूतपूर्व पुलिसर्जन अपराधियों के प्रमुख हैं और दिल्ली से कहीं बड़े क्षेत्र वाले पंजाब प्रान्त में जहाँ केवल ६०० इश्तिहारी मुलजिम हैं वहाँ दिल्ली में उनकी संख्या १२०० से ज्यादा है। कोई १५०० व्यक्ति बदमाशों (गुण्डों) की सूची में हैं जिनमें ६५० दस नम्बरी बदमाश बताये जाते हैं। इनके तौर-तरीके भी अजीबोगरीब हैं। बड़े आदमियों की तरह रहने वाले और खैरात पर या दूसरी तरह रौब-दौब रखने वाले इन लोगों का मुकाबला करना हर किसी का काम नहीं है। कहते हैं कि चारों तरफ की आलोचना से तंग आकर पुलिस सक्रिय बनी है।"

गुण्डों का बढ़ता हुआ दुस्साहस जन-साधारण के लिए एक आतंक का विषय बना हुआ है। आये दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि अमुक स्थान पर रिवाल्वरों और छुरों से लैस गुण्डे मोटर पर सवार होकर आये और हवा में गोलियाँ चलाकर मुहल्ले वालों को आतंकित कर दिया। उन्होंने एक घर में घुसकर मालिक को अधमरा कर दिया, घर में आग लगादी और अमुक व्यक्ति को बाँध कर ले गये। अमुक नगर में गुण्डे एक स्त्री को छेड़ते थे, उसके पति ने रोका तो वे बन्दूकों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लैस होकर घर पर चढ़ आये। बन्दूकें चलाकर बाहर वालों को रोकते रहे और पति-पत्नी को गंडासे से काट डाला और उनके आठ वर्षीय बालक का एक हाथ और दोनों पैर काट ले गये।

यह समस्या केवल बड़े शहरों की ही नहीं, अपराधों की प्रवृत्ति सर्वत्र अपना सिर उठा रही है। उत्तर प्रदेश की पिछले वर्ष की रिपोर्ट है कि ऐसे अपराध जिनमें सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा, हजारों की संख्या में थे। इनमें से कितनी ही हत्यायें—राजनैतिक कारणों से हुईं। राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, असम, बिहार आदि प्रान्तों की भी यही स्थिति है।

कुछ लोग सोचते हैं कि गरीबी और परेशानी के कारण लोग चोरी, ठगी आदि करने लगते हैं यह बात एक अंश तक ही सही है। गरीब और दुर्बल आदमी छोटी-मोटी उठाईगीरी कर सकता है, पर बड़े उत्पात वही करेगा जिसकी भुजाओं में बल और दिमाग में चुस्ती होगी। सम्पन्न और सामर्थ्यवान लोगों की दुष्प्रवृत्तियाँ ऐसे भयंकर अपराधों को जन्म देती हैं जैसे कि बेचारे गरीब कभी कल्पना भी नहीं कर सकते। यह सोचना उचित नहीं कि गरीबी के साथ-साथ अपराधी मनोवृत्ति का भी अन्त हो जायेगा। सच बात यह है कि अपराधी प्रवृत्ति एक प्रकार का मानसिक रोग है जो सत्संग, स्वाध्याय और नैतिक शिक्षा के अभाव में पनपता है। नीचे कुछ ऐसे समाचार उपस्थित हैं जिन्हें पढ़कर यह अनुमान लगाया जा सकेगा कि गरीबी से पीड़ित नहीं, अनैतिक विचारधारा वाले व्यक्ति साधन सम्पन्न होते हुए भी अपराध करते हैं।

कुछ वर्ष पहले मद्रास की खुफिया पुलिस ने केरल राज्य के यवानु फुल्हे नामक स्थान पर सौ-सौ रुपये के जाली नोट छापने की मशीन पकड़ी थी। कोचीन में भी कुछ दिन पूर्व ऐसी ही मशीन पकड़ी गई थी। कलकत्ता पुलिस ने एक प्रेस में भारी संख्या में जाली रेलवे टिकट और छापने का सामान बरामद करके तीन व्यक्तियों को पकड़ा था। पंजाब के प्यारेलाल नामक साइकिल व्यापारी के पास १८ हजार रुपये थे, उसकी जेब लखनऊ के अमीनुदौला पार्क में कट गई। काटने वाला सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ पर्चा जेब में रख गया। जिसमें लिखा था—"आपकी आवश्यकता से मेरी आवश्यकता अधिक बड़ी है। धन्यवाद।" केन्द्रीय गुप्तचर विभाग ने कई मास के परिश्रम के बाद ठगों के एक ऐसे बहुत बड़े गिरोह का पता लगाया है जो वर्षों से अलीगढ़, हाथरस, बुलन्दशहर, खुर्जा, भोपाल, ग्वालियर, दिल्ली आदि में सक्रिय था। जिसकी ३६ शाखाएँ तथा एक हजार रुपया दैनिक की आय है। इसने दर्जनों नाम से जाली व्यापार रचा हुआ थां। पुलिस ने कागजों से भरे अनेक बक्स अपने कब्जे में कर लिये। नागपुर में कुछ दिन पूर्व एक व्यापारी ने अपने यहाँ २३ हजार की डकैती की रिपोर्ट की थी तथा छुरे के तीन घाव भी दिखाये थे। बताया जाता है कि तब पुलिस ने उसे ही धोखादेही के अपराध में पकड़ा और रुपये भी चावल के बोरों में तथा तकिये में प्राप्त कर लिये थे। कहते हैं कि वह व्यापारी कर्जदार था और इस प्रकार डकैती का बहाना बनाकर लोगों का कर्ज मारना चाहता था। बम्बई पुलिस को पता चला था कि नगर में एक ऐसा स्कूल चल रहा है जो जेबकटी, ताला तोड़ने, उठाईगीरी, ठगी आदि की नियमित शिक्षा और शिक्षार्थियों को छात्रवृत्ति देता है।

दिल्ली पुलिस का खुफिया विभाग उन शिकायतों की जाँच-पड़ताल कर रहा है जो कोलोनाइजरों की एक फर्म द्वारा फर्जी प्लाटों की बिक्री के सम्बन्ध में प्राप्त हुई हैं। फर्म ने २०० से ऊपर लोगों को प्लाट बेचे। लेकिन जब वे लोग कब्जा लेने के लिए पहुँचे तो उन्हें मालूम हुआ कि जो जमीन उन्हें बेची गई वह है ही नहीं। इसमें लाखों रुपये का चकमा दिया गया मालूम पड़ता है। सब्जीमंडी के एक बैंक मैनेजर ने रिपोर्ट की है कि किसी सफेद पोश नें जाली चैक बनाकर २०,४०० रु० बैंक से निकलवा लिये हैं। एक और व्यक्ति लगभग १ लाख २६ हजार रुपयों के जाली बौण्ड बेचकर फरार हो गया। मोदी नगर के एक व्यक्ति को उसने अपने ४ हजार के जाली बौण्ड २२०० में बेचे। इस खरीदने वाले ने एक आवश्यकता के लिए उन बौण्डों को कस्टोडियन के दफ्तर में जमा किया तो आडिट ऑफिस में पता चला कि ये बौण्ड जाली हैं। पीछे मालूम हुआ कि उस फरार व्यक्ति ने विभिन्न लोगों को ऐसे ही जाली बौण्ड लगभग १ लाख २६ हजार के बेचे थे। खरीदने वाले सभी पछता रहे हैं।

आगरा फोर्ट की रेलवे पुलिस ने खुरजा के लल्लूमल नामक एक व्यक्ति को जाली टिकट चैकर बनकर यात्रियों से रुपया ऐंठते रहने के अभियोग में गिरफ्तार किया था। बुलन्दशहर जिले के तीन व्यक्तियों को पुलिस ने अन्तर्राष्ट्रीय ठगी के षड्यंत्र अभियोग में गिरफ्तार किया था। बताया जाता है कि यह गिरोह इंडोनेशिया, मलाया, अफ्रीका, घाना आदि विदेशों के समाचार-पत्रों में जाली लाटरियों का विज्ञापन छपाकर काफी धन बटोरता था पर इनाम किसी को नहीं देता था। इन्दौर के एक फर्म पर पाँच लाख रुपया रेलवे से ठगने का अभियोग लगा था। कहा जाता है कि तब रेलवे माल गोदाम में चोरी हुई रेलवे रसीदों के द्वारा उसने जाली हुण्डी बिल्टी बनाकर रेलवे से यह रकम वसूल की थी। बुलन्दशहर पुलिस ने जाली परमिट बनाकर कन्ट्रोल की चीजें प्राप्त करने वालों का एक गिरोह पकड़ा था। बिना टिकट यात्रा करने वाले यात्रियों की संख्या प्रतिवर्ष लाखों में होती है और उनसे करोड़ों रुपये जुर्माना भी वसूल किया जाता है। इतने पर भी लोग कहाँ मानते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपराधी मनोवृत्ति के लोग अशिक्षित एवं निम्न स्तर के होते थे। पर अब जबकि शिक्षित और सभ्य समाज में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है तो बात कुछ अधिक चिन्ता की हो जाती है। शिक्षित लोग समाज का शीर्ष माने जाते हैं, पर जब उनमें अनुपयुक्त प्रवृत्ति पनपने लगे तो निश्चय ही उसका प्रभाव निम्न स्तर के गुण्डों की अपेक्षा अधिक व्यापक क्षेत्र तक फैलता है। उदाहरण के लिए पिछले दिनों दिल्ली में पाँच सुशिक्षित युवकों की गिरफ्तारी से अनेक सनसनीपूर्ण हत्याओं, चोरियों, डकैतियों और धमकी देकर रुपया ऐंठने का भेद खुला था। महरौली के निकट एक होनहार युवक की हत्या, हावड़ा स्टेशन पर मिली एक युवती की लाश, शस्त्रों की चोरी एवं अनेक डकैतियों से इनका सम्बन्ध बताया गया था। दल के अनेक सदस्य पकड़े गये थे, जो सभी सुशिक्षित थे। दिल्ली, चरू और अम्बाला में इनके अड्डे पकड़े गये थे। कानपुर का समाचार था कि राज्य सरकार का गुप्तचर विभाग तथा उच्च अधिकारी लगभग दो दर्जन सफेदपोशों तथा १५ मोटर कारों एवं उनके मालिकों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखे हुए हैं। पता चला था कि कानपुर के कतिपय रईसों, राजनैतिक नेताओं, व्यापारियों, एडवोकेटों एवं मिल-मालिकों ने शहर में और बाहर ऐसे अड्डे कायम कर लिये हैं, जिनमें अपहृत युवतियों को ले जाया जाता है। थाना मुड़सान के थानेदार ने दिल्ली विश्वविद्यालय के एक एम० ए० के छात्र को अमरीकी रिवाल्वर तथा १५ कारतूसों समेत पकड़ा था। कलकत्ता से यह हथियार चुराकर वह इधर बेचने लाया था। गाजियाबाद का समाचार था कि रेलवे पुलिस ने दनकौर से आनी वाली पैसेन्जर पर एक शिक्षित युवक को पकड़ा जो रेलवे के तार काटकर बड़ी मात्रा में चुराते रहने वाले गिरोह का सदस्य बताया जाता था। तीन उसके अन्य साथी भी पकड़े गये थे। रानीखेत का समाचार था कि वहाँ चोरों का एक ऐसा दल सक्रिय था जो क्लोरोफार्म का कपड़ा सुँघाकर लोगों को बेहोश कर देता था और निधड़क होकर चोरी करता था। मुरैना के गणेशपुरा मुहल्ले में चोरों ने १२ जगह चोरी की जिनमें उन्होंने सभी घरों में क्लोरोफार्म सुँघाकर घर मालिकों को बेहोश किया था। मुंगेर में एक धनी व्यक्ति के पड़ौस में ठहरे हुए कुछ सफेदपोशों ने जमीन के भीतर ही भीतर बहुत लम्बी सुरंग बनाकर उस व्यक्ति के घर में प्रवेश पा लिया और लगभग दो लाख रुपये का सामान उस सुरंग से होकर ही ले गये। झाँसी जिले में बिखरे हुए वैष्णव एवं जैन मन्दिरों की कलात्मक मूर्तियाँ चुराकर विदेशों को निर्यात करने वाले एक सभ्य लोगों के गिरोह का पता पुलिस ने लगाया है। प्राप्त सूचनाओं से विदित हुआ है कि यह लोग लगभग एक लाख रुपये की मूर्तियाँ विदेशों को भेज चुके हैं।

उत्तरप्रदेश विधान सभा की भूतपूर्व सदस्या एवं उर्दू की शायर बेगम सईदजहाँ को आठ वर्ष की कैद तथा ५ हजार रुपये जुर्माने की सजा हुई थी। उन पर नकली मौत की कहानी गढ़कर बीमा कम्पनी से ६० हजार वसूल करने के षड्यंत्र का अपराध लगाया गया था। औरैया की पुलिस ने साइकिलें छीनने और राहजनी करने वाले सशस्त्र विद्यार्थियों का एक गिरोह पकड़ा था। कहा जाता है कि पिस्तौल के बल पर यह गिरोह कई महीने से लूटमार कर रहा था। पकड़े हुए विद्यार्थियों में कई बी. ए., एम. ए. के छात्र थे।

अपराधी मनोवृत्ति से छुटकारा पाने से ही जनता में शान्ति स्थिर रह सकती है और यह तभी संभव है जब नैतिक विचारधारा से प्रत्येक नागरिक की मनोभूमि को सराबोर बनाने का प्रयत्न किया जाय।

तस्करी—एक अपराधपूर्ण कुटिल व्यापार

दूसरे देश में से कोई वस्तु या सामान मँगाने पर आयातित देश में सीमा शुल्क और अन्य प्रकार के कर देने पड़ते हैं। इससे उनके मूल्य बढ़ते हैं क्योंकि उन देशों में भी कर देना पड़ता है, जहाँ से कि माल का निर्यात किया जाता है और उस देश में भी जहाँ माल का आयात होता है क्योंकि विदेशी वस्तुओं को अधिकता और अन्य विशेषताओं के कारण स्वदेशी सामग्रियों का व्यापार ठप्प न पड़ जाये इसलिए शुल्क कुछ अधिक ही रखा जाता है। वह शुल्क भी कुछ विदेशी कम्पनियाँ अपने लाभ में से तो देती नहीं इसलिए उन वस्तुओं का मूल्य अधिक ही पड़ता है। महँगी और दुर्लभ होने के कारण उन वस्तुओं के प्रति विश्वस्तता और मजबूती की मान्यता बनना स्वाभाविक है। दुर्लभ हो तो भी लोग उन्हें खोजते फिरते हैं।

परन्तु समस्या या दुविधा तो तब पैदा होती है जबकि उपभोक्ता की जेब उस वस्तु को खरीदने में असमर्थता जाहिर करती है। असमर्थता का लाभ उठाकर कुछ अवसरवादी धन लोलुप व्यक्तियों ने एक नया रास्ता खोज निकाला है तस्करी। तस्करी का एक और कारण है—अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में और वह है—काले धन का बढ़ जाना। एक अर्थशास्त्री के अनुसार—काला धन समान्तर अर्थव्यवस्था की आधारशिला बन चुका है और यही कारण है कि अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए जो भी वित्तीय और मुद्रा सम्बन्धी उपाय किये गये हैं उनका अब तक मामूली ही प्रभाव पड़ा है। करों की चोरी कर इकट्ठा किया गया काला धन तस्करी को बढ़ावा देता है और तस्करी काले धन को।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह सच है कि तस्करी में आयी वस्तुएँ अपेक्षाकृत कम कीमत पर पड़ती हैं परन्तु उतनी कीमत चुका पाना भी सभी के लिए तो सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए १५०-१७५ रुपये की घड़ी जब १००-१२५ रुपये में मिल रही हो तो वह भी तो ऐसे ही व्यक्ति खरीद सकेंगे जिनके पास इतनी सामर्थ्य होगी। जनसामान्य के पास तो शायद ही इतनी रकम ऐसे कार्यों के लिए इकट्ठी हो पाती है। अब ऐसे सामान खरीदने में वे ही लोग पैसा खर्च कर सकते हैं, जिनके पास अघोषित धन और कर व्यवस्था से बचाकर रखा गया रुपया हो। वैसा ही पैसा सोना, चाँदी, जेबरात, विदेशी ट्रांजिस्टर, स्टीरियो तथा टेपरिकार्डर आदि वस्तुयें खरीदने में लगाया जा सकता है। इससे दो लाभ होते हैं—एक तो बाजार भाव से सस्ते मूल्य पर चीजें मिल जाती हैं और दूसरे बचाकर रखे गये काले धन का भी उपयोग हो जाता है।

तस्करी में राष्ट्र की सरकारों, सीमा चौकियों की नजर बचाकर कीमती विदेशी सामान देश के भीतर लाया जाता है। जिन विदेशों से यह वस्तुयें लाई जाती हैं, वहाँ भी यही तरीका अपनाया जाता है। अस्तु दोनों देशों से चुराया गया उन सामग्रियों का मूल्य सस्ता कर देता है और लोग धड़ाधड़ खरीद भी लेते हैं क्योंकि कीमत कम है। नैतिक दृष्टि से भी, व्यावहारिक दृष्टि से भी इस काम में लगे हुए लोग-अपराधी तथा यह प्रवृत्ति निन्द्य और दण्डनीय है। फिर भी आर्थिक दृष्टि से बड़े लाभ का सौदा होने से चालाक और तिकड़मबाज लोगों ने इसे एक व्यवसाय का रूप दे दिया है। एक वक्ता ने तो तस्करी को बड़ा भारी उद्योग कहकर सम्बोधित किया। उद्योग अपराध तो नहीं होता परन्तु तस्करी में जितनी पूँजी लगी हुई है वह बहुत बड़ी है, विपुल है अनुमान किया जाता है कि इस कार्य में लगभग ५००-६०० करोड़ रुपये तक की पूँजी लगी हुई है और यह प्रवृत्ति इस कदर बढ़ रही है हमारे देश की अर्थव्यवस्था को घुन की तरह खाये जा रही है।

सितम्बर ७४ में आन्तरिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत कोई तस्करी को अकस्मात पकड़ लिया गया। लेकिन उसके बावजूद यह अपराध कृत्य सर्वथा उच्छेदित हो गया—कहा नहीं जा सकता। प्रमुख अपराधियों के पकड़े जाने पर भी उस अपराध-व्यवस्था में उनके सहयोगी लोग आगे आ जाते हैं। कुछ समय के लिए उस व्यवसाय की भयावहता तो कम होती है परन्तु थोड़े दिन बाद पुनः रोग अपनी पूर्व स्थिति पर पहुँच जाती है और इस रोग को जड़ मूल से नष्ट करने के लिए जन स्तर पर कार्य किया जाना चाहिए। लोक तन्त्र में जनसहयोग के अभाव में कोई भी कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया नहीं जा सकता इसलिए आवश्यक है कि इस स्तर पर जन चेतना जागृत की जाय।

किस प्रकार वह जागृति की जाय यह विचार करने से पूर्व तस्करी के कारण उसकी हानियाँ तथा भीषणताओं को समझना चाहिए। कारणों के सम्बन्ध में सीधी-सी बात तो यह है कि वित्तेषणा नीतिभ्रष्ट व्यक्ति की नैतिक चेतना को इस तरह डस लेती और अपने विष से मार डालती है कि दोनों हाथों से धन बटोरने के लिए उसे उचित-अनुचित का कोई ध्यान नहीं रहता। तथ्य तो यह है कि श्रमशीलता और पुरुषार्थ के अभाव में आज तक कोई भी धन कुबेर नहीं बन पाया है। उसके साथ ईमानदारी और नैतिकता का जुड़ा रहना भी आवश्यक है। इन आधारों की उपेक्षा करते हुए कोई धनवान हो भी गया तो समाज व्यवस्था अभी इतनी भ्रष्ट नहीं हो गयी है कि उसकी दृष्टि से यह सब कुछ छुपा रहे और उससे बचने के लिए जितने भी उपाय किये जाते हैं, वे व्यक्ति के मन मस्तिष्क को इतने चिन्तित, बोझिल और तनावग्रस्त बना देते हैं कि संचित की गयी सम्पदा सुखशान्ति का नहीं चिन्ता और उद्विग्नता का ही कारण बन जाती है।

व्यक्तिगत दृष्टि से—निजि अर्थों में धन सम्पदा के लाभों से इस प्रकार वंचित रह जाना तो प्रमुख हानि है। अन्य हानियों और दण्ड भीतियों का खतरा तो सदैव बना रहता है। सामाजिक दृष्टि सेराष्ट्रीय संदर्भ में यह नागरिकों के नैतिक स्तर के पतन और चरित्र भ्रष्टता का ही कारण बनती है। जो लोग तस्करी के कार्यों में लगते हैं वे देश की अर्थव्यवस्था को चौपट करने वाला राष्ट्रघात ही करते हैं। विदेशी वस्तुओं को कम मूल्य पर उपलब्ध होते देख स्वाभाविक ही है कि लोग उसे ही खरीदेंगे और वे वस्तुयें भी कोई बिना मूल्य चुकाये तो देश में आती नहीं। सीमा शुल्कों की चोरी कर भले ही वे वस्तुयें यहाँ आ जायँ परन्तु जहाँ से उन्हें लाया जाता है, वहाँ तो उनका मूल्य चुकाना ही पड़ता है। इस प्रकार अपने देश की मुद्रा विपुल मात्रा में छुपे रास्तों से अनायास ही विदेशों में पहुँच जाती है।

दूसरे विदेशी वस्तुओं के आयात पर जो टैक्स और शुल्क लगाया जाता है, वह सार्वजनिक कार्यों में ही खर्च होता है। उससे समाज को मिलने वाली सुविधा से वंचित् करा देती है। व्यापक दृष्टिकोण से परखा जाय तो इन अर्थों में व्यक्तिगत हानि भी कम नहीं है। करों के रूप में प्राप्त होने वाला पैसा सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही तो लगता है। उसका लाभ सभी को मिलता। जब वह स्थिति नहीं बन पाती है तो समाज के एक-एक व्यक्ति की असुविधा और परेशानी में वृद्धि होगी।

निजी रूप से तो कम परन्तु सामाजिक रूप से इस अपराध वृत्ति के कारण बड़े अनर्थ होते हैं और इसी कारण यह कृत्य दण्डनीय भी माना गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस दण्ड से बचने तथा समुचित स्वार्थों और लाभों के मोह में दिग्भ्रमित हो धनवान बनने के चक्कर में फँसे इन लोगों का कारोबार इतना फैला और संगठन इतना बढ़ा हुआ है कि उन्हें देखते हुए तो दाँतों तले अँगुली ही दबानी पड़ती है। कहा जाता है कि तस्करों का अपना एक अलग ही संसार है और उनके अपने कानून-कायदे भी हैं, इन कानून-कायदों का बड़ी सतर्कता और निष्ठा के साथ पालन किया जाता है तथा जो लोग उन नियमों का उल्लंघन करते हैं, उन्हें कड़ा दण्ड भी दिया जाता है। उनकी अपनी अलग ही स्वतंत्र न्याय व्यवस्था है।

यह सारा कार्य एक सुनिश्चित व्यवस्था के आधार पर चलता है। सुरक्षा के लिए बढ़िया से बढ़िया हथियार तथा विश्वासपात्र और मौका आने पर अपने प्राण भी देने को तैयार व्यक्ति इनके दलों में रहते हैं। साथ ही प्रत्येक दल दूसरे दल के लिए सहयोगी बनते हैं। व्यवस्था की बारीकियों और सूक्ष्म बातों का ध्यान में रखने के कारण प्रायः ये अपने आप को सुरक्षित और समर्थ भी बनाये रहते हैं।

इन सतर्कताओं और सूक्ष्म व्यवस्थाओं के परिणाम स्वरूप तस्करी का जाल लगभग पूरे देश में फैला हुआ है। स्मगलिंग से आया माल समुद्री तट पर आता है वहाँ से सुनियोजित रूप से भीतरी भाग में पहुँचाया जाता है। तथा जो माल बाहर भेजना होता है वह भीतरी भागों से समुद्र तट पर पहुँचता है तथा वहाँ से जहाजों या नौकाओं पर लादकर विदेश में भेज दिया जाता है। यह सारे कार्य बड़े पैमाने पर चालाकी और सावधानी से ही पूरे किये जाते हैं क्योंकि अपराध कृत्य का भण्डाफोड़ तनिक-सी भी असावधानी के कारण हो जाने की सम्भावना रहती है तथा बना बनाया खेल बिगड़ जाने का डर।

जो भी हो कितनी ही सतर्कता और कितनी ही होशियारी बरती जाय अपराध व्यक्त हो या न हो अपराध ही है। उस प्रवृत्ति को रोका ही जाना चाहिए। लेकिन बाद में खून लगे आदमखोर शेर की तरह तस्करी के क्षेत्र में एक बार प्रविष्ट हुए व्यक्ति का हृदय परिवर्तन दुष्कर कार्य है। बाहर से कितने ही अवरोध खड़े किये जायें तो भी पैसे और बुद्धि के बल पर उन्हें निरस्त करने के मार्ग भी खोजे जा सकते हैं। इसलिए ऐसी प्रवृत्तियों को रोकने का कार्य जनसहयोग के आधार पर ही सम्पन्न किया जा सकता है।

तस्करी का माल खरीदने वाले और बेचने वाले लोग यह भली-भाँति जानते हैं कि यह माल अनुचित रास्ते से आया है। तस्कर स्वयं तो बाजार में खड़े नहीं होते वे रोजी-रोटी की तलाश में घूमने वाले लोगों को ही अपना अस्त्र मानते हैं। थोड़े-से ज्यादा प्रलोभन में आकर उन वस्तुओं के साझी विक्रेता भी इस व्यवसाय के अंग बन जाते हैं तो ऐसे व्यक्तियों में कदाचित यह चेतना जागृत की जा सके कि वे एक अपराध प्रक्रिया में सहायक बन रहे हैं और राष्ट्र के हित में यह नहीं होना चाहिए तो तस्करी की पहली नाकेबन्दी हो सकते हैं।

दूसरे ग्राहकों को भी इस बात का पता रहता ही है कि वे तस्करी का माल खरीद रहे हैं क्योंकि शायद ही ऐसी बिक्री की रसीदें, बिल का कैशमेमो दिये जाते हों। कम मूल्य में मिल रहा है इसलिए खरीद रहे हैं तो उन्हें समझना चाहिए कि इस प्रकार राष्ट्र के हितों पर और परोक्ष रूप से अपने हितों पर भी कुठाराघात कर रहे हैं। एक-एक ग्राहक यह सोच ले कि पचास रुपये बचाने के प्रलोभन में वह तस्करी का माल खरीद रहा है, बड़े पैमाने पर चोरी कर लायी गयी वे वस्तुएँ यदि कर चुका कर लायी जातीं तो उस पैसे से गाँव में एक स्कूल बन सकता था, कस्बे में एक और कालेज खुल सकता था, शहर में एक फैक्टरी बन सकती थी। लेकिन पचास रुपये के प्रलोभन में वह इन सार्वजनिक हितों पर आघात पहुँचा रहा है। तस्करी का माल खरीदने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि इस प्रकार वह अपने बच्चे को शिक्षा से वंचित कर रहा है जो उसके ही गाँव में मिल सकती थी उसे शिक्षा के लिए बाहर भेजना पड़ेगा तो पचास रुपये का वह सौदा कितना महँगा पड़ेगा ? यदि लोगों को यह बातें समझायी जायँ और तस्करी का माल न खरीदने के लिए तैयार किया जा सके तो तस्करी की एक बड़ी सीमा तक रोकथाम की जा सकती।

इस दिशा में कुछ समाजसेवी संस्थायें भी कार्यरत हैं। लोकसेवी कार्यकर्ताओं ने तस्करी की रोकथाम के लिए स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन देने का भी अभियान छेड़ा है। स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की व्रतनिष्ठा राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से भी लाभदायक हैं, और इस प्रकार के अनुचित तरीकों को अपराधपूर्ण कृत्यों को निरुत्साही करने में भी समर्थ है। जनसहयोग अर्जित करने और जनचेतना जागृत करने के दिशा में उपरोक्त उपायों को अमल में लाया जा सकता है। लोकसेवी और सामाजिक संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं को इस दिशा में प्रयत्न करने के लिए आगे आना चाहिए।

विदेशों में राष्ट्र सम्मान से खेलते ये धूर्त

कठोर श्रम से जी चुराने ओर तुर्त-फुर्त कम समय में थोड़े श्रम द्वारा अधिक धन कमाने की उतावली के कारण उठाया गया 'शार्ट कट' का मार्ग अविवेकपूर्ण ही नहीं कई बार घातक भी सिद्ध होता है। कितने ही व्यक्ति इस तरह कम समय में धनवान बनने के सपने सँजोते रहते हैं। उन प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों की बात तो अलग है जो अधिक धनोपार्जन के लिए देश के प्रति अपने कर्तव्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ही अवहेलना कर विदेशों के लिए पलायन कर जाते हैं और अभीष्ट लक्ष्य में एक सीमा तक सफल भी रहते हैं। पर नासमझ युवकों का एक वर्ग ऐसा भी है जो विदेशों में अधिक उपार्जन की बात सुनकर किसी तरह वहाँ पहुँचने का ताना-बाना बुनते रहते हैं। ताकि शीघ्र सम्पन्न बना जा सके, जबकि वे योग्यता एवं प्रतिभा से सर्वथा रहित होते हैं।

धूर्त और मूर्ख की मित्रता सुप्रसिद्ध है। ठगों का दाँव वहीं चलता है, जहाँ अविवेकी समुदाय हो। ठगे वे ही जाते हैं, जो 'शार्टकट' के मार्ग पर विश्वास करते हैं। ठग भी ऐसे ही व्यक्तियों की फिराक में रहते हैं। उनके चंगुल में आये दिन कितने ही भोले-भाले युवक अपना पैसा और समय गँवाते हैं। विदेश जाकर अधिक उपार्जन के लोभ वश धूर्तों के जाल में जा फँसने तथा पैसा आदि गँवाकर दर-दर ठोकरें खाने की एक घटना गत दिनों प्रकाश में आयी है जो इस प्रकार है—

कुरुक्षेत्र के समीप एक छोटे से गाँव वगभला से युवक किसानों की एक टोली ने विदेश जाकर धन कमाने का सामूहिक निर्णय लिया। पासपोर्ट बनवाने तथा किराये आदि के लिए एक बड़ी रकम की आवश्यकता थी। नकद पैसा न होने से उन्होंने अपने-अपने खेत गिरवी रखकर कर्ज लिया। विदेश के लिए वीसा प्राप्त करने की समस्या सामने आयी। इसी बीच धूर्तों की एक टोली को किसी तरह यह पता चल गया कि ये युवक विदेश जाने हेतु वीसा प्राप्त करना चाहते हैं। उनमें से एक एजेण्ट ने पश्चिम जर्मनी का वीसा दिलाने के लिए इन भोले युवकों से एक बड़ी रकम वसूल की। एजेंट ने दल को हवाई नकली ट्रांजिट वीसा के आधार पर हवाई जहाज से पहले थाईलैण्ड भेज दिया। वहाँ एजेन्ट के एक अन्य सहयोगी ठग ने उन्हें सँभाला। सस्ते से होटल के कमरे में यह टोली डेढ़ माह तक बनी रही तथा निरर्थक घूमती रही। एजेन्ट द्वारा अच्छी नौकरी दिलाने का भी आश्वासन मिला। जिसके लिए उसने प्रत्येक युवक से एक मोटी रकम हड़पी थी इसी बीच एजेण्ट अपना जाल बुनता रहा।

एजेन्ट ने युवकों को बताया कि चार-चार के दल में उन्हे इटली भेजा जायेगा जहाँ से चोरी छिपे चुपके से सीमा पार कर पश्चिमी जर्मनी पहुँचना सम्भव है। ठग एजेन्ट ने टोली के कुछ सदस्यों से कहा कि वे अपने साथ कुछ नयी चप्पलें साथ लेते चलें जो स्वयं एजेन्ट ने दी थीं उस समय सीधे-साधे युवक यह नहीं समझ सके कि इसमें भी कोई खतरा हो सकता है। इस बीच एजेन्ट ने युवकों से उनके पास बचे पैसों को भी वसूल कर लिया। रोम हवाई अड्डे पर पहुँचने पर कस्टम अधिकारियों ने इनकी तलाशी ली तो चरस भरी चप्पलों के अपराध में उन्हें रोम की जेल में भेज दिया गया। चार को छह हजार लीरा प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से जुर्माना हुआ तथा आदेश दिया गया कि १२ घण्टे के भीतर वे देश छोड़ दें। इस बीच फरटिदार इटेलियन भाषा में बात करते हुए वह एजेण्ट कस्टम अधिकारियों के बीच होता बाहर निकल गया। विवरण लेने के लिए भारतीय दूतावास के एक भाषा विशेषज्ञ को बुलाया गया जिसने इनकी बातें सुनीं। उस अधिकारी के हस्तक्षेप से बम्बई आने वाले विमान में इन्हें टिकट दिलाया गया और किसी प्रकार वे अपने घर पहुँचे।

ऐसे कितने ही व्यक्ति बिना परिश्रम किये शीघ्र अमीर बनने की बात सोचते हैं ? फलतः धूर्तों के जाल में जा फँसते हैं, जिससे धन और समय की बर्बादी होती ही है, राष्ट्र को भी नीचा मुँह देखना होता है। इस षड्यन्त्र को तुरन्त रोका जाना चाहिए।

बिना टिकट यात्रा—एक देश-द्रोह

संसार में द्वितीय सबसे बड़ी रेलवे लाइन भारतीय रेलवे में बिना टिकट यात्रियों की समस्या अब एक विकराल रूप धारण कर चुकी है। पहले १२ करोड़ रुपये से १५ करोड़ रुपये तक बिना टिकट यात्रियों के कारण रेलवे विभाग को क्षति होती थी और अब रेलवे बोर्ड ने जो अनुमान लगाया है उससे पता चला है कि लगभग २५ करोड़ रुपये की क्षति बिना टिकट चलने वाले यात्री कर रहे हैं। ये वे टिकट यात्री रेलवे के लिये ही सिर दर्द नहीं वरन् यात्रियों के लिये भी परेशानी उत्पन्न करते हैं। अनावश्यक रूप से मनोरंजन के लिये यात्रा कर गाड़ी की खिड़कियों को घेरे खड़े रहते हैं और कभी-कभी तो प्रथम और द्वितीय श्रेणी के डिब्बों में भी घुसकर अन्य यात्रियों को परेशान करते हैं।

रेलमंत्री श्री पुणाचा ने संसद में १९६८-६९ का जो बजट पेश किया था, उसमें २७ करोड़ रुपये का घाटा था। यदि २५ करोड़ रुपये जो बिना टिकट यात्रियों के कारण वसूल नहीं हो पाते, मिलने लगें तो यह घाटा आसानी से पूरा हो सकता है और रेलवे विभाग को प्रतिवर्ष टिकट दर अथवा सामान भेजने के भाड़े में वृद्धि न करनी पड़े। यह प्रत्यक्ष भार रेलगाड़ियों में यात्रा करने वाले अथवा सामान भेजने वालों पर पड़ता है।

रेल प्रशासन को आश्चर्य तो इस बात पर है कि प्रत्येक यात्री गाड़ी भरी चलती है। लोगों को बैठने तक को स्थान नहीं मिलता फिर भी यात्री आय शनैः-शनैः कम होती जा रही है। रेलवे मन्त्री के आदेश पर रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष श्री जी० डी० खण्डेलवाल ने जो परिवहन विशेषज्ञ हैं, 'बे टिकट यात्रा रोको' अभियान का चार्ज स्वयं सँभाल लिया है। कई क्षेत्रों में लगभग २५ प्रतिशत यात्री बिना टिकट यात्रा करते हैं। दक्षिणी-पूर्वी रेलवे पर भी ९ प्रतिशत यात्री बिना टिकट चलते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, पटना, गया और गोहाटी के आस-पास तो कई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभावशाली व्यक्ति अथवा शासकीय कर्मचारी अपने साथ कई लोगों को बिना टिकट ले जाते हैं। कहीं-कहीं पर यह भी देखा गया है कि रेलवे पुलिस स्वयं बिना टिकट यात्रा करने वालों से पैसा कमा लेती है। विभाग द्वारा अनेक टिकट चैक करने वाले अधिकारियों की नियुक्ति की गई है यदि वे उतना पैसा भी वसूल करके नहीं देते जितना वेतन और सुविधायें मिलती हैं तो फिर यह लम्बी फौज रखने से लाभ ही क्या है ?

रेलवे बोर्ड ने बिना टिकट यात्रियों को पकड़ने के लिये जो अभियान प्रारम्भ किया है, उसमें काफी सफलता मिल रही है। पूर्वी तथा उत्तर-पूर्वी रेलों में बरौनी अभियान चलाने से १४ अगस्त से १६ अगस्त ६८ तक केवल तीन दिनों में १०,१८१ व्यक्तियों को बिना टिकट पकड़ा गया। इनमें २३२० व्यक्तियों के विरुद्ध मुकदमे चलाये गये और १,६६६ को जेल भेजा गया। कुल १,४८,२०३ रुपयों का जुर्माना किया गया।

उत्तर रेलवे के मुरादाबाद मण्डल क्षेत्र में गत दिनों बिना टिकट यात्रियों के विरुद्ध अभियान चलाया गया। तो आठ यात्री गाड़ियों का चेकिंग करके १२५८ यात्रियों को पकड़ा गया। इन यात्रियों से ३०७५ रु० ५० पैसे रेल किराये के रूप में तथा ३४०० रुपये जुर्माने के रूप में वसूल किये गये।

रेलवे प्रवक्ता का तो यह कहना है कि जब तक इस प्रकार के अभियानों को स्थायित्व नहीं दिया जाता तब तक छात्रों की बढ़ी हुई अनुशासनहीनता, स्थान-स्थान पर जंजीर खींचकर गाड़ी को रोकना और बिना टिकट यात्रा करने की प्रवृत्ति को नहीं रोका जा सकता।

आजकल सवारी गाड़ी से यात्रा करते समय यह निश्चित ही नहीं रहता कि हमारी चार घण्टे की यात्रा आखिर कितने घण्टों में समाप्त होगी। अनेक गाड़ियों की स्थिति तो मोटर और बसों से भी खराब है। जिस व्यक्ति की जहाँ इच्छा होती है जंजीर खींचकर उतर जाता है। ऐसे लोगों के विरुद्ध कुछ कार्यवाही भी नहीं हो पाती। विद्यार्थी जो नित्य ही पढ़ने के लिये रेल द्वारा अपने पास के स्कूलों में जाते हैं। कभी टिकट नहीं खरीदते। द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में शान से यात्रा करते हैं। बात यह है कि बेचारे टिकट चैकर स्वयं इनसे डरते हैं अतः कुछ भी कह नहीं पाते वह सोचते हैं कि हमने आज यदि किसी विद्यार्थी को चैक किया तो कल ही इनकी पार्टी हमारी अच्छी पूजा कर देगी।

२५ करोड़ रुपये का जो अनुमान रेलवे बोर्ड ने लगाया है यह भी कम नहीं है। इतने रुपये की वसूली से घाटे का बजट तो पूरा हो ही सकता है। साथ ही यदि यात्रियों की सुविधा के लिये गाड़ियों में या प्लेटफार्मों पर कोई सुधार किये जावें अथवा कुछ सुविधाएँ बढ़ाई जावें तो विभाग को न धन की कमी रहे और न यात्रियों की सुविधाओं की।

रेलवे में ही यह धोखेबाजी चल रही हो ऐसा नहीं है, नगर परिवहन की सेवा में भी इस प्रकार की कठिनाइयाँ आ रही हैं। बड़े-बड़े नगरों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए बस सर्विस तैयार मिलती है। पर सफेदपोश यहाँ भी अपना प्रभुत्व जमाने में पीछे नहीं रहते। दिल्ली परिवहन ने बिना टिकट यात्रा करने की गन्दी आदत को रोकने के लिये अभियान चलाया तो लगभग एक हजार आदमियों को चलती-फिरती अदालतों द्वारा उसी स्थान पर सजा दी गई।

आश्चर्य उस समय होता है जब अच्छा-खासा वेतन पाने वाले लोग तथा धनी परिवार की महिलाएँ बिना टिकट चलें। भारत सरकार का एक उच्च अधिकारी भी बिना टिकट पकड़ा गया जिसने बताया कि वह पिछले १५ वर्ष से बिना टिकट चल रहा है। एक अन्य यात्री ने स्वीकार किया कि उसने आलरूट पास की तारीख मिटाकर महीनों इस्तेमाल किया। जिन लोगों को सजा दी गई उनमें अनेक शिक्षित महिलाएँ तथा आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ भी थीं।

यह राष्ट्रीय कर्त्तव्य की अवहेलना का फल है कि परिवहन अब एक प्रकार से असत्य बोझ बनता जा रहा है। अच्छा तो यह हो नागरिक चेतना का उदय भीतर से हो। लोग स्वयं यह अनुभव करें कि बिना टिकट चलना राष्ट्रद्रोह है, पाप है पर यदि कुछ बुरे आदमी जो अपना उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करते फिर प्रशासनिक कर्मचारियों को उनसे निपटने के लिए शक्ति और साहस से काम लेना चाहिए। जब तक दोनों मोर्चों पर कड़ाई नहीं होगी समस्या सुलझेगी नहीं उलझती ही जायेगी।

बढ़ते बाल अपराध

गरीबी का कारण श्रम या साधनों का अभाव माना जाता है, पर जहाँ इन दोनों की व्यवस्था होने पर भी गरीबी है, वहाँ समझा जाना चाहिए कि अर्थनीति में कहीं भारी खोट है।

भारत में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में तो गरीबी है ही अमेरिका जैसे सुसम्पन्न देश में भी लोग गरीबी से नीचे स्तर पर पहुँच गये हैं। एक ओर धनी अधिक धनवान बनते जा रहे हैं और निर्धन अधिक निर्धन। इसमें प्रचलित अर्थनीति ही दोषी है। आज भारत में ग्रामीण क्षेत्र की लगभग ५१ प्रतिशत और शहरी क्षेत्र की ३८ प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे निर्वाह करती है।

नगरों में १० प्रतिशत धनवानों का शहरी सम्पत्ति के २०.०७ प्रतिशत भाग पर अधिकार है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में १३ प्रतिशत सम्पत्ति पर मात्र एक प्रतिशत ग्रामीण धनिकों का अधिकार है। कृषि योग्य भूमि के स्वामित्व में भी काफी भिन्नता देखी जाती है। जिन ४ प्रतिशत लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के पास १० एकड़ या इससे अधिक भूमि है, उनके अधिकार में कुल कृषि योग्य जमीन का ३०.७ प्रतिशत हिस्सा है, जबकि कृषि पर निर्भर रहने वाली जनसंख्या कुल ४५ करोड़। इससे प्राप्त होने वाली आय प्रति व्यक्ति ६११.८० पैसे है।

विदित है कि अपने देश में निर्वाह के संसाधन सीमित हैं, उसमें किसी प्रकार की वृद्धि हो नहीं रही है, जबकि जनसंख्या में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इससे गरीबी की भयावह स्थिति पैदा होना स्वाभाविक ही है।

केन्द्रीय सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में छः वर्ष तक के बच्चों की संख्या कुल ग्यारह करोड़ पचास लाख है। इनमें से ४ करोड़ ६० लाख बच्चे घोर दरिद्रता की स्थिति में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसी प्रकार १४ वर्ष तक की आयु के २५ करोड़ ६६ लाख बच्चों में ११ करोड़ ६० लाख बच्चे निर्धनता-सीमा से भी निम्न स्तर का जीवनयापन कर रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले १६ करोड़ बच्चों को स्वच्छ जल की समुचित व्यवस्था नहीं है, जिससे हैजा एवं अन्यान्य प्रकार की बीमारियों से पीड़ित उन्हें सर्वत्र देखा जा सकता है। भारत में १ लाख ८५ हजार ग्राम ऐसे हैं, जहाँ स्वच्छ जल आजीवन उपलब्ध नहीं हो पाता।

विश्व में गरीबी का सुरसा-विस्तार किस गति से बढ़ रहा है, इसकी जानकारी अमरीका जैसे समृद्ध देश की इस रिपोर्ट से मिलती है कि सन् १९७८ से १९८२ के मध्य अमेरिका में गरीबी से नीचे का जीवन-स्तर निर्वाह करने वालों की संख्या में कुल २२ प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इतना ही नहीं प्रति मिनट अमेरिका के पाँच नागरिक गरीबी-रेखा के नीचे खिसकते जा रहे हैं। यदि इसका एक वर्ष का हिसाब लगाया जाय, तो ५×६० × २४ × ३६५ = २६ लाख २८ हजार नागरिक होंगे, अर्थात इतने अमेरिकी प्रति वर्ष गरीब होते जा रहे हैं। इसकी तुलना यदि भारत से करें, तो यहाँ पर निर्धारित गरीबी-सीमा-रेखा से नीचे जाने वाले नागरिकों की प्रतिशत दर कम है।

न्यूयार्क शहर के नागरिकों का जीवन स्तर आँकने वाली समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है, कि लगभग ४००-५०० की संख्या में गरीब लोगों के बच्चे ५-६ वर्ष की ही उम्र में माता-पिता के अत्याचारों से मर जाते हैं, जबकि सम्पन्न परिवार में इसका शिकार बच्चों की संख्या ५०-६० प्रतिवर्ष के बीच होती है अमेरिका के गरीब कहे जाने वाले परिवारों में करीब ७० प्रतिशत नशीले या मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं तथा करीब ३११ प्रतिशत मानसिक रोगों से आक्रान्त होते हैं, जबकि समृद्ध परिवारों में इनकी संख्या क्रमशः ४५ प्रतिशत और १० प्रतिशत पायी जाती है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि विकसित राष्ट्रों की भावी पीढ़ी कैसी होगी ?

किशोरों एवं युवकों की बढ़ती दुष्प्रवृत्तियाँ

पाश्चात्य जगत में अपराध आज बहुत जोर पकड़ता जा रहा है। सामान्यतया इस अपराध जगत् में १४-१६ एज-ग्रुप के बच्चे होते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार एक अँग्रेज बालक १७ वर्ष की उम्र तक जब वह स्कूली शिक्षा समाप्त कर आगे की पढ़ाई आरम्भ करता है, करीब १०० चोरी कर चुका होता है। इस प्रकार की शिक्षा बच्चों को उसके माँ-बाप अथवा परिवार के सदस्यों से नहीं मिलती। तो फिर इन बालकों में अपराध भावना क्यों और कैसे पनपती है ? इसका जब अध्ययन किया गया तो ज्ञात हुआ कि संभवतः सिनेमा अथवा टी० वी० या स्कूल से उन्हें ऐसी शिक्षा मिलती है।

पश्चिमी देशों के बालकों में बहुत तीव्रता से नैतिक गिरावट आ रही है। उनमें अपने अथवा दूसरों के भले-बुरे के ज्ञान की भारी कमी देखी गयी। हाँ एक मामले में अत्यन्त सजग होते हैं। अपराध में किसी तरह पकड़े न जायँ इसका उन्हें पूरा-पूरा ध्यान रहता है।

आज का बालक ही कल समाज का सृजेता बनेगा। उसके नैतिक रुझान व अभिरुचि जैसे होंगे भावी समाज भी वैसा ही बनेगा। जिसे वह नैतिक रूप से सही समझेगा, कल के समाज में उन्हीं गुणों की भरमार होगी। आज के बढ़ते बाल अपराध को देखते हुए भावी समाज का स्वरूप कितना दुःखद होगा—इसकी कल्पना की जा सकती है। अतः यदि सुखद भविष्य की कल्पना करनी है तो बाल अपराध रोकना होगा और उनकी नये सिरे से गलाई-ढलाई करनी होगी।

वर्तमान समाज के नैतिक स्तर में अत्यन्त तीव्र परिवर्तन आ रहा है। जनमत के आधार पर आज जिसे नैतिक रूप में ग्रहण किया जा रहा है, वही आगामी पीढ़ी के लिए 'कोढ़' का काम करेगा। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका को लिया जा सकता है। 'भेरिग्वाना' एक मादक पौधा है। वहाँ इसका प्रयोग धड़ल्ले से होता है। अमरीकी यह स्वीकरते हैं कि इस नशीले द्रव्य के प्रयोग से न तो समाज पर और न आगामी पीढ़ी पर कोई बुरा असर पड़ेगा। अस्तु, इसके सेवन को कानूनन वैध ठहराने पर जोर दिया जा रहा है। यदि इस सम्बन्ध में कोई कानून बना तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसका सेवन होता चला जायेगा।

"जैसी मर्जी, वैसा करो और तब तक करते चलो जब तक दूसरों को कोई क्षति न पहुँचे" आज जन-प्रवाह इसी दिशा में बह रहा है और इसे ही नैतिकता का जामा पहनाया जा रहा है। किन्तु इस प्रवृत्ति से अन्ततः हानि हमारी ही होगी तथा समष्टि रूप में समाज एवं देश को यह पीड़ा सहन करनी पड़ेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माओत्सेतुंग के शासन काल में चीन में नैतिकता-सुधार का सारा दायित्व जनता को सौंपा गया था। अन्य देशों में इसके लिए कानून व्यवस्था है। इसमें किसी प्रकार का अनैतिक कार्य करने वालों के मामले में सरकार सीधे हस्तक्षेप करती है और अपराधी को अपराध के अनुरूप दण्ड दिया जाता है, किन्तु माओ काल में जनता अपराधी को न्यायालय में प्रस्तुत करती थी। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के बाद उन दिनों अपराधों में भारी कमी आई।

आज के बालकों का नैतिक सार सुधारना और नये सिरे से उनकी गलाई-ढलाई कर उन्हें स्वस्थ चिंतन देने का उत्तरदायित्व उनके माँ-बाप का है क्योंकि आरम्भिक शिक्षा बालकों को घर-परिवार से ही मिलती है, अन्तः उनके अनगढ़ मन को आरम्भ में उत्कृष्टता के जिस साँचे में ढढाला जायेगा वही रूप परिपक्व होकर बाद में सामने आयेगा। नैतिक शिक्षा के अतिरिक्त माँ-बाप बालकों के दैनिक क्रिया-कलापों पर भी यदि ध्यान रखें और उन्हें घर में अथवा घर से बाहर ऐसे सिनेमा, पत्रिका एवं मित्र से मिलने देने पर पाबन्दी लगा दें जो निकृष्ट स्तर की विचारणा रखते हों तो घरेलू शिक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकती है।

चूँकि शिक्षा का प्रथम सोपान घर से आरम्भ होता है, अतः माँ-बाप नैतिक शिक्षण को स्कूल की अपेक्षा अधिक सजगतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं। उन्हें इस दिशा में उन दार्शनिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा जो स्कूल में शिक्षकों को करनी पड़ती है। वस्तुतः नैतिकता कोई दर्शन नहीं है वरन् एक विशेष जीवन-प्रवाह का नाम है, किन्तु इसका शिक्षण सिद्धान्तों द्वारा नहीं किया जा सकता। इसके लिए माँ-बाप को ही पहले इस जीवन-प्रवाह में बहना पड़ेगा, चिंतन में उत्कृष्टता लानी पड़ेगी, तभी वे अपने बालकों से वैसी उम्मीद कर सकते हैं क्योंकि बच्चे की दिमागी स्थिति वैसी नहीं होती कि किसी तर्क दर्शन को समझकर अपनी-जीवन धारा को सही दिशा दे सकें हाँ अनुकरणशील वे अवश्य होते हैं। अतः उनके लिए तो उदाहरण चाहिए और इसके लिए माँ-बाप ही उपयुक्त पात्र हो सकते हैं।

आज का स्कूल बच्चों को सिर्फ किताबी ज्ञान ही उपलब्ध कराता है। शिक्षकों में बुरी तरह यह मान्यता घर कर गई है कि उनकी उपयोगिता सिर्फ बाल ज्ञान उपलब्ध कराने तक ही सीमित है। नैतिक, सामाजिक शिक्षा को वे माँ-बाप का कर्तव्य मानते हैं।

सन् १९८० के बाद हिंसक छात्र उपद्रवों में वृद्धि हुई है। सन् १९७७ ओर १९७८ में हिंसक घटनाएँ २० प्रतिशत हुई, जबकि १९८१ में में यह २७ प्रतिशत तक पहुँची। सन् १९७८ में ९७७४, सन् १९७९ में ९२०३, सन् १९८० में ७७४० छात्र उपद्रव हुए और इस वर्ष के पाँच महीनों में भी एक हजार से अधिक छात्र उपद्रव हो चुके हैं।

एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिदिन १० से १२ छात्र उपद्रव १९८० और १९८१ में हुए हैं। इनमें पाँच से सात तक हिंसक थे।

सबसे अधिक छात्र उपद्रव आसाम में हुए, जिसका मुख्य कारण आसाम आन्दोलन है। इसके बाद आन्ध्र, पंजाब, उत्तरप्रदेश, प० बंगाल, बिहार और केरल आते हैं।

कलम थामने वाली पीढ़ी के हाथों में हथियार देखकर आक्रोश, उदण्डता अपराधवृत्ति का सहज अनुमान लगाया ज़ा सकता है किन्तु उस समस्या के मूल में कौन और क्या कुछ है उसको भी अनदेखा नहीं करना चाहिए। पढ़े-लिखे, खाते-पीते घरों के नवयुवक राहजनी, डकैती, हत्या, लूटपाट, व्यभिचार में क्यों संलग्न हो रहे हैं, इन्हें कौन प्रेरित करता है, इसके लिए सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक कौन-से ऐसे कारण हैं, जिन्हें उत्तरदायी ठहराया जाय इस पर गम्भीरता से विचार करने पर कुछ तथ्य सामने उभरकर आये हैं कि यह किशोरावस्था ऐसी व्यवस्था है जिसमें दिशाहीन होने का सबसे अधिक खतरा है। इसी समय में उसे घरेलू शिक्षा तथा मित्र-सहयोगियों के मार्गदर्शन, अनुकरण की विशेष आवश्यकता होती है। जिस का समाज में क्रमशः अभाव होता जा रहा है।

अश्रद्धा-अनास्था का विषाक्त वातावरण बन चला है। किशोरों को अभिभावकों पर से, गुरुजनों और वृद्ध पीढ़ी में से उनके आचरण, व्यवहार को देखकर अनास्था हो चली है। करोड़पतियों के लड़के चाकू की नोंक पर किसी भद्र महिला के गले से जंजीर खींचते, पर्स मारते और इज्जत लूटने में नहीं हिचकते। चलती ट्रेनों से सामान उठाकर बाहर फेंक देना और कूद पड़ना। कारें उठाकर भाग जाना और उन्हें बैंक डकैतियों में इस्तेमाल करना।

इन घटनाओं के पीछे मन, लालच और दुष्टता ही नहीं वह अराजकता भी है, जो नीतिगत सुसंस्कारिता का परिपोषण न मिलने पर उपजाऊ खेती में भी पनपने वाले खरपतवार की तरह अनायास ही द्रुतगति से बढ़ती है।

इस अभाव की पूर्ति के लिए हमें नये सिरे से विचार करना होगा और भावी पीढ़ी के लिए न केवल रोजगार की, ज्ञान संवर्धन की, आरोग्य की समस्या का समाधान करना होगा, वरन् यह भी सोचना होगा कि उनमें चरित्रनिष्ठा, समाजनिष्ठा, नीतिमत्ता एवं सुसंस्कारिता किस प्रकार स्थिर रहे और निरन्तर बढ़े। इस ओर उपेक्षा बरतने पर वर्तमान पीढ़ी के मूर्धन्य जन भावी पीढ़ी के साथ न्याय नहीं कर सकेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किशोरों में यह प्रवृत्ति न पनपने दी जाय

"पकड़ लो इन्हें।"

"एक भी न भागने पाये।"

"भलाई इसी में है कि आप लोग अपने आप ही अपने आपको हमारे हवाले करदें।"

अब चारों ही विवश थे क्योंकि पुलिस वाले सामने ही पिस्तौल से लैस खड़े थे।

यह घटना है दिल्ली की। चार किशोर छात्रों का दल था यह, जिसे चोरी करते हुए पकड़ा गया था, शहादरा पुलिस द्वारा।

जी हाँ किशोर छात्र। जो माता-पिता की न जाने कितनी मुसीबतों के फलस्वरूप इतने बड़े हो पाते हैं, उनकी असंख्यों आशाओं के केन्द्र बिन्दु होते हैं। राष्ट्र के भावी कर्णधार ये किशोर आयु के स्कूल तथा कालेजों में पढ़ने वाले नौनिहाल।

ये चारों मिलकर कई दिन से चोरी का काम कर रहे थे। चुपचाप देखते रहते कि कब घर के व्यक्ति बाहर होते हैं। दिल्ली ही क्या—प्रत्येक बड़े शहर में आदमी सभी अधिकांशतः काम पर दूर-दूर जाते हैं और बाजार का काम भी स्वभावतः ही स्त्रियों के जिम्मे आ जाता है। दिन में ये ताक लगाये रहते और जब भी घर की महिलाएँ सब्जी लेने या दूध लेने जातीं उस समय—उसी छोटे-से समय में ताला तोड़कर जो कुछ कीमती सामान—रेडियो, घड़ी, ट्रांजिस्टर, कीमती कपड़े, पंखा, साइकिल आदि हाथ लगता—लेकर चलते बनते।

जब काफी शिकायतें आने लगीं, इस प्रकार की घटनाओं की, तो पुलिस ने कुछ अधिक सतर्कता बरती। आखिर जनता के माल व जान की सुरक्षा ही तो पुलिस का कर्तव्य है।

उनकी गतिविधियों का वे बारीकी से अध्ययन करने लगे कि ये कब, कहाँ तथा कैसे इस चोरी के कार्य को कर जाते हैं ? अब पुलिस ने भी एक युक्ति सोची और योजनाबद्ध प्रयत्न किया इस दिशा में।

जिधर आज उन लोगों के जाने की सम्भावना थी उधर के एक घर में—घर के सदस्यों से पूर्व में ही सब बताकर—उन्होंने कई पुलिसमैन साधारण पोशाक में घर में छिपा दिये। महिला ताला डालकर बाहर चली गई।

वे चारों आये और ताला तोड़कर अन्दर घुस गये। सामान उठाना प्रारम्भ किया वैसे ही वे छिपे हुये पुलिसमैन निकल आये और सबको पकड़ लिया गया।

पिस्तौल ताने हुए इन्स्पेक्टर साहब कह रहे थे—"बड़े शर्म की बात है जो आप लोग पढ़े-लिखे होकर इस प्रकार अपराध करते रहने का दुस्साहस करते हैं।"

अब उन्हें जीप में बैठाया जा चुका था। चारों बड़े ही शर्मिन्दा थे। अपने अपराध की अनुभूति हो जाने पर अपनी ही निगाहों में मनुष्य का मूल्य गिर जाता है। पश्चाताप उन चारों के चेहरों से झलक रहा था।

तब कुछ नम्र स्वर में इन्स्पेक्टर भी उन्हें समझाने का प्रयास कर रहे थे। "अपको यह सोचना चाहिए था कि आप लोग अच्छे घरों के आशादीप हैं। पढ़-लिखकर बड़े-बड़े पदों पर बड़े-बड़े उत्तरदायित्व सम्हालेंगे। ऐसा निन्दनीय कार्य करने की अपेक्षा यदि अर्थाभाव ही था, तो आप दूसरे अच्छे कामों में परिश्रमपूर्वक द्रव्यार्जन करते। तब यों आज की लज्जाजनक स्थिति न आती।" चारों गम्भीर थे। अपने किये पर लज्जित भी। भविष्य में कभी चोरी न करने की शपथ लेने पर उनके दण्ड में कुछ विशेष रियायत कर दी गई।

बढ़ते अपराधों की परोक्ष पृष्ठभूमि

सामर्थ्य का मूल प्रयोजन निजी विशिष्टता का अभिवर्द्धन और लोक कल्याण है। शासन, अधिकार, कौशल, वैभव, पराक्रम आदि के रूप में जिन्हें भी सामर्थ्य उपलब्ध हो, उनका उत्तरदायित्व है कि इस सुयोग की आदर्शवादी व्यवस्था बनाने एवं परम्परा चलाने में प्रयोग करें। किन्तु प्रायः ऐसा होता नहीं रहा है। शक्ति का, उन्माद उत्पन्न करने वाली मदिरा की तरह उपयोग होता रहा है और उसके सहारे अनाचार को परिपोषण मिला है। सभी जानते हैं, उलटी दिशा में उलटे कदम उठाते हुए उलटे चलने का क्या परिणाम होता है, सृष्टि में क्रिया की प्रतिक्रिया का नियम है। मर्यादाओं में रहकर उपयुक्त दिशाधारा अपनाने और निर्धारित अनुशासन का पालन करने पर जिस प्रकार प्रगति और समृद्धि का पथ प्रशस्त होता है, उसी प्रकार उद्दण्डता अपनाकर अपराधी दुष्प्रवृत्तियों में जुट पड़ने की परिणति भी दुःखद होती है। विष भक्षण करने, आग से खेलने की तरह ही कुकर्म करने पर उतारू लोग अपना ही नहीं अपने सम्पर्क क्षेत्र का भी विनाश करते हैं। इन दिनों बहुत करके यही कुछ हो रहा है। कुकर्मों की छूत एक-से दूसरे को लगती और महामारी की तरह व्यापक क्षेत्र को लपेट में लेकर गेहूँ के साथ घुन पिस जाने का निमित्त कारण बनती है। इन दिनों बढ़ती हुई अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ सार्वजनिक सुख शांति के लिए संकट मानी जा रही हैं।

सन् १९७४ के एक सर्वेक्षण के अनुसार १८.३ करोड़ रुपये के माल की चोरी हुई, जिसमें केवल छठा भाग ही पुलिस द्वारा उपलब्ध किया जा सका। विभिन्न प्रकार की चोरियों में उस वर्ष १०३५६८ लोग पकड़े गये, किन्तु मुकदमा मात्र ४६७०५ लोगों पर ही चलाया जा सका। इनमें से ३० हजार अपराधियों को ही जेल भेजा जा सका। इन्हें भी सिर्फ एक वर्ष की सजा मिल पाई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चोरी गये माल का सिर्फ छठवाँ भाग ही पुलिस बरामद कर सकी। इसका अर्थ हुआ चोरों को इससे लगभग १५ करोड़ रुपये की शुद्ध आय हुई।

भारतीयों की प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति औसत आमदनी ८५० रुपये है। अतः ३० हजार कैदियों को २.५५ करोड़ रुपये की हानि हुई और लाभ १५ करोड़ का रहा। यदि मुकद्दमे पर भी एक करोड़ रुपया व्यय माना जाय तो भी १४ करोड़ का विशुद्ध लाभ उन्हें चोरी से हुआ।

अध्ययनों में देखा गया है कि ८१ प्रतिशत अपराधों में न्यायालय अपराधियों को किसी प्रकार का दण्ड देने में विफल रहता है और सिर्फ १९ प्रतिशत अपराधी ही दण्ड भोग पाते हैं।

देश में अपराध वृत्ति की दर को देखते हुए इसे नियंत्रित करने वाले पुलिसकर्मियों की संख्या में भारी कमी महसूस की गई। सर्वेक्षण के अनुसार पुलिस कर्मचारियों का ४० प्रतिशत भाग राजनेताओं की सुरक्षा एवं सभा-समारोहों में सुरक्षा-व्यवस्था में संलग्न रहता है। १८ नवम्बर सन् १९७९ के दैनिक हिन्दी पत्र हिन्दुस्तान के अनुसार अकेले बम्बई शहर में उस वर्ष ३६२५ सभाएँ, ४४२ मोर्चों, ३३४ प्रदर्शनों, ४०९ हड़तालों, ९३ भूख हड़तालों, ३२ सत्याग्रहों, ४९ जुलूसों एवं ३९ धरनों का आयोजन हुआ। इस प्रकार पूरे वर्ष में प्रतिदिन १४ आयोजनों का औसत आता है, जिसमें पुलिस को व्यस्त रहना पड़ा। इसी प्रकार दिल्ली के २२ हजार पुलिस सिपाहियों में से मात्र ५ या ६ हजार पुलिसकर्मी थानों में रह पाते हैं और शेष ऐसी ही व्यवस्थाओं में व्यस्त रहते हैं।

सन् १९७७ में, भारत में १३१ अपराध प्रति घण्टा दर्ज किये गये। सन् १९७९ में यह दर बढ़कर २१२ अपराध प्रति घण्टा हो गयी। १९८१ में इस दर में और भी बढ़ोत्तरी हुई और यह ४३६ प्रति घण्टा तक पहुँच गयी।

सबूत व गवाहों के अभाव में भारतीय दण्ड विधान कितना असहाय है—इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सन् १९७१ में जिला अदालतों में फौजदारी के ४६ हजार मुकदमे अटके पड़े रहे और देश के १८ उच्च न्यायालयों में ६.५ लाख तथा सर्वोच्च न्यायालय में १८ हजार मामले विचाराधीन थे, जिनकी संख्या सन् १९७८ में दूने से भी अधिक हो गई।

अभी तक योरोप को अपराध जगत में प्रथम श्रेणी में गिना जाता रहा है। परन्तु अब भारत भी उसी श्रेणी में प्रविष्ट कर रहा है। गत शताब्दी से भारत में अपराधों की संख्या में तीव्र गति से अभिवृद्धि हुई है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार वर्ष १९७७ में भारत में होने वाले जघन्य अपराधों की संख्या प्रति मिनट औसतन दो थी, जिसमें—चोरी, डकैती, उठाईगीरी, धोखाधड़ी, तस्करी, हत्या, अपहरण, बलात्कार जैसे सभी प्रकार के अपराध सम्मिलित थे। सन् १९८० तक इन अपराधों की संख्या में चार-गुनी अभिवृद्धि हुई। सन् १९७७ में प्रति दो घण्टे में एक हत्या होती थी। सन् १९८० में यही संख्या बढ़कर चारगुनी हो गई अर्थात तीस मिनट में एक हत्या। इस औसत से वर्षभर का हिसाब जोड़ने पर कुल हत्याओं की संख्या ७०५२० तथा अन्य प्रकार के अपराधों की संख्या ४१४८०० होती है। ये वे आँकड़े हैं, जो सबके सामने प्रकाश में आये हैं, इनके अतिरिक्त प्रकाशित घटनाओं की संख्या कहीं अधिक है।

सन् १९८० के बाद अपने देश में हिंसक छात्र उपद्रवों की वृद्धि हुई है। सन् १९७७ और ७८ में ऐसी घटनाएँ २० प्रतिशत हुईं, जबकि सन् १९८१ में २७ प्रतिशत। सन् १९७८ में ९ हजार १७४, १९७९ में ९ हजार २०३ तथा सन् १९८० में ७ हजार ७४० उपद्रव हुए। सन् १९८२ के प्रथम पाँच महीनों में भी एक हजार से अधिक छात्र उपद्रव हुए।

सर्वेक्षण के अनुसार सन् १९८० तथा ८१ में प्रतिदिन १०-१२ छात्र उपद्रव हुए। इनमें पाँच से सात तक हिंसक थे।

सन् १९७७ में भारत में अपराध दर प्रतिघण्टा १३१ थी। यह सन् १९७९ में बढ़कर प्रतिघण्टा २१२ हो गयी, जबकि १९८१ में इसमें और वृद्धि हुई और अपराध संख्या बढ़कर ४३६ प्रति घण्टा हो गई। इन अपराधों में हत्या, डकैती, लूटपाट, चोरी, राहजनी आदि प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त दहेज की बलि एवं आत्महत्याएँ भी सम्मिलित हैं।

बड़े-बड़े शहरों में कार चोरी, विदेशी मुद्रा के घोटाले, अफीम-चरस-गाँजे की तस्करी, बैंक डकैती, मुख्य अपराध होते जा रहे हैं, जिसमें कालेज के विद्यार्थी और बड़े घरानों के लड़के भी पकड़ में आए हैं।

रॉबर्ट लाइनबेरी ने अपने साढ़े तीन वर्षों के शोध के दौरान ५० हजार से ऊपर जनसंख्या वाले ३९६ शहरों में से प्रत्येक में होने वाले अपराधों का सूक्ष्म अध्ययन किया। अपने निष्कर्षों में अमेरिका में अपराधों की संख्या में वृद्धि होने का प्रमुख कारण वहाँ के लोगों की सम्पन्नता बताया है। नेवर्क के १० नगरों में अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि वहाँ सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों में ७ गुनी वृद्धि हुई है, जबकि गम्भीर अपराधों की संख्या में ग्यारह गुनी वृद्धि हुई है। इसी प्रकार सनजोस एवं फेनिक्स नामक नगरों में सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों में दुगनी और जघन्य अपराधों में चौगुनी वृद्धि हुई है।

अब महिलाएँ भी डकैती, हत्या जैसे जघन्य अपराधों में सम्मिलित होने लगी हैं। अपने देश में एक वर्ष में कुल दर्ज किए गए अपराधों में १६३०३ मामले महिलाओं के विरुद्ध दर्ज किए गए। सन् १९७२ में यह संख्या बढ़कर २७८९१ हो गई तथा १९८१ में इस सीमा का भी अतिक्रमण हो गया।

अब महिलाएँ ही नहीं बच्चे भी इस क्षेत्र में बड़ों के कान काटने लगे हैं। पाश्चात्य जगत में १४-१६ एजग्रुप के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों में अपराध वृत्ति बड़ी तेजी से पनप रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार एक अँग्रेज बालक १७ वर्ष तक की उम्र तक १०० चोरी कर चुका होता है।

अपने देश में १९७६ में किये जाने वाले कुल अपराधों में किशोर अपराधियों की भागीदारी २.६ प्रतिशत थी, जो ८० में बढ़कर ५ प्रतिशत हो गई। अधिकांशतः १६ और २१ के मध्य आयु वाले किशोरों द्वारा किये गये विभिन्न अपराधों की संख्या है। १९७७ में पुलिस रिकार्ड में अंकित हुए लगभग ४५०० मामले किशोर अपराधों के हैं। जिसमें चोरी के १६०००, सेंधमारी के ६६००, दंगे-फसाद के ५०००, हत्या के ८५०, डकैती के ७०० और शेष जुआ, उठाईगीरी, जेबकटी आदि के हैं।

सन् १९६५ में जब भारत की आबादी ४७ करोड़ थी तब कुल ७५ लाख १६ हजार १५ अपराध दर्ज किये गए, जिसका प्रति लाख औसत १५७ आता था। सन् १९७४ में जब जनसंख्या ५८ करोड़ हुई तो अपराधों में वृद्धि हुई और ११ लाख ९२ हजार २७७ तक पहुँच गए। इस वर्ष औसत २०५ प्रति लाख था।

बढ़ते हुए अपराधों के मूल में नीति के प्रति उपेक्षा और मर्यादाओं के क्षेत्र में बढती जाने वाली उद्दण्डता को प्रमुख कारण समझा जा सकता है। इन दोनों का ही परिपोषण विनिर्मित वातावरण द्वारा होता है। यह कहीं आसमान से नहीं उतरता, वरन् वरिष्ठ प्रतिभा द्वारा विनिर्मित होता है। कुत्सित साहित्य एवं वर्जनाओं का उपहास उड़ाने वाले फिल्म उद्योग को ऐसा वातावरण बनाने के लिए प्रधान रूप से दोषी ठहराया जा सकता है। इसके व्यापक निर्माण में पूँजी और प्रतिभा का समन्वय होता है। ऐसा कुछ बड़े पैमाने पर कर सकने में गरीब लोग कहाँ समर्थ होते हैं, बड़ों की देखा-देखी, छोटे दुर्व्यसनों को अपनाते और उनके लिए साधन न जुट पाने पर अपराधी कुकृत्यों पर उतारू होते हैं।

बढ़ते हुए अपराधों के कारण व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन क्रम कितना अस्त-व्यस्त होता है यह किसी से छिपा नहीं। आग में ईंधन पड़ते रहने पर वह दावानल बने और चपेट में व्यापक क्षेत्र को लेकर सर्वनाश की विभीषिका उत्पन्न करे, तो आश्चर्य नहीं।

रोकथाम के लिए सोचने और करने का बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है। इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम यह है कि अपराधों के पक्ष में वातावरण बनाने वाले परोक्ष कारणों को देखा और उन्हें चौराहे पर नंगा खड़ा किया जाय। अपराधों की रोकथाम का कार्य पुलिस के जिम्मे छोड़ने से नहीं, उसका परोक्ष वातावरण बनाने वाले इन मूर्धन्यों को दबोचने से बनेगा, जो बाहर से सफेदपोश बने और भीतर से जहर डालते रहे हैं।

निरंकुश भोगवाद—अपराधी प्रवृत्तियों को बढ़ाता है

अपराधों के बारे में जो सरकारी आँकड़े उपलब्ध हैं, वे इस तथ्य का प्रमाण हैं कि अपने देश में अपराध लगातार बढ़ रहे हैं। पुलिस के प्रतिवेदनों के ही अनुसार बम्बई, दिल्ली, बैंगलौर, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, अहमदाबाद और हैदराबाद में १९७६ की तुलना में १९७७ में अपराध अधिक हुए। सर्वाधिक अपराध बम्बई में दर्ज किये गये—शेष शहरों में उपर्युक्त क्रम से ही अपराधों की संख्या कम दर्ज है। बम्बई में जनवरी, फरवरी और मार्च १९७७ इन तीन महीनों में ही आठ हजार दो सौ साठ अपराध पुलिस के रोजनामचे में अंकित किये गये। इससे कहीं अधिक अपराध ऐसे भी होते हैं, जो नागरिकों की उदासीनता, पीड़ित पक्ष के मन में पुलिस के आतंक या आक्रामक पक्ष का पुलिस पर प्रभाव-दबाव अथवा किसी प्रलोभन के अभाव में पुलिस की अनिच्छा आदि कारणों से दर्ज नहीं किये जाते।

शासकीय आँकड़ों के ही अनुसार सन् ७७ के आखिरी महीनों में देश में हत्याओं की संख्या बढ़ी, ग्रामीण क्षेत्रों में डाकुओं की संख्या बढ़ी। रेल-यात्रा और राजमार्गों पर बसों से यात्रा अधिक असुरक्षित हो गई। गुण्डागर्दी और बाल अपराध भी बढ़े तथा शासन के विरुद्ध रोष-प्रदर्शन की आड़ में अराजक तत्त्वों की उपद्रवी गतिविधियाँ भी बढ़ीं, जोकि वस्तुतः राजनैतिक कम, आपराधिक अधिक हैं।

दंगे को प्रायः साम्प्रदायिक रूप दिया जाता है। किन्तु उनकी तह में जाने पर भी यही स्पष्ट होता है कि प्रायः किसी शहर-कस्बे के कुछ गुण्डे, उद्दण्ड किस्म के मनचले आवारा नौजवान सर्वथा निजी कारणों से अपनी उन्मत्त गतिविधियों के द्वारा इन दंगों की शुरूआत करते हैं।

राजस्थान को अब तक अन्य राज्यों की तुलना में शान्त राज्य माना जाता था, किन्तु १९७७ के वर्ष में वहाँ भी अपराधों में रिकार्ड तोड़ वृद्धि हुई। ७७ के वर्ष में जयपुर में ५७ हत्याएँ तथा साढ़े आठ हजार से अधिक अन्य अपराध अंकित किये गये। उदयपुर में ५ हजार दो सौ अपराधों के अतिरिक्त ४३ हत्या के मामले दर्ज हुए। कोटा में भी अपराधों की संख्या लगभग उदयपुर जैसी ही रही और हत्याएँ ४५ दर्ज की गई। जबकि गंगानगर में हत्याओं की संख्या जयपुर के बराबर अर्थात ५७ रही।

पाश्चात्य चिन्तन शैली के अभ्यस्त कई समाजशास्त्रियों के अनुसार हत्याओं और अपराधों में यह वृद्धि स्वाभाविक है, क्योंकि भारतीय समाज आज संक्रमण काल से गुजर रहा है और औद्योगिक क्रान्ति के दबाव से नये सामाजिक तनाव पैदा हो रहे हैं। आर्थिक दबाव यानी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरीबी तथा शहरीकरण जनित गुमनामी यानी अपरिचय की सुविधा इसके मुख्य कारण बताये जाते हैं। सामाजिक जागरूकता की वृद्धि गरीबों में धनिकों के प्रति क्षोभ उत्पन्न करती है तथा शहर में एक-दूसरे के कुल-शील, ठौर-ठिकाने का अता-पता न होने से अपराध कर गुमनाम हो जाना आसान हो जाता है—ऐसा इन समाजशास्त्रियों द्वारा विश्लेषित किया जाता है।

यदि विपन्नता और सम्पन्नता की भीषण विषमता से उत्पन्न तनाव अपराधों का मुख्य कारण रहा होता तो अमरीका में, इस तनाव का अभाव है, तब वहाँ गम्भीर अपराध नहीं होने चाहिए। किन्तु वास्तविकता इससे विपरीत है। अमरीका में प्रति आधा घण्टे में एक हत्या हो जाती है। दूसरी ओर यदि गुमनामी या अपरिचय की सुविधा स्वाभाविक रूप में अपराध वृत्ति को उभारने वाली हुआ करती, तो तीर्थ-यात्री भी अपरिचित स्थानों पर जाकर भीड़-भक्कड़ में अपराध किया करते। जबकि वे लोग तो तीर्थयात्रा के दौरान सामान्य से अधिक ही उत्कृष्ट आचरण का प्रयास करते हैं।

स्पष्ट है कि अपराधों की जड़ साधनों की प्रचुरता या अभाव अथवा अवसरों की उपलब्धि से सम्बन्धित नहीं है। अपितु वह मानवीय चिन्तन से सम्बन्धित है। सामाजिक परिवेश अपराधों के लिये उत्तरदायी तो है, किन्तु सामाजिक परिवेश का अर्थ समाज का भौतिक ढाँचा या समाज में साधनों-उपकरणों का औसत नहीं है। अपितु समाज में किन गुणों, मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा है, इससे सामाजिक परिवेश बनता है।

जब तक सामाजिक परिवेश मानसिक उद्वेगों को बढ़ाने वाला रहेगा, समाज में उद्धत आचरण और अपराध-कर्म बढ़ते रहेंगे। वातावरण में ही व्यक्तियों का अंतरंग और बहिरंग ढाँचा ढालने की क्षमता होती है। यदि वर्तमान ढाँचे अस्वस्थ, असुन्दर ओर अशिव रूपों का निर्माण करने वाले प्रतीत होते हैं तो उनका स्वरूप परिवर्तित करने की ही आवश्यकता है।

छोटी श्रेणी के पशु मात्र शरीर-स्वार्थ की पूर्ति के लिये हत्याएँ करते हैं। किन्तु मनुष्य तो ऐसी भी हत्याएँ और अपराध करते देखे जाते हैं, जिनसे न तो उनके शरीर को कोई लाभ पहुँचता है न ही मन को। यह चिन्तन और भावनाओं की विकृति नहीं तो और क्या है ?

अपराधी प्रवृत्ति, भय, आशंका, अविश्वास, घृणा और लोभ की अधिकता से बढ़ती है। इन पर रोक लगाने का काम अन्तःकरण की वे आस्थाएँ ही कर सकती हैं, जिन्हें आस्तिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सदाशयता, सद्भावशीलता, संस्कारसम्पन्नता के रूप में जाना जाता है। सरकारी रोकथाम से बात अधिक बनती नहीं।

सरकारी रोकथाम के आधार हैं कानून और औजार है पुलिस। विकृत वातावरण में ये दोनों ही उद्देश्य पूर्ति में विफल-अक्षम सिद्ध हो जाते हैं। यह शिकायत आये दिन की जाती है कि पुलिस-प्रशासन में ईमानदार, निष्ठावान लोगों की कमी है। परन्तु सोचने की बात यह है कि पुलिस आसमान से नहीं टपकती। पुलिस के लोग और जनता एक ही ढाँचे की उत्पत्ति है। पुलिसमैन, अपराधी तथा पीड़िततीनों ही साथ-साथ गाँव की धूलभरी पगडंडियों में, हरे-भरे खेत-खलिहानों के बीच, बाढ़ और सूखे की मार सहते हुए बढ़ते हैं या फिर कस्बों-शहरों के मुहल्लों में साथ-साथ खेलते-घूमते बड़े होते हैं। यदि उस वातावरण में ही करुणा, संवेदना, कोमलता की भावनाएँ उभारने वाले तत्त्व पर्याप्त मात्रा में रहें, तो अपराध की प्रवृत्तियाँ कभी भी बढ़ नहीं सकती।

जहाँ तक कानूनों की बात है, हर बुरे काम के विरुद्ध कानून है। अपराधियों के लिये जेल, पुलिस न्यायालय की पूरी व्यवस्था है। जाँच-पड़ताल के लिये गुप्तचरों का सरकारी तंत्र है। इन सब पर भारी खर्च भी होता है। किन्तु अपराध दिनदहाड़े जारी हैं और बढ़ रहे हैं। पचास प्रतिशत अपराध तो अंकित ही नहीं किये, कराये जाते। जो दर्ज होते हैं, उनमें भी दस प्रतिशत पकड़ में नहीं आते। जितने लोग पकड़े जाते हैं उनमें से तीन चौथाई तिकड़म-तरकीब, धन-आतंक, प्रभाव-दबाव से छूट जाते हैं। दंड-प्रक्रिया दुरुह है ही। एक साधनहीन को न्याय पाना कठिन हो जाता है। निस्सन्देह पुलिस, न्यायालय, कारागार सभी की अत्यधिक आवश्यकता है। किन्तु अपराधों की रोकथाम इतने भर से नहीं हो सकती। ये प्रतिबन्धात्मक कार्यवाहियाँ तो अनीति-अत्याचार की वृद्धि पर कुछ सीमा तक ही रोक लगा सकती हैं। मुख्य आवश्यकता उन दुष्प्रवृत्तियों की प्रेरणा के आधारों को ही समाप्त करने की हैं जो इन अपराधों तथा न्याय व्यवस्था में होने वाली चालाकियों के लिये उत्तरदायी हैं। जब तक अधिसंख्य जनता का मन दुष्प्रवृत्तियों को पकड़े रहेगा, तब तक अपराधों की बाढ़ सामाजिक बंधनों-मर्यादाओं को इसी प्रकार तोड़ती रहेगी।

सर्वसाधारण अपराधियों और पुलिस को कोसकर अपने को कर्त्तव्यमुक्त तथा सज्जन मान बैठते हैं। इस भयानक भ्रान्ति का कारण भी चिन्तन की विकृति ही है। अपराध, अन्याय और अनीति का मौनदर्शक बना रहकर वह उसमें सहभागी हो रहा है, यह बात उसे समझ में नहीं आती। इसका कारण भी चिन्तन की विकृति ही तो है। आये दिन सड़क से युवतियाँ-महिलाएँ को दो चार गुण्डे अपहृत कर ले जाते हैं और सैकड़ों लोग 'तमाशा' देखते रहते हैं। दिनदहाड़े-मार-पीट, खून-खराबा मचाया जाता है और हजारों की भीड़ सहमी-सिमटी सब ताकती रहती है। यह सब अन्तःक्षेत्र में घुसी कायरता के अतिरिक्त और क्या है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कायरता और आक्रामकता जुड़वाँ बहिनें हैं। भीतर से कायर व्यक्ति ही कमजोरों के प्रति आक्रामक होता है। इसी प्रकार स्वार्थान्धता और निष्ठुरता में घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वार्थान्ध व्यक्ति सदैव निष्ठुर होता है। असंस्कृत व्यक्ति करुणाहीन होता है तथा जिसे नीति में आन्तरिक निष्ठा नहीं है, वह अपराधी होगा ही।

वस्तुतः अपराधों का क्रम न्यायसंहिता की परिधि की पहुँच से बहुत पहले प्रारम्भ होता है। जिन कार्यों के लिये दंड-संहिता में कोई व्यवस्थाएँ नहीं हैं, वे ही अपराधों के उद्गम-केन्द्र हैं। आलस्य-प्रमाद, असंयम, अशिष्टता, उद्धत आचरण, द्वेष, दुर्भाव, कुदृष्टि-कुभाव, कटु भाषण, अस्त-व्यस्तता, नशा-पानी, अस्वच्छता, अनुशासनहीनता जैसी अवांछनीयताएँ सरकारी अंकुश से भले मुक्त हैं, पर वस्तुतः अपराधों की कारणभूत उत्तेजनाएँ इन्हीं से पनपती-फैलती हैं। यही अवांछनीयताएँ बढ़कर विध्वंसक अपराधों-विभीषिकाओं का रूप ले लेती हैं। नैतिक और नागरिक मर्यादाओं का निरन्तर उल्लंघन तथा मानवीय संवेदनशीलता का नितांत अभाव ही अपराधों का वास्तविक आधार और प्रेरणा केन्द्र है क्योंकि ये ही आदमी को धीरे-धीरे खोखला, हीन और संकीर्ण बनाती हैं जिसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अपराध करने और सहने के रूप में सामने आती है, जिन्हें स्तरहीनता, परपीड़न और मर्यादाहीनता में कोई संकोच नहीं होता, वे अनास्थावादी लोग ही अपराधी बनते, गुण्डागर्दी अपनाते, आतंक उत्पन्न करते तथा चोरी-ठगी पर उतारू रहते हैं। यही अभ्यास उन्हें हत्या, बलात्कार जैसे नृशंस क्रूरकर्म में भी निर्लज्ज बनाये रहता है।

अतः अपराधों की बाढ़ से बचने के लिये अनैतिकता के आरम्भिक विकास पर दृष्टि डालनी चाहिए और उसे ही रोकने की व्यवस्था करनी चाहिए। भोग की निरंकुश भूख और मन की मनमानी उछल-कूद को ही जिस समाज में स्वाभाविक मान लिया गया, वहाँ हिंसा, क्रूरता तथा अपराध अवश्यम्भावी हैं।

अतः आवश्यकता आस्थाओं के परिष्कार की, अन्तःकरण के उत्कर्ष की है। अन्तःकरण को सुसंस्कारित बनाने, अध्यात्म की प्राण-प्रतिष्ठा का महत्त्व समझाने की है। कहने वाले प्रायः कहते हैं कि अध्यात्म से क्या होगा ? उससे धन तो मिल नहीं जायेगा। उन्हें स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि अध्यात्म से धन नहीं, मानसिक वर्चस, आत्मशान्ति, आत्मसन्तोष, वास्तविक आनन्द मिलेगा, जो धन से भी अधिक महत्वपूर्ण तो है ही। साथ ही जो धन के संरक्षण-सदुपयोग के लिये भी आवश्यक है। अराजकता-असामाजिकता की चपेट से धन भी बचा नहीं रह पाता। सुख-शान्ति तो भला उस स्थिति में कभी मिलती ही नहीं।

मनुष्य मूलतः अपराधी, अविश्वासी, असहयोगी और असंवेदनशील नहीं होता। इसके विपरीत, मनुष्य-स्वभाव में संवेदन, सहकारिता, सदाशयता भी कूट-कूटकर भरी हुई है। ऐसी स्थिति में अपराधों की वृद्धि का कारण विकृत, चिन्तन और दूषित दृष्टिकोण के अतिरिक्त और क्या है ? स्पष्ट है कि मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने की ओर यदि ध्यान नहीं दिया गया तो आज की दुःस्थिति बदलने की नहीं।

भोगवादी दृष्टिकोण वाले समाज में सांस्कृतिक गतिविधियों का अर्थ भी नाच-गाने, कामोत्तेजन और सस्ते मनोरंजन तक सिमटकर रह गया है। किन्तु वास्तविक सांस्कृतिक गतिविधि वह है, जो व्यक्ति को सांस्कृतिक-चेतना से सम्पन्न, सुसंस्कारित बनाए। उसमें सिद्धान्तों, विचारों की समझ पैदा करे और सही दृष्टि दे। जब तक व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने की ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा, उसकी भौतिक वृत्तियों को ही प्रधानता देकर उभारा-उछाला जाता रहेगा, तब तक समाज में पशु-प्रवृत्तियों का प्राधान्य भी बना ही रहेगा।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि अपराधियों को दंड देने और अपराधों की धड़-पकड़ पर जितना ध्यान दिया और खर्च किया जाये, सांस्कृतिक चेतना के प्रसार हेतु उससे अधिक ही हो। इसे ही आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण-प्रसार कहा जाता है। जब तक उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श आचरण की महत्ता व्यक्ति के अन्तःकरण में अंकित नहीं होगी, अपराधों की वास्तविक रोकथाम और समाप्ति नहीं होगी।

अवांछनीयता का उन्मूलन इस प्रकार सम्भव होगा

अन्य देशों की भाँति पिछले तीन दशकों में अपने देश ने भी भौतिक क्षेत्र में प्रगति की है। ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो स्थिति थी उसकी तुलना में हम कहीं बहुत आगे हैं। जिन वस्तुओं के लिए हमें कभी दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता था, वे आज अपने यहाँ ही बनने लगी हैं, यह प्रसन्नता की बात है। किन्तु दूसरे देशों की भाँति एक भूल अपने यहाँ भी हुई है। भौतिक प्रगति की अंधी दौड़ में जिस प्रकार पाश्चात्य देश उच्चस्तरीय मानवीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों की उपेक्षा करके अनेकानेक समस्याओं का सामना कर रहे हैं, वही भूल अपने यहाँ भी हो रही है। फलस्वरूप अवांछनीयता बढ़ती जा रही है।

इन दिनों नीतिनिष्ठा, सामाजिक उत्तरदायित्वों एवं मानवीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों के प्रति उच्चस्तरीय आस्थाएँ दिनोंदिन गिरती जा रही हैं। आस्थाओं के विकृत होने से चिन्तन निकृष्ट बनता और अवांछनीयता, अनैतिकता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ावा मिलता है। अवांछनीय, अनैतिक गतिविधियों में प्रकारान्तर से नीति एवं आदर्शों के प्रति विकृत आस्थाएँ ही काम करती दृष्टिगोचर होती हैं। जिसकी फलश्रुति बेईमानी, निष्ठुरता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता के रूप में प्रकट होती है।

अनैतिकताओं का आरम्भ आलस्य, अपव्यय, असंयम दुर्व्यसन, अशिष्टता, अनुशासनहीनता, नागरिक कर्तव्यों की अवहेलना जैसे छोटे समझे जाने वाले अवगुणों से होता है और इस उपक्रम में उद्धत होकर वह आक्रामकता का दुष्टता एवं निष्ठुरता का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। चोरी, ठगी, रिश्वत, मिलावट, अपहरण, चोरबाजारी, बलात्कार अपहरण, लूट डकैती, हत्या जैसे अपराध उद्धत अनैतिकता के अन्तर्गत ही आते हैं। जिस तेजी से इनमें अभिवृद्धि हो रही है। उसे देखते हुए लगता है प्रगति के नाम पर हम अवगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अनैतिकता स्वार्थपरायणता एवं कृतघ्नता की उस संकीर्ण मनोवृत्ति से पनपती है जिसके कारण मनुष्य अपने सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा करने लगता है। परिवार एवं समाज से अनेकों प्रकार की सुविधाएँ एवं सहयोग हर मनुष्य को प्राप्त है जो अनुदान उसे प्राप्त हुए हैं प्रतिदान स्वरूप अपनी योग्यता, प्रतिभा एवं क्षमता का एक भाग समाज के लिए अर्पित करना नैतिक कर्तव्य है। जिसके निर्वाह करते रहने से ही समाज की सुव्यवस्था बनी रहती और सहयोग तथा सहकार के कारण प्रगति का क्रम अवरुद्ध नहीं होने पाता। संकीर्ण स्वार्थों के वशीभूत होकर अधिकांश व्यक्ति अपने इन नैतिक दायित्वों का निर्वाह नहीं करते। ये ऐसे अपराध हैं जो कानून की पकड़ में नहीं आते, किन्तु इनके कारण समाज को भारी क्षति उठानी पड़ती है। असमर्थ, असहाय बूढ़े माता-पिता की सेवा न करना, अपने आश्रितों के निर्वाह की व्यवस्था न जुटाना प्रकारान्तर से अपराध की ही श्रेणी में आता है। समाज से अनेकों प्रकार के सहयोग मिलते रहते हैं। समर्थ और सक्षम होते हुए भी असमर्थों, जरूरतमन्दों को सहयोग न देना नैतिक अपराध है, जिसकी रोकथाम के लिए कोई कानूनी व्यवस्था नहीं है। किन्तु इनसे होने वाली हानियाँ अन्य अपराधों की तुलना में कम नहीं है।

दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत वे अपराध आते हैं जिसमें सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन किया जाता है। अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, अशिष्टता जैसी असामाजिक प्रवृत्तियों से समाज की सुव्यवस्था नष्ट होती तथा अराजकता फैलती है। नागरिक कर्तव्यों का पालन न करने से दूसरों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, इसे सर्वत्र देखा जा सकता है। लाइन में लगकर टिकट न लेना, रेलगाड़ी में बैठने वाली सीट पर सो जाने जैसी बातें छोटी लगती हैं। किन्तु इनसे दूसरों को भारी असुविधा होती है। कितनी बार तो टकराव एवं संघर्ष की, झगड़े फसाद की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यातायात में ऐसी घटनाएँ अक्सर घटती रहती हैं। कटुभाषिता आवेश ग्रस्तता, अशिष्टता से अपनी क्षति तो होती ही है दूसरे के ऊपर कुप्रभाव पड़ता तथा सन्तुलन बिगड़ता है। अपनी बातों अथवा व्यवहार द्वारा इसको उत्तेजित अथवा असन्तुलित कर देना भी छोटे अपराधों की श्रेणी में आता है। अपनी सुविधा के लिए अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का हनन आन्तरिक निष्ठुरता का परिचायक है, जो बढ़ते बढ़ते-बड़े अपराधों का रूप ले लेता है।

तीसरे प्रकार में ऐसे अपराध होते हैं जिन्हें कानून द्वारा जघन्य घोषित किया गया है। जुआ, लाटरी, ठगी, धोखाधड़ी, चोरी, अपहरण, आक्रमण, मिलावट, रिश्वत, लूट, डकैती, बलात्कार, हत्या जैसे अपराध उद्धत अनैतिकता के नाम से सम्बोधित किए जाते हैं। आरम्भिक संकीर्ण स्वार्थपरता असामाजिकता और कालान्तर में आक्रामकता का रूप लेकर उपरोक्त अनेकों प्रकार के अपराधों को जन्म देती है। प्रकारान्तर से नीति निष्ठा एवं उच्चस्तरीय मानवीय आदर्शों के प्रति आस्था की गिरावट से ही सभी प्रकार की अनैतिकताओं का जन्म होता है।

अपने देश में सर्वाधिक अपराध मिलावट के होते हैं। चावल, दाल, आटा, तेल, घी, मिर्च, मसाले, दूध जैसे खाद्यान्नों में तो मिलावट एक सामान्य-सी बात हो गई है। आये दिन समाचार पत्रों में ऐसी खबरें छपती रहती हैं कि अमुक वस्तु में विषाक्त वस्तु की मिलावट होने से उपयोग करने वाले कितने ही व्यक्ति मारे गये—कितने ही अपंग हो गये। जितनी घटनाएँ प्रकाशन में आती हैं, उनसे बड़ी संख्या अप्रकाशित ही पकड़ में न आने वाली घटनाओं की होती है। देश में प्रतिवर्ष अन्धे, अपंगों की संख्या में तीव्रता से वृद्धि हो रही है। इस बढ़ोत्तरी में एक बड़ा योगदान खाद्यान्नों में मिलावट का है। दूध और देशी घी जैसी स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुएँ शुद्ध शायद ही कहीं मिल पाती हों। इनका सेवन करना लोगों ने कम कर दिया है। विश्वास उठ जाने तथा इनका प्रचलन कम हो जाने के कारण गौ पालन, पशु पालन जैसे उपयोगी व्यवसाय भी बन्द होते जा रहे हैं। देश का दुग्ध उत्पादन प्रतिवर्ष घटता जा रहा है। पशुपालन के प्रति घटता हुआ उत्साह प्रकारान्तर से दूध, घी में होने वाले मिलावट से उत्पन्न अविश्वास की फलश्रुति मात्र है। इस मिलावट को कड़ाई से नहीं रोका गया तो पशुपालन उद्योग की सरकारी योजना भी सफल न हो सकेगी और दूध उत्पादन के घटने से देश की जनता के स्वास्थ्य पर भारी कुप्रभाव पड़ेगा।

मिलावट खाद्यान्नों तक ही सीमित नहीं हैं। मशीनरी सामानों, रेडियो, ट्रांजिस्टर, घड़ी आदि के कलपुर्जों की प्रामाणिकता सदा संदिग्ध ही बनी रहती है। दूसरे प्रगतिशील देशों में वस्तुओं का निर्माण प्रतिष्ठा का प्रश्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाकर किया जाता है। जापान, जर्मनी की बनी वस्तुएँ संसार भर में लोकप्रिय और सबसे अधिक प्रमाणिक मानी जाती हैं। अपने यहाँ का दुर्भाग्य है कि निर्माणकर्ता अपने तात्कालिक स्वार्थ साधनों एवं अधिकाधिक लाभ अर्जित करने के फेर में वस्तुओं के स्तर की ओर ध्यान नहीं देते। फलस्वरूप वे टिकाऊ नहीं हो पाती और कुछ ही दिनों बाद बेकार हो जाती हैं। दूसरे प्रगतिशील देशों में हत्या, आत्महत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार के अपराध तो अधिक होते हैं किन्तु वस्तुओं में मिलावट के अपराध भारत की तुलना में कम होते हैं। इस क्षेत्र में अपना देश सबसे आगे है।

इन अपराधों के अतिरिक्त रिश्वत, तस्करी, घरों में चोरी जैसे अपराध ऐसे हैं जो कम ही प्रकाशन में आते हैं। सरकारी दफ्तरों की स्थिति ऐसी बन गई है कि बिना रिश्वत के शीघ्रता से काम नहीं हो पाता। विभिन्न कार्यों को कराने के लिए रिश्वत की रकम बँधी बँधायी होती है। जो देने से आना-कानी करता है, उसका काम लम्बे समय तक पेण्डिग लिस्ट में पड़ा रहता है। सामूहिक प्रतिरोध के अभाव में यह अनैतिक व्यापार इन दिनों सर्वत्र चलते देखा जा सकता है और दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

अपराधशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, विचारक बढ़ती हुई अवांछनीयता, अनैतिकता के विभिन्न कारण बताते हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० जान कैलिहन भारत में बढ़ते हुए अपराधों का सम्बन्ध जनसंख्या की बढ़ोत्तरी और घनी आबादी से जोड़ते हैं। उनका कहना है कि घनी आबादी एवं भीड़ वाले बड़े-बड़े नगरों में मानसिक, भावनात्मक एवं आर्थिक दबावों के कारण अपराधों में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

पेनसिल बानियाँ विश्वविद्यालय के प्रो० लैटीग्रास सिनेमा एवं टेलीविजन को अपराधों का एक बड़ा कारण मानते हैं। उनका विचार है कि सिनेमा के घटनाक्रमों में जीवन की समस्याओं का वास्तविक समाधान करने वाली बातों का मात्र एक प्रतिशत समावेश होता है। ९९ प्रतिशत दृश्य कोरी कल्पना पर आधारित तथा अव्यावहारिक होते हैं। अपराध, हिंसा आदि को बढ़ावा देने वाली फिल्में ९९ प्रतिशत होती हैं। इलिनाय विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्रो० लियोनाडिसरन बच्चों एवं किशोरों में बढ़ती हुई अपराध वृत्ति में फिल्मों का बहुत बड़ा योगदान मानते हैं। उनके अनुसार अपरिपक्व मस्तिष्कों को सिनेमा एवं घटिया साहित्य सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।

जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, सिनेमा, घटिया साहित्य, गरीबी आदि का अवांछनीयता को बढ़ावा देने में एक सीमा तक सहयोग हो सकता है किन्तु ये मूल कारण नहीं है। सबसे अधिक बड़ा कारण है नीति-आदर्शों एवं उच्चस्तरीय सिद्धान्तों के प्रति आस्थाओं का विकृत हो जाना। अनेकों प्रकार की विकृतियाँ इसी से उत्पन्न होती हैं। परिवारों में बढ़ती हुई संकीर्ण स्वार्थपरता, कृतघ्नता और समाज में फैलती हुई अनुदारता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, आस्थाओं की विकृति की ही फलश्रुति है, जो उद्धत बनकर गम्भीर अपराधों को जन्म देती हैं।

इस दिशा में अभीष्ट सुधार एवं रोकथाम करने के लिए शासकीय एवं सामाजिक स्तर पर अनेकों प्रकार के प्रयास चलते रहते हैं। शासन कानून बनाता है और दण्ड की व्यवस्था न्यायालयों के माध्यम से करता है। सामाजिक संस्थायें अपने स्तर पर प्रयत्नरत रहती हैं। किन्तु इसके बावजूद भी विशेष सुधार होता दिखाई नहीं पड़ता। समाज में अवांछनीयता घटने के स्थान पर बढ़ती ही जा रही है। कानून की पकड़ में न आने वाले कितने ही ऐसे अपराध होते हैं, जिनकी जानकारी नहीं मिल पाती किन्तु उनसे भारी क्षति उठानी पड़ती है। परिवार में वृद्ध माता-पिता की देख-रेख सेवा, पत्नी के प्रति स्नेह-सहयोग के अभाव में उन्हें कितना कष्ट सहना पड़ता है। इसका अनुमान तो भुक्तभोगी ही लगा सकते हैं। उपेक्षा, तिरष्कार एवं समुचित देख-रेख न होने से उनमें कितनों को घुटन से भरे जीवन के दिन पूरे करने पड़ते हैं। पति की प्रताड़ना एवं उपेक्षा से आये दिन कितनी ही नारियाँ आत्महत्या तक करती देखी गई हैं, जिनकी रोकथाम करने के लिए कानून के पास प्रत्यक्ष कोई व्यवस्था नहीं है। समर्थ और सम्पन्नों की अनुदारता से पिछड़े एवं गरीबों को सहयोग नहीं मिल पाता। फलतः वे अविकसित एवं विपन्नता की स्थिति में पड़े रहते हैं। शासन और कानून इस अनुदारता की मनोवृत्ति को रोक पाने में अक्षम है। जिसके कारण पिछड़े गरीबों की स्थिति और भी अधिक बदतर होती जा रही है और शोषण एवं संचय के कारण सम्पन्न और भी अधिक अपनी झोली भरते जा रहे हैं। ये ऐसे परोक्ष रूप से किये जाने वाले अपराध हैं जो कानून की पकड़ में नहीं आते किन्तु उतनी ही हानि पहुँचाते हैं जितनी कि चोरी, ठगी और डकैती जैसे गम्भीर अपराध।

इस स्थिति को बदलने के लिए बहुस्तरीय प्रयास करने होंगे। मात्र शासन पर निर्भर रहने से काम नहीं चलेगा, उसका सहयोग इस प्रयास में मिल सकता है—नीति-निष्ठा और चरित्रनिष्ठा को, उच्चस्तरीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों को सर्वोपरि महत्त्व देना होगा। इन दिनों बुद्धि और धन को सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसके स्थान पर नीति, सदाचार, मानवीय आदर्शों एवं सिद्धान्तों को प्रमुखता देनी होगी। सम्पन्नता और विद्वता को तभी सम्मानित किया जाना चाहिए, जब वह उदारता एवं उदात्तता को अपनाये हुए हो। अनुदार सम्पन्न और चरित्र से रहित विद्वान को प्रतिष्ठा नहीं मिलनी चाहिए। पिछले दिनों यही भूल हुई है। अपनी संस्कृति ने चरित्रनिष्ठा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना महत्व दिया उतना अन्य किसी विशेषता को नहीं। इस तथ्य की उपेक्षा हुई, चरित्रनिष्ठा गौड़ होती गई और बुद्धिबल, धनबल को प्रश्रय मिला—सम्मानित हुआ। फलस्वरूप मानवी विशेषताओं की अवमानना हुई और चरित्रनिष्ठा के अभाव में आस्थायें विकृत होती चली गईं। अपनी चारित्रिक विशेषताओं के लिए यह देश कभी विश्वविख्यात था। इतिहास में एक से बढ़कर एक अनुकरणीय उदाहरण मिलते हैं। उसी देश के निवासी सदाचार की दृष्टि से दिन-प्रति दिन कमजोर होते जा रहे हैं। अपनी चारित्रिक गरिमा खोकर हमने गँवाया ही अधिक है। सर्वविदित है किसी भी समाज अथवा देश की वास्तविक सम्पत्ति भौतिक वस्तुयें नहीं, उसमें रहने वाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व हैं, जिसके सहारे राष्ट्र ऊँचा उठता है। साधनों की सुसम्पन्नता घटिया व्यक्तित्व होने पर प्रगति का नहीं, अवगति का मार्ग प्रशस्त करती है। इसके विपरीत साधनों की दृष्टि से पिछड़े किन्तु व्यक्तित्वों की दृष्टि से भरे-पूरे देश को प्रगति करते देरी नहीं लगती।

इस तथ्य की जितनी उपेक्षा होगी—देश की प्रगति का मार्ग उतना ही अवरुद्ध होता जायेगा। विकास के लिए बनने वाली अनैतिकता की बाढ़ कहीं उच्चस्तरीय आदर्शों को, नैतिक विशेषताओं को बहा न ले जाय—इसके लिए अविलम्ब कदम उठाने होंगे। देशवासियों में नीति एवं आदर्शों के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिए हर सम्भव प्रयास करने होंगे। सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर प्रचार तन्त्रों, रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से चरित्रनिष्ठा को उभारा एवं प्रोत्साहित किया जाय। अनीति के मार्ग पर चलने वाले, पारिवारिक, सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह के प्रति कन्नी काटने वालों की भर्त्सना एवं सामाजिक बहिष्कार किया जाय। कानून ऐसे अनुदारों को प्रताड़ित करने के लिए दण्ड की व्यवस्था अपने स्तर पर करे और समाज ऐसे व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा, तिरष्कार द्वारा विरोध प्रकट करे। सर्वत्र नीतिवानों, चरित्रवानों को प्रोत्साहित किया एवं सम्मान दिया जाय। सम्पत्ति एवं योग्यता से भी अधिक चरित्र बल को महत्व दिया जाय। इस दिशा में सर्वत्र प्रयास चल पड़े तो कोई कारण नहीं है कि वर्तमान अवांछनीय प्रवाह को उलटा न जा सके। अपनी गौरव-गरिमा को प्राप्त करने के लिए हमें उच्चस्तरीय आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा जन-जन के भीतर करनी होगी। अवांछनीयता की रोकथाम और समाज की सर्वांगीण प्रगति का मार्ग इसी प्रकार प्रशस्त होगा।

ऐसा हम भी कुछ करें

लोकतन्त्र की सफलता की पहली शर्त है—सुदृढ़ नागरिक संगठनों द्वारा नागरिकों का प्रशिक्षण। प्रश्न चाहे मतदाताओं द्वारा प्रतिनिधियों के चुनाव का हो, दलबदलुओं के या भ्रष्टाचारियों के बहिष्कार का हो अथवा उपभोक्ता वस्तुओं की मिलावट को रोकने और शुद्ध चीजों की पूर्ति का हो, केवल नागरिक-संगठन इनका समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। सरकारी या अर्द्ध-सरकारी संगठन निश्चय ही इस दिशा में कुछ नहीं कर सकते।

ब्रिटेन में ऐसा ही नागरिकों का एक सुदृढ संगठन है—'उपभोक्ता संघ' अथवा 'कंज्यूमर्स असोशिएशन' भारत के एक राज्य के बराबर इस छोटे से देश में इस सब के सदस्यों की संख्या करोड़ों में है। इस संघ के अपने प्रकाशन हैं, प्रयोगशालाएँ हैं और शोध केन्द्र हैं। लन्दन नगर में ही संघ के पाँच लाख से अधिक सदस्य हैं।

संघ की एक मासिक-पत्रिका है—'व्हिच ?' इसके ३ लाख ग्राहक हैं और ३० लाख पाठक। इसके पाठक वे ही वस्तुएँ खरीदते हैं, जिनकी सिफारिश यह पत्रिका करती है कारण स्पष्ट है। पत्रिका के लिये किसी भी रूप में कोई सरकारी सहायता स्वीकार नहीं की जाती, न उद्योगपतियों या व्यापारियों से कोई विज्ञापन ही। संस्था सरकारी और बाजार के वैत्तिक प्रभाव से पूर्णतया मुक्त है। चीजों की किस्मों और नमूनों की जाँच के लिये संस्था की निजी प्रयोगशालायें हैं। व्यवस्थापिका-समिति में अवैतनिक रूप से काम करने वाले वे ही लोकप्रिय विश्वासपात्र लोक-प्रतिनिधि रखे जाते हैं, जिनका उद्योग व्यवसाय में निहित स्वार्थ नहीं होता। इसलिये 'व्हिच' पत्रिका में उपभोक्ता वस्तुओं के बारे में प्रकाशित रिपोर्ट, निर्णय, सुझाव आदि किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह या दबाव से मुक्त माने जाते हैं। जनता उन पर पूर्ण विश्वास करती है और अपने खर्च किये पैसे के बदले में सुरक्षा और सन्तुष्टि प्राप्त करती है।

'उपभोक्ता संघ' का मुख्य उद्देश्य जनता को उपलब्ध चीजों और सेवाओं के बारे में सही राय देकर सहायता पहुँचाना और मार्ग-दर्शन करना है। बिजली का सामान, दवाएँ, सौन्दर्य प्रसाधन, यन्त्र, वाहन, खाद्य-सामग्री, घरेलू सामान से लेकर फोटोग्राफी, बागवानी, नौकरी आदि की घरेलू सेवाओं तक का क्षेत्र इसके अन्तर्गत है। 'व्हिच' के हर अंक में नई चीजों की वैज्ञानिक और तकनीकी जाँच के विवरण छपते हैं। हर वस्तु के नाम, पते, मार्के और कीमत सहित स्पष्ट, वे लाग राय प्रकाशित की जाती है।

यह है 'अपनी सहायता आप' का एक नमूना। ऐसी संस्थाएँ एक ओर नागरिकों को सुरक्षा की गारंटी देती हैं तो दूसरी ओर वस्तुओं की घटिया किस्मों पर और दुकानदारों के अनुचित मुनाफे पर रोक लगाती हैं।

जापान का उदाहरण भी लें। द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान की आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न हो गई थी। सामान्य जन-जीवन नष्ट प्रायः हो गया था। महँगाई के साथ दैनिक उपयोग की चीजों एवं खाद्य वस्तुओं का अभाव, गृहिणियों के सम्मुख भयावह प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ा हो गया था। तब उन्होंने क्या किया ? मुहल्ले टोले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की निरर्थक चर्चा को गृहणियों ने सार्थक चर्चा में बदला। मुहल्लों से बस्तियों, नगरों और फिर देशव्यापी स्तर पर गृहिणी संगठन सामने आया।

इस संगठन ने चढ़ती कीमतों, भ्रष्टाचार, मिलावट, चीजों के स्तरों में गिरावट आदि युद्धोत्तर सामाजिक समस्याओं से निबटना शुरू किया—आन्दोलन, धरना, बहिष्कार, घेराव आदि सभी साधनों और तरीकों से। गृहिणी संगठन की सूझ-बूझ ने कई जटिल समस्याओं का हल प्रस्तुत कर सरकार का काम आसान कर दिया।

इस सारे विवेचन का तात्पर्य यह है कि यदि जनता चाहे तो बिना सरकारी सहायता के अपने बलबूते पर देश में व्याप्त कालाबाजार, भ्रष्टाचार, मिलावट आदि को सुदृढ़ सामाजिक संगठनों द्वारा मिटा सकती है। इसके लिये चाहिए केवल दृढ़ निश्चय, सेवा भावना, अदम्य उत्साह, और सच्ची लगन।

सफल जन-आन्दोलन की पृष्ठभूमि

अवांछनीयताओं को निरस्त करने के लिए हथियार उठाना और रक्तपात करना ही एकमात्र उपाय नहीं है। जैसा कि लम्बे समय से चलती आ रही सामन्ती मान्यता ने लोगों को सिखाया है। युद्ध और शक्ति की भी कई अनिवार्य प्रसंगों पर आवश्यकता हो सकती है। इसलिए उस प्रयोग को सर्वत्र निरस्त तो नहीं किया जा सकता किन्तु यह भूल नहीं जाना चाहिए कि संगठित प्रतिरोध का अहिंसक साथ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसमें अवांछनीयताओं की जड़ें सुखा देने की क्षमता है जबकि कुल्हाड़ी के बल पर मात्र टहनियाँ ही कटती हैं और उनकी फिर से अंकुरित होने की पूरी-पूरी संभावना रहती है।

युद्ध कभी भी अत्यंतिक समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके हैं, उनके द्वारा मात्र आक्रान्ता से अधिक शक्ति होने पर पीछे धकेल देने का ही सामयिक उद्देश्य सधा है। युद्धों में नीति न्याय ही जीते, यह आवश्यक नहीं। शक्ति संतुलन जिसके भी पक्ष में हो, वही जीतेगा। देवासुर संग्राम में अनेक बार असुर भी जीते हैं और पराजित देवताओं ने जान बचाने के लिए छिपने वाले खाई-खंदक खोजे हैं। ऐसी दशा में विश्वासपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि अनीति को शस्त्र बल पर परास्त किया ही जा सकेगा। न्याय पक्ष की आक्रोश अभिव्यक्ति होती है और आक्रान्ता के उत्साह पर अंकुश लगता है, इतनी सचाई स्वीकारते—सैद्धान्तिक समर्थन उपलब्ध करते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि पीड़ित पक्ष समर्थ सत्ताधारियों को परास्त कर ही सकेगा।

ऐसी दशा में अधिक सरल, सुरक्षित और सफल उपाय जनसाधारण के लिए एक ही रह जाता है कि संगठित विरोध की व्यवस्था बनाई जाय। असहयोग का मार्ग अपनाया जाय। अनीति को अस्वीकार करने पर एकाकी व्यक्ति को अधिक दबाव सहन करना पड़ सकता है, पर यदि प्रतिरोध संगठित हो तो आक्रामक का दबाव बिखर जाता है और उसे सहन करना बहुत भारी नहीं पड़ता। साथियों को देखकर हिम्मत बढ़ती है, हौंसले बुलन्द होते हैं। ऐसे वातावरण में दमन चक्र का सामना भी कर लिया जाता है। अनेकों को गुप्त प्रकार से सहानुभूति मिलते रहने से भी पीड़ित पक्ष को राहत मिलती है। जबकि शस्त्र संघर्ष को तो बलिष्ठ द्वारा दुर्बल का पूरी तरह सफाया हो जाने जैसी सम्भावना भी सामने रहती है।

अनौचित्य के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध करने का अधिकार मनुष्य के मौलिक अधिकारों में सम्मिलित है। उसका दमन भी सीमित ही होता है। सत्ताधीशों को निर्भय दमन करने को छूट पाने का बहाना तब मिलता है जब आन्दोलनकारियों को हिंसारत सिद्ध किया जा सके। इसलिए संगठित प्रतिरोधों को यदि व्यापक और सफल बनाना हो तो उनके नियोजनकर्ताओं को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उत्तेजनात्मक आवेश हिंसात्मक प्रतिरोध के स्तर तक न पहुँचे। अन्यथा दमन में तेजी आ जाने पर जनउत्साह की कमर टूट सकती है। आन्दोलनकारियों में भगदड़ मच सकती है, फूट पड़ सकती है।

न्याय पक्ष को मुखरित होने का अवसर मिले तो उससे विचारशील वर्ग की सहानुभूति उभरती है। नीति और अनीति की लाभ-हानियाँ समझने और उसमें से उचित के चुनने से उपयुक्त लोकमानस बनता है। अन्यथा जैसा कुछ भी परम्परागत चल रहा है, उसी को ईश्वरेच्छा, भाग्य विधान, प्रथा प्रचलन मानकर गले उतारते रहने का स्वभाव बना—अभ्यास पड़ा रहता है। यह आन्दोलनों की ही महिमा है, जिससे अनौचित्य को निरस्त करने और औचित्य अपनाने का साहसिक आवेश उभरता है।

एकाकी व्यक्ति अपने को असहाय अनुभव करता है और जैसा कुछ सामने है, उसी को रोते-कलपते सहन करता रहता है। सामूहिक आन्दोलनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके भागीदारों में से प्रत्येक को अपने साथ समूह शक्ति के होने का आभास मिलता और यह विश्वास जमता है कि मिल-जुलकर विशाल जनसमुदाय द्वारा किये जाने जैसे कठिन काम भी सरल बनते रहते हैं तो फिर कुप्रचलनों के विरोध में खड़ी की गई बगावत क्यों सफल न होगी आत्मविश्वास सबसे बड़ा बल है। आशा की प्रचंड शक्ति का सभी को ज्ञान है।

सामूहिक प्रयास कितने जोशीले, सुखद और सफल अनुभव होते हैं, इसे मेले-ठेलों पर निकलने वाले-तीर्थ परिक्रमा करने वाले तथा पर्वतारोहण के लिए कटिबद्ध होने वाले तक जानते हैं। सेना में भर्ती होने वालों को अन्यान्य लाभों के आन्तरिक सहजीवन के रसास्वादन का भी आकर्षण होता है। यहाँ तक कि जेल जीवन के अभ्यस्त बन्दी भी बाहर निकलने पर उदास रहते और जिस-तिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार उसी अभ्यस्त ढर्रे में जा घुसने का अवसर प्राप्त कर लेते हैं। मधुमक्खियों के छत्ते, चीटियाँ और दीमकों के बिल, टिड्डियों के कोंतर इस बात के प्रमाण हैं कि यह छोटे जीव-जन्तु तक सामूहिकता की अनुभूति करते हुए किस प्रकार परस्पर मिल-जुलकर रहते हैं। हिरनों के झुण्ड-पक्षियों के घोंसले ही नहीं, साधुओं के आश्रम आरण्यक तक सहजीवन का आनन्द लाभ लेते हैं। सामूहिक आन्दोलनों की भागीदारी भी हर किसी को स्वभावतः अच्छी लगती है। मेले-ठेलों में दौड़ने की खर्चीली और असुविधाजनक प्रक्रिया इसी आकर्षण से प्रेरित होकर अपनाई जाती है। फिर जिन कार्यों में व्यक्तिगत कठिनाइयों का समाधान, सामूहिक हित साधन तथा उज्ज्वल भविष्य का विश्वास दृष्टिगोचर होता है, उसमें सम्मिलित होने की उमंग जाग पड़े तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

निहित स्वार्थ अपनी दुरभिसंधियों को कार्यान्वित करने के लिए मूढ़ मान्यतायें फैलाने से लेकर भय और आतंक की साज-सज्जा बनाने तक के अनेक उपायों का अवलम्बन करते रहते हैं। आकर्षक प्रलोभन देकर बलिष्ठ साथियों की मण्डली खड़ी करते हैं। तस्करी, डकैती के कुचक्र ऐसे ही उपाय अपनाकर सफल होते रहते हैं। फिर भी उनमें एक मौलिक दुर्बलता बनी रहती है, जो हर अनुचित कृत्य के साथ जुड़ी रहती है। वह यह है कि अनीति सहन कराने की स्थिति में ही वे पनपते और फलते-फूलते हैं। जहाँ सृजनात्मक सतर्कता, आलोचना और विरोध, इन्कार का माहौल बनता है, वहाँ उनके पैर उखड़ने लगते हैं। जागृत लोकमानस के सम्मुख अवांछनीयताओं को मानते ही बनता है, भले ही वे पिछले दिनों कितनी ही हेकड़ी दिखाती और लूटमार मचाती हों। छोटे से दीप के जलते ही घर में एक बुढ़िया खाँसने लगे, बच्चे रोने लगें तो भी घुसे हुए बलिष्ठ चोरों को भागने की सूझती है। एक पहरेदार को घूमता देखकर उचक्कों का गिरोह उस क्षेत्र से हटकर अन्यत्र घात लगाने की योजना बनाता है। यह मानवीय मनोविज्ञान छोटे-मोटे आन्दोलनों को भी आशातीत सफलता दिलाता और सत्ताधीशों को झुक कर समझौता करने के लिए विवश करता रहता है।

चित्र-विचित्र फैशनों से लेकर नशेबाजों जैसे दुर्व्यसनों तक की अलंकारिक कुप्रथाएँ छूत की बीमारी की तरह एक से दूसरे पर हमला बोलती और देखते-देखते अमर बेल की तरह इस डाली से उस डाली पर फैलती अपनी पकड़ मजबूत करती देखी जाती हैं। इतने पर भी वह तथ्य अपने स्थान पर चट्टान की तरह अटल है कि यदि उनके विरोध में जीवन्त आन्दोलन उठ खड़े हों तो उन बेतुकेपने में लिप्त लोगों की धुकधुकी चलने लगती है और उन्हें चाल बदलने में भी देर नहीं लगती है। चुस्त पोशाक कुछ दिन पूर्व स्कूली-लड़कियों के ऊपर भूतोन्माद की तरह चढ़ी थी। पर जब उसकी हानियों और भर्त्सनाओं का माहौल बना तो एकाध वर्ष के भीतर ही गधे के सींग बनकर गायब हो गई। हिप्पीकट बाल रखने वाले लड़के भी आम समझदारों के तेवर बदले देखते हैं तो नाई की दुकानों पर उस जंजाल का कतर व्यौंत करने की भीड़ लगाये रहते हैं। यह वे संकेत हैं जिनके आधार पर यह समझा जा सकता है कि कुप्रचलनों को ही नहीं अनीति के पक्षधरों को भी अपने कुचक्रों को समय बदलते ही समेटना पड़ता है। 'चोर के पैर नहीं होते' वाली उक्ति निरर्थक नहीं है, उसमें बहुत कुछ दम-खम है।

जैसों के साथ तैसा बरतना आवश्यक नहीं

जिस समाज-समुदाय के साथ हमारा सम्पर्क इच्छा या अनिच्छापूर्वक बनता रहता है, उसमें भले-बुरे सभी प्रकार के लोग होते हैं। वे सभी अपने-अपने ढंग से अपना-अपना प्रभाव छोड़ते हैं। इसमें कुछ ग्रहण करने योग्य होते हैं, कुछ त्यागने के योग्य। सभी से पूर्णरूपेण बच सकना अथवा घनिष्ठ बन सकना संभव नहीं। बिना सम्पर्क के एकाकी बने रहना भी संभव नहीं। इसलिये जो अवांछनीय है, उससे बचने के लिए कोई न कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए, जिससे आत्मरक्षा बन पड़े।

सर्वथा सम्पर्कविहीन जीवन मनुष्य के लिये संभव नहीं। इसलिये प्रतिकूलताओं से आत्म-रक्षा करने की व्यवस्था बनाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। सर्दी के दिनों में ठण्डक और गर्मी के दिनों में उष्णता का वातावरण रहना स्वाभाविक है। मौसम बदल देना अपने हाथ की बात नहीं। वह तो अपने समय पर, अपने क्रम से आता-जाता ही रहेगा। संभव इतना ही है कि प्रतिकूल मौसम में आत्म-रक्षा का उपाय ढूँढ़ने और अपनाने का प्रयत्न किया जाय।

सर्दी के दिनों धूप सेंकने, आग तापने, गरम कपड़े पहनने जैसे उपाय अपनाये जाते हैं और उनके सहारे पूरा न सही, आधा-अधूरा बचना तो हो ही जाता है। गर्मी के दिनों छाता लगाने, छतों के नीचे बैठने, हल्के कपड़े पहनने, पंखे का सहारा लेने जैसे उपाय ढूँढ़े जाते हैं। पानी पीने की मात्रा बढ़ा दी जाती है। इस प्रकार के उपायों से गर्मी के प्रभाव से किसी न किसी सीमा तक बचा ही जा सकता है।

रास्ते में बिखरे काँटों और कंकड़ों को बीनकर रास्ता साफ-सुथरा बना लेना कठिन है। छोटे रास्ते की सफाई के बारे में तो कुछ सोचा भी जा सकता है, पर जहाँ मंजिल लम्बी है और रास्ता बेतुका है, वहाँ सफाई में जुटा जाय, तो फिर मंजिल पार करने के लिए समय ही कहाँ बचे ? ऐसे असमंजस सामने आने पर सरल उपाय यही है कि पैरों में जूते पहन लिये जायें, तो काँटे-कंकड़ों को दबाते-कुचलते हुए अपनी राह चलते रहा जा सकता है। सभी सड़कें साफ-सुथरी नहीं होतीं। उन्हें पार करने वाले अपने वाहन को इस प्रकार सँभालते हैं कि रास्ते में आने वाली कठिनाइयों से निपटते हुए अपनी राह चल सकना सम्भव हो सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सज्जनों के साथ सम्पर्क बना रह सके, ऐसे अवसरों की तलाश करते रहने पर कभी न कभी वैसा सुयोग भी मिलता रहता है। ऐसे सम्पर्क थोड़े समय के मिलें तो भी उससे कुछ न कुछ ऐसा जाना जा सकता है, जो आगे चलकर काम आये।

सज्जनों का साथ न मिले, तो कष्ट पीड़ितों की सहायता करने के अवसर खोजे जायँ, जितने समय व्यस्तता रहती है, उतने समय का सदुपयोग कर लिया जाय, इसे भी एक प्रकार का सौभाग्य ही मानना चाहिए। दुष्टजनों का दुर्व्यवहार सहना पड़े, तो क्रोध आना और दुःख होना स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति का सामना करने के लिये अपना मन उस चिकित्सक जैसा बना लेना चाहिए, जिन्हें गंदगी में सने, बेहूदी-बकझक करने वाले और अपशब्दों का प्रयोग करने वाले बालकों, बीमारों से पाला पड़ता है। वे समझते हैं यह इसकी विवशता है। मस्तिष्क ठीक तरह काम न करने के कारण ही उसे अंण्ट-शण्ट बकना पड़ता है। यदि उनकी मानसिक स्थिति सही रही होती, तो वे भी सभ्यजनों जैसा व्यवहार करते। बुद्धिमान चिकित्सक रोग को भगाने और रोगी को बचाने का प्रयत्न करते हैं। विक्षिप्त रोगियों से भी उनको द्वेष नहीं होता। उल्टी-दस्त कर बैठने वाले रोगी की भी वे सफाई का इन्तजाम करते हैं, उसे अस्पताल से बाहर निकाल देने जैसा आक्रोश व्यक्त नहीं करते।

अवांछनीय जहाँ भी दीख पड़े, वहीं लड़ाई-झगड़ा आरम्भ कर दिया जाय, यह आवश्यक नहीं। असहयोग, उपेक्षा आदि के सहारे भी चला जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर बच्चे द्वारा की जाने वाली उद्दण्डता के अवसर पर धमका देने भर से भी काम चल सकता है। उन्हें इतना कठोर नहीं होना चाहिए, जिसके लिये पीछे पछताना पड़े, दूसरे विवेक खोयें तो इसका अर्थ यह नहीं कि हमें भी अपनी बुद्धिमत्ता खो देनी चाहिए। दण्ड देने की अपेक्षा प्रयत्न इतना ही पर्याप्त है कि उद्दण्डों को डरा देने की धमकी की कुशल व्यवस्था करके ही काम चलाया जाय। ठगों के साथ स्वयं ठगी की जाय, धूर्तों के साथ स्वयं भी धूर्तता करने की योजना बनायी जाय, यह उचित नहीं। नीतिमत्ता एवं शालीनता जैसे आधार अपनाये जाने पर भी दुर्जनों से निपटा जा सकता है। सज्जनों से तो निकट रहकर ही लाभ उठाना चाहिए।

अहिंसक प्रतिरोध एक आवश्यक अस्त्र

संसार जिस गति से भौतिक प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है, उसी अनुपात में समाज में अपराधों की, अनीति, अत्याचारों की भी वृद्धि हो रही है। अछूता कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें भ्रष्टाचार को प्रवेश नहीं मिल पाया हो। शासन, राजनीति, धर्म हर क्षेत्र में असामाजिक तत्त्वों का बाहुल्य होता जा रहा है। चोरी, डकैती, हत्या जैसे गम्भीर अपराधों में होने वाली निरन्तर बढ़ोत्तरी को देखकर लगता है कि सुरक्षा का दायित्व सँभालने वालों में भी कहीं-न-कहीं ढील-पोल है जिसके रहते अपराधी तत्त्वों को अपराध कर्म के लिए प्रश्रय मिलता है।

इन प्रत्यक्ष अपराधों से अधिक उन परोक्ष अपराधों की संख्या भी कम नहीं है, जो नित्य होते हैं पर उनमें से थोड़े से ही पकड़ में आ पाते हैं। धोखाधड़ी, जालसाजी, मिलावट, तस्करी, बेईमानी आदि कितने ही प्रकार के अपराध ऐसे हैं, जिनसे व्यक्ति और समाज को अगणित प्रकार से हानि उठानी पड़ती है। इनमें से थोड़े-से ही प्रकाश में आते हैं अधिकांश का पता भी नहीं चल पाता।

कुरीतियों में दहेज का जो बर्बर स्वरूप इन दिनों देखने को मिल रहा है, उसके समक्ष सभी अपराध फीके पड़ गये हैं। दहेज के लिए सफेदपोश अपराधियों द्वारा वधुओं को जलाने, मारने जैसे अमानवीय कुकृत्यों को देखकर तो वे अपराधी कहीं अधिक सभ्य, अधिक अच्छे जान पड़ते हैं जो पैसे के लिए सीधे वार करते हैं, लूटपाट करते-हत्या करते चलते बढ़ते हैं। बफादारी का लबादा ओढ़कर पीठ पीछे चाकू नहीं भोंकते। सुरक्षा एवं कानून की सभी व्यवस्थाएँ एक किनारे रखी जा रही हैं और ऐसे अपराधों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। मानवीय गरिमा के अवमूल्यन की यह पराकाष्ठा है।

बढ़ते अपराधों, भ्रष्टाचारों एवं कुरीतियों की रोकथाम के लिए कानून एवं सुरक्षा तन्त्र अपने स्तर पर प्रयत्नशील हैं पर उनकी पकड़ एवं पहुँच सीमित क्षेत्र तक है। पकड़ में आने तथा अपराध के प्रमाणित होने पर भी अपराधी दण्डित होंगे इसकी कोई गारण्टी नहीं है। कारण कि सुरक्षातंत्र से पूर्व साँठगाँठ होने पर वे आसानी से छूट जाते हैं। कड़ी व्यवस्था होने पर भी सर्वत्र तो ऐसी स्थिति नहीं है कि पुलिस की नजरों के समक्ष अपराध कृत्य होते हों। अगणित प्रकार के अपराध समाज में संव्याप्त भ्रष्टाचारों तथा कुप्रचलनों की रोकथाम में एकाकी कानून व्यवस्था तथा शासन तन्त्र सफल नहीं हो सकते। ऐसी स्थिति में उपाय क्या हो ? विस्फोटक बनती इन परिस्थितियों को क्या मूकदर्शक बनकर देखते रहा जाय अथवा कुछ कारगर कदम उठा सकना सम्भव है। गम्भीरता से विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जनमानस यदि उनकी रोकथाम के लिए कमर कस ले तो कोई कारण नहीं कि सफलता न मिले।

विरोध कई प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। एक तरीका हिंसात्मक है जिसमें 'जैसे को तैसा' की नीति अपनाकर संघर्ष का रास्ता अपनाया जाता है। अन्यायी तथा अत्याचारी को उसके कृत्यों से रोका जाता है। सफलता मिलेगी ही, यह सुनिश्चित नहीं। कारण कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विपक्षी यदि सबल हुआ तो अधिक तीव्रता से प्रहार करेगा। यदि सफलता मिल भी जाती है तो भी एक खतरा-सा बना रहता है कि अवसर मिलते ही अत्याचारी हरकतों से बाज नहीं आयेगा, अधिक तैयारी से प्रतिपक्षी पर आक्रमण करेगा। प्रत्यक्ष अनुरोधों में जहाँ अनिवार्य हो वहाँ आपत्ति धर्म के रूप में वैसे कदम भी उठाये जा सकते हैं। क्योंकि हिंसा अथवा व्यभिचार पर उतारू व्यक्ति को बलपूर्वक न रोका गया तो पीड़ित को भारी क्षति उठानी पड़ेगी। पर वह सदा एक सामान्य नियम नहीं बन सकता। हिंसा का उत्तर हिंसा की भाषा में देने पर हिंसात्मक वातावरण तैयार होता है, जिससे सर्वत्र भय तथा असुरक्षा की भावना बढ़ती है। साथ ही लोगों के भीतर हिंसात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। जितना दण्ड कानून द्वारा निर्धारित है, दण्डित करने की वह व्यवस्था शासन तंत्र तथा न्याय तंत्र बनाये। पर वह अधिकार अपने हाथों में लेने का कोई भी व्यक्ति प्रयास न करे। कानून अपने हाथों में लेने का अर्थ होगा—अनुशासन एवं मर्यादा का सर्वनाश।

परोक्ष अपराधों, भ्रष्टाचारों तथा कुप्रचलनों की रोकथाम के लिए विरोध का सौम्य तरीका भी हो सकता है। सही अर्थों में अधिक कारगर, अधिक सफल वे ही तरीके हो सकते हैं जिनसे स्थायी समाधान निकलता हो। अनाचारों एवं भ्रष्टाचारों में आलिप्त व्यक्ति अपनी राह बदल कर सही का अनुगमन करने लगे, सार्थकता उन्हीं प्रयासों की है। ऐसे प्रयासों में असहयोग एवं सत्याग्रह का तरीका सर्वोत्तम है। समय-समय पर समर्थ व्यक्तियों द्वारा इन अहिंसक हथियारों का प्रयोग अपने समय की विकृतियों से जूझने एवं उनके उन्मूलन के लिए होता रहा है। भगवान बुद्ध अहिंसक क्रान्ति के जनक थे जिन्होंने बिना किसी हथियार का प्रयोग किये अपने समय की अवांछनीय प्रवृत्तियों तथा विकृतियों के उन्मूलन में सफलता पायी। अगणित दिग्भ्रान्त तथा अनाचार में लिप्त व्यक्तियों ने दिशा बदली और सदा-सर्वदा के लिए सद्मार्ग का अवलम्बन लिया। ईसा, महावीर भी उसी परम्परा के अनुयायी थे। अभी कल परसों सत्याग्रह तथा असहयोग की प्रचण्ड शक्ति का परिचय मिल चुका है। सदियों से अँग्रेजी साम्राज्य की जड़ें गहराई तक जमी हुई थीं पर उसके उखड़ते तथा धराशायी होते देरी न लगी। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संगठित सत्याग्रहियों की सामूहिक आत्म शक्ति ने अँग्रेजों को भारत भूमि से भागने को विवश किया। व्यापक क्षेत्र में फैली अवांछनीयता, अराजकता के उन्मूलन में आज भी वह सौम्य किन्तु समर्थ प्रयोग सफल हो सकता है।

असहयोग का अर्थ है—नीतिमत्ता का, मानवीय गरिमा का विरोध करने वाले अथवा उन पर प्रहार करने वाले किसी भी क्रियाकलाप व प्रवृत्ति का सहयोग न करने के लिए कटिबद्ध होना। नीति एवं सामाजिक मर्यादा विरोधी प्रवाहों में कभी भी न बहने का दृढ़ संकल्प। सत्याग्रह में एक कदम और भी आगे उठाना पड़ता है। सत्याग्रह से अभिप्राय है—सत्य के प्रति आग्रह। सत्य के प्रति अगाध आस्था व्यक्त करना तथा जहाँ कहीं भी उस पर कुठाराघात होता हो विरोध के लिए मोर्चा लेना। विरोध की बात इन दोनों के समन्वय सहयोग पर बनती है।

विरोध के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं बाहर की अपेक्षा भीतर से अधिक समर्थ हो। शरीर बल की तुलना में उसकी मनःशक्ति तथा आत्मशक्ति अधिक सामर्थ्यवान हो। अहिंसक संघर्ष संकल्पबल से ही किया जाता है। वह मान्यता पूर्णतया भ्रान्तिपूर्ण है कि असहयोग तथा सत्याग्रह के सौम्य तरीके कमजोरों के हैं। यथार्थता इसके विपरीत है। अधिक समर्थ व्यक्ति ही ये मार्ग अपना सकता है। बन्दूक की घोड़ी दबाकर, बम का विस्फोट कराकर तो एक कमजोर व्यक्ति अथवा बच्चा भी ढेरों की जान ले सकता है पर ऐसे वीर कम होंगे जो स्वयं का जोखिम उठाकर आतंक, अत्याचार का विरोध कर सकें। बुद्ध की, गाँधी की, ईसा की शक्ति चंगेज, नादिर, तैमूर, हिटलर से लाख गुनी अधिक थी।

अपने युग में वे व्यक्ति अधिक समर्थ और सफल रहे हैं जिन्होंने समय की अवांछनीयताओं से लड़ने के लिए अहिंसात्मक संघर्ष का मार्ग अपनाया। समर्थ एवं बुद्धिमान होने के अतिरिक्त वे मानवता के महान् पुजारी थे। ईश्वर एवं आत्मा की सत्ता में उनकी प्रगाढ़ आस्था रहती है। अहिंसात्मक संघर्ष के मूर्धन्य समर्थक बुद्ध, पार्श्वनाथ, महावीर, लाओत्से, ईसामसीह, टारसर के पाल, हीटर बाल्डो, बाइक्लिफ, एसीसी के फ्रेंसिस, हुटन, मेनोसाइसन्स जार्ज फाक्स, विलियम पेन, थोरो, टॉलस्टाय तथा आधुनिक युग के ऋषि गाँधी आदि सभी ने सफल अभियानों का संचालन किया है। अहिंसक मार्ग वही अपना सकता है, जो समाज के पतन-प्रवाह में बहने वाले सामान्य व्यक्तियों की तुलना में भिन्न हो, अधिक सबल हो।

इस मार्ग पर चलने वाले का चिन्तन एवं क्रिया-कलाप भिन्न स्तर का होता है। उसे यह दृढ़ निश्चय करना पड़ता है कि जो सभ्यता मानवीय गरिमा से बिमुख होकर नर पामरों को उत्पन्न करती, समाज को पतनोन्मुखी बनाती उसका हम कभी सहयोग न करेंगे। जो समाज अथवा वर्ग अधिकारों की सत्ताओं को उच्छृंखल छोड़कर आश्रितों पर शोषण, अनाचार एवं बलात्कार करते हैं, उनका कभी सहयोग न करेंगे। जो भी प्रवृत्ति अथवा गतिविधि मानवीय बन्धुत्व की भावना को तोड़ती है, मानव समाज में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आलस्य, स्वार्थपरता, अपराध एवं व्यभिचार को जन्म देती है, उसका कभी भी समर्थन न करेंगे, जिनसे मानव-मानव के बीच, नर-नारी के बीच,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वर्ग-वर्ग के बीच, समाज-समाज के बीच, सम्प्रदाय-सम्प्रदाय के बीच भेदभाव पनपता तथा मतभेद बढ़ता हो, एक के द्वारा दूसरे पर अत्याचार किया जाता हो ऐसे किसी भी प्रचलन अथवा मान्यता का प्रदर्शन न करेंगे चाहे उनके सिद्धान्त कितने भी प्राचीन अथवा तर्कपूर्ण क्यों न हों? नीति-निष्ठा, चरित्र-निष्ठा तथा समाज-निष्ठा से विरत समर्थता, बुद्धिमत्ता अथवा सम्पन्नता से युक्त विभूतिवानों की कभी भी प्रशंसा न करेंगे।

इस संकल्प बृद्ध के अतिरिक्त उल्लेखनीय बात यह भी है कि इस मार्ग का अनुगमन करने वाले व्यक्ति को कुछ विशेष तैयारी भी करनी पड़ती हैं। हिंसात्मक संघर्ष, युद्ध तो बाहुबल एवं हथियारों से लड़े जाते हैं पर अहिंसक संघर्षों में लोहे के शस्त्र तथा शरीर बल काम नहीं आते। इस शांति संघर्ष में जो शस्त्र काम आते हैं वे हैं—आचार के, प्रेम एवं करुणा के। अहिंसक लड़ाई वही व्यक्ति लड़ सकता है जो चरित्र का धनी हो। जिसके भीतर आदर्शों के प्रति गहरी निष्ठा हो। इस क्षेत्र में शरीर बल, बुद्धि बल का उतना महत्व नहीं जितना कि सदाचार के बल का है। सचमुच ही संसार में सदाचारी व्यक्तियों का बाहुल्य रहा हो तो आज जैसी विस्फोटक परिस्थितियाँ नहीं बनतीं। एकांगी विद्वता एवं बाहुबल से कभी भी कुछ विशेष लाभ मानव जाति को नहीं हो सका है। रावण के विषय में कहा जाता है कि वह शास्त्रों का प्रकाण्ड विद्वान, राजनीति शास्त्र का धुरंधर पंडित तथा अपने युग का महान योद्धा था। पर एक ही कमी थी सदाचारी न था, अत्याचारी और नृशंस था। पर उसकी शक्ति एवं विद्वता किसी के काम न आ सकी, स्वयं उसका भी पतन हुआ। रोम का प्रख्यात शासक नीरो प्रकाण्ड दर्शन शास्त्री तथा अनेकों विषयों का विद्वान था पर हृदय का उतना ही निष्ठुर और आचार से रहित था। अपने समय में उसने जो कहर ढाया उसकी गवाही इतिहास के पन्ने देते हैं। हिटलर, मुसोलिनी भी ऐसे ही उदाहरण हैं।

इसके विपरीत ऐसे महापुरुष भी हुए हैं जो युगों-युगों तक पूजे जाते रहेंगे। बुद्ध, ईसा, महावीर, तिलक, गाँधी, टालसटाय, मेकस्विनी, लूथरकिंग, कागावा अपनी विद्वता अथवा प्रतिभा के कारण श्रद्धास्पद नहीं हैं, वरन् अपनी करुणा, दया, प्रेम एवं अहिंसा तथा अन्य सद्गुणों के कारण हैं। संत तुकाराम, नरसिंह मेहता, समर्थ रामदास, तुलसीदास, सूरदास, कबीर, नानक, सदन कसाई, चेता चमार आदि संतों में से शायद ही किसी ने कभी किसी विद्यालय में शिक्षा पाई। पर आचार के धनी तथा मानवता के सजीव प्रतिमूर्ति होने के कारण अविस्मरणीय हैं। सचमुच ही वे पुरुष धन्य हैं, जो सदाचारी हैं आदर्शनिष्ठ हैं, तथा सद्भावना के धनी हैं।

अहिंसात्मक संघर्ष के मार्ग पर चलने वालों को अपने भीतर-बाहर मानवीय गरिमा को सुशोभित करने वाले गुणों को पैदा करना एवं सतत् बढ़ाना पड़ता है। ये ही अहिंसात्मक युद्ध के पैने शस्त्र हैं, जिनसे बार किया जाता है तथा प्रतिपक्षी की दुष्प्रवृत्तियों, कुचेष्टाओं को निष्फल बनाया जाता है। इन शस्त्रों के बिना अहिंसक युद्ध नहीं लड़ा जा सकता।

व्यापक क्षेत्र में फैले अगणित प्रकार की अवांछनीयताओं, भ्रष्टाचारों, अपराधों, कुरीतियों के उन्मूलन में अहिंसात्मक संघर्ष की तैयारी व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तरों पर की जा सकती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति, समाज, शासन एवं राजनीति में अभीष्ट प्रकार के सुधार करने में अधिक कारगर, अधिक सफल हो सकती है। जो मानवीय गरिमा एवं समाज की सुव्यवस्था के समर्थक सत्प्रवृत्तियों के पक्षधर हैं, उन्हें नव-निर्माण के लिए अहिंसात्मक संघर्ष की तैयारी करनी चाहिए।

अहिंसक प्रतिरोध सर्वोत्तम रणनीति

अहिंसात्मक संघर्ष का तरीका इसलिए अधिक उचित माना जाता है क्योंकि उसका परिणाम अधिक सुखद, स्थायी तथा हितकारी होता है। मृनःशास्त्र का यह सुविदित सिद्धान्त है कि क्रोध, घृणा, भय आदि मानसिक आवेशों में मनुष्य की शक्ति का बड़ा ह्रास होता है। घृणा से शरीर ही नहीं मंन की कल्पना एवं इच्छा शक्ति तथा बुद्धि की विचारणा शक्ति मारी जाती है। हिंसात्मक संघर्ष में क्रोध, घृणा तथा भय के आवेग चरम सीमा तक बढ़ जाते हैं जो संघर्ष के बाद भी बने रहते हैं। सामयिक रूप से विवशतावश पराजित पक्ष विजयी की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने के बाद भी अपमान का बदला लेने का अवसर ढूँढ़ता रहता है। उस प्रतिशोध की भावना में हितैषी, मित्र, कुटुम्बी सभी शामिल हो जाते हैं। कभी-कभी यह विद्वेष वंश परम्परागत तथा साम्प्रदायिक हो जाता है तथा शताब्दियों तक बना रहता है, जिसमें अगणित व्यक्तियों की आहुति चढ़ती है। प्रतिशोध से पुनः प्रतिशोध की भावना पैदा होती है। वह बुराई कई गुनी होकर विस्तृत होती फूलती-फलती जाती है। युद्धोन्माद में रत, सम्प्रदायवाद के समर्थक हिंसावादी प्रतिशोध एवं रोष के विस्तृत दूरगामी कुपरिणामों से परिचित नहीं होते। फलतः समय-समय पर उग्र रूप में संघर्ष भड़कते रहते हैं। संघर्ष का अन्त चाहे किसी भी रूप में क्यों न हुआ हो, वह स्थायी शान्ति एवं सुरक्षा लाने में सदा असमर्थ ही रहा है।

शक्ति तो अहिंसक भी लगाता है पर वह घृणा, आवेश अथवा भय जैसे आवेशों से प्रेरित नहीं होती है। विपक्षी के हित की कामना भी जुड़ी होने से दुर्भाव पनपने का अवसर नहीं मिलता। शक्ति के आवेग की दिशा रचनात्मक होती है। वह व्यर्थ नहीं जाने पाती। उसका प्रभाव एवं परिणाम भले देरी से देखने को मिले पर होगा स्थायी और सुखद ही। अहिंसक प्रतिरोध में दोनों पक्षों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तियों को सन्तोषजनक, रचनात्मक कार्य-क्षेत्र मिल जाता है। अन्ततः दोनों की शक्तिधारा का मिल जाना तथा एक साथ नयी दिशा में प्रवाहित हो जाना आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में एक उदात्तीकरण की प्रक्रिया है जिससे शक्ति को कई गुनी हो जाने का अवसर मिलता है।

विद्वान् हाकिंग अपनी पुस्तक 'ह्यूमन नेचर एण्ड इट्स रिमेकिंग' में लिखते हैं कि मनुष्य में लड़ाकूपन की प्रवृत्ति स्वभावतः है जिसका प्रारम्भिक स्वरूप है 'प्रतिपक्षी के संपूर्ण नाश की इच्छा।' विकास की ओर अग्रसर होने पर वह इच्छा परिवर्तित हो गयी तथा समूल नाश की अपेक्षा 'मैं प्रतिपक्षी से प्रतिशोध चाहता हूँ' की भावना जन्मी। प्रतिशोध भावना से ही शत्रु को हराकर उसे अपमानित करके अहं प्रेरित आनन्द लेने की वृत्ति पैदा हुयी। जिससे पराजित, पीड़ित पक्ष की तीव्र घृणा एक खतरा बन जाती है। आज सारी दुनिया इसी प्रकार के प्रतिशोध की अग्नि ज्वाला में जल रही है, जिसकी चिन्गारी किसी भी दिन महाविनाश के रूप में प्रकट हो सकती है। ऐसी स्थिति में अहिंसात्मक तरीका ही सुधार के लिए उपयोगी हो सकता है, जिसमें प्रतिशोध की नहीं सहकार की, विनाश की नहीं विकास की भावना पनपती एवं बढ़ती है।

हिंसात्मक युद्ध में भावावेश तथा आक्रामक वृत्ति का संयम साहस से होता है। अहिंसात्मक संघर्ष में भी साहस की जरूरत पड़ती है पर वह अधिक ऊँचे स्तर की नैतिक होती है। यह सच है कि मानव जाति को अहिंसात्मक संघर्ष की अपेक्षा हिंसात्मक संघर्ष का शिक्षण-प्रशिक्षण अधिक मिला है पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसके उस अभ्यास को बदला न जा सके। जो अधिक समर्थ अधिक विचारशील है, वे अहिंसक प्रतिरोध की शक्ति एवं सत्परिणाम को समझ सकते हैं। मनोवैज्ञानिक पावलोव ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया है कि प्रेरक कारणों के बदल जाने से मन की प्रवृत्ति भी बदल जाती है। प्रवृत्तियाँ बदली ही नहीं नयी पैदा भी की जा सकती हैं। 'हिंसात्मक युद्ध भी विशेष प्रकार की परिस्थितियों में पैदा हुयी एक प्रवृत्ति है।' ठीक इसी प्रकार सहिष्णुता एवं सद्भावना भी प्रकार उत्कृष्ट प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। विशिष्ट प्रकार की प्रेरक शक्ति उत्पन्न करके दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियों में फेर-बदल करना संभव है। संभव है हिंसक प्रवृत्ति को बदलने तथा अहिंसक को पैदा करने में कुछ समय लग जाय पर वह असंभव नहीं। आदर्शवादिता-नैतिकता तथा चरित्रनिष्ठा का अनुशासन इस प्रयोग में जुड़ा रहना अनिवार्य है। इस उत्कृष्टतावादी अनुशासन की शक्ति सर्वोच्च है।

विचारक टी० एच० प्रोक्टर का कहना है कि युद्धों से एक महत्त्वपूर्ण बात यह मालूम हुयी है कि सबसे गये बीते आदमी को भी अनुशासन के द्वारा एक अच्छा सैनिक बनाया जा सकता है। कोई कारण नहीं कि अनुशासन का यही प्रयोग अहिंसात्मक संघर्ष में सफल न हो सके।

नेपोलियन कहता था कि युद्ध की सफलता में पचहत्तर प्रतिशत भाग अनुशासन का होता है। फॉक का कथन है कि सेनाओं का मुख्य बल अनुशासन है। कूटनीतिज्ञ चाणक्य कहा करते थे कि "अनुशासन युक्त अभ्यास प्रकृति से भी अधिक शक्ति उत्पादक है।" अहिंसक प्रतिरोध में आत्मानुशासन की विशेष भूमिका होती है। जो अनुशासित नहीं रह सकता वह अहिंसा की लड़ाई नहीं लड़ सकता।

युद्ध में साहस और आत्मविश्वास का बड़ा महत्व होता है। युद्ध कला विशेषज्ञ वॉनडेर गोल्ट्ज का कथन है कि "शत्रु की सेनाओं को नष्ट करना इतना आवश्यक नहीं है जितना कि उनका साहस नष्ट कर देना। ज्यों ही तुम शत्रु को विश्वास दिला दो कि उसका लक्ष्य अब विफल हो गया, त्यों ही तुम्हारी विजय हो जायेगी", गोल्टज आगे कहता है कि "शत्रु पक्ष का पूर्ण विनाश करके कोई भी प्रतिपक्षी को नहीं हराता बल्कि उसकी विजय की आशा को विनष्ट करके हराता है।" संभवतः युद्धों के समय पर अफवाहें फैलाने के लिए विभिन्न देशों के कूटनीति तन्त्र इसीलिए सक्रिय होते हैं।

नेपोलियन, मार्शल डिसेक्से, जन मैकार्थर, हिटलर, जनरल सर एफ० मॉरिस, कैप्टेन बी० एच० लिडिलहार्ट आदि विश्वविख्यात युद्ध कला विशेषज्ञों का भी ऐसा ही कथन है। अहिंसात्मक संघर्षों का लक्ष्य भी आंशिक रूप से युद्ध के समान होता है। विरोधी के हिंसक आत्मविश्वास को नष्ट कर देना, उसकी इच्छा शक्ति को तोड़ देना, उसके साहस, उत्साह एवं आशा को भंग कर देना अहिंसा के पथिक का सबसे प्रमुख लक्ष्य होता है। पर यह होता एक महान उद्देश्य के लिए ही है। अहिंसात्मक प्रतिरोधी विरोधी के आत्मविश्वास एवं साहस को इसलिए तोड़ता है ताकि वह अपने गलत रास्ते से विमुख हो जाये, सही पथ पर आ जाये।

एक युद्ध विशेषज्ञ कहता है कि युद्ध जीतने के लिए तीन बातों पर ध्यान रखना चाहिए। प्रथम युद्ध में शत्रु के साहस तथा सैनिकों के अनुशासन एवं हिम्मत को तोड़ना चाहिए। द्वितीय शत्रु राष्ट्र की नीतियों पर आक्रमण करना चाहिए। तृतीय उसके सेनाध्यक्ष की योजना के विरुद्ध आक्रमण करना चाहिए। सैद्धान्तिक तौर पर अहिंसात्मक संघर्ष में भी ये ही नियम लागू होते हैं। सामूहिक अहिंसात्मक विरोध में शत्रु पक्ष की हिम्मत एवं मनोबल तो टूटता ही है पर प्रयोगकर्ताओं का साहस उसी अनुपात में बढ़ता है। स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहन करने के दृश्यों से लोगों की सहानुभूति भी उत्पन्न होती है। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के सत्याग्रह प्रयोगों में उसके अगणित उदाहरण देखे जा सकते हैं। यही है अहिंसा का तत्त्व दर्शन एवं रणनीति।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहिंसक प्रतिरोध की सफलता का रहस्य

जापान में एक विशेष प्रकार की कुश्ती होती है—जुजुत्सु, जिसमें विरोधी आक्रामक पर शरीरिक बल खर्च नहीं करता। उसे वार करने का अवसर देता है और अन्ततः उसे थका कर हरा देता है। विद्वान रिचर्ड वी० ग्रेग अपनी पुस्तक दी पावर ऑफ दी नॉनवायलेंस' में लिखते हैं कि अहिंसात्मक प्रतिरोध जुजुत्सु कुश्ती की तरह एक नैतिक द्वन्द्व युद्ध है। इसमें आक्रान्त व्यक्ति की अहिंसा, धैर्य संतुलन एवं सद्भाव की शक्ति से आक्रामक का नैतिक संतुलन बिगड़ जाता है। आक्रान्त जब हिंसात्मक प्रतिरोध नहीं करता तो हिंसा पर उतारू व्यक्ति की प्रहारक शक्ति के पीछे छुपा आत्मविश्वास धीरे-धीरे समाप्त होता जाता है। वह संतुलन भी नहीं रहता जिसमें उचित कार्य करने का निर्णय लिया जाता है। आशा के विपरीत आक्रामक को सभी परिस्थितियाँ नयी मालूम पड़ती हैं। उसे निर्णय नहीं लेते बनता कि बदली परिस्थितियों में क्या करना चाहिए इसलिए हृदय में भय एवं असुरक्षा की भावना बढ़ती है। वह अपना प्रहारक दाँव एवं शक्ति गवाँ बैठता है।

दूसरी ओर आक्रान्त व्यक्ति आक्रमण को बिना किसी प्रतिहिंसा के झेलता है। शरीर ही नहीं मन एवं भावना से भी वह प्रहारक का नहीं उसकी प्रवृत्तियों का विरोधी होता है। अपनी कष्ट सहिष्णुता, उदारता के कारण वह हिंसा पर उतारू व्यक्ति को और भी आक्रमण करने का आमंत्रण देकर अपने और भी अधिक आत्मविश्वास एवं मनोबल का परिचय देता है। उसकी सहन शक्ति तो बढ़ती जाती है पर उसी अनुपात में हिंसक की शक्ति घटती जाती है।

अहिंसक प्रतिरोध करने वाला अपने ध्येय को जानता तथा हर स्थिति में उस पर दृढ़ रहता है। वह रचनात्मक एवं सुधारात्मक होने के कारण निश्चिन्तता बनी रहती है, जबकि हिंसात्मक तरीका अपनाने वाला एक मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व से घिरा होता है। उसका अपना आपा ही कृत्यों के लिए प्रताड़ित करना-गलत उद्देश्य से विचलित करता है। फलतः मनोबल क्षीण हो जाता है, जिससे शारीरिक शक्ति भी कमजोर पड़ जाती है। अन्तर्द्वन्द्व से आक्रामक की शक्ति का एक भाग अन्दर ही अन्दर उसके ही विरुद्ध लड़ने लगता है। जबकि अहिंसात्मक प्रतिरोधी की सद्भावनाएँ सूक्ष्म रूप से आक्रामक की हिंसात्मक भावनाओं पर वार करती हैं।

मनोविज्ञान का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि प्रेरक कारणों की निरन्तर पुनरावृत्ति से मन के चेतन एवं अवचेतन दोनों ही भागों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अहिंसात्मक प्रतिरोधी की प्रेरक विचारधारा आक्रामक की हिंसक वृत्ति पर आघात करती हैं। इस कार्य में आक्रामक की सत्ता का वह पक्ष समर्थन देता है जो शान्ति का, अहिंसा का समर्थक होता है तथा उसकी हिंसात्मक क्रियाओं का विरोध अन्तर्द्वन्द्व प्रकट करके कर रहा था।

अहिंसात्मक विरोध का—संघर्ष का दार्शनिक आधार इस तथ्य पर टिका हुआ है कि मूलतः हर मनुष्य अच्छा है। बुराइयाँ उसे संस्कार के रूप में वातावरण एवं बुरे अभ्यासों से मिली हैं। विकृत मस्तिष्कों से युक्त नृशंस अपराधियों की बात और है, अन्यथा हर व्यक्ति में अच्छाई एवं बुराई दोनों ही के तत्त्व विद्यमान हैं। बुराइयों की अपनी मौलिक सत्ता नहीं है। उन्हें प्रयास एवं अभ्यास द्वारा दूर किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार सद्गुणों की मात्रा हर व्यक्ति के भीतर बढ़ायी जा सकती है। इसके लिए सबसे समर्थ उपचार अहिंसात्मक ही हो सकता है। कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में अपवाद स्वरूप ही बाहुबल का प्रयोग किया जाना चाहिए पर उसकी भी एक मर्यादा, एक सीमा होनी चाहिए। मर्यादा की कसौटी यह है कि वार करते समय ध्यान यह रहे कि आक्रामक के हिंसात्मक प्रयास को विफल बनाने भर के लिए शक्ति का प्रयोग किया जाय, ऐसे भाव न आने पायें जिसमें विपक्षी के प्रति किसी प्रकार का विद्वेष पैदा होता हो।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हिंसा पर उतारू व्यक्ति के प्रति जनमानस की सहानुभूति नहीं रहती। हिंसक व्यक्ति लोक समर्थन खो देता है। जनसहानुभूति प्रायः आक्रान्त व्यक्ति के साथ रहती है। सहानुभूति भी एक प्रकार का भावात्मक सहयोग है, जो अहिंसक व्यक्ति की शक्ति सामर्थ्य को बढ़ाता तथा आत्मविश्वास को दृढ़ बनाता है। जबकि उसी अनुपात में आक्रामक की शक्ति जनसहानुभूति न मिलने से घटती जाती है। इसका प्रमाण प्रायः उन अवसरों पर मिलता है, जब हिंसक घटनाएँ घटित होती हैं। हिंसा करने वाले अत्यन्त भयभीत रहते तथा शीघ्रातिशीघ्र अपना काम निकालकर भागने की फिराक में रहते हैं।

निरंतर के अहिंसात्मक प्रतिरोध से आक्रमणकारी की विचार प्रक्रिया भी परिवर्तित होने लगती है। उसे अनुभव होता है कि हिंसा की सत्ता वांछनीय नहीं है। जो किया अथवा अपनाया गया था, वह गलत था, उसके मन में अपने कृत्यों के प्रति ग्लानि उत्पन्न होती है और आत्म सुधार के लिए प्रयत्न चल पड़ता है। यह एक ऐसा अमोघ शस्त्र है जिसका प्रयोग व्यक्ति तथा समाज दोनों ही के सुधार के लिए किया जा सकता है।

ध्यान रखने योग्य तथ्य यह भी है कि अहिंसा में कायरता अथवा दब्बूपन का कोई स्थान नहीं है। अन्याय सहने की कायरता से साहसपूर्ण हिंसा अधिक अच्छी होती है। नैतिक दृष्टि से हिंसा से भी अधिक हानिकारक कायरता है। हिंसा और क्रोध से कम से कम व्यक्ति का आत्मविश्वास तो प्रकट होता है पर जो भयग्रस्त होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शत्रु से नहीं लड़ना चाहता कायर है। जो वस्तुतः लड़ने का साहस रखता है तो भी वह शत्रु पर वार नहीं करता वही सच्चा अहिंसक प्रतिरोधी है।

अहिंसक मार्ग की लड़ाई में एक बात और भी जानना आवश्यक है कि हिंसात्मक लड़ाई की तरह अहिंसात्मक संघर्ष का लक्ष्य यह नहीं रहता कि विरोधी को हानि पहुँचायी जाय, उसे दबाया या अपमानित किया जाय वरन् यह होता है कि उसका हृदय परिवर्तन कर दिया जाय। अहिंसक सेनानी प्रतिपक्षी को भी अधिक ऊँची अच्छी तथा सुरक्षित आधार भूमि पर पहुँचाना चाहता है जिससे दोनों के सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़, मधुर, उत्पादक तथा शान्तिपूर्ण हो सकें।

आधुनिक मनोविज्ञान का भी कहना है कि शरीरबल की तुलना में मनःशक्ति कहीं अधिक सामर्थ्यवान है। दूसरे व्यक्ति को यदि जीतना हो तथा सदा के लिए अपना बनाना हो तो विचार सम्प्रेषण द्वारा ऐसा किया जा सकता है। अचेतन मन के विचार संघात से हिंसक व्यक्ति का अचेतन मन उसी के अनुरूप ढल जाता है। मनःशास्त्र के अनुसार मन का अधिकांश भाग अजागृत स्थिति में होता है। जिस प्रकार ध्रुव प्रदेशों के सागर में बहने वाले हिम पर्वतों (आइसवर्ग) का अधिकांश भाग पानी में डूबा रहता है तथा पानी के ऊपर एक दशांश दिखायी पड़ता है। उष्ण जल भाग में आ जाने से उस हिमपर्वत का पानी के नीचे छिपा हुआ भाग क्रमशः गलने लगता है, कभी-कभी स्थिति यहाँ तक आती है कि निचला भाग अधिक गल जाने से वह पर्वत एकदम उलट जाता है। फलतः उसका स्वरूप ही बदला हुआ दिखायी देता है। इसी प्रकार मनुष्य के अचेतन-प्रसुप्त मन पर जब विचार प्रेरणा का प्रहार अहिंसात्मक रूप में किया जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया जागृत किसी भी समर्थ प्रक्रिया से कम नहीं बल्कि अधिक ही होती है। इसलिए मनुष्य के अचेतन मन पर अचेतन दूसरी शक्ति द्वारा दीर्घकाल तक प्रहार किये जाने पर अचानक बड़े परिवर्तन हो जाते हैं। हिंसक विरोधी के मन और हृदय पर होने वाले मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का सम्पूर्ण परिणाम उसके हृदय परिवर्तन के रूप में दिखायी पड़ता है यही वह धुरी है जिस पर अधिकांश आन्दोलन उग्रता की नीति न अपनाते हुए भी सफल होते देखे जाते हैं।

अनीति के विरोध में जनता की आवाज

फ्राँस के मेधावी तत्व चिन्तक जीन जेम्स रूसो ने अपनी क्रान्तिकारी पुस्तक दि सोशल कान्टेक्ट' द्वारा करोड़ों पद-दलित लोगों को इतना झकझोरा कि उन्होंने हजारों वर्ष की राजा-महाराजाओं की गुलामी की जंजीरें तोड़ दीं। विश्व भर के राजे-महाराजे स्वयं ये मानते थे और सब प्रजाजनों से मनवाते थे कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है और राजा से बगावत करने का अर्थ ईश्वर से बगावत करना है। रूसो ने राजा-महाराजाओं के प्रति उक्त धारणा को भ्रामक बताया। उसने सोचा कि यदि राजा और ईश्वर के बीच इस भ्रामक सम्बन्ध की मान्यता प्रजाजनों के मन से हटाई जाय और जनमत की प्रबल शक्ति को जगाया जाय तो विश्व भर के पद-दलित प्रजाजनों में नई जान आवेगी।

रूसो एवं वॉल्टेयर ने मिलकर अपनी इस मान्यता का व्यापक प्रचार किया। राजा महाराओं के अत्याचार, भारी कर वसूली एवं उनके अपने स्वार्थ युक्त वैभव विलास में खर्च करने से प्रजा असंतुष्ट थी। उन्हें भय केवल ईश्वर का था। इस डर को रूसो एवं वाल्टेयर के प्रतिपादनों ने दूर कर दिया। फलतः सन् १७८९ में विश्व के संभवतः सर्वप्रथम प्रजातन्त्र का फ्राँस में उदय हुआ। यह धीरे-धीरे सारे विश्व में फैल गया।

भावी आणविक युद्ध विनाशकारी कुप्रभावों से समस्त मानव जाति के विनाश की संभावना से आज सारा विश्व आतंकित है। इससे बचने के कोई ठोस उपाय नहीं निकलने से सर्वत्र निराशा छाई हुई है। यह एक मनोवैज्ञानिक सवाल है, क्या विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के सत्तासीन राजनीतिज्ञ जो परमाणु युद्ध पर तुले हुए हैं, की सत्ता प्रबल है या समग्र विश्व की जनता की शांति की चाह प्रबल है ?

सन् १९५९ के नोबल शांति पुरस्कार विजेता मि० किर्लिप नोवेल बेकर, जो लीग ऑफ नेशन्स के सचिव थे, के अनुसार विश्व के सभी राष्ट्रों में प्रत्येक समझदार व्यक्ति एक ही आवाज उठाना शुरू करे कि विश्व के मूर्धन्य युद्धखोर (मिलट्रिस्ट) राष्ट्रों के विचारों को बदला जाय। इनके विश्व के विनाश करने के मंसूबों को बदलने के लिए ऐसी हवा पैदा होनी जरूरी है, जो जनमानस में आणविक विनाश से उत्पन्न संभावित निराशा को आशा में बदल दे। यूनेस्को की ओर से सुसाइड या सर्वावाइवल सेमीनार में अपने अनुभव पेश करते हुए उन्होंने कहा कि १९३५ में जब वे ब्रिटिश फारेन ऑफिस के सदस्य थे, तब तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल के साथ मिलकर विश्व के सभी मित्र राष्ट्रों ने बड़ी कुशलता से युद्धोन्माद के विरुद्ध एक अभूतपूर्व हवा पैदा की थी। श्री नोबेल दावा करते हैं कि आणविक युद्ध के खिलाफ भी ठीक इसी तरह की हवा पैदा की जा सकती है। इसके लिए रूसो और वाल्टेयर जैसे क्रांतिकारी लेखकों के साहित्य की जरूरत है, जिससे जनमानस पर थोपी हुई असहायता दूर हो और साहस एवं आशा का संचार हो। पहले भी प्रबल जनमत ने ऐसा किया है एवं आशा करनी चाहिए कि आगे भी ऐसा ही होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी जमाने में जनमत का कोई मूल्य न था। प्रजा न तो संगठित थी और न उनकी कोई संगठित आवाज। शस्त्रबल के प्रतिकार का एक तरीका असहयोग और विरोध के रूप में निकल आया है। बहुमत द्वारा इन्हें प्रयुक्त किये जाने पर ऐसा वातावरण बनता है कि राज सत्ता को सशस्त्र और सर्वशक्तिमान मानने वाले भी उसके आगे झुक जाते हैं। ग्रेट ब्रिटेन, नीदरलैण्ड, स्वीडन, नार्वे, पोर्तुगाल, स्पेन आदि राष्ट्र इसका उदाहरण हैं। बदले हुए समय में अब जनता की आवाज का भी मूल्यांकन किया जाने लगा है और परिणाम आँका जाने लगा है। इस शक्ति का उपयोग यदि अणु युद्ध जैसे वीभत्स-कार्य के विरुद्ध किया जाय तो वह उचित भी होगा और कारगर भी।

अवांछनीयताएँ आन्दोलनों के बिना हटती नहीं

भारत ही नहीं विश्व के अन्य देशों में भी नारी को सदियों तक अत्यन्त पददलित स्थिति में रहना पड़ा है। दीर्घकाल तक क्रिश्चियन धर्म की मान्यता रही कि नारियों में आत्मा नहीं होती। भौतिक वस्तुओं की तरह वह एक सम्पत्ति है। पुरुष के पतन का नारी प्रधान कारण है। इस मान्यता का ही प्रभाव था कि नारी समाज को सैकड़ों वर्ष तक अपने मानवोचित अधिकारों से वंचित रहना पड़ा।

अठारहवीं सदी से जागृति की लहर यूरोपीय देशों में आयी। विचारशील वर्ग ने अनुभव किया कि नारी को समान दर्जा दिये बिना समाज की सर्वांगीण प्रगति सम्भव नहीं है। ब्रिटेन में नारी मुक्ति आन्दोलन की प्रथम आधार-शिला १७९२ में मैरी बोल स्टोन क्राफ्ट की पुस्तक 'एविन्डीकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ विमैन', ने रखी। मैरी क्राफ्ट ने जोरदार अपील की कि शिक्षा, व्यवसाय तथा अन्य कार्यों में नारी को समान अधिकार दिया जाय। एक चिन्गारी जलाने के बाद उसकी १७९७ में मृत्यु हो गयी पर उसकी पुस्तक में समाहित उत्तेजक विचारों का गंभीर प्रभाव अगली पीढ़ी पर पड़ा। उन्नीसवीं शताब्दी में जान स्टुअर्ट मिल जैसे पहुँचे हुए विचारकों तक ने उस पुस्तक से प्रेरणा लेकर नारी-मुक्ति की आवाज बुलंद की। सन् १८६९ में मिल की प्रख्यात पुस्तक प्रकाशित हुयी 'दी सब्जेक्शन ऑफ विमेन'। जिसमें लिंग विभेद को अविवेकपूर्ण, अनुचित तथा अमानवीय ठहराया गया तथा उस प्रवृत्ति को समाज के विकास में अवरोधक बताया गया था।

जनमानस पर भी असाधारण प्रभाव पड़ा। सदियों से घुटती चली आ रही नारी को ऐसा अनुभव हुआ जैसे उसका परित्राण करने के लिए किसी भागीरथ का अविर्भाव हो गया हो राष्ट्रीय स्तर पर भेदभाव के विरोध में विद्रोह की लहर फूटने लगी। विमेन्स सोशल एण्ड पॉलीटिकल यूनियन जैसी संस्था गठित हुई। ४ जून, १९१३ को उसका प्रखर स्वरूप पूरे लन्दन में प्रकट हुआ। स्थान-स्थान पर नारी अधिकारों के लिए जुलूस निकाले गये जिसका समर्थन विचारशील पुरुष वर्ग द्वारा भी प्रेरित था। जनवरी १९१८ में ब्रिटेन में नारियों को समान मानने-समानता का अधिकार देने की घोषणा की गयी। तदनुरूप कानून बने जिसमें ३० वर्ष से ऊपर की महिलाओं को पहली बार वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

१७८९ की फ्रेंच क्रान्ति ने नारी जाति को भी अप्रभावित नहीं छोड़ा। समानता एवं स्वतंत्रता की आवाज नारी समुदाय के बीच से मुखर हुयी। फ्रेंच दार्शनिक कॉन्डोर्सेट की पुस्तक 'दी एडमीशन ऑफ विमेनटू फूल सिटीजनशिप ?' सन् १७९० में प्रकाशित हुई जो मिल की पुस्तक जैसी ही क्रान्तिकारी सिद्ध हुई। नारी अधिकारों के लिए सर्वत्र आवाज उठने लगी। 'प्रगतिशील विचार सीमित नहीं रहते देर-सवेर अपनी लपेट में समस्त संसार को ले लेते हैं' यह बात नारी मुक्ति आन्दोलन के क्षेत्र में देखी गयी। गिने-चुने देशों से चिन्गारी फूटी पर वह दावा नल के रूप में विश्व भर में फैली। अपनी चपेट में उसने अधिकांश प्रगतिशील देशों को ले लिया। उन्नीसवीं सदी का अन्त तथा बीसवीं सदी के आरम्भ से इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ हुआ जिसमें पहली बार नारी को पुरुष की भाँति गौरव भरा स्थान प्राप्त हुआ। विभिन्न देशों में नारी मुक्ति आन्दोलन की सफलता के वर्ष इस प्रकार थे न्यूजीलैण्ड १८९३, आस्ट्रेलिया १९०२, फिनलैंड १९०६, नार्वे-१९१३, डेनमार्क १९१५, सोवियत रूस-१९१७, यूनाइटेड स्टेट्स १९२०, स्वीडन-१९२१, इक्वेडोर-१९२७, ब्रिटेन-१९२८, स्पेन-१९३१, ब्राजील एवं थाइलैण्ड-१९३२, श्री लंका-१९३४ तुर्की क्यूबा-१९३४, वर्मा-१९३५, फिलीपाइन्स १९३७, फ्राँस-१९४४, इटली-१९४५, जापान-१९४६, अर्जेन्टाइना, चीन, १९४७, चिली-१९४९, नेपाल, ग्रीस १९५१, मैक्सिको-१९५३, कोलंबिया, पेरु-१९५५, इजिप्ट-१९५६, इरान-१९६३, अफगानिस्तान १९६४, स्वीटजरलैण्ड-१९७१, जॉरडन १९७४।

जून १९४६ में यूनाइटेड नेशन्स कमीशन ऑन दी स्टैट्स ऑफ विमेन की स्थापना हुई। इसका मुख्य उद्देश्य था प्रत्येक देश में नारी को राजनीतिक अधिकार प्रदान कराना। पुरुष की तरह नारी को भी सर्वप्रथम मतदान देने का अधिकार जिन देशों ने दिए, उनके नाम इस प्रकार हैं—न्यूजीलैण्ड-१८९३, फिनलैण्ड-१९०६, नार्वे-१९१३, डेनमार्क, आइसलैण्ड-१९१५ आस्ट्रेलिया १९०२।

कुछ देशों के पार्लियामेंट में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों का प्रतिशत पाँच वर्षों पूर्व इस प्रकार था। ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स ३.४ प्रतिशत यू० एस० हाउस ऑफ रिप्रजेन्टेटिव- २ प्रतिशत, फेडरल जर्मनी पार्लियामेन्ट-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

७.६ प्रतिशत मात्र १९७० में सोवियत यूनियन में महिला प्रतिनिधियों का सुप्रीम सोवियत में प्रतिशत-३० था।

संसार के शिक्षा क्षेत्र में अभी भी उनका अनुपात १५ प्रतिशत है। प्रगतिशील देशों में भी यह अनुपात २५ प्रतिशत में अधिक नहीं बढ़ा है।

नारी की स्थिति व उसके उत्तरदायित्व में विश्व स्तर पर जो परितर्वन आ रहे हैं उन्हें मूलतः दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है—पारिवारिक संरचना सम्बन्धी विश्वव्यापी क्रान्ति तथा राजनीति, शिक्षा व रोजगार आदि क्षेत्र में नारी के समान अधिकारों का विकास। प्रथम भाग में नारी के परिवारिक कर्त्तव्यों की बात आती है, जबकि दूसरे में उसकी समाज, राजनीति व आर्थिक क्षेत्र में स्थिति का बोध होता है।

इसे नारी मुक्ति आन्दोलन का ही प्रतिफल कहना चाहिए कि हजारों-लाखों वर्षों से पददलित नारी आज पुरुषों के समकक्ष पहुँच चुकी या निकट भविष्य में पहुँचने वाली है। न्यायोचित आन्दोलन सदा सफल हुए हैं और वे भविष्य में भी सफल होते रहेंगे।

आन्दोलनों की असीम सामर्थ्य और आश्चर्यजनक परिणति

अवांछनीयताओं से लड़ने के लिए युद्ध ही एकमात्र उपाय नहीं है। नैतिक जन आन्दोलनों से भी आक्रान्ताओं की दुरभिसंधियों से लोहा लिया जा सकता है। इस संदर्भ में भी समय-समय पर प्रयोग होते रहे हैं। उनका युद्ध विज्ञान की तरह स्वतन्त्र स्वरूप तो विनिर्मित न हो सका। पर बिखरे रूपों में वे अपनी समर्थता का परिचय अवश्य देते रहे हैं। उन पूर्ववर्ती इतिहासों ने नये प्रयोक्ताओं को बल, साहस ही नहीं अनुभव भी प्रदान किया है।

हिरण्यकश्यपु के पुत्र प्रहलाद के द्वारा पिता की कार्य पद्धति अस्वीकार कर देने और अपने स्वतन्त्र निर्णय पर दृढ़ रहने के अपने ढंग का एक श्रेष्ठ असहयोग-सविनय अवज्ञा है, जिससे किसी सर्व समर्थ के सम्मुख असहाय, एकाकी तन कर खड़े हो जाने की प्रेरणा भी मिलती है। पौराणिक गाथा के अनुसार प्रहलाद को दैवी सहायता मिलीं और वे दमन चक्र में पिसने से बच गये। आशा बनाये रखने की दृष्टि से यह भवितव्यता अच्छी भी है। पर आवश्यक नहीं कि सर्वदा हर किसी को वैसी सहायता मिल ही सके। जटायु ने असमर्थ होते हुए भी रावण का प्रतिरोध किया था और उसे निर्बाध रूप से अनाचार करने में बाधा उपस्थित करने के रूप में प्राण देने जैसा दुस्साहस प्रस्तुत किया था। संसार भर में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जिसमें अनीति के सामने झुकने के स्थान पर टूट जाने को पसन्द किया गया। ऐसे उदाहरणों का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि साहस रहितों में भयाक्रान्त रहकर पिस जाने की अपेक्षा संघर्ष का पथ अपनाकर कुचल जाने का शौर्य उभरता है। साथ ही स्तब्ध हुए वातावरण में कुछ कर गुजरने के लिए मार्ग निकलता ओर उपाय सूझने लगता है। यह बड़ी बात है। आदर्शवादी बलिदानों के सत्परिणाम कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहे। विजय की तुलना में कई बार पराजय भी लोक मानस में आक्रोश उत्पन्न करने में बहुत हद तक सहायक होती है। ईसा का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। सुकरात को जहर का प्याला न पीना पड़ता तो उनके विचार कदाचित इतने अधिक लोकप्रिय न होते। भगत सिंह ने फाँसी खाकर भी उतना काम कर डाला जितनी वे लम्बी अवधि तक जीवित रहने पर भी कर न पाते। इस प्रकार की घटनाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। जिनमें एकाकी सत्याग्रह की उन्नति भी आश्चर्यजनक हुई है। बात अनीति को अस्थाई करने की है जब वह एकाकी-सीमित आधार पर भी दूरगामी परिणाम उत्पन्न कर सकती है तो कोई कारण नहीं कि संगठित, योजनाबद्ध और न्यायनिष्ठ जन-आन्दोलन को सफलता न मिले।

फ्रांसीसी मनीषी इस प्रयोजन के लिए अपने स्वर अधिक मुखर करते रहे। दार्शनिक जार्जेड सोरिल और ज्यां पालसात्र के ग्रन्थों में इस संदर्भ में बहुत कुछ कहा गया है। उन्हें क्रान्ति की गीता कहा जाता है। फिर भी उनमें अनीति के प्रति आक्रोश व्यक्त करने वाले आन्दोलनों का ही परामर्श है। हिंसा पर उतारू होने और जान माल की हानि पहुँचाने के लिए प्रोत्साहित करने जैसा कुछ नहीं है। अलवर्ट कैमस ने अपनी पुस्तक 'दी रिबेल' में इस तथ्य को और भी स्पष्ट किया है। वे कहते हैं—नीति को अपनाने और अन्यान्यों के लिए सुलभ करने का संकल्प एवं आक्रोश ही क्रान्ति है। इसे आक्रमण से नहीं, जनसमर्थन से सम्पन्न किया जा सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध में पूर्ण अनीति का दौर हर क्षेत्र में बढ़ता जा रहा था। विशेषतया शासकों द्वारा प्रयोजनों पर शिकंजा इसलिए अधिक कसता जा रहा था कि वे अधिक युद्ध साधन एकत्रित करके आक्रमण का लाभ उठा सकें। कई अपने बचाव के लिए भी वैसा कर रहे थे। प्रजाजन इस कुचक्र में बुरी तरह पिसते थे और निर्वाह करते थे।

आन्दोलनों की सफलता, उनके स्तर और लक्ष्य पर निर्भर

गाँधीजी द्वारा संचालित आन्दोलन के पीछे उन तत्त्वों का समावेश था जिन्होंने जनसाधारण को प्रभावित किया और अँग्रेजों ने अपना टिके रहना निरर्थक समझा। सत्याग्रहियों के निजी जीवन में अधिक सादगी और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पवित्रता अपनाने का अनुशासन था। उन्होंने प्रतिपक्ष के साथ असहयोग का ऐसा अस्त्र अपनाया जिससे एकाकी पड़ जाने पर सभी गतिविधियों में हानि तथा असफलता होने लगी। सन् १९२१ में असहयोग, आन्दोलन ब्रिटिश सामान का बहिष्कार, उनके विद्यालयों-न्यायालयों का परित्याग, पदों-सम्मानों को लौटा देना जैसे कदम तो ऐसे थे जिनसे प्रत्यक्षतः शासकों को कोई हानि दिखाई नहीं पड़ती थी। पर दूरगामी परिणामों का अनुमान लगाने पर उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि ऐसी स्थिति बनी रहने पर शासन लाभदायक न रहेगा। कुछ दिन आतंक भले ही बरत लिया जाय।

गाँधीजी द्वारा अपनाया गया मार्ग उनसे पूर्व पश्चिमी देशों में भी समय-समय पर अपनाया जाता रहा है। उदाहरण के लिए कुछ योरोपीय आन्दोलनों को लिया जा सकता है। प्यूरिटिन मतावलम्बियों द्वारा आन्दोलित अभियान, ब्रिटिश अध्यात्मवादियों, इंग्लैण्ड एवं अमरीका के क्वेकर धर्मावलम्बियों द्वारा चलाए गए अभियान, ब्रिटिश सफ्रागेट (नारी मताधिकार) आन्दोलन, आयरिश बॉयकाट प्रथा (सिनफेन) आदि। अहिंसा को नैतिक सिद्धान्तों के साथ जोड़ने के लिए इन आन्दोलनकारियों ने एक उपयुक्त नाम 'असहयोग' दिया जो गाँधीजी द्वारा 'सत्याग्रह' कहलाया। अहिंसा की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने कहा—'अहिंसा के सिद्धान्त तब बेकार एवं निरर्थक साबित होते हैं, जब मात्र सिद्धान्त बनकर ही रह जाते हैं और व्यवहार व आचरण तदनरूप नहीं किया जाता। अहिंसा तब सार्थक समझी जायगी जब हम शत्रु के साथ भी मित्र भाव, प्रेमभाव से पेश आयेंगे, सद्व्यवहार और सदाचरण उसके साथ भी अपनायेंगे।

चिन्तन द्वारा गाँधीजी ने अपने शिष्यों और पश्चिमी देशों को बहुत ही अधिक प्रभावित किया। उनका मत मात्र किताबी सिद्धान्त ही बनकर नहीं रह गया वरन् साथ-साथ उसे अपनाने का व्यावहारिक रूप देने का कठोर नियम भी था। "उनका मत रहस्यवाद और सक्रियतावाद का एक मिला-जुला रूप था। उनका मत मोक्ष का प्रतिपादन तो करता ही था, साथ-साथ क्रान्तिकारी 'प्रत्यक्ष क्रिया' पर भी जोर देता है"—फ्राँसीसी राजनीतिज्ञ विद्वान जार्ज सोरेल का ऐसा विचार है। जार्ज सोरेल ने एक सम्पन्न दृढ़ प्रतिज्ञा समुदाय का सपना देखा था जो सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व कर सके। उनके इस संगठन और दूसरे पश्चिमी संगठनों में अन्तर इतना ही है कि सोरेल-संगठन गाँधीजी की ही भाँति अहिंसा का पक्षधर था।

अठारहवीं सदी की दो राजक्रान्तियाँ प्रमुख हैं। एक फ्राँसीसी दूसरी अमेरिकी। इसी सदी में 'मेथेडिज्म' नामक इंग्लैण्ड की धार्मिक क्रान्ति भी सम्पन्न हुई। इटली और स्पेन की क्रान्तियाँ भी इसी शताब्दी की देन हैं। दक्षिणी प्रोस्लेवरी और पृथकतावादी आन्दोलनों ने दासता उन्मूलन आन्दोलन को जन्म दिया। इन्हीं दिनों महिला अधिकारों की लड़ाई भी प्रारम्भ हो चुकी थी। मजदूर आन्दोलनों की आँधी भी इन्हीं दिनों उठी और संसार भर के उद्योग क्षेत्रों पर अपने प्रभाव का परिचय देने लगी। रूस में जारशाही के विरुद्ध कृषक आन्दोलन भड़का। समाजवाद साम्यवाद जैसे विश्वव्यापी आन्दोलनों को जन्म देने का श्रेय उन्नीसवीं शताब्दी को है। जापान की वह जन क्रान्ति इन्हीं दिनों हुई, जिसने तोकूगा शासन का तख्ता उलट दिया। जन प्रतिनिधियों ने देश की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली और उस देश की पुरातन परिस्थितियों को कायाकल्प स्तर पर बदल डाला। चीन की प्रजा ने इन्हीं दिनों चीनी आधिपत्य को लात मारकर खदेड़ दिया। इन राजनैतिक उलट फेरों के साथ-साथ समाज-सुधार के आन्दोलन पनपे। योरोप का महिला अधिकारों का आन्दोलन—सियोनवाद—इन्हीं दिनों की देन है। जिससे विचारशील वर्ग ने मानवीय अधिकार महिलाओं को भी देने के पक्ष में व्यापक वातावरण बनाया।

संसार के अन्य क्षेत्रों में जहाँ भी गोरों का प्रभुत्व है। स्वेच्छाचारी राजाओं की तूती बोलती थी वहाँ स्वाधीनता की माँग करने वाले आन्दोलन उफने और कहीं पूरी तरह कहीं आंशिक रूप में सफल होकर रहे।

बीसवीं सदी भी पुरातन को उलटकर नई व्यवस्थाएँ स्थापित करने में अपनी पूर्ववर्ती अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी से पीछे नहीं रही वरन् अधिक उग्र रूप से आगे बढ़ी, उसका विस्तार क्षेत्रीय न रहकर ऋतु परिवर्तन की तरह अपने प्रभाव से व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करता चला गया। अलजीरिया की तरह अफ्रीका और एशिया के लोग संगठित होकर योरोपीय प्रभुत्व के विरुद्ध क्रान्ति पर उतर आये। क्यूबा की क्रान्ति ने बैटिस्टा सरकार का तख्ता पलटकर अमेरिका का स्वामित्व ही समाप्त नहीं किया वरन् उसकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली। भारत, टर्की, ईरान जैसे देशों में इन्हीं दिनों राष्ट्रवादी आन्दोलन पनपे। दक्षिणी अफ्रीका का 'अफ्रीकेनर आन्दोलन' और कैनाडा का फ्रेंच नेशनेलिज्म आन्दोलन योरोपियन आधिपत्य के विरुद्ध बगावत का झण्डा खड़ा करते रहे।

नीग्रो प्रोटेस्ट मूवमेन्ट अमेरिका में चलने वाला बीसवीं सदी का सबसे लम्बा आन्दोलन रहा। इसी सदी के आरम्भ में 'सिविल राइट्स मूवमेन्ट्स—नेशनल ऐसोसियेशन फार दी एडवांसमेंट ऑफ कलर्ड पीपुल्स' जैसे कई आन्दोलन रंगभेद की नीति उखाड़ फेंकने के लिए बहादुरी के साथ मोर्चे पर अड़ रहे और अनेकों कष्ट सहकर भी सफलता की दिशा में क्रमिक प्रगति करते रहे। मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में इस आन्दोलन को आशातीत सफलता मिली। इस संदर्भ में उन महाद्वीपों में चले 'अमेरिका इण्डियन' और 'मैक्सिकन इण्डियन' आन्दोलनों के कारण मची हलचल और उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया को भी भुलाया नहीं जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप ने एक नये शान्ति आन्दोलन को जन्म दिया। जिसमें विद्यार्थी अग्रिम मोर्चे पर थे। उसका प्रभाव अन्य देशों पर पड़ा और उसने युद्ध भड़काने वाले देशों में प्रतिपक्ष की भूमिका निभाई। फण्डामेन्टलिस्ट मूवमेण्ट—मार्डनिस्ट मूवमेन्ट चले और प्रोटेस्टेन्ट क्रिश्चियानिटी के क्षेत्र में भारी हलचलें दृष्टिगोचर होती रहीं।

उन्नीसवीं सदी में चीन का मंचू शासन भ्रष्टाचार, अकुशलता का शिकार बना। आर्थिक तथा सामाजिक समस्यायें जटिल हुयीं। फलस्वरूप कृषक विद्रोह की घटनायें उफनने लगीं। इस स्थिति का योरोपियन देशों ने लाभ उठाया, व्यापारिक मिशनरी माध्यमों से उस देश में घुसे और सत्ता हथियाते चले गये। उन्नीसवीं सदी के अन्त में चीन मात्र एक योरोपियन उपनिवेश रह गया था।

सन् १८९४ में एक २९ वर्षीय युवक सनयात सेन के नेतृत्व में एक क्रान्तिकारी संगठन बना। जिसने मंचू शासन को उखाड़ना, गणतन्त्र स्थापित करना, विदेशी आधिपत्य को समाप्त करना तथा भूमि का पुनर्वितरण करना अपना उद्देश्य घोषित किया और आन्दोलन लोकप्रिय होता चला गया। अन्ततः १२ फरवरी, १९१२ से चीन में चला आ रहा २५०० वर्ष पुराना राजतन्त्र समाप्त हो गया। वह सफलता अधूरी थी जिसे पूरी करने के लिए १९१९ में फिर नया आन्दोलन उभरा। उसने न केवल प्रजातन्त्र की स्थापना की वरन् स्थिति साम्यवाद समर्थक बना दी। उसी का प्रतिफल है कि चीन इन दिनों संसार के वरिष्ठ देशों में गिना जाता है।

जापान का कायाकल्प करने में भी उसकी १८६८ की राजक्रान्ति को श्रेय है। उसने उसका पिलपिलापन पूरी तरह समाप्त कर दिया और इस स्थिति तक पहुँचाया कि पड़ौसियों पर चढ़ दौड़ने के लिए पंजे फैला सके। इस बीच उसने हर क्षेत्र में हर दृष्टि से कहने लायक सामर्थ्य अर्जित कर ली।

१८वीं सदी में फ्राँस में दो लाख ८० हजार लोग कुलीन वर्ग के जागीरदार थे। सामान्य लोगों की संख्या ४७ लाख ५० हजार थी जो अध्यापक, क्लर्क, श्रमिक, कृषक, कारीगर जैसे सामान्य क्रियाकलापों में संलग्न थे। यह द्वितीय वर्ग का समुदाय कुलीनों के आधिपत्य में था। अवज्ञा करने वालों को जेल से लेकर प्राणदण्ड तक की प्रताड़नायें सहनी पड़ती थीं। आजीविका का दसवाँ अंश राजस्व के रूप में यह कुलीन लोग ही वसूल करते और प्रायः निजी वैभव के लिए खर्च करते थे।

इस आतंक के माहौल में परिवर्तन आन्दोलन पनपा जो असहयोग, विद्वेष और संघर्ष के रूप में पनपा और अन्ततः उस स्थिति तक पहुँचा जिसमें कुलीनों की सत्ता उलट गई और प्रजा ने भाग्य निर्माण का अधिकार अपने हाथों में लिया।

कैस्ट्रो ने न केवल शासनतन्त्र बदला वरन् क्यूबा की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में भी कायाकल्प जैसा परिवर्तन करके रख दिया। इन दिनों वह निरक्षरता, गरीबी और बीमारी की पकड़ को बहुत पीछे छोड़कर प्रगति के उस स्तर तक पहुँच चुका है, जिसकी गाथा सुनने वालों को सहसा अपने कानों पर विश्वास नहीं होता। ९० प्रतिशत शिक्षा-सर्वजनीन निःशुल्क चिकित्सा। समर्थता एवं विचारशीलता से सुसम्पन्न नागरिकता उस देश की अपनी विशेषता है। प्रत्येक क्यूबाई नागरिक एक किसान के अलावा चुस्त सैनिक भी है। वह आन्तरिक और बाहरी प्रतिकूलताओं से निपटने में अपने आप में न केवल समर्थ रहता है वरन् समय-समय पर समर्थता को सिद्ध भी करता है।

आन्दोलनों का अर्थ है—विचारशील प्रतिभावानों का आदर्श विशेष को जीवन्त रखने के लिए संगठित और कार्यरत होने का व्यापक प्रयत्न। व्यापकता का अर्थ है अधिकाधिक जनसमुदाय का समर्थन एवं सहयोग उपलब्ध करना। इस आधार पर उत्पन्न होने वाली जनशक्ति देखने में नगण्य पर वस्तुतः इतनी प्रचंड होती है कि उसके सहारे गहराई तक जड़ जमाकर बैठी हुई अवांछनीयता को उखाड़ फेंकने जैसा कठिन कार्य सरल बन सके।

सौजन्यता-आन्दोलन, जिसने जापानियों को अनुकरणीय व्यक्तित्व का बना दिया

स्वामी रामतीर्थ विदेशों में भारतीय धर्म और अध्यात्म दर्शन के प्रचारार्थ जब जापान गये तो वहाँ का जन-जीवन देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। स्वामीजी अपने एक शिष्य प्राध्यापक के निवास स्थान पर ठहरे थे। उनका वह शिष्य उन्हें जापान के कल कारखाने और औद्योगिक प्रगति दिखाने के लिए वहाँ की फैक्ट्रियों में ले गया।

भारत के आठवें भाग के बराबर इस छोटे-से देश ने जिसकी आबादी भी यहाँ से इसी अनुपात के लगभग थी, विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के बाद भी जो विकास किया और स्वामी रामतीर्थ ने उसके जो कारण देखे वे एक ओर तो चौंका देने वाले थे तथा दूसरी ओर उन्हें यह भी कहना पड़ा—"मेरे देश की जनता धर्म, अध्यात्म और वेदान्त को वाणीविलास का ही साधन मानती है, परन्तु जापान के नागरिक अपना काम जितनी कुशलता, दक्षता और तन्मयता से करते हैं और जैसा सभ्य शिष्ट जीवन जीते हैं उसे देखकर यह विश्वास करना ही पड़ता है कि जापानी अध्यात्म दर्शन की घण्टों तक सैद्धान्तिक चर्चा भले ही नहीं कर सकते हों परन्तु उन्होंने अध्यात्म को सचमुच ही अपने जीवन में उतार लिया है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामीजी जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ उन्होंने मजदूरों को अपने काम में पूरी तन्मयता से लगा हुआ देखा। स्वामीजी की वेश-भूषा भी अजीब सी थी—जापानियों के लिए तो पर फिर भी किसी ने उनकी ओर देखकर हँसा नहीं। मजदूर मशीनों की तरह अपने-अपने काम में लगे रहे मानों वे स्वयं भी मशीन के पुर्जे ही हों। न किसी ने काम छोड़ा और न उनसे बात-चीत ही की।

इस विशेषता के साथ-साथ जापानियों की एक और विशेषता उल्लेखनीय तथा अनुकरणीय है, वह है उनकी सौजन्यता। दया, उदारता, प्रेम, सहानुभूति-जन्य सरलता और नागरिक अनुशासन के प्रति जो निष्ठाभाव जापानियों में देखा जा सकता है, वह कहीं अन्यत्र दुर्लभ ही है। कहना नहीं होगा कि सौजन्यता के उच्चस्तरीय वातावरण में ही कोई शायद फलते-फूलते हैं। जापान विश्व इतिहास में इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है। वहाँ का अतीत और प्रगति की कहानी इस सत्य का उद्‌घाटन करती है कि जापानियों ने आर्थिक, औद्योगिक और राजनैतिक विकास से पूर्व एक ऐसा वातावरण तैयार किया, जिसमें लोग नैतिकता और ईमानदारी का वरण करने के लिए स्वतः प्रेरित हुए थे। ऐसी परिस्थितियाँ विनिर्मित कीं जिनसे मानवीय अन्तःकरण में भलमनसाहत का स्रोत उमड़ पड़े। जब ऐसी स्थिति बन गयी तो जापानियों में व्यावहारिक अध्यात्म भी स्वतः मुखरित होने लगा और गुण, कर्म तथा स्वभाव में सामाजिकता के समन्वय ने जापानियों को स्वतः ही ऊँचा उठा दिया।

बात ऐसी नहीं है कि जापानियों में कभी भी भ्रष्टाचार, अनैतिकता और बेईमानी की प्रवृत्तियाँ नहीं रही हों। एक समय था जबकि वहाँ ये प्रवृत्तियाँ चरम स्थिति में थीं। लोगों में परस्पर विश्वास नहीं था। वक्त बेवक्त किसी को रुपये-पैसों की आवश्यकता पड़ती तो निकटतम सम्बन्धी भी उधार नहीं देता क्योंकि कहना असम्भव था कि वह लौट भी सकेगा या नहीं। खुदगर्जी और स्वार्थपरता लोगों में इस कदर घुसी हुई थी कि एक-दूसरे को अपने ही हितों का ख्याल रहता। सब अपनी रोटी तले अँगारे रखने की चिन्ता में रहते। साथी-पड़ौसी चाहें—कहीं भी कैसी भी स्थिति में रह रहे हों।

चोरी, रिश्वतखोरी भी आम बात थी। मिलावट, भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनुशासनहीनता ने जन-जीवन को इतना अस्त-व्यस्त कर दिया था कि सभ्य लोगों का जीवन ही असुरक्षित-सा हो गया था। ऐसे ही एक सभ्य व्यक्ति के साथ घटी घटना है। जापान के प्रख्यात विद्वान नाओटाका हयाशी कहीं जाने की तैयारी में थे। बस स्टेण्ड पर लोगों की भीड़ लगी हुई थी। मजदूर एक के ऊपर एक गिरकर टिकिट लेना चाह रहे थे और मजे की बात यह कि टिकिट लेकर कोई भी सही-सलामत नहीं लौट पा रहा था। किसी के पैसे गिर जाते तो किसी के कपड़े फट जाते। कोई-कोई तो हाथ-पाँव में भी चोट खाकर आता था।

हयाशी ने यह सब देखा तो उन्होंने सोचा कि लोग टिकिट लेने के लिए धक्का-मुक्की कर रहे हैं, यह भी जानते हैं कि इस प्रकार टिकिट लेने में ही बाधा पड़ती है। आसानी से टिकट लेने का तरीका तो यह है कि लाइन बनाकर खड़ा हुआ जाय। हयाशी ने वहाँ धक्का-मुक्की कर रहे लोगों से कहा—"भाइयों यदि आप पंक्ति होकर अपना काम करें तो सुविधा और सहूलियत से शीघ्र ही सबको टिकट मिल जाये।"

हयाशी लाइन से बाहर खड़े थे। वे अपनी बात पूरी कर भी नहीं पाये थे कि उन्हें एक जोर का घूँसा पड़ा—मुँह पर। नाक टूटते-टूटते बची। हुआ यह था कि उस धक्कमपेल में पीछे से एक ठेला आया और कोई व्यक्ति बीच में से बाहर छिटक गया। उसने हयाशी की बात सुन ली और सोचा यही व्यक्ति है जिसके कारण उसे और पीछे आ जाना पड़ा है। खीझ और चिढ़न में वस्तुस्थिति को समझ पाने की कहाँ सूझती है इसलिए उसने हयाशी की नाक पर घूँसा जमा दिया।

हयाशी अपनी नाक सम्हालकर बिफर पड़े और इस घटना की रिपोर्ट उन्होंने पुलिस स्टेशन पर लिखवा दी। लेकिन पुलिस वालों ने इस घटना पर कोई कार्यवाई नहीं की। उनकी दृष्टि में तो यह एक सामान्य-सी घटना थी जिसका कोई महत्व नहीं था। परन्तु हयाशी के लिए इस घटना ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य उद्‌घाटित कर दिया और वह था राष्ट्र में बढ़ती जा रही इस अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति का। इस घटना ने ही उन्हें देशवासियों को नागरिक अनुशासन सिखाने तथा उसका पालन करने के लिए एक अभियान स्तर का आन्दोलन चलाने के लिए प्रेरित किया।

उन्होंने देश भर के पत्रकारों, प्रबुद्ध व्यक्तियों, राजनेताओं और बुद्धिजीवियों की एक गोष्ठी आमंत्रित की थी और इस बढ़ती हुई अवांछनीयता पर रचनात्मक दृष्टिकोण से विचार-विमर्श किया। निश्चय किया गया कि एक ऐसा आन्दोलन चलाया जाय जिससे नागरिकों को अनुशासन, नियम निष्ठा, सभ्यता और शिष्टता का व्यवहार करने की प्रेरणा मिले। इस आन्दोलन को सौजन्यता अभिवर्द्धन अभियान का नाम दिया गया। इस गोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के कुलपति कामासेइ, में निचि प्रेस के अध्यक्ष, केमिकल इन्स्टीट्यूट एसेमसीएशन के प्रधान, जापान के भूतपूर्व वित्तमन्त्री, टोकिया महिला विद्यालय की उपकुलपति और अन्य कई विद्वान, राजनेता तथा पत्रकार उपस्थित थे। सभी ने इस आन्दोलन की अपरिहार्य आवश्यकता को अनुभव किया और सौजन्यता को बढ़ावा देने के लिए हर सम्भव प्रयास करने का संकल्प लिया।

सौजन्यता आन्दोलन का प्रथम कार्यक्रम था देश के नागरिकों को अच्छे, अनुकरणीय प्रेरक समाचार और घटनायें भेजने तथा भिजवाने का आग्रह। ऐसे समाचार भेजने वालों तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों को सम्मानित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किये जाने की व्यवस्था की गयी। लोक यश, सम्मान और प्रतिष्ठा में बड़ी शक्ति है यदि इसके लिए लोग बुरे से बुरा काम कर सकते हैं तो अच्छा काम भी कर सकते हैं।

सार्वजनिक जीवन में अच्छी और प्रेरणाप्रद घटनाओं को बहुत कम स्थान मिलता है। समाचार पत्र हत्या, लूटपाट और चोरी-डकैती के समाचारों से ही भरे पड़े मिलते हैं। इस कारण भी लोगों को इस दिशा में कोई खास अभिरुचि नहीं होती है।

हयाशी के इस आन्दोलन द्वारा लोगों को सत्कार्यों के लिए अभिनन्दित किया जाने लगा। अच्छी घटनायें होती ही नहीं है यह बात नहीं है संसार में आज भी प्रेरणाप्रद और अच्छी घटनाओं का बाहुल्य है। हयाशी ने लोगों को ऐसे समाचार भेजने और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों को अभिनन्दित करने का आन्दोलन चलाया तो नागरिकों के दृष्टिकोण भी बदलने लगे। आत्म प्रतिष्ठा के लिए अच्छे काम भी आरम्भ हुए। सौजन्य आन्दोलन को प्रसारित करने के लिए एक समिति नियुक्त की गयी। यह अभी भी टोकियों के काण्डा मुहल्ले में भी कार्यरत है। इस समिति द्वारा अच्छा काम करने वालों को पुरस्कृत किया जाता है और सम्मानित भी किया जाता है।

आत्मरक्षा का उपाय

आज देश का वातावरण बड़ा क्षुब्ध और अशान्त है। द्वितीय महायुद्ध के दिनों में भय और आशंका का वातावरण रहता था। पर चूँकि युद्ध क्षेत्र दूर था और इसलिए बहुत अधिक व्याकुलता नहीं थी और सामूहिक आक्रमण होने पर उससे बचने के सामूहिक उपायों का ढाढ़स था आज उससे भिन्न अवस्था है। "फूट डालो और लूट खाओ" की साम्राज्यवादी नीति ने साम्प्रदायिक मतभेद इस देश में पैदा किये और विभिन्न तरीकों से उन्हें प्रोत्साहित किया। आज वह विष बेलि बढ़ते-बढ़ते चारों ओर छा गई है। राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की अभीष्ट सिद्धि करने के लिए अगुआ लोग तनातनी और कटुता को बढ़ाते ही जा रहे हैं। इस अवांछनीय स्थिति के कारण साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ता जा रहा है। एक वर्ग जब निरन्तर घृणा, कटुता, उत्तेजना, द्वेष उगले तो दूसरा वर्ग कितना ही शान्तिप्रिय क्यों न हो उसकी प्रतिक्रिया से वंचित नहीं रह सकता। ढेला फेंकने पर शान्त तालाब में भी लहरें उठने लगती हैं। कुएँ की आवाज के समान मनुष्य स्वभाव भी क्षोभवान है। दूसरों के व्यवहार की प्रतिक्रिया से उत्तेजना उत्पन्न होने से मनुष्य अपने आपको बचा नहीं सकता। दूसरों के दुर्व्यवहारों से जो कष्ट और क्लेश मिलता है उससे बचने के लिए आत्मरक्षा की दृष्टि से भी दुर्व्यवहारों के विरोध में कुछ न कुछ उपाय करना पड़ता है। आक्रमण की प्रतिक्रिया भी होती है, कुचल जाने पर चींटी भी काटने को तैयार हो जाती है।

हिन्दू-मुसलिम समस्या नाम की वास्तव में कोई समस्या नहीं है। भारतवर्ष में सैकड़ों जातियाँ बसती हैं। इनमें आपसी रोटी-बेटी के व्यवहार नहीं हैं, एक-दूसरे से छूताछात भी मानती हैं हिन्दू धर्म में अनेकों परस्पर विरोधी रीति-रिवाज, विचार एवं मान्यताएँ प्रचलित हैं फिर भी सब आपस में परस्पर प्रेम-पूर्वक सदियों से साथ-साथ रहते हुए चले आ रहे हैं। सैकड़ों जातियाँ, उप-जातियाँ, सम्प्रदाय, मत-मतान्तर, भाषा, भेष आदि का होना कभी कलह या पृथकता का कारण नहीं बना। महाराष्ट्र, पंजाब, बंगाल, मद्रास आदि के निवासियों में कई दृष्टियों से काफी अन्तर दिखाई पड़ता है पर उस अन्तर के कारण कोई किसी से न तो लड़ता-झगड़ता है और न पृथकता का दावा करता है। एक-दूसरे को दुश्मन समझने और छोटी-छोटी बातों की आड़ लेकर कोई किसी की जान का ग्राहक नहीं बनता। शान्तिप्रियता भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग है।

भारत के हिन्दू और मुसलमानों में एक ही रक्त है। एक ही जाति और एक ही वंश के हैं। धर्म या मजहब को बदल लेने मात्र से आज का भाई कल दुश्मन या विदेशी नहीं हो सकता। धर्म व्यक्तिगत रुचि की वस्तु है, उसे बदला जा सकता है पर इतने मात्र से उस प्रकार की पृथकता के दावे नहीं किये जा सकते जैसे कि लीगी नेता आजकल कर रहे हैं।

आज के युग में कूटनीति का बोलबाला है। अपनी मनमानी करने के लिए चाहे जिस पर चाहे जैसे इल्जाम लगाकर सीधी-साधी जनता को भड़काकर विद्वेष और घृणा उत्पन्न करना और उन परिस्थितियों से लाभ उठाकर खुद नेता बन बैठना यह आज की राजनीति का बेढब जादू है। इस जादूगरी ने सीधे-साधे लोगों को दिक्भ्रम करा दिया है। भाई-भाई को दुश्मन मान बैठा है। एक-दूसरे का गला काटने के लिए अकारण कटिबद्ध हो रहा है।

विगत कई वर्षों से साम्प्रदायिक दंगों का जोर बढ़ा है। अभी हाल में अहमदाबाद, इलाहाबाद, कलकत्ता, बम्बई, ढाका आदि में जो दंगे हुए हैं, उनके रोमांचकारी वृत्तान्तों को सुनकर कलेजा काँप जाता है। निर्दोष बालकों, वृद्धों महिलाओं के साथ जो नृशंसता बरती गई उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है, मनुष्य जाति पशुता से अभी बहुत कम ऊपर उठ सकी है। जो लोग इस प्रकार की पशुता उभाड़ते हैं, भड़काते हैं और उससे अपनी नेतागीरी को मजबूत बनाने जैसे नीच काम करते हैं, उनकी किन शब्दों में क्या कहा जाय यह समझ में नहीं आता।

घृणा और द्वेष का निरन्तर प्रचार और विस्तार करने वाले नेता चैन की छानते हैं और निर्दोष जनता को उसका घातक परिणाम भुगतना पड़ता है। कानून, लड़ने वालों को तो पकड़ता है पर लड़ाने वालों के विरुद्ध कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। इस स्थिति को भारतीय जनता का दुर्भाग्य ही कह सकते हैं। भगवान इस दुर्बुद्धि से न जाने कब तक हमें पार करेंगे।

आज इस दुर्बुद्धि के कारण चारों ओर अशान्ति, आशंका और भय का वातावरण छाया हुआ है। जिन नगरों में साम्प्रदायिक विद्वेष वृद्धि पर है, वहाँ के शान्ति प्रिय लोगों को आकस्मिक विपत्ति की आशंका हर घड़ी बनी रहती है। मुसलिम लीग 'सीधी कार्यवाही' के नाम पर लोगों से क्या कराने जा रही है, इसका कुछ आभास तभी से मिलने लगा है जब से लीगी नेता चंगेजखाँ को धमकी दे रहे हैं और 'अहिंसा' पर अविश्वास प्रकट कर रहे हैं। वर्तमान राजनैतिक घटना चक्र के कारण साम्प्रदायिक उपद्रवों की आशंका बहुत बढ़ गई है।

जनता की जानमाल को गुण्डागीरी के आक्रमण से बचावे यह सरकार का कर्तव्य है। पर साथ ही हमें स्वयं भी सतर्क, सावधान रहना चाहिए और आत्मरक्षा के लिए सभी शान्तिमय साधनों से अपने आपको प्रस्तुत रखना चाहिए। थोड़े-से संगठित बदमाश, असंगठित विपुल जन समूह को आतंकित कर देते हैं। अक्सर दस-पाँच गुण्डे उपद्रव आरम्भ करते, उस उपद्रव को देखकर सब लोग भाग खड़े होते हैं, बाजार बन्द हो जाते हैं और लोग अपने-अपने घरों में भागकर छुप जाते हैं। इस भगदड़ का वे मुट्ठी भर बदमाश लाभ उठाते हैं और लूटमार, अग्निकाण्ड, हत्या आदि के मनमाने उपद्रव निधड़क होकर करते हैं। उन्हें इस प्रकार का खुला अवसर देने का बहुत कुछ दोष इन भगदड़ करने वालों पर भी है। इस भगदड़ का कारण आपस में एक-दूसरे के सहयोग पर अविश्वास होना है। एक निर्दोष व्यक्ति सताया जा रहा हो तो उसकी सहायता करने की बजाय चुप रहने या भागने का विचार बहुत ही अनैतिक है। निर्दोष की सहायता करना और आक्रमणकारी को रोकना यह हर एक विचारवान व्यक्ति का कर्तव्य है, बिना इस कर्तव्य को पालन किये संगठित गुण्डागीरी को नहीं रोका जा सकता। इसलिए हर जगह इसके संगठन किये जाने चाहिए कि दूसरों की परवाह न करके केवल मात्र अपनी ही सुरक्षा की तरकीब सोचने की अपेक्षा सामूहिक सुरक्षा के लिए तत्पर रहेंगे। अपनी-अपनी बात सोचने से कोई किसी की मदद को नहीं आता और सब पिटते हैं। सबकी रक्षा में अपनी रक्षा मानने से सब के साथ-साथ खुद भी बच जाते हैं। अकेलेपन में जितनी हानि की आशंका है, सामूहिकता में वह बहुत कम हो जाती है।

प्रेम, सहयोग, सद्भाव, संगठन सदा ही अच्छे होते हैं क्योंकि यह आध्यात्मिक गुण हैं। पर आजकल साम्प्रदायिक अशान्ति के दिनों में तो हमें इन्हें पूरी तरह चरितार्थ करके अपने जान माल की बचत कर सकते हैं और साम्प्रदायिक उपद्रवकारियों के आक्रमणों से बच सकते हैं। सामूहिक चौकीदारी, सामूहिक स्वयं सेवा, सामूहिक रक्षा के लिए सदा तत्परता यह सामूहिकता का आध्यात्मिक कार्यक्रम शीघ्र से शीघ्र हमारे व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त होना चाहिए। आत्म रक्षा की शिक्षा उसके उपयुक्त साधनों का संग्रह तो आवश्यक है ही पर सबसे आवश्यक और सर्व प्रधान सामूहिक सहयोग की भावना है, उसे हमें बढ़ाना चाहिए। इस संघ शक्ति की ढाल के नीचे से हम आततायी तत्त्वों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। हमें अपने संगठन की आज सबसे अधिक आवश्यकता है।

आततायियों को रोका जाय

हमारे चारों ओर साम्प्रदायिक गुण्डेपन की बाढ़ सी आ गई है। घटनाओं का उल्लेख इन पंक्तियों में करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती क्योंकि हर जगह इन दिनों नृशंस आततायीपन की घटनाएँ घटी हैं और घट रही हैं। दुधमुँहे बालक, कलिका-सी बालिकाएँ, करुणा की मूर्ति माताएँ, शय्या सेवी वयोवृद्ध, रोगी, असमर्थ तथा सर्वथा निर्दोष व्यक्तियों की बड़ी भारी संख्या में निर्मम हत्याएँ हुई हैं। इस पैशाचिकता को देखकर रावण, कंस और हिरण्यकश्यपु तो क्या साक्षात् शैतान को भी अपनी तुच्छता माननी पड़ी है। गुण्डों ने आततायीपन में उन सबको मात कर दिया है।

हत्या, लूट, अग्निकाण्ड, अपहरण, बलात्कार की धूम मचाने वाले आततायी बाजारों में मूँछों पर ताब देते हैं। हत्या के समय छटपटाते हुए प्राणियों का दृश्य देखकर उनका कलेजा ठंडा होता है, अग्निकाण्ड की आतिशबाजी से मनोरंजन होता है। अपहरण और बलात्कार की मौज से उनकी बाछें खिल उठती हैं। लूट में तो अब की बार उनके हाथों ऐसी फसल लगी है कि पीढ़ियों तक के लिए वे निश्चिन्तता अनुभव करते हैं। इससे बड़ा, इतने अधिक लाभों वाला व्यवसाय भला और क्या हो सकता है ? इस लाभ को वे तब तक नहीं छोड़ सकते, जब तक उन्हें कोई शक्ति छोड़ने के लिए मजबूर न करदे।

दुर्भाग्य से भारत की राजनीति में कुछ समय से ऐसा दौर आया है कि उसमें गुण्डेपन को प्रोत्साहन दिया गया है। सन् १९२१ से लेकर १९४७ तक देशवासियों ने विविध मोर्चों पर अँग्रेजी सरकार से लड़ाई लड़ी। सरकार ने इस लड़ाई को विफल बनाने के लिए साम, दाम, दण्ड के अतिरिक्त भेद नीति से भी खूब काम लिया। साम्प्रदायिक वैमनस्य को प्रोत्साहन देना उसकी नीति थी। इस कार्य के लिए दोनों ही जाति के गुण्डों को उकसाया जाता था। साधारण जनता में हिन्दू मुसलिम द्वेष का कोई आधार न था तो भी यह गुण्डे कोई न कोई बहाना लड़ने के लिए निकाल लेते थे और झगड़ा करा देते थे। रिश्वत खोर अफसरों के लिए यह झगड़े चाँदी बटोरने के स्वर्ण अवसर सिद्ध होते थे, इसलिए भी वे उन्हें पालते-पोसते रहते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उधर लीगी नेताओं ने साम्प्रदायिक वैमनस्य का धुआँधार प्रचार किया। राजनैतिक महत्त्वाकांक्षाओं के लिए उन्होंने गुण्डेपन को उकसाया। उन्होंने औरंगज़ेब, नादिरशाह, और चंगेजखाँ के दृश्य उपस्थित कर देने की धमकी दी। इशारा मिलने की देर थी, देश भर में मुट्ठी भर बदमाशों ने औरंगजेबी कत्लेआम के दृश्य उपस्थित कर दिये। यह दृश्य इतने भयानक थे कि छुटकारा पाने के लिए पाकिस्तान मंजूर कर लेना पड़ा।

इतना सब हो जाने के बाद आशा थी कि विभाजन के बाद शान्ति स्थापित हो जायगी। पर वह आशा सफल होती नहीं दीख रही है। कारण यह है कि जनता के रोष, क्रोध और भावों पर तो काबू करना सहज है पर विजयोन्मक्त गुण्डों को एक बार सिर पर चढ़ा लेने के बाद उन्हें रोकना कठिन है। नोआखाली की प्रतिक्रिया बिहार में हुई, उसे दमन एवं प्रचार से एक सप्ताह में रोक दिया गया। पर पाकिस्तानी प्रान्तों में आज जो हो रहा है, वह हम सबके सामने है। उसे रोकना आसान नहीं है।

गुण्डेपन की वृद्धि देश के लिए एक भारी संकट है। बाहरी शत्रु के आक्रमण की अपेक्षा आन्तरिक शत्रुओं का हमला अधिक भयंकर होता है। आज आततायियों को आश्रय मिल गया है। उनकी पीठ ठोंकी जा रही है। वे अपनी जाति वालों से प्रोत्साहन, सहायता और सम्मान प्राप्त कर रहे हैं। यदि अनियंत्रित गुण्डापन रोका न गया तो इस देश को घोर दुर्भाग्यपूर्ण अन्धकार के दलदल में फँसना पड़ेगा। इसमें न हिन्दुओं का भला होगा न मुसलमानों का।

साम्प्रदायिक लड़ाई के प्रत्यक्ष आधार फिलहाल समाप्त हो गये हैं। पाकिस्तान ने जो माँगा था उनकी मुँहमाँगी मुराद पूरी हो गई। दोनों पक्षों ने बँटवारा मंजूर कर लिया। फिर सीधी कार्यवाही क्यों चालू रहनी चाहिए ? यदि कोई और महत्वाकांक्षा शेष हो तो उसको पूरा करने के दूसरे तरीके हो सकते हैं। कई बार लड़ना जरूरी हो जाता है तो लड़ते भी हैं परन्तु लड़ाई में भी मनुष्यता और नैतिकता के नियम बरते जाते हैं। लड़ने वाले आपस में लड़तें हैं पर शत्रुओं के स्त्री-बच्चों के साथ नृशंसता नहीं बरती जाती। आज की गुण्डागीरी तो मनुष्य जाति के लिए अभिशाप है। रास्ता चलते परदेशी की बगल में छुरा मार कर भाग जाना, असहाय स्त्री-बच्चों के टुकड़े-टुकड़े कर देना, अल्पसंख्यकों का कत्लेआम करना, उनकी सम्पत्ति को भस्म कर देना ऐसा तो बर्बर जातियों में भी नहीं होता। इन कुकृत्यों से यदि किसी को कोई सफलता मिल भी जावे तो वह न तो अधिक दिन ठहर सकती है और न उससे कोई सुख-शान्ति पा सकता है।

जो लोग आज पैशाचिक कृत्यों के लिए गुण्डों, तस्करों, उग्रवादियों को उकसा रहे हैं, बढ़ावा दे रहे हैं, वे भली प्रकार समझलें कि इस प्रकार आस्तीन में पाले हुए साँप एक दिन उन्हें भी डसेंगे। हत्यारे नर पिशाचों का कोई धर्म नहीं, कोई मजहब नहीं, कोई जाति नहीं। जो चीत्कार करती हुई करुणामयी माता की गोदी से उसके लाल को छीनकर छुरे से गोद डाल सकता है, बालिकाओं, स्त्रियों के टुकड़े-टुकड़े काटते हुए मनोरंजन अनुभव करता है, ऐसा नरराक्षस धर्म और जाति से हजारों कोस दूर है। वह आज दूसरी जाति वालों के साथ जो व्यवहार करता है कल किसी भी छोटे-मोटे स्वार्थ के लिए ऐसे ही कृत्य अपनी जाति वालों के साथ करेगा। जिस बाघ की डाढ़ में मनुष्य के खून का चस्का लग जाता है, वह सदा आदमी के माँस की तलाश में रहता है और जब तक मर नहीं जाता मनुष्यों का शिकार करता रहता है। यह नरभक्षी आततायी दूसरी जाति वालों को ही सतावेंगे इसकी कोई गारण्टी नहीं। चोरी, तस्करी, डकैती, लूट, हत्या, में जिनकी डाढ़ लपक गई है वे अच्छे नागरिक और अच्छे पड़ौसी की तरह भविष्य में रह सकें यह मुश्किल है। ऐसे लोग जहाँ भी रहेंगे वहीं संकट उत्पन्न करेंगे।

इस आततायीपन को रोकें

साम्प्रदायिकता, अराजकता एवं गुण्डागीरी को रोकने के लिए दो बातें आवश्यक हैं। (१) मजबूत सरकार की कठोर नीति, (२) जनता में इनके प्रति घोर घृणा और उनके दमन का दृढ़ निश्चय। बिना जातीय भेद-भाव के ऐसे नर-पिशाचों का दमन किया जाना चाहिए। पिछले दिनों मेवस्तान आदि के उपद्रवों को रोक सकने में पं० नेहरू ने इसलिए असमर्थता प्रकट की थी कि उनके हाथ सीमित सत्ता है। पर अब तो वैसी बात नहीं है। हिन्दू मुसलिम एकता बड़ी अच्छी चीज है, पर वह इस तरह नहीं हो सकती कि किसी जाति के गुण्डों के साथ रिआयत या ढिलाई बरती जाय। रिआयत को गुण्डे कभी उदारता नहीं समझते वरन् इसे दूसरे पक्ष की कमजोरी और अपनी हेकड़ी का स्वाभाविक परिणाम मानते हैं। इससे उनके हौंसले बढ़ते हैं और वे दूने उत्साह से एकता को नष्ट करने वाले काम करते हैं। सरकार को इस दिशा में अत्यन्त कठोर होना चाहिए।

जनता अक्सर गुण्डों का विरोध करते हुए डरती है। उसे भय होता है कि विरोध करने पर वे क्रुद्ध होकर आक्रमण न कर बैठें। यह कमजोरी अत्यन्त घातक तथा दुष्टता को बढ़ाने वाली है। इस कमजोरी को जितनी जल्दी निकाला जा सके उतना ही अच्छा है। उनका संगठित विरोध होना चाहिए। जो लोग उन्हें प्रोत्साहन एवं सहयोग करें उनकी भी खबर ली जानी चाहिए। महात्मा शेखसादी कहा करते थे कि जो "जो साँप को तरजीह देता है वह इन्सानों के साथ दुश्मनी करता है।" आततायियों को न तो प्रमुखता दी जानी चाहिए और न उनसे डरना चाहिए। उनके विरुद्ध निर्भय होकर गवाही देनी चाहिए और राजदंड दिलवाने की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रत्येक नागरिक को एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चे पुलिस मैन की तरह उत्साह दिखाना चाहिए। यदि सामूहिक रूप से जनता गुण्डागीरी के विरुद्ध जेहाद बोल दे और डरना छोड़ दे तो आततायीपन का बहुत जल्द अन्त हो सकता है।

एक बात स्पष्ट है कि हमें आततायीपन का जवाब स्वयं आततायी बनकर किसी भी दशा में नहीं देना है। अत्याचार के विरुद्ध हर संभव उपाय से लड़ना और उसका अन्त करना वीरोचित मार्ग है। गुण्डों को उनकी करनी का मजा चखाने के लिए हर वैध उपाय काम में लाया जा सकता है। परन्तु यह कार्य स्वयं भी आततायी बनकर नहीं किया जा सकता। कोई हमारे स्त्री-बच्चों का वध करता है तो आत्मरक्षा के लिए उस वधिक का जिस तरह भी मुँह तोड़ा जा सके उचित है, पर उसके स्त्री-बच्चों से या उसकी जाति के अन्य निरपाधों को सताया जाना किसी प्रकार उचित नहीं। कैसी ही उत्तेजनाजनक स्थिति सामने क्यों न आवे विवेक और मनुष्यता को हाथ से नहीं जाने देना है। बिना खुद आततायी बने भी आततायियों का मुकाबिला किया जा सकता है। निर्भयता, साहस, बहादुरी एवं संगठन की शक्ति इतनी महान है कि उससे गुण्डेपन को आसानी से परास्त किया जा सकता है।

यह गुण्डे न केवल नृशंसतापूर्वक धन-जन की हानि कर रहे हैं वरन् आई हुई स्वतंत्रता को हाथ से निकल जाने देने और लम्बे काल तक देश को भारी दलदल में फँसा देने का आयोजन कर रहे हैं। विदेशों की शोषक शक्तियाँ यही चाहती हैं कि यह देश साम्प्रदायिक गृह युद्ध का अखाड़ा बन जाय फलस्वरूप उसे अप्रत्यक्ष रूप से, नई तरह की गुलामी के बन्धनों में पुनः कसलें और मनमाना शोषण करें। इन चालों को सफल बनाने में यह गुण्डाशाही मैदानी मोर्चा लड़ रही है। इसे विफल न किया गया तो जीती बाजी हाथ से निकल जायेगी।

पाकिस्तानी प्रान्तों से अत्याचारों की रोमांचकारी खबरें आ रही हैं। उन्हें सुनकर भी हमें अपना विवेक न खोना चाहिए। इन प्रान्तों के असहाय बन्धुओं की रक्षा के लिए भारतीय सरकार और भी अधिक जोरदार कदम उठावे इसके लिए उस पर दबाव डालना चाहिए साथ ही उसे मजबूत बनाने के लिए हर प्रकार का सहयोग भी करना चाहिए। जनता द्वारा जनता से बदला लिया जाना अदूरदर्शिता है। यह कार्य सरकार को ही करना चाहिए। भारतीय सरकार पाकिस्तानियों को इसके लिए विवश करे कि वह अपने क्षेत्र की गुण्डागीरी रोकें अन्यथा ढील देने का दुष्परिणाम उसे भुगतना पड़ेगा।

हमें अपने अन्दर छिपे हुए उस पौरुष एवं पराक्रम को जागृत करना होगा, जिससे गुण्डेपन का मुँह कुचला जाता है। आइए, मनुष्यता, मातृभूमि इज्जत आबरू एवं जान माल अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने सोये हुए शौर्य को जागृत करें।

बदला किससे लें ?

आततायियों ने जिस बर्बरता, क्रूरता और नृशंसता के साथ हत्याकाण्ड मचाये हैं, उनकी मिसाल मानव जाति के इतिहास में मिलना कठिन है। इस पैशाचिकता को देख कर कंस, रावण और साक्षात शैतान को लज्जित होना पड़ा है। निर्दोष, मासूम, असहाय, शरणागत, रक्षा के लिए त्राहि-त्राहि पुकारते हुए, भय से काँपते हुए, दया के लिए झोली पसारे हुए बाल वृद्धों पर, माता पुत्रियाँ पर, जिस निर्दयता और क्रूरता के साथ खंजर चलाये गये हैं, उस बर्बरता को देखकर यही कहना पड़ता है, इन धर्मान्ध लोगों तक धर्म की गन्ध भी नहीं पहुँची है, धर्म ने इनकी आत्मा का स्पर्श तक नहीं किया है। पुस्तकों में नर-भक्षी राक्षसों की कथाएँ पढ़ी जाती थीं उन्हें किसी ने देखा न था, पर आज वह असुरत्व बाढ़ की तरह उबल पड़ा है और उसने जो दानवी कृत्य उपस्थिति किये हैं उसकी भयंकरता को देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

आज हर व्यक्ति के मस्तिष्क में इस बर्बरता के प्रति विक्षोभ की आग जल रही है, हर व्यक्ति इस शैतानी से सन्न रह गया है। हर व्यक्ति सोचता है कि मनुष्यता को, इंसानियत को निगलने के लिए मुँह फाड़कर दौड़ी आ रही इस पैशाचिकता का कैसे अन्त किया जाय ? क्रिया की प्रतिक्रिया होती है-आत्मरक्षा के भाव, इस बर्बरता के प्रति रोष, क्रोध और प्रतिशोध के लिए हुए जनसाधारण के हृदयों में उबल रहे हैं। हमे देखते हैं कि मनुष्यों के मस्तिष्क में आज वह एक ही प्रश्न प्रधान रूप से घूम रहा है, गूँज रहा है।

जिनके माता-पिताओं के दुधमुँहे सुकुमार बालक उनके हाथों से छीनकर उनकी आँखों के आगे कत्ल किए गए हैं—जिन्होंने अपने भाई-बहिन, पत्नी-पति, सगे-सम्बन्धियों को गमाया है, अपनी जन्म भर की कमाई को लुटते और मिटते देखा है, जो अपने सुनहरी जीवन व्यवस्था को गँवाकर दाने-दाने के मुँहताज बन रहे हैं, उनके हृदयों में जो हाहाकार मच रहा है उसकी विषमता का अन्दाज लगाना कठिन है। जिन लोगों ने प्राण गँवाते समय दुसह पीड़ा को भुगता है, उसकी तो कल्पना करना भी मस्तिष्क की शक्ति से बाहर है। यह प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ आज मानव मनों में भैरवी हुंकार के साथ नृत्य कर रही हैं।

जनता के मनों में जो उद्वेग है उसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में भी जिसे उद्वेग न आवे उसे या तो पाषाण कहा जा सकता है या परमहंस योगी। मनुष्य प्राणी की मानसिक रचना उसी आधार पर हुई है कि उसे शैतानियत के विरुद्ध क्रोध आता है। यह क्रोध इसलिए आता है कि उस उत्तेजना के द्वारा खतरनाक तत्वों से वह लड़ पड़े। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार आए दिन संघर्षों की सृष्टि होती रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। पक्के मकान और कुएँ तक ध्वनि की प्रतिध्वनि उपस्थित करते हैं। गाली का जबाव गाली से देते हैं, पानी में ईंट फेंकने पर पानी उछलता है फिर यह संभव नहीं कि जिनके हृदय में आघात लगे हैं, वे प्रत्युत्तर की बात न सोचें।

"क्षमा करो और भूल जाओ" की शिक्षा बड़ी उत्तम है पर वह उस अवसर पर दी जाती है, जब आक्रमणकारी शक्तियाँ घुटने टेक देती हैं, झुके हुए के प्रति कटुता रखने की अपेक्षा उसे क्षमा कर देना ही बड़प्पन है। 'शान्त रहो और सहन करो' का उपदेश में या तो प्रतिकार की असमर्थता होती है या युद्ध नीति के अनुसार समय की प्रतीक्षा की जाती है। तपस्वी, ब्रह्मपरायण, बीतराग महात्मा भी अपनी साधना के लिए कठोर तप करते हुए तितीक्षा भावना से 'शान्त रहो और सहन करो' का आदर्श अपनाते हैं। जनसाधारण के लिए यह कठिन है कि वह उत्तेजनात्मक वातावरण में इन आदर्शों का अक्षरशः पालन करें। हम भी ऐसी आशा किसी से नहीं करते और न ऐसे उपदेश करते हैं।

अनीति को देखकर क्रोध आना स्वाभाविक है। पर इस क्रोध में एक अस्वाभाविक दोष छिपा रहता है, वह यह कि क्रोधी अन्धा हो जाता है, उसकी विवेक बुद्धि, अन्तर्दृष्टि कुंठित हो जाती है तदनुसार वह यह निर्णय नहीं कर सकता कि अपने शत्रु पर कहाँ और किस प्रकार प्रहार करूँ। असली शत्रु को पहचानना भी उसके लिए कठिन हो जाता है, ऐसी दशा में उसके प्रहार प्रायः गलत स्थान पर होते हैं और उस गलत प्रहार का परिणाम भी गलत ही होता है। इस प्रकार क्रोधान्ध का दुहरा घाटा रहता है एक तो पहले ही अनीति के कारण हानि हो चुकी थी, दूसरे गलत प्रतिशोध से वह प्रहार अपने ही ऊपर पड़ता है और दूनी हानि का कुफल भोगना होता है। इस खतरे से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः ऐसे कदम उठ जाते हैं जिनसे अनीति के उन्मूलन का लाभ तो दूर उलटी एक नई विपत्ति सिर पर आ पड़ती है, जिससे क्रोधान्ध व्यक्ति अपनी शक्तियों सहित नष्ट हो जाता है। इसी खतरे को ध्यान में रखकर अध्यात्म के आचार्यों ने क्रोध की निन्दा की है पर विवेकपूर्वक अन्याय के प्रतिकार को धर्मयुद्ध कहकर प्रोत्साहित किया है।

हमें यह देखना है कि आज के बर्बर हत्याकाण्डों का उत्तरदायी असली शत्रु कौन है और उससे पूरा-पूरा प्रतिशोध लेने के लिए किन हथियारों, किन साधनों का प्रयोग करना चाहिए ? हम वर्तमान दंगों को हिन्दू-मुसलिम संघर्ष नहीं मानते क्योंकि हिन्दू धर्म या मुसलिम धर्म का एक भी सच्चा अनुयायी इन पैशाचिकता भरे कृत्यों को नहीं कर सकता। हमने कुरान को दसियों बार बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ा है, वेदों का बीस साल से निरन्तर स्वाध्याय करते हैं एवं सिखों के ग्रन्थ साहब से भी हम अपरिचित नहीं हैं। इनमें से किसी में भी ऐसी शिक्षाएँ नहीं है वरन् इसके प्रतिकूल दया, प्रेम, उदारता, रक्षा, सेवा, सहायता, क्षमा आदि के उपदेश भरे पड़े हैं। जिन्होंने यह कृत्य किये हैं उनको किसी धर्म का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। फिर उनकी करतूतों को हिन्दू-मुसलिम संघर्ष किस प्रकार कहा जा सकता है ?

हम राजनैतिक घटना चक्र में जाने की जरूरत नहीं समझते और न पिछले दिनों जो लीग और काँग्रेस के नेताओं में जो तू-तू मैं-मैं हुई है उसका कौन अधिक दोषी है इस पर प्रकाश डालना चाहते हैं। वर्तमान हत्याकाण्डों में किस जाति ने किस जाति के लोगों को अधिक संख्या में एवं अधिक निर्दयता से मारा इसका विस्तार करने की भी कुछ आवश्यकता नहीं समझते। हमारी दृष्टि में निश्चित रूप से यह असुरत्व ने, पैशाचिकता ने, दोनों ही जाति के लोगों को आच्छादित किया है, यह प्रश्न महत्व का नहीं कि कौन उसका अधिक शिकार हुआ कौन कम। घृणा, द्वेष, अज्ञान, अनीति, क्रूरता और पशुता के तूफान में लोगों की आँखें भिंच जाती हैं और वे न करने योग्य स्थान पर प्रहार करते हैं। जिसके बच्चे का कत्ल जिसने किया है वह उसको मार डाले तो यह समझ में आ सकता है पर जिसने कत्ल नहीं किया है उसके बच्चे पर हाथ उठाना कौन-सा न्याय है ? यदि उसी ने कत्ल किया भी हो तो भी उसका बच्चा तो सर्वथा निर्दोष है निर्दोषों पर हमला करना न तो बदला है और न अनीति को रोकने का मार्ग। यह तो वैसा ही है जैसे कोई शराब पीकर उत्पात मचा रहा हो तो उसका बदला लेने के लिए खुद भी शराब पीकर वैसे ही कृत्य करने लगे। इससे तो जिस अनीति के विरुद्ध हमारे मन में घृणा थी, उसी को स्वयं भी अपना लेने से हम स्वयं को भी घृणास्पद बना लेंगे।

मनुष्य मिट्टी का पुतला है, उसके ऊपर विचार तत्वों का प्रभुत्व रहता है। जिस प्रकार के विचार जिस पर छाये रहते हैं वह उसी साँचे में ढल जाता है। निखिल आकाश में सत् और असत् की दो धाराएँ बहती हैं। जब असत् की, पाप की, शैतानी की धारा जोर पकड़ जाती है तो उससे अनेकों मनुष्यों के मस्तिष्क विकृत हो जाते हैं। आज वही विकृति ताण्डव नृत्य कर रही है। हमारी असली शत्रु यही ताड़का है। इसी पूतना ने हमारे बालकों को खाया है। इसीसे हमें बदला चुकाना है, इसी ढुंढ़रा राक्षसी को होली में जलाना है।

जहाँ घृणा, अहंकार, असमानता, फूट, स्वार्थ, अज्ञान एवं निर्बलता होती है, वहाँ असुरता को अपनी घात लगाने का अवसर मिलता है। इतनी विशाल जाति पर बाहर की कोई शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती। उसको खतरा तो आन्तरिक विकृतियों से है। हमने अपनों को पराया बनाया, उन्हें बहिष्कृत किया, अपमानित किया उस विकृति से दसरों के मन में घृणा उपजी। इस घृणा ने शत्रुता का रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारण करके हमें दो भागों में बाँट दिया। हमारी फूट, स्वार्थपरता और असावधानी ने हमें अनुचित रीति से दबाया। यह आन्तरिक निर्बलता जब तक रहेगी तब तक हमें उन आघातों से छुटकारा न मिलेगा जो एक हजार वर्ष से बराबर लग रहे हैं।

हम जानते हैं कि हर जाति का हर व्यक्ति उद्विग्न है और शत्रु से बदला लेने की सोचता है। इस विषम घड़ी में हम जरा-सा चूकें तो सर्वनाश की ओर दौड़ पड़ेंगे। मनुष्य को मारने से प्रयोजन सिद्ध न होगा। सन्निपात रोग से ग्रसित रोगी को या भूतावेश से उन्मत्त व्यक्ति को मार डालने की जरूरत नहीं, जरूरत है सन्निपात और भूत को मार भगाने की। हमें यही करना चाहिए। हमारे आत्मीयों की, मनुष्य के प्राणों की, श्रम उपार्जित जीवन उपकरणों की, सुख शान्ति की, सद्भावों की, निर्मम हत्याएँ हुई हैं। इन हत्याओं का हम बदला लेंगे, अविवेक ग्रस्त पागलों से नहीं सन्निपात ग्रस्त धर्मान्धों से नहीं, उनके निर्दोष बाल-बच्चों से भी नहीं, उस हत्यारी असुरता से बदला लेंगे जिसने हमें बारह बाट कर दिया, जिसने निर्दोषों के रक्त से तर करके इस देवभूमि को कलंकित कर दिया। इस सूर्पणखा की नाक हमारी संघ शक्ति और जातीय स्वस्थता की छुरी से कटेगी। आइए, इस छुरी को तेज करें।

आइए, हम घायलों के, विपदाग्रस्त पीड़ितों को घावों पर अपनी अकृत सहानुभूति का, अपनी अधिकतम सहायता का मरहम लगाकर उन्हें सान्त्वना दें। जन साधारण के मस्तिष्कों में भरे हुए असुरता के उन्माद से लड़ें और ऐसी सतोमयी प्रचंड शक्तियों का आविर्भाव करें जिनके आगे आज घमंड से विजयोल्लास का अट्टहास करने वाली असुरता को नाक रगड़नी पड़े, आत्म समर्पण करना पड़े। आज का अपना जोश हम अनुपयुक्त मार्ग में व्यय नहीं करेंगे वरन् उस मार्ग में लगावेंगे जिससे भविष्य में इस प्रकार के अवसर आना ही असंभव हो जायँ।

असुरता का बढ़ना हर धर्म के लिए, हर जाति के लिए, हर प्रदेश के लिए खतरा है। इस खतरे से मनुष्यता के अस्तित्व के लिए भय उत्पन्न हो गया है। इस विषम घड़ी में मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि बिना जाति धर्म का विचार किये शैतानी शक्तियों को निर्मूल करने उन्हें कुचल देने के लिए पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करें।

घनिष्टता तो साधें, पर विवेक की कसौटी पर

रोग बढ़ने पर चिकित्सा में भारी खर्च करना पड़े, भारी मुसीबत उठानी पड़े, काम-काज रुके और परिजनों, सम्बन्धियों को चिन्ता में पड़ना पड़े। इससे पूर्व यही अच्छा है कि समय रहते ऐसा रहन-सहन अपनाया जाय, जिसके कारण रोग होने की संभावना ही न रहें। यही नीति अपराधी प्रवृत्ति पनपने से पूर्व अपनायी जानी चाहिए। जिस वातावरण में दुष्प्रवृत्तियों का उत्पादन और अभिवर्द्धन होता है, उन्हें पनपने नहीं दिया जाना चाहिए। जहाँ पनप रही हैं और उन अड्डों पर नियन्त्रण करना अपनी शक्ति के लिए संभव न हो तो इतना तो करना ही चाहिए कि अपने को-अपनों को उस माहौल के प्रभाव से यथासंभव दूर ही रखना चाहिए। रुचि न ली जाय, सहयोग न दिया जाय तो दूषित प्रभावों से बहुत हद तक बचा जा सकता है। आत्म रक्षा की सामर्थ्य तो सभी में होती है। रुचि न लेने पर अनाचारियों के चंगुल से सरलतापर्वूक बचा जा सकता है।

सुरक्षा और पुनर्निर्माण के लिए

हम एक लम्बी अवधि के उपरान्त पराधीनता के पाशों से मुक्त हो रहे हैं। इस मुक्ति के साथ-साथ अनेकों उत्तरदायित्व ऊपर आये हैं। कुचक्री शैतान इस स्वाधीनता को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, इन षड्यंत्रों और आक्रमणों का मुकाबिला करके इस इतने बलिदानों के पश्चात प्राप्त हुई स्वतंत्रता की रक्षा करना है। दूसरी ओर अपनी शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक निर्बलताओं को दूर करना है। शोषकों के हाथ में लम्बे समय तक हमारी राजनैतिक बागडोर रही है इसका प्रभाव व्यापक हुआ है। चतुर्मुखी अवनति हुई है। हमारी जातीय एकता एवं संस्कृति की दीवारें हिल गई हैं, उनमें दरारें पड़ गई हैं। चारों ओर उजाड़ पड़ा हुआ है। इसे हरा-भरा बनाये बिना जनता को वह सुख-शान्ति नहीं मिल सकती जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ मिलनी चाहिए।

आक्रमण करना आसान है पर आक्रमणकारियों के इरादों को विफल कर देने का आयोजन कठिन है। किसी चीज को तोड़ना, बिगाड़ना आसान है पर उसका निर्माण करना कठिन है। आज राष्ट्र के सामने (१) सुरक्षा और (२) पुनर्निर्माण के दो प्रधान कार्य उपस्थित हैं। विध्वंसक, दुष्टात्मा, स्वार्थी, दुर्जनों के यह प्रयास जारी हैं कि भारत की शक्ति, प्रतिष्ठा एवं सम्पन्नता बढ़ने से पूर्व ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। यह कुचक्री, गुप्त और प्रकट रूप से भीतर और बाहर से अपनी बातें चला रहे हैं। इनको विफल बनाने के लिए बड़ी चतुरता, दूरदर्शिता, दृढ़ता और तत्परता की आवश्यकता है। साथ ही उजड़े हुए इस उपवन को फिर से हरा-भरा करने के लिए बड़ी मात्रा में आयोजन करने हैं, जिससे गरीबी, बीमारी, अविद्या, अनैतिकता, अभाव, अन्याय आदि की चक्की में पिसती हुई जनता, अपनी चिर पीड़ा से छुटकारा पा सके।

निस्संदेह सुरक्षा और पुनर्निर्माण के दोनों कार्यों को पूरा करने में सरकार का बहुत बड़ा भाग है। शासन तंत्र के सुसंचालित होने से इन दोनों महान कार्यों के पूरा होने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बहुत सुविधा हो सकती है, परन्तु यह समझना भूल है कि केवल मात्र सरकार ही इन कार्यों को पूरा कर लेगी। कोई सरकार कितनी ही मजबूत या सुयोग्य क्यों न हो पर उसकी मर्यादा सीमित है। भौतिक उपकरणों पर अधिकार, व्यवस्था नियंत्रण एवं उनका प्रयोग करना बहुत हद तक सरकार के हाथ में है पर इतने मात्र से ये दोनों महान कार्य पूरे नहीं हो सकते।

मनुष्य दो पदार्थों से मिलकर बना है एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म। शरीर और धन सम्पत्ति स्थूल है और मन, बुद्धि, अन्तःकरण सूक्ष्म है। मोटी दृष्टि से जो कुछ स्थूल है वही मनुष्य दिखाई पड़ता है। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। सूक्ष्म की शक्ति और सत्ता अनन्त है। उस सूक्ष्म की ही प्रेरणा से मनुष्य की समस्त क्रियाएँ होती हैं और उन्हीं के आधार पर उसकी बाह्य स्थिति का निर्माण होता है। सरकारें मनुष्य के स्थूल भाग को स्पर्श कर सकती हैं। पर सूक्ष्म तक उसकी पहुँच बहुत कम है। व्यक्तिगत चरित्र, आहार, विहार, रहन-सहन, दिनचर्या, लेखन, भाषण, व्यसन, धर्म, सम्प्रदाय, त्याग, उदारता, अनुदारता, स्वभाव, चरित्र, रुचि, इच्छा, अभिलाषा, जीविका, व्यवसाय, मनोरंजन, अर्थ संचय, कर्तव्य पालन, जीवन का सदुपयोग-दुरुपयोग आदि अनेकों क्षेत्र ऐसे हैं जिन पर सरकार का नियन्त्रण प्रायः नहीं के बराबर है। इन क्षेत्रों में कौन व्यक्ति किस दिशा में चल रहा है, इसकी देख-रेख रखना सरकार की सीमा से परे है। वह तभी कुछ रोक लगा सकती है जब कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से दूसरों को हानि पहुँचा रहा हो। लेकिन इन सब गतिविधियों से अप्रत्यक्ष रूप से उस व्यक्ति का तथा समाज का जो भयंकर हित-अनहित होता है उसको स्पर्श करने में सरकार असमर्थ है।

यह बात भली प्रकार जान लेने की है कि इस संसार में जो कुछ स्थूल है उसकी मूल में सूक्ष्म काम करता है। शरीर और सम्पत्ति की, व्यक्ति और समाज की उन्नति, अवनति एवं भली-बुरी क्रियाएँ मनुष्यों के अन्तःकरण में निवास करने वाले व्यक्तिगत विचारों, भावों एवं सिद्धान्तों के ऊपर निर्भर रहते हैं। इसलिए जो शक्ति का अटूट भण्डार है, वह तो सरकार की पहुँच से बाहर ही रह जाता है। अन्तःकरणों में निवास करने वाले विश्वास, आदर्श और विचार ही जन-रुचि को बताते हैं और उस जन रुचि के पीछे प्रजातंत्री सरकारों को चलना पड़ता है।

इस जनरुचि का निर्माण करना धर्म का काम है। ब्राह्मणों को महाराज अर्थात महान राजा कहा जाता है क्योंकि राजा प्रजा के भौतिक सामिग्री पर अधिकार रखता है, पर ब्राह्मण-धर्म और दर्शन द्वारा जनसाधारण के अन्तःकरणों को, चरित्रों का, स्वभावों का, आदर्शों का निर्माण करते हैं, जनरुचि की दिशा मोड़ने का कार्य उनके हाथ में होने के कारण शक्ति का अन्तिम, अटूट स्रोत भी उनके हाथ में होता है, इसीलिए वे महाराज कहलाते हैं।

आज हमारे ऊपर बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। सुरक्षा और पुनर्निर्माण का बड़ा भारी काम सामने पड़ा है। सरकार अपना काम कर रही है। राजनीति के अनुभवी उस दिशा में कार्य प्रवृत्त हों।

साथ ही जनरुचि के निर्माण के लिए समस्त भावनाशीलों-विचारशीलों को हम आमंत्रित करते हैं। यह क्षेत्र सरकारी क्षेत्रों से भी अधिक आवश्यक स्थायी एवं सुदृढ़ परिणाम उपस्थित करने वाला है। ब्रह्म परायण आत्माओ, आओ ! अपने महान धार्मिक आदर्शों को जन-जन के अन्तःकरण तक पहुँचायें और हर एक नागरिक को ऐसा सुरुचि सम्पन्न बनावें कि वह राष्ट्र की सुरक्षा में सुदृढ़ चट्टान की तरह अटूट बने और पुनर्निर्माण में उस बीज का अनुकरण करें जो अपने को गलाकर एक महान वृक्ष उत्पन्न करता है। विचारको भूलो मत, राजनीति की अपेक्षा धर्म और दर्शन की शक्ति अनेक गुनी अधिक है। इसलिए आओ, इस महान शक्ति को जागृत करके अपने राष्ट्र को उन्नति के शिखर तक पहुँचा देने के लिए प्राण प्रण से प्रयत्न करें।

भावनाओं का जागरण आवश्यक है

सुरक्षा के लिए प्रगति की नितान्त आवश्यकता है। यह प्रगति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होनी चाहिए। शरीर, मन, धन, संगठन शस्त्र, शिक्षण, आचरण आदि सभी क्षेत्रों में हमें आज की अपेक्षा कल अधिक प्रगतिशील और सशक्त बनना होगा। हम आज जिस स्थिति में हैं—जिस स्तर पर हैं, उसे देखते हुए शत्रुओं को हमारी दुर्बलता भाँपने का अवसर मिलता है और वे भेड़िये की तरह ललचाई आँखों से हमारी ओर देखते हैं। शक्ति का सर्वतोमुखी आह्वान करने के लिए हमें तत्पर होना पड़ेगा। काल-पुरुष ने जिस अग्नि-परीक्षा में हमें डाला है, उसमें होकर ठीक तरह से पार होने के लिए हमें अपने को सुधारना, सम्भालना और बदलना पड़ेगा।

सबसे प्रथम और सबसे आवश्यक कार्य है भावनाओं का जागरण। सदियों की गुलामी के वातावरण में रहते हुए हमने बहुत कुछ खोया। उनमें से एक वस्तु भावनाओं की तेजस्विता को भी खोया है। यों पिछले स्वाधीनता-संग्राम में और आज के ऐसे प्रयत्नों में जनता ने जो योगदान दिया है, जिस त्याग और बलिदान का परिचय मिला है वह प्रशंसनीय है और आशाजनक भी। पर उतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहा जा सकता। भारत माता के प्रत्येक सपूत का अन्तःकरण उन उच्च भावनाओं से तरंगित होना चाहिए जो हमारे प्राचीन आदर्श और गौरव के अनुरूप हैं। देशभक्ति,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवता और आदर्शवाद के लिए बहुत कुछ करने की उत्कट अभिलाषा जब तक जनमानस में जागृत न होगी तब तक सुरक्षा और प्राप्ति का लक्ष्य कछुए की चाल से ही अग्रगामी होगा उतने मात्र से सामने उपस्थित ज्वलन्त समस्याओं का समाधान समय रहते न हो सकेगा।

राष्ट्रीय सशक्तता के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है। यदि हमारी भावना प्रखर हो उठे तो वे बात की बात में इकट्ठे हो सकते हैं। इस प्रखरता के अभाव में रो-धोकर काम होगा तो सही पर उसमें तेजस्विता न रहेगी। आज सुरक्षा के लिए धन की आवश्यकता है। ६० करोड़ देशवासी यदि प्रति सप्ताह एक समय का भोजन त्यागकर चार आने भी बचालें और उस बचत को सुरक्षा कोष में जमा करदें तो महीने की चार चवन्नियों का एक रुपया होता है। इस तरह ६० करोड़ रुपया प्रतिमास सहज ही जमा हो सकता है। सप्ताह में एक टाइम का उपवास करना न तो कुछ कठिन है और न हानिकारक। विदेशों से अनाज मँगाने में जो विपुल धन राशि हर साल खर्च करनी पड़ती है वह बच सकती है। स्वास्थ्य समस्या सहज ही हल हो सकती है। स्वास्थ्य पर इस उपवास का अच्छा असर पड़ सकता है और उससे आध्यात्मिक लाभ भी होता है। भावना प्रखर हो तो इतना सा त्याग किसी को कुछ भी भारी नहीं पड़ेगा और हर महीने ६० करोड़ रुपया सहज ही प्राप्त होते रहेंगे। पर जब नजर पसारकर देखते हैं तो आशा की कोई किरण नहीं दीखती। कारण चारों ओर स्वार्थपरता एवं लूट-खसोट का माहौल ही दिखाई देता है।

सोना कुछ खाने-पीने की या किसी खास जरूरत की पूरा करने वाली चीज नहीं है। उसे लोग श्रृंगार के लिए ही पहनते हैं। ईर्ष्या, रखवाली, घिसट, टूट-फूट, ब्याज न मिलना आदि कितने ही दोष भी उसके संग्रह में हैं। उसे यदि राष्ट्रीय सम्मान और सुरक्षा की आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण हम न समझते तो अरबों रुपयों का सोना सरकार के पास होता और उसके बदले में मशीनें विदेश से मँगा ली गई होतीं जो हथियार बनाने की आवश्यकता पूरा करतीं। लोगों की कंजूसी, संकीर्णता और स्वार्थपरता सोने को छिपाने में सहायक हो रही है और हमारे कर्णधार चिन्ताग्रस्त बैठे हैं। यदि हमारी देशभक्ति इस अवसर पर भामाशाह की भावनाओं की तरह उमड़ पड़ी होती तो आज दूसरे ही दृश्य सामने होते। हमें विदेशों की सहायता माँगनी नहीं पड़ती वरन् दूसरों को देने की स्थिति होती।

हर साल करोड़ों आदमी मौत बीमारी में सड़-सड़ कर मरते हैं। उनमें से लाखों नौजवान भी होते हैं। मौत मनुष्य-जीवन की एक बिल्कुल स्वाभाविक स्थिति है और किसी के लिए भी, कभी भी आ सकती है। जिस तरह छींक कभी भी आ सकती है उस पर कोई रोक नहीं, इसी प्रकार मौत का भी क्या ठिकाना ? कर्त्तव्य पालन करते हुए मौत मिलना मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी सफलता और सार्थकता मानी गई है। यदि यह भावना भारत के बच्चे-बच्चे में भर जाय तो युद्ध मोर्चे पर हम टिड्डी दलों की तरह पहुँचें और आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था के मोर्चे पर भी कोटि-कोटि नागरिक सेना उमड़ती हुई दृष्टिगोचर होने लगे। धर्मयुद्ध में जूझने वाले शिवाजी, प्रताप, लक्ष्मीबाई, भगतसिंह आदि का जयघोष करते समय जो उत्साह हमारे चेहरे पर आता है यदि उसकी मात्रा थोड़ी और भर जाय तो हम स्वयं भी आज अनायास ही सामने आये हुए ठीक वैसे ही अवसर पर स्वयं को भी उन्हीं की पंक्ति में खड़ा कर सकते हैं। जरूरत केवल भावना की है। भावना नहीं तो मौत के डर से कायर और कातर की तरह अपनी ही बचत की बात सोची जायगी। ऐसे लोग स्वयं भी मरते हैं और साथ में राष्ट्र की सुरक्षा को भी ले डूबते हैं।

सुरक्षा प्रयत्नों में उतनी सहायक कोई साधन-सामग्री नहीं हो सकती जितनी देशभक्ति और त्याग-बलिदान की भावना। इस भावना का जागरण यदि परिपूर्ण मात्रा में हो सके तो ६० करोड़ लौह स्तम्भों का बना हमारा राष्ट्र-दुर्ग युग-युगों तक अभेद्य ही रहेगा, कोई उसकी ओर आँख उठाकर भी न देख सकेगा। यदि हम अपना सर्वस्व मातृ-भूमि को बलिवेदी पर चढ़ाने के लिये उद्यत हों तो इतनी सम्पदा और साधन-सामग्री आज हमारी अपनी ही इकट्ठी हो जायगी कि विदेशी सहायता की बात सोचना भी व्यर्थ प्रतीत होगा। भावना स्तर यदि प्रसुप्त पड़ा रहे, लोग देशभक्ति की बात एक फैशन या प्रदर्शन की तरह ही कहें और आचरण में स्वार्थपरता एवं कंजूसी को ही गले लगाते रहें तो हम कमजोर ही रहेंगे, वह कमजोरी प्रगति और सुरक्षा के दोनों मोर्चों को कमजोर बनाये रहेगी।

प्रगति के मोर्चे पर अगणित रचनात्मक काम किये जाते हैं। वह सब सरकार नहीं कर सकती। सरकार करेगी तो टैक्स ही वसूल करके करेगी, उसमें जनता की विवशता रहेगी देशभक्ति नहीं। ऐसे रचनात्मक कार्य होते तो हैं और उन पर सरकारी कर्मचारी और सरकारी साधनों से प्रगति के लिये बहुत कुछ किया जा रहा है, पर उसमें वह सजीवता दृष्टिगोचर नहीं होती जो त्याग और बलिदान की भावना में ओत-प्रोत उत्साह के वातावरण में जनता या जन सेवकों द्वारा कुछ किये जाने पर दीखती है। श्रमदान विनिर्मित छोटे-छोटे बाँध, रास्ते, पुल और स्कूल अपने में एक गौरव, गर्व, आदर्श और प्रेरणा का प्रकाश भरे रहते हैं। उन्हें देखते ही उत्साह और आशा की लहर दौड़ती है। दूसरों में वैसा ही अनुकरण करने की इच्छा जगती है। सच्ची प्रगति ऐसे ही उत्साहपूर्वक, भावनामय वातावरण में प्रस्तुत किये गये कार्यों पर निर्भर रहती है। सरकार द्वारा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किये गये प्रयत्नों से काम तो चल जाता है पर त्याग और वातावरण का पुट रहने वाले कार्यों की बात ही कुछ दूसरी होती है।

वह चीन जो कल तक अफीम की पिनक में पड़ा हुआ संसार की गई-गुजरी स्थिति के देशों में गिना जाता था आज भारत जैसे महान देश पर आक्रमण करने की शक्ति इकट्ठी कर सकता है। उसकी इस सफलता का श्रेय जन भावनाओं के जागरण में ही सम्मिलित है। चीन ने अपनी नदी बाढ़ समस्या को जिस अच्छे ढंग से सुलझाया उसका अध्ययन करने के लिए भारत सरकार ने सन् १९५४ में एक शिष्ट मण्डल वहाँ भेजा था। उस शिष्ट मण्डल ने लौटकर जो रिपोर्ट दी उसमें कहा गया था कि "चीन ने नदियों की बाढ़ का प्रश्न हल करने के लिए बड़ी-बड़ी नहरें बनाई हैं। उसकी उत्तरी सिक्याँग की नहर सबसे बड़ी और लम्बी है जो ४० लाख एकड़ जमीन सींचती है और जहाज रानी का काम भी देती है। इसका निर्माण कार्य उच्चकोटि का हुआ है। उसके तल की चौड़ाई ४२० फुट और लम्बाई १०० मील है। इसके बनाने में २४७ करोड़ घन फुट मिट्टी खोदी गई। यह पूरी नहर केवल ८० दिन में बनकर तैयार हो गई। इस नहर को खोदने का सम्पूर्ण कार्य बिना मशीनों की सहायता के केवल जन शक्ति द्वारा ही सम्पन्न हुआ। यांग्सी नदी पर बना विशाल बाँध ७५ दिन में और हुवाई नदी का बाँध १५० दिन में बना जबकि इसके लिए बालू, पत्थर आदि ७५ से १५० मील तक से लाना पड़ा।"

जो कार्य बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने, बहुत समय और धन लगाने पर भी ठीक तरह नहीं हो सकते वे भावनाएँ जागृत होने पर जन शक्ति के सहयोग से सहज ही पूरे हो सकते हैं। भावनाओं का जागरण ही राष्ट्र का वास्तविक जागरण है। जब तक जनमानस में कर्तव्य बुद्धि और सामूहिकता के प्रति निष्ठा न होगी तब तक अन्य प्रयत्न उतने उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते।

जन भावनाओं के अभाव में हम प्रदर्शनात्मक और प्रचारात्मक तो बहुत कुछ कर सकते हैं पर ठोस काम तभी होता है, जब उसे करने वाले की भावनाएँ सच्चे मन से कार्य करती हैं।

हमारी समस्त दुर्बलताएँ तभी समाप्त होंगी जब अन्तःकरण जगेगा। उस जागरण के साथ ही हमारा सर्वतोमुखी जागरण होगा। इस जागृति की स्थिति में कोई चोर हमारे घर में एक कदम भी रखने का साहस न करेगा, कोई लुटेरा लूट करने के मनसूबे न बाँध सकेगा। सुरक्षा के लिए जागरण आवश्यक है। राष्ट्रीय जागरण का अर्थ है—जन भावनाओं की प्रखरता, तेजस्विता और जागृति।

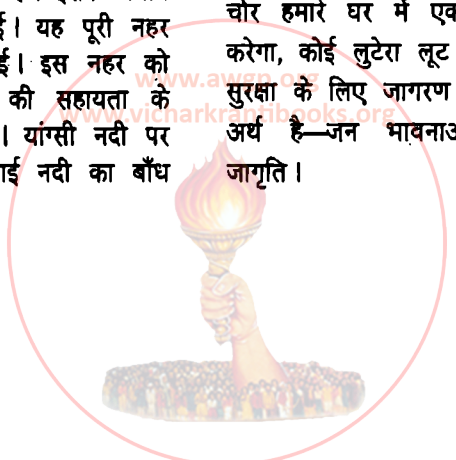

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारा लोकतंत्र सशक्त और समर्थ कैसे बने ?

हमारा संविधान और लोकतंत्र

२६ जनवरी, १९५० को हमारा संविधान लागू हुआ। यह पूर्णतः गणतन्त्र पर आधारित है। इसमें जाति, धर्म, मूल, वर्ग, भाषा आदि का कोई भेदभाव नहीं है। सब नागरिक पूर्ण स्वतंत्र हैं और स्वेच्छानुसार कोई भी धर्म अपना सकते हैं। सबको समान अधिकार हैं और सबके कर्तव्य समान हैं। धर्म निरपेक्ष समाजवादी सिद्धान्त को हमने अपनाया है। इसमें लोकमत के आधार पर निश्चित समय में चुनाव होते हैं। इस तरह केन्द्र में संसद एवं राज्यों में विधान मण्डलें बनती हैं। ये राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका को हमारे संविधान के अनुसार पूरी स्वतंत्रता मिली हुई है और वे अपने आदर्शों के अनुकूल निष्पक्ष कार्य करते हैं। मुख्य चुनाव अधिकारी सब चुनाव सम्पन्न कराता है, जिसकी सहायता क्षेत्रीय चुनाव अधिकारी एवं प्रान्तीय सरकारें करती हैं।

हमारे देश में हुए अब तक के सभी निर्वाचनों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत में एक सशक्त और निष्पक्ष लोकतन्त्र है। जनता उपयोगी न समझने पर प्रचण्ड बहुमत वाली पार्टी को भी गिरा देती है और उपयोगी होने पर अल्पमत वाले दल को सत्तासीन कर देती है। परन्तु आज आम मत या लोकमत स्पष्ट नहीं है। वह सत्ता लोलुप पूँजीपतियों व महत्वाकांक्षियों से प्रभावित है। इससे भारत में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं और अराजकता फैल रही है। कुशासन, भ्रष्टाचार, अलगाववाद एवं कट्टरता बढ़ रही है। इस पर शीघ्र काबू न पाया गया तो हमारे यहाँ का प्रजातन्त्र एक मजाक एवं असफल बनकर रह जायेगा। अतः अधिनायकवाद के प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हमें मुक्त होना ही पड़ेगा। इस हेतु संविधान एवं निर्वाचन प्रणाली में आवश्यक सुधार करने होंगे, राजनीतिज्ञों एवं शासक वर्ग को आदर्श बनाना होगा। जरूरी है कि सरकार न्यायपालिका और विधायिका के कार्यों में कोई दखलंदाजी न करे। सभी नियुक्तियाँ शासन द्वारा गुणों के आधार पर निष्पक्ष रूप से हों।

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक हमारे गणतन्त्र की पूर्ण रक्षा हमें उन्हीं आदर्शों के रूप में करनी चाहिए। एकता, अखण्डता, मानवी गुण सम्पन्नता, प्रेम, भाईचारा, त्याग एवं आदर्शनिष्ठा को कायम रखने के लिए एकजुट होकर, निःस्वार्थ एवं निष्पक्ष भाव से कार्य दृढ़तापूर्वक करने होंगे। सर्वप्रथम विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पूर्णतः सौहार्द्रपूर्वक निष्पक्ष कार्य करें और कोई दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करें। गरीबी, बेकारी, असमानता, भ्रष्टाचार एवं अभावों से मुक्ति इसी प्रकार मिलेगी। राजनीतिक दलों, धर्मोपदेशक एवं सब लोगों को मिलकर आम लोगों की भलाई के लिये काम करना चाहिए। स्वार्थपरता, मनमानापन, संघर्ष एवं संकुचित विचारधाराओं को सब त्याग दें। संसद, विधानमण्डलों, स्वायत्त संस्थाओं, निगमों एवं शासक दल में सिर्फ उच्च गुणों से सम्पन्न लोगों को ही अधिकारी बनाया जाय और चुनाव में खड़े होने दिया जाय। लोकमत को निष्पक्ष रखा जाय और उससे छेड़छाड़ न की जाय।

लोकतन्त्र सफल हो, इसके लिये हमारे यहाँ राजनैतिक दलों पर इंग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रांस के समान नियंत्रण होना आवश्यक है। सरकार चुनाव लड़ने का पूरा खर्च उन्हें दें एवं सभी आवश्यक चुनाव प्रचार सामग्री भाषण-प्रसारण एवं अन्य गतिविधियों में इंग्लैण्ड और अमेरिका के समान ही सहयोग दें। इससे दानदाताओं से (करोड़ों रुपयों के) दान नहीं ले सकेंगे, आय-व्यय का आकलन करायेंगे, आयकर एवं संपत्तिकर आदि की चोरी एवं राजनैतिक भ्रष्टाचार बन्द होगा।

निर्वाचन आयोग को पूर्ण स्वतन्त्र होना चाहिए। उसका संगठन, कार्यालय, नियुक्तियाँ एवं कार्य प्रणाली हर प्रकार से सरकार एवं राजनैतिज्ञों के प्रभावों से मुक्त होना चाहिए। वर्तमान में प्रधानमन्त्री मुख्य निर्वाचन अधिकारी की नियुक्ति करता है और उसका संगठन व क्रिया प्रणाली विधि मंत्रालय की इच्छा के अनुसार होता है। यह शासक-दल की ओर से पक्षपात है। अतः सब दलों की अनुमति से इसकी नियुक्ति होनी चाहिए जिससे सबका विश्वास इसमें बढ़ेगा और यह पूर्ण स्वतन्त्रता से निष्पक्ष चुनाव कराने में समर्थ होगा। तभी भारतीय लोकतन्त्र समर्थ एवं सशक्त बनेगा।

कितने जागरूक हैं, अपनी स्वतन्त्रता के प्रति हम ?

पशु डण्डे के बल पर हाँके जाते हैं, अतः उन्हें अपने उत्तरदायित्वों को समझने और निवाहने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका स्वामी उनसे उनके दायित्वों का पालन करवाता रहता है। परतंत्र राष्ट्र के नागरिकों को भी अपने राष्ट्रीय दायित्वों के प्रति सजग व सचेत रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती—क्योंकि वे अपने शासकों द्वारा नियंत्रित होते रहते हैं। उस समय तो उन्हें एक ही बात सूझ सकती है, वह है स्वाधीन होने की।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के साथ ही राष्ट्र के नागरिकों को जहाँ कई नये अधिकार मिलते हैं, वहीं उन पर स्वेच्छया पालन किए जाने वाले उत्तरदायित्वों का भार भी आ जाता है। इन उत्तरदायित्वों का पालन करना ही उनका स्वतंत्रत राष्ट्र के नागरिकों का पात्रत्व सिद्ध करना है। किसी स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक अपने अधिकारों को भोगने के लिए तो तैयार रहें पर अपने उत्तरदायित्वों की ओर ध्यान न दें तो समझना चाहिए कि वे इस योग्य नहीं हुए कि उन्हें स्वतंत्रता दी जाय।

स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार तभी हो सकता है कि जब हम उसके लिए पात्रत्व सिद्ध करें। जानवरों के लिए स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि उनमें वह योग्यता ही नहीं है कि वे स्वतंत्र रह सकें। उन्हें खुला छोड़ा जाय तो वे नुकसान ही करेंगे। इसी प्रकार यदि किसी ऐसे देश के नागरिकों को स्वतंत्रता मिल जाय, जो उसके योग्य नहीं हैं तो उनके लिए यह स्वतंत्रता अनिष्टकारी ही सिद्ध होगी।

संतपाल ने अपने अनुयायियों को कहा था—"मेरे दोस्तो। तुम लोग स्वतंत्र होकर अपने स्वार्थ के लिए अपनी इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग मत करो।" स्वतंत्र वही व्यक्ति रह सकता है जिसने उसके साथ जुड़े अपने उत्तरदायित्वों को समझ लिया है। उसका अपने आप पर अनुशासन है—नियन्त्रण है उसे किसी अन्य व्यक्ति के नियन्त्रण की आवश्यकता नहीं है। यही बात स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों पर भी लागू होती है।

प्रकृति की अपनी व्यवस्था को ही देखिये। उसने उन सब जीवों पर अपना नियन्त्रण रखा है, जो अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रख सकते। उनको उसने मनुष्य की तरह स्वतंत्र नहीं रखा। उन्हें न तो साधन दिये, न सुविधायें और न सामर्थ्य। मनुष्य को यह सब सुविधायें दी हैं क्योंकि वह स्वयं पर नियन्त्रण रख सकता है। स्वतन्त्र और परतंत्र राष्ट्र के नागरिकों की जिम्मेदारियों में भी इसी प्रकार का अन्तर रहता है।

चार्ल्स किंगले ने लिखा है—स्वतंत्रता दो प्रकार की होती है। (१) गलत स्वतंत्रता—जहाँ व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कुछ भी कर सके। (२) सही स्वतंत्रता—जहाँ व्यक्ति जो वह कर सके, उसी के लिए स्वतंत्र हो। स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता में बड़ा अन्तर है। स्वतंत्रता में तन्त्र अर्थात् व्यवस्था ज्यों की त्यों मौजूद है। स्वतंत्रता शब्द के अर्थ को समझने का प्रयास करें तो बात समझ में आ जाती है। "अपने आप द्वारा व्यवस्था या अनुशासन में रहना" यही है स्वतंत्रता का अर्थ। सच्ची आजादी वही है, जिसमें किसी के अधिकारों में हस्तक्षेप न हो। इस बात की चिन्ता स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक को स्वयं करनी होती है। परतंत्रता की स्थिति में शासक नागरिकों पर नियन्त्रण रखकर यह सब करवाता है।

स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता नहीं है। दूसरों के साथ खिलवाड़ करने का नाम स्वतंत्रता नहीं है। व्यक्तिगत आजादी अपनी जगह बहुत बड़ी वस्तु है, पर उसकी सीमा वहीं समाप्त हो जाती है, जहाँ दूसरे का हित और अधिकार आ जाता है। स्वतंत्रता का अर्थ आत्मानुशासन है। वह किसी को इसी शर्त पर मिलती है कि वह उसके लिए पात्रत्व विकसित कर ले।

हम स्वतंत्र राष्ट्र के स्वतंत्र नागरिक हैं। किन्तु देखने में यही आता है कि हम अभी उसके लिए अपनी पात्रता विकसित नहीं कर पाये हैं। 'स्वतंत्रता' का अर्थ हमने 'स्वच्छन्दता' ही लगाया है। हम कितना अपने पड़ौसी का ध्यान रखते हैं ? हमें अपने देशवासियों के साथ कितनी सहानुभूति है ? राष्ट्रीय सम्पत्ति के सदुपयोग का हम कितना ध्यान रखते हैं ? हम अपने गरीब और विकासशील देश के सामान्य से सामान्य नागरिक के हितों का कितना ख्याल रखते हैं ? इन सब प्रश्नों का उत्तर देते समय हम अपने आप समझ जायेंगे कि हम अपनी आजादी के उत्तरदायित्व को कितना समझ पाये हैं ? कितना निभा पाये हैं ?

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हम आजाद देश के जिम्मेदार नागरिक की परीक्षा में प्रायः अनुत्तीर्ण ही रहते आये हैं। हमारा अपना एक लोकतन्त्र है। उसका अपना राष्ट्रीय ध्वज है। राष्ट्रीय गीत है। उनके सम्मान के लिए हमी ने कुछ नियम बनाये हैं। हम उन नियमों का पालन कर अपनी राष्ट्रीय भावना को कितना विकसित और उत्तेजित करते हैं, वह सबसे छिपा नहीं है। राष्ट्रगान बजने के अवसर पर हममें से कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो उसके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं ?

राष्ट्र की सम्पदा को अपनी सम्पदा की तरह समझकर उसकी रक्षा करना कितने लोग अपना दायित्व समझते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रीय सम्पदा जिसे हम अपनी भाषा में सरकारी माल कहते हैं, उसके प्रति हमारी क्या दृष्टि रहती है ? यह सभी जानते हैं। सरकारी माल को जितना अधिक लूटा जाय उतना ही अच्छा, यही अधिकांश लोग सोचते हैं और वैसा ही आचरण भी करते हैं। कभी यह भी सोचने का प्रयास नहीं करते कि सरकार आखिर है किसकी ? हम ही लोगों की तो सरकार है।

हमारी राष्ट्र निष्ठा का उदाहरण सामने है। सौ में से नब्बे प्रतिशत राष्ट्रीय उद्योग और कल-कारखाने घाटे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चल रहे हैं। इसका बहुत बड़ा कारण राष्ट्र की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति से कम महत्व देने की हमारी हीन मनोवृत्ति ही है। राष्ट्र भवन की ईंटें चुरा-चुराकर अपने घर की दीवार में लगाते हुए कतई शर्म नहीं आती। रक्षा सौदों के बारे में देश भर में चल रहा इन दिनों का विवाद हमारी बेशर्मी की साक्षी देता है।

एक प्राइवेट बस का मालिक यदि उसके पास एक 'मर्सिडीज' बस है तो एक वर्ष में वह इतनी कमाई कर लेता है कि दूसरे वर्ष वह एक वैसी ही बस और चला लेता है। लेकिन सरकारी रोडवेज के विभाग के पास हजारों बसें होने, उनके अपने सुधारगृह और पैट्रोल पम्प होते हुए भी उनमें लाखों रुपयों का घाटा होता है। आखिर क्यों ? इसका एक ही कारण है वह है हमारे लिए सरकारी माल राष्ट्र की सम्पत्ति का कोई महत्त्व नहीं। हमें तो अपने घर से ही मतलब है। हम अर्थात् राष्ट्रवादी अनैतिक तरीके से राष्ट्र की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति बनाने में हिचकिचाते नहीं।

जो लोग अपना घर भरने के लिए देश और समाज का बड़ा से बड़ा अहित करने से नहीं चूकते। ऐसे लोगों के विरुद्ध आवाज उठाने और उनकी, अनीति का प्रतिकार करने का साहस कितने लोग करते हैं ? आज हर क्षेत्र में बेईमानी, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, चोर बाजारी आदि का बोलवाला है। राजनीतिज्ञों को देखें या सरकारी कर्मचारियों को देखें, व्यापारी वर्ग को देखें या आम जनता को सभी बस अपनी प्रगति चाहते हैं। अपने पड़ौसी की, अपने देश की, अपने समाज की प्रगति की कोई चिन्ता नहीं करता। इस गलत दृष्टि को सुधारने का प्रयत्न करने वाले कहीं दिखलाई नहीं देते। कितने व्यक्ति हैं जो इस भेड़चाल के विरुद्ध आवाज बुलन्द करते हैं या नैतिक पुनरुत्थान के कार्यों में सहयोग देते हैं ?

यहाँ एक अँग्रेजी कविता के हिन्दी रूपान्तर को प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा—"हम ऐसे गुलाम हैं, जो डरते हैं बोलने से, दलितों और कमजोरों के पक्ष में। ऐसे गुलाम हैं, जो आह्वान करते हैं घृणा, तिरस्कार और अपमान का और इस तरह चुप रह जाते हैं, सचाई के लिये बोलने के वक्त। वे बस गुलाम हैं जो साथ नहीं देते सिर्फ सच्चे इन्सानों का इसलिए कि सच्चे लोग इने-गिने ही हैं। कवि द्वारा प्रस्तुत गुलामी की कसौटी पर हम लोग खरे नहीं उतरते हैं क्या ? फिर किस मुँह से हम स्वतंत्र होने का दम भरते हैं।

आजादी आने के कई वर्ष बाद भी हमारे देश में गरीबी ज्यों की त्यों विद्यमान है। आठवी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में बताया गया है कि हमारे देश में पच्चीस करोड़ लोग ऐसे हैं कि जो पैंतीस रुपये महावार में या गरीबी की रेखा के नीचे अपना गुजारा करते हैं। क्यों ऐसे लोगों के प्रति हम अपना दायित्व अनुभव नहीं करते ?

राष्ट्रीयता की भावना हमारे में कितनी है ? इस प्रश्न के उत्तर में जो प्रतिशत आ सकता है, वह पाँच से आगे बढ़ने वाला नहीं है। हमारा व्यक्तिवाद हमें दिन पर दिन कमजोर और असहाय बनाता जा रहा है। हमारे देश के पास इतनी कमी साधनों की नहीं है, जितनी कि भावनाओं की है। हमारे विपरीत, साधनों की दृष्टि से हम से भी गरीब छोटा-सा घना बसा हुआ देश, जिसकी राजधानी में ही सबा तीन करोड़ लोग आबाद हैं, 'जापान' अपने देशवासियों की राष्ट्रीयता की भावना के कारण ही आज विश्व की तीसरी शक्ति बना हुआ है।

उन्हें अपने देश को आगे बढ़ाना है इसलिए वे खूब मेहनत करते हैं। अपने पास जो कुछ साधन हैं, उनका एक-एक कण काम में लाते हैं। उनके लिए एक कागज की छोटी-सी चिन्दी भी फालतू नहीं होती। बाहर से कच्चा माल मँगाकर तैयार माल बाहर भेजने वाला जापान आज सुखी और समृद्ध है परन्तु भारत जैसा विशाल देश दूसरों का मुँह जोहता है।

नब्बे करोड़ की जनशक्ति भी अपने आप में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि यह अपने आपको एक राष्ट्र की भावना में पिरो दें तो साधनों में भी हम समृद्ध न सही पर गरीब भी नहीं। लेकिन हमारा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण हमें पनपने नहीं देता। हम स्वतंत्र नागरिक का दायित्व निभाते रहे होते तो हमें आजादी मिलने के इतने वर्ष बाद तक तो आर्थिक, सामाजिक व बौद्धिक स्वतंत्रता भी मिल गयी होती।

हम यदि स्वतंत्र राष्ट्र के जिम्मेदार नागरिक की तरह सोचने का प्रयास नहीं करते, वैसा आचरण नहीं करते तो हमें इस स्वतंत्रता का कोई विशेष लाभ मिलने वाला नहीं है। यह बात आज भी सच है और हजार वर्ष बाद भी।

स्वराज्य बनाम सुराज्य

पूर्व शिक्षा-मंत्री श्री सम्पूर्णानन्दजी ने कहा था—कि हम आशा करते हैं कि भारत में वास्तविक सुराज होगा, भारतीय संस्कृति की जड़ उस विचारधारा से परिपुष्ट होती है जिसका उद्गम सिन्धु और सरस्वती के किनारे आज से सहस्त्रों वर्ष पहले ऋषियों के तपोवनों में हुआ था। जब-जब भारत उस उपदेश माला की ओर से परांगमुख हुआ है तभी उसका पतन हुआ है। भारतीय संस्कृति का एकमात्र मूल-धर्म है। धर्म का अर्थ मजहब नहीं है, अनीश्वरवादी सांख्य, बौद्ध और जैन मतावलंबी भी ईश्वरवादी नैयायिक के समान ही धर्म के उपासक हैं।

आज डर लगता है कि हम धर्म को कहीं भुला न दें। स्वराज की सेना के अधिकतर सैनिक हिन्दू थे। स्वभावतः आज उनमें विजयोल्लास है। यह बुरा नहीं है, परन्तु उल्लास की सार्थकता इसमें है कि हिन्दू यह समझे कि स्वराज को सुराज बनाने का दायित्व उस पर है। वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस गुरुभार को तभी उठा सकेगा जब अपने 'स्व' में, अपनी धर्ममूलक संस्कृति में स्थिर होगा। यदि वह अपने को भूला तो देश को ले डूबेगा।

हमारे पड़ोस में पाकिस्तान बना है। हम नहीं जानते वहाँ अल्पसंख्यकों के साथ कैसा बर्ताव होगा ? अब तक का अनुभव अच्छा नहीं है। इसीलिए कुछ लोग यह सीख दे रहे हैं कि युक्तप्रान्त जैसे प्रदेशों में जहाँ हिन्दुओं का बहुमत है मुसलमानों को दबाया जाय, पाकिस्तान के पापों का प्रतिशोध लिया जाय। लोगों की बुद्धि को विकृत करने में उनको थोड़ी-सी सफलता भी हुई है।

यह भयानक अवस्था है, चिन्ता की बात है। जिस दिन हिन्दू इस मार्ग पर चलेगा वह हिन्दू न रह जायेगा। मान लिया जाय कि पाकिस्तान में अन्याय और अत्याचार होता है पर उसका बदला यहाँ कैसे लिया जाय ? सिंध में किसी हिन्दू का घर जल गया तो क्या यहाँ किसी मुसलमान का घर जलाने से वह बन जायगा क्या ? यहाँ मुसलमान को मारने से वहाँ का मरा हिन्दू कैसे जी जायेगा ? हिन्दू को तो यह बताया गया है कि उसे 'मातृवत् परदारेषु' व्यवहार करना चाहिये। परायी स्त्रियों को माँ, बहन, बेटी समझना चाहिए। प्रताप और शिवा ने विजय और पराजय में इस नीति को नहीं छोड़ा। अब क्यों हिन्दू बदले के भाव से मुसलमान स्त्रियों पर बलात्कार करेगा ? किसी ने मन्दिर तोड़ा तो उसका दुःख हम सबको होगा परन्तु यहाँ की मस्जिद तोड़ने से पंजाब का भग्न शिवालय कैसे फिर खड़ा होगा ? दूसरे लोगों को चाहे जो सिखाया गया हो परन्तु हम तो यह कहते आये हैं—

रुचीणां वैचित्र्यादृजुकुटिल नानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वामसि पयसामर्णव इव ।।

(जिस प्रकार सभी नदियाँ सीधे टेढ़े मार्गों से घूमकर समुद्र में मिलती हैं, इसी प्रकार हे भगवान्। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न उपासना करते हुए भी सब मनुष्य तुमको ही प्राप्त होते हैं।)

चोर के साथ चोर, मूर्ख के साथ मूर्ख, शराबी के साथ शराबी बनने से तो काम नहीं चलेगा। हम अपने को गिरा देंगे पर उसको न उठा सकेंगे।

हिन्दुओं की संख्या हमारे यहाँ बहुत बड़ी है। वह सौ में छियासी हैं। युक्त प्रान्त के अल्पसंख्यक उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। बल में, विद्या में, बुद्धि में, शौर्य में, तप में, यहाँ का हिन्दू किसी दूसरे से पीछे नहीं है। इसी से यह प्रदेश प्राचीनकाल से आज तक संस्कृति में अग्रणी रहा है और परार्थसाधन तथा लोकहित के लिए आत्मबलि का मार्ग दिखाता रहा है। आज विजय की बेला में उसे बहकना न चाहिए। वीर और बलवान को क्षमा ही शोभा देती है। जो संख्या में हमसे कम हैं, हमारे प्रान्त में बसे हैं, हमारे आश्रित हैं, उनको अभयदान देना ही हमारी महत्ता के अनुरूप है। यदि हमको अपने ऊपर निष्ठा है, अपनी परम्परा पर श्रद्धा है, तो हमको यह विश्वास भी होना ही चाहिए कि इस प्रदेश की संस्कृति और सभ्यता पर हमारी अमिट छाप होगी।

मैं यह बातें हिन्दू के नाते हिन्दुओं से कहता हूँ। इस भू-भाग की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखना, यहाँ के स्वराज को सुराज बनाना, इस प्रदेश को सभी वर्गों, सम्प्रदायों, व्यक्तियों की सेवाओं से अधिकतम लाभ उठाने का अवसर देना, हिन्दुओं की सद्बुद्धि पर निर्भर है।

जहाँ तक दूसरे लोगों की बात है, मैं आशा करता हूँ कि वह भी सद्बुद्धि से काम लेंगे। भारतीय ईसाई से अधिक नहीं कहना है कि क्योंकि उसने भारतीय संस्कृति को नहीं छोड़ा है। हमारे मुसलमान भाइयों को गंभीरता से विचार करना चाहिए, चीन का मुसलमान चीनी रहता है, ईरान का मुसलमान ईरानी रहता है, यूरोपियन मुसलमान यूरोपियन रहता है, सैकड़ों वर्षों से जावा निवासी मुसलमान हो गये हैं परन्तु उनमें आज भी सुकर्ण, सुधर्म्म जैसे नाम मिलते हैं। इन देशों के मुसलमान अपना रहन-सहन नहीं बदलते, नाम नहीं बदलते, अपने पूर्वजों को नहीं भूलते। भारतीय मुसलमान का अब तक का ढंग दूसरा था। वह अपने हिन्दू पड़ौसियों से इतना दूर जा पड़ा था कि अपने बाप-दादों को भी पराया मानता था। पारसी रुस्तम, नौशेरवां कैखुसरो, जमशेद को अपना समझता था, अपने पूर्वज भीम, राम, कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, अशोक, चन्द्रगुप्त, से कोई सम्बन्ध न था। भारतीय व्यास, कणाद, गौतम की अपेक्षा यूनानी प्लेटो, अरस्तू, पाइथागोरस को अपने अधिक समीप मानता था। यह बात अब बंद होनी चाहिये। मुसलमान चाहे जिसकी, जिस भाषा में, जैसे उपासना करे, चाहे जिन स्थानों को तीर्थ माने, चाहे जिन महात्माओं को पूज्य माने, पर अब उसे भारतीय बनकर रहना होगा, भारतीय परम्परा उसकी परम्परा होगी, भारतीय रहन-सहन उसका रहन-सहन होगा, भारतीय संस्कृति उसकी संस्कृति होगी, तभी वह यहाँ समान नागरिकता का अधिकारी हो सकता है।

हमको बहुत-सी पुरानी बातें भूलनी हैं। आज से पहले किसने हमारा विरोध किया था, इसका रोना कब तक रोया जायगा ? इन दरिद्र, दुर्बल, निरक्षर प्राणियों को फिर से मनुष्य बनाने साधारण काम नहीं है। इस बोझ को कोई एक दल नहीं उठा सकता। इस काम में हम सबकी आवश्यकता है, सब के लिए जगह है।

एक बात हमारे सामने होनी चाहिए। जैसा मैंने पहले कहा है, भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र-धर्म है। पृथ्वी पर जो संघर्ष मचा हुआ है उसका एक महाकारण यह है कि आज सब अपने अधिकारों पर ही दृष्टि रखते हैं । यह भूल जाता है कि अधिकार का दूसरा पहलू कर्त्तव्य है, जो एक का अधिकार है वह दूसरे का कर्त्तव्य है। यदि सब अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान दें तो सबके अधिकार आप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही प्राप्त हो जायें। अधिकार का भूखा कहता है, 'दूसरों से मुझे अमुक-अमुक बातें प्राप्त होनी चाहिए'। कर्त्तव्य का उपासक कहता हैं, 'दूसरों को मुझसे अमुक-अमुक बातें प्राप्त होनी चाहिए'। पहला भाव कटुता, दूसरा सौहार्द्र फैलाता है। यदि हम यह समझ लें कि सबका सब पर ऋण है, सबका सबके कल्याण से सम्बन्ध है, मुझे अपना ऋण चुकाना ही है, तो सभी अनायास श्रेय की भागी हों। इसी का नाम धर्म है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के लिए इससे अच्छा कोई मार्ग नहीं हो सकता।"

भारत का नागरिक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख या चाहे जो हो, उसको प्रत्येक काम धर्म बुद्धि एवं लोकतांत्रिक ढंग से करना चाहिए। तभी भारत फिर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त होगा और उसकी स्वाधीनता, समर्थता एवं सशक्तता अक्षुण्ण रहेगी।

स्वाधीनता के बाद स्वराज्य की स्थापना

चारों तरफ से आज हम यह सुन रहे हैं कि आज का युग जन-साधारण का युग है। पर यदि वह उसका युग है तो उसके लिये उचित है कि वह उसमें पर्याप्त भाग ले। जो कुछ कष्ट और संकट समय की गति में पड़ें उनमें पूरा हाथ बँटाये, अपने भार वहन के लिये अपने को योग्य बनाये। यही कारण है कि मेरे मन में यह प्रश्न बराबर उठता है कि स्वराज्य के योग्य पुरुष के लक्षण क्या हैं ? यह काफी नहीं है कि हम अपने लोगों को शासन के पदों पर बैठा दें और स्वयं हट जायें और येन-केन प्रकारेण अपने प्रतिदिन के कार्य चलाते जायें। हमारे लिये आवश्यक है कि हम स्वराज्य के अस्थायी नहीं स्थायी सैनिक बनें, अर्थात् हर समय अच्छे नागरिक बने रहें और अपने निजी कार्यों को करते हुए अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का भी स्मरण रखें और उसके पालन में कदापि प्रमाद न करें।

अब हम देखते हैं कि इस प्रकार हम फिर उसी पुराने प्रश्न पर पहुँच गये। स्वराज्य का जो पात्र है वह जीवन में किस प्रकार व्यवहार करता है ? यह प्रश्न तो हमेशा ही आवश्यक है अगर हम अपने पाये हुए लक्ष्य को फिर खोना न चाहें। आज इसकी जरूरत इसलिये और भी बढ़ गई है कि यह चारों तरफ माना जाने लगा है। स्वराज्य का अर्थ यह नहीं है कि सारी राजनीतिक शक्ति किसी एक गुट के हाथ में आ जाये, इस गुट के सदस्य चाहे उसी जाति और देश के क्यों न हों जिस पर वे राज्य करते हैं। स्वराज्य का अर्थ यह भी नहीं है कि किसी एक वर्ग या समुदाय के हित के लिये ही सारा शासन चलाया जाये। स्वराज्य सबके लिये है और सबके हित का साधन उसे होना है। जो समय आने वाला है उसमें सब साधारण जन को, चाहे वह खेत में काम करने वाला किसान हो और चाहे कारखाने में काम करने वाला मजदूर, यह जानना आवश्यक है कि देश की इस व्यवस्था में उसका भी आवश्यक हाथ है, उसकी स्थापना में, उसको चलाने में और उसके परिणाम में उसका भी भाग है। यदि हमें सच्चा स्वराज्य स्थापित करना है, यदि हमें उसमें अपना उचित भाग लेना है, तो हमें अपना कर्त्तव्य ठीक तरह से निभाना चाहिए और हर क्षण और काल में उसे हमें तत्परता के साथ पूरा करना चाहिए, चाहे कोई हमें देखता हो या न देखता हो।

स्मरण रहे कि थोड़े-से बड़े-बड़े लोगों की योग्यता और चरित्र से जनसाधारण की परीक्षा नहीं होती। साधारण नर-नारी अपने प्रतिदिन के कार्यों में किस प्रकार व्यवहार करते हैं, उससे ही उनकी परीक्षा होती है। व्यक्ति का औसत स्तर जितना ऊँचा होता है, उतना ही ऊँचा जाति का सामूहिक स्तर भी होता है। यदि हम सदा इस भरोसे रहेंगे कि कोई महान् व्यक्ति हमारे बीच आकर हमारे लिये ऐसा-वैसा कर जायेगा, तो बहुत सम्भव है कि कोई बड़ा आदमी आये ही नहीं, क्योंकि बड़े आदमी तैयार नहीं किये जाते और यदि वे आएँ भी और हमारे लिये चमत्कार कर भी गये, तो हम उनका सब किया कराया बरबाद भी कर सकते हैं, अगर अपनी अयोग्यता के कारण उनकी परम्परा हम जारी नहीं रख सके। यदि एक तरफ बड़ा आदमी तैयार नहीं किया जा सकता, तो दूसरी तरफ यह भी सम्भव है कि साधारणजन की शिक्षा-दीक्षा ऐसी हो कि वह स्वयम् बड़ा योग्य और कार्यकुशल बनाया जा सके। इसलिये हमारे लिये उचित है कि हम साधारणजन की चिन्ता करें। बड़े लोग आते और जाते रहते हैं, पर साधारणजन तो हमारे बीच सदा रहता है, हमें उससे कहना चाहिए कि तुम बड़े उपयोगी व्यक्ति हो, तुम्हारा स्थान बहुत ऊँचा है और जिस प्रकार से तुम अपना काम करोगे उसी पर सब निर्भर हैं। अच्छी तरह करोगे तो सब कुछ अच्छा होगा, बुरी तरह करोगे तो सब खराब होगा।

इसलिए हमारे लिये सर्वाधिक आवश्यक बात यह है कि हम जन-साधारण की चिन्ता न करें, उससे कहें कि स्वराज्य की रक्षा में तुम्हारा उतना ही महत्त्व है जितेना बड़े से बड़े व्यक्ति का हो सकता और अगर तुम अपने कर्त्तव्य का उचित प्रकार पालन करो तो तुम उतने ही बड़े देशभक्त हो जितना कोई भी हो सकता है। सबके लिये ही आवश्यक है कि वह कोई न कोई जीविका-उपार्जन का साधन बनाये। यह संसार बहुत कुछ इस पर निर्भर है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पेशे का कार्य ठीक तरह से कर रहा है या नहीं। कोई भी स्वराज्य चल नहीं सकता, यदि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोग आयोग्य और अविश्वसनीय हों और जहाँ जीवन के कार्य में लगे हुए लोग सदा यह याद नहीं रखते हों कि यदि समाज की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा ठीक तरह से होनी है तो प्रत्येक व्यक्ति को भी अपना काम ठीक तरह से करना है। जो लोग स्वराज्य के योग्य हैं वे बड़ा परिश्रम करते हैं, मानसिक और शारीरिक आलस्य को उनके यहाँ स्थान नहीं है। आलसी आदमी स्वराज्य के योग्य नहीं है, स्वराज्य का प्रेमी बड़ा परिश्रमी होता है।

जो व्यक्ति अपने देश में स्वराज्य को स्थायी रखना चाहता है, वह जिम्मेदार और विश्वास के योग्य होता है, वह बानगी में एक चीज और पीछे से खराब चीज नहीं भेजता। वह बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी अपनी सब प्रतिज्ञाओं का पालन करता है, वह चिन्ता रखता है कि किसी को व्यर्थ की असुविधा या खतरा अपने से न पहुँचे और दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार रखता है जैसा वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ करें।

अपने कार्यों से सार्वजनिक स्थानों में वह अपने को धोखे में नहीं पड़ने देता। वह इधर-उधर जलती हुई बीड़ी और सिगरेट के टुकड़े नहीं फैंकता रहता, सब स्थानों पर थूकता नहीं, चीजों को ऐसे नहीं रखता कि कोई ठोकर खाये या उस पर फिसलकर गिर जाये। सार्वजनिक स्थानों में जितनी जगह की उसे आवश्यकता है उतनी ही लेता है और दूसरों को सुविधा देता रहता है। अपना छाता या छड़ी इस प्रकार लेकर नहीं चलता कि दूसरों को चोट लगे। सड़क को पार करने के पहले आगे और पीछे देख लेता है। सदा शिष्टता और सहानुभूति से व्यवहार करता है और ऐसी सैकड़ों चीज करता है जिनसे दूसरों को सहायता और आराम मिले और सभी लोग सुरक्षित रहें।

सर्वोपरि स्वराज्य का प्रेमी यह चाहता है कि हम अपने बड़े और इष्ट आदर्श को स्थायी और सुरक्षित रखने में उचित भाग ले सकें। उसे यह भी जानना होगा कि स्वराज्य उसी के लिये नहीं है। सबके लिये है। वर्तमान के लिये ही नहीं, भविष्य के लिये भी। इस कारण उसे उदार होना होगा और जो कुछ वह जानता है, उसे दूसरों को सिखला जाना होगा, जिससे जो लोग उसके बाद आयें, उसकी परम्परा को कायम रख सकें।

स्वराज्य का सच्चा उपासक ऐसा काम उठाता है जिसे वह पसन्द करता है और उसे उठाकर उससे बराबर स्नेह रखता है, वह बड़ा परिश्रम करता है, वह कार्यकुशल होता है, विश्वासपात्र होता है, उदार होता है। साधारण से साधारणजन ऐसा हो सकता है। उसकी लोकहितैषिता इतनी विस्तृत होगी कि साम्प्रदायिकता उसके पास फटक नहीं सकती और उसका भ्रातृभाव इतना जाग्रत होगा कि वह अपने पड़ौसी की सहायता के लिये जब कभी आवश्यकता होगी, दौड़ पड़ेगा। उसे अपने प्रचार की चिन्ता नहीं रहती, वह अपने प्रति, अपने कुटुम्ब के प्रति, अपने समाज के प्रति सदा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहता है। वह वैसा ही सच्चा व्यक्ति है जैसा उसे होना चाहिए। यह स्वराज्य की नींव का पत्थर है। यदि नींव खराब है तो भवन खड़ा नहीं कर सकता। नींव के पत्थर का हमें सम्मान करना चाहिए। साधारणजन का हमें आदर करना चाहिए। यदि साधारणजन वैसा ही हो जैसा उसे होना चाहिए, तो सब कुछ ठीक होगा। वह स्वराज्य को सुराज्य के रूप में परिणत करेगा, वह सुराज्य का निर्माण करेगा, वह उसको सदा स्थापित रखेगा। यदि हम चाहते हैं, यही वह करेगा। यदि स्वराज्य सबके लिये है, उसको लाने में सबका हिस्सा है, तो उसको बनाये रखने में भी सबको समान योग देना होगा।

राष्ट्रीय प्रगति के लिये उत्तरदायी प्रमुख आधार

देश को, समाज को उन्नत बनाने के लिए, उसे श्रेष्ठ और समुन्नत मार्ग पर बढ़ाने के लिए विशिष्ट व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह गुरुतर भार सामान्य व्यक्ति नहीं सँभाल सकता। इसके लिए प्रभावशाली नेतृत्व, गुण सम्पन्न महामानव चाहिए, वही समाज को अच्छी दिशा दे सकने में समर्थ हो सकते हैं। प्रभावशाली नेता केवल मंच-सँभालने मात्र से कोई नहीं बन जाता, उन्हें कुछ कर्त्तव्य करने होते हैं, कुछ दायित्व निभाने होते हैं।

समाज का नेतृत्व करने के लिए सर्वप्रथम उस समाज के रहने वालों की सहज प्रकृति से अवगत होना पड़ता है। बिना सहज प्रकृति को जाने कोई किसी को अभीष्ट दिशा में बढ़ने की प्रेरणा नहीं दे सकता क्योंकि व्यक्ति अपना क्षेत्र निर्धारण, अपनी सहज प्रकृति के आधार पर ही उसी से तालमेल खाने वाले सिद्धान्तों से कर पाता है। यदि उन्हें अभीष्ट, विपरीत दिशा में मोड़ना हो तो प्रथम तो उन्हीं को प्रकृति के अनुकूल थोड़ा मोड़ना होता है और कलान्तर में जब वही नयी परिस्थिति उनके अनुकूल बनने लगे तो पूर्णतया वांछित दिशा दिया जा सकना संभव है। नेतृत्व के लिए अधिकांश लोगों को सहज प्रकृति का ज्ञान होना आवश्यक है।

किसी भी समाज को अपना अस्तित्व बनाये रखने और उसे उन्नत बनाने के लिए एक निश्चित धर्म एवं भाषा का होना आवश्यक है। इनसे रहित समाज, समाज कहलाने का अधिकारी नहीं बन सकता। धर्म से समाज का जन्म तथा रक्षा होती है और भाषा से उसकी पुष्टि तथा स्थिति। इतिहास साक्षी है कि जिस समाज के पास से यह दोनों तत्व हाथ से निकल गये, वे समाज भी अस्तित्वहीन हो गये। दक्षिण अमेरिका के अनेक प्रदेशों में अभी भी उस देश के आदिम निवासी अनेक रैड इंडियन्स विद्यमान हैं, परन्तु उनका धर्म क्रिश्चियन तथा भाषा स्पेनीश आदि होने से उन लोगों में मूलभूत सामाजिक-जीवन या जातीय भाव सम्पूर्ण रूप से विनष्ट हो गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोम के प्रसिद्ध विचारक 'सिसरो' को एक बार 'सिलसिया' प्रदेश का शासन कुछ दिनों तक चलाना पड़ा। वहाँ से लौटने पर रोम की सीनेट सभा ने उन पर यह आक्षेप लगाया कि 'सिसरो' ने इतने दिनों सिलसिया पर शासन किया परन्तु न तो कोई युद्ध जीता, न अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इस पर सिसरो ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया कि मैंने सिलसिया में वह कार्य किया है कि वे चिरकाल तक रोम को अपना गुरू मानते रहेंगे। वहाँ मैंने १४० ऐसे विद्यालय खोल दिये हैं, जो रोमन भाषा की शिक्षा देंगे। इन विद्यालयों में पढ़कर निकलने वाले शिक्षित पुरुष रोम को ही अपना आदर्श मानेंगे। सीनेट सभा सिसरो के इस उत्तर से पूर्णतया सहमत हो गई। भाषा और धर्म का समाज पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। अतः समाज का नेतृत्व करने वालों के लिए ज्ञानदान का कार्य नितान्त आवश्यक है।

भाषा आदि की तरह आचार-व्यवहार भी समाज को प्रभावित करते हैं। आज पौर्वात्य सभ्यता एवं पाश्चात्य सभ्यता के बीच विद्यमान विभेदक रेखा, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, रीति-नीति, भाषा-परिच्छेद आदि के आधार पर ही खींची जाती है। सामाजिक नेता को यह तथ्य सदैव ध्यान में रखना होता है। उसे समाजगत आचार-व्यवहार को महत्त्व देना होता है। उसमें उत्कृष्टता का समावेश भी आचार-व्यवहार में उत्कृष्टता के समावेश से ही सम्भव है।

समाज को उन्नत मार्ग पर बढ़ाने के लिए नेता को स्वयमेव चरित्रवान होना पड़ता है। साथ ही समाज के चरित्र को ऊँचा उठाना होता है। इन दोनों कार्यों के अभाव से कोई भी समाज उन्नति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता।

समाज की उन्नति शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर भी पर्याप्त निर्भर रहती है। परन्तु शिक्षा ऐसी हो, जैसा हम समाज को बनाना चाहते हैं। समाज में स्वावलम्बन, आत्म-निर्भरता, परिश्रमशीलता, सादगी एवं चरित्रनिष्ठा इत्यादि गुणों के समावेश के लिए इन्हीं गुणों से परिपूर्ण शिक्षा होनी चाहिए। सामाजिक नेतृत्व का कार्य सँभालने वाले को सर्वप्रथम इस कार्य को करना होता है, तभी अभीष्ट प्राप्ति की सम्भावना सुनिश्चित हो पाती है। भारत पर २०० वर्ष तक अँग्रेजों का आधिपत्य अन्य माध्यमों की तुलना में शिक्षा के माध्यम के रूप में अधिक था। आज भी मैकाले की उस नीति का पर्याप्त प्रभाव दीख पड़ता है।

समाज में जब कभी अन्धानुकरण की प्रवृत्ति पनपने लगती है, अपना आदर्श भुलाया जाने लगता है, तब वह समाज धीरे-धीरे पतन के गर्त में गिरता चला जाता है। भारतीय जनजीवन में जो आज दिखावा की वृत्ति, फैशन-परस्ती इत्यादि दोष आ गये हैं वे सब पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण का कुपरिणाम कहे जा सकते हैं। अन्यथा "सादा जीवन उच्च विचार", "बहुजन-हिताय-बहुजन-सुखाय", "वसुधैव-कुटुम्बकम्" आदि आदर्शों से समन्वित भारतीय समाज में ऐसे दुर्गुण क्यों कर दिखाई पड़ते ?

समाज की उन्नति पारस्परिक गुणों के सम्वर्द्धन-परिवर्धन से सम्भव होती है। यदि परस्पर दोष-दर्शन की ही प्रवृत्ति ही तो वे एक-दूसरे पर कुठाराघात करते हुए अन्ततोगत्वा सबका सर्वनाश कर डालेंगे क्योंकि एक-दूसरे पर मात्र कीचड़ उछालने की प्रवृत्ति से परस्पर घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, विद्रोह की भावना ही पनपेगी, जो कालान्तर में सर्वनाश का कारण बनेगी। समाज का नेतृत्व करने वाले को इस प्रवृत्ति के दोषों से परिचित होना चाहिए और इसे दूर करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।

देश काल की प्रवृत्तियों के आधार पर आचार-विचार में हेर-फेर करने की प्रवृत्ति युग धर्म के अन्तर्गत मानी जाती है। वर्तमान काल में 'सामूहिकता' के बलबूते व्यक्ति के कार्य आसानी से हो सकते हैं। असंगठित-समाज आक्रमणकारियों से स्वयं की सुरक्षा तक नहीं कर सकता। भाषा-संस्कृति, साहित्य, कला इत्यादि सर्वविधि उन्नति के लिए मिल-जुलकर एकजुट प्रयास करने से ही प्रगति संभव हो पाती है।

अनुशासन की मर्यादा में आबद्ध व्यक्ति अथवा समाज ही उन्नति के शिखर पर चढ़ने में सफल हो सकते हैं। अनुशासनहीन व्यक्ति व समाज के लिए उन्नति करना तो दूर, सांमान्य जीवनक्रम पूरा कर पाना भी कठिन होता है। वैसे यह अनुशासन स्थापन यदि स्वतः से हो तो अधिक अच्छा रहता है। आत्मानुशासन-अधिक मनोवैज्ञानिक एवं न्यायोचित होता है अन्यथा तो जोर-दबाव डालकर भी अनुशासन स्थापना कोई बुरा नहीं होता, परिणाम तो अन्ततः अच्छा ही होता है। सेना का महत्त्वपूर्ण कार्य सँभालने वाले सेनानी कितने अनुशासित होते हैं, यह बात किसी से छिपी हुई नहीं है। भले ही वह अनुशासन शक्ति द्वारा क्यों न हो ? इस प्रकार समाज का नेतृत्व करने वाले को अपना जीवन तो अनुशासित करना ही चाहिए, समाज में भी अनुशासन की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।

लोकतंत्रात्मक राज्य सफल तभी होगा, जब

भारतवासी आर्यों की मूल धर्मस्मृति मनुस्मृति है। उसके अन्तिम (१२) अध्याय के अन्तिम श्लोकों में, सब कुछ कह चुकने के पीछे, यह कहा है,

मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते।
अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेदवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मण ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः।।

अर्थात्, जब यह संशय उत्पन्न हो कि इस नयी अवस्था में क्या नया धर्म, क्या कायदा-कानून, होना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए, तो शिष्ट ब्रह्मज्ञानी लोग जो कुछ निर्णय कर दें, वही धर्म माना जाय—यही इस समस्त मानवशास्त्र का, मानवों के हित करने वाले शास्त्र का, मनु के कहे हुए शास्त्र का, परम रहस्य है, सार है, मूल-तत्त्व और अन्तिम सिद्धान्त है।

इस पुराने वाक्य का नये शब्दों में अर्थ खोलने का यत्न आगे किया जाता है।

'डेमाक्रेटिक सेल्फगवर्मेन्ट', 'लोकतन्त्रात्मक स्वराज', 'संघराज्य' का सार इतना ही है कि जनता ने स्वयं जिनका नियोजन, निर्वाचन, वरण किया हो, वे ही सज्जन कानून बनावें, धर्मव्यवस्थापक सभा जनता की नियोजित हो। संवत् १९८५ (सन् १९२८) में भारतवर्ष की सर्वदल समिति ने जो स्वराज-योजना बनायी थी। उसका भी हृदय कहिए, सार कहिए यही था। धर्म-व्यवस्थापक-सभा, 'लेजिस्लेचर', वह सभा जो उन कानूनों को बनाती है जिनके अनुसार देश में जनता को अपना जीवन चलाना पड़ता है, वही राष्ट्र की सच्ची शासक अथवा राजा कहिए, या केन्द्रीय शक्ति कहिए, होती है और जनता के चुने हुए आदमी ही कानून बनावें, यह इच्छा की जाती है, क्योंकि यह विश्वास स्वाभाविक भी है और गहरी दृष्टि से सत्य भी है कि जनता के चुने और माने हुए आदमी ही जनता की भलाई साधने वाले कानून बनावेंगे।

राष्ट्र की, जनसमुदाय की, समाज की, समृद्धि का एकमात्र आश्रय कानूनों की उत्तमता पर है।

धर्म एव हतोहति, धर्मो रक्षति रक्षितः।

कानून ही उनके समग्र जीवन का नियमन-नियंत्रण करते हैं। पर अच्छे कानून तभी बन सकते हैं जब बनाने वाले अच्छे, अनुभवी, परार्थी, विवेकी, धीमान्, सुधी, तत्वज्ञ, दानिशमंद, नेकनीयत, दुनियादोस्त, मुहक् किक्, हो। अतः स्पष्ट है और सब तरह के राजनीतिक विचार वाले, सभी सज्जन इस एक बात को निर्विवाद स्वीकार कर लेंगे कि राज और समाज की सुख-समृद्धि उनके धर्म-व्यवस्थापक पुरोहितों की आर्यता, सभ्दुद्धिता, विवेकिता, परार्थिता, सज्जनता पर सर्वथा आश्रित है। उक्त सब गुण पुराने दो शब्दों में आ जाते हैं, तपस्वी और विद्वान्।

इस रीति से 'निर्वाचित व्यवस्थापक', 'इलेक्टेड लेजिस्लेटर', तथा 'लीडर' इत्यादि शब्दों के पर्याय के रूप से प्राचीन उत्तम 'पुरोहित' शब्द का प्रयोग किया जाय तो उस पर जो मल जम गया है। वह हटे और उसका जौहर खुले।

राजा प्रजानां स्वामी स्यात् राज्ञः स्वामी पुरोहितः।

यह सिद्धान्त शुक्रनीति का है। इसका अर्थ यही है कि 'लेजिस्लेचर' के द्वारा 'एक्सिक्यूटिव का नियमन-नियन्त्रण हो। 'प्रधिधि' और 'प्रतिनिधि' शब्दों का प्रयोग भी ऐसे अवसर पर, पुराने अर्थों में मिलता है।

ऐसी अवस्था में, प्रायः सब सज्जन अंगीकार करेंगे कि यह प्रश्न परम गरिमा का है, कि यथासंभव परिपक्व प्रज्ञा और निःस्वार्थ हृदय के अच्छे अनुभवी सज्जनों का वरण, पुरोधान, निर्वाचन, घर सभा के लिये कैसे हो ? राजनीति के समग्र शास्त्र और समग्र प्रयोग का, सब सिद्धान्त, सब व्यवहार, सब थ्यौरी और सब प्रैक्टिस का सार इतना ही है। इस महाप्रश्न के ही उचित रीति से उत्तीर्ण होने पर समाज के सब विभिन्न प्रकृतियों, शक्तियों, रोजगारों, वयक्रमों, अवस्थाओं और साम्प्रदायिक धर्मों के मनुष्यों के सुख का आसरा है।

प्रश्न बहुत कठिन है तो उसके समाधान में, उत्तरण में और भी अधिक जोर लगाना चाहिए। यह तो मूल सींचने की बात है, अन्य सब बातें भारतीय स्वराज्य-विधान की अथ च अन्य सब पृथ्वी मंडल के शासन-विधानों की, केवल शाखा पल्लव धोने की बातें हैं। पश्चिम देशों ने इस प्रश्न को अब तक पार नहीं कर पाया, तो पूर्व देश को और भी अधिक आवश्यकता है कि इसके उत्तर को अपनी प्राचीन सूत्रात्मा के और शास्त्रीय आगमों के, भीतर गहरा गोता लगाकर खोज निकाले।

इस्लाम धर्म का इस राजनीतिक प्रश्न पर कहना है कि,

खुदातर्सरा बर रअय्यत गुमार।
कि मेमारि मुल्करत परहेजगार।।

"खुदा को चाहने वाले तथा खुदा से डरने वाले, (फारसी के तर्स धातु का, जो संस्कृत के तृष, ष्त, का ही रूपान्तर जान पड़ता है, दोनों ही अर्थ हैं) धर्म-भीरु, विवेकी, त्यागी, निःस्वार्थी मनुष्य को ही प्रजा के कार्य का प्रबन्ध करने के लिए तैनात करो क्योंकि ऐसा ही मनुष्य राष्ट्र की इमारत को बनाता है, बिगाड़ता नहीं।"

स्मृति ग्रन्थों में बार-बार कहा गया—है कि जनता के हितचिन्तक, सदुपदेशक, ऋषिकल्प, तपस्वी और विद्वान्, परार्थी और धीमान, मनुष्य ही धर्म का परिकल्पन करें। मनु के मत का उल्लेख—ऊपर कर दिया गया है। विस्तार से आगे कहा जायगा—

पूर्व देश ही में उत्पन्न जीसस् क्राइस्ट के प्रवृत्त किये क्रिश्चियन धर्म के शब्दों में जिस पदार्थ को 'पृथ्वी पर स्वर्गराज्य' कहते हैं, वह राजनीति की सीधी-सादी सरल भाषा में "तपस्वी, निःस्वार्थी विद्वानों के बनाये धर्मों, कानूनों, के अनुसार राज्यशासन" ही है।

बहुत वर्षों के पीछे सौभाग्य का अवसर आया है कि भारत वर्ष अपने स्वराज्य का विधान करने को सन्नद्ध हुआ है। बहुत अप्रमत्त और सचेत रहना चाहिये, कि ऐसा न होने पावे कि स्वराज्य की नींव ही अशुद्ध पड़ जाय। इसका दृढ़ और निश्चित प्रबन्ध करना चाहिए कि भारतवर्ष का स्वराज, भारत जनता के (अधम 'स्व' का राज नहीं, प्रत्युत) उत्तम 'स्व' का शासन, उत्तम-धर्म-परिकल्पन द्वारा हो,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुश्त-तदपुश्त भारत के सबसे अधिक अनुभवी और सबसे अधिक निःस्वार्थी और लोकहितैषी सपूत ही, यहाँ के धर्मों, कानूनों का परिकल्पन, व्यवसान, व्यवस्थापन करें। यदि इस गंभीर विषय के सम्बन्ध में स्वराज की नींव अशुद्ध डाल दी गयी तो फिर पीछे उसका शुद्ध करना बहुत कठिन होगा और अशुद्ध नींव पर जो भौम (मंजिल) खड़े किये जायेंगे वे सभी अशुद्ध होंगे।

इन हेतुओं से अत्यन्त आवश्यक है कि कठिनता के कारण इस राष्ट्रप्राण-सम्बन्धी प्रश्न से मुँह न मोड़ा जाय, बल्कि इस पर बहुत ध्यान दिया जाय और परिश्रम किया जाय और जब तक इसका उत्तर न मिले तब तक इसको छोड़ा न जाय। अन्यथा इस समय की अतित्वरा का फल आगे चलकर अतिदुःखमय चिरविलम्ब हमारे राष्ट्र की प्रगति में अवश्य होगा। बड़े खेद का स्थान है कि जितना समय आजकल निर्वाचितों के साम्प्रदायिक धर्मों और संख्याओं की बहस में गँवाया जाता है, उसका दशमांश समय भी उनकी बुद्धि और हृदय की, दिल और दिमाग की, योग्यता पर विचार करने में नहीं लगाया जाता। साम्प्रदायिक प्राणिधान ('काम्यूनल रेफ्रेजेंटेशन') पर जोर देना व्यर्थ है, सर्वांगीण, आंगिक, समाज के मुख्य अंगों के, जीविकाओं, वृत्तियों, रोजगारों, व्यापारों के प्राणिधान, प्रतिनिधान, (फ्रंकशनल, आक्यूपेशनल, वोकेशनल, रेफ्रेजेंटेशन) की फिक्र यदि ऐसा किया जाय तो साम्प्रदायिक संख्याओं के झगड़े आपसे आप सब नीरस होकर मिट जायेंगे।

यदि भारतवर्ष ने इस प्रश्न का ठीक उत्तर खोज निकाला तो वह न केवल अपने स्वराज्य की नींव शुद्ध और गहरी और अटल डालेगा, किन्तु राजनीति-शास्त्र का संशोधन और उत्कर्ष करके पृथ्वी मंडल भर के मनुष्य समुदाय की सुखवृद्धि में सहायक होगा।

महात्मा गाँधी को जो अंतर्विकास और दैवी प्रेरणा हुई उसका अनुगमन करके भारतवर्ष ने इधर के समय में संसार को राजनीतिक युद्ध के नये शांतिमय प्रकारों के नमूने दिखाये हैं। चाहिए कि देशबंधु चित्तरंजनदास के अंतर्विकास और दैवी प्रेरणा की सहायता से अब वह संसार के राजनीतिक सिद्धान्तों में, राजनीति के शास्त्र में, एक अति प्राचीन होते हुए भी अति नवीन सिद्धान्त की वृद्धि करे। भारतवर्ष की सूत्रात्मा में जो अहिंसा और तपस्के, परहेज और जोहद के निषेधात्मक अंश हैं, उनका विकास और प्रयोग गाँधीजी ने किया। उसी सूत्रात्मा में विद्या और लोकहित और भूतदया के, इल्म और हुब्बुल्-इन्सानी के, जो विध्यात्मक अंश हैं, उन्होंने देशबन्धु को प्रेरित किया। ये अंश साध्यस्थानी हैं, अहिंसा और तपस् साधन स्थानी हैं। अतः यहाँ—समग्र प्रतिपाद्य का मूल सूत्र इतना ही है कि धर्म परिषद् के पार्षद, कानून बनाने वाली मजलिस के मेम्बर, राजनीतिक पुरोहित, में अहिंसाबुद्धि और तपस् भी हो तथा विद्या और लोकहितैषिता भी हो, इसके उपाय खोजना चाहिए।

भारतवर्ष की स्वराज योजना में और जो कुछ हो या न हो निर्वाचन के उम्मीदवारों के, वरणाकांक्षियों के, लिए कुछ विशेष गुणों की, योग्यताओं की, शर्तें लगा दी जानी चाहिए।

पश्चिम के देशों में, राजनीति के इतिहास में, निर्वाचकों की योग्यता पर तो बहुत विचार किया गया है, जहाँ तक मालूम पड़ता है, निर्वाचितों की क्या विशेष योग्यता होनी चाहिए, इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया है। सद्धर्म परिकल्पना का, अच्छे कानून बनाने का काम बहुत नाजुक, बहुत कठिन, बड़ी जोखिम का है। इस काम के लिए बहुत आगे-पीछे देखने की कार्य-कारक के सम्बन्धों के बहुज्ञान की, बहुदर्शिता और दूरदर्शिता की, बहुत आवश्यकता है। यदि एक भी धर्म, एक भी प्रभूत कानून, दोषवान बन गया, तो उसके असर से, प्रभाव से, उसके कार्यरूप बहुत-से दोष दूर-दूर तक पैदा होंगे। इसलिए आवश्यक है कि धर्मसभा में, 'लेजिस्लेचर' में, समाज के सब मुख्य-मुख्य विभागों के विशिष्टतम ज्ञान और अनुभव रखने वाले मनुष्य एकत्र होकर सब विभागों के हितकारी नियम बनावें। निर्वाचकता के अधिकार को फैलाने के लिए निर्वाचकता की योग्यता यहाँ तक कम की गयी है कि बहुतेरे अन्य देशों में तथा उक्त सर्वदल समिति की बनायी भारतवर्षीय स्वराज योजना में, केवल इक्कीस वर्ष की उमर ही पर्याप्त मान ली गयी है। पर निर्वाचित की योग्यता की, जिसकी आवश्यकता निर्वाचक की योग्यता की अपेक्षा बहुत अधिक है, कुछ चर्चा ही नहीं की है। जिन कानूनों का प्रभाव दूर-दूर समाज के जीवन के अंग-प्रत्यंग पर, सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल बातों में पड़ने वाला है, उन कानूनों के बनाने वाले का चुनाव प्रायः अनभिज्ञ जनसमूह की समझ पर छोड़ दिया गया है और उस समझ को अच्छा रास्ता दिखाने का, ऐसी सलाह देने का कि जिससे अच्छे आदमी चुनने में उसको सहायता मिले, कुछ भी यानी नहीं किया गया है। प्रत्युत अच्छी सलाह सद्दिग्दर्शन, सन्मार्गोपदेश के स्थान में प्रसिद्ध है कि इस महाजन-समूह को निर्वाचन के दिनों में, दुरुपदेश किया जाता है, साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियों का प्रयोग किया जाता है, झूँठी बातें बतायी जाती हैं, प्रलोभन और धोखा और धमकी दी जाती है, तरह-तरह का धन और शक्ति का अपव्यय और दुरुपयोग करके उनसे अयोग्य व्यक्ति चुनवाये जाते हैं, निर्वाचकों के भी और निर्वाचितों के भी स्वभाव और आचार बिगाड़े जाते हैं और दोनों में स्वार्थ और अनाचार की वृद्धि होती है, जिससे चिरकाल के लिए परस्पर द्रोह, आपस की दुश्मनियाँ पैदा हो जाती हैं, वर्ग-वर्ग का घोर विरोध अधिकाधिक बढ़ता है और दुष्ट धर्मों का नाकिस कानूनों का, परिकल्पन, धर्मसभा में होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

३.१० राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?

सर्वदल समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में ब्रिटेन के निर्वाचकों के सम्बन्ध में इन महादोषों की चर्चा की है, पर भारतवर्ष में भी उसी प्रकार के निर्वाचन का प्रचार करने का परामर्श देते हुए भी, इन अति हानिकर किल्बिषों के प्रतीकार का कोई भी उपाय बताने का यत्न तक नहीं किया है।

इस भयंकर आपत्ति को यथाशक्ति रोकने के लिए, और स्वयं सर्वदल कमेटी के निवेदन पत्र में सूचित घोर आशाभंग से बचने के लिए, स्वराज विधान में कुछ इस प्रकार के नियम रख देना चाहिए था जैसे—

१—प्रत्येक निर्वाच्य, वरणीय, पुरोधेय, के पास नीचे लिखी योग्यता (गुण) होनी चाहिए—

(क) समाज के इन चार मुख्य धर्मों (अंगों, कार्यों) में से किसी एक का वह विशिष्ट अनुभवी हो। (१) ज्ञान-विज्ञान, (२) शासन-कर्म (रक्ष और प्रबंध कर्म), (३) धन-धान्योत्पादन, अर्थात् कृषि, शिल्प (कर्मान्त, यंत्रकर्म, कारुकर्म, उद्योग, धन्धा) वाणिज्य-व्यापारादि, (४) शारीरश्रम (श्रमजीविता, मजदूरी)।

(ख) सामाजिक जीवन के किसी विभाग में उसने अच्छा काम किया हो और सद्बुद्धिता, आर्यबुद्धिता (ईमानदारी, नेकनीयती) और लोक-हितैषिता (लोक सेवा) का सुयश (नेकनामी) कमाया हो।

(ग) उसके पास इतना अवकाश (फुर्सत) हो कि धर्मसभा के काम को अच्छी तरह से कर सके और जीविकासाधन (रोटी कमाने) अथवा धनसंचयन के कार्यों से निवृत्त हो चुका हो, पर ऐसी निवृत्ति अनिवार्य न होगी।

(२) "केन्वेसिङ्ग" वोट माँगना, साक्षात् अथवा परोक्ष रूप से (ब्याज से), अयोग्यता का हेतु समझा जायगा (अर्थात् उम्मेदवारी से खारिज, च्युत, पतित कर देगा), पर निर्देशकों (नामजद करने वालों) को अधिकार होगा कि निर्दिष्ट (निर्वाच्य) के गुणों की घोषणा कर दें।

(३) धर्म सभा के किसी सदस्य को कोई नकदी पुरस्कार या वेतन सभा का काम करने के बदले में न दिया जायगा, उस कार्य के लिए उसका जो कुछ विशेष व्यय हो, यथा सफर-खर्च, मकान का किराया आदि वह सब उसको सरकारी खजाने से, राष्ट्रकोष से दिया जायगा, और विशेष सम्मान के चिन्ह भी उसको दिये जायेंगे।

इन शर्तों के हेतु तो प्रायः स्वयं प्रकाश हैं। मानव समाज मात्र के जो मुख्य चार प्राकृतिक अंग हैं, उनमें से प्रत्येक अधिकतम अनुभव रखने वाले और भद्रतम सज्जन धर्म सभा में जायँ और धन के लोभ से ऐश्वर्य और अधिकार के लोभ से विनोद और मन बहलाव की आशा से वर्ग प्रशंसिता और अपने ही वर्ग की वृद्धि की इच्छा से, राजनीति को एक रोजगार बना लेने के लिए अथवा अन्य ऐसी किसी एषणा से प्रेरित होकर न जायँ। किन्तु एक मात्र लोक सेवा भाव से, जनता के सब अंगों का हित साधने की इच्छा से, देश का बोझ उठाने की बुद्धि से जायँ और इस बड़े कार्य के बदले में, वृद्धोचित विशेष आदर सम्मान, उनके हृदय के तर्पण आप्यायन के लिए, उसको अवश्य दिया जाय। यहाँ उनको गुरु कार्य भार उठाने के लिए प्रलोभन, प्रोत्साहन, आराधन, राजी करने का उपाय है।

इस विषय में भारतवर्ष का प्राचीन विचार, निगम और आगम, माकूलात व मनकूलात, वेद और स्मृति, क्या था, इसकी जानकारी के लिए आर्ष ग्रन्थों से कुछ वाक्यों का उद्धरण इस स्थान पर किया जाता है।

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा युक्ता स्यात्, ये तत्र श्रेयांसो ब्राह्मणाः संमर्शिनः धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। (तैत्तिरीय उपनिषत्)

अर्थात्, कब, क्या करना चाहिए, कैसे बरतना चाहिए, इस अवस्था में क्या धर्म है, ऐसी शंका उत्पन्न हो, तो श्रेष्ठ ज्ञानवान् और सच्चरित्रवान् सज्जन, जो अलूक्ष, अरूक्ष, रूखे नहीं, आर्द्र, कोमल, अनुकम्पक हृदय वाले और अमर्शी (र्षी) नहीं, समर्षी (र्षी) मर्षणशील, (मर्शनशील), विचार करने वाले और सहन करने वाले, रबादार और गौरपमंद, 'टालरंट' और 'थाटफुल' भी हों, वे जैसा ऐसे मौके पर करने को कहें और करें, वैसा ही करना चाहिए।

शांतिपर्व के अ० ८३-८५ में विस्तार से वर्णन किया है कि सभासद्, अमात्य, मन्त्री, में कौन-कौन गुण होने चाहिए और कौन-कौन दोष न होने चाहिए ?

"श्रेयसो लक्षणं चैतद् विक्रमो यस्य दृश्यते, कीर्तिप्रधानो यश्च स्यात्समये यश्च तिष्ठति, पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः, योद्धा नयविपश्चिन्नः, स मन्त्रं श्रोतुमर्हति।" इत्यादि निष्कर्ष यह कि पुरवासी और जनपदवासी जनता में जिसकी सत्-कीर्ति हो और जिस पर उनका विश्वास हो और जो कीर्ति का ही विशेष अभिलाषी हो, धन का नहीं, वह मन्त्री, सभासद् होना चाहिए।

शुक्रनीति में भी श्लोक है,

"उत्तमाः मानमिच्छन्ति, धनमानै तु मध्यमाः,
अधमा धनमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम्"

'धनमातो' के स्थान पर 'आज्ञाशक्ति' पढ़ें, तो उपनिषदुक्त लोकेषणा, अर्थात् सम्मानिच्छा, ऐश्वर्यैषणा ज़िसमें दारसुतैषणा अन्तर्गत है और वित्तैषणा से इस श्लोक का सामंजस्य हो जाय। संन्यासी के लिये सम्मानैषणा भी उचित नहीं। इसीलिये संन्यासी को धर्मपरिषत् में स्थान भी नहीं। पर जो व्यवहार से सर्वथा पृथक् नहीं हुआ है, उसको 'यशसि चाभिरुचि' अनुचित नहीं और भी, यदि वह स्वयं सम्मान न भी चाहे, तो भी लोग उससे काम लेते हैं, उस पर धर्म विचार का बोझ रखते हैं, उनका तो कर्त्तव्य है कि उसको सम्मान दें, 'अवमंता विनश्यति' और उससे प्रार्थना करें कि आप हम लोगों का काम सम्हालिये। इसी में दोनों की शोभा है। न यह कि उलटे वह उनसे प्रार्थना करे कि हमको काम सौंपिये। यदि ऐसा करे तो अवश्य स्वार्थी है और काम बिगाड़ेगा, उसकी नीयत छोटी और खराब है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब हमें ऐसे नेता चाहिए

बिना नेता के समाज नहीं होता और नेता के लिए समाज का होना आवश्यक है। जब से सभ्यता पनपी, मानव समाज से लेकर पशु तथा कीट-पंतग समाज में भी नेता की रचना हुई, जन समूह को या पशु-पक्षी समूह को पेट तथा गृहस्थी की झंझट में इतना अवकाश नहीं रहता कि वह अपना ठीक से नियन्त्रण कर सके तथा अपने सामाजिक जीवन का सञ्चालन कर सके—वह कार्य समूचे समाज की ओर से उसका एक अग्रणी या नेता करता है। अपने स्वभावसिद्ध गुणों से तथा अपने में उपयोगिता के कारण पूजनीय होता है। वास्तव में वह 'गणपति' होता है, पर गणपति बनने के लिए, 'गणानां त्वा गणपतिः होने के लिए उसमें कई गुणों का समुच्चय होना चाहिये। गणपति वही हो सकता है, जो हाथी के ऐसे बड़े-बड़े कान रखता हो, जिससे संसार का सब कुछ उसके कानों को सुनायी दे जाय। उसके नेत्र इतने छोटे हों कि संसार का ऐब बहुत कम देखे। पेट इतना बड़ा हो कि सब कुछ सुन-समझकर पेट में रख ले। चूहे की चाल चले यानी बहुत सावधानी से चारों तरफ की थाह लेकर तब बड़ी शीघ्रता से चले, फिर रुक जाय, इतनी सावधानी से जीवन बिताने वाले के दोनों हाथों में, लड्डू होता है। सूँड़ से फूँक-फूँककर वह कदम रखता है—यह है गणपति का गुण। सब कार्यों का आरम्भ करने में ऐसे गणपति का पूजन करने से सभी विघ्नों का नाश होता है और उस गणपति की कृपा से सब काम सिद्ध होते हैं उसका आदर्श मानकर चलने से हर एक मनुष्य का कल्याण होता है।

इस प्राचीन गणपति को हमारे शास्त्रों ने 'नेता' कहा है। नेता बड़ा पुराना शब्द है, आज का नहीं है किन्तु जिस समय शब्द बना था, उस समय प्रायः राजा तथा पुरोहित ही नेता होता था। आज तो जिस गली-कूचे में, जिस कंकड़-पत्थर को उठा लीजिये, वही नेता होगा। वर्षा में मेढक की बाढ़ आती है, प्रजातन्त्र में नेता की बाढ़ आ गयी है। हमारे देश में स्वराज्य हो गया, पर हम स्वराज्य का सुख नहीं भोग पाते हैं। इसका कारण है कि हमारा नेता हमको चैन से बैठने नहीं देता। जहाँ समस्या नहीं है, वहाँ पर वह कोई न कोई समस्या उत्पन्न कर देगा। यदि हम लेशमात्र भी सुख की साँस लेना चाहेंगे तो वह नयी-नयी उलझनें पैदा कर देगा।

एक बात और भी है—देश का तथा समाज का उत्थान नेता पर निर्भर करता है। नेता यदि पथभ्रष्ट हुआ तो देश भी पतन की ओर अग्रसर हो जाता है इसलिए, और किसी विचार से नहीं तो अपनी रक्षा के विचार से ही, हमको बहुत छानबीन कर अपना नेता चुनना होगा। आज की हमारी बहुत-सी परेशानियों की जड़ हमारा गलत नेता भी हो सकता है।

पर, साधारण जन समूह के पास न तो अवकाश है और न इतनी बुद्धि है कि वह भले-बुरे की पहचान कर सके। मामूली कहावत है—

गुरू कीजे जानकर। पानी पीजे छानकर।

पर नेता कैसे किया या बनाया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। पश्चिम की विचारधारा में इसकी अनेक व्याख्याएँ की गयी हैं, पर वे प्रायः सभी बहुत ही भौतिक तथा सांसारिक हैं। नेताओं की भौतिकता तथा सांसारिक ही विश्व के वर्तमान संकट का एक प्रधान कारण है। यदि मानव कुछ अधिक आध्यात्मिक तथा असांसारिक हो सकता तो वह संसार के ऊहापोह के मायाजाल में गला फँसाकर सिसक-सिसक कर मरता नहीं। नश्वर चीजें मनुष्य के दिल को खा जाती हैं और अन्तरात्मा को अन्धा कर देती हैं। जीवन का सुख चिन्ताओं में समझा जाता है। दिल या हृदय की आवश्यकता पार्थिव कसक या विनाशकारी प्रेम तक सीमित है—

गम गया, रौनके हयात गयी।
दिल गया, सारी कायनात गयी।।

पर, जीवन इसके ऊपर उठकर है। जीवन उसका है जो यह समझता है कि—

तुम जिसे दिल खयाल करते हो।
वह शबिस्ता-सा एक खिलौना था।।

मनुष्य के सांसारिक जीवन का उद्देश्य है सुख। सुख की प्राप्ति सम्पत्ति से होती। सम्पत्ति का हेतु क्या है ? कारण क्या है ?

प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता।
श्रुतिः शीलं दमश्चेति गुणाः सम्पत्तिहेतवः।।

अर्थात् प्रभाव, पवित्रता, मित्रता, त्याग, सत्य दूसरे का उपकार मानकर उसको स्मरण रखना, शास्त्र तथा शील सम्पन्न होना और बाहर-भीतर की इन्द्रियों को जीत लेना—ये गुण सम्पत्ति के कारण हैं—हेतु हैं।

इसलिए नेता वही है, जो हमें इन गुणों को सिखलावें, जो हमारे मन-वचन ऐसी भावना भर दे कि हम इन गुणों का प्रतिपादन-सम्पादन करें। पर ऐसी शिक्षा देना भी साधारण बात नहीं है। कौन ऐसी शिक्षा दे सकता है ? नेता। प्रश्न फिर आता कि 'नेता कौन हैं' या किसे मानना चाहिए ?

इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये हमको आज से दो हजार साल पीछे लौट चलना होगा। उस समय की भारतीय संस्कृति ने बहुत सोच-समझकर नेता की व्याख्या की थी। नेता का अर्थ निश्चित किया था नेता शब्द का निर्माण किया था और कहा था—"जो व्यक्ति नीति का पालन करे तथा चलावे, वही नेता होगा।" नयन करने वाली चीज का नाम नीति है यानी सम्यकरूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुमार्ग में चलाने वाली वस्तु का नाम नीति है 'कामन्दकीय नीतिसार:' के दूसरे सर्ग के सोलहवें श्लोक में लिखा है—

'नयनाद्नीतिरुच्यते'

नीति को जानने वाला नेता होता है। दण्ड भी देता है और जो लोग पथभ्रष्ट होते हैं, उनको सजा देना भी उसका कर्तव्य है। नीति का पालन कराने के लिये कठोर अनुशासन की आवश्यकता होती है। जिस राजनीति दल में से अनुशासन उठ गया है तथा अवज्ञा करने वालों के लिये दण्ड का विधान बहुत है, उस राजनीतिक दल का भविष्य उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता। जो अपनी नीति को अनुशासनपूर्वक नहीं मनवा सकता, वह नेता नहीं हो सकता। इसलिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद लिखा हुआ ग्रन्थ 'कामन्दकीय नीतिसार:' जो कि कौटिल्य के अर्थ शास्त्र का सार है, नेता का गुण बतलाता है—

दण्डनीतिर्यदा सम्यङ् नेतारमधितिष्ठति ।
तथा विद्याविदः शेषाविद्याः सम्युपासते ।।

(सर्ग २, श्लोक ६)

अर्थात् जब दण्डनीति भली प्रकार से नेता में स्थिर रहती है, तब वह विद्या को जानने वाला सम्पूर्ण शेष विद्याओं को प्राप्त होता है।

हिटलर हो या मुसोलिनी, स्टालिन हो या ट्रूमैन, हमारे देश के नेतावर्ग भी, जिसमें अनुशासन करने की क्षमता नहीं, वह और किसी गुण से सम्पन्न न होगा। अतएव वह नेता नहीं बन सकता। शासन की विभक्ति का ही नाम अनुशासन है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अट्ठाईसवें प्रकरण के दसवें अध्याय में लिखा हैं।

'शासने शासनमित्याचक्षते ।'

यानी किसी भी तरह की राजा की लिखित आज्ञा या प्रतिज्ञा शासन कहलाता है। अतएव नेता का आदेश शासन हुआ। जो इस आदेश को नहीं मान सकता या मना सकता, वह न तो नेता हो सकता है और न अनुयायी।

नीति को चलाने वाला तथा अनुशासन करने वाला। ऐसा नेता कौन हो सकता है ? इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या कामन्दकीय नीतिसार में ही देखिये—

वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रा बलवान् वशी ।
नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पः सुविग्रहः ।।

(सर्ग ४, श्लोक १५)

यानी उदार, शास्त्रसम्मत बोलने वाला वाग्मी, स्मृतिमान् बड़ा बलवान्, जितेन्द्रिय, शिक्षक, दण्ड प्रयोग करने वाला, चतुर, शिल्पविद्या में निपुण तथा अच्छे शरीर वाला नेता होता है।

इन्हीं गुणों का राजा होना चाहिए। इन्हीं गुणों का नेता होना चाहिए। पर आज यदि हम आँख उठाकर देखें तो हमको विरले ही ऐसा राजा, शासक या नेता नजर आयेंगे। ऐसे गुण वाले का हमारी दृष्टि से ओझल हो जाना ही हमारे अकल्याण का कारण है।

ईसा से ४७६ वर्ष पूर्व, प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक कनफ्यूसियस की ७३वें वर्ष की उम्र में मृत्यु हुई थी। अपने सचेत जीवन का प्रत्येक क्षण इस महापुरुष ने सबको सत्पिता, सम्माता, सुपुत्र, सुपुत्री तथा सन्मित्र बनने की शिक्षा देने में बिताया था। ऐसा महापुरुष समाज के नेता का जिक्र कैसे भूल सकता था ? अतएव उन्होंने अपनी पुस्तक या लेखों में नेता का गुण बतलाया है। वे लिखते हैं—

"जो दूरदर्शी नहीं हैं, वह निकट की पहेलियों में भी कष्ट उठायेगा। वही आदर्श पुरुष है, जो काम की कठिनाइयों को दूर करने का पहले ख्याल करता है, उसकी सफलता की बात पीछे सोचता है। प्राचीन काल में आदमी आत्मोन्नति के लिये शिक्षा प्राप्त करते थे। आज के लोग दूसरों से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्राप्त करते हैं। जो आदमी सच्चा है, ठोस है, सीधे रास्ते चलता है तथा दूसरों की बातें सुनकर मन में उसकी समीक्षा करता है, वही व्यक्ति देश में, समाज में तथा परिवार में उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है तथा अगुआ बन सकता है।"

कनफ्यूसियस ने आज से २३०० वर्ष पहले जो बात कही थी, उसे कोई कैसे काट सकता है ? कौन कह सकता है कि मानव के लिए ऊपर लिखी व्याख्या के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार का नेता चाहिए। कठिनाई यही है कि हम शास्त्र द्वारा प्रमाणित नेता को खोजते नहीं—तलाश नहीं करते या यदि हमें मिलता भी है तो उसकी कद्र नहीं करते। जैसा समाज होता है, वैसा ही नेता भी पैदा होता है। जिसे सच्चे नेता की आवश्यकता हो उसे अपना स्तर भी ऊँचा करना होगा, अपना दूषण भी दूर करना होगा। तभी हमको असली सुख तथा शान्ति देने-दिलाने वाला नेता प्राप्त होगा या यदि प्राप्त है तो उससे सुख प्राप्त होगा।

समाज निर्माण हेतु नेता नहीं सृजेता चाहिए

नेता का अर्थ होता है समाज का नेतृत्व करने वाला मार्गदर्शक। ऐसा मार्गदर्शक जिसे समाज की अगणित समस्याओं का भली-भाँति ज्ञान हो। न केवल ज्ञान हो वरन् वह क्षमता भी हो कि उनका संभाव्य हल भी निकाल सके। ज्ञान और क्षमता ही नहीं अभीष्ट स्तर के व्यक्तित्व का होना भी आवश्यक है। नेतृत्व करने के लिए किसी भी व्यक्ति में इन तीनों ही विशेषताओं का होना अनिवार्य है। जो इन से युक्त है, वही समाज एवं देश को सही दिशा दे सकता है। जिस भी देश में ऐसे नेताओं का बाहुल्य होगा वह निरन्तर आगे बढ़ेगा, सतत् प्रगति करेगा। जहाँ भी इनका अभाव होगा, वह समाज अनेकानेक समस्याओं से घिरा रहेगा। पिछड़ेपन से ग्रस्त रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज का मार्गदर्शन करना एक गुरुतर दायित्व है, जिसका निर्वाह हर कोई नहीं कर सकता। प्राचीनकाल में मार्गदर्शक की भूमिका पुरोहित वर्ग निभाते थे। ज्ञान का प्रसार ही नहीं राजतंत्र में भी उनका समान हस्तक्षेप रहता था। पद एवं प्रतिष्ठा की घृणित लिप्सा से वे कोसों दूर रहकर मूक साधना करते थे। समाज की समस्याओं का गहन अध्ययन करके उन्हें दूर करने के लिए हल निकालते रहते थे। शासन पर उनका कड़ा अंकुश रहता था। फलस्वरूप सभी क्रियाकलाप ठीक ढंग से चलते थे। चाणक्य की नीति-निपुणता प्रख्यात है। शासन संचालन में परोक्ष नियंत्रण उसका ही रहता था। समर्थ गुरुरामदास शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु ही नहीं, राजनीतिक सलाहकार एवं समाज सुधारक भी थे। सामर्थ्य एवं व्यक्तित्व दोनों ही से वे सम्पन्न थे। ऐसे अगणित मार्गदर्शक धर्म क्षेत्र में हुए हैं, जो समय-समय पर समाज को दिशा और राजतंत्र को प्रेरणा देते रहे हैं। सूझ-बूझ, दूरदर्शिता एवं महान् व्यक्तित्व का धनी अरस्तू न रहा होता तो सिकन्दर का प्रादुर्भाव एवं उसके वर्चस्व का विस्तार नहीं हो पाता।

थोड़ा और पुरातन काल में चलें तो राजतंत्र में पुरोहितों के वर्चस्व के अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं। राजर्षि वशिष्ठ के परामर्श से ही राजा दशरथ शासन का संचालन करते थे। शासक ही नहीं समाज से जुड़ी अगणित समस्याओं के हल में समय-समय पर उनका मार्गदर्शन मिलता रहता था। राजतंत्र पर हस्तक्षेप रहते हुए भी वे सत्ता एवं पद की लिप्सा से लाखों मील दूर रहते थे। उनके स्वयं का व्यक्तिगत जीवन तपः ऊर्जा से आलोकित रहता था। ब्राह्मणत्व एवं ऋषित्व को उन्होंने कभी अपने जीवन से तिरोहित नहीं होने दिया। पाण्डवों का शिक्षण करने वाले द्रोणाचार्य शस्त्र और शास्त्र दोनों ही विद्याओं के महान् ज्ञाता थे। देश एवं संस्कृति के ऊपर आसन्न संकटों के समय एक नेता का, मार्गदर्शक का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए यह जानना हो तो भगवान कृष्ण का जीवन चरित्र पढ़ना चाहिए, जिन्होंने अधर्म के उन्मूलन तथा धर्म की स्थापना के लिए जरूरत पड़ने पर महाभारत जैसे महाविनाशकारी युद्ध का सरंजाम जुटाया। पुरोहितों का राजतंत्र पर कितना अधिक दबदबा था, यह अशोक के शासनकाल में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शासन तंत्र प्रत्यक्षतः अशोक के हाथों में होते हुए भी परोक्ष मार्गदर्शन बौद्धों का ही था। शासन संचालन, समाज सुधार, समाज निर्माण की अनेकानेक योजनाएँ उनके मार्गदर्शन और विचारों से चलती तथा सफल होती थीं। देश एवं संस्कृति के वे सही अर्थों में मार्गदर्शक थे जिन्होंने अपने चट्टान जैसे दृढ़ तथा तपे सोने जैसे व्यक्तित्व से देश एवं समाज को नयी दिशा में गतिशील रखा। उनकी ज्ञान साधना तथा लोक आराधना को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

कालान्तर में परिस्थितियाँ बदलीं। धर्मतंत्र राजतंत्र से अलग हो गया। पुरोहितों की वह बिरादरी समाप्त-सी हो गयी जो अपने प्रखर व्यक्तित्व एवं अगाध ज्ञान के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन करती थी। पौरोहित्य ने एक पेशे का रूप ले लिया। शासन एवं समाज पर से उनका अंकुश जाता रहा। नेतृत्व करने योग्य व्यक्तित्वों के अकाल से ही देश पराधीनता के चंगुलों में जकड़ा रहा तथा दस-बीस वर्षों तक नहीं एक हजार वर्ष तक गुलामी की इन जंजीरों में बँधे रहना पड़ा। दासता का अवसाद काल उन्नीसवीं सदी में उस समय आरम्भ हुआ जब सच्चे नेताओं का दल कमर कसकर उस पाश को तोड़ने के लिए आगे आया जो सदियों से चला आ रहा था। उन्नीसवीं सदी ने अनेकों सच्चे नेताओं को, मार्गदर्शकों को जन्म दिया जिन्हें इतिहास सदा याद रखेगा।

मातृभूमि के लिए सिर कटाने वाले भगतसिंह आजाद, बिस्मिल, सुभाष के बलिदान को कौन भारतीय भुला सकेगा ? धर्म एवं संस्कृति के लिए हँसते-हँसते मर मिटने वाले बंदा वैरागी, जोराबरसिंह का उदाहरण अब कहाँ मिलेगा ? पटेल, गाँधी, नेहरू, तिलक, अब्दुल कलाम आजाद जैसे निस्पृह, कैरियर पर लात मारकर स्वतंत्रता संग्राम में अपनी क्षमता एवं प्रतिभा की आहुति देने वाले अब कहाँ रहे ? गाँव-गाँव में, नगर नगर में, रामायण की चौपाइयों के माध्यम से क्रान्ति का बीजारोपण करने वाले बाबा राघबदास अब कहाँ दिखायी पड़ते हैं ? युग धर्म को समझने वाले आनन्द मठ के संन्यासी कहाँ मिलते हैं ? गरीबों पिछड़ों का दुख-दर्द समझने तथा घर-घर जाकर भूदान यज्ञ की ज्योति जलाने वाले विनोबा अब चिराग लेकर ढूँढ़े नहीं मिलेंगे। कुप्रथाओं, परम्पराओं, अंधविश्वासों के जाल से समाज को बाहर निकालने वाले राजाराम मोहनराय जैसे समाज सुधारकों का अब कहीं दर्शन नहीं मिल पाता। पीड़ितों को उठाने तथा पिछड़ों को मार्ग दिखाने वाले विद्यासागर तो मात्र अब स्मृति के विषय बनकर रह गये हैं। कर्मयोग का अलख जगाने तथा ज्ञान योग की ज्योति जलाने वाले विवेकानन्द, दयानन्द जैसे मार्गदर्शक अब मुश्किल से मिलेंगे।

अपने देश में ही नहीं विदेशों में भी समय-समय पर अनेकों लोक प्रहरी पैदा होते रहे हैं, जिनके नेतृत्व में उस समाज को आगे बढ़ने का अवसर मिला है। रंग भेद, वर्ग भेद के विरुद्ध सतत् लड़ते रहने तथा अन्ततः प्राण गँवाने वाले लूथर किंग को कौन भुला सकता है ? दासता की बेड़ियों में जकड़े तथा भयंकर यंत्रणा सहते रहने वाले काले नीग्रो व्यक्तियों की आत्मा उस महान् नारी की लेखनी पर सदा सद्भावनाओं की पुष्पवृष्टि करती रहेगी, जिसने अपने उत्तेजक विचारों के माध्यम से एक क्रान्ति की नींव डाली, हैरियटस्टो की उस मूक किन्तु जीवन्त साधना को पीढ़ियाँ युगों-युगों तक याद रखेंगी। सामन्तशाही के विरुद्ध सतत् लड़ने वाले क्रान्तिकारी प्रिंसक्रोपाटकिन अवांछनीयता के विरुद्ध आक्रोश रखने वाले भावनाशीलों के लिए सदा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेरणा के स्रोत रहेंगे। मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ने तथा अपनी समूची प्रतिभा एवं क्षमता की आहुति चढ़ा देने वाले आर्थिक क्रान्ति के जनक मार्क्स की सेवाओं को कभी विस्मृत करना संभव नहीं है। आपत्तिकाल में समूचे देश के मनोबल को बड़ा देने तथा संकटों से उबारने वाले चर्चिल जैसे नेता तो मात्र अब स्मृति के विषय बनकर रह गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता मिलने के कुछ दिनों बाद ही अपने देश में निस्पृह नेताओं की वह पीढ़ी काल के गर्भ में समा गयी, जो बिना किसी स्वार्थ के अपने श्रम, प्रतिभा के जल से समाज एवं देश का अभिसिंचित करती रहती थी। इक्के-दुक्के बचे अपवादों की बात अलग है। विशाल देश की अगणित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याएँ हैं। उन सबके लिए तो अगली पंक्ति में खड़े होकर हर वर्ग को दिशा देने वाले सेवाभावी नेतृत्वकर्ताओं की बड़ी संख्या में आवश्यकता है।

यों तो कहने के लिए खद्दर वेशधारी सफेदपोश नेताओं की देश में कमी नहीं है। जो गाँधी के अनुयायी समर्थक कहलाते तथा उनके सपने को साकार करने की हामी भरने में वाक-कुशल हैं। गली, मुहल्ले, चौराहों, होटल, बाजार, क्लबों में चक्कर काटते, पान चबाते, जोशीले भाषण देते—बरसाती मेढ़कों की तरह टर्र-टर्र करते उन तथाकथित नेताओं के तो नित्य दर्शन किये जा सकते हैं, जो किसी न किसी पद या राजनीतिक पार्टी की छत्र छाया में पल रहे हैं। पार्टी का झंडा बुलंद करने, नारा लगाने तथा मंच पर बक-बक करते रहने की उन्हें एक मोटी रकम मुफ्त में आसानी से मिल जाया करती है। भोली जनता की भावनाओं को उत्तेजित करके तोड़-फोड़ कराना, हड़तालों को प्रोत्साहन देना, अव्यवस्था फैलाना ही उनका प्रमुख काम है। कभी-कभी संयोगवश कोई घटना उन्हें प्रख्यात बना देती है, तो लगे हाथ चुनावों में खड़े होने, जीतने का तुक्का भी हाथ लग जाता है। सेवा का पाठ पढ़े बिना, व्यक्तित्व का परिमार्जन किये बिना सत्ता में जा पहुँचने वाले उन अनगढ़ व्यक्तियों के हाथों में पड़कर व्यवस्थाएँ, उसी प्रकार अभिशाप सिद्ध होती हैं, जिस प्रकार कि बन्दर के हाथों में तलवार मिल गयी थी, जिसने बिना विचारे मक्खी मारने के चक्कर में मालिक का सिर ही उड़ा दिया था। दुर्भाग्य कि देश में ऐसे नेताओं की भीड़ बढ़ती जा रही है, नागरिक कम होते जा रहे हैं।

स्पष्ट है तथाकथित नेताओं की उस भीड़ से समाज एवं देश का कुछ भी भला नहीं होने वाला है, जो स्वयं ही स्वार्थों, संकीर्णताओं के जाल-जंजाल में बुरी तरह जकड़े हैं, जिन्हें सामाजिक परिस्थितियों का जरा भी ज्ञान नहीं है, जिन्हें दूसरों की सेवा कष्टकारक प्रतीत होती है, जो थोड़े भौतिक प्रलोभनों के झोंकों से तिनके की भाँति उड़ने लगते हैं, जिनका न कोई उच्चस्तरीय आदर्श है, न सिद्धान्त। भला वे देश और समाज का क्या मार्ग दर्शन करेंगे—कैसे नेतृत्व करेंगे ? वे करें भी तो अनुगमन करने वाले उसी प्रकार समस्याओं के गहरे खंदक में जा गिरेंगे, जिस प्रकार एक भेड़ का अनुकरण कर सैकड़ों भेड़ें गड्ढे में जा गिरती हैं।

नेतृत्व पहले विशुद्ध रूप से सेवा का मार्ग था। एक कष्ट साध्य कार्य था, जिसे थोड़े से सक्षम व्यक्ति ही कर पाते थे। वे पाते नहीं कुछ गँवाते ही थे। स्वेच्छापूर्वक कठिनाई का मार्ग चुनते थे। बिना किसी कामना महत्त्वाकांक्षा के वे समाज में संव्याप्त पीड़ा-पतन के निवारण हेतु प्रयत्नशील रहते थे। पर अब तो स्थिति ठीक उल्टी ही हो गयी है। अन्य व्यवसायों की भाँति नेतागिरी भी एक व्यवसाय बन गया है। ऐसा व्यवसाय जिसमें अपना कुछ भी नहीं लगाना पड़ता। बस थोड़ी चतुरता का होना काफी है। न श्रम लगाने की जरूरत, न किसी प्रकार की पूँजी, मुफ्त में मात्र जुबान चलाते रहने से ही इतना मिल जाता है कि अपनी गाड़ी सुगमता से चलती रहे। अवसर का लाभ उठाने की कला में निपुण हो जाने पर तो कभी-कभी मालामाल होने का अप्रत्याशित संयोग भी बैठ जाता है।

बैठे-ठाले वाणी की थोड़ी निपुणता प्राप्त करने से जीवन निर्वाह के सभी साधन आसानी से जुट जायँ, इससे बढ़िया एवं सस्ता व्यवसाय और क्या हो सकता है ? नेता बनने में अगणित लाभ हैं, इस मनोवृत्ति के कारण ही अधिकांश व्यक्ति नेता बनने के इच्छुक रहते हैं। प्रायः इनमें उनकी संख्या अधिक होती है, जो किसी भी कार्य में अपना मनोयोग लगाना नहीं चाहते। नौकरी न मिलने, पढ़ाई से जी उचटने, घर वालों का तिरस्कार सहने के बाद सुगम मार्ग नेतागिरी का दिखायी पड़ता है। वह भीड़ राजनीति क्षेत्र में बेरोक-टोक घुस पड़ती है। इस मनोवृत्ति के कारण राजनीति क्षेत्र में निठल्ले व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है, जबकि सच्चे नेताओं की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है।

कुछ दशकों पूर्व नेता शब्द सार्थक था तथा नेताओं का कर्तृत्व भी। पर अब वह शब्द सम्मानजनक नहीं रहा। नेता का नाम लेते ही आम व्यक्ति की नजरों में एक ऐसे खुदगर्ज व्यक्ति की तस्वीर घूम जाती है, जिसे अपने स्वार्थों के अतिरिक्त किसी से मतलब नहीं। जो कुर्सी एवं पद के लिए आम लोगों के हितों की बलि भी चढ़ा सकता है। अवसर आने पर वह एक पार्टी छोड़कर दूसरे की शरण ले सकता है। थोड़े-से व्यक्तियों को छोड़कर अधिकांश की स्थिति ऐसी है। अस्तु ! नेता के बदले स्वरूप की जो तस्वीर बनी है, वह गरिमामय नहीं है। अब इन नेताओं की नहीं देश को सृजेताओं की जरूरत है। सृजेता अर्थात् नव सृजन की बागडोर संभालने वाले व्यक्ति। राजनीति क्षेत्र में व्यक्तियों की कमी नहीं है। वहाँ तो भीड़ बढ़ती ही जा रही है। उसमें सीमित कार्य है, सीमित व्यक्ति भी करते रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं। सृजेताओं के एक बड़े समुदाय की जरूरत विभिन्न क्षेत्रों में है। जो सचमुच ही समाज के लिए, देश के लिए कुछ करना चाहते हैं, उनके लिए समाज सेवा का विशाल क्षेत्र कार्य करने के लिए खुला पड़ा है। राजनीति क्षेत्र के संघर्ष, मतभेद सर्वविदित हैं। उसमें पद, प्रतिष्ठा की सर्वत्र प्रतिस्पर्धा है। समाज सेवा के क्षेत्र में ऐसा कुछ भी नहीं है। बिना, किसी से टकराये बिना किसी से बैर लिये इस क्षेत्र में काम करते रहा जा सकता है।

सचमुच ही जिन्हें समाज एवं देश के प्रति दर्द है, उन्हें गम्भीरता से विचार करना चाहिए कि क्या राजनीति क्षेत्र से अलग हटकर कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सकता, जिनमें कसक होगी, उन्हें अनेकों क्षेत्र तथा असंख्यों काम अपनी ही आँखों से दिखायी देंगे। ऐसे काम जो श्रम-साध्य, कष्ट-साध्य हैं। यही सोचकर अधिकांश व्यक्ति उनमें जानते हुए भी हाथ नहीं डालते।

देश की परिस्थितियों एवं उनसे जुड़ी समस्याओं से कौन विज्ञ अपरिचित होगा ? यह किसे नहीं मालूम कि देश की तीन चौथाई जनता आज भी अशिक्षा के अंधकार में डूबी हुई है। पचास प्रतिशत आबादी को आज भी एक जून ही रोटी मिल पाती है, पोषण के अभाव में प्रतिवर्ष करोड़ों बच्चे मरते हैं ? करोड़ों कुपोषण के शिकार होते, लाखों को अपंगता, अंधेपन से ग्रस्त होना पड़ता है। रोजगार के अभाव में करोड़ों शिक्षित-अशिक्षित बेकार बैठे हैं। अस्वच्छता के कारण कितने ही प्रकार के रोग बढ़ते व उनसे कितने ही मरते हैं। प्रगति के इस युग में भी देश की आधी पीढ़ी-नारी समुदाय को घर की चहार-दीवारी में कैद रहना पड़ रहा है। ऊँच-नीच की भावना के कारण अल्प संख्यक वर्ग पिछड़ेपन से ग्रस्त हैं। नर-नारी भेद भाव से हर वर्ष हजारों मासूमों को हत्या-आत्महत्या का शिकार होना पड़ता है। मृतक भोज, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ समाज को जर्जर बना रही हैं। ऐसी अगणित सामाजिक समस्याएँ देश के सामने मुँह फाड़े खड़ी हैं, जिनके हल के लिए असंख्यों व्यक्तियों के खपने की आवश्यकता है।

जो यह कहते हैं कि पद अथवा सत्ता के बिना कुछ नहीं किया जा सकता अथवा पैसे के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, उनकी नीयत पर स्वाभाविक रूप से शक होता है। समस्याएँ वस्तुतः अज्ञान के कारण उत्पन्न होती हैं। वह दूर किया जा सके तो बिना धन के भी उन समस्याओं का हल निकल सकता है। गाँधी, विनोबा, लोक नायक जय प्रकाश, कागाबा ईश्वरचन्द्र, राजाराम मोहन राय जैसे अगणित नेता पद प्रतिष्ठा से कोसों दूर रहे, समाज एवं संस्कृति के लिए कार्य करते रहे। जो पद की दुहाई देते हैं उन्हें इनसे सबक लेना चाहिए कि मात्र व्यक्तित्व के बल पर ही कुछ किया जा सकता है। उस परम्परा का अनुगमन करने वाले सृजेताओं का समाज एवं देश के नव निर्माण हेतु पुनः आह्वान है। वे स्वयं तो कृत-कृत्य होंगे ही अन्य अनेकों को दिशा देने में समर्थ हो सकेंगे।

अतः समय की माँग आन्दोलनकारी नेताओं की नहीं, ऐसे लोकशिक्षकों की है जो जनमानस में जागरण का आलोक उत्पन्न करने का अनवरत् प्रयत्न करने में अथक रूप से लगे रहें। आन्दोलनों के आवेश विक्षोभ पैदा करते हैं। आक्रोश में तोड़-फोड़ ही हो सकती है। सृजन संभव नहीं। सृजन के लिए सघन अध्यवसाय चाहिए।

निश्चित रूप से ध्वंस सरल होता है और सृजन कठिन है। निर्माण में बुद्धि कौशल की नैष्ठिक श्रमशीलता की ओर प्रयत्नपूर्वक जुटाये जा सकने वाले साधनों की आवश्यकता पड़ती है। यह मंजिल कठिन और लम्बी है। पर है ऐसी जिसका और कोई विकल्प नहीं। सृजन तो सृजन के ढंग से ही होगा, उसे कुशल शिल्पी अपने कठिन श्रम और तदात्म्य मनोयोग से ही पूरा कर सकते हैं। सो भी तब जब उनका धैर्य और साहस भी लगन के साथ अविछिन्न रूप से जुड़ा रहे।

आन्दोलनकारी जनचर्चा का विषय बनता है—स्टेज पर उछल-कूदकर वह अपनी विशिष्टता की छाप दूसरों पर छोड़ता है। जन सम्पर्क से कतिपय परोक्ष लाभ उठाता है। इसके लिए उसे कुछ बहुत बड़ा त्याग भी नहीं करना पड़ता। जीभ की कसरत और दिमागी सूझ-बूझ का अभ्यास होने से थोड़ा सा समय देकर सस्ती नेतागीरी कोई भी अर्जित कर सकता है। अपने को लोक हितैषी सिद्ध करने के लिए लोगों को किसी भी सामने प्रस्तुत कठिनाई का दोष किसी दूसरे पर मढ़ कर सहज ही भड़काया जा सकता है और भीड़ को संघर्षरत किया जा सकता है। इस गोरखधन्धे का ताना-बाना बुनना जिसे आ गया उसकी नेतागीरी चुटकी बजाते चमक सकती है। कल परसों तक का अविज्ञात व्यक्ति किसी तोड़-फोड़ में आक्रोश भड़काने में सफलता प्राप्त करके आज का धुँआधार नेता बन सकता है। यह हथकण्डे अब इतने सरल हो गये हैं कि उन्हें अपनाने वाले वर्षा के कीट-पतंगों की तरह तूफानी गति से बढ़ रहे हैं। इस नेता उत्पादन ने देश का जनमानस और जनजीवन अशान्त, अव्यवस्थित और दिगभ्रान्त करके रख दिया है। नेताओं की वृद्धि अब अपराधी तत्वों की वृद्धि की तरह एक संकट भरी समस्या बनकर सामने आ रही है।

इसलिए समय की पुकार है कि नेता नहीं सृजेता चाहिए। ऐसे निःस्वार्थ सेवा-परायण जो यशलोलुपता से दूर रहकर जन-जागरण का व्यक्ति-निर्माण का कार्य पूर्ण श्रद्धा और तत्परता के साथ करते रह सकें। जो भाषण से नहीं वरन् अपने चरित्र से दूसरों को उसी उत्कृष्टता के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा दे सकें। लोकशिक्षण को सघन सम्पर्क और ममता भरी सद्भावना की आवश्यकता पड़ती है। अमुक जानकारियाँ दे देना या सुधार का उपाय समझा देना काफी नहीं, उस मार्ग पर चलने के लिए हिम्मत उत्पन्न करना भी आवश्यक है। यह कार्य वही कर सकता है जिसने अपने हृदय को दूसरों के साथ जोड़ देने वाली आत्मीयता उत्पन्न करली है। यह श्रमसाध्य, समयसाध्य कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। इसके लिए दूसरों को कम और अपने को ज्यादा सिखाना-साधना पड़ता है। उत्कर्ष की शिक्षा देने का अधिकारी वही होता है जो अपना उत्कर्ष करने की मंजिल पर काफी दूर तक आगे बढ़ सकने की—तप-साधना कर सकने की-अग्नि परीक्षा उत्तीर्ण करले।

ध्वंस पहले ही बहुत हो चुका उसमें नेताशाही तोड़-फोड़ की एक कड़ी और जोड़ देने से कुछ बनेगा नहीं बिगड़ेगा ही। बनता तो सृजन से ही है। सृजन शक्ति का मर्म समझने वाले और उस पर अगाध विश्वास लेकर त्याग-बलिदान के आदर्श प्रस्तुत करते हुए अग्रसर होने वाले मानवता के शिल्पी ही आज चाहिए। समय सृजेताओं की ही माँग कर रहा है।

नेता नहीं सृजेता बनें

रंग-बिरंगे पुष्पों का आकर्षण सौंदर्य तथा वृक्ष, वनस्पतियों की हरियाली निकट से गुजरने वाले हर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने वाली उनकी विशेषताएँ मन को पुलकित करती हैं। प्रशंसा तो पुष्प को, वृक्ष को मिलती है पर तथ्यान्वेषी जानते हैं कि वृक्ष एवं पुष्प में जो कुछ भी विशिष्टता दृष्टिगोचर हो रही है उसका अधिकांश श्रेय भूमिगत जड़ों को है। वे अदृश्य तो रहती है पर अनवरत् रूप से जमीन से पोषक तत्वों एवं अनुकूलताओं को खींचकर वृक्ष को भेजती रहती है। फलों, अनाजों से लदे पेड़ों एवं फसलों के विकास में अपना अस्तित्व मिटा देने वाले बीज, खाद, पानी और प्रकाश प्रत्यक्ष कहाँ दिखायी पड़ते हैं ? प्रशंसा एवं श्रेय की भागीदार तो फसल ही बनती है।

मकान में सामने की ही ईंटें चमकती हैं। यों तो निर्माण में हर ईंट का महत्त्व होता है पर नींव में पड़ने वाली ईंटों पर ही मकान का पूरा ढाँचा खड़ा रहता है। इतने पर भी नेत्रों के समक्ष सामने का ही स्वरूप आता और प्रतिष्ठा पाता है।

स्वतन्त्रता संग्राम के स्वर्णिम इतिहास में कुछ गिने चुने व्यक्तियों का ही नाम आता है। देश की बलिवेदी पर जीवन आहुति देने वाले अधिकांश अज्ञात व्यक्तियों का नामो निशान भी नहीं है। नींव के पत्थर की भाँति जो स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि रखने में खप गये उनमें से गिने-चुनों के नाम का ही इतिहास में उल्लेख है। स्वाधीनता के लिए जीवनोत्सर्ग करने वाले अनाम बलिदानियों की तथा लोकसेवियों की एक लम्बी श्रृंखला ऐसी हैं जिन्हें आज कोई नहीं जानता। भगतसिंह, आजाद, विस्मिल जैसे क्रान्तिकारी और टैगोर, तिलक, गाँधी, पटेल जैसे अहिंसक सेनानी तो उस श्रृंखला की अन्तिम कड़ी थे, जिनके त्याग-बलिदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। उन पर श्रद्धा सुमन चढ़ाये जाते हैं। पर वे भी कम श्रद्धा के पात्र नहीं हैं जो आन्दोलन के सूत्रधार थे जिन्होंने आजादी के संग्राम में पहली आहुति अपनी डाली भी अथवा मूल साधक की भाँति जीवन की अन्तिम साँस तक देश की सेवा करते रहे। मनीषियों ने सेवा परायण ऐसे मूल व्यक्तियों को सृजेता तथा प्रत्यक्ष नेतृत्व की बागडोर सँभालने वालों को नेता के नाम से प्रतिष्ठित किया है। नेताओं और सृजेताओं ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व देश और समाज की अपने-अपने ढंग से सेवा की है।

अपने देश का यह दुर्भाग्य है कि आजादी के बाद देश और समाज के लिए निःस्वार्थ भाव से खपने वाले सृजेताओं की कमी रही है। राजनीति को भी देश सेवा का स्वस्थ माध्यम मानने वाले व्यक्तित्व सम्पन्न नेता यत्किंचित ही दिखायी पड़ते हैं। संख्या की दृष्टि से संकुचित दृष्टि को लेकर राजनीति क्षेत्र में प्रविष्ट करने वाले नेताओं की कमी नहीं है। समाज सेवा का एक मात्र माध्यम राजनीति को ही माना जाने लगा है। यह सस्ती वाहवाही लूटने—श्रेय प्रतिष्ठा अर्जित करने का एक सस्ता साधन बन गया है। इस क्षेत्र में लोक अभिरुचि का पता विधान सभाओं एवं लोक सभाओं में खड़े होने वाले बहुसंख्यक प्रत्याशियों को उनके चरित्र को देखकर चलता है। राजनीति क्षेत्र में बढ़ती भीड़ को देखते हुए ऐसा लगता है जैसे इसके अतिरिक्त देश एवं समाज सेवा का अन्य कोई क्षेत्र ही न बचा हो।

राजनैतिक चुनावों पद दृष्टिपात करें और उनका लेखा-जोखा लें तो प्रतीत होगा कि असफल हजारों प्रत्याशी ऐसे हैं जो राजनीति क्षेत्र में प्रविष्ट कर वर्चस्व अर्जित करने की लालसा से ऐड़ी-चोटी का पसीना एक कर चुके हैं उनका करोड़ों रुपया भी इस प्रयास में खर्च हुआ है। यह देखकर प्रश्न सहज ही मन में उठता है कि लोक सेवा के लिए इतना खर्चीला अपव्यय भरा मार्ग क्यों अपनाया गया ? जितनी श्रम शक्ति और धन शक्ति गँवायी गयी क्या उनका सदुपयोग समाज सेवा के अन्य कार्यों में नहीं किया जा सकता था ? राजनीति के क्षेत्र में बढ़ती हुई भीड़ को देखकर यह सन्देह होना स्वाभाविक है कि इसमें प्रविष्ट करने वाले समाज सेवा की निःस्वार्थ भावना से अभिप्रेरित होकर आयें हैं। आशय यह नहीं है कि राजनीति को माध्यम बनौने वाले सभी स्वार्थों से ही अभिप्रेरित होते हैं पर यह भी सही है कि बहुतायात ऐसे ही व्यक्तियों की है जो सस्ती प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से ही इस क्षेत्र का अवलम्बन लेते हैं। निःस्वार्थ सेवा भावना को लेकर राजनीति क्षेत्र में आने वाले भी हैं तो सही पर इनकी संख्या अत्यल्प है। व्यक्तित्व से रहित तथा कथित नेताओं के कारण राजनीति का क्षेत्र दिन-प्रतिदिन बदनाम होता चला जा रहा है।

जिनमें समाज सेवा, लोक सेवा की पवित्र भावना है तथा सचमुच ही देश एवं समाज के लिए कुछ करना चाहते हैं, उन्हें नेता की अपेक्षा सृजेता की भूमिका निभाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए आगे आना चाहिए। भारत का सामाजिक क्षेत्र खुला पड़ा है जिसमें लोकमंगल से लेकर नव निर्माण के लिए बहुत कुछ किया जाना है और काम करने की बहुत गुंजाइश है। उस क्षेत्र में बिना किसी प्रतिस्पर्धा के सच्ची लोक सेवा की जा सकती है और इस मार्ग पर चलते हुए चिरस्थायी यश एवं श्रद्धा अर्जित कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है। सच तो यह है कि देश का पिछड़ापन दूर करने में राजसत्ता उतनी सफल नहीं हो सकती जितनी कि सामाजिक क्षेत्र में की गई सेवा साधना।

निरक्षरता के अभिशाप से लगभग ७० प्रतिशत व्यक्ति ग्रस्त हैं। शिक्षित और अशिक्षित करीब छह करोड़ बेरोजगारों के लिए रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं हैं। देश की आधी आबादी गरीबी की सीमा रेखा से भी निम्न स्तर पर गुजारा कर रही है। पचास प्रतिशत व्यक्तियों को दोनों समय भरपेट भोजन, वस्त्र और आवास जैसी आरम्भिक सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं हैं। पोषण के अभाव में लगभग ५ लाख बच्चे प्रतिवर्ष अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। स्वच्छता का अभाव, खान-पान, जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ होने के कारण शारीरिक एवं मानसिक रोग बढ़ते चले जा रहे हैं। देश भर के एक करोड़ से अधिक विकलांगों, अपाहिजों के लिए रोजी-रोटी की व्यवस्था बनानी है।

सामाजिक कुरीतियों के कारण आये दिन कितनी क्षति उठानी पड़ती है, यह सर्वविदित है। अपव्यय की ओछी प्रवृत्तियों से प्रतिवर्ष विवाहों में अरबों रुपये बर्बाद किये जाते हैं। दहेज प्रथा की विभीषिकाओं से हर विचारशील सुपरिचित है। धन के अभाव में कितनी ही लड़कियों को योग्य लड़के नहीं मिलते और जीवनपर्यन्त अविवाहित रहना पड़ता है। कितनी ही इस आत्मग्लानि से आत्महत्या कर लेती हैं। किसी तरह विवाह हो भी जाय तो भी धन के लोभियों की माँग की आपूर्ति न होने तथा उनकी निरंतर प्रताड़ना उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए आये दिन कितनी ही नारियाँ आत्मघात करने, जलने-मरने का मार्ग अपनाती देखी जाती हैं। बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियाँ अभी भी देश में संव्याप्त है। छुआछूत, ऊँच-नीच की मान्यता के कारण हिन्दू धर्मानुयाइयों की एक बड़ी संख्या कटकर अलग होती जा रही है। सम्प्रदायवाद के कारण देश में विघटनकारी तत्व बढ़ रहे हैं। इन कुरीतियों के उन्मूलन के लिए ऐसे प्रखर लोकसेवियों की आवश्यकता है जो इनसे स्वयं जूझ सकें तथा विरोध करने के लिए जनमानस को संगठित कर सकें।

कुमार्गगामिता को प्रोत्साहन देने वाले अश्लील साहित्य, पत्र, पत्रिकाएँ एवं सिनेमा जैसे सशक्त तन्त्र सक्रिय हैं। नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिए उनके प्रकाशन एवं प्रदर्शन पर रोकथाम एवं और विरोध किया जाना आवश्यक है। उनके स्थान पर ऐसे सत्साहित्य के प्रकाशन चलचित्रों के प्रचलन की आवश्यकता है, जो सत्प्रवृत्तियाँ उभारने में सहयोग दे सकें तथा नव निर्माण की भूमिका सम्पन्न कर सकें।

कहना न होगा कि यह महान् कार्य देश के भूखे स्वार्थलिप्सा में डूबे नेताओं से नहीं, भावनाशील सृजेताओं से ही पूर्ण हो सकेगा जो नींव का पत्थर बन सकें, बीज की भाँति गल सकें वृक्षों को अनवरत् पोषण देते रहने वाली भूमिगत जड़ों की तरह नव निर्माण के लिए भूमिका निभा सकें, और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं और यश लिप्साओं से बच सकें। चिरस्थायी श्रेय सम्पादन एवं आन्तरिक शक्ति-संतोष पाने के लिए इस सेवा मार्ग से बढ़कर और दूसरी कोई श्रेष्ठ साधना समाज और देश की नहीं हो सकती।

अभिनेता नहीं युग सृजेता बनें

मनुष्य स्वभावतः महत्वाकांक्षी है। सुखोपभोग की इच्छा हर प्राणी में पाई जाती है। इसी हेतु वह अनेक प्रकार के क्रिया-कलापों में संलग्न रहता पाया जाता है। घटियास्तर के व्यक्ति मात्र शरीरचर्या तक सीमित रहते हैं। वे अच्छा खाने, अच्छा पहनने, मनोरंजक दृश्य देखने, कामुकता की ललक सँजोने में लगे रहते हैं। श्रृंगार सज्जा इसी के अन्तर्गत आती है। इसके एक कदम आगे बढ़ने पर महत्वाकांक्षी के मन को उल्लसित करने वाले पक्ष सामने आ खड़े होते हैं। ठाट बाट, सम्पत्ति संग्रह, पदवी धारी, सत्ताधारी होने की इच्छाएँ मनःक्षेत्र में ही उठती हैं। दूसरों से अधिक समर्थ, सम्पन्न होने की अभिलाषा से प्रेरित होकर लोग अनेक प्रतिस्पर्धाओं में उतरते हैं और विजयी होने पर गर्व जताते हैं। चुनाव जीतने में लोक सेवा की भावना कम और अपने को विशिष्ट सिद्ध करने की आकांक्षा अधिक होती है। अखबारों में नाम छपाने, समारोहों में प्रमुख पद पर आसीन होने, तीर्थयात्रा आदि के माध्यम से लोगों की दृष्टि में धर्मात्मा जँचने जैसे ताने बाने इसीलिए बुने जाते हैं। विवाह शादियों, प्रीतिभोजों में खर्चीली धूमधाम खड़ी करने में भी अपनी सम्पन्नता का विज्ञापन करने का भाव ही प्रधान होता है। किसी की जीवन-चर्या का लेखा-जोखा लेने पर प्रतीत होता है कि निर्वाह के साधन तो सरलतापूर्वक कम समय और कम परिश्रम में भी जुट सकते हैं, पर निरन्तर व्यस्तता में ग्रसित रहने का प्रमुख कारण एक ही पाया जाता है। दूसरों की तुलना में अपनी विशिष्टता सिद्ध करना। इसी का सरंजाम जुटाने में जीवन का अधिकांश समय श्रम एवं कौशल खप जाता है। इन्हें मृगतृष्णा ही कहना चाहिए, जिनकी आकर्षक छवि मनुष्य को अपनी ओर खींचती है और उसकी बहुमूल्य क्षमता को चूस लेती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह भुला दिया जाता है कि संसार में एक से एक बढ़कर 'बड़े आदमी' भरे पड़े हैं। उनकी तुलना में भरपूर प्रयत्न करने पर भी कदाचित अपनी बढ़ी-चढ़ी सफलता भी नगण्य समझी जा सके। फिर उत्साह तभी तक रहता है जब तक इच्छित वस्तु या स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती। उपलब्धि के कुछ क्षण ही पानी के बबूले जैसा उत्साह प्रदान करते हैं। इसके बाद तो जो मिलता है उसका बोझ और दायित्व वहन करते रहना ही कठिन पड़ जाता है। विवाह से पूर्व जोड़ीदार के सम्बन्ध में परी लोक जैसी कल्पनाएँ मस्तिष्क में ज्वार-भाटे की तरह उठती रहती हैं। पर जब कुछ ही दिन में गृहस्थी की भारी भरकम गाड़ी खींचने की बारी आती है तब पता चलता है कि ललक ने सुविधा कम और झंझट बहुत भारी लाद दिया। जो पाया है उसे बनाये रहना भी कठिन होता है। ईर्ष्यालु उठ खड़े होते हैं और छीनने या नीचा दिखाने की दुरभिसंधियाँ रचने लगते हैं। फिर जो हर्ष या यश मिला था वह भी थोड़े ही समय स्थिर रहता है। व्यस्तता-ग्रस्त दूसरे लोग तो उसे कब तक स्मरण रखे रहेंगे। स्वयं अपने को ही अपनी पिछली बातें याद नहीं रहतीं। नये काम ही इतने आ जाते हैं कि पिछलों की याद बनाए रहना सम्भव ही नहीं होता।

इन सब तथ्यों का गम्भीर विवेचन करने वाले तत्वदर्शियों ने क्षुद्र महत्वाकांक्षाओं को हेय माना है। उनकी उपमा बाल कौतुक से दी है और कहा है कि जीवन को सार्थक बनाने वाले विचारशीलों को इस क्षुद्रता भरी भूल-भुलैया से बचना चाहिए। शक्ति गँवाने और बदले में मिथ्या अहंकार सिर पर लाद लेने में कोई बुद्धिमानी नहीं है। आकांक्षा से शक्ति उत्पन्न होती है और प्रयास में निरत रहने का उत्साह उभरता है। इस तथ्य को प्रगति की प्रारम्भिक स्थिति के अनुरूप मानते हुए भी यह देखना चाहिए कि क्या इनकी अपेक्षा ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्धारणों का चयन किया जा सकता है, जो आत्मसन्तोष के साथ-साथ चिरकाल तक टिकने वाला श्रद्धा भरा लोकसम्मान प्रदान कर सके। इस प्रकार का चयन न कर पाने से ही लोग अजगर को खिलौना मानकर उसकी ओर लपकते रहते हैं। पीछे लाभ के स्थान पर भारी घाटे में रहते हैं।

उच्चस्तरीय महात्वाकांक्षा एक ही है कि अपने को इस स्तर तक सुविस्तृत बनाया जाय कि दूसरों का मार्गदर्शन कर सकना संभव हो सके। यही सच्चा नेतृत्व है। अभिनेता स्तर के नेता क्षणिक, उथली और सस्ती वाह-वाही लूटकर अपना मन बहलाते हैं। बाहुल्य आज इन्हीं का है। ऐसा बनने के लिए जो प्रपंच रचने पड़ते हैं, उसी में वह बहुमूल्य क्षमता खप जाती है, जिसका यदि उच्च उद्देश्यों में नियोजन हुआ होता तो अपना और दूसरों का कल्याण कर सकने का ऐसा सुयोग्य बन पड़ता जिसका अनुकरण और अभिनन्दन करते हुए लोग अपने को धन्य मानते रहते।

सेवा का प्रत्यक्ष पक्ष दीन-दुःखियों की सेवा करना, पिछड़ों को ऊँचा उठाना, पीड़ितों की व्यथा पूछना, अभावग्रस्तों के लिए साधन जुटाना है। यह सभी कार्य उचित हैं और दया धर्म की अभिवृद्धि करते हैं। अपने निर्वाह की तरह दुःखियारों को भी अपने सुख-साधनों में सहभागी बनाना मानवोचित कर्तव्य है। इसका निर्वाह हर सद्गृहस्थ को करना और उदारचेता नागरिक बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

इससे ऊँची दूसरी सेवा साधना है, जिसे धर्म धारणा कहा जाता है। इसका स्वरूप है अव्यवस्था को व्यवस्था में और अनगढ़ता को संस्कारिता में बदलने वाले मार्गदर्शन हेतु कटिबद्ध होना। यही सच्चा नेतृत्त्व है। इसी पर वैयक्तिक और साहसिक प्रगति का आधार बनता है। लोग अभावों से जितने पीड़ित हैं, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक इसलिए दुःखी हैं कि वे प्रगति और शान्ति का मार्ग ढूँढ़ने और अपनाने का सुयोग प्राप्त न कर सके। इस अभाव की पूर्ति कर सकने वाले ही भौतिक एवं आध्यात्मिक अभ्युदय का राजमार्ग विनिर्मित करते हैं। साधु, ब्राह्मण पुरोहित और लोकसेवी इसीलिए जन-जन के श्रद्धा भाजन बनते हैं कि उन्होंने अपने जीवन पर सर्वसाधारण को अधिक उत्कर्ष के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया और उसमें तत्परता बरतने के कारण सफलता भी पाई। ऐसे मार्गदर्शकों को ऋषिकल्प माना जाता है और उनकी गणना भूसुरों में धरती के देवताओं में होती है। किसी समय इसी समुदाय की बहुलता थी, फलतः सतयुगी वातावरण बना रहा। स्वल्प साधनों में भी लोग हिल-मिलकर रहे। मिल-बाँटकर खाते, स्नेह-सौजन्य बरतते एवं परिस्थितियों को स्वर्गोपम बनाते रहे। यह भावना, विचारणा और क्रिया कलाप का स्तर ऊँचा उठाने की ही परिणिति थी कि मनुष्य में देवत्व की झलक-झाँकी का आभास मिलता रहा। आज की विषम परिस्थितियों में ऐसे मार्ग-दर्शकों की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है। उन्हीं के अभाव में सर्वत्र समस्याओं और विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है। अच्छा होता मनीषी वर्ग की प्रतिभाएँ अपनी लेखनी, वाणी और आदर्शवादी जीवनचर्या के आधार पर पुरातन ब्राह्मण धर्म का परिपालन करतीं और पिछड़ेपन को सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता में परिवर्तित कर सकतीं। इस समूची प्रक्रिया को सुसंस्कारिता का अभिवर्द्धन कह सकते हैं। धर्म और अध्यात्म का यही वास्तविक क्षेत्र भी है।

अभिनेता नहीं, नेता बनें

नेता और अभिनेता में थोड़ा-सा ही अन्तर होता है। सच पूछा जाय तो 'अभि' शब्द अतिरिक्त रूप से जुड़ जाने से उसका महत्त्व और भी अधिक प्रतीत होता है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। नेता को अपने त्याग, पुरुषार्थ, आदर्श और साहस के बल पर जनसाधारण के अन्तःकरण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में इतनी गहरी जड़ें जमानी पड़ती हैं, जिसके आधार पर उनका श्रद्धा-विश्वास सदा अक्षुण्ण बना रहे और अनुकरण की, आदेश पालन की उत्कंठा स्वयंमेव जग पड़े, वह समर्थन-सहयोग देने में आनाकानी न करे, अनुकरण की उत्कंठा रोक न सके और कदम मिलाते हुए, हाथ बँटाते हुए साथ चल पड़े।

अभिनेता भीतर से पोला और बनाव-शृंगार में चतुर होता है। वाणी को आकाश-पाताल तक उछालकर अपनी धाक जमाता है। वेश-विन्यास, हाव-भाव का आकर्षण-प्रदर्शन करता है और बीच-बीच में आत्म प्रशंसा का ऐसा पुट लगाता रहता है, जिससे अजनबी लोगों को निरीक्षण-परीक्षण के अभाव में उसकी संरचित प्रवंचना के प्रति आकर्षण उत्पन्न होने लगे और वे उस पर विश्वास न करें तो प्रशंसा ही करने लगें। उसके साथी भी बढ़ा-चढ़ा कर परिचय देते हैं, इससे भी कुछ सम्मोहन जैसा बन जाता है। इतने से कला-कौशल के आधार पर अनेक लोग नेता बनने का प्रयत्न करते हैं, पर सेवा और चरित्र के अभाव में वे उस कलई को देर तक स्थिर नहीं रख पाते, जाँच-पड़ताल की तनिक-सी गर्मी लगते ही वह कलई उड़ जाती है। ढोल की पोल नंगी करने में एक छोटी-सी लकड़ी की नोक भर काफी होती है। कागज के फूलों से सुगन्ध कहाँ आती है वे गर्मी-नमी भी नहीं सह पाते।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत इन दिनों सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया जा रहा है कि जनसमुदाय का सर्वतोमुखी नेतृत्त्व कर सकने वाले एक लाख की संख्या में वरिष्ठ प्रज्ञा पुत्र तैयार किये जा रहे हैं। दिग्भ्रान्त, पतनोन्मुख और शौर्य-साहस से विहीन बहुसंख्यक जनसमुदाय को हर दृष्टि से समर्थ, समुन्नत बनाने का काम बड़ा है। इसके लिए समर्थ नेतृत्त्व की अनिवार्य आवश्यकता है। इसे ढीले-पोले लोग नहीं कर सकते हैं। जिनमें जीवट नहीं, क्षमता नहीं, प्राण भरी उमंग नहीं, वे अपनी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर पाते, फलतः उनकी वाणी भर लोग सुनते और मनोरंजन करते हैं, पर उनका आदेश पालने, अनुकरण करने के लिए ऐसी दशा में तो किसी भी प्रकार तैयार नहीं होते, जब उनसे आदर्श अपनाने और विवेकवादी दूरदर्शिता अपनाने के लिए कहा जाय।

रंगमंचों पर, अभिनेताओं को योगी, राजा, विदूषक, धनाध्यक्ष आदि कुछ भी बनाया जा सकता है। इसके लिए उपकरणों की सज्जा जुटाने से काम चल जाता है, किन्तु साथ ही यह भी होता रहता है कि दर्शकों में से प्रत्येक को यह पता चलता रहता है कि यह मुखौटे सजाये गये हैं, इनमें से योगी, राजा कोई नहीं है। ये केवल वेष-मनोरंजन भर कर रहे हैं, नाटक कम्पनी की प्रशंसा भर करा रहे हैं। उनके निज के व्यक्तित्व के बारे में कोई धारणा नहीं बनती। कारण कि बिना कसौटी पर कसे-बिना इतिहास जाने कोई किसी की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में विश्वास नहीं कर सकता। मात्र कलाकारिता ही होती है, जो अपने उथले अस्तित्त्व का उस माहौल में परिचय देती रहती है, इतने में ही मदारी का खेल खत्म हो जाता है।

वास्तविक नेतृत्व रेल के इंजन जैसा होता है, जो अपने में अकूत शक्ति भरे रहता है और अपनी क्षमता के आधार पर भारी बोझ से लदे ढेरों डिब्बों को द्रुतगति से सैकड़ों-हजारों मील घसीटता चला जा सकता है। यह कार्य लकड़ी का खिलौना इंजन नहीं कर सकता। आकार बन जाने पर भी शक्ति के अभाव में वह खिलौना इंजन कौतूहल का निमित्त कारण ही बनता है।

शक्ति उनमें होती है, जिनकी कथनी और करनी एक हो, जो प्रतिपादन करें, उसके पीछे मन, वचन और कर्म का त्रिविधि समावेश हो। ऐसे ही लोग महत्त्वपूर्ण कार्य कर और करा सकेंगे। उदाहरण के लिए पतनोन्मुख लोगों को लिया जा सकता है। शराबी, जुआरी, व्यभिचारी आदि जिनसे सम्पर्क साधते हैं, उन्हें अपने जैसा बना लेने में सहज सफलता प्राप्त कर लेते हैं। जीवन में अपने जैसे अनेक गढ़कर खड़े कर लेते हैं। महापुरुषों के सम्बन्ध में भी यही बात है। बुद्ध, गाँधी आदि को अपने साथी सहयोगियों का विशाल समुदाय मिल गया था। सामर्थ्यवान व्यक्ति भले हों या बुरे, चुम्बक की तरह अपने जैसे गुण-स्वभाव के लोगों को ढूँढ़ कर एकत्रित कर लेते हैं। वे उनके सच्चे साथी और सहयोगी भी सिद्ध होते हैं। इतिहास के पृष्ठ इसके साक्षी हैं। इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि जिनमें पोल भरा ढकोसला ही आधार है, उनका दूसरों पर स्थाई प्रभाव छोड़ना तो दूर, अपने साथियों से भी बहुत दिन तक पटरी नहीं खाती, वे तनिक-सी बातों पर आपस में लड़-झगड़ बैठते हैं और हिंस्र पशुओं की तरह एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। जिस प्रकार चोर पैसे के मामले में आपस में टकराते रहते हैं, उसी प्रकार नेता लोग भी प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा बटोरने की आपा-धापी में एक-दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। पुत्रेषणा, वित्तेषणा तो किसी प्रकार काबू में रखी जा सकती है, पर सस्ती कीमत में मिलने वाली लोकेषणा ऐसी है, जिसका लोभ सँभाले नहीं संभलता। कारगर और प्रतिष्ठित संस्थाओं का सर्वनाश इसी एक कारण से हुआ है कि उनमें महत्वाकांक्षी लोग आपस में पटरी नहीं बिठा सके। कुछ ही वर्ष पूर्व जनता-पार्टी का जो हाल हुआ था वह किसी से छिपा नहीं है। फिलहाल काँग्रेस की जो स्थिति है, उससे भी सभी अवगत है।

किसी की, उपहार-अनुदान में दी हुई या तिकड़म भिड़ाकर झपटी हुई, चमचों द्वारा ढोंग-ढकोसले की तरह खड़ी की गई नेतागीरी, बालू की भीत जैसी, बेपेंदी के लोटे जैसी होती है। उसे संध्या के बादलों जैसी, धूप-छाँव जैसी समझा जा सकता है। उसकी जड़ें नहीं होती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिए बाजीगर द्वारा हथेली पर जमायी गयी सरसों की तरह उसका अवसान होते देर नहीं लगती। देखा गया है कि जिन अफसरों-मिनिस्टरों को लोग सौ-सौ सलाम झुकाते थे, कुर्सी छिन जाने के बाद उन्हें कोई कौड़ी मोल नहीं पूछता। साग बेचने वाले कुँजड़े तक उनसे कभी-कभी अकड़कर बात करते देखे गये हैं। यह अनुकम्पा का अनुग्रह का उपहार तनिक-सी गड़बड़ी पर छिन भी सकता है, किन्तु जिसके पीछे ठोस आधार है, उसको कोई हिला नहीं सकता। गाँधीजी काँग्रेस के नियमित सदस्य तक नहीं थे, पर उनके बिना पत्ता भी नहीं हिलता था। चौरा-चौरी काण्ड के बाद उन्होंने सत्याग्रह बन्द किया था, इस पर सभी नेता रुष्ट थे, किन्तु जब नमक सत्याग्रह के लिए आवश्यकता पड़ी, तो उन्हीं को आगे लाना पड़ा। पं० नेहरू, पटेल, मालवीय, तिलक, गोखले आदि महामानवों का नेतृत्व किसी के द्वारा उपहार में दिया हुआ नहीं था। उसे उन्होंने पूरी-पूरी कीमत देकर खरीदा था।

आज देश को लाखों नेताओं की आवश्यकता है। प्रज्ञा मिशन द्वारा यह हर हालत में पूरी की जानी है, पर इसके लिए गायन-वादन, प्रवचन-पौरोहित्य जैसे उपचार शृंगार की तरह आवश्यकता तो है, पर इतने भर से काम नहीं चल सकता। इन योग्यताओं को प्राप्त करके लोगों को एकत्रित-आकर्षित किया जा सकता है और अपने प्रतिपादनों के सहारे उन्हें सहमत भी किया जा सकता है, किन्तु कठिनाई तब पड़ेगी, जब उन्हें भी अपने साथ लेने और कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए त्याग करने एवं साहस दिखाने के लिए कहा जायेगा। श्रद्धा के अभाव में वे परिस्थितियाँ अनुकूल होते हुए भी बगलें झाँकेंगे और कुछ ऐसे कदम न उठा सकेंगे, जिससे कारगर प्रयोजनों की सिद्धि हो, कर्त्ता एवं उसके निर्माता का प्रभावी संगठन खड़ा करने का श्रेय मिल सके।

पेड़ की सुन्दरता की कितनी ही कल्पना क्यों न की जाय, पर उसे प्रत्यक्ष देखने के लिए जड़ों में खाद-पानी पहुँचाने की सुव्यवस्था होनी चाहिए। इसके बिना खाली नेतागीरी दिखावटी रहेगी और आवेश उतरते ही ठण्डी हो जायगी।

नेता के गुणों का, चरित्रनिष्ठा का वर्णन होता है। उनके क्रिया-कलापों की गणना की जाती है। पर ऐसा वस्तुतः बन सकना या कर सकना तभी संभव हो सकेगा जब व्यक्ति निजी जीवन में दो शर्तों का निर्वाह करे। एक यह कि उसे चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की दृष्टि से परिष्कृत एवं प्रामाणिक होना चाहिए। उसकी चादर पर ऐसे दाग-धब्बे लगे न हों, जिस पर हर किसी की आँख जाय और उँगली उठे। दूसरा यह कि उसके क्रिया-कलाप में सेवा भावना गुँथी होनी चाहिए। उसे प्रचार कार्य के अतिरिक्त ऐसे पुण्य-परमार्थ भी अपनाने चाहिए, जिसके सहारे उदारता, सज्जनता एवं आदर्शवादिता प्रकट होती हो। जिनके पास न चरित्र की पूँजी है और न जिनकी सेवा-साधना का कोई इतिहास, वे तो खेतों में खड़े हुए काग भगौओं की तरह हैं, जो दूर से देखने पर रखवाले जैसे प्रतीत होते हैं, पर निकट जाने पर प्रतीत होता है कि यह तो लकड़ी के ढाँचे पर घड़े का सिर और फटे कपड़े की पोशाक पहने हुए हैं। जिन्हें सच्चे अर्थों में किसी बड़े क्षेत्र का नेता बनना है, उन्हें चरित्रनिष्ठा के अतिरिक्त सेवा प्रयोजनों के लिए समयदान-अंशदान की बढ़ी-चढ़ी उदारता भी दिखानी चाहिए। उपयोगी सेवा कार्यों में बिना किसी आमंत्रण के स्वयं दौड़कर भागीदार बनना चाहिए। वस्तुतः चरित्रनिष्ठा और सेवा भावना एक-दूसरे से पूरी तरह गुँथे हुए हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ एक होगा, वहाँ दूसरा भी अनायास ही साथ हो जाएगा। इनमें से किसी को भी एकाकी नहीं माना जा सकता। लोक सेवा और चरित्रनिष्ठा दोनों साथ हों तो वह नेतृत्त्व वास्तविक एवं प्रभावशाली जनोपयोगी नेतृत्त्व कहलाता है। जहाँ इस युग्म का अभाव है, वहाँ मात्र अभिनेता का तमाशा भर है। आवश्यकता है आज सही अर्थों में परमार्थ परायण नेताओं की जो मुखौटे लगाये अभिनेताओं की भीड़ में अलग से पहचाने जा सकें, जिसके पीछे चलने के लिए अगणित व्यक्ति सहर्ष तैयार हो जायँ।

देश को अभिनेता नहीं, नेता चाहिए

रेलगाड़ी के सभी डिब्बे अपना-अपना बोझ ढोते और गति पकड़ते हैं, पर उन सबका सूत्र संचालन इंजन को करना पड़ता है। इंजन में खराबी आ जाय, वह खड़ा ही रहे तो बाकी डिब्बे समर्थ होते हुए भी निश्चित मार्ग पर चलने का साहस न कर सकेंगे।

सेना का नेतृत्त्व सेनापति सँभालता है। उसी के अनुशासन में सभी सैनिक अपनी रीति-नीति चलाते और विजय प्राप्त करके लौटते हैं। सेनापति के अभाव में शूरवीर और देश-भक्त सैनिक भी दिशा भ्रमं में पड़ जाते हैं और वह पराक्रम नहीं कर पाते जो उन्हें करना चाहिए। कई बार तो साधन रहते हुए भी पराजय का मुँह देखना पड़ता है।

वनों में हाथियों के, हिरनों के झुण्ड विचरते हैं। उनमें से एक अग्रगामी होता है, शेष पीछे-पीछे चलते हैं। इससे संयुक्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। अनुशासन निभता है और मनमर्जी बरतने की अपेक्षा एक दिशा विशेष में चलने और उद्देश्य पूरा करने का अवसर मिलता है। यों हर आदमी अपनी मर्जी का मालिक है जो जिसे सूझता है, वह वैसा करता है, पर बिखराव की अपेक्षा संघबद्धता में जो लाभ है वह असाधारण है। झुण्ड के ऊपर शेर-चीते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

भी आक्रमण नहीं करते, वे भी इस फिराक में रहते हैं कि कोई अकेला-दुकेला, भूला-बिछुड़ा पशु हाथ लगे तो उस पर आक्रमण करे। देखा गया है कि गायें जब चीते के आक्रमण की संभावना देखती हैं, तो उसी की ओर मुँह करके सभी आक्रमण की मुद्रा में खड़ी हो जाती हैं। इतने भर से चीते का साहस टूट जाता है और उसे वापस लौटना पड़ता है।

यह आक्रमण का सामना करने की बात हुई। इसके अतिरिक्त कई बार शक्ति प्रदर्शन की आवश्यकता होती है तो एकाकी व्यक्ति दुर्बल पड़ता है, जबकि संगठित हो जाने पर उन्हीं की क्षमता कई गुना हो जाती है। तिनकों से मिलकर मजबूत रस्से बनते हैं और बारीक धागों के संयोजन से सुन्दर और टिकाऊ वस्त्र बनकर तैयार हो जाते हैं।

सामान्य जनसमुदाय को यदि संगठित किया जा सके और उनकी क्रियाशीलता को दिशा विशेष में लगाया जा सके, तो उसके परिणाम चमत्कारी होते हैं। दीमक, चिड़िया, मधुमक्खियाँ झुण्ड बनाकर रहतीं और मिल-जुलकर काम करती हैं। उनके कृत्यों को सुव्यवस्थित और सफल देखते हुए आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

संगठन की महत्ता का जितना गुण गाया जाय उतना ही कम है, पर यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि संगठन अनायास ही नहीं हो जाते। उनके लिये प्रतिभावान, दूरदर्शी, नेतृत्त्व अनिवार्य रूप से चाहिए। नेतृत्त्व की कुशलता और बहुलता को ईश्वर का वरदान मानना चाहिए। उसके बन पड़ने पर आधी सफलता हाथ आ जाती है।

इन दिनों मानव समाज हर क्षेत्र में बिखरा पड़ा है। न वह मिल-जुलकर रह सकता है और न किन्हीं सम्मिलित प्रयासों को मिल-जुलकर पूरा कर सकता है। एकाकीपन की स्वार्थपरता लोगों पर सवार है। व्यक्तिगत छोटे से लाभ के लिये समूह की बड़ी से बड़ी हानि होती हो तो उसमें असमंजस नहीं होता। यही कारण है कि बन्दरों के झुण्ड को छेड़ने की किसी में हिम्मत नहीं पड़ती, जबकि कुत्ते अपनी गली से बाहर निकलते ही अपने बिरादरी वालों का ही आक्रमण सहते हैं।

इस तथ्य को हम में से प्रत्येक को हृदयंगम करना होगा, क्योंकि व्यक्ति और समाज के सम्मुख अगणित समस्याओं से जूझने के लिये जब संघ शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, तब नजर पसारकर देखने से चारों ओर बिखरावजन्य अंधकार ही दीखता है। ऐसी दशा में न तो कोई कहने लायक प्रगति हो सकती है और न किसी बड़े व्यवधान से जूझा जा सकता है।

हमें संगठन का महत्त्व समझना चाहिए और उसके लिये ऐसे नेतृत्त्व तलाश या विनिर्मित करने चाहिये जो मात्र वाणी से ही नहीं, अपनी कृतियों से भी हो। स्वार्थपरता के बन्धन ढीले करें और उदार परमार्थ परायणता की ओर कदम बढ़ायें। इसके लिये अग्रगामियों की आवश्यकता है। सेना में आगे-आगे बाजे बजते हैं, ताकि मस्ती से सैनिकों के पैर हवा में उड़ने लगें। भगवान कृष्ण के नेतृत्त्व में पाण्डवों की सेना तिलतिल कटने के लिये, लड़ने-मरने को तैयार हो गयी थी। नेता का शौर्य, साहस और त्याग बलिदान अनुकरणीय हो, तो उसके पीछे चलने वाले न तो कम पड़ते हैं और न धीमे चलते हैं। झण्डे लेकर आगे चलने वालों को अपनी राष्ट्रीय पताका के सम्मान का ध्यान रहता है और अनुयायियों को अपने नेता की प्रतिष्ठा का। यही है—भाव उभार जो छोटे लोगों द्वारा बड़े काम सम्पन्न करा देता है।

अगले दिनों हमें अपने देश का बिखराव और पिछड़ापन दूर करने के लिये पूरी शक्ति-सामर्थ्य का नियोजन करना पड़ेगा। इसके बिना फँसे हुए दल-दल में से उबर पाना मुश्किल है। सभी प्रगतिशील क्षेत्र सूने पड़े हैं। उसकी क्षतिपूर्ति के लिये उन्हें प्राण-पण से जुटना पड़ेगा जो अपने में जीवन्त और जीवट के चिन्ह देखते हैं। उनके लिये युगधर्म का एक ही तकाजा है कि निजी स्वार्थ-सुविधा पर अंकुश लगायें। परिवार को स्वावलम्बन और सुसंस्कार की सम्पदा सौंपें और अपना समय जितना अधिक लगा सकें, उस कार्य में लगावें जिसकी कि इन दिनों महती आवश्यकता है।

अग्रगामी कहीं आकाश से नहीं उतरते। प्रोत्साहन और सहयोग से उनकी भी प्रकृति विकसित हो जाती है जिनमें मूलतः शौर्य, साहस की विशेषता हो। कृपण और डरपोक मात्र स्वार्थ ही सोचते हैं, किन्तु अपनी क्षुद्रता के कारण साध उसे भी नहीं पाते। मनस्वी लोग ही अपने भुजबल से नाव खींचते हैं। स्वयं पार होते और उसमें बिठाकर अनेकों को पार करते हैं।

जिस क्षेत्र पर दृष्टि डालते हैं उसी में खामी दीखती हैं और उसी को सँभालने, सुधारने की आवश्यकता प्रतीत होती है। राजनीति में गाँधी और चाणक्य जैसे, समर्थ रामदास और गुरु गोविन्द सिंह जैसे मार्गदर्शक हों तो थोड़े से सैनिक भी इतिहास का नया गठन कर सकते हैं। बुद्ध और गाँधी को अनुचरों की कमी कहाँ रही ?

संसार में अन्यत्र भी समय-समय पर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। रूढ़िवादिता बुरे प्रचलनों से भी चिपकी रहना चाहती है, पर मनस्वी जब हुँकार भरते हैं, तब सारा वातावरण गूँज जाता है। एक जले हुए दीपक से अनेकों दीपक जलाये जाते हैं। धर्मक्षेत्र राजनीति के ही समकक्ष है। शासन की प्रधान शक्ति राजदण्ड है और वह कर वसूल करके कर्मचारियों द्वारा सुरक्षा, व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, व्यवसाय आदि का नियन्त्रण करता है, किन्तु विचारणाओं और भावनाओं पर पूरी तरह धर्मक्षेत्र का ही अधिकार है। धर्म कभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कथावार्ता, गुरुकुल, आरण्यक, शिक्षा, दीक्षा तक सीमित था, पर अब उसका विस्तार उन सभी क्षेत्रों तक हो गया है जो विचार क्षेत्र को दिशा और प्रेरणा प्रदान करते हैं। पौरोहित्य तो उसका एक छोटा अंश भर रह गया है। चिन्तन को, प्रभावित करने वाले—साहित्य, संगीत, कला, अभिनय आदि को यदि विचार निर्माण क्षेत्र का माध्यम गिना जाय तो अनुचित न होगा। इस समूची प्रक्रिया को आज की धर्मधारा में ही सम्मिलित रखा जा सकता है। जनमानस में संव्याप्त जितने भी कुप्रभाव, कुप्रचलन हैं, उन्हें उत्कृष्ट आदर्शवादी इसी परिधि में लाकर बनाया जा सकता है।

चिन्तन, चरित्र, व्यवहार में आदर्शों का समावेश करने के लिये दर्शन को भी धर्म का एक अविच्छिन्न अंग माना जाता रहा है। वैज्ञानिक अध्यात्मवाद और तथ्यपूर्ण अध्यात्मवाद भी इसी प्रयोजन की पूर्ति करते हैं।

इसके साथ ही समाज व्यवस्था का क्षेत्र आता है। कुरीतियाँ, अन्धविश्वास, मूढ़-मान्यतायें ऐसी हैं जिसने अपने समाज को बुरी तरह जर्जर कर रखा है। जाति-पाँति की ऊँच-नीच, पर्दाप्रथा, खर्चीली शादियाँ, नर-नारी के बीच भेदभाव, बाल-विवाह, भिक्षा व्यवसाय जैसे कुप्रचलनों से अपनी सामाजिक प्रथायें जर्जर हो गयी हैं। इनमें आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है। व्यक्ति का चिन्तन और चरित्र इतना ढीला हो गया है कि स्वार्थ के लिये अनर्थ करने में व्यक्ति चूकता नहीं। इन सभी को नये सिरे से ठिकाने पर लगाना है। उद्योगों की दृष्टि से हम काफी पिछड़े हुए हैं। शहर बढ़ते जाते हैं और गाँव उजड़ते। उन सबका ढाँचा इस रूप में है जिसे कभी भविष्य के लिये नहीं छोड़ा जा सकता है।

व्यक्तिगत यश के लिये कई व्यक्ति दान-दक्षिणा, तीर्थयात्रा, प्रीतिभोज, मंदिर, धर्मशाला आदि बनाते हैं, पर उनका सदुपयोग बन पड़ने पर एक व्यक्ति की ही प्रशंसा होती है, पर नेतृत्त्व के लिये जो अपना काम हर्ज करते हैं, मान-अपमान सहते और निरन्तर जन सम्पर्क में लगे रहते थे, उनकी क्रिया को जितना सराहा जाय, उतना ही कम है। उनके चरण चिन्हों पर चलने से कितना भला होता है और कितना प्रेरक वातावरण बनता है। जन कल्याण के लिये संलग्न नेतृत्व स्तर के कार्यक्रम अपनाना ऐसा ही महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिस पर हजार संतों को निछावर किया जा सके। इस दिशा में प्रत्येक भावनाशील विचारवान को कटिबद्ध होना ही चाहिए।

यों नेता एक बदनाम शब्द है। उनकी तुलना अभिनेता से की जाती है। वह इसलिये होती है कि जो शिक्षा दूसरों को देते हैं, उसे स्वयं करने के लिये कटिबद्ध नहीं होते। कथनी और करनी में अन्तर रखते हैं। उस अन्तर के कारण ही समझा जाता है कि नेता वही होते हैं जो दूसरों को आदर्शवाद अपनाने की शिक्षा देते हैं, पर अपनी पारी जब आती है तब उन कृत्यों से बच निकलते हैं। हँसाई इसी कारण होती है। जिनकी कथनी और करनी, जीवनचर्या और शिक्षण एक हैं, उनका सदा-सर्वदा से सम्मान और अनुकरण ही होता है।

जनसमुदाय का उच्चस्तरीय नेतृत्व

संसार का सबसे बड़ा नेता है—सूर्य। वह आजीवन व्रतशील तपस्वी की तरह निरन्तर नियमित रूप से अपने सेवा कार्य में संलग्न रहता है। नव ग्रह उसी से गति और पोषण प्राप्त करते हैं। चन्द्रमा उसी की चमक से चमकता है। प्राणियों की आँखें उसी के प्रकाश से देख सकने की क्षमता उपलब्ध करती हैं। बादल वही बनाता है। वर्षा उसी के कारण होती है। पौधों के उगने-उगाने से लेकर फूलने और फलने तक की व्यवस्था उसी के कारण बनती है। पदार्थों को गति और प्राणियों को जीवन वही प्रदान करता है। दिन ही क्रिया है। रात आते ही निष्क्रियता छा जाती है। इसलिए उसे सूर्य भगवान भी कहते हैं और सविता देवता भी।

क्षुद्रजनों से पूछा जाय कि इसके बदले वह कितना पैसा कमाता है, कितना विलास बटोरता है ? तो उन बेचारों से जवाब देते न बन पड़े, क्योंकि उन्होंने जो सदा सीखा, जाना और माना है। उसमें वैभव और विलास इन दो के अतिरिक्त तीसरा कोई तथ्य संसार में है नहीं। आदर्शों की, सेवा-उदारता की पाठशाला उन्होंने पढ़ी ही नहीं, इसलिए वे यह भी नहीं जानते कि आत्मसंतोष और गौरव किसे कहते हैं ? श्रद्धा, प्रतिष्ठा भी उनके अनुभव में कभी आई नहीं होती। महानता से कभी पाला नहीं पड़ा। ऐसी दशा में वे सूर्य को मूर्ख बतायें तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। इनके हिसाब से संसार का हर सेवाभावी जिसे दूसरे शब्दों में नेता कहना चाहिए, कोई लाभदायक प्रयोजन नहीं पूरा करता। बुद्धिमान केवल वे हैं जिन्हें स्वार्थी, विलासी, चोर-चालाक, कुचक्री एवं दंभी कहा जाता है।

नेतृत्व ईश्वर का सबसे बड़ा वरदान है, क्योंकि वह प्रामाणिकता, उदारता और साहसिकता के बदले खरीदा जाता है। इन्हीं को पूजा उपकरण अथवा योगाभ्यास-तप साधन कहा जा सकता है। भक्ति वही है। स्वर्ग और मुक्ति इसी परिधि के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। यह कितना मूल्यवान अनुदान है, इसका मूल्यांकन हजार कुबेर मिलकर भी नहीं कर सकते। जिन्हें सच्चे अर्थों में नेता बनने का अवसर मिला, समझना चाहिए कि चक्रवर्ती शासन और जगद्गुरु स्तर का ज्ञान, दिग्गजों जैसा कार्य उस पर निछावर हो सकता है, पर उस भीलनी को क्या कहा जाय जो रास्ते में पड़े रत्न को चमकीला पत्थर बताती है और भेड़ के गले में उपेक्षापूर्वक बाँधती है। जौहरी जानते हैं कि नेतृत्व का अलंकार, कोहनूर हीरे की तुलना में कोटि गुना अधिक मूल्यवान है। जिसे वह हस्तगत हुआ, समझना चाहिए कि कृतकृत्य हो गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शाहजहाँ को उसके बेटे ने कैद कर लिया। समय काटने के लिए कुछ काम करने की इच्छा पूछी गई तो उसने बच्चों को पढ़ाने का काम माँगा। उसमें नेतृत्व की क्षमता भी थी, अध्ययन सम्पदा भी। पुण्य के साथ-साथ निज प्रतिभा को अक्षुण्ण बनाये रखने का सुयोग भी। कैदी को उसका इच्छित कार्य दे दिया गया। वह इतने भर से संतुष्ट हो गया। जिन्हें अनगढ़ जनसमुदाय को मानवी गरिमा के अनुरूप ढलने और ढालने का सुयोग मिलता है, उन्हें भाग्यशाली ही कहा जा सकता है, भले ही इसके बदले उन्हें नोटों का बण्डल या विलास-वैभव का अम्बार न मिलता हो।

नेतृत्व इसलिए आवश्यक है कि उसमें अनेक को साथ लेकर उन सब के सहयोग से महानतम कार्य कर गुजरने का अवसर मिलता है। सदाचारी-ब्रह्मचारी तो अपना ही भला करता है। दानी, पुण्यात्मा गरीबों की दुआएँ लेते हैं। पर सामूहिक प्रयास से कोई बड़ा काम हो सके यह प्रक्रिया अनेक को, आदर्शवादी-श्रमशीलों को संगठित किये बिना नहीं बन पड़ती। अकेला चना भाड़ कहाँ फोड़ता है ? अकेले दूल्हे की बरात कहाँ सजती है ? संसार के अधिकांश महत्त्वपूर्ण कार्य मिल-जुलकर ही संभव हुए हैं। इस एकत्रीकरण के लिए विश्वस्त और खरा-परखा नेतृत्व चाहिए। मधुमक्खियाँ मिलजुलकर ही छत्ता बनाती और मधु संचय करती हैं। अकेली मक्खी चाहे कितनी ही श्रमशील क्यों न हो तितली की तरह यहाँ-वहाँ उड़ती और ध्यान बँटाने में ही समर्थ होती है।

चीन की प्राचीन प्रख्यात दीवार के सहारे अभी कुछ ही समय पूर्व दस मील चौड़ी और १५००० मील सघन वृक्षों की दीवार खड़ी की गई है। इस दूरदर्शी कदम के पीछे वर्षा, प्रदूषण, हवाओं की रोकथाम, कटाव ईंधन, लकड़ी आदि के अनेक लाभ सोचे गये हैं। जिनका प्रतिफल सामने भी आ रहा है। यह उत्पादन एक स्थान या गाँव के लोगों ने नहीं किया वरन् समूचे चीन के बिखरे हुये लोगों को एकत्रित करके यह संसार का अनोखा आश्चर्य खड़ा किया गया। काम तो हुआ। श्रमिकों ने किया। योजनाकारों ने निर्धारण किया, सरकार ने खर्च जुटाया, पर इन सबसे बड़ा काम उनका रहा जिन्होंने घर में मौज उड़ाते लोगों को देश की प्रगति का माहात्म्य और उपयोगिता बताकर उन्हें बीहड़ में रहने, कठोर श्रम करने और सुविधायें छोड़ने के लिए प्रोत्साहित एवं सहमत किया। इस स्तर के नेतृत्व को जितना सराहा जाय, उतना ही कम है।

ठीक इसी से मिलती-जुलती योजनाएँ स्वेज और पनामा नहर बनाने के सम्बन्ध में भी हैं। छोटे-छोटे भूमि खण्ड दो-दो समुद्रों को अलग-अलग किये हुये थे। उस प्रदेश से गुजरने वाले जहाजों को हजारों मील का चक्कर काटना और विपुल धन खर्च करना पड़ता था। इस असुविधा को मिटाने के लिए उपरोक्त दो नहरें विभिन्न समयों पर बनीं। उनमें सबसे बड़ी प्रमुखता विशाल परिमाण में मानवी श्रम जुटाने की थी। जहाँ यह भूखण्ड थे, वहाँ की स्थानीय जनसंख्या नगण्य थी। वह अपने निर्वाह कार्य ही किसी प्रकार निपटा पाती थी। फिर इतनी बड़ी श्रम सेना कहाँ से जुटे ? मात्र पैसे के प्रलोभन से ऐसे सीलन भरे क्षेत्र में रहने और जानलेवा श्रम करने के लिए इतने श्रमिकों को सहज ही सहमत नहीं किया जा सकता। इसके लिए भावनायें जगानी और उभारनी चाहिए, त्याग और शौर्य उछलना चाहिए। यह कार्य लेखों से, भाषणों से, प्रसारणों से नहीं हो गया, वरन् उन्होंने किया जो स्वयं लोक सेना के लिए अनेक बार दुस्साहस कर चुके थे। सोचा जा रहा था इतने श्रमिक कहाँ मिलेंगे ? फिर वे प्रसन्नतापूर्वक इतनी तेजी से काम क्यों करेंगे, जिसके लिये जाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। यह कार्य उन्होंने जनमानस का अन्तराल झकझोर कर वह आवश्यकता पूरी की, जिसके लिए संसार की अनेक पीढ़ियाँ उस दुस्साहस के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती रहेंगी।

युद्ध भूमि में सैनिक प्राण हथेली पर रखकर लड़ने जाते हैं। इस प्रयास में सम्मिलित होने वालों के मनों में देशभक्ति का, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा गरिमा का बोध कराया जाता है। अन्यथा पैसे के लिए जान कौन बेचेगा ? इन भावनाओं को भरने और उन्हें परिपक्व करने में सैनिक विद्यालयों से लेकर प्रशिक्षकों और व्यवस्थापकों की गहरी भूमिका रहती है। अन्यथा लड़ाई के दिनों में जुझारू सैनिकों का मिलना कठिन हो जाय।

हालैण्ड के पास भूमि की कमी थी। उसकी अधिकांश जमीन समुद्र की सतह से नीचे है। उथले समुद्र ने सुविस्तृत क्षेत्र पर कब्जा कर रखा था। उस देश के निवासियों ने सोचा कि समुद्र द्वारा अधिग्रहण की गई जमीन को फिर से वापस लौटाया जा सकता है। टिटिहरी के अंडे समुद्र द्वारा वापस किये जाने, अगस्त्य मुनि द्वारा समुद्र सोखे जाने का पौराणिक उपाख्यान यथार्थता बनकर उभरा। उस देश के निवासियों ने योजना बनाई कि लगभग ७५० मील चौड़े और २०० मील लम्बे भूखण्ड को समुद्र के अजगर को सदा निगले ही नहीं रहने देना चाहिए। इसके लिए सुनियोजित योजना बनी। एक सुविस्तृत और लोहे जैसे मजबूत बाँध का निर्माण किया गया। जब तक समुद्र की लहरें पीछे हटती थीं इतनी ही देर में उस प्राचीर को कुछ न कुछ ऊँचा उठा ही लिया जाता रहा। समय तो लगा और साधन भी खपे किन्तु श्रमदान द्वारा कार्य पूरा होकर रहा। साथ ही पवन चक्कियों एवं अन्य पम्पों द्वारा पानी उलीचने का कार्य भी चालू रखा गया। प्रकृति ने साथ दिया। समुद्र से छीनी गई जमीन पर अब अच्छा खासा विकसित राज्य खड़ा है और सोना उगलने वाले कारखाने चल रहे हैं। इसमें प्रधान श्रेय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

उन नागरिकों को दिया जा सकता है जिन्होंने बिना थके, हठीले समुद्र से सामूहिक श्रमदान के माध्यम से लड़ाई लड़ी और विजयश्री वरण करके दिखाई।

यह प्रयोग भारत में निरन्तर होता रहा है। ब्राह्मण और साधुओं की जीवन वाहिनी अपने इस प्रण को पूरा करके दिखाती रही है कि राष्ट्र को हर कीमत पर जीवंत और जागृत रखेंगे। उन्होंने अपरिग्रही, नितान्त निर्धनों जैसा जीवन जिया और इतना कठोर श्रम किया जिसके लिए अलग से 'तपश्चर्या' शब्द गढ़ना पड़ा। सतयुग इन्हीं प्रयासों की परिणति थी। ईसाई पादरी एक लाख की संख्या में उन्हीं पद-चिन्हों पर चल रहे हैं और शेष एक तिहाई जन समुदाय को भी ईसाई धर्म में दीक्षित कर लेने का दावा कर रहे हैं। इस शक्ति को निरर्थक भी गँवाया जा सकता है और भले चंगे लोगों के सिरों पर अनौचित्य की बिडम्बनाएँ थोप देने में भी खपाया जा सकता है। पर यदि देश के सात लाख गाँव में से ६० लाख संत-बाबा शिक्षा, स्वच्छता, कुरीति उन्मूलन जैसे कार्यों में लग सकें तो उस कर्त्तव्य के लिए देश का बच्चा-बच्चा, कण-कण उनका कृतज्ञ हो सकता है।

शिक्षा संवर्द्धन, खर्चीली शादियों का उन्मूलन, नशेबाजी, ऊँच-नीच, पर्दाप्रथा, भिक्षा व्यवसाय, अस्वच्छता निवारण ऐसे कार्य हैं, जिन्हें उथले साधनों के बलबूते समाहित नहीं किया जा सकता। इसके लिए रचनात्मक और सुधारात्मक कदम क्रान्ति स्तर के उठाने पड़ेंगे। प्रचार से लेकर कानूनी अनुबंधों, लेख-भाषणों तक के अनेक छुटपुट प्रयत्न चल चुके हैं और चल रहे हैं, पर यदि कुछ ठोस काम किया जाता है तो ऐसा समुदाय संगठित करना पड़ेगा जो स्वयं तो सुधरे और बदले में साथ ही अपने प्रभाव क्षेत्र में भी आग्रह-अनुरोध से लेकर विरोध असहयोग तक के कदम उठा सके। क्रान्ति चाहे नैतिक स्तर की हो, बौद्धिक स्तर की या सामाजिक क्षेत्र की। उसके लिए भी वैसी ही योजना बनानी और कार्यान्वित करनी होगी जैसी कि राजनैतिक क्रान्तियों की व्यवस्थापूर्ण योजनाएँ जन-शक्ति के सहारे बनती और कार्यान्वित होती रही हैं।

नेतृत्व इस तरह अर्जित करें

नेतृत्व का अर्थ है वह वर्चस्व जिसके सहारे परिचितों और अपरिचितों को अंकुश में रखा जा सके, अनुशासन में चलाया जा सके। आमतौर से मनुष्य अनगढ़ होते हैं। वह बंदर की औलाद भले ही न हो, पर उसकी प्रवृत्ति बंदर जैसी अवश्य है। अस्थिर, अनिश्चित माहौल से प्रभावित वह कभी कुछ सोचता है, कभी कुछ। कभी कुछ करता है, कभी कुछ। मदारी ही है जो उसे लकड़ी का भय दिखाकर बताई हुई रीति-नीति अपनाने के लिए प्रशिक्षित करता है। मन की उपमा भी बंदर से दी गई है। वह बेसिलसिले की कल्पना उछल-कूद करने में लगाता रहता है और दाँव लगाता है तो ऐसा भी कुछ कर गुजरता है जिसे बेतुका उपहासास्पद ही नहीं, प्रताड़ना योग्य ठहराया जा सके। छोटे बच्चे जगने से लेकर सोने तक ऐसी ही उछल कूद करते रहते हैं। उनकी भाग-दौड़ का न कोई प्रयोजन होता है न लाभ। मनमर्जी चलाने में उन्हें मजा आता है। इशारे से समझाने पर मानते नहीं। उन्हें काबू में रखना, शिष्टाचार बरतने के लिए सहमत करना, पढ़ने जैसे किसी उपयोगी काम में लगाना तभी संभव होता है, जब उनके पीछे व्यवहारकुशल अध्यापक या अभिभावक लगें। यही नेतृत्व है।

जंगली हाथी की उद्दंडता सभी जानते हैं। पर महावत है जो अंकुश के सहारे सीधे रास्ते चलाता है, युद्ध-कौशल सिखाता है। बोझ उठाने या क्रियाएँ बदलने के लिए बाधित कर देता है। इससे एक कदम बढ़कर सरकस के रिंग मास्टर अपना कौशल दिखाते हैं। वे सिंह जैसे खूँखार की पीठ पर बकरा बिठाकर उसका वाहन बनाने के लिए तत्पर करते हैं। यही नेतृत्व है। सेनापति को शत्रु से लड़ने की रणनीति ही नहीं बनानी पड़ती, नये रंगरूटों को ढंग से कवायद करना और निशाना साधने की शिक्षा भी देनी पड़ती है। इससे भी बढ़कर वह अनुशासन गले उतारना पड़ता है जिसके कारण वह मशीन की तरह काम करें। अपनी मर्जी को कहीं आड़े न आने दे।

सभी महत्त्वपूर्ण कार्य होते तो श्रम, साधन आदि के सहारे हैं। पर उनका नियोजन-नियंत्रण किसी अनुभवी, साहसी और सूझबूझ वाले क्रियाकुशल आदमी के ही बस की बात होती है।

पानी का स्वभाव निचाई की ओर बहना है। मनुष्य का स्वभाव भी ऐसा ही है। उसे दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए आसानी से उत्तेजित और प्रोत्साहित किया जा सकता है। उथले स्वार्थ को लोग तनिक से लाभ के लिए स्वीकार कर लेते हैं भले ही उसमें उनके गौरव और भविष्य को चोट लगती हो। आदर्शों की दिशा में स्वयं को घसीट ले जाना असाधारण साहस भरा कौशल है। प्रज्ञा परिजनों के कंधों पर यही जिम्मेदारी आई है। उसे निबाहने के लिए उन्हें काफी सुदृढ़ और अनुभवी होना चाहिए। यह अनुभव-अभ्यास अपने आप से आरम्भ करना चाहिए। अपनी दुर्बलताओं, त्रुटियों, भूलों एवं बेतुकी आदतों से निपटने का पहला मोर्चा सँभाला और जीता जाना चाहिए।

अपने सबसे नजदीक अपना मन है। वही घनिष्ठ, आत्मीय एवं उत्थान पतन में साझीदार भी है। ऐसी दशा में सबसे प्रथम हाथ भी उसी पर डाला जाना चाहिए तथा बदला और सुधारा भी उसी को जाना चाहिए। यह सरल भी है, क्योंकि निकटवर्ती, आत्मीय, अविच्छन्न पर जितना प्रभाव अपना होता है उतना और किसी पर नहीं। मन का सबसे बड़ा खोट यह है कि वह जीवन सम्पदा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदुपयोग की योजना नहीं बना पाता। आम लोगों की तरह इतना ही सोचता रहता है कि लोभ और मोह से प्रेरित होकर धन संचय, परिवार पोषण, विलास और ठाठ-वाट में ही संलग्न रहा जाय। अपना श्रम, समय, साधन और बुद्धि-कौशल पूरी तरह उसी में खपाते रहा जाय। विचारणा के इस खोट से ही समस्त क्रिया-कलाप भी वैसे ही बन पड़ते हैं। चिन्तन बदले तो क्रिया कृत्य में भी अन्तर पड़े। नेतृत्व सर्वप्रथम अपने मन का करना चाहिए और उसे इस तथ्य को समझाना चाहिए कि ईश्वर प्रदत्त इस अमानत को आत्म परिष्कार एवं लोक मंगल में ही लगाया जाना चाहिए। बार-बार कहते रहने और इस परिवर्तन के दूरगामी परिणाम सुझाते रहने पर वह परामर्श भी मान सकता है और दबाव डालने, तपस्वी जैसा संकल्प कर बैठने की धमकी देकर विवश भी किया जा सकता है। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह और परिवार के लिए 'एक आँख प्यार की—दूसरी सुधार की' रखते हुए उसको सदस्यों के लिए सहमत ही नहीं बाधित भी किया जाय तो इस सफलता की परिणति अपनी प्रतिभा में चार चाँद लगाने जैसी होगी। उसका प्रयोग मित्र-परिचित, पड़ौसी, सम्बन्धी पर ही नहीं, अपरिचित लोगों के साथ सम्पर्क साधते हुए किया और मनाया-झुकाया उन्हें भी जा सकता है। नेतृत्व का सार संक्षेप यही है।

आत्मानुभूति यह भी होनी चाहिए कि सबसे बड़ी पदवी इस संसार में मार्गदर्शक की है। नाविक और अध्यापक जो स्नेह-सम्मान पाते हैं। अगणितों को कृतज्ञ बनाते और ठिकाने लगाते हैं, वह साधरण नहीं—असाधरण बात है। उतना कर पाना आत्मसंतोष के लिए सबसे बड़ा आधार है। लोक श्रद्धा इसी के सहारे अर्जित होती है। संसार में जो भी महामानवों की श्रेणी में पहुँचे हैं, उन सभी को जन समर्थन-जन सहयोग निश्चित रूप से मिला है। यह किस प्रकार सुलभ संभव है, उसकी विद्या अनुभव-अभ्यास में उतार लेना महती सफलताओं में एक गिनी जा सकती है।

ध्यान से देखा जाय तो भौतिक प्रगति के समस्त क्रिया-कलाप अपनी गरिमा दूसरों की तुलना में बढ़ी-चढ़ी सिद्ध करने के लिए ही किये जाते हैं। मनुष्य की निजी आवश्यकताएँ तो जरा-सी हैं। वे दस मुट्ठी अनाज, छह गज कपड़े और रात बिताने के आच्छादन भर से पूरी हो जाती है। फिर वैभव बटोरने की इतनी दौड़-धूप किसलिए ? इसके पीछे अन्तराल की गहराई में छिपी एक ही महत्वाकांक्षा काम करती रहती है कि दूसरे हमें अपने से बड़ा, अमीर, समझदार, साहसी, क्रिया कुशल, सुन्दर, सौभाग्यशाली आदि मानें। वैभव के सहारे जहाँ दूसरों से बड़प्पन प्राप्त होता है वहाँ अपना गर्व गौरव-अहं भी तृप्त होता है किन्तु विडम्बना यह है कि ये भौतिक उपार्जन अपने निज के किसी काम नहीं आते। उनसे दूसरों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने का क्षणिक-सा खेल-मेल भर बनता है। यही आम नीति है। प्रचलन इसी का है। अनेकों को इसी राह पर चलता देखा जाता है। इसलिए अपना मन भी उसी अनुकरण के लिए ललचाता और मचलता रहता है। छोटे बच्चों को रंग-बिरंगे चाबी वाले खिलौने ही तो मन भाते हैं। किन्तु वयस्क उस खिलवाड़ में रस नहीं लेते। उन्हें मिट्टी का नहीं सचमुच का बैल-घोड़ा चाहिए, जो अधिक दाम में खरीदे जाते हैं और उनकी साज सँभाल भी तत्परता चाहती है। नेतृत्व सचमुच का हाथी है। उसे खरीदने और सवारी करने पर बड़प्पन दूर से ही हर किसी को दृष्टिगोचर होता है।

अपने स्वभाव में आलस्य, प्रमाद, अपव्यय, दर्प, कटु भाषण, व्यसन-विलास आदि दुर्गुण भरे होते हैं। मोर्चा इनके विरुद्ध लगना चाहिए और संकल्प उठना चाहिए कि गरिमा को गिराने वाली इन दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ने के लिए निरन्तर प्रयत्न जारी रखा जायेगा और लिपटी हुई मलीनता को साफ करके ही रहा जायेगा। अपने दुर्गुण, कुविचारों एवं हेय कार्यों पर कड़ी नजर रखी जाय, उनका विरोध-सहयोग जारी रखा जाय तो कोई कारण नहीं कि जीवन को उच्चस्तरीय बनाने वाली सत्प्रवृत्ति अपने अभ्यास में न उतर सकें। यह बहुत बड़ी बात है। नम्रता सज्जनता, शिष्टता, उदारता, सेवा भावना के बलबूते कोई भी व्यक्ति लोकप्रिय एवं श्रद्धास्पद बन सकता है। साथ ही उस समर्थन के कारण हर क्षेत्र में प्रगति के लिए अवसर मिलते रहने का सिलसिला अनायास ही चल पड़ता है।

वरिष्ठ व्यक्तियों को समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को अपने व्यक्तित्व में समाविष्ट करना पड़ा है। इससे कम में सस्ते मोल खरीदी गई नेतागीरी एक धूर्तता है जिसकी कलई खुले बिना रह नहीं सकती। चापलूसों को प्रलोभन देकर खरीदा जा सकता है पर उनके द्वारा की गई प्रशंसा या दी गई पदवी बालू की भीति की तरह बे सिर-पैर की होती है। उससे तात्कालिक वाहवाही लूटी जा सकती है। किसी संस्था का पदाधिकारी बना जा सकता है। अखबारों में नाम-फोटो छप सकता है। जय-जयकार सुनाई दे सकता है। पर उस विडम्बना के पीछे स्थायित्व जैसा कुछ नहीं होता। बिना जड़ का खोखला पेड़ कब तक खड़ा रह सकता है। वाणी की वाचालता और शेखीखोरी किसी को क्षण भर के लिए प्रभावित कर सकती है किन्तु उसे जनसाधारण के अन्तराल में श्रद्धा भरा स्थान नहीं दिला सकती और इसके बिना नेतृत्व गहरा एवं चिरस्थाई नहीं हो सकता।

अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को सँभालने सुधारने के साथ ही उस समुदाय को सँभालने का कदम बढ़ता है जिसके साथ हम बँधे हुए हैं। परिवार अपना निकटवर्ती समुदाय है। इसकी इच्छानुकूल विलास सुविधा जुटाने का कार्य तो कठिन है क्योंकि एक की देखा-देखी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों का मन चलता है और घर में उपलब्ध सुविधाओं की तुलना में उनकी माँगें बढ़ती ही जाती हैं, जिसे रोका-टोका जाय, वही विरोधी बनता है और सहयोग के स्थान पर बिगाड़ने वाले कदम उठाता है इसलिए नीति पहले से ही निश्चित रखनी चाहिए कि उत्तराधिकार में सम्पदा पाने की कोई भी परिजन आशा न करे। गरिमा बढ़ाने और भविष्य चमकाने वाले सद्गुणों का परिवार संस्था की छत्र-छाया में अभ्यास करे।

श्रमशीलता, मितव्यता, स्वच्छता, सुव्यवस्था, सज्जनता, शिष्टता, सहकारिता, उदारता, संयमशीलता, मिलनसारी जैसे गुणों को परिजनों के स्वभाव में उतारने के लिए उनका कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए, जिसके सहारे इन प्रवृत्तियों को दैनिक क्रिया-कलापों में सम्मिलित रख कर चलना पड़े। यह वस्तुतः बहुत बड़ा उपार्जन या अनुदान है। सद्गुणी व्यक्ति अपनी योग्यता भी बढ़ाते चलते हैं, प्रामाणिकता भी विकसित करते चलते हैं और सेवा प्रयोजनों में दूसरों का सहयोग भी करते रहते हैं। आन्तरिक प्रगति की गरिमा और व्यवस्था लोगों के गले उतारते रहा जाय तो भावी जीवन में वह अपनाये गये हरे काम में प्रगति करता और सफलता उपलब्ध करता चलता है।

वस्तुतः समय की नियमितता और व्यस्तता ऐसा गुण है जिसके सहारे सामान्य मनुष्य भी दूसरों की तुलना में अनेक गुनी प्रतिभा अर्जित कर सकता है। आश्चर्यजनक रीति से उत्कर्ष के आधार हस्तगत करता चल सकता है।

आत्म निर्माण, परिवार निर्माण के साथ प्रगति का तीसरा क्षेत्र है—समाज निर्माण। यह तीनों एक साथ चल सकते हैं। अन्न, जल और वायु तीनों ही एक साथ प्रयुक्त किये जाते हैं। उसी प्रकार आत्म निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण के तीनों ही काम साथ-साथ चलाए जा सकते हैं।

इन दिनों सभी का ध्यान राजनैतिक नेता बनने का है। पर उस डिब्बे में भीड़ अत्यधिक भर गई है। साथ ही पहले जगह प्राप्त करने और ऊँची कुर्सी पर बैठने की ललक भी इतनी तीव्र है कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए जो हथकण्डे अपनाये जाते रहते हैं, नौसिखिये को इससे भी बढ़कर अपनाने पड़ेंगे, जो बन भी न पड़ेंगे और बेकार की बदमगजी खड़ी होगी।

स्वयं चुनाव लड़ने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि अपने हाथ में इतना प्रभाव रखा जाय कि जन साधारण को इशारा करते ही इच्छित प्रयोजन की पूर्ति हो जाय। चुनाव जीतने पर माला पहनने का तात्कालिक लाभ तो मिलता है, पर जिन्होंने भी वोट दिये थे वे अपने और अपने परिचित सम्बन्धियों के उचित-अनुचित काम कराने के लिए दबाव डालते हैं। वे हो तो पाते नहीं। ऐसी दशा में समझा यह जाता है कि हमारी उपेक्षा हुई। फलतः जहाँ पुरानी संचित मित्रता थी, वह टूट जाती है और बेकार का विग्रह, मनोमालिन्य खड़ा होता है। इस झंझट में स्वयं न पड़कर दूसरों को, अधिक आतुर लोगों को उस स्थान पर खड़ा करना चाहिए और अपने प्रतिनिधि के रूप में वे कार्य करने चाहिए जो उचित एवं आवश्यक हैं।

समाज सेवा के क्षेत्र में सबसे बड़ा काम जनमानस का परिष्कार है। इस हेतु प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत चलाये गये कार्यक्रमों की पूर्ति में जुटाना चाहिए। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति का निर्धारित लक्ष्य यदि पूरा किया जा सके तो समझना चाहिए कि कायाकल्प जैसा परिवर्तन हुआ और उसके फलस्वरूप वह माहौल बना जिस कारण मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

हमें ऐसे ही कार्य में संलग्न होकर अपना सेवा भावी नेतृत्व अर्जित करना चाहिए।

नेता नहीं, नागरिक चाहिए

एक समय था जब भारतीय समाज अँग्रेजों का पूरी तरह गुलाम था। स्वाधीनता-संस्कृति और सभ्यता समाज की सर्वोपरि आवश्यकता थी। परन्तु हमारे देशवासी इसके महत्त्व से लगभग अज्ञ ही थे। तब ऐसे लोगों की आवश्यकता हुई जो अपने समाज का नेतृत्व कर सकें, अंग्रेजी साम्राज्य से टक्कर ले सकें। जो लोग पढ़े-लिखे थे, कानून और विश्व की हलचलों तथा गतिविधियों से परिचित थे, वे इस आवश्यकता को पूरी करने के लिए आगे आये भी सही। उनके व्यक्तित्व में इतनी प्रखरता थी कि अँग्रेजों के पाँव उखड़ गये और उन्हें यहाँ से भागना पड़ा। तब कि स्थिति यह थी कि नेता के आह्वान पर साधारण से साधारण आदमी और अमीर से अमीर जागीरदार भी निर्दिष्ट दिशा में चलने के लिए कमर कस लेते थे।

स्वातन्त्र्योतर काल में भी देश के सुयोग्य नेतृत्व की आवश्यकता रही। जिनके निर्देशन में समाज अपनी उन्नति कर सके। दूसरों को सही दिशा देने वाला, मार्गदर्शक नेता कहा जा सकता है। इस विशेषता के साथ-साथ उस दिशा में चलाने के लिए आगे होने का गुण होना भी अनिवार्य है। ऐसे सुयोग्य नेताओं की हर समय आवश्यकता बनी रहती है।

परतन्त्रता काल में नेतृत्व का जो प्रभाव जन साधारण पर देखा गया उसका यही कारण था कि नेतृत्व सर्वांगीण व्यक्तित्व में उभरा था। त्याग, साहस, सूझबूझ, विचारशीलता, कथनी और करनी की एकता आदि सद्गुणों का वही चमत्कार था कि सर्वसाधारण निर्दिष्ट दिशा में चल पड़ा। परिस्थितियाँ बदलीं, देश आजाद हुआ तो नव-निर्माण का उत्तरदायित्व भी उसी वर्ग को सौंपा गया परन्तु अब उनमें नेतृत्व की विशेषताओं का ह्रास होने लगा। नेता राजा हो गये तो त्याग का स्थान लालच ने ले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिया। कर्मठता प्रमाद में बदल गयी। नेता पद जिस त्याग और तपस्या के बाद मिलता था वही भोग और विलासिता का कारण बन गया। परिणाम हुआ कि जनता में नेता शब्द के प्रति जो आदर सम्मान और श्रद्धा का प्रतीक बना हुआ था अब हेय और निन्दा बन गया। किसी साधारण व्यक्ति को नेता कह दिया जाय तो वह खीझ उठेगा। आजादी के पूर्व नेताओं में जो विशेषताएँ थीं आजादी के बाद उनका स्थान विकृतियों ने ले लिया।

नेतृत्व ने आजकल व्यवसाय का रूप धारण कर लिया है। हर किसी में नेता बनने की होड़ लगी है। कुर्सी और गद्दी पाकर काम के नाम पर केवल भाषण करना और उपदेश देना किसे घाटे का सौदा लगेगा ? जो जिस क्षेत्र में है, थोड़ा-पढ़ा लिखा है तो नेता बनने के लिए आतुर है। पञ्चायतों और छोटी-छोटी यूनियनों तक में नेतृत्व के लिए कटु संघर्ष चल रहे हैं। नौकरी और मजदूरी तक में नेतागीरी चलने लगी है। नेतृत्व के व्यवसाय में हर कोई घुसना चाहता है, जिसमें थोड़ी भी प्रतिभा है वह उपदेशक बनने चला। फिर भी जनसाधारण में इस वर्ग के प्रति आस्थायें कम होती जा रही हैं। इसका एकमात्र कारण है 'कथनी और करनी' का अन्तर। उपदेश देना हर किसी को याद है उस पर स्वयं रत्ती भर अमल करने की इच्छा किसी की नहीं है। यह रोग राजनीति ही नहीं सामाजिक क्षेत्र में भी फैल रहा है।

नेता शिक्षित और सुयोग्य ही नहीं प्रखर संकल्प वाला भी होना चाहिए। जो अपनी कथनी और करनी को एकरूप में रख सके। आडम्बर, दंभ और दिखावापन नहीं आदर्श और व्यवहार में एक सामञ्जस्य होना चाहिए। अच्छा तो यह है कि नेता बनने की अपेक्षा एक अच्छा नागरिक बनने का प्रयत्न किया जाय। राष्ट्र को पहली जरूरत सुयोग्य नागरिकों की है जिनके हृदय में देश-प्रेम हिलोरें लेता हो, भुजाओं में श्रम शक्ति तथा मस्तिष्क में सद्विचारों का वास हो।

नेतृत्व का जो स्वरूप आज बना है। उसे देखते हुए यही विश्वास होता है कि नव-निर्माण की उनसे कोई आशा नहीं की जानी चाहिए। समाज निर्माण के लिए नागरिकों को स्वयं का आत्म निर्माण करना होगा। हम जितने अच्छे बनेंगे, समाज में उतनी ही अच्छाई की मात्रा बढ़ेगी। समाज का अच्छा या बुरा होना व्यक्तियों के अच्छे या बुरे होने पर निर्भर है। दूसरों को सुधारने का उपदेश देने की अपेक्षा कहीं यह अच्छा है कि हम स्वयं सुधरें। जिन बातों और गुणों को हम दूसरों में देखना चाहते हैं पहले हम स्वयं उन्हें धारण करें। समाज की भव्य संरचना दो चार या आठ-दस नेताओं पर नहीं उसके घटक लाखों व्यक्तियों द्वारा ही सम्भव है।

सच्चे नागरिक की पहली विशेषता है उसकी सामाजिक निष्ठा। अपने स्वार्थों और विचारों का समाज के साथ जितना ही तालमेल बैठाया जायेगा सामाजिक भावना उतनी ही विकसित होगी। उसकी दृष्टि में समाज प्रधान होगा व्यक्ति गौण। इसी भावना के व्यक्ति में नेतृत्व की क्षमता होगी परन्तु उसे पद लिप्सा नहीं होगी, न सम्मान की ही इच्छा। वास्तव में एक सुयोग्य नागरिक ही नेतृत्व का पात्र होता है क्योंकि अच्छे व्यक्ति की सभी विशेषताएँ उसमें विद्यमान रहती हैं। लोकेषणा और पदलोलुपता के प्रलोभन को तिलांजलि देकर ही सामूहिकता की भावना का विकास किया जा सकता है। अन्यथा जो इन प्रलोभनों के कुचक्र में फँसता है वह समाज विकास के क्रम को अवरुद्ध कर देता है।

सुयोग्य नागरिक की दूसरी विशेषता है—समाज के नियन्त्रण में रहना। औरों के हित पर कुठाराघात, अनुशासन भंग, सामाजिक नियमों की अवहेलना नागरिकता के ही परिचायक हैं। नेताओं में यह दोष बड़ी तेजी से पनपता जा रहा है जो इस बात का द्योतक है कि नागरिकता की पहली सीढ़ी भी उन्होंने नहीं चढ़ी है। एक सामान्य नागरिक से जिस प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है वही गुण नेताओं में बहुत कम होने लगा है। इसका कारण है नेतापन का अहंकार। यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति किसी भी पद पर होने से पहले एक नागरिक है और नागरिक होने के नाते उन सभी नियमों और अनुशासन का पालन आवश्यक है जो समाज के हित के लिए निर्धारित है। नेताओं में स्वयं को विशिष्ट व्यक्ति समझने का रोग ही अहंकार का पोषक सिद्ध होता है फलस्वरूप वह जनसामान्य से कट जाता है। वह विशिष्ट इसलिए है कि स्वयं उसे कोई काम अपने हाथ से नहीं करना पड़ता, साधारण वर्ग जो उसकी प्रतिष्ठा के मूल आधार है, आसानी से वह नहीं मिल सकता। अपने दैनन्दिन जीवन में वह पूर्णतः पराश्रमी हो जाता है। यह हमारे देश और समाज का दुर्भाग्य है कि जिसे जितना कम काम करना पड़ता है वह उतना ही बड़ा समझा जाता है। संयोग से नेताओं को बहुत कम काम करना पड़ता है इसीलिए उनका यह बड़प्पन बोध उन्हें जनसाधारण से अलग बैठा देता है और वे नागरिक बने बिना ही नेता बन जाते हैं।

यद्यपि नेता पद आजादी के पूर्व जितना सम्मान, श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखा जाता था उतना पूज्यनीय अब नहीं रहा फिर भी इस पद को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा-सी लगी हुई है क्योंकि लोगों को इसमें बड़प्पन का भान है। रौब-दाब और मिथ्या शान का व्यवसाय जितनी जल्दी हो सके बन्द कर सुयोग्य नागरिकता के विकास का प्रयत्न किया जाना चाहिए। तभी राष्ट्र, देश और समाज का नव निर्माण हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सफल नेतृत्व—एक साधना

सफल नेतृत्व एक प्रकार की आध्यात्मिक प्रतिक्रिया का फल है, जिसके कारण नेता की आध्यात्मिक शक्तियाँ विकेन्द्रित होकर विशाल जनसमूह के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। प्रत्येक नेता कहाने वाला व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के प्रभाव से जनता और समाज में उन्नति करता है। समाज तथा जनता में होने वाले परिवर्तन उसके मन की भावना एवं सूचना के अनुसार होते हैं।

सफल नेता की शिवत्व भावना, सबका भला 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' से प्रेरित होती है। प्रत्येक मनुष्य में शिवत्व है। इस शक्ति से भर कर अब कोई सज्जन संसार के कल्याण के लिए अग्रसर होता है तो अनेक प्रकार की गुप्त शक्तियाँ उसके व्यक्तित्व में स्वयं विकसित हो उठतीं हैं। संसार की प्रत्येक शक्ति का स्वभाव है कि वह दुष्ट के हाथ से अपना विघातक स्वरूप स्पष्ट करती हैं तथा सचित्र सज्जन व्यक्ति के हाथ में विधायक स्वरूप धारण करती है। शक्ति के परिणाम चाहे कितने ही हों पर स्वरूप एक ही होता है। चरित्र की उदात्तता के अनुसार, मन की भावना के सामर्थ्य से नेतृत्व की शक्तियों का उदय होता है। ज्यों ही सत्भावना के सामर्थ्य का प्रवाह योग्य दिशा में प्रवाहित होता है त्योंही शक्तियाँ विकसित होती हैं।

सफल नेता होने से पूर्व आप अपने आप से पूछिये कि क्या आप वास्तव में समाज की सेवा करना चाहते हैं। आपका व्यक्तिगत स्वार्थ तो प्रेरक शक्ति नहीं है। आप जनता को आश्चर्यचकित करने मात्र के लिए या अपने विज्ञापन के लिए ही तो आप नेतागीरी नहीं कर रहे हैं ? जिस क्षेत्र में आप नेतृत्व करना चाहते हैं, उस सम्बन्ध में आपकी जानकारी पूर्ण है या नहीं ? अन्य देशों में उस प्रकार का जागरण उत्पन्न करने वालों के सम्बन्ध में आपने पूरी तरह पढ़ लिया है या नहीं ? अपनी शक्तियों एवं साधनों के प्रति आपको पूर्ण विश्वास है या नहीं ? आपका शरीर स्वस्थ, इन्द्रियाँ कार्य में सतर्क, बुद्धि कुशाग्र और मन में समस्वरता है या नहीं।

उपरोक्त प्रश्नों द्वारा अपने व्यक्तित्व की जाँच के पश्चात् यदि आप अपने अन्दर गुप्त शक्ति का असाधारण प्रभाव पायें, तब इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हैं। मान लीजिये आपने शारीरिक व्यायाम द्वारा शरीर को पुष्ट बना लिया है, आपके पास पूरे कद का स्वस्थ और नीरोग शरीर है। मन में उत्साह और आशा है और आप सद् इच्छा से प्रेरित हैं। आगे क्या करें ?

पहले अपना क्षेत्र तलाश कीजिये। आप किस क्षेत्र में जनता का मार्ग प्रदर्शन करना चाहते हैं—धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या साहित्यक क्षेत्र में। अपने आपको उच्चतम, महत्तम सबसे आगे समझते हैं। सावधान, अपनी साधनायें तौल लीजिये। जब तक आपने उपरोक्त क्षेत्रों में मन लगाकर दीर्घकालीन अभ्यास नहीं किया है, उच्चतम ज्ञान और बुद्धि की एकाग्रता से उस विषय को अपना नहीं बना लिया है, तब तक इस क्षेत्र में पदार्पण करना नितान्त मूर्खता है। जिसकी जिस क्षेत्र में जितनी अधिक साधनायें हैं, जिसने जितना अधिक अभ्यास किया है और जिसके पास जितना अधिक ज्ञान है वह उतना ही सफलता से नेतृत्व कर सकता है। क्षेत्र का चुनाव आपकी शिक्षा एवं रुचि का व्यक्तिगत प्रश्न है। इसे बड़ी सतर्कता से हल करना चाहिए।

प्रारम्भ में नैपोलियन समझता था कि उसे साहित्य के क्षेत्र में नेतृत्व करना है। उसने १७ से २४ वर्ष की आयु के मध्य साहित्यिक प्रसिद्ध लाभ करने का पुनः यत्न किया। उसे लेखन-कला में कीर्ति लाभ करने का मार्ग निश्चित और शायद सबसे छोटा जान पड़ता था। ग्रंथकार बनने का पहला प्रयत्न उसने १७८६ में किया था। कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिख चुकने के पश्चात् उसने 'प्रेम' पर एक निबन्ध लिखा, उसके बाद 'आनन्द' पर। ल्योन्स की विद्वत् परिषद् ने 'आनन्द' पर निबन्ध के लिए १५०० लिबरे का एक पारितोषिक रखा था। नैपोलियन ने भी अपना लेख प्रतियोगिता में भेज दिया। वह इतना निकम्मा था कि उससे घटिया केवल एक निबन्ध और था। निबन्ध परीक्षकों में से एक ने उस पर इस प्रकार की टिप्पणी लिखी थी—"यह इतना अव्यवस्थित है, इतना ऊबड़-खाबड़ है, इतना असंबद्ध है और इतनी बुरी तरह लिखा हुआ है कि इस पर कुछ भी ध्यान देना ठीक नहीं।" इस पर नैपोलियन ने अपने भाई जोनैफ को लिखा—"हब मुझे ग्रन्थकार बनने की आकांक्षा नहीं रही। उसने दूसरा क्षेत्र पकड़ा। सैनिक क्षेत्र में आकर उसे विदित हुआ कि यही परमेश्वर ने उसके लिए बनाया है। इसी में उसने-अक्षय कीर्ति लाभ की। ठीक क्षेत्र का चुनाव आधी सफलता है।

जो व्यक्ति कभी कुछ, कभी कुछ करते हैं, वे अन्ततः कहीं भी नहीं पहुँच पाते। बहुत सोच-समझ कर अपनी रुचि के अनुकूल क्षेत्र का चुनाव करना चाहिए। वह नेता धन्य है जिसने अपने सही क्षेत्र की पहचान कर ली है, शक्तियों को तौल लिया है।

नेता में किन आध्यात्मिक सम्पदाओं की आवश्यकता है ? सर्वप्रथम आत्मविश्वास है यह नेता का प्रथम देवी गुण है जिससे वह जीवन में प्रतिकूल और अप्रिय अवस्थाओं पर, विजय प्राप्त करता चलता है। विपरीत प्रतिकूलताएँ नेता के आत्म विश्वास को चमका देती हैं। प्रत्येक नेता आत्मविश्वास का जीता जागता शक्ति पिंड होता है। उसे अपनी भुजाओं, अपने शरीर, अपनी कार्य प्रणाली, सम्पादिका शक्तियों, तर्क और बुद्धि में अक्षय विश्वास होता है। उसके अन्तस्थल में निश्चयात्मक तत्त्व प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। उसके नेत्र, मुख मंडल एवं कर्मों से तनिक भी सन्देह या भय के भाव नहीं प्रकट होते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे विश्वास होता है कि मैं जिस कार्य को कर रहा हूँ, मैंने जो योजनाएँ जनता के लाभ और सेवा के लिए बनाई हैं, वे गलत नहीं हो सकतीं, संसार उनकी आलोचनाएँ करता है, किन्तु वे आलोचनाएँ उनके अक्षय आत्मविश्वास को ठेस नहीं पहुँचा सकतीं।

संसार में जो-जो नेता हुए हैं, उन्हें घोर प्रतिकूलता तथा तीखी आलोचनाओं का सामना करना पड़ा था। जितना भी अद्भुत प्रतिभा का प्रकाशन हुआ, वह सब प्रतिकूलता में ही हुआ। बड़े-बड़े धार्मिक नेता, राजनीतिक और सामाजिक नेता, बड़े-बड़े आविष्कार, कला-कौशल, उन्नति, वैभव, सब प्रतिकूलता के प्रदेश से ही प्रकट हुए। श्रेष्ठ नेता का अखंड विश्वास जनता के विचार-प्रवाह को अपने पक्ष में मोड़ लेता है।

सच्चे नेता आध्यात्मिक सिद्धियों द्वारा आत्मविश्वास फैलाते हैं। वही फैलकर अपना प्रभाव मुहल्ला, ग्राम, शहर, प्रान्त और देशभर में व्याप्त हो जाता है। उसके आत्म तेज की परिधि में जितने भी व्यक्ति आते हैं, वे उस तेज से प्रभावित जाते हैं। आरम्भ में नेताओं के विचारों से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या अति अल्प होती है। धीरे-धीरे इन विचारों का गुप्त प्रवाह दूर-दूर तक फैल जाता है।

महात्मा गाँधीजी, गुरु नानक, गौतम बुद्ध प्रभृति लोक मान्य नेताओं को मानने वाले व्यक्तियों की संख्या प्रारम्भ में न्यून थी। जनता उनकी हँसी उड़ाती थी। धीरे-धीरे लोगों को इनकी योजनाओं की सत्यता विदित हुई और जनता की आलोचनाएँ, इनकी आध्यात्मिक शक्तियों के सन्मुख न ठहर सकीं। अधिक से अधिक संख्या में जनता ने इनका साथ दिया। प्रायः नेताओं के जन्म साधारण परिवारों में हुए हैं किन्तु अपने (१) हानि और मानसिक शक्तियों (२) आत्म विश्वास और लगन (३) सततोद्योग के कारण वे ऊपर चढ़े हैं। उन्हें धीरे-धीरे सफलता प्राप्त हुई। एक विजय के पश्चात् दूसरी विजय मिली। संसार विजयी पर विश्वास लाता है। लोग उस व्यक्ति पर विश्वास करने लगते हैं जिसके मुख मंडल पर विजय के भाव झलकते हैं। मनुष्य का मनोविज्ञान है कि हम उन लोगों पर स्वभावतः विश्वास करने लगते हैं, जो अपनी शक्ति का प्रभाव डालते हैं। बिना आत्म विश्वास के वे ऐसा नहीं कर सकते। वे उस अवस्था में हम सब पर प्रभाव नहीं डाल सकते, जबकि उनका मन, भय और शंकाओं से परिपूर्ण हो।

कुछ मनुष्यों में थोड़ी-सी ऐसी अलौकिक शक्ति होती है जिसके दर्शन मात्र से हमारा हृदय उनके प्रति श्रद्धा और आदर से भर जाता है, मन स्वयं झुककर उनसे कुछ सीखना चाहता है, उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर स्वयं चलना चाहता है। यह उनकी परिपक्व एवं प्रदीप्त आध्यात्मिक शक्तियों (ज्ञान, सत्कर्म, निस्वार्थता, दिव्यता, आत्मतेज, वासनाओं से मुक्ति) का अद्भुत प्रभाव है। हमें उनमें एक अजीव दिव्यता प्रतीत होती है। जो हमारे विश्वास को अपनी ओर खींचती है।

सफल नेता के अन्य दो आध्यात्मिक तत्त्व हैं—सच्ची निष्ठा एवं लगन। प्रथम गुण द्वारा वह एक स्थान पर, एक विचार, योजना मन्त्रणा पर ठहरता है, मन को अपनी सम्पूर्ण मानसिक शक्तियों द्वारा केन्द्रित करता है। सच्चे नेता जिन योजनाओं का निर्माण करते हैं, उनमें पर्याप्त विचार, तर्क और दूरदर्शिता का समन्वय होता है। इन योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये वह इन्हीं पर एकनिष्ठ होकर ठहरता है, परिवर्तन नहीं करता।

जो व्यक्ति अपने मन्तव्यों के प्रति सच्चा है, जिसे अपने आदर्शों के प्रति सच्ची लगन है, जो बलिदान के लिए सदैव प्रस्तुत है, वह अवश्य जनता को सच्चे मार्ग पर चलायेगा।

सफल नेतृत्व के लिए मिलनसारी, सहानुभूति और कृतज्ञता जैसे दिव्य गुणों की अतीव आवश्यकता है। उसे तो मानवमात्र का हितैषी (सेवक) बनना है, सबके कष्टों को सुनकर दूर करने का उद्योग करना है, सुख तथा शान्ति के मार्ग पर चलना है जो नेता इस नियम को भंग करता है वह घृणा तथा स्वार्थ का शिकार बनता है। जनता का सहयोग, छल, कपट, धोखे या जादू से सम्भव नहीं है जनता बड़ी कटु आलोचक है। वह नीर-क्षीर विवेक करना जानती है। अतः अन्य जिस किसी के सम्पर्क में आयें उसी को अपने मृदु, सहानुभूतिपूर्ण शब्दों से अपना बनाइये। इन दैवी तत्त्वों का चुम्बक स्रोत दूसरों के मन में भी सर्वत्र समान रूप से प्रवाहित हो उठेगा। दीर्घ आशा और विश्वास जागृत होगा, विपरीत आलोचनायें घुल जायेंगी।

विश्व कार्य में नेतृत्त्व ग्रहण करना, जीवन कर्त्तव्यों का सम्यक् सम्पादन करना, प्रतिकूल परिस्थिति के विषम प्रभाव के परे उठना, भय का निर्वासन करना यह सब आपकी मिलनसारी, सहानुभूति, कृतज्ञता एवं प्रेम पर निर्भर हैं। आपका प्रेम फलता-फूलता है। प्रकट किया हुआ प्रेम दुगुना-चौगुना होकर लौटता है।

राजनेता जननेता भी तो बनें

स्वर्गीय डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जब स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने तो उन्हें भव्य मुगल उद्यान के मध्य निर्मित विशाल और भव्य 'वायसरीगल लॉज' में रहने के लिये कहा गया। घुटनों से भी ऊँची धोती पहनने वाले गाँधी के इस अनुयायी को यह बात कुछ जँची नहीं कि देश का जनसामान्य तो झोंपड़ी में रहे और वे विशाल वायसरीगल लॉज में। उन्होंने अपने मन की बात कही—"मेरे लिये तो एक साधरण-सा मकान ही काफी है। इतने बड़े भवन की क्या आवश्यकता ?" तब उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तत्कालीन राजनेताओं ने बहुत समझाया कि इतने बड़े देश के राष्ट्रपति के लिये अपने देश की शान के अनुरूप भवन में ही रहना ठीक होता है। इसमें देश की शान है। इस बात को उन्होंने अनमने ढंग से मान भी ली। ज्यादा अड़ते तो लोग समझते कि उन्हें अपनी सादगी का प्रदर्शन करना है। बाहर से आने वाले अतिथि, राजनेताओं और देश की मर्यादा समझ उन्होंने इसे आपद् धर्म की तरह स्वीकार कर लिया।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे त्यागी विरागी के लिये यह राष्ट्रपति भवन में रहते हुए भी अपनी सादगी का निर्वाह करना और उसके वैभव से अलिप्त रहना सम्भव भी था। वे महाराज जनक की तरह उसे भोगते हुए भी नहीं भोगते रहे। सभी जानते हैं कि राष्ट्रपति भवन में कभी वर्षों तक एक साधू रहा था। 'वायस रीगल लॉज' को 'राष्ट्रपति भवन' का नाम भी उन्हीं ने दिया था।

अच्छी वकालत, हजारों रुपयों की आय और सुख-सुविधाओं को छोड़ वर्षों तक स्वतन्त्र संग्राम में आने वाले कष्ट-कठिनाइयों और जेल जीवन के अभ्यास ने उन्हें तो उस ऊँचाई पर पहुँचा दिया था किन्तु आज के राजनेता तो उस स्थिति में नहीं होते। उनके मन में देश की सेवा की निष्ठा की भावनाएँ तो हो सकती हैं, देश की सेवा करने के ध्येय से भी वे राजनीति के क्षेत्र में आये हों किन्तु उनका जीवन यदि सादा न रहा तथा वे आडम्बर और ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में रहे तो निश्चय ही उससे अलिप्त नहीं रह सकते। इस कारण वे राजनीतिज्ञ तो रहते हैं पर जन नेता नहीं बन पाते। जन नेता नहीं रहने पर वे सामान्य जन के साथ अपना एकत्त्व नहीं जोड़ पाते और उनका एक पृथक् वर्ग ही बन जाता है। यह स्थिति देश के लिए बहुत घातक सिद्ध होती है।

स्वतन्त्रता पाने के पूर्व के अधिकांश राजनेता जननेता पहले थे और राजनेता बाद में। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का उदाहरण दिया जा चुका है। 'राष्ट्रपति भवन' में रहने वाली उनकी आत्मा उससे अलिप्त ही रही। राष्ट्रपति को मिलने वाले वेतन का एक चौथाई ही वे लेते रहे थे राष्ट्रपति काल में।

स्व. लाल बहादुर शास्त्री का जीवन तो राजनेताओं के लिए एक प्रशिक्षण-पुस्तिका-सा है। उनका जीवन जननेता की खरी कसौटी है। प्रधानमन्त्री बनने तक उनके पास अपना मकान नहीं था, न अपनी कार थी। प्रधानमन्त्री बन जाने पर भी वे प्रधानमन्त्री निवास में रहने नहीं गये क्योंकि उन्हें पता था कि हमारे देश का सामान्यजन आधे पेट भोजन करता है, अधनंगा रहता है, उसे सिर छिपाने को छप्पर मुश्किल से नसीब होता है। फिर उस देश का प्रधानमन्त्री उससे भिन्न ढंग के सुख सुविधापूर्ण जीवन को कैसे भोगे ?

'यह कहीं देखा है कि परिवार का नेता–कर्ता स्वयं तो अच्छा भोजन करे, मूल्यवान वस्त्र पहने, मोटरों में घूमें और उसके परिवार के सदस्यों को ढंग का भोजन, वस्त्र, आवास व अन्य जीवनावश्यक सुविधाएँ भी न मिलें। तो उसका कर्ता बनना कहाँ सिद्ध हुआ, वह परिवार का नेता कैसे मान लिया जाय ?' जिस राजनेता ने इस तथ्य को भुलाया नहीं वह सच्चा नेता बना रहा जन-जन उसके, प्रति श्रद्धावान, आस्थावान रहा।

क्या था गाँधीजी के पास जिसने उन्हें राष्ट्रपिता बना दिया। उनके पास उतना बड़ा हृदय था कि वे सारे भारत को अपना परिवार मानते थे। सामान्य भारतीय की तरह रहते थे। इंग्लैण्ड के सम्राट से मिलने के लिए भी वे अधनंगे फकीरी वेश में ही गये थे और उनके लिए सम्राट को ही अपनी राज मर्यादाएँ शिथिल करनी पड़ीं थीं पर गाँधीजी अपने जननेता के पद से नीचे नहीं उतरे। एम. एल. ए., एम. पी., मन्त्रीगण आदि भारतीय जनता के जिम्मेदार व्यक्ति हैं। परिवार के मुखिया का सा आचरण उनके लिये भी अपेक्षणीय है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे राजनीतिज्ञ तो माने जा सकते हैं लेकिन जन नेता नहीं।

जनतन्त्र की सफलता के लिए जनता की श्रद्धा का राजनेताओं से जुड़ना बहुत आवश्यक है। यदि वह नहीं जुड़ती तो जनता और नेता के बीच की कड़ी टूटती है। नेता के प्रति जनता के मन में श्रद्धा तभी उपजेगी जब वह उसमें अपने प्रति प्रेम प्रदर्शित होता देखेगी। प्रेम की यह अभिव्यक्ति जनता के दुःख-सुख को अपना समझकर उसमें सहभागी होने, उन्हीं का-सा जीवनयापन करने से ही होती है। यदि राजनेता ऐसा नहीं करते तो उसकी जनता पर जो प्रतिक्रिया होती है, राष्ट्र की प्रगति में जो गतिरोध उत्पन्न होता है, वह अनिष्टकारी होता है।

हमारे देश के वर्तमान राजनेताओं को जन नेताओं की कसौटी पर कसा जाय तो उनमें से अधिकांश का पीतल निकल जाता है। हमारे देश में सैकड़ों मंत्री, सांसद एवं विधायक हैं। उन्हें प्रत्यक्ष रूप से वेतन तो मिलता ही है साथ ही मुफ्त कार, मुफ्त आवास, मुफ्त के नौकर, मुफ्त की यात्रा और मुफ्त की चिकित्सा सुविधाएँ भी मिलती है, यह रकम लाखों रुपये होती है। स्वतन्त्र पार्टी के पूर्व एम. पी. श्री दाण्डेकर ने पिछले दिनों मन्त्रियों के खर्च के जो आँकड़े प्रस्तुत किये थे यदि उन्हें सत्य मान लिया जाय तो एक केन्द्रीय मन्त्री की वार्षिक आय साढ़े चार लाख रुपये होती है, यानि ३७,००० रुपये प्रतिमाह जबकि हमारी प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय मात्र ५५२ रुपये है। मन्त्रियों की यह आय जनता की आय से आठ सौ अड़तालीस गुना है। इस अनुपात में उनके प्रति जन श्रद्धा का ह्रास भी होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन्त्रियों के इन शाही खर्चों का विवरण देने के पीछे आलोचना, निन्दा करने का हमारा कोई अभिप्राय नहीं है। यहाँ तो मात्र स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयोजन है। काम के अनुपात में साधन-सुविधाएँ पाना ठीक तो है किन्तु यदि वे औचित्य से अधिक हों तो उससे राष्ट्रीय सम्पदा का अपव्यय ही नहीं होता और भी कई अनिष्ट होते हैं।

राष्ट्र भी एक बड़ा परिवार ही है। गरीब परिवार का मुखिया यदि अकेला जलेबियाँ खाए और दूसरे सदस्यों को नहीं दे तो उनके मन में मुखिया के प्रति असन्तोष तो उपजेगा ही साथ ही वे किसी भी प्रकार जलेबी खाने का प्रयास करेंगे चाहे इसके लिए उन्हें परिवार का अहित ही करना पड़े क्योंकि जब परिवार का मुखिया ही घर की कमजोर आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर अपना स्वार्थ साधता है तो वह ही क्यों रखें ? जिम्मेदार आदमी ही अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाता तो वह क्यों निभाये ? यही बात राष्ट्र पर भी लागू होती है। यथा राजा तथा प्रजा की उक्ति में सच्चाई का अंश बहुत है। अतः राज नेताओं का अनुकरण करे यह अस्वाभाविक नहीं है। ऐसी स्थिति में होता यह है कि व्यक्ति यह भी विचार करना नहीं चाहता कि उन्हें अतिरिक्त सुविधाएँ इसलिये दी जाती हैं कि उन्हें अधिक काम करना पड़ता है। सच पूछा जाय तो बड़ा बनने के लिए सुविधाओं का नहीं दायित्त्वों का ही अधिक ध्यान रखना पड़ता है। सारे परिवार की आन्तरिक व्यवस्था का भार उठाने वाली माँ से बच्चा यही आशा करता है कि वह स्वयं दूध नहीं पीकर मुझे पिलायेगी। ठीक वैसी ही आशा जनता नेता से जोड़े तो इसमें अस्वाभाविक ही क्या है। राजनीति कोई पेशा तो नहीं—सेवा है। पेशा बनाने पर तो देश की प्रगति-अगति से कोई सरोकार ही नहीं रहता। दुर्भाग्य से हमारे देश में कुछ ऐसा ही हो रहा है और यह चिन्ता का विषय है।

पैसे के साथ यदि उच्चादर्श, उच्च भावनाएँ नहीं जोड़ी जा सकें तो वह व्यक्तित्व को धूमिल और नैतिकता की सफेद चादर को काली भी कर सकता है। ये शाही खर्चे आरम्भ में सुविधा समझकर भी स्वीकारे गये हों। प्रायः आगे चलकर धन में अनावश्यक आसक्ति उपजा देते हैं और सुख-सुविधाओं से मोह भी और फिर व्यक्ति उच्चता की सीढ़ियों से लुढ़कने लगता है। विश्व के इतिहास में ऐसे राजनेताओं के सैकड़ों उदाहरण मिल जाते हैं, जिन्होंने सामान्य सुख-सुविधाएँ भोगते हुए तो देश और देशवासियों के लिए बहुत काम किये किन्तु सत्ता के हाथ में आने पर उन्होंने इस सचाई को नहीं समझा और वे अपने महान् उद्देश्यों और गरिमामय चरित्र से पतित हो गये। हमारे राजनेताओं को भी इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

दुनिया में जहाँ-जहाँ भी लोकतन्त्र का पतन हुआ और तानाशाही उत्पन्न हुई या सैनिक शासन स्थापित हुआ, उनके मूल में प्रायः लोक-नेताओं की लूट-खसोट व भ्रष्ट आचरण भी बहुत बड़ा कारण था। होता यह है कि जन सामान्य के आर्थिक स्तर को ध्यान में रखे बिना राजनेता आवश्यकता से अधिक साधन-सुविधाएँ भोगते हैं—अधिक वेतन पाते हैं। तो उस जीवन से उन्हें मोह हो जाता है। फिर वे पुनः उस पद को पाने के लिए औचित्य-अनौचित्य का विवेक छोड़ बैठते हैं। पाँच वर्ष बाद यह पद मिले न मिले तो फिर ये सुख-सुविधाएँ स्वप्न हो जायेगी अतः यदि नहीं भी चुने गये तो इन्हें भोगने के लिए धन, सम्पदा बटोर लें। ऐसी कमजोरी कई लोगों में उत्पन्न होती देखी जाती है। वे आचरणों से भ्रष्ट हो जाते हैं। अतः इस माया से पहले ही सावधान रहना चाहिए कि वह सिर पर न चढ़ बैठे।

जिस देश में अधिकांश नेताओं को यह बीमारी लग जाती है तो वहाँ सैनिक शासन या एक तन्त्र स्थापित हो जाता है। यूनान इसका स्पष्ट उदाहरण है। वहाँ सत्ता के भागीदारों के अतिरिक्त राजा ने भी अपनी रॉयलिस्ट पार्टी अलग बना ली थी। संसद सदस्यों ने अपने परिवार के लोगों को उच्च पद पर नियुक्त करा दिये थे। जनता के धन को नेताओं ने खूब निर्दयता से अपने लिये खर्च किया। परिणाम यह हुआ कि जनता की श्रद्धा समाप्त हो गयी। पैंतीस वर्ष में वहाँ चौंतीस सरकारें बदली और अन्त में सैनिक शासन स्थापित हो गया।

राजनेताओं के लिये सीधा मार्ग यही है कि वे चुने जाने पर भी अपने को सामान्य नागरिक की हैसियत से ही लें। जो नेता जनता में पूजे गये हैं और जिन्होंनें देश की अविस्मरणीय सेवा की है उन्होंने इसी पथ का अनुसरण किया है। यदि इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा गया तो स्वयं तो पतित होंगे ही देश का भी अनिष्ट करेंगे।

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जननेता चाहिए, राजनीति व्यवसायी नहीं। इस बात को जनता भी गाँठ बाँध कर रखे। हमारा दृष्टिकोण जो निरन्तर संकुचित होता जा रहा है वह बहुत घातक है। मत देने के साथ यही आग्रह जोड़ा जाय की देश के साथ हमारी भी प्रगति है। यह दुराग्रहण हो कि अमुक व्यक्ति सत्ता में आ गया तो हमारा लाभ हो जायेगा या अमुक दल का सदस्य जीत गया तो हमारे क्षेत्र का विकास हो जायेगा। इन सब संकीर्णताओं को छोड़े बिना लोकतन्त्र के सजग नागरिक की कसौटी पर हम खरे उतर नहीं सकते।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता नैतिक पुनरुत्थान की है। व्यक्ति की कसौटी का मानदण्ड हमें बदलना ही पड़ेगा। व्यक्ति को उसकी योग्यता, प्रतिभा और सम्पदा से नहीं उसके उच्च विचारों और सत्कर्मों से मापना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योग्यता, प्रतिभा आदि के साथ ही उनका सदुपयोग कराने के इन आवश्यक गुणों को भी देखना आवश्यक है। राजनेता को इसी कसौटी पर कसने के बाद समझ आने पर ही उसे बोट देना चाहिए। आज राजनीति जो व्यवसाय बनती जा रही है उसे नया मोड़ देना होगा। योग्य, अनुभवी, प्रतिभावान और भावनाशील लोगों की कमी नहीं है। कमी तो निस्प्रहजन नेताओं को ढूँढ़कर उनके हाथों में देश की बागडोर देने की है। राजनेता यदि जन नेता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो उन्हें गढ़कर जन नेता नहीं बनाया जा सकता, उनके स्थान पर जन नेताओं को प्रतिष्ठित ही किया जाना चाहिए।

जननेतृत्व विचारशीलों का पुनीत कर्त्तव्य

विचारशील मनुष्य का यह स्वभाव ही कहा जाना चाहिए कि वह बहुत दिनों तक एक-सी परिस्थितियों में आबद्ध नहीं रह पाता। उसका सक्रिय मस्तिष्क और क्रियाशील शरीर किसी नये परिवेश में पहुँचने के लिए लालायित रहता है। जबकि जन सामान्य को ऐसा कुछ नहीं लगता। वह जिस दीन-हीन परिस्थिति एवं मनःस्थिति में पड़ा हुआ है उसी में सन्तोष की साँस लेता रहता है। समाज पतन के गर्त में गिर रहा है या उन्नति के शिखर पर आरूढ़—यह सोचने-समझने का उसे अवकाश कहाँ ? वह तो अपने गोरख धन्धे में ही मस्त रहता है। परन्तु विचारशील इस विपन्न परिस्थिति में जीवित नहीं रह सकता। हर संभव प्रयास से वह वर्तमान दयनीय स्थिति को बदलना, परिवर्तित करना चाहता है। कई बार तो उसे इसका मूल्य अपने प्राण समर्पण द्वारा चुकाना पड़ता है, तो भी वह न्याय पथ से विचलित नहीं होता है। ऐसे ही मानव सामान्य मानव न होकर महामानव होते हैं और सामाज सुधारक की भूमिका सम्पादित करते तथा गौरवान्वित होते हैं।

विपन्न परिस्थिति के प्रति विद्वेष की भावना से समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने वाला ही समाज सुधारक नहीं बन जाता अपितु उसमें कुछ अन्यान्य गुणों की अनिवार्यता भी वांछित होती है, तब कहीं उसे अपने कार्य में सफलता प्राप्त होती है। वे गुण हैं—शिक्षित होना, प्रबुद्ध होना, बहुज्ञ होना, आत्मनिर्भर होना, वाक्कुशल होना, उदार होना, ओजस्वी होना और मानवमात्र के प्रति सहज स्नेह रखने वाला होना इत्यादि।

महामानव की भूमिका सम्पादित करने वाले के लिए शिक्षित होना अत्यावश्यक है। शिक्षित व्यक्ति ही अपनी सूक्ष्मदर्शिता के आधार पर प्रत्येक परिस्थिति का अध्ययन करके तदनुकूल निर्धारण एवं प्रेरणा दे सकता है। बुद्धिमत्ता-व्यक्ति की अन्यतम विशेषता हैं। द्विविधापूर्ण परिस्थिति में उपयुक्त का निर्धारण इसके बिना शक्य नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अलग-अलग समस्याएँ होती हैं और उसके सामाधान भी अलग-अलग होते हैं। इसे कोई बहुज्ञ-व्यक्ति ही कुशलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। परावलम्बी व्यक्ति दूसरों को भार-भूत बनाने के अतिरिक्त और क्या कर सकेगा ? यही समाज के पतन का सर्वाधिक उत्तरदायी घटक कहा जा सकता है। अतएव आत्म-निर्भरता की उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है। प्रभावशाली वक्ता दूसरों को अभीष्ट मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा दे सकता है। इस गुण से रहित व्यक्ति को समाज-सुधारक बनने का स्वप्न व्यर्थ में नहीं ही, देखना चाहिए। वाक् शक्ति का ही प्रभाव होता है, जब विशाल जनसमूह किसी महामानव के पीछे-पीछे चलने को उद्यत हो जाता है, उदारता तो मानव की सहज विशेषता होनी चाहिए। विश्व-बन्धुत्व का लक्ष्य लेकर चलने वाले समाज-सुधारक के लिए तो यह नितान्त आवश्यक होती है। अनुदार निष्ठुर व्यक्ति को जन-सम्मान, जनसहयोग प्राप्त हो, यह असम्भवित ही माना जायेगा। अन्याय-अत्याचार को स्वीकार न करने के परिणामस्वरूप समाज सुधारक का व्यक्तित्व समाज भित्ति पर उभरता है। ओजस्वी-तेजस्वी व्यक्ति के अतिरिक्त इस कार्य को कोई कर भी नहीं सकता है। मानव मात्र-प्राणि मात्र-के प्रति स्नेह-वात्सल्य रखने वाला ही दूसरों का हृदय जीत सकने में सफल हो सकता है। जन नेता बनना उसी के हिस्से में आता है, जो पहले अपने व्यवहार द्वारा लोकप्रियता अर्जित करता है और जनता के हृदय का सम्राट बनता है। मानव-मात्र के प्रति स्नेह-सौजन्य की दृष्टि रखे बिना यह कभी सम्भव नहीं हो पाता।

लोकमानस के प्रति शासन तन्त्र का उत्तरदायित्व

किसी जमाने में राजतन्त्र का प्रभाव प्रजा की सुरक्षा तक सीमित था। बाहर के आक्रमणकारियों से युद्ध और भीतर के चोर, डाकू, दुष्ट, दुराचारियों को दण्ड, प्रायः इतना ही कर्त्तव्य राजा लोग निबाहते थे। इन्हीं प्रयोजनों के लिए शस्त्र सज्जा, सेना जुटाये रहते थे। उस सुरक्षात्मक शासन व्यवस्था का व्यय भार प्रजाजन टैक्सों के रूप में अदा करते थे। जनमानस को सुव्यवस्थित और लोक प्रवृत्तियों को परिष्कृत करने का काम धर्म तन्त्र सँभालता था। शिक्षा, चिकित्सा, लोक मंगल के व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों का संचालन, सन्त मनीषियों द्वारा सम्पन्न होता था। उनका व्यय भार जनता श्रद्धासिक्त दान-दक्षिणा के रूप में पूरा करती थी। राजकोष में जो पैसा बच जाता था, वह उन्हीं धर्म पुरोहितों को दे दिया जाता था, वे समय और आवश्यकता के अनुरूप जिन कार्यों में उचित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझते थे, उस दान धन का उपयोग करते थे। उस पर कोई नियन्त्रण प्रतिबन्ध इसलिए नहीं था कि दान के श्रद्धासिक्त धन का श्रेष्ठतम उपयोग क्या किया जाय, किस तरह किया जाय, इसका सर्वोत्तम निर्णय वे धर्म पुरोहित स्वयम् ही कर सकने में समर्थ थे।

समय की गति ने धर्म तन्त्र को दुर्बल कर दिया और निकम्मा भी। राजतन्त्र की परिधि बढ़ती गई। अब शासन केवल सीमा सुरक्षा और अपराधियों को दण्ड देने तक सीमित नहीं रहा, उसका क्षेत्र बढ़ते-बढ़ते जीवन के हर क्षेत्र और समाज के हर कार्य के साथ जुड़ता चला आ रहा है। शिक्षा का पूरी तरह निर्धारण और प्रबन्ध सरकार करती है। चिकित्सा, परिवहन, यातायात, डाक-तार, बैंक, बीमा, व्यवसाय, उत्पादन आदि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से सरकारी नियन्त्रण ही स्थापित है। करनीति सरकार के हाथ में चली जाने से अब किसी भी व्यवसाय का बढ़ना-घटना पूर्णतया सरकार की इच्छा पर निर्भर है। अन्न, वस्त्र तक के लिये हमें सरकारी इच्छा का अनुसरण करना पड़ता है। धीरे-धीरे यह नियन्त्रण अधिक व्यापक होता चला जा रहा है और व्यक्ति तथा समाज की सभी गति-विधियों पर शासन की नीति का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है। वह दिन दूर नहीं, जब समस्त सम्पत्ति और सुविधा-साधनों पर सरकारी नियन्त्रण ही दिखाई देगा और व्यक्ति को मात्र मशीन की तरह शासन की इच्छा पर गतिविधियाँ निर्धारित करनी पड़ेंगी। साम्यवाद ऐसी ही स्थिति का प्रतिपादन करता है। प्रजातन्त्र हो या कोई और शासन तन्त्र, अब सम्मान इसी ओर है।

ऐसी दशा में सरकार का अधिक परिष्कृत होना आवश्यक है। अन्यथा उसमें घुसी हुई विकृतियाँ सारी प्रजा की गतिविधियाँ विकृत कर देंगी। राजनीति से कोई सीधा सम्बन्ध रखे या न रखे पर उसे इतना ध्यान तो रखना ही होगा कि शासन का स्तर और स्वरूप भ्रष्ट न होने पावे। इससे कम सतर्कता रखे बिना आज का नागरिक कर्त्तव्य पूरा नहीं होता। इस सन्दर्भ में हमें वोट का अधिकार बहुत ही सावधानी से बरतना चाहिए और हर समीपवर्ती को इस राष्ट्रीय अमानत का श्रेष्ठतम उपयोग पूरी समझदारी और दूरदर्शिता के साथ करने के लिये सजग करना चाहिए। चुनाव के समय बरती गई उपेक्षा, अन्यमनस्कता जन समाज के भाग्य भविष्य के साथ खिलवाड़ ही कही जायेगी। हमें चरित्रवान्, आदर्शवादी, लोकसेवी और परिष्कृत दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों को ही वोट देना चाहिए। भ्रष्ट लोग चुनाव के समय जन साधारण को प्रलोभन, बहकावे एवं भ्रान्तियों में उलझाकर वोट ले जाते हैं और चुने जाने पर अपने स्वार्थों के लिये शासनं तन्त्र का दुरुपयोग करके ऐसी भ्रष्ट परम्परायें और रीति-नीतियाँ चला देते हैं, जिनका भारी दुष्परिणाम देश को भोगना पड़ता है।

शासन के बढ़ते हुए क्षेत्र एवं प्रभाव को रोका नहीं जा सकता। आवश्यकता प्रजाजनों को इतना प्रशिक्षित करने की है कि वे अपने वोट का मूल्य समझ सकें और बिना किसी प्रलोभन बहकावे के उसका राष्ट्र हित में सर्वोत्तम उपयोग कर सकें। जहाँ यह सतर्कता न बरती जा सकी, वहाँ प्रजातन्त्र अभिशाप ही बनकर रह जायेंगे। भ्रष्ट और धूर्तों के हाथ शासन सौंप देने पर अगणित दुष्प्रवृत्तियाँ पनपेंगी और प्रजा को अनेक जाल-जंजालों में फँसकर तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ेंगे। अस्तु जिन्हें राजनीति से सीधा सम्बन्ध न हो उन्हें भी वोट और उसके सदुपयोग के सम्बन्ध में तो अधिकतम जागरूक रहना ही चाहिए।

शासन के द्वारा प्रजा की भौतिक समस्याओं का समाधान कैसे किया जाय ? इस पर विचार करना राजनीति वेत्ताओं के लिए छोड़ देते हैं। लोकमानस के स्तर को अत्यधिक महत्त्व देने वाले और उसे ही समस्त परिस्थितियों का जनक मानने वाले हमारे जैसे लोगों की अधिक दिलचस्पी इस बात में है कि शासन के हाथ में चले गये जनमानस को प्रभावित करने वाले साधनों का दुरुपयोग न होने पावे। वस्तुतः यह विषय धर्म तन्त्र का था। जन स्तर पर मनीषियों, तत्त्वदर्शियों और लोकसेवियों द्वारा यह क्षेत्र सँभाला जाना चाहिए था। पर दुर्भाग्य का अन्त नहीं—धर्म पुरोहित जब स्वयं राजनेताओं की तुलना में व्यक्तित्व की दृष्टि से पिछड़ गये तो किस मुँह से उनके हाथ में लोकमानस के निर्माण की बात सौंपी जाय, अभी भी उनके हाथ में बहुत कुछ है। करोड़ों व्यक्ति उनके आगे माथा टेकते और वचन सुनते हैं। इस श्रद्धा को वे चाहते तो इस स्थिति में ही सृजन की दिशा में नियोजित कर सकते थे—पर वहाँ भी पोल ही पोल है। ऐसी दशा में यह माँग तो नहीं की जा सकती कि वर्तमान धर्म पुरोहितों को धर्म तन्त्र से सम्बन्ध रखने वाले सन्दर्भ सौंप दिये जायें, पर इतना अवश्य है कि हमें मनीषियों का एक मंच बनाना अवश्य पड़ेगा, जो लोकमानस को प्रभावित करने वाले तथ्यों को सरकार द्वारा दुरुपयोग होने से बचाये और स्वयं संगठित रूप से—जन स्तर पर उन भाव प्रवृत्तियों को सँभाले जो समस्त प्रकार की परिस्थितियों के लिए मूलतः उत्तरदायी हैं।

शिक्षा का इस दृष्टि से पहला स्थान है। शिक्षा प्रणाली निस्सन्देह लोकमानस को बहुत हद तक प्रभावित करती है। प्रगतिशील राष्ट्रों ने अपनी प्रजा की मनोदशा अभीष्ट दिशा में ढालने के लिये शिक्षा पद्धति को बदला और ऐसा साँचा खड़ा किया जिसमें पीढ़ियाँ ढलती चली गईं। जर्मनी, रूस, चीन, जापान आदि देशों ने अपनी प्रजा को एक खास दिशा में ढाला है, इसके लिये उन सरकारों ने सबसे अधिक ध्यान अपनी शिक्षा प्रणाली पर केन्द्रित किया है। पाठ्यक्रमों के साथ-साथ विष या अमृत घोला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकता है और उसके प्रभाव से लोक रुचि में अभीष्ट परिवर्तन उत्पन्न किया जा सकता है। विद्यालयों का वातावरण क्रम व्यवहार, आचार सभी कुछ अभीष्ट स्तर के ढल सकते हैं और अगले दिनों राष्ट्र का उत्तरदायित्व सँभालने वाले छात्रों को जैसा चाहिए वैसा बनाया जा सकता है।

यह मानना होगा कि अपनी सरकार इस दिशा में उतनी सजग नहीं जितनी उसे होना चाहिए। यदि दूरदर्शिता-पूर्वक इस क्षेत्र को सँभाला गया होता तो आज शिक्षितों की बेकारी और उच्छृंखलता से उत्पन्न जो विभीषिका चारों ओर दीख पड़ रही है, उसकी कोई आवश्यकता न होती। तब ध्वंस में लगे हुए व्यक्तित्व—सृजन में संलग्न होकर परिस्थितियों में सुख-शान्ति के तन्त्र बढ़ा रहे होते। हमें सरकार पर शिक्षा प्रणाली बदलने और सुधारने के लिये दबाव डालना चाहिए क्योंकि उसका सीधा प्रभाव जन मानस के स्तर पर पड़ता है। समूची राजनीति में किसी की पहुँच या दिलचस्पी न भी हो तो भी विचारणा को प्रभावित करने वाले तथ्यों की उत्कृष्टता, न बिगड़ने देने वाली बात को तो ध्यान में रखना ही चाहिए।

हमारे प्रयत्न सरकार को यह बताने और दबाने के लिए अधिक तीव्र होने चाहिए कि वह इस देश की परिस्थितियों का हल कर सकने वाली शिक्षा पद्धति प्रस्तुत करे। यह कैसे किया जाय, उसके लिए हम जन स्तर पर कुछ नमूने पेश करके अधिक प्रभावशाली ढंग से अपना सुझाव पेश कर सकते हैं। मथुरा का युग-निर्माण विद्यालय इसी का एक नमूना है, उसमें (१) औसत जीवन में काम आने वाली भाषा, गणित, भूगोल, स्वास्थ्य, समाज, कानून आदि की कामचलाऊ सामान्य जानकारी, (२) व्यक्ति और समाज की वर्तमान समस्याओं के कारण और समाधान प्रस्तुत करने वाली विचारणा, (३) शिल्प, गृह उद्योग, मरम्मत, कृषि, पशुपालन, सहकारिता, मितव्ययता जैसे अर्थ साधनों की शिक्षा। इन तीनों विषयों का संमिश्रित स्वरूप एक पाठ्यक्रम के रूप में विकसित किया गया है। इसमें उन तत्त्वों का समावेश है जो भारतीय शिक्षा पद्धति का नया ढाँचा खड़ा करने में मार्गदर्शक हो सकते हैं। छात्रावासों में रखकर एक विशेष वातावरण में शिक्षार्थियों को किस प्रकार ढाला जा सकता है, उसका अभिनय प्रयोग कोई भी शिक्षा प्रेमी मथुरा आकर देख सकता है और यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अपने देश के लिए शिक्षा प्रणाली का विकास किस आधार पर कर सकना फलप्रद हो सकता है ?

सामाजिक प्रयत्नों के रूप में अध्यापक वर्ग कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर शिक्षण के साथ-साथ इस बात का प्रयत्न कर सकता है कि श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण कैसे हो और छात्रों में सत्प्रवृत्तियाँ कैसे पनपें ? स्कूलों में जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति के लिए जनस्तर पर पूरक पाठशालायें खोली जा सकती हैं। इन दिनों अपना प्रयत्न यही चल रहा है। पुरुषों के लिये रात्रि पाठशालायें और महिलाओं को अपरान्हशालायें चलाने के लिये अपना जो आन्दोलन चला है, उसमें इस बात की सम्भावना विद्यमान है कि प्रस्तुत शिक्षा प्रणाली में रहने वाली कमी को इन पूरक पाठशालाओं द्वारा सम्पन्न किया जा सके। निरक्षरता निवारण के लिये प्रौढ़ शिक्षा के प्रयत्न इस योजना में जुड़े रहने से उसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। ऐसे जनस्तर पर प्रयत्न खड़े करके अभाव की आंशिक पूर्ति भी की जा सकती है और प्रयोग की महत्ता प्रत्यक्ष अनुभव कराके शासन को इस बात के लिए मनाया-दबाया भी जा सकता है कि वह सुधार की दिशा में किस तरह सोचे और किस तरह बदले ?

स्कूली शिक्षा के साथ विद्या का वह सारा क्षेत्र भी महत्त्वपूर्ण समझा जाना चाहिए जो लोकमानस को प्रभावित कर सकने में समर्थ है। साहित्य भी एक प्रकार का प्रशिक्षण ही है जिसके आधार पर लोकमानस का स्तर गिराया या उठाया जा सकता है। इस क्षेत्र में भी अपना दुर्भाग्य पीछा नहीं छोड़ रहा है, लेखक जो लिख रहा है प्रकाशक जो छाप रहा है, बुकसेलर जो बेच रहा है, उसे ध्यानपूर्वक देखा, परखा जाय तो पता चलेगा कि इसमें से अधिकांश साहित्य लोकमानस को विकृत करने वाला ही भरा पड़ा है। कामुकता भड़काने में साहित्य ने अति कर दी है। उपन्यास, कथा, कहानी, कविता, विवेचना आदि में ऐसे ही सन्दर्भ भरे रहते हैं, जिनसे व्यक्ति की कामुक पशुता भड़के और उसके मस्तिष्क में यौन आकांक्षाओं के सपने भरे रहें। पत्र-पत्रिकाओं के मुख पृष्ठों पर जैसे चित्र छपते हैं और भीतर जो विषय रहते हैं, उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि उन्हें लोक मंगल के लिये निकाला जा रहा हो। इस प्रयत्न का परिणाम नारी के प्रति अपवित्र दृष्टि, व्यभिचार, दाम्पत्य-जीवन की अव्यवस्था आदि विभीषिकाओं के रूप में सामने आ रही है। व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से दिन-दिन पतित होता चला जा रहा है। कामुकता भड़काने वाले साहित्य के बाद जासूसी, तिलस्मी, जादूगरी, भूत-पलीत तथा अन्य प्रकार के भ्रम जंजाल फैलाने वाली, दुष्प्रवृत्तियों को जन्म देने वाली पुस्तकों से बाजार पटा पड़ा मिलेगा।

जो चीज तैयार की जायेगी आखिर वह खपेगी ही और अनन्तः उसका प्रभाव पड़ेगा ही। साहित्य क्षेत्र में जो विष बीज बोये जा रहे हैं, उनका प्रभाव बौद्धिक भ्रष्टता के रूप में निरन्तर सामने आता चला जा रहा है। सरकार का कर्त्तव्य है कि इसे रोके। प्रजातन्त्रीय नागरिक अधिकारों का मतलब यह नहीं है कि समाज का सर्वनाश करने की खुली छूट लोगों को मिल जाय। श्रेष्ठ साहित्य सृजा जाय, उसके लिये सरकारी और गैर-सरकारी सहयोग प्रोत्साहन मिलना चाहिए। पर जिस साहित्य से मानवीय दुष्प्रवृत्तियाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भड़कने की आशंका है, उस पर नियन्त्रण भी रहना चाहिए। कानून से यह विनाश रोका जा सकता है। ऐसे साहित्य के लिये कागज मिलने पर रोक लग जाय या दूसरे प्रतिबन्ध लग जायें तो घृणित साहित्य के सृजन में जो बुद्धि, सम्पत्ति और मेहनत लगती है, उसे बचाकर उपयुक्त दिशा में प्रयुक्त किया जा सकता है।

शिक्षा और साहित्य के बाद लोकमानस को प्रभावित करने वला माध्यम 'कला' है। संगीत, गायन, अभिनय, नृत्य, नाटक, प्रहसन आदि केवल मनोरंजन ही नहीं करते वरन् उनके माध्यम से कोमल भावनाओं को स्पर्श करने और उभारने का काम भी बड़ी खूबी के साथ होता है। सिनेमा का क्षेत्र इन दिनों बहुत व्यापक हो गया है। अब लोक रञ्जन की प्रक्रिया सिनेमा के इर्द-गिर्द जमा होती चली जा रही है। लाखों लोग उसे रुचिपूर्वक देखते हैं। प्रगतिशील देशों ने सिनेमा की रचनात्मक प्रवृत्तियों को विकसित करने के लिये दिशा दी। सरकारों ने उस तरह के नियन्त्रण लगाये और निर्देश दिये कि फिल्म जनमानस को ऊँचा उठाने वाले बनें। देशभक्त, कलाकारों ने अपने नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझा और निबाहा। फलस्वरूप वहाँ का सिनेमा वरदान सिद्ध हुआ। लोकरञ्जन के साथ लोकमंगल जुड़ा रहने से उसका परिणाम शुभ ही हुआ। लोगों को विनोद भी मिला और विकास के लिये प्रकाश भी।

अपने यहाँ इस क्षेत्र में भी अन्धकार ही है। फिल्म उद्योग को भी कामुकता भड़काने की एक सस्ती दिशा मिल गई है। लोगों की पशुता को भड़काकर आसानी से धन और ख्याति मिल सकती है, उस मान्यता ने कलाकार को सृजन का देवता बनने से रोक दिया और वह किसी भी उचित-अनुचित तरीके से लाभ कमाने के लिये मुड़ गया। इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए। इससे भी अधिक कष्टकारक है, सरकार की उदासीनता। जब अन्य अपराधों को रोकने के लिये कानून बन सकते हैं और अपराधियों को दण्ड देने के विधान बन सकते हैं तो कला के माध्यम से लोकमानस को विकृत करने वाले कुरुचिपूर्ण दुष्प्रयत्नों को क्यों नहीं रोका जाना चाहिए, सरकार चाहे तो इस स्तर के प्रयत्नों को रोकने के लिये सामान उपलब्ध न होने देने से लेकर सेन्सर की कठोरता ऐसे अनेक उपाय कर सकती है, जिनसे लोकमानस को विकृत करने वाली प्रवृत्तियाँ रुक सकें।

सभी शक्ति साधनों की तरह कला का भी अपना ऊँचा स्थान है। शस्त्र रखने के लाइसेन्स केवल संभ्रान्त नागरिकों को मिलते हैं, इसी प्रकार कला का प्रयोग करने की सुविधा भी केवल सही व्यक्तियों को सही प्रयोजन के लिये मिलने दी जाय। मनोरञ्जन के समस्त साधनों पर बारीकी से नजर रखी जाय कि वे विकृतियाँ उत्पन्न करने वाले विष बीज तो नहीं बो रहे हैं। नाटक, अभिनय, सरकस, नृत्य, संगीत एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों को खुली छूट नहीं मिलनी चाहिए। उनका शालीनता के लिये ही प्रयोग हो सके, ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करनी चाहिए और सरकार को इसके लिये विशेष रूप से विवश करना चाहिए, चित्र प्रकाशन भी उन्हीं कला उद्योगों के अन्तर्गत आता है। अर्धनग्न, वेश्याओं जैसी कुरुचिपूर्ण भाव भंगिमा भरी तस्वीरों की जो बाढ़ आ रही है, उसके साथ जुड़े हुए दुष्प्रभावों को समझा जाना चाहिए और उसके रोकने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। लाउडस्पीकरों के माध्यम से बजने वाले गन्दे रिकार्ड कोमल मस्तिष्क वालों को दिनभर अवांछनीय प्रेरणा देते रहते हैं। रेडियो पर भी ऐसे ही अनुपयुक्त गीत अक्सर आते रहते हैं। सरकार चाहे तो इस प्रकार के कुरुचिपूर्ण प्रचार को एक इशारे में बदल सकती है। उसे इस बात का औचित्य समझना ही चाहिए।

इन दिनों राष्ट्रीयकरण की चर्चा जोरों पर है। बैंक, बीमा, भूमि, परिवहन आदि कई बातों का राष्ट्रीयकरण हो चुका है और कई के होने की तैयारी है। इस सन्दर्भ में सबसे अधिक आवश्यक राष्ट्रीयकरण उन साधनों का करने की जरूरत है, जो लोकमानस को प्रभावित करते हैं। साहित्य, सिनेमा, चित्र आदि के अधिकार उन लोगों के हाथ से छीन लिये जाने चाहिए जो उनको भ्रष्ट करने में लगे हुए हैं। इन शक्तियों को केवल उन व्यक्तियों के नियंत्रण में दिया जाये जो उन्हें केवल लोकमंगल के लिये ही प्रयुक्त करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हों। प्रस्तावों द्वारा, प्रदर्शनों द्वारा, हस्ताक्षर आन्दोलनों द्वारा, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सरकार को यह बताया जाना चाहिए कि जनता लोकमानस को विकृत किये जाने वाले प्रयत्नों से क्षुब्ध है। चुनावों के समय हर उम्मीदवार से प्रतिज्ञा करानी चाहिए कि वह चुन जाने पर इस बौद्धिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिये शक्ति भर प्रयत्न करेगा।

अपराधों को रोकने के लिये अभी और कड़े कानूनों की जरूरत है। हम देखते हैं कि ८० प्रतिशत अपराधी कानूनी पकड़ से बच निकलने में सफल हो जाते हैं। पुलिस, अदालत, कानून और दण्ड की सारी प्रक्रिया ऐसी हो, जो अपराधी को कानूनी पकड़ से न बचने दे और उसे ऐसा पाठ पढ़ाये जो भविष्य में वैसा करने का साहस ही न कर सके। दूसरे लोग भी वैसा न करने के लिये आतंकित हों, हमारी न्याय व्यवस्था ऐसी कठोर होनी चाहिए। इस दिशा में मुलायमी बरतने, ढील छोड़ने या गुंजायश रखने से अपराधी तत्त्वों के हौंसले बढ़ते चले जायेंगे और सदाचरण की उपेक्षा बढ़ जायेगी। सरकार चाहे तो दुष्प्रवृत्तियों के प्रति अधिक कठोर रुख अपनाकर अपराधों का विस्तार रोक सकती है। सज्जनता को सम्मानित और पुरुस्कृत करके भी सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। राजसत्ता जितने अंशों में लोकमानस को स्पर्श और प्रभावित करती हो उतने अंशों में उसे सुधारात्मक रुख अपनाने के लिए अधिकाधिक प्रेरित, प्रभावित और विवश किया जाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्रीय उन्नति का प्रधान स्तम्भ—नागरिकता

संगठित समाज में रहने वाले हर एक व्यक्ति के लिए जिम्मेदार रहना, अर्थात् हर काम में अपनी जिम्मेदारी अनुभव कर इस प्रकार से आचरण करना जिससे किसी को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से धोखा न हो, अत्यावश्यक है। बिना जिम्मेदारी के साथ प्रत्येक व्यक्ति का आचरण हुए कोई भी संगठित समाज कायम नहीं रह सकता। जिस प्रकार एक पेंच के ढीला पड़ जाने से सारी मशीन का कार्य रुक जाने का भय उपस्थित हो जाता है, उसी प्रकार कोई एक गैर जिम्मेदार आदमी सारे समाज में तहलका मचा सकता है। यदि हर आदमी को हर दूसरे की तरफ से यह विश्वास रहे कि वह अपने काम को ठीक तौर से करता रहेगा, तो समाज में कोई गड़बड़ी पैदा नहीं हो सकती। तभी समाज भी सुचारु रूप से चल सकता है। पर जब गैर जिम्मेदारी का भाव उत्पन्न हो जाता है, जब एक दूसरे की तरफ से विश्वास उठ जाता है, तब समाज का ढाँचा टूटने लगता है। ऐसी अवस्था में यदि हमें संगठित समाज में रहना मंजूर है, तो हमें जिम्मेदार बनना पड़ेगा—अपनी जिम्मेदारी को हर क्षण अनुभव करते रहना पड़ेगा और उसके अनुरूप आचरण करना पड़ेगा।

बात हमें छोटी-सी मालूम पड़ती है और छोटी है भी, पर अन्य बहुत-सी छोटी-छोटी बातों की तरह इसका भी पालन कठिन है और अधिकतर लोग चूकते ही रहते हैं। जिम्मेदारी शब्द की विवेचना करने से दो-तीन बातें स्पष्ट होती हैं जो पुरुष जिम्मेदार कहा जा सकता है, अर्थात् जो जिम्मेदारी के भाव से पूर्ण समझा जा सकता है, वह ऐसा पुरुष है जो अपना काम अच्छी तरह से जानता है। हर आदमी को इस संसार में कोई न कोई काम, समाज का उपयुक्त अंग बने रहने के लिए, उठाना ही पड़ता है। जब तक कोई व्यक्ति अपना काम अच्छी तरह न जानेगा, तब तक वह जिममेदारी नहीं उठा सकता। हर व्यक्ति को अपने कार्य विशेष की तफसील अच्छी तरह जाननी चाहिए। तब वह उस कार्य के सम्बन्ध में जिम्मेदारी ले सकता है, अर्थात् वह समाज को यह विश्वास दिला सकता है कि यदि यह काम मेरे सुपुर्द किया जाय तो मैं इसे अच्छी तरह कर दूँगा। अब किसी को अपने काम का ज्ञान नहीं हो तब वह उसे कर ही कैसे सकता है ?

जिम्मेदार आदमी के लिए दूसरी बात यह है कि जो कुछ वादा, छोटा या बड़ा, वह करता है, उसे वह पूरा करता है, अर्थात् समाज को वह विश्वास दिलाता है कि मेरे ऊपर पूरा भरोसा किया जा सकता है। वह अपनी बात का सदा पालन करता है। अगर ऐसा विश्वास समाज के विभिन्न अंगों को एक-दूसरे के प्रति न रहे तो समाज विघटित हो जायगा। समाज के संगठन की दृढ़ता इसी पर निर्भर करती है कि उसके भिन्न-भिन्न अंग जितने ही अधिक विश्वसनीय होते हैं उतना ही वह समाज अधिक सुसंगठित और सुदृढ़ रहता है। जिम्मेदारी का यह भी एक अंग है कि जो आदमी जिम्मेदारी उठाकर उसे पूरा न करे वह किसी न किसी प्रकार के दण्ड का भागी हो। यदि जिम्मेदारी पूरी न करने से भी अपनी कोई हानि न हो अर्थात् किसी न किसी रूप से अपने को दण्ड न मिले, तो व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी भूल जाता है और एक प्रकार से समाज का द्रोही बन जाता है। जिम्मेदारी का गुण केवल तथाकथित बड़े लोगों के लिए ही आवश्यक नहीं है। वह तो सभी के लिए बहुत जरूरी है। यदि आज भारतीय समाज में इतनी अव्यवस्था दीख पड़ती है, तो इसका यही कारण है कि हम लोगों का आचरण ऐसा है कि कोई किसी पर विश्वास नहीं कर सकता। हम वायदे बहुत जल्द कर देते हैं, पर उन्हें जल्द ही भूल जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम एक-दूसरे के प्रति जान-बूझकर बेईमानी करना चाहते हैं या किसी को धोखा देना चाहते हैं। पर हम जिम्मेदारी की बारीकी को न समझकर उसे महत्त्व ही नहीं देते। इसका परिणाम बड़ा भीषण होता है। पर इसकी उपेक्षा कर हम अपने समाज का कुछ भी सुधार नहीं कर पा रहे हैं और जिस प्रकार के बन्धन में एक-दूसरो से बँधे रहना चाहिए वह ढीला होता जा रहा है।

हम प्रायः नित्य ही देखते हैं कि लोग जिम्मेदारी बहुत जल्द उठा लेते हैं। कितने ही लोग राह चलते-फिरते हैं। उनसे कुछ बात होती है। वह झट कह देते हैं कि अमुक चीज भेज दूँगा, या अमुक सूचना दे दूँगा, या अमुक काम कर दूँगा। ऐसे अवसर पर जिसे यह बात कही जाती है उसको यह विश्वास करने का अधिकार है कि कहने वाला अपनी बात पूरी करेगा। पर हम सबको ही यह अनुभव है कि वह तात्कालिक सन्तोष देने मात्र के लिए ऐसी बातें कहता है। सम्भवतः उसे पूरा करने की उसकी भावना नहीं होती। कम से कम वह पूरा तो करता ही नहीं। जब यह स्थिति साधारण-सी हो गई है तो सुनने वालों को भी कोई विश्वास नहीं रहता कि कहने वाला अपने वचन के अनुसार काम पूरा करेगा और यदि वह कर देता है तो वास्तव में हमें आश्चर्य होता है। तिस पर भी ऐसे पुरुष के लिए हमारे मन में कोई आदर का भाव नहीं पैदा होता और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने वाला आदमी साधारणतः 'सनकी' समझा जाता है। राह चलते ही बात को छोड़कर यदि हम पेशेवर लोगों का व्यवहार देखें तो स्थिति अधिक स्पष्ट हो जायगी। वकील, डाक्टर, शिक्षक, राजकर्मचारी, व्यापारी, मजदूर, धोबी, भंगी, दर्जी आदि कोई काम उठाकर जिम्मेदारी के साथ उसका पालन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न करें तो अवश्य आफत मच जाए जैसी कि हमारे समाज में मची ही रहती है क्योंकि पेशे वाले लोग भी अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं करते, अर्थात् वे अपना-अपना काम ठीक तौर से नहीं जानते और साथ ही यथा समय उसे उचित प्रकार से पूरा भी नहीं करते हम सब एक-दूसरे को दोष देते रहते हैं पर अपना दोष नहीं देखते और इस कारण अपना काम ठीक तौर से नहीं करते। इस प्रकार सारे समाज को हम खराब किये हुए हैं।

हमारी कुछ ऐसी मनोवृत्ति हो गई है कि हम जिम्मेदार होना कोई आवश्यक गुण नहीं मानते। जिसके कारण हम बहुत-सी बातें ऐसी बर्दास्त करते हैं, जो समाज के लिए घातक होती हैं और जिन्हें दूसरे देशों में कोई भी व्यक्ति बर्दास्त करने के लिए तैयार नहीं होगा। यही कारण है कि हमारे यहाँ जो जिम्मेदारी पूरी नहीं करता उसके लिए कोई दण्ड व्यवस्था नहीं है। जो अपना वादा पूरा नहीं करता उसके कारण उसकी कोई हानि हो तो वह अपनी चाल छोड़ देगा। पेशेवर आदमी कहने को तो कहता है कि मेरे ऊपर विश्वास करो, मेरी जिम्मेदारी पर काम छोड़ दो, पर ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो वास्तव में अपनी जिम्मेदारी ठीक तौर से समझकर पूरी करते हैं। जब जिम्मेदारी पूरी न करने से उन्हें सजा नहीं मिलती और सजा उलटे उसको मिल जाती है जो उनकी बात में आ जाता है, तो स्थिति वास्तव में भयानक होती है। शिक्षक पढ़ाने की जिम्मेदारी लेकर, डॉक्टर दवा देने की जिम्मेदारी लेकर, वकील मुकदमा लड़ने की जिम्मेदारी लेकर अगर उसे पूरा नहीं करता तो जैसी स्थिति है उसमें उसकी कोई हानि नहीं होती—विद्यार्थी, मुवक्किल अथवा मरीज ही मारा जाता है। शिक्षक, वकील और डॉ. अपना पुरस्कार पा ही जाते हैं, चाहे विद्यार्थी, मुवक्किल और मरीज का कुछ काम हो या न हो। सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में तो यह बात और भी जोरों से लागू होती है। दर्जी, धोबी, भंगी आदि की शिकायत तो सबको ही रहती है। इसको क्या दोहराया जाय ?

देश की उन्नति कुछ लोगों के बड़े, विद्वान और प्रसिद्ध होने से नहीं हो सकती। पहले समय में हमारे यहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास जैसे विद्वान हो गये, या बुद्ध, शंकर, महावीर, दयानन्द आदि जैसे धर्मप्रचारक हो गये; वर्तमान समय में भी तिलक, गाँधी, मालवीय जी, रवीन्द्रनाथ जैसे जगत् को चमत्कृत कर देने वाले नेता और विद्वान उत्पन्न हो गये, पर इतने से ही समस्त देश बड़ा नहीं हो सकता। जब तक देश के साधारण निवासी अपने कर्तव्य और अधिकारों को ठीक-ठीक समझकर उनका पालन नहीं करते तब तक वास्तविक उन्नति नहीं हो सकती। बहुत बड़ी-बड़ी बातों को छोड़ भी दें तो अभी हम यह देखते हैं कि अधिकांश लोग खाने-पीने, सोने-उठने, शौच-स्नान आदि कार्यों को भी समय पर नहीं करते। अनेक घरों में स्त्रियाँ खाना तैयार करके घंटों तक मर्दों की राह देखती रहती हैं, पर वे कभी ठीक समय पर खाने को नहीं आते। इसके फल से अन्य काम भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और सभी कार्यक्रम असमय में करने पड़ते हैं। इस प्रकार घरों के भीतर भी अविश्वास की सृष्टि होती है और व्यक्तिगत, परिवारगत जीवन भी नष्ट हो जाता है। जब कोई विदेशी इस देश के लोगों की आलोचना करता है तो वह प्रायः यही कहता है कि "भारतवासी बड़े आलसी हैं।" इसका अर्थ यह नहीं कि यहाँ के लोग परिश्रमी नहीं है, वरन् समय-समय पर अमरीका आदि देशों में यहाँ के लोगों को परिश्रम के लिये विशेष रूप से पसन्द किया गया है। तो भी निजी कार्यों में वे समय के पाबन्द नहीं होते और दूसरों की सुविधा असुविधा का ध्यान न रखकर मनमौजीपन से कार्य करते हैं इसमें सन्देह नहीं। हमारे यहाँ महान् पुरुषों का बहुत अधिक आदर-सम्मान किया जाता है, यहाँ तक कि उनको देवता मानकर पूजा भी जाता है, पर जिन सद्गुणों के कारण वे इतने महान् हो सके उनका अनुकरण करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। पर यदि हम इन बड़े व्यक्तियों की जय-जयकार करने के बजाय उनके आदेशों पर ध्यान दें, उनका पालन करें तो हमारा वास्तविक कल्याण हो सकता है। यह कोई आवश्यक बात नहीं कि हम उनके समान राज्य, धर्म, समाज आदि के संचालन के बड़े-बड़े काम ही करें। वरन् हमको यह समझ लेना चाहिए कि कैसा भी छोटा बड़ा काम क्यों न हो, वह सभी देश के लिये महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय है। जरा विचार करके देखें कि धोबी, चमार, मेहतर आदि सबसे निम्न समझे जाने वाले लोग भी यदि अपना काम समय पर नहीं करते अथवा ठीक ढंग से नहीं करते तो समस्त समाज को कैसी परेशानी का सामना करना पड़ता है। इसलिये देश के वास्तविक उत्थान का मार्ग यही है कि लोग छोटे-बड़े का ख्याल छोड़कर अपने-अपने काम को समाज के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझकर पूर्ण मनोयोग से ठीक समय पर उचित रूप में पूरा करें। यदि ऐसा होने लगे तो बिना ज्यादा उपदेश और लैक्चरों के देश का सुधार हो सकता है और वह सब तरह से प्रगतिशील, शक्तिशाली बन सकता है। महान् पुरुष हमारा मार्गदर्शन ही कर सकते हैं, पर देश के लिये आवश्यक समस्त कार्यों की पूर्ति उनसे नहीं हो सकती। उसके लिये तो साधारण नागरिकों को ही अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ेगा।

नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला

परस्पर दुर्भाव की धारणाओं के कारण संघर्ष और विद्वेष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके फलस्वरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवांछनीय, अनैतिक और अशोभनीय घटनाएँ आये दिन घटित होती रहती हैं। आज सर्वत्र अधिकारों की माँग प्रबल हो रही है, दूसरों से अधिक सुविधाएँ प्राप्त हों यह अपेक्षा की जाती है, पर कर्त्तव्यों का किसी को ध्यान नहीं। कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हुए अधिकारों की माँग करने से कलह का जन्म होता है। शान्ति का तरीका यह है कि अधिकारों की अपेक्षा करते हुये कर्त्तव्यों का पूरी तरह पालन किया जाय।

नागरिक जीवन की सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हर व्यक्ति दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह पालन करें, अपनी नैतिक जिम्मेदारियों को तत्परता के साथ निबाहने के लिए कटिबद्ध रहे। सामाजिक सुख शान्ति और प्रगति का यही आधार है। जिस देश के नागरिक अपने कर्त्तव्यों का ठीक तरह पालन करते हैं वही सबल राष्ट्र कहलाता है, जिस समाज में चरित्रवान लोगों का बाहुल्य रहता है वही सभ्य कहा जाता है। किसी व्यक्ति या समूह की उत्कृष्टता केवल इसी आधार पर नापी जा सकती है कि उसमें कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति कितनी आस्था है ? झूँठे और लवार, चालाक और बेईमान, धूर्त और ढोंगी, आलसी और कायर लोग चाहे कितने ही साधन सम्पन्न क्यों न हों उनका तथा उनके समूह का स्तर सदा गिरा हुआ ही रहेगा। चिरस्थायी उन्नति, संतुष्टि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकना उनके लिए कदापि संभव न हो सकेगा।

एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करने से परस्पर स्नेह, संतोष, सद्भाव और प्रसन्नता की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रेम का उद्गम सज्जनता और सद्व्यवहार होता है। दुष्टता और दुर्बुद्धि की भावनाएँ मन में रहें तो किसी के प्रति सच्चा सद्व्यवहार बन ही न पड़ेगा। नीति और चतुरता के माध्यम से जो नकली, बनावटी एवं झूँठा शिष्टाचार बरता जाता है, वह देर तक किसी को भ्रम में नहीं रख सकता, उसकी कलई सहज ही खुल जाती है किन्तु जहाँ स्वाभाविक, सरल एवं सच्ची सद्भावनाएँ रहती हैं वहाँ प्रेम और विश्वास स्वयमेव उत्पन्न होता है। जब कुछ व्यक्तियों के बीच प्रेम और विश्वास का सम्बन्ध बन जाता है तो वे आपस में मित्र कहलाते हैं और सच्चे मित्रों द्वारा एक दूसरे के प्रति बरते जानें वाले सद्व्यवहार से जितना अधिक सुख मिलता है, उसकी तुलना संसार के और किसी सुख से नहीं की जा सकती।

पति-पत्नी के बीच स्थिर रहने वाला प्रेम और विश्वास जीवन की सबसे बड़ी शक्ति सिद्ध होती है। जिनके जोड़े बिछुड़ गये हैं, वे जानते हैं कि यह आघात कितना असह्य रहा। जीवन सहचर के न रहने पर जिन्दगी के दिन कितनी नीरसता और कठिनाई के साथ भार रूप कटते हैं, इसे कोई भुक्त-भोगी ही जानते हैं। यदि उनका वह खोया हुआ साथी सारी धन सम्पदा, सुख सुविधा देकर भी वापस प्राप्त हो सकता तो निश्चय असंख्य मनुष्य सर्वस्व देकर भी खोये साथी को प्राप्त करने को तैयार होते। परस्पर प्रेम और विश्वास से उत्पन्न होने वाला सन्तोष, उल्लास और सुख इतना बड़ा है कि उसके लिये मनुष्य सर्वस्व निछावर कर सकता है। पति-पत्नी के वियोग में जीवन तक खो बैठना, सती हो जाना, मित्र का मित्र के लिए प्राणों की बाजी लगा देना यही प्रमाणित करता है कि सद्भावनाओं से प्राप्त सुख को किसी भी मूल्य पर छोड़ सकना कठिन होता है। परिवार, रिश्तेदारी और मित्रता के सम्बन्धों में बँधे हुए लोग एक-दूसरे के लिये इस गये, गुजरे जमाने में भी बहुत कुछ करते रहते हैं।

कुटुम्ब, रिश्तेदारी, मैत्री, विवाह अपने आप में कोई गुण-दोष नहीं रखते। निकट समीपता एवं सद्भावना से उत्पन्न प्रेम ही आत्मीयता का कारण बनता है। अनेकों कुटुम्ब ऐसे हैं जहाँ पिता-पुत्र में, भाई-भाई में जानी दुश्मनी देखी जाती है। पति-पत्नी के बीच भी कई बार इतना बढ़-चढ़ा मनोमालिन्य देखा जाता है कि एक दूसरे के साथ रहने में दुःख ही अनुभव नहीं करते वरन् कई बार तो एक-दूसरे की जान के गाहक तक बन जाते हैं। रिश्तेदारों में भी कितनी ही जगह लोकाचार जितना ही दिखावटी व्यवहार पाया जाता है। मित्रों में भी अधिकांश मतलब के होते हैं। काम निकलते ही आँखें फेर लेते हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि आन्तरिक सद्भावना के अभाव में जो पारस्परिक सम्बन्ध, मैत्री, कुटुम्ब, विवाह, रिश्तेदारी आदि के माध्यम बनते हैं वे भी अवास्तविक सिद्ध होते हैं। उसके विपरीत इन बन्धनों में न बँधे हुए लोग भी केवल मानवता और सज्जनता के नाम पर एक-दूसरे के प्रति बहुत कुछ कर गुजरते हैं और इतना गहरा सद्व्यवहार रखते हैं कि उसकी तुलना में रिश्तेदारी आदि का सम्बन्ध बिल्कुल तुच्छ सिद्ध होता है।

पारस्परिक सच्चे प्रेम से उत्पन्न होने वाला सुख निस्संदेह इस संसार का सबसे बड़ा वरदान है। वह जिसे भी प्राप्त होता है, उसे निश्चय ही बड़भागी माना जायगा। यह सौभाग्य प्राप्त कर सकना या उससे वंचित रहना किसी भी मनुष्य के लिए उसके अपने हाथ की बात है। अपने भीतर यदि दूसरों के साथ आत्मीयता और ममतापूर्ण सद्व्यवहार करने की प्रवृत्ति समुचित मात्रा में जागृत हो तो उसके फलस्वरूप जो भी व्यक्ति सम्पर्क में आवेगा मिठास और सन्तोष अनुभव करेगा। उसके अभाव में बनावटी शिष्टाचार आसानी से ताड़ लिया जा सकता है। उसका प्रभाव उतना ही सीमित होता है जितना कि उथले मन से किया गया था।

जो प्रेम सद्भाव दाम्पत्ति जीवन में, सन्तान के साथ, रिश्तेदारी या मैत्री में बरता जाता है उसे ही थोड़ा और विकसित करके अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ व्यवहार में लाया जाय तो वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श पूरा करते हुये हम सच्चे अर्थों में 'उदार चरित' कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे। जो सुख, साहस और विश्वास एक मित्र से दूसरे मित्र को या एक सम्बन्धी से दूसरे सम्बन्धी को प्राप्त होता है, वही सम्बन्ध यदि विकसित होकर सारे समाज में व्यापक बन सके तो एक मनुष्य के सम्पर्क से दूसरा मनुष्य साधारण प्रसन्नता और प्रफुल्लता अनुभव करेगा। एकता और आत्मीयता के स्नेह सम्बन्ध जब लोगों की मनोभूमि में व्यापक रूप धारण कर रहे होंगे तो इसका प्रतिफल इस धरती पर साकार स्वर्ग के प्रत्यक्ष दर्शन के रूप में ही परिलक्षित हो सकता है। इससे सारी दुनियाँ सुख-शान्ति से ओत-प्रोत बन सकती है।

कानून, शासन, समाज व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि मनुष्य परस्पर टकराने की स्थिति से बचे और स्नेह-सद्भाव की परिस्थितियाँ बढ़ावें। संस्थाओं और संगठनों का निर्माण इसी दृष्टि से होता है। सभा-सम्मेलनों, प्रीतिभोज गोष्ठी आदि का आयोजन यही सोच कर होता है कि एकत्रित लोगों के बीच सहयोग एवं निकटता के भाव उत्पन्न हों। सांस्कृतिक कार्यक्रम, क्लब, सहभोज, पार्टियों, सहभोजों आदि जाने क्या-क्या कार्यक्रम परस्पर प्रेम भाव पैदा करने के लिये सोचे और किये जाते हैं। नागरिकता और शिष्टाचार का शास्त्र ही इस भावना को लेकर विकसित हुआ है कि मनुष्य एक-दूसरे के लिए हानिकारक क्षोभ उत्पन्न करने वाले सिद्ध न हों वरन् परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता एवं सज्जनता का व्यवहार करते हुए उपयोगी और सहायक बनकर रहें। यह प्रयत्न जब जितने अंशों में सफल होते हैं, तब उनका प्रभाव समाज की उन्नति एवं व्यक्तिगत विकास के रूप में तुरन्त दिखाई देने लगता है।

आम शिकायत यह सुनी जाती है कि लोग अपने नागरिक कर्त्तव्यों पर ध्यान नहीं देते, व्यक्ति का समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है और उसे किस प्रकार निवाहा जाना चाहिए यह नहीं सोचते। सड़कों पर बायीं ओर न चलने, गलियों में घर का कूड़ा फेंक देने, बच्चे को नालियों पर टट्टी कराने, रास्ते में केले, नारंगी, आलू के छिलके फेंक देने, धर्मशाला, मुसाफिर खाना आदि सार्वजनिक स्थानों में जहाँ-तहाँ गंदगी फैला देने, रेलों में अनुचित परिमाण में स्थान घेरकर बैठने, वचन के अनुसार नियत समय पर उपस्थित न रहने, वस्तुएँ लौटाने का वायदा पूरा न करने, अशिष्टता बरतने आदि बातें इस बात की प्रतीक मानी जाती हैं कि नागरिक सभ्यता की मर्यादाओं को तोड़ा जा रहा है। उठने, बैठने, बोलने, खाने, नहाने, कपड़ा पहनने, कुल्ला करने आदि में लोग उच्छृंखलता बरतते हैं। असभ्य आचरण करने में गर्व अनुभव करते हैं। इन बुराइयों को दूर करने के लिए नागरिक शिक्षा और शिष्टाचार का प्रचलन होना आवश्यक अनुभव किया जाने लगा है।

सामाजिक मर्यादाओं का पालन करना मनुष्यत्त्व का और उच्छृंखलता बरतना पशुता का चिन्ह माना गया है। इसलिए यह उचित ही है कि मानवीय उत्तरदायित्वों की रक्षा करने के लिए दूसरों का ध्यान रखते हुए अपने आचरण को ऐसा रखा जाय जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में असुविधाजनक न हो। शिष्टाचार सिखाने की कई पुस्तकें भी मिलती हैं और अच्छे लोगों के आचरणों को देखकर एवं उनके प्रवचनों को सुनकर भी इसे सीखा जा सकता है। इस प्रकार सद्व्यवहार को एक अच्छी आदत के रूप में एक सीमा तक अपनाया जाना सरल हो सकता है। पर वास्तविक नागरिकता एवं नैतिकता आध्यात्मिक आदर्शों पर ही अवलम्बित रहती है। मनोभूमि में यदि दूसरों के प्रति सच्चा आदर, सच्चा स्नेह, सच्चा सौजन्य न हो तो ठगों, धूर्तों और चापलूसों जैसी बनावट कुछ अधिक काम की सिद्ध न हो सकेगी।

चतुरता एवं कला के रूप में वेश्याओं से लेकर ठगों तक और चाटुकारों से लेकर धूर्तों तक सभी इस सम्बन्ध में निष्णान्त होते हैं। दूसरों पर अपनी सज्जनता और मधुरता प्रकट करके उन्हें कैसे उल्लू बनाया जा सकता और अपना मतलब कैसे गाँठा जा सकता है ? इस विद्या को लोग अब सुविकसित कला का रूप देते जा रहे हैं। विदेशों में तो इस सम्बन्ध की ढेरों पुस्तकें भी छप रही हैं जो उसी मनोवृत्ति के लोगों में लाखों की संख्या में हाथों हाथ बिक भी जाती हैं। जेबकटी, उठाईगीरी की तरह यह मधुरता की चतुरता भी अब समझदार लोगों में तेजी से फैल रही है। लाठी मारकर छीन लेने या गाली घूँसा से डराकर काम निकालने की विधि अब बदनाम गुण्डे, बदमाशों के हिस्से में रह गई है।

नागरिकता का अर्थ बगुलाभक्ति का बाह्य आवरण ओढ़ लेना नहीं, वरन् हर किसी को अपनी आत्मा के समान प्रिय समझकर उनकी कठिनाइयों को अपने कष्टों के समान और उनकी सुविधाओं को अपने सुखों के समान 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का आचरण करना है। हम जिस प्रकार के व्यवहार की आशा दूसरों से करते हैं वैसा ही आचरण औरों के साथ करना चाहिए। हर बात में यही सोचना चाहिए कि यदि हम दूसरे की स्थिति में होते और दूसरा हमारी स्थिति में होता तो हम उससे क्या आशा करते और उस आशा के पूरा न होने पर कितने खिन्न होते। इस कसौटी पर हमें अपने प्रत्येक व्यवहार को परखना चाहिए और जो आचरण अनुपयुक्त लगे उसे छोड़ देना चाहिए।

सभ्यता का अर्थ है—सज्जनता। प्रेम और आत्मीयता की दृष्टि जितनी उद्दात्त होगी उतनी ही सज्जनता व्यवहार में आ सकेगी। स्वार्थी, कंजूस, लोभी और निष्ठुर हृदय व्यक्ति का कला की तरह दूसरों को प्रभावित करने के लिए शिष्टाचार वरत लेना आसान है, पर जिस सज्जनता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के कारण व्यक्ति कुछ घाटे में रहता है, थोड़ा कष्ट भी उठाता है, वह उन्हीं के लिए संभव है जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टिकोण रखकर, परमार्थ, सेवा एवं उदारता को एक सर्वश्रेष्ठ मानवीय कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया हुआ है तथा लोकहित को ध्यान में रखकर जो अपनी सुख-सुविधाओं में कमी कर सकता है। दूसरों के प्रति उदार और अपने प्रति कठोर बने बिना सज्जनता का आचरण बन पड़ना संभव नहीं है। जिसके लिए अपनी सुख-सुविधाएँ ही सर्वोपरि हैं वह क्यों किसी की कठिनाई या सुविधा का विचार करेगा ? स्वार्थ को घटाकर ही परमार्थ की बात बनती है। नागरिक सभ्यता का वास्तविक आधार यही है कि मनुष्य अपनेपन का दायरा बढ़ाकर—मानव मात्र तक-प्राणि मात्र तक व्यापक बना दे। सब के सुख में अपना सुख समझकर प्रसन्नता का और दूसरों के दुःख में दुःखी होकर जो करुणा का अनुभव कर सकता है वस्तुतः वही मनुष्यता का उत्तरदायित्व अनुभव कर सकेगा और उसी के द्वारा सज्जनता एवं नागरिकता का शिष्टाचार एवं भलमनसाहत का सच्चा व्यवहार बन पड़ना संभव हो सकेगा।

मानव जाति में चल रहे समस्त संघर्षों, क्लेशों, कलहों, द्वेष, दुर्भावों का कारण एक ही है—संकीर्ण स्वार्थपरता, अपराध और पापों की पृष्ठभूमि भी यही है। घर और परिवारों में मनोमालिन्य इसी कारण रहता है। मुकदमे-फौजदारी, तनाव और दुश्मनी का आधार यही है। फूट और विघटन इसी से पनपते हैं। प्रेम ओर मैत्री का दर्शन दुर्लभ रहने का निमित्त यह एक ही है। मानवीय सभ्यता के स्थान पर पशुता और पैशाचिकता की प्रवृत्तियाँ बढ़ते जाने का इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं। आनन्द और उल्लास इस संसार की किसी भी वस्तु में नहीं, यदि वह कहीं है तो एक ही स्थान पर है—प्रेम और आत्मीयता में। जो भी पदार्थ या व्यक्ति हमारे प्रेम एवं ममत्त्व के दायरे में आ जाता है वही प्रिय लगने लगता है। यदि कोई चाहता हो कि इस संसार में सर्वत्र आनन्द और प्रसन्नता का ही वातावरण दृष्टिगोचार हो तो उसके लिए एक ही मार्ग है कि अपनी संकीर्णता को उदारता में, स्वार्थ को परमार्थ में परिणित करे। इस संसार में सद्भाव और सौजन्य बढ़े, अपराधों और पापों की सत्ता घटे, इसका एक ही आधार हो सकता है—सज्जनता की अभिव्यक्ति। सच्ची नागरिकता और वास्तविक नैतिकता इसी को कहते हैं। विश्व शान्ति की समस्या का हल इसी आधार पर संभव है। मनुष्य-मनुष्य के बीच घटते हुए सद्भाव को रोकने के लिए, पारस्परिक सद्भाव की अभिवृद्धि से प्राप्त होने वाले आनन्द को बढ़ाने के लिए, आत्मीयता को व्यापक बनाया जाना आवश्यक है। मानवीय सद्गुण ही तो बाह्य जीवन में सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न किया करते हैं।

सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता और सुव्यवस्था

व्यक्ति के क्रिया-कलाप उसके अपने लिए तो शुभ-अशुभ परिणाम उत्पन्न करते ही हैं, समाज को भी प्रभावित करते हैं। इसीलिए व्यक्ति से नैतिक मर्यादाओं के पालन की अपेक्षा की जाती है ताकि वह अपना स्वयं का हित साधन करते हुए, समाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सके। कम से कम सामाजिक हितों पर आघात तो नहीं ही पहुँचाएँ। अपना हित साधन करते हुए सामाजिक हितों को क्षति न पहुँचाना और यथासम्भव उसके लिए प्रयत्नशील रहने का नाम ही सामाजिकता है। अपने आचरण, व्यवहार, दृष्टिकोण और क्रिया-कलापों द्वारा समाज के हितों का ध्यान रखते हुए उसकी व्यवस्था और स्थिरता को आघात न पहुँचाते हुए स्वार्थ के साथ-साथ समाज हित को भी साधना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

पारस्परिक सम्बन्धों के आदान-प्रदान में जिसे हम नैतिकता कहते हैं, समाज के प्रति उन्हीं भावनाओं या आदर्शों के निर्वाह को सामाजिकता कहा जा सकता है। उसी प्रकार सामान्य व्यवहार में जिस प्रकार के आचरणों को शिष्टता कहा जाता है। सामाजिक संदर्भों में उन्हीं मान्यताओं के निर्वाह को नागरिकता कहा जाना चाहिए। लोक व्यवहार में जिस प्रकार दूसरों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा जाता है, उनकी सद्भावनाओं के प्रति आभार और कृतज्ञता व्यक्त की जाती है—उसी प्रकार उन अज्ञात और अपरिचित व्यक्तियों की सुविधा तथा आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जाना चाहिए, जो अपने सम्पर्क में नहीं आते।

शिष्टाचार तो उन्हीं के प्रति बरता जाना सम्भव है जो प्रत्यक्ष रूप से अपने सम्पर्क में आते हैं, किन्तु समाज में रहने के कारण अपना आचरण अन्य अपरिचित जनों को भी प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए राह चलते समय यह जान पाना असम्भव नहीं रहता कि जिस रास्ते से हम गुजर रहे हैं, पाँच-दस मिनट बाद उस रास्ते से कौन गुजरेगा ? पाच-दस मिनट बाद गुजरने वाले की बात तो दूर है, उस समय यह ध्यान भी नहीं रहता कि अपने साथ और कौन-कौन चल रहा है ? उस समय या अपने वहाँ गुजरने के बाद कोई परिचित भी वहाँ से निकल सकता है और अपरिचित भी। परिचित व्यक्ति भी यदि वहीं से उसी रास्ते पर निकलता है तो उससे अपना कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। अपने लिए वह असम्बन्धित है। उस स्थिति में भी स्वयं चलते समय राह में यदि अपने किसी आचरण से उसी समय या बाद में वहाँ से निकलने वालों को कोई परेशानी अनुभव होती है या हानि उठानी पड़ती है तो उसके लिए अपने जिम्मेदार न होने की बात को भले ही स्वीकार न किया जाए परन्तु जिम्मेदारी अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही आती है। इस तरह का आचरण असभ्यतापूर्ण तथा नागरिक नियमों के प्रतिकूल ही कहा जायेगा।

सामान्यतः नागरिक जीवन के प्रति-कर्त्तव्यों के प्रति लोगों में उपेक्षा का भाव ही पाया जाता है। इस उपेक्षा के कई बार भयंकर दुष्परिणाम होते हैं। नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति उपेक्षा या लापरवाही के कारण होने वाले दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए एक विद्वान लेखक ने लिखा है—क्या आपने केले और नारंगी के छिलकों को कभी सड़कों पर या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर बिखरे हुए देखा है ? "क्या कभी ऐसा हुआ है कि जब आप जरूरी काम से सड़क पर चल रहे हों या जल्दी में रेल के डिब्बे में चढ़ने के लिए प्लेटफार्म पर दौड़े हों तो इन पर पैर रख जाने के कारण आप गिर पड़े हों ? अगर आपके साथ ऐसी बीती है या आपने किसी के साथ ऐसा बीतते हुए देखा है तो आपने यह क्यों नहीं सोचा कि फलों के छिलके और अन्य कूड़ा-कचरा सार्वजनिक स्थानों पर नहीं फेंकना चाहिए ? यदि ऐसे विचार आपके मन में आये हैं तो कृपया यह भी देखा कि क्या आप स्वयं इस तरह की सावधानी बरतते हैं अथवा नहीं ?"

इस तरह की घटनायें घटने पर लोग सामान्यतः छिलका फेंकने या कूड़ा फैलाने वाले व्यक्ति के प्रति अपशब्दों का प्रयोग कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर लेते हैं और चुप हो जाते हैं। सार्वजनिक जीवन में नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति उपेक्षा का भाव कूड़ा-कचरा फेंकने तक ही सीमित नहीं है। बल्कि असावधानी या उपेक्षा का यह रोग पालतू पशुओं तथा बच्चों तक में फैल गया है। लोग दूध पीने के लिए दुधारू जानवर पालते हैं किन्तु उनकी देख-भाल और सार-सम्हाल में होने वाले खर्च से बचने के लिए उन्हें खुला छोड़ देते हैं। ये पशु रास्तों और सड़कों पर जहाँ-तहाँ आवारा ढंग से घूमते रहते हैं तथा वहाँ लोगों को नुकसान पहुँचाते हैं। कभी-कभी तो बाजारों में पशुओं की लड़ाई से धन-जन की हानि भी होती है। इस तरह की हानियों के लिए निश्चित रूप से उन्हें पालने वाले व्यक्ति जिम्मेदार होते हैं। इस तरह का आचरण हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय चरित्र की भद्दी तस्वीर ही पेश करता है।

इस तरह बरती गई उपेक्षा और लापरवाही से सार्वजनिक स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। नये-नये अस्पताल, औषधालय खुल रहे हैं फिर भी मरीजों और बीमारों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि चारों ओर फैली रहने वाली गन्दगी हटा दी जाने पर कुछ ही देर बाद फिर ढेर के रूप में जमा हो जाती है। सफाई के लिए सरकार या नगरपालिका कुछ प्रबन्ध करती है, किन्तु लोग अपनी गन्दी आदतों से वहाँ पुनः गन्दगी पैदा करते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर, सड़कों, बाजारों, गलियों और मौहल्लों में सफाई कर्मचारी दिन में दो-तीन बार झाड़ू लगाते हैं किन्तु थोड़ी ही देर बाद वहाँ जाकर देखा जाय तो गन्दगी ज्यों की त्यों पड़ी मिलेगी। इसका एक ही कारण है कि नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति अवज्ञा या जानबूझ कर की जाने वाली उपेक्षा।

स्वच्छता सार्वजनिक और सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था की पहली शर्त है और यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने नागरिक कर्त्तव्यों के प्रति पूरी सजगता बरते और उसका तत्परतापूर्वक पालन किया जाय। प्रथम कर्त्तव्य उन्हीं व्यक्तियों का है जो विचारशील हैं तथा सामान्यजनों की अपेक्षा सुशिक्षित हैं। समाज में अपने महत्त्व को पहचानते और समझते हैं। इसलिए न केवल स्वच्छता में वरन् अन्यान्य विषयों में भी नागरिक कर्त्तव्यों का पूरा-पूरा पालन किया जाना चाहिए तथा उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

शिष्टता के समान ही नागरिक कर्त्तव्यों की भी कोई सर्वांगपूर्ण परिभाषा नहीं की जा सकती। समय परिस्थिति और वातावरण को देखते हुए यह स्वयं ही निर्धारित करना पड़ता है कि कहाँ किन मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। आमतौर पर सार्वजनिक स्थानों में जहाँ लोगों का आना-जाना बना रहता है, वहाँ उस स्थान से सम्बन्धित विशिष्ट नियम लिखे रहते हैं। उनका ध्यान तो रखा ही जाना चाहिए साथ ही स्वच्छता, सुव्यवस्था उस स्थान की सुन्दरता बनाये रखने के लिए अपने विवेकबुद्धि का उपयोग भी किया जाना चाहिए।

इस बात का ध्यान बराबर रखा जाना चाहिए कि जहाँ हम उपस्थित हैं, वहाँ दूसरे लोग भी उपस्थित हो सकते हैं या बाद में भी आ सकते हैं। अतः अपनी उपस्थिति का ऐसा कोई फूहड़ प्रमाण वहाँ नहीं छोड़ा जाना चाहिए जिससे वहाँ आने वाले व्यक्तियों को असुविधा हो। न ही उस समय ऐसा कोई आचरण करें जिससे उस स्थान की शान्ति भंग होती हो। नागरिक कर्त्तव्यों के पालन हेतु इस प्रकार के सामान्य अनुशासन का निर्वाह करते हुए स्वतन्त्र रूप से ऐसे प्रयास भी किये जाने चाहिए, जिनसे सामाजिक-जीवन में सुव्यवस्था और सुन्दरता का विकास हो सके। इस प्रयोजन के लिए अपनी स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार यथाशक्य प्रयत्न करने चाहिए।

सुसंस्कृत व्यक्तित्व का अर्थ केवल व्यक्तिगत रूप से सुरुचि-सुसज्जा का ध्यान रखना ही नहीं है और न ही इसका अर्थ केवल पारस्परिक व्यवहार तक सीमित है। बल्कि वह नागरिक कर्त्तव्यों के निर्वाह की आवश्यकता पर ध्यान देने की शर्त भी अपने आप में समाहित किये हुए हैं। यह एक तथ्य है कि किसी भी जाति, राष्ट्र या समाज का उत्थान वहाँ के दो-चार या दस-बीस महापुरुषों पर निर्भर नहीं करता बल्कि उस समाज में रहने वाले असंख्यों व्यक्तियों की सामाजिक चेतना पर निर्भर करता है। उसका विकास सार्वजनिक जीवन में स्वच्छता और सुरुचि सुन्दरता के रूप में प्राथमिक रूप से देखा जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मालिकों को जगाओ—प्रजातन्त्र बचाओ

प्रजातन्त्र संसार की सर्वोत्तम शासन पद्धति है। इसमें अपने भाग्य का निर्माण प्रजा के अपने हाथ में रहता है, अपनी मर्जी की व्यवस्था उसके हाथ में रहती है। बोलने लिखने की, करने की वहाँ तक आजादी रहती है, जहां तक कि सार्वजनिक सुविधा और राष्ट्र व्यवस्था में व्यतिरेक उत्पन्न न हो। इन गुणों के रहते हुए भी उसमें कमी इतनी ही है कि यदि मतदाता शिक्षित और सतर्क न हो तो चतुर लोग उन्हें बहकाकर वोट तो झपट ही लेते हैं, बल्कि लाभ भी वही लोग उठाते हैं, प्रजाजनों का हित उपेक्षित पड़ा रहता है। प्रजातंत्र का लाभ उठाने और उसका प्राण बनाये रहने के लिए मतदाता को दूरदर्शी, देशभक्त और उपयुक्त निर्णय कर सकने में समर्थ होना ही चाहिए अन्यथा यह शासन पद्धति स्वार्थी के निहित स्वार्थ पूरे करते रहने का साधन मात्र रह जाती है प्रजाजन कष्टपीड़ित एवं पिछड़े ही बने पड़े रहते हैं।

प्रजातंत्री देश के असली मालिकों को, मतदाताओं को यह जानना चाहिए कि उन्हें अपने कर्मचारी कैसे रखने हैं और उनकी नियुक्ति से पूर्व क्या जाँच-पड़ताल कर लेनी है, तीस पैसे की मिट्टी की हाँडी खरीदते हैं तब भी उसे ठोक-बजाकर खरीदते हैं फिर इतनी बड़ी देशव्यापी अरबों-खरबों रुपये की सम्पत्ति की साज-सँभाल और देख-भाल करने के लिए जिसे मुख्तार आम नियुक्त किया जाना है, उस प्रतिनिधि की योग्यता और ईमानदारी भी कसौटी पर कसी ही जानी चाहिए। यह पद इतना छोटा नहीं है कि इस पर बिना समझे-बूझे किसी को भी नियुक्त कर दिया जाय। यह देशव्यापी सम्पत्ति जिसमें ५५ करोड़ जनता के जान-माल, प्रभाव स्तर आदि की समस्त सम्भावनायें भी जुड़ी हुई हैं। इतनी छोटी बीज नहीं है कि इस वैभव वसुधा को किसी के भी हाथ सौंप दिया जाय।

राष्ट्र की सर्वांगीण व्यवस्था एवं प्रगति के कार्य की विशालता और महत्ता को जब तक ठीक तरह समझा न जायेगा और प्रतिनिधियों द्वारा बिगाड़ने बनाये जाने की सम्भावना पर जब तक दूरगामी परिणामों को ध्यान में रखते हुए विचार न किया जायगा तब तक मत और मतदान की महत्ता समझ में ही नहीं आवेगी और उसका सदुपयोग सम्भव ही न होगा और प्रजातंत्र के मूल आधार मतदाता का उत्तरदायित्व और प्रतिनिधि की नियुक्ति का क्रम जब तक ठीक से न बनेगा, तब तक सारा गुड़-गोबर ही होता रहेगा और लोग स्वराज्य की अपेक्षा पर-राज्य को तथा आजादी से गुलामी तक को अच्छा बताने की खीज व्यक्त करते रहेंगे।

मतदाता को हजार-बार यह सोचना चाहिए कि राष्ट्र के विकास और विनाश का उत्तरदायित्व प्रजातंत्र ने उसके कंधे पर सौंपा है। उसे यह अद्भुत अधिकार मिला हुआ है कि चाहे तो देश को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में योगदान करे अथवा उसे टांग पकड़कर पीछे घसीटने एवं उस पतन के गहरे गर्त में धकेल देने की प्रक्रिया पूरी करे। इस अधिकार को वह कई वर्ष बाद-चुनाव के समय पर एक बार ही उपयोग में ला सकता है। चैक पर दस्तखत पाँच सेकिण्ड में हो जाते हैं, उतने से ही जिंदगी भर की कमाई का जमा पैसा बैंक से निकाला जा सकता है। किसी को अपनी जायदाद बेच देने के लिए रजिस्ट्रार के दफ्तर में पाँच मिनट खड़े होना और दस्तखत कर देना काफी होता है। बाप-दादों की कमाई उतने भर से ही पराई हो जाती है। ठीक चैक पर दस्तखत करने और रजिस्ट्री ऑफिस में स्वीकृति देने जैसी क्रिया ही यह मतदान की है। यह चन्द घण्टे जो मतदान में लगते इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उसे खिलवाड़ नहीं समझा जाना चाहिए। उसमें अपने और अपने देश के भाग्य को बेच देने जैसी प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

नशा पिला देने भर से प्रसन्न होकर जो जायदाद का बैनामा कर दे उसे क्या कहा जाय ? जो थोड़ी चापलूसी से बहककर चैक पर दस्तखत कर दे उसे समझदार कैसे कहा जायगा ? लड़की की शादी करते हैं तब लड़के तथा उसके खानदान की पूरी-पूरी जाँच करते हैं। राष्ट्र-माता की गरिमा लड़की से भी बड़ी है उसे किसी के हाथ जब सौंपना हो तब क्या कुछ भी देख-भाल नहीं की जानी चाहिए। धर्म भीरु लोग गाय को कसाई के हाथों नहीं बेचते। चाहे किसी भले मानस के हाथों कम पैसे में अथवा मुफ्त ही क्यों न देनी पड़े। भावनाशील लोग गौ माता के सुख-दुःख का भी ध्यान रखते हैं और उसका रस्सा किसी के हाथों थमा देने से पहले हजार बार विचार करते हैं कि उसे किसके हाथ में सौंपा जाना ठीक होगा ? भारत माता की महिमा गौ माता से भी बड़ी है। उसे किसी को सौंपने की प्रक्रिया का नाम ही मतदान है। इस धर्मकृत्य को एक प्रकार का यज्ञ समझा जाना चाहिए और उस पुण्य-प्रक्रिया को करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि देव भाग को कहीं श्वान शृंगाल न खा जायें। भारत माता जैसी महान् गौ का दान करते समय प्रतिनिधि की पात्रता का ध्यान रखा ही जाना चाहिए। गलत कदम उठ जाने से ही सारे समाज का अहित होगा और उस दावानल की चपेट से बचेगा अपना भी घर नहीं। लोगों के बहकावे में आकर कोई अपने छप्पर में आग नहीं लगा लेगा। समझदार बच्चे किसी ठग द्वारा लैमनजूस की गोली देकर कोट उतरवा लेने की चालाकी को समझते हैं और बहकावे में नहीं आते। चिड़िया तक बहेलिये का जाल और दाने का भेद समझती है और उनमें से जो होशियार होती है पकड़ में नहीं आती। चालाक चोर रखवाली वाले कुत्ते को रोटी के टुकड़े देकर भौंकने से बन्द रहने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रलोभन देते हैं कि वह चुप रहे और चोरी की घात लग जाय, पर समझदार कुत्ते उस भुलावें में नहीं आते। वोट माँगने और झपटने के समय ऐसी ही लाख चतुराई बरती जाती है जिसमें भोले मतदाता की वस्तु स्थिति का पता ही न चले और छोटे प्रलोभनों और झूठे आश्वासनों के फेर में पड़कर उससे वह काम करा लिया जाय जो उसे नहीं करना चाहिए। अब मतदाता की बुद्धिमानी रह जाती है कि वह वस्तु स्थिति को समझे और निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह अपना फैसला उसी के पक्ष में प्रस्तुत करे जो न्यायानुसार उसका अधिकारी है।

कितने वोट माँगने वाले, भोले-भाले मतदाता को दिग्भ्रान्त करने के लिए क्या-क्या तरकीबें भिड़ाते हैं, उन्हें बारीकी से देखा जाय तो मनुष्य की धूर्तता का लोहा मानना पड़ता है। जाति-बिरादरीवाद का बहुत जोर उन दिनों दिखाई पड़ता है जिन दिनों वोट पड़ते हैं। अपनी बिरादरी वालों को कहा जाता है अपने सो अपने ही होते हैं, हम आपकी बिरादरी, खानदान, रिश्तेदारी में से हैं, जो आपका भला करेंगे सो दूसरों का थोड़ा ही कर सकते हैं। जो काम आपका हम से निकल सकता है सो दूसरों से थोड़े ही निकलेगा। चुन जाने से अपनी बिरादरी का सिर ऊँचा होगा और दूसरी बिरादरी वाले हम लोगों का मुकाबला न कर सकेंगे। इस प्रकार की बातें भावनाओं को भड़काने में जादू की तरह काम करती हैं और भोले लोग सहज ही उनसे बहकाये भरमाये जा सकते हैं। इसी सिलसिले में एक और बात भी कही जाती है कि दूसरी बिरादरी वाले ने हम लोगों को चुनौती दी है, गाली दी है कि इस बिरादरी वाले को नीचा दिखायेंगे। वे लोग अपनी बिरादरी वाले उम्मीदवार को जिताने में लगे हुए हैं और हम लोगों की हेटी करना चाहते हैं। अब आप लोगों का काम है कि उन लोगों को मुँह तोड़ जवाब दें या नहीं। अपने भाई की—अपनी बिरादरी की बात ऊँची करें या नहीं। इस प्रकार का जोश दिलाकर—फूट पैदा करके—अपनी बिरादरी वालों का वोट इस बहकावे में और दूसरी विरादरी वालों का वोट आदर्श सिद्धान्त, लालच, खुशामद, दोस्ती, दवाब आदि के आधार पर प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। आजकल यही हथकंडे प्रायः सारे देश में प्रयोग किये जाते हैं और इन्हीं धूर्तताओं से चुनाव जीते जाते हैं।

बिरादरी के हित के नाम पर उन्होंने कब क्या किया है ? बिरादरी को कुरीतियों से छुड़ाने में उनका क्या योगदान रहा है ? विरादरी के दुःखी दरिद्र लोगों की सुविधाओं के लिए उनने क्या किया है, इसका लेखा-जोखा माँगने से वे शून्य निकलते हैं। दूसरी बिरादरी वाले चुनौती देते हैं यह बात भी प्रायः हर जाँच-पड़ताल में झूठ निकलती है। कहीं सच भी होती है तो वह भी दूसरी बिरादरी वाले के मुँह से लोभ या दवाब देकर ऐसे शब्द कहलवा लिए जाते हैं जिससे अपनी बिरादरी वालों में तनाव पैदा हो और उसका लाभ अपने को मिले। फिर बिरादरी-बिरादरी के बीच कोई युद्ध तो चल नहीं रहा है जिसमें अपनी जाति के लोगों की जीत आवश्यक हो। सरकारी कोई न्यायानुकूल विधान भी ऐसा नहीं है जिससे किसी जाति विशेष वाला अपनी जाति वालों का फायदा करा सके। यदि वह अन्याय और पक्षपात से कोई अनुचित लाभ कभी छलबल से करा भी दें तो उससे बदनामी, गलत परम्परा का प्रचलन एवं इतनी गड़बड़ी फैल सकती है कि जातिवाद के नाम पर सर्वत्र पक्षपात चल पड़े और उससे जन-साधारण को न्याय मिलना ही कठिन हो जाय। इन सब बातों को देखते हुए शासन में बिरादरीवाद का कोई महत्व नहीं रह जाता और यदि इस तरह के आधार स्थापित करने का प्रयत्न किया गया तो सबका द्वेष एवं विरोध लेकर वह पक्षपात करने वाला जातिवाद ही घाटे में रहेगा।

ठगों का धन्धा सर्वत्र चलता है। ठगी के तरीके भी असंख्य है। ठग लोग पुरानी तरकीबें पकड़ में आ जाने पर नई तरकीबें निकालते रहते हैं जो पिछली से अधिक अनोखी होती हैं। पर इस ठगी के व्यवसाय में पीछे काम करने वाले तीन मुख्य आधार ज्यों के त्यों रहते हैं। उनमें परिवर्तन कर सकना अभी तक किसी ठग विद्या के निष्ठावान द्वारा भी सम्भव नहीं हो सका है। (१) मीठी बातें कहकर अपने को विश्वस्त और शुभ-चिन्तक सिद्ध करना। (२) छोटा प्रलोभन-उपहार देकर अपने को उदार एवं सज्जन सिद्ध करना। (३) जल्दी ही कोई बड़ा फायदा करा देने का सब्जबाग दिखाना। इन्हीं तीन सिद्धान्तों को विभिन्न रूप में प्रयुक्त करके ठग लोग भोले लोगों को आकर्षित करते हैं और जब वे इन तरकीबों से थोड़े नरम पड़ते ललचाते दीखते हैं, तभी उन्हें वे इस तरह ठगकर चारों खाने चित्त कर देते हैं।

दोस्ती की आड़ में दुश्मनी करने के आज एक फैशन ही हो गया है। पुराने-जमाने में जिसे नुकसान पहुँचाना होता था, खम ठोककर सामने आते थे और अपने को खुले आम दुश्मन कहते थे तथा अपने इरादे खोल देते थे। अब फैशन दूसरे किस्म का है। नये जमाने की तरकीब यह है कि जिसे ठगना, सताना या गिराना हो उससे पहले मित्रता गाँठी जाय और जब वह भरोसा करने लगे तभी ऐसा पल्टा लिया जाय कि बेचारा दोस्त बना हुआ व्यक्ति भौंचक्का ही रह जाय और इस अप्रत्याशित विश्वासघात झटके से चित्त-पट्ट हो जाय। वोट माँगने के दिनों कितने ही निम्न स्तर पर चुनाव लड़ने वाले द्वारा प्रयुक्त इस हथकण्डे को हर कोई समझदार व्यक्ति आसानी से देख सकता है। वोट लेने से पहले की मिठास, खुशामद और अपनेपन की जो वर्षा की जाती थी, कल्पवृक्ष की तरह मनोकामना को पूरा करा देने की आशा दिलाई जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी, उसमें कितनी दम थी इसका नग्न रूप देखना हो तो चुनाव के बाद उन चुने हुए सज्जन का रंग-ढंग, तौर-तरीका देखकर आसानी से वस्तु स्थिति को समझा जा सकता है। यों सही तरीकों पर चुनाव लड़ने वाले सैद्धान्तिक मतभेद या कार्यक्रमों सम्बन्धी बातों को लेकर ही जनता के पास जाते हैं। वही तरीके काम में लाते हैं जो ईमानदार प्रतिनिधि को लाने चाहिए पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत नहीं होती।

समय आ गया कि मतदाता अपने को इतना भोला या मूर्ख सिद्ध न होने दे कि उसे हर बार ऐसे ही किसी हथकंडे से ठगा जाय और प्रतिनिधित्व का सेहरा उन लोगों के सिर पर बँध जाय जिनसे लोकहित की कोई आशा नहीं की जा सकती। जो जुआ खेलता है वह कई गुने लाभ की आशा से ही खेलता है। व्यापार तो कम लाभ पर भी किया जा सकता है पर जुये का दाव तो तभी लगाया जा सकता है जब कोई गहरा लाभ हो। चुनावों में अन्धाधुन्ध खर्च किया जाने वाला पैसा वस्तुतः जुआ है। जीतने की क्या गारन्टी ? जुआ उसे कहते हैं जिसका परिणाम पूर्ण अनिश्चित हो। चुनाव में जीत ही होगी इसका क्या निश्चय है ? इतने पर भी जो लोग अन्धाधुन्ध पैसा लगाते हैं, उनका जरूर कोई बड़ा दाव होना चाहिए। और वह दाव इतना फायदे मन्द होना चाहिए कि यदि दाव हार भी जाया जाय तो उस सफलता से होने वाले लाभ को देखते हुए उस जोखिम को बर्दाश्त भी किया जाय। कुछ को छोड़कर चुनाव में अन्धाधुन्ध खर्च करने वालों का दृष्टिकोण प्रायः ऐसा ही होता है। इसलिए जहाँ अन्धाधुन्ध पैसा फूँका जा रहा है, वहाँ उसके पीछे किसी कुटिलता की सम्भावना तलाश की जानी चाहिए।

कोई ईमानदार व्यक्ति देश सेवा का अवसर पाने के लिए ही चुनाव में इतना खर्च करता हो तो भी यह न्यायानुकूल नहीं। समय के साथ-साथ इतना धन भी क्यों देना पड़े और क्यों खर्च का इतना ऊँचा स्तर बढ़े जिस गरीब प्रतिनिधि वहन ही न कर सके। होना यह चाहिए कि चुनावों में इतना खर्च होने की स्थिति ही न आवे। बहुत खर्च होने पर उसे पूरा करने की जो चिन्ता करनी पड़ती है वह किसी को भी न करनी पड़े यही उचित है।

प्रश्न यह है कि क्या हो रहा है, होता रहा है उसे ही होने दिया जाय या उसमें कुछ परिवर्तन लाया जाय। अधिनायकवाद में तो प्रजा के बस की बात नहीं रहती पर जनतन्त्र में यह गुंजायश रहती है कि यदि प्रजा चाहे तो अच्छा शासन लाया जा सकता है और उसके माध्यम से व्यक्ति एवं समाज की सुख-शान्ति को सुरक्षित एवं समुन्नत किया जा सकता है। निस्संदेह ऐसा हो सकता है पर वह हो तभी सकता है, जब मतदाता अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करे और यह सोचे कि मतदान के रूप में उसे कितना बड़ा अधिकार और उत्तरदायित्व मिला हुआ है अपने और अपने देश के भाग्य-भविष्य का निर्माण कर सकने में उन्हें कितना बड़ा योगदान कर सकने का अवसर प्राप्त है। इतने बड़े अवसर के उपलब्ध होते हुए भी यदि उसका उपयोग करना न आया तो यही समझना चाहिए कि सोते समय सुरक्षा के लिए नियुक्त बन्दर के हाथ में तलवार देकर राजा ने भूल ही की है। उसके मुँह पर मक्खी बैठी और उड़ाने के लिए बन्दर ने तलवार चला दी फलस्वरूप उसे नाक से ही हाथ धोना पड़ा। अनाड़ी वोटर उस बन्दर की तरह है जिसे तलवार चलाने के लिए उपयुक्त स्थान और अवसर ढूँढ़ने की समझ नहीं है। जलती दियासलाई डाल देने से विपत्ति ही उत्पन्न हो सकती है। भले ही खेल-खेल में या असावधानी से ही वह भूल क्यों न हो गई हो पर उसका परिणाम तो भयावह हुए बिना रहेगा नहीं। छूटा हुआ तीर वापस नहीं आ सकता, दिया हुआ वोट लौटाया नहीं जा सकता, इसलिए जब तक उसका प्रयोग नहीं हुआ है, उससे पहले ही हजार बार सोचना चाहिए कि इस राष्ट्र की अमानत और समाज की पवित्र धरोहर की श्रद्धांजलि को कहाँ अर्पित किया जाय ? यह देवता के चरणों में चढ़ाने योग्य है या असुर को सौंपा जाय। वोट किसे दिया जाय किसे न दिया जाय इसके सम्बन्ध में देश के हित और समाज के भविष्य का ध्यान रखते हुए उपयुक्त पात्र की तलाश की जाय तभी यह सम्भव है कि देश के सुदिन आयें और उसका सौभाग्य सूर्य उदय हुआ है।

राष्ट्र को पतन या उत्थान की ओर ले चलने की वोट के रूप में मिले हुए अधिकार और अवसर का दूरदर्शिता के साथ उपयोग किया जाना चाहिए यह तथ्य हमें अपने देश के मालिकों को तत्परतापूर्वक समझाना ही चाहिए और उन्हें पूरे मनोयोग एवं गम्भीरता के साथ इसे समझना चाहिए। प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि मतदाता दूरदर्शी एवं जिम्मेदार बनकर अपने राष्ट्रीय कर्तव्य को समझें और उसे दृढ़ता के साथ निबाहें। वोट केवल उन्हें मिले जो उसके हकदार हैं। चुनाव में वे जीतें जिनके हाथ में न्याय और लोकहित सुरक्षित है। ऐसे लोग कथनी से नहीं करनी से परखे जाने चाहिए और उनके अब तक के क्रिया-कलाप को सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखा जाना चाहिए कि इनके रक्त में अनैतिकता के विष बीजाणु तो नहीं हैं। जिस प्रकार किसी घातक रोग के रोगी से हम अपनी कन्या का विवाह करने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं उसी साहस और विवेक को अपनाकर हमें उन लोगों को वोट देने से स्पष्ट इन्कार कर देने चाहिए जो नीति, सदाचार और आदर्शों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

इतना साहस न होने और वस्तु स्थिति को आँख मूँदकर स्वीकारते रहने का अर्थ यह होगा कि राजनैतिक अनीति और अवांछनीयता जितना चाहें खुलकर खेलें। राज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तो आपको विश्वास है कि आपका प्रत्याशी अवश्य जीतेगा। आपने किसको वोट दिया है ?"

"हमारा उम्मीदवार और आपका उम्मीदवार यह तो मैं नहीं जानता। मैं तो वोट देने भी नहीं जाता अगर ?" फिर वह अपनी ही रो में कहता गया। 'मैं राजनीति तो नहीं जानता, पर इतना अवश्य जानता हूँ भाई साहब, कि जब एक आदमी लाखों रुपये लगाकर चुनाव में जीतने की कोशिश करता है तो जीतने पर वह लागत से ज्यादा ही वसूल करता भी है। यह भी तो एक व्यापार है पैसा लगाओ, कुर्सी पाओ और कमाओ। अपने पास न तो इतना पैसा है और न राजनैतिक दाव-पेंच ही जानते हैं सो इस व्यापार में हाथ नहीं डालते। पर जो जीतते हैं, उन्हें माला अवश्य पहनाते हैं जिससे अपना काम चलता रहे। चाहे कोई भी जीते अपने को तो माला पहनानी है सो पहना देंगे।'

लोकतन्त्र, चुनाव और शासन संचालन के सम्बन्ध में जो विचार इन दुकानदार महाशय ने व्यक्त किये उनसे असहमत होते हुए भी मैं उनमें छिपे आंशिक सत्य को नकार नहीं सका। नकार सका होता तो शायद इस लेख का जन्म भी नहीं होता।

अरविन्द जनरल स्टोर के मालिक हरगुनदास के कथन में सचाई का अंश कम नहीं था। आखिर यह सब होता किसलिये है ? वसन्त में खिलती कोपलों, पतझड़ में गिरते पीले पत्तों और वर्षा में उग आने वाली हरीतिमा की तरह चुनाव का मौसम का भी अपना एक रंग होता है। दीवारों पर पोस्टर उभर आते हैं रंग-बिरंगे, छोटे-बड़े एक से एक आकर्षक। झण्डों, चुनाव चिन्हों, भोंपुओं, सभाओं जुलुसों और जन सम्पर्क की सरिता बरसाती नाले की तरह सीमा तोड़ बहती है। लाउडस्पीकर महँगे हो जाते हैं। खचड़ा से खचड़ा जीप चलने लग जाती है। प्रचारकों, नेताओं और प्रत्याशियों के तूफानी दौरे आरम्भ हो जाते हैं। कोई रुपये बाँटता है तो कोई शराब के दौर चलवाता है। जनता की सेवा करने के उद्देश्य से चुनाव में खड़े होने वालों को यह विज्ञापन, यह प्रचार और पानी की तरह पैसा बहाने की आवश्यकता क्या है ?

कहने को तो प्रजातन्त्र में सबको समान अधिकार है। सब चुनाव लड़ सकते हैं। लेकिन कितने लोग ऐसे हैं जो चुनाव लड़ सकते हैं। 'जन' और 'तन्त्र' के बीच में एक बहुत बड़ी दीवार जो उठ खड़ी हुई है 'अर्थ' की और यह दीवार दिनोंदिन ऊँची होती जा रही है। इस दीवार की ओर ही तो संकेत था दुकानदार महाशय का। वे बेचारे हर चीज को अपनी व्यावसायिक बुद्धि की तुला पर तोलते हैं। पर चुनाव के बढ़ते हुए खर्च को देखकर तो यह लगता है कि यदि 'जन' और 'तन्त्र' के बीच से 'अर्थ' की यह दीवार तोड़ी नहीं जा सकी तो अर्थ जन को लात मारकर बाहर कर देगा और उसके स्थान पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगा। फिर वह कहलाता जनतन्त्र रहे पर बन अर्थतन्त्र जायगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चुनाव के समय किस तरह पानी की तरह पैसा बहता है ? विधान सभा क्षेत्र में ही यह खर्च, लाख तक पहुँच जाता है। लोक सभा के लिये तो उससे भी अधिक होता है, खर्च। इस बढ़ते हुए चुनाव खर्च को देखते हुए सरकार ने भिन्न-भिन्न, राज्यों के लिये चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा तक निर्धारित कर दी है।

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व पश्चिमी बंगाल, असम व हरियाणा में नौ हजार, बिहार व महाराष्ट्र में बारह हजार, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान और जम्मू-कश्मीर में दस हजार, गोवा-दमन-दीव में तीन हजार, नागालैण्ड में ढाई हजार और दिल्ली में दो हजार से अधिक कोई उम्मीदवार चुनाव में खर्च नहीं करे। इस अधिकतम सीमा के ऊपर जाने पर उस प्रत्याशी का चुनाव अवैध माना जायगा बशर्ते कि कोई प्रमाण सहित इसे प्रमाणित करे। यह 'बशर्ते' वाली बात इतनी दुष्कर है कि यह कानून बनना ही न बनने जैसा हो जाता है।

इस कानून के बन जाने से चुनाव में होने वाले व्यय में कोई कमी नहीं हुई वरन् वृद्धि ही हुई है। पिछले आम चुनावों में तो कुछ प्रदेशों में प्रचार के लिये हेलीकोप्टरों का प्रयोग किया गया, स्पर्धा के तौर पर।

राजनीति को अखाड़ा और चुनाव को दंगल बनते देखकर तो यही लगता है कि सामान्य व्यक्ति की तो इस दंगल और अखाड़े में कोई गुजर ही नहीं। होता यह सब जनसेवा के नाम पर है पर जनसेवा की भावना का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। पिछले चार चुनावों का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि राजनीति और चुनाव निरन्तर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति से कुर्सी पर अधिकार जमा सकने वालों के एक वर्ग विशेष का काम बनता जा रहा है। जनसेवा समाज सेवा और राष्ट्र सेवा जो जनतन्त्र में जनता का प्रतिनिधि बनने वालों का लक्ष्य होना चाहिए उसका स्थान व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थ लेते जा रहे हैं।

चुनाव के दंगल में समाज सेवा, जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावना रखने वालों की गुजर होना कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे व्यक्तियों की अपेक्षा वे व्यक्ति सफल होते देखे जा रहे हैं जो खर्च करने में समर्थ हैं और जो राजनीति में सेवा की भावना से नहीं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की गरज से आये हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर आता जा रहा है। ऐसी स्थिति में राजनीति का स्तर का गिरते जाना तथा, उसका निष्ठावान और ईमानदार लोकसेवियों का कर्मक्षेत्र नहीं वरन् सम्पत्ति व साधनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति वाले घटिया और स्वार्थी किस्म के लोगों का अखाड़ा बनता जाना स्वाभाविक ही है। यह स्थिति लोकतन्त्र के लिये बहुत घातक है।

चुनाव के समय की मानसिकता कुछ ऐसी रूढ़ियों में बँधती जा रही है, जो लोकतन्त्र की सफलता के लिये लाभकारक नहीं कही जा सकती। निष्ठावान और सेवाभावी राजनैतिक कार्यकर्ता इस अखाड़ेबाजी को देखकर दुःखी तो होते पर उनके इस दुःख में नैराश्य का जुड़ जाना बहुत ही घातक है जिसके कि अधिकांश राजनैतिक कार्यकर्ता शिकार होते जा रहे हैं जबकि उन्हें होना नहीं चाहिए। उन्हें वे दिन और वे बातें याद आती हैं जबकि राजनीति लोकसेवियों और स्वार्थ त्यागियों की रणभूमि थी। अंग्रेज साम्राज्यावाद और सामन्तवाद से जूझते समय दिलों में कितने-कितने अरमान थे, उन लोगों के कि हमारा देश स्वतन्त्र हो जायगा तो ऐसा होगा, ऐसा करेंगे, यह होगा, वह होगा लेकिन जो कुछ हो रहा है उसे देखकर वे दुःखी और निराश हो चले हैं। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं।

आज चुनाव के मैदान में उतरने के वाले अधिकांश प्रत्याशियों के दिल दिमाग में जन सेवा, देश सेवा, सुशासन और दल के सिद्धान्त और शक्ति की बात तो गौण रहती है और मुख्य होती है अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा। उसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये वह लाखों रुपये फूँकता है चुनाव में अपने साधनों का प्रयोग करता है। लोकसेवा का उद्देश्य लेकर और जनता को सुशासन देने के दायित्व निर्वाह की भावना से कौन इतना प्रचार कर सकता है ? वहाँ तो पाँच वर्ष तक रोबदाब, स्वार्थशाही, ठाट-बाट, शान-शौकत, अच्छे खासे वेतन के साथ मुफ्त में हजारों रुपये की आवास, प्रवास, संचार, चिकित्सा आदि की सुविधाएँ और फूलमाला तथा जय जयकारों के सपने भी भरे होते हैं, मन मस्तिष्क में और जब उन्हें साकार का नम्बर आता है तो पहले ये ही सब आते हैं जनसेवा को तो सबके अन्त में स्थान दिया जाता है।

इनका प्रबल आकर्षण ही वर्गों, धर्मों, जातियों, साम्प्रदायों, दलबन्दियों, ट्रेड यूनियनों में बँटे हुए मतदाताओं को बहकाकर, उनकी निरक्षरता और अन्धविश्वास से लाभ उठाकर, धन, भोज शराब, आदि के जाल फैलाकर येन-केन प्रकारेण कुर्सी हथियाने की जोड़-तोड़ बिठाने जैसे हेय हथकण्डे, अपनाने का कारण है।

भारत का आम आदमी गरीब है, उसकी आर्थिक स्थिति इस बात की इजाजत नहीं देती कि वह राजनीति के क्षेत्र में उतरे। कोई व्यक्ति सेवा भावना से निष्ठा और ईमानदारी से इस क्षेत्र में आना चाहता है तो वह इन्हीं के बल पर चुनाव जीत सके ऐसा बहुत कम ही सम्भव है। ऐसे लोग भी प्रायः निराश ही रहते हैं। वे यही सोचकर दुःखी हुआ करते हैं कि गाँधी-सुभाष के सपनों का भारत कैसे बनेगा ? इस स्थिति में वे राजनीति की इस दौड़ में सफल नहीं हो सकते इसलिये उनकी जनसेवा और राष्ट्र सेवा की भावनाओं के अंकुर उगते ही मुर्झाने लगते हैं जबकि ऐसा होना नहीं चाहिए।

चुनाव में खड़े होने वाले अधिकांश प्रत्याशियों के मत में जो स्वार्थ होता है, वैसा ही स्वार्थ आम मतदाता के मन में भी होता है, उन लोगों को छोड़कर कि जो लोकतन्त्र के वृक्ष में लगते हुए इस स्वार्थ के कीड़े को देख रहे हैं विवेक की आँखों से। वे लोग उदासीन, निराश और पस्त हैं उन्हें कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है और आम आदमी जो थोड़ा समझता है उनकी मानसिकता और ऊपर वर्णित व्यापारी हरगुनदास जैसी है। उसका मन मस्तिष्क में जनता, देश और समाज की बात नहीं हैं, उसकी अपनी बात यह है कि वह तो 'कोऊ नृप होय हमें का हानि चेरि छाँड़ि न करे कोउ पटरानी' की मंथरा बुद्धि से पीड़ित हो रहा है। कौन व्यक्ति आ जाय कि उससे मेरा लाभ हो या हमारे क्षेत्र का विकास हो जाय। अच्छे पढ़े-लिखे और समझदार समझे जाने वाले व्यक्तियों के मुँह से भी ऐसी बातें सुनने को मिल जाती हैं—"भई अमुक मन्त्री कितना ही भ्रष्ट और स्वार्थी रहा हो उसने हमारे यहाँ तो सड़क बनवा दी।" घर तो भर लिया पर अपने नगर को चमन करा दिया।" आदि। उनके इस कथन पर डा. लोहिया का यह कथन याद आ जाता है ..... नेता होंगे और बहुत होंगे पर वे राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्र के नहीं जिले, गाँव और कस्बों के स्तर के होंगे।" यह बात आज के अधिकांश राजनीतिक नेताओं पर ही नही अधिकांश जनता पर भी लागू होती है। बस वे अपनी छोटी दृष्टि से ही तोलते हैं, चुनाव में खड़े होने वाले प्रत्याशियों को।

जो लोग अपनी सेवा भावना समाज निष्ठा और राष्ट्रीयता की भावना के बल पर ही राजनीति में जमना चाहते थे उन्हें पैसे, प्रभाव और छल छन्द के बल पर चुनाव में सफल होने वाले घटिया स्तर के लोगों ने वहाँ जमने नहीं दिया तो उन्हें यह न समझ लेना चाहिए कि उनका अब कोई कर्मक्षेत्र ही नहीं रहा। गाँधी और सुभाष के सपनों का भारत बसता देखने वाले विवेकशील लोगों को भी उदासीन और निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

यह सोचना कि आजादी के बाद सब काम सरकार द्वारा होंगे और इसलिये लोक सेवकों को जन नायकों को, देश भक्तों और राष्ट्र के प्रति, लोकतन्त्र के प्रति राजनीति की वही देहरी धोकनी पड़ेगी जिसे पैसे और प्रभुत्व के बदनाम कर रखा है, ही निराशा का ही कारण है। नहीं तो दुःख और वेदना तो हो सकती है पर निराशा और उदासीनता नहीं उपज सकती, आज की विकृत परिस्थितियों में।

आजादी के पहले का इतिहास देखा जाय तो उसमें जितने भी नेता उभरे थे वे जन नेता अधिक थे राजनेता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कम। उन्होंने जनता के लिये काम किया था। माना कि आजादी आ गयी। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि आजादी की लड़ाई समाप्त हो गयी। तन्त्र तो भारतवासियों के हाथ में आ गया पर उस तन्त्र को सम्हालने की समझ और शक्ति 'जन' में नहीं आयी है। अभी तो स्थिति यह है कि लगभग एक तिहाई व्यक्ति तो वोट देने जाना ही व्यर्थ समझते हैं। अशिक्षा और रूढ़िवादिता में जकड़ी जनता के द्वार तक आजादी आ तो गयी पर वे उनका स्वागत कैसे करें, उसे कैसे अपने घर का उजाला बनाये उसका उन्हें ज्ञान ही नहीं। ऐसे ही लोगों के वोट प्रचार द्वारा गुमराह करके या खरीदकर प्राप्त किये जा सकते हैं।

सवाल लोकतान्त्रिक चेतना पैदा करने का है। इसके लिये राजनीति आज के समाजसेवी, लोकसेवी, राष्ट्रसेवी के लिये उपयुक्त क्षेत्र नहीं है। उसका क्षेत्र समाज सेवा का है। क्रान्ति के जो स्फुल्लिंग आजादी के पूर्व देखने को मिले थे उन्हें दावाग्नी बनाने की आवश्यकता थी। राजनैतिक स्वतन्त्रता चरम लक्ष्य नहीं था। वह तो सामयिक लक्ष्य था। क्रान्ति का एक मोर्चा था। अब दूसरे मोर्चे भी तो सम्हालने हैं। वे सब मोर्चे तो उपेक्षित पड़े रह गये हैं। आजादी पा लेने की प्रसन्नता में छब्बीस वर्ष तक इन मोर्चों की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। राजनैतिक स्वाधीनता के बाद नैतिक, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक शैक्षाणिक प्रगति की ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था उतना नहीं दिया जबकि यह बहुत आवश्यक था।

हम राजनीति को ही सब कुछ मानकर चलते रहे, सरकार को ही सब जिम्मेदारियों की वाहक मानते रहे, यही सबसे बड़ी भूल हुई है जबकि ये दोनों तो जनता के सेवक भर हैं। जनतन्त्र की स्वामी जनता है वह अभी तक गाफिल पड़ी सो रही है क्योंकि उसे जगाया नहीं गया। आज सबसे बड़ी आवश्यकता जन जागरण की है।

जनता सोयी हुई है, उसे लोकतन्त्र की महत्ता का पता नहीं है इसलिये जैसा चल रहा है वैसा स्वीकारती जा रही है। जिन लोगों के दिल में इस बात का दर्द है कि राजनेताओं पर स्वार्थ हावी हो रहा वे उसी को भीड़ में टक्करें मारने की बजाय जन जागरण के लिये कार्य करें। आज के राजनैतिक अखाड़ों और दलों के शुद्धिकरण का काम उन्हीं में रहकर किया जाय यह सम्भव नहीं। उसके लिये तो उनसे बाहर रहकर काम करना ठीक है।

यह बात नहीं कि जनता जनसेवियों का सम्मान नहीं करती या लोकतन्त्र पर हावी होने वाले स्वार्थी तत्वों से त्रस्त नहीं है पर उन्हें कोई मार्गदर्शन देने वाला ही नहीं मिलता और न ऐसे लोकसेवी ही नंजर आते हैं जो उनके स्थान पर प्रतिष्ठित किये जा सके हैं तो वे असंगठित और बिखरे-बिखरे हैं। उनका एक ऐसा संगठन हो, उनका सेवा और निष्ठा से दिप्त प्रखर व्यक्तित्व ऐसा हो कि वे राजनीति में नहीं भी उतरें और समाज तन्त्र को इतना सजग चैतन्य और समर्थ बना दें कि राजनीति और राज तन्त्र उनके इशारे पर चलें।

जनता को जगाने उसकी शैक्षणिक, बौद्धिक, नैतिक सामाजिक, आर्थिक स्थिति को सुधारने के साथ ही चुनाव के खर्चों को कम करने, राजनेताओं को सामान्यजन का-सा जीवनयापन करने के लिये विवश करने और अपनी ओर से जनप्रतिनिधि चुनकर भेजने का जन शिक्षण भी उसके साथ ही चलता तभी हमारे जन में तन्त्र को सम्हालने की शक्ति, सामर्थ्य उत्पन्न हो सकेगी फिर अर्थ उनके मध्य दीवार नहीं बन सकेगा।

सामन्ती समर्थता जनशक्ति से बढ़कर नहीं

शासन सत्ता की शक्ति कितनी अधिक है इसे सभी जानते हैं। शस्त्र, योद्धा, कौशल, धन के सहारे प्रजा को विवश करके मन चाहे कार्य करा लेने के घटनाक्रमों से इतिहास भरा पड़ा है। ऐसा भी बहुत हुआ है जब जनमत दबाव से विवश होकर सत्ताधीशों को अपना रवैया बदलना पड़ा।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में आस्ट्रिया ने हंगरी पर कब्जा कर लिया। विजित जिस प्रकार का व्यवहार पराजित के साथ करते रहे हैं, वही उस क्षेत्र में भी चरितार्थ हुआ। प्रजाजनों से मनमाने टैक्स वसूल करने एवं अवांछनीय कानूनों के आगे सिर झुकाने के लिए नागरिकों को बाध्य किया ? जिन्होंने अवज्ञा की उन्हें बेतरह कुचल दिया गया। मुद्दतों आतंक का वातावरण छाया रहा।

जनता मन ही मन कुसमुसाती तो बहुत थी पर कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं थी। शस्त्ररहित, असंगठित लोग कर भी क्या सकते हैं ? यह निराशा हर किसी के मन पर छाई हुई थी। इस कुहासे को चीरता हुआ एक तूफान आगे आया, उसने काना-फूसी करने की अपेक्षा अपने जैसे साहसी आदर्शवादी तलाश किये। ढूँढ़ने पर जहाँ-तहाँ छिपे हुए अनेकों मिल गये, उन्हें संगठित किया गया और ऐसा प्रयत्न किया गया जिससे प्रशासन को जनमत के विरोध का पता ही न चले वरन् सामना भी करना पड़े।

टैक्स बन्दी का आन्दोलन चला। करदाताओं ने टैक्स चुकाने से इन्कार किया तो उनकी सम्पत्ति जब्त की गई, नीलामी हुई, पर कोई खरीददार ही न पहुँचा। इस प्रकार की प्रजा की बरवादी तो हुई पर सरकार के पल्ले कुछ नहीं पड़ा। उलटे इस नये झंझट से निपटने में सहस्रों राज्य कर्मचारी फँस गये फलतः उनके जिम्मे के कार्यों में भी गड़बड़ी फैली। दमन से कुछ प्रजा और भी बागी होती गई ? कर्मचारियों ने अनुभव किया कि वे पूरी प्रजा को समाप्त करके ही सत्ता बनाये रह सकते हैं। इस स्थिति में उन्हें लाभ के स्थान पर हानि अधिक प्रतीत हुई चुने हुए सदस्यों में से एक भी पार्लियामेण्ट में उपस्थित न होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था। जेलें कैदियों से भर गईं थीं, फलतः रुख बदल दिया गया समझौता हुआ और हंगरी को आजादी वापस की गई। यह अपने आप में इतनी बड़ी जीत थी, जिसने सत्ताधारियों, मठाधीशों के सिंहासनों को हिलाकर रख दिया था।

दक्षिण अफ्रीका गोराशाही ने उन दिनों उस देश से ले जाकर बसाये गये, भारतीय बन्धुआ मजदूरों के साथ भी प्रायः ऐसी नीति अपनाई। उनके नागरिक अधिकार नहीं के बराबर थे। हर विवाह को ईसाई पद्धति से न होने पर अवैध करार दे दिया गया ताकि भारतीयों की सन्तानों को अपने पूर्वजों को सम्पत्ति पर अधिकार न मिल सके। आये दिनों के उत्पीड़न से भारतीय प्रजा ने प्रतिरोध का रास्ता अपनाया। गाँधी जी तब तक महात्मा न कहलाये थे—वे नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चला। दमन-चक्र बहुत दिन चलता रहा किन्तु जब दीखा स्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती ही जा रही है तो सर्व समर्थ समझने वाले सत्ताधीशों का गर्व गला और झुककर काम चलाऊ समझौता करना पड़ा।

१८०० ई. में यूरोप वासियों का पृथ्वी के भू-भाग के ५५ प्रतिशत अंश पर कब्जा था। उसके अन्तर्गत यूरोप, उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, भारत, एशिया का रूस वाला भाग, ईस्ट इन्डीज का कुछ अंश तथा अफ्रीका के तट का कुछ भाग आता था। परन्तु इनमें से मात्र ३५ प्रतिशत के ऊपर ही कुशल नियन्त्रण था, शेष पर तो मात्र दावा ही किया जाता था। १८७८ तक नये ६५ लाख वर्ग मील (एक करोड़ ६८ लाख वर्ग किलो मीटर) के क्षेत्र पर भी अधिकार की घोषणा की गई। अतः १८००-१८७८ के बीच यूरोप का शासन पृथ्वी के ३५ प्रतिशत से बढ़कर ६७ प्रतिशत अंश पर हावी हो गया।

नैपोलियनिक युद्ध व जन क्रान्ति के कारण १८२५ तक स्पेन के लगभग सभी उपनिवेश मुक्त हो गये। दक्षिणी अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। सिर्फ क्यूबा व प्युर्टोरिको द्वीप उनके हाथ बच गया था, इसी अवधि में ब्राजील ने भी पुर्तगाल से स्वतन्त्रता छीन ली।

स्पेन व पुर्तगाल की असफलता के बावजूद भी ब्रिटेन पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसका साम्राज्य आगे के वर्षों में और भी बढ़ता चला गया। १८७० से १९१४-१८ के बीच उपनिवेशीय शक्ति में प्रतिवर्ष औसत २ लाख ४० हजार वर्ग मील के हिसाब से वृद्धि हुई। इस तरह १९१८ तक ब्रिटेन अकेला ८५ प्रतिशत भू-भाग पर आधिपत्य जमाये बैठा था।

इसके उपरान्त जर्मनी रूस, यूनाइटेड स्टेट्स, बेल्जियम, इटली, डच तथा जापान सभी उपनिवेशीय शक्तियों के रूप में उभरकर आ गये। उपनिवेश से मुक्त क्षेत्र अब बहुत कम ही बच गये थे, अतः सभी उपनिवेशीय शक्तियों में आपस में ही टकराव आरम्भ होने लगा।

इस सन्दर्भ में ब्रिटेन का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी था फ्रांस। उसने ऐसा कोई क्षेत्र न छोड़ा जहाँ अंग्रेज पहुँचे, जो क्षेत्र अंग्रेजों को कब्जे में पूरे नहीं आये थे उन पर उसने कब्जा किया। जहाँ प्रतिद्वन्द्वी की पकड़ कमजोर देखी वहाँ भी वह चढ़ा दौड़ा भारत से भी उसने प्रतिस्पर्धा की और भडांस के रूप में कुछ क्षेत्रों पर उसने कब्जा जमा ही लिया। यहाँ ईस्ट इन्डिया कम्पनी पहले से ही अपनी पकड़ मजबूत कर चुकी थी इस लिए अधिक दाल न गली तो उसने पैर पसारने में इतनी सफलता पाई जिसे ब्रिटेन बाद दूसरे नम्बर की कहा जा सकता है।

उपनिवेशवादी विस्तार की जिन दिनों खुली लूट मच रही थी। उन दिनों छुट भइयों ने भी अपनी कसर में कमी न रखी। बहती गंगा में उन्होंने खुलकर हाथ धोये।

स्पेन ने अंग्रेजों से प्रतिस्पर्धा की और संसार भर में जहाँ-कहीं भी उनके लिए सम्भव हुआ पैर जमाने में चूके नहीं। इसका समुद्री बेड़ा, शस्त्र भण्डार एवं जनसंख्या सीमित होते हुये भी विस्तार में जो प्रतिस्पर्धा दिखलाई और सफलता पाई उसे आश्चर्यजनक ही कहा जा सकता है।

इस कार्य में पुर्तगाल, बेलजियम, इटली, स्वीडन, हालैण्ड जैसे यूरोप के अनेक देश हैं, उन्होंने एशिया अफ्रीका, अमेरिका, लेटिन, अमेरिका के विशाल भूखण्डों पर कब्जा जमा लिया और व्यापार के नाम पर खुली लूट आरम्भ कर दी।

विस्तारवाद में यूरोपीय देश एक-दूसरे के प्रतिद्वन्दी बने। लुटेरों में कभी एकता नहीं होती, वे सिंह भालुओं की तरह एक-दूसरे को अपने मार्ग का काँटा नहीं रहने देना चाहते और भागीदार बनने का दावा करने वाले को फाड़-चीरकर रख देते हैं। समर्थ दुर्बल को निगल लेता है। योरोप के साम्राज्यवादियों में भी यह प्रतिस्पर्धा पनपी और आपसी लड़ाइयाँ छोटे-बड़े रूप में चल पड़ीं। आधिपत्य, व्यवसाय के साथ स्वस्थ गुलाम पकड़कर अपनी जनशक्ति बढ़ाने के लाभ ऐसे थे जिनका लोभ विजेताओं में से कोई भी संवरण न कर सका। फलतः विस्तार निर्वाधन रहा वरन् प्रतिद्विन्द्वियों से निपटने का एक नया गोरख-धन्धा उभरकर और भी सामने आ गया। इस हेतु छोटी-बड़ी लड़ाइयों का दौर उसी प्रकार बढ़ता गया जिस प्रकार कि आरम्भिक दिनों में क्षेत्र विस्तार में प्रगति हुई थी।

सोलहवीं, सत्रहवीं, अट्ठारहवीं, शताब्दियों का इतिहास गोरों का समस्त भू-मण्डल पर आधिपत्य जमाने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करने से भरा हुआ है। साथ-साथ प्रगति और समृद्धि हाथ लगने पर परस्पर भिड़कर छोटों का शिकार बड़ों द्वारा झपट लेने की यह खुली छूट बिना स्पर्धा के चलती रहना थोड़े ही समय सम्भव नहीं, इसके बाद युद्धों की श्रृंखला चल पड़ी।

भारत मध्य युग में सामन्ती सत्ताधीशों के परस्पर लड़ते-मरते और समूचे देश में अशान्ति, दरिद्रता, दुर्बलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ाते रहने के लिए बदनाम रहा है। यदि ऐसा न होता तो विदेशी आक्रमण और आधिपत्य के दुर्दिन आते ही नहीं। ठीक यही स्थिति सभी अधिकृत उपनिवेशों में आरम्भ हो गई। आक्रान्ताओं की अहंता और लिप्सा ने उन्हें युद्धों के लिए उकसाया यह क्रम बढ़ता ही रहा और १६८६ से १७६७ के बीच ब्रिटेन और फ्रांस के बीच चार युद्ध हुए। इनका पक्ष समर्थ करने वाले अन्य देश का इस चपेट में आये इस शताब्दी के दोनों महायुद्ध उसी की चिन्गारी के दावानल के रूप में प्रकट होने का उपक्रम है भले ही उसके सामाजिक एवं स्थानीय कारण जो भी रहे हैं। कहना न होगा कि प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध में आक्रान्ता देशों को ही हानि नहीं हुई। गेहूँ के साथ घुन भी पिसे और सूखी के साथ गीली लकड़ी भी जलती रही समस्त संसार को न्यूनाधिक मात्रा में उस अभिशाप का त्रास भुगतना पड़ा।

साम्राज्यवादी विस्तार को देखते हुए उन दिनों ऐसा लगता था मानों अब प्रजा का अस्तित्व स्वतन्त्र रूप में कुछ रहा ही नहीं। शासक ही जनसमुदाय की जान माल के अधिपति बन गये। न किसी के पास शक्ति थी न हिम्मत, न परिस्थिति जिससे इस पराधीनता के पाश से छुटकारा पाने जैसे स्वप्न देखा जा सके।

फिर भी परोक्ष जगत में कारण बने। परिस्थितियाँ बदलीं और वह सम्भव हो सका जो कभी प्रायः असम्भव माना जाता था। एक ओर आक्रान्ता आपस में भिड़कर दुर्बल होने लगे। इससे प्रजा जनों में भी जागृति उत्पन्न हुई। लोगों को आत्मबोध हुआ। जनता ने अपनी शक्ति पहचानी, हिम्मत अपनाई। संगठित आवाज उठाई फलतः रिक्तता के स्थान पर लोकशक्ति उभरी और वह उक्ति चरितार्थ हुई जिसमें चींटियों के समुदाय ने बुद्धिमत्तापूर्वक हाथी की सूँड़ में छेद का मर्मस्थल खोजा और उसमें घुसकर उस बलिष्ठ प्राणी का अन्त कर दिया।

विगत शताब्दियों का इतिहास उपनिवेशवादी लूट-खसोट का आक्रान्ताओं के परस्पर युद्धरत होने का ही नहीं, प्रजा द्वारा शासन सत्ता पलटकर प्रजातन्त्र स्थापित करने का भी है। इस बीच ऐसे चमत्कार हुए हैं उससे असहयोग और असंगठित दीखने वाला प्रजाजन जब आक्रान्ताओं के विरुद्ध बगावत पर उतर आये तो उन्हें बाधित होकर अपनी पकड़ ढीली करनी पड़ी और सत्ता स्थानीय प्रजाजनों को सौंपकर अपनी जान बचानी पड़ी। इस सन्दर्भ में फ्रान्स की, अमेरिका की, इटली की आयरलैण्ड की राजक्रान्तियाँ विशेष रूप से समझने और मनन करने योग्य हैं। उसी आँधी तूफान में भारतीय प्रजातन्त्र ने भी सत्याग्रह संग्राम लड़ा और अपनी खोई आजादी प्राप्त की। सत्ताधीशों ने भी इसी में अपनी खैर समझी और सर्वनाश और समझदारी के बीच अपने नये निर्णयों में गलती सुधारने की नीति अपनाई। इसे जन जागृति की लहर और जनशक्ति के उदय को सफलता ही कहना चाहिए जिसके अनुसार साम्राज्यवाद और उपनिवेश वाद क्रमशः पीछे हटता गया और जन तन्त्रीय व्यवस्था ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त इस सन्दर्भ हुए परिवर्तन विशिष्ट रूप से दृष्टव्य है।

पूर्वी यूरोप के कितने ही देशों में साम्यवादी सरकारें बनीं। पश्चिमी यूरोप के कई देशों में समाजवादी एवं साम्यवादी दलों के सहयोग से सम्मिलित सरकारें बनी। ब्रिटेन, स्वीडन, नार्वे, फिनलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि देशों में समाजवादी बिचारधाराएँ पनपीं तथा जनता की सरकारें बनी। इसी काल में एशिया, अफ्रीका लैटिन अमरीकी देशों में भी लोकतन्त्र शासनों की स्थापना हुयी। चीन, वर्मा, हिन्देशिया, वियतनाम, सिंगापुर, संयुक्त अरब गण राज्य, लेबेनान, क्यूवा तथा इजराइल में भी लोकतन्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हुयी।

रूसी क्रान्ति, चीन में नेशनलिस्ट व कम्युनिस्टों की सफलता (१६२०-३० के दौरान) आदि ने उपनिवेशवाद के विरुद्ध, जन क्रान्ति को विकसित करने में वातावरण बनाया। १६२२ में इजिप्ट तथा १६३२ में इराक ब्रिटेन के हाथों से मुक्त हो गया। १६३७ में ब्रिटेन ने वर्मा को स्वतन्त्र किया। सीलोन तो १६३१ से ही स्वतन्त्र हो चुका था। भारत भी १६४७ में ब्रिटिश चंगुल से आजाद हो गया।

१६४५ ई. के पश्चात् विश्व में सर्वत्र उपनिवेशवाद लगभग समाप्त प्रायः हो चला था। इसकी समाप्ति का कारण इस प्रकार रहा—प्रथम यूनाइटेड स्टेट्स व सोवियत यूनियन द्वारा उपनिवेशवाद का खुला विरोध, द्वितीय उपनिवेशवाद की नीति के विरुद्ध सभी देशों में व्यापक जन क्रान्ति का प्रादुर्भाव, तीसरा पश्चिमी यूरोप के युद्ध से क्लांत व्यक्तियों द्वारा इस कार्य हेतु और अधिक पराक्रम कर दिखाने से इन्कार। इन तीनों ही कारणों के पीछे जागृत जनमत और बगावत पर उतारू जनशक्ति की प्रचण्ड क्षमता को ही काम करते देखा जा सकता है।

प्रजातन्त्र की सफलता के लिए हम यह करें

प्रजातन्त्र की सफलता का आधार मतदाता को देश भक्ति और दूरदर्शिता पर निर्भर रहता है। यह तत्व जनमानस में जितने अधिक विकसित होंगे उसी अनुपात से वे शासन तन्त्र सँभालने के लिए अधिक उपयुक्त व्यक्ति चुनने में सफल हो सकेंगे। श्रेष्ठ व्यक्तित्व ही किसी महत्त्वपूर्ण काम को ठीक तरह सँभालने में समर्थ हो सकते हैं। अधिक सही, अधिक योग्य और अधिक सुयोग्य हाथों में शासन तन्त्र रहे तो प्रजाजन उस सरकार के अन्तर्गत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचलित शिक्षा प्रणाली बेकारी बेरोजगारी उच्छृंखलता, उद्दण्डता तथा अपराध कृत्यों जैसी अगणित समस्याओं को किस तरह बढ़ावा दे रही हैं, इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अन्यान्य विकास के कार्यक्रमों की भी यही हालत है।

धार्मिक व्यक्ति आचरण एवं कर्तृत्व से अच्छे माने जाते हैं। पर जनजीवन की समस्याओं से दूर करने से उनकी अच्छाई का समाज को विशेष लाभ नहीं मिल पाता। होना यह चाहिए कि सत्ता में न सही नीति निर्धारणों में उनकी भूमिका हो। विशेषकर राजनीति की जनजीवन में जहाँ से शुरूआत होती है, वहाँ तो यह अपनी विशेषताओं की छाप छोड़ सकती है। अधिक अच्छा यह होता कि राजतन्त्र स्वयमेव प्राचीनकाल की भाँति धर्म तन्त्र से परामर्श प्रेरणा माँगता, उससे सहयोग लेता। पर यदि वह ऐसा नहीं करता है तो धर्म तन्त्र को अपनी भूमिका शुरू करनी चाहिए। जनमानस जिनमें से शासन के प्रतिनिधि चुने जाते हैं, उन्हें जाकर, उनके दायित्वों से परिचित कराना चाहिए। राजनीति को जन सामान्य के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए उनमें ऐसी जागृति पैदा करनी चाहिए जोकि वे अवांछनीयताओं से मोर्चा ले सकें।

उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि शरीर और प्राण की तरह परस्पर गुथे हुए धर्म और राजनीति प्राचीन काल की तरह पूरक भूमिका सम्पन्न करें। दोनों के कार्य क्षेत्र भले ही बँटे हुए हों पर एक लक्ष्य से अभिप्रेरित हों व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास, भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए दोनों का सम्मिलन आवश्यक है।'

राजनीति और धर्मनीति का समन्वय

धर्म और राजनीति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। दोनों को मिलाने से ही एक पूरी बात बनती है। दोनों को अलग-अलग रखा जाय तो अधूरापन रह जाता है और इनमें से किसी का भी प्रयोजन पूरा नहीं होता।

शासन का उद्देश्य व्यवस्था माना जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत ही सुरक्षा, शान्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, उद्योग आदि का समावेश होता है।

यह सब क्रियाएँ ठीक प्रकार कैसे चलें, इसका प्रमुख आधार एक ही है कि जनता अपने नागरिकता और सामाजिकता के कर्त्तव्यों पर आरूढ़ रहे। यदि लोग भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट आचरण पर उतारू हों तो उनकी गतिविधियों को रोक सकना मात्र कानून, पुलिस, कचहरी, जेल जैसे प्रताड़ना प्रतिबन्धों से न बन पड़ेगा। ऐसा करने पर वे कुछ दिन बन्दीगृह तो चले जाते है, पर वहाँ रहने वाले एक से एक उस्तादों द्वारा अपने विषय की अनौखी शिक्षा-दीक्षा लेकर आते हैं और ऐसे हथकण्डे सीखकर आते हैं जिससे पहले से भी बढ़कर हाथ मारना और पकड़ प्रतिबन्धों के हाथ में आना सम्भव न हो सके।

शरीर पर तथा पदार्थों पर शासन का अधिकार है। वह उन्हें खरीद सकता है या रोक बाँध भी कर सकता है किन्तु यह सम्भव नहीं कि उसके विचारों को बदल दे। सरकारी प्रचार साधन इनके लिए कम नहीं हैं कि लोगों को सुचिन्तन दिया जाय। इसके लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय भाषाओं में कितने ही सरकारी अखबार छपते हैं। पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। अनेक स्टेशनों से रेडियो बोलते हैं अब तो टी. वी. का जाल भी बिछ गया है। इनमें यों इधर-उधर की बातों की तो भरमार होती है। पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें नागरिकता, सामाजिकता अथवा धर्म के मूल सिद्धान्तों का कहीं भी पुट नहीं है। पुट रहता है पर वह लेखन, मुद्रण, पठन-पाठन तक ही सीमित है। ऐसा नहीं है कि उस आदर्शवादिता को हृदयंगम करने के लिए लोकमानस तैयार हो सके।

यह धर्म का विषय है। इसमें धर्म-धारणा और धर्म चेतना दोनों का ही समन्वय होता है। धर्म धारणा प्रतिपादनों को कहते हैं। इन प्रतिपादनों को मात्र आदेश के रूप में नियम मात्र लिखकर छोड़ नहीं दिया जाता वरन् उसके पीछे ऐतिहासिक, शास्त्रीय एवं आप्तजनों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का भी समावेश होता है। प्रभावोत्पादक प्रक्रिया इससे कम में नहीं बनती। धर्म का एक विशालकाय कलेवर है। उसमें शास्त्र, साधु-जन, ब्राह्मण, परिव्राजक और अनेकों मान्यताओं से युक्त कर्मकाण्ड होते हैं। उन कार्यों को कब किनके द्वारा क्रियान्वित किया गया, इसके मिथक, इतिहास पुराण भी जुड़े होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि धर्म प्रचारक अपना निजी चरित्र ऐसा रखते हैं जिससे स्वार्थपरता और विलासिता की कहीं गन्ध तक न आने पाये। प्रभाव व्यक्तित्व का पड़ता है। आदर्शवादी व्यक्तित्वों के ही अनेक अनुयायी बने और धर्म मान्यताओं से लेकर उलट-पुलट कर देने वाली क्रान्तियों तक के नियोजन सम्पन्न हुए। पर यह बन तभी पड़ा जब अग्रिम पंक्ति में उन आदर्शों का परिवहन करने वाले असंदिग्ध व्यक्तित्व से प्रमाणिक जन उन्हें कार्यान्वित करने के लिए आगे आये।

बुद्ध, ईसा, गाँधी, विनोबा आदि के द्वारा जो किया जा सका उसमें उनके अनुयायियों का बड़ा हाथ था। यह न रहा होता तो अकेला चना क्या भाड़ फोड़ता ? चरित्र में वह आकर्षण है कि लोग उस व्यक्तित्व के आगे तो झुकते ही हैं। साथ ही यह भी करते हैं कि उनके पालन करने में भी अपना सब कुछ न सही तो बहुत कुछ बाजी पर लगा दें। यह गुण राजनीति में नहीं है। उनकी करनी और कथनी में अन्तर देखा गया है। गाँधी जी को छोड़कर राजनीति में अन्य कोई ऐसे कदाचित ही आया हो जिसे सन्त और नेता दोनों समझा गया हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

राजनीति का भौतिक क्षेत्र पर प्रभाव है। अन्तःकरण पर धर्म का। धर्म विचारणा, आकांक्षा, भावना और दिशाधारा को प्रभावित करता है। यह प्रयोग यदि ठीक तरह चल पड़े तो उसका लाभ व्यक्ति को चरित्र निष्ठा के और संसार को समाज निष्ठा के रूप में मिला है। श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा यह तीनों ही ऐसी हैं जो व्यक्ति में मनीषा और विवेकशीलता को जगाती हैं।

आज का दुर्भाग्य है कि धर्म एक आडम्बर बनकर रह गया है यदि उसे अपने पुरातन रूप में विकसित होने का अवसर मिले तो व्यक्तिगत स्वार्थपरता की महत्वाकांक्षाएँ घटें और सत्प्रवृतियाँ उभरें जो व्यक्ति और समाज को श्रेष्ठ, समर्थ और समुन्नत बनाती हैं।

देश में ८० लाख सन्त महात्मा हैं। लगभग इतने ही गृहस्थ ब्राह्मण। इस एक करोड़ जनसंख्या का व्यय भार जनता ही वहन करती है। बदले में यह वर्ग उस कुरीतियों, अन्धविश्वासों, अनैतिकताओं, अवांछनीयताओं से छुड़ा सके तो शक्ति का आधा अपव्यय रुक सकता है। अरबों की धनराशि पूजा-पाठ के स्थान पर उन रचनात्मक कामों में लग सकती है, जो गरीबी, बेकारी, बीमारी और पिछड़ेपन की अनेकानेक दुर्गतियों से पीछा छुड़ा सकें और अवगति के स्थान पर प्रगति का नया माहौल बना सके।

जनशक्ति और साधन शक्ति से ही संसार में बड़े-बड़े काम सम्पन्न हुए हैं। उत्कृष्ट आदर्शवादिता ने ही आन्दोलनों, अभियानों में प्राण फूँके हैं। अपने समाज की गिरावट में (१) जातिगत ऊँच-नीच, (२) पर्दाप्रथा, (३) खर्चीली शादियाँ, (४) धर्म के नाम पर चलता भिक्षा व्यवसाय। यह कुरीतियाँ ऐसी हैं जिन्हें पतन और पराभव का जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। (१) नशेबाजी, (२) अस्वच्छता, (३) वृक्षों का काटा जाना (४) शहरों की घिचपिच, (५) कारखानों द्वारा उगला जाने वाला प्रदूषण, यह भी हलकी बुराइयाँ नहीं है। जनसंख्या की बेसिलसिले अभिवृद्धि को भी ऐसी ही कुप्रथा समझा जा सकता है, जिससे प्रगति के सपने टूटते दिखाई पड़ते हैं। प्रस्तुत बुराइयों को दूर करने के लिए शासन सत्ता को अपने साधनों से काम करना चाहिए। पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इतनी उलट-पुलट के लिए धर्म तत्व को पुनर्जीवन प्रदान करना और उसकी क्षमता से जनमानस का परिष्कार करना भी आवश्यक है।

धर्म और शासन दोनों की ही अपनी-अपनी उपयोगिता और महत्ता है। आवश्यकता इस बात की है कि मिल-जुलकर काम करें और दो पैरों की गाड़ी की तरह प्रगति का रथ आगे बढ़ायें।

राजनीति से बढ़कर समाज सेवा की दिशा

अपने देश का दुर्भाग्य ही है कि लोग सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश तो करना चाहते हैं पर उनका दृष्टिकोण अति संकीर्ण होता है। राजनीति को ही सब कुछ समझा जाने लगा है विधान सभाओं के चुनावों में जितने स्थान थे उन पर जितने प्रत्याशी खड़े हुये उसे देखते हुये उस वर्ग की अभिरुचि का सहज ही पता चल जाता है। दूसरे देशों में दो-तीन से अधिक उम्मीदवार कहीं नहीं होते और वे भी संगठित संस्थाओं के मंच पर ही चुनाव लड़ते हैं। उनके पीछे कुछ आदर्श होता है कुछ कार्यक्रम पर अपने देश में तो ऐसे ही भेड़िया धसान में घुस पड़ने के लिये कोई भी उम्मीदवार खड़ा हो जाता है और मतदाताओं में मतिभ्रम पैदा करके उपयुक्त प्रत्याशियों का भी मार्ग अवरुद्ध करता है।

पिछले विधानसभा के चुनावों पर दृष्टिपात करें और उसका लेखा-जोखा लें तो प्रतीत होगा कि असफल हजारों प्रत्याशी ऐसे थे जो राजनीति के वर्चस्व क्षेत्र में प्रवेश करने की लालसा से एड़ी चोटी का पसीना एक कर रहे थे, उनका करोड़ों रुपया भी इस प्रयास में खर्च हुआ। इतनी लालसा दौड़-धूप और खर्चीली राह क्यों अपनाई गई ? इस सन्दर्भ में किसी की शान में कुछ कहना उचित न होगा। हो सकता है उनमें से बहुत-से विशुद्ध देश सेवा के लिये ही राजनेता बनने के लिये उत्सुक हों। हो सकता है उनमें कुछ यश, प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये खड़े हुये हों। ऐसे कुछ ही होंगे जिन्होंने यह सट्टा इसलिये खेला हो कि सफल होने पर ऐसे दाव घात अपनायेंगे जिनसे एक के बदले दस कमाने का अवसर मिल जाय। कुछ के मन में तो बड़ी लालसा रही होगी पर परिस्थितिवश मन मारकर बैठना पड़ा होगा।

जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि कितने ही प्रतिभाशाली लोगों की लालसा सार्वजनिक क्षेत्र में आने के लिये—लोक नेता बनने—यश सम्मान पाने या ज्ञान सेवा साधन का कोई भी प्रयोजन हो सकता है, या सबका मिला-जुला स्वरूप भी ऐसा हो सकता है जो इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये लालसा उत्पन्न करे। यह उभरता हुआ तथ्य हम उन लोगों के बीच भी देख सकते हैं जो संस्थाओं के भीतर पदों की प्राप्ति के लिये धक्का-मुक्की करते हुये अवांछनीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यह संख्या कम नहीं है। लोक सेवा का आवरण ओढ़े हुये अधिकांश लोग इसी बीमारी से ग्रसित हैं। फलतः सार्वजनिक जीवन की पवित्रता नष्ट होती चली जाती है और धक्का-मुक्की करने वाले लोग भी हर दृष्टि से असफल रह रहे हैं। न उन्हें यश मिल रहा है न श्रेय। लोकसेवा तो उस ओछी मनःस्थिति में बन ही कैसे पड़ेगी ? वस्तुतः लोकसेवा के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षेत्र में जिन्हें उतरना है उनके लिये गुरुदेव का सुझाव था कि वे सामाजिक क्षेत्र में उतरें और उन कार्यों को हाथ में लें जो राजनीति की अपेक्षा अधिक ठोस और अधिक स्थायी हैं। यश और सम्मान की दृष्टि से भी राजनीति का क्षेत्र बड़ा अस्थिर और कुटिल है। जब तक एम. एल. ए., एम. पी. या मिनिस्टर हैं तब तक लोग बन्दगी करते हैं और जैसे ही वह टोपी उतरी कि सड़कें चलते मुसाफिरों से अधिक कुछ इज्जत नहीं रह जाती। उस स्वल्पकालीन सम्मान या पद को प्राप्त करने के लिये—आगे बनाये रहने के लिये किन्हीं-किन्हीं को ऐसे प्रपंच भी करने पड़ते हैं जिनसे उनकी आत्मा दिन-दिन कलुषित होती चली जाय और ईश्वर के दरबार में वह तथाकथित लोक सेवा लोकद्रोह से भी बुरी ठहराई जाय।

राजनीति में वर्चस्व प्राप्त करने के लिये लोगों की भीड़ और धक्का-मुक्की अत्यधिक है। घुसने वालों को भीतर बैठे हुये लोग रोकते हैं। भीड़ वाली गाड़ी में पायदान पर लटकते हुये चलने का जोखिम उठाने की अपेक्षा यह अच्छा है कि कम भीड़ वाला वाहन पकड़ा जाय भले ही वह देर में पहुँचे, भारत का सामाजिक क्षेत्र ऐसा है जिसमें लोकमंगल के लिये बहुत कुछ करने को पड़ा है और जिसमें काम करने की बहुत गुंजायश है। उस क्षेत्र में बिना प्रतिस्पर्धा के सच्ची लोकसेवा की जा सकती है और उस मार्ग पर चलते हुये सच्ची और चिरस्थायी यश कामना भी पूर्ण हो सकती है।

सच तो यह है कि अपने देश का पिछड़ापन दूर करने में राजसत्ता उतनी सफल नहीं हो सकती जितनी कि सामाजिक क्षेत्र में की गई सेवा साधना। हजार वर्ष की गुलामी से अपना सब कुछ खो बैठने वाले समाज में संव्याप्त नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्षेत्र के पिछड़ेपन को दूर किया जाना सबसे बड़ा काम है और उसे राजनीति द्वारा नहीं—सामाजिक सत्यप्रवृत्तियों द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

निरक्षरता की समस्या पिछड़ेपन का प्रधान चिन्ह है। सरकारी स्कूलों में नगण्य-सी बाल-संख्या शिक्षण पा रही है। प्रौढ़ और महिलाओं को मरने तक ऐसे ही निरक्षर रहने के लिये नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार वर्तमान स्कूलों को चलाने में ही चरमरा रही है। प्रौढ़ों को प्रशिक्षित करने में सरकारी खर्चीली योजनायें इतने टैक्स लगा देंगी कि उसे वहन करने से तो निरक्षर रहना ही पसन्द करेंगे। यह कार्य शिक्षितों में सेवा भावना उत्पन्न करके गली-गली, गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले प्रौढ़ पाठशालायें चलाकर ही पूरा किया जा सकता है। काम-धन्धे में लगे हुये लोग अवकाश के समय में अपनी शिक्षा वृद्धि कर सकें इसके लिये रात्रिकालीन तथा प्रभातकालीन स्कूलों की हर जगह भारी आवश्यकता है।

खर्चीली विवाह शादियाँ समाज की आर्थिक तथा नैतिक दुर्दशा का बहुत बड़ा कारण है। औसत हर शादी में दो हजार भी खर्च पड़ें और हर परिवार को एक पीढ़ी में चार शादियाँ भी करनी पड़ें तो उस मद में आठ हजार खर्च हुआ ऐसे सात लाख परिवार इस देश में हैं। इसमें शादियों पर आने वाला कुल खर्चा अरबों-खरबों हो जाता है। यह धन औसत भारतीय को या तो बेईमानी से जुटाना पड़ता है या रोटी, कपड़े, शिक्षा जैसे जरूरी कामों में कमी करके जो कर्ज लेते हैं वे और भी अधिक दुर्दशाग्रस्त होते हैं। हजारों लड़कियाँ अविवाहित रह जाती है, बूढ़ों को ब्याही जाती हैं या फिर आत्महत्या करती हैं। खर्चीली शादियों की कुरीति मिटाने से जो पैसा बचेगा उसे यदि कृषि, उद्योग आदि में लगाया जा सके तो अपने देश की सम्पन्नता अमेरिका से भी अधिक बढ़ी-चढ़ी हो सकती है।

आमदनी बढ़ने का तभी कुछ लाभ है जब अपव्यय रोके जा सकें। अन्यथा आर्थिक तंगी यथावत् बनी रहेगी। शादियों में होने वाला वर्तमान अवांछनीय खर्च यदि न रुका तो देश को चिरकाल तक ऐसी ही आर्थिक तंगी में पड़ा रहना होगा भले ही आमदनी कितनी ही क्यों न बढ़ जाय ?

नशों को ही लीजिए। केवल तमाखू दो करोड़ रुपया प्रतिदिन का पिया जाता है। शराब, भाँग, अफीम आदि मिलाकर तो वह पाँच करोड़ प्रतिदिन अर्थात् वर्ष में १८०० करोड़ रुपया नष्ट होता है। यदि यह बचाया जा सके तो उतने धन से स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की न जाने कितनी समस्यायें हल हो सकती हैं और स्वास्थ्य बिगड़ना पैसे की तंगी रहना, गृह-कलह, अपराधी प्रवृत्ति जैसी उसके साथ जुड़ी हुई बुराइयों से बचा जा सकता है।

पर्दा प्रथा के कारण नारी वर्ग की आधी जनसंख्या अपंग, अपाहिज जैसी बनाकर रख दी गई है। इस कुरीति को यदि मिटाया जा सके तो दूनी श्रम शक्ति, बुद्धि शक्ति तथा दूनी प्रतिभा राष्ट्रीय प्रगति में योगदान दे सकती है। उपार्जन बढ़ सकता है और समुन्नत वातावरण बन सकता है।

छुआ-छूत ने जन समाज के एक बड़े भाग को मानवी अधिकारों से वंचित करके उन्हें पिछड़ी स्थिति में पड़े रहने के लिये विवश कर रखा है। उनका असन्तोष और पिछड़ापन दोनों ही राष्ट्रीय प्रगति में भारी बाधक हैं। अपने समाज पर लगे हुये इस कलंक को धोया जाना आवश्यक है। जाति-पाँति के नाम पर हजारों टुकड़ों में बँटे-बिखरे अपने अगठित समाज को फिर एकता और समता के सूत्र में बाँधने की आवश्यकता है। सरकारी कानून तो हर बुरे काम के विरुद्ध बने पड़े हैं, पर उनके रहते हुये भी सब कुछ होता रहता है। छुआछूत और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाने के लिये कानून बन जाना ही सब कुछ नहीं उसके लिये अभी वातावरण बनाने के लिये बहुत काम करना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृह-उद्योगों के अभाव में महिलायें तथा वृद्ध लोग सर्वथा अनुत्पादक बनकर जीते हैं उन्हें कुछ काम मिले तो आर्थिक स्थिति सुधरे और बच्चों की शिक्षा तथा पौष्टिक आहार के साधन जुटें। इस दिशा में आवश्यक नहीं कि सरकार ही सब कुछ करे, सामाजिक क्षेत्र में भी इस दशा में बहुत कुछ किया जा सकता है।

गौरक्षा यदि सचमुच करनी हो तो गौ दुग्ध की वरिष्ठता तथा उपयोगिता से सर्वसाधारण को परिचित कराना पड़ेगा और जो लोग गोरस लेना चाहते हैं उनके लिये उपलब्ध कराने का एक विशाल तन्त्र खड़ा करना पड़ेगा। उन्हें गाय की उपयोगिता बता देने पर एक ठोस आर्थिक कारण बन जायेगा गौरक्षा सम्भव हो जायेगी।

साहित्य क्षेत्र में आज कूड़ा-करकट ही लिखा, छापा और बेचा जा रहा है। इसे निरस्त करने के लिये उसके स्थान पर ऐसा साहित्य सर्व साधारण के लिये उपलब्ध कराना होगा जो प्रगतिवादी दृष्टिकोण विकसित कर सके। चित्र और पुस्तकों में भरी अश्लीलता पर कुठाराघात किया जाना नैतिक मूल्यों की रक्षा के लिये नितान्त आवश्यक है। इस दिशा में सृजनात्मक वस्तुएँ उपलब्ध करने की वास्तविक प्रगति को ध्यान में रखते हुये अत्यधिक आवश्यकता है। बाल-साहित्य, नारी साहित्य तो ऐसा अभी लिखा ही नहीं गया जो नई पीढ़ी को—महिलाओं को आवश्यक प्रकाश दे सकने में समर्थ हो। ऐसी पत्रिकायें भी कहाँ हैं? सामाजिक क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले प्रभावशाली पत्रों का भी एक प्रकार से अभाव ही है। राजनीति का ढोल पीटने वाले अखबारों की ही भरमार है। जबकि इस देश में सामाजिक आन्दोलनों को प्रोत्साहित करने की राजनीति से भी हजार गुनी अधिक आवश्यकता है। समय की पुकार है कि इस आवश्यकता को पूरा किया जाय।

सिनेमा आज का सर्वप्रिय मनोरंजन है। देश के हजार सिनेमाओं में हर रोज लाखों आदमी देखने जाते हैं। उनमें से अधिकांश फिल्में दर्शकों पर अवांछनीय प्रभाव छोड़ती हैं और इससे नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का ह्रास होता है। इसे कोसने से काम नहीं चलेगा। संगठित रूप से यदि सृजनात्मक फिल्म बनायें जाने लगें तो उस माध्यम से भावनात्मक नव निर्माण में बहुत सहायता मिल सकती है और नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रांति का पथ प्रशस्त हो सकता है।

व्यायामशालायें गाँव-गाँव खोले जाने की आवश्यकता है। अपराधी तत्वों से निपटने के लिये सुरक्षा दल गठित किया जाना चाहिये और नागरिकों को परेड करना, शस्त्र चलाना आना चाहिये। खेल-कूदों की शिक्षा एवं प्रतियोगिता स्वास्थ्य संवर्द्धन में सहायक हो सकती है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संरक्षण के लिये व्यायाम आन्दोलन व्यापक बनाये जाने की नितान्त आवश्यकता है।

अन्न की कमी—पौष्टिक आहार की न्यूनता को देखते हुये शाक और फलों का उत्पादन आज की एक महती आवश्यकता है। सप्ताह में एक समय शाकाहार की परम्परा चल पड़े तो उससे स्वास्थ्य लाभ के अतिरिक्त अन्न की बचत भी हो सकती है। बड़ी दावतें और अनाप-शनाप जूठन छोड़ने के विरुद्ध आन्दोलन करके भी अन्न की बर्बादी का एक बड़ा भाग बचाया जा सकता है। घर आँगन में फूल एवं शाक उगाने की प्रथा चल पड़े तो उससे जहाँ सृजनात्मक प्रवृत्ति बढ़ेगी वहाँ घरों की शोभा और शाक खरीदने की बचत भी होगी। गाँव में मल-मूत्र तथा गोबर कूड़े का सदुपयोग सीखा-सिखाया जा सके तो स्वच्छता की वृद्धि तथा उपलब्ध खाद से अन्न का उत्पादन बढ़ सकता है। ऐसे छोटे किन्तु महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय प्रगति में भारी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

पुस्तकालय शिक्षित वर्ग की ज्ञान वृद्धि के लिये अति उपयोगी माध्यम हैं। हर व्यक्ति सभी जीवनोपयोगी पुस्तकें खरीदने की व्यवस्था नहीं जुटा सकता। पुस्तकालयों से इस अभाव की पूर्ति होती है। विचारोत्तेजक साहित्य वाले पुस्तकालय तथा चल पुस्तकालय लोकचिन्तन में प्रखरता लाने की आवश्यकता पूरी करेंगे।

भिक्षावृत्ति ने ८० लाख साधु-बाबाजी निठल्ले बना दिये हैं और काम कर सकने योग्य व्यक्ति भी थोड़ी-सी शारीरिक कमी होने पर भीख माँगने का व्यवसाय अपनाने पर उतारू हो जाते हैं। उन्हें काम करने के लिये विवश किया जाना चाहिये। समर्थ लोगों की भिक्षावृत्ति को चोरी, उठाईगीरी जैसे अपराधों में गिना जाना चाहिये। लोकसेवी तथा असमर्थ व्यक्ति दान पर जीवनयापन करें तो बात समझ में आती है पर समर्थ लोगों का अकारण हाथ पसारते फिरना या फिर प्रपंच करके रोटी कमाना, राष्ट्रीय चरित्र पर भारी आघात और मानवी स्वाभिमान का पतन है। अपंग, असमर्थों के निर्वाह की व्यवस्था करना समाज का कर्त्तव्य है पर भिक्षा व्यवसाय की छूट नहीं होनी चाहिये।

निरर्थक आभूषणों से विलासिता और फैशन में अपव्यय रोकने और उस बचत को उपयोगी कामों में लगाने के लिये वातावरण तैयार किया जा सकता है। बाल-विवाह—वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, वर विक्रय पशुओं के साथ बरती जाने वाली निर्दयता आदि अनेक सामाजिक बुराइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें रोकने के लिये सामाजिक स्तर पर बहुत कुछ किया जा सकता है।

ऊपर की पंक्तियों में उन थोड़ी-सी आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिलाया गया है ऐसे अनेक कार्य करने को पड़े हैं, जिन्हें हाथ में लेकर व्यक्ति एवं समाज की सर्वांगीण उन्नति में बहुत बड़ा योगदान दिया जा सकता है। ऐसे आन्दोलनों को—रचनात्मक कार्यक्रमों को—हाथ में लेने के लिये यदि संगठित प्रयास किये जायें तो निसन्देह सच्ची लोकसेवा हो सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजनीति क्षेत्र में घुसी बुराइयों को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक कि मतदाता हित अनहित में अन्तर करना नहीं सीख लेता है। वोट को राष्ट्र की परम पवित्र धरोहर समझकर उसे सही व्यक्तियों को देने के लिये सजग नहीं हो जाता। इसके लिये व्यापक लोकशिक्षण की आवश्यकता है। प्रजातन्त्र में राजसत्ता की कुंजी मतदाता के हाथ में रहती है। भ्रष्ट राज नेताओं से भी सामयिक रूप से लड़ा जा सकता है पर उसका आध्यात्मिक समाधान मतदाता के—जनता के हाथ में ही है। सो उसी को जागृत किया जाना चाहिये।

जन जागरण का प्रयोजन वे कर सकते हैं जो अपने उज्जवल चरित्र एवं निःस्वार्थ सेवा साधना से लोकमानस में अपने लिये गहरा सम्मान और स्थान बना लें। जो इसके लिये साहस कर सकते हैं, लोक श्रद्धा और यशस्विता उन्हीं के गले पड़ती है और ये ही सच्चे नेता कहलाने के अधिकारी बनते हैं।

इन्हीं रचनात्मक कार्यक्रमों को लेकर युग निर्माण योजना चल रही है। सच्ची सेवा, साधना के इच्छुक व्यक्तियों को उसका विशाल कार्य क्षेत्र तैयार किया हुआ है। उसका आधार भारतीय धर्म और संस्कृति के अनुरूप तथा युग की पुकार से ओत-प्रोत रहने के कारण जनता ने उसे सराहा ही नहीं स्वीकार भी किया है। राजनैतिक वर्चस्व प्राप्त करने के लिये लालायित लोग यदि लोक-मंगल की सेवा साधना, सामाजिक स्तर पर करने लगें तो देश का कितना बड़ा उपकार हो और उन उमंगों का भी सदुपयोग हो जो राजनीति में इधर-उधर धक्के खाती हुई भ्रमित एवं अस्त-व्यस्त होती रहती है। यदि लोकसेवा में निरत होकर जनता की सच्ची श्रद्धा अर्जित कर ली जाय तो राजनेता बनने में भी कुछ कठिनाई नहीं रहती। पर यों ही उछल-कूद के आधार पर यदि राजनेता बन भी जाया जाय तो उसमें स्थिरता कहाँ रहती है ?

परिवर्तन की आवश्यकता और भारत की प्रकृति

भारत के सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में परिवर्तन की आवश्यकता आज जितनी तीव्रता से अनुभव की जा रही है उतनी शायद स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भी अनुभव नहीं की गयी हो। उस समय धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों का एक मात्र लक्ष्य बिन्दु अंग्रेजों को भारत से हटाना था। वह लक्ष्य प्राप्त होने के बाद उस युग की विकृतियों के निराकरण की आवश्यकता लगातार अनुभव की जाती रही है। आज भी उस आवश्यकता को ज्यों का त्यों वरन् और भी अधिक प्रखर रूप में अनुभव किया जा रहा है। उसके लिये विभिन्न स्तर के प्रयास जारी भी हैं।

सामाजिक जीवन में समता और शोषण मुक्त समाज की संरचना आज की प्रमुख आवश्यकता बनी हुई है। जिन देशों ने अपने ढंग से इस लक्ष्य को प्राप्त किया उन सबके तौर-तरीके भिन्न-भिन्न रहे हैं। हमारा लक्ष्य भी यह है, पर उसके लिये भारतीय ढंग के प्रयास ही कारगर होंगे। जिन देशों ने भी समता की प्रतिष्ठा में सफलता प्राप्त की उनके तौर-तरीकों में भिन्नता इसलिये रही कि उनका निर्धारण उन देशों की प्रकृति, जनमानस की स्थिति के अनुसार किया गया। हमारे देश की प्रकृति क्या है ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। भारत की मूल प्रकृति 'धर्म' है। अपने यहाँ कोई प्रगतिशील कदम उठाया गया तो वह भी धर्म के माध्यम से और कोई विकृतियाँ फैलीं तो वे भी धर्मक्षेत्र से। प्राचीन काल में जब पशु बलि और मिथ्याचार का जोर बढ़ गया तो महात्मा बुद्ध को एक नयी ही विचारधारा का सूत्रपात करना पड़ा। बुद्ध के अनुयायियों में जब अनाचार और विलासिता फैली तो शंकराचार्य ने धर्मक्षेत्र से ही काम आरम्भ किया और जन सामान्य में घुस पड़ीं विकृतियों का निराकरण किया।

अभी सौ साल पहले ही सती प्रथा और विधवाओं की दुर्दशा मिटाने के लिये कानून तथा प्रचार उतने कारगर सिद्ध नहीं हुये जितने कि धार्मिक आन्दोलन। विधवाओं के विवाह को तब तक गर्हित ही समझा जाता रहा जब तक कि स्वामी दयानन्द और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने वैदिक तथा शास्त्रीय उदाहरणों द्वारा विधवा विवाह के पक्ष में दिये जाने वाले तक निरस्त नहीं कर दिये। स्वतन्त्रता आन्दोलन में महात्मा गांधी को जो सफलता मिली उसका सारा श्रेय उनके आन्दोलन का धार्मिक आधार ले जाता है। रामधुन, कीर्तन, महात्मा के वेश गो रक्षा आदि कितने ही धार्मिक उपचारों ने उस आन्दोलन को सफल बनाने में सहायता दी। बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों को प्रोत्साहन देने का अधिकांश श्रेय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'उपन्यास' आनन्द मठ को जाता है। आनन्द मठ में केवल संन्यासियों द्वारा क्रान्ति का ही चित्रण है। जो साधु वेश में धर्म का प्रचार भी करते थे तथा स्वतन्त्रता की आग भी भड़काते थे।

भारतीय जनमानस की प्रकृति धर्म प्रधान है और यहाँ कोई भी बड़ा परिवर्तन तभी होता है जबकि उसे धर्म का आश्रय मिल जाय। स्वामी विवेकानन्द ने इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुये कहा—यदि भारत में नास्तिक विचारधारा का प्रचार भी करना हो तो लोग इस तरह के प्रचारकों की बात तभी सुनेंगे जबकि वह धर्म की पृष्ठभूमि में कही गयी हो। भारत ही नहीं विश्व के प्रथम नास्तिक चिन्तक को 'ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्' की बात भारतीय परम्परा का अनुकरण करते हुये ही करना पड़ी थी। भोग-विलास और निन्द्य प्रवृत्तियों के अनुगामी वामाचारी साधकों को भी अपने क्रियाकलापों को निर्बाध चलने देने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिये शिव और गौरी का प्रतीक खड़ा करना पड़ा था और उसी आधार पर वे लोक सम्मान अर्जित करते हुये अपनी गतिविधियाँ निर्बाध रूप से चलाते रह सके।

वर्तमान समय में कुछ लोग ऐसे हैं अवश्य जो धर्म के नाम से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि वे धर्म तत्व से अनभिज्ञ हों। ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा तथा शील सदाचार को ही ये लोग अपना धर्म बताते हैं। धर्म की आलोचना से पहले वे अपना धर्म तो बता ही जाते हैं कि भई दूसरों का नुकसान न करते हुये अपनी उन्नति किये जाना ही अपना धर्म है और शेष सब धार्मिक क्रियाओं को हम व्यर्थ समझते हैं। अर्थात् धर्म शब्द से विमुखता यहाँ भी नहीं है, घृणा व्यक्त की जाती है तो कर्मकाण्डपरक क्रियाओं से और वह भी केवल इस कारण कि उन पर जो लोग छाये हुये हैं, वे अपना आचरण सुधारने तथा लोगों को नीति की शिक्षा देने के स्थान पर अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुये हैं। इस क्षेत्र में जमे हुये अवांछनीय तत्व उल्लू और चमगादड़ों की तरह रात को दिन तथा दिन को रात बताते हैं तो प्रबुद्ध व्यक्तियों का उनसे सहमत न होना गलत नहीं।

देखा जाय तो धर्म और अध्यात्म के कलेवर पर भोजन भट्ट स्वार्थी तथा संकुचित बुद्धि के लोगों का एकाधिकार है और वे तरह-तरह के अन्धविश्वास तथा भ्रान्तियाँ फैलाकर अपना मतलब हल करते रहते हैं। उदाहरण के लिये हाल ही में कुछेक हिन्दू धर्माचार्यों ने परिवार-नियोजन को एक घातक कार्यक्रम बताते हुये यह आशंका व्यक्त की थी कि इससे हिन्दू अल्प संख्यक हो जायेंगे। इस तर्क को कहीं भी कोई भी महत्त्व नहीं दिया गया क्योंकि विचारशील लोग जानते हैं कि किसी भी जाति की शक्ति और सामर्थ्य संख्या पर निर्भर नहीं है। उसका आधार उस जाति के लोगों की कर्मण्यता, निष्ठा और देश-प्रेम है। इंग्लैण्ड और फ्रान्स की आबादी छः करोड़ के आसपास है। रूस लगभग २३ करोड़ की आबादी वाला देश है। अमेरिका भी करीब इसी संख्या तक पहुँचता है पर ये देश अन्य जनसंख्या वाले देशों की तुलना में ताकतवर और समृद्ध है। वस्तु स्थिति से आँख मूँदकर भ्रान्तिपूर्ण वक्तव्य देने का यही प्रयोजन रहता है कि किसी प्रकार हिन्दुओं का हितचिन्तन सिद्ध किया जाता रहे। भोले-भाले और सरल धर्मप्राण लोग तो इन मोहक किन्तु भ्रामक व्यक्तव्यों से प्रभावित हो जाते हैं पर विचारशील व्यक्तियों को प्रभावित नहीं किया जा सकता। उनमें तो अश्रद्धा ही उत्पन्न होती है।

यह अश्रद्धा तब घृणा में बदल जाती है जब बर्र-ततैयों की-सी गुरुडमवाद की भनभनाहट होती है। अपने को दूसरे से ऊँचा सिद्ध करने की होड़, सामान्य शिष्टता से भी परांगमुखता आदि तो सामान्य बातें हैं। हैरानी तब और बढ़ जाती है जब साधु महात्मा स्वयं को भगवान का अवतार और जनता का मुक्तिदाता सिद्ध करने के लिये तरह-तरह की चमत्कारिक घटनायें प्रचारित करवाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रबुद्ध व्यक्ति प्रचलित धर्म के स्वरूप से उदासीन हो जायें तो कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

पर धर्मतत्व के प्रति श्रद्धा के बीज उनमें भी मौजूद हैं और वे तब प्रस्फुटित होकर सामने आते हैं जब इस क्षेत्र से कोई प्रगतिशील रचनात्मक कदम उठते हों। जन सामान्य की तो बात ही और है। उसकी श्रद्धा तो अन्ध-श्रद्धा की सीमा भी पार कर जाती है। भारत भर में फैले लगभग एक करोड़ साधु-महात्माओं का निर्वाह जो कोई उत्पादक श्रम नहीं करते, गरीब जनता अपना पेट काटकर करती है। फिर उनमें से कितनों ही को जब विचित्र सनकें उत्पन्न होती हैं—अमुक देवता ने सपना दिया है कि मन्दिर बनवाओ, अमुक जगह आश्रम बनवाना है इन सनकों को भी जनता ही पूरा करवाती है। तीर्थों में न जाने कितना पैसा लोग आने-जाने और पण्डे पुजारियों को दान दक्षिणा भेंट पूजा देने में ही खर्च कर डालते हैं। सरकारी टैक्स चुकाने में लोग आनाकानी करते हैं पर मृतक-भोज, कथा-परायण करवाने में कर्ज भी ले लेते हैं।

भारतीय जनता की धर्म श्रद्धा को देखकर ही अवसरवादी तत्वों ने धर्म क्षेत्र को जीविका और व्यवसाय का साधन बना लिया है। इन लोगों द्वारा फैलायी गयी दुर्गंध के कारण नाक बन्द कर मुँह फेर लेने वाले कुछ शिक्षित लोगों की बात और है अन्यथा भारत की अधिकांश अशिक्षित जनता इस दिशा में बड़ी आकृष्ट है और मुग्ध है। यद्यपि जनसाधारण भी फैलाये गये ढकोसलों के कारण धर्म के मूलतत्वों की ओर से उदासीन अवश्य है पर इसका अर्थ यह नहीं है उसकी आस्था सदा-सदा के लिये नष्ट हो गयी हो। उसका उखड़ना है बड़ा कठिन पर खेद है कि उखड़ता जा रहा है। कब तक लोग परलोक के प्रलोभन में अपने इहलोक को भी बिगाड़ते रहेंगे। श्रद्धा का विषय बड़ा नाजुक है। एक तो उसका जमना ही बड़ा मुश्किल है और जम गया तो उखड़ना भी बड़ा कठिन है। यही कारण है कि कोई अर्थ न समझते हुये भी लोग कथा-कीर्तन, तीर्थ, मन्दिर, साधु महात्मा तथा कर्मकांडों की ओर से विमुख नहीं हो पा रहे हैं।

अपने देश की अस्सी प्रतिशत जनता देहातों में रहती है। उनके लिये बाहरी जानकारी का एक मात्र क्षेत्र और साधन धर्म विषय तथा उसकी चर्चा ही है। घर परिवार और आपसी सम्बन्धों की बातों के अतिरिक्त उसे देश-विदेश की राजनीति, घटनाक्रम और हलचलों की कोई जानकारी नहीं रहती, सिवा धर्म चर्चा को छोड़कर। आत्मा सो परमात्मा और शरीर व देह की विलगता के आध्यात्मिक सिद्धान्त सभी को आते हैं क्योंकि प्रायः चर्चा इन्हीं की चलती है। ईश्वर, देवता, गंगा, गीता, राम और कृष्ण के सम्बन्ध में मोटी जानकारियाँ हर किसी को रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। यही नहीं वह इन सबमें आस्था भी रखता है। यही कारण है कि बेईमान तथा झूठा व्यक्ति अपनी बात को प्रमाणित करने के लिये गंगा की सौगन्ध खाने से कंपकपा उठता है। थोड़ा बहुत चालाक व्यक्ति यदि इस तरह का दुस्साहस कर भी बैठता तो उसकी आस्था को इतना जबर्दस्त आघात पहुँचता है कि वह दूसरे क्षेत्रों में घाटा उठाने लगता है।

क्या आस्था के इस गहन स्तर को यों ही व्यर्थ जाने देना चाहिये। शिक्षा का प्रसार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है और जैसे-जैसे लोग शिक्षित होते जा रहे हैं इस क्षेत्र में व्याप्त विडम्बनाओं से घृणा करते जा रहे हैं, विमुख हो रहे हैं। इसलिये उचित यही है कि समय रहते प्रतिगामी तत्वों पर अंकुश लगाया जाय और लोगों की धर्मश्रद्धा को प्रगतिशील बनाया जाय। लोगों में धर्म श्रद्धा विद्यमान है और वह आस्था के महानतम स्तरों को छू रही है। यदि उस आधार पर कर्मकाण्डों को प्रगतिशील ढंग से सम्पन्न कराया जाय, उनमें निहित प्रेरणाओं और शिक्षाओं को भली भाँति उभारा जाय तो नव निर्माण की आवश्यकता एक बड़ी सीमा तक पूरी हो सकती है। धर्मतन्त्र की अपनी शक्ति है और जनता रूपी महाकाय शरीर उसके अधीन है। यदि धर्मतन्त्र के माध्यम से उसे सही दिशा दी जाय, तो परिवर्तन के लिये उपयुक्त आधार बन सकता है। फिर इस वीणा के बिखरे तारों से नये युग की रागिनी चिरकाल तक बजती रह सकती है।

जनता के सुप्रीम कोर्ट में समस्याओं के समाधान की गुहार

हाथ, पैर, मुँह, आँख, कान इन पाँच अवयवों द्वारा ही प्रायः समस्त महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ संचालित होती हैं। अन्य अंग तो उनके सहायक भर प्रतीत होते हैं। ठीक इसी प्रकार समाज की महत्त्वपूर्ण विधि-व्यवस्था की सूत्र संचालन पुरोहित, शासक, मनीषी, कलाकार, श्रीमन्त वर्ग के लोग सम्पन्न करते हैं। इन्हीं का कौशल समूचे मनुष्य समुदाय को प्रभावित करता है। इनकी क्षमताओं एवं योजनाओं के कारण ही प्रायः उत्थान-पतन का वातावरण बनता है। सुख शान्ति की अथवा अभाव विग्रह की परिस्थितियों का उत्पन्न होना भी प्रायः इन्हीं पाँच समुदायों पर अवलम्बित रहता है। इतिहास में इन्हीं मूर्धन्य वर्गों के लोग श्रेय पाते अथवा भर्त्सना भाजन बनते रहे हैं। जन समुद्र के मन्थन का इन वर्गों को नवनीत कहा जाता रहा है।

इन दिनों व्यक्ति और समाज की स्थिति क्रमशः अधिकाधिक विपन्न विषम होती जा रही है। व्यक्ति चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से निरन्तर घटता-गिरता जा रहा है। फलतः रुग्णता, दरिद्रता, उद्विग्नता से आक्रान्त रहना पड़ रहा है। समाज में छद्म और अनाचार ने गहरी जड़ें जमा ली हैं। फलतः विग्रहों, संकटों के घटाटोप अधिकाधिक गहरे होते जा रहे हैं। अणुयुद्ध, प्रदूषण, अपराध, प्रजनन, अभाव टकराव के साथ-साथ दैवी प्रकोपों की ऐसी शृंखला चल पड़ी है, जिसे देखते हुये लगता है कि निकट भविष्य में सभ्यता सम्पदा का ही नहीं, मानवी गरिमा और सत्ता का भी अन्त होने जा रहा है।

आखिर यह सब हुआ कैसे ? 'स्वर्गादपि गरीयसी' यह धरती नारकीय परिस्थितियों से कैसे भर गई ? सतयुग का वातावरण कहाँ तिरोहित हो गया ? परिस्थितियों ने ऐसा आश्चर्यजनक पलटा कैसे खाया ? इन प्रश्नों का उत्तर तलाशने के लिये उन्हीं पाँच वर्गों का निरीक्षण परीक्षण करना होता है। तनिक गहराई से विचार करने पर तथ्य उभरकर सामने आते हैं कि मूर्धन्यों के पाप का प्रतिफल सर्व साधारण को सहन करना पड़ रहा है।

जन मानस में उत्कृष्टता संजोये रहने का उत्तरदायित्व शपथपूर्वक वहन करने वाला पुरोहित वर्ग यदि लेखनी, वाणी और धर्म कृत्यों के माध्यम से लोकमानस को आदर्शों के साथ जोड़े रहता तो इन दिनों दुर्गति के कारण जो दुर्गति दृष्टिगोचर हो रही है, उसे दुर्भाग्य की तरह सहन न करना पड़ता। आज भी धर्मतन्त्र के निमित्त भावना और सम्पदा का नियोजन हो रहा है। पर बदले में निहित स्वार्थों को ही परिपोषण मिलता है, जनता तो बदले में भ्रान्तियों और विकृतियों की विडम्बना ही गले बाँधकर सिर धुनती है।

बात विश्व परिस्थितियों के सन्दर्भ में चल रही है। अब दुनिया इतनी छोटी हो गई है कि किसी धर्म देश, वर्ग आदि की सीमा में स्थायी समाधान नहीं ढूँढ़े जा सकते हैं। मूर्धन्यों से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष की प्रतिभाओं से नहीं जोड़ा जाना चाहिये वरन् पर्यवेक्षण एवं निराकरण व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर विश्व व्यवस्था में सन्तुलन बिठाने के निमित्त ही किया जाना चाहिये।

धर्म के उपरान्त शासन का क्षेत्र आता है। इन दिनों शक्ति एवं साधनों का केन्द्रीयकरण प्रायः उसी के हाथ में चला गया है। शासन क्षेत्र के मूर्धन्य यदि अपने क्षेत्रों का सुनियोजन करें, दूसरों को चूसने-मिटाने की न सोचें, झंझटों का निपटारा विश्व अदालत के माध्यम से कर लें, विश्व राष्ट्र विश्व भाषा, विश्व व्यवस्था और विश्व संस्कृति के सूत्र अपनाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की नीति पर चलें, तो ध्वंस में लगा हुआ कौशल एवं वैभव-सृजन की दिशा में उलट सकता है और परिस्थितियों में जमीन आसमान जैसा अन्तर हो सकता है।

शासन तन्त्र की सामर्थ्य पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। वह चाहे तो साहित्य और कला के क्षेत्र में जो अवांछनीयता बढ़ती जा रही है, नशेबाजी के द्वारा जो बर्बादी हो रही है उसे आत्महत्या की तरह सहज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही निषिध घोषित कर सकता है। अपराधों के दमन में यदि कठोरता का दबाव बढ़ा दिया जाय, तो आततायियों के हौंसले देखते पश्त हो सकते हैं। बड़े उद्योगों को यदि देहातों में छोटे कुटीर उद्योगों की तरह विकेन्द्रीकृत कर दिया जाय, तो न केवल प्रदूषण की घिचपिच की समस्या हल हो सकती है, वरन् हर हाथ को काम मिलने से गरीबी, बेकारी, बीमारी अशिक्षा जैसी अनेकों समस्याओं का हल निकल सकता है।

ऐसे-ऐसे अनेकों महत्त्वपूर्ण प्रसंग हैं, जो शासन तन्त्र की रीति-नीति में उपयोगी परिवर्तन होने भर से प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में बदल सकते हैं।

पुरोहित और शासक वर्ग की तरह ही मनीषियों वैज्ञानिकों साहित्यकारों का बुद्धिवादी समुदाय आता है, वे अपनी वृत्तियों को यदि पशु-प्रवृत्तियों के पोषण से विरत करके लोकमानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन में नियोजित कर सकें, तो इतने भर से भी वे उद्देश्य पूरे हो सकते हैं, जिनके लिये धर्मध्वजी शासनाध्यक्षों का दरवाजा खटखटाना पड़ता है।

श्रीमन्तों की अपनी दुनिया है। वे सम्पदा के बल पर भगवान तक को खरीदने का दावा करते हैं। शासक पुरोहित, मनीषी, कलाकार तो क्रीत-दासों की तरह उनकी जेब में रहते ही हैं। वे अगर चाहते तो कुबेर सम्पदा एवं इन्द्रिय विलासिता बटोरने की अपेक्षा अपना धन सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों में एक उपयोगी उद्योग की तरह लगा सकते थे। सीमित लाभांश पर सन्तोष करके अपने कौशल को धन्य कर सकते थे। पर वे भी किसी से पीछे क्यों रहें ? जब पुरोहित, शासक, मनीषी, कलाकार अपनी प्रतिभा का उपयोग हेय प्रयोजनों के लिये करने में निरत हैं, तो श्रीमन्तों को ही क्या पड़ी है, जो आदर्शों के झंझट में पड़ें और अधिक परिश्रम करके कम कमाने की बात पर कान धरें ?

उपर्युक्त पाँच मूर्धन्यों के हाथ में संसार के उत्थान-पतन का असीम क्षमता विद्यमान है। वे यदि सीधे रास्ते पर चल सकें होते, तो आतंक, अभाव, विग्रह, संकट और पतन-पराभव के यह दुर्दिन देखने को न मिलते। सर्वनाशी विभीषिकाओं से आतंकित न होना पड़ता।

मानवी गरिमा, शान्ति और समृद्धि के लिये, प्रस्तुत संकट के लिये लगता है उपर्युक्त वर्गों ने अपने उत्तरदायित्वों की गरिमा प्रत्यक्षतः स्वीकार करते हुये भी परोक्षतः इन्कार कर दिया है। टालने और बहाना बनाने में तो कोई दोषी भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने वाले तर्क, प्रमाण और कारण प्रस्तुत कर सकता है। पर वास्तविकता यह है कि इन वर्गों ने, संकीर्णता से ऊँचे उठकर लोक-मंगल को प्रमुखता दी होती, तो स्थिति वह न रहती जो आज है। यदि वे चाहें तो अब भी अपनी रीति-नीति में मौलिक परिवर्तन करने के लिये ईमानदारी से तैयार हों, तो उलटी परिस्थितियों को उलटकर सीधी करने में देर न लगे।

जो माहौल सामने है, उसमें ऐसे परिवर्तन के लिये अनुरोध आग्रह करने पर भी यह आशा बँधती नहीं है कि प्रवाह जिस तेजी के साथ पतन के गर्त में अधिकाधिक द्रुतगति से गिरता चला जा रहा है, वे बिना किसी अतिरिक्त दबाव के परिवर्तन हेतु सहमत हो सकेंगे। वह दूरदर्शिता अभी मनुष्य के भाग्य में बदी नहीं दीखती जिसके सहारे व्यक्तियों या समुदायों को अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता छोड़कर विश्वहित की भावना से पुण्य परमार्थ का स्नेह सौजन्य का मार्ग अपनाना पड़ता है। निहित स्वार्थों की सरलतापूर्वक पूर्ति का चस्का जब किसी को लग जाता है, तब उसे अनुरोध उपदेशों से बदल सकना कठिन होता है। प्रत्यक्षतः आदर्शों का समर्थन और परोक्षतः उनका उन्मूलन आज का मान्यता प्राप्त चातुर्य है। इसके चंगुल से छूटने के लिये या तो दूरदर्शी विवेक उभरे अन्यथा फिर दूसरा उपाय दवाब का ही रह जाता है। कहना न होगा कि दवाबों से जागृत लोकमत का दबाव सबसे अधिक प्रचण्ड, समर्थ एवं कारगर सिद्ध होता है। वर्तमान परिस्थितियों में इसी आधार पर किसी ठोस परिणाम की आशा की जा सकती है।

मानवी गरिमा, सुरक्षा, स्थिरता और प्रगति के लिये अपनी फरियाद उपरोक्त पाँचों अदालतों में कर चुकी है। सभी ने मौखिक सहानुभूति तो दिखाई है, पर कोई कारगर सहायता करने से इन्कार स्तर की विवशता व्यक्त कर दी है। एक ने दूसरे को दोषी और अपने को निर्दोष ठहराया है। झंझट में पड़ने, आगे बढ़ने और परिवर्तन अपने से आरम्भ कराने के लिये कोई तैयार नहीं, ऐसी दशा में शुतुरमुर्ग की तरह निराश होकर बालू में मुँह छिपा लेना और शिकारी का रास्ता साफ करके मौत के मुँह में जा बैठना हो तो बात दूसरी है अन्यथा बचाव का कोई उपाय सोचना होगा। निराशा और निष्क्रियता अपनाकर तो प्रत्यक्ष या परोक्ष आत्महत्या ही पल्ले बँधती है। जीवन्तों के लिये इस स्थिति को स्वीकारना अपने पौरुष को लज्जित करने जैसे कलंक ओढ़ने की बात है।

मानवी गरिमा ने उपरोक्त पाँच छोटी अदालतों में मुकदमा हार जाने के उपरान्त अब जनता के सुप्रीम कोर्ट में अपनी फरियाद पेश करने का निश्चय किया है। जागृत जन शक्ति की गरिमा असीम है। उसकी तुलना संसार की और किसी सामर्थ्य से नहीं हो सकती। सरकारें उसी के दिये हुये टैक्स पर पलती हैं। श्रीमन्तों को धनी बनाने में उसी का परिश्रम छन-छन कर तिजोरियों तक पहुँचता है, साहित्यकार उसी की खरीद पर जेबें भरते हैं। कलाकार उसी को रिझाकर कंधे उचकाते हैं। पुरोहित को दान दक्षिणा का दूध इसी गाय के थनों से निचुड़कर उपलब्ध होता है। अपराधी उसी को नोचते खसोटते हैं। अणु आयुधों के लिये विस्फोटक खोद-खोद कर जन शक्ति ही पहुँचाती है। सम्पदा और सफलता का जैसा भी कुछ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भला-बुरा ढाँचा खड़ा है उसे जन शक्ति के अनुदान का एक अंश ही कह सकते हैं। भले ही वह छल-बल के द्वारा ही हस्तगत क्यों न किया गया हो ?

पदार्थों की शक्ति प्रकृति के अन्तराल में छिपी पड़ी है। परब्रह्म की सत्ता और महत्ता का प्रत्यक्ष दर्शन एवं मूल्यांकन करना हो तो उसे मनुष्य समुदाय के पराक्रम में सन्निहित देखा जा सकता है। जनता कामधेनु है। उसके सहस्र थन हैं। उनमें से पुरोहित, शासक, श्रीमन्त, विद्वान् कलाकार स्तर के मूर्धन्य अपने कौशल से अधिक दोहन करने और अधिक समर्थ बनने में सफल हुये हैं। इतने पर भी यह मानकर नहीं चलना चाहिये कि इस दोहन के उपरान्त उसके पास कुछ बचा ही नहीं। उपार्जन की विपुल सम्पदा से इसके अतिरिक्त भी इतना बचता है, जिससे वह अपना निर्वाह करती और प्रगति एवं क्षतिपूर्ति का सरंजाम जुटाती है। इस जन शक्ति को यदि प्रस्तुत समस्याओं के सम्बन्ध में नये सिरे से विचार करने नये निर्धारण एवं प्रयास अपनाने के लिये सहमत किया जा सके, तो समझना चाहिये उस महान् परिवर्तन की संभावना सुनिश्चित हो गई जिसके अनुसार विनाश को निरस्त और विकास को प्रशस्त किया जाना है।

प्रागैतिहासिक काल की खड्ड टीलों वाली अनगढ़ कुरूप पृथ्वी को मानवी पौरुष ने ही सुरम्य उद्यान जैसी शोभा सुषमा से सुसज्जित किया है। आदिम काल के वन मानुष को सृष्टि को मूर्धन्य बनने का सुयोग इसी आधार पर मिला है। ज्ञान विज्ञान की अनेकानेक धाराओं का उसी से उद्भव हुआ है। सुविधा साधनों से लेकर कला, सौन्दर्य और शस्त्र-सज्जा तक की अनेकानेक विभूतियों पर जिसके द्वारा अधिपत्य मिला है, उसे जन शक्ति का पराक्रम ही कह सकते हैं। स्रष्टा का प्रत्यक्ष चमत्कार इसी की परतें उघाड़ते हुये देखा जा सकता है।

पिछले दिनों अनेक बार अवांछनीयताओं के संकट घिरे हैं। लगा है कि अब डूबने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। पर जब जनता का पौरुष अवतार बनकर उभरा-उतरा, तो संकटों में से एक के लिये भी पैर टिकाये रह सकना सम्भव न हो सका वृत्रासुर, महिषासुर, भस्मासुर जैसे अगणित दुर्दान्तों का वध इसी महाकाली द्वारा बन पड़ा। राज क्रान्तियाँ, समाज क्रान्तियाँ, अर्थ क्रान्तियाँ, विचार क्रान्तियाँ इसी के करवट बदलने पर सम्भव होती रही हैं। आज की विषम बेला में यदि जल शक्ति का जागरण सम्भव हो सके उसे प्रस्तुत अनौचित्य से निपटने के लिये कटिबद्ध किया जा सके, तो समझना चाहिये चिरस्थायी समाधान हस्तगत हो गया। जनता को सुप्रीम कोर्ट इसी दृष्टि से कहा गया है और उसकी अदालत में समय की विपन्नता को बदलने का दावा पूरे तर्क, तथ्य, प्रमाण और उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है।

शासनतन्त्र के लिये कुछ व्यावहारिक सुझाव

समाज संगठन का सशक्त स्वरूप अब सरकार को ही माना जाना चाहिये। कोई समय था, जब अनुभवी, ईमानदार और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को पंच बना दिया जाता था और वे सद्व्यवहार की सत्परम्परायें चलाते रहने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। ऐसे अवसर कम ही आते थे, जिनमें सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन किया गया हो और अपराधियों को प्रताड़ना, भर्त्सना एवम् क्षतिपूर्ति के लिये बाधित होना पड़ा हो। इस प्रक्रिया में निश्चयों को कार्यान्वित करने में विलम्ब भी नहीं लगता था। वादी-प्रतिवादियों के सिर पर न्याय-व्यवस्था का कोई खर्च भी नहीं पड़ता था। गवाहों की खाना-पूरी करने की अपेक्षा पाँच लोग ही झंझटों की तह तक वस्तुस्थिति का पता लगा लेते थे। साक्षी मात्र प्रतिष्ठितों की न्यायप्रिय लोगों की ही उपयुक्त मानी जाती थी। भाड़े के अप्रमाणिक व्यक्तियों की भीड़ लगाने को कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। दूर न्यायालयों में जाने का खर्च भी नहीं पड़ता था और समय भी व्यर्थ नहीं जाता था। पंचायतें सत्प्रवृत्तियों के संचालन और दुष्प्रवृत्तियों के दमन का कार्य स्वयं ही कर लेती थीं। उनके पीछे लोकमत होता था। इसलिये निर्देशनों के उल्लंघन की हिम्मत भी किसी की नहीं पड़ती थी। केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप तब करना पड़ता था, जब पंचायतों के निर्णय से अधिक का कोई झंझट सामने आता था। देशों की सीमा-सुरक्षा की जिम्मेदारी भी वे सरकारें ही उठाती थीं। उनके खर्च के लिये लोग अपने उपार्जन का छठा अंश राज्य कोष में पहुँचा देते थे।

अब वह समय नहीं रहा। पंचायतें दुर्बल हो गईं। उसका कार्य सरकार को करना पड़ रहा है। शिक्षा, चिकित्सा, संचार, परिवहन आदि के लोकोपकारी कार्य भी उसी के जिम्मे हैं और अपराधियों से भी वही निपटती है। बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक विग्रहों को दबाना भी उसी का काम है। अपने देश में प्रजातन्त्र है। प्रजा द्वारा चुने हुये प्रतिनिधि ही सरकार के छोटे-बड़े संस्थानों को चलाते हैं। अफसर और कर्मचारी निर्धारित कार्यों की पूर्ति के लिये अपना पूरा समय लगाते हैं।

शासन का स्वरूप जनता द्वारा, जनता के लिये राज्य करना है। इसकी प्राथमिक और सर्वोपरि सत्ता मतदाता के हाथ में है। इसलिये सुशासन के लिये आवश्यक है कि मतदाता दूरदर्शी और विवेकवान हों। ऐसे व्यक्तियों को मत दें, जो सच्चरित्र और सुव्यवस्था की कसौटी पर खरे सिद्ध हो सकें। अपना परिचय और मन्तव्य संक्षेप में मतदाताओं को बता दें। यह प्रचार कार्य इतना महँगा नहीं होना चाहिये कि प्रत्याशी को अपने बर्तन बेचने पड़ें। न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मतदाता उनसे किसी प्रत्यक्ष-परोक्ष रिश्वत् की आशा करें। अच्छा हो, प्रबुद्ध मतदाता ही चुनाव की प्रक्रिया अपने कंधों पर उठायें और प्रत्याशी को चापलूसी या धन-बर्बादी के लिये बाधित न होना पड़े। जिस प्रकार प्रतिनिधि चुनने का अधिकार जनता को है, उसी प्रकार उसे यह भी अधिकार रहे कि अयोग्य या अपराधी सिद्ध होने पर उसे, उसी मतदान द्वारा वापस बुला सकें।

जन प्रतिनिधि कानून एवं संविधान बनाते या नीति निर्धारित करते हैं। निर्णयों को कार्यान्वित करने का दायित्व अफसरों या कर्मचारियों का होता है। इसलिये उन्हें नियुक्त करते समय मात्र उनकी शिक्षा ही नहीं, पिछले जीवन की नीतिमत्ता एवं सेवा भावना भी परखी जानी चाहिये। इन दिनों यह नियुक्तियाँ २१ से २५ वर्ष तक की आयु वालों की होती हैं। इसमें परिवर्तन होना चाहिये। अनुभव ३० वर्ष से कम आयु में किन्हीं विरलों में देखा गया है। अनुभवहीनों को मात्रा शिक्षा के आधार पर महत्त्वपूर्ण पद देना गलत है। जिनका सरकार पर प्रभाव है, राजनीति में दखल है, वे बड़ी आयु के अफसरों की नियुक्ति पर जोर दें। वे आलसी प्रमादी न हों, रिश्वतखोरी न करें—इनकी जाँच-पड़ताल करते रहना, सरकार का अपना काम है। इन दिनों जनता में रिश्वत देने वाले और अफसरों में लेने वालों की संख्या बढ़ गई है। फलतः अनुचित कार्य होते रहते हैं और उचित मार्ग अपनाने वालों को हैरानी का सामना करना पड़ता है। यह प्रक्रिया रोकी न जा सकी, तो न्याय और नीति के पैर उखड़ जायेंगे और अनौचित्य की तूती बोलेगी।

न्यायपालिका एवं कार्यपालिका की विधि ऐसी हो कि कम से कम समय में प्रतिवेदनों का निपटारा हो जाया करे। इन दिनों निर्णयों में बहुत समय लगता है और तारीखें बार-बार आगे बढ़ाई जाती रहती हैं। इसे 'लालफीताशाही' कहते हैं। इस कारण सरकार से जो आशा की जाती है, वह बहुत महँगी पड़ती है, फलतः संबद्ध व्यक्ति बुरी तरह खीजते हैं और विश्वास उठ जाने से कानून अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रक्रिया के कारण नये किस्म के नये उपद्रव उठ खड़े होते हैं, मूल बात पीछे रह जाती है।

शासन तन्त्र बहुत महँगा हो गया है इसलिये हर क्षेत्र में टैक्सों की बढ़ोत्तरी निरन्तर होती जाती है। शासन इतना खर्चीला न हो। आवश्यकता से अधिक लोग न रखे जायें, वेतन इतना हो जितने में देश का मध्यवर्ती समाज गुजारा करता है। इन दो बातों पर ध्यान दिया जाय और कर्मचारियों की चुस्ती-फुर्ती एवं ईमान की विश्वस्त जाँच-पड़ताल होती रहे, तो जनता और अफसरों के बीच जो खाई चौड़ी होती जाती है, वह न हो। इन दोनों के कारण सरकार की लोकप्रियता घटती है और जन-साधारण की देशभक्ति-भावना में कमी आती है। लोग सरकारी निर्देशनों, सुझावों, योजनाओं पर ध्यान भी नहीं देते हैं। यह स्थिति सरकार और जनता दोनों के लिये ही अशोभनीय है।

अपराधियों को दण्ड मिलने की प्रक्रिया इतनी झंझट भरी तथा हल्की है कि उसका दबाव अपराधियों पर नगण्य जितना पड़ता है। उनमें से अधिकांश कानूनी पेचीदगियों के कारण तथा गवाह न मिलने के कारण, छूट जाते हैं, जमानत पर छूट जाने से वे फिर आतंक पैदा करते हैं और गवाहों को धमकाते हैं। यदि सचुमुच ही अपराधों में—अपराधियों में—कमी करनी है, तो दण्ड व्यवस्था कड़ी होनी चाहिये और पीड़ित पक्ष को गवाहियाँ जुटाने के दायित्व से मुक्त करना चाहिये। वस्तुस्थिति का पता लगना, सरकार और पंचायत तन्त्र की किसी समन्वित समिति के हाथ सौंपा जाय। अन्यथा अपराधियों को दण्ड मिलना सम्भव न रहेगा।

कर चोरी और काले धन की वृद्धि में जहाँ व्यापारी दोषी हैं। वहाँ कर लगाने व वसूल करने की वर्तमान पद्धति भी कम दोषी नहीं है उत्पादन कर एक जगह लगा दिया जाय और हर साल का लेखा-जोखा लेने में आमदनी बढ़े, उस पर टैक्स ले लिया जाय। ऐसे ही दूसरे तरीके भी हो सकते हैं, जिनके कारण कर चोरी और काले धन की अभिवृद्धि निरन्तर होती जाती है। यदि यह दबाया हुआ पैसा खोजा जा सके, तो उससे उद्योगों की वृद्धि हो सकती है और बेरोजगारी घट सकती है।

देहाती उपयोग की वस्तुयें कुटीर उद्योग के अन्तर्गत गाँवों में ही बनें। बड़े मिलों को उनकी प्रतिद्वन्द्विता न करने दी जाये। सरकारी तन्त्र के अन्तर्गत कच्चा-माल देने, बना माल खरीदने की व्यवस्था रहे, तो लाखों-बेरोजगारों को काम मिल सकता है। बेरोजगारी के कारण, जो अनेकों प्रकार के विग्रह पनप रहे हैं, उनमें रोकथाम हो सकती है।

शिक्षा का ऐसा क्रम बने कि जूनियर हाईस्कूल स्तर की शिक्षा को व्यापक बनाया जाय। उसको व्यक्तिगत आधार पर भी पनपने दिया जाय। जीवन में निरन्तर काम आने वाले शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक विषयों का इस अनिवार्य शिक्षा में समावेश हो। इतिहास भूगोल, रेखागणित जैसे काम न आने वाले विषयों का परिचय मात्र एक पुस्तक में करा दिया जाय। इसी बीच गृह उद्योगों का व्यावहारिक शिक्षण भी चलता रहे। कॉलेज स्तर की शिक्षा को प्रोत्साहन न दिया जाय, जो विशेषज्ञ बनना चाहें, उन्हीं के लिये कॉलेजों के द्वार खुले रहें। नौकरी के लिये पढ़ाई का भ्रम विद्यार्थियों और अभिभावकों के मन में से निकाल दिया जाना चाहिये।

विविध विषयों की रात्रि पाठशालाओं की नई व्यवस्था चले, महिलाओं के लिए मध्याह्न पाठशालाओं की। इनमें साहित्य विषय कम और व्यावहारिक विषयों की बहुलता रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वार्षिक परीक्षाओं की पद्धति दोषपूर्ण है, उसमें अयोग्य लड़कों को हथकंडों के आधार पर उत्तीर्ण होने की बहुत गुंजाइश है। मासिक या द्विमासिक परीक्षायें होने लगें। मात्र पुस्तकीय ज्ञान न आँका जाय, वरन् प्रतिभा चरित्र एवं लोकसेवा जैसे विषयों में भाग लेने की जाँच-पड़ताल होती रहे। इन मासिक परीक्षाओं के अंक जोड़कर ही वार्षिक परीक्षा मान ली जाय।

भारत में सामाजिक कुरीतियों की भरमार है। धर्म निरपेक्षता के नाम पर, इच्छा चलते रहने की छूट न मिलनी चाहिए। समाज-सुधार के कुछ कानून हिन्दू सम्प्रदाय के लिए बने हैं, जबकि दूसरे सम्प्रदाय उनसे मुक्त रखे गये हैं। बहुविवाह, पर्दाप्रथा—जैसी बुराइयाँ सभी वर्गों से हटानी चाहिए।

आरक्षण जाति विशेष को न दिया जाय, जिनकी सामाजिक या आर्थिक स्थिति सचमुच गिरी हुई है, उन सभी को आरक्षण का लाभ मिले, जबकि आजकल अनुसूचित जाति के नाम पर सुसम्पन्नों को भी वह लाभ मिलता है, जो वस्तुतः पिछड़ों को मिलना चाहिए। इन दिनों वनवासी–आदिवासी वर्ग सचमुच ही ऐसा है, जिनको जन-सामान्य के स्तर तक लाने की विशेष चेष्टा की जानी चाहिए।

प्रौढ़ शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ७० प्रतिशत प्रौढ़ों की शिक्षा उपेक्षणीय नहीं है। पुरुषों के लिए रात्रि पाठशालायें और महिलाओं के लिए अपराह्नशालाएँ स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से चलाई जायें। इसके लिए ऐसी संस्थाओं के संगठन और संचालन के लिए शासक समुदाय अपने प्रभाव का उपयोग करके लोकसेवी संस्थाओं के निमित्त आवश्यक उत्साह पैदा करें।

बाल-विवाह, बहु-विवाह और बहुप्रजनन, बड़े प्रीतिभोज, भिक्षा-व्यवसाय के विरुद्ध कड़े कानून लागू किये जायँ। ढीले-पोले कानूनों का रहना न रहना समान है। यदि इन सामाजिक बुराइयों को सचमुच ही रोकना है, तो लोगों की नाराजी का—वोट कटने का—ध्यान रखे बिना, इन्हें कड़ाई से लागू करना चाहिए और अपराधियों को ऐसे दण्ड देने चाहिए जिससे दूसरों के कान खुलें।

कन्या शिक्षा के पाठ्यक्रमों में उन विषयों को जोड़ा जाय, जो उनके पारिवारिक जीवन के हर पक्ष पर प्रकाश डालते हों, साथ ही आपत्ति के समय कुछ कमा सकने जैसे गृह उद्योग भी आवश्यक रूप से पढ़ाये जायें। इन विषयों को बढ़ाने के लिए उनको कम किया जा सकता है, जो स्कूल छोड़ते ही विस्मृत हो जाते हैं और कभी किसी काम नहीं आते।

छात्र संस्थाओं की मारफत विद्यालयों में सादा जीवन–उच्च विचार की विद्या कार्यान्वित की जाय। इन दिनों वहाँ के वातावरण में उच्छृंखलता के तत्व प्रवेश करते जा रहे हैं इसे निरस्त करने के लिए अध्यापक और विद्यार्थी मिल-जुलकर काम करें।

स्वयंसेवी संगठनों की मारफत प्रौढ़ शिक्षा की ही तरह हर गाँव में व्यायामशाला की स्थापना कराई जाय, जिसमें हर स्तर के बाल-वृद्धों की उनकी स्थिति के अनुरूप व्यायाम करायें। इसके साथ ही स्वस्थ रहने से सम्बन्धित सभी विषयों का संक्षिप्त समावेश हो। फर्स्ट एड, रोगी परिचर्या, धात्री कला, शिशु-पोषण जैसे विषय इन व्यायाम-शालाओं के साथ ही बौद्धिक शिक्षा के रूप में पढ़ायें जायें।

प्रौढ़ शिक्षा और व्यायाम आन्दोलन के लिए ऐसी पाठ्य पुस्तकें रहें, जिनमें आज के व्यक्ति, परिवार और समाज की सभी समस्याओं का स्वरूप और समाधान संक्षेप में, किन्तु सारगर्भित रूप से मौजूद हो।

देहातों में ग्रामीणों के सामने उपस्थित सभी समस्याओं के कारण और निवारण बताने वाले छोटे १६ मिलीमीटर के सिनेमाघर बनाये जायें। जिसके टिकट स्वल्प दामों के हों। उनके लिए सस्ते दामों पर दिखाने के लिए रचनात्मक एवम् सुधारात्मक फिल्में शान्ति कुन्ज जैसी संस्था बनाती रहें और उसे व्यापक रूप से छोटे-छोटे गाँवों तक पहुँचाने का प्रबन्ध किया जाय। यह सोचना सरकार हाथ में लेने के झंझट में न पड़ना चाहे, तो स्वयं सेवी संस्थाओं को यह काम सौंपा जा सकता है।

देश में डॉक्टरों, प्रशिक्षित नर्सों एवं इंजीनियरों की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके लिए पाँच वर्ष वाला कोर्स थोड़े-से प्रतिभावान् एवं सम्पन्न लोग ही पूरा कर सकते हैं। सरकार इनके डिप्लोमा कोर्स दो-दो वर्ष के बनाये और उन्हें देहाती क्षेत्रों में काम करने के लिए भेज दें। ग्राम प्रधान देशों में से कइयों ने ऐसे डिप्लोमा कोर्स जारी किये हैं।

शहरों की बढ़ती आबादी और देहातों से भगदड़—यह दोनों ही हानिकारक हैं। इसका विकल्प कस्बों को विकसित किया जाना है। कस्बों में उद्योग लगाये जायें और आस-पास के गाँव के लिय सड़कें हों, माल लाने–ले जाने के लिए हलके पहियों वाली बैलगाड़ियाँ बनें, तो शहरों का विकेन्द्रीकरण का काम सरलतापूर्वक चल सकता है। आज की देहाती तथा शहरी कितनी ही समस्याओं का समाधान हो सकता है।

गाँवों का मल-मूत्र इर्द-गिर्द ही सड़ता रहता है, जिससे दुर्गन्ध तथा बीमारी तो फैलती है, साथ ही कीमती खाद का भारी नुकसान होता है। इसके लिए सस्ते, बिना सांकपिट वाले पाखाने, सामूहिक पाखाने, रोड़ी-कंकड़ वाले पेशाब घर, जगह-जगह लगायें जाने चाहिए। कम लकड़ी से चलने वाला चूल्हा भी हर किसी को उपलब्ध हो सके—ऐसा प्रबन्ध किया जाना चाहिए। सम्भव हो, तो हैण्डपम्प लगाने की योजना को भी सस्ता और सरकारी तन्त्र के साथ जुड़ा बनाया जाय। देहाती सस्ते मकानों के लिए खपरैल बनाने की व्यवस्था भी बड़े पैमाने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जगह-जगह की जाय। सीमेण्ट के ढले हुए पाये भी बन सकें, तो बढ़ती आबादी के लिए घिच-पिच में सड़ने की अपेक्षा सस्ते मकानों की देशव्यापी योजना बन सकती है। इसमें लोहे के स्थान पर बाँस का उपयोग हो सकता है।

राष्ट्रीय एवं स्थानीय सरकारी तन्त्र के स्तर पर यह सभी सुझाव दिये जायें और जहाँ जो प्रबन्ध बन पड़ रहा हो, उसमें पूरा-पूरा सहयोग स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा सरकार को दिया जाय। शासन तन्त्र के पास साधन है, व्यक्ति हैं, मात्र सुनियोजन का अभाव है। प्रजातन्त्र में यह प्रयोग सफल न हो सका तो अन्य देशों में क्रान्ति लाने की बात फिजूल है। हम अपने संगठन से ही इस प्रयोग का सुभारम्भ करें। परिणिति सुखद ही होगी।

प्रजा को शासन सँभालने योग्य बनाया जाय

"यथा राजा तथा प्रजा" का युग आंशिक रूप से ही अभी बदला है। जिस जमाने की यह उक्ति है उन दिनों शस्त्र बल मुख्य था। राज्य की रक्षा और उसके विस्तार में सैन्यबल ही प्रधान था। प्रजाजनों को भी भय और आतंक से राजा की इच्छा पर चलना होता था और उसकी आज्ञा माननी पड़ती थी। भारत में मुंसलमानी राज्य आया तो देखते-देखते प्रजाजनों ने वह धर्म अंगीकार कर लिया। पर्दा प्रथा अरब, ईरान से आई थी। वहाँ खाली भूमि में आँधियाँ बहुत उड़ती थी। स्त्रियाँ और विशेषतया बच्चों की आँख, नाक को बचाने के लिए बुर्का आवश्यक था। उसी में थोड़ा हेर-फेर करके भारत में पर्दा प्रथा चल पड़ी। शासकों के ढाँचे में प्रजा ढलने लगी। कर के रूप में सरकारी कोष भरे जाते थे। जहाँ कहीं राजतन्त्र या अधिनायक तन्त्र है, वहाँ लगभग यही स्थिति है। राजा के विरुद्ध प्रजा को कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। रूस, चीन, हंगरी, पोलैण्ड बलगारिया जैसे साम्यवादी प्रभाव वाले क्षेत्रों में उसी तन्त्र की तूती बोलती है जो लोग उस पद्धति को मन से अंगीकार नहीं करते, उन्हें भी राज्य की इच्छा के साथ अपनी इच्छा मिलानी पड़ती है।

अब यथा प्रजा तथा राजा की उक्ति का शोर सुना जाता है। प्रजा जिसको चाहती है, चुनती है और उसके द्वारा शासन चलता है इसी को यथा प्रजा तथा राजा कहते हैं। प्रजा की इच्छा की प्रधानता इस माध्यम से हो जाती है कि जो चुने हुए लोग हैं, वे प्रजाजनों के मतदान से ही शासन की कुर्सी पर बैठते हैं। जो कुछ भी वे भला या बुरा करते हैं, उसकी जिम्मेदारी अन्ततः प्रजा पर ही आंती है। इतने पर भी देखा जाता है कि जागृत प्रजा ही उपयुक्त प्रतिनिधि चुन पाती है और जहाँ विवेक बुद्धि की कमी है, वहाँ कोई भी वोट झपट ले जाता है। जापान, इजराइल, कनाडा आदि देशों की प्रजा उपयुक्त प्रतिनिधि चुन पाती है तो वहाँ शासन भी प्रगतिशील है।

राजतन्त्र के दिनों में शस्त्र बल प्रधान था। प्रजातन्त्र में भी शासन के पास धन की शक्ति है। उस आधार पर उसकी स्थिति भी ऐसी है कि प्रचार और पुरस्कार के बल पर प्रजा को राजा या नेता की इच्छा पर चला सके। चुनाव जीतने की सामर्थ्य भी प्रायः उन्हीं हाथों में रहती है, जो एक बार शासन को पकड़ लेते हैं। प्रजा की जागरूकता, दूरदर्शिता और साहसिकता का समुचित उदय न होने से पिछड़े देशों में प्रजातन्त्र के होते हुए भी सच्चे अर्थों में ऐसे प्रतिनिधि नहीं चुने जाते जो प्रजा का सच्चे अर्थों में हित कर सकें, शासन की मशीन पर काबू रख सकें, भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण कर सकें।

अपने देश की जैसी स्थिति है उसमें 'यथा प्रजा तथा राजा' बनने की स्थिति तभी आ सकती है जब प्रजाजनों की जागृत एवं प्रबुद्ध बनाया जा सके। यह कार्य कौन करे ? इसके लिए प्राचीन काल की तरह अभी भी 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' का व्रत धारण करने वाले ब्राह्मणों की आवश्यकता है। लोक शिक्षण के लिए समर्पित निर्लोभी, विद्वान ब्राह्मण जन जागरण की जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठायें तो काम चले। जागृति उपदेशकों द्वारा आती है। अपने देश में ७० प्रतिशत अशिक्षित और विरल देहातों में रहने वाले जन समुदाय को जीवन के हर क्षेत्र में राजनैतिक उत्तरदायित्व के लिए भी जागृत करने के लिए उपदेशों की पृष्ठभूमि धर्म के आधार पर ही बन सकती है। मतदान का ही नहीं, नैतिक और सामाजिक दायित्व भी प्रजाजनों को समझाना होगा, तभी उनका पिछड़ापन दूर हो सकेगा। यह समझाने के लिए यदा-कदा में उपदेश काम नहीं देंगे वरन् ऐसे लोगों को निरन्तर प्रयोजनों में जुटना होगा, जो धर्म के माध्यम से सर्वतोमुखी जागरण का शंख फूँकते–अलग जगाते रह सकें।

प्रजा को जागृत करने के लिए ऐसे लोगों की एक पीढ़ी बनानी पड़ेगी, जिनका काम ही जी जान से प्रजाजनों की समस्याओं को समझना और सुलझाना हो। ऐसे ही लोग ब्राह्मण कहे जाते हैं। चाहे वे किसी भी बिरादरी में क्यों न पैदा हुए हों। देश को पिछड़ेपन की स्थिति में रहते मुद्दतें बीत गईं। वे जनतन्त्र का भार सँभालने और सही प्रतिनिधि चुनने की स्थिति में अभी भी नहीं हुए है। यही कारण है कि हमें अपने ही चुने शासकों की और उनके नीचे काम करने वाले अफसरों की शिकायत करनी पड़ती है। प्रगति का रथ यहीं आकर रुक गया है। पिछड़ी हुई प्रजा रहे उनके चुने हुए लोग भी वैसे ही हों सारी मशीन उसी ढर्रे पर लुढ़के तो आश्चर्य ही क्या है ?

उपाय धर्मोपदेशकों की एक नई पीढ़ी खड़ी करने की है जो अपने चरित्र, चिन्तन व्यवहार से जनता का मन जीत सके और उस स्थिति में रह सके जो उनके दिये हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जागरण उद्घोषों को लोगों के गले उतार सके और अपने सर्वतोमुखी उत्तरदायित्वों को निभा सकने योग्य बन सके।

अपना समाज गरीब होते हुए भी धार्मिक दानदक्षिणा के मामले में असाधारण रूप से उदार है। संसार में कोई भी समाज इतना उदार दृष्टिगोचर नहीं होता। हिन्दू समाज द्वारा तीर्थ मन्दिरों में होने वाले व्यय का ही यदि एकत्रीकरण सदुपयोग हो सके तो ऐसी कितनी ही उपयोगी संस्था चल सकती हैं, जो धर्म प्रचारकों के सैकड़ों विश्वविद्यालय चला सकें।

बौद्ध काल में नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय चलते थे और सैकड़ों विहार तथा संघाराम धर्म चक्र प्रवर्तन में निरत थे। उन लोगों ने सारे एशिया में एक नई हवा चला दी और व्यापक पिछड़ेपन को कहीं से कहीं धकेल दिया।

अपने पास ऐसे कार्यकर्ताओं की कमी नहीं जिनका निर्वाह व्यय जनता पहले से ही वहन कर रही है। प्रचार प्रयोजन एवं प्रशिक्षण के लिए फिर भी छोटी-बड़ी संस्थाओं की बड़ी संख्या में आवश्यकता पड़ेगी। उनका तीर्थों और देवताओं में व्यय होने वाली राशि का मुँह मोड़ देने भर से काम चल सकता है। देवालयों में जो पैसा खर्च होता है, उससे २० विश्वविद्यालय ऐसे चल सकते हैं जिनमें शिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त धर्म प्रचारक अकेले भारत के लिए ही नहीं, समूचे एशिया के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। ईसाई समाज द्वारा अपने धर्म प्रचार कार्य के लिये संसार भर की सभी भाषाओं में साहित्य छपता है। अपने देश की जनता को प्रबुद्ध और जागृत बनाने के लिए साहित्य छापना हो तो धार्मिक कर्मकाण्डों में जो राशि खर्च होती है, उसका व्यवस्थापूर्वक सदुपयोग करने भर से काम चल सकता है।

न पैसे की कमी पड़ने वाली है, न कार्यकर्ताओं की। मात्र इस बात की आवश्यकता है कि नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक दृष्टि से अपने देश की जनता को इतना जागरूक बनाया जाय कि वह अपने प्रजातन्त्रीय उत्तर दायित्वों को समझ सकें और उनका निर्वाह कर सके।

प्रजातन्त्र उपलब्ध हो गया। उसमें कितनों का त्याग-बलिदान लगा हैं, अब करना यह शेष है कि जिनको शासन करने का सुयोग मिला है, वे उपयुक्त प्रतिनिधि चुनना सीखें। उनका उपयुक्त मार्गदर्शन करें। यदि वे भूलें करते हैं तो उन्हें समझाने से लेकर वापस बुलाने तक की क्षमता अपने हाथों में रखें।

सरकारी कर्मचारी और अधिकारी प्रजा में से ही निकलते हैं। प्रतिनिधि भी उसी में से बनते हैं। यदि प्रजा का चरित्र सही हो तो न किसी की रिश्वत लेने की हिम्मत पड़े और भ्रष्टाचार का साहस कर सके। प्रजा का चरित्र और चिन्तन सही हो तो उसके द्वारा चलाया शासन भी ऐसा हो सकता है जिसे आदर्श कहा जा सके। फिर प्रगति में देरी या शिथिलता रहने की जो शिकायत है उसके रहने की भी कहीं कोई गुँजायश न रहेगी।

ट्रेनिंग न मिलने पर छोटे काम भी ठीक तरह नहीं हो पाते। फिर शासन चलाना तो कितना कठिन काम है ? हमें स्वतन्त्रता मिल गई पर स्वतन्त्रता के साथ जो जिम्मेदारियाँ कन्धों पर आई हैं उसकी योजनाबद्ध प्रक्रिया कभी अपनाई ही नहीं गई। ऐसी दशा में काम बिगड़े या घटिया हो इसमें दोष अपना ही है। पिछड़ापन अपने ऊपर बहुत वर्षों से लदा है। निरक्षरता से लेकर सामाजिक कुरीतियों तक गरीबी से लेकर बिखराव तक की अनेक कमियाँ हमें हैरान कर रही हैं उसके साथ ही एक सबसे बड़ी कमी यह भी है कि मतदान करते समय उपयुक्त व्यक्ति के चुनाव में सावधानी कैसे रखी जाय ? इन सभी के लिए जनता को हमें प्रशिक्षित करना है या कार्य उन्हें अपने कन्धों पर उठाना चाहिए, जिनने राष्ट्र को जीवित और जागृत करने की प्रतिज्ञा ली थी। धर्म क्षेत्र का यह कार्य है। उनके लिए यह कर सकना हमारे राष्ट्र की परिस्थितियों में सबसे सरल भी है।

प्रजातन्त्र की सफलता के कुछ सुनिश्चित मापदण्ड

आदिम युग से लेकर अब तक समाज को अनेकों प्रकार के परिवर्तनों से होकर गुजरना पड़ा। समाज के नियमन संचालन एवं नियन्त्रण के लिए विचारक मनीषी समय-समय पर शासन व्यवस्था का स्वरूप निर्धारण करते रहे हैं। पुरातन काल का समाज, बुद्धि की दृष्टि से आज जितना विकसित न था। तब राजतन्त्र का उद्भव हुआ, जो अपने समय में सफल भी रहा। जिन्हें अपने दायित्वों तथा अधिकारों का ज्ञान न था, उनके लिए राजतन्त्र की प्रणाली उपयोगी थी। पर संसार की परिस्थितियों में अब आसमान-धरती जितना अन्तर आया है। बुद्धि की दृष्टि से मनुष्य का स्तर असाधारण रूप से ऊपर उठा है। ऐसी स्थिति में राजतन्त्र की प्रणाली अब उपयोगी नहीं रही। जिन देशों में उसके चिन्ह विद्यमान हैं वहाँ भी देरसबेर विलुप्त होने वाले हैं। प्रबुद्ध मानस ने पूरी तरह से उस प्रणाली को बर्बर तथा निरर्थक ठहरा दिया है।

पूँजीवादी व्यवस्था एक वर्ग विशेषकों आगे बढ़ाती असमानता की खाई को चौड़ी करती है। गरीब-अमीर के बीच असमानता बढ़ने से संघर्षों की पृष्ठभूमि बनती है तथा उनके फूट पड़ने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। अशान्ति और असन्तोष समाज में बढ़ता है। अस्तु पूँजीवादी व्यवस्था पर भी विचारशील वर्ग द्वारा अँगुली उठाया जाना स्वाभाविक है। किसी देश विशेष में वह सामाजिक रूप से सफल भी हो, तो भी वह वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के प्रतिकूल ही पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साम्यवाद के उद्भव, विकास एवं विस्तार की सफलता का कारण समाजशास्त्री पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणामों को मानते हैं। अन्धे के हाथ में बटेर लगने जैसी स्थिति साम्यवाद के रूप में आयी। स्वस्थ विकल्प का अभाव साम्यवाद की सफलता का आधार बना। उसके आर्थिक पहलुओं तथा सिद्धान्तों की सराहना तो करनी पड़ेगी, पर अन्य पक्ष तो बर्बरता, निरंकुशता को ही जन्म देते हैं। स्वतन्त्रता तथा मौलिक अधिकारों के अभाव में मनुष्य के सर्वांगीण विकास की सम्भावनाएँ धूमिल पड़ जाती हैं। भौतिक प्रगति की बात अलग है, पर यदि समग्र विकास अभीष्ट हो, तो मानवी स्वतन्त्रता पर पूरी तरह अंकुश लगाना हर दृष्टि से अहितकर है। समाज एवं उससे सम्बद्ध व्यक्तियों की स्थिति कटे पंख वाले पक्षी जैसी हो जाती है, इन दिनों साम्यवादी देशों के नागरिक अपनी हालत उस पक्षी से बेहतर नहीं समझते। अर्थ सिद्धान्तों की दृष्टि से समर्थ एवं सशक्त होते हुए भी मानवी आचार संहिता की उपेक्षा करने से साम्यवाद अपनी सफलता स्थिर नहीं बनाये रख सकता, विश्व के मूर्धन्य विचारक ऐसा अनुभव कर रहे हैं।

विश्व की आज जो स्थिति है उसके अनुरूप मनीषियों ने प्रजातन्त्र को इसलिए अधिक उपयोगी तथा सार्थक ठहराना शुरू कर दिया है, क्योंकि उसमें मनुष्य के अधिकारों तथा हितों का हनन नहीं होता। साथ ही उसमें साम्यवाद के उपयोगी अर्थ सिद्धान्तों का भी समावेश है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहने तथा शासन तन्त्र के सुसंचालन का परोक्ष अधिकार जनता के हाथों में रहने से व्यक्ति एवं समाज के सर्वांगीण विकास की सम्भावना अधिक रहती है। पर प्रजातन्त्रिक शासन प्रणाली की उपलब्धियों का लाभ तभी सुचारु रूप से मिल सकता है, जब जनता सुशिक्षित हो, अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों को समझे, उनका ठीक उपयोग करे।

लोकतन्त्र प्रणाली में वास्तविक मालिक मतदाता होता है। उसे पूरी तरह छूट है कि अपने मताधिकार का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग करे। काम करने के लिए नौकर रखते समय उसके गुणों, अवगुणों, श्रमशीलता चरित्रनिष्ठा की परख की जाती है। देश की बागडोर सँभालने तथा उसके संचालन का दायित्व सौंपने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि यह भलीभाँति परख लिया जाये कि जिनके हाथों में देश की व्यवस्था की देख-रेख अरबों-खरबों रुपये की सम्पत्ति की सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी जा रही है वे कैसे हैं ? ईमानदार चरित्रनिष्ठ हैं अथवा नहीं। साढ़े अड़सठ करोड़ व्यक्तियों का भाग्य इस दूरदर्शी निर्णय पर निर्भर करता है। मतदाता को यह हजार बार सोचना चाहिए कि राष्ट्र के विकास विनाश का उत्तरदायित्व प्रजातन्त्र ने उसके कन्धों पर सौंपा है। उसे अवसर मिला हुआ है कि चाहें तो देश को ऊँचा उठाने में योगदान दे अथवा पतन के गर्त में घसीट ले जायें। इस अधिकार का प्रयोग वह वर्षों बाद, मात्र एक बार ही करता है। मतदान चन्द घण्टे चलते हैं, किन्तु उतनी ही देर में देश के भाग्य को बदल देने जैसी प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है।

वर्तमान युग को मनोवैज्ञानिक युग कहना अधिक उपयुक्त होगा। वोट माँगने के लिए कितने ही प्रकार के मनोवैज्ञानिक हथकण्डे अपनाये एवं तरकीबें भिड़ाई जाती हैं, जिसे देखकर मनुष्य की बुद्धि का लोहा मानना पड़ता हैं। जातिवाद, बिरादरीवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद के विभिन्न नुस्खे अवसरवाद की छत्रछाया में प्रयोग किये जाते हैं। वे सफल भी होते देखे गये हैं। औचित्य की कसौटी पर कसने वाले थोड़े से व्यक्ति होते हैं, जो उस धूर्तता को समझते हैं अन्यथा अधिकांश वादों के प्रवाह में बहते देखे जाते हैं-भोले लोग सहज ही उनके बहकावे में आ जाते हैं। बिरादरीवाद के आधार पर परस्पर एक बिरादरी को दूसरे से फूट पैदा करने की कोशिश करके वोट प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जाता है। चुनाव में ये हथकण्डे धड़ल्ले से चलते तथा कारगर सिद्ध होते देखे जाते हैं। थोड़े विवेक से काम लिया जाय तथा यह परखा जा सके कि बिरादरी का नारा लगाने वालों ने सही अर्थों में उसके विकास के लिए क्या योगदान दिया, तो परिणाम शून्य ही निकलेगा। जन सामान्य के ऊपर यह नैतिक दायित्व होता है कि वह विचार करे कि बिरादरी बिरादरी के बीच कोई युद्ध तो चल रहा है, जिसमें अपनी जीत आवश्यक हैं। कानून भी यह भेदभाव अवैध है। ऐसी स्थिति में उस प्रोपेगण्डा का कोई महत्व नहीं रह जाता सिवाय इसके कि मतदाता मूड़ा जाये और प्रत्याशी अपना उल्लू सीधा करने में सफल हो जाये।

चुनावों में अन्धा धुन्ध, विपुल धनराशि खर्च करना अब एक परम्परा-सी बन गयी है। जुआ की भाँति एक बड़ी राशि दाँव पर लगायी जाती है। आखिर इतना खर्च क्यों किया जाता है ? यह भी पता लगाना जाना चाहिए। प्रायः अधिकांश की दृष्टि यह रहती है कि दाँव पर लगाया गया पैसा कई गुना होकर जीतने के बाद वापस आ जायेगा। यदि यह कुटिलता काम कर रही है, तो मतदाता को उसकी परख करनी चाहिए। ईमानदार, व्यक्तियों द्वारा देश सेवा का अवसर पाने के लिए इतना खर्च करना पड़े, यह बात गले नहीं उतरती। अधिक खर्च करने वाला प्रत्याशी जीतने के बाद नीतिवान बना रहेगा यह संदिग्ध है। खर्चीले चुनाव-प्रचार का सर्वत्र विरोध होना चाहिए। महँगे चुनावों में सामान्य वर्ग के आदर्शवादी लोकसेवी का भाग ले सकना प्रायः कठिन है।

राजतन्त्र–अधिनायकवाद में प्रजा के वश की बात नहीं होती कि वह परिवर्तन की बात सोच सके, पर लोकतन्त्र में यह पूरी-पूरी गुंजाइश है कि जनता अपनी मन मर्जी के अनुसार उचित-अनुचित का समर्थन करके जैसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहे वैसा प्रतिनिधि चुने। प्रमाणिक जिम्मेदार, चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों का चुनाव तभी सम्भव होगा, जब मतदाता अपने मत तथा दायित्वों की गरिमा समझे तथा यह अनुभव करे कि लोकतन्त्र ने उन्हें कितना बड़ा अधिकार दिया है। अपने और अपने देश के भाग्य का निर्माण कर सकने का उन्हें कितना बड़ा सौभाग्य उपलब्ध है। इतना बड़ा अधिकार उपलब्ध होते हुए भी यदि उसका उपयोग करना न आया तो यही समझना चाहिए कि सोते समय सुरक्षा के लिए नियुक्त बन्दर के हाथ में तलवार देकर राजा ने भूल की थी। उसके मुँह पर मक्खी बैठी और उड़ाने के लिए बन्दर ने तलवार चला दी। फलस्वरूप उसे नाक से हाथ धोना पड़ा। अनाड़ी वोटर उस बन्दर की तरह है, जिसे तलवार के लिए उपयुक्त स्थान और अवसर ढूँढ़ने की समझ नहीं है। छूटा हुआ तीर वापस नहीं आ सकता, दिया हुआ वोट लौटाया नहीं जा सकता। इसलिए जब तक मत का प्रयोग नहीं हुआ है, उससे पहले हजार बार सोचना चाहिए कि इस राष्ट्र की अमानत और समाज की पवित्र धरोहर की श्रद्धांजलि को कहाँ अर्पित किया जाय। यह देवता के चरणों में चढ़े अथवा असुर को सौंपा जाये। वोट देने के पूर्व ही प्रत्याशी की पात्रता की परख कर लेनी आवश्यक है।

सुशिक्षित विचारशील तथा दूरदर्शी मतदाता ही राष्ट्र का सच्चा भाग्य विधाता है यह तथ्य हर नागरिक को हजार बार समझाया जाना चाहिए। प्रजातन्त्र की सफलता भी इस सत्य के क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। उसके लिए यह आवश्यक है कि मतदाता दूरदर्शी बने अपनी जिम्मेदारियों को समझे तथा दृढ़ता के साथ निर्वाह करे। वोट केवल उन्हें मिले, जो प्रामाणिक एवं ईमानदार हों—राष्ट्र भक्त हों। चुनाव में वे जीतें, जिनके हाथ में न्याय तथा लोकहित सुरक्षित रहे। ऐसे लोगों की परख कथनी और ढपली की तरह बजने वाली वाणी से नहीं, करनी चाहिए। उनके भूत तथा वर्तमान के क्रिया-कलापों का सूक्ष्म अध्ययन इस तथ्य की गवाही प्रस्तुत कर सकता है। उस आधार पर भविष्य की भी एक कल्पना की जा सकती है। उन लोगों को वोट देने से इन्कार कर देना चाहिए, जो नीति सदाचार और आदर्शों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। इस बात की उपेक्षा का अर्थ यह होगा कि राजनीतिक क्षेत्र में अनीति एवं अवांछनीयता को समर्थन, प्रोत्साहन देना। इन दिनों जिन भी देशों में प्रजातन्त्र असफल हो रहा है, वहाँ यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

सिद्धान्तों एवं कार्यक्रमों की दृष्टि से विभिन्न पार्टियों में विशेष अन्तर नहीं होता। प्रायः सभी के सिद्धान्त एवं लक्ष्य ठीक होते हैं। अतएव यह प्रश्न कोई विशेष महत्व नहीं रखता कि कौन-सी राजनीतिक पार्टी श्रेष्ठ है अथवा कौन बेकार ? कार्यक्रमों का क्रियान्वयन हो सके, तो किसी भी पार्टी के सिद्धान्त एवं कार्यक्रम उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। शर्त बस इतनी भर है कि प्रतिनिधि सच्चे अर्थों में ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ हों। कहा जा चुका है कि राजतन्त्र जैसी निरंकुश प्रणाली भी किसी समय सफल रही है, पर अब यह भर्त्सना की पात्र है। अच्छे से अच्छे संगठन तथा वाद जब बुरे लोगों से भर जाते हैं, तो उसके परिणाम भी बुरे ही होते हैं। इसलिए किसी पार्टी ने क्या घोषणा पत्र छापा है, यह जाँचना देखना महत्वहीन है। देखना ही हो तो, पार्टी के प्रतिनिधियों के व्यक्तित्व की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। यदि व्यक्तियों का स्तर ऊँचा न हो, तो ऊँची घोषणाओं और आश्वासनों के बावजूद भी जो कुछ सामने आयेगा, वह निराशा और चिन्ताजनक ही होगा। प्रतिनिधि के चुनाव में उसकी सूझ-बूझ सक्रियता लोक-मंगल की भावना जनहित की कामना, प्रगतिशीलता प्रतिभा शिक्षा आदि बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। इन विशेषताओं के अभाव में शासन तन्त्र का सही प्रतिनिधित्व कर सकना सम्भव नहीं है। इनके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात है, प्रतिनिधि का ईमानदार चरित्र निष्ठ तथा सज्जन होना।

शिक्षा, कुशलता अथवा सम्पन्नता भी किसी प्रतिनिधि की योग्यता का मापदण्ड नहीं है। योग्यता का वास्तविक मापदण्ड यह है कि वह सिद्धान्तों एवं आदर्शों के प्रति कितना अधिक दृढ़ रह सकता है तथा जो जिम्मेदारी सौंपी जा रही है, उसे कहाँ तक निभा सकने की क्षमता रखता है यह परखना आसान भी है और कठिन भी, आसान उस समय जब मतदाता स्वयं ही इतना विवेकशील हो कि प्रतिनिधि के गुण-दोषों का सही विश्लेषण कर सके। मुश्किल उस समय बन जाती है, जब उस विवेकशीलता का अभाव होता है तथा मतदाता उपरोक्त विश्लेषण कर सकने में अक्षम सिद्ध होता है।

समाजशास्त्रियों विचारकों ने इस असमंजस के कारण ही लोकतन्त्र को एक दुधारी तलवार के रूप में निरूपित किया है, जो दोनों ओर बार कर सकती है। मतदाता सुशिक्षित, योग्य तथा विचारशील हो तो उन्हें अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का सही रूप में ज्ञान रहता है। लोकतान्त्रिक देश के नागरिक समाज एवं देश से जुड़े अपने कर्त्तव्यों को समझते और निर्वाह करते हैं। खतरा उस समय उत्पन्न होता है, जब नागरिक अशिक्षित अयोग्य होते तथा उस तन्त्र की गरिमा नहीं समझते। स्वतन्त्रता के नाम पर स्वेच्छाचारिता तथा अनुशासनहीनता इसी कारण पनपती, बढ़ती तथा नासूर की तरह अपनी जड़ें गहरी जमाती हैं। तब शासन तन्त्र भी व्यवस्था अराजकता का शिकार होता है। नागरिकों के सहयोग से ही देश का शासन चलने में सफल होता है। नागरिक ही अनुशासनहीनता बरतने लगें तो समाज की सुव्यवस्था अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निस्संदेह प्रजातन्त्र अपने में विश्व की सर्वोत्तम प्रणाली है। पर उसकी सफलता इस बात पर ही निर्भर करती है कि देश में रहने वाले नागरिकों का स्तर कैसा है ? देश की तीन चौथाई जनता के अशिक्षित पिछड़ेपन से ग्रस्त रहते यह संदिग्ध है कि प्रजातन्त्र अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है। जो सचमुच ही परिवर्तन के इच्छुक हैं, समाज एवं शासन को स्वस्थ स्वरूप देना चाहते हैं, उनके ऊपर यह नैतिक दायित्व होता है कि अशिक्षा के घोर अन्धकार में डूबी तीन चौथाई जनता को उबारने के लिए आगे आयें उनमें जो क्षमता एवं प्रतिभा है, उसका सदुपयोग करें। हर नागरिक को साक्षर करना ही पर्याप्त नहीं है। उसे अपने नागरिक कर्त्तव्यों एवं अधिकारों से भलीभाँति परिचित कराया जाना चाहिए। साथ ही उसे ईमानदारी, चरित्रनिष्ठा, श्रमशीलता, सज्जनता, शालीनता का महत्व समझाया जाना भी आवश्यक है। योग्यता सम्पादन ही नहीं, व्यक्तित्व का उपार्जन भी अनिवार्य है। शिक्षण में इन दोनों का संयोग होना जरूरी है। व्यापक स्तर पर ऐसी उमंग विचारशील वर्ग में जनमानस को प्रशिक्षित करने के लिए उभर सके, तो सचमुच ही देश एवं समाज का कायाकल्प हो सकता है। प्रजातन्त्र की सफलता एवं सार्थकता भी इसी में सन्निहित है।

सत्ता और पूँजी की प्रस्तुत विपत्तियों में अनुपयुक्त भूमिका

बड़ों का बड़प्पन उनका वर्चस्व सिद्ध करता है इसमें सन्देह नहीं पर साथ ही एक दायित्व भी उन्हीं पर आता है कि शक्तिमन्तों के प्रभाव आकर्षण एवं बोझिल दबाव से सामान्य मनःस्थिति के लोग असाधारण रूप से प्रभावित होते हैं। लोक चिन्तन और प्रचलन को ढालने में कारण तो अन्याय भी हो सकते हैं, किन्तु सबसे बड़ा कारण है—वयस्कों का अनुकरण, उनके द्वारा प्रस्तुत किये मार्ग का अनुकरण। वरिष्ठों से जन साधारण की प्रभावित होने की मनोवैज्ञानिक सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता है। होती तो हर किसी में निजी सूझ-बूझ भी है दूरगामी परिणामों को समझने की विवेकशीलता भी। उचित-अनुचित का निर्णय इसी आधार पर हो सकता है, किन्तु न जाने वह सुदिन कब आवेगा जब लोग आँखें बन्द करके प्रतिभावानों के जादू का सम्मोहन अस्वीकार करने की मनःस्थिति में होंगे। अपनी निजी परख कसौटी विकसित करेंगे। जीवन-मरण और हानि-लाभ का निर्धारण कर सकेंगे। अन्धी भेड़ों की तरह गर्त में गिरते चलने की आदत को स्वेच्छापूर्वक छोड़ सकने जैसी सूझ-बूझ के धनी बनेंगे। अभी तो ऐसा ही माहौल है, जिसमें एक गड़रिया पूरे झुण्ड को एक ही लाठी से हाँककर कहीं से कहीं ले जाता है।

पुरातन काल की सतयुगी सुव्यवस्था—सुसंस्कारिता के स्थान पर आज का अनाचारी, सर्वनाशी, कुप्रचलन किस प्रकार बन पड़ा इसका सामान्य पर्यवेक्षण इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वरिष्ठों ने अदूरदर्शी कदम बढ़ाये। ऐसे प्रवाह बहाये जिसमें जन साधारण का चिन्तन, स्वभाव, प्रयास तिनकों-पत्तों की तरह बहने लगा और परिस्थितियाँ वे उत्पन्न हो गईं जो हर किसी को—उत्पन्न कर्त्ताओं को भी, काबू से बाहर दीखती है। झरना फूटे कहीं से—भी स्वेच्छा से भी—पर जब वह आगे चलकर प्रचण्ड नदी प्रवाह बन जाता है, तो बहाव को उलटना उत्पन्न प्रभाव में परविर्तन कर सकना अशक्य हो जाता है। बोतल में से निकला भूत इतना विकराल होने की मान्यता है कि फिर उसे उत्पन्न करने वाला भी समेटकर वापस बन्द नहीं कर सकता।

वरिष्ठों में शासक, श्रीमन्त मनीषी, कलाकार, पुरोहित आदि वर्गों को मूर्धन्य माना जाता है। अभिधारणा है कि यही व्यक्ति और समाज को ऊँचा उठाने—नीचे गिराने के लिए जिम्मेदार है। इसमें कुछ सच्चाई भी है। प्रस्तुत परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करने पर प्रतीत होता है कि इन्हीं समुदायों द्वारा जान-बूझकर रची गई दुरभिसन्धियों अथवा अनजान में बन पड़ी भूलों के कारण ही सर्वत्र विपन्नता का वातावरण बन गया है।

विश्वव्यापी समस्याओं विभीषिकाओं में महायुद्ध, प्रदूषण, विकिरण, जनसंख्या विस्फोट जैसे उपद्रवों को विनाशकारी आतंकों में गिना जा सकता है। बेरोजगारी गरीबी, बीमारी अशिक्षा, पिछड़ापन तथा अपराधी दुष्प्रवृत्तियों को भी इन्हीं के समकक्ष माना जा सकता है। अणु-आयुधों से लड़े जाने वाले विश्वयुद्ध की स्थिति और तैयारी से कौन अवगत नहीं है ? उन्हें युद्ध कहना भी भूल है, क्योंकि युद्ध में तो समान स्तर के योद्धा आमने—सामने लड़ते हैं, जिसमें योजनों क्षेत्र अग्नि-काण्ड की तरह जला दिया जाय उसे क्रूर नर-संहार कत्ले आम ही कहा जा सकता है। बढ़ते हुए वायु प्रदूषण के कारण उत्पन्न हुई घुटन और विषाक्त जन-जीवन के लिए कैसा संकट उत्पन्न कर रही है, इससे किसी भी विज्ञ जन को अपरिचित नहीं होना चाहिए। ऊर्जा का दुरुपयोग होने से अन्तरिक्ष का बढ़ता तापमान, ध्रुवीय बर्फ पिघल पड़ने समुद्रों के उफनने लगने-हिम-युग-अग्नि युग आ धमकने की सम्भावना आये दिन मूर्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत की जाती रहती है। यह ओझा-तान्त्रिकों की तरह यजमानों को डराते रहने जैसी विडम्बना नहीं है जिसके पीछे तथ्यों और प्रमाणों के पर्वत खड़े हैं। अणुविस्फोटों से जो विकिरण बढ़ता और फैलता जा रहा है, उसकी प्रतिक्रिया वर्तमान तथा भावी पीढ़ी को कितने असाध्य रोगों से संत्रस्त करेगी, यह सच्चाई अब कोई रहस्य नहीं रह गई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन संकटों को उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदारी संसार के शासकों को न दी जाय तो फिर इनका निमित्त कारण किन्हें ठहराया जाय ? भयानक आयुधों के निर्माण की योजना बनाना और व्यवस्था जुटाना किसी दर्जी-मोची का काम थोड़े ही है। इन्हें शासनाध्यक्ष ही बनाते और क्रियान्वित करते हैं। वे चाहते तो झगड़े-झंझटों का हल पंचायत के आधार पर भी निकाल सकते थे और जितना श्रम कौशल एवं धन युद्धोन्माद की पूर्ति के लिए नियोजित हो रहा है, उसे ऐसे कार्यों में लगा सकते थे, जिससे बेरोजगारी, भुखमरी, बीमारी अशिक्षा जैसे संकटों से समस्त संसार के जन समुदाय को छुटकारा मिल जाता।

बड़े कारखाने—बड़े नगरों में बनाने की औद्योगिक नीति शासक बनाते हैं या श्रीमन्त—इसमें दो मत हो सकते हैं, पर इतना निश्चित है कि दोनों की मिली भगत से ही देहातों को कस्बा बनाने और उनमें छोटे उद्योगों के विकेन्द्रीकरण की प्रचलित औद्योगिक नीति को शह मिली है। यदि यह सोचा गया होता कि हर हाथ को काम देने और गरीबी-बेरोजगारी मिटाने के लिए लघु उद्योगें की नीति अपनाई जाय तो निश्चय ही गरीबी बेरोजगारी का वह संकट सामने न आता, जिसके कारण आज दशों-दिशाओं में हाहाकार मचा हुआ है और एक के साथ दूसरों के जुड़ जाने पर समस्याओं का पहाड़ जैसा खड़ा हो रहा है। व्यापक अर्थ संकट उत्पन्न करने में यदि उद्योगों को केन्दीयकरण को दोष दिया जाय, तो इसे अत्युक्ति नहीं कहा जायेगा। साथ ही यदि उसके उत्पादनकर्त्ताओं को ढूँढ़ने पर निकल जाय, तो दूर जाने की जरूरत न पड़ेगी उसे भी प्रधानतया शासकों को और गौण रूप से श्रीमन्तों की सूझ-बूझ की जादूगरी कहा जायेगा।

शिक्षा पद्धति पर निर्धारण कौन करता है ? इसके लिए अँगुली शासकों की ओर ही उठती है। यदि उन्होंने सामान्य जीवन में सुसंस्कारिता और दूरदर्शिता भरने भर के पाठ्यक्रम बनाये होते और आजीविका उपार्जन के लिए अन्यान्य प्रकारों की शिक्षा को स्वतन्त्र रखा होता तो आज हर शिक्षित को नौकरी पाने की ललक क्यों उठती ? न मिलने पर शिक्षितों की निठल्ली फौज क्यों अपने अभिभावकों एवं हर किसी के लिए सिर दर्द बनती तब हर नागरिक जीवन गरिमा को समझने-सँभालने में समर्थ होता और विशेष रुचि एवं आवश्यकता वाले अपने-अपने उपयोग की शिक्षा प्राप्त करके सरलतापूर्वक आजीविका उपार्जित करते।

विष उत्पादन मात्र औषधि प्रयोजन के लिए ही हो—की नीति जिस प्रकार इन दिनों चलती है, उसी प्रकार नशे उत्पन्न करने पर भी प्रतिबन्ध लग गया होता, उस कार्य में पूँजी न लगने दी होती—तो जन-साधारण का स्वास्थ्य और धन जिस तरह बर्बाद हो रहा है, उसकी नौबत ही न आती।

ठीक उसी से मिलता-जुलता, चिन्तन को प्रभावित करने वाला क्षेत्र है—फिल्म, अभिनय, संगीत, साहित्य, प्रेस प्रकाशन, चित्र आदि को इसी कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत लिया जाता है। कला में लोकरंजन की आकर्षक विशेषता तो है ही। साथ ही उसमें लोक चिन्तन और लोक प्रचलन को प्रभावित करने के दिशा-निर्देशन और प्रयास प्रोत्साहन की भी अपनी विशेषता है। यों चिन्तन परम्परागत भी होता है और परिवार एवं सम्पर्क क्षेत्र की भी उस पर बड़ी छाप रहती है, फिर भी यह स्वीकारने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि तनिक-सी विचारशीलता का उदय होते ही कला का प्रभाव परम्परा से भी असंख्य गुना अधिक पड़ने लगता है। सिनेमा और साहित्य ने आज के लोकमानस को बनाने में कितनी बड़ी भूमिका निभाई है इसे समझा जा सके तो कहा जायेगा कि कला ने ही प्रधानतया आज के लोक प्रचलन का ढाँचा खड़ा किया है।

विकृत साहित्य-एक दूषित कला के द्वारा उत्पन्न की गई अनेकानेक विकृतियों में से उदाहरण के लिए एक कामुकता को लिया जा सकता है। शरीरों को खोखला करने, नर-नारी की मध्यवर्ती पवित्रता और वर्जना को ध्वस्त करने में कामुकता की विषाक्तता को प्रधानतया दोषी ठहराया जा सकता है। दाम्पत्य जीवन की अस्त-व्यस्त--परिवारों का विघटन-अनियन्त्रित प्रजनन ने सामाजिक सुव्यवस्था की रीढ़ तोड़ दी है। व्यभिचार और यौन रोगों ने किस प्रकार मानवी सुव्यवस्था को क्षति पहुँचाई है—इसे तनिक गहराई में उतरकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि मानवी शालीनता को गर्हित पाशविकता के गर्त में धकेल देने वाली अनेकानेक गतिविधियाँ, कामुकता की वर्जनारहित बाढ़ ने उत्पन्न की हैं।

यदि सिनेमा और साहित्य में लगी पूँजी एवं बुद्धि ने दूसरी प्रकार की गतिविधियाँ अपनाई होती और व्यक्ति एवं समाज को मानवी गरिमा के अनुरूप प्रेरणाएँ दी होती तो स्थिति वैसी पतनोन्मुख न होती, जैसी कि आज दीख पड़ रही है। शासक भी चाहता तो विचार क्षेत्र में भ्रष्टाचार फैलाने वाले इन उत्पादनों को रोक सकता था और उसके स्थान पर सृजनात्मक उत्पादन को प्रोत्साहन दे सकता था। इस सन्दर्भ में पूँजी को भी सत्ता के समान रूप में दोषी ठहराया जा सकता है।

शासन तन्त्र ने अपराधों के प्रति अधिक कठोरता का रुख अपनाया होता। व्यवस्था को इतनी खर्चीली या पेचीदा न बनाया होता, तो राजा और प्रजा के बीच भावभरी घनिष्ठता रहती। अधिकारी वर्ग पर थोड़ा-सा खर्च पड़ता और कर से होने वाली उपलब्धि से बेरोजगारी, गरीबी, बीमारी अशिक्षा, कुरीतिग्रस्तता, अपराधी आदि से बहुत कुछ परित्राण मिल सका होता। श्रीमन्तों की पूँजी यदि पतनोन्मुख उत्पादनों में न लगकर उपयोगी प्रगति का मार्ग अपनाती तो खाई खोदने में लगी शक्ति ने दीवार चुनने का काम किया होता और प्रगति का भव्य--भवन अपनी शोभा बढ़ा रहा होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन पंक्तियों में विश्व व्यवस्था का पर्यवेक्षण किया जा रहा है। किसी देश विशेष की निन्दा प्रशंसा में कुछ नहीं कहा जा रहा। न्यूनाधिक मात्रा में सर्वत्र एक ही माहौल है। अब दुनिया सिमटकर बहुत छोटी हो गई है। सभी देश एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। युद्धों में लड़ने वाले ही नहीं, बिना लड़ने वाले भी पिसते हैं। एक छप्पर में आग लगने से सारा गाँव जलता है। ठीक इसी प्रकार अब समस्याएँ किसी देश-विशेष तक सीमित नहीं रही। विचार सार्वभौम दृष्टिकोण अपनाकर करना होगा। यहाँ सत्ता और पूँजी द्वारा अपनाई गई आवांछनीयता की समीक्षा इसी दृष्टिकोण से की जा रही है। अब हम सब एक ऐसी नाव पर सवार हो गये हैं, जिसके डूबने पर या पार होने पर ५०० करोड़ मुनष्यों के समूचे समुदाय का भाग्य अविच्छिन्न रूप से निर्भर हो गया है। अस्तु, विश्व की सबसे बड़ी दो भौतिक शक्तियों को—सत्ता और पूँजी की—वर्तमान भूमिका पर नये सिरे से विचार करना होगा और उन्हें अवांछनीयता से विरत करके औचित्य अपनाने के लिए सहमत या वापस करना होगा।

हम राजनीति में भाग क्यों नहीं लेते ?

राजनीति ने आज मानव जीवन के सभी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया है। इसलिए उसका महत्व बहुत हो गया है। प्राचीन काल में न्याय और व्यवस्था तक ही शासन का हस्तक्षेप होता था पर अब उसका क्षेत्र बहुत बढ़ गया है और जीवन के हर पहलू को राजनीति प्रभावित करती है। स्वास्थ्य, संस्कृति, भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान, जैसे जन रुचि के विषय भी अब राजनैतिक प्रभाव क्षेत्र में आते जा रहे हैं, शिक्षा, उत्पादन, श्रम, व्यवसाय शासन, न्याय, निर्माण, विज्ञान, शिल्प आदि तो पहले से ही उनके नियन्त्रण में पहुँच चुके हैं। धीरे-धीरे जीवन का हर क्षेत्र राजनैतिक प्रभाव के अन्तर्गत आता चला आ रहा है।

जहाँ अधिनायकवाद का प्रधान्य है वहाँ तो जनता को शासनतन्त्र की मशीन का एक पुर्जा मात्र बनकर रहना पड़ता है। जानने, सोचने और निष्कर्ष निकालने तक के साधन लोगों के हाथ में नहीं रहते। प्रचार का परिपूर्ण उपकरण सरकार के हाथ में रहने से जनमानस को शासन ही जिधर चाहे उधर मोड़ता, बदलता रहता है। ऐसी दशा में यह स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि आज राजनीति की, शासनतन्त्र की प्रबलता सर्वोपरि बनती चली जा रही है और कल वह समय आवेगा जब व्यक्ति शासन के हाथ का खिलौना मात्र बनकर रह जायेगा।

जन जीवन में अपनी प्रमुखता रखने वाली राजनीति में शासन तन्त्र में, यदि कहीं दोष रहते हैं तो उसका दुष्परिणाम सर्वसाधारण को बुरी तरह भोगना पड़ता है। वर्तमान स्थिति में जबकि जन साधारण की नैतिक स्थिति निम्न स्तर की ओर गिर रही है, शासन तन्त्र के संचालकों का उच्च चरित्र से, उच्च आदर्शों से परिपूर्ण होना आवश्यक है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति असत्य नहीं है। बड़ों को देखकर छोटे उनसे प्रभाव ग्रहण करते हैं, अनुकरण को अग्रसर होते है। प्राचीन काल में सन्तों ऋषियों और ब्राह्मणों का राजा और प्रजा सब पर नियन्त्रण था, उनका व्यक्तित्व ऊँचा माना जाता था, इसलिये जनता उनकी भावनाओं और प्रेरणाओं से प्रभावित होकर अपनी दिशा निर्धारित करती थी।

अब वह स्थान शासन-संचालकों को मिल रहा है। उन्हीं वक्तव्यों, भाषणों, गतिविधियों और योजनाओं से अखबार, रेडियो, पुस्तकें भरे रहते हैं। सभा-सम्मेलनों में उन्हीं की चर्चा प्रधान रूप से होती है। जन चर्चा का विषय वे ही हैं। किसी बिगाड़ या सुधार के लिये उन्हीं को उत्तरदायी माना जाता है। इतनी ऊँची स्थिति जिस वर्ग ने प्राप्त कर ली है उन शासन संचालकों का प्राचीन काल के सन्तों और ऋषियों के समान ही आदर्श होना चाहिये अन्यथा राज्य कर्मचारियों पर ही नहीं जन-साधारण पर भी उसकी प्रतिक्रिया होगी। हीन चरित्र का शासक वर्ग कभी भी जन प्रेरणा का प्रकाश स्तम्भ नहीं बन सकता।

देशगत राजनीति पर विचार किया जाय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर, सभी क्षेत्रों से उच्च चरित्र के मार्गदर्शकों की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसी कमी के कारण समस्त विश्व की जनता क्षुब्ध और निराश होती चली जा रही है। इन दिनों विश्व रूस और अमेरिका के दो गुटों में बँटा हुआ है। शक्ति के अभाव में तटस्थ देशों की अभी अपनी कोई स्थिति नहीं। दोनों गुट अपने संकुचित दृष्टिकोण के कारण अपने प्राधान्य और वर्चस्व के लिये संघर्ष कर रहे हैं। अणु विज्ञान की तलवार इन लोगों के हाथ लग जाने से तीसरे अणु युद्ध का खतरा दिन-दिन बढ़ता चला जा रहा है। किसी दिन भी स्थिति विस्फोटक रूप धारण कर सकती है और लाखों करोड़ों वर्षों से संचित मानव सभ्यता देखते-देखते नष्ट हो सकती है। यह धरती विषाक्त वायुमण्डल से परिपूर्ण होकर प्राणियों से रहित अथवा विकलांग, विक्षिप्त अपंग और अभावग्रस्त लोगों से भरी दयनीय स्थिति में हजारों, लाखों वर्षों तक पड़ी रहने के लिए विवश हो सकती है।

संसार के राजनीतिज्ञों के पास सारे साधन मौजूद हैं। उच्च शिक्षा, सुविकसित मस्तिष्क, चतुर सलाहकार विज्ञान, जन सहयोग सभी कुछ तो उन्हें प्राप्त हैं। कमी केवल उदारता और उद्दात्त भावनाओं की है। काश आज की दुनिया का नेतृत्व किन्हीं महापुरुषों के हाथ रहा होता, काश, गाँधी, ईसा, बुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस सरीखे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्माओं के हाथों शासनाध्यक्षों का कार्य संचालित हुआ होता तो दुनिया आज की तरह नरक की स्थिति में पड़ी न रहकर स्वर्ग बन गई होती। काश, राजनीति ने कूटनीति (धूर्तता) का रूप छोड़कर धर्मनीति बनना स्वीकार किया होता तो आज सर्वत्र शान्ति प्रेम और आनन्द की ही निर्झरिणी बह रही होती।

सम्पन्नता, शिक्षा कला, विज्ञान एवं चतुरता बढ़ रही है, पर चरित्र बल घट रहा है। संसार में शासन तन्त्र अधिक शक्तिशाली बनते चले जा रहे हैं पर उनकी वह विशेषता घट रही है जिसके प्रभाव से जनमानस में प्रेरणा और आशा का संचार होता है। आज जब कि जन-जीवन के सारे साधन राजनीति के प्रभाव क्षेत्र में चले जा रहे हैं तो यह आवश्यक है कि उसके नेता एवं संचालकों का व्यक्तित्व, चरित्र एवं भावनास्तर इतना ऊँचा हो कि दण्ड भय से नहीं श्रद्धा से अवनत होकर लोग उनका अनुसरण करने लग जायँ। इसी से जन-जीवन में सच्ची प्रगति का संचार हो सकता है। यदि यह क्षेत्र दुर्बल बना रहा, बिल्ली के गले में घण्टी न बँध सकी तो भ्रष्टाचार की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहेगी। जनता सरकार को दोष देती रहेगी और सरकार जनता का कसूर बताती रहेगी। समस्या जहाँ की तहाँ उलझी पड़ी रहेगी।

अनीति को रोकना और साधनों को बढ़ाना शासन का कार्य है। सबको समान अवसर तथा समान न्याय प्राप्त कराना राजकीय उत्तरदायित्व माना गया है। इन उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए राज्य कर्मचारियों को न्याय और कानून के प्रति नितान्त निष्ठावान, निर्लोभ, निष्पक्ष एवं कर्तव्य परायण होना चाहिए। कानून तो पुस्तकों में बन्द रहते हैं, उनका पालन करना और कराना कर्मचारियों का काम है। उनका चरित्रवान एवं उच्च आदर्शवादी होना ही प्रजा की सुख-शान्ति की गारण्टी हो सकती है।

यदि यह शासकवर्ग अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों की अपेक्षा करेगा तो प्रजा का न्याय पर से विश्वास कम होता चलेगा और हर क्षेत्र में अनीति पनपेगी, भ्रष्टाचार बढ़ेगा, रिश्वतखोरी पनपेगी और अधिकारियों को अपने पक्ष में करके दुष्ट लोग जनता को संत्रस्त करेंगे। टैक्स चुरायेंगे तथा नाना प्रकार के अपराध निर्भय होकर करेंगे। अपराधों की रोकथाम के समस्त उपाय एक ओर और राज्य कर्मचारियों की कर्तव्यपरायणता को एक ओर रखकर तोला जाय, तो कार्यकर्ताओं की ईमानदारी ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। इसके अभाव में नाना प्रकार की योजनायें बनती-बिगड़ती रह सकती हैं, पर जनहित का, समस्या का ठीक समाधान न हो सकेगा।

राजनीति की शक्ति निश्चय ही महत्वपूर्ण है। उसका सुसंचालन जनता के लिए सब प्रकार श्रेयस्कर हो सकता है। संसार के जिन देशों का इन दिनों उत्कर्ष हुआ है उनमें वहाँ की सुयोग्य सरकारों का बड़ा श्रेय है। राजनीतिज्ञों में सूझ-बूझ, कुशलता, क्षमता और योग्यता का होना आवश्यक है, इसके बिना शासन तन्त्र ठीक प्रकार नहीं चल सकता। पर इसमें भी अधिक आवश्यक है शासकों की ईमानदारी। यदि वे आदर्शों के प्रति निष्ठावान होंगे। व्यक्तिगत जीवन में पवित्रता और सेवा का व्रत धारण किये हुए होंगे तो कम योग्यता होने पर भी उनके कार्यों से जनता का अत्यधिक हित साधन होता चलेगा। इसके विपरीत यदि वे आलसी, प्रमादी, लालची, अहंकारी और स्वार्थी हैं तो फिर उनकी बड़ी से बड़ी योग्यता भी निरर्थक सिद्ध होगी। इतना ही नहीं, उनका व्यक्तित्व जनता के लिए हानिकर और भारस्वरूप ही सिद्ध होगा। सुशासन की छाया में किसी भी देश का आशाजनक विकास होना स्वभाविक है। सुशासन की सबसे बड़ी कसौटी शासकों की सच्चरित्रता और आदर्शों के प्रति गहन-निष्ठा ही हो सकती है। जहाँ इस तथ्य में कमी रहेगी, वहाँ प्रकाशित घोषणायें एवं नीतियाँ कितनी ही आकर्षक क्यों न हो, उनके विपरीत ही काम होता रहेगा और उससे जनहित को हानि पहुँचती रहेगी।

जिन लोगों की दिलचस्पी राजनीति में है उनका कर्त्तव्य है कि प्रशासन के हर क्षेत्र में ईमानदारी और आदर्शवादिता उत्पन्न करने का प्रयत्न करें। राजनीतिक दलों में से प्रत्येक की नीतियाँ और घोषणायें उत्तम हैं। इनमें से किसी का भी सहारा ईमानदारी के साथ लिया जाय तो उससे देश का उत्थान ही हो सकता है। नीतियाँ किसी भी पार्टी के बुरी नहीं कहीं जा सकतीं। संसार के विभिन्न देशों नें विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम अपनाकर उन्नति की है। इस उत्कर्ष में वे नीतियाँ नहीं वरन् शासन तन्त्र की पवित्रता ही प्रधान कारण रही है। आदर्शों से भ्रष्ट लोग किसी भी शासन पद्धति को अपनावें, किसी भी रीति की घोषणा करें, परिणाम कुछ भी न निकलेगा।

इसलिए आवश्यकता तो इस बात की है कि राजनीति के मर्मस्थल पर हमारा ध्यान हो। नेतृत्व उन लोगों के हाथ सौंपा जाय तो आदर्शवाद से अपने जीवन का हर पहलू ओत-प्रोत किए हुए रह सकें। सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन इस प्रकार के दो भेद करना उचित नहीं। कहा यह जाता है कि सार्वजनिक जीवन में मनुष्य कर्त्तव्य पालन करना है तो उसके व्यक्तिगत जीवन की अनैतिकताओं की ओर क्यों ध्यान दिया जाय ? यह तर्क निरर्थक है। वस्तुतः चरित्र की सच्ची परीक्षा व्यक्तिगत जीवन में ही होती है। जो मनुष्य व्यक्तिगत—जीवन में दुराचार करता होगा और भ्रष्ट परम्पराएँ अपनाता होगा वह सार्वजनिक जीवन में ईमानदार रह सके, यह कदापि सम्भव नहीं। आदर्शों के प्रति गहन आस्था जिसके जीवन में नहीं है उसके अनाचार व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित रहेंगे इसकी कोई गारण्टी नहीं हो सकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शासन की पवित्रता उतनी ही आवश्यक है जितनी धर्म पुरोहितों की सदाचारिता। जो जितना महत्वपूर्ण कार्य है उसे उठाने के लिए उतनी ही उत्तरदायी एवं परखे हुए व्यक्तित्व अभीष्ट हैं। प्रजातन्त्र पद्धति के शासन में हर मतदाता का परम पवित्र कर्तव्य है कि वोट देते समय किसी लोभ या पक्षपात से प्रेरित होकर मतदान न करें वरन् आदर्शवादी व्यक्तित्वों को ही सर्वोपरि स्थान दें और यह भी देख-रेख रखें कि शासन तन्त्र में चरित्र भ्रष्टता तो बढ़ने नहीं लगी। यदि यह बुराई बढ़ रही होगी तो अच्छी से अच्छी योजनाएँ और नीतियाँ निष्फल चली जायेंगी। भ्रष्टाचारी लोग अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए जनता का भारी अहित करने में भी संकोच नहीं करते। इसलिए यदि किसी राष्ट्र को अपना स्वस्थ विकास करना हो तो शासनतन्त्र की सच्चरित्रता का पूरा ध्यान रखें। प्रजा की ओर से अधिकारियों को प्रलोभन देकर कोई अनुचित कार्य कराने का प्रयत्न न किया जाय और कर्मचारी जनता को परेशान करने की शक्ति का दुरुपयोग करके जनता के शोषण की विवशता उत्पन्न न करने पायें। ऐसी व्यवस्था बनाना उन लोगों का कार्य है जिनके कन्धे पर शासन तन्त्र चलाने का उत्तरदायित्व पड़ा हुआ है।

राजनैतिक दृष्टि से हम सफल हुए या असफल ? इसका एक ही प्रमाण हो सकता है कि शासनतन्त्र के संचालकों और नागरिकों में कर्तव्यपरायणता एवं नैतिकता कितनी बढ़ी ? इस कसौटी पर जो शासन खरा उतर सकेगा उसे ही इस राजनैतिक सफलता का श्रेय मिलेगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी, जहाँ भी, नैतिक दिवालियापन बढ़ा रहा है तब उसका परिणाम सर्वनाश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसलिए यदि राजनीति की प्रचण्ड शक्ति से राष्ट्र को लाभान्वित करना अभीष्ट हो तो एक ही काम पर सर्वोपरि ध्यान रखें—वह है शासकीय कर्मचारियों की सज्जनता और फलस्वरूप जनता में उत्पन्न होने वाली उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया। राष्ट्र इसी नीति पर चलते हुए उठते और बढ़ते हैं।

लोग एक प्रश्न अक्सर करते रहते हैं कि "हम राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश क्यों नहीं करते ? और राजतन्त्र को अपने अनुकूल सरकारी स्तर पर वह सब सहज ही क्यों नहीं करा लेते जिसके लिए इन दिनों इतनी अधिक माथापच्ची कर रहे हैं।" इस सुझाव के पीछे अपनी अपने संगठन की वह क्षमता और व्यापकता है जिसका सही मूल्यांकन कर सकने वाले लोग अनुभव करते हैं कि इन दिनों अपना तन्त्र—किसी भी राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक तन्त्र से कम प्रखर एवं कम सशक्त नहीं है।

वर्तमान युग में राजनीति की सर्वोपरि सत्ता और महत्ता को स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। यह स्वीकार करने में भी हमें कोई अड़चन नहीं है कि सरकारें यदि सही कदम उठा सकें, सूझ-बूझ से काम लें और अपने क्रियातन्त्र को सुव्यवस्थित रख सकने में समर्थ हों तो वे अपने क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकती हैं। जापान, चीन, रूस, जर्मनी, अरब, इजराइल आदि ने चन्द दिनों के भीतर अपने ढंग से—अपनी योजनानुसार—अभीष्ट परिवर्तन के प्रकार प्रस्तुत कर लिये। इसके आश्चर्यजनक उदाहरण सामने हैं। हम उन लोगों में से नहीं हैं जो वास्तविकता की ओर से जान-बूझकर आँखें बन्द किये रहें। धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं यह दूसरों ने भले कहा हो हमने यह शब्द कभी भी नहीं कहे हैं। इतिहास ने हमें सिखाया है कि धर्म की स्थापना में राजनीति का सहयोग आवश्यक है और राजनीति के मदोन्मत्त हाथी पर धर्म का अंकुश रहना चाहिए। दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं। दोनों में उपेक्षा या असहयोग की प्रवृत्ति नहीं वरन् घनिष्टता एवं परिपोषण का साधन तारतम्य जुड़ा रहना चाहिए।

इतिहास साक्षी है कि जनता के सुख सौभाग्य में अभिवृद्धि का आधार दोनों के बीच साधन सहयोग ही प्रमुख तथ्य रहा है। गुरु वशिष्ठ के मार्गदर्शन और रघुवंशियों के शासन क्रम ने द्वापर में उस सतयुग की स्थापना की थी जिसे हम रामराज्य के नाम से आदर के साथ याद करते हैं। चाणक्य के मार्गदर्शन से गुप्त साम्राज्य पनपा, फैला और परिपुष्ट हुआ था। पाण्डवों का मार्ग दर्शन कृष्ण ने किया था और दुशासन का उन्मूलन कर सुशासन की स्थापना की थी। राजा मान्धाता का सहयोग शंकराचार्य की दिग्विजय का महत्वपूर्ण आधार था। भगवान् बुद्ध के प्रभाव से सम्राट अशोक का बदलना और अशोक की सत्ता के सहयोग से बुद्ध धर्म का समस्त एशिया में फैल जाना एक ऐसी सच्चाई है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। समर्थ गुरु रामदास जानते थे कि धर्म प्रवचनों से ही काम चलने वाला नहीं है सुशासन की स्थापना भी आवश्यक है। अस्तु उन्होंने शिवाजी जैसे अपने प्रधान शिष्य को इस मार्ग पर अग्रसर किया। अग्रसर ही नहीं किया, अपने स्थापित ७०० महावीर देवालयों के माध्यम से आवश्यक रसद पैसा तथा सैनिक जुटाने की भी व्यवस्था की, शिवाजी उसी सहयोग के बल पर स्वतन्त्रता संग्राम की ऐतिहासिक भूमिका प्रस्तुत कर सके। गुरु नानक का पन्थ एक प्रकार से स्वाधीनता के सैनिकों से ही बदल गया। उसने "एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला" का आदर्श प्रस्तुत करके यह बता दिया कि राजतन्त्र और धर्मतन्त्र को विरुद्ध दिशाओं में नहीं चलने देना चाहिए वरन् उनके कदम एक ही दिशा में उठने की आवश्यकता हर कीमत पर पूरी की जानी चाहिए। वन्दा वैरागी ने सच्चे अध्यात्मवादी का उदाहरण प्रस्तुत किया और समाधि साधना एवं ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण की तरह ही अपना सर्वस्व राजनीति की सदाशयता की ओर मोड़ने के प्रयास में उत्सर्ग कर दिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान का धर्म से ही सीधा सम्बन्ध जुड़ता है पर अधर्म के अभिवर्द्धन के प्रधान कारण दुशासन को बदलने के लिए वे समय-समय पर अवतार धारण करते हैं। कच्छ, मच्छ, बराह, बामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतारों ने कुशासन के विरुद्ध सीधी कमान सँभाली। उनकी लीलाओं में इस प्रकार के उन्मूलन एवं परिवर्तन का घटनात्मक क्रम ही प्रधान है। अवतारों ने अन्य चरित्र भी दिखाये होंगे, पर उन्हें जिस प्रमुख प्रयोजन के लिए आना पड़ा वह अधर्म की सत्ता को धर्म स्थापना के उपयुक्त बनना ही प्रधान कार्य था। अगला निष्कलंक अवतार जो होने जा रहा है उसकी दृष्टि भी सुशासन की स्थापना पर ही होगी।

द्रोणाचार्य ने इस सच्चाई को दो टूक स्पष्ट कर दिया है। वे कहते थे—

अग्रतः चतुरो वेदा पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शास्त्रादपि शरादपि।।

-महाभारत

हम वेदों को आगे रखकर लोगों को समझाने और सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही पीठ पर धनुष बाण भी रखते हैं। यह धर्म शिक्षा 'ब्राह्म' है और यह शस्त्र धारण 'क्षात्र' है। दोनों शक्तियों के समन्वय से ही समस्यायें सुलझती हैं।

उपरोक्त सत्य का प्रतिपादन करने वाले तथ्यों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। अभी कल परसों महात्मा गाँधी जिन्हें इस युग का धर्म धुरुष कह सकते हैं। अपनी जीवन साधना से राजनीति का प्रधान समन्वय करके यह आदर्श प्रस्तुत करते रहे हैं कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं। लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, जैसे धर्मवेत्ता मनीषियों ने अपनी धर्म साधना के साथ राजनीति को भी अविछिन्न रूप से जोड़े रखा। इससे उनकी धार्मिकता घटी नहीं वरन् प्रखर एवं समुज्ज्वल ही होती चली गई।

शासन आज जिस तरह जीवन के हर पक्ष में प्रवेश करता चला जाता है और धीरे-धीरे व्यक्ति जिस तरह राज्य की कठपुतली बनने जा रहा है, उस बारीकी को समझने वाला कोई सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति राजनीति से सर्वथा पृथक् धर्म की कल्पना भी नहीं कर सकता। जो धर्म को राजनीति से अलग होने की बात कहते या समझते हैं, उन्हें नितान्त भोला ही कहा जा सकता है। प्रतिकूल राजनीति में धर्म को जीवित रहना भी सम्भव नहीं। रूस, चीन आदि साम्यवादी देशों की धार्मिकता की कैसी दुर्गति हुई यह सबके सामने है। तिब्बत का धर्म शासन करने वाले नागाओं को राजनैतिक प्रतिकूलता ने कहाँ से लाकर कहाँ पटक दिया। राजाश्रय पाकर ईसाई चर्च कितनी प्रगति कर रहा है और मध्य युग में राज्याश्रय ने इस्लाम धर्म के विकसित होने में कितनी सहायता की ? इन तथ्यों से कोई मूर्ख ही आँखें मींच सकता है।

इन तथ्यों को जानते हुए भी हम और हमारा संगठन राजनीति में प्रवेश क्यों नहीं करते, इसके सम्बन्ध में लोग हमें उलाहना देते और भूल सुधारने के लिये आग्रह करते हैं। वे जानते हैं कि हम लोग शासन तन्त्र में प्रवेश करने में बहुत दूर तक सफल हो सकते हैं। इसलिए उनकी आतुरता आदि भी अधिक रहती है। कितनी ही राजनैतिक पार्टियों द्वारा अपनी ओर आकर्षित करने और प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में सम्मिलित होने के लिए डोरे डाले जाते हैं और इसके बदले वे हमें किस प्रकार सन्तुष्ट कर सकते हैं, इसकी पूछ-ताछ करते रहते हैं। यह सिलसिला मुद्दतों से चलता रहा है और जब तक हम विदाई नहीं ले लेते तब तक चलता ही रहा और हो सकता है कि यह परिवार वर्तमान क्रम से आगे बढ़ता रहा और सशक्त बनता रहा तो इस प्रकार के दबाव उस पर आगे भी पड़ते रहें।

इस सन्दर्भ में हमारा मस्तिष्क बहुत साफ है। शीशे की तरह उसमें पूर्ण स्वच्छता है। बहुत चिन्तन और मनन के बाद हम एक निष्कर्ष पर पहुँचे हैं और बिना लाग लपेट छिपाव व दुराव के अपनी स्वतन्त्र नीति निर्धारण करने में समर्थ हुए हैं। हम सीधे राजनीति में प्रवेश नहीं करेंगे वरन् राजनीति को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करेंगे और यही अन्त तक करते रहेंगे। अपना संगठन यदि अपने प्रभाव और प्रकाश को सर्वथा तिरस्कृत नहीं कर देता तो उसे भी इसी मार्ग पर चलते रहना होगा।

भारत की वर्तमान राजनैतिक रीति नीतियों—शासन की गतिविधियों और तन्त्र की कार्य प्रणाली पर आमतौर से सभी को असन्तोष है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कई वर्षों की लम्बी अवधि में जो हो सकता था वह नहीं हुआ। तथाकथित आर्थिक प्रगति की बात भी विदेशी ऋण और युद्ध स्थिति तथा बढ़ती हुई बेकारी गरीबी को देखते हुए खोखली है। नैतिक स्तर ऊपर से नीचे तक बुरी तरह गिरा है। विद्वेष और अपराधों की प्रवृत्ति बहुत पनपी है। गरीब अधिक गरीब बने हैं और अमीर अधिक अमीर। शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ जो सत्प्रवृत्तियाँ बढ़नी चाहिए थीं, इस दिशा में घोर निराशा ही उत्पन्न हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शाखा बढ़ी नहीं घटी है। मित्रों की संख्या घटती और शत्रुओं की बढ़ती जा रही है। शासन में कामचोरी और रिश्वतखोरी की प्रवृत्ति बहुत आगे बढ़ गई है और भी बहुत कुछ ऐसा ही हुआ है जो आँखों के आगे प्रकाश नहीं अँधेरा ही उत्पन्न करता है। अपनी इस राजनैतिक एवं प्रशासकीय असफलता पर हम में से हर कोई चिन्तित और दुःखी है। स्वयं शासन वर्ग की समय-समय पर अपनी इन असफलताओं को स्वीकार करते रहते हैं। जिन्हें अधिक क्षोभ है वे उदाहरण प्रस्तुत करके शासन-कर्त्ताओं की कटु शब्दों में भर्त्सना करते सुने जाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। और अमुक पार्टी को हटाकर अमुक पार्टी के हाथ में शासन सौंपने की बात का प्रतिपादन करते हैं।

हमारे चिन्तन की दिशा अलग है, हम अधिक बारीकी से सोचते हैं। शासन की असफलता से हम दुःखी हैं। हमें बहुत खेद है कि विगत कई वर्षों में जितना बढ़ा जा सकता था उतना नहीं बढ़ा गया। प्रगति कुछ भी न हुई हो सो बात नहीं पर दूसरे देशों की तुलना में हमारी चाल इतनी धीमी है कि इस क्रम से हजार वर्ष में भी प्रगतिशील देशों की पंक्ति में भौतिक दृष्टि से भी खड़े न हो सकेंगे। गाँधी जी के धर्म राज्य, रामराज्य और विश्व-मंगल की अध्यात्मिक प्रगति तो अभी लाखों मील आगे की बात है।

इन परिस्थितियों के लिए किसी राजनेता या पार्टी को दोष देकर अपना जी हलका नहीं कर सकते वरन् गम्भीरता से उन कारणों को तलाश करते हैं जिनके कारण यह विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। रोग का कारण प्रतीत होने पर ही उसका उपचार सम्भव है। दूसरों की तरह उथला नहीं अधिक गम्भीर और दूरदर्शी होने की ही किसी दार्शनिक से आशा की जानी चाहिए। देखना यह होगा कि यह सब क्यों हो रहा है ? अपना एक हजार वर्ष का इतिहास देशी और विदेशी सामन्तवाद द्वारा प्रजा के उत्पीड़न का है। इस उत्पीड़न को सरल बनाये रखने के लिए जनता का मनोबल गिरा और बिखरा रखा जाना जरूरी था सो तत्कालीन दार्शनिकों द्वारा ऐसी विचारधाराओं का प्रचलन किया गया जो उपरोक्त प्रयोजन पूरा कर सकें। शासन की दृष्टि से प्रजा ने नृशंसता पाई और दर्शन की दृष्टि से भ्रान्ति 'ब्राह्म' और 'क्षात्र' दोनों ही अवांछनीय स्वार्थों की सिद्धि में लगे थे। प्रजा इस चक्की में भौतिक और आत्मिक दृष्टि से निरन्तर पददलित होती रही। यही एक तथ्य है जिसने भारत जैसे उत्कृष्ट परम्पराओं वाली प्रजा पर हजार वर्ष जितनी लम्बी अवधि तक पददलित रहने का कलंक लगाया।

इन विपन्न परिस्थितियों से देश को उबारने के लिए यों छुट-पुट प्रयत्न बहुत पहले से चल रहे थे पर उन्हें सुसंगठित और सुसंचालित होने का श्रेय गाँधी जी के नेतृत्व को मिला। वे असली कारण जानते थे और प्रयत्नशील थे कि रचनात्मक कार्यों और बौद्धिक जागरण स्वतन्त्र चिन्तन के माध्यम से प्रजा के मनोबल, चरित्र स्तर, स्वाभिमान एवं शौर्य को जगाया बढ़ाया जाय। स्वतन्त्रता संग्राम् वे धीरे-धीरे चला रहे थे। क्रान्तिकारियों से उनके मतभेद का मूल कारण यह था कि वे चाहते थे स्वराज्य धीरे-धीरे उस क्रम से आये जिस क्रम से देश उसे सँभालने वीग्य प्रतिभा अपने में पैदा कर ले। स्वतन्त्रता संग्राम के साथ चर्खा, खादी, हरिजन सेवा, ग्रामोद्योग, राष्ट्रीय शिक्षा, सफाई जैसी प्रवृत्तियों को जोड़ देना यों बहुत अटपटा लगता है। असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह की दार्शनिकता कितनी ही ऊँची क्यों न हो पर उसका व्यावहारिक पक्ष यह था कि इन सरलतम उपायों द्वारा जनता अपनी मूल चेतना विकसित करे और स्वराज्य धारणा कर सकने में समर्थ हो जाय। वे जानते थे कि विभूति प्राप्त करने से अधिक कठिन उसे पचाना होता है। शक्ति की असली परीक्षा कोई सफलता प्राप्त कर लेना भर नहीं है वरन् उसके सदुपयोग से ही प्राप्तिकर्त्ता का गौरव आँका जाता है। भागीरथ गंगा अवतरण की पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो गये थे पर उस धारा को सुव्यवस्थित रूप में प्रवाहित करने के लिए शंकर जी को अपनी जटायें फैलानी पड़ीं। यही सर्वत्र होता है। गाँधी जी के मन में स्वराज्य प्राप्ति करने की जल्दी नहीं थी वे जनता को उस आन्दोलन महायज्ञ से प्रबुद्ध, सतर्क और सक्षम बना रहे थे।

क्रान्तिकारी कहते थे कि बिना शस्त्र धारण किये और मजबूरी प्रस्तुत किये बिना अँग्रेज जाने वाले नहीं हैं। बात उन्हीं की सच निकली। सन् १९४२ में क्रान्तिकारी तोड़-फोड़ ने सिद्ध कर दिया कि असहयोग सत्याग्रह नहीं शस्त्र धारण ही वर्तमान स्थिति में राज क्रान्तियों की अनिवार्य आवश्यकता है। इस तथ्य को गाँधी जी भी जानते थे। वे स्वराज्य की उतावली में न थे, जनता की उन दुर्बलताओं को हटाने में लगे थे जो पिछले हजार वर्ष के अज्ञानान्धकार युग में पीढ़ी दर पीढ़ी के हिसाब से चलते रहने पर उसके स्वभाव में सम्मिलित हो गई थीं। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने जब भारत को स्वराज्य दिला ही दिया था तो वे इस असामयिक उपलब्धियों से जितने प्रसन्न थे उतने ही चिन्तित भी। जन जागरण का प्रयोजन पूरा नहीं हो सका था इसलिए उन्हें चिन्ता थी कि इस गंगावतरण का सुसंचालन कैसे होगा ? उन दिनों उन्होंने एक अति महत्त्वपूर्ण सुझाव रखा था कि काँग्रेस लोकसेवा संस्था का रूप धारण करे और जन जागरण के नितान्त आवश्यक कार्य में ही जुटी रहे। राजतन्त्र चलाने के लिये एक उस स्तर के लोगों की पिछली पंक्ति बना दी जाय। प्रजा पर प्रभाव रखकर काँग्रेस, राजनेताओं की नियुक्ति एवं उनको रीति-नीति पर नियन्त्रण करे, पर स्वयं उससे पृथक् रहकर वह जन-मानस के परिष्कार का मूल प्रयोजन पूरा करे जो किसी राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति का—यहाँ तक कि सुशासन का भी मूल आधार है।

उन दिनों परिस्थितियाँ विचित्र थीं। काँग्रेस नेता गाँधी जी से सहमत न हो सके। सारी शक्ति राजतन्त्र को सँभालने में लग गई। रचनात्मक कार्यों में विश्वास करने वाले लोकसेवी भी उसी तन्त्र में खप गये। सबका ध्यान सत्ता की ओर चला गया। सत्ता एक नशा है, उसका चस्का जिसे लगा कि फिर वह उसी घाट का हो लिया। काँग्रेस और उसका परिवार उसी दिशा में चल पड़ा। जन जागरण के लिए जिन रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की जरूरत थी वे या तो विस्मृत हो गये या उनकी लकीर पिटती रही। अन्य छोटी बड़ी राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर की संस्थाओं का भी यही हुआ। उन्होंने भी अपनी बड़ी बहन का अनुकरण किया। अपना बाहरी जामा वे कुछ भी बनाये रही हों भीतर ही भीतर सत्ता संघर्ष के लिए चल रही विभिन्न पार्टियों की प्रतिद्वन्द्विता में ही वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में शामिल थीं। ध्यान बटा सो बटा। पिछले कई वर्षों में जिस बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक क्रान्ति की जरूरत थी, शिक्षा और कला के महान् माध्यमों को सृजनात्मक दिशा में लगाने के लिए उन्हें हथियाया या अपनाया जाना चाहिए था। उस दिशा में किसी ने कुछ नहीं किया। इस भूल को हम ईमानदारी से स्वीकार कर लें तो कुछ हर्ज नहीं है।

दिशा भूलने का—जनमानस में हजार वर्ष की गुलामी की कुसंस्कारी प्रक्रिया हटाने की उपेक्षा करने का—जो परिणाम होना चाहिए था वह सामने है। उन परिस्थितियों उत्कृष्ट राजनेतृत्व एवं आदर्श शासन तन्त्र की आशा रखना व्यर्थ है। राजनेताओं का चुनाव होता है। चुनावों द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं और उनके चुनाव से सरकारें बनती हैं। जनता का जो स्तर है उसमें चुनाव जीतने के लिए पैसे को पानी की तरह बहाने की—जाति-पाँति के नाम पर लोगों को वरगलाने की—व्यक्तिगत या स्थानीय लाभ दिलाने के सब्जबाग दिखाने की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है। जो यह सब तिकड़में भिड़ाने में समर्थ न हों उसका चुनाव जीतना कठिन है। जनता का स्तर ही ऐसा है कि वह वोट का मूल्य और उसके दूरगामी परिणामों को अभी समझ ही नहीं पाई झाँसेपट्टी और वास्तविकता का अन्तर करना उसे आया नहीं। इसलिए चुनाव में वे लोग जीत न सके जो रामराज्य स्थापित कर सकने में सचमुच समर्थ हो सकते थे। जनता ने अपने स्तर के विधायक चुने। उन विधायकों ने अपने स्तर की सरकारें बनाईं, उन सरकारों के संचालकों ने वही किया जो जनता कर रही है या कर सकती है। जड़ के आधार पर पत्ते बनते हैं। धतूरे के बीज से उगे पौधे पर शहतूत कहाँ से लगें ?

राज्य शासन के संचालन में जो व्यक्ति काम करते हैं उनकी मनोभूमि एवं कार्यशैली ही शासन तन्त्र के संचालन का स्वरूप निखारती है। कानून कितने ही अच्छे क्यों न हों, नीतियाँ कितनी ही निर्दोष क्यों न हों, योजनाएँ कितनी ही बढ़िया क्यों न हों, उनके संचालन का भार जिस मशीनरी पर है उसके पुर्जे यदि घटिया होंगे तो सारा गुड़-गोबर होता रहेगा। सरकार कई योजनाएँ बनाती और चलाती हैं पर उसका स्वरूप जनता तक पहुँचते-पहुँचते विकृत हो जाता है क्योंकि जिनके हाथ में उस प्रक्रिया के संचालन का भार है वे उतने शुद्ध नहीं होंगे जितने होने चाहिए। अपराधों के रोकने और अपराधियों को पकड़ने की जिम्मेदारी जिस मशीन पर है यदि वह ऊँचे स्तर की हो और भावनापूर्वक काम करे तो निस्सन्देह अपराधों का उन्मूलन हो सकता है। उपयोगी कार्यों के लिये ऋण या अनुदान बाँटने वाली मशीन यदि स्वच्छ हो तो वह धन खुर्द-बुर्द न होकर सचमुच सम्पत्ति और सुविधा बढ़ाने में समर्थ हो सकता है। शिक्षा देने वाली मशीन यदि भावनाओं से ओत-प्रोत हो तो छात्रों को ढालने में उन व्यक्तियों का जादू आश्चर्यजनक ढलाई का प्रतिफल प्रस्तुत कर सकता है। सरकारी कानूनों या योजनाओं में उतना दोष नहीं है जितना कि प्रस्तुत प्रक्रिया का संचालन करने वाली मशीनरी की आदर्शवादी भावनाओं का न्यूनतम रूप है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह शासन-संचालन करने वाली मशीन कैसे उत्कृष्ट बने ? तो फिर बात लौटकर वहीं आ गई। सरकारी कर्मचारी आकाश से नहीं उतरते। वे जनता के ही बालक होते हैं। उनने अपने घर परिवार से सम्बद्ध समाज में जो कुछ देखा, सुना, समझा, अनुभव किया है उसी के आधार पर उनका मानसिक स्तर एवं चरित्र ढला है। नौकरी पाते ही वे उन सारे संस्कारों को भुलाकर देवता बन जायें यह आशा करना व्यर्थ है। उसी प्रकार पैसा लेकर वोट बेचने वाली, जाति-पाँति का पक्षपात करने वाली, व्यक्तिगत या क्षेत्रीय लाभ के प्रलोभनों से आकर्षित होने वाली अदूरदर्शी जनता से यह आशा करना व्यर्थ है कि वह उन्हें चुनेगी जो सुयोग्य एवं आदर्शवादी तो हैं पर पैसा लुटाने या बहकने वाले हथकण्डे अपनाने में समर्थ नहीं। यह एक सच्चाई है कि प्रजातन्त्र में जनता के स्तर की ही सरकार बनती है और उसी स्तर की सरकारी मशीन चलती है।

पार्टियों की सत्ता बदले, इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। पिछले तीन-चार वर्षों में काँग्रेस का एकाधिकार नहीं रहा। कई पार्टियों की अलग या सम्मिलित सरकारें बनीं उन्होंने भी कोई अलग आदर्श प्रस्तुत नहीं किया, जिस कीचड़ में काँग्रेस का छकड़ा घिसट रहा था उसी में खड़खड़ियाँ भी धँस गईं। सचाई यह है कि इन परिस्थितियों में कुछ हो ही नहीं सकता। प्रबुद्ध लोकमत जागृत हुए बिना—आया राम गया राम—की हथफेरी रुक ही नहीं सकती। अल्प मत को बहुमत में और बहुमत को अल्पमत में बदलने के लिए प्रलोभन और आतंक का वर्तमान दौर अनन्त काल तक चलता रहेगा यदि विधायकों को अपनी जनता के रोष एवं अवरोध का भय उत्पन्न न हुआ तो। इसी प्रकार जो भी सरकार सत्ता में आयेंगी उसके मन्त्री यदि अपने समर्थकों के, अपने क्षेत्र के लिये सरकारी मशीन से काम लेंगे तो उन पुर्जों से अपने स्वार्थ साधने की भी छूट देनी होगी। फिर प्रशासन शुद्ध कैसे होगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मूल समस्या यही है। किस पार्टी की सरकार बने, वह किन योजनाओं को कार्यान्वित करे, यह प्रश्न कम महत्व के हैं। अधिक महत्व के प्रश्न यह है कि चुनाव बिना खर्च कराये, उपयुक्त व्यक्तियों को चुनने का जन स्तर कैसे बने ? और सरकारी मशीन में पुर्जे बनने वाली कर्मचारी घर से ही आदर्शवादी एवं भावना सम्पन्न बन कर वहाँ तक कैसे पहुँचें ? यह समस्या पर्दे के पीछे दीखती है पर है यही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसे हल किये बिना तथाकथित प्रगति में खोखलापन ही बना रहेगा। प्रजातन्त्र की जड़ जनता है। वहाँ जनता का स्तर ऊँचा होगा वहीं प्रजातन्त्र सफल हो सकेगा। हमें यदि प्रजातन्त्र पसन्द है तो उसकी सफलता की अनिवार्य शर्त जनता का भावनात्मक एवं चारित्रिक स्तर भी ऊँचा उठाना ही पड़ेगा। अन्यथा शिकायतें करते रहने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगेगा। स्वराज्य प्राप्ति के समय गाँधी जी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये चिन्तित थे और जोर दे रहे थे कि काँग्रेस, शासन में न जाया जाय वरन् लोकमानस का निर्माण करने के अधूरे किन्तु अति महत्त्वपूर्ण कार्य को सँभालने में ही दत्त चित्त होकर जुटी रहे।

तथ्य—तथ्य ही रहेगा। आवश्यकता—आवश्यकता ही रहेगी। एक उसे पूरा नहीं करता तो दूसरे को अपना कन्धा लगाना चाहिए। यही रचनात्मक तरीका है। स्वतन्त्रता संग्राम में १२ वर्ष तक निरन्तर मोर्चे पर लड़ते रहने वाले सैनिक के रूप में अड़े रहने के उपरान्त उस संग्राम की पूरक परिधियों के महत्व को हम समझते रहेंगे। हमारा विश्वास है कि बौद्धिक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति एवं नैतिक क्रान्ति की त्रिवेणी बहाये बिना तीर्थराज न बनेगा और उसमें स्नान किये बिना हमारे पाप-ताप न कटेंगे। राजनैतिक स्वतन्त्रता का लाभ तभी प्राप्त किया जा सकेगा जब उसके साथ ही बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक क्षेत्रों के कालनेमि की तरह भ्रमे हुए पराधीनता पाश से मुक्त कराया जा सके। स्वतन्त्रता का एक चरण अभी प्राप्त हुआ तीन मोर्चो पर लड़ा जाना अभी भी शेष है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम उसी प्रयत्न में निरन्तर प्रयत्नशील रहे हैं। दूसरे सैनिकों ने अपनी वर्दियाँ उतार दीं और राजमुकट पहन लिये पर अपने लिए आजीवन उस चिन्तन लक्ष्य की ओर चलते रहना ही धर्म बन गया है जिसके ऊपर राष्ट्र की सर्वतोमुखी समर्थता निर्भर है। राष्ट्र की बात ही क्यों सोचें, विश्वकल्याण का मार्ग भी यही है। जन जागरण और लोक मानस में उत्कृष्टता, आदर्शवादिता का बीजांकुर बोया जाना वस्तुतः इस धरती पर स्वर्ग के अवतरण का अभिनव प्रयोग है। हम इसी दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया को हाथ में लेकर धर्म साहस, निश्चय और प्रबल पुरुषार्थ के साथ आगे बढ़ रहे हैं और जहाँ तक हमारा प्रभाव क्षेत्र है उसे उसी दिशा में घसीटते लिये चल रहे हैं।

हम जानते हैं कि जनमानस के अन्तरंग का स्पर्श करने और कोमल भावनाओं को सम्वेदनशील बनाने की क्षमता राजतन्त्र में नहीं है। उसकी मूल प्रकृति और प्रवृत्ति दूसरी है। कूटनीति, राजनीति का पर्यायवाची बन गया है। उस स्तर में जो कुछ होगा लोग उसमें अकारण ही किसी कूटनीति या दुरभिसन्धि की गन्ध सूँघेंगे। इसलिये राजतन्त्र के द्वारा इस प्रकार के प्रयत्न या प्रयोग जब कभी हुए हैं उन्हें असफलता ही हाथ लगी है। यह क्षेत्र वस्तुतः धर्म एवं दर्शन का है। बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक क्रान्ति के लिए विचारणा का स्तर बहुत गहराई से बदलना होगा। उथला बदलाव कोई स्थिर परिणाम उत्पन्न न करेगा। इस प्रयोजन की पूर्ति से केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है। राजनैतिक स्तर पर बाल-विवाह, छुआछूत निवारण, दहेज उन्मूलन, व्यभिचार विरोधी कानून बने हुए हैं। पर उनको कितना मान मिला और कितना परिणाम निकला यह सबके सामने हैं। भौतिक सुधार कराना राजतन्त्र का क्षेत्र है। भावनात्मक सुधार के लिए प्रजातन्त्र के वातावरण में केवल धर्मतन्त्र ही समर्थ हो सकता है। प्रजातन्त्र हटाकर अधिनायकवाद आना है तो आतंक के आधार पर विचार परिवर्तन भी सम्भव है पर वह प्रयोग महँगा है। व्यक्ति की विचार स्वतन्त्रता अपहृत हो जाने पर वह एक मशीन मात्र रह जाता है और सांस्कृतिक प्रगति की जिस महान् प्रक्रिया ने मानव जाति को यहाँ तक पहुँचाया उसका द्वार ही बन्द हो जाता है। हम प्रजातन्त्र पसन्द करते हैं। उसमें बहुत खूबियाँ और सम्भावनायें सन्निहित हैं। फिर प्रजातन्त्र की परिधि में जनमानस का निर्माण करना धर्म एवं अध्यात्मक का ही क्षेत्र रहता है।

हम यही कर रहे हैं। धर्म और अध्यात्म को हमने मानव जाति की समग्र प्रगति के लिए नियोजित किया है। पिछले दिनों उसमें जो अवांछनीयता घुस पड़ी थीं उसे सुधारा है। धर्म मंच अब तक प्रतिगामियों का दुर्ग समझा जाता है हमने उसे नई दिशा दी है और उसकी मूल प्रवृत्ति प्रगतिशीलता को उभारा है। धार्मिक प्रथा परम्पराओं, रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डों और मान्यताओं के बाह्य स्वरूप को यथावत् रखते हुए उनकी दिशा और प्रवृत्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि जिस क्षेत्र की ओर से नाक-भौं सिकोड़ी जाती थीं और निराशाजनक माना जाता था अब उसे मानवीय प्रगति की निर्णायक भूमिका सम्पादन करने में समर्थ माना जाने लगा है। पिछले दिनों कुछ क्षुब्ध वर्ग तोड़-फोड़ में लग गये थे। वे दीर्घकालीन परम्पराओं को उखाड़कर आमूल-चूल परिवर्तन लाना चाहते थे। वे भूल जाते थे कि ८० प्रतिशत देहातों में बसे हुए और ७७ फीसदी अशिक्षित देश के लिये धर्म परम्पराओं में क्रान्तिकारी तोड़-फोड़ सरल नहीं है। वे प्रयत्न भी लगभग असफल हो गये। अपनी सुधारात्मक प्रक्रिया आँधी-तूफान की तरह इसलिए सफल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती चली जा रही है कि हमने धर्मप्रथाओं एवं कलेवरों के बाह्य स्वरूप में हेर-फेर किये बिना उनके मूल प्रयोजन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है।

इस प्रकार परोक्ष रीति से हम राजनीति में भाग ले रहे हैं और राजनैतिक शुद्धता एवं प्रखरता की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। प्रत्यक्ष राजनीति में बहुत लोग घुसे पड़े हैं वहाँ इतनी भीड़ है जिसे बढ़ाया नहीं घटाया जाना चाहिए। प्रजातन्त्र की मूल शक्ति जनता में निर्धारित रहती है। जनता अपना बौद्धिक, सामाजिक एवं नैतिक स्तर ऊँचा उठाये बिना ऊँचे स्तर का शासन एवं राजनेतृत्व प्राप्त कर रही सकेगी।

हम राजनीति से अलग नहीं हैं, न उसका मूल्य कम कर रहे हैं बात इतनी भर है कि हम जड़ में खाद, पानी लगाने वाले माली बने रहना चाहते हैं। फूल और फल का व्यापार दूसरे लोग करें इसमें न हमें कोई आपत्ति है और न ईर्ष्या। हम अनुभव करते हैं उथले राजनीतिज्ञों की अपेक्षा हम अधिक ठोस और अधिक महत्वपूर्ण राजनीति अपना रहे हैं और हमारे प्रयत्नों का फल किसी भी राजनैतिक पार्टी या उसकी सरकार की अपेक्षा सत्परिणाम उत्पन्न करेगा। गाँधी जी का जन मानस निर्माण का काम अधूरा रह गया, हमें उनके शेष काम को पूरा करने वाले कुली, मजूर की तरह जुटे रहना मंजूर है। दूसरे लोग अपने तप का प्रतिफल चखें–चखते रहें। अपने मुँह से उसके लिए लार टपकने वाली नहीं है। हम स्वस्थ राजनीति के विकसित हो सकने सम्भावना वाला भवन बनाने में नींव के पत्थर मात्र बनकर रहेंगे और जो भी हमारे प्रभाव सम्पर्क में आवेगा उसे इसी दिशा में प्रेरित, आकर्षित करते रहेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिवाद नहीं—समूहवाद

हमारा चिन्तन समाजपरक हो

मनुष्य अपने आप में महत्त्वपूर्ण है यह ठीक है, पर व्यक्तिगत महत्त्व सामाजिकता के महत्त्व को कम करके ही कायम रखा जा सकता है यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। यह व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की विकृति है तथा मनुष्य के पतन का कारण बनती है। कहने के लिए व्यक्ति भले ही उसे सैद्धान्तिक रूप दे, व्यक्तिगत पुरुषार्थ की महत्ता अथवा ईश्वर की कृपा का फल कह ले किन्तु समाज के महत्त्व की उपेक्षा होती अपने अन्दर की विकृति ही है।

बहुत बार लोग इस प्रकार की अहंकार युक्त अभिव्यक्ति कर बैठते हैं कि "हमारे पास भगवान् का दिया सब कुछ है। हमें किसी पर निर्भर होने की आवश्यकता नहीं और न हमें समाज की परवाह है।"

पर कहना न होगा कि उनका यह कथन समाज के प्रति अहंकारजन्य धृष्ठता के सिवाय और कुछ नहीं है संसार में कोई भी मनुष्य समाज के सहयोग के बिना किसी योग्य नहीं बन सकता। वह जो कुछ बनता है समाज की सहायता से बनता है। इस प्रकार अहंकार बहुधा वही लोग दिखाया करते हैं, जिन्हें धन, जन का बल होता है किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि उनके पास जो धन, जन की वृद्धि हुई है वह समाज की कृपा से ही हुई है।

धन जिसका कि लोगों को बड़ा गर्व रहता है, समाज से ही उपलब्ध होता है। लोग धन के लिये व्यापार करते, खेती और उद्योग-धन्धों का अवलम्ब लेते हैं। एक व्यापारी जिन चीजों का व्यापार कर धन कमाता है, वे क्या सब उसकी उत्पन्न की हुई होती है ? व्यापार का सारा माल मूल रूप से खेती में उत्पन्न होता है और खेती करने वाले किसान ही होते हैं, व्यापारी नहीं। इस प्रकार व्यापार के लिए व्यापारी को किसान पर निर्भर होना पड़ता है। उसे उसकी परवाह करनी होगी। किसान का असहयोग शीघ्र ही व्यापारी का पट्टा उलट सकता है।

व्यापार की बहुत-सी वस्तुएँ कारखानों में बनाई जाती हैं। उनका कच्चा माल भी अधिकतर खेतों में ही पैदा होता है। इस प्रकार कारखानों और कारखानेदारों को भी किसान पर निर्भर रहना पड़ता है। इतना ही क्यों ? सारा कारखाना मजदूरों और कारीगरों के आधार पर चलता है। उसमें जो बिजली और मशीनरी लगी होती है, उसका निर्माण भी मजदूरों और कारीगरों द्वारा ही होता है। क्या व्यापारी और क्या कारखानेदार कोई भी तो इतना आत्मनिर्भर नहीं होता जो समाज की परवाह न करने जैसी सामर्थ्य प्राप्त कर ले। उनका यह कहना कि उन्हें न समाज की परवाह है और न किसी व्यक्ति की—बिल्कुल झूठ और कोरा दम्भ मात्र है।

इसी प्रकार खेतिहर को ले लीजिये। यदि वह सारी आवश्यक चीजें खेत में पैदा कर लेने के कारण यह कहता है कि वह बिल्कुल आत्मनिर्भर है या उसे समाज के दूसरे लोगों की अपेक्षा नहीं है, तो वह भी गलती पर है। माना वह जीवन की बहुत-सी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुयें अपने खेत में पैदा कर लेता है, तब भी वह पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं है। खेती के लिये जिन बहुत-से उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें से कुछ भी तो वह खुद नहीं बना सकता। उनके लिए उसे बढ़ई, लुहारों, कारखानों और कारखानेदारों पर निर्भर रहना होता है। यदि यह सब लोग उसके साथ असहयोग करने लगें तो उसकी खेती का काम बन्द हो जाते देर न लगे।

यदि कभी मजदूर के मन में भी ऐसा अहंकार उत्पन्न हो जाये तो वह भी गलती पर होगा। यदि वह सोच ले कि उसकी आत्मनिर्भरता का आधार तो उसका श्रम है, जो न किसी खेत में पैदा होता है और न किसी कारखाने में बनता है और न बाजार में बिकता है। वह तो उसके शरीर में रहता है और निसर्ग द्वारा मिला होता है। यह बात सही होने पर भी पूरी तरह सही नहीं है। श्रम उसका अपना अवश्य होता है तथापि उसको काम देकर सहयोग न दिया जाये तो उसकी यह विशेषता बेकार चली जाये। जब उसे खेतों, कारखानों और निर्माणों में लगाया जाता है, तभी उसका श्रम सार्थक होकर उसके काम आ पाता है। इस प्रकार मजदूर भी सर्वथा आत्मनिर्भर नहीं है, उसे भी उसी प्रकार अनेक वर्गों पर निर्भर रहना होता है, जिस प्रकार समाज के अनेक वर्ग उस पर निर्भर रहते हैं।

सामाजिक सहयोग की शृंखला की बात प्राकृतिक सहयोग से भी समझी जा सकती है। नदी अपने आप में पूर्ण है, समुद्र बादल की भी स्वतन्त्र सत्ता है पर उन सबका अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे के पूरक बनने से ही है। जिस दिन यह श्रृंखला बिगड़ी, उसी दिन उनकी महत्ता और उपयोगिता पर प्रश्न वाचक चिन्ह लग सकता है।

सम्पत्तियों तथा शक्तियों के सम्बन्ध में उससे कुछ अधिक श्रम रहता है। लोग समझते हैं कि वह तो अपने कर्मानुसार, पुरुषार्थ के आधार पर कमाई, संजोई और संचित की जा सकती है। परन्तु थोड़ी-सी सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह धारणा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भ्रान्तिपूर्ण है। सभी लौकिक शक्तियाँ समाज के सहारे ही प्राप्त होती हैं तथा उनकी उपयोगिता भी वही है।

धन, जिसकी कि मनुष्य की एक बड़ी शक्ति माना जाता है, सहयोग से ही किसी को मिल पाता है। धन पाने के लिये जब भी कुछ किया जायेगा, उसमें समाज के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी ही। पैसे के जोश में यह कहना कि मुझे न तो समाज की परवाह है और न किसी व्यक्ति की एक ऐसा झूठा अहंकार है जिसका अर्थ समाज के प्रति धृष्ठता के सिवाय और कुछ नहीं होता।

सच पूछा जाये तो धन की आवश्यकता तथा उपयोगिता समाज में ही है। अर्थ व्यवस्था तभी बनायी गयी जब मनुष्य को समाज में रहने की आवश्यकता अनुभव हुई। यदि व्यक्ति जंगल में जाकर रहने लगे तो उसे धन की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यदि उसे वह लोभ या मोहवश साथ रखे भी तो उसकी सुरक्षा और उपयोगिता भी वहाँ नहीं है। धन द्वारा अपनी सुख-सुविधा की जो सामग्री एकत्रित की जाती है वह भी समाज के श्रम से तैयार होती है। यदि हम स्वयं उसे तैयार कर सकें तो फिर धन की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

मनुष्य की सहज आवश्यकतायें भी अधिक नहीं है। समाज में अपने बड़प्पन का सिक्का जमाने के लिए ही वह साधन उपकरण बढ़ाता है। इस दृष्टि से भी धन की उपयोगिता और उपलब्धि दोनों ही समाज के ही कारण हैं।

जहाँ तक जन-बल का प्रश्न है सो वह भी समाज द्वारा ही प्राप्त होता है। जिनका कि किसी को बल होता है समाज के ही सदस्य होते हैं। उनमें से कोई भी समाज के बाहर का व्यक्ति नहीं होता। समाज ही उनका पालन-पोषण करता है। समाज में ही वे जन्म लेते हैं और समाज की सम्पत्ति द्वारा ही उनकी वृद्धि होती है। यदि समाज ऐसे बलदायक जनों का सर्वथा बहिष्कार कर दे तो दूसरों की ताकत बनना तो दूर खुद उनका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाये। जनबल भी किसी का अपना बल नहीं होता, वह भी समाज की ही देन होती है। समाज द्वारा पाये बल के आधार पर समाज की ही उपेक्षा करना कहाँ का न्याय माना जा सकता है ? व्यक्ति का अपना अस्तित्व कुछ नहीं। वह हर प्रकार से समाज पर ही निर्भर रहा करता है।

प्रत्येक व्यक्ति समाज द्वारा ही सहायता पाकर आगे बढ़ता और ऊपर बढ़ता है। समाज का सहारा लिए बिना उसका एक कदम भी चल सकना सम्भव नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सीमित क्षमता होती है। कोई भी व्यक्ति न अपने में पूर्ण है और न सर्वथा आत्मनिर्भर। यदि एक डॉक्टर चिकित्सा के क्षेत्र में योग्य होता है, तो एक इन्जीनियर निर्माण के क्षेत्र में। यदि एक कलाकार अपनी रचना के क्षेत्र में माहिर होता है, तो राजनीतिज्ञ अपने क्षेत्र में। कलाकार चिकित्सा के क्षेत्र में डॉक्टर पर निर्भर है, तो डॉक्टर साहित्य के क्षेत्र में कलाकार पर। यदि एक इन्जीनियर निर्माण क्षेत्र में राजनीतिज्ञ को निर्भर बनाता है तो उसे राजनीतिज्ञ पर निर्भर होना पड़ता है। योजना के सारे क्षेत्र आवश्यक होते हैं। पर कोई भी एक व्यक्ति स्वयं अपने आप हर क्षेत्र में अपना काम नहीं चला सकता। अपना क्षेत्र छोड़कर उसे दूसरे क्षेत्र में किसी और पर निर्भर होना होगा।

इसके अतिरिक्त समाज पर निर्भरता के और भी रूप हैं। क्या कोई व्यक्ति जो अपने किसी विशेष क्षेत्र का समर्थ-ज्ञानी है, यों ही अपने आप ऐसा योग्य बन गया। नहीं ऐसा कदापि नहीं होता। वह अपने विषय का ज्ञान भी समाज के दूसरे लोगों से प्राप्त करता है। उदाहरण के लिये एक इन्जीनियर को ही ले लीजिये। इन्जीनियर बनने से पूर्व वह एक विद्यार्थी रहा होगा। वह ऐसी शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ा होगा, जिसे दूसरे लोगों ने बनवाया होगा और ऐसे लोगों ने उसे पढ़ाया होगा, जो स्वयं भी किन्हीं संस्थाओं में किन्हीं दूसरे लोगों द्वारा पढ़ाये गये होंगे। इसके अतिरिक्त किताबों तथा अन्य शिक्षा सामग्री की भी आवश्यकता पड़ी होगी। वह सब भी तो समाज के दूसरे लोगों द्वारा तैयार की जाती है और सबसे बड़ी बात यह कि उसकी शिक्षा पर उसके अभिभावकों का जो पैसा खर्च हुआ होगा, वह भी उन्हें समाज की सहायता एवं सहयोग से ही तो मिला होगा। यही बात एक इन्जीनियर पर ही नहीं कुछ हेर-फेर के साथ सभी लोगों पर घटित होती है। तब कोई भी व्यक्ति यह अहंकार कैसे कर सकता है कि उसे न तो किसी व्यक्ति की परवाह है और न समाज की चिन्ता और यदि वह यह सब जानकर भी अपने विचारों में सुधार नहीं करता तो कभी भी समाज द्वारा अपनी इस ढिठाई का दण्ड पा सकता है।

जिस प्रकार बूँद-बूँद से सागर और ईंट-ईंट से भवन बनता है, उसी प्रकार जन-जन मिलकर विशाल समाज का निर्माण करते हैं। जिस प्रकार जल की एक प्रथम बूँद का अपना कोई अस्तित्व नहीं और जिस प्रकार दूसरों से पृथक् रहकर अकेली ईंट, मिट्टी के एक निरर्थक ढेले से अधिक कोई महत्त्व नहीं रखती, उसी प्रकार समाज से पृथक् एक अकेले व्यक्ति का भी न तो कोई अस्तित्व है और न महत्त्व। अपनी विशाल राशि से अलग हुई पानी की एक अकेली बूँद को जिस प्रकार हवा का एक झोंका सुखा देता है, उसी प्रकार समाज से अलग एक अकेले व्यक्ति को समय की चपेट शीघ्र ही नष्ट कर देती है। जिस प्रकार परस्पर एक-दूसरे से जुड़े रहने और एक-दूसरे को सहारा दिये रहने पर प्रत्येक ईंट की भवन के रूप में सुरक्षा भी है और महत्व भी उसी प्रकार पारस्परिक सहयोग और सहायता के आधार पर समाज के रूप में प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा और महत्त्व है। समाज से पृथक् रहकर न तो वह अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकता है और न व्यक्तित्व। अपने अकेलेपन पर अहंकार करना मनुष्य का बहुत बड़ा भोलापन है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो मनुष्य अहंकार भाव से प्रेरित होकर और समाज को ठेलकर आगे बढ़ना चाहते हैं वे अपने मन्तव्य में कभी सफल नहीं हो पाते। संसार के सफल एवं उन्नत व्यक्तियों की यदि जीवन गाथा देखी जाये, तो पता चलेगा कि अन्य गुणों के साथ सामाजिकता का गुण भी उनमें बहुत रहा है। वे सदैव ही समाज के प्रति विनम्र, उदार और हितैषी रहे होते हैं। उन्होंने कभी भी कोई ऐसा काम नहीं किया होता जिससे समाज की हानि और अवहेलना होती रही हो।

समाज की उपेक्षा कर चलने वाले अहंकारी व्यक्ति बहुधा अपराध कर्मों की ओर चले जाते हैं। अपराध वही लोग करते हैं, जिन्हें समाज की चिन्ता नहीं होती उसका हानि-लाभ नहीं दीखता। ऐसे लोग ही अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए समाज की मर्यादाओं को लाँघते और उसकी सर्वमान्य मान्यताओं को ठुकराते चले जाते हैं और अन्त में अपने किये को दण्ड रूप में भरते हैं। ऐसे ही समाज विरोधी लोग जेल जाते हैं, निन्दित और तिरस्कृत होते हैं। समाज जब उनकी अनुचित कार्यवाही की ओर ध्यान देता है, तब उनकी रक्षा सम्भव नहीं होती। वे जहाँ भी बचाव के लिये जाते हैं, वहीं उन्हें तिरस्कार, अवहेलना और असहयोग का भाजन बनना पड़ता है। ऐसे अहंकारवादी व्यक्तियों का अन्त बड़ा ही अशान्त, अयोग्य और सन्तापपूर्ण होता है। उनका वह मानव-जीवन बिल्कुल बेकार चला जाता है, जिसका समाज के हेतु सदुपयोग कर वे यश और प्रतिष्ठा के अधिकारी बन सकते थे। समाज की उपेक्षा अपनी ही उपेक्षा है और उसकी हानि भी अपनी ही हानि होती है। इस सत्य को कभी भी न भूलना चाहिये।

यह कहना असंगत नहीं कि अपराधवृत्ति सामाजिक दृष्टिकोण की उपेक्षा का ही कारण है। समाज के प्रति उपेक्षा का भाव आते ही मनुष्य के श्रेष्ठ चिन्तन की दिशा बिगड़ जाती है। आत्म विकास से लेकर समाज के उत्थान तक की चिन्तन प्रक्रिया पलट जाती है। पाप करने पर श्राप दिए जाने की लोकोक्ति प्रचलित है। सामाजिकता की अवहेलना एक पाप है, और अपना ही अन्तःकरण उससे विक्षुब्ध होकर श्राप दे बैठता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य पतन के गर्त में गिरने लगता है।

समाजनिष्ठा शुद्ध आस्तिकता की तरह ही मनुष्य को अपराधी बनने अथवा हीन आचरणगामी होने से रोकती है। भूल करके रोने की अपेक्षा भूल न होने देने का प्रयास श्रेष्ठ है। आत्मोत्कर्ष की दिशा से हम विचलित न हों इसके लिए आवश्यक है कि इस तथ्य को हम सतत् ध्यान में रखें। व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण इसी बात पर निर्भर है कि व्यक्तिवाद का अहंकार छोड़कर समाजवाद-समूहवाद की उदारता ग्रहण की जाय। व्यक्ति की वास्तविक शक्ति और सच्चा लाभ समाज की ही शक्ति और समाज का ही लाभ होता है। अपनी किसी व्यक्तिगत शक्ति और समृद्धि के जोश में समाज की उपेक्षा का दम भरना वैसा ही खतरनाक है, जैसा कि किसी छोटी-सी बूँद का सागर से अलग होकर अपना अस्तित्व बनाये रखने का दम्भ। समाज की उपेक्षा में नहीं व्यक्ति का मंगल समाज के रंजन में है और वही हम सबको करना चाहिये।

यह स्थिति लाना कोई असंभव कार्य नहीं है किन्तु सत् चिन्तन एवं श्रम के द्वारा ही उस स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है। लोग सोचते हैं कि श्रेष्ठता विचारते ही आ जाये अथवा किसी को एक बार बताने मात्र से वह उस मार्ग पर चल पड़े। ऐसा सोचना अच्छा तो लगता है, पर है मात्र कल्पना लोक का आनन्द। यथार्थ में तो इस तथ्य को हृदयंगम करने तथा कराने के लिये लम्बे समय तक कथन, श्रवण, चिन्तन तथा अभ्यास का क्रम आवश्यक होता है।

यह सब क्रम मनुष्य किसी न किसी उद्देश्य के लिए चलाता ही रहता है। जिस विषय पर उसका विश्वास जम जाये उसके लिए सब कुछ करना उचित और रुचिकर भी लगता है। सामाजिक दृष्टिकोण के निर्वाह के लिए स्वयं अपने अन्दर तथा अपने परिचितों के अन्दर दृढ़ आस्था पैदा करना ही इसके लिए अभीष्ट है। हम उसे सतत् करते हुए भी रह सकते हैं। स्वभाव में आ जाने पर यह कार्य अनायास भी होने लगता है। व्यस्तता तथा समय की कमी बाधक नहीं बनती।

समाज के साथ ही व्यक्ति का उत्कर्ष सधेगा

जिस समाज में परमार्थ वृत्ति नहीं होगी उसका अस्तित्व कायम रहना असम्भव होगा। अभिभावकों द्वारा बच्चों की सेवा, पालन-पोषण शिक्षा-दीक्षा का ध्यान न रखा जाय और यह वृत्ति समाज में व्यापक बन जाय तो मानव जाति का ह्रास होने लगेगा। परिवार, समाज, व्यावहारिक सम्बन्धों में परस्पर प्रेम और सहानुभूतिजन्य आत्मीयता की भावनायें नष्ट हो जायें तो समाज के अविकसित असमर्थ, अक्षम लोगों का जीवन निर्वाह कठिन ही होगा और वृद्ध अपंग, अपाहिज, रोगी, दुःखी लोगों का जीवन दूभर हो जायगा। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ इस परमार्थ, परार्थवृत्ति से जितनी ही शून्य होती जायेंगी, उतनी ही सामाजिक व्यवस्था दोषयुक्त बनती जायगी। व्यक्तिगत लाभ, स्वार्थ सिद्धि, समृद्धि के लिये मनुष्य कितना भी क्यों न करें, वह कितना ही सम्पन्न और वैभवशाली क्यों न बन जाय किन्तु परमार्थ और दूसरों के प्रति प्रेम सहानुभूति सहायता, सौजन्य के अभाव में वह समाज के लिये किसी भी तरह उपयोगी सिद्ध नहीं होता। उससे समाज के विकास में कोई योग नहीं मिलता। साथ ही उसका स्वयं का भी विकास रुक जायेगा क्योंकि समाज के साथ ही व्यक्ति और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति के द्वारा ही समाज का विकास सम्भव है। ऐसे व्यक्ति के बारे में सोचकर वेद के ऋषि ने स्पष्ट कह दिया है—

"भोघमन्नं विदन्ते अप्रचेताः"
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य,
न आर्यमणं पुष्यति नोसखायं,
केवलाघो भवति केवलादी।

"स्वार्थपूर्ण संकीर्ण मनोवृत्ति वाले व्यक्ति ने पास में संग्रहीत धन, संग्रह नहीं किया वरन् अपनी मृत्यु को ही संग्रह कर लिया है। जो अपने भाई-बहन को कुछ नहीं देता जो अपना ही खयाल रखता है अपने लिये ही संग्रह करता है, वह केवल पाप रूप है, वह चोर है, ऐसा वेद के ऋषि ने स्वार्थपरायण, अपने ही संग्रह में लीन व्यक्ति के लिए स्पष्ट शब्दों में कह दिया है।"

स्वार्थ प्रधान, निजी लाभ रखने के दृष्टिकोण से सुखी, सम्पन्न विकसित समाज का निर्माण नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में मनुष्य आपापूती की भावना से प्रेरित होकर परस्पर छीना-झपटी, एक-दूसरे के प्रति षड्यन्त्र ईर्ष्या द्वेष में लीन हो जायगा। समाज में एक-दूसरे के प्रति अविश्वास सन्देह, भय, शंका आदि की वृद्धि होगी और इससे समस्त समाज में विकृतियाँ, दोष पैदा हो जायेंगे। धोखेबाजी, ठगी, भ्रष्टाचार, लूटखसोट, डकैती, शोषण जैसे भयकंर अपराधों का सूत्रपात मनुष्य को इस स्वार्थ प्रधान, निजी लाभ की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण ही होता है। व्यक्ति अपने जीवन में कितना भी समृद्ध, शक्तिशाली, सम्पन्न क्यों न हो सुख-शान्ति, आनन्द से वंचित रहेगा। क्षण-क्षण, पल-पल उसे नई चिन्ता, षड्यन्त्र संघर्ष दूसरों के आक्रमण का सामना करना पड़ेगा। जीवन उसके लिए एक अभिशाप सिद्ध होगा।

समाज में परस्पर सहानुभूति सौजन्य सेवा सहायता सहयोग संगठन आदि पर समाज का विकास निर्भर करता है। ये सब परमार्थ, परार्थ, दूसरों के लिये जीवन दान से ही सम्भव है। स्वार्थ और संकीर्णता से समाज में विघटन, संघर्ष आदि का ही पोषण होता है।

आवश्यकता इस बात की है कि हमारा जीवन, हमारे प्रत्येक कार्य-कलापों का आधार व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत हो—सार्वभौमिक हो। रचनात्मक और दूसरों के लिये हितकारी हो। मनुष्य अपने लिये न जिए वरन् समाज के लिये, संसार के लिए जिए। इसी सत्य पर व्यक्ति का विकास उत्थान सम्भव है और साथ ही समाज में परस्पर सहयोग, आत्मीयता, सौजन्य के सम्बन्ध कायम होते हैं। विश्व-यज्ञ में मनुष्य का प्रत्येक प्रयास, आहुति डालने के सदृश हो तो धरती पर ही स्वर्ग की कल्पना साकार हो उठे।

किसी क्षेत्र में शक्ति सामर्थ्य अर्जित करके मिला हुआ उच्चपद, प्रतिष्ठा बुरी नहीं है। जीवन के सर्वांगीण विकास में इनकी आवश्यकता भी है किन्तु शक्ति, सामर्थ्य, पद, सत्ता का उपयोग गिरे हुओं को उठाने के लिए, जीवन पथ में अटके हुओं को निकालकर आगे बढ़ाने, आगे बढ़ने वालों को सहारा देने में हो तभी इनकी सार्थकता है।

आनन्दोपभोग करना, खुशियाँ मनाना, मनुष्य जीवन की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। धरती पर जीव का अवतरण ही यहाँ के सुरदुर्लभ मानवीय आनन्द की प्राप्ति के लिए होता है किन्तु इस तरह के आनन्द उपभोग जन-जन के साथ मिलकर समाज के साथ ही मनाये जाने चाहिए। भारतीय संस्कृति और धर्म में सामूहिक मेले, त्यौहार, पर्व, रीति-रिवाज इसी सत्य के प्रतीक हैं। नीतिकारों ने व्यक्तिगत एकाकी आनन्दोपभोग को कोई स्थान नहीं दिया। हमारे पर्व, त्यौहार, मेले आदि अमीर, गरीब, छोटे, बड़े सबके लिये थे। सुख भी समाज के साथ, दुःख भी समाज के साथ, यही आनन्दोपभोग कर जीवन की कठिनाइयों से तर जाने का मूल मन्त्र है।

एक व्यक्ति महलों में रंगरेलियाँ मनावे, रोशनी करे और उसके नीचे की झोंपड़ी में दिया भी न जले यह असामाजिक है, हेय है। एक मिठाइयाँ उड़ावे, बहुमूल्य पदार्थों का झूँठन नाले में बहावे और दूसरे को सूखी रोटियाँ भी नसीब न हों यह आनन्दोपभोग की प्रवृत्ति का विकृत रूप है। दीपावली मनाई जाती है, घर-घर दिये जलाये जाते हैं, प्रत्येक व्यक्ति दीपक जला सकता है, इस पर भी कदाचित् कोई न जला पावे तो गृह वधुयें पड़ौस में घर-घर दीपक रखती हैं। कोई घर दीपोत्सव से, दीपावली से वंचित नहीं रहे, यह आदर्श होना चाहिए हमारे आनन्दोपभोग का। सब हम ही उपभोग करें दूसरे नहीं, यह आसुरी—असामाजिक प्रवृत्ति है इसे सदा ही बुरा माना गया है।

इस तरह हमारे जीवन की समस्त प्रवृत्तियों का आधार बहुजन हिताय परमार्थ, परार्थ, परायणता ही होना चाहिये। स्वार्थ परायणता नहीं इसी में हमारे स्वयं के और समाज के जीवन का विकास प्रगति का मन्त्र सन्निहित है। सबका हित, सबका सुख, सबका लाभ, कल्याण हमारा जीवन दर्शन होना चाहिये।

समाज में व्यक्ति का विकास

व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व एक सामाजिक चीज है। जिस तरह एक आम के वृक्ष का विशाल अस्तित्व, मधुर फल, शीतल छाया, दूसरे लोगों द्वारा उसकी सेवा, सिंचाई, खाद पानी देने सुरक्षा करने का परिणाम है, इसी तरह एक व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाज के प्रयत्नों का फल है, जिसमें प्रकट रूप से माँ, बाप भाई, बहन, पड़ौसी, शिक्षक और अदृश्य रूप से समस्त पीछे की पीढ़ियों, सारे मानव समाज का हाथ होता है। माँ-बाप के जीवन विकास में ही कितनों का योग रहा होगा ? जिस स्कूल में मनुष्य पढ़ता है, उसमें कितने मजदूरों का श्रम, कितने लोगों का धन लगा होगा। फिर उसमें पढ़ाने वाले शिक्षकों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन-निर्माण में कितने लोगों का हाथ रहा होगा। मनुष्य जितनी भी वस्तुयें उपयोग में लाता है, उनके उत्पादन निर्माण में कितने ही व्यक्तियों का हाथ रहा होगा। मनुष्य के व्यावहारिक अनुभव की वृद्धि कितने लोगों के सम्पर्क में आने से होती है। इन सबसे पता लगा है कि एक व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व समाज के ही प्रयत्नों का परिणाम है।

समाज में रहकर ही व्यक्ति की क्षमताओं की जाँच होती है। उसके छोटे-बड़े, उत्कृष्ट होने की माप भी समाज में ही होती है। भले या बुरे कर्मों के आधार पर ही व्यक्ति को समाज में उच्च या निकृष्ट स्थान प्राप्त होता है। सभी रूपों में व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व एक सामाजिक वस्तु है। समाज को पुष्ट, सबल, सक्षम बनाने में, सब भाँति समाज के हित और कल्याण के साधने में ही व्यक्ति की उपयोगिता, वास्तविकता है। समाज से आँखें मूँदकर अपनेपन की भावना रखकर स्वार्थरत होना सभी तरह से हेय, निषिद्ध और सामाजिक अपराध माना गया है।

व्यक्ति का सामाजिक जीवन में खप जाना, समा जाना व्यक्तित्व का प्राथमिक सूत्र है—एक प्रारम्भिक आवश्यकता है। जो समाज के उपकारों को भुलाकर अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व को अलग रखते हैं अथवा समाज के साथ असहयोग करते हैं या समाज विरोधी आचरण करते हैं वे मुख्य रूप से जीवन के नियमों, मूल सिद्धान्तों की ही उपेक्षा करते हैं, इस प्रवृत्ति के कारण मनुष्य को सम्पूर्ण समाज का विरोध सहन करना पड़ता है और इससे उसके व्यक्तित्व का विकास बन्द हो जाता है। जीवन के विकसित तत्वों का क्षरण होने लगता है। स्वार्थपरता की मनोवृत्ति मनुष्य को आन्तरिक दृष्टि से भी दीन-हीन, एकाकी बना देती है। मनुष्य की स्वयं की शक्ति सीमित और अल्प है। समाज की शक्ति के साथ मिलकर ही वह असाधारण बनती है और फिर उसी से असाधारण कार्यों का सम्पादन होता है। अतः समाज के साथ व्यक्तित्व का सामंजस्य एवं एकाकार होना जीवन का एक आवश्यक नियम है।

शरीर के सभी अंगों के श्रम, सहयोग, परस्पर योगदान में ही मानव जीवन का अस्तित्व निहित है कदाचित् विभिन्न अंग परस्पर विरोधी, एकांगी, स्वार्थी आचरण करने लग जायें तो समस्त शरीर का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा। यदि मुँह से भोजन का स्वाद तो ले लिया जाय और पेट में न ले आकर उसे थूक दिया जाय तो शरीर की हानि होगी। यदि पेट उस भोजन का संग्रह करके अपने आप में ही रखता जाय उसका रस बनाकर शरीर को न पहुँचावे तो जीवन का अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा। इसी तरह समाज में भी व्यक्तिगतभाव शक्ति, लालसा को रखकर किये जाने वाले कार्यों के लिये कोई स्थान नहीं है। व्यक्तिगत उत्कृष्टता, शक्ति, समृद्धि, ऐश्वर्य की लालसा, सारे समाज के लिये हानिकारक और स्वयं में भी विष पैदा करने का रास्ता है। इससे सारा समाज प्रभावित होता है। समाज के दूसरे अंगों का शोषण होकर वे दुबले-पतले, शक्तिहीन बन जाते हैं, जो समाज में उसी तरह दूषित और भयंकर होते हैं जैसे शरीर में कोढ़।

समाज को शक्तिशाली बनावें

धरती पर जीवन की बनावट ही कुछ ऐसी है कि वह अपने आप में सिमटकर नहीं रह सकता। सम्पूर्ण समाज सृष्टि से प्रभावित होता है और उससे सम्पूर्ण समष्टि। जिस तरह श्वांस-प्रश्वांस का सम्बन्ध विश्वव्यापी वायु तत्व से जुड़ा हुआ है, उसी तरह से मनुष्य का जीवन समष्टि के साथ जुड़ा हुआ है और वह स्वयं भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने आस-पास की दुनिया को प्रभावित करता है। इस तरह व्यक्ति का विकास समष्टि के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। वह जितना इस कड़ी को मजबूत करेगा उतना ही वह अपने और समाज के जीवन को समृद्ध विकसित करेगा। मनुष्य जितना अपने जीवन को समष्टि के साथ व्यापक बनाता जाता है वह उतनी ही उच्च कक्षा में प्रवेश करता है। महानता की सीढ़ी पर पैर रखता है।

आस-पास के क्षेत्र का—जिसे समाज कहा जाता है—हमारे व्यक्तित्व के विकास में बहुत बड़ा हाथ होता है। इसलिए प्रतिदान स्वरूप मनुष्य का भी कर्तव्य हो जाता है कि वह उस संस्थान को अधिकाधिक समर्थ और समृद्ध बनावे ताकि वह व्यक्ति के निर्माण एवं विकास में अपना पूरा-पूरा हक निभा सके।

अपने स्वार्थ, अपनी ही मान्यताओं, अपने ही लाभ में आसक्त रहने वाला मनुष्य समाज को तो कमजोर करता ही है साथ ही अपनी प्रगति में भी बाधक बनता है। वह स्वयं अपनी ही परिधि में गिरफ्तार रहकर समाज के साधनों से लाभ नहीं उठा पाता इसलिए पिछड़ जाता है, अविकसित रह जाता है। इसीलिए व्यक्तिवादी स्वार्थमयी भावना की निन्दा सभी विद्वानों ने की है। हमारे शास्त्रों में तो स्पष्ट कहा गया है कि यह समस्त संसार भगवान का है किसी एक व्यक्ति का नहीं, इसीलिये जो व्यक्ति इसकी वस्तुओं पर अनुचित रीति से अधिकार जमाकर अपने हिस्से से ज्यादा सामग्री भण्डार में जमा करता है वह ईश्वर को दृष्टि में आततायी है—ईश्वरीय आदेश के विपरीत आचरण करने वाला है। इतना ही नहीं समाज की दृष्टि से भी वह पापी और जनता का अहितकर्ता है। इस प्रकार की स्वार्थमयी नीति से वह स्वयं भी भयभीत जीवन व्यतीत करता है और दूसरों को साधनविहीन बनाकर उनके दुःख का भी कारण बनता है। इस प्रकार का आचरण सब प्रकार से गर्हित है और हमें उससे बचकर ही रहना चाहिये।

समाज को अभावग्रस्त देखकर भी हम अपना घर भर देखें तो यह अपनी मौत को निमन्त्रण देना है क्योंकि दुर्बल समाज हमारी रक्षा नहीं कर सकता। इसके साथ ही एक न एक दिन समाज के कोप का भी भाजन बनना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ेगा। ऐसे स्वार्थी लोगों को दूसरों का सहयोग-आत्मीयता मिलना तो असम्भव ही है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि अपने समाज के हित में अपना हित समझा जाय, उसकी समृद्धि विकास में ही मनुष्य का विकास निहित है।

समष्टि में विस्तार पाने के लिये सर्वप्रथम आवश्यकता है सामूहिकता की भावना की। हमारा दृष्टिकोण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनेपन से प्रेरित न होकर समष्टिगत हो। हम जो भी करें उसका प्रभाव समाज पर क्या पड़ेगा ? यह विचार करना आवश्यक है। इस तरह के सभी प्रयत्न त्याज्य हैं जिनमें हम अपने लाभ की साधना से समाज के हितों को नुकसान पहुँचाते हों। समाज में जहाँ अन्य लोगों को सरलता से पेट भरने को अन्न न मिले और हम अपने भण्डारों में अन्न संग्रहीत कर, समाज के बहुत बड़े वर्ग को जहाँ रोटी, कपड़ा, आवश्यक शिक्षा, चिकित्सा आदि की व्यवस्था न हो और हम अपने लिए कोठी बँगले, आमोद-प्रमोद के साजी-सरंजाम एकत्र करें तो यह ऋषियों की भाषा में पाप होगा। किसी भी स्थित में हमें उन कार्यों से बचना चाहिये जिससे अपने लाभ के लिए सम्पूर्ण समाज का ही अहित कर रहे हों।

हमारे समाज-शिल्पी ऋषियों ने स्थान-स्थान हमें आदेश देते हुए कहा है—**'संगच्छध्वम् सम्वदध्वम्'** तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो। **'समानी प्रजा सहवोऽन्नभागः'**। तुम्हारी खाने-पीने के स्थान व भाग एक जैसे हों। **'सामानो मन्त्रः समितिः समानी'**। तुम्हारी सभी समितियाँ एक समान हों और तुम्हारे विचारों के सामंजस्य में एकरूपता हो। **'समानो व आकूतिः समाना हृदयानि वः'**। तुम्हारे हृदय के संकल्प भावनायें एक-सी हों। सामूहिक जीवन की समृद्धि के लिए समाज के विकास के लिए हम सब में एकता, समानता की भावना का होना आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की है कि हम सब में बन्धुत्व की भावना का उदय हो। वेद में कहा भी गया है।

"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठासः सं भ्रातरो वावृधु सौभगाय" हम सब प्रभु की सन्तान एक-दूसरे के भाई-भाई हैं। हममें न कोई छोटा न कोई बड़ा। हम सब एक हैं, ऐसी उत्कृष्ट भावना का होना समाज की समृद्धि के लिये आवश्यक है।

जहाँ सामूहिकता, अद्वैत की भावना नहीं रहती, मनुष्य में अपना और परायापन का भाव आ जाता है, वहीं संघर्ष, छीना-झपटी, द्वेष-दुर्भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है। वहाँ अनेकों अवांछित तत्व पैदा हो जाते हैं। क्रांति का उदय भी इसी से होता है और इन परिस्थितियों में समाज को अशांति के दौर से गुजरना पड़ता है, फिर वे लोग जो अपने लिये ही संग्रह करके रखते हैं, उनका भी अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। बहुधा इन्हें समाज के कोप का भाजन बनना पड़ता है।

हम अपने और समाज के बीच इन विषमताओं को जितना हटाते जायेंगे, जितना हम समाज के साथ घुलते जायेंगे उतना ही समाज शक्तिशाली, समर्थ बनेगा और वह हमारे विकास-समृद्धि में अपना पूरा-पूरा योगदान दे सकेगा। समाज को अपना कुटुम्ब मानकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जानना होगा, तब सबके सुख में हमारा सुख होगा, सबके हित में ही हमारा हित होगा।

सामूहिक चेतना की आवश्यकता

हमारे जीवन के दो बिन्दु हैं—एक व्यक्तिगत, दूसरा समष्टिगत। दो बिन्दुओं के सहयोग से ही एक सरल रेखा बनती है। व्यक्ति और समष्टि के बिन्दुओं को मिला देने पर ही जीवन यात्रा का मार्ग बनता है। यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। व्यक्तियों के समूह से ही समाज का निर्माण होता है तो व्यक्ति भी समाज की ही देन है फिर भी हमारी गति-दिशा व्यक्ति से समाज की ओर है। समष्टिगत-जीवन ही हमारा ध्येय बिन्दु है। एक हमारी जीवन यात्रा का प्रारम्भ स्थान है तो दूसरा गन्तव्य। व्यक्तिगत जीवन अपूर्ण है वह सामाजिक जीवन में आत्मसात होकर ही पूर्ण बनता है। ठीक उसी तरह जैसे—नदी, समुद्र आदि में बिन्दु मिलकर पूर्णता प्राप्त करता है।

व्यक्ति और कुटुम्ब मरते हैं, नष्ट होते रहते हैं, पैदा भी होते हैं किन्तु समष्टि का जीवन अखण्ड है, अनन्त हैं, सदा-सदा चलता रहता है। व्यक्तिगत जीवन सामयिक बरसाती नदी-नालों की तरह है किन्तु समाज तो चिर-प्रवाहित सुरसरी की तरह है जो कभी रुकता ही नहीं। यह समष्टि जीवन अनन्त है। वह नित्य प्रवाहित और सारभूतपूर्ण तत्व है। इसके विपरीत व्यक्ति और उसका आकार-प्रकार अनित्य, अस्थायी, अल्पजीवी, असार है। जो नित्य है, स्थायी और अनन्त है, उस समष्टिगत जीवन को लक्ष्य करके यात्रा करना व्यक्ति का अभीष्ट धर्म है।

समाज से परे एकाकी रहकर तो व्यक्तिगत जीवन का भी विकास सम्भव नहीं है। जीवन विकास के अनुकूल साधन, परिस्थितियाँ, समांज ही जुटा सकता है। विभिन्न शिक्षण संस्थायें, उनमें काम करने वाले व्यक्ति, जीवन-निर्वाह के साधन, ज्ञान-विज्ञान, आविष्कार अन्वेषण, के व्यापक कार्यक्रम क्या एक व्यक्ति से सम्भव है ? हमारे दैनिक काम में आने वाली विभिन्न वस्तुएँ, कपड़ा, अन्न, मकान, रेल, टेलीफोन, मोटरें बिजली आदि के निर्माण, उत्पादन व्यवस्था में कितने व्यक्तियों का हाथ रहा है अब तक ? इसका हम अनुमान नहीं लगा सकते। समाज के सहयोग के अभाव में हम एक कदम भी तो आगे नहीं चल सकते। हम एक दिन भी तो जीवित नहीं रह सकते। समाज में रहकर ही हमारा जीवन सम्भव है। इसी बीच शक्तियों और गुणों का विकास हो सकता है। अस्तु समष्टिगत जीवन को ही हम अपना ध्येय बनावे। उसी को शक्तिशाली और समर्थ बनाने में अपना योग दें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिक जीवन जितना समर्थ, विकसित और व्यवस्थित होगा उतना ही व्यक्ति भी विकास और उन्नति के महान् अवसर प्राप्त कर सकेगा।

एकाकी व्यक्ति तो सुख भी नहीं भोग सकता, जिसे हम सुख और आनन्द कहते हैं वह भी तो समाज की ही एक स्थित है। सुख के स्वर्ग में भी यदि मनुष्य को एकाकी छोड़ दिया जाय तो वह उससे ऊब जायगा और भयभीत हो उठेगा। दूसरों के साथ ही मनुष्य सुख आनन्द बना सकता है। अक्सर हम प्रकृति की दी हुई वस्तुओं को अपने अनुकूल बनाकर, उन्हें अपने लिये संग्रह कर अधिक सुखी होने का प्रयत्न करते रहते हैं। मुझे अधिकाधिक सुख मिले, ऐसा ही तो होता है हमारा प्रयास। किन्तु अधिक परिश्रम करने, रात-दिन लगे रहने पर भी तो हमें उस स्थिति का सन्तोष नहीं मिलता जहाँ हम कह सकें कि सुख मिल गया इतना ही नहीं हमारे ये व्यक्तिगत सुख प्राप्ति के प्रयास भी अनन्त दुःखों का कारण बन जाते हैं, व्यक्तिगत सुख चाहे कितना ही क्यों न हो, वह सीमित है और अन्ततोगत्वा दुःख में परिणित होकर हमारी अशांति का कारण बनता है।

आनन्द, सुख वस्तुतः आत्मा के गुण हैं, इसलिये ये सार्वभौमिक भी हैं। समष्टि के साथ मिलने वाला सुख ही हमें आनन्द दे सकता है। इसलिए निजी सुख के बजाय समष्टि के सुख को महत्त्व देना, उसे सर्वोपरि मानना सुखी होने का आधार है।

इसलिये जीवन के सभी क्षेत्रों में हमारा ध्येय समष्टिगत है, सामाजिक है। हमारा कार्य व्यवहार सामाजिक जीवन को परिपुष्ट और विकसित करने के लिए हो। समाज जितना उत्कृष्ट होगा उतना ही व्यक्ति भी उन्नति और विकास के अवसर प्राप्त कर सकेगा। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था—तुम समाज के साथ ही ऊपर उठ सकते हो और समाज के साथ ही तुम्हें नीचे गिरना होगा। यह तो नितान्त असम्भव है कि कोई व्यक्ति अपूर्ण समाज में पूर्ण बन सकें। क्या हाथ अपने को शरीर से पृथक् बलशाली बन सकता है ? कदापि नहीं ।" समाज के साथ ही हमारी स्थिति भी चलती है।

जिस समाज में व्यक्ति अपने-अपने लाभ, अपने सुख, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की प्रेरणा से जीते हैं, अपनी व्यक्तिगत जरूरतें पूर्ण करने में ही जीवन बिताते हैं, वह समाज विशृखंलित हो जाता है। सामूहिक ध्येय के अभाव में व्यक्ति की गति स्वकेन्द्रित रहती है तो समाज नष्ट हो जाता है। चाहे उसमें कितने ही बड़े विद्वान योद्धा, राजनीतिज्ञ, शक्तिशाली व्यक्तित्व क्यों न हों ? शास्त्रकार ने लिखा है—

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति।।

"जहाँ बहुत-से नेता हैं, सभी अपने को पण्डित मानने वाले अहंकारी हैं और सभी अपनी-अपनी महत्ता चाहते हैं वह समाज नष्ट हो जाता है।"

अपने ही हित की बात अपनी महत्त्वाकांक्षा, अपना लाभ अपनी उन्नति की बात चाहे वह धार्मिक हो या भौतिक, सामाजिक जीवन के लिये घातक है। हम जो कुछ भी करते हैं, सोचते हैं उसका आधार समष्टिगत न होकर जब व्यक्तिगत होता है तो अनेकों सामाजिक विषमतायें एवं संघर्ष पैदा हो जाते हैं और सार्वजनिक अशांति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत जीवन भी खतरे में पड़ जाता है।

स्मरण रहे व्यक्ति और समाज की उन्नति साथ-साथ चलती है। यदि समाज कमजोर, विशृंखल, अव्यवस्थित होगा तो व्यक्ति के विकास में समर्थ न हो सकेगा। न वह व्यक्ति की रक्षा कर सकेगा। सामूहिक शक्ति के अभाव में व्यक्ति भी दूसरों के द्वारा शोषित होगा। उसे अन्याय अत्याचार का सामना करना पड़ेगा। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसी कमजोरी के कारण; सामाजिक चेतना के अभाव में अपने ही लाभ और सुख को मान्यता देने के कारण हमें विदेशियों के आक्रमण तथा अत्याचार के दिन देखने पड़े। महमूद गौरी गजनवी, तैमूरलंग नादिरशाह को हमारी सामाजिक विशृंखलता, व्यक्तिवाद के कारण ही सफलता मिली अपने पैर जमाने में। हमारी धार्मिक सामाजिक आस्थाओं को इसलिये नष्ट-भ्रष्ट होना पड़ा। हमारी अपार सम्पत्ति इसी कारण विदेशों में चलती गई और यही प्रमुख कारण था कि हमें शताब्दियों तक गुलामी का जीवन बिताना पड़ा। हम अपने ही मसलों में उलझे रहे। अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगे रहे। हमारा कोई सामूहिक ध्येय नहीं था उस समय। हालाँकि उस समय कई विद्वान् भी थे, धनी सम्पत्तिशाली भी थे किन्तु सामाजिक चेतना के अभाव में अपना जन-जीवन का अपमान, शोषण वे नहीं रोक सके। इस व्यक्तिवाद के कारण हमारी बहुत बड़ी पराजय हुई, जिसकी क्षतिपूर्ति हमारा समाज अभी तक नहीं कर पा रहा है। सामूहिक ध्येय को भुलाकर व्यक्तिगत स्वार्थ में लिप्त रहने की त्रुटियों का परिणाम हम बहुत समय से भोगते आये हैं।

देश के लिये समाज के लिये

हमारे देश के एक राजनायिक प्रतिनिधि इंगलैण्ड गये हुए थे। उस समय वहाँ पैट्रोल पर कण्ट्रोल था। सरकारी कूपन से ही पैट्रोल मिल सकता था। उन्होंने भी सरकारी कार्यालय से कूपन प्राप्त कर लिये अपनी एक टैक्सी किराये पर लेकर अपने काम पर निकले। कई दिनों तक वे अपने काम पर घूमते रहे। जब उन्हें स्वदेश रवाना होना था तो उनके पास बहुत-से कूपन शेष रह गये। उन्होंने अपनी उदारता दिखाते हुए वे कूपन टैक्सी वाले को देते हुए कहा ये आजकल बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। इन्हें रक्खें काम आयेंगे। यह सुनकर टैक्सी वाले की आँखें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चढ़ गईं। गुस्से के साथ वह बोला, "क्या आपने मुझे इतना नीच समझ रखा है जो मैं चोरी के अनधिकृत कूपनों से लाभ उठाऊँ। जितना पैट्रोल मुझे नियमित रूप से मिलता है मैं उनसे तनिक भी अधिक नहीं ले सकता यह तो अपनी सरकार के साथ अपने देश के साथ धोखा है। क्या आपके यहाँ इसे बुरा नहीं समझा जाता ?"

भारतीय राजपुरुष बड़े शर्मिन्दा हुए उन्होंने टैक्सी वाले से क्षमा माँगी टैक्सी वाले ने आगे कहा—मैं गत माह १० दिन बीमार रहा इसलिए जब पहली तारीख को कूपन लेने गया तो जितने कूपन मेरे पास बचे थे अपने कोटे में से कटवा दिये।"

घटना सामान्य-सी लगती है किन्तु उनमें जितनी देशभक्ति, सामाजिक नागरिक उत्तरदायित्व की भावना सन्निहित है। शायद इसी प्रबल देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना के कारण ब्रिटेन ने बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में अपना बहुत कुछ गँवाकर भी अपने अस्तित्व को पूर्ववत् कायम रखा, अपने देश के गौरव को जीवित रखा।

राजनैतिक दृष्टि से हम स्वतंत्र हो गये लेकिन अभी तक राष्ट्रीय भावना नागरिक जिम्मेदारियों के प्रति हम सचेत नहीं हो पाये हैं। यही कारण है कि कन्ट्रोल के समय हमारे यहाँ काला बाजार जोरों पर चलता है। अनाज के भण्डार भरे रहने पर भी कृत्रिम महँगाई पैदा करके अत्यधिक मुनाफा हम लोग कमाते हैं और तो और सार्वजनिक निर्माण कार्यों में लगने वाले सामान यथा—सीमेन्ट, लोहा, कोलतार, लकड़ी आदि बहुत-सा सामान चोर बाजारों में बेच दिया जाता है और हमी लोग सस्ता पाकर उसे खरीद लेते हैं, फिर भारी मुनाफे के साथ उसे बेचते हैं। कई महत्वपूर्ण वस्तुएँ, दवा, मशीनें आदि जो बड़ी कठिनाई से विदेशी मुद्रा खर्च करके प्राप्त की जाती है, हमारे यहाँ वे भी काले बाजार में पहुँच जाती है। ऐसी स्थिति में क्या हम एक स्वतन्त्र देश के उत्तरदायी नागरिक कहला सकते हैं ?

सन् १९५८ की बात है कि हमारे देश के एक केन्द्रीय मन्त्री राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन में भाग लेने इंगलैण्ड गये थे। सभी प्रतिनिधियों को एक दिन भारत की ओर से, दूसरे दिन इंगलैण्ड की ओर से दावत दी गई। इनमें एक ही कम्पनी की, एक ही किस्म की सिगरेटें काम में लाई गई थीं, लेकिन दोनों दिन उनके स्वाद में बड़ा अन्तर था। बाह्य फर्क केवल इतना था कि एक दिन काम में लाये गये पैकेट भारत से खरीदे थे—जो अच्छे थे, दूसरे पैकेट इंगलैंड से ही खरीदकर आये थे। कम्पनी एक ही थी—उसी शाखा भारत में भी थी। पूछने पर ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने बताया—"महायुद्ध के कारण हमारे तम्बाकू के खेत बहुत नष्ट हो गये। हमारे पास थोड़ी-सी तम्बाकू रही है, उसमें से हम अच्छी किस्म को अलग से निकालकर विदेशों में जाने वाली सिगरेटों के काम में लाते हैं ताकि बाहर हमारी साख नष्ट न हो। घटिया किस्म की तम्बाकू हम अपने ही देश में उपयोग करते हैं। इसलिये आपको यह अन्तर मालूम पड़ता है।

कैसी उदात्त भावना है अपने देश के नाम व उसकी साख की रक्षा के लिये। यही कारण है कि आज भी इंग्लैंड संसार के बाजार में बहुत कुछ छाया हुआ है। वहाँ की बनी चीजें प्रामाणिक और मजबूत समझी जाती हैं। एक हमारे देश का उद्योगपति है, जो निस्संकोच घटिया वस्तु तैयार करके अधिक मुनाफा कमाना अपना अधिकार और धर्म समझता है। कुछ समय पहले की बात है कि रूस ने करोड़ों रुपये के जूते इसीलिये लौटा दिये क्योंकि वे दिखाये गये नमूने से बहुत ही घटिया किस्म के थे। जब भी हम बाजार में जाते हैं तो कई वस्तुओं की मजबूती—असलियत के बारे में विश्वास ही नहीं होता। कैसी विडम्बना है ?

जहाँ एक ओर हमारे कन्धे पर अपनी स्वतन्त्रता का भार है, अपने देश की आन और साख का उत्तरदायित्व है वहाँ हमारी निम्न उत्पादन नीति, मिलावट, नकली सामान तैयार करना क्या एक बहुत बड़ा अपराध नहीं है ?

इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर देश के लिये अपनी आवश्यकताओं को सीमित बनाना पड़ता है, थोड़े-में गुजारा करना पड़ता है। कई वस्तुएँ जिनके बिना हमारे जीवन क्रम में कोई विशेष बाधा न पड़े, उनका त्याग भी करना पड़ता है। रूस में क्रांति हुई, देश प्राचीन सामन्तवादी शासन से मुक्त हुआ। जन-प्रतिनिधि के रूप में लेनिन ने देश की बागडोर अपने हाथों में सम्हाली। उसके सामने देश के नव-निर्माण, औद्योगिक विकास का बहुत बड़ा काम था, जो मशीनों, वैज्ञानिक उपकरणों से ही सम्भव था, यह सब इंग्लैंड और अमरीका के बाजारों में थे। इसके लिये रूस के पास विदेशी मुद्रा की कमी थी। अब रूस के सामने एक ही रास्ता था जंगली जानवर, लकड़ी, खाल, माँस, पनीर आदि पश्चिमी बाजारों में बेचकर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाय और उससे मशीनें, उपकरण आदि मँगाये जायें। लगभग दस वर्ष तक रूसी जनता को तुला हुआ भोजन और मोटे कपड़े पर गुजारा करना पड़ा। बिना डॉक्टर के सर्टीफिकेट के किसी को पाव भर दूध भी नहीं मिलता था। यहाँ तक कि बीमार प्रिंस क्रोपाटकिन को भी दूध नहीं मिला था।

निःसन्देह एक सच्चे नागरिक का यह कर्तव्य है कि अपने आराम के लिये वह समाज की शक्ति को दुर्बल न करें। वरन् उसे परिपुष्ट करने के लिये अपनी बहुत-सी आवश्यकताओं को स्वेच्छा से त्याग करने के लिये भी उद्धत रहे। आजकल हमारे देश में चीनी का संकट चल रहा है और एक हम हैं कि इस पर भी बड़ी-बड़ी दावतें, प्रीतिभोज, शादी-विवाह पर खूब खर्च करते हैं।

जीवन-निर्वाह की सीमित आवश्यकताओं के अतिरिक्त भोग-विलास, मौज-मजे, आराम-सुख-चैन की जिन्दगी बिताने के नाम पर हमारे यहाँ कितना अपव्यय होता है, सम्पत्ति, पदार्थों का कितना नाश होता है ? लेकिन हम नहीं जानते कि व्यर्थ ही नष्ट किये जाने वाले पदार्थों को, बड़े भारी अपव्यय को रोककर यदि उसे हम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्र निर्माण की दिशा में लगावें तो कोई सन्देह नहीं कि कुछ ही समय में हमारा देश संसार में समृद्ध देशों की पंक्ति में खड़ा हो सकने योग्य बन जाय। भारत अपने आप में कोई गरीब नहीं है, पहले भी इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था और आज भी सम्पदाओं की कोई कमी नहीं है हमारे यहाँ। यदि उत्पादन की उपयुक्त व्यवस्था, खर्च करने का सही ढंग और वस्तुओं का सदुपयोग भली प्रकार हो तो हमारे अभाव सब नष्ट हो जायें। किसी भी कारण हमारे देश के विकास क्रम में गतिरोध पैदा नहीं हो सकता।

हमें ऐसा कोई काम नहीं कराना चाहिये जिससे देश कमजोर हो, हमारे समाज की क्षमता नष्ट हो। चोर बाजारी, अधिक मुनाफाखोरी घटिया उत्पादन, फिजूलखर्ची, वस्तुओं, पदार्थों का दुरुपयोग ये सभी हमारे लिए कलंक की बातें हैं। इनसे देश का सामर्थ्य कमजोर होता है। ये हमारे गौरव और सम्मान के लिए विष हैं। इन्हें तो हमें छोड़ना है, आवश्यकता पड़ने पर अपना सब कुछ भी देश की, समाज की बलिवेदी पर अर्पण करने में नहीं चूकना चाहिये। यही देश भक्ति का सबसे बड़ा तकाजा है।

सर टामस रो के डॉक्टर ने बादशाह शाहजहाँ की लड़की का इलाज किया और वह अच्छी हो गई। इसके प्रत्युपकार में शाहजहाँ ने मन चाहा इनाम माँगने के लिए कहा। सर टामस रो ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये कुछ न माँगकर इंगलैंड से आने वाले माल पर से चुँगी हटाने की माँग की, जो स्वीकार करली गई। इससे इन माँगने वालों का व्यक्तिगत लाभ तो कुछ न हुआ पर उनके देश से बिना चुंगी चुकाये जो माल भारत में सस्ता बिकने लगा उससे उनके देश का व्यापार बढ़ा है और वे इस देश पर अपना राजनैतिक वर्चस्व जमा सकने योग्य सामर्थ्यवान हो गये। इंग्लैंड मालामाल और शक्तिवान हो गया। यह है व्यक्तिवाद को हटाकर उसके स्थान पर समूहवाद की प्रतिष्ठापना करने का प्रतिफल।

इसके विपरीत हमारे देशवासियों ने व्यक्तिवाद को जब से आगे रखा तब से प्रत्येक क्षेत्र में अधःपतित होते चले गये। मुट्ठी भर विदेशी आक्रमणकारी इस देश पर हजार वर्ष तक अपना खूनी पंजा इसीलिये गढ़ाये रह सके कि हमारी मनोभूमि व्यक्तिगत स्वार्थ तक सीमित हो गई। सामूहिक सुरक्षा की बात सोच ही न सके अन्यथा इतने बड़े, इतने साधन सम्पन्न, इतने सुयोग्य-सशक्त देश को इतनी लम्बी अवधि तक पराधीनता पाश में जकड़े रहने का कोई कारण न था।

अध्यात्मवादी अपनी व्यक्तिगत मुक्ति, स्वर्ग कामना एवं ऋद्धि-सिद्धि में लग गये। धर्मवादी अपनी पूजा-प्रतिष्ठा कराने के लिये अपने-अपने नाम के नये-नये सम्प्रदाय खड़े करने लगे। देश, समाज-जाति, प्रति, भाषा और सम्प्रदाय जैसी संकीर्णताओं में बँट गया। हर व्यक्ति अपने छोटे दायरे के लाभ की बात सोचने लगा और बड़े दायरे की उपेक्षा की जाने लगी। यही कारण था कि हमारा हजार वर्ष का इतिहास कलंक और पराजय का इतिहास बन गया। इन संकीर्णताओं को यदि हम अब भी न छोड़ सके और समूहबांदी विशाल दृष्टिकोण न अपना सके तो व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध होगा और न समूहगत सुस्थिरता के दर्शन होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि हम व्यक्तिगत लाभ की उपेक्षा करके सामाजिक लाभ एवं उत्थान की बात सोचें। सबके लाभ को बढ़ाने के लिये अपने लाभ को तिलांजलि देना सीखें। परस्पर सहयोग करना सीखें और सम्मिलित शक्ति से मिल-जुल कर आगे बढ़ने की सर्वानुभूत सचाई को अपनावें।

सहयोग-भावना मानवता की प्रतीक है

सांसारिक उन्नति और सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करने के लिये तो सहयोग की आवश्यकता सभी स्वीकार करते हैं, पर यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकांश मानवीय सद्गुणों और धर्म का मूल मानी जाने वाली सद्वृत्तियों का भी इससे बहुत अधिक सम्बन्ध है। जिन व्यक्तियों में सहयोग की वृत्ति का उचित रूप में विकास हो जाता है, उनमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना भी जागृत हो जाती है। वे अनुभव करने लगते हैं कि संसार में जितने भी प्राणी हैं, वे वास्तव में एक ही वृहत् परिवार के अंग स्वरूप हैं और उनमें जितना अधिक सहयोग ऐक्य, मित्रता की भावना का प्रसार होगा उतना ही सबका लौकिक-पारलौकिक हित-साधन हो सकेगा।

यों तो आरम्भ से ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसने जो कुछ उन्नति, प्रगति की है उसका श्रेय अधिकांश में उसकी सहयोगवृत्ति को ही है। मनुष्य ने इस पृथ्वी को जो अपने निवास योग्य बनाया है, बड़े-बड़े पर्वतों, जंगलों, सागरों में घुसकर जो जीवन-निर्वाह के साधन खोज निकाले हैं, जिन लाखों की आबादी वाले, सुख-सुविधापूर्ण नगरों का निर्माण किया है और सड़कें; रेल, तारा जहाज आदि का विस्तार करके सारी दुनिया को एक घर के समान बना दिया है, इस सबका मूल आधार सहयोग की प्रवृत्ति ही है। व्यापार-व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, शिक्षा-प्रचार, सुरक्षा की व्यवस्था के क्षेत्रों में भी आज जो बड़ी-बड़ी योजनायें सफल होती दिखाई पड़ रही हैं, वे सहयोग-मूलक प्रवृत्तियों का ही परिणाम हैं। इतना ही क्यों ज्ञान विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति, जन-सेवा करने वाली विशाल संस्थायें, लोक-कल्याण के लिये की जाने वाली युग परिवर्तनकारी योजनायें—सभी की सफलता का आधार मनुष्यों का पारस्परिक सहयोग ही होता है। मनुष्य जितने अधिक परिमाण में और जैसी हार्दिकता के साथ सहयोग भावना का परिचय देते हैं उतनी ही अधिक सफलता इन विषयों में मिलती है।

पर इस सांसारिक सफलता से भी बढ़कर महत्त्वपूर्ण मानवता की भावना है, जो क्रमशः मनुष्य के अन्तर में विकसित हो रही है और जिसके प्रभाव से एक ऐसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव जाति का उदय हो रहा है, जो भविष्य में जैसे ही पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र के साथ रह सकेगी जैसे आज एक कुटुम्ब या परिवार के व्यक्ति रहते हैं। कुछ लोगों को यह एक असम्भव कल्पना जान पड़ेगी और वे वर्तमान विश्वव्यापी संघर्ष की घटनाओं को देखकर इसे एक सुहावना स्वप्न मात्र बतलायेंगे, पर वास्तव में एक विचारक की दृष्टि से देखना नहीं जानते। एक समय था कि सभी मनुष्य बहुत छोटे-छोटे समुदायों में बँटे थे और वे आपस में लड़ते-झगड़ते, एक-दूसरे की हत्या ही नहीं करते रहते थे, वरन् एक-दूसरे को मारकर खा जाने में भी कोई दोष नहीं समझते थे। उस अवस्था में परिवर्तन होते-होते मनुष्य अब ऐसी स्थिति में आ पहुँचे है कि संसार में प्रतिवर्ष सैकड़ों, हजारों व्यक्ति ऐसे निकल आते हैं, जो बिना किसी स्वार्थ या सम्बन्ध के अपरिचित व्यक्तियों की रक्षार्थ प्राण दे देते हैं। आज ऐसे व्यक्तियों की भी नितान्त कमी नहीं है जो मानवता के हित को अपने स्वार्थ या सुख की अपेक्षा अधिक महत्त्व का मानते हैं और संसार की भलाई के कामों में सच्चे हृदय और निःस्वार्थ मात्र से योग देते हैं। इन सब बातों को देखकर निश्चय होता है कि सहयोग कृत्रिम या क्षण स्थाई चीज नहीं है वरन् यह उसकी आन्तरिक प्रकृति का एक अंश ही है और जैसे-जैसे मनुष्य का आत्मिक विकास होता जायगा वैसे-वैसे ही उसकी भी वृद्धि होती जायगी और एक दिन ऐसा भी आ सकता है जबकि वह दरअसल एक सार्वभौम स्वाभाविक प्रवृत्ति का रूप ग्रहण कर ले।

सहयोग की प्रवृत्ति से मनुष्य के हृदय में जो मैत्री-भावना उत्पन्न होती है, वह वास्तव में अपने और दूसरों के कल्याण की दृष्टि से मनुष्य का सबसे बड़ा सद्गुण है। संसार में कृष्ण, वेद व्यास, गौतम बुद्ध, महावीर, ईसा आदि मानवता के त्राता महापुरुष हुए हैं, उनका सबसे बड़ी विशेषता मैत्री भावना ही थी। वे समस्त प्राणियों को आत्मवत् दृष्टि से देखते थे और उनके कष्टों को दूर करने के लिये ही अपनी समस्त शक्ति लगाते रहते थे। इन्हीं महापुरुषों की शिक्षा का परिणाम है कि मनुष्य देश और काल के अन्तर को भुलाकर धीरे-धीरे मनुष्य मात्र को अपना भाई या सम्बन्धी समझने की तरफ अग्रसर हो रहा है और आज उसके दिमाग में यह विचार पैदा हो चुका है कि संसार के समस्त देशों के भेद-भावों को प्रत्यक्ष रूप से मिटाकर एक मानव-समाज की स्थापना की जाय।

यह मानव मात्र की एकता का सिद्धान्त कोई नई बात नहीं है। भारतीय मनीषी तो इसे हजारों वर्ष पूर्व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अथवा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' जैसे सूत्रों द्वारा प्रकट कर चुके थे और यहाँ के हजारों भक्तों तथा सन्तों ने उनके अनुसार आचरण करके भी दिखा दिया था। आज भी भारत और अन्य देशों के महापुरुष इसी सत्य का अनुभव करके उसे संसारव्यापी रूप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। यद्यपि ऊपरी दृष्टि से इस समय अधिकांश मनुष्य घोर स्वार्थ की तरफ प्रेरित जान पड़ते हैं और एक ऐसे संघर्ष की तैयारी में संलग्न हो रहे हैं जिससे मानवीय सभ्यता का सर्वनाश ही सम्भव जान पड़ता है, पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि मानवता की एकता का सन्देश इस समय सबके कानों तक पहुँच गया है और वह उनकी आत्मा को झकझोर रहा है। जिस बात को पहले केवल थोड़े-से मनीषी ही कहते और समझते थे, वह अब साधारण लोगों के दिमाग में भी उठने लग गई है। इससे आशा होती है कि नाश के काले बादलों के होते हुए भी अन्त से सहयोग का सूर्य ही अधिक शक्तिशाली सिद्ध होगा और संसार अन्धकारमय प्रदेश से निकलकर सार्वजनिक सुख-शान्ति के सुप्रकाशित युग में जा पहुँचेगा।

सहयोग तथा मैत्री की यह भावना सामूहिक रूप से संसार का कल्याण करने वाली ही नहीं है, वरन् व्यक्तिगत दृष्टि से भी वह मनुष्य मात्र के लिये हितकारी है। इसके प्रभाव से मैत्री भाव रखने वाला व्यक्ति सब प्राणियों का सुहृद बन जाता है। जब वह अपने हृदय में किसी के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रखता तो किसी अन्य के मन में भी उसके प्रति विरोध की भावना उत्पन्न नहीं होती और दुनिया की तरफ से निर्भय बन जाता है। यदि संयोगवश उसे कोई कष्ट भी उठाना पड़ता है तो उसे दैवी विधान या आकस्मिक दुर्घटना समझकर जरा भी क्षुब्ध नहीं होता। वह किसी अन्य मनुष्य को इसका कारण नहीं समझता और इसलिए सब प्रकार की चिन्ताओं और भयों से मुक्त रहता है। पारस्परिक वैमनस्य या मनोमालिन्य के भावों के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण जो अगणित कठिनाइयाँ उत्पन्न होकर मानव-जीवन को कष्टपूर्ण बना देती हैं, वह उन सबसे मैत्री-भावना द्वारा ही बच जाता है।

इतना ही नहीं, इस प्रकार मनःस्थिति बन जाने पर मनुष्य की आन्तरिक प्रसन्नता, आह्लाद की भावना स्थाई हो जाती है और समयानुसार व्यावहारिक रूप में प्रकट होकर उसको दिन व दिन ऊँचा उठाती जाती है। इस भावना की प्रेरणा से मनुष्य सबके सुख-दुःख में आगे बढ़कर भाग लेने लगता है, दीन-दुःखी और अभावग्रस्तों का हर तरह से सहायता करने लगता है, सदैव दूसरों की सेवा और सहायता के लिये प्रस्तुत रहता है। ऐसी स्थिति में पहुँच जाने पर अन्य सब लोग भी उसके प्रति प्रेम और आदर की भावना रखने लगते हैं, उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और उसे अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग भी देने लगते हैं। संसार में जितने भी बड़े और छोटे महापुरुष हुए हैं उन सबका यही जीवन-क्रम रहा है। ऐसे ही लोग सर्वसाधारण द्वारा नेता, अगुआ या माननीय माने जाते हैं।

सहयोग-भावना वाला मनुष्य जिस प्रकार भीतर से शुद्ध भावयुक्त और सबका हितचिन्तन करने वाला होता है उसी प्रकार बाहर से भी सदैव सबके साथ मधुर व्यवहार करने वाला, सहानुभूति रखने वाला तथा विनीत होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तव में उसकी आन्तारक मत्रा-भावना का परिणामस्वरूप उसका स्वभाव व्यवहार नहीं कर सकता और जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक की सहायता के लिये हमेशा तैयार रहता है। इस कारण अन्य लोगों के हृदय पर भी उसका प्रभाव पड़ता है और सज्जनों का तो कहना ही क्या; दुर्जन व्यक्ति भी अधिक समय तक उसके प्रतिकूल नहीं रह सकते।

पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता

कई लोग कहते हैं—"मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं। मुझे किसी का परामर्श नहीं चाहिये, मेरे पास दिमाग है, शक्ति है, हाथ है, पाँव है, मैं सब अपने आप कर लूँगा।" इस तरह की डींग हाँकते हुए बहुत-से लोग देखे जा सकते हैं, जो अपने आपको सर्वगुण सम्पन्न समझते हैं। वैसे स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी, साहसी होना एक अनिवार्य गुण है, किन्तु सही-सही सूझ-बूझ के और विवेक के अभाव में गुण भी भयंकर दोष बन जाते हैं, जो मनुष्य को पतन और विनाश के गर्त में ढकेल देते हैं। अनाड़ी और अविवेकी ड्राइवर कीमती गाड़ी को भी टकराकर चूर-चूर कर देता है। इसके विपरीत संतुलित समझदार ड्राइवर खराब गाड़ी को भी मंजिल तक पहुँचा देता है। दूसरों के परामर्श अनुभवों से लाभ न उठाकर अपनी बुद्धि को ही सबसे अधिक समझने वाले उन हठी अनाड़ी व्यधियों में से हैं जो अपनी मूर्खता की कुल्हाड़ी अपने भविष्य रूपी पैरों में स्वयं ही मारते हैं।

ईंट से ईंट जोड़कर ही विशाल भवन का निर्माण होता है। बूँद-बूँद मिलकर ही नदी सरोवर सागर बनते हैं। जल का प्रत्येक कण अपना अस्तित्व अलग रखेगा तो उसकी कितनी हस्ती होगी ? इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। एक मिट्टी कण, सूरज की क्षीण-सी रोशनी उसे सुखा देगी, हवा का एक झोंका उसे छिन्न-भिन्न कर देगा। अनेकों व्यक्तियों के परस्पर योग से ही एक-दूसरे की उन्नति एवं विकास सम्भव है और इसी पर समाज, राष्ट्र की समृद्धि निर्भर करती है। प्रत्येक निर्माण कार्य में अनेकों मजदूरों के खून-पसीने का योग होता है।

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सीमा होती है। डॉक्टर चिकित्सा क्षेत्र में विज्ञ होता है तो एक कलाकार अपनी कला में, राजनीतिज्ञ राजनीति में तो साहित्यकार साहित्य में। कोई भी व्यक्ति सर्वज्ञ नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज में एक-दूसरे से नीचा है, दूसरे से अयोग्य है। कलाकार के सामने डॉक्टर अयोग्य है तो डॉक्टर के सामने इन्जीनियर और साहित्यकार के सामने व्यापारी। इस तरह एक क्षेत्र में पूर्ण होकर भी मनुष्य अन्य क्षेत्रों में अपूर्ण, अयोग्य ही है। अतः उन अंगों की पूर्ति बिना दूसरों के परामर्श सहयोग के नहीं हो सकती। स्वयं अपने ही क्षेत्र में विकास उन्नति के लिए मनुष्य को दूसरों के सहयोग, परामर्श की आवश्यकता होती है। डॉक्टर बनने के लिए कितने ही डॉक्टरों के ज्ञान, सहयोग, मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। विचारक को अन्य अनेक की विचारधारा का ज्ञान रखना पड़ता है ?

विकास सहयोग से ही होता है। एक पीढ़ी के उपार्जित ज्ञान अनुभव असफलताओं की जानकारियों से लाभ उठाकर दूसरी पीढ़ी उससे अनुसंधान का सहारा लेकर नये तथ्यों की खोज करती है।

समन्वय, सहयोग, समाज के साथ मिलकर कदम बढ़ाने में ही एक-दूसरे की उन्नति एवं विकास निर्भर करते हैं। जो जीवन में इसे स्वीकार नहीं करता अपने हठ और अनाड़ीपन को महत्त्व देता है, उसकी दुर्गति निश्चित है। यह बौद्धिक दिवालियापन है और यही रोग आगे बढ़कर व्यक्ति और समाज दोनों को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जाति-भेद-वर्ण, लिंग भेद, विभिन्न दल, साम्प्रदायिकता, भाषा भेदभाव के रूप में होने वाले संघर्ष, व्यक्ति-व्यक्ति में होने वाली तनातनी आदि विसगंतियाँ इसी बौद्धिक दिवालियेपन की निशानी हैं। परस्पर के सहयोग, समझौते, समन्वय से असम्भव को सम्भव बनाया जा सकता है, तो इसके अभाव में हम परस्पर टकराकर नष्ट भी हो सकते हैं।

पारस्परिक सहयोग का मानव-जीवन में अत्यधिक महत्व माना गया है। हमें दूसरों के सहयोग से लाभ उठाना चाहिए और अपनी क्षमताओं को दूसरे के काम आने देने के लिए उदार बुद्धि रखनी चाहिए। एकाकीपन एवं स्वार्थपरता तुच्छता का चिन्ह है। यह मानसिक संकीर्णता भीरुता और घृणा की अभिव्यक्ति मात्र है।

व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण इसी पर निर्भय है कि लोग व्यक्तिवाद की संकीर्णता छोड़कर समूहगत लाभ को ही अपना वास्तविक लाभ समझें। एकाकी व्यक्ति समाज को हानि पहुँचाकर अपना कुछ लाभ कर भी ले तो वह देर तक टिक न सकेगा। किन्तु यदि समाज समर्थ, सशक्त, समृद्ध हुआ तो उसका लाभ हर नागरिक को, हर व्यक्ति को मिलेगा। इस तथ्य को हम जितनी जल्दी समझ लें और सामूहिक भावना का विकास करें उतना ही उत्तम है।

ऐसी सफलता किस काम की

प्रत्येक मुनष्य चाहता है कि वह जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करे। लोग बड़ी सफलताओं के स्वप्न देखते हैं। बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं। अधिकांश लोग जीवन के बाह्य क्षेत्र में नाम, बड़ाई, प्रतिष्ठा, श्री, समृद्धि, उच्चपद आदि के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। थोड़े-बहुत अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं। इनमें भी बहुत कम इन विभूतियों, समृद्धियों के स्थायी सुख को भोग पाते हैं, क्योंकि ये सफलतायें बहुत कम ही ठहरती हैं।

स्वामी रामतीर्थ संन्यास लेने से पूर्व कॉलेज में प्रोफेसर थे। एक दिन बच्चों के मानसिक स्तर की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने बोर्ड पर एक लकीर खींच दी और विद्यार्थियों से कहा—"इसे बिना मिटाये ही छोटा कर दो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक विद्यार्थी उठा किन्तु वह प्रश्न के मर्म को नहीं समझ सका उसने रेखा को मिटाकर छोटा करने का प्रयत्न किया। इस पर स्वामीजी ने उस बच्चे को रोका और प्रश्न दुहराया। सभी बड़े असमंजस में पड़ गये। थोड़े समय में ही एक लड़का उठा और उसने उस रेखा के पास ही एक बड़ी रेखा खींच दी। प्रोफेसर साहब की खींची हुई रेखा अपने आप ही छोटी हो गई। उस विद्यार्थी की बुद्धि की सराहना करते हुए स्वामी जी ने कहा—"विद्यार्थियो इससे आपको शिक्षा मिलती है कि दुनिया में बड़ा बनने के लिए किसी को मिटाने से नहीं वरन् बड़े बनने के रचनात्मक प्रयासों से ही सफलता मिलती है। बड़े काम करके बड़प्पन पाया जा सकता है।"

लोग दूसरों को मिटाकर, दूसरों को नुकसान पहुँचाकर, उनकी नुकताचीनी करके बड़े बनने का स्वप्न देखते हैं, उनका असफल होना निश्चित है। यदि ऐसे व्यक्तियों को प्रारम्भिक दौर में कुछ सफलता मिल जाय तो अन्ततः उन्हें असफल होना पड़ेगा क्योंकि सफलता का नियम धनात्मक है, ऋणात्मक नहीं। सन्त विनोबाजी के शब्दों में सफलता सिद्धान्त की व्याख्या सहज ही समझी जा सकती है। उन्होंने कहा है—"पड़ौसी के पास सात सेर ताकत है और मेरे पास १० सेर। यदि दोनों परस्पर टकरायेंगे तो परिणाम में १० – ७ = ३ सेर ताकत ही बच रहेगी। दोनों पक्षों की ही हानि होगी। दूसरी स्थिति में यदि मिलकर श्रम किया जायेगा तो १० + ७ = १७ सेर की ताकत पैदा होगी जिससे अधिक मात्रा में सफलता अर्जित की जा सकेगी। मेरे दो हाथ आपके दो हाथ मिलकर २ + २ = ४ हाथ होते हैं किन्तु जब परस्पर टकरायेंगे तो २ – २ = ० नतीजा शून्य ही निकलेगा।

जब लोग दूसरों की गर्दन काटकर स्वयं पनपने की कोशिश करते हैं, दूसरे के बढ़ते हुए पैरों को खींचकर उनको गिराकर आगे बढ़ने के स्वप्न देखते हैं, दूसरों का खून चूसकर अपने को मोटा बनाना चाहते हैं, दूसरों को उजाड़कर अपना घर बसाना चाहते हैं, दूसरों के सुख छीनकर स्वयं सुखी बनना चाहते है तो वहाँ इन्सानियत का नहीं शैतान का नियम लागू हो जाता है, जिसके परिणाम अन्ततः प्रतिकूल, दुःखप्रद ही मिलेगे। इस अमानवीयता के बर्बर नियम की धरती पर पतन, असफलता, विनाश की कर्वें पग-पग पर बनी हुई हैं और किसी भी क्षण मनुष्य अपने उन्माद के साथ उनमें सदा के लिये सो जायगा। दूसरों को उजाड़ने के प्रयत्न में मनुष्य स्वयं ही उजड़ जाता है, दूसरों का गला काटने वालों को स्वयं ही अपना गला काटने को मजबूर होना पड़ता है। दूसरों के विनाश, असफलता, पतन के स्वप्न देखने वालों के जीवन में ही ऐसा दृश्य उपस्थित हो जाता है। मानवता का लम्बा-चौड़ा इतिहास इसका साक्षी है। जब-जब उक्त उन्माद में पागल मनुष्य ने जन-जीवन पर कहर ढाये तो वह स्वयं ही नेस्त-नाबूद हो गया। रावण, बाणासुर, कंस, दुर्योधन, हिटलर, मुसोलिनी, चँगेज खाँ, नादिरशाह जैसे शक्ति सम्पन्न कुशल नीतिज्ञ, चतुर व्यक्तियों को भी हमेशा के लिये नष्ट हो जाना पड़ा। इतिहास में सहज ही ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाते हैं।

सबकी उन्नति में अपनी उन्नति

समाज के विकास के साथ ही व्यक्ति के विकास की सम्भावना जुड़ी है। समाज से पृथक् रहकर अथवा उसके हित की ओर से विमुख होकर कोई व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता। जब-जब मनुष्यों के बीच सामाजिक भावना का ह्रास हो जाता है, तब-तब समाज में कलह और संघर्ष की परिस्थितियाँ बढ़ने लगती हैं। चारों ओर अशान्ति और अरक्षा का वातावरण व्याप्त रहने लगता है। समाज की प्रगति रुक जाती है और उसी के साथ व्यक्ति की प्रगति भी। इसी हानि को बचाने के लिए हमारे समाज के निर्माता ऋषियों ने वेदों में स्थान-स्थान पर पारस्परिक सहयोग और सद्भावना का उपदेश दिया है, बताया गया है—

"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठासः सं भ्रातरो वावृधु सौभगाय"

इस वेद वाक्य का आशय नहीं है कि हम सब प्रभु की सन्तान एक-दूसरे के भाई-भाई हैं। हममें न कोई छोटा है और न बड़ा। यह एक उत्कृष्ट सामाजिक भावना है। इसी भावना के बल पर ही तो भारतीय समाज संसार में सबसे पहले विकसित और समुन्नत हुआ। इसी भावना के प्रसाद से उसके व्यक्तियों ने संसार में सभ्यता का प्रकाश फैलाने का श्रेय पाया और इसी बन्धुत्व की भावना के आधार पर वह जगद्गुरु की पदवी पर पहुँचा है।

इसके विपरीत जब से भारतीय समाज की यह वैदिक भावना क्षीण हो गई वह पतन की ओर फिसलने लगा और यहाँ तक फिसलता गया कि आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक गुलामी तक भोगनी पड़ी है। किन्तु अब वह समय फिर आ गया है कि भारतीय समाज अपनी प्राचीन बन्धु-भावना को समझे, उसे पुनः अपनाये और आज के अशान्त संसार में अपने वैदिक आदर्श की प्रतिष्ठा द्वारा शान्ति की स्थापना का पावन प्रयत्न करे।

शाश्वत सिद्धान्त कि दूसरों को उपदेश देने और मार्ग दिखलाने का वही सच्चा अधिकारी होता है, जिसका आचरण स्वयं उसके आदर्श के अनुरूप हो। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि पहले हम अपनी भावनाओं और व्यवहार में सुधार करें, उसमें पारस्परिक भाईचारे का समावेश करें और तब संसार के सामने वसुधैव-कुटुम्बकम् का आदर्श उपस्थित करें। इस सुधार को सरल बनाने के लिए सबसे पहले व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध समझ लेना होगा। एक के विचारों और कार्यों का दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जान लेना होगा।

समाज की उन्नति पर ही व्यक्ति की भी उन्नति निर्भर है। समाज से परे अथवा पृथक् रहकर व्यक्तिगत उन्नति किसी के लिए भी सम्भव नहीं। जीवन में निवास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए कुछ साधन, कुछ परिस्थितियाँ और कुछ सहयोग अपेक्षित होता है। यह सब सुविधाएँ समाज में समाज द्वारा प्राप्त होती हैं। एक अकेला व्यक्ति न तो इन्हें उत्पन्न कर सकता है और न इनका उपयोग। इनके लिये उसे समाज पर निर्भर होना होगा। विभिन्न शिक्षण संस्थाएँ, उनमें कार्य करने वाले व्यक्ति, जीवन-निर्वाह के साधन, ज्ञान-विज्ञान की सुविधाएँ, अन्वेषण, आविष्कार, व्यापार, व्यवसाय, अनुभव और अनुभूतियाँ आदि मानव-विकास के जो भी साधन माने गये हैं, उनकी उत्पत्ति समाज के सामूहिक प्रयत्नों द्वारा ही होती है। किसी का मस्तिष्क काम करता है तो किसी के हाथ-पाँव, किसी का धन सहयोग करता है तो किसी का साहस। इस प्रकार जब पूरा समाज एक गति और एक मति होकर अभियान करता है, तभी व्यक्ति और समूह दोनों के लिए कल्याण के द्वार खुलते चले जाते हैं। एक अकेला व्यक्ति संसार में कभी कुछ नहीं कर सकता।

समाज से पृथक् रहकर अथवा समाज के सहयोग के बिना व्यक्ति एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा सकता। कोई विशेष प्रगति कर सकना तो दूर इस पारस्परिकता के अभाव में जीवन ही संदिग्ध हो जाए। जीवन की सुरक्षा और उसका अस्तित्व समाज के साथ ही सम्भव है। समाज की शक्ति को सहारा पाकर ही हमारी व्यक्तिगत क्षमताएँ एवं योग्यताएँ प्रस्फुटित होकर उपयोगी बन पाती हैं। यदि हमारे गुणों और शक्तियों को समाज का सहारा न मिले तो वे निष्क्रिय रहकर बेकार चली जाएँ। उनका लाभ तो तब स्वयं हमको ही हो और न समाज को। सच्ची बात तो यह है कि व्यक्तिगत जीवन नाम की कोई वस्तु ही संसार में नहीं है। हम सब व्यक्ति रूप में दीखते हुए भी समष्टि रूप में जीते हैं। व्यक्तिवाद को त्यागकर समष्टिगत जीवन को महत्व देना ही हम सबके लिये हितकर तथा कल्याणकारी है। समष्टिगत जीवन और समूहगत उन्नति ही हमारा ध्येय होना चहिए। उसी को विकसित एवं शक्तिशाली बनाने में अपनी शक्ति-प्रतिभा, योग्यता एवं सम्पदा लगाएँ हमारे भोग द्वारा हमारा समाज जितना-जितना उन्नत, विकसित और शक्तिशाली बनता जाएगा उसी अनुपात से हमारा व्यक्तिगत जीवन भी बढ़ता और चढ़ता जाएगा।

समाज की शक्ति ही व्यक्ति की वास्तविक शक्ति मानी गई है। व्यक्ति का एक अकेला शक्तिशाली होना कोई अर्थ नहीं रखता। समाज जब समग्र रूप से निर्बल हो जाता है तो उस पर सामूहिक संकटों का सूत्रपात होने लगता है। उस सामूहिक संकट से व्यक्तिगत रक्षा कर सकना सम्भव नहीं होता। निर्बल समाज पर जब बाहरी आक्रमण होता है अथवा कोई संक्रामक रोग फैलता है, तब व्यक्ति उससे अपनी रक्षा करने में सफल नहीं हो पाता फिर वह अपने आप में कितना ही शक्ति एवं स्वास्थ्यशाली क्यों न हो ? ऐसी समूहगत संक्रान्ति से सामूहिक रूप से ही रक्षा संभव हो पाती है। समाज की शक्ति ही व्यक्ति की वास्तविक शक्ति है। इस सत्य को कभी भी न भूलना चाहिए। अपनी शक्ति का उपयोग एवं प्रयोग भी इसी दृष्टि से करना चाहिए जिससे हमारी व्यक्तिगत शक्ति भी समाज की शक्ति बने और उलटकर वह व्यापक शक्ति हमारे लिए हितकारी बन सके।

समाज और शक्तिशाली बनाने के लिए हमें चाहिए कि हम अपने समग्र व्यक्तित्व को उसमें ही समाहित कर दें। जो कुछ सोचें समाज को सामने रखकर सोचें, जो कुछ करें समाज के हित के लिए करें। यदि हम ऐसी समष्टि प्रधान चेतना को स्थान नहीं देते और अपने व्यक्तित्व की सत्ता को अलग कल्पना कर उसी तक सीमित रहते हैं तो एक प्रकार से समाज को निर्बल बनाने की गलती करते हैं। हमारी यह अहंकार पूर्ण भावना समाज विरोधी कार्य होगा। इसका कुप्रभाव समाज पर पड़ेगा वह तो पड़ेगा ही हम स्वयं भी इस असहयोग से अछूत न रह सकेंगे। हमारा यह सामाजिक पाप प्रकाश में आ जायेगा और तब हमको पूरे समाज के आक्रोश तथा असहयोग का लक्ष्य बनना पड़ेगा। हम जैसा करेंगे वैसा भरना होगा। इस न्याय से बच सकना सम्भव नहीं।

इस संकीर्ण मनोवृत्ति का कुप्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व पर एक प्रकार से और भी पड़ता है। वह है उसका मानसिक पतन। ऐसे असामाजिक वृत्ति के लोगों का अन्तर आलोकहीन होकर दरिद्री बन जाता है। उसके सोचने और समझने की शक्ति नष्ट हो जाती है। उसकी क्षमताओं, योग्यताओं और विशेषताओं का कोई मूल्य नहीं रहता। असामाजिक भाव वाले व्यक्तियों की शक्ति को समाज अपने लिए एक खतरा समझने लगता है और कोशिश करता है कि वे जहाँ की तहाँ निष्क्रिय एवं कुण्ठित होकर पड़ी रहें। उन्हें विकसित अथवा सक्रिय होने का अवसर न मिले। ऐसे प्रतिबन्धों के बीच कोई असहयोगी व्यक्ति अपना कोई विकास कर सकता है—यह सर्वथा असम्भव है। समाज के निषेध से जहाँ व्यक्ति की असाधारण शक्ति भी सीमित और वृथा बन जाती है, वहाँ समाज में समाहित होकर किसी की न्यून एवं साधारण शक्ति भी व्यापक और असाधारण बन जाती है। अपनी एक शक्ति समाज के साथ संयोजित कर व्यक्ति असंख्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है।

समाज को अपनी शक्ति सौंपकर उसकी विशाल शक्ति को अपनाने के लिए हमें चाहिए कि हम अपने भीतर सामूहिक भावना का विकास करें। हमारा दृष्टिकोण जीवन के क्षेत्र में अपनेपन से प्रेरित न होकर समाज की मंगल भावना से प्रेरित हो। हम अपना कदम उठाने से पूर्व अच्छी तरह यह सोचलें कि इसका प्रभाव समाज पर क्या पड़ेगा यदि हमें अपने उस कदम में समाज का जरा भी अहित दिखलाई दे तो तुरन्त ही उसे स्थगित कर देना चाहिए। हमारे लिए वे सारे प्रयत्न त्याज्य ही होने चाहिए जिनमें व्यक्तिगत लाभ भले ही दीखता हो पर उनसे समाज का कोई अहित होने की सम्भावना हो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचय, संग्रह, मुनाफाखोरी, शोषण, झूठ और प्रपञ्च आदि ऐसे निकृष्ट प्रयत्न हैं जिनमें लोभी तथा स्वार्थी व्यक्ति को अपना लाभ दिखलाई दे सकता है, किन्तु इनसे समाज को बड़ी क्षति पहुँचती है। इसीलिए इन सब कार्यों को भ्रष्टाचार की संज्ञा दी गई है। ऐसे भ्रष्टाचार पूर्ण कार्य किसी भी सामाजिक एवं सज्जन व्यक्ति को शोभा नहीं देते वे सर्वथा त्याज्य एवं अग्राह्य ही हैं। समाज में जहाँ अन्य लोगों को पेट भरने के लिए रोटी न मिले वहाँ हम अपने भण्डारों में अन्न संग्रह करते रहें। जहाँ लोग नंगे और निराश्रय होकर फुटपाथों पर रात व्यतीत करें वहाँ हम यदि हीटरों से गर्म कोठियों में बैठकर आमोद-प्रमोद का आनन्द लेते हैं तो हम एक असामाजिक व्यक्ति हैं, समाज के अपराधी और उसके दण्ड के भागीदार हैं। यह न केवल सामाजिक अपराध ही है बल्कि आध्यात्मिक पाप भी है। ऐसे असामाजिक स्वार्थी और कठोर व्यक्तियों को ही असुर और अमानव कहकर पुकारा गया है।

समाज की शक्ति, उसकी रक्षा और उसकी उन्नति ही व्यक्ति की शक्ति, रक्षा और उन्नति है। समाज से भिन्न व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। यदि व्यक्तिवाद से प्रभावित कोई व्यक्ति स्वार्थ और लोभ को पूरा करने के लिये आज समाज का शोषण कर सम्पन्न बन जाता है तो निश्चय ही कल उसकी यह कुसम्पन्नता उसके लिये संकट का कारण बन जायेगी। समाज का असहयोग करेगा, दुष्ट लोग उसे सताएँगे और तब वह एकाकी अपनी रक्षा न कर सकेगा। व्यक्ति की वास्तविक शक्ति समाज की शक्ति है, समाज के हित में ही उसका हित है इसलिये आवश्यक है कि व्यक्ति को पीछे रखकर जीवन के हर क्षेत्र में सामाजिक दृष्टि को ही आगे रखा जाए।

सामाजिक उन्नति में व्यक्ति की उन्नति सन्निहित

यह खेद करने से पूर्व कि हमारा वास्तविक विकास नहीं हो रहा है, हम विकास से वंचित है, प्रगति के अर्थ में कुछ भी आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं—यह सोचना चाहिये कि हमारी उन्नति और प्रगति हो क्यों नहीं रही है, हम उन्नति से वंचित हैं क्यों ?

यदि अपनी स्थिति पर खेद करते रहने के बजाय उसके कारणों पर विचार किया जाये, तो पता चलेगा कि हमने जो विचार और कार्य पद्धति अपना रक्खी है, वह ही ठीक नहीं है और इसीलिये हम उन्नति और विकास से वंचित बने हुये हैं। हम सोचते यह हैं कि संसार की सारी सम्पदा, सारा वैभव और सारे सुख-साधन हमें ही प्राप्त हो जायें। हमें हास-विलास और आमोद-प्रमोद की परिस्थितियाँ मिलें, हम समाज में सबसे अधिक धनवान और शक्तिशाली बनें, समाज में हमारी पूजा प्रतिष्ठा हो।

न केवल इस प्रकार सोचते ही हैं, बल्कि उसके अनुरूप अपने आचरण का भी व्यवहार करते हैं। व्यापार में अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। नौकरियों में दूसरों को पीछे ढकेलकर आगे बढ़ जाना चाहते हैं। सार्वजनिक स्थानों पर दूसरों की चिन्ता नहीं करते। जहाँ भी रहते और जहाँ भी जाते हैं, अपनी ही सुख-सुविधा और लाभ पर ध्यान रखते हैं। दूसरे की सुविधा-असुविधा अथवा सुख-दुःख का कोई ध्यान नहीं रखते। हमारे ये स्वार्थपरक विचार और कार्य ही हमारी उन्नति एवं प्रगति में बाधक बने हुए हैं।

हम यह नहीं सोच पाते कि हम केवल एक अकेले व्यक्ति नहीं हैं। हमारा अस्तित्व सामाजिक है। हमारा सर्वस्व अभिन्न रूप से हमारे समाज के साथ जुड़ा हुआ है। जितनी देर तक हम अपने को एक अलग इकाई मानकर अपनी उन्नति और विकास के लिये सोचते और कार्य करते रहेंगे, हमें निराश ही रहना पड़ेगा। जब तक हमारा जीवन-कोण और कार्य-पद्धति समष्टिगत न होकर व्यक्तिगत रहेगा, हमें अपनी स्थिति पर इसी प्रकार खेद करते रहने पर विवश होना पड़ेगा।

हमें न केवल सोचना ही होगा, बल्कि यह आस्था लानी होगी कि हमारा जीवन व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत है। हमें केवल अपने को आगे रखकर सोचने का कोई अधिकार नहीं है। समष्टिगत सोचना और उसी के अनुसार आचरण करना ही हमारा कर्तव्य भी है और अधिकार भी। जिस दिन से हम अपनी यह आस्था बनाकर उसके आधार पर अपने आचरण का सुधार कर लेगें, हमारी प्रगति के द्वार आपने-आप खुलने लगेंगे।

हमारा जीवन समाज का दिया हुआ है। वह हमारी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। समाज की एक धरोहर है। इसका उपयोग समाज के कल्याण और उसके हित के लिये ही होना चाहिये। इस तथ्य को तब ही चरितार्थ किया जा सकता है, जब हम यह आधार लेकर चलें कि हमारा जीवन अपने व्यक्तिगत रूप में भले ही कुछ कष्टपूर्ण क्यों न हो पर दूसरों के लिये यह हितकारी हो। दूसरों का सुख और दूसरों की सुविधा ही हमारी सुख-सुविधा है और दूसरों का दुःख-क्लेश, हमारा दुःख-क्लेश है—यह परमार्थ भाव मनुष्य में जिस व्यक्तित्व का विकास करता है, वह बड़ा आकर्षक होता है। इतना आकर्षक कि समाज की शक्ति और विकास मूलक सद्भावनायें आपसे-आप खिंचती चली आती हैं। पूरा समाज उसका अपना परिवार बन जाता है, कुटुम्ब के रूप में बदल जाता है। ऐसी बड़ी उपलब्धि मनुष्य को किस ऊँचाई पर नहीं पहुँचा सकती।

किन्तु यहाँ पर भी एक सावधानी बर्तने की आवश्यकता है। बहुत बार लोग प्रारम्भ में सामाजिक बने रहते हैं। समाज के लिये सोचते और बहुत कुछ करते हैं, किन्तु जब उस परमार्थ के परिणामस्वरूप किसी पद पर पहुँच जाते हैं, तो स्वार्थ में पड़ जाते हैं। लोभ में आकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने लिये संचय एवं संग्रह करने लगते हैं। वे समाज के उस अनुग्रह को अपना अधिकार और अपनी सम्पत्ति मानकर चलने लगते हैं। बस यहीं से उनका पतन प्रारम्भ हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई भी शक्ति, सम्पदा, पद अथवा प्रतिष्ठा, वह चाहे सद्व्यवहार के परिणामस्वरूप समाज के बीच से अर्जित हुई हो अथवा संयोगवश उत्तराधिकार में मिल गई हो, कभी भी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न मानी जानी चाहिये।

किसी भी क्षेत्र में पाई हुई शक्ति, पद अथवा प्रतिष्ठा, होती तो अपने ही हाथ में है, उसका आवश्यकता भर व्यक्तिगत रूप में उपयोग भी किया जा सकता है तथापि यह कभी न भूलना चाहिये कि उस पर अन्ततः अधिकार समाज का ही है। उसे उसके लाभ से वंचित रखकर केवल अपने तक सीमित कर लेने का हमें कोई अधिकार नहीं है और यदि हम ऐसा करते हैं, तो गलती करते हैं, अनाधिकार चेष्टा करते हैं, जिसका दण्ड हमें अधिकार-वंचना के रूप में किसी समय भी मिल सकता है।

हम जियें। खूब हँसी-खुशी और आनन्दपूर्वक जियें, यह ठीक भी है और इसका हमें अधिकार भी है। तथापि हमें अपनी हँसी-खुशी में दूसरों को भी भाग देना चाहिये। हम तो आमोद-प्रमोद और आनन्द-मंगल मनाते चलें और हमारे आस-पास का समाज दुःख के आँसुओं से भीगता रहे, तो हमारी हँसी-खुशी एक सामाजिक अपराध है। हमें अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद में इस सीमा तक नहीं डूबा रहना चाहिये कि आस-पास का क्रन्दन ही सुनाई न दे। आस-पास के क्रन्दन के बीच जो उपेक्षा-भाव से खुशियाँ मनाता रहता है, उसे तो क्रूर और अकरुण व्यक्ति मानना होगा। ऐसे समाज के विरोधी व्यक्ति को समझ लेना चाहिये कि उसकी यह क्रूर पाशविक वृत्ति शीघ्र ही उसकी सारी हँसी-खुशी छीन लेगी। हँसी-खुशी तो उसी की स्थायी और सुरक्षित रह पाती है, जो अपने साथ दूसरों को भी उसमें भागीदारी बनाकर मंगल मनाया करता है।

संसार के अन्य समाजों की बात तो नहीं कही जा सकती पर अपने भारतीय समाज की यह पद्धति कभी नहीं रही कि दूसरों के कष्ट-क्लेशों की उपेक्षा करके आनन्द मनाया जाये। आनन्द जीव की सहज प्रवृत्ति है। यह सुर-दुर्लभ मानव-शरीर मिला ही अनन्त आनन्द को पाने और मनाने के लिये। फिर भी एकाकी आनन्द मनाने का निषेध भी है। दूसरों के साथ मिलकर ही आनन्द का उपभोग वास्तविक उपभोग है। अन्यथा यह एक अन्याय है, अनुचित है और चोरी जैसी बात है। हमें आनन्द का संभोग मिला है, उसकी सुविधा उपलब्ध है, तो हमें उसे जन-जन को साथ लेकर मनाना चाहिये। भारतीय संस्कृति और धर्म में सामूहिक मेले, त्यौहार, पर्व और पारिवारिक उत्सव मिल-जुलकर मनाने का नियम है। नीतिकारों ने व्यक्तिगत एकाकी आनन्दोपभोग को अनुचित कहा है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जिन पर्वों, त्यौहारों, मेलों एवं उत्सवों की व्यवस्था की गई है, उन सबको सामाजिक आधार पर मानने का निर्देश भी किया गया है।

इस सामूहिक आनन्दोपभोग के पीछे एक बड़ा कल्याणकारी मन्तव्य सन्निहित है। वह यह कि इससे समाज में संगठन, सद्भावना, शक्ति और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होती है। लोगों में बन्धुत्व की भावना का विकास होता है। समाज को पीछे ढकेलने वाली ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ की विकृतियों का हतोत्साहन होता है। समाज में अमन-चैन और सुख-शान्ति का वातावरण स्थिर होता है। व्यक्ति व्यक्ति और व्यक्तियों के साथ पूरा समाज उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर हो चलता है। संसार में प्रतिष्ठा और नेकनामी का गौरव प्राप्त होता है।

यदि हमारी उन्नति नहीं हो रही है, हम विकास के पथ पर नहीं बढ़ पा रहे हैं, तो इसका कारण यही हो सकता है कि हम सम्पूर्ण समाज को सामने न रखकर केवल अपने लिये ही सोचने और आचरण करने की गलती करते हैं। उन्नति और विकास की आधारशिला सामूहिक भावना है। व्यक्तिगत विचार संकीर्णता का द्योतक है और संकीर्ण व्यक्ति संसार में कभी उन्नति नहीं कर सकता। यदि उन्नति की इच्छा यथार्थ है और निश्चय ही हम जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य करना चाहते हैं तो व्यक्तिगत—के संकीर्ण दायरे से बाहर आकर समष्टिगत भावों में विस्तार लाना होगा। हमें वही कुछ करना होगा, जो रचनात्मक और समाज के लिये हितकारी हो। हमें केवल अपने व्यक्ति के लिये नहीं सम्पूर्ण समाज के लिये जीना होगा और यह मानकर चलना होगा कि हमारे पास आज जो कुछ है, वह सब समाज के लिये उसका हित करने के लिये ही है और आगे भी भविष्य में जो कुछ उपलब्ध होगा, वह सब भी समाज का अनुग्रह होने से उसी का होगा, जिसे उसी के हित और कल्याण में लगाना होगा।

इस प्रकार जिस दिन हमारे प्रयत्नों और प्रवृत्तियों का आधार 'बहुजन हिताय' की भावना बन जायेगी, हमें अपनी प्रगति एवं विकास के लिये प्रवंचित न होना होगा। समाज स्वयं ही हमें हाथों-हाथ ऊपर उठा लेगा। हमें सहयोग और सहायता की कमी न रहेगी। हम न स्वयं एकाकी रह जायेंगे और न हमारे प्रश्न और हमारी समस्यायें ही मात्र रह जायेंगी। वे सब की, पूरे समाज की बन जायेगी और पूरा समाज उन्हें हल करने में हमारा साथ देने लगेगा। इसीलिये तो वेदों में स्थान-स्थान पर कहा गया है—

'समानी प्रथा सहवोऽन्नभागः—तुम्हारे खाने-पीने के स्थान और भाग एक जैसे हो। 'समानी व आकृतिः समानो हृदयानिव'—तुम्हारे हृदय के संकल्प भावनायें एक जैसी हों। 'संगच्छध्वम् सम्वद्ध्वम्'—तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो—आदि-आदि।

इस प्रकार सामूहिक और सामाजिक भावना को जीवन में स्थान देने पर व्यक्ति एवं समाज दोनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्नति एक साथ और एक समान होती चलती है। अस्तु व्यक्तिगत विकास के लिये भी सामाजिकवृत्ति का विकास करना होगा।

सबके कल्याण में ही अपना कल्याण निहित है

वर्तमान समय में मनुष्य अकेला रहने वाला प्राणी न होकर समुदाय में मिलकर रहने वाला प्राणी बन गया है और वह पारस्परिक सहायता द्वारा ही जीवन-निर्वाह कर सकता है। इसलिये अब उसके लिये यह आवश्यक हो गया है कि केवल अपनी भलाई का ख्याल न रखकर सबके सुख-दुःख और कल्याण का ख्याल रखे। इस समय यही मनुष्य का कर्तव्य 'धर्म' माना गया है और जो इस प्रकार का आचरण करते हैं, वे ही 'मनुष्य' नाम के अधिकारी हैं। केवल अपना दुख दूर करने की और सुख पाने की प्रवृत्ति तो मनुष्य की तरह पशुओं में भी पाई जाती है, जीवन-संरक्षण और वंश वृद्धि की प्रेरणा भी उनमें मौजूद है और अपनी नैसर्गिक बुद्धि और इच्छा के अनुसार वे जीवन भी व्यतीत कर लेते हैं। पर मनुष्य अब हजारों वर्ष से केवल नैसर्गिक बुद्धि और स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार व्यवहार करने वाला प्राणी नहीं रहा है, पर न वह निरन्तर प्रकृति की प्रतिकूलता से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को मिटाकर और उसकी अनुकूलता का लाभ उठाकर सुख प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रयत्न करने से ही उसकी बुद्धि का विकास होता आया है और उसकी मानसिक भावनाओं की वृद्धि भी होती गई है। एक समय था कि मनुष्य भी अकेला रहने वाला प्राणी था, पर उसी समय उसमें वात्सल्य भाव का विशेष रूप से विकास होने और समुदाय के रूप में रहने से सुरक्षा का अनुभव करके वह संगठन करके रहने लग गया। वात्सल्य के साथ ही उसमें मातृ और पितृ भाव और बन्धु-भगिनी भाव की उत्पत्ति हुई जिससे कुटुम्ब का निर्माण हो सका। ऐसे अनेक कुटुम्बों के आसपास में रहने से उनमें सहकारिता का भाव उत्पन्न होने लगा और क्रमशः जाति ग्राम, प्रांत और देश की भावना विकसित होती चली गई। अब यह भावना यहाँ तक बढ़ गई है कि अनेक मनुष्यों की दृष्टि में समस्त मानव-जाति की एकता भी सम्भव दिखलाई पड़ने लगी है और उसके लिये प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। इस प्रकार मनुष्य में सामाजिक भावना की वृद्धि होती आई है और इसका आधार मनुष्य-मनुष्य के बीच का प्रेम, उदारता, विश्वास, परोपकार और सामूहिकता का आनन्द आदि सद्प्रवृत्तियाँ ही हैं। ये सद्गुण मनुष्य में जितने अधिक परिणाम में आते जायेंगे उतनी ही उसकी यह 'मनुष्य मात्र की एकता' की कल्पना साकार रूप धारण करती जायगी। इस मार्ग पर चलने के लिये हममें इसी के अनुकूल आचार, विचार, चरित्र, शील और हृदयशुद्धि अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार की योग्यता को ही सच्ची मानव-संस्कृति है और इस संस्कृति की वृद्धि करने वाला धर्म सच्चा मानव-धर्म है।

इस उद्देश्य की सिद्धि का एक मात्र मार्ग यही है कि हम परस्पर में एक-दूसरे के कल्याण की इच्छा रखें। इसके अनुसार जो कोई मनुष्य केवल अपने सुख-दुःख और कल्याण के विचार से व्यवहार करता है, वह कदापि धार्मिक नहीं हो सकता। ऐसा आचरण निश्चित रूप से अधर्म, समाज द्रोह है। इसलिये हमारा कर्तव्य यही है कि हम अपने आचार-विचार और रहन-सहन के ढंग को संकुचित न बनाकर अधिक से अधिक उदार-विस्तृत बनाने का प्रयत्न करते रहें। हमको समझना चाहिये कि अकेले रहने और केवल अपने सुख-दुःख का ही विचार करने की आदिम अवस्था से मनुष्य हजारों वर्ष पूर्व बाहर निकल चुका है और तब से उसने सामूहिकता द्वारा अपूर्व उन्नति कर ली है। अब जो मनुष्य या छोटे-छोटे मानव समुदाय (जातियाँ) संकुचित अवस्था में ही बने रहने की प्रवृत्ति रखेंगे वे पिछड़े हुये समझे जायेंगे और उनकी उन्नति रुक जायगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इस बात के प्रमाण आज तक इतिहास में स्थान-स्थान पर मिलते हैं। संसार में जो जातियाँ दूसरों के साथ घुल-मिलकर रह सकीं वे बराबर वृद्धि को प्राप्त होती गईं और जिन्होंने अकेले रहने की नीति अपनाई वे अवरुद्ध वातावरण में रहने वाले पदार्थ की तरह सड़-गल गईं निष्प्राण हो गईं।

मनुष्य अकेलेपन की अवस्था में अग्रसर होकर मानवता और सबके कल्याण की कल्पना तक पहुँच तो गया है, पर अभी इस कल्पना ने भावना का रूप धारण नहीं किया है। वैसे भी किसी कल्पना को भावना के रूप में बदलने में काफी समय लगता है। फिर जब भावना के साथ योजना शक्ति और कर्तृत्वशक्ति का भोग होता है तो उसमें वास्तविक सफलता की संभावना होती है फिर इस विचार को स्वभाव का एक अंग बनने, उसी के अनुसार चिन्तन, मनन और सतत् व्यवहार करने में भी बहुत समय की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से अभी अगर मानवता की भावना के परिपक्व होने और मानव-जाति का निर्माण होने में कुछ सौ वर्ष लग जायें तो भी हमको निराश न होना चाहिये।

आज जो 'मानव-धर्म' की चर्चा सुनाई पड़ रही है उसमें भावना के बजाय कल्पना का अंश अधिक है। शब्द चातुर्य और प्रभावशाली भाषा द्वारा भावना का आभास तो हो जाता है, पर केवल इतने से ही काम पूरा नहीं हो सकता। हमारे प्रचार-कार्य में शब्दों का उपयोग बढ़ता जा रहा है, फिर ये शब्द चाहे सामयिक पत्रों के लेखों के हों, चाहे भाषणों और प्रवचनों के हों, चाहे रेडियो के लिये रिकार्ड किये गये शब्द हों। आजकल भाषा विद्वत्तापूर्ण आलंकारिक बन गई है, पर इन सुन्दर और प्रभावयुक्त शब्दों से मानव जाति की विशेष प्रगति हुई हो, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। थोड़े-से लोगों के मन में यह भावना आवश्य उत्पन्न हो गई है, पर इसके द्वारा मानव-जाति की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थापना हो सकना संभव नहीं। यह कार्य तभी सिद्ध हो सकेगा जब यह भावना जनसमुदाय के चित्त में घर कर ले। सच पूछा जाय तो आज तक जितने उच्च कोटि के धर्म-प्रचारक हुये उन्होंने इसी उपदेश को सुनाया है और इसके अनुसार आचरण करके भी दिखाया है पर अभी तक मनुष्यों ने उनके उपदेश के सार तत्व को समझकर उसे अपनाया नहीं। इसके विपरीत महापुरुष के तिरोभाव के कुछ ही समय के बाद भाष्यकार और आचार्य लोग उसके मूल मन्त्रव्य को बदलकर और समयानुसार जनता के पसंद की-सी बातें कहकर लोगों को भ्रम में डाल देते हैं। हम उस विश्वबंधुत्व के सिद्धान्त को अपने स्वार्थ साधन का जरिया बना लेते हैं और उसके नाम पर मानव-मात्र से प्रेम और सहयोग करने के बजाय आपस में एक-दूसरे का सिर फोड़ने और खून बहाने का उपक्रम करने लगते हैं। इसका अर्थ यही है कि अभी तक हमारे भीतर मानवता की भावना उत्पन्न नहीं हुई और हम केवल उसकी कल्पना में ही पड़े हुये जवानी जमा खर्च कर रहे हैं।

हमको भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि हम चाहें कितने भी संकुचित विचार रखें और अपने को श्रेष्ठ तथा दूसरों को हीन समझते रहें पर अन्त में हमको मनुष्य मात्र की एकता, भ्रातृत्व का सिद्धान्त स्वीकार करके कार्य रूप में अमल करना ही पड़ेगा। अकेलेपन की भावना से आगे बढ़कर हमने वात्सल्यभाव का विकास किया है, कौटुम्बिक और नागरिक भाव भी हमारे भीतर अनेकांश में विकसित हो चुका है और अब हम इन भावनाओं को मिटाकर पुनः अकेलेपन के रहन-सहन को नहीं अपना सकते। जब हम पीछे लौट सकते तो स्वभावतः हमको आगे ही बढ़ना पड़ेगा और पारस्परिक सहयोग के वर्तमान दायरे को बढ़ाकर मानव-जाति के लक्ष्य तक पहुँचना होगा।

सब के सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख और सबके कल्याण में ही अपना कल्याण है, जब तक हम इस सिद्धान्त को श्रद्धापूर्वक अपने मन में स्थान न देंगे और उस पर चलने का दृढ़ निश्चय न कर लेंगे तब तक हमारा मानवता के लक्ष्य तक पहुँचना संभव नहीं है।

स्वयं का नहीं सबका हित सोचें

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में सुख शान्ति का वातावरण होने पर ही वैयक्तिक सुख-शान्ति अक्षुण्य रह सकती है। अविवेकी और असभ्य समाज के बीच रहने वाला कोई श्रेष्ठ एवं सज्जन व्यक्ति भी सुख-शान्ति का लाभ नहीं ले सकता। भयंकर विषधरों सर्पों से लिपटे रहने पर भी चन्दन वृक्ष की तरह उनसे अप्रभावित रहने वाले प्रबल मनस्वी व्यक्ति तो विरले ही होते हैं जो यह कह सकें कि 'मुझे नरक में भेज दो, मैं अपने लिए वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा।' बुरे लोगों के बीच रहते हुए भी जो अपनी मानसिक शान्ति और सन्तुलन स्थिर रख सकें ऐसे व्यक्तियों की संख्या अँगुलियों पर गिनने लायक ही होती है अन्यथा भोले-भाले सीधे-साधे सज्जन व्यक्ति ही प्रायः दुष्ट लोगों की दुष्टता के शिकार होते हैं।

अविवेकी, दुष्ट व्यक्तियों के बीच रहते हुए सज्जनों को भी नष्ट होता है। जहाँ नरबलि चढ़ाने की कुप्रथा है, उन जंगली, असभ्य, अविवेकी, निर्दय लोगों की बस्ती में रहने वाले भोले आदमी को भी अपनी सुरक्षा कहाँ अनुभव होगी ? बेचारा भय-त्रस्त ही रहेगा कि किसी दिन उसी का नम्बर न आ जाय। गन्दे लोगों के मुहल्ले में बसने वाले स्वच्छता प्रिय व्यक्ति भी महामारी फैलाने में खैर कहाँ ? अपनी एकाकी स्वच्छता के बल पर वह व्यापक गन्दगी से अछूता कैसे रह सकता है ? पड़ोस में आग लग जाय तो अपना छप्पर भी उसकी लपटों से कैसे बच सकता है ?

किसी गाँव के कुछ लोग साम्प्रदायिक दंगा करें या अन्य कोई उपद्रव करें तो सरकार उस पूरे गाँव पर सामूहिक जुर्माना करती है। सज्जन और शान्ति प्रिय व्यक्तियों को भी यह दण्ड चुकाना पड़ता है। कानून की दृष्टि से उन सज्जन और शान्ति प्रिय लोगों को भी निर्दोष नहीं माना जाता क्योंकि किसी भी व्यक्ति का कर्तव्य यहीं तक सीमित नहीं कि वह स्वयं भलमनसाहत से रहे वरन् यह भी उसका कर्तव्य है कि दूसरे उपद्रवकारियों को समझाये अथवा रोकें, न रुकने पर प्रतिरोध भी करें। यदि कोई अपने तक ही शान्ति को सीमित रखता है, उपद्रवियों को रोकने का प्रयास नहीं करता तो वह मानवीय कर्त्तव्य शास्त्र की दृष्टि से एक अपराध है और उसका दण्ड सामूहिक जुर्माना के रूप में चुकाना पड़ता है। उसकी एकाकी शान्तिप्रियता एवं सज्जनता की यह दलील निरर्थक मानी जाती है कि उसने स्वयं कोई अपराध नहीं किया वह तो निर्दोष है।

स्वयं अपराध न करना किसी की निर्दोषिता का प्रमाण नहीं कहा जा सकता। अपराधों और बुराइयों को रोकना भी प्रत्येक सभ्य एवं प्रबुद्ध नागरिक का कर्तव्य है। बन्दूकों के लाइसेन्स भले एवं सज्जन व्यक्तियों को इसीलिए दिए जाते हैं कि वे अवांछनीय तत्वों का मुकाबला करें। गाँवों में जिनके पास बन्दूकें रहती हैं, उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि गाँव में यदि दूसरे व्यक्तियों के यहाँ डकैती पड़े तो डाकुओं से मुकाबला करने के लिए उन बन्दूकों का उपयोग करें। यदि वे बन्दूकधारी डर के कारण चुपचाप अपने घरों में बैठे रहें और दूसरों के यहाँ डकैती बिना प्रतिरोध के पड़ती रहे तो इस काण्ड में डकैतों की तरह उन डरपोक बन्दूकधारियों को भी अपराधी माना जायेगा और सरकार उनकी बन्दूकें जब्त कर लेगी।

सामाजिकता के नाते प्रत्येक सभ्य नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह बुराइयों से स्वयं तो बचे ही दूसरों को भी उनसे बचाने में सहायता करे। अपराध न तो स्वयं करें और न करने दें। जो व्यक्ति स्वयं तो पाप नहीं करता पर पापियों का प्रतिरोध नहीं करता वह एक प्रकार से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाप का पोषण ही करता है। मनुष्य एक-दूसरे से परस्पर इतनी घनिष्ठता से जुड़ा हुआ है कि अपना स्वयं का पाप ही नहीं, दूसरों का पाप भी उसे भुगतना पड़ता है। जयचन्द और मीरजाफर की गद्दारी से सारे भारत की जनता को कितने लम्बे समय तक दासता की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं ?

समाज में यदि चारों ओर अज्ञान अविवेक, कुसंस्कारों अन्धविश्वासों, मूढ़मान्यताओं, कुरीतियों, अनैतिकता और अशिष्टता का वातावरण बना रहेगा तो कोई विवेकशील परिपक्व व्यक्ति भले ही उससे प्रभावित न हो, अविकसित, अल्पविकसित लोगों पर उसका प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। जिस स्कूल के बच्चे गन्दी गालियाँ बकते हैं, उसमें पढ़ने जाने वाला किसी श्रेष्ठ परिवार का बच्चा भी गालियाँ देना सीखकर आयेगा। अच्छे गीत, गन्दे सिनेमा, भोंड़े प्रदर्शन, अश्लील पुस्तकें, नग्न चित्र आदि कितने असंख्य अबोध मस्तिष्कों पर अपना प्रभाव डालते हैं और उन्हें कितना निकृष्ट एवं हेय बना देते हैं। इसे कहीं भी आँखों से प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। बुराई की उपेक्षा करना ही पर्याप्त नहीं, पाप की ओर से आँखें फेर लेना सज्जनता का चिन्ह नहीं है, इससे तो बुराइयाँ एवं अनाचार अधिक फैलेंगे जिनके दुष्प्रभाव से सज्जन व्यक्ति भी अछूते नहीं रह सकेंगे।

समाज में पनपने एवं फैलने वाली बुराइयों और दुष्प्रवृत्तियों को रोकना केवल सरकार का ही काम नहीं है, वरन् उसका पूरा उत्तरदायित्व प्रबुद्ध एवं सभ्य नागरिकों पर है। प्रबुद्ध एवं मनस्वी व्यक्ति जिस बुराई या कुप्रथा के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, वह देर-सबेर में मिटकर ही रहती है। महिलाओं को पति के मरने पर बलपूर्वक जबरदस्ती चिता में झोंक देने वाली सती प्रथा का अन्त हो गया। अँग्रेजों के फौलादी चंगुल में जकड़ी हुई भारत की स्वाधीनता को मुक्त कराने के लिए दासता के बन्धन तोड़ने के लिए जब प्रबुद्ध वर्ग ने आवाज उठाई तो वह होकर ही रहा। आज समाज में अनैतिकता, अविवेक, अन्धविश्वास कुरीतियाँ, असभ्यता आदि बुराइयाँ इसीलिए विद्यमान हैं कि उनका विरोध करने के लिए प्रबुद्ध वर्ग कटिबद्ध नहीं हुआ है। यदि प्रबुद्ध वर्ग में सामाजिक बुराइयों से जूझने की वैसी ही सक्रियता उत्पन्न हो जाय, जैसी कि राजनैतिक गुलामी की जंजीरों की तोड़ने के लिए हुई थी तो देखते-देखते हमारे समाज पर छाये कलंकों की कालिमा धुल जाय।

समाज में संव्याप्त कुरीतियों, मूढ़-मान्यताओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों ने सामाजिक सुख-शान्ति एवं समृद्धि की जड़ों को खोखला कर दिया है। भारतीय समाज में दहेज की घातक कुरीति इतनी बुरी तरह जड़ जमाये बैठी है कि पारिवारिक शान्ति, समृद्धि एवं प्रगति को ही नष्ट किये दे रही है। एक कन्या के विवाह में माध्यम वर्गीय परिवार तबाह हो जाता है और यदि किसी के कई कन्यायें हैं तब तो उसकी जीवित मृत्यु ही समझिए। ऐसा भी नहीं कि उस धन का सदुपयोग होता हो। लड़के वालों पर जो 'जस थोरेहु धन खल इतराई' वाली कहावत लागू होती है, विवाह शादी के अवसर पर तो उन पर उन्माद-सा छा जाता है और बरात की निकासी, बाजी-गाजे, नाच, स्वांग, तमाशा, नौटंकी, दावत आदि में अपनी गाढ़ी कमाई से अर्जित पैसे की होली जला देते हैं। दुनिया के अन्य देशों में विवाह एक सामान्य-सा पारिवारिक पर्व उत्सव जैसा भर होता है। अब कुछ विचारशील प्रबुद्ध वर्ग की आँखें खुलने लगी हैं तो विवाह सादगी पूर्ण ढंग से धार्मिक वातावरण में सम्पन्न होने लगे हैं किन्तु अभी वह प्रचलन 'ऊँट के मुँह में जीरे' के समान है।

विवाह एवं दहेज भी तो एक कुरीति है। ऐसी अगणित कुरीतियाँ हमारे समाज को खाये जा रही हैं। धर्म के नाम पर पाखण्डों पर झोली-भरी जनता अपने कड़े परिश्रम का अरबों रुपया स्वाहा कर देती है। यदि यह समय, श्रम एवं धन उपयोगी कार्यों पर खर्च किया जाने लगे तो प्रगति और समृद्धि के अनेकों द्वार खुल जायें। मृतक भोज, पशु बलि, बाल-विवाह, भाँति-पाँति, ऊँच-नीच, नौते-स्याने, भूत-पलीत, टोना-टोटका, पर्दा प्रथा, कन्या विक्रय, दिवाली पर जुआ खेलना, होली पर कीचड़ उछालना आदि असंख्य कुरीतियाँ, नशेबाजी, हरामखोरी, कामचोरी, जमाखोरी, बेईमानी, मिलावट आदि की अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ समाज को जर्जर बनाये दे रही हैं।

समाज में व्यापक कुरीतियों और सामूहिक दुष्प्रवृत्तियों के रहते कोई सज्जन व्यक्ति भी विपत्तियों के चंगुल से छूट नहीं सकता। कोई मनुष्य अपनी वैयक्तिक उन्नति चाहे जितने कर ले, समाज का वातावरण निकृष्ट रहने पर वह बालू की भीति के समान अस्थिर ही रहेगी। व्यक्तिगत उन्नति एवं सुख-शान्ति सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है। अस्तु समाजगत बुराइयों एवं दुष्प्रवृत्तियों के निराकरण में योगदान देना प्रत्येक सभ्य नागरिक एवं प्रबुद्ध व्यक्ति का महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है।

व्यक्ति का समाज के प्रति दायित्व

समाज एक सम्पूर्ण शरीर है और हम सब उसके अंग-अवयव हैं। जिस प्रकार शरीर का अस्तित्व अंगों के सहयोग पर निर्भर है, उसी प्रकार सम्पूर्ण शरीर की सहायता से अंग और अवयव भी स्वस्थ रहते हैं। यह दोनों अन्योन्याश्रित हैं। पारस्परिक सहयोग के अभाव में इन दोनों का ही अस्तित्व शंका में पड़ जाएगा।

व्यक्ति का समाज के प्रति वही दायित्व है, जो अंगों का सम्पूर्ण शरीर के प्रति। यदि शरीर के विविध अंग किसी प्रकार स्वार्थी अथवा आत्मास्तित्व तक ही सीमित हो जोयं तो निश्चय ही सारे शरीर के लिए एक खतरा पैदा हो जाए। सबसे पहले भोजन को अपने तक ही सीमित रखकर उसका स्वाद लेता रहे और जब इच्छा हो उसे थूककर फेंक दें, तो उसके इस स्वार्थ का परिणाम बड़ा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयंकर होगा। जब मुँह का चबाया हुआ भोजन पेट को न जाएगा तो कहाँ से उसका रस बनेगा और कहाँ से रक्त माँस, मज्जा आदि ? इस क्रिया के बन्द हो जाने पर शरीर के दूसरों अंगों और अवयवों को तत्व मिलना बन्द हो जाएगा। वे क्षीण और निर्बल होने लगेंगे और धीरे-धीरे पूरी तरह अस्वस्थ होकर सदा-सर्वदा के लिए निर्जीव हो जायेंगे। पूरा शरीर टूट जाएगा और शीघ्र ही जीवन हीन होकर मिट्टी में मिल जाएगा। यह सब अनर्थ, एक मुँह के स्वार्थ-परायण हो जाने से ही घटित होगा।

इसी प्रकार यदि मुँह स्वार्थी न बने पेट स्वार्थी बन जाए। अपने में आए हुए भोजन को अपने पास ही जमा करता रहे और उसे पचाकर रस प्रक्रिया को अवसर न दे तो भी यही अनर्थकारी स्थिति उत्पन्न हो जायगी। हाथ पैर, मन, मस्तिष्क आदि भी यदि स्वार्थी बनकर यह सोचने लग जाएँ कि मेरे श्रम का, उपार्जन का सारा लाभ तो मुँह और पेट को होता है तो मैं यों दूसरों के लिए क्यों कमाता और परिश्रम करता रहूँ ? क्यों न चुपचाप बैठकर आराम करूँ तो भी वही अनर्थकारी स्थिति पैदा हो जाएगी।

हाथ-पैर काम नहीं करेंगे, सम्पूर्ण शरीर को भोजन देने में असहयोग करेंगे, तो एक तो जड़मूल से भोजन ही न मिलेगा और यदि किसी प्रकार मिल भी जाए तो उसको पकाने खाने आदि की प्रक्रिया न चल सकेगी। शरीर भूखा रहेगा, उसकी आवश्यकता पूरी न होगी, वह शिथिल और अस्वस्थ रहने लगेगा। ऐसी दशा में केवल अन्य अंगों को ही हानि होगी बल्कि स्वयं स्वार्थी हाथ-पैर आदि भी निर्जीव हो जायेंगे। शरीर का कोई भी अंग यदि दूसरे अंगों के साथ स्वार्थवश असहयोग पर उतर आए तो सारे शरीर का ही अस्तित्व खतरे में पड़ जाए और तब इस सामूहिक अनर्थ से वह स्वार्थी अंग अथवा अवयव भी बचा नहीं रह सकता।

व्यक्ति की स्वार्थपरता सामाजिक जीवन के लिए विष के समान घातक है। जो व्यक्ति सामूहिक दृष्टि से न सोच कर केवल अपने स्वार्थ, अपने व्यक्तिवाद में लगे रहते हैं, वे सम्पूर्ण समाज को एक प्रकार से विष देने का पाप करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की आत्मा कभी भी शांत और सुखी नहीं रह सकेगी। शीघ्र ही उसका लोक तो बिगड़ ही जाता है, परलोक बिगड़ने की भूमिका भी तैयार हो जाती है। समाज में व्यक्तिगत भाव का कोई स्थान नहीं है। जिसने शक्ति, समृद्धि, सम्पन्नता अथवा पद प्रतिष्ठा के क्षेत्र में उन्नति तो कर ली है, किन्तु अपनी इन सारी उपलब्धियों को रखता अपने तक ही सीमित है, किसी भी रूप में समाज को उसका लाभ नहीं पहुँचाता तो उसकी सारी उपलब्धियों, समृद्धियाँ और सफलताएँ हेय हैं। ऐसे स्वार्थी व्यक्ति को कोई विवेकशील व्यक्ति तो आदर की दृष्टि से देखेगा नहीं, मूढ़ और मतिमन्द लोग भले ही उसको आदर, सम्मान देते रहें।

ऐसे संकीर्ण एवं स्वार्थपरायण व्यक्ति ही समाज के शोषक शत्रु और अहित-चिन्तक कहे जाते हैं। वे अपने साधनों के बल पर समाज का अधिकाधिक शोषण करते हैं और इससे गरीबी, द्वेष, ईर्ष्या और कुत्सा का विष फैलाते हैं। ऐसे व्यक्ति समाज के अस्वस्थ अंग होते हैं, जो अपने दोष से सारे समाज के स्वास्थ्य और सुख चैन पर घातक आघात किया करते हैं। ऐसे असामाजिक एवं असहयोगी लोगों की जितना निन्दा की जाय थोड़ी ही है।

समाज को पीछे ढकेलने वाले, अविश्वास, सन्देह, धोखेबाजी, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, ठगी, शोषण, संघर्ष आदि के जितने भी अपराधपरक दोष होते हैं, वे सब एक स्वार्थ एवं व्यक्तिवाद की भावना से ही जन्म लेते हैं। उसके कारण ही पनपते, बढ़ते और समाज में संघर्ष, अशांति और असुविधा की परिस्थितियाँ पैदा करते हैं। स्वार्थ परायणता को सारे पापों की जड़ मानना चाहिये। सुखी, सम्पन्न और विचारशील समाज का निर्माण तभी हो सकता है, जब उसके सदस्य संकीर्ण व्यक्तिवाद को छोड़कर व्यष्टिवाद के व्यापक दृष्टिकोण को अपनाते हैं। समाज में जब तक पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, सौजन्य, त्याग, सेवा और संगठन की भावना का आविर्भाव नहीं होता उसका सामूहिक विकास नहीं होता।

कुछ थोड़े-से व्यक्ति सारी सभ्यता और मनुष्यता को ताक पर रखकर यदि समृद्धिशाली बन भी जाते हैं, तो उससे समाज का तो हित नहीं होता है, उस व्यक्तिवादी को भी सुख-चैन नसीब नहीं होता। वह अपने वैभव, अपनी समृद्धि को अपने तक सीमित किए सर्प की तरह उसकी रखवाली क्रिया करता है। ऐसा पापी व्यक्ति समाज में संघर्ष और विघटन उत्पन्न कराने वाला सिद्ध होता है। संकीर्ण स्वार्थ से दूषित व्यक्ति सौ पापियों का एक पापी माना जाता है। वह समाज का सदस्य नहीं शत्रु होता है।

सारा धन, सारा वैभव और सारी विभूतियाँ जो किसी मनुष्य के पास आती हैं, सब समाज से ही आती हैं, कहीं आकाश से सहसा नहीं टपक पड़तीं। यदि सर्वथा सत्य कहा जाए तो—तो कहना होगा कि जिसके पास जो कुछ भी है, उसमें उस व्यक्ति का कुछ नहीं होता, वह सब समाज की ही सम्पत्ति होती है। मनुष्य जब पैदा होता है तब वह अपने साथ कुछ भी नहीं लाता और जब संसार से जाता है तो भी साथ कुछ नहीं ले जाता। समाज की सम्पत्ति समाज के ही पास ही छूट जाती है। जन्म लेने के समय बच्चा नितान्त असहाय एवं असमर्थ होता है। उसकी रक्षा और वृद्धि, परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष किसी न किसी रूप में समाज द्वारा ही की जाती है। समर्थ होकर वह समाज की सहायता से उन्नति करता और समृद्ध बनता है।

यदि समाज उसके साथ सहयोग करना छोड़ दे तो शीघ्र ही उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। अब ऐसी स्थिति जो व्यक्ति समाज से पाई विभूतियों को उसके अर्थ में यापन नहीं करता और जबरदस्ती उन्हें अपनी समझकर अपने तक ही सीमित रखकर स्वार्थपरायण बना रहता है, तो निश्चय ही उसे चोर और कृतघ्न कहा जायेगा। इस कृतघ्नता के पाप से बचने के लिए मनुष्य को स्वार्थ नहीं परमार्थ को ही प्रश्रय देना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमार्थ वृत्ति के अभाव में समाज और व्यक्ति दोनों नष्ट हो जाते हैं। व्यक्तिगत लाभ, स्वार्थ सिद्धि और समृद्धि के लिये मनुष्य कितना भी क्यों न करे, वह कितना ही सम्पन्न, शक्तिशाली और वैभवशाली क्यों न बन जायें ? किन्तु परमार्थ और दूसरों के प्रति त्याग, प्रेम, सहायता, सहयोग एवं सहानुभूति की भावना के अभाव में वह समाज के लिये उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता और जो उसके लिये उपयोगी नहीं, समर्थ होकर सहायक नहीं वह समाज पर एक कलंक मात्र है। ऐसे कलंक रूप स्वार्थी व्यक्ति न केवल समाज के लिये ही घातक होते हैं बल्कि उनका स्वयं का भी विकास रुक जाता है क्योंकि समाज के साथ ही व्यक्ति और व्यक्ति द्वारा ही समाज का विकास सम्भव है। आत्मकल्याण और सामाजिक हित के लिए मनुष्य को स्वार्थी नहीं, परमार्थी होना चाहिये।

अनेक बार अनेक लोग व्यक्तिवाद से प्रेरित होकर यह दावा करने का साहस करने लगते हैं कि उन्होंने अपना विकास अपने प्रयत्न एवं पुरुषार्थ के बल पर किया है--समाज ने उनकी कोई सहायता नहीं की, बल्कि पीछे खींचने का ही प्रयत्न किया है। ऐसे लोग, शायद कुछ ऐसे लोगों को ही समाज समझने की भूल करते हैं, जिन्होंने उन्हें प्रत्यक्ष सहयोग नहीं दिया होता है। सोचने का यह विचार-कोण समीचीन नहीं। कुछ इने-गिने लोग ही समाज नहीं होते। समाज एक विशाल और व्यापक संस्था है। पूरा समाज जिसका असहयोग करने लगता है उसका विकास तो दूर, जीना भी दूभर हो जाता है।

ऐसे लोगों को अपने विचार-कोण बदलकर यह समझना चाहिये कि व्यक्ति और उसका व्यक्तित्व समाज से पृथक् कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार किसी वृक्ष के फल मनुष्यों द्वारा की गई उसकी सेवा और सुरक्षा का ही परिणाम होता है, उसी प्रकार मनुष्य की सारी सफलता भी समाज की कृपा का ही परिणाम होता है। यद्यपि समाज के अन्तर्गत वे भी आते हैं, तथापि माता-पिता को यदि छोड़ भी दिया जाये तब भी मनुष्य के विकास में समाज का बहुत हाथ रहता है। मनुष्य जिसके बीच बढ़ता, पढ़ता और अनुभव प्राप्त करता है वह सब समाज ही तो होता है।

वह जो कुछ सीखता समाज में सीखता है और जो कुछ पाता है समाज से पाता है। कोई भी वस्तु तो जीवन विकास के लिए आवश्यक होती है, समाज के सामूहिक प्रयत्न द्वारा ही बनाई जाती है। उदाहरण के लिए अन्न ही ले लीजिए—इसे सभी लोग नहीं उगाते लेकिन उपयोग सभी लोग करते हैं। अन्न का उत्पादन किसान किया करते हैं। किन्तु वे जिन साधनों और उपकरणों से कृषि का काम करते हैं, उनका उत्पादन अन्य लोग किया करते हैं। एक हल बनने में ही न जाने कितने लोगों का श्रम तथा मस्तिष्क लगा करता है, तब कहीं जाकर वह तैयार हो पाता है।

ऐसे ही वस्त्र, पुस्तकें, मकान और अन्य सुविधा तथा आवश्यकता की सारी चीजें, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पूरे समाज के सम्मिलित प्रयत्न तथा सहयोग का ही परिणाम होती है। जिसको खाने-पीने, रहने और पढ़-लिख कर विकास करने का अवसर मिला है, उसे भूलकर भी यह न सोचना चाहिये कि उसने अपना विकास अपने अकेले दम पर कर लिया है।

व्यक्ति तथा समाज वस्तुतः एक ही वस्तु है। दोनों का विकास दोनों पर समान रूप से निर्भर है। कोई एक बात पूरे समाज से एक साथ कह सकना सम्भव नहीं, इसलिए वह उपायों द्वारा व्यक्तियों से ही कही जाती है। व्यक्ति को सामाजिक बनने को कहने का अर्थ यही है कि वह बात पूरे समाज से कही गई है। व्यक्ति यदि आपको सुधारकर समाज अर्थात् दूसरे लोगों का हितैषी और सहयोगी बन जाय तो यह समझना चाहिये कि पूरा समाज ही वैसा बन गया। व्यक्तिवादी बनकर केवल स्वार्थ में ही लगे रहना असामाजिकता है। इससे व्यक्ति तथा समाज दोनों की हानि एवं अकल्याण होता है। इसी अमंगल को बचाने के लिए मनुष्य को स्वार्थी नहीं परमार्थी और व्यक्तिवादी से सामाजिकवादी बनकर लोकहित के काम करते ही रहना चाहिये।

सामूहिक उत्कर्ष का एक मात्र आधार—आत्मीयता का विस्तार

अपने चारों ओर प्रिय वस्तुओं की कल्पना और इच्छा हर व्यक्ति करता है। यदि प्रश्न किया जाये कि वह वस्तुएँ क्यों चाहिए ? तो उत्तर में उनकी उपयोगिता एवं गुणों का हवाला दिया जाता है। पर वस्तुतः प्रिय होना विशुद्ध रूप से गुणों और उपयोगों पर निर्भर नहीं करता, वरन् बड़े अंशों में वह अपनेपन की भावना के साथ जुड़ा होता है। अतः यह कहना ठीक नहीं कि व्यक्ति या वस्तुएँ स्वभावतः प्रिय लगती हैं। यह अधूरी व्याख्या है। सच बात तो यह है कि जिस वस्तु में जितनी मात्रा में अपनापन, आत्मभाव, स्वार्थ-भाव है, वह उसी परिणाम में प्रिय लगती है, गुणरहित हो तो भी अच्छी लगती है। आपका अपना छोटा-सा बालक है, वह सिर्फ रोना ही जानता है, दिन को रोता है, रात को रोकर बार-बार नींद उचटा देता है, गोदी में लें तो मलमूत्र से साफ कपड़ों को, खराब कर देता है। उसमें दुर्गुण बहुत हैं, तो भी आप उसके लिये कपड़ों की, दूध की, दवादारू की खर्चीली व्यवस्था करते हैं, फिर भी उसे प्यार करते हैं। कारण यह है कि उस बालक में आपका आत्म-भाव है, अपनापन है। दूसरों के बच्चे यदि आपके ऊपर टट्टी करदें तो यह बुरा लगेगा। पड़ौसी का गोरा, सलौना बच्चा, अपने काले-कलूटे बच्चे से अच्छा थोड़े ही लगेगा ? यहाँ सौन्दर्य या गुण की प्रमुखता नहीं है अपनेपन का महत्त्व है।

एक मकान के आप मालिक हैं वह बहुत अच्छा लगता है, उसकी अच्छाई की प्रशंसा करते नहीं थकते, टूट-फूट, मरम्मत, सजावट का खूब ध्यान रखते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संयोगवश यह मकान बिककर दूसरे के हाथ में चला जाता है, अब आप निश्चिन्त हो गये टूट-फूट से कोई मतलब नहीं आज फूट जाय, चाहे हजार वर्ष खड़ा रहे। कल तक जो मकान इतना प्रिय था, आज ही उससे सारा सम्बन्ध छूट गया। इतनी शीघ्र, इतनी अधिक विरक्ति का कारण क्या है ? कारण यह है कि कल तक उसके हाथ जो अपनापन चिपटा हुआ था, आज नहीं रहा। कल जिन रुपयों से भरी थैली को अत्यन्त उत्साह से छाती से चिपटाये फिरते थे, वह आज दूसरे व्यापारी के पास चली गई, यदि वे रुपये अब चोरी चले जायें तो आपको कुछ भी कष्ट न होगा उन रुपयों के बदले जो माल खरीदा है वह अब प्यारा लगने लगा, कल वह माल भी पड़ौस में पड़ा था, पर तब उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखते थे, आज उसको सुरक्षित रखने के लिये चोटी का पसीना एड़ी तक बहा रहे हैं, माल वही कल था, वही आज है। अन्तर केवल इतना हुआ कि कल वह पराया था, आज अपना हो गया, अपनापन ही तो अच्छा लगने का कारण है।

नित्य कई आदमी मरते हुए आप देखते हैं, मरघट में आये दिन चितायें जलती रहती हैं, इसका जरा भी प्रभाव नहीं होता, एक उपेक्षा भरी दृष्टि से उस शव-संस्कार को देखकर अपने काम में लग जाते हैं। पर जब अपना कोई प्रियजन मरता है, तब तो फूट-फूट कर रोते हैं, आँसुओं की झड़ी नहीं रुकती, दुनिया सूनी दीखती है, भूख-प्यास उड़ जाती है, दुःख, शोक की व्याकुलता में चारों ओर अँधेरा छा जाता है। अपने घर पुत्र पैदा हुआ तो खुशी से फूले नहीं समाते, पड़ौसी के घर बच्चा जन्मे तो कुछ प्रयोजन नहीं। यह स्वाभाविक बात है। कुछ शिकायत या भर्त्सना के रूप में यह पंक्तियाँ नहीं लिखी जा रही हैं। प्रयोजन केवल यह बताने का है कि गुण-अवगुण के कारण ही हम वस्तुओं को प्यार नहीं करते वरन् प्रमुख कारण उनमें आत्म-भाव का, अपने स्वार्थ का समन्वित होना है।

तत्वस्थिति यह है—संसार की एक भी वस्तु न तो प्रिय है, न अप्रिय। किसी कारणवश आकर्षित होकर जब उसमें आत्मभाव जोड़ दिया जाता है तो वह प्रिय लगने लगती है। जिससे स्वार्थ का विरोध पड़ता है, वह बुरी लगती है और जिससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उसके प्रति उपेक्षा रहती है। यही प्रिय और अप्रिय का दार्शनिक विवेचन है।

आप चाहते हैं कि हमारे चारों ओर प्रिय ही प्रिय तत्व जमा रहें तो इसका एक ही उपाय है कि आत्म-भाव को उन सबसे सम्बन्धित कर दें। सोये हुए निष्क्रिय बल्बों के रहते हुए भी अन्धकार बना रहता है, पर जैसे ही बिजली की धारा उन बल्बों तक पहुँची, वैसे ही वे क्षण भर में दीप्तिमान हो उठते हैं और अपने प्रकाश से निकटवर्ती स्थानों को जगमगा देते हैं। अपने निकटवर्ती लोगों पर यदि आप आत्मीयता की भावनायें आरोपित कर दें तो वे सब आपको प्रिय, आनन्ददायक, मनोहर और प्रसन्नता बढ़ाने वाले प्रतीत होने लगेंगे। जो लोग अल्पज्ञ और अपराधी हैं, वे भी कपड़ों पर मल-मूत्र त्याग देने वाले अपने बालक के समान आनन्दप्रद ही लगेंगे। क्रोध, चिड़चिड़ाहट, द्वेष, घृणा की जो अग्नि-शिखायें दिन-रात मन में जलती रहती और खून-सुखाती रहती हैं, वे अनायास ही शान्त हो जावेंगी।

प्रिय वस्तुओं का चारों ओर एकत्रित रहना—यही तो स्वर्ग है। स्वर्ग की बड़ी महिमा गाई गई है, कथा-पुराणों में उसका बहुत विस्तृत वर्णन मिलता है, उस सारे वर्णन का सार यह है कि वहाँ सब प्रिय ही वस्तुएँ हैं, जैसे स्थानों में रहना चाहते हैं, वह सब वहाँ मौजूद हैं। ऐसा स्वर्ग आप स्वयं बना सकते हैं, इसी जीवन में उसका आनन्द लूट सकते हैं। दूर जाने की जरूरत नहीं, यहीं उसकी रचना हो सकती है। क्या आप सचमुच ऐसा चाहते हैं ? क्या अपनी आँखों से इस जीवन में ही उस स्वर्ग की झाँकी करने के लिये सचमुच उत्सुक हैं ? यदि हैं तो सच्चे हृदय से तैयार हो जाइये। अपने आत्मभाव को संकुचित मत रखिये वरन् उसे निकटवर्ती लोगों के ऊपर बिना भेद-भाव के बखेर दीजिए। विद्युत धारा का स्पर्श करते ही अचेतन पड़े हुए बल्ब जगमगाने लगते हैं। आपके आत्म-भाव का स्पर्श होते ही समस्त सम्बन्धित जन प्रेमपात्र बन जायेंगे, प्रिय लगने लगेंगे, उन प्रियजनों के बीच रहकर आप स्वर्ग जैसा आनन्द अनुभव करेंगे।

सम्बन्धित लोगों को अपना समझिये, उनमें अपनापन रखिये। इस प्रकार उनमें यदि कुछ दोष होंगे तो भी वे प्रिय रूप में दृष्टिगोचर होंगे। अपनों के लिये स्वभावतः उनके दोषों को छिपाने और गुणों को प्रकट करने की वृत्ति रहती है, अपने प्यारे पुत्र के दोषों को कौन पिता प्रकट करता है ? वह तो उनकी प्रशंसा के पुल बाँधता रहता है। दुर्गुणी बालक को कोई न तो मार डालता है और न जेल ही पहुँचा देता है वरन् सारी शक्तियों के साथ यह प्रयत्न किया जाता है कि किसी सरल उपाय से उसके दुर्गुण दूर हो जायें या कम हो जायें। यदि ऐसी ही वृत्ति अपने परिजनों के साथ रखें तो उनके अन्दर जो बुरे तत्व विद्यमान हैं वे घट जायेंगे। निस्तेज हो जायेंगे। डाकू, हत्यारे, ठग, व्यभिचारी आदि क्रूरकर्मी लोग भी अपने स्त्री, पुत्र, भाई, बहन आदि के साथ अपने पैशाचिक स्वभावों का उपयोग नहीं करते सिंह अपने बाल-बच्चों को नहीं फाड़ खाता, इसी प्रकार जिनके प्रति आप आत्म-भाव रखते हैं, वे भी कम से कम आपके लिए तो दुःखदायी न रहेंगे। महात्मा इमरसन कहा करते थे कि "यदि मुझे नरक में रखा जाय तो मैं अपने सद्गुणों के कारण वहाँ भी स्वर्ग बना लूँगा।" आप में यदि विवेक हो तो कुटुम्बी जिनके साथ आपका दिन-रात कलह होता है आसानी से प्रेमपात्र बन सकते हैं।

प्रेम एक ऐसा गोंद है जो टूटे हुए हृदय को जोड़ता है, बिछुड़ों को मिलाता है, विद्वेष को शान्त करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिकायतों को दूर करता है। अपने मनोभाव को वाणी या आचरण द्वारा दूसरे पर इस प्रकार प्रकट करें, जिससे उसे यह विश्वास हो जाय कि आपका आत्मभाव सच्चा है बिना किसी खुदगर्जी या मायाचार के अपनेपन की भावना रखते हैं, तो विश्वास कीजिये कि वह आपका गुलाम हो जायगा। दोषों से रहित व्यक्ति इस संसार में एक भी नहीं हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह की वृत्तियाँ न्यूनाधिक अंशों में हर एक के मन में बस रही हैं, किसी की एक बुराई को देखकर उस पर आग बबूला हो आना, सब बुराइयों की खान मान लेना, घृणास्पद मानना उचित नहीं। आप निष्पक्षता के साथ तलाश करेंगे तो उसमें बुराइयाँ मिलेंगी पर बुराइयों से अच्छाइयों की मात्रा अधिक होगी। क्या आप ऐसा नहीं कर सकते कि इन अच्छाइयों से आनन्दित हों, उन्हें प्रकट करें और प्रोत्साहित करके आगे बढ़ावें ? क्या आप ऐसा नहीं कर सकते कि बुराइयों को कुछ देर के लिए दर गुजर कर जायें, उन्हें दफना दें, घटावें और सुधारने का प्रयत्न करें ? ऐसा नहीं कर सकते तो इसका एक मात्र कारण यह है कि उस व्यक्ति के प्रति आपका सच्चा आत्म-भाव नहीं है।

'लोग क्या करते हैं'—इस आधार पर यदि सुखी-दुःखी होने की आदत डालेंगे तो सदैव दुःख ही दुःख भोगना पड़ेगा, क्योंकि यह संभव नहीं कि सब लोग आपकी मन मर्जी के बन जायें और वैसे ही आचरण करें जैसे कि आप चाहते हैं। 'हम क्या करते हैं'—इस आधार पर यदि सुखी होने की आदत डालेंगे तो सदैव सुख ही सुख सामने पड़ेगा, क्योंकि अपने को मनमर्जी का बनाना अपने हाथ में है। इससे कौन रोक सकता है कि हम दूसरों को अपना समझें, उन्हें प्यार करें और उस प्यार एवं अपनेपन के कारण जो आनन्द उपजे उसका उपभोग करें। स्वर्ग-निर्माण की यही कुन्जी है। अपने प्रेम-भाव के कारण बहुत अंशों में दूसरों का व्यवहार नरम, मधुर, सुखकर हो जाता है। कदाचित कहीं अपवाद उपस्थित हो, किसी ऐसे जड़ से पाला पड़े जो उलटा ही उल्टा चलता हो तो उसकी गतिविधियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखिये— उसे अपनी मौत मरने दीजिए, आप तो अपने कर्त्तव्य में प्रसन्न रहिए। संसार में अनेक दुष्टात्मा भरे पड़े हैं, उनके होने से आपको कुछ बड़ा भारी शोक सन्ताप नहीं होता, फिर क्या कारण है कि अमुक व्यक्ति के दोषों का दण्ड आप अपने को दें। दूसरों के बुरे विचार और कार्यों से अपने को प्रभावित मत होने दीजिए। सहनशीलता और समझौते की नीति से काम लीजिए। बदला या कर्ज चाहने की इच्छा छोड़कर विशुद्ध प्रेम का, आत्म-भाव का प्रसार कीजिये, इससे आप अपने लिये एक स्वर्ग की रचना बड़ी आसानी से कर सकेंगे।

आध्यात्मिक साधना में अहंभाव का विस्तार करना यह तत्व प्रधान रूप से विद्यमान है। आत्मोन्नति यही तो है कि अपनेपन के दायरे को छोटे से बड़ा बनाया जाय। जिनका अपनापन केवल अपने शरीर तक ही है, वे कीट-पतंग की नीची श्रेणी के हैं, जो अपनी सन्तान तक आत्मभाव को बढ़ाते हैं, वे पशु-पक्षी से कुछ ऊँचे हैं, जिनका अपनापन कुटुम्ब तक सीमित है। वे असुर हैं, जिनका अहंकार अपना संस्था राष्ट्र तक है वे मनुष्य हैं, जो समस्त मानव जाति को अपनेपन से ओत-प्रोत देखते हैं वे जिनकी आत्मीयता चर-अचर तक विस्तृत है, ये जीवनमुक्त परम सिद्ध हैं। जीव अणु है, छोटा है, सीमित है। ईश्वर महान् है, विभु है, व्यापाक है। जब जीव ईश्वर से तद्रूप होने के लिये आगे बढ़ता है तो यह भी महानता, विभुता, व्यापकता के गुणों से समन्वित होने लगता है। जिन पर भूत चढ़ता है उनके वचन और आचरण भूत जैसे हो जाते हैं, ईश्वरीय कृपा की किरण जिन महात्माओं पर पड़ती है, उनकी स्पष्ट पहचान आत्मभाव का विस्तार है। जिसका स्वार्थ जितने कम लोगों तक सीमित है, वह ईश्वर से उतना ही दूर है। जो आत्मभाव का जितना विस्तार करता है, अधिक लोगों को अपना समझता है, दूसरों की सेवा सहायता करना आवश्यक कर्त्तव्य समझता है और उनके सुख-दुःख मानता है वह ईश्वर के उतना ही निकट है। आत्म-विस्तार और ईश्वर-आराधन एक ही क्रिया के दो नाम हैं।

संसार में ममता को हटा देने या संसार भर में ममता का विस्तार कर देने का एक ही अर्थ है। दोनों का तात्पर्य यह है कि थोड़े ही दायरे में ममता को केन्द्रीभूत न रहने दिया जाय वरन् उसका उपयोग विस्तृत क्षेत्र में किया जाय। केवल अपने शरीर तक या स्त्री, सन्तान तक ममता का सीमित रहना पापमूलक है, क्योंकि अन्य लोगों को विराना समझने से उनका शोषण करने की प्रवृत्ति बलवती होती है। जिससे अपना सम्बन्ध नहीं, उसकी हानि-लाभ में भी कोई दिलचस्पी नहीं रहती, ऐसी दशा में अपनों के लाभ के लिये विरानों को हानि पहुँचाने का अवसर आवे तो उसे करने में कुछ झिझक या संकोच अनुभव नहीं होता। चोर यदि यह अनुभव करे कि जिसका माल चुरा रहा हूँ, उसे जितना दुःख चोरी से होता है, उतना ही दुःख मुझे होगा तो वह चोरी कैसे कर सकेगा ? हत्यारा यदि अनुभव करे कि वध करते समय जीव को जितना कष्ट होता है, उतना ही मुझे भी होगा तो उसकी छुरी कैसे किसी का गला कतरने में समर्थ होगी ? आत्मीयता का अभाव ही सताने और शोषण करने की छूट देता है। अपनों के लिये तो त्याग और सेवा करने की इच्छा ही होगी। अपनी बीमारी को दूर करने के लिये मनमाना पैसा खर्च किया जा सकता है, यदि भाई को अपना मानते हैं तो उसकी बीमारी में भी सहायता किये बिना न रहा जायेगा। इस प्रकार पाप और पुण्य की प्रवृत्तियाँ भी इसी अर्हता को सकोड़ने और विस्तार करने पर निर्भर हैं। आप सदैव यही उद्योग करते रहिये कि अपना 'अहम्' सीमित न रहे वरन् जितना हो सके, विस्तृत किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मभाव के विस्तार की सूक्ष्म मनोवृत्ति का व्यवहार उदारता में प्रदर्शित किया जा सकता है। जिनके विचार और कार्य उदारतापूर्ण है, जो दूसरे लोगों की सुविधा का अधिक ध्यान रखते हैं, वास्तव में वे इस भूलोक के देवता हैं। अभागा कंजूस सोचता है कि सारी दौलत अपने लिये जोड़-जोड़कर रख लूँ, अपनी विद्या किसी पर न प्रकट करूँ, अपनी शक्तियों को किसी को मुफ्त न दूँ, ऐसे लोग सर्प बनकर सम्पदाओं की चौकीदारी करते हुए मर जाते हैं, उन्हें वह आनन्द जीवन भर उपलब्ध नहीं होता, जो उदारता के द्वारा मिलता है। एक उदार-हृदय व्यक्ति पड़ौसी के बच्चों को खिलाकर बिना खर्च के उतना ही आनन्द प्राप्त कर लेता है, जितना कि बहुत खर्च और कष्ट के साथ अपने बालक को खिलाने में प्राप्त किया जाता। अपने हँसते हुए बालकों को देखकर आपकी छाती गुदगुदाने लगती है, पड़ौसी के उससे भी सुन्दर फूल से हँसते हुए बालक को देखकर आपके दिल की कली क्यों नहीं खिलती ? अपनी फुलवारी को देखकर खुश होते हैं, पर पास में ही जो सुरभित उद्यान लहलहा रहे हैं, वे आप में तरंगें पैदा क्यों नहीं करते ? आपके आस-पास अनेक सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण मधुर स्वभाव वाले, धर्मात्मा, परोपकारी, विद्वान निवास कर रहे हैं। उनका होना आपको क्यों शान्तिदायी नहीं होता ? कारण यह है कि आप खुद अपने हाथों अपनी आत्मभावना को सीमित रखना चाहते हैं अपनों को ओछी मार्यादाएँ बनाते हैं और उसी में सुखी होना चाहते हैं। यह काम शैतान के हैं। शैतान के कार्य आनान्ददायक नहीं हो सकते।

आनन्द को किन्हीं अमुक व्यक्तियों तक ही सीमित मत रखिये, शैतानी करतूतें छोड़िये और ईश्वर के उपासक बनिये। ईश्वर की पुण्य-रचना में एक से एक उत्तम अनूठे रत्न भरे पड़े हैं, उनको मालिकों की दृष्टि से नहीं, समता, सेवा और स्नेह की दृष्टि से अपना ही समझिये। ईश्वर आपका है, उसकी सुरम्य वाटिका भी विरानी नहीं है, उसे भी अपनी समझिये। दूसरों के प्रति उदार दृष्टिकोण रखिये। परायेपन को अपनेपन में बदल दीजिये। खत्ती में मुट्ठीभर जौ डालकर आप भी साझी हो जाइये। चारों ओर आनन्ददायक घटना और परिस्थितियों की बाढ़ आ रही है, शीतल जल के फब्बारे छूट रहे हैं, फिर आप क्यों प्यासे खड़े हैं। दूसरों की उन्नति अपनी उन्नति समझिये और बिना खर्च का आनन्द मननानी मात्रा में लूटिये।

आत्मभाव का प्रसार करिये, इससे आस-पास की रूखी, उपेक्षणीय एवं छोटी वस्तुओं का रूप बिल्कुल बदल जायेगा। विज्ञ लोग कहते हैं कि अमृत बूँद से मुर्दे जी उठते हैं। हम कहते हैं कि प्रेम की दृष्टि से अपने चारों ओर निहारिये, मुर्दे-सी अस्पृश्य वस्तुयें सजीव और सर्वांग सुन्दर बनकर आपके सामने आनन्द-नृत्य करने लगेंगी। ऐसा कहा गया है कि पारस को छूकर काला-कलूटा लोहा बहुमूल्य सोना हो जाता है। हम कहते हैं कि सच्चे प्रेम का अरुचिकर और उपेक्षणीय वस्तुओं से स्पर्श कराइये वे कुन्दन के समान जगमगाने लगेंगी।

युग निर्माण अभिमान को अग्रणी बनाने के लिए तथा व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवनक्रम में अधिक सफलता एवं सन्तोष की प्राप्ति की दृष्टि से इस प्रक्रिया को विकसित किया जा रहा है। परिजनों को अपने कार्य में आने वाली रुकावटों तथा कार्य की गति धीमी रह जाने के कारणों पर इस दृष्टि से विचार करना चाहिये। समाज में व्याप्त असन्तोष के निवारण के लिये इस महान् परिवार के परिजनों को इसी क्रम में अपने आपको ढालकर समस्या के हल व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने आवश्यक हैं। अपनत्व की भावना के विस्तार को कोई सीमा नहीं। इस साधना में हम जितने आगे बढ़ते चलेंगे, उतनी ही हमारी लौकिक सफलता एवं आन्तरिक सन्तोष की मात्रा बढ़ती चली जायेगी स्वार्थ एवं संकीर्णता में घुट रहे समाज को अपनी आत्मीयता एवं स्नेहानुभूति के स्पर्श में शीतलता प्रदान करने की स्थिति हमें प्राप्त करनी चाहिये। इसी से कर्त्तव्य पालन एवं आत्म गौरव की रक्षा हो सकेगी।

अपनी इच्छा ही नहीं, दूसरों का हित भी देखें

मनुष्य और पशुओं में यह अन्तर है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं और आकाक्षांओं को उठता, उमगता अनुभव करता है तथा पशु नहीं। यों मनुष्य और पशु में बुद्धि का अन्तर भी है। पर वह गौण है। कई प्राणी मनुष्य से भी अधिक बुद्धिमान होते हैं और अपना हित और अहित मनुष्य से भी ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। मनुष्य की बुद्धिमत्ता श्रेष्ठ और सर्वोपरि लगती है तो इसलिए कि इसके अन्त में इच्छा आकांक्षाओं के ज्वार निरन्तर उठते रहते हैं और उनकी प्रेरणाओं से ही वह नयी उपलब्धियाँ प्राप्त करता है। नयी शोधें करता है। जबकि पशुओं में सीमित इच्छायें होती हैं—या कि वे अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही बुद्धि का प्रयोग करते हैं।

कहने का आशय यह कि आकांक्षायें ही मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को गति देती हैं, उन्हें सक्रिय करती हैं। मनुष्य अपने आस-पास कुछ ऐसी, स्थितियाँ ऐसी क्षमतायें और ऐसे साधन देखता है, जो उसके पास नहीं है, बुद्धि उन्हें पास कर देती है और उसी का सूक्ष्म रूप अन्तःकरण उन्हें पाने के लिए मचल उठता है तथा जिसे हम बुद्धि के नाम से जानते हैं, वह चेतना उसे प्राप्त करने के उपाय सोचती है। उन्हें प्रयोग में लाने की चिन्ता और व्यवस्था करती है।

अतः बुद्धि कहें या इच्छायें–यही वह तत्व या चेतना है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करती है। अन्य प्राणी न स्वास्थ्य की कामना करते हैं—न धन चाहते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न ही उन्हें इस बात की चिन्ता है कि उनका प्रभाव क्षेत्र कितना व्यापक है तथा न ही वे यश की कामना करते हैं। यह मनुष्य ही है जिसके मन में कामना आकांक्षायें उठा करती हैं और वह उन आकाक्षांओं की पूर्ति में व्यस्त हो जाता है। सामान्य मनुष्य स्वास्थ्य, धन, यश और प्रभाव की कामना करता है। उसके मन में इन्हीं के कल्पना चित्र बनते-बिगड़ते रहते हैं। जैसे ही कल्पना चित्र स्थिर हुआ कि वह इनकी पूर्ति में लग जाता है। उसकी मानसिक शक्तियाँ उस चित्र को साकार करने में जुट जाती हैं। उसके शारीरिक क्रिया-कलाप अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए सक्रिय होने लगते हैं।

इच्छाओं और आकांक्षाओं को इस कारण मनुष्य की प्रगति का मूल कहा जाता है क्योंकि दिखाई देने वाली प्रवृत्तियाँ तो बाद में उभरती हैं, वे प्रवृत्तियाँ आकाक्षांओं के रूप में ही जन्म लेती हैं। यों हमारे मन में कितनी ही इच्छायें उठती रहती हैं पर पूरी शायद उनकी एक प्रतिशत भी नहीं हो पाती। बाजार जा रहे हैं और दुकानों पर कई सुन्दर-सुन्दर चीजें दिखाई देती है। मन चुपचाप उन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता चलता है। उन्हें अच्छा या बुरा बताता जाता है। इसका यही अर्थ है कि मन उन्हें प्राप्त करने और छोड़ देने के निर्णय करता जा रहा है। ये प्रतिक्रियायें इस बात का संकेत हैं कि मन उन चीजों की प्राप्ति की कल्पना करता चल रहा है, और उस कल्पना से आनन्दित होता जा रहा है क्योंकि मन का स्वभाव है कि जिस चीज को वह पसन्द करता है उसे प्राप्त भी करना चाहता है।

लेकिन कई इच्छायें तो उठकर ही बैठ जाती हैं। कुछ होती हैं जिन्हें साकार करने का विचार भर आता है और कुछ ऐसी होती हैं, जिन्हें प्राप्त करने की व्यक्ति चेष्टा भी करता है। इन सब के बाद कुछ एक ही ऐसी होती हैं जो पूरी हो पाती हैं। पर यह सत्य है कि मनुष्य इच्छाओं का पुतला है और उसकी इच्छायें किस स्तर की हैं ? यह उसकी कार्यपद्धति, विचारों और क्रियाकलापों से पता चल जाता है। यह बात कई लोग कहते हैं कि मनुष्य कैसा है—यह उसके चेहरे पर लिखा होता है और उसके चेहरे को देखकर पता लगाया जा सकता है कि वह क्या चाहता है यह ठीक भी हो सकता है। शांत झील में जिस प्रकार एक पत्थर फेंकने से लहरें उठने लगती हैं और किनारे पर आकर ही दम लेती हैं। ठीक इसी प्रकार हमारी इच्छायें क्या हैं या क्या हो सकती हैं यह चेहरे पर आने वाले हाव-भावों से मालूम पड़ जाता है। कुछ ऐसी मोटी कसौटियाँ हैं भी जिनके आधार पर मनुष्य का निर्णय किया जा सकता है। जैसे व्यभिचारी और कामुक व्यक्ति की आँखों से निर्लज्जता टपकती रहती है। चोर, डाकू, और बदमाशों के चेहरे पर एक नृशंस डरावनापन छाया रहता है। बधिक की दुर्गन्ध से ही बकरी मिमियाने लगती है। इसी प्रकार सदाचारी, सौम्य और सज्जन स्वभाव के व्यक्तियों की मुखाकृति बता देती है कि यह व्यक्ति सात्विक स्वभाव का है। विचार युक्त और गम्भीर मुँह कह देता है कि यह व्यक्ति विद्वान और विचारशील है। प्रेम व आत्मीयता के भाव से जीव-जन्तुओं की ओर देखें तो वे हमारी ओर खिंचे चले आते हैं। उसी क्षण यदि हम अपने चेहरे का भाव बदलते और उन्हें क्रूर दृष्टि से देखने लगें तो पास खड़े जानकर दूर खिसक जायेंगे।

यह सब सिद्ध करता है कि मनुष्य इच्छाओं का पुतला है और आकांक्षायें उसका जीवन हैं। इच्छाओं और आकांक्षाओं के चक्कों पर ही मनुष्य जीवन की गाड़ी दौड़ती है अन्यथा उसकी सामान्य आवश्यकतायें तो इतनी थोड़ी-सी हैं जिन्हें आधारभूत कहा जा सके कि वे थोड़े-से समय और थोड़े श्रम द्वारा ही पूरी हो सकती है। आवश्यकताओं के आधार पर ही यदि मनुष्य का मूल्यांकन और महत्व विश्लेषित किया जाय तो लगेगा कि पेट भर खाना मिल जाय तन ढकने का कपड़ा मिल जाय और हवादार आरामदेह मकान हो—तो इसके बाद उसकी कोई जरूरत नहीं है। इससे आगे शिक्षा और मनोरंजन भी जोड़े जा सकते हैं, पर वे भी बौद्धिक विकास के आधार पर हैं। बौद्धिक आवश्यकता न हो तो इनकी कोई जरूरत नहीं है। शिक्षा जहाँ मनुष्य के बौद्धिक विकास और मानसिक शिक्षण से सम्बन्ध रखती है, वहीं मनोरंजन इस विशिष्ट चेतनाओं को विश्राम देने तथा सुख प्राप्त कराने के लिए होता है। पशु भी अपने बच्चों के साथ अठखेलियाँ करते हैं और किलकारियाँ भरते हैं। पर उन क्रियाओं को मनोरंजन नहीं कहा जा सकता क्योंकि पशुओं में बुद्धि और उसकी स्फुरणा इच्छा जैसी कोई हलचल नहीं दिखाई देती। अगर कुछ होती भी है तो नहीं के बराबर।

इसलिए मनुष्य के समग्र विकास और उसकी सभ्यता के उच्चस्तर का दारोमदार बुद्धि आकांक्षा पर जाता है। सामान्य इच्छाओं से ऊँचा उठकर और समाज को दृष्टि गत रखकर अपनी क्रियाओं को नियोजित करने वाले व्यक्ति मनुष्यता के विकास में योगदान दे पाते हैं। इस श्रेणी के व्यक्ति महामानव स्तर के होते हैं और इसका सबसे निचला छोर है उन लोगों की मनोभूमि जो अपने ही सुख को केन्द्र मानकर चलते हैं। एक को श्रेय सम्मान मिलता है तो दूसरे की आत्यन्तिक लिप्तता उसे अपमान तथा निन्दा का पात्र बनाती है क्योंकि दूसरों का सहयोग, अनुदान और उपकारों से हम आगे बढ़ते हैं तो देवत्व की इस मर्यादा के अनुरूप हमें भी तो चलना होगा।

देवत्व की यह विशेषता है जिसके कारण मनुष्य जीवन और समाज आगे बढ़ता है, गतिवान होता है। उस स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती जबकि कोई वैज्ञानिक दुनिया के रागरंगों को छोड़कर मशीनों का आविष्कार नहीं करता और मनुष्य के श्रम को कठोरता को कम नहीं करता तो क्या होता ? कोई चिकित्सा विज्ञान का साधक होता है और अपनी सारी जिन्दगी बीमारियों से लड़ने तथा उनका इलाज खोजने में बिता देता है। कोई एक साहित्यकार होता है जो मनुष्य के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्तन को आगे बढ़ाता है और पुस्तकों के रूप में अपनी विरासत अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाता है। सम्भव है कि इन कार्यों के मूल में व्यक्ति की अपनी महत्वाकांक्षा भी जुड़ी हो, पर वह महत्वाकांक्षा इतने ऊँचे स्तर की होती है कि उसमें मनुष्य जाति के कल्याण का उद्देश्य भी जुड़ा होता है और उन आकांक्षाओं को पूरा करने में जो कठोर श्रम करना पड़ता है तथा जिन कठिनाइयों से सामना होता है वे स्थितियाँ व्यक्ति की साधना को तपसाधना बना देती है।

उत्कृष्ट और मध्यम स्तर की इच्छाओं के साथ ऐसी इच्छायें रखने वाले व्यक्ति भी मिलते हैं, जिन्हें न समाज की चिन्ता रहती है और न ही इस बात से कोई सरोकार कि हमारे प्रयत्नों में से थोड़े बहुत देवत्व की सीमा में भी आते हैं या नहीं। अपना सुख ही उनके लिए सर्वोपरि लक्ष्य होता है और उसकी प्राप्ति के लिए हर तरह के प्रयास औचित्य में आते हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता भी नहीं रहती कि हमारे प्रयत्नों से किसी का भला हो रहा है अथवा बुरा ? जैसे कोई व्यक्ति धन को ही सर्वोपरि मानता है और उसे प्राप्त करने के लिए हर उचित-अनुचित प्रयास करता है। अगर व्यापारी हो तो मुनाफाखोरी से लेकर मिलावट और अपने उत्पादन का गुणानुवाद कर अपने माल को खपाने की कोशिश करेगा। नौकरपेशा हुआ तो किसी काम के लिए आने वाले व्यक्ति से अनाप-शनाप रिश्वत ऐंठने का प्रयत्न करेगा। मजदूर हुआ तो कम काम कर अधिक पैसा प्राप्त करना चाहेगा। यह सब इच्छायें निकृष्ट स्तर की—पशुता से भी गिरी हुई कही जायगी।

यद्यपि उचित तो यह है कि व्यक्ति जितना समाज से ग्रहण करता है। उसके बराबर समाज को दे भी। माना कि पैसे से हर चीज खरीदी जा सकती है। पास में पैसा हो और इच्छित चीज न मिले तो पैसे की क्या उपयोगिता ? पैसे की व्यवस्था और उससे क्रय-विक्रय की परम्परा तो इसलिए बनी है कि उसके माध्यम से समाज के सभी सदस्यों की आवश्यकतायें पूरी होती रहें। अन्यथा पैसा देकर खरीदने से उस वस्तु का पूरा मूल्य नहीं चुकाया जा सकता और हम अपने समग्र जीवन में जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं—ज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा आदि व्यवस्थाओं का लाभ उठाते हैं और इन व्यवस्थाओं के निर्माण में जिन एकान्त साधकों का हाथ है, उनके नैतिक रूप से ऋणी हो जाते हैं। उस ऋण से उऋण होने का तकाजा है कि हम अपने प्रयत्नों द्वारा आंशिक रूप से ही सही उन परम्पराओं को कायम रखें जो कि उनके आविष्कर्त्ताओं ने आरम्भ की है। अब यह हो नहीं सकता कि रबीन्द्रनाथ टेगौर द्वारा रची गयी कृतियों से अथवा पुरातन काल से चली आ रही ज्ञान-विज्ञान की धाराओं के प्रणेताओं को अपनी कृतांजलि अर्पित करें। जिन मनीषियों और साधकों का इन उपलब्धियों के मूल में सारे जीवन का पुरुषार्थ और सम्पूर्ण जीवन की साधना कारण रूप से उपस्थित है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का यही व्यावहारिक उपाय रह जाता है कि उसी अनुपात में थोड़ा समाज के लिए भी करते रहें।

और जो इस नैतिक दायित्व से पलायन करते हैं उन्हें मानवीय गुणों से सम्पन्न तो नहीं कहा जा सकता। इतना भी न बन पड़े तो कम से कम यह नहीं होना चाहिए कि हम अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों को हानि पहुँचाकर अनैतिक अनुचित उपाय अपनाकर अपना लाभ कमाने की बात सोचें। इस रीति-नीति को अपनाकर कोई व्यक्ति थोड़े समय के लिए सुखी बनकर अपने अहं को भले ही तुष्ट करें पर परिणामतः वह बुरा ही है। समाज के पक्ष में तो यह स्थिति बुरी कही जायेगी जिससे कि सामाजिक सुव्यवस्था में कोई सहयोग मिलने के स्थान पर उल्टा विघ्न पड़ता है। स्वयं व्यक्ति के लिए भी कोई स्थायी लाभ का आधार नहीं बनाती।

हम इच्छायें तो करें। स्वास्थ्य, समृद्धि, सुख और यशकीर्ति की कामना भी करें। पर उपलब्ध के साथ जुड़े हुए सामाजिक अनुदान के प्रति भी कृतज्ञता अनुभव करें। न केवल कृतज्ञता अनुभव करें, वरन उसका प्रतिदान करने के लिए भी तत्पर रहें। आत्मतुष्टि को महत्व दें परन्तु यह भूलकर नहीं कि उससे कहीं किसी का अहित तो नहीं हो रहा है। दूसरों के हित की कामना और परमार्थपूर्ण प्रयास स्पृहणीय है, किये जाने चाहिए, पर उनके करने में असमर्थता अनुभव हो रही हो तो सामाजिकता को ही नहीं भुला देना चाहिए। स्मरण रखा जाय कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उस पर अपने परिवार, पड़ोस, गाँव-गाँव एवं राष्ट्र की अनेकानेक जिम्मेदारियाँ हैं और अपनी सुख-सुविधाओं के लिए न उन्हें अनदेखा किया जाय तथा न ही उपेक्षा। वरन् कर्त्तव्य भावना से स्वयं की सुख समुन्नति के साथ दूसरों के हितों का भी ध्यान रखा जाय।

सामूहिकता की भावना विकसित कीजिये

मूर्धन्य मनीषी लाला हरदयाल का कथन है कि आप सामाजिक प्राणी हैं, इसीलिये समाज के प्रति आपके कुछ कर्त्तव्य हैं और कुछ अधिकार भी यदि ऐसा है तो समाज को सहायता करने में आप अपना हिस्सा बढ़कर लें। कहा गया है कि एक-दूसरे को प्रेम करो, किन्तु इससे भी ऊँचा काम है 'एक-दूसरे की मदद करो।' जब दूसरों को आपके समय की अथवा धन की आवश्यकता हो तो जो कुछ भी आपका हो, वह दूसरों को समय पर देने में आप पीछे न रहें और सदैव यही भाव बनाये रहें कि आपके मित्रों तथा सुहृदों को जब भी आपकी आवश्यकता हो तभी आप सहयोग का हाथ बढ़ाकर उसके लिये उपयोगी सिद्ध हों। यदि आपको मालूम हो जाय कि अमुक व्यक्ति को आपकी आवश्यकता है तो बिना उसके कुछ कहे ही आप उसके पास जा पहुँचें और यथाशक्ति उसकी सहायता करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहला काम आपका है वैयक्तिक सेवा-भाव लेकर आगे बढ़ना। आप सुशिक्षित हैं तो अनपढ़ को पढ़ाइए क्योंकि आपने हिन्दी शिक्षण-संस्थाओं में शिक्षा पाई है, जिन्हें दूसरों ने सम्पन्न बनाया है। आपका कर्त्तव्य है कि आप विज्ञान, इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र आदि विभिन्न विषय जनसाधारण को सरल सीधी भाषा में समझावें। उन्हीं के श्रम का फल है कि आप शिक्षित हुए हैं। विद्या-दान से विद्या फलती-फूलती है। दूसरों को बताने से आपके ये विषय सदैव ताजा रहेंगे। अज्ञान ही इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप है। अज्ञानी जातियाँ निकम्मी और मूढ़ होती जा रही हैं। अन्धविश्वास और धर्मान्धता उन्हें खाये जा रही है। जिस लोकतंत्र में शिक्षण की उचित व्यवस्था नहीं है, वहाँ की शासन-व्यवस्था का अर्थ है मूर्खों पर दुष्टों का राज्य। भयंकर युद्धवादी नीतियों का प्रमुख कारण निरक्षरता ही है। इसलिये आप गाँव-गाँव, शहर-शहर घूमें और जनता को साक्षर बनाने के लिये व्याख्यान दें, लेख लिखें, कहानियाँ सुनायें, सूचना भरें, परचे बँटवाएँ तथा शिक्षण-संगठनों की स्थापना करें। इस कर्त्तव्य से बचना एक शिक्षित के लिये अनुचित और अव्यावहारणीय है।

सच्चा सामाजिक बनने के लिये आपको दूसरी आवश्यकता सहनशक्ति, धैर्य तथा संतोष की है। आप में भी कमियाँ हैं, आप में भी अभाव और दुर्गुण हैं इसलिये दूसरों को इस बात का मौका न दीजिये कि जब आप उन्हें सही रास्ता दिखा रहे हों, तभी वे आपको पहले स्वयं सम्हलने का ताना देकर आपके काम में बाधा डालें। आपको धैर्य और नरमी से काम लेना है। आदमी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। उसमें कुछ संस्कार जमे होते हैं कुछ वंशानुगत, जन्मभूमिगत भावनाएँ होती हैं, कही-सुनी और लिखी-पढ़ी बातों का प्रभाव पड़ा होता है। माना कि उन्हें अपनी अच्छाइयों व बुराइयों का भार स्वयं सहन करना है, किन्तु आप यदि किसी को गलत राह पकड़ते देख लें तो आगे बढ़कर उसे सचेत कर देना आपका काम हैं। आप उसे समझाएँ कि उसे उस प्रकार का बना देने की जिम्मेदारी किस पर है ? उसके पिता-माता चाचा-चाची स्त्री-पुत्र किसके कारण आज यह ऐसा बना ? यदि समझाने के बजाय आप रुष्ट होकर बैठ रहे और आप का पारा चढ़ा रहा तो उससे आपकी ही क्षति है। इसमें दिल और दिमाग दोनों थक जाएँगे यदि आपने उत्तेजनापूर्ण शब्दों से काम लिया तो किया हुआ बुरा काम फिर दुहराया जा सकता है, उससे भी भयंकर कृत्य किया जा सकता है। उत्तेजित व्यक्ति समझता है कि वह अपराधी को अपशब्दों और ताड़ना द्वारा सुधार रहा है, किन्तु वह नहीं जानता कि ऐसा करके वह स्वयं अपने प्रति अन्याय कर रहा है। अपराधी स्वयं आपकी बात मानने में आपके मत को स्वीकार करने में हिचकिचाएगा, यहाँ तक कि आपको अपने रास्ते का रोड़ा समझकर डराएगा धमकाएगा, लड़ने-झगड़ने पर आमादा हो जाएगा और ऐसे समय यदि आप भी उसी की तरह उन्मत्त हो गये तो आप में उसमें अन्तर ही क्या रहा ? इस अनर्थकारी प्रकृति के कारण दलों में फूट पड़ जाती है, प्रान्त-प्रान्त और राष्ट्र-राष्ट्र एक-दूसरे को धिक्कारता और पछाड़ने की कोशिश करता है।

तीसरी बात यह है कि आप ईर्ष्या एवं अपनी अहमन्यता त्यागकर दूसरों की योग्यता का भी मूल्यांकन करें। केवल उसी से काम न चलेगा कि आपने अपने प्रतिद्वन्द्वियों से ईर्ष्या या द्वेष करना छोड़ दिया है और अब भविष्य में इस रोग से बचे रहेंगे। दूसरों की सफलता पर उन्हें साधुवाद दीजिए। उनकी अच्छाइयों की प्रशंसा करके उन्हें और उत्साहित कीजिए। समाज-सुधार की राह में ईर्ष्या एक बड़ी दीवार है। प्रसिद्ध कवि मोलियर ने कहा है, "ईर्ष्यालु व्यक्ति मर जाते हैं, किन्तु ईर्ष्या नहीं मरती।" उदाहरणार्थ, यदि आप किसी अपने से बुद्धिमान व्यक्ति से मिलें तो समझ लें कि उसकी बुद्धि समाज की बुद्धि है और केवल उसी की बुद्धि नहीं है। मानवता के बुनियादी ऐक्य के नाते यह आपकी भी है। प्रकृति द्वारा सभी को यथायोग्य गुण-अवगुण मिलते हैं। कुछ गुण आप में हैं, कुछ दूसरों में। इससे स्पष्ट है कि कोई किसी से छोटा नहीं, हीन नहीं। वास्तव में ईर्ष्या में ऐसा निकृष्ट अभिशाप है जो बदले में हानि के सिवा और कुछ नहीं देता।

समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करनी है तो सत्य-भाषण की चौथी योग्यता अपने में होनी आवश्यक है। आपके वचन बड़े चमत्कारी हैं। वे विलग को जोड़ सकते हैं और जोड़े हुए को विलग कर सकते हैं। सुसंयत वचन होंगे तो सौहार्द्र और सहयोग के अवसर ला उपस्थित करेंगे। कटु वचन होंगे तो वैषम्य पैदा कर देंगे। असत्य भाषण द्वारा आप सामाजिक जीवन को समुधुर नहीं बना सकते। कोई आपका विश्वास नहीं करेगा और आपको जब किसी की सहायता प्राप्त नहीं होगी तो पास-पड़ोस का वातावरण सहन करना दूभर हो जायगा। देखा जाय तो पतनोन्मुख व्यक्ति ही अनर्थकारी दुर्वचन बोलता है। दुर्वचन किसी दुष्काम की ही भूमिका या पटाक्षेप प्रस्तुत करते हैं। निष्पक्ष और स्पष्टवादी होना जीवन का एक विशेष गुण है। किसी को कटु सत्य से क्षणिक पीड़ा पहुँचाना श्लाघनीय है, किन्तु मीठे बोल बोलकर बाद में जड़ काटना पहले दर्जे की कृतघ्नता है। छींटे-कशी का परिणाम कितना भयंकर होता है, आप जानते होंगे। आपका कर्त्तव्य तो यह है कि किसी से छोटा-मोटा अपराध हो जाय तो उसे झिड़क-झिड़क कर कुरेदना नहीं चाहिए। अपने सहयोगियों अथवा अन्य व्यक्तियों के कार्यों की अनर्गल टीका-टिप्पणी करना आपके लिए बहुत घातक है। आप चाहे इस बात को यह कहकर टाल देना चाहें कि हम तो यों ही चर्चा कर रहे हैं, किन्तु आपके साथी पर क्या असर हुआ, इसका आपको पता नहीं। यदि आपने किसी की अनावश्यक बुराई सुनी है, तो चुपचाप बैठे न रहिए। ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके आप उस व्यक्ति के प्रति, जिसे आप निर्दोष समझते हैं, घोर अन्याय कर रहे हैं। आप दृढ़ता से बुराई करने वाले का सामना कीजिए। यदि आपको किसी की वास्तविक बुराई का पता लगा है, तो आप उसकी पीठ पीछे विष न फैलाकर सीधे उसी को जा खटखटाइये और उसे सावधान कर दीजिये। ऐसा करने से वह सावधान हो जायगा और फिर वैसा करने की उसकी हिम्मत शायद न होगी। आपको अविनीत और उद्धत व्यवहार के कुपरिणामों से बचना है। बहुधा आप यह सोचते हैं कि आप अपने से अधिक शिक्षित एवं समृद्ध व्यक्तियों से अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करें और यह प्रदर्शित करें कि विद्या-वैभव में हीन होते हुए भी आप उनसे किसी कदर कम नहीं हैं। आज के युग में यह दुर्जयी कीड़ा सभी दिल दिमाग को खोखला करता जा रहा है। अतः व्यवहार में आपको विनीत, मितभाषी और आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करना है। चाहिए तो यह कि जो जिस योग्य है, उसे वैसा ही आदर, सम्मान और स्नेह अर्पण किया जाय। किसी की प्रतिष्ठा में कमी करने के असफल प्रयत्न से आपको अपयश के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलने का। दूसरी ओर यदि आपने अपने से किसी छोटे व्यक्ति का अपमान करके उसे उसके छोटेपन का ज्ञान करा दिया तो वह आपसे दूर रहने का प्रयत्न करेगा और बहुत सम्भव है कि आपकी इस जरा-सी बात को गाँठ बाँध ले और जीवनपर्यन्त आपसे पहले की तरह दिल खोलकर न मिल सके या सर्वथा त्याग ही कर दें।

पाँचवाँ गुण जो आपको एक नागरिक के नाते अपने में पनपाना है, वह है सुशीलता। आप जो हैं उससे ऊपर उठ सकते हैं या नीचे गिर सकते हैं। अपना अधिकार अवश्य माँगिए, किन्तु उससे अधिक नहीं। समाज आपका जो मूल्य-निर्धारण करता है, उससे अधिक पाने की फलाशा को त्याग दें। यदि आपके गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर बखान करने वाले मित्रों की भीड़ आपके साथ है, तो उसके पंजे से बचें अन्यथा वह भटकाकर आपको किसी नुकीली और खुरदरी चट्टान पर ले जाकर पटकेगी और आप फिर न उठ सकेंगे। दम्भोक्तियाँ उसी के मुँह से निकलती हैं, जो भीतर से रीता और ऊपर से लिपा-पुता है। सुशीलता और सादगी ही आपको घमण्डी और बनावटी होने से बचाएगी। आपके समाज में अधिकांश लोग ऐसे हैं, जो दम्भियों और डींगें मारने वालों को कभी पसन्द नहीं करते, उलटे उनसे रुष्ट रहते हैं।

आप स्वयं अपना प्रचार करने की आदत छोड़ दीजिए। फिर आप अनुभव करेंगे कि आपकी विशेषता को जानने की इच्छा रखने वाले स्वतः आपको जान गए। आज के दूषित वातावरण में कोई अपनी योग्यता या अज्ञानता के दम्भपूर्ण स्तर से नीचे उतरकर समझौता नहीं करना चाहता, किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि सहयोग की पहली सीढ़ी समझौता है। संसार में एक ही व्यक्ति होता तो कोई बात नहीं थी।

छठी विशेषता तो आपको अपने में उपजानी है, वह है न्यायप्रियता। सभी जानते हैं कि सबल निर्बल को दबा लेता है कि हमारा आज का समाज ऊँच-नीच की भावना पर अवलम्बित है और हमारी आज की सभ्यता का मूल अन्याय है।

इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि आप पहले न्याय-पथ के राही बनें। ऐसा करने से आपकी आवाज में, आपकी चाल में, व्यवहार में और आप के निकटवर्ती में सच्चे ओज, निर्भीकता और दिव्य आभा का पुट मिल जायगा। आप अपने को अधिक बलवान स्वस्थ और समाज से अक्षय कीर्ति का अधिकारी बना हुआ पाएँगे।

न्यायप्रिय होने पर आपके मन के लोलुप भाव घुल जाएँगे। आप जानते हैं कि समाज में तीन प्रकार की श्रेणियाँ हैं। उच्च एवं जिसमें जमींदार मिल कारखानों के मालिक, शासकगण, पदाधिकारी आदि हैं, मध्यमवर्ग जिसमें कमाने खाने वाले सामान्य लोग हैं तथा निम्न वर्ग जिसमें क्लर्क, मजदूर आदि हैं।

आपकी लोलुप्रवृत्ति उन अग्रगामी आंदोलनों की जड़ पर आघात करेगी, जिनके आप संचालक हैं। आप ही की स्वार्थान्धता के कारण बहुतों के जान-माल की हानि होगी।

अपने पक्ष को न्यायसंगत सिद्ध करने या अपना मतलब सीधा करने या धर्म के परदे की आढ़ लेकर और अन्तर में लोभ की चिन्गारी रखकर न जाने कितनों ने बड़े-बड़े सुधारकों और नेताओं का हनन किया है। इसी अर्थ-पिपासा के कारण प्रत्येक सदी लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का बलिदान लेती है। न्यायप्रियता का गुण आपको 'छीन और हड़प' की दुर्नीति से बचाएगा।

आप यदि दूध को दूध और पानी को पानी कहने लगे हैं, तो आशा है कि आप वही धंधा अपने हाथ में लेंगे जो लोक-कल्याण से सम्बन्ध रखता है अथवा जिससे आपके बिगड़ जाने का अंदेशा नहीं है।

सातवाँ और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण जो आपको अपनाना है, वह जीव-जन्तुओं के प्रति प्रेम-भाव और उनके पालक-पोषक बनने की भावना अपने में पैदा करना है। सभ्यता के आदिकाल से लेकर मनुष्य-जाति पशुओं के प्रति बड़ा अन्याय करती रही है। लाखों-करोड़ों का नित्य-प्रति वध किया जाता रहा है।

आपके दैनिक जीवन के जो संगी-साथी हैं, उनकी देख भाल भी रखिये। आप जिस सभ्यता और संस्कृति के कारण इतने ऊँचे माने जाते हैं, उसके निर्माण में इनका भी हाथ है। आपके पूर्वज इनकी मंगलमयी आकृतियों को संस्कृति के प्रतीक मानकर राष्ट्र की कलात्मक वस्तुओं पर उनका अंकन कर गये हैं। इस थाती को आप सुरक्षित और अक्षुण्ण बनाए रखिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकृष्ट स्वार्थ के विषधर से बचे रहिये

हम जैसा कुछ चाहें वैसा ही हमारे सामने आये—ऐसा सोचना दम्भपूर्ण, मूर्खतापूर्ण तथा स्वार्थपूर्ण भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। परिस्थितियाँ किसी की गुलाम नहीं, संभावनायें किसी की अनुचरी नहीं। संयोग किसी के हाथ बिके नहीं हैं और आकस्मिकतायें किसी के पास बन्धक नहीं हैं। फिर भला हमारा यह सोचना कि हम जिस प्रकार की परिस्थितियाँ चाहें वैसी ही हमारे सामने आवें तो उपहासास्पद मूर्खता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ?

समाज में असंख्यों व्यक्ति रहते हैं, उनकी असंख्य प्रकार की कामनायें हो सकती हैं। मनुष्यों की वे कामनायें एक-दूसरे की विरोधी हों। एक बात जो हमारे अनुकूल हो सकती हैं वह दूसरों के लिए प्रतिकूल भी हो सकती हैं। संसार के सभी व्यक्ति अपनी-अपनी तरह से सुख-सुविधाओं की कामना कर सकते हैं। मानिए एक व्यक्ति को ऐसे स्थान पर मकान बनाने से सुविधा है, जहाँ से किसी दूसरे की बेपरदगी या असुविधा होती है तो क्या उसकी यह कामना उचित मानी जायेगी ? ऐसी अनुचित कामना के लिए कहना किसी प्रकार भी बुद्धिमानी नहीं है। यदि किसी एक मनुष्य की मनचाही कल्पनायें पूरी हो जायें तो वह किसी दूसरे को सुख-सुविधापूर्वक रहने ही न दें। हर काम को अपने अनुकूल करके दूसरों के लिए जीना भी दूभर कर दें।

अपनी कामनाओं के दर्पण में मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप की झाँकी स्पष्ट रूप से देख सकता है। जिस प्रकार की कामनायें किसी मनुष्य की होती हैं, ठीक उसी प्रकार का आचरण होता है। भले ही कोई चतुर व्यक्ति अपनी कामनाओं के विपरीत आचरण दिखाकर अपने चरित्र को तबदीली के साथ समाज के सम्मुख रखे, किन्तु वस्तुतः वह वैसा नहीं होता। यह कृत्रिम आचरण कुछ समय तक तो चल सकता है किन्तु शीघ्र ही ऐसा दिन आ जाता है जब कामनायें मनुष्य का सच्चा रूप प्रकट कर देती हैं। अस्तु मनुष्य को अपनी कामनाओं की विवेचना करके अपने को समझ लेना चाहिये। यदि वास्तव में वह अपने को दोषपूर्ण पाता है तो उसे सबसे पहले अपना सुधार करना चाहिए। सुधरे हुए व्यक्ति की कामनायें नियन्त्रित रहती हैं, जिसके फलस्वरूप उसे कम परेशानी होती है।

स्वार्थ की अधिकता दुःख का बहुत बड़ा कारण है। यह संसार सबके लिए समान रूप से है। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार इसके साधनों का उपयोग करने का सबको अधिकार है। जो स्वार्थी है वह पहले तो हर वस्तु को केवल अपने लिए चाहता है फिर अधिक से अधिक साधन उचित-अनुचित हर उपाय से संचित कर लेता है। इसके बाद भी जब वह अन्य व्यक्तियों को सांसारिक साधनों का उपयोग करते देखता है तो बुरा मानता है, ईर्ष्या करता है। स्वार्थी व्यक्ति को दुनिया की पराई चीज अपनी दीखती है और जब किसी दूसरे को उसका उपयोग करते देखता है तो ऐसा अनुभव करता है मानो वह व्यक्ति उसकी चीज छीन रहा हो उसे लूट रहा हो।

स्वार्थी व्यक्ति सबसे बड़ा असहयोगी होता है। एक बार अवसर आने पर शत्रु तो सहयोग कर सकता है। किन्तु स्वार्थी सहयोग करने से अवश्य मुँह फेर जायेगा। इसका स्पष्ट कारण यह है कि स्वार्थी व्यक्ति अत्यधिक संकीर्ण होता है। शत्रुता एक प्रतिक्रिया है किन्तु स्वार्थ एक संकीर्ण मनोवृत्ति है, एक स्वभाव है, एक संस्कार है। प्रतिक्रिया का वेग शिथिल पड़ सकता है किन्तु संस्कार अपना प्रभाव नहीं त्यागता, स्वभाव बदलता नहीं और वृत्ति बहुत स्थायी होती है।

इसके विपरीत स्वयं असहयोगी होने पर भी स्वार्थी व्यक्ति संसार में हर व्यक्ति से सहयोग की अपेक्षा करता है। प्रत्येक व्यक्ति से अपना काम निकालने की ताक में रहता है। इसके लिए वह अपने स्वाभिमान को बलिदान देकर बेशर्मी तक करता रहता है। उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े हर तरह के व्यक्ति के सम्मुख दांत निकालता, गिड़गिड़ाता, खुशामद करता, हाथ जोड़ता और पाँव पड़ता है। स्वार्थी बार-बार धक्के खाकर भी उस द्वार पर नाक रगड़ता है, जहाँ से उसका कोई स्वार्थ सिद्ध हो सकता है। मतलब के लिए गधे को बाप बनाने वाली लोकोक्ति इस प्रकार के स्वार्थी व्यक्तियों के लिए ही बनी है।

स्वार्थान्ध व्यक्ति का न तो कोई आदर्श होगा और न नैतिक चरित्र ही। आज जिससे उसका स्वार्थ अटका है उसके तलुओं की धूलि सिर पर चढ़ायेगा और काम निकल जाने पर ऐसे आँख फेर लेगा मानो उसे कभी देखा ही न हो। स्वार्थी न केवल स्वयं भ्रष्टाचारी होता है बल्कि भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने वाला पापी भी होता है। अपना काम निकालने के लिए रिश्वत देना, भेट चढ़ाना, दावत देना, सैर कराना स्वार्थी के बाँये हाथ का खेल है। इससे वह समाज में लोभ-लालच का प्रचार करता है, भ्रष्टाचार बढ़ाता है और उस पर लज्जित होने के स्थान पर इसको अपनी व्यवहार नीति समझकर प्रसन्न होता है।

एक स्वाभिमानी नागरिक के लिए अपने सामान्य अधिकार की रक्षा के लिए भ्रष्टाचार का सहारा लेने से बढ़कर कोई कष्ट नहीं होता। अपने नैतिक पतन न करने और राष्ट्र के प्रति विश्वासघात न करने के इच्छुक नागरिक के लिए केवल एक ही विकल्प रह जाता है कि वह अपने काम को बिगाड़े या अधिकार का त्याग करे। यही कारण है कि समाज में आज धूर्त, मक्कार और भ्रष्टाचारी तो सुख-सुविधाओं में देखे जाते हैं और स्वाभिमानी एवं सच्चे नागरिक कष्ट और परेशानियाँ उठा रहे हैं।

स्वार्थपरता न केवल एक नैतिक अपराध है अपितु वह एक आध्यात्मिक पाप भी है। स्वार्थी व्यक्ति का लोभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी सीमा पार कर जाता है, वह पाप-पुण्य अथवा लोक-परलोक की बावत कुछ सोच ही नहीं पाता। निरन्तर स्वार्थ सिद्धि की दिशा में सोचते-सोचते उसकी आत्मा जड़ या मृत जैसी हो जाती है, उसकी ईश्वरीय चेतना पर लोभ का पर्दा पड़ जाता है। स्वार्थी व्यक्ति अपने स्वार्थ साधन में माता-पिता, पुत्र-पुत्री किसी को भी धोखा दे सकता है, मित्रों से विश्वासघात कर सकता है और निर्बलों को सता सकता है। सता सकना ही नहीं वह हत्या भी कर सकता है।

बूढ़े माता-पिता को भार समझना, भाई-बहन को भागीदार शत्रु मानना, पत्नी और पुत्र को सेवक मानना और मित्रों को मूर्ख बनाना उसका स्वभाव बन जाता है। स्वार्थी व्यक्ति की वृत्ति चोर जैसी हो जाती है। वह अपनी सिद्धियों को अपने निकटतम व्यक्तियों से छिपाता है, उन्हें गलत सूचनायें देता है। साधनों को किसी को न मालूम होने देने के लिए छिपाये रहता है। जो कुछ खाता-पीता अथवा खर्च करता है वह मित्र तथा परिजनों आदि से छिपकर करता है। सब कुछ होते हुए भी उसका लाभ किसी को भी उठाने नहीं देता।

निरन्तर स्वार्थ साधन के लिए उचित-अनुचित उपाय करते रहने से दूषित संस्कारों के रूप में उसके मनोदर्पण पर ढेरों मैल इकट्ठा हो जाता है, जिससे वह अन्दर ही अन्दर अशांत और दुःखी रहता है और अन्त में जब उसका समय आता है, तब तड़प-तड़पकर इस संसार से विदा होता है। अन्तिम समय में सबकी तरह उसका भी विवेक जागता है और वह उससे विविध प्रश्न करके उसे अपने किये की याद दिलाता है। विवेक पूछता है क्या तुमने स्वार्थ साधना के लिए अमुक अनुचित कार्य किया ? स्वार्थी की अपराधी आत्मा स्वीकार करती है और पश्चाताप की आग में छटपटाती है। विवेक उसे याद दिलाता है कि क्या तुमने अपने छोटे स्वार्थ के लिए अमुक विश्वासी मित्र के साथ विश्वासघात नहीं किया ? स्वार्थी स्वीकार करता है और ग्लानि की भयंकर आग में जलता है। इसी प्रकार स्वार्थी का विवेक अन्तिम समय में उसको एक-एक करके किये हुये पापों की याद दिलाता है, जिससे वह घोरतम वेदना, पीड़ा और पश्चाताप के बीच प्राण छोड़ता है। ग्लानि और पश्चाताप लेकर परलोक यात्रा करने को भावानुसार नरक मिलता ही है। स्वार्थ का पाप मनुष्य को न तो लोक में शुभ करने देता है और न परलोक में शुभ गति पाने देता है। हर बुद्धिमान व्यक्ति को स्वार्थ के इस भयानक विषधर से अपनी रक्षा करते रहना चाहिए।

स्वार्थपरता एक अनैतिक मूर्खता

प्रगति का अर्थ है आगे बढ़ना। आगे बढ़ने का अर्थ है पीछे को छोड़ना, भूत को छोड़कर हम वर्तमान में आते हैं तदुपरान्त भविष्य बनता है। पिछला पैर उठने के बाद ही तो अगला कदम बढ़ सकना सम्भव होता है। इस विश्व के जड़-चेतन क्षेत्रों में जो कुछ प्रगति हो रही है उसके मूल में यही तथ्य काम कर रहा है कि कुछ छोड़ो और कुछ ग्रहण करो। जो छोड़ने का साहस कर सकता है उसे ही ग्रहण की सामर्थ्य मिलती है, जिससे यह साहस नहीं बन पड़ता उसके लिए प्रगति का स्वप्न एक मनोरथ मात्र ही बनकर रह जाता है।

बादल समुद्र से जल प्राप्त करते हैं, उस जल को प्राप्त कर वे अपने को धनी, सौभाग्यवान, कमाऊ अनुभव कर सकते हैं, पर यह सन्तोष थोड़ी देर कर लेने के उपरान्त उन्हें ध्यान आता है कि सृष्टि का क्रम 'प्राप्त को त्यागने' से ही चल सकता है, इसलिए वे आगे बढ़ते हैं और उस प्राप्त जल को धरती पर बरसा देते हैं, स्वयं खाली हो जाते हैं। वर्षा का जल नदी-नालों में घूमता हुआ समुद्र में जा पहुँचता है और फिर नये बादल बनने का, नई वर्षा होने का क्रम चल पड़ता है।

यदि यह चक्र टूटने लगे, इनमें से कोई स्वार्थी बन बैठे, जो कमाया है उसे अपने या बेटे-पोतों के लिए जमा कर रखने की नीति अपना ले तो सृष्टि का यह वर्षा-सन्तुलन बिगड़ जाये और सर्वत्र हाहाकार का दृश्य दिखाई देने लगे, समुद्र कहे कि मैं अपना जल बादलों को क्यों दूँ ? बादल कहें कि हमने जो कमाया है उसे धरती पर क्यों बरसावें ? धरती पर जो जल वर्षा हो उसे वह दाबकर बैठ जाय, सोख ले तो आगे का प्रवाह कैसे बढ़े ? तालाब, नदी-नाले कैसे भरें ? यदि नदी-नाले उस जल को अपने भण्डार में जमा करने की बात सोचें तो समुद्र रीता हो जाय और समुद्र के रिक्त हो जाने पर बादल बनने, वर्षा होने, नदी-नाले बहने का सुन्दर-सा सृष्टिक्रम समाप्त ही हो जाय। स्वार्थपरता का दृष्टिकोण यदि इस वर्षा-चक्र के किसी घटक के मन में प्रवेश कर जाय तो संसार की कितनी दुर्दशा हो इसकी कल्पना करना भी कठिन है ?

धरती अन्न उपजाती है, वनस्पति उगाती है। यह उपजी हुई वस्तुयें किसी की खाद्य बनकर व सड़-गलकर धरती के लिए खाद बनकर पुनः जा पहुँचती हैं। यदि खाद न मिले तो उसकी उर्वरा शक्ति समाप्त हो जाय और फिर कुछ भी उगना सम्भव न हो। जो धरती से मिलता है उसे वापस लौटाने में अड़चन उत्पन्न की जाय, खाद बनने के साधन रुक जायें तो फिर जो कोई इस उर्वरा चक्र को रोकेगा वह भी जीवित न रहेगा, अन्य सब पर भी आपत्ति आवेगी।

प्राणी साँस में ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन डाइआक्साइड छोड़ते हैं। वृक्ष—वनस्पति इस कार्बन डाईआक्साइड को ग्रहण करते और ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार वृक्षों और प्राणियों के बीच एक सुन्दर आदान-प्रदान चलता रहता है। दोनों में से कोई स्वार्थी बन बैठे और जो मिला है उसे न छोड़ने की ठान ठानें तो दोनों को ही विनाश वरण करना होगा। ऑक्सीजन के अभाव में प्राणी और कार्बन के अभाव में वनस्पतियों का अभाव होने लगेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौरमण्डल के सभी ग्रह एक-दूसरे को अपनी आकर्षण शक्ति से खींचे रहते हैं और अपनी नियत कक्षा पर निरन्तर घूमते रहते हैं। यदि इनमें से किसी में स्वार्थ समाये कि मैं क्यों दूसरे ग्रहों को खींचे रहने के झंझट में पड़ूँ और क्यों आराम की जिन्दगी छोड़कर परिक्रमा करने का सिर दर्द मोल ले लूँ ? तो उसकी यह नीति सारे सौरमण्डल के लिए घातक सिद्ध होगी वह स्वार्थी ग्रह तो सबसे निर्जीव एवं नष्ट-भ्रष्ट होगा।

संसार में विभिन्न क्षमता, प्रतिभा और परिस्थितियों के मनुष्य पुरुषार्थ करके जो उपार्जित करते हैं, उसे दूसरों को दे देते हैं। वस्तुयें एक से दूसरे के पास घूमती हैं, इस प्रकार हर व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की सामग्री उपलब्ध हो जाती है। यदि मानव समाज में से यह प्रवृत्ति नष्ट हो जाये, जिसने जो कमाया है वह उसे अपने पास ही रोक रखे तो मानव समाज का वर्तमान स्वरूप ही नष्ट हो जायेगा और उसे जंगली जानवरों जैसा अभावग्रस्त एवं एकाकी जीवन बिताना पड़ेगा। किसान अपना अन्न तो जमा किये रहेगा पर उसे कपड़ा कहाँ से मिलेगा ? कपड़े वाले जो वस्त्र बनावें वे उन्हें अपने लिए सुरक्षित रखें तो उन्हें अन्न कहाँ से मिलेगा ? फिर तेली को जूता और मोची को तेल मिलने की बात कैसे बनेगी ? कोई भी निर्माण अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों द्वारा उपार्जित श्रम, ज्ञान एवं पदार्थों द्वारा विनिमय होता है। यह चक्र दूसरों के लिए त्यागने की प्रवृत्ति के कारण ही चलता है। मनुष्य ने प्रकृति के इस विधान को समझा और जीवन में उतारा है, अतएव वह प्रगति का सौभाग्य प्राप्त कर सका। दूसरे जीव इस कर्म से अपरिचित रहे, फलस्वरूप वे अधिक सामर्थ्यवान होते हुए भी पिछड़ी स्थिति का अभावग्रस्त जीवन बिता रहे हैं।

हम अपने ही शरीर को देखें। प्रत्येक अंग और अवयव अपना-अपना काम करता है, पर अपने श्रम का लाभ स्वयं ही न उठाकर सम्बन्धित अन्य अवयवों को प्रदान कर देता है। मुँह जो चबाता है वह पेट के लिए भेज देता है, पेट उसे चबाकर रक्त बनाता और हृदय को भेजता है। हृदय उसे नाड़ियों में बाँटता है। रक्त से माँस, माँस से अस्थि, अस्थि से मज्जा आदि का क्रम चलता रहता है और जीवन धारणा की गति निर्बाध रहती है। यदि इनमें कोई अंग स्वार्थी बन बैठे, 'अपनी कमाई आप खाने' की संकीर्णता अपना ले तो जीवन धारण किये रहना कठिन हो जायेगा, तब मुँह जो खायेगा गालों में ही भरा रखेगा। पेट के हाथ कुछ लग गया होगा तो वह वहीं जमा रखेगा तब फिर भूख ही न लगेगी। आँतें मल विसर्जित न करेंगी तो मल सड़ेगा और प्राणघातक विष उत्पन्न करेगा। फेफड़े यदि भरी हुई वायु का त्याग न करें, हृदय रक्त-भण्डार को जमा रखें, हाथ जो कमायें उसे मुँह को न दें तो उस दशा में वह स्वार्थी अंग तो मरेंगे ही, शरीर के अन्य अंग भी अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के लिए विवश हो जावेंगे।

माँ-बाप बच्चों को पालते हैं, बच्चे बड़े होकर अपने बच्चों को पालते और उनके लिए कष्ट उठाते हैं। यदि यह क्रम टूट जाय, हर किसी को अपनी सुविधाओं का ही ध्यान रहे, शिशु पालन का खर्चीला और कष्टसाध्य उत्तरदायित्व ग्रहण करें तो वंश परम्परा का चलना कठिन हो जाये।

वैज्ञानिक सृष्टि की मूल शक्ति 'परमाणु' में देखते हैं। एटम के इलेक्ट्रॉन न्यूट्रॉन आदि भाग एक नियत गति से अविश्रान्त श्रम करते हुए क्रिया संलग्न रहते हैं। यदि वे अपनी गतिशीलता छोड़ दें तो विश्व की गतिशीलता का अन्त होने में देर न लगे।

नियति की प्रत्येक क्रिया परस्पर आदान-प्रदान के आधार पर चलती है। हर पदार्थ कुछ छोड़ता है तब उसे कुछ मिलता है। 'त्याग से प्राप्ति' का नियम इतना सुनिश्चित है कि इसे तोड़ने की बात सोचने का जो कोई भी दुस्साहस करेगा वह अपनी प्रगति और स्थिति के लिए संकट ही उत्पन्न करेगा। नियति की इस सुनिश्चित व्यवस्था को हमें ध्यानपूर्वक देखना और समझाना चाहिए। साथ ही प्रयत्न यह भी करना चाहिए हम अपनी नीति, विचारणा, आस्था एवं क्रिया का निर्माण इसी आधार पर ही करते रहें। संकीर्णता और स्वार्थ के लिए मानवीय जीवन पद्धति में कोई स्थान नहीं हो सकता। स्वार्थ, लालच, संग्रह और परिग्रह यह अनित्य तत्व हैं। जिस किसी के जीवन में इन्हें जितना स्थान मिलेगा उसके लिए उतनी ही अवनति एवं आपत्ति की संभावना बनी रहेगी।

दूसरों के सहयोग से ही हम स्वास्थ्य, शिक्षा, धन, पद, मनोरंजन आदि की सुखद स्थिति प्राप्त करते हैं। किसी के लिए भी यह सम्भव नहीं हो सकता कि वह एकाकी रहकर इन विभूतियों को प्राप्त कर सकें। ऐसी दशा में प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य हो जाता है कि दूसरों ने उसके विकास में जो सहयोग दिया है उसका बदला चुकाने के लिए अपने पास जो कुछ है, उसे दूसरों को समुन्नत बनाने में प्रयुक्त करता रहे। इसके विपरीत जिसकी तृष्णा यह रहती है कि जहाँ से जितना कुछ भी प्राप्त किया जा सके उतना संग्रह कर लें और उसका उपयोग स्वयं ही करें अथवा संकीर्ण दायरे के थोड़े-से लोगों, कुटुम्बियों भर को करने दें तो यह नीति स्वार्थपरता ही कही जायेगी और उससे जो लाभ सोचा गया था उसका मिलना तो दूर उलटे अपना तथा अपने परिवार का अहित ही होगा।

कुटुम्बियों के लिए बहुत साधन-सामग्री जमा करके उससे उन्हें बैठे-बिठाये आराम से दिन काटने की व्यवस्था बनाना बहुत ही गलत है। इस नीति से अपनी तथा अपने परिजनों की हानि होती है। निरन्तर श्रम द्वारा उपार्जन करने से बहती हुई नदी की तरह अर्थ-शुद्धि रहती है। रुकी हुई पोखर का पानी सड़ जाता है। इस प्रकार बिना श्रम के जिस किसी को भी धन मिलता है वह उसका ठीक उपयोग न तो समझ सकता है और न कर सकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

है। अमीरों के लड़के आमतौर से दुर्गुणी होते हैं और तबाही में फँसते देखे गये हैं, कारण एक ही है कि उन्हें उत्तराधिकार में जो साधन-सामग्री मिली उसका वे न तो मूल्य समझ सके और न उसके सदुपयोग की बात वे जान पाये। बिना श्रम के प्राप्त धन का सदुपयोग आमतौर से किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता।

आरामतलबी से और निष्क्रियता से बढ़कर अनैतिक बात और दूसरी कोई नहीं हो सकती। भले ही कानूनन उसे दण्डनीय अपराध न माना गया हो, नियति की परम्परायें उसके पूर्णतया विरुद्ध हैं। ऐसे अपराधियों को प्रकृति का दण्ड भी बराबर मिलता रहता है। जो श्रम से जी चुराते हैं उनकी देह निकम्मी बन जाती है और नाना प्रकार के रोग आ घेरते हैं। मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी पीढ़ियों के लिए धन सम्पत्ति जमा करके न रखें वरन् उनकी प्रतिभा और क्षमता को बढ़ाने में खर्च करें ताकि वे अपने भुजबल से आवश्यक आजीविका उपार्जित करते हुए उनके सदुपयोग का आनन्द ले सकें। जो कुछ हम कमायें उसका एक अंश समाज को समुन्नत बनाने के लिए सुनिश्चित रूप से निकालते रहें। खर्च का स्तर उतना रखें जितना अपने देशवासियों का औसत स्तर है। जिस समाज में हम रहते हैं, उसके औसत स्तर से बहुत अधिक ऊँचा, बहुत अधिक खर्चीला जीवनयापन करना निश्चित रूप से अनैतिक है। इसमें समाज के प्रति उपेक्षा का निष्ठुरतापूर्ण मनोभाव छिपा हुआ है, इसकी प्रतिक्रियायें बहुत ही बुरी होती हैं, चोर-डाकू, लुटेरे, हत्यारे, गुणी, दुराचारी व्यक्तियों की उत्पत्ति अमीरों के प्रति लोभ या द्वेष के कारण ही होती है। उतने आकर्षण ठाट-बाट देखकर कमजोर तबियत के आदमी मचल पड़ते हैं और जल्दी ही वैसी ऐय्याशी के साधन प्राप्त करने के लिए अपराधी कार्य-पद्धति अपना लेते हैं। जिनसे ईर्ष्या, द्वेष या रोष होता है, वे उन्हें हानि पहुँचाने की बात सोचते हैं। इस प्रकार अमीरी का ठाट-बाट बनाने वाला, समाज के सामान्य स्तर से बढ़ी-चढ़ी स्थिति बनाने वाला समाज में अनेक विक्षोभ और दुष्प्रवृत्तियों को जन्म देता रहता है।

स्वार्थ और लालच की संकीर्णताओं में पड़े हुए अमीरी और ऐय्याशी-जीवन व्यतीत करते हुए वस्तुतः हम नियति की परम्पराओं को ही तोड़ते हैं। इससे सारे जीवन की हानि होती है और अपना बहुमूल्य जीवन ओछेपन की बात सोचते और स्वार्थियों की रीति-नीति अपनाते हुए बर्बाद हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि नियति का विधान समझा जाय और स्वार्थ, संग्रह, लालच और विलासिता को अमानवीय, अनैतिक दुर्गुण मानते हुए उनका परित्याग किया जाये। अपनी क्षमता और प्रतिभा का समाज को अधिकाधिक लाभ देना, सौ हाथों से कमाने और हजार हाथों से देने की नीति अपनाना—यह बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण है। धन, समय, श्रम, शिक्षा, प्रतिभा आदि जो कुछ हमें प्राप्त हैं, उसका उपयोग संकीर्ण दायरे में नहीं वरन् मानव समाज को सुविकसित करने के लिए त्याग-भावना की प्रवृत्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही किया जाना चाहिये। इस रीति-नीति को जो अपनाते हैं, वे ही महापुरुष कहलाते हैं और उन्हीं का जीवन सफल कहे जाने लायक बनता है।

हमारा दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं विशाल हो

राजदण्डों में एक दण्ड काल-कोठरी भी है। यह दण्ड बड़ा कष्टदायक माना जाता है। अपराधी को एक छोटी-सी कोठरी में बन्द कर दिया जाता है बस, इसके सिवाय न तो उसे कोई कष्ट दिया जाता है और न यातना। यहाँ तक कि उससे कोई काम भी नहीं लिया जाता है। खाना-पीना आदि सब उसे सामान्य रूप से मिलता रहता है। यदि स्थूल दृष्टि से उसकी तुलना दूसरे कैदियों से की जाये, तो ऐसा लगता है कि एकान्तवास का बन्दी उनकी अपेक्षा अधिक आराम में है। न कोई काम और न कोई कष्ट, किन्तु यदि उससे पूछा जाय कि वह उस काल-कोठरी के दण्ड को कितना अधिक कष्टकारक मानता है तो वह बता देगा और किसी अन्य सजा में बदलने के लिए खुशी-खुशी तैयार हो जायेगा।

ऐसा क्यों? उस एकान्तवास में उसे ऐसा कौन-सा कष्ट मिलता है, जो वह अपने उस दण्ड को किसी भी दूसरे दण्ड से बदलने को तैयार हो सकता है ?

काल-कोठरी का दण्ड और कुछ नहीं केवल संकीर्णता का दण्ड होता है। उसकी जीवन परिधि इतनी संकीर्ण हो जाती है कि उसके प्राण, उसकी आत्मा उसमें घुटने लगती है। उस संकीर्णता में उसे विविध प्रकार की दुष्कल्पनायें सताने लगती हैं। चारों ओर की तंग चहारदीवारी उसे काट खाने को दौड़ती है। कुछ ही दिनों में वह उस संकीर्णता में इतना घबरा उठता है कि अपने तक से डरने लगता है। उसकी आसुरी वृत्तियाँ जागकर प्रबल हो उठती हैं। कभी उसे ईर्ष्या सताती है, कभी क्रोध जलाता है, कभी घृणा उठती है तो कभी ग्लानि अनुभव होने लगती है।

हर्ष, उल्लास और अभिरुचि जैसी आनन्ददायक वृत्तियाँ मर जाती हैं। उसका जीवन भार बनकर रह जाता है। खाना-पीना यहाँ तक कि सोना-जागना तक अच्छा नहीं लगता। अधिकांश एकान्त बन्दी खाना-पीना तक छोड़ देते हैं और यदि बेमन खाते-पीते भी रहते हैं तो भी वह उनके काम नहीं आता। सारा स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। बन्दी शीघ्र ही बीमार हो जाते हैं और बहुत बार तो उस संकीर्णता में घुट-घुट कर मर भी जाते हैं। संकीर्णता का दण्ड सबसे भयानक दण्ड होता है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति व्योमबिहारी पक्षी जैसी ही होती है। उसका वास्तविक सुख स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता और उन्मुक्तता में ही निवास करता है। जिस मनुष्य का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दायरा जितना ही तंग—जीवन परिधि जितनी सीमित और संकीर्ण होगी, वह उतना ही दुःखी और त्रस्त रहेगा। इसके विपरीत जो जितना ही विस्तृत और विशालवृत्ति वाला होगा, जिसकी जीवन-परिधि जितनी ही प्रसारपूर्ण होगी, वह उतना ही सुखी और प्रसन्न रहेगा।

जो मनुष्य अज्ञानवश स्वार्थों से घिरे और शारीरिक भोगों से बँधे रहते हैं, अहंकार से प्रभावित और तृष्णाओं से सम्बन्धित रहते हैं, वे कितने ही धनवान, बलवान और जनवान क्यों न हों, जीवन का सच्चा सुख-संतोष नहीं पा सकते। वे भोग-विलासों, साधन, सम्पन्नताओं के बीच भी काल-कोठरी के बन्दी की तरह घुटते और दुःखी होते रहेंगे। मनुष्य जीवन का वास्तविक सुख उन्मुक्तता एवं विशालता में है, स्वार्थ एवं संकीर्णता में नहीं। यही कारण है कि तत्वदर्शियों ने मनुष्यों को शारीरिक परिधि से निकलकर आत्मिक परिसार में आने का उपदेश किया है और जो बुद्धिमान उनके उपदेशों पर चलकर भोगवाद से विरत होते हैं, उनकी आत्मा का दिन-दिन प्रसार होता जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि उनकी आत्मा शारीरिक संकीर्णता से बढ़कर अनन्त आनन्द रूप परमात्मा में मिलकर भव-बन्धन से सदा-सर्वदा के लिये मुक्त हो जाती है।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य भव-बन्धन से छूटने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। आत्मा का अपनी संकीर्ण परिधि से निकलकर अपने उद्गम परमात्मा में तादात्म्य पाना ही भव-बन्धन से मुक्ति कही गई है।

किन्तु खेद है कि अधिकांश लोग अपने इस जीवन लक्ष्य से अपरिचित रहते हैं और जो परिचित भी हैं, वे अपनी संकीर्ण वृत्तियों के कारण न तो उसको महत्व दे पाते हैं और न उसको पाने के लिये प्रयत्नशील हो पाते हैं। भोग-विलास और वासना, तृष्णा से लिपटे इसी भवसागर में पड़े गोते खाते रहते हैं।

जीवन का वास्तविक लक्ष्य देखने, ठीक से पहचानने और पाने के लिये अपनेपन के संकीर्ण दायरे से निकल कर विस्तारपूर्ण परिसर में आना होगा निम्न स्तर से उठकर उच्चतर स्थिति में जाना होगा। गीध और चील जैसे बड़े-बड़े पक्षी अनन्त आकाश में एक बड़ी ऊँचाई पर उठते और तैरते देखे जाते हैं। उनको देखकर केवल यही नहीं समझ लेना चाहिये कि वे अपने उड्डयन स्वभाव की पूर्ति कर मनोरंजन कर रहे होते हैं। उनकी उस ऊँची उड़ान में एक लक्ष्य भी निहित रहता है और वह होता है अपने भोजन का पता लगाना। उस ऊँचाई पर पहुँचकर वे संसार को दूर-दूर तक गहराई से साफ-साफ देख पाते हैं और अन्य सहस्त्रों वस्तुओं के बीच पड़े अपने भोजन को पहचान लेते हैं। यदि वे घोंसलों, वृक्षों और कोटरों के संकीर्ण दायरे में ही पड़े और जमीन से मिली ऊँचाई तक ही सीमित रहें तो दूर-दूर तक नहीं देख सकते, जिसके फलस्वरूप अपने भोजन के उस लक्ष्य को नहीं पा सकते जिसकी उन्हें अपेक्षा और आवश्यकता होती है।

मनुष्य की स्थिति भी इससे कुछ अधिक भिन्न नहीं होती। वह जब अपने शरीर के दायरे तक ही सीमित रहता और वासना-तृष्णा की नीचाइयों में पड़ा रहता है, तब तक अपना जीवन लक्ष्य ठीक से नहीं पहचान पाता। स्थूल-दृष्टि और मोटी बुद्धि का उपयोग करने से वह अपने आस-पास के संसार का सच्चा स्वरूप नहीं देख समझ पाता। निदान उन्हीं में भटककर अपने उच्च लक्ष्य को भूल जाता है। यदि वह उन पक्षियों की तरह अनन्त में ऊँचे उठकर अपनी दूर और स्थूल दृष्टि से संसार को देखे तो उसके वास्तविक स्वरूप और उसी में निहित अपने लक्ष्य को भी परख-पहचान सकता है। लक्ष्य की ना-जानकारी के कारण ही तो उसकी क्रियायें और व्यवहार भी उसके अनुरूप नहीं हो पाते। वह अनजान की तरह संसार सागर में हाथ-पैर मारता हुआ जीवन बिता देता है और उसी में डूबकर रह जाता है। विशाल दृष्टि पाये बिना लक्ष्य नहीं देखा जा सकता और जब तक लक्ष्य का पता न हो, तब तक उसके अनुरूप जीवन पद्धति को नहीं निश्चित किया जा सकता। यों ही अज्ञान के अंधेरें में भटकते रहना होगा।

जीवन लक्ष्य को देखने, परखने और पाने के लिये पक्षियों की तरह ऊँचा उठना होगा। किन्तु पक्षी तो ऊपर शून्य में उड़ते ओर भोजन की तलाश करते हैं पर मनुष्य का जीवन लक्ष्य उनकी तरह भोजन की तलाश ही नहीं है। उसका जीवन लक्ष्य है—आत्मा की मुक्ति, अस्तु उसकी उड़ान उसके अनुरूप दिशा में ही होनी आवश्यक है और वह ऊँचाई है परमात्मा। आत्मा की मुक्ति के लिए परमात्मा की ओर उड़ान भरना होगा क्योंकि उसका लक्ष्य ही अथवा उसका गंतव्य ही वह अनन्त आनंद, अक्षय शांति और शाश्वत तृप्ति रूप वह आत्मा की मुक्ति अथवा भव-बन्धन से छुटकारा एक ही स्थिति के अनेक नाम हैं।

मनुष्य ज्यों-ज्यों परमात्मा की ओर बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसमें सूक्ष्मदर्शिता, निरहंकार और विवेक का उज्जवल आलोक बढ़ता जाता है। जिसके प्रकाश में वह अपना, अपने आस-पास की वस्तुओं और इस संसार का वास्तविक रूप पूरी तरह से देख लेता है। सत्य का अन्वेषण हो जाने पर फिर अज्ञान का अन्धकार नहीं रहने पाता। मनुष्य के सारे भ्रम, सारी भ्रान्तियाँ और सारे संशय नष्ट हो जाते हैं। वह संकीर्णता की परिधि से बाहर आकर विशाल एवं निरन्तर प्रसार में विहार करने लगता है। यही स्थिति तो वह स्थिति है, जिसे मुक्तावस्था कहा जाता है।

अपनी अभीष्ट ऊँचाई की ओर बढ़ने के लिये आस्तिकता होना तो आवश्यक है ही पर केवल इतने से ही काम चल सकना कठिन होगा। उसके लिये परमात्मा के एक ऐसे स्वरूप का दर्शन भी करना होगा, जो साध्य और ग्रहणीय भी हो। परमात्मा का ग्रहण अनुभूति द्वारा ही सम्भव है और उस अनुभूति का जागरण भी इस संसार के सहारे ही करना होगा, क्योंकि इसके अतिरिक्त हमारे अन्य साधन भी क्या हो सकते हैं ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस संसार साधन में परमात्मा की अनुभूति करने के लिये हमें अपना स्थूल अथवा सामान्य दृष्टिकोण बदलकर दार्शनिक बनाना होगा और अपनी निष्ठा को इतना उदार कि वह एक आध्यात्मिक भाव से सब पर स्थिर की जा सके। संसार का कोई भी भाग अथवा अंश ले लीजिये। सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, पर्वत, सरितायें, सागर, बन, वृक्ष, फूल-पौधे कुछ भी सही—जो कुछ भी देखिये एक गहरी और सूक्ष्म दृष्टि से देखिये और विचार कीजिए कि जब इन सब वस्तुओं का अस्तित्व है, तब अवश्य ही इनका निर्माता और नियामक भी होगा। यदि ऐसा न होता तो न तो ये वस्तुयें बन पातीं और न इनका अस्तित्व दृष्टिगोचर होता।

लक्ष्य परायण व्यक्ति का दृष्टिकोण संसार के पदार्थों के प्रति औरों से भिन्न रहता है। जहाँ एक सामान्य व्यक्ति किसी वृक्ष को देखकर केवल इतना सोच पाता है कि यह वृक्ष अमुक जाति का है। इसमें इस प्रकार और इस रस के फल लगते और इस रंग के फूल खिलते हैं और यदि उसका ज्ञान कुछ अधिक हुआ तो यह सोच लेगा कि यह इस ऋतु में फलता-फूलता और इसके फल-फूल का उपयोग करने से अमुक हानि या लाभ होता है। बस इससे अधिक आगे बढ़कर वह नहीं सोच पाता। जबकि लक्ष्य परायण आस्तिक का सोचना इससे भिन्न होता है। वह केवल किसी पदार्थ के ऊपरी रूप तक ही सीमित नहीं रहता। वह यदि वृक्ष के विषय में सोचेगा तो इस प्रकार सोचेगा—

"यह विशाल वृक्ष एक छोटे-से बीज से उत्पन्न हुआ है। उस छोटे-से बीज में अवश्य ही कोई ऐसी महान् शक्ति सन्निहित रहती है, जो बीज को वृक्ष रूप में बदल देती है। वह शक्ति क्या हो सकती है ? उसका निवास कहाँ हो सकता है ? निश्चय ही इतने बड़े ब्रह्माण्ड में चमत्कार करने वाली शक्ति विशाल विस्तृत और महान् होनी चाहिये। जब वह शक्ति विशाल, विस्तृत और महान् है तो वह किसी एक परिधि में सीमित रहकर एक देशीय नहीं हो सकती। निश्चय ही वह व्यापक है, अणु-अणु में परिव्याप्त है, चींटी से लेकर हाथी तक में और जड़ से लेकर चेतन तक में। वह नदी, पहाड़, वृक्ष आदि सब में है, मुझमें भी है और दूसरों में भी।

कहना न होगा कि लक्ष्य परायण व्यक्ति का यह सूक्ष्म और विशाल दृष्टिकोण उसमें एक विराट् भावना का उदय कर देता है और वह कुछ ही समय में शक्ति के रूप में सूक्ष्म और ब्रह्माण्ड के रूप में विराट् परमात्मा की अनुभूति पाने लगता है। उसे हर वस्तु और हर पदार्थ के बाह्य और आन्तरिक रूप में उस एक परमात्मा के ही दर्शन होने लगते हैं। उसे संसार से लेकर अपने तक ही हर क्रिया में उसकी प्रेरणा और उसी की इच्छा सक्रिय होती दृष्टिगोचर होने लगती है। परमात्मा के इस विराट् रूप के बीच व्यापक चिन्तन करते रहने से मनुष्य स्वयं ही विराट् रूप होकर संसार और शरीर की संकीर्णता से मुक्त होकर भव-भावना से छूट जाया करता है। उसको अपना जीवन लक्ष्य मिल जाता है, उसकी आत्मा परमात्मा से तादात्म्य प्राप्त कर लेती है।

अस्तु अपना जीवन लक्ष्य पहचानने के लिये परमात्मा की ओर ऊपर उठिये, परमात्मा की अनुभूति के लिये उसमें विराट् रूप की उपासना कीजिए, स्वयं विराट् बनकर जीवन की संकीर्ण काल-कोठरी से छूटकर मुक्त हो जाइये।

सजातियों का एकत्रीकरण सृष्टि का एक सुनिश्चित नियम है। चींटी, दीमक, मक्खी-मच्छर तक एकाकी नहीं रहते। उन्हें झुण्ड बनाकर समूहबद्ध रहने में प्रसन्नता भी होती है और सुविधा भी रहती है। वन प्रदेशों में एक जाति के पशु-पक्षी अपने वर्ग के सदस्यों के साथ रहने और मिल-जुलकर समय गुजारने में प्रयत्नशील रहते देखे जाते हैं। एक प्रकार की वनस्पतियाँ पास-पास उगती हैं। निवास के लिए एकाकी झोपड़ों में रहना पसंद नहीं किया जाता। सुविधा और आकर्षण नितान्त छोटे नगलों की अपेक्षा बड़े गाँवों, कस्बों और नगरों में रहता है। बारातों, प्रीतिभोजों, जुलूसों, मेलों में यह प्रवृत्ति काम करती देखी जाती है। उत्पादन, विक्रय, व्यवसाय के लिए क्षेत्र या मार्केट बनाये जाते हैं। दुर्व्यसनी और अपराधी भी अपने गिरोह बना लेते हैं। सभा, सोसायटियाँ, संगठन, क्लब आदि एक जैसी प्रकृति या मान्यता वालों, द्वारा विनिर्मित किये जाते हैं। आकाश में तारों का समूह ही शोभायमान होता है। बगीचे शोभायमान रहते हैं, पर रेगिस्तान की जहाँ-तहाँ उगी खैर-खजूरें कुरूप ही लगती हैं।

विभिन्न प्रकार की खदानें इसी नियम के आधार पर बनती हैं कि एक जाति के अणु-परमाणु साथ-साथ रहना चाहते हैं, इसलिए वे किसी अदृश्य चुम्बकत्व से प्रेरित होकर उस ओर चल पड़ते हैं जिस ओर सजातियों का बड़ा समुदाय पहले से ही एकत्रित रहता और साथियों के आगमन की प्रतीक्षा करता है। इसी आधार पर विभिन्न वर्ग के कण अपने समूह बनाते और धीरे-धीरे बड़ी खदानों के रूप में परिणत होते जाते हैं।

विचारों के सम्बन्ध में यही सोचा जाता है कि वे अपने निजी उत्पादन होते हैं। मनुष्य इच्छापूर्वक कल्पनाएँ करता और स्वनिर्मित चिन्तन में उलझा रहता है, पर यह आंशिक रूप से ही सही है। सामूहिकता का एकत्रीकरण का नियम उन पर भी लागू होता है। समर्थ विचार दूसरों पर चढ़ दौड़ते हैं और जो अपने से कमजोर हैं, उन्हें घसीटकर अपने शिकंजे में कस लेते हैं। समर्थ विचारक यदि मनस्वी हो, सघन श्रद्धा और प्रचण्ड विश्वास के साथ जुड़े हों तो फिर वे भी एकाकी न रहेंगे। अपनी सजातियों की उपस्थिति जहाँ भी देखेंगे, उन्हें घसीटकर अपने साथ चलने के लिए बाधित करेंगे, फिर चाहे वे उत्कृष्ट स्तर के हों या निकृष्ट स्तर के।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहचरों की घनिष्टता

लोक व्यवहार में ऐसा ही घटित होता रहा है। दुर्व्यसनी, अनाचारी, क्रूरकर्मी अपने स्तर लोगों को सहज तलाश लेते हैं। उन्हें अपने साथी बनाते और कुछ ही समय में एक गिरोह के रूप में संगठित हो जाते हैं। एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते और सहायता देते हैं। इसी आधार पर अवांछनीयता को संगठित होते देखा गया है, इनके संगठित आक्रमण बहुत हद तक सफल भी होते हैं। गुण्डागर्दी और अपराधी प्रवृत्ति के बढ़ने का एक कारण यह भी है कि उनके गिरोह बन जाते हैं और वे फिर दाद, खाज-खुजली, कैन्सर आदि की तरह गहरी जड़ें जमा लेते हैं। इतनी गहरी कि उनको उखाड़ फेंकना कठिन हो जाता है। दैत्य-दानवों के समर्थ समूह इसी आधार पर एकत्रित और समर्थ बनते देखे गये हैं। इसलिए विज्ञजन अपने को, अपनों को, ऐसे वातावरण को बचाये रहने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

सत्संग की, सज्जनों के समुदाय के साथ घनिष्टता रखने की उपयोगिता को इसीलिए सराहा जाता है कि उस समुदाय में मिलने वाली सत्प्रवृत्तियाँ उन्हें भी श्रेष्ठता प्रदान करती हैं, जो उस वातावरण के साथ अपनी घनिष्टता जोड़ता हैं। ऐसे व्यक्ति न मिलने पर उनकी आंशिक आवश्यकता सत्साहित्य से भी पूरी हो जाती है। स्वाध्याय को भी एक प्रकार का सत्संग की बताया गया है और उसके लाभों की प्रशंसा भी की गई है।

अनन्त आकाश में भले-बुरे विचारों के प्रवाह भी परिभ्रमण करते रहते हैं। उनमें भी अपनी समर्थता के अनुरूप सहचर को खींचने या उनकी ओर खिंच जाने की विशेषता होती है। बुरे विचार यदि भौतिक क्षेत्र में भी उठाये गये तो यह स्वाभाविक है कि उसी स्तर के लोगों के मन में उठने वाले कुविचार अपने स्तर वालों की ओर दौड़ पड़ें। सज्जनता के विचार भी इसी प्रकार अपने साथियों के सार्थक वातावरण की तलाश में रहते हैं। सज्जनों की समीपता से, विचार सादृश्यता से भी लोग इसी आधार पर लाभ उठाते रहते हैं। अतः हमें विशाल दृष्टिकोण अपनाना ही श्रेयस्कर है।

कर्मों का सामूहिक फल

कर्म-फल के सम्बन्ध में मनीषियों का विचार है कि हम जो कर्म करते हैं, उनका फल हमको तो भोगना पड़ता ही है, साथ ही अन्य प्राणियों को भी भोगना पड़ता है। मनुष्य सामाजिक पद्धति पर चलने वाली प्राणी है और उसे अधिकांश नियमों का पालन सामूहिक रूप से करना पड़ता है। इसलिए हमारे कर्मों का फल समूह को मिलेगाा और समूह द्वारा किए गऐ कर्मों के फल भोग में हमारा भी भाग होगा।

समाज व्यवस्था द्वारा उत्पन्न दोषों या श्रेष्ठ कर्मों का फल सभी व्यक्तियों को बाँटकर भोगना है। परन्तु जिस व्यक्ति द्वारा जो कर्म किये जाते हैं, उसे अपने कर्म का अधिकांश भाग भोगना पड़ेगा। कुछ स्वल्प भाग ही समूह में जायगा। इस प्रकार व्यक्ति का हित समष्टि में और समष्टि का व्यक्ति में निहित है।

यह विश्वास इसलिए भी आवश्यक है कि इससे परस्पर प्रेम, विश्वास और समत्व-भाव उत्पन्न होता है। इससे हम मानवता की ओर दृढ़तापूर्वक बढ़ेंगे। इसीलिए हमें श्रेष्ठ कर्मों में स्वयं तो प्रवृत्त होना ही चाहिए, साथ ही अन्य लोगों को भी वैसा करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

पृथ्वी के एक भाग में दुर्भिक्ष पड़े और सुभिक्ष की स्थिति उत्पन्न करने के लिए यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म किये जायें तो उसका फल-सुभिक्ष द्वारा अन्न की उत्पत्ति का लाभ सभी उठायेंगे। केवल कर्त्ता को ही उस अन्न का लाभ नहीं मिलेगा, हाँ उसके शुभ कर्म का फल परोक्ष रूप से उसे अवश्य प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति इस जन्म अथवा अन्य जन्मों में भी संभव है।

एक व्यक्ति ने कोई धर्मशाला बनवाई तो उसके उस श्रेष्ठ कार्य का थोड़ा-थोड़ा फल वे लोग भी प्राप्त करेंगे, जो उसमें कुछ समय के लिए ठहरेंगे। उसका अप्रत्यक्ष लाभ, धर्मशाला बनवाने वाले को होगा। कुछ भी हो, परन्तु प्रत्यक्ष लाभ उसमें ठहरने वालों को तो हुआ ही। इस प्रकार उस शुभ कर्म के फल में सामूहिक भाग स्पष्ट है।

विद्यालय, औषधालय, कुँआ, तालाब, छात्रावास, अन्नक्षेत्र, गौशाला, अनाथालय, धर्म प्रचार आदि शुभ कार्य यद्यपि कर्त्ता ने अपने आत्म-कल्याण के लिए किए थे, पर उनका लाभ उन कार्यों के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी मिलता है और वह कर्ता जिस जाति, समाज, देश या संप्रदाय से सम्बन्धित होता है उसकी भी प्रशंसा होती है। संसार में समय-समय पर अनेक महापुरुष होते रहे हैं, उनके कारण उस युग, देश और समाज की भी प्रतिष्ठा बढ़ी है जिसमें वे जन्मे। राम के जन्म से अयोध्या और कृष्ण के जन्म से मथुरा का गौरव बढ़ा। गीता-ज्ञान ने संसार में सारे भारतवर्ष का गौरव बढ़ाया।

सर टामस रो के साथ डॉक्टर ने अपने देश से आने वाले माल पर से चुंगी माफ कराके सारे इंग्लैंड निवासियों को लाभ पहुँचाया। जिन वैज्ञानिकों ने रेल, तार, रेडियो, बिजली, कारखाने के यंत्र, वायुयान, चिकित्सा आदि के आविष्कार किये, उन्होंने सारी मानव-जाति को लाभ पहुँचा। धर्म, सदाचार, अध्यात्म, सहयोग, सहिष्णुता, संयम, समानता आदि के आदर्शों का जिन विद्वानों ने प्रतिपादन और प्रसार किया, उनने भी समस्त मानव जाति के उत्कर्ष में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। स्वतंत्रता युद्ध के संयोजकों और बलिदानियों के प्रयत्न का फल आज समस्त भारतवासी राजनैतिक स्वाधीनता के रूप में उपलब्ध कर रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार व्यक्ति के सत्कर्मों का लाभ सारे समाज को मिलता है, वैसे ही उसके दुष्कर्मों का परिणाम भी दूसरों को भुगतना पड़ता है। डाकू, चोर और जेबकट अपने कृत्यों से अगणित मनुष्यों को हानि पहुँचाते और क्षुभित करते हैं। गुंडों की उद्दण्डता का फल अगणित शांतिप्रिय नागरिकों को भुगतना पड़ता है। गंदे लोग हमेशा हैजा आदि रोगों से ग्रसित होते हैं और उनकी छूत की बीमारी दूर-दूर तक फैलकर अनेकों के लिए प्राणघातक संकट उत्पन्न कर देती है। व्यसनी, व्यभिचारी, नशेबाज, जुआरी अपनी बुरी आदतें दुर्बल मस्तिष्क के अनेक लोगों को सिखाकर उन्हें भी अपने जैसा ही बना लेते हैं।

व्यक्ति सर्वथा एकाकी नहीं है। वह समाज का एक अंग है। इसलिए उसके भले-बुरे कार्यों का प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता वरन् सारे समाज को भुगतना पड़ता है। पेट में विकार हो जाय, दर्द होने लगे तो उससे केवल पेट को ही हानि नहीं वरन् सारे शरीर की ही व्यवस्था बिगड़ती है। मस्तिष्क यदि प्रचुर विद्या और ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो उसका लाभ केवल सिर को ही नहीं मिलता, वरन् उस ज्ञान के फलस्वरूप सभी अंगों के लिए सुख-साधन उपलब्ध होते हैं। यही बात व्यक्ति के सम्बन्ध में भी है।

इसलिए दूसरों के भले-बुरे कार्यों की ओर ध्यान रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। हमें अपने काम से काम, अपने मतलब से मतलब कहने मात्र से काम नहीं चल सकता। ऐसा करने से बुरों का विरोध न हो सकेगा और वे मनमानी करके अपनी दुष्टता बढ़ाते हुए दूसरे लोगों के लिए दिन-दिन अधिक भयंकर बनते चलेंगे। उसी प्रकार सज्जनों के कार्यों में प्रोत्साहन या सहयोग न दिया जाय तो वे भी निराश होकर चुप बैठ रहेंगे और उनके कार्यों से अनेकों को जो लाभ हो सकते थे वे न हो सकेंगे।

बाढ़, भूकम्प, दुर्भिक्ष, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, युद्ध आदि दैवी प्रकोपों को मानव-जाति के सामूहिक पापों का परिणाम माना गया है। निर्दोष व्यक्ति भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। वस्तुतः वे भी निर्दोष नहीं होते। सामूहिक दोषों को हटाने और घटाने का प्रयत्न न करना, उसकी ओर उपेक्षा की दृष्टि रखना भी एक पाप है। इस दृष्टि से निर्दोष दीखने वाले व्यक्ति भी सदोष सिद्ध होते हैं और उन्हें सामूहिक दंड का भागी बनना पड़ता है।

किसी नगर में बड़े पैमाने पर उपद्रव होने पर उस सारे नगर पर सरकार सामूहिक आर्थिक दंड लगाती है और निर्दोषों से भी जुर्माना वसूल करती है। उन निर्दोषों का कसूर यह माना जाता है कि उन्होंने अपने क्षेत्र में दुष्कर्म होते हुए भी उसे रोकने की अपेक्षा बरती, कायरता दिखाई, शांति स्थापना के लिए प्रयत्न न किया, इसलिए वे भी अपराधी हैं।

समाज में हो रही बुराइयों को रोकने के लिए ईश्वर ने ऐसी ही सामूहिक जिम्मेदारी हर व्यक्ति को सौंपी है। उसका कर्तव्य है कि अनीति जहाँ-कहीं हो रही है, उसे रोके, घटाने का प्रयत्न करें, विरोध करें, असहयोग बरते। जो भी तरीका उसको अनुकूल जँचे उसे अपनाये, कम से कम इतना तो होना ही चाहिए कि उस बुराई में अपना सहयोग प्रत्यक्ष और परोक्ष किसी भी रूप से न हो। बुरे कामों की प्रशंसा तो कदापि न की जाय, उनके प्रति भर्त्सना, घृणा और विरोध की भावना तो अवश्य ही रखी जाय।

इसी प्रकार सत्कर्मों के समर्थन, सज्जनों के सम्मान एवं प्रोत्साहन के लिए हम में हर व्यक्ति को कुछ न कुछ करना चाहिए। ऐसे लोकोपयोगी कार्यों में यथा संभव योगदान देना चाहिए। कम से कम उनकी प्रशंसा करना और स्वभाव रखना तो नितांत आवश्यक ही है।

हम सब अलग-अलग होते हुए भी एक समाज के अंग हैं। एक नाव में बैठे हैं। यदि एक व्यक्ति नाव के पैंदे में छेद करे तो अन्य यात्रियों का कर्तव्य है कि उसे ऐसा करने से रोकें क्योंकि उसके छेद करने से औरों का जीवन भी संकट में पड़ जायगा। सामाजिक सुव्यवस्था एवं धर्म मर्यादाओं के स्वयं पालन करने और दूसरों से पालन कराने में भी हमारा यही दृष्टिकोण रहना चाहिए।

स्वार्थ ही नहीं परमार्थ को भी साधें

भगवान ने मनुष्य को इतनी सारी सुविधाएँ, इसलिए नहीं दी हैं कि वह उनसे स्वयं मौज-मजा करें और अपनी काम-वासनाओं की आग को भड़काने और फिर उन्हें बुझाने के गोरखधंधे में लगा रहे। यदि मौज-मजा करने के लिए ही ईश्वर ने मनुष्य को इतनी सुविधाएँ दी होतीं और अन्य प्राणियों को अकारण इससे वंचित रखा होता तो निश्चय ही वह पक्षपाती ठहरता। अन्य जीवों के साथ अनुदारता और मनुष्य के साथ उदारता बरतने का अन्याय भला वह परमात्मा क्यों करेगा, जो निष्पक्ष, जगत-पिता, समदर्शी और न्यायकारी के नाम से प्रसिद्ध है।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को जो कुछ बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता, भावना, वाणी, विद्या, चतुरता, सम्पत्ति, कला, सौंदर्य, विज्ञान, सत्ता आदि विभूतियों का वरदान मिला है, वह एक प्रकार की सार्वजनिक अमानत है। राज्यकोष की चाबी खजांची के पास रहती है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह खजाना उसके व्यक्तिगत उपयोग के लिए है। फौजी गोला, बारूद और सेना को आज्ञा देने का अधिकार सेनाध्यक्ष के हाथ में रहता है पर इसका अर्थ यह नहीं कि इन सब चीजों का उपयोग वह अपने लाभ के लिए करने लगे। सिक्का ढालने वाले, नोट छापने वाले कर्मचारी अपने निज के लिए यह ढलाई या छपाई करने लगें तो क्या उचित कहा जायगा ? सरकारी राज-काज चलाने के लिए बड़े-बड़े अफसर अधिकारी नियुक्त रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनको सत्ता प्रदान की जाती है, उसका उपयोग उन्हें राज-काज के लिए ही करना पड़ता है, अपने निज के लिए तो वे सिर्फ उतना ही खर्च कर सकते हैं जितना उन्हें वेतन मिलता है। मनुष्य भी परमात्मा का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण एक प्रकार से युवराज, मंत्री, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष, अफसर जैसे पद नियुक्त हुआ है। उसे अन्य प्राणियों की तुलना में जो कुछ अधिक मिलता है वह सब ईश्वरीय प्रयोजनों का पूर्ण करने के लिए है।

राजा अपने हाथ में रहने वाली सत्ता का ठीक तरह से संचालन करने के लिए जिस प्रकार अपना मंत्रिमंडल नियुक्त कर लेता है, मनुष्य की नियुक्ति इसी प्रकार हुई है। निजी खर्च के लिए तो उसको उतना ही वेतन मिला है जितना अन्य प्राणियों को। साम्यवादी देशों की सरकारें अपने कर्मचारियों के वेतन में उनकी योग्यता के अनुरूप थोड़ा अंतर तो रखती हैं पर वह अंतर होता बहुत ही स्वल्प है। अन्य प्राणी आहार, विश्राम आदि की उतनी ही सुविधा पाते हैं जितनी प्रकृति उन्हें देती है। मनुष्य स्वादिष्ट व्यंजन, सर्दी-गर्मी निवारण करने के लिए वस्त्र, सुविधाजनक मकान, वाणी, लेखन, अग्निवाहन, अस्त्र-शस्त्र उपकरण, संगठित समाज, शासन तंत्र आदि की विशेष सुविधाएँ भी प्राप्त करता है यह उसका विशेष वेतन है। इतना प्राप्त करके उसे संतुष्ट और प्रसन्न रहना चाहिए क्योंकि अन्य प्राणियों की तुलना में यह वेतन भत्ता बहुत अधिक है।

जीवनोपयोगी अनिवार्य सुविधायें उपार्जित करने के बाद मनुष्य को अपनी शेष शक्ति और प्रतिभा का उपयोग जनकल्याण के लिए, लोकहित के लिए, सद्भावनाओं की अभिवृद्धि के लिए करना चाहिए। यही उसकी ड्यूटी और नौकरी है। जो इसे पूरी नहीं करता वह एक प्रकार का अपराधी माना जायगा और कर्तव्य-पालन की उपेक्षा करने का दंड प्राप्त करेगा। राज कर्मचारियों पर कोई निजी कारोबार न करने का प्रतिबन्ध रहता है। कारण यह है कि सरकार जानती है कि जीवन निर्वाह के लिए दिये जाने वाले वेतन पर संतुष्ट न रहकर यदि कर्मचारी अधिक उपार्जन के लालच में पड़ा रहेगा तो सरकारी काम की उपेक्षा करेगा, इसलिए उसे सचेत कर दिया जाता है कि नियत घंटे सरकारी ड्यूटी में लगावे ही, साथ ही बचे हुए घंटे को अपनी योग्यता, शक्ति और प्रसन्नता बढ़ाने में लगावे ताकि ड्यूटी के काम पूरे करने में कोई विघ्न उत्पन्न न हो। इस प्रतिबन्ध का उल्लंघन करके निजी सुख-साधनों को जुटाने और निजी मौज-मजा करने में यदि कोई कर्मचारी लगा रहने लगे और सरकारी ड्यूटी को तिलांजलि दे दे तो उसे राजा का कोपभाजन बनना पड़ेगा और अपराध का दंड भी मिलेगा। ईश्वरीय उद्देश्यों को पूर्ण करने में अपनी शक्ति और क्षमता लगाने के लिए गर्भकाल में ही जिससे इकरारनामा लिखा लिया जाता है, वह मनुष्य यदि अवसर आने पर धोखा दे, उपलब्ध क्षमताओं को समाज-हित की अपेक्षा स्वार्थ साधन में लगाने लगे तो उसका यह कार्य अनुचित भी माना जायगा और अपराध भी।

मनुष्य का जीवन स्वार्थ के लिए, परमार्थ के लिए है। शास्त्रों में अपनी कमाई को आप ही खा जाने वाले को चोर माना गया है। सौ हाथों में कमाने और हजार हाथों से दान करने की नीति पर चलने की प्रवृत्ति हर किसी को अपनानी चाहिए। जो मिला है बाँटकर खाना चाहिए। मनुष्य को जो कुछ अन्य प्राणियों के अतिरिक्त मिला हुआ है, वह उसका अपना निज का उपार्जन नहीं, वरन् सृष्टि के आदि से लेकर अब तक के श्रेष्ठ सत्पुरुषों के श्रम और त्याग का फल है। यदि ऐसा न हुआ होता तो मनुष्य भी एक दुर्बल वन्य पशु की तरह, रीछ-बंदरों की तरह अपने दिन काट रहा होता। इस त्याग और उपकार की पुण्य-प्रक्रिया का नाम ही धर्म, संस्कृति एवं मानवता है। उसी के आधार पर प्रगति पथ पर इतना आगे बढ़ आना संभव हुआ है। यदि इस पुण्य-प्रक्रिया को तोड़ दिया जाय, मनुष्य केवल अपने मतलब की ही बात सोचने और उसी में लगे रहने की नीति अपनाने लगे, तो निश्चय ही मानवीय संस्कृति नष्ट हो जायगी और ईश्वरीय आदेश के उल्लंघन के फलस्वरूप जो विकृति उत्पन्न होगी उससे समस्त विश्व को भारी त्रास सहन करना पड़ेगा। परमार्थ की उपेक्षा करना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है। शांति और समृद्धि की आधारशिला के रूप में जो परमार्थ मानव जाति की अंतरात्मा बना चला आ रहा है, उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालना, स्वार्थी बनकर जीना, निश्चय ही सबसे बड़ी मूर्खता है। इस मूर्खता को अपनाकर हम सर्वतोमुखी आपत्तियों को ही आमंत्रण देते हैं और उलझनों के दलदल में आप की तरह ही दिन-दिन गहरे घुसते चले जाते हैं।

अपनी राह पर एकाकी चलना कितना अखरता है ? इस पर भी यदि मार्ग ऊबड़-खाबड़, लंबा, भयावना हो तो राहगीर के लिए आगे बढ़ना और भी कठिन हो जाता है। कदाचित ऐसे में राही को कुछ हमसफर साथी मिल जावें तो उसकी वह यात्रा कितनी सरल और सुखद बन जाय, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जीवन यात्रा का लंबा पथ जो अनेकों उतार-चढ़ाव, परिवर्तन, अनुकूल, प्रतिकूल, सुखद-दुःखद परिस्थितियों से निर्मित होता है, इस पर एकाकी चल सकना जन साधारण के लिए संभव नहीं होता। मनुष्य अकेला तो सुख भी नहीं मना सकता। सुख की अनुभूति का माध्यम, उसे व्यक्त करने के लिए भी साथियों की आवश्यकता होती है। जीवन-पथ पर चलने के लिए अभिन्न संगी-साथी, सहयोगी की आवश्यकता मानव-जीवन का एक अनिवार्य पहलू है। विवाह का आधार तथा संसार के अन्य नाते-रिश्तों का मूल कारण भी यही है। मानव-जीवन विभिन्न क्षेत्रों में बँटा हुआ है। इन सभी में पूर्णता, सफलता प्राप्त करने के लिए उसे साथी-सहयोगी मित्रों की आवश्यकता पड़ती है। बिना मित्रों के सहयोग के जीवन के अधिकांश कार्यक्रम असफल ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं। शिक्षा, व्यापार-पेशा, कला आदि की साधना, जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में मित्रों की आवश्यकता रहती है।

जीवन की कटु, दुःखद अनुभूतियों से मन में तरह-तरह के विचार, भाव एवं ग्रंथियाँ अपना अस्तित्व गुप्त मन में कायम कर लेते हैं और ये सब जहर की तरह प्रतिक्रिया पैदा कर मनुष्य को मन ही मन घुलाते रहते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य यदि दिल खोलकर अपनी व्यथा किसी को कह सके, छिपे भावों को व्यक्त कर सके तो सहज ही उसका मन हलका और स्वस्थ हो जाय, साथ ही अपने साथी से प्रेरणा-प्रोत्साहन पाकर मनुष्य फिर से आशा के साथ जीवन पर गतिशील हो जाय।

एकाकीपन के कष्ट से बचने के लिए, जीवन व्यापार में सहयोग देने के लिए, दुःख में अभिन्न साथ के लिए मनुष्य को मित्रों, दोस्तों, साथियों की आवश्यकता होती है। कोई भी व्यक्ति अपने आप में पूर्ण नहीं होता अतः अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क बनाकर मनुष्य पूर्ण बनने का प्रयत्न करता है। मनुष्य को जीवन में अभिन्न और योग्य मित्र मिल जाना एक दैवी वरदान है, संसार की सबसे बड़ी संपत्ति है और जीवन की सफलता का महत्त्वपूर्ण आधार है। सचमुच वे लोग भाग्यशाली हैं जिन्हें अभिन्न मित्र मिल जाते हैं।

एक मनुष्य के पास पर्याप्त साधन, सम्पत्ति, जीवन निर्वाह की वस्तुएँ हैं, फिर भी वह उद्विग्न, अशांत, परेशान-सा देखा जाता है। दूसरा उच्च शिक्षा संपन्न, अच्छे पद पर प्रतिष्ठित होकर भी भूला-भटका-सा दिखाई देता है। व्यापारी, विद्वान, नेता, पंडित, उच्च पद पर आसीन लोग इसी एक प्रश्न के समाधान के लिए परेशान मालूम पड़ते हैं। अधिकांश लोगों की एक ही शिकायत है—संघर्ष, अशांति, क्लेश, परेशानी। नीचे से लेकर ऊपर तक अधिकांश व्यक्ति इसी प्रश्न के पीछे परेशान हैं और तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं, फिर भी इसका समाधान नहीं होता।

वस्तुतः जीवन के इस प्रश्न का समाधान बाहरी सफलताओं या संसार में नहीं है। इसका समाधान मनुष्य के अपने अंदर है, वह है, जीवन व्यवहार में हृदय को महत्त्व देना। हमारी बुद्धि बढ़ी है, किन्तु हमारा हृदय अभी तक जड़ ही बना हुआ है। बुद्धि के बल पर व्यापार, शिक्षा, पांडित्य, विद्वता, उच्च पद एवं जीवन की अन्य सभी तरह की सफलताएँ मिल जाती हैं किन्तु हृदय की व्यापकता, विशालता के अभाव में ये सफलताओं के बड़े-बड़े महल उसी तरह डरावने और अटपटे लगते हैं जैसे सुनसान, अंधेरे भवन और किले। हृदय की जीवन-शक्ति के अभाव में मनुष्य की समस्त समृद्धि, विद्वता, बड़प्पन, उच्च पद के भयावने भूत उसे ही खाने लगते हैं।

एक समय महात्मा बुद्ध को भी इसी भूत का सामना करना पड़ा था। वे राजपुत्र थे, अतुल संपत्ति थी। सुन्दर और भव्य भवन थे, मन बहलाने के बड़े-बड़े साधन थे और सभी कुछ थे किन्तु बुद्ध को ये सब अटपटे लगे। आत्म प्रसाद, शान्ति, आनन्द, समाधान, बुद्ध को इस समृद्धि और राज महलों में नहीं मिला। वे इन सब अलंकारों को छोड़कर नीचे उतरे, अपनी इन दीवारों को तोड़ बुद्ध व्यापक बने, जन-मन के साथ एकता प्राप्त की और वे फिर राजमहल के राजकुमार न रहकर असीम के साथ, मानवता के साथ एकाकार हुए, तभी उन्हें जीवन के उस प्रश्न का समाधान मिला।

भगवान राम ने इसी पथ का वरण किया। समृद्ध, सुसम्पन्न अयोध्या नगरी को त्याग राम वल्कल वस्त्र धारण कर अनंत पथ के पथिक बने और जंगल में कृत्रिमता से दूर प्रकृति के फैले विशाल आँचल में पशु-पक्षी, वनस्पति, नदी, नाला, पहाड़ तक से अपने हृदय को जोड़ा। शबरी, गिद्ध, केवट के हृदय से हृदय जोड़ने वाले दशरथ सुत राम जनमानस के राम बन गये।

महात्मा गाँधी नें उच्च शिक्षा का अभिमान छोड़ा, जनता-जनार्दन के समकक्ष उतरे, वैसा ही पहना, वैसा ही खाया। अपने जीवन को, अपनी विद्वता को निजी समृद्धि का आधार न बनाकर पीड़ित मानवता के कल्याण, उन्नति, प्रगति का आधार बनाया।

इसी तरह स्वामी रामकृष्ण, विवेकानंद, दयानंद, रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, मालवीय जी आदि ने अपनी समृद्धि, विद्वता, पांडित्य, उच्चपद आदि से नीचे उतर मानवता के हृदय से अपना हृदय जोड़ा, मानवता के कष्ट, दुःख, अपने कष्ट दुःख समझे, जनता-जनार्दन की पीड़ा अपनी पीड़ा समझी और उसके लिए अपने जीवन को लगाया। एक घोर लोकसंग्रही से भी अधिक श्रम किया, कष्ट झेले, परेशानी उठाई, पीड़ित, दुःखी, क्लांत मानवता के लिए जनता-जनार्दन के लिए।

समृद्धि, रूप, पांडित्य, विद्वता, पद आदि का अभिमान ही वह चहारदीवारी है जो हमें जीवन के यथार्थ स्वरूप से दूर किए हुए है। अभिमान, अहंकार चाहे वह किसी भी गुण, रूप, वस्तु का क्यों न हो मनुष्य के वास्तविक सुख और आत्म-प्रसाद से उसको दूर रखता है। जिसका दिल और दिमाग इस दंभ की घेरेबंदी में जकड़ा हुआ है, वह कैसे संतुष्ट रह सकता है ?

जब धनवान अपने धन का, दानवृत्ति का अभिमान छोड़कर दरिद्रता के प्रति अपने हृदय को जोड़ लेगा, शिक्षा शास्त्री पंडित जब मानवता की पंक्ति में आकर बैठेंगे, उच्च पद सम्पन्न लोग जब जनता-जनार्दन की अर्चना में लगेंगे, तो उनका अहंभाव सहज ही तिरोहित हो जायगा और उन्हें जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान मिल सकेगा। जीवन का सच्चा सुख, आत्म प्रसाद, आत्म शांति, संतोष, हृदय को मुक्त और असीम व्यापक बनाने से ही संभव है।

भर्तृहरि राजा थे। जब राज छोड़कर वे संत बने और जीवन के उक्त प्रश्न का समाधान पाया तब उन्होंने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा था—"न राजा बड़ा है, न तपस्वी, न विद्वान्, साधारण व्यक्ति भी यदि अपने जीवन और कार्यों से संतुष्ट है तो वही सबसे बड़ा है।"

स च भवति दरिद्रः, यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे, कोऽर्थवान को दरिद्रः।।

"जिसकी तृष्णा अधिक है, वही दरिद्री है, जिसका चित्त संतुष्ट है, उसके सामने न कोई धनी है, न दरिद्री।"

मनुष्य अपने रूप, गुण, समृद्धि, कीर्ति आदि के बोझ को जिस क्षण हृदय से हटाकर मानवता के साथ पंक्ति में बैठ जायगा, जब अपने हृदय को असीम मानवता के साथ जोड़ लेगा तभी जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सहज ही हो जायगा।

मानव की आज यह स्थिति है कि दो व्यक्ति मिलकर भी एक साथ नहीं रह सकते। पड़ोसी, भाई-भाई, स्त्री-पुरुष, एक जगह काम करने वाले सभी में यह वृत्ति दिखाई देती है। व्यक्ति-व्यक्ति से लेकर यही बात समाज, प्रदेश, राष्ट्र, संस्था, वर्ण, जाति, धर्म सभी में व्याप्त है। धरती पर मिली हुई समृद्धि की सीमा में रहकर भी मनुष्य चाहे तो प्रसन्न और शांत रह सकता है किन्तु स्थिति इस कदर हो गई है कि लोग अपने-अपने सामने परसी हुई थालियों में रखी हुई वस्तुएँ न खाकर आपस में लड़ने-झगड़ने लगते हैं। इससे सारी सामग्री तो नष्ट हो जाती है और कोई भी मनुष्य तृप्त और संतुष्ट नहीं हो पाता। मानव जाति में फैली हुई यही बीमारी समस्त लड़ाइयों, संघर्षों की जड़ है। इसी के कारण आज का मनुष्य परस्पर प्रेम और सहायता से स्वर्गीय जीवन बिताने के बजाय एक-दूसरे के विनाश की तैयारी में लगा हुआ है।

मानव-जीवन के बीच इस संघर्ष-लड़ाई का कारण गरीबी, अभाव आदि नहीं वरन् तेरे-मेरे का प्रश्न है। अपने लाभ, अपनी समृद्धि, अपने की साज-सम्हाल सभी को प्रिय लगती है किन्तु दूसरे के साथ वह भाव नहीं। उसकी हानि, अपमान, मृत्यु तक में भी कोई दिलचस्पी नहीं। उलटा दूसरे से अपना जितना लाभ बन सके इसके लिए सभी को प्रयत्नशील देखा जाता है।

इस व्यापक समस्या का भी एक ही समाधान है, वह यह है कि अपने हृदय को तेरे-मेरे के संकीर्ण घेरे से निकालकर 'समग्र' के साथ जोड़ा जाय। इसके व्यावहारिक मार्ग का प्रथम सूत्र है—सह अस्तित्व का मंत्र। स्वयं जियें और दूसरों को जीने दें। अपनी-अपनी थाली में से सब बैठकर खावें। इसके बाद ही दूसरा सूत्र है। "दूसरे के जीने के लिए मुझे सहयोग करना होगा।" इसकी पराकाष्ठा अपने आपको मिटा देने तक रहती है। दूसरों को जीने के लिए अपने आपको मिटाने की भावना एक-दूसरे के दिल और दिमाग को जोड़ती है—एकाकार करती है। यही व्यक्ति से लेकर विश्व-समस्या का मूल समाधान है।

टॉलस्टाय ने कहा था—'जिसके पास दो कोट हैं वह एक कोट उसे दे दे जिसके पास एक भी नहीं है। जिसके पास भोजन है वह भी ऐसा ही करे।" टॉलस्टाय ने आधुनिक व्यक्ति की समस्याओं को देखकर यही उपाय बताया कि मनुष्य अपनी समृद्धि के लिए ही नहीं वरन् दूसरों को जीने में मदद करने का भरपूर प्रयास करे। उन्हें जीवन बिताने में सहयोग दे।

महात्मा गाँधी ने भी यही मंत्र मानव जाति को दिया। उन्होंने दक्षिण में यात्रा करते हुए उस ग्रामीण महिला को देखा जो एक आधी-सी फटी हुई गीली धोती पहने खड़ी थी। गाँधी जी ने पूछा—"तुम इसे सुखा क्यों नहीं लेती।" उसने कहा—"क्या करूँ, मेरे पास यही धोती है जो नहाने के उपरांत मेरे ही शरीर पर सूखती है।" बापू की आँखों में पानी भर आया, उन्होंने तत्काल अपनी चद्दर उतारकर दे दी और उसी दिन से प्रतिज्ञा की—"जब तक मानव को तन ढकने को वस्त्र नहीं मिलेंगे मैं भी पूर्ण वस्त्र धारण नहीं करूँगा।" और वे आजीवन एक छोटी-सी धोती और एक चद्दर से काम चलाते रहे। यही परिधान था उनका बड़े-बड़े बादशाहों से मिलते समय भी।

हम भी अपने हृदय को दूसरों के लिए इसी तरह संवेदनशील बनाकर अपनी और विश्व की समस्याओं के समाधान में योग दे सकते हैं। जब परिवार में हम अपने लिए अच्छी माँग न रखकर दूसरों का ध्यान रखेंगे तो क्यों नहीं हमारा परिवार स्वर्गीय बनेगा ? इसी तरह पड़ोस, देश, समाज, जाति की यही आवश्यकता है, जिसे अनुभव किए बिना मानव और विश्व की समस्या का समाधान न हो सकेगा।

सामाजिक प्रगति का एकमात्र आधार

स्वार्थपरता की मात्रा जब मर्यादाओं का उल्लंघन करने लगती है, तब मनुष्य किसी भी मार्ग से अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तत्पर हो जाता है। उचित-अनुचित का विचार छोड़कर जैसे भी बने वैसे अपना स्वार्थ सिद्ध करने की नीति जब अपनाई जाने लगती है तो मनुष्य का व्यक्तित्व असुरता से परिपूर्ण हो जाता है। असुरता की जहाँ वृद्धि होगी, वहाँ सुख-शांति का ठहर सकना संभव न होगा। अनैतिक दृष्टिकोण अपनाये हुए व्यक्तियों का समाज असभ्य ही कहला सकता है। वहाँ निरंतर क्लेश-कलह ही नहीं सर्वनाश के अवसर भी उपस्थित होते रहते हैं। आज हमारे समाज में अपराधों, क्लेशों, संघर्षों, अभावों, चिंताओं और समस्याओं का घटाटोप दिखाई पड़ता है, उसका एकमात्र कारण व्यक्तियों के मन में बढ़ी हुई स्वार्थपरता, चरित्रहीनता एवं संकुचित दृष्टि ही है। आदर्शवाद का, धर्म नीति एवं मर्यादा का उल्लंघन जब कभी भी अधिक मात्रा में होने लगता है तब उसका परिणाम सारे समाज को भुगतना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थ से मनुष्य कैसा निर्मोही हो जाता है इसके अगणित उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। स्वजन सम्बन्धियों के रिश्ते भी स्वार्थपरता के तूफान में नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। औरंगजेब अपने सगे भाई दारा को अपने मार्ग का काँटा समझता था और उसका सिर काटकर अपने बाप के आगे पेश किया। सगे भाई के प्राण लेने और बाप को अपने प्राण प्यारे बेटे का कटा हुआ सिर दिखाकर मृत्यु से अधिक यंत्रणा सहने को विवश कराने वाली यह डाकिन स्वार्थपरता ही तो है। बालि ने अपने सगे भाई सुग्रीव की स्त्री का अपहरण कर लिया। रावण ने विभीषण को भरी सभा में सदुपदेश देने के कारण लात मारकर तिरस्कृत किया। कौरवों ने पांडवों को क्या-क्या दुःख नहीं दिये। एक ओर राम-लक्ष्मण और भरत का आदर्श प्रेम है, दूसरी ओर औरंगजेब, बालि, रावण और कौरवों के कुकृत्य हैं। इस अंतर को प्रस्तुत करने का कारण धर्म और अधर्म की आस्था-अनास्था ही हो सकती है।

बाप-बेटे का कितना पवित्र सम्बन्ध है। पिता की आज्ञा पालन करने के लिए जहाँ राम, श्रवणकुमार, भीष्म, पुरु आदि ने अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये वहाँ ऐसी भी परम्परा मौजूद हैं जिनमें बेटे ने बाप को तिरस्कृत, पददलित और मौत के मुँह में धकेल देने में कसर न रक्खी। जहाँगीर ने अकबर को कैद किया था। खुसरो ने जहाँगीर के खिलाफ बगावत की। औरंगजेब शाहजहाँ को कैद कर उसकी गद्दी पर आप बैठ गया और सलीम ने औरंगजेब के साथ वही व्यवहार किया। बेटों की बापों के प्रति की गई यह करतूतें किस समाज के लिए गौरवास्पद हो सकती हैं ?

कंस ने अपनी बहिन देवकी के आठ बच्चों को पत्थर पर पटककर मार डाला। गुरुभक्ति के स्थान पर उनके साथ अमानवीय व्यवहार करने वाले शिष्यों की भी कमी नहीं रही है। भस्मासुर अपने गुरु शिवजी पर उनके दिए हुए वरदान का उल्टा प्रयोग करने एवं उन्हें भस्म करके पार्वती का अपहरण करने को उतारू हो गया। गुरुगोविंद सिंह की हत्या उनके एक शिष्य ने ही कर दी। दयानंद को उनके प्रिय सेवक जगन्नाथ ने ही विष खिला दिया। ईसा मसीह को उनके एक शिष्य ने ही तीस रुपये के लोभ में गिरफ्तार करके फांसी पर चढ़वा दिया। जहाँ गुरुभक्ति के एक से एक ऊँचे उदाहरण मौजूद हैं, वहाँ ऐसी निकृष्ट घटनायें भी कम नहीं हैं। अपने स्वामी की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने वाले संयमराय, पन्ना धाय आदि जैसे उदाहरण मौजूद हैं वहाँ सिराजुद्दौला से विश्वासघात करके उसके राज्य और जीवन को नष्ट करा देने वाले मीर जाफर जैसे नौकरों के कुकृत्य भी देखने को मिलते रहते हैं।

पतिव्रत भारतीय नारी की विशेषता रही है, पर सूर्पनखा जैसी भी नारियाँ हुई हैं, जो अपने विवाहित पति को छोड़कर पर पुरुषों की कल्पना से स्वच्छंद विचरण करती रहीं और समाज में भयंकर कांडों का निमित्त बनीं। एक नारी व्रत का उल्लंघन जिनने किया उनने विपत्ति को ही आमंत्रण किया है। उत्तानपाद ने एक स्त्री के रहते दूसरी से विवाह किया। उस ईर्ष्या से पहली रानी के पुत्र ध्रुव का अपमान हुआ और बच्चे को घर ही छोड़ देना पड़ा। दशरथ ने तीन विवाह करके कौन शांति पाई ? पांडु ने कुंती के रहते हुए माद्री से विवाह कर लिया तो उन्हें क्षयग्रस्त होकर अकाल मृत्यु के मुख में जाना पड़ा। रावण ने सीता का अपहरण करके पराई स्त्री घर में रखनी चाही। कीचक ने द्रोपदी पर कुदृष्टि डाली, अलाउद्दीन चित्तौड़ की रानी पद्मावती पर ललचाया। इन सबका क्या परिणाम हुआ ? यह किसी से छिपा नहीं है। कुमार्ग पर जिसने भी कदम बढ़ाया है उसने अपने लिए ही नहीं वरन् दूसरों के लिए भी संकट उत्पन्न किया है।

रावण, कंस, जरासंध, हिरण्यकश्यप, वेन, नहुष, दुर्योधन, औरंगजेब, नादिरशाह आदि नृशंस शासकों ने अपने मुँह पर कालिख पोती और अन्य अगणित लोगों को उत्पीड़न एवं यंत्रणा में रहने के लिए विवश किया। मुहम्मद गौरी अपनी महत्वाकांक्षायें पूरी करने के लिए क्या-क्या नहीं करता रहा ? क्या नेपोलियन और सिकन्दर ने असंख्यों निरपराधों के खून से धरती नहीं रंगी। कुमार्ग पर चलने वाले व्यक्ति सारे समाज को ही दुःख देते हैं। जयचंद ने देशद्रोह करके मुहम्मद गौरी को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाया तो उस कुकृत्य का दुष्परिणाम राष्ट्र को अद्यावधि सहना पड़ रहा है। दूसरी ओर एक व्यक्ति की देश भक्ति के कारण इंग्लैंड के मालामाल और समुन्नत हो जाने का भी उदाहरण मौजूद है। शाहजहाँ की पुत्री जहानआरा का इलाज एक अंग्रेज डॉक्टर ने किया था। उससे जब बादशाह ने पूछा कि आपने मेरी बेटी की जान बचाई है, आपको क्या पुरस्कार दूँ ? तो उसने अपने लिए कुछ न माँगते हुए इतना ही कहा कि मेरे देश से आने वाले माल पर से चुंगी माफ कर दीजिए। शाहजहाँ ने उसे स्वीकार कर लिया और भारत के बाजार इंग्लैंड के माल से पट गये। उस लाभ से इंग्लैंड जैसा पिछड़ा हुआ देश संसार का अग्रणी बन गया।

यदि दुर्बुद्धि किन्हीं श्रेष्ठ व्यक्तियों को अपने चंगुल में फँसा ले तो उन्हें भी पतन के गर्त में धकेल सकती है। विश्वामित्र ऋषि को प्रलोभन आया तो वे मेनका के जाल में फँस गये। पाराशर केवट कन्या पर मोहित हो गये और अपने को सँभाले न रह सके। चंद्रमा ने गुरु-पत्नी गमन का पाप कमाया और इंद्र जैसे देवता अहिल्या का सतीत्व नष्ट करने के कुकर्म में प्रवृत्त हुए। भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे विवेकशील, दुर्योधन की अनीति का समर्थन करने लगे। इससे प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति अच्छा या बुरा तभी तक रह सकता है, जब तक कि उसकी धर्मबुद्धि सावधान रहे। पाप-बुद्धि के प्रकोप से यदि मनुष्य संभल न सके तो वह स्वयं तो अंधकार के गर्त में गिरता ही है और भी दूसरे अनेकों को अपने साथ पाप पंक में ले डूबता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

४.४० राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?

धर्मबुद्धि के जागृत होने पर फतेसिंह, जोरावर जैसे छोटे-छोटे बालक दीवार में जीवित चुने जाना हँसी-खुशी स्वीकार कर सकते हैं। चोटी न कटने देने के बदले बोटी-बोटी कटवाने को प्रसन्नतापूर्वक तैयार होते हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक बनकर असंख्यों व्यक्ति सब प्रकार की बर्बादी सहन करते हैं और फाँसी के तख्तों पर गीता की पुस्तकें छाती से चिपकाये हुए चढ़ते चले जाते हैं। राम की सेना में रीछ-बंदर जैसे दुर्बल प्राणी अपने प्राणों की आहुति देने के लिए सम्मिलित होते हैं। एक छोटी गिलहरी तक अपने बालों में धूल भर-भर कर समुद्र में झाड़ देने का अनवरत् श्रम करके समुद्र को उथला करके राम की सेना का मार्ग प्रशस्त करती है। धर्मबुद्धि से दुर्बल व्यक्तियों में भी हज़ार हाथी का बल आ जाता है पर स्वार्थी बुद्धि तो सेनापतियों को भी कायर बना देती है। द्रौपदी को भरी सभा में नग्न किये जाते समय भीष्म और द्रोण जैसे यौद्धा नपुंसक बने बैठे रहे। उनके मुख से एक शब्द भी विरोध का न निकला। थोड़े-से मुट्ठी भर विदेशी आक्रमणकारी भारत में आये थे पर उनका संगठित मुकाबला करने के लिए यहाँ के शासक तैयार न हुए और पददलित होते चले गये। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई सहायता और आश्रय प्राप्त करने के लिए समर्थ राजाओं के पास जाती है पर अंग्रेजों के डर से वे उसे साफ इन्कार कर देते हैं। कितने ही भारतीय अंग्रेजों और मुसलमानों के नाक के बाल बने रहे और देश को गुलामी की जंजीरों से देर तक जकड़े रहने में अपनी स्वार्थ बुद्धि के कारण करने और न करने योग्य सब कुछ करते रहे। जहाँ राणा प्रताप और शिवाजी जैसे स्वाभिमानी जीवन भर भारतीय स्वतंत्रता के लिए तिल-तिल लड़ते रहे वहाँ खुशी-खुशी अपनी बहन-बेटियाँ देकर अपने लिए सुविधायें प्राप्त करने वाले भी कम न थे। राणा सांगा ८४ घाव होने पर भी युद्धरत रहे पर दूसरे लोग शत्रु से मिलकर अपना स्वार्थ साधने में ही लगे रहे।

मनुष्य हाड़-मांस का पुतला एक तुच्छ प्राणिमात्र है, उसमें न कुछ विशेषता है, न न्यूनता। उच्च भावनाओं के आधार पर वह देवता बन जाता है, तुच्छ विचारों के कारण वह पशु दिखाई पड़ता और निकृष्ट, पाप-बुद्धि को अपनाकर वह असुर एवं पिशाच बन जाता है। इस लोक में जो कुछ सुख-शांति, समृद्धि और प्रगति दिखाई पड़ती है, वह सब सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का परिचय है। जितनी भी उलझनें, पीड़ाएँ और कठिनाइयाँ दीखती हैं उनके मूल में कुबुद्धि का विष बीज ही फलता-फूलता रहता है। सैकड़ों-हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पुरानी ऐतिहासिक इमारतें लोहे की चट्टान की तरह आज भी अडिग खड़ी हैं पर हमारे बनाये हुए बाँध, स्कूल, पुल इधर बनकर तैयार नहीं हो पाते उधर बिखरने शुरू हो जाते हैं। सामान और ज्ञान दोनों ही आज पहले की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि के उपलब्ध हैं पर उस लगन की कमी ही दिखाई पड़ती है, जिसके कारण प्राचीन काल में लोग स्वल्प साधन होते हुए भी बड़ी-बड़ी मजबूत चीजें बनाकर खड़ी कर देते थे। कुतुबमीनार, ताजमहल, आबू के जैन मंदिर, मदुरा के मीनाक्षी के देवालय, अजंता की गुफायें, मिस्र के पिरामिड और चीन की दीवार समय के बौद्धिक ज्ञान का नहीं, उत्कृष्ट वस्तु निर्माण करने की भावना का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मशीनों, कारखानों, नहर, बाँध और सड़कों के आधार पर हमारी सुख-शांति नहीं बढ़ सकती। इनसे थोड़ी आमदनी बढ़ सकती है पर उस बढ़ी आमदनी से अनर्थ ही बढ़ने वाला है। देखा जाता है कि कारखानों के मजदूर और दूसरे श्रमिक ४० फीसदी तक पैसा शराब, तम्बाकू, सिनेमा आदि में खर्च कर डालते हैं। आमदनी बढ़ती चलने पर तरह-तरह की फिजूलखर्ची के साधन बढ़ते जाते हैं; जिन्हें ऊँची तनख्वाहें मिलती हैं, वे भी अभाव और कमी का रोना रोते रहते हैं। धनी लोगों के व्यक्तिगत एवं पारिवारिक सामाजिक जीवन में क्लेश और द्वेष भरा रहता है। पैसे के साथ-साथ दुर्गुण बढ़ते चलने पर वह दौलत और उलटी विपत्ति का कारण बनती चलती है। इसलिए आर्थिक उन्नति के साथ-साथ विवेकशीलता और सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि भी अवश्य रहनी चाहिए। यदि इस दिशा में उपेक्षा बरती गई तो प्रगति के लिए आर्थिक सुविधा बढ़ाने के जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, वे हमारी समस्याओं को सुलझा सकने में कदापि समर्थ न हो सकेंगे।

जब तक मजदूर ईमानदारी से काम न करेंगे, कोई कारखाना पनप न सकेगा। जब तक चीजें अच्छी और मजबूत न बनेंगी उससे किसी खरीदने वाले को लाभ न मिलेगा। जब तक विक्रेता और व्यापारी मिलावट, कम तौल-नाप, मुनाफाखोरी न छोड़ेंगे तब तक व्यापार की स्थिति दयनीय ही बनी रहेगी। सरकारी कर्मचारी जब तक अहंकार, रिश्वत, कामचोरी और घोटाला करने की प्रवृत्ति न छोड़ेंगे तब तक शासन-तंत्र का उद्देश्य पूरा न होगा। यह सत्प्रवृत्तियाँ इन वर्गों में अभी उतनी नहीं दिखाई देती जितनी होनी चाहिए। यही कारण है कि हमारी प्रगति अवरुद्ध बनी पड़ी है। साधनों की कमी नहीं है, आज जितना ज्ञान, धन और श्रम साधन अपने पास मौजूद है उसका सदुपयोग होने लगे तो सुख-सुविधाओं की अनेक गुनी अभिवृद्धि हो सकती है।

आत्म-कल्याण की लक्ष्य पूर्ति तो सर्वथा सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर है। ईश्वर का साक्षात्कार, स्वर्ग एवं मुक्ति को प्राप्त कर सकना केवल उन्हीं के लिए संभव है, जिनके विचार और कार्य उच्चकोटि के, आदर्शवादी एवं परमार्थ भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। कुकर्मी और पाप वृत्तियों में डूबे हुए लोग चाहे कितना ही धार्मिक कर्मकांड क्यों न करते रहें, कितना भजन-पूजन कर लें, उन्हें ईश्वर के दरबार में प्रवेश न मिल सकेगा। भगवान घट-घटवासी हैं, वे भावनाओं को परखते हैं और हमारी प्रवृत्तियों को भली प्रकार जानते हैं, उन्हें किसी बाह्य उपचार से बहकाया नहीं जा सकता। वे किसी पर तभी कृपा करते हैं जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावना की उत्कृष्टता को परख लेते हैं। उन्हें भजन से अधिक 'भाव' प्यारा है। भावनाशील व्यक्ति बिना भजन के भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है पर भावनाहीन व्यक्ति के लिए केवल भजन के बल पर लक्ष्य प्राप्ति संभव नहीं हो सकती।

लौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आत्मिक कल्याण के लिए उत्कृष्ट भावनाओं की अभिवृद्धि नितांत आवश्यक है। प्राचीन काल में जब भी अनर्थ के अवसर आये हैं, तब उनका कारण मनुष्यों की स्वार्थपरता एवं पाप-बुद्धि ही रही है और जब भी सुख-शांति का आनंदमय वातावरण रहा है तब उसके पीछे सद्भावनाओं का बाहुल्य ही मूल कारण रहा है। आज भी हमारे लिए वही मार्ग शेष है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न पहले था और न आगे रहेगा। सभ्य समाज की स्थिति जब-जब रही है, तब धर्मबुद्धि की ही प्रधानता रही है। हमें वर्तमान दुर्दशा से ऊँचे उठने के लिए जनमानस में गहराई तक धर्मबुद्धि की स्थापना करनी होगी। इसी आधार पर विश्वव्यापी सुख-शांति का वातावरण बन सकना संभव होगा। व्यक्तिगत स्वार्थ साधन की संकीर्णता छोड़कर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने का दृष्टिकोण जब तक अपनाया न जायेगा तब तक न तो व्यक्ति की उन्नति हो सकेगी और न समाज ही ऊँचा उठ सकेगा।

मिल-जुलकर आगे बढ़िए

मनुष्य ने अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत अधिक उन्नति की है। इस प्रगति में उसकी बौद्धिक विशेषता प्रधान कारण है। इसके बाद यदि कोई दूसरा उसके विकास में प्रमुख कारण रहा है तो वह है उसकी सामूहिकता एवं सहकारिता की प्रवृत्ति। साथ-साथ रहने से, मिल-जुल कर काम करने से ही सामाजिकता का, सभ्यता का, संस्कृति का विकास हुआ है।

अन्य प्राणी शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की तुलना में काफी बढ़े-चढ़े हैं। कई में चतुरता भी पर्याप्त मात्रा में है, पर वे परस्पर सहयोग करने की वृत्ति से रहित होने के कारण न तो उन्नति ही कर सके और न अपने अस्तित्व को ही सुरक्षित रख सके। सिंह जो किसी जमाने में भारी संख्या में सर्वत्र पाया जाता था, शक्ति की दृष्टि से वह सर्वोपरि कहलाता था, अब धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खोता चला जा रहा है। जिस तेजी से उसकी संख्या घट रही है उसे देखते हुए पशु-विद्या के ज्ञाता यह संभावना मानने लगे हैं कि कहीं सौ-दो-सौ वर्षों के अंदर ही सिंह का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से पूर्णतया समाप्त न हो जाय। जिन जीवों में परस्पर सहयोग की न सही साथ-साथ झुंड बनाकर रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है, वे इस कठिन समय में भी कम से कम अपने अस्तित्व की रक्षा किये हुए हैं। बंदर मनुष्य को बहुत सताता है, वह उसकी आँखों में खटकता है, फिर भी परस्पर सहकारिता के बल पर वह घुड़की देने की अब भी हिम्मत करता है। कुत्ते परस्पर लड़ते हैं इसलिए उनका नाम ही तिरस्कार सूचक बन गया। बंदर अब भी पुजते हैं और देवता कहलाते हैं।

जीव-जगत में संगठन की शक्ति को हम आसानी से देख सकते हैं। चींटियों का झुंड जब चिपट जाता है तो बड़े साँप को भी जीवित खा जाता है। टिड्डियों का दल, मनुष्य की रखवाली को व्यर्थ बनाता हुआ सारी फसल को चट कर जाता है। हाथियों और बंदरों के झुंड निर्भयतापूर्वक जिधर चाहते हैं उधर बढ़ते जाते हैं, उनमें से प्रत्येक को यह विश्वास होता है कि कठिन समय आने पर साथियों का सहयोग सहज ही उपलब्ध हो जायगा। झुंड बाँधकर चरने वाली गायें आक्रमणकारी बाघ की दाल नहीं गलने देतीं।

सूत के एक धागे को कोई बच्चा भी आसानी से तोड़ सकता है पर जब वे सौ-पचास की संख्या में इकट्ठे होकर रस्सी बन जाते हैं तो बड़े पहलवान के लिए भी उसे तोड़ना कठिन होता है। एक सींक का कोई मूल्य नहीं, उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती, पर जब कितनी ही सीके मिलकर एक बुहारी बन जाती है तो उससे घरों की सफाई बड़े सुचारु रूप में होती रहती है। छोटी-छोटी पानी की बूँदें जब तक अलग हैं, तब तक उन्हें जमीन सोख लेती है, हवा सुखा देती है लेकिन जब वे इकट्ठा हो जाती हैं तो नदी, तालाब, समुद्र के रूप में अपनी प्रचंड शक्ति का परिचय देती हैं। जो जमीन अलग-अलग बूँदों को क्षण भर में सोख लेती थी वही अब तालाब के तल में या किनारे पर पतली कीचड़ के रूप में परास्त पड़ी दिखाई पड़ती है। एक सिपाही कुछ नहीं कर सकता पर जब उसका पूरा दल सेना के रूप में कहीं चढ़ाई करता है तो सामने वालों के छक्के छूट जाते हैं।

कुछ डाकू एक गिरोह बनाकर जब सक्रिय होते हैं तो बड़े प्रदेश की लाखों जनता को आतंकित कर देते हैं। थोड़े-से संगठित षड्यंत्रकारी बड़ी से बड़ी सुव्यवस्था को खतरे में डाल देते हैं। थोड़े से गुंडे बदमाशों की चांडाल-चौकड़ी से भले आदमी डरते और बचते रहते हैं। इस प्रभाव में उन व्यक्तियों का मूल्य नहीं, उनकी सामूहिकता ही प्रधान है। ये डाकू, गुंडे, बदमाश, षड्यंत्रकारी, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से वैसे ही होते हैं जैसे अन्य साधारण नागरिक, उनमें डराने जैसी कोई बहुत बड़ी विशेषता नहीं होती। वे अकेले हों तो उनकी मरम्मत आसानी से हो सकती है। पर चूँकि उनका एक गिरोह होता है, यह गिरोहबंदी ही खतरे का, डराने का प्रधान अस्त्र है। देशों और जातियों का इतिहास भी इसी प्रकार का है। इतिहास साक्षी है कि जो लोग संगठित थे वे उन्नति के मार्ग पर बढ़ते चले गये और असंगठित थे, फूट में ग्रस्त थे, उन्हें अवनति एवं पराजय का मुख देखना पड़ा।

भारत किसी समय बड़ा गौरवशाली, शक्ति-सम्पन्न एवं उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ देश था, तब यहाँ के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग संगठन का महत्व समझते थे, एक-दूसरे के दुःख-सुख में साथी ही न थे वरन् परस्पर सहायता करके एक-दूसरे को आगे बढ़ाने में सुख-संतोष अनुभव करते थे। संसार की सारी प्रगति और समृद्धि संगठन के आधार पर अवलंबित है इस गुरु मंत्र को यहाँ का हर नागरिक जानता था और उसी आदर्श के अनुरूप अपनी सारी योजनाएँ बनाता था। यह प्रवृत्ति जहाँ बढ़ती है, वहाँ स्वर्गीय सुख-शांति का स्वयं ही अवतरण होता है जैसा कि पूर्व काल में इस देश में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता था। धीरे-धीरे जब इस मनोवृत्ति का ह्रास हुआ, लोग व्यक्तिगत लाभ को, स्वार्थपरता को महत्त्व देने लगे तो परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, शोषण, अपहरण, लूट-खसोट, छल, कपट, फूट-फिसाद का बढ़ना भी स्वाभाविक था—यह विष बीज, जहाँ बोये गये होंगे वहाँ सत्यानाश के फल ही उगेंगे। असंगठित, फूट-फिसाद में, आपापूती और ईर्ष्या, द्वेष के दलदल में जब हम फँस गये तो मुट्ठी भर विदेशी आक्रमण चढ़ दौड़े और इतने विशाल देश पर जादू की तरह कब्जा कर लिया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है असंगठित समाजों में सदा से यही दुर्गति होती आई है।

ऋषियों के बोध-सूत्र हमें सदा से सजग करते रहे हैं कि—

"संगच्छध्वं, संवदध्वं, संवोमनांसि जानताम् ।
देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते । ।"

—ऋग्वेद १०/१५/१२

'हे मनुष्यो ! साथ-साथ मिलकर चलो। मिलकर बोलो, तुम्हारी मानसिक भावनाएँ समान हों। जैसे पहले देवता लोग मिल-जुलकर विचार और कार्य करते थे, वैसा ही तुम भी करो।'

जब तक इन अमृत ऋचाओं का हम महत्व समझते रहें, उनका आचरण करते रहे, तब तक हम देव समाज की तरह गर्वोन्नत मस्तक से विश्व का नेतृत्व करते रहें। जब इस महाशक्ति का महत्व भूले, उसकी उपेक्षा की तो मणिहीन सर्प के समान निस्तेज और पददलित हो गये। व्यक्तिगत उन्नति की, शक्ति और समृद्धि का कोई विशेष मूल्य नहीं है, वह बालू के किले की तरह एक धक्के में ढह सकती है, कोई एक आदमी अमीर या पहलवान होकर अपने व्यक्तिगत शौक-मौज में थोड़ी-सी वृद्धि कर सकता है पर जातीय जीवन की प्रतिष्ठा तभी बढ़ेगी, जब सारा समाज संगठित हो। हमारी वर्तमान राजनीतिक स्वतंत्रता इस संगठन के बल पर ही प्राप्त हुई है।

इस तथ्य को हमारे धर्म-इतिहास ग्रंथों में पग-पग पर उपस्थित किया गया है। रावण के अत्याचारों से परेशान ऋषियों ने अपना-अपना खून निकालकर एक घड़े में एकत्रित किया उसके द्वारा सीता उत्पन्न हुई जो असुर विनाश का प्रधान कारण बनी। देवता लोग जब असुरों से हारने लगे तब प्रजापति ने उनकी थोड़ी-थोड़ी शक्ति को एकत्रित करके एक सामूहिक शक्ति दुर्गा बनाई, वह दुर्गा ही हाथ में खप्पर और तलवार लेकर असुरों का मान मर्दन करने में सफल हो सकी। भगवान राम ने लंका पर चढ़ाई की, इतनी बड़ी शक्ति को परास्त किया, उस विजय में रीछ, वानरों के सहयोग को राम ने श्रेय प्रदान किया है। गोवर्धन पहाड़ उठाया गया पर कृष्ण के साथ गोप भी अपनी लाठी उस पहाड़ के नीचे लगाये हुए थे। अश्वमेध के माध्यम से असंगठित हो जाने वाले राजाओं को एकछत्र शासन के अंतर्गत पुनः संगठित किया जाता था। कुंभ आदि पर्वों के माध्यम से सारे देश के साधु-ब्राह्मण व्यापक समस्याओं पर विचार करने और आगामी कार्यक्रम बनाने के लिए एकत्रित होते थे। धर्म-प्रचार के लिए वे बिखर जाते थे पर फिर तीन-तीन वर्ष बाद हरिद्वार, वृंदावन, प्रयाग और उज्जैन के कुंभ पर्वों पर एकत्रित होकर अपने संगठन-सूत्र को पुनः-पुनः सजीव करते रहते थे। वे जानते थे कि अलग-अलग खिचड़ी पकाने से न धर्म-जागृति रह सकती है और न लोक में सुख-शांति कायम रह सकती है। इसलिए न केवल जन साधारण को ही संगठित करना है वरन् हम साधु, ब्राह्मणों को भी एक सूत्र में पिरोयी हुई माला की तरह संघबद्ध रहना है।

भगवान बुद्ध के तीन प्रधान उपदेशों—धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि—में धर्म और विवेक की शरण में जाने के समान ही संगठित होने की महत्ता का भी प्रतिपादन किया है। वह संघ बल ही था जिसने सारे एशिया में उस साधनहीन युग में भी बौद्ध धर्म का झंडा गाढ़ दिया। ईसाइयों के संगठित प्रयत्नों का ही फल है कि दुनिया की आधी से अधिक जनसंख्या को पिछले दो सौ वर्षों में ईसाई बना लिया गया। शास्त्र ने इस युग का सर्वोपरि माध्यम संगठन को ही घोषित करते हुए कहा है—'संघौ शक्ति कलौ युगे।' यह वोट का युग है। वोट की चोट से वह राजसत्ता हथिया ली जाती है जो शास्त्रों के प्रचंड संघर्ष से भी प्राप्त होनी संभव नहीं। राजनैतिक पार्टियाँ, सत्ता हथियाने के लिए वोट का क्या मूल्य है, यह भली प्रकार जानती हैं। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक, सभी क्षेत्रों में आज संगठन की तूती बोलती है। जिसकी पीठ पर संघ-बल है उसके पीछे अन्य बल उसी प्रकार फिरते हैं जैसे सूर्य के आस्-पास नवग्रह परिक्रमा लगाया करते हैं।

हम आपस में मिल-जुलकर बैठना सीखें, विचार-विनिमय की आदत डालें, अपने अतीत और भविष्य का चिंतन करते हुए वर्तमान का आधार नियोग करें, परस्पर प्रेम, एकता और संगठन के महत्व को स्वीकार करें, एक-दूसरे की उन्नति में सहायक बनकर सर्वांगीण उन्नति के पथ पर तेजी से अग्रसर हों और जो अविवेकपूर्ण कारण हमारी एकता में बाधक बने हुए हैं, उन्हें बीन-बीन कर फेंक दें, यही उचित है। यों संगठन बल सदा ही महत्त्वपूर्ण था पर इस युग में तो वही सर्वोपरि शक्ति है, उस तथ्य को हम जितनी गहराई से हृदयंगम कर लें उतना ही उत्तम है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारे हर कार्य में सामूहिकता की, समाज हित की दृष्टि प्रधान रहे, अपना स्वार्थ साधें पर वह कहीं भी समाज हित का विरोधी न हो। अलग डेढ़ चावल की खिचड़ी पकाना, अकेले बैठना, अकेले खाना, अकेले लाभ सोचना अनात्मवाद है, असुरता है। यह वृत्ति हम भारतीय तत्वज्ञान के आदर्शों के मानने वालों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त एवं अशोभनीय है। मिल-जुलकर रहने, साथ-साथ काम करने, सबके हितों का एक केन्द्र पर केन्द्रीकरण करने से ही हमारा कल्याण है। आत्मा लघु है अणु है—उसे परम आत्मा, परमात्मा, विभु बना देने में ही आत्मोन्नति का परम लक्ष्य सन्निहित है।

सबके हित में अपना हित

सामाजिक न्याय का सिद्धांत ऐसा अकाट्य तथ्य है कि इसकी एक कदम के लिए भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। एक वर्ग के साथ अन्याय होगा तो दूसरा वर्ग कभी भी शांतिपूर्ण जीवनयापन न कर सकेगा। लोहे की छड़ को एक सिरे पर गरम किया जाय तो उसकी गरमी धीरे-धीरे दूसरे सिरे तक भी पहुँच जायगी। सारी मनुष्य जाति एक लोहे के छड़ की तरह है, उसको किसी भी स्थान पर गरम या ठंडा किया जाय तो दूसरे भागों पर भी उसका प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ेगा। सामाजिक न्याय सबको समान रूप से मिले, प्रत्येक मनुष्य मानवोचित अधिकारों का उपयोग दूसरों की भाँति ही कर सके ऐसी स्थिति पैदा किये बिना हमारा समाज शोषण मुक्त नहीं हो सकता। आर्थिक समता की बात समाजवादी विचारधारा के द्वारा राजनीतिक स्तर पर बड़े जोरों से कही जा रही है। साम्यवादी देश उग्र रूप से और समाजवादी देश मंथर गति से इसी मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं, अध्यात्मवाद की शिक्षा भी सनातन काल से यही रही है। यहाँ परिग्रह को सदा से पाप माना जाता रहा है। सामान्य जनता के स्तर से बहुत अधिक सुख-साधन प्राप्त करना या धन सम्पत्ति जमा करना यहाँ सदा से पाप कहा मया है और यही निर्देश किया गया है कि सौ हाथों से कमाओ भले ही पर उसे हजार हाथों से दान अवश्य कर दो। अर्थात् अगणित बुराइयों को जन्म देने वाली संग्रहवृत्ति को पनपने न दो।

कोई व्यक्ति अपने पास सामान्य लोगों की अपेक्षा अत्यधिक धन तभी संग्रह कर सकता है, जब उसमें कंजूसी, खुदगर्जी, अनुदारता और निष्ठुरता की भावना आवश्यकता से अधिक मात्रा में भरी हुई हो। जबकि दूसरे लोग भारी कठिनाइयों के बीच अत्यन्त कुत्सित और अभावग्रस्त जीवन यापन कर रहे हों, उनके बच्चे शिक्षा और चिकित्सा तक से वंचित हो रहे हों तब उनकी आवश्यकताओं की ओर से जो आँखें बंद किये रहेगा, किसी को कुछ भी न देना चाहेगा, देगा तो राई रत्ती को देकर पहाड़-सा यश लूटने का अवसर मिलेगा तो ही कुछ देगा, ऐसा व्यक्ति ही धनी बन सकता है। सामाजिक न्याय का तकाजा यह है कि हर व्यक्ति उत्पादन तो भरपूर करे पर उस उपार्जन के लाभ में दूसरों को भी सम्मिलित रखे। सब लोग मिल-जुलकर खायें-जिएँ और जीने दें। दुःख और सुख को सब लोग मिल-बाँटकर भोगें। यह दोनों ही भार यदि एक के कंधे पर आ पड़ते हैं तो वह दबकर चकनाचूर हो जाता है। पर यदि सब लोग इन्हें आपस में मिलकर बाँट लेते हैं तो किसी पर भार भी नहीं पड़ता, सबका चित्त हलका रहता है और समाज में विषमता का विष भी उत्पन्न नहीं हो पाता।

जिस प्रकार आर्थिक समता का सिद्धांत सनातन और शाश्वत है, उसी प्रकार सामाजिक समता का—मानवीय अधिकारों की समता का आदर्श भी अपरिहार्य है। इसको चुनौती नहीं दे सकते। किसी जाति, वंश या कुल में जन्म लेने के कारण किसी मनुष्य के अधिकार कम नहीं हो सकते और न ऊँचे माने जा सकते हैं। छोटे या बड़े होने की, नीच या ऊँच होने की कसौटी गुण, कर्म, स्वभाव ही हो सकते हैं। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण किसी का न्यूनाधिक मान हो सकता है। पर इसलिए कोई कदापि बड़ा या छोटा नहीं माना जा सकता कि उसने अमुक कुल में जन्म लिया है। इस प्रकार की अविवेकपूर्ण मान्यताएँ जहाँ भी चल रही हैं, वहाँ कुछ लोगों का अहंकार और कुछ लोगों का दैन्य-भाव ही कारण हो सकता है। अब उगती हुई दुनिया इस प्रकार के कूड़े-कवाड़े जैसे विचारों को तेजी से हटाती चली जा रही है। अफ्रीका और अमरीका में जहाँ गोरी, काली जातियों में नीच-ऊँच की भावना मौजूद है, उनका विरोध विश्व का सारा लोकमत कर रहा है। विचारशील क्षेत्रों में इस भेद-भाव की भरपूर भर्त्सना की जा रही है और यह निश्चित है कि यह भेद-भाव चंद दिनों का मेहमान है। सामाजिक समता की मान्यता को ही सर्वत्र स्वीकार किया जायगा। भारत में जातियाँ, नियत कामों और व्यवसायों को वंश-परंपरा के साथ अधिक दक्षता के साथ उन्नत करते चलने की दृष्टि से बनी थीं। उनके निर्माताओं ने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि एक दिन इस पुनीत परम्परा में नीच-ऊँच का विष भी मिल जायगा। पर आज तो यही विडम्बना चल रही है। गुण, कर्म, स्वभाव की उपेक्षा करके लोग केवल वंश और जाति के आधार पर ऊँच या नीच होने की मान्यता माने बैठे हैं। इस निरर्थक मूढ़ता का अंत होना ही है। विवेक का उदय जैसे-जैसे होता जायगा, यह अंधकार नष्ट होने ही वाला है। समय रहते हम अपनी समझदारी का परिचय देते हुए कुछ पहले ही छोड़ सकें तो यह एक प्रशंसा की बात ही होगी।

स्त्रियों के बारे में पुरुषों ने जो ऐसी मान्यता बना रखी है कि वे उनकी गाय, भैंस जैसी सम्पत्ति हैं, वह बहुत ही अनुपयुक्त है। कुछ शारीरिक अवयवों में भिन्नता रहने मात्र से नर और नारी में से किसी को हीनता या महत्ता नहीं मानी जा सकती है। इतिहासकार जानते हैं कि लाखों वर्षों तक संसार में 'मातृकुल' पद्धति का प्रचलन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहा है। माताएँ अपने परिवार की स्वामिनी होती थीं, नर उन्हीं के अनुशासन में रहते थे। अभी भी भारत में केरल प्रांत में मातृकुलों का प्रचलन है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्री बड़ी और पुरुष छोटा है। यह सुविधा और व्यवस्था की बात है। उपार्जन कार्य जिसके हाथ होता है वह इस पूँजीवादी युग में स्वतः बड़ा माना जाने लगता है। आमतौर से पुरुष कमाते हैं, वहाँ पुरुषों को उनका अनुशासन मानना पड़ता है, यह अर्थतंत्र की एक प्रतिक्रिया मात्र है। मानवीय अधिकारों की मूलभूत आस्था पर इसका प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। स्त्रियाँ पुरुषों की दास हैं—यह मान्यता किसी भी प्रकार सामाजिक न्याय के अनुकूल नहीं। परस्पर प्रेम और सद्भाव से तो कुत्ते, घोड़े तक मनुष्य के ऊपर प्राण निछावर करने को तैयार हो जाते हैं। फिर स्त्री, पुरुष जिनकी अपूर्णता ही एक-दूसरे के द्वारा पूर्ण होती है। प्रेम और सौजन्य होने पर दो शरीर एक आत्मा बनकर क्यों न रहेंगे ? यह कार्य बंधनों और प्रतिबंधों द्वारा संभव नहीं हो सकता।

हमें हर मानव प्राणी के मौलिक अधिकारों को स्वीकार करना ही चाहिए। हर व्यक्ति समान नागरिक अधिकार लेकर जन्मा है, इस तथ्य को स्वीकार किया ही जाना चाहिए। जब तक उनके समाजिक अधिकारों को स्वीकार न किया जायगा, उन्हें कैदखाने का पशुमात्र बनाकर रखा जायगा, तब तक हमारी आधी जनता गुलाम की गुलाम बनी रहेगी। राजनैतिक स्वतंत्रता मिलने से हमें समता और स्वाधीनता के अधिकार मिले हैं पर अभी भी स्त्रियों के रूप में आधा भारत उस अधिकार से वंचित है। शूद्रों की और एक चौथाई जनता भी इन अधिकारों से वंचित है। इसे यों कहा जा सकता है कि उच्चवर्ण के पुरुषों की, जिनकी संख्या मूल आबादी की एक चौथाई मात्र है, मानवीय स्वाधीनता के अधिकार मिले हैं। तीन चौथाई जनता को भी यह अधिकार मिलने चाहिए। इसके बिना हमारी एक चौथाई स्वाधीनता सर्वथा अपूर्ण और अपर्याप्त ही बनी रहेगी।

यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि हम समाज के अभिन्न अंग हैं। जिस प्रकार एक शरीर से सम्बद्ध सभी अवयवों का स्वार्थ परस्पर संबद्ध है, उसी प्रकार सारी मानव जाति एक ही नाव में बैठी हुई है। घड़ी का एक पुर्जा खराब हो जाने पर सारी मशीन ही बंद हो जाती है। शरीर का एक अंग पीड़ित होने पर उसका प्रभाव अन्य अवयवों पर पड़ता है। उसी प्रकार हम सब एक ही सूत्र में पिरोये हुए मनकों की तरह परस्पर संबद्ध हैं। प्रत्येक कड़ी के ठीक तरह जुड़े रहने से ही जंजीर की मजबूती है। उनका बिखरना शुरू हो जाय तो जंजीर नाम की कोई चीज न रहेगी। तिनके पृथक्-पृथक् दिशा में अपना स्वार्थ लेकर चल पड़ें तो रस्सी कैसे बनी रह सकेगी ? सींकें यदि आत्मसमर्पण न करें तो बुहारी कैसे बनेगी ? पानी की बूँदें अपने-अपने स्वार्थ अलग सोचें तो इतना विशाल समुद्र कैसे बन सकेगा ? जाति और राष्ट्र का अस्तित्व इसीलिए है कि विशाल जनता उसमें आत्मसात् हुई होती है। पृथकता की भावना रखने वाले, भिन्न स्वार्थों, भिन्न आदर्शों और भिन्न मान्यताओं वाले लोग कहीं बहुत बड़ी संख्या में भी इकट्ठे हो जायें तो वे एक राष्ट्र, समाज, एक जाति नहीं बन सकते। एकता के आदर्शों में बँधे हुए और उस आदर्श के लिए सब कुछ निछावर कर देने की भावना वाले व्यक्तियों का समूह ही समाज या राष्ट्र है। शक्ति का स्रोत यही है। परस्पर मिल-जुल कर ऐसी भावना का विकास करने से ही हमारी सर्वांगीण प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

अपने सीमित वर्ग के स्वार्थ की बात सोचना अध्यात्मवादी आदर्शों के विपरीत है, हमें सबके हित में अपना हित सोचना चाहिए। शरीर का एक अंग बहुत बड़ा हो जाय तो वह बेडौल लगेगा। कुछ लोग धनी, समृद्ध, संपन्न, धर्मात्मा, ज्ञानवान, बलवान बन जायें तो इतने मात्र से किसी बड़े उद्देश्य की पूर्ति होने वाली नहीं। हम सब सुखी रहेंगे, सम्पन्न बनेंगे, स्वस्थ रहेंगे, सच्चरित्र बनेंगे तो ही प्रत्येक की सुख-शांति सुरक्षित रह सकेगी। चोर, व्यभिचारी और हत्यारों के बीच में निवास करने वाला कोई सज्जन व्यक्ति भी अपनी शांति सुरक्षित नहीं रख सकता। फिर सामाजिक अव्यवस्था के बीच व्यक्तिगत स्वार्थ साधन की बात सोचते रहने पर भी हम कहाँ कुछ लाभ कमा सकेंगे और यदि कमा लिया तो उसे कहाँ सुरक्षित रख सकेंगे ? कहाँ उसका उपभोग कर सकेंगे ?

व्यक्तिगत स्वार्थ को सामूहिक स्वार्थ के लिए उत्सर्ग कर देने का काम ही पुण्य, परमार्थ है, इसी को देशभक्ति, त्याग, बलिदान, महानता आदि नामों से पुकारते हैं। इसी नीति को अपनाकर मनुष्य महापुरुष बनता है, लोकहित की भूमिका सम्पादन करता है, अपने आदर्श से अनेकों को प्रेरणा देता है और अपने समाज का मुख उज्ज्वल करता है। मुक्ति और स्वर्ग का रास्ता भी यही है। भगवान को प्राप्त करने की मंजिल भी यही है। आत्मा की शांति और सद्गति भी उसी पर निर्भर है। इसके विपरीत दूसरा रास्ता वह है जिसमें व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सारे समाज का अहित करने के लिए मनुष्य कटिबद्ध हो जाता है। दूसरे चाहे जितनी आपत्ति में फँस जायें, चाहे कितनी हानि और पीड़ा उठावें पर अपने स्वार्थ के लिए किसी की कुछ परवाह न की जाय। अपराध मनोवृत्ति इसी को कहते हैं। नरक का रास्ता यही है। देशद्रोह, समाजद्रोह, धर्म द्रोह इसी को कहते हैं। आत्महनन का, आत्मपतन का मार्ग यही है। इसी पर चलते हुए व्यक्ति नारकीय यंत्रणा से भरे हुए और सर्वनाश के गर्त में गिरता है।

सबके स्वार्थ में अपने स्वार्थ का समर्पण करके, व्यक्तिगत स्वार्थ से सामूहिक स्वार्थ का अधिक ध्यान रखने का आदर्श, युग निर्माण संकल्प में इसीलिए सन्निहित रखा गया है कि हमारा सर्वांगीण विकास संभव हो सके। सब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोग परस्पर मिल-जुलकर एक-दूसरे को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने, सुखी बनाने में सहयोग करेंगे तो वह युग समीप ही दिखाई देगा जिसकी पुनः स्थापना के लिए हम कटिबद्ध हुए हैं।

हम एकता की ओर बढ़ें

अनेकता में एकता देखने की हमारी सांस्कृतिक उदारता दार्शनिक दृष्टि से सराहनीय ही मानी जा सकती है। परस्पर भारी मतभेद रखने वाले, यहाँ तक कि घोर मतभेद रखने वाले संप्रदाय और धर्म प्रचारक भी यहाँ अपना-अपना काम शांतिपूर्वक करते रहे हैं और कर रहे हैं। अपनी इस विशेषता को कायम रखते हुए भी हमें यह ध्यान रखना ही होगा कि कोई समाज उतना ही संगठित रह सकता है जितनी कि उसमें एकता हो। संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यही प्रतीत होता है कि भाषा, भेष और भाव की एकता ही लोगों को एक संगठन सूत्र में बाँध रही है। जहाँ जितनी भिन्नता बढ़ी है, वहाँ उतना ही विघटन हुआ है। दार्शनिक दृष्टि से भिन्नता में एकता देखना एक प्रशंसनीय उदारता मानी जा सकती है पर सामाजिक दृष्टि से, मानवीय मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर यही मानना पड़ेगा कि भिन्नता एक हद तक ही उपयोगी हो सकती है। यदि उसका विस्तार बढ़ेगा तो निश्चित रूप से विसंगठन ही बढ़ेगा और ऐसा समाज कभी भी सशक्त न हो सकेगा। विचार भिन्नता के कारण परस्पर उपेक्षा बढ़ेगी और अनैक्य एवं विरोध की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगेंगी।

भारतीय धर्म की उदारता ने अनेकता को जो छूट दी थी उसका व्यतिक्रम होने से हमें भारी सामाजिक क्षति उठानी पड़ी है। धर्म, संप्रदाय एवं जाति-पांति के नाम पर हमारा इतना विघटन हुआ है कि कई बार तो हिन्दू-समाज को एक समाज मानने तक में संकोच होने लगता है। संसार के अन्य देशों पर दृष्टिपात करने से उनकी आंतरिक एकता को बनाये रहने में कुछ मूलभूत तथ्य काम करते दीखते हैं। भाषा, वेष और भाव के बंधनों में बँधे रहकर ही वे एकता का मधुर फल प्राप्त कर सकने में समर्थ हो रहे हैं। योरोपियन लोगों की एक ही पोशाक है। कोट, पेंट, टाई, टोप पहने ही सब लोग दिखाई पड़ेंगे। यों सिलाई में थोड़ा फर्क हो सकता है पर मोटे तौर पर सबकी पोशाक एक-सी होगी। रोमन लिपि और अंग्रेजी भाषा ने पृथ्वी के एक बड़े क्षेत्र को एकता के सूत्र में बाँधा है। ईसाई, धर्म, बाइबिल, गिरजा बपतिस्मा और ईश्वर पुत्र ईसा की मान्यता ने संसार के आधे भाग को जातीय भावनाओं में आबद्ध करके उनमें एकता और संगठन की परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं।

इस्लामी संस्कृति की यही अपनी विशेषता है और उनकी धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताएँ एक-सी होने के कारण संसार भर में जहाँ-कहीं भी इस प्रकार के लोग हैं भ्रातृ भाव का उत्साह अनुभव करते हैं। चीन, रूस, जापान आदि प्रगतिशील राष्ट्रों में भी वहाँ की एकता का कारण तलाश करने पर यही तत्व काम करते दिखाई पड़ते हैं। भारत का जातीय विसंगठन उस भिन्नता के कारण हुआ जो उसके भीतर धर्म, संप्रदाय, जाति-पाँति एवं पूजा पद्धतियों की भिन्नता के कारण पैदा हुई। दार्शनिक दृष्टि से यह भिन्नता भले ही उदारता का चिन्ह मानी जाय पर सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह हेय और हानिकारक ही सिद्ध होती है। 'अति' हर बात की बुरी होती है। विचार भिन्नता के आधार पर यदि सब लोग मनमानी करने लगें तो फिर एकता का स्थिर रह सकना कभी भी संभव न होगा।

पिछले एक हजार वर्ष का दुःखद इतिहास इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। मुसलमान और योरोपियन आक्रमणकारियों की संख्या बहुत थोड़ी थी। इतने बड़े देश में मुट्ठी भर आक्रमणकारियों की जादू जैसी सफलता का कारण हमारी आंतरिक विसंगठनकारी प्रवृत्तियाँ ही हैं। आक्रमणकारियों ने जिस राज्य पर हमला किया दूसरे लोग अपने संप्रदाय, जाति या उपास्य की भिन्नता के कारण उस विजित की पराजय पर हर्ष मनाते रहे, उपेक्षा करते रहे। इसी क्रम से एक-एक करके सब राज्य विदेशी गुलामी के चंगुल में जकड़ते चले गये। नृशंस अत्याचारों को खून के आँसू पी-पीकर लोग देखते रहे, उस संगठित प्रतिरोध की कोई व्यवस्था न हो सकी। भावानात्मक दृष्टि से विसंगठित राष्ट्र भला कर भी क्या सकता था, उसकी दुर्बलता स्वाभाविक थी। दुर्बल के सामने पराजित होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं होता। मुसलमान आक्रमणकारियों को उनकी सशक्तता ने नहीं, यहाँ की फूट और विश्रृंखलता ने सफलता की जयमाला पहनाई।

अंग्रेज, पुर्तगाली, फ्रांसीसी यहाँ व्यापारी बनकर आये थे। यहाँ की विविधता में उनने फूट को परखा और केवल कुटिलता के आधार पर इतने बड़े देश की चुटकी बजाते जितनी देर में हड़प लिया। धन्यवाद भगवान को इसी बात का है कि उसने जातीयता की चेतना दी और गाँधीजी ने संगठित राष्ट्र के रूप यहाँ की जनता को खड़ा कर दिया तो उस एकता की शक्ति ने ही गुलामी से मुक्ति दिलाने का वातावरण बनाया। यदि उस प्रकार की चेतना उत्पन्न न हुई होती तो कौन जाने कितनी शताब्दियों तक हमें पराधीनता के बंधनों में बँधा रहना पड़ता।

राजनैतिक स्वतंत्रता की भी अपना महत्त्व है पर उसका वास्तविक लाभ उसी समाज को मिल सकता है जो आंतरिक दृष्टि से सशक्त हो। सशक्तता का सर्वोपरि माध्यम एकता ही तो है। जिन लोगों में एकता होगी वे ही सशक्त होंगे जिनके भीतर मतभेद बढ़े-चढ़े होंगे, जिन्हें प्रेम और भ्रातृत्व पैदा करने वाले तत्वों की कमी का सामना करना पड़ा रहा होगा, वे धन, शास्त्र, व्यापार, उद्योग, शिक्षा आदि क्षेत्रों में कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों जातीय दृष्टि से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बल ही रहेंगे और यह दुर्बलता किसी छोटी-सी कठिनाई के आने पर ही फिर गुलामी में परिणित हो सकती है।

इस युग में संगठन को ही शक्ति माना गया है और संगठन का तत्व-ज्ञान यही है कि वह समान गुण-धर्म वाले पदार्थों या मनुष्यों में संभव होता है, जिन्हें एकता का महत्व विदित है, जो एकता की शक्ति को जानते हैं और उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं, उन्हें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि भिन्नता उत्पन्न करने वाले तत्वों को जितना घटाया जा सकता हो घटाया जाय और समानता एवं एकता उत्पन्न करने वाली संभावनाओं को जितना बढ़ाया जा सकता हो उतना बढ़ाया जाय।

परस्पर प्रेम, सद्भाव, उदारता आदि आध्यात्मिक गुणों के कारण ही सच्ची एकता संभव होती है। इसलिए गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से जनमानस को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ओर अग्रसर किया जाना चाहिए, साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ भी एकता में सहायता करने वाली ही उत्पन्न की जायें। भिन्नता का बाह्य-वातावरण आंतरिक-एकता में सहायक नहीं बाधक ही सिद्ध होता है। भाषा, भेष, भाव की एकता बाहरी ही क्यों न कही जाय, आंतरिक-एकता में बहुत सहायता पहुँचाती है। जातिवाद, भाषावाद, प्रांतवाद, संप्रदायवाद को जो विकृत रूप आज देखा जाता है, उसके मूल में भी समान लोगों का एकताबद्ध होकर दूसरे प्रकार के लोगों के साथ पक्षपात करने की नीति ही पाई जाती है। पक्षपात की नीति की हमें निंदा करनी चाहिए पर साथ ही मानव स्वभाव की इस विशेषता को भी समझ लेना चाहिए कि बाह्य समानता भी लोगों को परस्पर समीप लाने में बहुत सहायक होती है। अनेक भिन्नताएँ होते हुए भी लोग जाति, भाषा, प्रांत आदि के नाम पर जब गुटबंदी कर लेते हैं तो इन तथ्यों के व्यापक बनाने पर व्यापक संगठन की संभावना क्यों न बनेगी ?

अपना देश लम्बी गुलामी के बाद राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में समर्थ हुआ है। प्रगति की ओर अनेक दिशाओं में अग्रसर होने का कार्य करना शेष है। इसके लिए आवश्यक शक्ति का संचय करते हुए यह ध्यान रखना ही चाहिए कि बाह्य साधनों की नहीं, आंतरिक एकता और पुरुषार्थ की प्रवृत्ति ही सर्वोपरि साधन हो सकती है, इसके बिना बाह्य उपकरणों के होते हुए भी भीतरी दुर्बलता के कारण प्रगति का कार्य अवरुद्ध ही बना रहेगा। परिश्रम और कल्पनापूर्वक बनाई गई योजनाएँ भी सफल न हो सकेंगी।

भारतीय राष्ट्र को एकता और अशक्तता के लिए प्राणप्रण से प्रयत्न करना चाहिए। लोग अपनी प्रांतीय और क्षेत्रीय भाषाओं का प्रसन्नतापूर्वक उपयोग करें पर राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचलन अधिकाधिक बढ़ाने का भी ध्यान रखा जाय। कट्टरपंथ और संकीर्णता से दायरा छोटा रह जाता है। उदारता और व्यापकता को अपनाने से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य पूरा होगा। भाषा के माध्यम से ही हम सोचते-विचारते, विचारों का आदान-प्रदान करते और एक-दूसरे को समझने में समर्थ होते हैं। एक राष्ट्र या एक समाज की दृढ़ता का महत्व मानने वालों को भाषा की एकता के लिए भी तेजी से कदम बढ़ाने होंगे। भारत का प्रत्येक नागरिक राष्ट्र-भाषा हिन्दी को भली प्रकार बोल और समझ सके इसके लिए जो भी प्रयत्न संभव हो, उन्हें करना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के प्रयत्न इस दिशा में किये जायें इसकी आज भारी आवश्यकता है।

राष्ट्रीय-पोशाक जो यहीं की परंपराओं के उपयुक्त हो, धोती, कुर्ता, ऊपर से जवाहरकट या बंद गले का कोट यही उपयुक्त रह सकती है। जलवायु या परंपरा का ध्यान रखे बिना जल्दबाजी में कोई पोशाक राष्ट्रीय पोशाक घोषित कर देने से उसका प्रचलन नहीं हो सकता। सरकार ने चूड़ीदार पाजामा और अचकन, शेरवानी को राष्ट्रीय पोशाक माना है। सरकारी कामों में उसका प्रयोग होता भी है। पर जनमानस में वह अभी तक उतर नहीं सकी है। कारण कि भारतीय परंपराओं और जलवायु का उसमें समुचित ध्यान नहीं रखा है। यह जन रुचि एवं भावनाओं का प्रश्न है, इसका सामाधान भी इसी आधार पर किया जा सकता है। विभिन्न प्रांतों में जो अलग-अलग प्रकार की पोशाकें पहनी जाती हैं, उस अनेकता को धीरे-धीरे कम करना चाहिए और समानता के महत्व को समझाना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता रहने से उसका निर्माण महँगा पड़ता है और शक्ति एवं साधनों का अनावश्यक अपव्यय होता है। वस्त्र, आभूषण, बर्तन आदि में समता रहे तो निर्माण कार्य व्यापक होने से सस्ता पड़ेगा और भावनात्मक एकता भी स्पष्टतः बढ़ेगी।

भावनाओं में आध्यात्मिकता का अधिकाधिक समावेश होना चाहिए। संयम, सदाचार, पुरुषार्थ, श्रमशीलता, मधुरता, स्वच्छता, कर्तव्यनिष्ठा, समय का पालन, क्रियात्मकता, उदारता, शिष्टता जैसे सद्गुणों को हमारी भावनाओं में समुचित स्थान मिलना चाहिए। यही आध्यात्मिक गुण मनुष्य-जाति के विकास में सच्ची सहायता कर सकते हैं। स्वार्थपरता और दुष्टता, आलस्य और असंयम का दोष किसी सशक्त राष्ट्र को भी अपंग बना सकता है फिर हम पिछड़ी स्थिति के लोगों के लिए तो यह नितांत आवश्यक है कि सहिष्णुता, सज्जनता, सामूहिकता एवं सहयोग भावना का अधिकाधिक विकास होता चले। मतभेदों को सुलझाने के लिए विचार-विनियम, मध्यस्थता एवं पंच निर्णय जैसे महकमों को अपनाया जाय। सामाजिक रीति-रिवाजों में समानता उत्पन्न की जाय। कुछ दिन पहले विभिन्न देहातों में प्रांतों एवं क्षेत्रों में तोल के बाँट अलग-अलग थे, कच्ची तौल, पक्की तोल के अनेक मापदंड प्रचलित थे। उनमें असुविधा ही रहती थी। अब जब कि हर जगह एक-सी तोल-नाप हो गई है तो उससे सुविधा ही रहती है। ईसाई,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुसलमान, बौद्ध आदि प्रधान धर्मों के अनुयायी प्रायः एक-से ही रीति-रिवाज मानते हैं। देशों की अपनी-अपनी परंपरायें भी एक-सी हैं। भारतवर्ष इसका अपवाद है, यहाँ इतनी अधिक भिन्नतायुक्त प्रथा-परंपरायें प्रचलित हैं कि उनके कारण एकता में भारी बाधा पहुँचती है। हमें यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि धार्मिक एवं सामाजिक मान्यताओं और प्रथा-परंपराओं में प्रचलित असमानताएँ दूर करके समानता की ओर बढ़ा जाय। कुरीतियों का दमन और शोधन किया जाय। इस सम्बन्ध में धर्म पुरोहित एवं गुरुजन यदि दूरदर्शिता से काम लें तो परस्पर विचार-विनिमय द्वारा जातीय एकता का मार्ग बड़ी आसानी से प्रशस्त कर सकते हैं।

पूजा, उपासना एवं कर्मकांड, दर्शन, धर्म-ग्रंथ आदि की समानता भी जातीय एकता की दृष्टि से आवश्यक है। इनमें भिन्नता रहने से जातीयता की भावना दुर्बल होती है। मुसलमान और ईसाई धर्मों की शक्ति उनकी धार्मिक एकरूपता में सन्निहित है। एक पैगम्बर, एक प्रकार का ईश्वर, एक धर्म-ग्रंथ, एक दर्शन, एक संहिता होने से थोड़े ही समय में इन धर्मों ने संसार में अपना भारी प्रभाव बढ़ाया है। हिन्दू-धर्म की भिन्नताएँ उसके अनुयायियों में भी अश्रद्धा एवं उपेक्षा की भावनाएँ उत्पन्न कर रही हैं। नई पीढ़ी उन्हें ढोंग मानने लगी है और शिक्षा सूत्र जैसे आवश्यक प्रतीकों का भी परित्याग कर रही है, जबकि मुस्लिम धर्म में सुन्नत जैसी कष्टकर प्रथा भी सहर्ष सर्वत्र श्रद्धापूर्वक अपनाई जाती है। सिक्ख धर्म के अनुयायी पंच केश रखने में अपना सौंदर्य नष्ट हुआ नहीं समझते पर हिन्दू के लिए चोटी के चार बाल रखना भी भारी पड़ता है। इसका दोष युवकों का नहीं उस विश्रृंखलता एवं अव्यवस्था का है जिसके कारण हिन्दू-धर्म का कोई एक रूप नहीं बन पाता और उसकी मान्यताओं को बुद्धिवादी ढंग से समझना या समझाया जाना संभव नहीं होता।

सशक्त समाज एवं राष्ट्र के रूप में अपने को परिणत देखने की आकांक्षा करने वाले प्रत्येक देशभक्त एवं धर्म प्रेमी के लिए यह आवश्यक है कि इन त्रुटियों पर विचार करे, उनके कारण होने वाली क्षति को समझे और नव-निर्माण के लिए कुछ करने की आवश्यकता अनुभव करे। वर्तमान स्थिति को ज्यों की त्यों बनाये रखकर हम प्रगति की ओर बढ़ न सकेंगे। मार्ग में रोड़ों को हटाये बिना और कोई गति नहीं। इसके लिए उपाय सोचना ओर उसे कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर होना नितांत आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति आज के प्रबुद्ध एवं विचारशील लोगों को ही करनी पड़ेगी।

आत्मतुष्टि ही नहीं परोपकार भी

मनुष्य इच्छाओं का पुतला है। उसके व्यावहारिक जीवन में प्रति क्षण अनेकों आकांक्षायें उठा करती हैं। स्वास्थ्य की, धन की, स्त्री और यश की अनेकों कामनायें प्रत्येक मनुष्य में होती हैं। इसके विविध काल्पनिक चित्र मस्तिष्क में बनते-बिगड़ते रहते हैं। जैसे ही कोई स्थिर हुई कि मानसिक शक्तियाँ उसकी पूर्ति में जुट पड़ीं, शारीरिक चेष्टायें उसी दिशा में कार्य करने लगती हैं। संसार की विभिन्न गतिविधियाँ व क्रिया-कलाप चाहे वह भौतिक हों अथवा आध्यात्मिक, इच्छाओं की पृष्ठभूमि पर निरूपित होते हैं। रचनात्मक कदम तो पीछे का है, पहले तो सारी योजनाओं को निर्धारित कराने का श्रेय इन्हीं इच्छाओं को ही है।

स्थिर तालाब के जल में जब किसी मिट्टी के ढेले या कंकड़ को फेंकते हैं तो उसमें लहरें उठने लगती हैं। पत्थर के भार व फेंकने की गति के अनुरूप ही लहरों का उठना, तेजी व सुस्त गति से होता है। ठीक इसी प्रकार हमारी इच्छायें क्या हैं यह हमारी शारीरिक चेष्टायें चेहरे के हाव-भाव बताते रहते हैं। व्यभिचारी व्यक्ति की आँखों में हर क्षण निर्लज्जता के भाव परिलक्षित होंगे। चेहरे का डरावनापन अपने आप व्यक्त कर देता है कि यह व्यक्ति चोर, डाकू, बदमाश है। कसाई की दुर्गन्ध से ही गाय यह पहचान लेती है कि वह वध करना चाहता है।

इसी प्रकार सदाचारी, दयाशील व्यक्तियों के चेहरे से सौम्यता का ऐसा माधुर्य टपकता है कि देखने वाले अनायास ही उनकी ओर खिंच जाते हैं। विचार युक्त व गम्भीर मुखाकृति बता देती है कि यह व्यक्ति विद्वान, चिन्तनशील व दार्शनिक है। प्रेम व आत्मीयता की भावना से आप चाहे किसी जीव-जन्तु को देखें वह भयभीत न होकर आपके उदार भाव की अन्तर मन से प्रशंसा करने लगेगा।

अनन्त आनन्द के केन्द्र परमात्मा के हृदय में एक भावना उठी—'एकोऽहं बहुस्यामि' और इसी का मूर्तिमान रूप यह मंगलमय संसार बनकर तैयार हो गया। यह उनकी सदिच्छा का ही फल है कि संसार में मंगलदायक और सुखकर परिस्थितियाँ अधिक है यदि ऐसा न होता तो यहाँ कोई एक क्षण के लिए भी जीना न चाहता। पर अनेकों दुःख तकलीफों के होने पर भी हम मरना नहीं चाहते, इसीलिए कि यहाँ आनन्द अधिक है।

इच्छा एक भाव है, जो किसी अभाव, सुख या आत्मतुष्टि के लिए उदित होता है। इस प्रकार की इच्छाओं का सम्बन्ध भौतिक जगत से होता है। इनकी आवश्यकता या उपयोगिता न हो सो बात नहीं। दैनिक जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन चाहिये ही। सृष्टि संचालन का क्रम बना रहे इसके लिए दाम्पत्य जीवन की उपयोगिता से कौन इन्कार करेगा ? पर केवल भौतिक सुख के दांव-फेर में हम लगे रहें तो हमारा आध्यात्मिक विकास न हो पायेगा।

तब सौमनस्यता व सौहार्द्रपूर्ण सदिच्छाओं की आवश्यकता दिखाई देती है। प्रेम, आत्मीयता और मैत्री की प्यास किसे नहीं होती ? हर कोई दूसरों से स्नेह और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सौजन्य की अपेक्षा रखता है। पर इनका प्रसार तो तभी सम्भव है जब हम भी शुभ इच्छायें जागृत करें। दूसरों से प्रेम करें, उन्हें विश्वास दें और उनके भी सम्मान का ध्यान रखें। इन इच्छाओं के प्रगाढ़ होने से सामाजिक नैतिक व्यवस्था सुदृढ़ सुखद होती है पर इनके अभाव में चारों ओर शुष्कता का ही साम्राज्य छाया दिखाई देगा।

मानव जीवन गतिवान बना रहे इसके लिए स्वप्रधान इच्छायें उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हैं। पर इनके पीछे फलासक्ति की प्रबलता रही तो उसकी तृप्ति न होने पर अत्याधिक दुःखी हो जाना स्वाभाविक है। इच्छाओं के अनुरूप परिस्थितियाँ भी मिल जायेंगी ऐसी कोई व्यवस्था यहाँ नहीं। कोई लखपति बनना चाहे पर व्यवसाय में लगाने के लिए कुछ भी पूँजी पास न हो तो इच्छा पूर्ति कैसे होगी, ऐसी स्थिति में दुःखी होना ही निश्चित है।

हम जो भी इच्छायें करें वह पूरी ही होती रहें यह सम्भव नहीं। इनके साथ ही आवश्यक श्रम, योग्यता एवं परिस्थितियों का भी प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। किसी की शैक्षणिक योग्यता मैट्रिक हो और वह कलक्टर बनना चाहे तो यह कैसे सम्भव होगा ? इच्छाओं के साथ वैसी ही क्षमता भी नितांत आवश्यक है। विचारवान व्यक्ति सदैव ऐसी इच्छायें करते हैं जिनकी पूर्ति के योग्य साधन व परिस्थितियाँ उनके पास होती हैं।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम जिन परिस्थितियों में आज हैं उन्हीं में पड़े रहें, जितनी हमारी क्षमता है उसी से संतोष कर लें। तब तो विकास की गाड़ी एक पग भी आगे न बढ़ेगी। आज जो प्राप्त है उसमें सन्तोष अनुभव करें और कल अपनी क्षमता बढ़े इसके लिए प्रयत्नशील हों तो इसे शुभ परिणति कहा जायेगा। नेपोलियन बोनापार्ट प्रारम्भ में मामूली सिपाही था। चीन के प्रथम राष्ट्रपति सनायत सेन अपने बाल्यकाल में किसी अस्पताल के मामूली चपरासी थे। इन्होंने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए क्रमिक विकास का रास्ता चुना और लक्ष्य पाने में सफल भी हुए।

इस व्यवस्था में लम्बी अवधि की प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। पर व्यक्तित्व के निखार का यही रास्ता है। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले आप उस काम के करने की दृढ़ इच्छा मन में कर लें। पीछे सारी मानसिक शक्तियों को उसमें लगा दें तो सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है। दृढ़ इच्छा शक्ति से किये गये कार्यों में विघ्न भी देर तक रोक नहीं पातीं। संसार में जिन लोगों ने भी बड़ी इच्छाओं की पूर्ति की उन्होंने पहले उसकी पृष्ठभूमि को अधिक सुदृढ़ बनाया। पीछे उन कार्यों में जुट पड़े। तीव्र विरोध के बावजूद भी सिकन्दर झेलम पार कर भारत विजय दृढ़ मनस्विता के बल पर ही कर सका। शाहजहाँ की उत्कट अभिलाषा का परिणाम ताजमहल आज भी इस धरती पर विद्यमान है।

जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी ऐसे ही महान् कार्यों की श्रेणी में आती है। दूसरों से सिद्धियों सामर्थ्यों की बात सुनकर आवेश में आकर आत्म-साक्षात्कार की इच्छा कर लेना हर किसी के लिए आसान है। पर पीछे देर तक उस पर चलते रहना, तीव्र विरोध और अपने स्वयं के मानसिक झंझावतों को सहते हुए इच्छा पूर्ति की लम्बे समय तक प्रतीक्षा की लगन हममें बनी रहे तो परमात्मा की प्राप्ति के भागीदार बन सकना भी असम्भव न होगा।

इसके विपरीत यदि हमारी इच्छा शक्ति ही निर्बल, क्षुद्र और कमजोर बनी रही तो हमें अभीष्ट लाभ कैसे मिल सकेगा ? अधूरे मन से ही कार्य करते रहे तो लाभ के स्थान पर हानि हो जाना सम्भव है। इच्छायें जब तक बुद्धि द्वारा परिमार्जित होकर संकल्प का रूप नहीं ले लेती पूर्ति संदिग्ध ही बनी रहेगी। इच्छा-शक्ति यदि प्रखर न हुई तो वह लगन और तत्परता कहाँ बन पायेगी जो उसकी सिद्धि के लिये आवश्यक है।

मनुष्य इच्छायें करें यह उचित ही नहीं आवश्यक भी है। इसके बिना प्राणिजगत निश्चेष्ट एवं जड़वत लगने लगेगा। किन्तु इसका एक विषाक्त पहलू भी है, वह है इनकी अति और अनौचित्य। मनुष्य जीवन को क्लेशदायक परिणामों की ओर ले जाने में अति और अनुचित इच्छाओं का ही प्रमुख हाथ है। स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे—"मनुष्य के भय और चिन्ताओं का कारण उसकी अपनी इच्छायें ही हैं। इच्छाओं की प्यास कभी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो पाती।" बात भी ऐसी ही है। आज जो १००) पाता है वह कल १०००) की सोचता है और यदि यह इच्छा पूरी हो गई तो दूसरे ही क्षण १ लाख की कामना करने लग जाता है। इच्छा वह आग है जो तृप्ति की आहुति से और प्रखर हो उठती रहे। एक पर एक अंधाधुन्ध इच्छायें यदि उठती रहें तो मानव जीवन नरकीय यन्त्रणाओं से भर जाता है।

अच्छी या बुरी जैसी भी इच्छा लेकर हम जीवन क्षेत्र में उतरते हैं वैसी ही परिस्थितियाँ सहयोग भी जुटते चले जाते हैं। हमारी इच्छा होती है एम. ए. पास करें तो स्कूल की शरण लेनी पड़ती है। अध्यापकों का सहचर्य प्राप्त करते हैं। पुस्तकें जुटाते हैं। तात्पर्य यह है कि इच्छाओं के अनुरूप ही साधन जुटाने की आदत मानवीय है। पर यदि यह इच्छायें अहितकर हों तो दुराचारिणी परिस्थितियाँ और बुरे लोगों का संग भी स्वाभाविक ही समझिये। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी कामना भले ही पूर्ण कर ले पर पीछे उसे निन्दा, परिताप एवं बुरे परिताप एवं बुरे परिणाम ही भोगने पड़ेगें। व्यभिचारी व्यक्ति अपयश और स्वास्थ्य की खराबी से बचा रहे यह असम्भव है। चोर को अपने कुकृत्य का दण्ड न भोगना पड़े यह हो नही सकता। तब आवश्यकता इस बात की होती है कि हम अच्छी कामनायें ही करें।

विशुद्ध आत्मा से की गई सदेच्छायें बड़ी बलवती होती हैं। ऐसी व्यक्ति स्वयं तो स्वर्गीय सुख का अहर्निशि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्वादन करता ही है साथ ही अनेकों औरों को भी सन्मार्ग की प्रेरणा देकर उन्हें भी सदाचार में प्रवृत्त कर देता है। दूसरों की भलाई करने वालों को सदैव सर्वत्र सम्मान सुख मिलेगा ही औरों के दुःख में हाथ बँटाने वाले ही सच्चे मित्र प्राप्त करते हैं। परमार्थ ही जिनकी वृत्ति होती है, उन्हें औरों की आत्मीयता से वंचित रहते कभी किसी ने न देखा होगा।

दक्षिण के महान् सन्त तिरुवल्लुवर ने लिखा है "योगी वही है जो सांसारिक इच्छाओं को वशवर्ती करे, औरों की हित-कामना में रत हो।" यह सच ही है कि मनुष्य इस धरती पर एक महान् उद्देश्य लेकर अवतरित हुआ है। यह सुयोग उसे बार-बार नहीं मिलता। आज जो शारीरिक, मानसिक और भावनाओं की क्षमता हमें मिली है कौन जाने अगले जन्मों में भी मिलेगी अथवा नहीं। फिर हमें सच्चे हृदय से आत्म-कल्याण की ही कामना करनी चाहिए। अपना जीवन लक्ष्य भी पूरा हो सकेगा तथा औरों के प्रति कर्तव्य पालन भी हो सकेगा।

हम स्वास्थ्य, सद्गृहस्थ, धन और यश की कामना करें। वह परमार्थ को भी भुलायें नहीं। आत्मतुष्टि का जहाँ ध्यान रहे वहाँ यह भी न भूलें कि संसार में हजारों लाखों ऐसे भी हैं, जो हमारी परिस्थितियों से कोसों पीछे पड़े अभाग्य का रोना रो रहे हैं। इनके भी हित एवं कल्याण की इच्छा करना हमारा परम धर्म है। इसके अभाव में तो वह परिस्थितियाँ भी देर तक नहीं टिक सकेंगी जो आज हमें मिली हैं। कोई धनी व्यक्ति यदि सारा धन समेटकर बैठ जाय, आस-पास के लोग भूखे मरते रहें तो वह व्यक्ति अपनी सुरक्षा स्थिर रखे रहेगा ऐसी आशा बहुत कम करनी चाहिये।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपने परिवार, पड़ौस, गाँव राष्ट्र की अनेक जिम्मेदारियाँ उस पर होती हैं। हम अपनी सुख-सुविधाओं की बात सोचें एवं औरों के प्रति सच्चे हृदय से कर्तव्य पालन करने की इच्छा करें तभी हमारा भला होगा, जीवन लक्ष्य की प्राप्ति भी तभी सम्भव है जब हम में सदिच्छायें जागृत हों, औरों के प्रति शुभ कामनाओं का विकास हो।

परमार्थ में स्वार्थ भी समाहित है

भागीरथ का राज्य बहुत बड़ा था। उसमें सिंचाई के साधन न होने से प्रायः हर वर्ष दुर्भिक्ष पड़ जाता था। उनका मनोरथ उठा कि यदि दैव कृपा से कोई नदी इधर होकर बहने लगे तो अपनी कठिनाइयाँ दूर हो जायें। धन-धान्य की कमी न रहे। उनने अनेक देवताओं के जप अनुष्ठान किये, अनेक सन्तों से वैसा वरदान देने को गिड़गिड़ाये, पर कहीं से भी उन्हें सहयोग न मिला। सभी ने उपेक्षा दिखाई।

एक दिन नारद जी से उनकी भेंट हुई। भागीरथ ने अपनी असफलता का कारण पूछा ? देवर्षि ने उत्तर दिया अपने निजी लोभ लालच के लिए माँगने पर न देवता पसीजते हैं और न सन्त अपने तप की पूँजी खर्च करते हैं। आप अपने लिए धन-धान्य चाहते हैं। इस संकीर्ण स्वार्थपरता के रहते हुए आप किसी बड़े वरदान की आशा न करें। संसार व्यवहार भी तो आदान-प्रदान के आधार पर चलता है। दैवी सहायता तभी मिलती है जब कोई सत्पात्र उसे परमार्थ प्रयोजन के लिए माँगे। आप दृष्टिकोण बदलें तो किसी दैवी अनुकम्पा की बात सोचें।

भागीरथ ने उस तथ्य पर गंभीरतापूर्वक विचार किया। अपनी भावना और चरित्र निष्ठा में पवित्रता भरने के लिए उन्होंने तप करने का निश्चय किया और जल धारा को अवतरित करने के लिए उनने विश्व-कल्याण को लक्ष्य बनाया। इस परिवर्तन के साथ वे हिमालय पर तप करने के लिए चले गये।

जैसे-जैसे उनका उद्देश्य और जीवन पवित्र होता गया वैसे-वैसे आत्म बल की ज्योति सभी ओर फैलने लगी। उस प्रकाश की आभा स्वर्ग तक पहुँची। किसी पवित्रात्मा द्वारा लोकमंगल के लिए दैवी सहायता की आवश्यकता पड़ रही है। गंगा ने सोचा तब तो मुझे इसकी सहायता करनी ही होगी। उनने निश्चय कर लिया कि भागीरथ की इच्छा पूरी करेंगी। उनने अपना निर्णय भागीरथ तक पहुँचा दिया।

गंगा पृथ्वी पर पहुँचने की तैयारी करने लगी। भागीरथ की खुशी का ठिकाना न था, पर तुरन्त एक नया प्रश्न सामने आ उपस्थित हुआ। स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर जब गंगा की धारा तीव्र गति से गिरेगी तो उसका दबाव पृथ्वी सहन न कर सकेगी। धरती में छेद हो जायगा और वे पाताल जा पहुँचेंगी। यह कठिनाई बहुत बड़ी थी। उसे हल कैसे किया जाय ?

शिवजी ने कहा ऐसे पुनीत प्रयोजन के लिए तो मुझे भी योगदान करना चाहिए। उन्होंने गंगा के पास संदेश भेजा कि वे मेरी जटाओं में गिरें, वहाँ से साधारण धारा के रूप में जहाँ भागीरथ कहें वहाँ चलें।

ऐसा ही हुआ गंगा अवतरण से समस्त विश्व का कल्याण हुआ। भारत भूमि धन्य बनी। जीवितों और मृतकों ने श्रेय सम्मान साधन में सफलता पाई। इसके साथ-साथ भागीरथ के अधोगति में पड़े हुए पूर्वजों का भी कल्याण हुआ। जहाँ असंख्य जीव-जन्तुओं का हित साधने हुआ, जहाँ विशाल भुखण्ड में हरितिमा लहलहाई वहाँ भागीरथ का प्रदेश भी लाभ से वंचित न रहा। उतने अपने कल्याण के साथ विश्व का भी कल्याण किया, ऐसा होता है परमार्थ। स्वार्थी तो तात्कालिक लाभ की ललक में अपना भविष्य अन्धकारमय ही बनाते रहते हैं।

महर्षि व्यास ने जीवन की सफलता का रहस्य बताते हुए कहा है—"जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा।" उसी का जीवन सफल है जो परोपकार में प्रवृत्त रहता है। परमार्थ, अपने आप में जीवन की बहुत बड़ी साधना है जो मनुष्य को क्रमशः उसके लक्ष्य तक पहुँचा देती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाश्चात्य विद्वान विक्टर-ह्यूगो ने लिखा है—"हम परोपकार के लिए जितना अपने आपको लुटाते हैं उतना ही हमारा हृदय भरता जाता है।" परमार्थ साधना से मनुष्य की चेतना असाधारण रूप से विकसित हो जाती है और वह महान् बन जाता है, जिससे जीवन में अपार और अनन्त आनन्द का लाभ प्राप्त होता है। जो परमार्थ में लीन हैं उनके लिए संसार में कुछ भी तो दुर्लभ नहीं है।

पर हित बस जिनके मन माँहीं।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

इतना ही नहीं सन्त तुलसीदास ने तो यहाँ तक कह दिया है—"पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।" परमार्थ के समान संसार में कोई धर्म नहीं है। 'परोपकारः पुण्याय' परोपकार ही पुण्य का जनक है।

जो परमार्थ में लीन है, मनसा, वाचा, कर्मणा जिनका जीवन परोपकार में लगा हुआ है वे ही सज्जन, सन्त महात्मा हैं।

पर उपकार बचन मन काया।
सन्त सहज सुभाव खगराया।।

सज्जनों की पहचान भी यही है उनका जीवन परमार्थमय होता है।

परमार्थ मानव जाति की सुरक्षा, विकास और शान्ति का साधन है। वही समाज सुख-शान्ति और विकास के पथ पर आगे बढ़ सकता है, जिसके सदस्यों में परस्पर सेवा, सहयोग का व्यवहार हो। ऐसी स्थिति में व्यक्ति संकीर्ण स्वार्थपरता 'मैं' का अस्तित्व नहीं रहता वरन् एक संयुक्त भावना 'हम' का उदय होता है। इसमें किसी भी सदस्य के सुख-दुःख में दूसरे लोग भागीदार होते हैं और हाथ बँटाते हैं। कोई गिर जाता है तो दूसरे लोग उसे उठाते हैं। मदद करते हैं। परमार्थवादी समाज में कोई व्यक्ति अपनी पृथक् इकाई नहीं रख सकता वरन् वह समाज के एक शक्तिशाली अंग के रूप में काम करता है। इससे जहाँ समाज को गति मिलती है, वहाँ व्यक्ति को भी सुरक्षा, सह-जीवन की गारन्टी मिलती है। वह अपने जीवन को उपयोगी और अर्थपूर्ण समझने लगता है और अपने कर्तव्य, भार, उत्तरदायित्वों का भी बड़ी प्रसन्नता से निर्वाह करता है वह। इस तरह परमार्थवाद व्यक्ति और समाज दोनों के विकास प्रगति, सुख और शान्ति, सुरक्षा और सहयोग को जन्म देता है।

वह समाज जीवित नहीं रह सकता जिसके सदस्यों के बीच परस्पर सेवा, सहयोग, के आधार परमार्थ की भावना न हो। इसके अभाव में समाज के रोगी, अपंग, असहाय, वृद्ध व्यक्तियों का निर्वाह न हो सकेगा, उन्हें असमय मरने के लिए ही मजबूर होना पड़ेगा। स्वार्थवादी व्यक्ति क्यों कर इन अरुचिकर और अलाभकारी कामों में अपने आपको लगावेगा ? बच्चों की देखभाल, उनकी सेवा, शिक्षा, योग्य बनाने का प्रयत्न अधिकांशतया व्यक्ति के अपने जीवन में कई बार लाभकर नहीं होता तो फिर स्वार्थ प्रेरित व्यक्ति क्यों इसमें अपने आपको खपायेगा ? पाश्चात्य देशों में ऐसा हो भी रहा है, जहाँ सन्तानहीनता विवाहों का अनुपात कुछ कम नहीं है और इसी से वहाँ की जनसंख्या स्थिर-सी हो गई है। जिसमें स्वार्थपरायण व्यक्ति अधिक हों, वह समाज जीवित नहीं रह सकता और न वह उन्नति और विकास की ओर अग्रसर हो सकेगा क्योंकि केवल अपने स्वार्थ को महत्त्व देने वाले व्यक्ति अपने-अपने लाभ की छीना-झपटी में परस्पर संघर्षरत रहेंगे। एक-दूसरे के प्रति षडयन्त्र, सन्देह अविश्वास का बोलबाला होगा वहाँ। द्वेष, वैमनस्य उनका धर्म बन जायगा और 'अन्ततोगत्वा' ऐसा समाज छिन्न-भिन्न होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

इसीलिए सभी समाज व्यवस्थाओं धर्म परम्पराओं में परमार्थवाद को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इसी पर समाज का अस्तित्व एवं उसका विकास निर्भर करता है।

परमार्थ के अन्तर्गत मनुष्य दूसरों के कल्याण उनके लाभ, सुख, सुविधा के लिए प्रयत्न ही नहीं करता वरन् आवश्यकता पड़ने पर अपने वैध स्वार्थों का भी स्वेच्छापूर्वक बलिदान करने को उद्यत रहता है। वह कभी किसी का बुरा नहीं करता। किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाता। स्मरण रहे परमार्थ की पद्धति केवल रचनात्मक है। इसमें बुरे के प्रति भी भलाई का ही रास्ता है। प्रतिक्रिया की उसमें कोई गुंजायश नहीं है। यह साधना ज्यों-ज्यों उत्कृष्ट होती जाती है तदानुसार ही परमार्थ का स्वरूप भी निखरता जाता है।

किसी जोर जबर्दस्ती से नहीं वरन् स्वेच्छा से प्रेरित होता है परमार्थ। किसी लाभ या उपयोगिता का हेतु रख कर किया गया परोपकार झूठा है। ऐसे परमार्थ का कोई मूल्य नहीं होता। इतना ही नहीं उसमें किसी तरह के आनन्द अथवा उपयोगिता की भावना भी नहीं रखनी चाहिए क्योंकि किसी लाभ उपयोगिता के हेतु पर टिकने वाले सामाजिक सम्बन्ध जल्दी ही तब छिन्न-भिन्न होकर अनुपयोगी सिद्ध हो जाते हैं, जब उक्त हेतुओं का स्रोत टूट जाता है।

ऐसी बात नहीं कि परमार्थ का विषय बिल्कुल रूखा, व्यक्ति के लिए हानिकर या उपेक्षा करने वाला हो। इसमें आत्म-प्रसाद भी मिलता है और सुख भी। परमार्थ-जीवी को जन-सहयोग समाज का प्रतिनिधित्व, महानता आदि मिलते हैं उनका मूल्यांकन किसी भी भौतिक सम्पन्नता से नहीं हो सकता। किन्तु इन्हें गौण उत्पादन मानना चाहिए। इन्हें परमार्थ का लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए। शुद्ध परमार्थ में न कोई लाभ का हेतु होता है न कोई इच्छा आकांक्षा। उसमें तो कर्त्ता को कुछ कष्ट या असुविधाओं का सामना करना पड़े तो इनका भी सहर्ष स्वागत करना चाहिए।

परमार्थ के बदले यदि हमको कुछ मूल्य मिले चाहे वह पैसे के रूप में, प्रभाव, प्रमुख या पद प्रतिष्ठा के रूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में तो वह सच्चा परमार्थ नहीं है। इसे कर्तव्य पालन कह सकते हैं। सामाजिक कार्य-कर्त्ता, सरकारी नौकर, अधिकारी वर्ग इसी श्रेणी में आते हैं। इन्हें अपनी सेवा के बदले वेतन मिलता है। सच्चे अर्थों में परमार्थ वही है जिसके प्रतिमूल्य नहीं लिया जाता।

उपदेश या प्रचार भी परमार्थ की श्रेणी में नहीं आते। व्यवहार से परे इसका अस्तित्व नहीं है। उपदेश में, बातचीत में वाणी द्वारा परमार्थ की विशद् व्याख्या की जाय लेकिन यदि वह व्यवहार में नहीं आता तो एक तरह का पाखण्ड, प्रपंच और सफेद झूठ है। परमार्थ की अभिव्यक्ति वाणी से नहीं व्यवहार से ही सिद्ध होती है।

परोपकारार्थ किये जाने वाले कर्म विवेक और मौलिक निर्णायक बुद्धि से प्रेरित होने चाहिए। तभी वे सत्परिणाम पैदा करते हैं ऊपर पक्ष के लिए। मोह, द्वेष, अन्धविश्वास या किसी आसक्ति की प्रेरणा से किये गए कार्य दूसरों को हानि ही पहुँचाते हैं। मोहासक्त माँ-बाप अपने बच्चे की अनुचित माँगे पूरी करके उनमें बुरी आदतें डाल देते हैं जो उनके लिए अहितकर होती हैं।

परमार्थ एकांगी या एकदेशीय नहीं होता, वह सार्वभौमिक होता है। किसी व्यक्ति, संस्था या समूह विशेष से ही उसका सम्बन्ध न हो। ऐसी स्थिति में मनुष्य का सम्बन्धित तत्वों से तो परोपकार का व्यवहार होगा किन्तु इतर पदार्थों से नहीं। केवल अपने बच्चों के लिए भला चाहने वाले दूसरों के बच्चों के प्रति रूखा-बुरा व्यवहार कर सकते हैं। कई लोग अपने जाति, दल या समुदाय में परस्पर सेवाभावी और सहयोगी बन सकते हैं किन्तु अन्य जातियों, समाज दलों के प्रति उनका ऐसा व्यवहार नहीं होता। बड़े रूप में मनुष्य अपने देश के लिए सब कुछ लुटा सकता है किन्तु दूसरे देश पर आक्रमण कर उस पर कब्जा करने में उसे संकोच नहीं होगा। किसी संस्था का सदस्य बनकर उसके लिए मनुष्य अपने वैध हितों को भी उत्सर्ग कर सकता है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर अन्य संस्थाओं को अपना सहयोग, सहायता देने में कंजूसी भी वह कर सकता है। लेकिन परमार्थ की ये सभी पद्धतियाँ अधूरी हैं, संकुचित हैं। परमार्थजीवी का उद्देश्य सबकी सेवा, सबका भला, सबका कल्याण करना होना चाहिए। सर्वजन हिताय, जहाँ भी दूसरों के निस्तार के लिए आवश्यकता हो वही परमार्थ के पथिक को चाहिए कि बिना किसी आनाकानी के अपना कर्तव्य पूर्ण करे।

परमार्थवाद जन-जीवन की सुरक्षा समृद्धि, विकास का मार्ग है। इससे समाज के सभी अंगों को गति मिलती है। प्रत्येक इकाई अपने आपको अकेली, निस्सहाय नहीं समझती। इस पद्धति में व्यक्ति और समुदाय दोनों का ही भला होता है। इसीलिए सन्त, महात्मा, महापुरुषों ने परमार्थ मानव जीवन का आवश्यक धर्म बताया है।

अज्ञानी और कम समझ लोग स्वार्थ में अपना लाभ मानते हैं। वे अपना घर भरते हैं। अपने स्वार्थ के लिए जो भी चाहें करने में नहीं चूकते। लेकिन वे नहीं समझते कि इससे सारा समाज क्षीण होकर नष्ट हो जायगा और समाज व्यवस्था के नष्ट होने पर ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों को भी नष्ट होना पड़ता है क्योंकि समुदाय में महान् शक्ति है वही व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करती है।

सुख स्वार्थ में नहीं, परमार्थ में

अदृश्य सृष्टा ने अपने दृश्यमान स्वरूप को मानवीय काय-कलेवर में प्रकट किया है। साथ ही उससे यह भी अपेक्षा करता है कि वह इन विभूतियों को व्यर्थ ही खर्च न करे और न ही स्वार्थपरता की होली खेले। उस पर दुहरा दायित्व है कि इन अनुपम साधनों के सहारे स्वयं ऊँचा उठे और आस-पास के परिकर में सदाशयता का बीजारोपण करे और नित् निरन्तर खाद-पानी देता रहे। यही है परमार्थ परायणता, जिस पर टिका है यह समूचा ब्रह्माण्ड।

इसी परमार्थ परायणता को हरबर्ट स्पेन्सर ने दूसरे रूप में स्पष्ट किया है। उन्होंने जीवन के दो आयाम बताये हैं। ये आयाम हैं—जीवन की लम्बाई तथा चौड़ाई। जीवन की लम्बाई का तात्पर्य है आयु से है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन जितने समय के लिए रहता है, वह उसके जीवन की लम्बाई है। इसके अनुसार दीर्घायु जीव अल्पायु से अच्छा है। प्रत्येक प्राणी का आदर्श अधिक समय तक जीना है। ऐसे जीवन को उन्होंने पशुवत् जीवन की संज्ञा दी है, क्योंकि किसी तरह पेट और प्रजनन में निरत रहकर समय काटना ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। जिसके कारण न तो कोई नीति, नियम, सदाचार पालन हो पाता है न परमार्थ की ओर ध्यान दिया जाता है। अपने ऐन्द्रिक सुख को ही जीवन का मुख्य आधार मान लिया जाता है। इस प्रकार का पशुवत् जीवन जीना मनुष्य जैसे उत्कृष्ट प्राणी को शोभा नहीं देता।

दूसरा आयाम है—जीवन की चौड़ाई, जिसका अर्थ जीवन की सक्रियता या कर्मठता है। मात्र आयु जीवन का आदर्श नहीं है। इसके प्रति रुझान रखने वाले आलसी, रोगी, निर्बल, अपाहिज, असमर्थ, परजीवी हो जाते हैं। यदि ये दीर्घायु भी हों तो उन्हें अच्छा नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके जीवन में चौड़ाई नहीं है अर्थात् वे कर्मठ या सक्रिय नहीं हैं। जो आदमी जितना अधिक कार्य करता है उसमें जीवन की चौड़ाई उतनी ही अधिक रहती है। मनुष्य का आदर्श दीर्घायु तथा कर्मठ जीवन है। उसके जीवन की अच्छाई इस बात पर निर्भर है कि वह कितना अधिक परिश्रम करता है ?

इसे और स्पष्ट करते हुए स्पेन्सर महोदय लिखते हैं कि कर्मठता अपने आप नहीं उपजती वरन् स्वयं को विश्व का एक अनिवार्य घटक मानकर जब अपने कृत्यों को मानवता की कसौटी पर कसा जाता है कि क्या जीवन को यूँ ही काटना मानवोचित गरिमा के अनुरूप है, तब वह भाव-संवेदना उमड़ती है, जिसमें स्वाभाविक सक्रियता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनी रहती है और गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता ही वास्तविक सशक्तता है इसकी मान्यता दृढ़ होती है, जिसके द्वारा व्यक्ति प्रामाणिक विश्वस्त एवं कर्तव्यपरायण समझा जाता है।

कर्मठता का दूसरा चरण प्रामाणिकता के रूप में उपलब्ध होता है क्योंकि उसके पीछे अनुकरण करने वालों की लम्बी श्रृंखला है। किसी एक व्यक्ति का अकर्मण्य, आलसी, स्वार्थी, परजीवी होने का तात्पर्य वह बड़ी हानि है, जिसके कारण उस व्यक्ति के परिकर में जुड़े लोगों में बुराइयों का बीजारोपण होता है, अतः व्यक्ति जब कर्मठता अपना लेता है, तब उसकी दृष्टि स्वयं चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार की ओर जाती है कि कहीं उसमें किसी प्रकार के दुर्गुण की बू तो नहीं आ रही है। ऐसे व्यक्ति महापुरुष कहलाते हैं जो कम समय जीकर दूसरों को प्रेरणा प्रोत्साहन देते रहे। जिन महापुरुषों का देहान्त अल्पायु में ही हो गया, वे उन लोगों से अच्छे समझे जाते हैं जो उनसे अधिक समय तक जीवित रहे किन्तु धुआँ देती लकड़ी की तरह दूसरों को परेशान करते और हैरान होते रहे।

स्पेन्सर का विकास क्रम के भिन्न-भिन्न आयामों को बताते हुए अंतिम परिणति के बारे में लिखते हैं—विकास क्रम में एक ऐसी अवस्था आयेगी जिसमें लोग स्वभावतः परमार्थ करने लगेंगे और उसमें व्यक्तिगत सुख का आनन्द लेंगे। वे अपने स्वार्थ को परमार्थ से नियन्त्रित करेंगे और परमार्थ के सुख को पाना अपनी दैनिक आवश्यकता समझेंगे। यही है गाँधी का वह रामराज्य, जो विश्व के भावी स्वरूप और महाकाल के अटल आश्वासन के रूप में इक्कीसवीं सदी बनकर प्रकट हो रहा है।

सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन का उच्चस्तरीय परमार्थ

पदाधिकारियों के चुनाव में परीक्षायें, प्रतिस्पर्द्धायें होती हैं। उत्तीर्ण होने वाले उच्च पदों पर नियुक्त होने का सम्मान पाते और तदनुरूप सुविधाओं का गौरव प्राप्त करते हैं। जो कसौटी पर खोटे उतरते हैं, वे खोटे सिक्के की तरह काटकर कचरे के ढेर में फेंक दिये जाते हैं। मनुष्य का उत्कर्ष दैवत्व की स्थिति अपनाने में है। पशुओं की ओर पीछे लौट पड़ना उसे शोभा नहीं देता। असुरों जैसी पैशाचिकता अपना लेना तो और भी अधिक भयानक है।

जिन्हें भले-बुरे का ज्ञान नहीं, उन क्षुद्र जीवों का शरीर रक्षा के लिये कुछ भी करते रहना क्षम्य हो सकता है, पर मनुष्य जैसे दायित्वपूर्ण पद पर अवस्थित आत्मा के लिये तो अनाचारी नीति अपनाने का अवसर है नहीं। पशु भीड़-भाड़ के बीच भी खुले आम यौनाचार कर सकते हैं, वैसा करने की मनुष्य को छूट नहीं है। गधे किसी के भी खेत में घुसकर चरने लगने में तत्पर हो सकते हैं, पर मनुष्य को किसी का सामान उठाकर चल देने की छूट नहीं है। जिन्हें मर्यादाओं या वर्जनाओं का अन्तर विदित नहीं है, उन विवेकहीनों को पशुवत आचरण करना सहन हो सकता है, पर मनुष्य की संरचना ऐसी हैं, जिसमें कर्तव्यपालन और उत्तरदायित्व निर्वाह की आचार संहिता का पूरी तरह ज्ञान कराया गया है। ऐसी दशा में उसे अकर्म करने पर बड़ी प्रताड़ना सहन करने के लिये बाधित किया जाता है। साधारण चपरासी किसी कारणवश गड़बड़ कर दें तो उसे चेतावनी देने पर छोड़ा जा सकता है, पर सेनापति नियत समय पर नियत मोर्चा सँभालने में अनुपस्थित रहे तो उसका कोर्ट मार्शल ही होगा। मुंशी का किसी से अधिक पैसे वसूल करना भी यो है तो जुर्म, पर न्यायाधीश मोटी रिश्वत लेकर मुकदमा उलट दे तो उसे पदच्युत कर दिया जायगा। मनुष्य को विवेकशीलता उपलब्ध होने के साथ ही यह जिम्मेदारी भी वहन करनी पड़ती है कि वह मात्र औचित्य ही अपनाये। अपना आचरण ऐसा रखे, जो दूसरों के लिये प्रेरणाप्रद एवं अनुकरणीय हो। उसमें प्रमाद करने पर उसे आत्म प्रताड़ना का, समाज धिक्कार का, विश्वास गँवा बैठने का और परलौकिक दुर्गति का भाजन बनना पड़ेगा। पशु-प्रवृत्तियों को अपनाना किसी समझदार मनुष्य के लिये वैसा ही है जैसे कोई बड़ी आयु का व्यक्ति छोटे बालकों जैसे कपड़े पहने और वैसे ही बचकाने आचरण करे। ऐसा करने वालों को एक प्रकार का अर्धविक्षिप्त ही कहा जायेगा।

इस तथ्य को हजार बार समझ लेना चाहिये कि मनुष्य तन व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिये ही मिला है। सूरज का धर्म गर्मी देना है, चन्द्रमा का शीतलता बिखेरना है, पवन सफाई करता है, आग जलाती है, पानी शीतल होता है, यह उनके स्वाभाविक धर्म हैं। मनुष्य के ऊपर भी यह दायित्व लदा है कि वह उत्कृष्टता धारण करे और आदर्शवादिता की रीति-नीति अपनाया करे। संसार में सुख-शान्ति, प्रगति और संस्कृति की परिस्थितियाँ उत्पन्न करे। देवदत्त की ओर बढ़ावे और साथियों को भी उसी प्रकार लक्ष्य की ओर घसीटकर ले चले। उपयुक्त सुविधा-साधन काय-कलेवर रूपी उच्चस्तरीय कृति और दूरदर्शी विवेकशीलता का बाहुल्य उसे उसी निमित्त मिला है। वह उसे करना चाहिये। विपरीत आचरण की उच्छृंखलता का परिचय नहीं देना चाहिये। कुत्साओं की कुण्ठाओं में आबद्ध नहीं होना चाहिये। स्वार्थी और संकीर्ण होने का कलंक नहीं ओढ़ना चाहिये। इससे मान्यता कलंकित होती है।

देवत्व की रीति-नीति देन है। देवता देने की बात ही सोचते हैं और उसी के लिये प्रयत्नरत रहते हैं। मनुष्य की प्रगति का मापदण्ड एक ही है कि उसकी सत्ता में देवत्व का स्तर किस सीमा तक विकसित हुआ ? पतन की माप इसी आधार पर होती है कि संकीर्ण स्वार्थपरता किस सीमा तक सवार है ? प्रगति का ठीक उलट जाना इस मापक पर आँका जाता है कि उसने शोषण की,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

अपहरण की, अनाचार की, दुश्चिंतन की, कुकर्मों की रीति-नीति अपनाने में अपनी दुष्टता का कितना परिचय दिया ? पैशाचिकता इसी को कहते हैं। असुर राक्षस कहे जाने वाले मनुष्य इन्हीं कुकृत्यों में संलग्न पाये जाते हैं। यह जाँच-पड़ताल अन्तर्मुखी होकर स्वयं ही करनी चाहिये। आत्म समीक्षा को सन्मार्ग पर चलने का प्रथम सोपान माना गया है। वस्तुस्थिति को समझने के लिये दूसरों के द्वारा परामर्श प्राप्त करने की अपेक्षा स्वयं ही आत्म समीक्षा की जाय और देखा जाय कि अपना व्यक्तित्व और कर्तृत्व मानवी गरिमा के अनुरूप बन सका या नहीं। यदि नहीं तो उसकी पूर्ति के लिये काम इतनी तेजी से बढ़ाये जाने चाहिये कि पिछली भूलों का परिमार्जन जितना जल्दी बन पड़े, कर लिया जाय।

मानवी गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली प्रक्रिया एक ही है—सेवा धर्म को अंगीकार करना। धर्म धारणा यही है, ईश्वर भक्ति का व्यावहारिक स्वरूप यही है। पुण्य-परमार्थ नाम से जानने वाले कृत्यों में प्रमुखता सेवा धर्म की ही है। पुण्य-परमार्थ इसी को कहते हैं। लोक और परलोक को सुख-शान्तिमय बनाने के लिये इसी राजमार्ग का अवलम्बन लेना पड़ता है।

अपंग, असमर्थ, पीड़ित एवं दुर्घटनाग्रस्तों को सामयिक सहायता देनी पड़ती है। इसके लिये श्रम, सहयोग एवं साधन-दान से काम चला सकता है। स्वावलंबन की स्थिति आने तक इस प्रकार की सहायता का प्रबन्ध करना पड़ता है क्योंकि अन्ततः काम तो स्वावलंबन से ही चलता है। दूसरों पर निर्भर रहने से तो आत्म गौरव गिरता है। परावलम्बन पर आधारित आत्म सम्मान का गर्व-गौरव गिरता जाता है। साथ ही देने वाले का अहंकार बढ़ता है, वह पुण्यात्मा के रूप में ख्याति अर्जित करके प्रकारान्तर से उस यश का अनुचित लाभ भी उठा सकता है। इसीलिये पदार्थपरक सहायता को आपत्ति धर्म ही माना गया है। जब तक उसकी नितान्त आवश्यकता है, तभी तक उसे जुटाने में तत्परता बरती जाय। प्रयत्न यह रहे कि परावलम्बन किसी का स्वभाव न बन जाय, कोई उसे व्यवसाय न मान बैठे। इस आधार पर आलस्य प्रमाद न पनपे। कुछ पैसे देकर कोई दानवीर बनने जैसा यश न लूटने लगे। इस दृष्टिकोण को अधिक स्पष्ट करते हुए गाँधी जी ने 'खादी' का तत्वदर्शन समझाया था और कहा था कि इससे अनेक श्रमिकों को निर्वाह का साधन उपलब्ध होता है। न लेने वालों पर आत्महीनता चढ़ती है और न देने वाला अहंकार से इतराता फिरता है। नीति की दृष्टि से यह चिन्तन हर दृष्टि से सही है। जहाँ अनिवार्य आवश्यकता हो, वहाँ सहायता करने की नीति अपनानी चाहिये। उसके पीछे आत्महीनता एवं अहंकारिता के जो खतरे छिपे रहते हैं, बारीकी से ध्यान में रखते हुए ही दान-पुण्य की विधा अपनानी चाहिये।

सेवा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है—सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन। व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का अभिवर्द्धन जिस भी उपाय से बन पड़े, उसे महती सेवा की संज्ञा दी जानी चाहिये, क्योंकि श्रेष्ठता मौलिक रूप से दूसरों को ऊँचा उठाने वाली प्रखरता का परिचय देती है। सही साँचे में सही प्रकार के पुर्जे ढलते जाते हैं। जलती आग अपनी हर समीपवर्ती वस्तु को गरम कर देती है। दीपक जहाँ भी जलता है, वहाँ अपने प्रभाव क्षेत्र में प्रकाश उत्पन्न करता रहता है यही भूमिका वे लोग भी सम्पन्न करते रहते हैं जो अपने व्यक्तित्व की प्रामाणिकता, प्रखरता और प्रतिभा की कसौटी पर समर्थ स्तर का पुरुषार्थ करते हैं। जो समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी का निर्वाह ठीक प्रकार से कर सकते हैं, उन्हें सच्चे अर्थों में शूरवीर-साहसी कहना चाहिये।

परीक्षा की घड़ियाँ अति महत्वपूर्ण और निर्णायक होती हैं। उनका लाभ जिन्हें मिल सका वे धन्य हो गये, उज्जवल भविष्य का निर्माण कर सके, पर जो उस अवसर को आलस्य प्रमाद की चित्र-विचित्र उत्तेजनाओं में ग्रसित होकर गँवा देते हैं, उन्हें उस भूल का सदा-सर्वदा पश्चाताप ही करना पड़ता है। अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने वाले आगे उच्च पदासीन होते हैं। अधिक लाभ और अधिक सम्मान वाला पद प्राप्त करते हैं। प्रतिस्पर्द्धा में आगे निकलने वाले खिलाड़ी कीमती पुरस्कार प्राप्त करते हैं, ऊँचे अफसर बनते हैं। जिनने मनुष्य जीवन की उच्च परीक्षा सृष्टा के सौंपे हुए कार्यक्रमों को पूरा करने के रूप में पूरी कर ली, उन्हें दैवी अनुग्रह के रूप में बहुमूल्य पुरस्कार हस्तगत होते हैं। महामानवों की पंक्ति में ऐसे ही लोग बैठते हैं। देवमानव कहकर उन्हें ही सराहा जाता है। सन्त, सुधारक, शहीद के नाम से वे ही सम्मानित होते हैं। साधु ब्राह्मण के रूप में उन्हें ही भूसुर की, धरती पर रहने वाले देवात्माओं की गणना में गिना जाता है। इतिहास उनका वर्णन करके अपना गौरव बढ़ाता है। भावी पीढ़ियाँ उनकी गाथाओं को सुनकर प्रेरणा पाती और अनुकरण करके अपनी प्रगति का पथ प्रशस्त करती हैं। यही लोग हैं, जिन्हें स्वर्ग-मुक्ति का अधिकारी गिना जाता है। वे ही तृप्ति, तुष्टि और शान्ति का वरण करते हैं। मनुष्य से ऊँचा पद देवता का है, इसके लिये कर्तव्यपालन की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले तत्काल अपना निर्धारित पुरस्कार प्राप्त करते हैं। उनकी प्रशंसा होती है और प्रतिष्ठा के साथ सम्मान मिलता है, सहयोग बरसता है और यशस्वी बनने का अवसर मिलता है, उन्हें प्रामाणिक, प्रखर और प्रतिभावान माना जाता है। लोग उनसे प्रभावित होते और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। यही वे लाभ हैं जिनके सहारे लोक परलोक को बहिरंग और अन्तरंग जीवन को हर दृष्टि से सफल माना जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके विपरीत जो इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, जीवन सम्पदा को निरर्थक एवं अनर्थमूलक कार्मों में गवाँ देते हैं, उनकी अन्तरात्मा की जब भी खुमारी उतरती है, यही सोचती है कि बहुमूल्य समय निरर्थक जा रहा है। पेट भरने की आवश्यकता तो पशु-पक्षी भी निरन्तर पूरी करते रहते हैं। यदि मनुष्य भी उतना ही कर पाया और उच्च प्रयोजनों के निर्वाह में आनाकानी करता रहा, तो समझना चाहिये कि इतनी बड़ी भूल हो गयी, जिसका प्रायश्चित हाथों-हाथ हो भी नहीं सकता। दुबारा परीक्षा देने का अवसर तो अगले वर्ष मिल जाता है, पर मनुष्य जीवन के साथ जुड़े हुए कर्तव्य पालन न करने पर शास्त्रकारों के मतानुसार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। मान्यता नास्तिकवादी या आस्तिवादी कोई भी क्यों न हो, हर दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य जीवन हर किसी के लिये अलभ्य है। निजी निर्वाह के लिये उसका एक बहुत थोड़ा भाग ही पर्याप्त होता है। यदि उसका श्रेष्ठतम उपयोग न किया जाय, तो फिर पशु स्तर अपनाकर किसी प्रकार पेट भरना, यौनाचार की कुकल्पनाओं में उलझे रहना तथा निरर्थक व्यसन-विनोदों में समय गँवाना ही हाथ रह जाता है।

यह समय काटना भी ऐसा है कि "खाली दिमाग शैतान की दुकान" बनकर ही रहता है। उस खाली समय में कुकल्पनायें उठती रहती हैं और कुकृत्य स्तर की हलचलों में घड़ियाँ बीतती रहती हैं।

उन कुयोगों से बचने का एक ही उपाय है कि 'सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन' के साथ अपनी जीवनचर्या को पूरी तरह जोड़ा जाय। सेवा धर्म को अपनाते हुए पुण्य परमार्थ के देवत्व को चरितार्थ करने में निरत रहा जाय।

आरंभ अपने आप से किया जाना चाहिये। अपनी दुष्प्रवृत्तियों को बारीकी से खोजा जाय और उनमें से प्रत्येक को खोजबीन कर बुहारते-हटाते रहा जाय। अपनी सत्ता पर तो अपना अधिकार होना सुनिश्चित ही है। अपनी आज्ञा पर शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग काम करते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि सन्मार्ग पर चलने का सुनिश्चित आदेश दिया जाय तो उसका परिपालन करते न बन पड़े। कुमार्ग पर चलना भी इच्छा, आकांक्षा के कारण ही बन पड़ता है, फिर उसी रुझान को मोड़ लिया जाय। कुमार्ग को छोड़कर सन्मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया जाय, तो कोई कारण नहीं कि गुण, कर्म, स्वभाव को उसी ढाँचे में ढालने की विधा न बन पड़े। संकल्पवान वातावरण के लोकप्रवाह को बदल देते हैं, फिर अपने आपको हेय प्रवृत्तियों से छुड़ाकर मानवोचित सदाशयता को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेना क्यों किसी के लिये कठिन होना चाहिये।

पुण्य परमार्थ की श्रेणी में प्रायः धन-बल पर आधारित दृश्यमान कृत्यों की ही चर्चा होती रहती है, पर स्पष्ट है कि सुविधायें स्वल्पकालीन ही होती हैं। कोई किसी की आवश्यकताओं को सदा-सर्वदा पूरी नहीं करते रह सकता। काम तो स्वावलम्बन से ही चलता है। दूसरी उदारता का प्रदर्शन करने का उच्चस्तरीय मार्ग यह अपनाना चाहिये कि अपने सम्पर्क एवं प्रभाव क्षेत्र में सत्प्रवृत्ति का बीजारोपण सम्वर्द्धन और अधिकाधिक उन्नति का ही लक्ष्य रखा जाय। सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन की आवश्यकता एवं गरिमा को समझते हुए उसी को अग्रगामी बनाने में निरन्तर निरत रहा जाय।

परमार्थ भावनाएँ टालिये मत

सत्कर्मों की पुण्य प्रवृत्ति कभी-कभी ही पैदा होती है। ऐसा उत्साह भगवान की प्रेरणा और पूर्व संचित लाभ शुभ कर्मों का उदय होने पर ही जागृत होता है। अन्यथा मनुष्य स्वार्थ और पाप की बातें सोचने में ही दिन गुजारता रहता है। इसलिए परमार्थ की पुण्य-प्रवृत्तियाँ जब कभी उत्पन्न हों तो उसे कार्यान्वित करने के लिए साहस का प्रयोग ही कर डालना चाहिए।

यह ठीक है कि आज पुण्य और परमार्थ के नाम पर धर्मध्वजी लोग जनता का बुरी तरह शोषण करते हैं। अमुक कर्मकाण्ड कर लेने से स्वर्ग मुक्ति के बड़े-बड़े सपने दिखाते हैं और बेचारे भोले लोगों की जेब बुरी तरह काट लेते हैं। इस प्रवंचना से बचना उचित है पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे पिछड़े हुए देश में अगणित समस्याओं और कठिनाइयों से मनुष्य समाज बुरी तरह संत्रस्त है और उसकी दुष्प्रवृत्तियों से प्राणिमात्र को भारी विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है। इन उलझनों को सुलझाने और कठिनाइयों को हल करने के लिए हममें से प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ कर ही सकता है। सच्चे और विवेकपूर्ण परमार्थ को अवसर भी संसार में कम नहीं है।

यह सोचना ठीक नहीं कि जब ऐसा अवसर आवेगा तब यह करेंगे। हो सकता है कि हमारा इच्छित अवसर जीवन में कभी भी न आवे और वे परमार्थ की आकांक्षाएँ कल्पना ही बनकर रह जायें। जो साधन आज प्राप्त हैं उन्हीं के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों में संभव हो सकने वाले सत्कर्मों के लिए हमें प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। हजार मन सोचने से एक मन करना अच्छा है। आज तो परमार्थ भावना किसी सत्प्रेरणा या सौभाग्य से प्राप्त हुई है यदि उसे पीछे के लिए धकेल दिया गया तो कौन जाने कब वैसा उत्साह पुनः हो या न हो। अमुक सुविधा मिलने पर अमुक कार्य करने की शर्त लगाना एक प्रकार की बहानेबाजी है, जिससे अपनी उस उठी हुई सत्प्रवृत्ति को बहकाकर या बहलाकर पीछे के लिए टाल दिया जाया करता है। यह उचित नहीं। उचित यही है कि आज की परिस्थितियों में अपने लिए जो संभव हैं उतना ही सोचें और जो उपयुक्त प्रतीत हों उसे कार्यान्वित करने का भी साहस प्रदर्शित करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्यनारायण व्रत कथा में साधु वैश्य का उपाख्यान आता है जिसने सन्तान होने पर व्रत कथा के लिए प्रतिज्ञा की थी। पर जब कलावती कन्या उत्पन्न हो गई तो फिर उसकी पूर्व रुचि हल्की पड़ गई। आज-कल करते-करते कन्या का विवाह हो गया, जामाता व्यापार करने लगा तब भी वह संकल्प अपूर्ण ही बना रहा। इसी प्रकार एक कथा है कि कोई व्यक्ति खजूर पर चढ़ गया। नीचे उतरते हुए उसे मृत्यु भय दीखने लगा तो उसने मनौती मनाई कि नीचे उतरने पर इतना दान करूँगा। आधी दूर नीचे उतर आया तो उसने वह दान की राशि मन-ही-मन आधी कर ली। और आधा नीचे उतरा तो उसे घटाकर चौथाई कर लिया और नीचे जमीन पर उतरते-उतरते वह दान एक बहुत छोटी चिन्ह पूजा जैसा रह गया।

सत्कर्म करने में परिस्थितियाँ नहीं, भावना प्रधान होती है। भावना प्रबल हो तो निर्धन और असमर्थ दीखने वाले व्यक्ति भी वह कर गुजरते हैं, जो असाधारण एवं आश्चर्यजनक होता है। इसके विपरीत जिनके पास बहुत कुछ है वे बड़ी कठिनाई से कभी-कभी राई रत्ती सत्कर्म कर पाते हैं। श्रेष्ठ सत्कर्म मनुष्य से सदा नहीं बन पड़ते। उनमें कितनी ही बाधायें आ खड़ी होती हैं ? अपना स्वार्थी-मन कम बाधक नहीं होता। ऊँच-नीच, आगा-पीछा सोचकर वह यह निष्कर्ष निकालता है अभी अमुक आवश्यक कार्य करने को पड़े हैं पहले उन्हें पूरा कर लें, यह दान धर्म तो पीछे भी कभी हो सकते हैं, अभी जल्दी ही क्या है ?

इसी प्रकार कुटुम्ब परिवार वाले तथा मित्र हितैषी कहलाने वाले व्यक्ति आमतौर से यही चाहते रहते हैं कि इस व्यक्ति के धन श्रम, सहयोग या व्यक्तित्व का पूरा लाभ हमें ही मिलता रहे। यदि सत्कर्म में उसका धन या श्रम लगता है तो उसमें उन्हें अपनी प्रत्यक्ष हानि दीखती है। ऐसी दशा में वे अनेक बहाने, अनेक कारण, अनेक तर्क उपस्थित करके उस ओर से विरक्ति पैदा करने का प्रयत्न करते हैं।

आज यदि सत्कर्म कर सकने की परिस्थिति है तो कल भी वह बनी ही रहेगी इसका कोई ठिकाना नहीं। उलटती-पलटती छाया की तरह मनुष्य के दिन फिरते रहते हैं। आज का युवा कल बूढ़ा होगा ही, आज के निरोग को कल रोग घेर सकता है। आज की धनी कल निर्धन हो जाय तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, आज चैन की जिन्दगी बिताने वाले के सामने कल अनेकों चिन्ताएँ और समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि तब उस सत्कर्म कर सकने में सचमुच ही विवशता उत्पन्न हो जाय और मनोरथ अधूरे के अधूरे ही पड़े रहें।

रावण चाहता था कि स्वर्ग के लिए सीढ़ी बना ले, समुद्र के खारी जल को मीठा बना ले और देवताओं से लड़कर अमृत छीन लावे पर वह आजकल-आजकल टालता रहा। दैनिक जीवन के 'जरूरी' काम उसे घेरे रहे और वह महत्वाकांक्षा पीछे पड़ती गई। मौत का दिन आ पहुँचा। लक्ष्मणजी उससे राजनीति पढ़ने गये तो रावण ने कहा—"लक्ष्मण ! मनुष्य की भारी भूल यह है कि वह महत्त्वपूर्ण सत्कर्मों की उपेक्षा करे और साधारण जीवनयापन के कार्यों में ही उलझा रहे। मैंने यही भूल की और अपनी तीनों आकांक्षाएँ अधूरी छोड़कर इस संसार से विदा हो रहा हूँ।"

ईसा मसीह ने कहा है 'कि जो तेरा दाहिना हाथ करना चाहे उसकी बायें हाथ को खबर न होने दे।" इस मन्त्र का एक अर्थ यह है कि अपने शुभकर्मों का विज्ञापन न करो, वाहवाही लूटने और धर्मात्मापन जताने के लिए ढोल न पिटवाओ। वहाँ दूसरा अर्थ यह भी है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी तत्परता से सत्कर्म को सम्पन्न कर लिया जाय। हो सकता है कि दाहिने हाथ के कार्य में बायां हाथ कोई अड़ंगा लगा दे। मनीषियों ने कहा है—दुष्कर्म करना हो तो उसे करते हुए कितनी ही बार विचारो और उसे आज की अपेक्षा कल परसों पर छोड़ो किन्तु यदि कुछ शुभ करना है तो पहली ही भावना तरंग को कार्यान्वित होने दो। कल वाले काम को आज ही निपटाने का प्रयत्न करो। पाप तो रोज ही अपना जाल लेकर हमारी घात में फिरता रहता है पर पुण्य का फेरा तो कभी-कभी ही होता है। उसे निराश, खाली हाथ लौटा दिया तो न जाने फिर कब आवे ?

यदि अपना मन कुछ सत्कर्म करने की बात सोचे तो विचारणा का क्षेत्र इतना ही रहना चाहिए कि आज की परिस्थिति में हम क्या कर सकते हैं, जो कर सकते हों वही कर डालने का प्रयत्न करना चाहिए। पीछे कभी जब बहुत वैभव होगा तो उस समय बड़े-बड़े सत्कर्म करने की योजना भी बन सकती है। जो परिस्थिति आज नहीं है या जो कर सकना सम्भव नहीं है उसके लिए कल्पना के बड़े-बड़े पुल बाँधने से क्या लाभ ?

जिस प्रकार कमाना, खाना, सोना, नहाना, जीवन के आवश्यक नित्य कर्म होते हैं उसी प्रकार परमार्थ भी मानव-जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक धर्म कर्तव्य है। इसकी उपेक्षा करते रहने से अपनी आध्यात्मिक पूँजी घटती है, आत्मबल नष्ट होता है और अन्तः भूमिका दिन-दिन निम्न-स्तर की बनती चली जाती है। यही तो पतन है।

सद्भावनाओं का अभाव स्वार्थ एवं निष्ठुरता कहलाता है। यह दुष्प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते पाप का रूप धारण कर लेती है। जिसके अन्तःकरण में परमार्थ बुद्धि विकसित है, जो उदात्त दृष्टिकोण के अनुसार सोचता रहता है, उसके लिए कोई बड़े पाप कर्म बन पड़ने सम्भव नहीं। पानी मनुष्य मूलतः संकीर्ण और स्वार्थी होता है। धन के अभाव में मनुष्य गरीब कहलाता है, उसी प्रकार सत्प्रवृत्तियों का स्रोत सूख जाने पर उनके चरितार्थ कर सकने का अवसर न मिलने पर हमें पापी बनना पड़ता है। जहाँ प्रकाश न होगा वहाँ अन्धकार का रहना स्वाभाविक है। इसी प्रकार जिसे परमार्थ में रुचि नहीं उसे पाप में तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रुचि होगी ही। दोनों से रहित स्थिति या तो जड़ जीवन में सम्भव है या जीवन-मुक्त दशा में। पाप से बचने के लिए पुण्य-प्रवृत्तियों का चरितार्थ करते रहना आवश्यक है और वह तभी सम्भव है जब वैसा उत्साह उत्पन्न होने पर उसे कार्यान्वित करने के लिए भी साहस किया जा सके।

पुण्य परमार्थ में औचित्य का समावेश हो

सुसम्पन्न, समर्थ जनों में उदारता का भाव भी पाया जाता है और वे किसी न किसी रूप में दान पुण्य भी करते रहते हैं। भले ही इसका मूलभूत उद्देश्य लोगों पर अपने धर्मात्मापन की छाप डालना, परोपकार कार्यों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करते हुए सस्ती वाह-वाही लूटना ही क्यों न हो। यदि ऐसा न होता तो तथाकथित दानपुण्य की राशि का ऐसा सदुपयोग बन पड़ा होता कि उसके दुःख दारिद्रय की गहराई तक धँसी हुई जड़ कटती और ऐसा कुछ प्रतिफल सामने आया होता जिसमें संव्याप्त दुर्गति के अगणित पक्षों को प्रगतिशीलता में बदला होता।

ईसाई धर्म में विचारपूर्वक दानपुण्य होता है। इस समुदाय में पूजा पाठ और भक्ति-भावना का अधिक प्रचलन नहीं है। रविवार को गिरजाघरों में ही वयोवृद्ध लोगों का जमघट बन जाता है किन्तु घरों में या धार्मिक कर्मकाण्डों में न तो उपस्थित होते हैं और न उस निमित्त धूमधाम सम्पन्न करने हेतु कोई पैसा ही खर्च किया जाता है। इस प्रकार के धमालों से, दर्शन झाँकियाँ, कथा कीर्तन स्तर के प्रयासों से किसी देवता को प्रसन्न करके मनोकामना पूरी करने की बात पर भी उनका राई रत्ती विश्वास नहीं होता। पर जहाँ तक दान पुण्य का सवाल है वे उस दिशा में गंभीरतापूर्वक सोचते हैं और सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए जी खोलकर पैसा खर्च करते हैं, यही कारण है कि ईसाई मिशनें संसार के कोने-कोने में विशेषतया पिछड़े क्षेत्रों में फैली हुई हैं और आश्चर्यजनक रीति से फलफूल रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उस समुदाय के लोगों की जनसंख्या विश्व की आधी आबादी के बराबर हो गई है। जब कि धर्मध्वजी कहलाने वाला हिन्दू समाज दिन-दिन घटता जा रहा है और उनकी संख्या मात्र ३५ करोड़ सारे संसार भर में रह गई है जबकि तेरहसौ वर्ष पूर्व जन्मा इस्लाम धर्म हो ८० करोड़ से अधिक है और ईसाई ९७५ करोड़ के करीब जा पहुँचे। इसका प्रधान कारण यह है कि धर्म धारणा को विवेकपूर्वक-बुद्धिसंगत ढंग से प्रयुक्त किया जाता है। उन समुदायों में सदावर्त नहीं लगते और निठल्लों को भोजन कराने का कौतुक भी नहीं होता पर यह देखा जाता है कि किस प्रकार पिछड़ेपन को दूर करने के लिए व्यावहारिक कदम उठाये जायें और किस प्रकार उपकृत लोगों की तथा विचारशील दर्शकों की सहानुभूति अर्जित की जाये ?

ईसाईयों की पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा, चिकित्सा की व्यवस्था सराहने योग्य है। इस प्रभाव से प्रभावित लोगों को वे अपने धर्म की दो-चार विशेषतायें बताकर ही दीक्षित कर लेते हैं। उनके धूम धमाके, प्रचार जुलूस, कथा प्रवचन कदाचित ही कहीं देखने को मिलते हैं जबकि अपने लोगों में धर्म का ढकोसला खड़ा करने, सस्ती वाहवाही लूटने और स्वर्ग में मौज उड़ाने के सपने देखने में ही दानपुण्य की विशालकाय राशि समाप्त हो जाती है। इसका कोई कारगर परिणाम किसी क्षेत्र में उठता, उगता दृष्टिगोचर नहीं होता। मात्र हो हल्ला हुड़दंग होकर ही खेल खत्म हो जाता है।

धर्म के प्रति यदि श्रद्धा हो तो उसकी गंभीरताओं से जन-जन को अवगत कराया जाना चाहिए। बाईबिल संसार की प्रायः सभी भाषाओं में जिनकी संख्या प्रायः ६०० है छपी है और लाखों की संख्या में लागत से कम मूल्यों में इच्छुकों को उपलब्ध कराई जाती है। अपने देश में ऐसा कदम गीता रामायण प्रचार के सम्बन्ध में एकमात्र गोरखपुर के गीताप्रेस ने उठाया था। दान की उपयोगिता मात्र दो प्रयोजनों में है। एक पिछड़ों को ऊँचा उठाना स्वावलम्बी बनाना। दूसरा जीवन में, समाज में उत्कृष्टता का सम्वर्द्धन करने वाले ज्ञान का, रचनात्मक प्रयास का अभिवर्द्धन करना। हट्टे-कट्टे निठल्लों की मुफ्तखोरी का पोषण करना किसी भी प्रकार धर्मतत्व को नहीं सींचता। जो असमर्थ हैं, उन्हें भी स्वावलम्बी बनने के निमित्त प्राथमिक सहारा दिया जाना चाहिए।

गरीबों की सेवा सहायता के लिए गाँधी जी ने खादी खरीदने का आन्दोलन चलाया था ताकि जरूरतमंदों को उपयोग मिले और उनका गुजारा चले। वे नहीं चाहते थे कि किसी निर्धन को अपना स्वाभिमान खोकर हाथ पसारना पड़े। इससे तो निर्धन दूने घाटे में रहता है। उसकी असमर्थता तो हटती नहीं, उल्टे दूसरों की मुफ्त सहायता के ऋणभार से अपना आत्मपतन भी करता जाता है। ऐसा दान लेने की अपेक्षा घास खाकर जी लेना अच्छा।

वाहवाही लूटने के लिए पैसा खर्च करने वाला अपना मनोरथ तो पूरा कर लेता है पर जिन्होंने उस राशि से अनुचित लाभ उठाया उस पर तो ऋण ही चढ़ता है। उदाहरणार्थ धनियों द्वारा धर्मशालायें बनाई जाती हैं। उसमें व्यापारी, सैलानी, बराती, उचक्के के स्तर के लोगों को मुफ्त में ठहरने की सुविधा मिलती है। जो लोग पूर्ण समर्थ हैं और अन्य कामों के लिए ढेरों पैसा खर्च करते हैं वे अगर होटल में किराया देकर ठहरें तो ही औचित्य है। धर्मशाला का अर्थ है— धर्म प्रयोजनों के लिए काम आने वाली इमारत। सर्वेक्षण करके जाना जा सकता है ऐसा कोई कार्यक्रम वहाँ नहीं होता। फिर धर्मशाला नाम देने की और उस पर सात पीढ़ी के धर्मात्मा होने का, पत्थर लगाने का क्या प्रयोजन हुआ ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाहवाही के निमित्त खर्च किया गया पैसा वैसा ही जाता है जैसा कि सामंतों की यशोगाथा सुनाकर चारण लोग कीमती उपहार प्राप्त किया करते थे। ऐसे तो ब्याह बारातों की धूमधाम देखकर भी भाँड़ और हिंजड़े प्रशंसा के पुल बाँधते और अपनी चाटुकारिता की कीमत वसूल करते हैं। वस्तुतः यह अखबारों के पृष्ठों पर छपने वाली विज्ञापनबाजी के निमित्त लगाये गये पैसे के ही समान है। जिस कार्य की आदर्शों की कसौटी पर कोई उपयोगिता सिद्ध होती हों, ऐसे कार्यों के लिए चाटुकारों से अपने नाम की मुनादी पिटवाने से पैसा खर्चने वाला विज्ञ लोगों की दृष्टि में ओछा, घटिया और उपहासास्पद ही बनता है। दान के पीछे दूरगामी सत्परिणामों की सुनिश्चित संभावना जुड़ी होनी चाहिए। जहाँ ऐसा कुछ नहीं बन पड़ रहा हो तो समझना चाहिए कि बालकों द्वारा फुलझड़ी जलाने या पटाखे फोड़ने जैसा कौतुक मात्र हो रहा है। पुण्य परमार्थ की बात उन अपव्ययों के साथ जोड़ने में किसी भी प्रकार दूरदर्शिता का समावेश नहीं होता।

निर्धनों को आजीविका उपार्जन के आधार मिलने चाहिए। अपंगों के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें कुछ उनका और कुछ उदार लोगों का श्रम जुड़ा हो और कोई सुनिश्चित, स्थायी व्यवस्था बनती हो। बाढ़, अग्निकांड आदि आकस्मिक आपत्तियों में फँस जाने वालों की सामयिक सहायता करना माननीय धर्म कर्त्तव्य है। दुर्घटनाग्रस्त उनकी श्रेणी में नहीं गिने जा सकते जिन्हें भिक्षा व्यवसायी कहते हैं।

वस्तुतः अनगढ़पन ही अधिकांश कठिनाइयों का प्रधान कारण है। पिछड़े लोग वस्तुतः चिन्तन की दृष्टि से पिछड़े होते हैं और आलस्य प्रमाद एवं गुण, कर्म, स्वभाव की निकृष्टता से वे घिरे होते हैं। जीवन कला का उन्हें ज्ञान ही नहीं होता, अतएव वे अवसर होने पर भी प्रगति की दिशा में एक कदम बढ़ा सकने में भी समर्थ नहीं हो पाते। जो पाते हैं उसे दुर्व्यसनों में, अपव्ययों में समाप्त कर देते हैं। इस स्थिति से बचाने में समर्थ व्यक्तियों और संस्थाओं का परिपोषण करना प्रकारान्तर से दीन-दुःखियों की सच्ची सेवा सहायता है क्योंकि सद्ज्ञान और सत्कर्म के लिए प्राणवान प्रेरणा भरने वाले क्रियाकलाप ही सच्चे अर्थों में पुण्य परमार्थ हैं। ऐसे निमित्त कारणों को अग्रगामी बनाने के लिए की गई सहायता को ही श्रद्धासिक्त और दूरदर्शितापूर्ण कहा जा सकता है।

परमार्थ प्रयत्नों में मानव जीवन की सार्थकता

स्वास्थ्य की उन्नति चाहने वालों को जहाँ संयम नियम से रहना पड़ता है, वहाँ व्यायाम करने की, भी आवश्यकता पूर्ण करनी पड़ती है। शरीर के अंग-प्रत्यंगों की परिपुष्टि व्यायाम पर निर्भर रहती है। अखाड़े में जाये बिना किसी के लिये पहलवान बनना या दंगल कुश्ती पछाड़ सकना संभव नहीं होता। श्रम न करने वाले लोग कितने ही संयम नियम से रहें स्वास्थ्य की अभिवृद्धि का लाभ प्राप्त न कर सकेंगे। जो स्थान स्वास्थ्य की उन्नति में व्यायाम का है ठीक वही उपयोगिता आत्म-कल्याण का उद्देश्य पूर्ण करने में सेवा साधना की है। मानव जीवन में सेवा को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। परोपकार से रहित व्यक्ति को संकीर्ण, स्वार्थी, अनुदार और निष्ठुर कहा जाता है। ऐसे लोग आत्मिक दृष्टि से सदा पिछड़े हुए ही पड़े रहते हैं, भले ही वे दिन भर पूजा, पाठ या भजन कीर्तन करते रहें।

आध्यात्मिक प्रगति के लिये भजन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। भजन शब्द संस्कृत की भज्—सेवायां—धातु से बना है। इससे स्पष्ट है कि भजन का तात्पर्य सेवा कार्यों में भी है। जप, ध्यान, पाठ, कीर्तन, जैसा ही महत्त्व सेवा कार्यों का भी है। इसलिए प्रत्येक आत्मिक प्रगति की इच्छा करने वाले के लिये जीवन का सदुपयोग सोचने वाले के लिये, जनसेवा के लिये कुछ न कुछ प्रयत्न करते ही रहना चाहिए। कुछ न कुछ समय धन और मनोयोग लगाते ही रहना चाहिए। इस ओर से जो लोग विमुख हैं, उनकी आत्मा का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो सकता।

विचार की परिपक्वता कर्मों से ही आती है। आत्मिक उन्नति के लिए सद्विचारों के अनुरूप सत्कर्म करने के लिए कुछ व्यावहारिक योजना हम सबके जीवन में सम्मिलित रहनी ही चाहिए। सेवा के अनेक प्रकार होते हैं और यदि विवेकपूर्वक उन्हें किया जाय तो वे सभी उपयोगी होते हैं, अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुरूप हममें से प्रत्येक को कुछ न कुछ कार्य इस प्रकार के नित्य ही करते रहने चाहिए जिससे सेवा धर्म का नियमित अभ्यास होता रहे। नियमित व्यायाम, नियमित भजन, नियमित औषधि सेवन की उपयोगिता जिस प्रकार मानी जाती है, उसी प्रकार नियमित सेवा धर्म को कार्यान्वित करने की व्यवस्था भी बनाये रहना आत्मोन्नति की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

सेवा से तत्क्षण शान्ति मिलेगी। सत्कर्म करते समय अन्तरात्मा में जो सन्तोष होता है उसका आनन्द साधारण सांसारिक लाभों एवं सुखों की तुलना में कहीं अधिक उत्कृष्ट श्रेणी का होता है। सद्भावनाओं का प्रमाण सेवा कामों के द्वारा ही मिलता है। उच्च भावनाओं को सुस्थिर प्रतिष्ठापना उन्हीं के अन्तःकरण में होती है, जो श्रेष्ठ विचारों के अनुरूप उच्च कार्य भी करते हैं। उच्च कार्यों का ही दूसरा नाम पुण्य अथवा सेवा है। दूसरों के लिए परमार्थ बुद्धि रखकर उन्हें सुखी और समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करना मनुष्यता का एक आवश्यक चिन्ह माना गया है।

किन्तु साथ ही एक सावधानी भी रखी जानी चाहिए कि इस सद्भावना का, त्याग और परमार्थ की पुण्य-प्रक्रिया का अनुचित लाभ किसी को न उठाने दिया जाय। पात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कुपात्र का ध्यान रखना आवश्यक है। हमारी सेवा सहायता का क्या प्रतिफल होगा, यह काफी विचारपूर्वक सोच लेना चाहिए। अन्यथा सद्भावनाओं का अनुचित लाभ उठाने वाले दुष्ट, दुराचारी, आलसी और अकर्मण्य लोग धर्म का आडम्बर ओढ़कर ठगी की प्रवंचना रचेंगे। कई व्यक्ति समर्थ होते हुये या झूठ-मूठ अपने को दीन-दुःखी बताते रहते हैं और दूसरों की दया से लाभ उठाने का व्यवसाय अपनाते हैं। कई धर्मात्मा न होते हुए भी धर्मात्मा का आडम्बर बनाकर दान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के कुपात्रों की सहायता में खर्च किया गया धन या समय व्यर्थ चला जाता है। कई बार तो इस मुफ्त लाभ से इनकी बुराइयों का और भी अधिक पोषण होता है और समाज को भारी क्षति पहुँचती है।

सेवा, धर्म दुधारी तलवार की तरह है जो अनुचित उपयोग होने पर उलटी हानिकारक भी सिद्ध होती है। कुपात्रों की सेवा सहायता से सद्भावनाओं की अभिवृद्धि का उद्देश्य पूरा नहीं होता वरन् दुष्टों की दुष्टता ही परिपुष्ट होती है। साँप को दूध पिलाने से उसका विष ही बढ़ेगा। कुमार्गगामी, आलसी, ढोंगी, मुफ्तखोर लोगों का पोषण यदि दान द्वारा होता है तो वे कोई उपयोगी कार्य क्यों करेंगे ? अनुचित लाभ उठाने की अपनी दुष्प्रवृत्ति को क्यों छोड़ेंगे ? इसलिए धर्म के नाम पर अनावश्यक एवं अनुपयोगी कार्यों के लिए या व्यक्तियों के लिए अपना उदारता का दुरुपयोग न होने देना चाहिए। बहुत सोच-विचारकर केवल उन कार्यों में अपनी सेवावृत्ति को चरितार्थ करना चाहिए जिससे संसार में सद्भावनाओं का विस्तार होने में सहायता मिले।

गिरे हुए लोगों को ऊँचा उठाने के लिए कोई सहायता या प्रयत्न करना धर्म है। जो लोग मुसीबत में फँसे हुए हैं, यदि ऐसी परिस्थितियों में पड़ जाते हैं कि अपना भार आप नहीं उठा सकते उनके लिए ऐसी सहायता करनी चाहिए, जिससे वे अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हो सकें। दान को व्यवसाय बनाने की प्रवृत्ति बहुत ही हानिकारक है इसे जरा भी नहीं पनपने देना चाहिए। जिन लोगों का समय लोकहित में लगा हुआ है, जिनके पास निज की कोई आजीविका नहीं है ऐसे निरन्तर परमार्थ कार्यों में जीवन लगाये रहने वाले लोक सेवियों को व्यक्तिगत गुजारे के लिए भी सहायता देनी चाहिए। प्राचीन काल में साधु और ब्राह्मण ऐसे ही लोकसेवी होते थे और उन्हें दान देना सार्थक भी था। पर अब तो दान दक्षिणा प्राप्त करना टैक्स वसूल करने की तरह एक अधिकार बनता जाता है। लोकहित की दृष्टि से कुछ भी न करने वाले लोग भी दान लेने में संकोच नहीं करते। इस भिक्षुक प्रवृत्ति को बढ़ने नहीं देना चाहिए। इससे लेने वालों का चरित्र गिरता है और देने वालों के धन का दुरुपयोग होता है। अनुपयुक्त व्यक्तियों का पोषण धर्म और सदाचार की वृद्धि में सहायक नहीं बाधक होता है। बिना विचारे दान से उत्पन्न हुए परिणामों पर देने से रूढ़ि-मात्र का पोषण करने के लिए दिया हुआ दान संसार में अनर्थों को ही बढ़ावा देने वाला प्रतीत होता है।

हमें अपनी सेवा करने की शक्ति तथा सामर्थ्य अनुपयुक्त कार्यों में खर्च नहीं होने देनी चाहिए ताकि उसे सत्कार्यों में लगाने के लिए बचाया जा सके। जंगली जानवरों से फसल की रखवाली न की जायगी तो बच्चों का पालन करने लायक अन्न भी बेचारे किसान को प्राप्त न होगा। भिक्षाजीवी लोग अनुपयुक्त कार्यों के बहाने जनता को श्रद्धा का अधिकांश भाग खर्च करा लेते हैं, फिर उपयुक्त कार्यों के लिए उनकी सामर्थ ही नहीं रहती। ऐसी दशा में सद्भावना बढ़ाने वाले जिन सत्कार्यों की आज नितान्त आवश्यकता है वे उपेक्षित पड़े रहते हैं। दान, धर्म की इस देश में कमी नहीं, सेवा और उदारता की प्रवृत्ति भी बहुत है पर दुःख यही है कि उसका प्रवाह अनुपयुक्त कार्यों की दिशा में बह जाने से जो आवश्यक है वह कार्यान्वित हो ही नहीं पाता।

हमें धन से ही नहीं तन और मन से भी सेवा कार्यों में लगना चाहिए। आजीविका कमाने तथा अन्य व्यक्तिगत कामों की तरह ही सेवा प्रयत्नों को दैनिक जीवन का एक आवश्यक धर्म कर्तव्य मानकर उसे पूरा करने के लिए शक्तिभर प्रयत्न करना चाहिए। आकस्मिक दुर्घटनाग्रस्त एवं पीड़ित, परेशान, भूखे, प्यासे, अन्धे, अपाहिज, कोढ़ी, कलंकी लोग हमारी दया के पात्र हैं, उनकी शरीर रक्षा एवं तात्कालिक आवश्यकता के लिए यथासंभव कुछ न कुछ देना ही चाहिए या यह उत्तरदायित्व सरकार को उठाना चाहिए ताकि इन अपंग लोगों को भी अपना स्वाभिमान खोकर भिक्षा न माँगनी पड़े। पर जब तक ऐसा नहीं होता तब तक संकटग्रस्त लोगों के लिए यथास्थिति कुछ न कुछ सहायता करके दया धर्म को चरितार्थ करते रहना आवश्यक है।

अपने ग्रहण किये आवश्यक उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार पालन करने के लिए जो शक्ति लगाई जाती है वह भी सेवा है। यह समस्त विश्व भगवान की सम्पत्ति है, इसमें से जितने पौधे जिस माली के जिम्मे सींचने-सँभालने के लिए मिले हैं, वह उन्हें हरा-भरा और फला-फूला बनाने के लिए जो कुछ तप त्याग करता है वह भी सेवा धर्म के पालन का ही एक अंग है। अपने शरीर और मन को आदर्श स्थिति में पहुँचाने के लिए जो स्वाध्याय, साधना, संयम और सेवा का कार्यक्रम बनाया जाता है वह अपनी सेवा होते हुए भी विश्व मानव की ही सेवा है। हम स्वयं भी इस संसार के एक अंश हैं। अपने को जितना सुधार लिया एक अंश में इस संसार के सुधारने का सेवा का उतना कार्य सम्पन्न हो गया मानना चाहिए।

संसार की सबसे बड़ी सेवा—समाज को, मानव जाति को सबसे बड़ी हित साधना यह है कि यहाँ सद्भावनाओं का विस्तार बढ़े। लोगों का अन्तरात्मा में वे प्रवृत्तियाँ पनपें जिनके द्वारा मनुष्यों का जीवन आदर्श कार्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता रहे। यों पीड़ितों को गिरे हुओं की, शारीरिक एवं आर्थिक सहायता भी समयानुसार बड़ी आवश्यक होती है पर मानव जाति की समस्त कठिनाइयों का स्थायी हल सत्प्रवृत्तियों के विकास पर ही निर्भर है। सामयिक कठिनाइयाँ भी प्रायः मनुष्यों की दुर्बुद्धि के ही परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। दैवी प्रकोप या आकस्मिक दुर्घटना उत्पन्न होने वाली विपत्तियों की स्थिति तो कभी-कभी अपवाद स्वरूप हो जाती है। अधिकांश कष्ट और कठिनाइयाँ तो मनुष्य के अपने उत्पन्न किये हुए होते हैं। यदि उन भूलों का सुधार न हो तो विपत्तियों की घटाएँ निरन्तर घुमड़ती ही रहेंगी। थोड़ी सेवा सहायता की बूँदें भी उस जलते तवे को ठंडा करने में कुछ भी कारगर न हो सकेंगी।

मानव जीवन की सार्थकता के लिए सेवा धर्म का अपनाया जाना आवश्यक है। हम अपने ही सुख-सुविधा की, उन्नति और समृद्धि की बात न सोचते रहें वरन् दूसरों को सुखी बनाने के लिए, पुण्य परमार्थ के लिये भी कुछ न कुछ करते रहें। परमार्थ में सबसे आवश्यक एवं उपयोगी एक ही कार्य हो सकता है और वह है मानवीय गुण कर्म स्वभाव में सद्भावनाओं की अभिवृद्धि का प्रयत्न। इस तथ्य की उपयोगिता यदि हम समझ लें और अपने स्वल्प सामर्थ के अंतर्गत जो कुछ हो उसे इसी दशा में प्रयुक्त करने लगें तो संसार की स्थिति ही बदल जाय। तब युग परिवर्तन के—इस धरती पर स्वर्ग अवतरित करने के स्वप्न को साकार करने में कुछ भी विलम्ब न लगे।

अतिमहत्त्वपूर्ण तीन सेवा साधनाएँ

सर्वविदित है कि इन दिनों देश के सामने तीन ही अभाव ऐसे हैं जिनके कारण अनेकानेक संकट और झंझट खड़े होते हैं। सर्व साधारण को अनेक प्रकार से संत्रस्त और उद्विग्न रखने में इन्हीं तीनों को विपत्तियों का सृजन करते हुए देखा जा सकता है। यह तीन हैं—(१) अविद्या, (२) अस्वस्थता, (३) दरिद्रता।

इनमें से जहाँ जिस मात्रा में इनका निराकरण किया जा सकेगा वहाँ उसी अनुपात में समृद्धि और प्रगति बढ़ती जायेगी। जिन्हें भी लोकहित में वास्तविक रुचि हो, उन्हें इन मूलभूत कारणों को भी समझना चाहिए और उनके निराकरण का पुण्य प्रयास् करना चाहिए। विपत्तिग्रस्तों की सामयिक सहायता भी यदा-कदा आवश्यक होती है पर तीन विभीषिकायें तो ऐसी हैं, जिनका उन्मूलन करने के लिए अनवरत प्रयत्न होने चाहिए। उत्कर्ष प्रयास में उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए। तात्कालिक सेवा सहायता देखने, सुनने में तो अच्छी लगती है पर समस्याओं का आत्यांतिक समाधान करने के लिए जड़ तक पहुँचना चाहिए और जहाँ से विपत्तियों के झरने फूटते हैं उन्हीं उद्गमों को बन्द करने के लिए दूरगामी योजना बनानी चाहिए। कुँआ, तालाब, बगीचा, मंदिर, धर्मशाला, दवाखाना आदि बनाने में व्यक्ति धर्मात्मा तो कहलाने लगता है और वाहवाही भी लूटता है किन्तु इन माध्यमों से सामयिक सुविधा भर ही हस्तगत हो पाती है। कुछ को कुछ समय तक सुविधा लाभ भी मिल सकता है पर सार्वजनिक प्रगति के चिरस्थायी समाधान का उपाय तभी बन पड़ेगा, जब अविद्या, अस्वस्थता एवं दरिद्रता की समस्याओं का चिरस्थायी समाधान खोजा जाय। व्यक्ति और समाज का वास्तविक अभ्युदय इसी आधार पर बन पड़ेगा। उज्ज्वल भविष्य की संरचना का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय है नहीं।

सर्वविदित है कि शिक्षा प्रसार की दृष्टि से सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर बच्चों के अनेक स्कूल चल रहे हैं फिर भी उनसे समस्या का आंशिक समाधान भी सोचा जा सकता है। जो अभी पढ़ रहे हैं वे बीस वर्ष बाद सामाजिक उत्तरदायित्वों को वहन करने की स्थिति में पहुँचेंगे। जबकि प्रौढ़ अशिक्षितों की संख्या स्कूली छात्रों की तुलना में कई गुनी अधिक है। आज के उत्तरदायित्व का वहन भी वे ही करते हैं। सामयिक सुधार परिवर्तन भी उन्हीं के हाथ में है। ऐसी दशा में उन्हें उपेक्षित स्थिति में पड़ा नहीं रहने दिया जा सकता। प्रौढ़ शिक्षा की समस्या जन स्तर पर हल करनी होगी। घर-घर मुहल्ले-मुहल्ले प्रौढ़ पाठशाला की स्थापना का सरंजाम जुटाना पड़ेगा। हर शिक्षित को पाँच प्रौढ़ अशिक्षितों को पढ़ाने के लिए उत्साह भरने वाला आन्दोलन चलाना पड़ेगा। विद्या ऋण चुकाने का पुनीत कर्तव्य इसी प्रकार निभ सकता है।

स्कूली बच्चों में जीवन कला के हर पक्ष को समझाने वाली शिष्टता, सज्जनता, नागरिकता, सामाजिकता के सद्गुण उत्पन्न करने जैसा वातावरण प्रायः नहीं के बराबर है। वहाँ पाठ्य पुस्तकों का भार ही इतना बोझिल है जिसे किसी प्रकार पूरा करने में छात्रों तथा अध्यापकों का कचूमर निकल जाता है। फिर भी अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने की समस्या यथावत् बनी रहती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हर मुहल्ले में बाल-संस्कार शाखाएँ खुले जिनमें स्कूली पाठ्यक्रम पूरा कराने के अतिरिक्त मानवी सद्गुणों के विकास की, परिष्कृत दृष्टिकोण अपनाने की चिन्तन-चरित्र एवं व्यवहार में वरिष्ठता का समावेश करने की प्रक्रिया हर छात्र को हृदयंगम करायी जाये।

शिक्षितों में सद्ज्ञान संवर्द्धन का लाभ निरन्तर उपलब्ध कराते रहने के लिए हर जगह ऐसे पुस्तकालय हों जिनमें समाधान कारक साहित्य ही हो। उस स्थापना में यह प्रक्रिया भी जुड़ी रहे कि घर बैठे हर शिक्षित को नियमित रूप से बिना मूल्य सत् साहित्य पढ़ने के लिए मिलता रहे। साक्षरता और सद्ज्ञान के समन्वय से ही सामान्य शिक्षा का उद्देश्य पूरा होता है। इसके लिए प्रथम चरण के रूप में हर जगह समग्र तत्परता के साथ प्रयत्न किए जायें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका अगला चरण 'विद्या तत्व' को हृदयंगम करना, जीवनचर्या में समाविष्ट करने के स्तर तक पहुँचाना है। इसी प्रयोजन के लिए धर्म, अध्यात्म, तत्वदर्शन, उपासनात्मक क्रिया-कृत्यों का सुविस्तृत आधार खड़ा किया गया है। आस्थाओं, मान्यताओं, आकांक्षाओं में उत्कृष्टता का समावेश करना, क्रिया-कलापों को आदर्श बनाना इसी आधार पर सम्भव हो सकता है। श्रद्धा-विश्वास ही अन्तराल के मर्मस्थल को छू पाता है। इसलिए इस क्षेत्र में भी घुसी हुई प्रतिगामिता को हटाकर उसके स्थान पर प्रगतिशीलता का समावेश करना होगा। दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाने के लिए जन-जन को प्रभावित सहमत करना होगा। धर्मतन्त्र से लोकशिक्षण की प्रक्रिया को अपनाने की प्रेरणा देने वाला वातावरण बनाना होगा। यह सब किस क्षेत्र में, किस उद्देश्य के लिए, किस प्रकार किया जाय इसकी अनेक विधियाँ शान्तिकुँज में युग नायक सत्रों में सिखायी-समझायी जाती हैं। कथा-कीर्तन की पद्धति इस प्रयोजन के लिए बहुत सफल हुई है। प्रज्ञा पुराण के कथानक पुरातन दृष्टान्त उपस्थित करते हुए आज की समस्याओं का समाधान बताने वाले प्रभावी माध्यम हैं। सहगान कीर्तन भी धर्मधारणा की पृष्ठभूमि बनाता है। दीपयज्ञ अति सरल नितान्त सस्ती किन्तु जन समुदाय को बड़ी संख्या में आकर्षित करने वाली भाव श्रद्धा उभारने वाली सफल प्रक्रिया है। इसी के साथ दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के संकल्पों को भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ रखा गया है। विद्या विस्तार का यह कार्य भी युगनायकों को ही सौंपा गया है। शिक्षा विस्तार के प्रयत्न भी उसी में सम्मिलित रहेंगे।

इन सभी कार्यों को अग्रगामी बनाने के लिए स्वाध्याय और सत्संग का प्रबन्ध करना पड़ता है। स्वाध्याय के लिए युग साहित्य का सृजन होता है। उसे जन-जन तक पहुँचाने का कार्य युगनायकों को करना होता है। सत्संग के लिए वक्तृता एवं सत्संग का अभ्यास करना होता है। जन समुदाय को इन्हीं माध्यमों से एकत्रित एवं प्रभावित किया जा सकता है।

प्राचीन काल में साधु ब्राह्मण और वानप्रस्थ समुदाय शिक्षा एवं विद्या प्रचार कार्यों के लिए ही पूरी तरह समर्पित रहते थे। उनके आश्रमों में गुरुकुल आरण्यक चलते थे। जो वहाँ नहीं पहुँच सकते थे, जो व्यस्तता, असमर्थता या निर्धनता के कारण विद्यालयों तक नहीं पहुँच पाते थे उन्हें ज्ञान लाभ देने के लिए वे उपाध्याय तीर्थ यात्रा, पदयात्रा कार्यक्रम के अन्तर्गत गाँव-गाँव पहुँचते, घर-घर जाते और शाश्वत एवं समय धर्म के अनुरूप मार्गदर्शन करते थे। अब वह परम्परा नहीं रही। वंश से ब्राह्मण और वेष से साधु तो बहुत हैं पर उनमें से सद्ज्ञान प्रसार एवं सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए निरत कोई बिरले ही रहते हैं। माध्यम टूट जाने से सर्वसाधारण को, युग धर्म की शिक्षा मिलते रहने की दिव्यधारा भी सूख गयी। यही कारण है कि लोक मानस में आदर्शवादी उत्कृष्टता का गहरा पुट बना रहने में भारी कमी पड़ गयी। अब उस छूटे हुए प्रचलन को युग सृजेता नये सिरे से पूरा करने के लिए कटिबद्ध—अग्रसर होंगे। सद्ज्ञान की सत्प्रवृत्तियों का सृजेता है। ज्ञान से कर्म बनता है। आस्थाएँ ही व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। भावनाओं और मान्यताओं का सम्मिश्रण ही मानवी गरिमा का स्तर बनाये रहने में समर्थ होता है।

शिक्षा की महत्ता सर्वोपरि है। इसे ब्राह्मणत्व कहा जा सकता है। जीवन को सुस्पष्ट एवं सुविकसित रखने के लिए अगली आवश्यकता स्वस्थता की है। इस सम्बन्ध में भी बड़ी अस्त-व्यस्तता, अव्यवस्था फैली हुई है। बीमार पड़ने पर तो लोग चिकित्सकों के पास दौड़ते और दवादारू लेकर इलाज कराते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि स्वास्थ्य रक्षा के सामान्य नियमों का पालन न करने से ही दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का शिकार बनना पड़ता है। यदि स्वच्छता, आहार-विहार, श्रम सन्तुलन आदि का समुचित ध्यान रखा जा सके तो किसी को भी बीमार पड़ने की आवश्यकता न पड़े। मनुष्य के चंगुल में जकड़े हुए पशु-पक्षी ही कभी-कभी बीमार पड़ते हैं अन्यथा उनमें से जो स्वच्छन्द विचरते हैं, प्रकृति के सानिध्य में रहते हैं, उनमें से कोई न कभी बीमार पड़ता है और न दुर्बलता का कष्ट सहता है। मनुष्य पर भी प्रकृति का वही नियम लागू होता है। इसलिए चिकित्सा पर जितना निर्भर रहा जाता है उसकी तुलना में स्वास्थ्य रक्षा की विधि व्यवस्था को जन-जीवन में समाविष्ट करने के लिए अनेक गुना ध्यान दिया जाना चाहिए।

देखा जाता है कि स्वास्थ्य रक्षा का प्रयोजन सर्वत्र उपेक्षित ही पड़ा रहता है। उस सम्बन्ध में न तो लोगों का ज्ञान है और न ध्यान। इस कमी को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य रक्षा आन्दोलन उतने ही उत्साह से चलना चाहिए जितना कि आजीविका उपार्जन, ठाट-बाट, चिकित्सा आदि पर ध्यान दिया जाता है। पाठशालाओं की तरह ही हर गाँव में आरोग्य शालाएँ खुलनी चाहिए। पुराने-जमाने में मात्र व्यायामशालाएँ, अखाड़े इस प्रयोजन को पूरा कर लेते थे क्योंकि तब स्वास्थ्य रक्षा के सभी आवश्यक नियमों का हर कोई भली-भाँति पालन करता था। अब स्थिति बदल गई है व्यायामशालाओं को आरोग्यशालाओं की विकसित भूमिका निभानी होगी। सामान्य रोगों का निवारण तो पास-पड़ौस में पाई जाने वाली जड़ी-बूटियों से भी हो सकता है। वनवासी, आदिवासी, देहाती, श्रमिक, किसान उसी आधार पर अपना इलाज आप ही कर लेते हैं। बड़ी बात यह है कि स्वास्थ्य रक्षा के सभी पक्षों से सर्वसाधारण को अवगत कराया जाय और उन्हें इस विद्या को जीवन चर्या में उतारने का अभ्यस्त बनाया जाय। यही है सामयिक स्वास्थ्य आन्दोलन का सामान्य स्वरूप।

ब्राह्मण-समाज को सद्ज्ञान सम्पन्न सुशिक्षित बनाने का उत्तरदायित्व सँभालता है तो क्षत्रिय को स्वास्थ्य रक्षा की निजी एवं सर्वजनीन जिम्मेदारी वहन करनी पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मरक्षा के लिए बड़े अस्त्रों का प्रयोग तो कोई-कोई ही सीखते थे, पर लाठी चलाने जैसे सामान्य सुरक्षा साधनों का हर कोई उपयोग करता था। इस विद्या को व्यापक बनाना ही पूर्व में क्षत्रिय धर्म था। प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था विशिष्ट समाज सेवा के साथ जुड़ी हुई थी। ब्राह्मण शिक्षा को और क्षत्रिय स्वास्थ्य रक्षा को, सुरक्षा की रीति-नीति को जन-जन के अभ्यास में उतारते थे।

द्विज धर्म में तीसरा वर्ण है वैश्य। वैश्य अर्थात् अभावों को दूर करने में संलग्न लोकसेवी वर्ण। वे अपनी आजीविका तो सहज ही चला लेते थे। उसके लिए सारी शक्ति खपाने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह तो अति सरलतापूर्वक कोई भी जुटा लेता है। उद्देश्यपूर्ण सार्थक जीवन तो इसी प्रकार बन पड़ता है कि सर्वजनीन समस्याओं के समाधान में अपने चिन्तन, समय, श्रम, पुरुषार्थ एवं कौशल का बड़े से बड़ा भाग लगाया जाय। वैश्य दरिद्रता की महाव्याधि से हर किसी को छुड़ाने का प्रयत्न करते थे। आज भी वह आवश्यकता न केवल यथा स्थान बनी हुई है वरन् प्राचीन काल की तुलना में और भी अधिक बढ़ गई है।

भारत पिछड़े और बिखरे अनपढ़ देहात क्षेत्र के रूप में है। शहरी और सुसम्पन्न तो थोड़े-से ही हैं। वे अपनी गाड़ी किसी प्रकार स्वयं चला लेते हैं। लोकसेवियों का ध्यान देहाती भारत के उन्नयन पर केन्द्रित होना चाहिए। शिक्षा और स्वास्थ्य के अतिरिक्त आजीविका अभिवृद्धि के प्रयासों पर भी ध्यान देना चाहिए। अपने देश में कृषि पशुपालन के अतिरिक्त तीसरा आजीविका माध्यम 'कुटीर उद्योग' ही हो सकता है। वह बड़े आकार में भी हो सकता है। सहकारी उद्योगों, बड़े उद्योगों के रूप में भी, पर अधिकांश को छोटे उद्योग ही रास आते हैं। उस व्यवस्था पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इन त्रिविध सेवा साधना को अपनाकर जन साधारण को सुसंस्कारी सम्पन्न बनाया जा सकना सम्भव है यह सुनिश्चित है।

श्रेष्ठतम सेवा—पतन निवारण

शारीरिक स्वस्थता के तीन चिन्ह हैं—(१) खुलकर भूख, (२) गहरी नींद (३) काम करने के लिए स्फूर्ति। आत्मिक समर्थता के भी तीन चिन्ह हैं—(१) चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश, (२) चरित्र में निष्ठा और (३) व्यवहार में पुण्य परमार्थ के पुरुषार्थ की प्रचुरता। इन्हीं को उपासना, साधना और आराधना कहते हैं। आत्मिक प्रगति का लक्षण है मनुष्य में देवत्व का अभिवर्द्धन। देवता देने वाले को कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे धर्म धारणा या सेवा साधना भी कह सकते हैं। व्यक्तित्व में शालीनता उभरेगी तो निश्चित रूप से सेवा की ललक उठेगी। सेवा साधना से गुण, कर्म, स्वभाव में सदाशयता भरती है। इसे यों भी कह सकते हैं कि जब शालीनता उभरेगी तो परमार्थरत हुए बिना रहा नहीं जा सकेगा। पृथ्वी पर मनुष्य शरीर में निवास करने वाले देवताओं को भूसुर कहते हैं। यह साधु और ब्राह्मण वर्ग के लिए प्रयुक्त होता है। ब्राह्मण एक सीमित क्षेत्र में परमार्थरत रहते हैं और साधु परिव्राजक के रूप में सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन का उद्देश्य लेकर जहाँ आवश्यकता है वहाँ पहुँचते रहते हैं। उनकी गतिविधियाँ पवन की तरह प्राण प्रवाह बिखेरती हैं। बादलों की तरह बरस कर हरीतिमा उत्पन्न करती हैं। आत्मिक प्रगति से कोई लाभान्वित हुआ या नहीं, इसकी पहचान इन्हीं दो कसौटियों पर होती है कि चिन्तन और चरित्र में मानवीय गरिमा के अनुरूप उत्कृष्टता दृष्टिगोचर होती है या नहीं। साथ ही परमार्थ परायणता की ललक कार्यान्वित होती है या नहीं।

मोटे तौर पर दान पुण्य को परमार्थ कहते हैं। पर इसमें विचारशीलता का गहरा पुट रहना आवश्यक है। दुर्घटनाग्रस्त, आकस्मिक संकटों में फँसे हुओं को तात्कालिक सहायता आवश्यक होती है। इसी प्रकार अपंग, असमर्थों को भी निर्वाह मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त अभाव ग्रस्तों, पिछड़े हुओं की ऐसी परोक्ष सहायता की जानी चाहिए जिसके सहारे वे स्वावलम्बी बन सकें। उन्हें श्रम दिया जाय, साथ ही श्रम का इतना मूल्य भी, जिससे मानवोचित निर्वाह संभव हो सके। गांधी जी ने खादी को इसी दृष्टि से महत्व दिया था कि उसे अपनाने पर बेकारों को काम मिलता है। अन्य कुटीर उद्योग भी इसी श्रेणी में आते हैं। बेरोजगारी दूर करने के साधन खड़े करना प्रकारान्तर से अभावग्रस्तों की सहायता ही है। मुफ्तखोरी को बढ़ावा देना दान नहीं है। इस में निठल्लेपन की आदत पड़ती है। प्रमाद और व्यसन पनपते हैं। लेने वाले को हीनता की अनुभूति होती है और देने वाले का अहंकार बढ़ता है। यह दोनों ही प्रवृत्तियाँ दोनों ही पक्षों के लिए अहितकर हैं। इसलिए औचित्य और सही परिणाम को दृष्टि में रखते हुए ही दान किया जाना चाहिए। अन्यथा दान के नाम पर धन का दुरुपयोग ही होता है उससे स्वावलम्बन का उत्साह घटता है।

दोनों में सर्वोपरि ज्ञान दान को माना जाता है। इसे ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ जिन प्रयत्नों से बढ़ सकें उसी को सच्चा परमार्थ कहना चाहिए। सत् चिन्तन के अभाव में ही लोग अनेकों दुर्गुण अपनाते और पतन पराभव के गर्त में गिरते हैं। यदि सही चिंतन कर सकने का पथ प्रशस्त हो सके तो समझना चाहिए कि सर्व समर्थ मनुष्य को अपनी समस्याएँ आप हल करने का मार्ग मिल गया। अपंगों, असमर्थों या दुर्घटनाग्रस्तों को छोड़कर कोई ऐसा नहीं है जो सही चिंतन करने का मार्ग मिल जाने पर ऊँचा उठ न सके, आगे न बढ़ सके, अपनी समस्याओं का आप हल न कर सके। इसलिए आत्मिक प्रगति के लिए प्रधानतया यही नीति अपनानी चाहिए कि लोक मानस के परिष्कार के लिए सत्प्रवृत्ति सम्वर्द्धन के लिए अपनी योग्यता और परिस्थिति के अनुसार भरसक प्रयत्न किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय की अपनी समस्यायें हुआ करती हैं और परिस्थितियों के अनुरूप उनके समाधान भी खोजने पड़ते हैं। प्राचीन कथा, पुराणों और धर्मशास्त्रों से युग धर्म का निरूपण नहीं हो सकता। उसके लिए आज के प्रवाह प्रचलन और वातावरण को ध्यान में रखना होगा। इस हेतु युग मनीषियों को ही सदा से मान्यता मिलती रही है। इन दिनों भी इसी प्रक्रिया को अपनाना होगा। इसके लिए युग चेतना का आश्रय लेना होगा। युग मनीषियों के प्रतिपादनों पर ध्यान देना होगा। सद्ज्ञान संवर्द्धन का सही तरीका यही हो सकता है। साक्षरता की तरह ऐसे सद्ज्ञान संवर्द्धन की भी आवश्यकता है, जो व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित समस्याओं के सन्दर्भ में समाधान-कारक सिद्ध हो सके। आत्मोत्कर्ष के लिए आराधना का सेवा साधन का उपाय इसी आधार पर खोजना होगा। लोक मानस का परिष्कार और सत्प्रवृत्ति-सम्वर्द्धन को सर्वोच्च स्तर का आधार मानते हुए बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में युग धर्म की प्रतिष्ठापना की जानी चाहिए।

कहा जाता रहा है कि विचार क्रान्ति की, ज्ञान यज्ञ की साधना में सभी दूरदर्शी विवेकवानों को लगना चाहिए। इसी निमित्त लेखनी, वाणी तथा दृश्य-श्रव्य आधारों का ऐसा प्रयोग करना चाहिए जिससे सर्व साधारण को युग धर्म पहचानने और कार्यान्वित करने की प्रेरणा मिल सके। सार्वजनीन और सार्वभौम ज्ञान-यज्ञ ही आज का सर्वश्रेष्ठ परमार्थ है। इसकी उपेक्षा करके, सस्ती वाहवाही पाने के लिए कुछ भी देते, बखेरते और, कहते, लिखते रहने से कुछ वास्तविक प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है।

इस चेतना को प्रखर प्रज्ज्वलित करने के लिए युग साहित्य की प्राथमिक आवश्यकता है। उसी के आधार पर पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने की बात बनती है। शिक्षितों को पढ़ाया और अशिक्षितों को सुनाया जाय तो लोकप्रवाह को सही दिशा दी जा सकती है। इसके लिए प्रज्ञा युग के साधकों को झोला पुस्तकालय चलाने के लिए अपना समय और पैसा लगाना चाहिए। सत्साहित्य खरीदना सभी के लिए कठिन है, विशेषतया ऐसे समय में जब कि लोगों को भौतिक स्वार्थ साधनों के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। आदर्शों की बात सुनने-पढ़ने की अभिरुचि है ही नहीं। ऐसे समय में युग साहित्य पढ़ाने, वापस लेने के लिए शिक्षितों के घर जाया जाय, उन्हें पढ़ने योग्य सामग्री दी जाती और वापस ली जाती रहे, तो इतने से सामान्य कार्य से ज्ञान यज्ञ का महत्वपूर्ण प्रयोजन हर क्षेत्र में पूरा होने लगेगा। अशिक्षितों को सुनाने की बात भी इसी के साथ जोड़कर रखनी चाहिए।

विचारगोष्ठियों, संभा सम्मेलनों, कथा प्रवचनों का अपना महत्व है। इसे सत्संग कहा जा सकता है। लेखनी और वाणी के माध्यम से यह दोनों कार्य किसी रूप में हर कहीं चलते रह सकते हैं। अपना उदाहरण प्रस्तुत करना सबसे अधिक प्रभावोत्पादक होता है। लोग समझने लगे हैं कि आदर्शों की बात सिर्फ कहने-सुनने के लिए होती है। उन्हें व्यवहारिक जीवन में नहीं उतारा जा सकता। इस भ्रान्ति का निराकरण इसी प्रकार हो सकता है कि ज्ञान यज्ञ के अध्वर्यु-विचार क्रान्ति के प्रस्तोता जो कहते हैं—दूसरों से जो कराने की अपेक्षा है, उसे स्वयं अपने व्यवहार में उतारकर दिखायें। अपने को समझाना, ढालना दूसरों को सुधारने की अपेक्षा अधिक सरल है। उपदेष्टाओं को—आत्मिक प्रगति के आराधनारत होने वालों को, अपनी कथनी और करनी एक करके दिखानी चाहिए।

आदर्शवादी लोक-शिक्षण के लिए इस प्रकार की आवश्यकता अनिवार्य रूप से रहती है। फिर भी यह आवश्यक नहीं कि पूर्णता प्राप्त करने तक हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहा जाय। छठी कक्षा का विद्यार्थी पाँचवी कक्षा वाले की तो कुछ सहायता कर ही सकता है। अपने से कम योग्यता एवं स्थिति वालों का मार्गदर्शन करने में कोई भी समर्थ एवं सफल हो सकता है।

इन दिनों उपरोक्त प्रयोजन यंत्रों की सहायता से भी बहुत कुछ हो सकता है। प्राचीन काल में पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं, पर अब तो वे प्रेस में मशीनों से छपती हैं। इसी प्रकार दृश्य और श्रव्य माध्यम भी अनेकों सुलभ हैं। उसका प्रयोग ज्ञान-यज्ञ का विस्तार करने के लिए किया जा सकता है। स्लाइड प्रोजेक्टर (प्रकाश चित्र यंत्र) कम लागत का और लोक रंजन के साथ लोक मंगल का प्रयोजन पूरा करने वाला उपकरण है। वीडियो कैसेट इस निमित्त बनायें और जहाँ टी. वी. है वहाँ दिखाये जा सकते हैं। टेप प्लेयर पर टेप सुनाये जा सकते हैं।

दीवारों पर आदर्श वाक्य-लेखन एक अच्छा तरीका है। इसका यान्त्रिक संस्करण है फर्नीचर पर, हैन्ड बैगों पर चिपकाए जाने वाले 'स्टीकर'। इस आधार पर भी सद्विचारों और सद्भावनाओं का अच्छा प्रसार हो सकता है।

संगीत टोलियाँ जहाँ भी थोड़े व्यक्ति एकत्रित हों वहीं अपना प्रचार कार्य आरम्भ कर सकती हैं। लाउडस्पीकरों पर रिकार्ड या टेप बजाये जा सकते हैं। इस संदर्भ में दीप यज्ञों की आयोजन प्रक्रिया अतीव सस्ती सुगम और सफल सिद्ध होती है। इस माध्यम से—कर्मकाण्ड के माध्यम से आत्मनिर्माण, मध्याह्न काल के महिला-सम्मेलन में परिवार निर्माण और रात्रि के कार्यक्रम में समाज निर्माण की सुधार प्रक्रिया और संस्थापन विधा का समावेश किया जा सकता है।

परिवार में रात्रि के समय कथा कहानियाँ कहने के अपने लाभ हैं। इस प्रयोजन के लिए प्रज्ञा पुराण जैसे कथा ग्रन्थ अभीष्ट आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। परस्पर विचार-विनिमय, वाद-विवाद प्रतियोगिता, कविता सम्मेलन भी कम उपयोगी नहीं हैं। हर व्यक्ति स्वयं कविता तो नहीं कर या कह सकता, पर दूसरों की बनाई हुई प्रेरणाप्रद कविताएँ सुनाने की व्यवस्था तो कहीं भी हो सकती है। चित्र प्रदर्शनियाँ भी जहाँ सम्भव हो इस प्रयोजन की पूर्ति में सहायक हो सकती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोजने पर अनेकों ऐसे सूत्र हाथ लग सकते हैं जो ज्ञानयज्ञ की, विचार क्रान्ति की, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन की, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के लिए कौन, क्या, किस प्रकार कुछ कर सकता है ? इसकी खोज-बीन करते रहने पर हर जगह हर किसी को कोई न कोई मार्ग मिल सकता है। ढूँढ़ने वाले अदृश्य परमात्मा तक को प्राप्त कर लेते हैं, फिर ज्ञानयज्ञ की प्रक्रिया को अग्रगामी बनाने के लिए मार्ग न मिले, ऐसी कोई बात नहीं है। आवश्यकता है उसका महत्व समझने की, उस पर ध्यान देने की।

उपासना से भावना का, जीवन साधना से व्यक्तित्व का और आराधना से क्रियाशीलता का परिष्कार और विकास होता है। आराधना उदार सेवा साधना से ही सधती है। सेवा कार्यों में सामान्यतः वे सेवायें हैं जिनसे लोगों को सुविधाएँ मिलती हैं। श्रेष्ठतर सेवा वह है जिससे किसी की पीड़ा का, अभावों का निवारण होता है। श्रेष्ठतम सेवा वह है जिससे व्यक्ति पतन से हटकर उन्नति की ओर मोड़ा जा सके। सुविधा बढ़ाने और पीड़ा दूर करने की सेवा तो कोई धन सम्पन्न भी कर सकते हैं। परन्तु पतन निवारण की सेवा तो कोई आत्मचेतना सम्पन्न ही कर सकता है। यह सेवा भौतिक सम्पदा से नहीं दैवी सम्पदा से की जाती है। दैवी सम्पदा देने से घटती नहीं बढ़ती है। इसलिए भी वह सर्वसुलभ और श्रेष्ठ मानी जाती है।

संत और ऋषि स्तर के व्यक्ति पतन निवारण की सेवा को प्रधानता देते रहे हैं। इसीलिए वे संसार में पूज्य बने। जिनकी सेवा की गई वे भी महान् बने। सेवा की यह सर्वश्रेष्ठ धारा ज्ञान यज्ञ के माध्यम से कोई भी अपना सकता है। स्वयं लाभ पा सकता है और अगणित व्यक्तियों को लाभ पहुँचाकर पुण्य का भागीदार बन सकता है।

सेवा हमारी जीवन नीति बने

मनुष्य का शारीरिक और मानसिक अभ्यास जैसा होगा उसी के अनुसार उसके आन्तरिक एवं बाह्य जीवन का निर्माण होता है दूसरों के अहित का विचार करने वाले, दूसरों के लिए बुरे, हानिकारक दुष्कृत्य करने वाले, व्यक्तियों के जीवन में इन्हीं तत्वों की प्रधानता हो जाती है। उसका स्वयं का जीवन भी बुराई, अहित, हानि और अकल्याण से प्रभावित हो जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है।

सेवा का आधार जितना निःस्वार्थ होगा, वास्तव में दूसरों के परमार्थ का त्याग होगा, उतना ही बड़ा सत्परिणाम भी मनुष्य को प्राप्त होगा। किन्तु सेवा का ढोंग बना देने पर वह परमार्थ नहीं दूसरों के साथ धोखादेही, छल कपट, चालाकी और स्वार्थ साधन मात्र बनकर रह जाती है। बाहर से ऐसी सेवा का आडम्बर कितना ही बड़ा क्यों न हो, कर्ता को उसका रत्ती भर भी वास्तविक सत्परिणाम नहीं मिल सकता। लोगों से प्रशंसा प्राप्त करने या कुछ कमाई कर लेने मात्र तक ही ऐसे सेवा-आडम्बरों का लाभ सीमित रह जाता है।

सेवा के लिए कोई स्थूल नियम नहीं बनाये जा सकते। दूसरों के लिए कोई उपयोगी काम करके, उससे प्रेम करने के अभ्यास को बढ़ाया जा सकता है। दूसरों की सेवा करके अपने सद्भावों को विकसित किया जा सकता है, दूसरों के दुःख-दर्द को अपना ही दुःख-दर्द मानकर उसको दूर करने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना, अभाव ग्रस्तों की अभावपूर्ति में योग देना, दूसरों के दुःख सुनना, उनकी उन्नति कल्याण में योग देना, दूसरों की हर तरह की सेवा करने के लिए एक सेवक की तरह तैयार रहना, आत्मसुधार के लिए आवश्यक है। जो दूसरों के लिए जितना अपने आपको घुला देगा वह उतना ही आत्म सुधार के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकेगा। इस तरह की सेवा से सच्चे प्रेम का उदय होता है जो मनुष्य के सब कलंकों को धो देता है अन्तर बाह्य जीवन को निर्मल बना देता है। सेवा के साथ संतोष की वृत्ति अवश्य बनी रहे।

सेवा जितनी बने उतनी करते हुए स्वयं अपनी सेवा करने की क्षमताओं का भी विकास करते रहना आवश्यक है। क्षमताओं के अभाव में सेवा का परिणाम और प्रतिफल स्वल्प ही रहेगा। जितनी व्यापक सेवा होगी उसके लिए उतनी ही व्यापक क्षमता और शक्ति की आवश्यकता सेवा से सम्बन्धित अपनी क्षमताओं का विकास करना भी सेवा का ही एक अंग है। हम चाहते हैं कि गरीबों को भोजन वस्त्र दें किन्तु हमारे पास देने को होगा तभी तो हम ऐसा कर सकते हैं। हम चाहते हैं कि देश को उन्नति, विकास एवं कल्याण की दिशा में आगे बढ़ायें किन्तु तत्सम्बन्धित क्षमताओं पर ही तो इसकी पूर्ति निर्भर है। हम चाहते हैं अधिकाधिक लोगों को सद्ज्ञान देकर जीवन लाभ करायें, किन्तु पहले हमारे पास ज्ञान की कमाई पूँजी का होना भी तो आवश्यक ही है।

सेवा के परिणाम और फल का ध्येय रखना सेवक के लिए आवश्यक नहीं उसके लिए प्रयत्न करने का आनन्द ही पर्याप्त है। परिणाम और फल की आसक्ति सेवा के आनन्द और स्वरूप को नष्ट कर देती है। फिर तो वह अन्य सांसारिक कार्यों की तरह एक व्यवसाय बन जाती है।

संवेदनशीलता दूसरों की सेवा सहायता सहानुभूति का मूल आधार है। यह गुण जिसमें जितना होगा वह उतना ही दूसरों की सेवा करने का अधिकारी है सत्तत्व की स्थापना और हृदय शुद्धि से ही संवेदनशीलता का जन्म होता है। अतः सेवक को प्रारंभ में अपने हृदय शुद्धि और स्वयं सत्तत्व की स्थापना के लिए प्रयत्न करना आवश्यक ही है।

दयावान, सहानुभूतिशील, संवेदनशील होना लोक सेवी के लिए आवश्यक है। संवेदनशीलता का अर्थ यह भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं कि कोई दुःख से रो रहा हो तो उसके पास बैठकर हम भी रोने लग जायें। इससे क्या लाभ ? आवश्यक तो रचनात्मक बुद्धि का होना है जो रोने वालों को हँसा सके, गिरे हुओं को उठा सके।

सेवाविहीन जीवन—निन्दनीय

सेवा का मानव-जीवन में बहुत महत्त्व है। सेवा और सहयोग के आधार पर ही संसार का विकास और प्रगति हुई है और उसी आधार पर वह टिका हुआ है। यदि मानव-समाज से सेवा और सहयोग की प्रवृत्तियाँ सर्वथा समाप्त हो जायें, तो संसार की गतिविधि ही सहसा रुक जाये। एक अव्यवस्था और अराजकता जैसी स्थिति पैदा हो जाये।

मानव-समाज में जब-जब और जहाँ-जहाँ पारस्परिक सेवा, सद्भावना और सहयोग का ह्रास होता है, वहाँ उसका स्थान स्वार्थ और शोषण ले लेता है, जिसके परिणामस्वरूप संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। लड़ाई-झगड़े और युद्ध शुरू हो जाते हैं। जब तक वह अवांछनीय स्थिति बनी रहती है, मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक और आत्मिक प्रगति रुकी रहती है। वह प्रस्तुत संघर्ष में ही एकाग्र होकर लगा रहता है। इस स्थिति से मानव-समाज की अपार क्षति होती है। ऐसी क्षति कि प्रायः जिसकी पूर्ति ही नहीं हो पाती।

युद्ध के समय बहुत-से लोग मारे जाते हैं। कौन कह सकता है कि उन मरने वालों में बहुत-से ऐसे लोग नहीं मर जाते होंगे, जो यदि उनको जीने का अवसर मिलता तो वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, विद्वान्, समाज-सेवी, सन्त और महात्मा होते। हजारों लाखों विधवाओं, अनाथों और बेसहारों की संख्या बढ़ जाती है। अभाव और अपूर्ति का भयंकर नर्तन होने लगता है, जिसमें पीढ़ियाँ, परिवार, राष्ट्र और समाज तक पिसने लगते हैं। ऐसे संघर्षों ने पृथ्वी पर से न जाने ऐसे कितने देश, कितने समाज और कितने राष्ट्र नाम शेष कर दिए, जिनका एक अस्तित्व था और अपना महत्त्व भी। किन्तु यह सब होता कब है, जब संसार में सेवा और सहयोग की प्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। मानव-जीवन में सेवा का बहुत बड़ा महत्त्व है। जहाँ तक सम्भव हो इसको बनायें और बढ़ाये रखने का यथासाध्य प्रयत्न करते ही रहना चाहिये।

वह समाज अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता, जिसके सदस्यों के बीच परस्पर सेवा, सहयोग की परमार्थपरक प्रवृत्तियाँ न चलती रहें। परमार्थपरक सेवा ही मानव-जाति की सुरक्षा, विकास और शांति का साधन है। सेवा-भावना के वरदान से व्यक्ति के अन्तःकरण से अहंजन्य 'मैं' का स्वार्थ-भाव निकल जाता है और व्यक्ति भी संकीर्ण परिधि से निकलकर व्यष्टि की व्यापकता में आ जाता है। उसका अपने प्रति सम्बोधन 'मैं' के स्थान पर 'हम' हो जाता है।

समाज में ऐसे सदस्यों की संख्या भी कम नहीं होती, जो रोगी, अपंग, अपाहिज, वृद्ध और बे सहारा होते हैं। उनमें अपने निर्वाह की शक्ति नहीं होती। दूसरों की सेवा सहायता की उन्हें अपेक्षा होती है। समाज के ऐसे दयनीय सदस्यों का गुजारा दूसरों के सहारे ही होता है। यदि समाज में पर-सेवा की भावना का सर्वथा अभाव हो तो ऐसे असमर्थ लोगों की क्या दशा हो जाये, इसकी कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ऐसे असहाय व्यक्ति बेचारे स्थान-स्थान पर रोते, कलपते पड़े रहें, एक ग्रास भोजन और थोड़े-से वस्त्र के अभाव में अकाल में ही काल के गाल में पहुँचते रहें और जब तक जीवित रहें अपनी स्थिति को समाज के लिए अभिशाप बना दें।

ऐसे अपंग और अपाहिज व्यक्ति समाज में जो कुछ सुखी-दुःखी जीवन काट पाते हैं, वह केवल दयावान् सज्जनों की सेवा प्रवृत्ति के सहारे ही काट पाते हैं। ऐसे अनाथ और असहायों की आत्मा को नारकीय मौत से बचाने वालों को बड़ा दूरगामी पुण्य होता है। इसलिये दया को धर्म का मूल और अहंकार अर्थात् संकीर्ण 'स्व' को पाप का मूल घोषित किया गया है।

परमार्थवादी समाज में कोई व्यक्ति अपना पृथक् अस्तित्व नहीं मानता। वह अपने को समाज का ही एक अंग मानता है, उसी आधार पर सोचता और काम करता है। परमार्थवादी समाज की एक विशेषता यह होती है कि उसका हर सदस्य हर काम को समाज-सेवा की भावना से करता है और उसके लिये अपनी शक्ति, योग्यता और क्षमता का कोई अंश बचा नहीं रहता। जिस समाज के सदस्य इस भावना और प्रेरणा वाले होंगे, उस समाज की दिन-प्रति-दिन उन्नति होना स्वाभाविक ही है। जिन समाजों को उन्नति और विकास की दिशा में प्रगति करते देखा जाये, उनके विषय में निर्विवाद रूप से यह घोषित किया जा सकता है कि उक्त समाज का जीवन दर्शन कुछ भी हो पर वह व्यवहारतः एक परमार्थवादी समाज है। उसके सदस्य सेवा और सहयोग के महत्त्व को केवल जानते ही नहीं बल्कि अपने जीवन में उस पुण्य परमार्थ को चरितार्थ भी करते हैं।

समाज की प्रगति का अर्थ केवल समाज की प्रगति ही नहीं होता है। समाज की प्रगति में व्यक्ति की प्रगति का भाव तो स्वभावतः अन्तर्हित ही रहता है। व्यक्ति की प्रगति समाज की प्रगति और समाज की प्रगति व्यक्ति की प्रगति होती है। यह बात ठीक है कि यदि व्यक्ति-व्यक्ति अपनी प्रगति और उन्नति करता चले तो समाज की प्रगति तो आपसे आप ही होती चलेगी। किन्तु इसमें व्यक्ति के स्वार्थपरायण हो जाने की आशंका बनी रहती है, इसीलिये समाज की प्रगति के माध्यम से व्यक्ति की प्रगति को महत्त्वपूर्ण माना गया है। व्यक्ति समाज-सेवा की भावना से सब काम करता चले तो उसकी प्रगति भी आपसे आप ही होती जायेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज-सेवा की भावना से काम करने वाले लोगों का मानसिक विकास बड़ी तीव्रता से होता है। ऐसा सेवाभावी व्यक्ति समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव करता है और तब उसी के अनुसार अपना महत्व भी समझने लगता है। उसे अपना उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य भार को वहन करने में बड़ी प्रसन्नता तथा उत्साह भी होता है। उसे इस भाव से बड़ा आत्मिक सुख और सन्तोष होता है कि वह समाज की सुरक्षा, विकास और शांति व्यवस्था में हाथ बँटाने का गौरवशाली काम कर रहा है। समाज-सेवा में आत्म-कल्याण की बड़ी सुनिश्चित सम्भावनायें निहित रहती हैं।

मानव-जीवन के लिये सेवा का बहुत महत्त्व है। यह बात ठीक है। किन्तु किस सेवा का महत्व है यह भी समझ लेना बहुत आवश्यक है। महत्त्व उन्हीं सेवाओं का है जो सर्वथा निःस्वार्थ तथा परमार्थपरक हों। कार, रोजगार, नौकरी, परिश्रम आदि जो कि मात्र जीविका और जीवन निर्वाह के लिये किया जाता है, वह पारमार्थिक सेवा नहीं है। जिनका मानव-जीवन के लिये अलग से महत्व हो, वे सेवायें निश्चित रूप से वही होती हैं, जो निज की आवश्यकताओं से अलग निःस्वार्थ भाव से बिना किसी लोभ, लाभ तथा आशा रखे की जाती है और जिनमें केवल परहित और परोपकार का भाव निहित रहता है। ऐसी सेवाओं का मूलाधार, दया, सहानुभूति, सम्वेदना, सहयोग, सामाजिकता आदि सद्गुण ही होते हैं।

केवल स्थूल लाभ ही नहीं, जिन सेवाओं के साथ बड़प्पन, प्रतिष्ठा और श्रेय का भाव भी जोड़ दिया जायेगा। वे भी अपने पारमार्थिक स्तर से गिर जायेंगी, फिर चाहे मनुष्य ने उसके लिये कितना ही अलाभ कर त्याग किया हो, कष्ट उठाया हो और विनम्रता का प्रदर्शन किया हो। पद प्रतिष्ठा तथा श्रेय की आकांक्षा भी स्थूल लाभ के लोभ के समान सेवा के परमार्थ तत्व को दूषित कर देती है। मानव-जीवन में जिस सेवा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है, वह न केवल स्वार्थ से ही मुक्त हो अपितु स्पृहा से भी रहित होनी चाहिये।

जन-सेवा तथा पद प्रतिष्ठा की भावना में परस्पर विपरीतता होती है। एक, एक छोर की वार्ता है, तो दूसरी दूसरे छोर की। इनमें परस्पर न तो कोई संगति है और न यह दोनों बातें समानान्तर गति से साथ-साथ चल सकती हैं। समाज-सेवा का पारमार्थिक सुख चाहने वाले को समझ लेना चाहिये कि सेवक का स्थान संसार में सबसे नीचा होता है। उसका स्थान जनता-जनार्दन के पैरों के नीचे है। जन-सेवक को पद प्रतिष्ठा, प्रशंसा और अहंकार की सारी स्पृहाओं तथा भावनाओं को त्यागना होगा, तभी वह अपनी सेवाओं से उस आत्मिक संतोष की अपेक्षा कर सकता है, जोकि मानव-जीवन का अभीष्ट लक्ष्य है। सेवा के साथ प्रशंसा का प्रदर्शन की कोई संगति नहीं—इस तथ्य का समर्थन महात्मा गाँधी के एक इस छोटे-से संस्मरण से पूरी तरह हो जाता है—"एक बार एक संन्यासी बापू के पास आया। बापू ने पूछा—"आपने यहाँ आने का कष्ट किस मन्तव्य से किया है ?" संन्यासी बोले—"जन-सेवा करने के लिये।" बापू ने कहा—"यदि आपको जनता की सेवा करनी है, तो अपने ये गेरुये वस्त्र उतार दो नहीं तो लोग महात्मा समझकर उलटी आपकी सेवा करने लगेंगे।"

जन-सेवा में जिसका हृदय जितना अधिक, निःस्वार्थ, निस्पृह, निरहंकार दयालु और संवेदनशील होगा, वह उतना ही बड़ा और सफल लोकसेवक होगा। इन गुणों के अभाव में कोई क्यों न अपनी पूरी जिन्दगी ही सामाजिक मंच पर बिता दें, लोकसेवा का न तो श्रेय पा सकता है और न सुख। उसका सारा जीवन यों ही प्रदर्शन और अपना पद खोजने में निकल जायेगा। निहित स्वार्थ के साथ लोकसेवा में समय बरबाद करने वालों को न तो निर्दोष अर्थ प्राप्त हो पाता है और न परमार्थ। उनका जीवन रीता और अन्तःकरण कुण्ठित बना रहता है। ऐसे निहित स्वार्थ वाले जन-सेवी इस संसार से सुख और शांति के साथ नहीं ग्लानि और पश्चाताप के साथ विदा होते हैं।

मानव-जीवन में जन-सेवा का एक विशेष महत्त्व है। उससे व्यक्ति और समष्टि दोनों का कल्याण होता है। किन्तु ऐसी सेवा जीवन निर्वाह के कार्यों से दया, सहानुभूति, संवेदना और सामाजिक भावना पर ही निर्भर होती है और फिर उसमें भी निःस्वार्थ, निस्पृहता एवं निरहंकार की भावना का होना नितान्त आवश्यक है। ऐसी सेवा ही वह पारमार्थिक सेवा है, जिसको मनुष्य को अपने जीवन में स्थान देना ही चाहिये। ऐसी सेवा से उसके लोक और परलोक दोनों बनते और सफल होते हैं।

समाज का ऋण चुकाना ही श्रेयस्कर

मनुष्य की निजी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ हैं। उनकी पूर्ति के लिए वह प्रयत्न करता है। और प्रयत्न करने पर अभीष्ट की प्राप्ति भी होती है पर वह जो कुछ पाता है वह उसका अपना उपार्जन ही नहीं होता उसे जुटाने में समाज का भारी योगदान रहता है। यदि वह न रहे तो एकाकी मनुष्य पेट भरने और तन ढकने की आवश्यकता भी शायद ही पूरी कर पावे। बुद्धि तो उसमें बहुत है पर शरीर इतना सशक्त है कि वह बिना दूसरों के सहयोग के अपनी बढ़ी-चढ़ी इच्छाओं की पूर्ति किसी भी प्रकार नहीं कर सकता। इस दृष्टि से वह अन्य जीवों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है।

गाय, हिरन, लोमड़ी, खरगोश आदि के बच्चे जन्म लेने के कुछ ही देर बाद अपने पाँवों खड़े हो जाते हैं माता का दूध अपने प्रयत्न से पीने लगते हैं और कुछ दिनों में चल-फिर कर घास आदि ढूँढ़ने और पेट भरने लगते हैं। मनुष्य के बच्चे में यह योग्यता बहुत वर्ष बीतने पर भी नहीं आती। माता दूध न पिलाये तो वह भूखा ही मर जायगा। अपने पुरुषार्थ से माता को या उसके स्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को ढूँढने में समर्थ न होगा, सोने, खाने, नहाने, मल-मूत्र विसर्जन जैसे छोटे कामों के लिए भी बहुत दिनों तक उसे अपने अभिभावकों पर निर्भर रहना होता है। अपने पैरों पर खड़े होने की अपना गुजारा आप करने की योग्यता तो कहीं पन्द्रह-सोलह वर्षों में आती है।

आजीवन साथ रहने के लिए प्रस्तुत सुयोग्य पत्नी—मनुष्य का अपना उपार्जन नहीं होती। माँ-बाप उस लड़की को सुयोग्य बनाते और उदारतापूर्वक ब्याह कर देते हैं। यह सामाजिक योगदान है। अन्य प्राणी कामोद्देश्य के लिए क्षणिक दाम्पत्य-जीवन बनाते और बिछुड़ जाते हैं। मनुष्य को जो सुव्यवस्थित दाम्पत्य जीवन मिला है, उसमें समाज का अनुग्रह ही मुख्य है। भोजन के लिए अन्न, पहनने के लिए वस्त्र, निवास के लिए घर, शिक्षा के लिए विद्यालय, आजीविका के लिए उद्योग, यात्रा के लिए वाहन, बीमारी की दवा, क्या यह सब उपलब्धियाँ मनुष्य की निजी कमाई है, यदि समाज का सहयोग प्राप्त न हो तो कितना ही परिश्रम करके उस स्तर की वस्तुएँ प्राप्त नहीं हो सकती जितनी कि हम में से प्रत्येक को मिलती हैं। बोलना, लिखना, पढ़ना जो मनुष्य ने सीखा है उसमें माँ संगी साथियों का ही नहीं असंख्य पीढ़ी के पूर्वजों का योगदान है। सामाजिक, शासकीय, वैज्ञानिक, बौद्धिक सुविधाओं से जो असाधारण लाभ प्राप्त किया जा सका है और जिनके बल पर मनुष्य सृष्टि का मुकुटमणि बना है वह सब कुछ एक प्रकार से समाज का ही अनुदान है। निजी पुरुषार्थ तो उन उपलब्धियों में नगण्य ही समझा जाना चाहिए।

जिस समाज का इतना उपकार और अनुदान लेकर मनुष्य सुख-सुविधाएँ प्राप्त करता है, उसका वह ऋणी है। इस ऋण को चुकाना कृतज्ञता की प्रत्युपकार की और सामाजिक श्रृंखला परम्परा बनाये रखने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है। यदि लोग समाज के कोष से लेते तो रहें पर उसका भण्डार भरने की बात न सोचें तो वह सामूहिक कोष खाली हो जायगा। समाज खोखला और दुर्बल हो जायगा उसमें व्यक्तियों की सुविधा बढ़ाने एवं सहायता करने की क्षमता न रहेगी फलतः मानवीय प्रगति का पथ अवरुद्ध हो जायगा। प्राप्त तो करें पर उसे लौटायें नहीं की नीति अपना ली जाय तो बैंक दिवालिये हो जायेंगे, सरकार खोखली रह जायगी, जमीन का उपार्जन बन्द हो जायगा, व्यापार की श्रृंखला ही बिगड़ जायगी। इस संसार में 'लो और दो' की नीति पर सारी व्यवस्था चल रही है। 'लो' के लिए तैयार—'दो' के लिए इन्कार, की परम्परा यदि चल पड़े तो सारा क्रम ही उलट जायगा, तब हमें असामाजिक आदिम युग की ओर वापिस लौटना पड़ेगा।

मनुष्य की बुद्धि और श्रमशीलता का आधा भाग और आधा भाग सामाजिक अनुदान का माना गया है। तदनुसार तत्वदर्शियों ने यह व्यवस्था बनाई है कि उसे अपनी जीवन सम्पदा का आधा भाग अपनी शरीर यात्रा के लिए रखना चाहिए और आधा सामाजिक उत्कर्ष के लिए लगा देना चाहिए। पेट भरना, तन ढकना, निवास, शिक्षा, चिकित्सा, गृहस्थ, उपार्जन मनोरंजन आदि वैयक्तिक सुविधा साधनों के लिए उसकी क्षमता का आधे से अधिक भाग खर्च न होना चाहिए आधा तो समाज सेवा के लिए सुरक्षित ही रहना चाहिए।

आश्रम धर्म की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में इसी दृष्टि से की गई है। आयुष्य का एक चौथाई भाग खेल-कूद तथा ज्ञान और शरीर की वृद्धि के लिए यह ब्रह्मचर्य हुआ, एक चौथाई विवाह सन्तान, परिवार उपार्जन, यश, वैभव, मनोरंजन आदि के लिए यह गृहस्थ हुआ। इतना भाग निजी सुख-सुविधा के लिए है। शेष आधा वानप्रस्थ और संन्यास के रूप में लोकमंगल के लिए आत्मिक उत्कृष्टता अभिवर्द्धन के लिए नियुक्त होना चाहिए। जीवन सम्पदा का यही श्रेष्ठतम विभाजन है। भारतीय धर्म और संस्कृति की यह एक अति महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है जिस पर उसकी महान् सामाजिक व्यवस्था की आदर्श परिपाटी निर्भर रही है।

सामाजिक उत्कृष्टाओं के अभिवर्द्धन, सत्परम्पराओं के संचालन और विकृतियों के निवारण के लिए निरन्तर प्रयत्न किया जाना आवश्यक है। यह प्रयोजन, सुयोग्य, अनुभवी और निस्पृह लोगों के द्वारा ही पूरा हो सकता है। अनेक सत्प्रवृत्तियों के गतिशील रहने से ही समाज की श्रेष्ठता और महानता सुदृढ़ रह सकती है। इस कार्य के लिए ढलती आयु के व्यक्तियों का अपना जीवन समर्पित करना चाहिए। उसे उदारता, दान, परमार्थ, धर्म पुण्य कुछ भी कहा जा सकता है। ऋण चुकाना या कर्त्तव्य-पालन भी इसे कह सकते हैं। कहा कुछ भी जाय, यह है नितान्त आवश्यक। यह परम्परा चलते रहने से ही सुयोग्य समाज सेवियों की आवश्यकता पूरी हो सकती हैं और सामाजिक महानता अक्षुण्य रह सकती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को शास्त्र मर्यादा या ईश्वरीय आज्ञा के रूप में ढलती आयु में 'वानप्रस्थ' ग्रहण करके अपना श्रम, समय और मनोयोग लोक-कल्याण के लिए लगाने का निर्देश किया गया है।

शास्त्रकारों और आप्त पुरुषों ने पग-पग पर इस परम्परा के पालन का निर्देश किया है। धर्म-ग्रन्थों में हर जगह इसी प्रकार के निर्देश की भरमार है।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत् ।।१।।

(शंखस्मृति)

जब गृहस्थ का भार बड़ा लड़का सँभाल ले, बाल सफेद होने लगें, तब मनुष्य को वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए।

उषित्वैवं गृहे विप्रोद्वितीयादाश्रमात् परम्।
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयन्तु समाश्रयेत् ।।९७

(सम्वर्त स्मृति ९७)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब गृहस्थ पालन करने के उपरांत चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जायें, बाल सफेद होने लगें तो तीसरे पन में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयश्चैव किल्बिषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ।।२

(हरीत स्मृति ६/२)

गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए। इससे समस्त मनोविकार दूर होते हैं और वह निर्मलता आती है जो संन्यास के लिए आवश्यक है।

महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः ।।

(मनु ४/२५७)

ढलती आयु में पुत्र को गृहस्थ का उत्तरदायित्व सौंप दे। वानप्रस्थ ग्रहण करे और देव, पितर तथा ऋषियों का ऋण चुकावे।

उत्पाद्य पुत्रानऋणांश्च कृत्वा
वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित् ।
स्थाने कुमारी प्रतिपाद्य सर्वा
अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ।।

(महा० उद्योग ३७/३६)

पुत्रों को उत्पन्न कर उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके उनके लिए किसी जीविका का प्रबन्ध कर दें, अपनी सभी कन्याओं का योग्य वर के साथ विवाह कर दे तत्पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करें।

अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमगच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ।२४
इत्येषपापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः ।
वानप्रस्थाश्रमस्तामाद्विभक्षोस्तुचरमोपरः ।।२७

(मार्कण्डेय पुराण)

दूरर्शिता और बुद्धिमत्ता इसमें है कि सन्तान के समर्थ होने पर अपने शरीर के क्षरण पर भी विचार करे और ढलती आयु में वानप्रस्थ ग्रहण करे। आत्म शुद्धि के लिए यह कदम बढ़ाना आवश्यक है। पापों का शोधन ऋणों से मुक्ति और आत्म-कल्याण का प्रयोजन पूरा करने के लिए वानप्रस्थ ग्रहण करना ही चाहिए।

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन् दृष्टा पलितमात्मनः ।
भार्यां पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ।।२
तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः
प्रयतान्तरात्मा ।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्य
पुरुषं पुराणम् ।।१०

(हरीत स्मृति)

जब बाल सफेद होने लगें और पुत्र घर सँभालने योग्य हों जाये तो वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

ढलती आयु में तपश्चर्या आरम्भ कर देनी चाहिए। इससे पाप और ऋण धुलते हैं, आत्मा को शान्ति मिलती है और दिव्य पुरुष की स्थिति प्राप्त होती है।

ततोगार्हस्थ्यमास्थायवेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ।
वनस्थश्चततोवत्सपक्षिवाङ्निष्परिग्रहः ।
इष्ट्वोत्पादयापत्यमाश्रयेद्यावनंततः ।।१२

(मार्कण्डेय पुराण)

गृहस्थ के आवश्यक उत्तरदायित्वों को पूरा करके—पुत्र को काम-काज सौंप दें और वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करें। वानप्रस्थ परिपक्व होने के पश्चात् ही संन्यास लिया जाता है।

बालोमनोनन्दयबान्धवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणांयुवासत्कुसभूषणानांवृद्धोवनेवत्सवने चरण्याम् ।। ६१

(मार्कण्डेय पुराण)

बाल्यकाल में परिवार को हँसाना, विनोद देना, किशोर अवस्था में माता-पिता की सेवा करना, युवावस्था में पत्नी वृद्ध जनों तथा आश्रितों की सहायता करना और अन्त में वानप्रस्थ लेकर विश्व-कल्याण के परमार्थ प्रयोजन में जीवन व्यतीत करना।

वयःपरिणतो राजन्कृतकृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सवत्सैव वा ।।१८

जब गृहस्थ धर्म का पालन करते-करते अवस्था ढल जाय, तब अपनी स्त्री के पालन का भार पुत्रों को सौंप या उसे भी अपने साथ लेकर वन को प्रस्थान करे।

अथ जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच। भगवन्संन्यासमनुब्रूहीति। स होवाच याज्ञवल्क्यः। ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा वनी भवेत्। वनी भूत्वा प्रव्रजेत्।

(जावालोपनिषत् ३११)

एक दिन राजा जनक महर्षि याज्ञवल्क्य के पास गये और कहा भगवन् संन्यास की शिक्षा दीजिए। इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा—पहले ब्रह्मचर्य आश्रम, फिर गृहस्थाश्रम इसके बाद वानप्रस्थ होना चाहिए इसके उपरान्त ही संन्यास है।

यदिमद्वचनंतातश्रद्धास्यविशंकितः ।
तत्परित्यज्यागार्हस्थं वानप्रस्थमनाभव ।। ३
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ।
आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रहः ।। ४
एकांतशीलोवश्यात्मामवभिक्षुरतंद्रितः ।
तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शं विवर्जितः ।। ५
ततःप्राप्यसितंयोगंदुःखसंयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुर्मनौ पथ्यमनाख्ये यमसंज्ञितम् ।। ६

(मार्कण्डेय पुराण ३४५६)

पुत्र ने अपने पिता से कहा—तात, आप संकल्प-विकल्प छोड़कर मेरा अनुरोध मानिये। गृहस्थ धर्म पूरा हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गया अब वानप्रस्थ ग्रहण कीजिए। परिग्रह, लाभ और मोह की लिप्सा छोड़िये। मन को वश में कीजिए। आलस्य छोड़िये और मन को सांसरिक लालसाओं से हटाइए। जब आप योग साधन करेंगे तभी दुःख द्वन्द्वों से छूटेंगे।

जब तक इस वानप्रस्थ परम्परा का निर्वाह भारतीय समाज में ठीक तरह होता रहा, तब तक यहाँ की सामाजिक स्थिति अति उच्चकोटि की बनी रही और उससे प्रभावित होकर घर-घर में नर-रत्न उत्पन्न होते रहे, जिन्होंने समस्त विश्व में श्रेष्ठता की मर्यादाओं को स्थापित करने में महान् योगदान दिया।

जब से हम संकीर्ण और स्वार्थी होते चले गये। समाज का ऋण भार लेने की निर्लज्जता अपना बैठे। मरते समय तक पैसा और बेटे पोतों की ही बात सोचने वाले क्षुद्र स्तर पर आ गये फिर समाज को सुयोग्य और निःस्वार्थ प्रतिभाएँ मिलती ही कहाँ से और उनके बिना सामाजिक स्तर ऊँचा रहता ही कैसे ? इस अभाव की पूर्ति के बिना कोई राष्ट्र और समाज प्रखर और महान् रह ही नहीं सकता।

इस अभाव की पूर्ति की जानी चाहिए। जनसाधारण का दृष्टिकोण बदला जाना चाहिए। सारा जीवन पैसे और परिवार के लिए ही लगाया जाना सामाजिक अपराध घोषित किया जाना चाहिए। हर व्यक्ति को यह अनुभव कराना चाहिए कि आधार जीवन 'गौ ग्रास' है। वह समाज सेवा की अवधि है। उसका अपहरण करके निजी सम्पदा बढ़ाते रहना, माँ-बेटे पोतों की टहल चाकरी करते रहना गौ के मुख से ग्रास को छीनकर गधे को खिलाने के बराबर है।

सेवा साधना के प्राथमिक सिद्धान्त

सेवा साधना की आवश्यकता और उपयोगिता सभी समझते हैं। यह भी जानते हैं कि इससे क्या भौतिक और क्या आत्मिक क्या सामाजिक विकास सहजता से होने लगता है। इस दृष्टि से सेवा के महत्व को सभी समझते हैं और कभी-कभी यह मार्ग अपनाने की उमंग भी उठती है। फिर भी प्रायः सभी लोगों के मन में यह उमंग बिजली की चमक के समान उत्पन्न होती है और लुप्त हो जाती है। इसका क्या कारण है ? इस पर विचार किया जाना चाहिए।

बिजली की चमक के समान सेवा की उमंग उठने और इसी तरह लुप्त हो जाने का प्रमुख कारण है कि इसके प्रति आवश्यक निष्ठा और उत्साह का जागरण नहीं हो पाता। यही कारण है कि थोड़े-बहुत लोग जो सेवा मार्ग पर कदम रखते हैं, थोड़े-से पग बढ़ाते हैं किन्तु थोड़ी-सी कठिनाइयाँ आती देखकर वापस लौट आते हैं। सोचने लगते हैं कि यह तो व्यर्थ का झमेला है, इसमें क्यों माथापच्ची की जाय। जिनमें इससे आगे तक निष्ठा और उत्साह विद्यमान रहता है वे थोड़ा आगे चलकर जरा-सी और कठिनाइयों को देखकर चुप बैठ जाते हैं।

असफलता, कठिनाइयाँ, बाधाएँ और भी कई कारण हो सकते हैं, जिनकी बजह से सेवा पथ पर अधिक गति के साथ नहीं बढ़ा जा सकता। उनमें प्रमुख कारण यही है कि सेवा के प्रति निष्ठा नहीं होती। प्रश्न उठता है कि सेवा के प्रति निष्ठा नहीं होती तो लोग उस दिशा में अग्रसर ही क्यों होते और क्यों सेवा-धर्म अपनाने की बात सोचते हैं। बात ठीक भी है। सवाल निष्ठा या रुचि का नहीं, निष्ठा और रुचि की प्रखरता का है। यदि सेवा-धर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रखर हो तो हजार असफलताएँ और लाख बाधाएँ आने पर भी उससे विरत नहीं हुआ जा सकता। अन्यथा ऐसा कौन-सा कार्य है, जिसमें सदैव अनुकूल और अपेक्षित परिणाम ही प्राप्त हों।

प्रत्येक कार्य के वही परिणाम आयें जो हम चाहें ऐसा न तो हमेशा सम्भव है और न ही कभी सम्भव है हालाँकि कोई व्यक्ति यह सोचकर काम शुरू नहीं करता कि असफलता मिलेगी। सफलता प्राप्त करने के लिये सभी व्यक्ति प्रयत्न करते हैं फिर भी असफलता की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता और न ही इस सम्भावना के कारण कोई अपना काम रोक देता है। विद्यार्थी जानता है कि मैं फेल भी हो सकता हूँ, व्यापारी के लिए भी घाटा होने की सम्भावना हर घड़ी मौजूद रहती है लेकिन इस कारण विद्यार्थी पढ़ना या परीक्षा देना नहीं छोड़ देता और न ही घाटे के डर से व्यापारी व्यापार करना छोड़ देता है। सफलता की और असफलता की दोनों ही सम्भावनाएँ प्रत्येक कार्य के साथ जुड़ी होती हैं, इसे सब जानते हैं और यह भी जानते हैं कि आरम्भ में किया गया कार्य निर्विवाद सम्पन्न हो जाय यह कोई आवश्यक नहीं है। फिर भी असफलता या कठिनाइयों के डर से कोई निर्णय, निचेष्ट नहीं हो जाता।

जब सामान्य कार्य ही असफलता की सम्भावना को देखते हुए रोके नहीं जाते तो सेवा-साधना जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों छोड़ दिया जाता है ? स्पष्ट ही इसका कारण निष्ठा और आस्था का अभाव अथवा उथलापन कहा जायगा। इसके अतिरिक्त जब लोक सेवा को ही अपना धर्म कर्त्तव्य मान लिया जाय तब तो असफलता की सम्भावना से और भी नहीं हिचकना चाहिए। लोकसेवी का दृष्टिकोण जन सामान्य से ऊँचा रहना चाहिये। इसी प्रकार इसके आदर्श और संकल्प भी उच्च तथा प्रखर होने चाहिये। उसे तो सफलता-असफलता की चिन्ता किये बिना ही अपने कर्त्तव्य पथ पर, सेवा मार्ग पर चुपचाप चलते रहना चाहिये। इस सम्बन्ध में भगवान बुद्ध और उनके शिष्य का एक प्रसंग बड़ा ही प्रेरणादायक है। भगवान बुद्ध ने अपने उस शिष्य से पूछा, "तुम धर्म प्रचार के लिए जा रहे हो, अगर लोगों ने तुम्हारी बातें नहीं सुनी तो ?"

शिष्य ने कहा"मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा कि उन्होंने भले ही मेरी बातें न सुनी। पर मुझे गालियाँ तो नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

दीं।" बुद्ध ने आगे पूछा, "अगर वे तुम्हें गालियाँ देने लगें तो ?" तब शिष्य ने कहा, "मैं फिर भी उनका कृतज्ञ होऊँगा कि उन्होंने मुझे मारा नहीं।"

"मान लो अगर वे तुम्हारे साथ मारपीट भी करने लगें तो ?" बुद्ध अपने शिष्य की निष्ठा को अच्छी तरह परख लेना चाहते थे। शिष्य की निष्ठा भी अधकचरी नहीं थी। उसने कहा, "भगवन् उस स्थिति में भी मैं उनका आभार मानूँगा कि उन्होंने मेरे साथ केवल मारपीट ही की। मुझे जान से नहीं मारा।"

इसके बाद बुद्ध ने पूछा, "और यदि जान से ही मार डालें तो ? ऐसी स्थिति में तुम्हारी आत्मा क्या कहेगी ?"

"मेरी आत्मा उन्हें धन्यवाद देगी भन्ते" शिष्य ने कहा, "क्योंकि तब भी वे मेरा उपकार ही करेंगे कि उन्होंने मुझे इस दुःखमय संसार से त्राण दिला दिया।" इस स्तर की निष्ठा का विकास ही सेवा धर्म को पूर्णतः अंगीकार करने में सक्षम और सफल बनाता है। प्राचीन काल से अब तक के इतिहास में जितने भी लोकसेवी हुए हैं, उन्होंने अपनी निष्ठा को परिपक्व बनाया उसे शान पर चढ़ाकर चमकाया और प्रखर बनाया है। यद्यपि जो भी लोग सेवा क्षेत्र में आते हैं, उनमें थोड़ी-बहुत निष्ठा तो होती ही है, लेकिन केवल निष्ठा का होना ही आवश्यक नहीं है, इससे भी ज्यादा उसका प्रखर बनाना आवश्यक है।

लोकसेवियों में निष्ठा का सर्वथा अभाव रहता हो ऐसी बात भी नहीं है। यदि उनमें निष्ठा न रही होती तो वे सेवा के क्षेत्र में आते ही क्यों ? किन्तु निष्ठा जब दुर्बल होती है तो व्यक्ति सेवा धर्म को कष्टसाध्य या दुःसाहस समझकर बीच में ही छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए प्रारम्भिक असफलताओं को ही लें। बहुत-से लोग प्रारम्भिक असफलताओं के कारण ही सेवा धर्म से विमुख हो जाते हैं। जबकि यही असफलताएँ यदि जीवन के अन्य क्षेत्रों में आयें तो उनकी कार्यविधि में कोई अन्तर नहीं आता और न वे रुकते ही हैं। फिर सेवा-साधना में मिलने वाली असफलताओं से ही असन्तोष क्यों ? यदि कार्य को ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया जाय और सफलता असफलता की चिन्ता न की जाय तो सेवा मार्ग पर बिना किसी अवरोध, बिना कहीं रुके-झुके चला जा सकता है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि कार्य चाहे जो भी हो उसके दो ही परिणाम हो सकते हैं सफलता या असफलता और जब किन्हीं उच्च प्रयोजनों के लिए काम किया जा रहा हो तब तो सफलता की अपेक्षा आरम्भ में असफलताएँ ही ज्यादा हाथ लगती हैं। महापुरुषों को अपने जीवन काल में कदाचित ही आशाजनक सफलताएँ मिल सकी हों। महात्मा ईसा ने ४० वर्ष तक धर्म का प्रचार किया और इस पूरे समय में उनके केवल २ शिष्य बने। वे भी इतने कच्चे कि उनमें से एक ने तो दुश्मनों से मिलकर उन्हें पकड़वा दिया और बाकी के लोग भी ईसा पर आई इस विपत्ति के समय उनका साथ छोड़ गये। सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा, महावीर स्वामी के कानों में कीलें ठोंकी गईं और उन्हें चोर समझा गया, वाल्टेयर को तो मरते समय भी उपेक्षा सहनी पड़ी और यहाँ तक कि मरने के बाद उनका विधिवत् संस्कार भी नहीं करने दिया गया। इस तरह के जितने भी महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने संसार की कुछ उल्लेखनीय सेवायें की हैं, उन्हें अपने जीवन काल में कदाचित ही सफलता मिली हो। पर वे हताश न हुए और न निराश। कारण अपने कार्य के प्रति, अपने लक्ष्य के प्रति उनमें इतनी प्रगाढ़ निष्ठा थी कि असफलता, प्रतिकूल परिणाम और घनघोर विरोध भी उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सका।

ऐसा भी नहीं है कि उनके किये गये प्रयास व्यर्थ गये हों। उनके चमत्कारी परिणाम इतने प्रभावशाली रहे हैं कि सारा विश्व, समूचा मानव समाज उनके सामने नतमस्तक हो गया। ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने के ३०० वर्ष बाद उनका धर्म सारी दुनिया में फैलने लगा। सुकरात ने जो बीज बोये उसने सत्य के प्रति एक ऐसी दृष्टि विचारशील व्यक्तियों को दी जो पूर्वाग्रहों और पूर्व मान्यताओं के स्थान पर विवेक को महत्त्व देने लगी। इस प्रकार लोकसेवा का, उच्च उद्देश्यों के लिए त्याग और बलिदान का तत्काल कोई परिणाम भले ही देखने में नहीं आता हो, लेकिन वे प्रयास सामान्य प्रयासों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली और व्यापक परिणाम प्रस्तुत करने वाले होते हैं।

समाज का ऋण चुकाना ही होगा

समय के सूर्य की तपन उत्तरोत्तर प्रखर से प्रखर होती जा रही है। विश्व-वसुधा के क्षितिज पर फैल रही उसकी रश्मियों की एक ही माँग है, समाज के उस ऋण का भुगतान जो हम पर लदा है। समय की तपन और मानवीय कार्य के जल-कण ये ही वे दो अनिवार्य तत्व हैं, जिनसे इन दिनों सौभाग्य बरसाने वाले बादलों को बनना और अगले दिनों बरसना है। इनमें से दोनों का अपना-अपना महत्व है। सामान्यतया मानव मन कार्य का महत्त्व तो थोड़ा-बहुत समझ लेता है, पर समय का उसकी नजर में शून्य से अधिक कोई मूल्य नहीं होता। उसे नहीं मालूम कि यही शून्य उसके कार्य के परिणाम को अपने बढ़ते क्रम में दस-गुना, सौ, हजार, लाख गुना बढ़ाकर प्रस्तुत करेगा।

"सामाजिक ऋण" ये शब्द सम्भव हैं हमारे अहं को तिलमिला दे, हो सकता है हमारा दम्भ फुफकार उठे। इतने पर भी बात सौ फीसदी सच है। संसार का सबसे अधिक गौरव प्राप्त प्राणी होने की विशेषता के बावजूद मनुष्य कितना कर्जदार है ? यह हमें उस समय स्पष्ट होता है जब हम उसे जीवन के आरम्भ से अन्त तक परावलम्बित पाते हैं। उसका कितना असहाय, दीन-हीन स्वरूप उभरकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामने आता है। उसके जीवन का कोई अंश कहीं से भी पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं। संसार के अन्य प्राणी जन्म के कुछ समय बाद ही आत्म निर्भर हो जाते हैं, पर मनुष्य तो वर्षों लम्बी सेवा सुश्रूषा लेकर भी पूर्ण स्वावलम्बी नहीं बन पाता।

मनुष्य रूप धारण करने की प्रक्रिया में वह मातृ-शक्ति का सहारा पाता है। शिशुकाल में धाय, माँ, कुटुम्ब, परिवार की दया व स्नेह पाकर ही बढ़ता है। बालपन में माता-पिता, मित्रों-गुरुजनों की दया उसे सुसंस्कृत बनाती है। किशोर तथा युवावस्थाओं में अभिभावकों की कमाई के बिना स्वावलम्बन की राह पर गति नहीं। इस निर्भरता पर छुटकारा पाना भी तो उसके वश की बात नहीं। उसे इस सामाजिक सहयोग-सद्भावना का सदा ही आभारी रहना है। यह ऋण उसके निर्माण की गरिमा के साथ कितना भारी है यह तो हरेक अपनी-अपनी स्थिति, दशा के अनुसार समझ ही सकता है।

मनीषी यर्वेन्ट एच क्रीकोरियन अपने विचार कोष 'हनेचुरलिज्म एण्ड द ह्यूमन स्प्रिट' में इस समय को महान् अनुभूति कहते हैं, जो मानवीय सम्बन्धों को जोड़ती और स्वार्थपरता की वृत्ति को दूर करती है। जीवन में उत्पन्न टकराहट की समाप्ति, अन्तःस्वार्थों के मतभेदों का दूर होना इसी का परिणाम है। तनिक-सी विचारशीलता हमें प्रतिपल यह अनुभूति करा सकने में सक्षम है। जीवन ज्वाला की जागृति एवं मनुष्य के अस्तित्व की अनिवार्य आवश्यकताओं को लें ? इन सबके बिना उसका जीना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायेगा। पेट-भरा होने पर भी, ग्रीष्म की लू-लपट, शीत की बर्फीली हवायें, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि से रक्षा के अभाव में क्या जीवन रह पायेगा ?

गतिमान, प्रगतिशील जीवन के लिये बहुत कुछ चाहिये और वह सब उसे एक साथ चाहिये, तभी यह गाड़ी चलेगी। अन्यथा केवल पेट्रोल-तेल से भरी उस मोटर की-सी दशा होगी जिसके ऊपर न कोई ड्राइवर है और छाया की व्यवस्था। कुछ दिनों बाद ही उसके कल पुर्जे जम गये, तेल भी जमने लगा और चलने वाली मोटर गाड़ी अचल बनकर कबाड़ के रूप में नीलाम कर दी गयी। कबाड़ी चतुर था। पूरी मोटर की धुलाई-सफाई कराकर जाँच की। जमा हुआ तेल निकलवाकर गाड़ी पर छाया की व्यवस्था के साथ अच्छा पेट्रोल भरवा दिया गया अल्प प्रयास के बाद गाड़ी चलने लगी। इस शरीर रूपी गाड़ी को चलाने के लिये इसकी प्रकृति के अनुकूल अनेकों अनिवार्य साधनायें चाहिये। ये सभी साधन समाज के अलावा हमें और कौन उपलब्ध करवाता है भला ?

शरीर की रक्षा, सज्जा, लोकमर्यादा के निर्वाह के लिये वस्त्र चाहिये। वस्त्रों का निर्माण वृक्षों की छाल, पशु चर्म, ऊँट-भेड़ आदि पशुओं के बाल, रेशम के कीड़ों, वृक्षों के दूरध, लकड़ी, बाँस, कपास आदि के अलावा कृत्रिम धागों द्वारा होता है। इसके निर्माण के लिये शहरी कारखानों, देहाती उद्योगों का कितना बड़ा जाल फैला हुआ है ? इन सब में लगे कर्मचारी, प्रशासक, नियन्त्रक, निरीक्षक आदि और इसके द्वारा फैलने वाले प्रदूषण से प्रभावित नागरिकों का योगदान वस्त्र धारण करने वालों के जीवन में है ही। इतनी तो सादे कपड़ों की बात हुई। इसके अलावा कटाई, सिलाई में शिल्पकारों का सहयोग। इस सहयोग के लिये क्या हम किसी न किसी स्तर पर ऋणी नहीं हो रहे।

आवास के लिये झौपड़ी ही बनायी जाय तो क्या किसी अवलम्बन की आवश्यकता न होगी ? किसी न किसी पर आश्रित तो होना ही पड़ेगा। हवेली बनाने में तो बड़े-बड़े सहयोग-सहारे चाहिये तो झोंपड़ी के लिये भी तो कुछ सहारा लेना ही होगा। जिन अवलम्बों की देन इन सब साधनों के रूप में हो, मनुष्य उनका ऋणी कहलायेगा। हम इन ऋणों को नकार नहीं सकते। ऐसी स्थिति में हमारा मानवीय कर्त्तव्य होता है कि हम उस ऋण का भुगतान भी कर दें।

इसी कारण प्रख्यात विचारक जांक मारिया अपने अध्ययन संग्रह 'काण्टेम्पोरेरी रिन्यूवल्स ऑव मार्डन थाट' में स्पष्ट करते हैं। मानव शरीर का प्रत्येक कोष बहुमूल्य देनों के समक्ष नत है। यद्यपि भावनात्मक ऋण की माप-तौल और उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उपकार मूल्य है। सद्भावना, सहयोग वृत्ति की जागृति में छुपे हृदय की करुणा, दया तथा ममत्व जैसे कोमल भावों का मूल्यांकन किया भी कैसे जाय ? गणित के सूत्र में तो ऋण और धन के अंकों की समानता शून्य का परिणाम देती है। यह गणित की शैली हमारे दैवी गुणों की सूक्ष्मता को छूने में कभी समर्थ नहीं हो सकती। अतः जब परम्परा, गुण तथा स्वरूप से रहित अदृश्य भावना की तौल करनी है तो वह हमारी भावानुभूति पर आधारित आन्तरिक संतुष्टि के रूप में ही हो सकती है। जितना लिया है उतना ही देंगे, यह बात इस संदर्भ में लागू नहीं होती। इस सबके लिये हृदय की उदात्त भावना से प्रेरित सद्विचारों के संकल्प का निर्वाह कार्यों में कर देना ही सीधा सरल उपाय है। यह कार्य हममें से प्रत्येक का नैतिक कर्त्तव्य है। गीताकार के शब्दों में जो समाज के इस ऋण को चुकाये बिना उसके दिये गये साधनों-सम्पदाओं का उपभोग करते हैं, वे चोरी करते हैं। तनिक गौर से अपने समूचे जीवन क्रम को उलट-पुलट कर देखें, कहीं हम स्वयं तो इस गर्हित कर्म में संलग्न नहीं हैं।

समाज के इस ऋण को चुकाने का सर्वाधिक उपयुक्त समय यही है। युगान्तर चेतना स्वयं झोली पसारकर वसूलने आ पहुँची है। प्रत्येक कार्य का अपना समय होता है। धन्य होते हैं वे जो समय को पहचान कर उसे निपटाने में जुट पड़ते हैं। यों सेवा-सहकार-सद्भाव आदि सद्गुण प्रत्येक समय श्रेष्ठ हैं। पर मानवीय इतिहास में कभी-कभी ऐसे अलौकिक अवसर आते हैं, जब इनकी तनिक-सी मात्रा न केवल चिरस्थाई सत्परिणाम प्रस्तुत करती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, बल्कि करने वाला अपने अल्प श्रम के बलबूते युग निर्माता, इतिहास का गौरव अर्जित कर लेता है।

शबरी द्वारा दिये गये जूँठे झरबेरी के बेरों, सुदामा के टूटे चावलों, संन्यासी शंकर को दिये गये विधवा ब्राह्मणी के सूखे आँवले का बाजार भाव नहीं के बराबर था। अपने द्वारा दी गयी उन चीजों को बेचकर इनमें से कोई शायद एक समय की भूख भी नहीं मिटा पाता, पर इस नगण्य से कार्य के जल-कण जब समय की तपन को समर्पित हो गये। प्रतिक्रिया इतनी असाधारण हुई कि उस सौभाग्य वृष्टि से न केवल वे स्वयं सरावोर हुए वरन् आज भी इतिहास चारण बन उनका गौरव गान गा रहा है।

अपना समय पिछले युगों की अपेक्षा कई गुना अधिक प्रभावकारी है। आवश्यकता इसे पहचानने और अपनाने की है। समाज देवता द्वारा दिये गये अनुदानों के हम ऋणी हैं। इस कृतज्ञतापूर्ण भाव से ओत-प्रोत होकर जितना कुछ दे सकते हैं, महाकाल की झोली में डालने से न चूकें। उपकार के बदले उपकार की भावना साधारण स्तर की बात है विचारों में केवल कल्याणकारी कार्यों द्वारा लाभ देने, जनहित करने एवं युग प्रयोजन हेतु समर्पित होने की दृढ़ता ही श्रेष्ठ है।

मर्यादा का निर्वाह तथा उत्कृष्टता की स्थापना अपने उत्तरदायित्वों तथा दायित्वों के निर्वाह द्वारा ही होती है। इसके लिये कठोर साधना से सधा हुआ तन और मन चाहिये। विवेक का तराजू देकर ईश्वर ने मनुष्य में अपनी उपस्थिति जताई है। फिर हम उसका निर्वाह करने में पीछे क्यों रहें ? क्यों न आलस्य, निद्रा, मोह, त्यागकर अदम्य साहस और श्रम द्वारा समाज को युग बोध, नवयुग की सज्जा के उपयुक्त बना डालें।

समाज देवता की आराधना— सेवा साधना

आत्म-विकास की ओर अभिमुख गतिविधियों, क्रिया-प्रणालियों का नाम साधना है। इसकी अनेकों प्रणालियाँ अनेकों स्थानों पर प्रचलित हैं। विभिन्न मत-पथ अपने दायरे के अनुरूप इसका विशिष्ट स्वरूप घोषित करते हैं। सभी का अपना महत्व भी है, पर समग्रता की दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण करने पर इनमें से अधिकांश को प्रायः एकांगी मानना पड़ता है। समूची मानव प्रकृति को रूपान्तरित कर सके, सत्ता के प्रत्येक अंग-अवयव को दिव्यता से परिस्फूरित कर सके, ऐसी प्रणाली ढूँढ़ने पर शायद ही एक-आध मिले। जो मिलेगी भी, वह किसी विशिष्ट योग्यता की अपेक्षा रखती हुई।

समग्रता के प्रश्न पर विचार करने पर सर्व जन सुलभ साधना प्रणालियों का अन्वेषण कर विभिन्न विचारकों, महापुरुषों, श्रेष्ठतम योगियों की दृष्टि एक ही बिन्दु पर टिकती है और वह बिन्दु है—सेवा। व्यक्ति विशेष की नहीं समाज की अथवा यों कहें समाज के रूप में विराट् पुरुष की। आधुनिक समय में जबकि समाज सेवा एक फैशन के रूप में उभर चुकी है, अनेकों सेवा संस्थायें कायम हो चुकी हैं। ऐसी स्थिति में इसकी आध्यात्मिकता का भाव कुछ विचित्र-सा लगता है क्योंकि इससे आध्यात्मिकता उभरती होती, आत्म विकास की ओर जीवन गतिशील होता, तो समाज सेवियों के अनुरूप साधकों और योगियों की भी बाढ़ आयी होती, पर स्थिति ऐसी नहीं है।

चिन्तनशील मानसिकता के सामने स्थिति अपनी संरचना व क्रिया विधि को स्पष्ट कर देती है। यदि समाज-सेवियों की संख्या के अनुरूप आत्म-विकसित जन नहीं दृष्टिगत होते हैं तो साधना के लिये घर से निकलने वालों की संख्या के अनुरूप आत्मोत्कर्ष के धनी कहाँ ? इसका सीधा तात्पर्य यह है कि प्रणाली की समग्रता का मर्म नहीं समझा गया। उसे यथा रीति अपनाया नहीं गया।

किसी भी साधना प्रणाली में प्रवेश हेतु अनिवार्य योग्यता है—नैतिकता। पतंजलि हो या गोरखनाथ, कपिल हों या श्री कृष्ण, लाओत्से, ताओ, बुद्ध बाशो कोई भी क्यों न हों इस अनिवार्य योग्यता के बिना अपनी प्रणाली में प्रवेश नहीं देते। यदि प्रवेश मिलता भी है, तो प्रवेशिका स्तर पर। इसे उत्तीर्ण किये बगैर, पूर्ण नैतिक हुए बगैर साधना पद्धति में स्थान नहीं। समाज सेवा के लिये भी यही अर्हता है। अनैतिक व्यक्ति कभी समाजसेवी नहीं हो सकता।

प्रवेश के बाद शुरू होता है—साधना क्रम। इसमें हठ योग जहाँ अपना समूचा ध्यान शरीर पर जमाता है। राजयोग मानसिकता में फेर-बदल करता है। तन्त्र की गुह्य पद्धतियाँ प्राणिक जगत् में परिवर्तन व रूपान्तरण का रुख अपनाती हैं। किन्तु इन तीनों आधारों में एक साथ निखार आये, ये शुद्धात्म चेतना का प्रवाह धारण कर सकें, ऐसी स्थिति नहीं बन पाती है।

समाज सेवा जिसे साधना की समग्र प्रणाली माना गया है, इसमें नियोजित व्यक्ति के तीनों ही आधार न केवल सशक्त होते हैं, निखार आता है, वरन् समूची अन्तर्शक्तियाँ अपने यथार्थ रूप में अभिव्यक्त होने लगती हैं। 'द स्प्रिचुअल क्राइसिस आफ मैन' नामक ग्रन्थ में डा. पाल ब्रंटन ने इसे स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार पार्थिव शरीर चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका गुण है—जड़ता। इस तमस का सत्व में रूपान्तरण ही अभीष्ट है। समाज सेवा की साधना पद्धति अपनाने वाले इसे प्रथम चरण में ही पा लेते हैं क्योंकि सच्चे साधक को तो नाम, यश विहीन क्रियाशीलता चाहिये। इसे ही सत्व का रूपान्तरण समझा जा सकता है। सारे आवेग, कामुकता, क्रोध, मोह, लोभ आदि प्राणिक स्तर पर अपनी जड़ जमाये रहते हैं। प्रचलित योगों के किसी भी साधक को इनकी जड़ें उखाड़ने में पसीने आ जाते हैं। फिर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कभी-कभी असफलता हाथ लगती है। विश्वामित्र और दुर्वासा की कहानियाँ प्रचलित हैं। वर्षों की तपश्चर्या के बाद भी अनेकों बार काम-क्रोध के हाथों पराजित होना पड़ा, अन्यों का भी यही हाल हुआ। अपने भाव में निष्ठा समाज सेवी इस दुरुह स्तर को कुछ ही वर्षों में रूपान्तरित करने में सफल हो जाते हैं। यह रूपान्तरण कामुकता का भावुकता में, क्रोध का बुराइयों के प्रति रोष, मोह का प्रेम में और लोभ का उदारता में हो जाता है। मन के स्तर पर यही दशा है। इसमें साम्राज्य रहता है कामनाओं का। एक के बाद दूसरी आ धमकती है। यह सिलसिला चलता रहता है। अन्य मार्गों के पथिक जहाँ तमाम प्रयत्नों के बाद भी स्वर्ग या किसी स्वप्न लोक के सपने को नहीं छोड़ पाते। वही सेवानिष्ठ साधक सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना से युक्त रहता है।

योग के विभिन्न मार्गों की चरम परिणित कैवल्य स्थिति-प्रज्ञता, समत्व, एकात्म भाव को ही माना गया है। इसी की विभिन्न स्थितियाँ मुक्ति, जीवन मुक्ति, विदेह मुक्ति के नाम से जानी जाती हैं। विभिन्न योगियों को ये स्थितियाँ कब मिलती हैं यह तो पता नहीं, पर सेवानिष्ठ अपने वर्तमान जीवन में ही इस परम लाभ से लाभान्वित होता देखा जाता है। लोभ, मोह, अहंकार से छुटकारा मिला कि उपरोक्त स्थितियाँ मिली। जिसने सर्वहित में अपने स्वार्थों की बलि दे दी उसे लोभ कैसा ? वैयक्तिकता से उपराम जो सारे समाज को अपना परिजन, समूचे विश्व को अपना घर मानता है उसमें मोह की गुंजायश कहाँ ? सुहृदं सर्व भूतानां में जिसकी स्थिति है, जो स्वयं को विनम्र सेवक और को सेव्य मानता है, उसके पास अहंकार भला कैसे फटक सकता है ? यही कारण है कि वह इसी जीवन में मुक्ति का परम लाभ प्राप्त कर जीवन मुक्त की स्थिति में आनन्दित रहता है।

साधना की इस समग्र प्रणाली के रहते अपने ऊपर समाज सेवी का लेबल चिपकाने पर भी जो लोग इसके लाभों से वंचित हैं, इसका कारण प्रणाली की गड़बड़ी नहीं अपितु स्वयं की खामी है। गरीबों को गले लगाने तथा कष्ट-पीड़ितों की मदद करने की बात हर कोई करता है, लेकिन अपने आस-पास के ऐसे लोगों पर ध्यान देना अनावश्यक लगता है, जिन्हें वस्तुतः सहायता की आवश्यकता है।

प्रसिद्ध विचारक थियोडोर रुजवेल्ट ने अपनी रचना 'माई एक्सपेरियेन्स विद सोसायटी' में इसी प्रकार की मार्मिक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—उन्होंने समाज सेवक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। कई बार उनसे मिला भी हूँ। हर बार उनकी विचारधारा और गतिविधियों को जानना चाहा है। लेकिन वह है कि जब भी मिलना चाहा, यही कहते हैं—क्या बताऊँ आज अमुक मीटिंग में जाना है, आज दरिद्र बच्चों को दूध बाँटने का कार्यक्रम है। आज माताओं को बच्चों के पालन-पोषण का व्यावहारिक ज्ञान देना है। एक दिन जब मैं उनके घर पहुँचा तो वे घर पर नहीं थे। उनकी नौकरानी थी। वह बंगले के पीछे वाले कमरे में रहती है। उस दिन उसका बच्चा न्यूमोनिया के कारण बुरी तरह तड़प रहा था।

मैंने पूछा—दवा दी। उत्तर में वह मौन रही। मैंने कहा—क्यों दवा क्यों नहीं दी ? अपने साहब से कहती, तो वे किसी के पास भेज देते। उनकी जान-पहचान के बहुत-से लोग हैं। नौकरानी फफक-फफक कर रो पड़ी। बोली—दो दिन से कह रही हूँ। लेकिन हम गरीबों की कौन सुने ? पैसे माँगे थे, वह भी नहीं मिले। बाद में सुना कि उसका बच्चा दवा न मिलने के कारण गुजर गया।

स्वाभाविक है कि ऐसे लोग समाज सेवा का सिक्का अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिये उपयोग करते हैं। उनके मन में दीन-दुःखियों के प्रति करुणा और सेवा की बात तो दूर, नैतिकता से भी कोई वास्ता नहीं। इस तरह की समाज सेवा का अगर विश्लेषण किया जाय तो वह मात्र एक फैशन ही सिद्ध होती है। जिसके पास करने को कोई काम नहीं होता अथवा जो यह समझते हैं कि इस प्रकार इस समाज में कुछ इज्जत कमा लेंगे या जिनके पास पूर्वजों की कमाई हुई इतनी पैतृक सम्पदा है कि उससे आराम के साथ निर्वाह हो जाय, वे समाज सेवा का मुखौटा लगा लेते हैं।

कहने का आशय यह नहीं है कि समाज सेवा कोई करता ही नहीं है। सच्चाई तो यह है कि निष्ठावान समाज सेवक आत्म-प्रचार और अपनी सेवाओं का ढोल पीटने के स्थान पर मूक भाव से अहर्निश जन सेवा में लगे रहते हैं। चाहिये भी यही कि इस विशुद्ध साधना को पाखण्ड के रूप में नहीं साधना की समग्र प्रणाली के रूप में ही अपनाया जाय। इसीलिये शुरूआत अपने से करनी चाहिये। अपने से शुरूआत करने का अर्थ है कि जिन आदर्शों की स्थापना हम समाज में होते हुए देखना चाहते हैं, उन आदर्शों को स्वयं हम अपने में उतारें। कथनी से नहीं करनी से अपने जीवन उदाहरण के रूप में रखकर प्रस्तुत करें।

समाज सेवा का परिवार निर्माण से आरम्भ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसकी अधिकांश आवश्यकताएँ दूसरों के सहयोग से ही पूरी होती हैं। अकेला मनुष्य अन्न, वस्त्र, निवास जैसी मौलिक आवश्यकताएँ भी पूरा नहीं कर सकता। गुजारे के लिए कृषि, पशुपालन, शिल्प व्यवसाय आदि जो भी उपाय अपनाने पड़ते हैं, उन सब में दूसरों की सहायता अनिवार्य होती है। अन्य प्राणियों के बच्चे तो जन्मने के बाद कुछ ही समय में स्वावलम्बी बन जाते हैं, पर मनुष्य के बालक को तो करवट बदलना, दूध पीना, सर्दी-गर्मी से बचाने, मूत्र की सफाई कराने के लिए अभिभावकों पर निर्भर रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता है। यदि यह सहायताएँ न मिलें तो उसका जीवित रह सकना कठिन हैं। वार्तालाप करने के लिए जिस भाषा ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है वह भी परिवार के लोगों का अनुकरण करते ही उपलब्ध होती है। दूसरों के शब्द न सुन पाने पर व्यक्ति गूँगा भी रह जाता है क्योंकि जब सुनने का अवसर ही न मिले तो फिर अनुकरण लाभ कैसे मिले ?

मनुष्य जीवन में अगणित वस्तुओं की आवश्यकता होती है। उनके लिए कच्चा माल ढूँढ़ने, पक्का तैयार करने और ढोकर—खरीदकर अपने पास तक पहुँचाने में असंख्यों मनुष्यों का न्यूनाधिक श्रम लग चुका होता है। तब कहीं अपनी जरूरतें पूरी हो पाती हैं। धर्म पत्नी को जीवन संगिनी कहते हैं। वह भी किसी दूसरे परिवार में जन्मी पली और बड़ी होती है, उसका समर्पण न हो तो अकेले रहकर ही गुजर करनी पड़े अनेक असुविधाओं के बीच समय बीते और वंश वृद्धि का संयोग ही न बने। अध्यापक शिक्षा न दें तो अनगढ़ अनपढ़ ही रहना पड़े।

मनुष्य पर समाज के असीम उपकार हैं। इन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करना हर ईमानदार व्यक्ति का काम हैं। जिन-जिन लोगों का जिस प्रकार का सहयोग मिला है, उन्हें तलाश करना और उसी क्रिया के रूप में प्रतिदान चुकाना तो कठिन है, पर यह सरल, संभव और सही है कि समाज को एक इकाई मानकर—अपने सम्बद्ध क्षेत्र में सद्भावना की सत्प्रवृत्ति की अभिवृद्धि की जाय। इसका लाभ प्रकारान्तर से समूचे समाज को मिलता है।

एक व्यक्ति उद्योग खड़ा करता है तो उसमें अनेक श्रमिक काम करने हैं। कच्चा माल उत्पादन करने और उसे लाने, खरीदने, बेचने में अनेकों को काम मिलता है। एक सद्गुणी परोपकारी महामानव अपनी विशेषताओं से सम्पर्क में आने वाले अनेकों को समुन्नत स्तर का बनाता है। समुद्र की लहरें एक-दूसरे को आगे बढ़ाती हुई किनारे तक पहुँचती हैं। इस प्रकार दोष-दुर्गुण भी छूत की बीमारी की तरह एक से दूसरे को लगते हैं। नशेबाज, जुआरी, व्यभिचारी अपने सम्पर्क में आने वालों को भी वैसा ही बना लेते हैं। भले-बुरे प्रभावों की लहरें आगे-आगे बढ़ती रहती हैं और उनकी चपेट में क्रमागत रूप से अनेकों को प्रभावित होना पड़ता है।

इसलिए समाज को सुखी समुन्नत बनाने के लिए जहाँ से भी प्रयत्न आरम्भ किया जाय वह एक से दूसरे का स्पर्श करते हुए अनेकानेकों को उस आरम्भ की गई प्रक्रिया से लाभान्वित करते हैं। समाज के ऋण को समाज सेवा के रूप में चुकाया जा सकता है। भले वह कहीं भी की गई हो किन्हीं की भी की गई हो।

समाज का प्रथम स्पर्श परिवार से होता है परिवार समाज की सबसे निकटवर्ती और सुलभ इकाई है। सभी परिवार में जन्मते-पलते और बढ़ते स्वावलम्बी बनते हैं। इसलिए स्वभावतः परिवार की सेवा सहायता का उसे सुसंस्कृत समुन्नत बनाने का दायित्व उन सब पर आता है जो अपना कर्त्तव्य समझने लगे हैं और निभा सकने की दिशा में कुछ कर सकने की स्थिति में न्यूनाधिक मात्रा में आ गये हैं। उन्हें सर्वप्रथम अपने परिवार की सेवा करने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने में संलग्न होना चाहिए।

इसका प्रथम चरण है कि घर के सभी छोटे-बड़े लोगों को स्नेह और सम्मान समुचित मात्रा में दिया जाय। किसी के प्रति भी द्वेष भाव, मनोमालिन्य न उपजने दिया जाय। किसी की भी उपेक्षा, अवज्ञा न की जाय। हर किसी को ऐसा परामर्श दिया जाय जिससे उनकी प्रवृत्ति सद्गुणों की ओर सद्भावनाओं की ओर हो। उत्कृष्टता आदर्शवादिता अपनाने पर किस प्रकार व्यक्तित्ववान प्रतिभावान बना जा सकता है इसका परिचय हर किसी को कराया जाय। प्रेरित, प्रोत्साहित करने में सदा संलग्न रहा जाय। यह सब मात्र कहने-सुनने में ही संभव नहीं होता। अपना आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे आदर्शवादी सद्गुण अनायास ही उछलकर ऊपर आते हों। व्यक्ति कथनी से नहीं करनी से प्रभावित होता है। इस प्रकार परिवार की भावनात्मक सेवा हर कोई अपनी सज्जनता शालीनता को बढ़ाते हुए अनायास ही करता रह सकता है। इससे किसी प्रकार की अड़चन उत्पन्न होने की भी आशंका नहीं है।

बच्चे जब भी स्कूल से छुट्टी पायें अवकाश के समय घर के काम-काज में हाथ बँटायें। मनोरंजन और व्यायाम का इससे प्रत्यक्ष प्रयोजन पूरा होता है साथ ही घर के सभी सदस्यों द्वारा प्रशंसा होती है और प्रतिष्ठा दी जाती है। निकटवर्ती लोगों द्वारा दिया गया श्रेय-सम्मान, बाहर के लोगों द्वारा दी गई झूठी-सच्ची वाहवाही की तुलना में कहीं-अधिक लाभदायक और अपनी अन्तरात्मा को उल्लास देने वाली सिद्ध होती है।

घर में शाक-वाटिका लगाना, टूटी-फूटी वस्तुओं की मरम्मत करना, सफाई करना, सज्जा में रुचि लेना आदि ऐसे काम हैं, जिनके द्वारा परिवार की शोभा प्रतिष्ठा बढ़ती है। साथ ही आर्थिक लाभ भी होता है। परिजनों को उनका अनुकरण करने की प्रेरणा मिलती है और उनमें से अधिकांश का स्वभाव सुधरता है।

घर में सद्विचारों के अभिवर्द्धन का माहौल बनना चाहिए। इसके लिए दो ही उपाय हैं एक स्वाध्याय दूसरा सत्संग। स्वाध्याय के लिए एक घरेलू सद्ज्ञान संवर्द्धक पुस्तकालय बनाया जाय। उसमें कई पुस्तकें बढ़ाते रहने के लिए कुछ न कुछ पैसा निकाला जाय और ऐसी पुस्तकों की संख्या बढ़ाते रहा जाय तो व्यक्ति और समाज की प्रस्तुत समस्याओं का आदर्शवादी हल सुझाती रहें। इन्हें घर के पढ़े-लिखे लोग आवश्यक नित्य कर्म की तरह पढ़ें और बिना पढ़ों को उनकी सुविधा के समय पर पढ़कर सुनायें।

सत्संग के लिए नियमित कथा-कीर्तन का प्रबन्ध किया जाय। प्रायः भोजन के उपरान्त रात्रि का समय इस हेतु सभी की सुविधा का होता है, उस समय प्रज्ञा पुराण कथाओं को सुनाने के लिए ऐसा उपक्रम अपनाया जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है, जिसमें कहानी सुनने का आनंद भी जुड़ा हुआ है। सद्ज्ञान संवर्द्धन का उद्देश्य तो स्पष्ट ही जुड़ा हुआ है। संगीत का थोड़ा अभ्यास सभी को कराया जा सकता है। मजीरा, घुंघरू, चिमटा, इकतारा, ढपली जैसे वाद्य-यंत्रों का अभ्यास महीने पन्द्रह दिन के प्रयत्न से ही प्रायः सभी व्यस्कों को हो सकता है। ताल में ताली बजाना तो और भी जल्दी सीखा जा सकता है। प्रज्ञा गीतों के कितने ही छोटे-बड़े संग्रह अपने मिशन द्वारा प्रकाशित हुए हैं। एक बार प्रवीण को एक कड़ी कहने दी जाय और उसके बाद अन्य सब दुहरायें। इस प्रकार दुहरायें जाने की प्रक्रिया को कीर्तन कहा जाता है। संगीत में प्रवचन की अपेक्षा अधिक मात्रा में भाव संवेदनाएँ उभारने की विशेषता है। कहानियाँ सुनने में तो बाल वृद्ध सभी को अभिरुचि होती है। उसकी पूर्ति प्रज्ञा पुराण से तथा पत्रिकाओं में छपते रहने वाले छोटे संस्मरणों से हो सकती है। संगीत का माहौल घर में बनाने के लिये प्रज्ञागीतों का चयन और गायन हर दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

महिलाओं के लिए तीसरे प्रहर का समय थोड़े अवकाश का होता है। उस समय वे स्वाध्याय सत्संग का—पठन-पाठन का कथा कीर्तन का कार्यक्रम मिलजुल कर बना सकती हैं। घरेलू पुस्तकालय इन सभी के लिए सहायक सिद्ध हो सकता है।

घर में धार्मिक वातावरण बनाने का भी प्रयत्न किया जाय। धार्मिकता अन्धविश्वास नहीं है। उसमें चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में शालीनता के समावेश का—संवर्द्धन का गुण है। आस्तिकता ईश्वर विश्वास को परिपक्व करती है। ईश्वर विश्वास का तात्पर्य है भले-बुरे कर्मों का देर-सबेर में निश्चित रूप से प्रतिफल उत्पन्न होना। इस धारणा के परिपक्व होने से व्यक्ति दुष्कर्मों से बचता है और सत्कर्मों में प्रवृत्त होता है। सद्गुणों का समुच्चय ही परमात्मा का अर्थ-विवेचन है। ईश्वर विश्वासी सन्मार्ग में एकाकी भी चलता रह सकता है उसे विश्वास रहता है कि जब तक श्रेष्ठ कर्म करते रहा जायगा, तब तक ईश्वर हमारे साथ रहेगा और साथ देगा। यही आस्तिकता है।

आत्म परायणता का दूसरा चरण है आध्यात्मिकता। आध्यात्मिकता कहते हैं आत्म विश्वास को। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता है। उसका निजी व्यक्तित्व ही परिस्थितियाँ बनकर प्रतिध्वनि या प्रतिच्छाया की तरह सामने आता रहता है। अपने आँखों पर जैसा चश्मा पहना हो उसी रंग का सारा संसार दीखता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए जो आत्म परिष्कार का प्रयत्न करते हैं उन्हें सच्चे अर्थों में आत्मवादी कहा जा सकता है।

धर्म का अर्थ है कर्तव्य धार्मिकता का तात्पर्य है—कर्तव्य परायणता। मनुष्य जहाँ धर्म करने में स्वतंत्र है वहाँ वह कर्तव्यों और दायित्वों से पग-पग बंधा हुआ है। उन सबका निर्वाह करना, मानवीय गरिमा को अक्षुण्य रखे रहना—मर्यादाओं का पालन करना—वर्जनाओं का उल्लंघन न करना यही धार्मिकता के चिन्ह हैं।

घर में उपासना का कोई छोटा-बड़ा कक्ष बना लेना चाहिए। उस तक पहुँचकर नित्य नमन वदन करना घर के हर छोटे-बड़े सदस्य का कर्तव्य बनाया जाय। साथ ही आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के त्रिवेणी संगम में ईश्वर उपासना का स्वरूप समझना ऐसा कृत्य है जिसके सहारे आत्मिक प्रगति के मार्ग पर सरलतापूर्वक चला जा सकता है। जो उपासना का महत्व समझ सके हैं, उन्हें उसकी साँगोपाँग विधा प्रज्ञा योग के रूप में कार्यान्वित करने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए। माहात्म्य बताते हुए उत्साहित करना चाहिए।

अपने परिवार को एक आदर्श के रूप में विनिर्मित किया जाय, जिसे देखकर पड़ौसियों, परिचितों और सम्बन्धियों के मन में भी उसके अनुकरण की प्रेरणा मिले। घर के हर सदस्य के मन में यह भाव उत्पन्न करना चाहिए कि उसका कर्तव्य परिवार के साधनों का अधिकाधिक दोहन करना नहीं वरन् अपनी क्षमता, योग्यता, भावना का अधिकाधिक अनुदान प्रस्तुत करते हुए—इस स्तर का बनाना है कि अपने को उस ऋण से मुक्ति मिलने का अवसर मिले जो समाज के प्रथम अंग परिवार द्वारा उसके भरण-पोषण के रूप में आरंभ से अब तक प्रस्तुत किया गया है।

बड़े होने पर जब कमाने-धमाने की स्थिति बने तो प्रथम कर्तव्य बड़े-बूढ़ों की सेवा तथा समान वर्ग के—छोटी स्थिति के सभी सदस्यों को इस स्थिति पर पहुँचाना होना चाहिए कि उनकी सुख-शांति एवं प्रगति में बाधा न पड़े। निजी काम धंधा चल पड़ने पर निजी कमाई के हाथ में रहने पर उसका अनुपयुक्त खर्च करने लगाना बुरी बात है। कर्तव्य का पालन इसी में है कि जब तक परिवार की आवश्यकताएँ पूरी तरह छुट्टी न करें तब तक उस प्रयास में ही तत्परतापूर्वक लगे रहा जाय। सम्मिलित परिवार को अधिकाधिक व्यवस्थित समुन्नत एवं प्रशिक्षित करने का पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित किया जाय।

तरुणों का प्रथम कर्तव्य परिवार का ऋण चुकाना है। जितनी सेवा उनसे ली है उसकी भरपाई की जानी चाहिए। उपलब्ध अनुदान को लौटाने का ईमानदारी से अपना मन बनाये रहना चाहिए और इस निमित्त समुचित श्रेय, समय एवं उपार्जित धन लगाते रहना चाहिए।

परिवार में अपने समर्थ होने के समय जितने व्यक्ति हैं उन सबको सँभालने विकसित करने की जिम्मेदारी निभा सकना तभी संभव है जब और नये सदस्य न बढ़ाये जायें। नये बच्चे बढ़ते तो स्वाभावतः उनका खर्च भी बढ़ता है। बच्चे बड़े होने लगते हैं तो उन पर ध्यान देना और खर्च भी करना होता है। वह पिछले लोगों की आवश्यकताओं में कटौती करके ही किया जा सकता है। पिछलों की जरूरतें पूरी होने से पूर्व नहीं बहुएँ नये बच्चे बुला लेना बुद्धिमानी नहीं है। इसके लिए जितने अधिक दिन ठहरा जा सके उतना ही उत्तम है। कर्तव्य निबाहने और पिछले लोगों को सुखी समर्थ बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है। इस स्थिति में नये आगन्तुक भी कष्ट सहते और अभावग्रस्त रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने पिछड़े देश में कुरीतियों, अंधविश्वासों, मूढ़ मान्यताओं की भरमार है। इनके कारण ढेरों धन खर्च होता है। इसे बचाया जा सके और बचत को प्रगतिशीलता के लिए लगाया जा सके तो उससे पिछड़ापन, अभाव, दारिद्रय दूर होने में बड़ी सहायता मिलती है। विवाह शादियों को ही लें उनमें जो खर्च होता है उसमें वर पक्ष और वधू पक्ष दोनों ही बर्बाद होते हैं। मेहनत का कमाया हुआ पैसा व्यर्थ की धूमधाम में खर्च हो जाता है। इसी प्रकार की कुरीतियों में मृतक भोज, पर्दा प्रथा, भिक्षा व्यवसाय, जातिगत ऊँच-नीच जैसी कुप्रथायें भी ऐसी हैं जिनके कारण प्रगति मार्ग में असाधारण व्यवधान उत्पन्न होते हैं। टोना-टोटका, भूतपलीत आदि के कारण भी स्वस्थ समाज की संरचना में चित्र-विचित्र व्यवधान खड़े होते हैं। स्वस्थ समाज की संरचना के लिए इन कुप्रचलनों को हटाया जाना चाहिए। इस सफाई की शुरूआत अपने घर से करनी चाहिए। स्त्रियों की मानसिकता अपेक्षाकृत अधिक पिछड़ी होती है। वे ही कुरीतियों के समर्थन में अधिक अड़ती देखी गई हैं। उन्हें तर्क, तथ्य और उदाहरण के आधार पर समझाया जाना चाहिए कि लकीर के फकीर होने में कोई लाभ नहीं। जो उचित है, बुद्धिसंगत है उसी को अपनाया जाना चाहिए। बुढ़िया हों या बुढ़े उनका उचित परामर्श मानना चाहिए। कुरीतियों के पक्ष में समर्थन में यदि वे अड़ते हैं तो सविनय अवज्ञा का मार्ग अपनाया जा सकता है। सहयोग से लेकर विरोध तक किया जा सकता है किन्तु जो अनुपयुक्त अवांछनीय है, उसे नम्रतापूर्वक अस्वीकार ही कर दिया जाना चाहिए।

घरेलू काम-काज का बँटवारा इस प्रकार न होना चाहिए कि कोई नितान्त ठाली बैठा रहे, कोई दिन-रात पिसता रहे। सामर्थ्य के अनुरूप हर किसी को काम करना चाहिए। बच्चे बूढ़े भी स्वेच्छापूर्वक घर के कामों में सहयोग देने के लिए कुछ न कुछ तो करते ही रह सकते हैं। निठल्ला किसी को भी नहीं रहना चाहिए और सामर्थ्य से अधिक काम करने के लिए भी किसी को दबाया नहीं जाना चाहिए। शिष्टाचार का पालन सभी करें। पारस्परिक स्नेह, सम्मान और सहयोग का कोई अवसर किसी को चुकाना नहीं चाहिए। खर्च मनमर्जी से न किया जाय उसमें दूसरों की भी सहमति रहनी चाहिए। ताकि किसी की उचित आवश्यकताओं को न काटा जाय और किसी को शौक मौज में अपव्यय करने का अवसर न मिले।

समाज का अर्थ और स्वरूप बहुत व्यापक है। उसकी परिधि में समूचा संसार आता है। इतने विस्तृत क्षेत्र की समस्याओं का समाधान करना किसी एक दो व्यक्ति के बलबूते का नहीं। किया इतना ही जा सकता है कि अपने प्रभाव क्षेत्र में रुचि लेने और सेवा करने के लिए समय निकाला जाय और जो संभव तथा आवश्यक है वह किया जाय। फिर भी यह प्रयत्न करना चाहिए कि लोक मानस में चरित्र निष्ठा और सामाजिकता की भावनाएँ बढ़ती और मजबूत होती रहें। अनीति का उन्मूलन हो और अवांछनीय शोषण उत्पीड़न की जड़ कटे। किन्हीं के हाथ से मानवी मौलिक अधिकार छिन गये हों तो वे उन्हें वापिस मिलें। उद्दंडता उच्छृंखलता अनाचार की दाल न गलने पाये। इसलिए सामूहिक संगठन और संघर्ष भी उतना ही आवश्यक है जितना कि सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन, परिपोषण।

सेवाधर्म हर दृष्टि से नफे का उपक्रम

बाजार में सभी तरह की वस्तुएँ सुसज्जित रूप से विक्रयार्थ सजी रखी रहती हैं। पर उनमें से कौन क्या खरीदे यह ग्राहक की अपनी अभिरुचि पर निर्भर रहता है। वस्तुएँ भली-बुरी सभी तरह की होती हैं पर उनमें क्या कितना खरीदना चाहिए यह पूर्णतया ग्राहक की अपनी अभिरुचि पर निर्भर रहता है। हमें संकीर्ण स्वार्थपरता के दुर्गन्ध भरे दलदल में फँसना है या गंगाजल की पतित-पावनी धारा में प्रवेश करके अपने को स्वच्छ, शीतल करना है यह अपना निज का चयन एवं निर्णय है। गंगा के समीप ही कहीं सड़ा दलदल भी होता है। किसमें प्रवेश करके किस स्थिति में पहुँचा जाय यह अपनी निज की अभिरुचि पर निर्भर है।

जन सामान्य में अधिकांश लोग आदर्शों की दृष्टि से बहुत अधिक गये गुजरे होते हैं। उन पर पशुता के कुसंस्कार मानव कलेवर प्राप्त कर लेने के उपरांत भी पूरी तरह छाये रहते हैं। तात्कालिक लाभ ही उनका उपास्य एवं इष्ट होता है। तुरन्त किस प्रकार कितना रसास्वादन करते बन पड़े इसी की ललक हर किसी पर छाई रहती है। लोक मान्यता सब प्रकार से प्रवाह धारा बन जाती है। हलके वजन की वस्तुएँ उसी प्रवाह के साथ-साथ चलती दौड़ती हैं। यह विवेक उन बहने वालों में से किसी में भी नहीं होता कि प्रवाह किधर जा रहा है और उसका अंत कहाँ किस रूप में होगा ? इस चिंतन के अभाव में आमतौर से अंधी दौड़ चलती रहती है। भेड़ चाल का उदाहरण घटित होते हर जगह देखा जाता है। सभी नदियों का स्वच्छ जल अंततः खारे समुद्र में गिरकर वैसा ही अपेय बन जाता है। भले ही आरंभ में वह कैसा ही स्वच्छ, गुणकारी, शीतल और सराहनीय क्यों न रहा हो। जनसाधारण में हलचलें तो पाई जाती हैं पर वे किस निमित्त हो रही हैं अंत में कहाँ जा पहुँचेगी इसका पूर्ण निर्धारण प्रायः किसी से भी नहीं बन पाता। जनमानस की प्रवृत्ति प्रायः वानर जैसे अनुकरण की होती है। बहुत लोग जैसा सोचते वैसा करते देखे जाते हैं उसी की नकल बनाना अन्यान्यों से बन पड़ता है। दूरदर्शी विवेक का उदय हुआ तो बहुत कम में देखा जाता है। दूरवर्ती लाभ-हानि का निष्कर्ष निकालना तो किन्हीं विरलों से ही बन पड़ता है। सामान्यतया समाज तो अंधी भेड़ों का उदाहरण बनने और एक के बाद दूसरा खड्ड में गिरते चलने का निमित्त बनता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपयुक्त का चयन मानवी प्रज्ञा की उच्चस्तरीय विशेषता इसके लिए लोक प्रचलन की उपेक्षा करनी पड़ती है। तत्काल का लाभ छोड़ना पड़ता है। यदि इसे छोड़ते न बन पड़े तो चाशनी में फँसाकर मक्खी की तरह तड़प-तड़प कर बेमौत मरना पड़ता है। मछलियों और चिड़ियों की जाल में फँसाकर इसी प्रकार की दुर्गति होती है। बीज की तरह गलकर और विशाल वृक्ष की तरह फलने का सौभाग्य तो किन्हीं-किन्हीं को ही उपलब्ध होता है। शेष दाने तो सीलन भरी कोठरी में पड़े रहकर कृमिकीटक के पेट में चले जाते हैं।

मनुष्य जन्म मिलना स्रष्टा का विशिष्ट किन्तु प्रारंभिक उपहार है। इसमें आने का वरदान जिन्हें मिलता है वे दूरदर्शी विवेकशीलता से सुसम्पन्न होते हैं। राजहंस की तरह उन्हें दूध पानी को अलग करने की कला आती है। कीड़े की उपेक्षा करने और गहरी डुबकी लगाकर मोती चुनने का कौशल भी उन्हीं में देखा जाता है। जो विवेक की कसौटी पर खरे उतरते हैं, जिनमें श्रद्धा-प्रज्ञा और निष्ठा की उत्कृष्टता विद्यमान रहती है, निर्वाह की न्यूनतम आवश्यकता पूरी होते रहने के सम्बन्ध में निश्चित रहते हैं। ऐसे लोग जीवन तत्व के सम्बन्ध में गंभीरता से विचार करते और उसके श्रेष्ठतम सदुपयोग का उपाय सोचते हैं। यदि कोई इस स्तर का चयन कर सके तो उसे 'सेवा धर्म' अपनाने की ही ललक जगेगी। उत्कंठा उठेगी। परोपकार में स्वार्थ सिद्धि का समावेश भी अनायास ही हो जाना है। गाय दूसरों के लिए दूध, बछड़े, गोबर आदि देती रहती है उसके बदले उसे चारा दाना, पानी, आच्छादन आदि की सुविधा मिलती है और सम्मानपूर्वक गौ माता कहा जाता है। बैलों का श्रम भी असंख्य मानवों का पेट अपने कृषि पराक्रम द्वारा भरता है। उसे निर्वाह के लिए कष्ट नहीं उठाना पड़ता। आदर्शवादी हंसों की पग-पग पर सराहना होती है। उनके दर्शन शुभ माने जाते हैं। भगवती सरस्वती के वाहन रूप में उन्हें अंकित किया जाता है। बादलों का दर्शन होते ही सभी प्राणियों में प्रसन्नता भरी उमंग उमड़ती है। उषाकाल का उदय होते ही पक्षी चहचहाने लगते हैं और अन्यान्य प्राणियों की गतिशीलता अनायास ही सक्रिय हो जाती है।

समझा जाता है कि सेवा-साधना में प्रत्यक्ष ही घाटा है। अपना समय, धन लगाने पर ही दूसरों की सहायता बन पड़ती है। इस आधार पर दूसरे लाभ उठा सकते हैं पर अपना तो खर्च ही खर्च हुआ ऐसी दशा में जिन्हें अपने स्वार्थों को प्रमुखता देनी है, उन्हें सेवा कार्यों से बचना ही चाहिए। अपने घाटे से होने वाली हानि का बचाव ही करना चाहिए।

यह चिंतन एकांगी और अदूरदर्शी है, जिसकी हम सेवा सहायता करते हैं उसका मन सहज ही जीत लेते हैं। उसकी सहानुभूति, सद्भावना अर्जित करते हैं। जो प्रकारान्तर से प्रशंसा, श्रद्धा, सहकारिता एवं उपकार के रूप में लौटकर वापस आती है। यह कम मूल्य का प्रतिदान नहीं है। कोई व्यक्ति मात्र अपने ही बलबूते प्रसन्न रहने और सफल बनने के सारे सरंजाम नहीं जुटा लेता। उसमें दूसरों का जितना योगदान होता है, उसी अनुपात से उपलब्धियाँ भी बढ़ी-चढ़ी होती है। एकांगी संकीर्ण व्यक्ति तो निस्तब्ध ही बैठा रह सकता है। नीरस ही बना रह सकता है। एकांगी प्रसन्न रहना तो किसी ब्रह्मज्ञानी के लिए ही संभव होता है। आमतौर से अपने सुख बँटाये जाते हैं और दूसरों के दुःख बाँटकर अपने कंधे पर लिए जाते हैं तभी बदले में आत्मसंतोष और जन-सम्मान की विभूतियाँ हस्तगत होती हैं। जब अन्य सुनने वालों को ये विवरण विदित होते हैं तो उन्हें प्रबल प्रसन्नता होती है और कर्ता के प्रति सहज सद्भावना उमड़ता है। इस प्रकार जिसके साथ नेकी की गई है उसी पर ही अनेकानेक अन्यान्यों द्वारा भी यश की सम्मान की वर्षा होने लगती है, जिनका प्रत्यक्ष कुछ उपकार नहीं किया गया है उनके द्वारा भी कृतज्ञता और प्रशंसा बरसाई जाती है। यह लाभ तत्काल न सही प्रकारान्तर से कितने ही मार्गों द्वारा अपने लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। सेवाभावी, उदारचेता-परमार्थ परायण माना जाता है। इसके साथ ही उसे दयालु, उपकारी, निःस्वार्थ, चरित्रवान भी मान लिया जाता है। व्यक्तित्व की यह प्रामाणिकता मनुष्य की बढ़ी-चढ़ी पूँजी है।

प्रामाणिकता के सहारे ही अनेकों महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान और सद्भाव सहकार मिलते-रहते हैं। प्रगति चाहे किसी भी प्रकार की क्यों न हो उसके लिए दूसरे उपयोगी व्यक्तियों का सहयोग समर्थन आवश्यक हैं। यदि वह न मिले तो अकेला व्यक्ति कितना ही सुयोग्य और पुरुषार्थी क्यों न हो ? व्यापक क्षेत्र में लोकप्रिय न बन पड़ेगा। मात्र अपने ही कर्तृत्व का सीमित प्रतिफल प्राप्त कर किसी प्रकार दिन गुजारता रहेगा। जबकि अनुदान का प्रतिदान असंख्य गुना होकर लौटता है। नाले अपना जल गंगा को सौंपते हैं फलतः वे नाले न रहकर गंगा के समान ही सम्मान पाते हैं। समर्पण के द्वारा अन्ततः उनका जल भी गंगा जल ही बन जाता है। स्वार्थ को परमार्थ स्तर तक विकसित कर लेना आत्मिक प्रगति की चरमसीमा है।

सेवा धर्म ठीक इसी प्रकार का है, जिसे अपनाने पर दूसरों को लाभ होना स्वाभाविक है। पर यह भी सुनिश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि उस दिशा में कदम बढ़ाने वाला स्वयं भी कम लाभान्वित हुए बिना नहीं रहता। जिन्होंने इस आधार पर लाभ उठाया वे तो उस परिस्थिति के बदल जाने पर वैसा लाभ पाने में देर कर देते हैं। पर सेवाभावी की उदारता उसके अन्तःकरण में स्थिर स्थान बनाकर रह जाती है और वैसे सुयोग्य के अवसर अनायास ही आये दिन उपलब्ध होते रहते हैं। फिर यह सत्प्रवृत्ति स्वभाव का एक अंग बन जाती है। पुण्य किसी को भी अधिक पवित्र प्रखर प्रतिभावान, यशस्वी और मनस्वी बना सकता है। इस निरंतर चलते रहने वाले लाभ को सामान्य नहीं असामान्य स्तर का ही मानना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह रिश्तेदारी न भूलें

शरीर के लिए भोजन-वस्त्र, विश्राम, चिकित्सा की व्यवस्था करना आवश्यक है। न करें तो उसकी दुर्बलता के कारण अपने काम रुक जायेंगे और अकाल मृत्यु होकर आत्महत्या का पाप लगेगा। इसलिए हर बुद्धिमान व्यक्ति अपनी शरीर व्यवस्था जुटाने का प्रयत्न करता है यह उचित भी है और आवश्यक भी। पर यदि कोई व्यक्ति सारा समय, मनोयोग और कर्त्तव्य शरीर रक्षा तक ही सीमित कर ले, उससे आगे की कुछ बात सोचने करने की आवश्यकता ही न समझे तो उसे नर-पशु कहेंगे। पशु को मनुष्य की तुलना में भर्त्सना केवल इसी कारण दी जाती है कि उसका चिन्तन और कर्त्तव्य मात्र शरीर की चर्चा तक सीमित रहता है। मानव शरीर का उपयोग विशाल क्षेत्र में करना पड़ता है, तभी उसकी सार्थकता होती है।

शरीर के बाद परिवार का नम्बर आता है। जिस पत्नी का हाथ अग्नि देव की साक्षी में पकड़ा गया है, उसे भरपूर स्नेह देना चाहिए, उसका समुचित सम्मान करना चाहिए और भरण-पोषण से लेकर ज्ञान वृद्धि एवं व्यक्तित्व के विकास की समस्त सुविधाएँ जुटानी चाहिए। एक विश्वस्त साथी की तरह उसे आगे बढ़ने और ऊँचा उठाने के लिए सब कुछ करना चाहिए। इसी प्रकार बच्चों के साथ हँसने-खेलने से लेकर उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, सुविधा का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही उन्हें सुसंस्कृत बनाने के कठोर कर्तव्य का भी विस्मरण नहीं करना चाहिए। माता-पिता, बहन-भाई, सभी कुटुम्बियों की भौतिक एवं आत्मिक आवश्यकताओं के लिए अपनी सामर्थ्य के अन्तर्गत जो कुछ भी हो उसको औचित्य की मर्यादा में पूरी तरह निबाहना चाहिए पारिवारिक कर्त्तव्यों में न तो उपेक्षा बरतनी चाहिए और न शिथिलता। उस उद्यान को हरा-भरा रखने के लिए एक कर्त्तव्यनिष्ठ माली की तरह हमें सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। माली को पेड़-पौधों की साज सँभाल रखनी चाहिए पर अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को नहीं भूल जाना चाहिए। हम शरीर की तरह परिवार की भी सुव्यवस्था रखें पर उतने भर से अपने कर्त्तव्य की इतिश्री न मान लें।

मनुष्य एक सामाजिक मछली है जिसे सब कुछ पानी रूपी समाज से ही मिला है। उसी में उसका जीवन है। पानी विषैला हो जाय तो मछली न सुखी रह सकेगी और न जीवित। समाज का वातावरण भ्रष्टता और दुष्टता से विषाक्त हो जाय तो किसी सज्जन व्यक्ति की भी शान्ति सुरक्षित नहीं रह सकती। अस्त-व्यस्त समाज में हर किसी की प्रगति रुकी पड़ी रहेगी और शान्ति सुरक्षित न रहेगी। यदि नागरिक अपना ध्यान सामाजिक उत्तरदायित्वों की ओर से हटालें तो फिर उसमें विकृतियाँ ही भरेंगी, जन-जीवन संकटग्रस्त ही होगा।

सामाजिक कर्त्तव्य भी इतने आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं जितने शारीरिक और पारिवारिक उत्तरदायित्व। हमें सीमित और संकीर्ण नहीं होना चाहिए। शरीर और परिवार का ध्यान रखते हुए उतनी ही छोटी परिधि में सीमित, अवरुद्ध नहीं होना चाहिए। आत्मविश्वास की दिशा में बढ़ते चलने का विशाल दृष्टिकोण रखकर ही उदात्त-जीवन जिया जा सकता है।

आत्मा और परमात्मा के साथ भी हमारा कुछ रिश्ता है। इस लक्ष्य को भुला न दिया जाना चाहिए। यह जीवन आत्मशोधन आत्म-निर्माण, आत्मविकास और आत्म-कल्याण के लिए मिला है। ईश्वर ने सुर दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया है। क्या उनके लिए हमें कुछ नहीं करना चाहिए ? शरीर और परिवार की ममता में इतना डूब जाना कि आत्मकल्याण और ईश्वरीय आदेश की ओर से सर्वथा मुँह मोड़ लिया जाय, यह सर्वथा अशोभनीय है।

हम विशाल दृष्टिकोण अपनायें। शरीर और परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाते हुए समाज के प्रति आत्मा के प्रति भी अपने उत्तरदायित्व समझें इसी में दूरदर्शिता है।

धरती पर स्वर्ग को प्राप्त कीजिये

संसार से अलग कहीं कोई स्वर्ग अथवा नरक है—इसकी खोज खबर करने से कहीं अच्छा है कि मनुष्य अपनी इस धरती पर विद्यमान स्वर्ग-नरक की खोज करें, पहचाने और उसे पाने अथवा उससे बचने का प्रयत्न करें।

अभौतिक स्वर्ग एवं नरक अप्रत्यक्ष हैं। उन्हें किसने कब देखा अथवा कब पाया, इसका दृष्टिगोचर प्रत्यक्ष प्रमाण इस समय हम साधारण मानवों के पास नहीं। हाँ, धरती के स्वर्ग-नरक हमारे सामने हैं। उनको इन चर्म चक्षुओं से देखा जा सकता है और उनको पाया अथवा बचा जा सकता है।

स्वर्ग एवं नरक का स्थूल अर्थ है सुख तथा दुःख। जो व्यक्ति अन्दर तथा बाहर से सुखी एवं प्रसन्न है वह स्वर्ग में स्थित है और जो अन्दर बाहर से दुःखी अथवा अप्रसन्न है वह नरक में स्थित है। मनुष्य इस भौतिक स्वर्ग-नरक को अपने भौतिक शरीर से ही पा सकता है, उसे देख सकता है और इन्द्रियों द्वारा उसके रस अथवा विष को अनुभूत कर सकता है।

स्वर्ग एवं नरक की उभय स्थितियों में से कोई भी व्यक्ति स्वर्गीय-स्थिति की ही कामना करेगा। ऐसा कौन मूर्ख अभागा होगा जो नरक की यातना में जलना चाहेगा। मनुष्य से लेकर कीट-पतंग तक जितने भी जीवधारी हैं, वे सब स्वर्ग अर्थात् सुख की स्थिति ही पाने की कोशिश किया करते हैं। उनमें से बहुत-से पाते भी हैं और अनेक असफल भी रहते हैं। स्वर्ग-नरक के प्रति प्राणियों की अनुभूति इतनी तीव्र है कि एक अबोध शिशु तक अपने हास-रुदन से यह सूचित कर देता है कि वह उस समय स्वर्ग की स्थिति में है अथवा नरक की यातना में। अनुभूति की यह तीव्रता और हास-रुदन के रूप में उसकी अभिव्यक्ति इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य ही क्यों प्राणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मात्र स्वर्ग की ही स्थिति चाहता है, नरक की नहीं। यही उसका चरम लक्ष्य भी है और यही उसका चरम विकास।

स्वर्ग क्या है ? सुख-शांति, आनन्द मंगल, कुशल क्षेम तथा पुण्य प्रकाश की परीस्थिति ही स्वर्ग है। इस स्थिति में मनुष्य का मन प्रसन्न, शरीर स्वस्थ तथा आत्मा सस्मित रहा करती है। वह दिन-दिन उन्नति करता हुआ, सफलताओं की वरमाला पहनता हुआ संसार में पुण्य प्रताप के बल पर कीर्तिमान होकर अमर हो जाता है। भौतिक शरीर में प्रसन्न परिस्थितियों के बीच निवास करना ही स्वर्गीय भोग है और अन्त में यहाँ—शरीर से निर्लिप्त होकर अमरत्व पा लेना स्वर्ग का अन्तिम एवं लक्ष्य फल है।

इस समुन्नत स्वर्गीय स्थिति तक पहुँचने के लिये सोपान-परम्परा की 'सदाशयता' का एक नाम दिया जा सकता है। सब कुछ सद् एवं शुभ ही करना स्वर्ग की पावन परिस्थिति की ओर अग्रसर होना है।

मनुष्य एक जीवन है और जीवन का ठीक-ठीक अर्थ है सुस्वास्थ्य। स्वास्थ्य स्वर्ग का प्रथम एवं मूलभूत सोपान है। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और स्वस्थ आत्मा का त्रिविष्टिप ही सच्चा स्वर्ग है। इसे प्राप्त कर लेने पर स्वर्ग की अन्य सारी सहायक परिस्थितियाँ स्वयं प्राप्त हो जाती हैं।

शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ट है तो मनुष्य धरती को चीरकर सुख का स्रोत निकाल लेगा। आवश्यकतानुसार दिन-रात परिश्रम कर सकता है। क्लान्ति, अशांति, अनिद्रा अथवा अजीर्ण उसके निकट नहीं आ सकते। निराशा एवं चिन्ता की परिस्थिति उसे विचलित नहीं कर सकती। स्वस्थ श्रम से उद्दीप्त उसकी क्षुधा साधारण अन्न को पचाकर उसे परम तृप्ति प्रदान करने में समर्थ रहती है, जिससे उसे संतोष होगा। लिप्सा एवं लोलुपता से रक्षा होगी। स्वस्थ शरीर ऋतुओं का आनन्द, प्रकृति का सौन्दर्य अनुभूत करा के स्वर्गीय सुख ही प्रदान करता है। जलवायु का परिवर्तन उस पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल पाता। स्वस्थ मनुष्य सदैव प्रसन्न एवं प्रमुदित रहा करता है। व्यग्रता विवशता उसके पास होकर नहीं गुजरती। मनुष्य की मूल निरोग अवस्था को स्वर्गीय स्थिति के सिवाय और क्या कहा जा सकता है ?

जो पुष्ट बलिष्ट है वह निर्द्वन्द्व ही रहा करता है। उसको न तो किसी शत्रु से भय और न किसी संघर्ष के प्रति चिन्ता ही रहा करती है। स्वस्थ मनुष्य का स्वभाव सहज रूप से मधुर एवं सौजन्यपूर्ण रहा करता है। अक्रोध के कारण वह बहुधा अजातशत्रु ही रहता है तथापि यदि कोई अकारण द्वेषी दुष्ट उससे बैर बाँधता भी है तो वह उससे हर प्रकार निपट लेने की सामर्थ्य रखता है। उसे शंका अथवा भय नहीं रहता अपने स्वस्थ एवं सशक्त शरीर के भरोसे वह सदा निर्भय रहा करता है। अभयता स्वर्ग की एक उत्कृष्ट अनुभूति है, स्वस्थ-व्यक्ति जिसका सहज अधिकारी होता है।

मन को ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्लेश तथा कामनाओं के कलुष से बचाइये। सदाचार विचार से उसे उज्जवल एवं उन्नत बनाइये। प्रसन्न वातावरण के बीच प्रसन्नचेता व्यक्तियों के साथ रहिये। क्रोध से इसकी रक्षा कीजिये और संकीर्णता की सीमा में तोड़कर स्वर्गीय क्षितिज में विस्तृत होने दीजिए। शुभ कल्पनाओं, सद्भावनाओं एवं शिव संकल्पों से इसे सम्पन्न बनाइये आपका मानस आपके लिये प्रत्यक्ष स्वर्ग ही बन जायेगा। पुण्य प्रयत्नों से प्रसन्न किया हुआ कुंठारहित मन स्वर्ग ही क्या बैकुंठ धाम की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है।

सत्संग, स्वाध्याय, चिन्तन तथा चारु-चरित्र से आत्मा को प्रबुद्ध कीजिए। उस पर पड़े कुसंस्कारों के आवरण को पुण्य कर्मों से जला डालिये। परोपकार एवं परमार्थ में आस्था रखिये। आस्तिकता के बल पर आत्मा की उपस्थिति पहिचानिए, उसे प्रत्यक्ष होने का अवसर दीजिये। आप की बुद्ध एवं प्रबुद्ध आत्मा अपने भीतर छिपे शत-शत स्वर्गों को आपके लिए प्रत्यक्ष एवं उपलक्ष्य बना देगी।

स्वास्थ्य के बाद स्वर्ग का दूसरा सोपान है परिवार। परिवार में प्रेम एवं प्यार का संचार कीजिए। श्रम एवं सहनशीलता के बल पर कलह क्लेश को पास मत आने दीजिए। अपने त्याग के उदाहरण से सदस्यों में त्याग भावना की प्रवृत्ति जगाइए, शिक्षा का प्रसार करिये। अपने कर्त्तव्य एवं अधिकार का समुचित उपयोग करिये, संतोष एवं मितव्ययता का गुण सीखिये और सिखाइए। हर छोटे बड़े के बीच सहमति एवं सम्मति रखिये। पत्नीव्रत धर्म के साथ गृहस्थ का हर उचित कर्त्तव्य निवाहिये, हर मूल आवश्कयता की पूर्ति करिये और प्रत्येक कृत्रिम आवश्यकता को दूर भगाइये, परिवार की सुख-सुविधा के लिये अबाध श्रम कीजिये, परिवार का पालन पवित्र कमाई से करिये। झूठ, प्रपंच तथा छल कपट की दूषित कमाई के अन्न से बच्चों के संस्कार न बिगाड़िये। इस प्रकार उत्पन्न किया हुआ पारिवारिक सुख पृथ्वी का जीता जागता स्वर्ग है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी भी है। समाज में रहता हुआ मनुष्य यदि उसकी उपेक्षा करके अपना स्वर्ग अलग से बसा लेना चाहे तो यह उसके लिये कठिन भी होगा और अनुचित भी। समाज के साथ सुख-सुविधाओं को मिल-बाँट कर भोग करने में एक व्यापक स्वर्ग का आनंद है। हमारे पास सुख-सुविधायें हों और हम उनको केवल अपने परिवार के सदस्यों के साथ ही उपभोग करते रहते हैं और अपने पड़ौस में बसे परिवार को आवश्यकता ग्रस्त देखते रहते हैं, तो हमारा वह स्वर्ग दूषित हो जायेगा। यथा साध्य समाज के साथ ही मिल बाँटकर उपभोग करने पर साधन एवं सुविधायें स्वर्गीय आनन्द देती हैं। हम स्वयं तो हँसते-विहँसते रहें और पास की आह-कसह पर ध्यान न दें अथवा ध्यान देकर उपेक्षा कर दें तो हमारा वैधानिक स्वर्ग बहुत दिन सुरक्षित नहीं रह सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम सब एक राष्ट्र भी हैं। हमारा एक राष्ट्रीय अस्तित्व भी है। हमारी एक मातृभूमि तथा देश भी है जिसके प्रति हमारे अनेक कर्त्तव्य निश्चित हैं। उन कर्त्तव्यों का पालन न करने का अर्थ है अपने शारीरिक, पारिवारिक तथा सामाजिक स्वर्ग-सुख को कलंकित करना, राष्ट्रीय कर्त्तव्यों में मातृभूमि की रक्षा में बलिदान, उसकी उन्नति के लिये त्याग तथा उसके गौरव के लिये सदाचार का पालन करना, स्वर्गीय सुख उपलब्ध करने का एक सात्विक उपाय है। राष्ट्र की सेवाओं, व्यवसानों का निर्माण कार्यक्रमों में ईमानदारी के साथ अपना अंश दान करना एक पवित्र साधन है, जिसका फल एक स्वर्गीय संतोष ही होगा।

राष्ट्र की सार्वभौमिकता की भावना भी स्वर्गीय सुख का एक अग्रिम सोपान है। मानवता को भूलकर केवल राष्ट्र तक सीमित हो जाना भी एक स्वार्थ-पूर्ण संकीर्णता ही है। मानवता का दुःख दूर करने को अंशदान करना, यथासम्भव उसकी सेवा करना, उसके लिए कष्ट उठाने की प्रवृत्ति का विकास करना, अपने वांछित एवं अक्षय स्वर्ग की ओर बढ़ना ही है। सम्पूर्ण मानवता में आत्मीयता की भावना रखना ही ईश्वर के प्रधान अंश मनुष्य के लिये शोभनीय हैं। व्यष्टि से समष्टि एवं समष्टि से बढ़कर सार्वभौमिक बनने वाले महापुरुष जीवन भर स्वर्गीय अनुभूति का आनंद लेकर युग-युग के लिये यशः शरीर से अमर हो जाते हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य से लेकर मानसिक एवं आत्मिक स्वास्थ्य का विकास करते हुये, समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य-पालन के सात सोपानों पर अधिकार कर लेने वाला सत्पुरुष निश्चय ही इस धरा धाम पर ही सच्चे तथा प्रत्यक्ष स्वर्ग का अधिकारी बनता है। धरती का स्वर्ग पाना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन नहीं है यदि वह वास्तव में दैवी जीवन के साथ स्वर्ग सुख का आकांक्षी है। संयम, सदाचार तथा सद्भावना रखने वाला सदाशयी व्यक्ति निश्चय ही इस प्रत्यक्ष एवं अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक को ही इस सम्पूर्ण स्वर्ग को पाने का प्रयत्न करना चाहिये नहीं तो कम से कम उसके एक दो सोपानों पर तो चढ़ ही जाना चाहिये।

समाज सेवा साधना स्तर की हो

समाज के पिछड़े और समस्याग्रस्त लोगों को आगे लाने तथा उनकी कठिनाइयों को सुलझाने का नाम समाज सेवा है। यह एक सेवा यज्ञ है और जितना ही यज्ञ भावना से किया जायगा—बदले में आत्म सन्तोष, आत्म तृप्ति और लोक श्रद्धा मिलेगी, जो सस्ती वाहवाही, झूठे सुख और थोथी श्रद्धा से हजार गुना कीमती है क्योंकि समाज सेवा एक आध्यात्मिक स्तर की साधना है और इसे इसी रूप में अपनाकर साधक इतना लाभान्वित हो सकता है जितना कि ईश्वर भजन तथा आत्मिक प्रगति के लिए की गयी तप तितिक्षा से अभिभूत होता है।

सभी मनुष्यों के विकास और उन्नति की गति एक समान नहीं है। कोई व्यक्ति वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए चाँद पर चढ़ा जाता है तो कोई व्यक्ति गाँव में सिन्दूर लगे देवी-देवताओं को पूजकर, उनसे रोग निवारण की प्रार्थना को ही परम पुरुषार्थ समझता है।

उदाहरण इसलिए दिया गया है कि आदमी के सोचने और समझने के तरीके में कितना अन्तर है ? इस अन्तर को जमीन आसमान का नहीं आकाश पाताल का अन्तर भी कहा जाय तो कम है। अर्थात् मनुष्य की विचारणायें ही कितनी आगे बढ़ीं और ऊँची उठीं तथा कितनी पिछड़ीं और नीचे गिरी हुई ही रह सकती हैं ? इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति में भी इतना ही बड़ा अन्तर होता है।

एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से हजारों रुपये अपने मौज-शौक में खर्च कर सकता है वहीं दूसरे व्यक्ति को अगली खुराक के लिए भी तपती हुई देह से जी तोड़ मेहनत करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। एक व्यक्ति अच्छी सोसायटी और शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से फॉरेन रिटर्न या महा पण्डित हो सकता है तो दूसरे व्यक्ति को अपने बेटे की नौकरी लग जाने का तार भी अधकचरे पढ़े-लिखे व्यक्ति से पढ़वाना पड़ता है। वह अधकचरी अंग्रेजी जानने वाला व्यक्ति अपनी गलती से नौकरी पर पहुँच जाने का समाचार मृत्यु की सूचना कहकर पढ़ता है और सुनने वाला अपने लाड़ले की भेजी हुई खुश खबरी को सुनकर हर्षोत्फुल्लित होने के स्थान पर शोकाकुल हो उठता है। शिक्षा के अभाव या अशिक्षा की व्यापकता का यह दूसरा छोर है।

इसी प्रकार रहन-सहन की दृष्टि से एक व्यक्ति ऊँचे तबके का है तो दूसरे को रहने के लिए झोंपड़ी और पहनने को साधारण कपड़े भी मुश्किल से नसीब होते हैं। असमानता या पिछड़ेपन को निम्नतर अवस्था और उन्नति का चरम शिखर हम मानव समाज में यत्र-तत्र बड़ी आसानी से देख सकते हैं। यों सबकी स्थिति, सामर्थ्य, परिवेश और परिस्थितियों को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति समान हो भी नहीं सकता। ईश्वर की इस सृष्टि में एक कंकड़ भी दूसरे कंकड़ सरीखा नहीं होता। फिर मनुष्य तो कर्मशील है उसमें एकरूपता कहाँ से हो सकती है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि आदमी आदमी में राई और पहाड़ की विषमता हो। एक छात्र मेहनती है, उसके अभिभावाक समर्थ हैं तो यह उचित है कि वह अच्छी से अच्छी और ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करे। परन्तु परिस्थितियाँ कम से कम ऐसी तो न हों कि कोई साधनहीन पिता चाहकर भी या आवश्यक समझने पर भी अपनी सन्तान को पढ़ा न सके।

राई और पहाड़ के इस अन्तर को पाटने के लिए, पिछड़ेपन को दूर करने के लिए और उन समस्याओं को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुलझाने के लिए जो कि जीते जी मनुष्य को नरक की यातना में झुलसा उठती है—करुणा की आवश्यकता है। करुणा अर्थात् जो अपने से पीछे हैं उन्हें आगे लाने की कसक। करुणा अर्थात् जो नीचे गिरे हुए हैं उन्हें ऊँचा उठाने की टीस और करुणा अर्थात् भ्रातृ भाव से छोटे भाइयों के साथ सहयोग कर उन्हें प्रगति की दौड़ में सम्मिलित करने के प्रयास।

यहाँ करुणा से आशय दया का नहीं है। दया का शाब्दिक अर्थ तो होता है कि आप अपने से कमजोर व्यक्ति की सहायता कर उस पर कृपा कर रहे हैं। करुणा में कृपा का भाव या ऐसा विचार जरा भी नहीं होता कि मैंने अमुक व्यक्ति की सहायता कर बहुत बड़ा काम कर दिया। करुणा एक कर्त्तव्य-निष्ठा से प्रेरित सहयोग और सेवा की भावना है। जिस प्रकार एक परिवार में कई सदस्य रहते हैं। किसी सदस्य के बीमार हो जाने पर दूसरे स्वस्थ सदस्य भाग-दौड़कर उसकी सेवा सुश्रुषा करते हैं। उसका इलाज करवाते हैं। दवाई देते हैं, डॉक्टर को बुलाते हैं। अर्थात् अपने बस का सब कुछ कर लेते हैं और जब वह स्वस्थ हो जाता है तो उससे किसी प्रकार के प्रत्युपकार नहीं भोगते और न ही इस बात का विज्ञापन करते हैं कि हमने अपने भाई की सेवा-सुश्रुषा बड़ी भाग-दौड़ और हाय-तौबा मचा कर की एवं न की यह माँग करते हैं कि इस सेवा के बदले में हमें पारितोषिक स्वरूप यह मिलना चाहिए अथवा वह मिलना चाहिए।

बिना प्रत्युपकार किये और बिना प्रतिदान माँगे किया गया सहयोग सेवा है। न कि हम अपने भाई की सेवा सुश्रुषा करेंगे तो बदले में वह हमारा गुलाम हो जायगा। समाज सेवा की साधना इसी तरह की भावना ही तो कही जा सकती है अथवा वह किसी व्यापार व्यवसाय से कम नहीं है। आध्यात्मिक विचारधारा का थोड़ा भी ज्ञान रखने वाले व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते हैं कि बिना कुछ माँगे प्रभु की की गयी आराधना ही सच्ची आराधना है। अन्यथा बेटा, नौकरी, लड़की की शादी, नया मकान और लॉटरी खुल जाने की अपेक्षा रखते हुए किया गया भजन पूजन, भजन पूजन नहीं हो सकता है। कुछ और भले ही हो। समाज सेवा को भी ईश्वर भक्ति के समकक्ष रखा जा सकता है और एक मायने में तो यह प्रचलित ईश्वर भक्ति के ढंग से ऊँचे स्तर की ही है। ईश्वर भक्ति के नाम पर प्रतिमा पूजन और कीर्तन-पूजन कर प्रतीक उपासना करने वाले भक्त तो कई मिल जायेंगे। पर नर में ही नारायणत्व का साक्षात् कर ईश्वर के व्यक्त स्वरूप की उपासना करने की निष्ठा ऊँचे स्तर की है और ऐसे लोग दुर्लभता से मिलते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता में कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।

अर्थात्—वासुदेव के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। यह मानकर संसार की सेवा करने वाले महात्मा दुर्लभ हैं।

सब प्राणियों में भगवद्भाव रखना कठिन हो सकता है क्योंकि यह अध्यात्म की उच्च कक्षा है। लेकिन हम इतना तो कर ही सकते हैं कि जिसकी सेवा करें उसके प्रति भ्रातृभाव या कर्त्तव्यनिष्ठा का दृष्टिकोण रखें। लेकिन इस युग में जिस प्रकार कई आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनर्थ किया गया है और आदर्शवादिता के नाम पर गलत रीति-नीति अपनाई गई है। वही अनर्थ समाजसेवा के साथ भी हुआ है।

आध्यात्मिक भाषा के कई शब्द तो रूढ़ अर्थों में आ जाने के कारण उनके साथ पैदा की गयी गन्दगी से ही अपनी गरिमा खो बैठे हैं। एक और शब्द अपनी गरिमा खो रहा है वह है—समाज सेवा का। कहा जा चुका है कि समाज सेवा एक पवित्र यज्ञ है। लेकिन जिस तरह हमने कई आध्यात्मिक आदर्शों के साथ अनाचार किया और अपने हीन स्तर के कारण उनके गौरव को घटाया उसी प्रकार समाज सेवा के साथ-साथ स्वयं को भी समाज सेवी कहलाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

इस सम्बन्ध में भी कुछ विवेचन की आवश्यकता है। जैसे कि समाज सेवा का स्पष्ट अर्थ अपने से पिछड़ों को आगे बढ़ाना है। वहाँ पिछड़ों को आगे बढ़ाने के ईमानदार प्रयासों के स्थान पर इस अर्थ को विज्ञापित करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ती जा रही है। लोग समाज सेवा करने के स्थान पर समाज सेवी कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए इस शब्द के साथ जुड़ी हुई शर्तों को पूरा करने की जगह महत्व इस बात को दिया जाता है कि कोई हमें साधना करते हुए देख रहा है अथवा नहीं। ध्यान इस पर नहीं रहता कि हमारी साधना कैसी चल रही है, वरन् इस बात का ध्यान रहता है कि लोग देखते हैं अथवा नहीं। यही कारण है कि लोग इस दिशा में नैष्ठिक प्रयास करने के स्थान पर अपने मुँह से अपनी बहादुरी और अपने पराक्रम का परिचय ज्यादा देते हैं।

अपने प्रयासों से किसी का भला हुआ है अथवा नहीं, या हमने इस तरह के प्रयास किये भी हैं अथवा नहीं यह बात गौण हो जाती है, और प्रधानता मिलती है अपने तमगे को चमकाने की। कई बार लोग बड़ी चालाकी से भी काम लेते हैं। जैसे दहेज प्रथा को सभी बुरा कहते और बताते हैं। समाज सेवी बनने का चस्का इस प्रथा को तो पानी पी-पीकर गाली देने के लिए प्रेरित करता है। अब यह आवश्यक है कि कहने के साथ-साथ किया भी जाय। इन बातों को लाभदायक अवसरों पर ही सुरक्षा कवच की तरह इस्तेमाल किया जाता है। जैसे बेटी की शादी हो रही है और लड़के वाले दहेज माँगते हैं तो उन्हें अपने सिद्धान्तों की दुहाई देकर या दहेज प्रथा से होने वाली हानियाँ बताकर बच निकलने की कोशिश चलती है। लेकिन जब लड़के का नम्बर आता है तो लोगों को यह कहते हुए शर्म नहीं आती कि—"हम तो दहेज प्रथा के एकदम खिलाफ हैं पर लड़के की माँ नहीं मान रही है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार गरीबों को गले लगाने तथा कष्ट-पीड़ितों की मदद करने की बात हर कोई करता है, लेकिन अपने आस-पास के ऐसे लोगों पर ध्यान देना आवश्यक लगता है जिन्हें वस्तुतः सहायता की आवश्यकता है।

इस शुभारम्भ के साथ की गयी समाज सेवा किसी भी आध्यात्मिक या योग साधना से कम नहीं है। कहते हैं कि सूरज जब अस्त हो जाता है तो दीपक अपनी सामर्थ्य को बिना परखे स्वयं जलकर प्रकाश उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि उसके प्रकाश से कितना क्षेत्र आलोकित हो रहा है। वह अपनी शक्ति के अनुसार अन्धकार से संघर्ष करता है और एक छोटे-से क्षेत्र में ही सही प्रकाश उत्पन्न करता है, समाज सेवा की निष्ठा भी इसी प्रकार की होनी चाहिए। अधिक व्यापक क्षेत्रों में जाने की बजाय अपने आस-पास के क्षेत्रों में ही देखा जाय तो अनेकों व्यक्ति ऐसे मिल जायेंगे जिन्हें हमारी आवश्यकता है।

सेवा का अवसर हर समय

हमें सेवा को जीवन के एक आवश्यक व्रत के रूप में ग्रहण करना चाहिये। सेवा की साधना कोई भी किसी भी परिस्थिति में कर सकता है। सेवा के लिये किसी बड़े धन की आवश्यकता नहीं है। संकीर्णता का त्याग कर उत्कट भावना के साथ जन-जीवन में घुल-मिल कर एक रूप हो जाना ही सेवा व्रत का पालन करने के लिए पर्याप्त होता है।

वे लोग गलती पर माने जायेंगे जो सेवा के लिए असाधारण आकांक्षा रखते हैं, ठीक विख्यात महापुरुषों की तरह सेवा के क्षेत्र में उतरना चाहते हैं, उन्हीं जैसी नकल करना चाहते हैं और यदि उनसे किसी महत् कार्य बनने का कोई अवसर नहीं आता तो कुछ भी नहीं करते, यों ही सोच-विचार और इच्छा-आकांक्षाओं में समय बिता देते हैं। इसकी यदि गहराई के साथ विवेचना की जाये तो उनकी वह इच्छा सेवाभाव से प्रेरित सिद्ध न होगी। उनकी वह आकांक्षा स्वार्थजन्य भाव ही होगा। उनके मन में महापुरुषों जैसी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा की साध होगी। सेवा की भावना नहीं।

सच्ची सेवा-भावना रखने वाला व्यक्ति बड़े-बड़े अवसरों की प्रतीक्षा नहीं करता और न वह विख्यात महापुरुषों की नकल करने की स्पृहा करता है। वह तो सेवा के लिये उपयुक्त किसी भी छोटे से छोटे अवसर का उपयोग करता रहता है। बड़े-बड़े अवसरों की प्रतीक्षा में बैठा रहना ठीक नहीं। इससे तो अच्छा यही है कि जब जहाँ पर जिस सेवा का छोटा-मोटा अवसर आ जाये उसका लाभ उठाया जाये।

मनुष्य की विस्तृत जीवन परिधि में सेवा के छोटे-छोटे सैकड़ों अवसर नित्य ही आया करते हैं। उनका पूरा-पूरा ध्यान रखकर सेवा-व्रत का निर्वाह करते रहना

बड़ी-बड़ी लोक-सेवाओं का प्रारम्भिक पाठ है। ऐसे कर्त्तव्यरत लोकसेवियों का प्रकाशन होते देर नहीं लगती और तब तो बड़ी-बड़ी सेवाओं के लिये उनकी आवश्यकता स्वतः पैदा हो जाती है। सच्चा और बड़ा लोकसेवक नहीं बन सकता है जो अपने सेवा-व्रत का प्रारम्भ छोटा और नीचे स्तर से करता है। बड़े-बड़े भार उठा लेने वाली अपनी शक्ति और अपना अभ्यास छोटे-छोटे बोझों को उठाकर ही करते हैं।

किसी भी सच्चे सेवा भावी के लिये संसार में सेवा के अवसरों की कमी नहीं है। सड़कों पर घूमने वाले भूखे-प्यासे, अन्धे-अपाहिजों, कोढ़ी-कंगालों की दशा हमारी सेवाओं के लिये निरन्तर संकेत करती रहती है। चिकित्सालयों के अभाव में किन्हीं झोपड़ियों और खण्डहरों में पड़े असहाय रोगियों की कराह लोक-सेवी के लिये एक आह्वान नहीं तो और क्या है ? बहुत बार इस व्यस्त संसार में दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। घायल अथवा चपेट-चोट में पड़ जाने वाले का कोई वहाँ पर नहीं होता। उस समय वह ही सदाशयी व्यक्ति उसका सगा है जो अपने हृदय में सेवा की भावना सँजोए रहता है। बहुत बार बच्चे खो जाते हैं और उसके माँ-बाप उसे खोजते-फिरते हैं। ऐसे अवसरों पर यदि रोता हुआ बच्चा मिल जाए तो उसे घर पहुँचा देना और यदि व्याकुल माता-पिता मिल जाएँ तो उनके साथ बच्चे की खोज में सहायता करना लोक-सेवा ही तो है। इस प्रकार के एक नहीं संसार में सैकड़ों सेवा के अवसर आते रहते हैं। उनका उपयोग कर कोई भी सेवा-व्रती पुण्य-परमार्थ का लाभ उठा सकता है इसके लिए न तो किसी बड़े धन की आवश्यकता है और न किसी बड़ी योजना की और न प्रतीक्षा की।

अनुभवी लोक-सेवक जानते हैं कि सेवा-धर्म का निर्वाह करने से उसका पुण्य फल केवल परलोक के लिए ही सुरक्षित नहीं होता रहता अपितु उसका तत्काल लाभ मिलता है। सेवा करते समय अन्तरात्मा में जिस शान्ति और सन्तोष का आविर्भाव होता है उसका आनन्द असाधारण होता है। उसकी तुलना में संसार के सारे सुख, भोग हेय ठहरते हैं। अन्तःकरण में सद्भावनाओं की प्रतिष्ठा और उनका विकास श्रेष्ठ कार्यों द्वारा ही होता है और वह श्रेष्ठ कार्य लोक-सेवा के सिवाय और कुछ नहीं माना गया है। दूसरों के लिये परमार्थ भाव के साथ, कुछ कष्ट उठाना, त्याग करना एक ऐसा माननीय श्रेय है जिससे सच्ची मनुष्यता की प्राप्ति होती है। पूर्ण और सफल मनुष्य बनने के लिये सेवा से बढ़कर कोई उपाय नहीं। परोपकार अथवा पर सेवा ही परमार्थ का सच्चा एवं सक्रिय स्वरूप है। योग, साधना, ध्यान धारणा की अपेक्षा पूर्ण और पारमार्थिक मनुष्य बनने के लिये सेवा सबसे सरल उपाय माना गया है।

मानव जीवन का यथार्थ लक्ष्य निरन्तर आत्म-विकास करते रहना ही है। इतना आत्म-विकास कि एक दिन वह व्यापक होकर परमात्म में मिलकर मोक्ष पद प्राप्त कर ले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु इसका सीधा और सरल मार्ग सेवाओं के बीच से ही होकर जाता है। आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन बिताने पर भी अन्ततः मनुष्य को जन-सेवा की प्रेरणा ही मिलती है। जिसका जितना आत्म-विकास होता जायेगा उसमें सेवा-भावना उतनी ही प्रबल होती जाएगी। जीवन लक्ष्य की मंजिल का मार्ग सेवा के बीच से ही होकर जाता है। सुकरात, ईसा, मोहम्मद, गाँधी, दयानन्द तथा पूर्वकालीन ऋषि-मुनियों का जीवन व्रत सेवा ही रहा है। एक दिन संसार छोड़कर तपश्चर्या करने के लिये जाने वाले बुद्ध देव को उसकी सिद्धि बाद में जन-सेवा में ही हुई और तभी उन्हें सच्ची शान्ति और सच्चा प्रकाश मिला जब वे एकान्त तप का त्याग कर लोकरंजन के कार्यों में लग गये।

आत्मा के कल्याण और मानव-समाज का एक अंग होने के नाते किसी को सेवा कार्यों से विमुख नहीं होना चाहिये। जन-जन को जन-सेवा को अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंग बना लेना चाहिये। यदि निश्चय दृढ़ और उसके पालन का महत्त्व हृदयगंम कर लिया गया है तो न इसमें व्यस्तता आड़े आ सकती है और न कोई अभाव। यदि निःस्वार्थ भाव से प्राणी मात्र के हित, उपकार की भावना से लोकमंगल का चिन्तन भी करते रहा जाये तो यह भी एक जन-सेवा ही होगी जो परमार्थ-पुण्य से रहित नहीं हो सकती। विश्व-कल्याण की भावना ही सेवा कार्यों की वास्तविकता और प्राण मानी गई है। विश्व-कल्याण से रहित बड़ी से बड़ी लोकसेवा भी निर्जीव और निस्सार ही मानी जायेगी। स्वार्थ का अंशमात्र भी बड़े से बड़े परमार्थ को व्यर्थ कर देती है।

मनोवांछित परिस्थितियाँ और सांसारिक भोग-विलास के साधन जुटा लेने पर इन्द्रिय-जन्य शारीरिक सुख ही मिल सकता है। इस नश्वर सुख के आवागमन से आनन्द प्राप्ति का मानवीय लक्ष्य पूरा नहीं होता। सच्चा सुख शारीरिक नहीं आत्मिक होता है—उसकी उपलब्धि परोपकार एवं जन-सेवा की भावना और तदनुसार कार्यों से ही होती है। नश्वर स्वार्थ सुख की अपेक्षा स्थायी एवं कल्याणकारी सुख—परमार्थ सुख को महत्व देना ही बुद्धिमानी मानी गई है। शारीरिक और आत्मिक सुख में अर्थ और परमार्थ का अन्तर है। दिन-रात शारीरिक सुख में क्यों न रहा जाये—तथापि—जब तक आत्मा को सन्तुष्ट न किया जाएगा, मनुष्य सम्पन्नता के बीच भी एक भयानक अभाव अनुभव करता रहेगा। जब सुख ही पाना है तब झूठे और मिथ्या सुख में क्यों बहला जाये, क्यों न सेवा द्वारा सच्चा और यथार्थ आत्मिक पाने का प्रयत्न किया जाये।

लोक सेवा की बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ और योजनाएँ बनाने से पहले कहीं अधिक उत्तम है कि हमारी जितनी परिधि है उसी में सेवा कार्यों का प्रारम्भ कर दिया जाए। जिस प्रकार एक माली संसार भर के उद्यानों की सेवा करने की योजना न बनाकर अपने जिम्मे के थोड़े-से पौधे की सेवा करता और उनके फलने-फूलने के लिये त्याग करता और कष्ट उठाता है, उसी प्रकार हर व्यक्ति को अपनी परिधि के उत्तरदायित्वों की ठीक प्रकार से पालन करते रहना चाहिये। यदि हम एक मनुष्य की, अपने पास-पड़ौस की सेवा ठीक प्रकार से कर सकें तो वह भी सम्पूर्ण विश्वात्मा की ही सेवा होगी।

संसार की सेवा का एक रूप अपनी सेवा भी माना गया है। अपनी सेवा से तात्पर्य अपनी शरीर मात्र की सेवा से नहीं है। न भोग-विलास और सुख-साधनों में लगा रहना ही अपनी सेवा है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार ही अपनी सच्ची सेवा है। अपने सुधार द्वारा हम जितना-जितना अपने को सुधारते चलेंगे, उतनी-उतनी ही समस्त संसार की सेवा होती चलेगी। हम सब इस विराट् विश्व की एक इकाई हैं। इसलिये अपनी सेवा भी संसार की सेवा ही कही जाएगी।

हम सेवा का महत्त्व भी समझें, स्वीकारें

परोपकार को सबसे बड़ा धर्म और सेवा को सबसे बड़ा पुण्य माना गया है। धर्म, नीति और प्रेरक साहित्य में एक मत से यह सत्य स्वीकार किया गया है। किन्तु देखने में यह आता है कि यह सब कहने-सुनने की बातें हैं, व्यावहारिक जीवन में सेवा को जितना स्थान मिलना चाहिए उसका दसमांश भी नहीं मिल रहा है वरन् सेवा कर्म करने वालों को हीन दृष्टि से देखना हमारी आदत सी बन चुकी है फिर क्यों कोई स्वेच्छा से सेवा धर्म अपनाकर समाज में सुख शान्ति का स्वर्गोपम वातावरण निर्माण करने की बात सोचेगा।

बचपन में स्वयं गीले में सोकर अपने शिशु का सूखे में सुलाने वाली, स्वयं कष्ट सहकर पति को सुख देने वाली, मात्र भोजन वस्त्र से सन्तुष्ट रहकर रात-दिन सेवा करने वाली नारी की सेवा का हम क्या महत्व समझ पाये ? उसकी सेवा ममता व सहनशीलता को उसकी कमजोरी मानकार अहंकार का पुतला नर उसे 'पाँवों की जूती' की संज्ञा तक दे बैठा। अब स्थिति बदल रही है फिर भी नारी की सेवा का पूरा-पूरा महत्व आँके जाने में लगती है बहुत देर है।

जिन लोगों ने समाज की सेवा का काम स्वीकार किया उन्हें अछूत और निम्न वर्ग का ठहराया गया। उनकी छाया तक से दूर भागने की बातें चल पड़ी। बचपन में माता बालक की टट्टी भी साफ करती है तो उसके मन में उसके पुत्र को अपना ही अंश मानने का आग्रह होता है। किन्तु एक मेहतर जो समाज की गंदगी को बिना किसी आग्रह के साफ करता है, उसकी सेवा का महत्व उससे भी अधिक है किन्तु माँ को माँ और उसे अछूत माना जाता है क्योंकि सेवा सरीखे मानवीय धर्म का महत्व हम आँक नहीं पाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाई, धोबी, कुम्हार, लुहार, मोची, जुलाहा, ढोली, कोरी आदि जाने कितने सेवा करने वाले वर्ग समाज में नीचे माने जाते रहे हैं और आज भी माने जाते हैं। उतने अंशों में न सही, कम अंशों में ही सही, कुछ कानून का जोर कहा जाय या जमाने की हवा किन्तु हमारे दिमाग में जो सड़न भरी हुई है वह आज भी सेवा का महत्त्व सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाता और समाज-सेवीवर्ग को नींचा ठहराता है।

पाँच-दस या पन्द्रह रुपया महीने में सारे परिवार का मैला उठाने वाले मेहतर के स्थान पर यदि कोई उच्च कहा जाने वाला व्यक्ति काम करे तो यह राशि कितनी हो सकती है ? उसका अन्तर अवश्य ही सेवा है। पेट की आग के लिए ईंधन जुटाने भर के लिए लिया जाने वाला यह धन उसके द्वारा की जाने वाली सेवा से कई गुना कम है। फिर उसे अछूत क्यों माना जाता है ?

नारी जाति और अछूत वर्ग की बात को यह मानकर भी नकार लिया जाय कि यह तो परम्परागत अविवेक का परिणाम है और उसकी जड़ें बड़ी गहरी हैं। यह स्वभाव का एक अंग बन चुका है। वस्तुतः हम सेवा का असम्मान नहीं करते, तो यह बात भी निराधार ही ठहरती है। पिछले दिनों एक समाज सर्वेक्षक ने सेवा की आधुनिक प्रतिमूर्ति कही जाने वाली नर्सों के जीवन का सर्वेक्षण किया गया, उससे जो तथ्य सामने आये हैं वे सभी इसी सत्य की पुष्टि करते हैं।

उक्त सर्वेक्षक ने उत्तर भारत के एक प्रसिद्ध नगर की सौ नर्सों से व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार किया उससे यह तथ्य उजागर हुए कि वे सेवा के इस कार्य को करते हुए लोगों से किस तरह परेशान की जाती है तथा समाज में सम्मानित नहीं मानी जाती। जबकि पाश्चात्य देशों में नर्स का कार्य करने वाली महिलाओं को सामान्य सामाजिक व्यवहार में सम्मान सहायता, सहयोग तथा आदर दिया जाता है। इसका अर्थ यही है कि अभी हम सेवा का महत्त्व तथा सेवा करने वालों का सम्मान करना नहीं सीख पाये हैं।

उजले वस्त्रों, मुस्कुराते चेहरों और सेवा के सदैव तत्पर रहने वाले उनके हाथों के उजले पक्ष के पीछे एक भयानक अँधेरा, वेदना, चुप्पी और असन्तोष छिपा रहता है जो उन्हें इस जीवन को अपनाने के कारण मिला है।

इन सौ महिला नर्सों में तिरसठ ने विवशता से यह कार्य अपनाया है अधिकांश ने प्रायः आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए इस काम को अपनाया है। इसके पीछे जो कारण है वह भी समाज में सेवा करने वाले लोगों को असम्मान मिलना ही है। जहाँ स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधते हों ऐसे कार्य को भला किसी को विवशता से क्यों अपनाना पड़े ? चौदह महिलाएँ सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं का वर्चस्व स्थापित करने की भावना से और केवल ६ महिलाएँ विशुद्ध सेवा भाव से इस क्षेत्र में आयी हैं किन्तु वे भी अब उस सेवा को करके देखने और अपने साथ होने वाली प्रतिक्रियाओं, व्यवहारों को देखकर यह अनुभव करने लगी हैं कि उन्होंने भूल से साँप के बिल में हाथ दे दिया है।

यह सब बातें एकाकार होकर एक ही तथ्य को उजागर करती हैं कि सेवा का महत्त्व और सेवा को धर्म मानकर अपनाने वाले को यहाँ समझने वाले लगभग नहीं के बराबर हैं। यह बहुत ही चिन्ता का विषय है क्योंकि जिस समाज में सेवा की भावना लुप्त होती जाती है उस समाज में मनुष्यता भी मरती जाती है।

सेवा भावना का सम्मान हमारा समाज कर नहीं पाया, सेवा करने वाले वर्गों को व्यक्तियों को अछूत व असम्मानित बना दिया गया। ऐसे अनेकानेक उदाहरण हमारे भारतीय समाज में देखने को मिलते हैं, जहाँ बेचारी सेवा को वह सम्मान नहीं मिल पाता जो अधिकार सम्पन्नता, बड़प्पन को मिलता है।

व्यक्ति को आँकने का जो मानदण्ड हम लोगों ने बना रखा है, वह ठीक जंगली मनुष्यों जैसा ही कहा जायेगा। अधिकार जिसके हाथ में है, उसका तो हम सम्मान करते हैं, जिनके पास अधिकार का नहीं तो सम्पन्नता का—धन का बल है उन्हें हम आदर देते हैं किन्तु जो सेवा करता है उसे हम सम्मान नहीं देते यह हमारे अविवेक का ही परिचायक है।

इस प्रवृत्ति का कुफल भी हमें कुछ कम नहीं भोगना पड़ रहा है। मानवीय दायित्वों की अपेक्षा हो रही है। मनुष्य सहज मानवीय गुणों पर असुरता का आधिपत्य होता जा रहा है हर दिशा हर क्षेत्र में। उच्च अधिकारिक पद पाने के लिए होड़ लगती है, इस प्रतिद्वन्द्विता में जीतने के लिए प्राणपण से प्रयास किया जाता है। राष्ट्रोन्नति के नाम पर बस राजनीति और चुनाव दंगल में जीतने की दावेदारी के लिए जो लोग जमीन आसमान एक करते हैं किन्तु देश की समाज की सेवा के लिए आगे आना नहीं चाहते।

सेवा मनुष्य को व्यक्तिवाद से ऊपर उठाकर समाज-परायण बनाती है। यदि सेवा के महत्त्व को इसी प्रकार नकारा जाता रहा गया तो समाज का काम तो रुक ही जायगा व्यक्ति का जीवन भी नीरस हो जायगा। हर व्यक्ति यदि अपने स्वार्थ अपनी एषणाओं में ही लगा रह जाय और समाज की सेवा के लिए उन पर अंकुश लगाकर अपनी आन्तरिक भूख को तृप्त नहीं करे तो उसे आत्मसन्तोष भी नहीं मिल सकता।

सेवा करने वाले को उसके बदले में जो आत्म-सन्तोष मिलता है वह अपने सेवा कार्य के दौरान आने वाली कष्ट कठिनाइयों को इसके सहारे झेल जाता है। किन्तु यदि उसे सम्मान नहीं मिले तो पीछे वालों को उस पथ पर चलने की प्रेरणा उतनी प्रबल रूप से नहीं मिल पाती जितनी मिलनी आवश्यक होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल पेट की आग ही वह कारण नहीं होती कि व्यक्ति दूसरों की सेवा करने का पेशा अपनाये। उसके पीछे सेवा की भावना अवश्य होती है। उस भावना को उसे सम्मान देकर जितना स्थायी बनाया जा सकता है वह उतना ही स्थायी बनती है। किन्तु यदि उसकी उस भावना की उपेक्षा करके केवल उसे मिलने वाले वेतन के बदल में किया जाने वाला श्रम भर समझा जाय तो यह सोचने की भूल ही कही जायेगी।

आवश्यकता इस बात की है कि हम लोग सेवा का महत्त्व समझें। जो लोग सेवा करते हैं उनका सम्मान करना सीखें। उन्हें उनसे अधिक सम्मान देने की विशाल हृदयता का परिचय न भी दे सकें तो कम से कम उन लोगों से कम सम्मान तो न दें जिनके पास अधिकार का बल या सम्पन्न की शक्ति है।

जीवन को सेवामय बनाइए

परमात्मा ने मनुष्य को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाया है और उसे वह बुद्धिबल प्रदान किया है जो संसार के अनेक साधनों को उसके उपभोग के लिए प्रस्तुत करके भगवान ने जहाँ उसके ऊपर असाधारण अनुग्रह किया है, वहीं उसके ऊपर उत्तरदायित्व भी असाधारण ही डाला है। अन्य जीव-जन्तुओं को सीमित बुद्धिबल प्राप्त है उससे वे केवल अपना जीवनयापन ही कर सकते हैं, इतने कम साधन दिये हैं तो उनके उत्तरदायित्व भी अपने शरीर तक सीमित रखे हैं। पर मनुष्य के बारे में ऐसी बात नहीं है, उसे जो बुद्धिबल उपलब्ध है वह समस्त सृष्टि के स्वस्थ संचालन के निमित्त संचित कोष ही समझा जा सकता है।

किसी बड़े व्यापार का कारोबार बहुत विस्तृत क्षेत्र में फैला होता है पर उसका हिसाब कार्यालय एक ही होता है। संचित कोष या आते रहने वाला धन एक ही जमा होता है। उसकी देखभाल गिनती शुमार देन-लेन की व्यवस्था करने के लिए एक ही अधिकारी नियुक्त होता है। इस कोष अधिकारी के पास धन जमा तो है पर है वह उस सारे कारोबार का संचालन करने के लिये। यदि वह कोषाध्यक्ष उस धन को अपना माने और अपने ही लाभ के लिए उपयोग करने लगे तो यह उसकी बेईमानी मानी जायगी और इसके लिए न केवल उसका पद छीन लिया जायगा वरन् राजदण्ड भी मिलेगा।

मनुष्य के पास जो अपार बुद्धिबल है वह निश्चित रूप से सारी सृष्टि के जीवों की एक सम्मिलित शक्ति है, मनुष्य को उसका संरक्षक अफसर या कोषाध्यक्ष बनाया गया है। परमात्मा अन्धा भी नहीं है, मनुष्य के साथ उसका कुछ पक्षपात भी नहीं है, सुव्यवस्था और सुरक्षा दृष्टि से उसने मनुष्य को उपयुक्त अधिकारी मानकर अमानत के तौर पर उसे यह बुद्धिबल उसी प्रकार दिया है जैसे सार्वजनिक सम्पत्ति के ट्रस्टी को उसका संरक्षक नियुक्त करके यह आशा की जाती है कि वह उस धन को किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं वरन् जनता के हित में ही लगायेगा। मनुष्य ऐसा ही ट्रस्टी है उसे जो बुद्धिबल उपलब्ध है उसे एक सार्वजनिक ट्रस्ट कहा जा सकता है उसका उपयोग जनहित में किया जाय यही उसका कर्तव्य है। अन्य जीव नाबालिग के समान हैं। छोटे बच्चों की सम्पत्ति के संरक्षक को कानून की भाषा में 'बली' कहते हैं। समस्त विश्व के प्राणियों की सुख-शान्ति को सुरक्षित रखना उनकी उन्नति और समृद्धि में अभिवृद्धि करना जिस ज्ञान का उद्देश्य है, उसे यदि कोई व्यक्ति अपने या अपने परिवार के लाभ में ही खर्च करता है तो वह अमानत में खयानत करने के अपराधी की भाँति दण्ड का पात्र माना जाता है। अपने पद का दुरुपयोग करने वाले ऐसे लोगों को ईश्वरीय दण्ड विधान में कड़ी व्यवस्था मौजूद है। वे अगले जन्मों में अज्ञानान्धकार की योनियों में चले जाते हैं और फिर चिरकाल तक उसी स्थिति में अपने पूर्व वैभव की याद में तरसते हुए दुःख पाते रहते हैं। वृक्ष वनस्पति, कृमि, कीट, पतंग। सरीसृप, पशु, पक्षी आदि की निकृष्ट योनियों में ऐसे ही लोग दुःख भोगते रहते हैं।

मनुष्य की आवश्यकताएँ बड़ी सीमित हैं, शरीर धारण किये रहने के लिए, जीवन-निर्वाह के लिए उसे बहुत ही स्वल्प मात्रा में भोजन, वस्त्र आदि की थोड़ी-सी चीजें चाहिए, इतना उपार्जन वह थोड़े-से प्रयत्न और परिश्रम से उपार्जित कर सकता है। परिवार का पालन और बच्चों का शिक्षण आदि थोड़ा जटिल अवश्य हो गया है, उसके लिए शक्ति और समय का खर्च भी कुछ अधिक होने लगा है फिर भी आवश्यक अजीविका उपार्जन करने के अतिरिक्त अन्य कामों के लिए मनुष्य का समय बचता है, बच सकता है। इस बचे हुए समय को लोग आलस्य और प्रसाद में विलासिता और तफरीह में गुजारते हैं। तृष्णा और लालच की महत्वाकांक्षाओं में उलझे रहते हैं और कुछ अधिक भोग भोगने कुछ और अधिक संग्रह करने के लालच में समय गँवाते रहते हैं। आज अधिकांश मनुष्य का समय इसी प्रकार व्यतीत होता है। अफसर अपनी सरकारी ड्यूटी की उपेक्षा करके केवल अपने आपकी ही साज-सँभाल में लगा रहे तो उसे कर्तव्यविमुखता का उत्तरदायी मानकर उच्च अधिकारी निश्चय ही दण्डित और कलंकित करेंगे। मनुष्य एक उच्च अफसर है उसे ईश्वर ने बहुत कुछ दिया है, उसे इतना उत्तरदायित्व प्रदान किया गया है कि वह अपनी निज की चिन्ता तक ही सीमित न रहकर उनकी भी चिन्ता करें जो उससे पिछड़े हुये हैं, दुर्बल हैं, नीचे हैं, गिरे हुये हैं। यदि उन्हें उठाने का उसने कुछ प्रयत्न नहीं किया, सेवा को परोपकार को अपने जीवन में कोई स्थान नहीं दिया तो यही मानना पड़ेगा कि वह अमानत में खयानत का, उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने का अपराधी है ऐसे लोग ईश्वर को कभी प्रिय नहीं हो सकते। भजन-पूजन करके भी वे उसके कृपा पात्र नहीं बन सकते "अभी तो चैन से कटती है—आकवत की खुदा जाने" की जिनकी नीति है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे अपने बहुमूल्य मानव जीवन को चाहे जैसा दुरुपयोग करने में स्वतन्त्र हैं। पर कोई भी विचारशील व्यक्ति इस प्रकार की गतिविधि को नहीं अपना सकता। वह केवल लोकरंजन तक ही सीमित नहीं वरन् परलोक की भी चिन्ता करता है। आज की तरह वह कल के बारे में भी सोचता है और स्वास्थ की ही भाँति परमार्थ को भी एक परम पवित्र कर्तव्य मानता है। हमें ऐसे ही विवेकशील एवं दूरदर्शी लोगों में अपना गणना करनी चाहिये।

यह सुर दुर्लभ मानव जीवन शौक-मौज की, वासना तृष्णा की कीचड़ में गन्दे कीड़ों की तरह बिल-बिलाते हुये व्यतीत करने के लिये प्राप्त नहीं हुआ है। काल सिर पर नाच रहा है। अभी सांस चल रही है—कौन जाने कल चले न चले ? इस अनिश्चित जीवन में जो थोड़े क्षण अभी हमें उपलब्ध हैं, उनका उपयोग उन्हीं उत्तरदायित्वों की पूर्ति में करना चाहिये जिनके लिये हमें यह अलभ्य अवसर प्रदान किया गया है। भगवान का नित्य भजन करने का उद्देश्य यही है कि हम उसके सौंपे हुये उत्तरदायित्वों को न, भूलें और न उनकी उपेक्षा करें। उसके दण्ड से डरें और यह जानें कि वह केवल उन्हीं से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होता है जो ठीक प्रकार अपना कर्तव्य पालन करते हैं। भजन का यही उद्देश्य है। जो लोग ऐसा सोचते हैं कि कर्तव्यों की मनमानी उपेक्षा करते रहें और केवल भजन से ही ईश्वर को प्रसन्न कर लेंगे तो वे भारी भूल करते हैं। जब इस संसार के राजा तक इतनी बुद्धि रखते हैं कि चापलूस प्रशंसकों की अपेक्षा कर्तव्यपरायण सेनापतियों का मूल्य अधिक है तो सृष्टि का स्वामी भी केवल स्तुति पाठ करने वालों की अपेक्षा उसके आदेशों को पालन करने में प्रसन्नता अनुभव करता है।

जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करने की दृष्टि से, अन्तरात्मा के सन्तोष की दृष्टि से, लोक-कल्याण की दृष्टि से, ईश्वर को प्रसन्न करने की दृष्टि से मानवता के आदर्शों को उज्जवल रखने की दृष्टि से, अपना नाम सत्पुरुषों की चिरस्मरणीय श्रेणी में अंकित कराने की दृष्टि से, भारतीय धर्म और संस्कृति का मान बढ़ाने की दृष्टि से—सेवा मार्ग ही एकमात्र वह मार्ग है जिस पर चलना हमारे के लिए सब प्रकार उचित एवं आवश्यक है। जब कि नदी, सरोवर, समुद्र, बादल, वृक्ष, पशु घास पात, सूर्य, चन्द्र सभी सेवा धर्म को अपनाकर अपना कर्तव्य पालन कर रहे हैं तो हम मनुष्य होकर भी उस मंगलमय पथ के पथिक बनकर अपने जीवन को धन्य क्यों न बनावें ? जिन्होंने मानव जन्म को सार्थक बनाने के इस मर्म को समझा उन्हीं का नाम इतिहास के अमर पृष्ठों पर सदा के लिये अंकित हुआ है।

अपने दैनिक जीवन में अन्य आवश्यक कार्यों की ही भाँति सेवा कार्यों के लिये भी कुछ समय निर्धारित रखें। हमारी बुद्धि में सेवावृत्ति रहे, हर कार्य को ईमानदारी और लोक-कल्याण की दृष्टि से करें, अपने विचार और व्यवहार में सेवा तत्व की स्थापना करें और दूसरों को सुख पहुँचाने, उनके दुःखों में हाथ बँटाने एवं पिछड़े हुओं को आगे बढ़ाने के लिए यथा अवसर मन, वचन कर्म से जो कुछ बन पड़े वह करते रहें। साथ ही सेवा कार्यों के लिये कुछ नियत समय भी उसी प्रकार रहना चाहिए जिस प्रकार ईश्वर उपासना के लिये कुछ निश्चित समय निर्धारित रखते हैं। यों हर घड़ी ईश्वर का ध्यान रखना, उसके दण्ड से डरना उचित है पर उपासना का एक निर्धारित समय भी होना चाहिए। इसी प्रकार सेवा बुद्धि तो हमारी रहे ही पर उसके लिए कुछ नियत समय भी हमें निर्धारित रखना चाहिए। प्रतिदिन कुछ घन्टे इसके लिये रखे जा सकते हैं। सप्ताह में छुट्टी का एक दिन इसके लिए दान किया जा सकता है। प्रतिज्ञाबद्ध होकर, नियम लेकर, व्रत धारण कर जो समय या कार्य करते रहने का संकल्प लिया जाता है, वही अन्त तक निभता है। अन्यथा छोटे-छोटे कारण आ जाने पर मन का आलस्य उस पुण्य प्रवृत्ति को छुड़ा देता है, एक बार श्रृंखला टूटी कि आलस्य और उपेक्षा की बन पड़ती है। जुआ, चोरी, नशा, व्यभिचार आदि की बुरी आदतें तो नहीं छूटती पर सत्कर्मों का शुभ संकल्प आसानी से टूट और छूट जाता है। आसुरी शक्तियों की प्रबलता और देव तत्वों की कोमलता का अनुभव ऐसे अवसरों पर आसानी से किया जा सकता है। हमें कुछ समय निश्चित रूप से सेवाकार्य के लिए दान देना चाहिए और उसे बात के धनी, प्रणवीर सत्पुरुषों की तरह आजीवन निबाहते रहने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। कभी कोई व्यवधान आ पड़े तो भी उसे पुनः प्रारम्भ कर देना चाहिए।

अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार स्थानीय आवश्यकता और परिस्थिति को देखते हुए सेवा कार्यों के लिए हर कोई छोटा-मोटा कार्यक्रम आसानी से बना सकता है। मोटी दृष्टि से अब तक किन्हीं दूसरों को कुछ देना दान पुण्य माना जाता है। इस मोटी दृष्टि से लाभ उठाकर अनेकों हरामखोर संडे-मुस्टंडे धर्म के नाम पर चरते हैं और मुफ्तखोरी के कारण उत्पन्न होने वाले विकारों के कारण जन-समाज में अनेकों बुराइयाँ फैलाते हैं। भोले लोग समझते हैं हमने धर्म-पुण्य कर दिया, पर कुपात्र को दिया दान-दाता को नरक में ले जाता है। शास्त्र मर्यादा के अनुसार इससे लाभ किसी का कुछ नहीं, हानि अपनी भी है और दूसरों की भी। इसलिए सेवा करने में पात्र-कुपात्र की आवश्यकता-अनावश्यकता का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। जो सेवा का अधिकारी हो उसी की सेवा की जाय। माँगने वाले की इच्छा के आधार पर नहीं उसकी वास्तविक आवश्यकता के आधार पर ही उसकी सहायता की जानी चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोकसेवा आत्म-विज्ञापन का आडम्बर न बनने पाये

समाज के पिछड़े और समस्याग्रस्त लोगों को आगे लाने और उनकी कठिनाइयों को सुलझाने का नाम समाज सेवा है। यह एक सेवा यज्ञ है और जितना ही यज्ञ भावना से किया जायगा बदले में आत्म-सन्तोष, आत्म-तृप्ति और लोक श्रद्धा मिलेगी, जो सस्ती वाहवाही, झूठे सुख और थोथी श्रद्धा से हजार गुना कीमती है।

सभी मनुष्यों के विकास और उन्नति की गति एक समान नहीं है। कोई व्यक्ति वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए चाँद पर चला जाता है तो कोई व्यक्ति गाँव के सिन्दूर लगे देवी-देवताओं को पूजकर, उनसे रोग निवारण की प्रार्थना को परम पुरुषार्थ समझता है। एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से हजारों रुपये अपने शौक-मौज में खर्च कर सकता है वहीं दूसरे व्यक्ति को अगली खुराक के लिए तपती हुई देह से जी तोड़ मेहनत करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। एक व्यक्ति अच्छी सोसायटी और शिक्षा-दीक्षा की दृष्टि से फॉरेन रिटर्न या महापण्डित हो सकता है तो दूसरे व्यक्ति को अपने बेटे की नौकरी लग जाने का तार भी अधकचरे पढ़े-लिखे व्यक्ति से पढ़वाना पड़ता है। अधकचरी अंग्रेजी जानने वाला एक व्यक्ति अपनी गलती से नौकरी पर पहुँच जाने का समाचार मृत्यु की सूचना कहकर पढ़ता है और सुनने वाला अपने लाड़ले की भेजी हुई खुशखबरी को सुनकर हर्षोत्फुल्लित होने के स्थान पर शोकाकुल हो उठता है। शिक्षा के अभाव या अशिक्षा की व्यापकता का यह दूसरा छोर है।

इसी प्रकार रहन-सहन की दृष्टि से एक व्यक्ति ऊँचे तबके का है तो दूसरे को रहने के लिए झोंपड़ी और पहनने को साधारण कपड़े भी मुश्किल से मिल पाते हैं। असमानता या पिछड़ेपन की निम्नतर अवस्था और उन्नति का चरम शिखर हम मानव समाज में यत्र-तत्र बड़ी आसानी से देख सकते हैं। यों सबकी स्थिति, सामर्थ्य, परिवेश और परिस्थितियों को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति समान हो भी नहीं सकता। ईश्वर की सृष्टि में एक कंकड़ भी दूसरे कंकड़ सरीखा नहीं होता। फिर मनुष्य तो कर्मशील है, उसमें एकरूपता कहाँ से हो सकती है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि आदमी-आदमी में राई पहाड़ की विषमता हो। एक छात्र मेहनती है, उसके अभिभावक समर्थ हैं, तो यह उचित है कि वह छात्र अच्छी से अच्छी और ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करे। परन्तु परिस्थितियाँ कम से कम ऐसी तो न हों कि कोई साधनहीन पिता चाहकर भी या आवश्यक समझने पर भी अपनी सुयोग्य सन्तान को पढ़ा न सके।

राई और पहाड़ के इस अन्तर को पाटने के लिए पिछड़ेपन को दूर करने के लिए और उन समस्याओं को सुलझाने के लिए जो कि जीते जी मनुष्य को नरक की यातना में झुलस उठती हैं—करुणा की आवश्यकता है। करुणा अर्थात् जो अपने से पीछे है उन्हें आगे लाने की कसक। अर्थात् भ्रातृ भाव से छोटे भाइयों के साथ सहयोग कर उन्हें प्रगति की दौड़ में सम्मिलित करने के प्रयास।

यहाँ करुणा से आशय दया का नहीं है। दया का शाब्दिक अर्थ तो होता है कि आप अपने से कमजोर व्यक्ति की सहायता कर उस पर कृपा कर रहे हैं। करुणा में कृपा का भाव या ऐसा विचार जरा भी नहीं होता कि मैंने अमुक व्यक्ति की सहायता कर बहुत बड़ा काम कर दिया। करुणा एक कर्तव्यनिष्ठा से प्रेरित सहयोग और सेवा की भावना है। जिस प्रकार एक परिवार में कई सदस्य रहते हैं। किसी सदस्य के बीमार हो जाने पर दूसरे स्वस्थ सदस्य भाग-दौड़कर उसकी सेवा सुश्रूषा करते हैं। उसका इलाज करवाते हैं। दवाई देते हैं, डॉक्टर को बुलाते हैं। अर्थात् अपने बस का सब कुछ कर लेते हैं और जब वह स्वस्थ हो जाता है तो उससे किसी प्रकार के प्रत्युपकार नहीं माँगते, न ही इस बात का विज्ञापन करते हैं कि हमने अपने भाई की सेवा-सुश्रूषा बड़ी भाग-दौड़ और हायतौबा मचाकर की। न ही वे माँग करते हैं कि इस सेवा के बदले में हमें पारितोषिक स्वरूप यह मिलना चाहिए अथवा वह मिलना चाहिए।

बिना प्रत्युपकार किए और बिना प्रतिदान माँगे किया गया सहयोग सेवा है। न कि हम अपने भाई की सेवा सुश्रूषा करेंगे तो बदले में वह हमारा गुलाम हो जायगा। समाज सेवा की साधना इसी स्तर की भावना ही तो कही जा सकती है अन्यथा वह किसी व्यापार व्यवसाय से कम नहीं है। आध्यात्मिक विचारधारा का थोड़ा भी ज्ञान रखने वाले व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते हैं कि बिना कुछ माँगे प्रभु की की गयी आराधना ही सच्ची आराधना है। अन्यथा बेटा, नौकरी, लड़की की शादी, नया मकान और लॉटरी खुल जाने की अपेक्षा रखते हुए किया गया भजन-पूजन, भजन नहीं हो सकता है। कुछ और भले ही हो। समाज सेवा को भी ईश्वर भक्ति के समकक्ष रखा जा सकता है और एक मायने में तो यह प्रचलित ईश्वर भक्ति के ढंग से ऊँचे स्तर की ही है। ईश्वर भक्ति के नाम पर प्रतिमा-पूजन कर प्रतीक उपासना करने वाले भक्त तो कई मिल जायेंगे पर नर में ही नारायणत्व का साक्षात्कार करके ईश्वर के व्यक्त स्वरूप की उपासना करने की निष्ठा ऊँचे स्तर की है और ऐसे दुर्लभता से मिलते हैं।

सब प्राणियों में भगवद्भाव रखना कठिन हो सकता है क्योंकि यह अध्यात्म की उच्च कक्षा है। लेकिन हम इतना तो कर ही सकते हैं कि जिसकी भी सेवा करें उसके प्रति भाव या कर्तव्यनिष्ठा का दृष्टिकोण रखें। लेकिन इस युग में जिस प्रकार कई आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अनर्थ किया गया है और आदर्शवादिता के नाम पर गलत रीति-नीति अपनाई गयी है। वही अनर्थ समाज सेवा के साथ भी हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा चुका है कि समाज सेवा एक पवित्र यज्ञ है। लेकिन जिस तरह हमने कई आध्यात्मिक आदर्शों के साथ अनाचार किया और अपने हीन स्तर के कारण उनके गौरव को घटाया। उसी प्रकार समाज सेवा के साथ-साथ स्वयं को भी समाजसेवी कहलाने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

इस सम्बन्ध में भी कुछ विवेचन की आवश्यकता है। जैसे कि समाज सेवा का स्पष्ट अर्थ अपने से पिछड़ों को आगे बढ़ाना है। वहाँ पिछड़ों को आगे बढ़ाने के ईमानदार प्रयासों के स्थान पर इस अर्थ को विज्ञापित करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ती जा रही है। लोग समाज सेवा करने के स्थान पर समाज सेवी कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए इस शब्द के साथ जुड़ी हुई शर्तों को पूरा करने की जगह महत्व इस बात को दिया जाता है कि कोई हमें साधना करते हुए देख रहा है अथवा नहीं। ध्यान इस पर नहीं रहता कि हमारी साधना कैसी चल रही है वरन् इस बात का ध्यान रहता है कि लोग देखते हैं अथवा नहीं। यही कारण है कि लोग इस दिशा में नैष्ठिक प्रयास करने के स्थान पर अपने मुँह से अपनी बहादुरी और अपने पराक्रम का परिचय ज्यादा देते हैं।

अपने प्रयासों से किसी का भला हुआ है अथवा नहीं, या हमने इस तरह के प्रयास के किए भी हैं अथवा नहीं यह बात गौण हो जाती है और प्रधानता मिलती है अपने तमगे को चमकाने की।

सच्चाई तो यह है कि निष्ठावान समाज सेवक आत्म प्रचार और अपनी सेवाओं का ढोल पीटने के स्थान पर मूक भाव से ही अहर्निश जनसेवा में लगे रहते हैं। चाहिए भी यही कि इस विशुद्ध साधना को पाखण्ड के रूप में नहीं साधना के रूप में ही अपनाया जाय। इसलिए शुरूआत अपने से ही करनी चाहिए। इसका अर्थ है कि जिन आदर्शों की स्थापना हम समाज में होते हुए देखना चाहते हैं उन आदर्शों को पहले हम अपने में उतारें और कथनी से नहीं करनी के उदाहरण से प्रस्तुत करें।

लोकमानस को कैसे बदला जाय ?

मनस्वी व्यक्ति समाज को प्रभावित करते हैं। अपने ओजस्वी-तेजस्वी मनोबल के सहारे श्रेयस्कर मार्ग अपनाते और कोई साथी-सहायक न होने पर भी औचित्य के पक्षधर मार्ग पर एकाकी चल पड़ते हैं। किन्तु यह विलक्षण प्रतिभाओं के लिये ही सम्भव है। जन साधारण की ऐसी मनोभूमि नहीं होती वे अपने इर्द-गिर्द जो कुछ होता देखते हैं उसी का सहज अनुकरण करने लगते हैं। भले ही वह न्यायोचित न हो। भले ही उस अनुकरण के कैसे ही दुष्परिणाम हों। भले ही उस अनुकरण से कैसे ही दुष्परिणाम उपस्थित क्यों न होते हों। अनुकरणप्रियता, जनसामान्य का स्वभाव है। इस आधार पर वह बोलता-चालता, स्वभाव अभ्यास बनाता है और बहुत कुछ सीखता जानता भी है। पर यह निष्कर्ष निकाल सकना विकसित विचारशीलता का ही काम है कि जो ढर्रा चल रहा है उसमें कितना औचित्य मिला हुआ है और कितनी मात्रा में अनौचित्य घुला हुआ है। अन्धी भेड़ों की तरह आम लोग चल रहे ढर्रे को ही अपनाते हैं और आदत में सम्मिलित हो जाने पर उसका समर्थन भी करते हैं। पूर्वाग्रह इसी आधार पर बनते हैं। जो भिन्नता को उचित होने पर भी स्वीकार नहीं करते इस कठिनाई से निपटने के लिये यह आवश्यक है कि सामाजिक मान्यताओं और गतिविधियों का पुनर्निरीक्षण किया जाय, उन्हें सामयिक उपयोगिता की कसौटी पर जाँचा-परखा जाय और जो प्रचलन औचित्य की कसौटी खरे न उतरते हों उन्हें समझपूर्वक उलट देने के लिये प्रचण्ड आन्दोलन स्तर का प्रबल प्रयत्न किया जाय। दूरदर्शी प्रतिभायें समय-समय पर इस प्रकार के सुधार-परिवर्तन करने की रहती भूमिका सम्पन्न करती रही हैं। इन दिनों तो उसकी और भी अधिक आवश्यकता है क्योंकि पिछले अन्धकार भरे सामन्तवादी युग में इतनी अधिक विकृतियाँ समाज में उगीं और घुसी हैं कि उनके कारण शालीनता और सुव्यवस्था दोनों ही खतरे में पड़ गई हैं।

इस सन्दर्भ में बड़े कदम उठाने के पूर्व यह आवश्यक है कि लोक-चिन्तन में पूर्वाग्रहों के प्रति अड़ियल रुख अपनाने की तत्परता को नरम करने वाली विचारधारा को समझने-समझाने का वातावरण बनाया जाय। अन्यथा दुराग्रहों पर अड़े रहने की कट्टरता औचित्य भरे तर्क, तथ्य, प्रमाण प्रस्तुत किये जाने पर भी उन्हें स्वीकार न करेगी "जो अपना वही सच और वही उचित" आमतौर पर लोग अपनी उसी हठ पर जमे रहते हैं जबकि होना यह चाहिये कि जो तथ्यों की कसौटी पर खरे उतरें उसी को अपनाया जाय। सत्य की शोध में जो खरे उतरें उसी को अपनाने का औचित्य बताया जा सके तो अनेकों विवादास्पद और हठधर्मी के कारण उत्पन्न होने वाली लड़ाईयाँ सहज ही समाप्त हो सकती हैं। लोग अपने-अपने स्वार्थों को ही प्रधानता देते हैं दूसरों को इस कारण कोई अनुचित कठिनाई तो सहन नहीं करनी पड़ रही है और इस पर ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार अपने परिकर की मान्यताओं की तुलना में अन्यत्र भी कहीं औचित्य है इसे स्वीकार नहीं करते। इस तरह तो कोई विवेकसंगत समाधान निकल ही नहीं सकते। तब पशुबल ही एकमात्र निर्णायक रह जाता है। जो दूसरे को शक्तिबल से परास्त कर सके वही विजेता और अपनी गलतियों को सही बताने वाले विजय दुन्दभी बजाते हैं। पशु जगत् में प्रायः यही होता रहता है। उनमें शक्तिशाली आक्रामक ही विजेता माना जाता है। यह मनोभूमि विवेकशील कहे जाने वाले मनुष्य की नहीं होनी चाहिये। उसे तर्क तथ्य, प्रमाण, उदाहरणों का आश्रय लेकर सत्य की खोज में अग्रसर होना चाहिये। जो उन्नत है, विवेक सम्मत है उसी को अपनाने की मनोभूमि बनानी चाहिये। पहले से क्या चला आ रहा है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्वक क्या करते और क्या मानते रहे हैं ? इसी आधार पर किसी को लकीर का फकीर नहीं बनना चाहिये। 'बाबावाक्यंप्रमाणम्' की नीति दुराग्रही संघर्षों का ही परिपोषण करती है। इस नीति को अपनाने में हम सत्य से दूर हटते चलेंगे और समय के अनुरूप औचित्य की पक्षधर नीति अपनाने में कभी सफल न हो सकेंगे। अपने युग की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि अवांछनीय प्रचलनों से छुटकारा पाने के लिये राजहंसों जैसी नीर-क्षीर विवेक वाली नीति को अपनाया जाय। यह विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि है। सत्य और तथ्य के निकट इसी आधार को अपनाकर बढ़ा जा सकता है। शान्ति और सौजन्य की स्थिति बनाने के लिये इसी प्रकार का जनमानस बनाना पड़ेगा।

प्रगति की दिशा में मनुष्य अनादिकाल से बढ़ता ही आ रहा है। पिछले कदम उठाता और आगे बढ़ाता रहा है। इसी आधार पर आदिम काल की परिस्थितियों से भिड़ते हुये दुराग्रही रहे होते तो अभी भी पिछड़े कबीलों की तरह किन्हीं सघन वनों में छिपकर जीवन-यापन करना पड़ता। सीखने-सिखाने, मानने-मनाने, बढ़ने-बढ़ाने, बदलने-बदलाने की नीति ही मनुष्य को जीव जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बना रही है। भावी प्रगति की सम्भावना भी उसी तथ्य को अपनाते हुये टिकी हुई है।

वैज्ञानिक शोधों में इसी नीति को अपनाया जाता रहा है। नये-नये आविष्कार इसी नीति को अपनाने वाले कर सके हैं। तथ्यों-रहस्यों और यथार्थों को समझ सकना इसी नीति को अपनाते हुये चलने से सम्भव हुआ है। दर्शन का, बुद्धिवाद का विकास इसी प्रकार बन पड़ा है। यदि पूर्व मान्यताओं के आधार पर अड़े रहने का दुराग्रह की मान्यता प्राप्त करता रहा होता तो व्यक्ति और समाज का एक कदम भी आगे बढ़ सकना सम्भव न हुआ होता। मन पर चढ़ती रहने वाली मलीनताओं पर बुहारी लगा सकना इसी आधार पर बन पड़ता है। अन्यथा अपने विचारों और कृत्यों का समर्थन ही करते रहने की अनुचित नीति ने प्रगति के सभी द्वार अवरुद्ध करके रख दिये होते।

सर्वोत्कृष्ट के चुनाव की नीति हर महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में अपनायी जाती है। उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति कड़ी प्रतिस्पर्द्धाओं के आधार पर ही होती है। खेलों में बाजी मारने वाले ही पुरस्कार पाते हैं। छात्रों को छात्रवृत्ति भी इसी आधार पर मिलती है। नेता के चयन या प्रतिनिधि के चुनने में यही पद्धति अपनायी जाती है। पुरानी बातों की दुहाई देकर किसी को अपना गौरव बनाये रखने और वर्चस्व प्राप्त करने का आधार नहीं मिलता जब यह रीति-नीति सर्वत्र मान्यता प्राप्त करती है तो फिर विचारों मान्यताओं और प्रथा-प्रचलनों सम्बन्ध में यही आधार क्यों नहीं अपनाया जाना चाहिये ? सर्वश्रेष्ठ के चुनाव के आधार को मान्यताओं के सन्दर्भ में क्यों झुठलाया जाना चाहिये। खरीद करते समय जब बिकने वाली अनेक वस्तुओं में से जो अधिक उपयुक्त जँचती है उन्हीं को लिया जाता है तो फिर प्रथाओं और मान्यताओं के सम्बन्ध में क्यों किसी को दुराग्रही होना चाहिये। क्यों पूर्व प्रचलनों को अपनाये रहने की बात हठवादिता पर अड़े रहने को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया जाना चाहिये। अधिक उपयुक्त और अधिक विवेक सम्मत होने की जाँच-पड़ताल को ही प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये। विशेषतः तब जब युग धर्म का समता और एकता अपनाने के लिये आग्रह है। सभी अपनी-अपनी पूर्व मान्यताओं पर अड़े रहेंगे तो एकता का लक्ष्य कभी प्राप्त न हो सकेगा।

अगले दिनों मनुष्य को सामयिक परिस्थितियों के दबाव में विवश होकर एकरूपता अपनानी ही होगी। इसके लिये विचार क्रान्ति की मंजिल पर चलना पड़ेगा। भ्रान्तियों, विकृतियों और भिन्नताओं की अनेक भँवरों वाली वैतरणी पार करने के लिये विचार क्रान्ति की नाव का आश्रय लेने की अनिवार्यता समझनी पड़ेगी। भिन्नताओं ने कितने अवरोध उत्पन्न किये, कितने संकट ढाये इसका पर्यवेक्षण करने के लिये इतिहास के पिछले पन्ने महत्त्वपूर्ण साक्षियाँ प्रस्तुत कर सकते हैं। अब तक के सभी छोटे-बड़े संघर्ष इसी आधार पर हुये हैं। मनुष्य को भी यदि प्रगति, शान्ति और सहकारिता से वंचित रहना पड़ता तो उसका एक ही कारण होता—संकीर्ण स्वार्थपरता और अपनायी गयी हठवादिता पर अड़े रहना। युग परिवर्तन के इस पुण्य प्रभात में जनमानस में इतनी लोच उत्पन्न करनी होगी कि वह विवेक सम्मत और न्यायमुक्त हो। इसी को अपनाने का साहस जुटाया जाय। दुराग्रह के अनौचित्य एवं दुराचरण को ध्यान में रखते हुये उससे विरत होने के लिये आवश्यक साहस जुटाया जाय। एकता झुकने-झुकाने की नीति अपनाने पर ही बन पड़ती है।

युग की दो माँगें प्रमुख हैं। एक—एकता, दूसरी-समता। एकता को चरितार्थ करने के लिए भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाय आदि के सीमा बन्धन का अधिक समर्थन एकता में सबसे बड़ा व्यवधान है। हमें विश्व भाषा के रूप में एक मानवी भाषा का विकास करना होगा। अन्यथा अपने छोटे क्षेत्र तक ही लोग वार्तालाप कर सकेंगे। दूरवर्ती लोगों के साथ भाषा जन्य कठिनाइयों के कारण गूँगे-बहरे बनकर बैठे रहेंगे। दूसरों के साथ बात न कर सकेंगे। तब विभिन्न भाषाओं में बिखरे हुये ज्ञान से हर किसी को वंचित ही रहना पड़ेगा। अपनी भाषा में जो सीमित ज्ञान है उससे काम चालाने पर हर शिक्षित व्यक्ति घाटे में रहेगा। उसे कूप-मंडूक जैसी स्थिति में, क्षुद्रता की परिधि में ही दिन काटना पड़ेगा विश्व की सब भाषायें पढ़ना और जो अपने काम का है उसे ढूँढ़ निकालना किसी के लिये सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये विश्व एकता, मानव एकता की धुरी के रूप में विश्व भाषा को स्वीकार करना ही होगा। इसके लिये अपनेपन का आग्रह छोड़कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा तथा विश्वभाषा बनाने, अपनाने के सन्दर्भ में प्रयास करना होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेक धर्म सम्प्रदाय भी अगले दिनों अटपटे लगेंगे। प्रचलित धर्मों में जो सार्वभौम तत्त्व हैं उन्हें अपनाकर सच्चे मानव धर्म की आधारशिला रखनी और उसी को अपनाकर साम्प्रदयिक आधार पर आये दिन खड़े रहने वाले विग्रहों की जड़ काटनी पड़ेगी। नीति, न्याय, विवेक, सद्भाव और सहकार का सम्वर्द्धन करने वाले उच्च आदर्श प्रचलित धर्मों में से सभी में किसी न किसी अंश में मौजूद हैं। जिन्हें कभी दीख पड़े व नये सिरे से जोड़कर एक पूर्ण मानव धर्म की संरचना कर सकते हैं। व्यक्तिगत आचार संहिता और समाजगत सुव्यवस्था का सुनियोजित आधार इसी प्रकार खड़ा किया जा सकता है।

समता अगले दिनों सर्वमान्य सिद्धान्त होगा। वही अध्यात्मवाद का सारतत्व है और वही आधुनिक साम्यवाद का प्रतिपादन भी। अनेकताओं को एकत्रित करके समग्र एकता की व्यवस्था ही अगले दिनों की सुनिश्चित रीति-नीति होगी। नर और नारी के नाम पर चलने वाली वर्तमान असमानता अब अधिक दिन चलनी नहीं। गाड़ी के दो पहियों की तरह दो हाथ और दो पैरों की तरह इनमें न कोई छोटा होना चाहिये और न बड़ा। न कोई स्वामी है न कोई सेवक। समता के आधार पर बढ़ सकने वाला सच्चा सहयोग और सद्भाव ही स्त्री-पुरुषों की प्रगति का आधार बन सकता है। इसके लिये लोकमानस को तैयार रहने के लिये कहा ही जाना चाहिये।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्

स्नेह-प्रेम में अद्भुत शक्ति है। जब यह विशिष्टता मानवी अन्तःकरण में प्रस्फुटित होती है, तो न सिर्फ व्यक्ति को असाधारण बनाती है, वरन् उस समाज और राष्ट्र को भी अद्वितीय बना देती है, जिसमें इसकी सरिता प्रवाहमान है।

इन दिनों सर्वत्र अराजकता और अशान्ति का बोलबाला है। घृणा और विद्वेष का वातावरण इस कदर बढ़ा है, जैसा पूर्व में शायद ही कभी रहा हो। प्रत्यक्ष में स्नेह का दिखावा तो करते हैं, पर परोक्ष में न जाने कितनी बार एक-दूसरे की हत्या कर चुके होते हैं, बुरा-भला कहकर निन्दा करते हैं। यह प्रेम का दर्शन मात्र है। इससे न तो अपना भला होने वाला है, न दूसरे का। प्रेम का वह उद्दाम उत्सव अब कहाँ रहा, जिसके कारण धरती को कभी 'स्वर्गादपि गरीयसी' की संज्ञा दी गई थी। उसका प्रवाह वर्तमान में सूखकर संकीर्ण बन गया है। आज हम अनुराग तो करते हैं, पर वह घर-परिवार तक सीमाबद्ध होकर रह गया है, अपने और अपनों तक सीमित हो गया है। यही विकृत प्रेम इन दिनों बढ़ते अपराध के रूप में सामने आ रहा है। हम अपनों से प्यार प्रदर्शित करने के लिए दूसरों की सहानुभूति का अपहरण कर रहे हैं, अपना और अपनों के लाभ के लिये परायों को कष्ट दे रहे हैं। प्रेम इतना संकुचित नहीं हो सकता, न पहले कभी था, न भविष्य में होने वाला है। जब यह बौना बनने का प्रयास करता है, तो इन्हीं दिनों जैसे विकराल दृश्य उपस्थित करता है।

टॉल्सटॉय की एक कथा है—'प्रेम का प्रतिदान।' इसमें वे लिखते हैं कि एक बार एक व्यक्ति यात्रा के लिए निकला। काफी सफर करने के बाद एक दिन वह चला जा रहा था, तो सामने जंगल पड़ गया। रास्ता उससे होकर निकलता था। अतः विवश होकर उसे उसमें प्रवेश करना पड़ा। वन अत्यन्त सघन था। कुछ दूर चलने के उपरान्त वह मार्ग भूल गया और जंगल में इधर-उधर भटकने लगा। एक रोज उसकी खाद्य-सामग्री भी समाप्त हो गई। अब वह भूखा-प्यासा इतस्ततः फिरने लगा, किन्तु ऐसा कब तक सम्भव था। एक रात वह बेहोश हो गया। होश आया, तो स्वयं को एक कुटिया में पाया। एक सज्जन पुरुष उसकी परिचर्या कर रहा था। पूछा—तुम कौन हो ? उसने कहा—प्रेम। पथिक कुछ क्षण मौन रहा, तत्पश्चात बोला—तो फिर 'प्रेम का प्रतिदान' मुझे समझो। निश्चय ही तुमने प्रेम के वशीभूत होकर मेरी रक्षा कर मुझको नया जीवन दिया है, अस्तु इससे उऋण हुए बिना अब न रह सकूँगा। यह मेरी आत्मा और आदत में नहीं कि किसी का कर्ज लिए मर जाऊँ। अतएव कौतुक जैसी पुरानी यात्रा का अब यहीं समापन होता है और ऋणोद्धार के लिए आज से नयी यात्रा की शुरूआत होती है। उस दिन से राहगीर ऐसे रहने लगे, जैसे सेवक और सेवित के दो भिन्न शरीरों में एक ही चेतना प्रवाहित होती हो।

जब तक स्नेह उक्त स्तर का न होगा, वह समाज को आगे नहीं बढ़ा सकेगा। प्रेम कुछ माँगता नहीं, न ही उसमें कोई शर्त होती है। वह सदा निःस्वार्थ होता है। अनुरागी में प्यार की शक्ति होनी चाहिए और प्रतिदान की सामर्थ्य भी। आज इन दोनों का अभाव है। हमारे पास न तो वह विशाल हृदय है, न सभी को आत्मसात करने वाला पवित्र अन्तःकरण। हम प्यार पाने की इच्छा तो रखते हैं, पर उसे चुकाने की, लुटाने की हिम्मत नहीं संजो पाते, यही आज की सबसे बड़ी कमी है। संसार में दिन ही दिन होता अथवा रात ही रात होती, तो उन्हें आज जैसा सम्मान और महत्व नहीं मिल पाता, वह नीरस और ऊबाऊ भी होते, किन्तु दोनों पक्षों के समन्वय से एक सरसता पैदा होती है, जो पशु-पक्षी को समान रूप से लुभाती है। जीवन में यदि काम-ही-काम होता, तो वह कितना एक रस व थकाऊ होता, इसकी कल्पना की जा सकती है पर आराम के उपलब्ध होने पर व्यक्ति पुनः नये उत्साह और उल्लास के साथ काम में जुट पड़ता है और देखते-देखते उसे समाप्त कर डालता है। यह दो पक्षों के मिलन का चमत्कार है। जीवन में प्यार की परिणति भी ऐसी ही हो सकती है। हम वात्सल्य की आकांक्षा भी रखें और उसे बाँटने का साहस भी। सुख इसी में है। पाने का आनन्द लुटाने में ही होता है। कृपणों के बारे में तो नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा सकता, पर जो सचमुच उदारचेत्ता हैं, वे जितना कमाते हैं, उसी अनुपात में बाँटते भी हैं। गुरु-शिष्य परम्परा इसी सिद्धान्त पर आधारित है। किसानों की भी ऐसी ही रीति-नीति होती है। पाने के लिए लुटाना आवश्यक होता है।

सन् १८९७ में लाहौर में 'वेदान्त' पर व्याख्यान करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि हम सामाजिक विकास के लिए भले ही हजारों समितियाँ गढ़ लें, लाखों सम्मेलन कर लें, पर उसकी वास्तविक उन्नति तभी हो सकेगी, जब समाज के लोगों के प्रति हम सहानुभूति रख सकें, प्रेम प्रदर्शित कर सकें। जब तक हमारे भीतर बुद्ध का हृदय और कृष्ण की वाणी विकसित और व्यवहृत होते नहीं दिखाई पड़ेंगे, तब तक प्रगति की आशा, दुराशा मात्र होगी।

यह सत्य है कि हम असल की नकल करना बहुत जल्दी सीख जाते हैं, किन्तु इस उपक्रम में अभी भी काफी कच्चे हैं। हमारा अनुकरण बाह्य स्तर तक ही सीमित है। जिस दिन हम अन्दर के भाव को अपनाना और पनपाना सीख जायेंगे, उसी क्षण हम, हमारा समाज व राष्ट्र उन्नत बन जायेंगे। अभेदानन्द एक स्थान पर लिखते हैं कि यूरोप में सभा-सम्मेलन जितनी संख्या में प्रतिदिन होते हैं, उतनी शायद विश्व के किसी हिस्से में नहीं। इसका अनुकरण कर सहज ही ऐसे सम्मेलन आयोजित किये जा सकते हैं, पर उनकी राजनीतिक गोष्ठियों में जो सौहार्द्र दिखाई पड़ता है, उसका परिचय दे पाना हमारे लिए अभी कठिन है। हमें अब इसी कठिनाई को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति में 'आत्म-विस्तार' की प्रक्रिया इसी हेतु सुझायी गई है। हम इस साधना को जीवन में यदि उतार सकें, तो कोई कारण नहीं कि वह मनोभूमि विकसित न हो सकें, जिसमें प्यार पाने और लुटाने की दोहरी भूमिका सम्पन्न होती हो। अध्यात्म का प्रवेश द्वार यही है। इस सद्गुण को विकसित किया ही जाना चाहिए।

हमारी सहानुभूति गहरी और सजीव हो

सहानुभूति मानवता का एक विशेष और आवश्यक अंग है। जिस व्यक्ति के अन्दर यह प्रचुर मात्रा में विद्यमान है वही उन्नति शिखर पर होगा। उसमें दैवी अनुभूतियों का समावेश रहता है। प्रायः कवियों और कलाकारों में सहानुभूति अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। वे अपनी रचनाओं एवं कृतियों द्वारा दूसरों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

जिसके हृदय में सच्ची सहानुभूति है, वह दूसरों को प्यार, आत्मीयता और ममता की आँखों से देखेगा, तो वे अपने ही दिखाई पड़ेंगे। अपने छोटे-से कुटुम्ब को देखकर हमें आनन्द होता है। यदि हम दूसरों को—बाहर वालों को भी उसी सहानुभूति की दृष्टि से देखने लगें तो वे भी अपने ही प्रतीत होंगे। हम अपने कुटुम्बियों के जब अनेक दोष, दुर्गुण बर्दाश्त करते हैं, उन्हें भुलाते, छिपाते और क्षमा करते हैं, तो फिर बाहर वालों के प्रति वैसा क्यों नहीं किया जा सकता ? ऐसी सहानुभूति प्रदर्शित करने वाला व्यक्ति ही उच्चकोटि की श्रेणी में गिना जायगा।

सहानुभूति की भावात्मकता को व्यक्त करते हुए 'स्विटमैन' ने एक स्थान पर अंकित किया है—'मुझे किसी पीड़ित मनुष्य से यह पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि वह अपने में क्या अनुभव कर रहा है या उसे कैसा लग रहा है, बल्कि मैं स्वयं उसी की भाँति पीड़ित हो उठता हूँ और उसकी वेदना को अपने अन्दर अनुभव करने लगता हूँ।'

आजकल की सभ्यता में सहानुभूति दिखाने का दूसरा ही ढंग चल पड़ा है। लोग पीड़ित अथवा दुःखी मनुष्य के पास जाकर, उसकी वेदना, दुःख अथवा दर्द के विषय में पूछताछ करते हैं। वाणी द्वारा इस प्रकार पूछ लेना वास्तविक सहानुभूति नहीं कही जा सकती। सच्चे सहानुभावक को किसी का दुःख-दर्द पूछने की आवश्यकता नहीं होती, वरन् उसके हृदय से स्नेह का अजस्र स्रोत निकलकर चुपचाप पीड़ित को शान्ति एवं सान्त्वना देने लगता है।

कृत्रिम सहानुभूति दिखाना दूसरे के प्रति एक कठोरता या निर्दयता का व्यवहार है। जो मनुष्य किसी के दुःख-दर्द को सच्ची सहानुभूति के रूप में न पूछकर केवल अपनी मौखिक हमदर्दी दिखाता है, तो निःसन्देह यह निश्चय कर लीजिये कि वह पीड़ित व्यक्ति की सद्भावना को ठगने में प्रयत्नशील है।

ऐसे कृत्रिम स्वभाव वाले अनुभावकों के प्रति विद्वान् 'इमर्सन' ने एक स्थान पर लिखा है कि इन बाहरी लोगों में यही अनुरोध करता हूँ कि—"वे जायें और बच्चों से प्रेम करना सीखें, पत्नी से प्रेम का व्यवहार करें, आश्रितों तथा पड़ौसियों को अपनी विनम्रता से शीतल बनायें। अपने हृदय को स्वच्छ कर मानसिक गरिमा का भाव जगायें। अन्य लोगों के साथ बनावटी सहानुभूति दिखलाने की अपेक्षा अच्छा यही हो कि वे पहले अपने तथा अपनों के प्रति सहानुभूति का अभ्यास करें और मानवता के उत्तम तथा श्रेष्ठ गुणों को अपने हृदय में पूर्ण सचाई के साथ विकसित करने का प्रयत्न करें। कृत्रिम सहानुभूति न तो किसी को लाभ पहुँचा सकती और न समाज को विश्वास दिला सकती है।"

सच्ची सहानुभूति का प्रसार सीमित नहीं, वरन् विश्वव्यापी है। उसकी करुणा, कोमलता तथा दया का प्रवाह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन, राष्ट्र, धर्म, काले-गोरे, ऊँच-नीच, निर्बल-सबल में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं मानती। सभी के लिये समान रूप से बहती है। उदार और श्रेष्ठ आत्माएँ तो शत्रु की विपत्ति से भी विचलित न होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहानुभूति के साथ सहायता करने के लिये उत्सुक हो उठती हैं। ऐसी ही सहानुभूति सराहनीय होती है।

ऐसी सहानुभूति, सराहनीय नहीं, जो केवल हृदय की भावुकता तक सीमित रहे। वह सजीव होते हुए भी जड़ रूप मानी जायगी। किसी की पीड़ा को देखकर अवाक् रह जाना और खड़े-खड़े आहें भरना सार्थक सहानुभूति नहीं। सार्थक सहानुभूति तभी समझी जा सकती है, जब दुःखियों का दुःख निवारण करने में यथासाध्य कुछ किया जावे। यही सराहनीय सहानुभूति का आशय या भाव है। ऐसे ही व्यक्ति किसी की चोट देखकर उसी प्रकार दुःखी हो जाते हैं, जिस प्रकार वह दुःखी तड़प रहा है। उसके कष्ट दूर करने के प्रयत्न में इस प्रकार तल्लीन हो जावें कि जिस प्रकार चोट का खाया व्यक्ति बिना बाहरी सहायता से आप से आप लग जाता है।

सहानुभूति, हमदर्दी अथवा प्रेम, मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है। इसका विकास पाकर मनुष्य देवत्व के पद पर पहुँच सकता है। प्रेम अथवा सहानुभूति में वह शक्ति तथा ऊष्मा है, कि कठोर हृदय को भी नम्रता के साँचे में ढाल देती है। उसकी शीतल और मनोरंजक लहरें दुःखी आत्माओं में प्रसन्नता की झलक ला देती है। इसी सहानुभूति और सम्वेदना के बल पर मनुष्य दूसरों को भी अपना बना लेता है। कठोर को कोमल, निर्दयी को दयावान, बना लेना सहानुभूति-हृदयी व्यक्ति को अधिक सरल तथा सुगम है।

कम बुद्धि रखने वाला सम्वेदनशील व्यक्ति दूसरों के बीच उस अधिक बुद्धि रखने वाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त कर जाता है, जो असम्वेदनशील अथवा सहानुभूति से रिक्त होते हैं। उन श्रेष्ठ पुरुषों की ओर जिनमें सहानुभूति की प्रधानता है, इस प्रकार खिंचते चले आते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों की ओर सुमुद्र की तरंगें खिंचा करती हैं।

सहानुभूति ऐसा सरल गुण है, जो हर व्यक्ति आसानी से प्राप्त कर लेता है। यह गुण मनुष्य को प्रकृति की ओर से यों ही मिल जाता है और यदि एक बार इसकी कमी भी महसूस हो तो कोशिश करके विकसित भी किया जा सकता है।

यदि मनुष्य के अन्तःकरण में सहानुभूति का विचार एक बार भी जाग गया तो यही समझ लेना चाहिए कि आत्म-कल्याण का द्वार खुल गया। इसकी सत्यता पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध विद्वान् बालजक ने एक जगह कहा है—"सहानुभूति गरीबों तथा पीड़ितों के प्रति खींचती है। उनकी भूख तथा पीड़ा अनुभव होती है। सहानुभूति का आर्द्र-भाव-अनुभावक को तद्रूप बना देता है। दीन-दुःखी को देखकर वह उस समय तक स्वयं भी दीन-दुःखी बना रहता है, जब तक कि उसका दुःख-दर्द दूर करने के लिए कुछ कर नहीं लेता। किसी की सेवा, सहायता में किया हुआ अपना काम वह परमात्मा की उपासना में किया कर्त्तव्य ही मानता और ऐसा ही अनुभव करता है। प्राणी मात्र से इस प्रकार की एकात्मता, अध्यात्म योग की वह कोटि है, जो बड़े-बड़े जप, तप तथा साधना, उपवास से भी कठिनतापूर्वक पाई जा सकती है।"

सहानुभूति ही संसार की सबसे बड़ी विभूति है। यदि कोई किसी के प्रति सहयोग, त्याग तथा सहानुभूति न कर, सभी अपनी आपा-धापी में लगे रहें तो हर एक को अपना कुँआ खोदकर पानी पीना पड़ेगा और इस प्रकार सभी घाटे में रहेंगे।

पारिवारिक प्रगति में माता-पिता की सहानुभूति पर बच्चों की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक प्रगति अवलम्बित है। यदि माता-पिता, बालकों के लिए कष्ट न सहें, उनकी सुख-सुविधा का ध्यान न करें, उनके पौष्टिक भोजन, इतनी महँगी शिक्षा, बीमारी में चिकित्सा, विवाह-शादी की व्यवस्था एवं उचित आजीविका आदि समस्त सुविधाओं पर ध्यान न दें तो वह प्रगति नहीं कर सकते।

छोटा बालक तो सर्वथा असहाय होता है। वह माता-पिता की सहानुभूति एवं सहायता के बिना जीवित भी नहीं रह सकता। उनका विकास माता-पिता की सहानुभूति और उदारता पर ही सर्वथा अवलम्बित है।

पीड़ा और पतनी की दुःखदायी परिस्थितियों में जकड़े हुए मनुष्यों को स्नेह सहानुभूति की आवश्यकता है। यह विभूतियाँ जिसके पास होंगी वह मात्र भाव मुद्रा प्रदर्शित करके निष्क्रिय न रह जायगा, वरन् सेवा और सहायता के लिए भी आगे बढ़ेगा। भविष्य की आशा दिलाने पर गिरे हुए व्यक्ति उठ खड़े होते हैं, इस तथ्य को जो जानता है वह निराश और विक्षुब्ध मनःस्थिति को आशा और उत्साह के प्रकाश से आलोकित करने का निरन्तर प्रयास करता रहता है।

सहिष्णुता : एक सामाजिक गुण

सामाजिकता के अनेकानेक गुणों में से सहिष्णुता को प्रमुख माना गया है, इसके अभाव में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और धार्मिक वैमनस्य पनपते और विभेद-विभाजन की दुःखद दीवार खड़ी हो जाती है। सहिष्णुता का अभिप्राय ही विनम्र एवं सहनशील बनने से होता है। जीवन में सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिए इसकी आवश्यकता पग-पग पर समझी गयी है। कोई भी देश, धर्म, समाज और स्वयं व्यक्ति इसकी अनुपस्थिति में न तो प्रगति कर सकता है और न शिष्ट एवं सभ्य कहलाने योग्य रह जाता है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध मनोविद् गौर्डन आलपोर्ट के मतानुसार आज धार्मिक क्षेत्र में जितनी भ्रान्तियाँ और समस्याएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, उनके पीछे एक ही तथ्य काम करता आया है—'जातीय मताग्रह' जिसे उन्होंने 'रेसियल बाइगोट्री' के नाम से सम्बोधित किया है। धर्मान्धता इसी को कहते हैं। संसार की हर जाति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोगों को अपना ही धर्म और मत पसन्द है। उनके अन्तराल में धर्मान्धता की प्रवृत्ति इस कदर समाविष्ट हो चुकी है कि किसी दूसरे धर्म के देवी-देवताओं और उपदेश-आज्ञाओं को मानने के लिये किसी भी शर्त पर तैयार नहीं होते हैं। दूसरों की उचित, उपयुक्त एवं उपयोगी बात को भी सहन कर सकने में अपनी असमर्थता ही प्रकट करते और आग-बबूला होकर उबल पड़ते हैं। असहिष्णुता की ये प्रवृत्तियाँ मानवी सभ्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाकर छोड़ती और परस्पर मनमुटाव और मतभेद का असभ्य व्यवहार खड़ा कर देती हैं, यह किसी भी धर्म और समाज के लिए सदैव घातक सिद्ध होकर रहा है।

असहिष्णुता का दुर्गुण मनुष्य को एक प्रकार से मानसिक रूप से विक्षिप्त एवं विकलांग ही बना देता है, जिसके फलस्वरूप वह शिष्टता तथा सभ्यता की सारी सीमाओं, मर्यादाओं और वर्जनाओं को विस्मृत कर बैठता है। वह न कहने योग्य बातें कहता है और न करने योग्य काम कर बैठता है। ऐसी स्थिति में लोग छोटे के साथ दुर्व्यवहार और बड़ों के साथ अशिष्टता बरतने लगते हैं। वह बड़ों का बड़प्पन और आदरणीयों की गुरुता का भी सम्मान नहीं करते। इतना ही नहीं बड़े भाई, माता-पिता और पति-पत्नी को भी बुरा-भला कहने में तनिक संकोच नहीं किया जाता है जबकि पारिवारिक जीवन में सभी सहिष्णुता का संयम बरतने पर ही स्वर्गीय परिस्थितियाँ विनिर्मित होती हैं।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि जो शिष्ट और सभ्य होता है वह सहिष्णु भी होता है। मनोविज्ञानी डैविड सीबरी ने अपनी पुस्तक 'द आर्ट ऑफ सेल्फिसनेश' में लिखा है कि सहिष्णुतापूर्ण सद्व्यवहार को जीवनचर्या का अविच्छिन्न अंग बना लेने पर विरोधी भी सहयोगी बनते और सभ्य समाज की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। असहिष्णुता की मनोवृत्ति को उन्होंने मनोरोग की उपमा दी है और इससे मुक्ति पाने हेतु 'कन्ट्ररी सजेशन' (विरोधी सुझाव) के सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसमें असहिष्णुताजन्य दुर्व्यवहार को मिटाने के तीन उपाय सुझाये हैं। (१) अहमन्यता भरे औचित्यपूर्ण आवेश का विरोध; (२) स्नेह, सौजन्य और सहकार की प्रवृत्तियों का व्यावहारिक रूप में क्रियान्वयन; (३) व्यवस्था बुद्धि में दूरदर्शिता का समावेश।

उक्त तीनों ही बातों को ध्यान में रखते हुए कोई भी व्यक्ति असहिष्णुता एवं असभ्यता-स्तर से त्राण पा सकता है और सभ्य लोगों की गणना में गिना जा सकता है। स्वाभाविक है जब ऐसे लोगों की संख्या बढ़ेगी, तो वह समय, समाज और राष्ट्र भी इस गुण से सम्पन्न होगा और सहिष्णु कहलायेगा।

प्रायः जीवन में सभी तरह के अवसर आते हैं। सीधी पगडण्डी भी मिलती है, प्रशस्त राजपथ भी और ऊबड़-खाबड़ चट्टानें भी। नदी-नाले भी मिलते हैं और फूलों से काँटे कुछ अधिक ही पाये जाते हैं। इन सबमें होकर आगे बढ़ते जाने का एक ही उपाय है, कष्ट-कण्टकों को धैर्यपूर्वक सहन करना।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में काम करते समय प्रतिकूलताएँ उपस्थित होती ही हैं। बना-बनाया, निष्कंटक राजमार्ग किसी को कभी नहीं मिला। प्रतिकूलताएँ उपस्थित होते ही विक्षुब्ध हो उठने पर चट्टानों से सर टकराने, नदी में कूद पड़ने या काँटों को पैरों से मसलने की मूर्खता ही बन पड़ती है। इससे स्वयं की हानि होती है। लक्ष्य तक पहुँचने में तो कुछ मदद मिलती नहीं।

व्यावहारिक जीवन में सर्वथा भले आदमियों का ही संग मिलना और अनुकूलताएँ ही सामने आना सम्भव नहीं होता। झगड़ालू, कलहकारी, विक्षुब्ध, दुष्ट प्रकृति के लोगों से बचते रहने का कितना भी यत्न किया जाए, पर अधिकार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त भी ऐसे कई लोग होते हैं। उनसे नित्य ही सम्बन्ध आता है। उनके दुर्वचनों, अशोभन व्यवहारों के प्रति असहिष्णु हो जाने पर मन की शान्ति निरन्तर भंग होती रहती है एवं अशान्त, उद्विग्न मनःस्थिति में कार्य भली-भाँति सम्पन्न नहीं हो पाता। शान्त और सन्तुलित मनःस्थिति में ही व्यक्ति कार्य करने और भली प्रकार सोचने-समझने की सहज स्थिति में होता है। ऐसी मनःस्थिति बनाये रखने के लिए सहिष्णुता नितान्त आवश्यक होती है। असहिष्णुता से मनःस्थिति अशान्त-उद्वेलित हो उठती है। सम्पूर्ण शरीर थर-थराने-सा लगता है। इस विक्षुब्ध मनःस्थिति में क्रोध उभर सकता है और अनुचित कार्य हो सकता है। आवेगों से बचने के लिए असहिष्णुता आवश्यक है।

कई बार प्रतिकूल परिस्थितियों में ही कार्य करते रहना होता है। उनके प्रति असहिष्णु बने रहने से मन में आवेग-उद्वेग उठते और चित्त को विचलित करते रहते हैं। इससे कार्य-सिद्धि अधिक कठिन हो जाती है। जीवन में प्रतिकूलताओं के बीच भी मानसिक सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक होता है। इस हेतु सहिष्णुता एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

असहिष्णुता का जन्म आतुरता में से होता है। हथेली पर सरसों जमी देखना चाहने वाली बाल-बुद्धि सहिष्णुता और धैर्य कहाँ से आये ? प्रतिकूलताओं की चुनौती हमारी योग्यता और श्रमशीलता की परीक्षा के लिए ही उपस्थित होती है। जीवन में जिन्होंने भी विशिष्ट सफलताएँ अर्जित की हैं, वे सभी धैर्यवान एवं सहिष्णु रहे हैं। असहिष्णुता एक क्षुद्रता और उथलापन ही है। सहिष्णुता समुद्र की सी गम्भीरता का नाम है। इसमें बाधाओं, प्रतिकूलताओं की बड़ी-बड़ी चट्टानें भी बिना व्यापक उथल-पुथल उत्पन्न किये समा जाती हैं। असहिष्णुता की स्थिति में लिये गये निर्णयों में प्रतिक्रया का भाव विशेष रहता है। सही निर्णय कर सकना सहिष्णु व्यक्ति के लिए ही सम्भव होता है।

असहिष्णुता असंस्कारिता और नादानी की द्योतक है। सुसंस्कृत व्यक्ति सदा सहिष्णु होता है, क्योंकि वह जानता है कि विश्व-व्यवस्था ऐसी है कि यहाँ अनुकूलताओं के साथ प्रतिकूलताएँ, भले लोगों के साथ ही बुरे लोगों पुष्पों के साथ ही काँटों का भी अस्तित्व है और उनसे हम बचकर नहीं रह सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी भी तरह सफलता पा जाने, तनिक भी झंझट न झेलने पड़ने की कामना से असहिष्णुता पैदा होती है। मात्र अपने दृष्टिकोण को सही मानने, अपना मत, अपना पंथ, अपने प्रियजन, अपनी विचारधारा ही श्रेष्ठ और दूसरों के मत, पथ, प्रियजन एवं विचारधारा को निकृष्ट मानने की क्षुद्रता एवं मूढ़ता को उभारती है। इससे सामाजिक विद्वेष की भावना बढ़ती है। असहिष्णुता घृणा को जन्म देती है, दूसरी ओर श्रेष्ठता का दम्भ पनपाती है। दूसरे का विचार, व्यवहार, हीनकोटि का लगने लगता है और उसे मिटा देने की भावना उभरने लगती है। यह क्षुद्र अहं की पराकाष्ठा ही है। भिन्न-भिन्न मत वालों की असहिष्णुता व्यापक सामाजिक कलह और संघर्ष का कारण बनती रही है। हिटलर यहूदियों के प्रति इतना अधिक असहिष्णु हो उठा था कि उसने उनका भयंकर उत्पीड़न और नृशंस सामूहिक वध किया। ईसाई एवं मुसलमानों में मध्य काल में मूर्तिपूजन के प्रति ऐसी असहिष्णुता बढ़ी कि उन्होंने इसके लिए रक्तपात से लेकर लूटपाट तक की क्रूर गतिविधियों को अपनाया।

अन्याय, अनीति को सहना सहिष्णुता नहीं कायरता है। सहिष्णुता तो अपने से भिन्न विचार को सुन सह सकने की उदारता का तथा कठिनाइयों को झेलकर लक्ष्य-पथ पर बढ़ते जाने की दृढ़ता एवं विशालता का नाम है। सहिष्णुता भी क्रोध, घृणा, प्रेम आदि की तरह सम्प्रेषण मनोवेग है। जिसके प्रति हम असहिष्णु होंगे, उसे हमारा भी अस्तित्व सहन न होगा और परिणाम में कलह-संघर्ष तथा विनाश की स्थिति उत्पन्न होगी। इससे विपरीत जिसके प्रति हम उदार सहिष्णुता का रुख रखेंगे, वह अधिक समय तक उपेक्षा-भाव नहीं बनाये रख सकेगा और हमारी स्थिति भी समझने का प्रयास करने को प्रेरित होगा।

सहिष्णुता का व्यापक पैमाने पर प्रयोग महात्मा गाँधी ने किया और उसके चमत्कारी परिणाम विश्व के समक्ष आये। उनकी सहिष्णुता का प्रभाव ब्रिटिश शासकों पर भी पड़ा और अनेकों प्रबुद्ध अँग्रेज उनके मित्र, प्रशंसक, सहयोगी, अनुयायी और भक्त बन गये।

सभ्य, सुसंस्कृत जातियों में सहिष्णुता का तत्व अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। वार्तालाप, तर्क-वितर्क, बहस के दौरान असहिष्णु हो उठने वाले व्यक्ति को निन्दा का ही पात्र बनना पड़ता है।

कई लोग किसी सार्वजनिक विषय पर वार्तालाप करते-करते निजी प्रसंगों पर आ जाते हैं और फिर असहिष्णु होकर परस्पर कटु आक्षेप करने लगते हैं और व्यक्तिगत बुराई पर उतर आते हैं। यह असहिष्णुता मनं-बुद्धि की दुर्बलता ही मानी जायगी। इसके द्वारा सार्थक बातचीत एवं बहस कर पाना तथा सत्य तक पहुँच पाना सम्भव नहीं होता और अपने ही संकीर्ण दायरे में बन्द रहे आना पड़ता है।

कई लोग अपनी मर्जी के खिलाफ जरा-सी बात सुन कर भड़क उठते हैं और थोड़ी-सी प्रतिकूल स्थिति से उत्तेजित हो उठते हैं। ऐसे व्यक्ति न तो लोगों की प्रशंसा एवं सम्मान अर्जित कर पाते हैं और न ही अपना प्रयोजन साध पाते हैं।

यह असहिष्णु यदि बहिर्मुखी न रहकर अन्तर्मुखी हो जाए, तब तो लाभ निश्चित है। अपनी त्रुटियों, कमजोरियों के प्रति असहिष्णु रहना स्वयं के विकास का सुनिश्चित मार्ग है। यद्यपि उसमें भी यदि अधिक उतावली का योग हो जाय और तत्काल ही परिणाम की अपेक्षा की जाने लगे, तो सफलता तो मिलने से रही, कई-कई मानसिक जटिलताएँ अवश्य उठ खड़ी होंगी। लम्बे समय से यदि कोई कमजोरी या त्रुटि स्वभाव में रूढ़ हो गई हैं, तो प्रचण्ड संकल्प के बाद भी उसके दूर होने में कुछ समय लगता है। उस बीच बहुत ही अधिक व्यग्र, अधीर हो उठने से उद्वेग ही बढ़ेगा। यही बात सामाजिक क्षेत्र में भी लागू होती है। सामाजिक बुराइयों के प्रति तो असहिष्णु रहना आवश्यक है, किन्तु बुरे व्यक्ति के प्रति असहिष्णु हो उठने से बात बनती नहीं और उस पर उलटी ही प्रतिक्रिया होती है। बुरे व्यक्ति में भी अच्छाई के अंश तो रहते ही हैं। सहिष्णु व्यक्ति ही संयत ढंग से उनकी बुराइयों को समझा-बुझाकर और आवश्यक असहयोग-विरोध कर दूर सकता है। असहिष्णुता की प्रतिक्रिया में तो व्यक्ति और अधिक उद्धत ही बनता जाता है।

असहिष्णुता, औद्धत्य-वीरता नहीं, अहंकार मात्र है। अपने अतिरिक्त अन्यों के विचार एवं कार्य को न सह पाना संकीर्ण अहं के सिवाय और कुछ नहीं। असहिष्णु व्यक्ति के व्यवहार से लोगों में यह भावना घर कर जाती है कि यह अपने को बढ़-चढ़कर देखता तथा स्वयं की श्रेष्ठता के समक्ष हमारा निरादर करना चाहता है। मनुष्य की प्रवृत्ति प्रायः प्रतिशोधगामिनी होती है। असहिष्णु व्यवहार से दुःखी हो वह उस व्यक्ति के साथ भी वैसा ही दुःखद व्यवहार कर बदला लेने की योजना बनाने लगता है। प्रतिक्रिया में असहिष्णुता-जन्य उद्वेग बढ़ता जाता है तथा विद्वेष की कष्टकारक, हानिमूलक परम्परा बढ़ने लगती है। परिणाम में सन्ताप और अशान्ति ही प्राप्त होती है।

रावण विद्वत्ता संसार–प्रसिद्ध है। उसके बल की तो थाह नहीं ही थी, वह एक महान् बुद्धिमान, विचारक व्यक्ति भी था। किन्तु अपने अतिरिक्त औरों की विचारधारा तथा रहन-सहन की पद्धति के प्रति उसमें सहिष्णुता नहीं थी। किसी और की विचार-शैली और जीवन-पद्धति उसकी दृष्टि में सही नहीं हो सकती थी। ऋषियों का उत्पीड़न उसने इस असहिष्णुता के कारण ही किया था। इससे चारों ओर उसके प्रति असम्मान-तिरस्कार घृणा की भावना ही दृढ़ होती गई। असहिष्णुता ने धीरे-धीरे उसमें अहंकार की मात्रा भी बढ़ाई। यह अहंकार उसके विनाश का कारण बना। असहिष्णुता का पर्यवसान अहंकार में ही होता है। असहिष्णु यदि निर्बल हुआ तो मन ही मन जलता-भुनता, क्षुब्ध होता रहता है। वह प्रत्येक क्षण अशान्त बना रहता है और तरह-तरह की मानसिक विकृतियों का शिकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनता जाता है। विश्व में किसी एक व्यक्ति की ही इच्छा कभी नहीं चल सकती और न ही एक ही विचार की सर्वव्यापी स्वीकृति सम्भव है। अपने से भिन्न विचार और अपने से भिन्न इच्छा एवं व्यवहार को सहने की यदि मनःस्थिति न रही तो प्रत्येक क्षण-क्लेश, अशान्ति, कटुता ही मन को बेधती-मथती रहेगी।

निजी जीवन में असहिष्णु व्यक्ति को सदैव अशान्त बना रहना पड़ता है। पारिवारिक जीवन तो सहिष्णुता के बिना चल ही नहीं सकता। परिवार में भिन्न-भिन्न सदस्यों की प्रवृत्तियों में विभिन्न स्वाभाविक है। किसी एक को क्रीड़ा में विशेष रुचि है, तो दूसरे को संगीत ही जीवन का सार और आनन्द का स्रोत मालूम पड़ता है, तीसरे को साहित्यिक पुस्तकें ही सच्ची सहयोगिनी और जीवनाधार दिखाई पड़ती हैं, चौथे के लिए जीवन का अर्थ है गम्भीर वैज्ञानिक अध्ययन-अनुसन्धान, पाँचवें के लिए दार्शनिक ऊहापोह का रस ही आनन्द का स्रोत है, छठवें को अनेक विषयों में समान रुचि है। एक ही विषय क्षेत्र में भी कम भिन्नता नहीं होती। कइयों को क्रिकेट में अत्यधिक रुचि होती है, तो दूसरे क्रिकेट के नाम से ही चिढ़ते हैं और हाकी—जिम्नास्टिक आदि में रसमग्न रहते हैं। तो भी परिवार में इन रुचि-भिन्नताओं के कारण कलह उत्पन्न नहीं होती। सहिष्णुता और पारस्परिक स्नेह, सम्मान की भावना ही पारिवारिक सुव्यवस्था को बनाये रखती है।

समाज तो सहिष्णुता के बिना चल ही नहीं सकता। सहिष्णुता न हो तो मैत्री का भी निर्वाह नहीं हो सकता। मित्र एक-दूसरे की खूबियों, अच्छाइयों में ही सहभागी नहीं होते, कमजोरियों के प्रति भी सहिष्णु रहते हैं। यह सहिष्णु दोष-दुर्बलता से समझौते के लिए नहीं होती, अपितु उसके दूर हो सकने के विश्वास के कारण होती है।

इस प्रकार सहिष्णुता, दुर्बलता या कायरता नहीं है। वह उदात्त मनोभूमि और शक्तिशाली व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है, जिसमें मानवीय रुचियों, इच्छाओं एवं प्रयोजनों की विविधता की स्वीकृति तथा शिवतत्व के प्रति अविचल आस्था का समावेश रहता है। आज समाज को सर्वाधिक आवश्यकता इसी की है।

दुराग्रही नहीं, सहिष्णु बनें

मिलिटरी शिक्षा में सर्वप्रथम कदम से कदम मिलाकर चलना सिखाया जाता है, पंक्तिबद्ध रहने का अभ्यास कराया जाता है। जोड़े मिलाते समय यह देखा जाता है कि दोनों की ऊँचाई एक जैसी हो। चलने में भी यही ध्यान रखा जाता है कि दोनों के कदम साथ-साथ उठें, कोई आगे-पीछे न रहे, कोई ऊँचा-नीचा दिखाई न दे। इस स्थिति में ही सैन्य दल की शोभा है। अनुशासन का आरम्भ यहीं से होता है, जो आगे चलकर विकसित होते-होते समर्थता और शक्ति का पुँज बनता है। यदि सैनिक भेड़ चाल अपनायें, स्वेच्छाचार बरतें, अपनी-अपनी मनमर्जी चलायें, तो समझना चाहिए कि उनकी योग्यता और क्षमता सुविकसित होते हुए भी किसी काम नहीं आयेगी। उनके द्वारा किसी मोर्चे को जीत सकना सम्भव न हो सकेगा। सशक्त होते हुए अशक्त जैसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में जा मरेंगे।

जन समाज पर भी सैन्यदल जैसा अनुशासन लागू होना चाहिए। सभी की वर्दी एक जैसी हो, सभी को खाना एक जैसा मिले, सभी के निवास की तथा दूसरे प्रकार की सुविधा भी समान हो। एकता और समता के सिद्धान्तों को परिस्थिति के अनुरूप अधिकाधिक मात्रा में लागू किया जाना चाहिए। विषमता की, बिलगाव की विभीषिका जहाँ-कहीं भी उभर रही है, वह काट-छाँट कर छोटी बनानी पड़ेगी। माली भी अपने उद्यान में पेड़-पौधों को एक सीध में, एक ऊँचाई में काट-छाँट कर पंक्तिबद्ध रखने का प्रयत्न करता है। शोभा इसी में बनती है। कौशल और बुद्धिमत्ता की प्रगति भी इसी प्रकार होती है।

समाज-संरचना में भी यही नीति उपयुक्त बैठती है। बाल, वृद्ध, रोगी, अपंग आदि की बात दूसरी है, पर सर्वसाधारण के बीच यही विधा अपनाई जानी चाहिए कि सभी को निर्वाह की, रोटी, कपड़ा और मकान की एक जैसी सुविधा उपलब्ध हो। शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, सुविधा की दृष्टि से सभी एक स्तर पर रहें। जो अधिक योग्य हैं, अधिक चतुर एवं समर्थ हैं, वे अपनी विशिष्टता का लाभ उपार्जन तो करें, पर उसे सर्वसाधारण में विकसित करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करें, जिसमें न कोई बहुत ऊँचा रहे, न कोई बहुत नीचा। न किसी को सम्पन्नता के कारण विलासी, अहंकारी बनने का अवसर मिले और न कोई दरिद्रता, अभावग्रस्तता, अशिक्षा आदि के कारण गई-गुजरी स्थिति में दिन गुजारे। ऐसा समतावादी समाज बनाने का सुयोग तभी बन सकता है, जब समर्थ सम्पन्न इस दिशा में पहल करें। अपने कदम बढ़ाये। असाधारण अन्तर रहने पर विग्रह और विद्रोह उत्पन्न होगा। ईर्ष्या, खीज और कुढ़न का माहौल बनेगा। ऐसी दशा में सम्पन्न अपने वैभव को सुरक्षित न रख पायेंगे, साथ ही अभावग्रस्त भी उस छीन-झपट में चोट खायेंगे, परेशान होंगे। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिए समाज के हर समझदार सदस्य को प्रयत्न करना चाहिए। गिरों को उठाने के लिए और उठों को झुकने के लिए मात्र कहा ही नहीं जाना चाहिए, विवश भी किया जाना चाहिए। यह शासन का कर्तव्य है, समाज की जिम्मेदारी है। लोकसेवी उदारचेत्ताओं का दायित्व है कि वे ऐसा वातावरण बनायें, जिसमें न्याय, निष्ठा, परम्परायें मात्र मान्यता न रहकर प्रथा-प्रचलन के रूप में परिणित हो सकें। यह हर किसी को ध्यान में रखना चाहिए कि समता के आधार पर ही एकता रह सकती है। पाँच अँगुलियों के बीच असमानता तो किसी प्रकार निभ सकती है, पर जहाँ असाधारण अन्तर रहेगा, वहाँ विग्रह का विष वृक्ष उगेगा और वह अपने तीखे काँटों से हर किसी के लिए कष्ट-कठिनाई उत्पन्न करेगा। उन्हीं परिवारों में शान्ति रहती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, जहाँ सभी सदस्यों को उचित सम्मान और सहयोग मिलता है। कमाने वाला अपने लिए अत्यधिक सुविधा प्राप्त करे और बिना कमाने वाले को उनकी आवश्यकतानुसार साधन न मिलें तो समझना चाहिए कि प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप से मनोमालिन्य का क्रम चलेगा और वह एक दिन विस्फोट उभरेगा। अच्छा यही है—समय रहते सचेत हुआ जाय और अनर्थ उत्पन्न होने से पहले इसे रोका जाय, समता की नीति अपनाने में ही सभी का हित है। इसमें समर्थों को सम्मान और सहयोग का लाभ मिलता है और गये-गुजरों को ऊँचा उठने, आगे बढ़ने एवं मानवोचित स्थिति तक पहुँचने, सभ्य नागरिक बनने का अवसर मिलता है। ऐसे ही समतावादी समाज में शान्ति रहती है, प्रगति की सम्भावना रहती है। एकता मात्र शब्दों की दुहाई देने भर से नहीं बनती है। उसके लिए सुनियोजित चेष्टा करनी पड़ती है। वही की जानी उचित है।

स्वभाव, सम्मान और अभिमत मनुष्यों के बीच भी भिन्न-भिन्न प्रकार के रहने स्वाभाविक है। एक पेड़ पर लगे सभी पत्ते तक एक जैसे नहीं होते। उनकी बनावट में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। मनुष्यों में सभी की शक्ल-सूरत एक जैसी नहीं होती। एक ही जाति के पशु-पक्षियों में भी किन्हीं दो की आकृति एक जैसी नहीं होती। फिर यह आशा करना अनुपयुक्त है कि दूसरे सभी लोग अपनी बात मानेंगे ही, अपने कहे हुए पर चलेंगे ही, ऐसी आशा करना अनुचित है। तरीका यही उचित है कि जिस सीमा तक तालमेल बैठ सके, उतना बिठाया जाय। इतने पर भी कुछ मतभेद रहे, तो उन्हें विवशता मानकर सहन किया जाय। सहमति वाले तत्वों को प्रधानता दी जाय और उतने भर से प्रसन्न रहा जाय। जो विभेद मिट नहीं पाते, उनके लिए सहिष्णुता की नीति अपनाई जाय और समन्वयवादी जैसा बनकर रहा जाय।

पति-पत्नी का सम्बन्ध भी अति घनिष्ठ होता है, पर ऐसा कदाचित ही कहीं देखा जाता है कि दोनों एक-दूसरे की मर्जी पर सर्वांश में चलें, प्रकृति भिन्नता तो रहेगी ही। उसमें जितना सुधार परिवर्तन सम्भव हो, करने को सरल स्वभाव से प्रयत्न चलते रहना चाहिए। इतने पर भी जहाँ स्थिति ऐसी बन रही हो कि दूसरे को अप्रसन्नता हो और पारस्परिक सम्बन्धों में खाई पड़ती हो, वहाँ यही उचित है कि समझदार पक्ष अपने को तालमेल बिठाने के लिए आगे रहे। खीज उत्पन्न होने का अवसर न आने दें। दुनिया समन्वय के आधार पर ही चल रही है। एक सर्वांश में अपने को स्वामी मानने और दूसरे को हर प्रसंग में अपना अनुयायी, आज्ञाकारी बनाने की आशा रखें, तो यह अनुचित ही होगा इच्छित स्थिति तो बन नहीं पड़ेगी। उलटा विग्रह खड़ा होगा और जितना तालमेल बनना सम्भव था, वह भी न बनेगा। खीज बढ़ने पर प्रसन्नता का प्रश्न बन जाता है और झुकने से हर पक्ष इन्कार करने लगता है। जो लाभ समन्वयवादी नीति अपनाने पर मिल सकता था, वह भी हाथ से चला जाता है। बात इस स्थिति तक बढ़ने और बिगड़ने नहीं देनी चाहिए। जब पति-पत्नी तक में, भाई-भाई में, पिता-पुत्र में ऐसी स्थिति नहीं बन पाती कि वे सर्वांश में एक-दूसरे के अनुवर्ती रहें तो अन्य लोगों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ?

अनैतिक दबाव के आगे न झुकना ही ठीक है, पर ऐसी हालत में इतना ही उचित है कि अपना रास्ता अलग बना लिया जाय, असहयोग किया जाय, उपेक्षा दिखाई जाय, पर इतने पर भी यह उचित नहीं कि मतभेद के कारण शत्रुता की सीमा तक जा पहुँचें और विग्रह खड़ा करें। ऐसी असहिष्णुता अपनाने पर आये दिन किसी न किसी से, कभी न कभी, किसी न किसी बात पर उलझना पड़ेगा। यह उलझन अन्ततः दोनों ही पक्षों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। विशेषतया उसके लिए जो पहल करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया हो सकती है और फिर बात बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक पहुँच सकती है, जहाँ टकराव बढ़कर आक्रमण-प्रत्याक्रमण के स्तर तक जा पहुँचे और वह कुचक्र अपने परिवार समुदाय तक को ऐसे झंझट में फँसाये जिससे थोड़ी समझदारी अपनाने पर सहज ही बचा जा सकता था।

समझदारी इसमें है कि अपने चिन्तन और कर्तृत्व को रचनात्मक कार्यों में लगाये रहा जाय। जीवन छोटा है, प्रगति के अवसर अनेक हैं। कर्तव्य पालन के लिए भी अनेक उपयोगी क्षेत्र सामने पड़े हैं। समय, श्रम और मनोयोग का उपयोग उन्हीं में होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि झंझटों से अपने का बचाया जाय। विग्रह एवं विवाद में अनावश्यक रूप से समय चिन्तन को नष्ट होने से बचाया जाय, झंझट खड़े कर लेने पर उनकी उत्तेजना एवं चिन्ता इतनी विस्तृत हो जाती है कि सामर्थ्य का अधिकांश भाग उसी में खपने लगता है। इसका प्रतिफल यह होता है कि सृजन की, विकास की दिशा में जो किया जा सकता था, उसका अवसर हाथ से निकल जाता है।

संसार में बहुत कुछ भला-बुरा हो रहा है। उनसे निपटने के लिए शासकीय, सामाजिक या संगठित रूप से ही कुछ कारगर प्रतिरोध हो सकता है। अकेला व्यक्ति हर किसी भिन्न विचार वाले से उलझता फिरे तो वह इच्छित परिणाम तो निकाल नहीं पायेगा, उल्टे अपनी शक्ति सामर्थ्य को निरर्थक कामों में खर्च करके उस लाभ से वंचित रहेगा, जो निजी तथा सामूहिक रूप से उठाया जा सकता था, प्रगति की दिशा में उसी झंझट वाले समय को बचाकर सहज ही बहुत कुछ किया जा सकता था और आगे बढ़ा जा सकता था

वैचारिक क्षेत्र में अनेक 'वाद' अनेक 'दर्शन' प्रचलित हैं। इनमें से अपने लिए एक पसन्द किया जा सकता है, पर अन्य सभी को असत्य ठहराना और उनके उन्मूलन पर उतर आना अनुचित है। इस प्रकार की असहिष्णुता से तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचार क्षेत्र की स्वतन्त्रता का ही अन्त हो जायेगा। एक-दूसरे पर अपनी बात थोपने लगें, तो विग्रहों की अराजकता ही सामने खड़ी हो जायेगी और बात मतभेद से आगे बढ़कर व्यक्तिगत शत्रुता का रूप धारण कर लेगी। समझाकर सद्भावपूर्वक जितना तालमेल बैठ सकता था, वह अवसर भी हाथ से चला जायगा। जब शास्त्रार्थों और तलवारों का उपयोग अन्य मतावलम्बियों को अपने अनुरूप न ढाल सका तो विवाद भर से मतभेदों का अन्त कैसे हो जायेगा ? सभी आपका अनुकरण करने लगेंगे यह आशा नहीं ही की जानी चाहिए। अपने मन की बात दूसरे के सामने प्रकट कर देने में हर्ज नहीं। अपनी मान्यता के पक्ष में जो दलीलें हैं, वे दूसरों के सामने रखी जा सकती हैं, पर ऐसा प्रतिपादन स्नेह, सद्भाव और सम्मान की भावना रखकर ही किया जाना चाहिए। दुराग्रह, हठवाद, व्यंग, आक्षेप, आरोप जैसे कटुता उत्पन्न करने वाले प्रसंगों को विचार-विनिमय के बीच आड़े नहीं आने देना चाहिए। इससे प्रयोजन तो कुछ सिद्ध होता नहीं, उलटे कटुता और शत्रुता का माहौल बनता है। जो सद्भाव विवाद से पूर्व बना हुआ था, वह भी हाथ से चला जाता है।

इन दिनों साम्प्रदायिक असहिष्णुता का बोलबाला है। जाति-पाँति के नाम पर भी एक-दूसरे से हटते और कटते जा रहे हैं। भाषावाद, क्षेत्रवाद भी मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवारें खड़ी करते हैं। आग्रहों के रहते कोई पक्ष यह मानने को तैयार नहीं कि उसकी मान्यता गलत है। ऐसी दशा में समन्वय ही एक मात्र शान्ति का मार्ग रह जाता है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि दूसरे जितनी अपनी बात मान सकें उतने पर सन्तोष किया जाय, साथ ही दूसरों के साथ जितना तालमेल बैठता हो उतना बिठाकर चला जाय। समन्वय ही ऐसी विधा है, जिसे अपनाकर शान्तिपूर्वक रहा और रहने दिया जा सकता है।

सहिष्णुता का दूसरा नाम तप साधना

संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य हैं और उनमें सबके स्वभाव, रुचि, प्रकृति आदि अलग-अलग हैं। कई व्यक्तियों के गुण-धर्म एक-दूसरे के विरोधी भी होते हैं। फलतः वे बहुधा टकरा जाते हैं और कष्ट भुगतने पड़ते हैं। इस स्थिति को टालने का एक मात्र उपाय है—सहिष्णुता। हम सहनशील बनें और प्रकृति की प्रतिकूलतायें एवं मनुष्य की प्रतिकूल भावनाओं को शान्तिपूर्वक सहन करने की आदत डालें तभी हम संसार में सुख-पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकते हैं।

हमारे ऋषि-मुनियों ने भी सहिष्णुता को मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य माना है। असहिष्णु व्यक्ति कहीं अपनी उन्नति नहीं कर सकता। आध्यात्मिक जीवन की बात छोड़ दें, व्यावहारिक जीवन में भी सहनशील बनने की नितान्त आवश्यकता है। इसके बिना अपना जीवन सुखपूर्वक नहीं बिता सकते। प्रकृति भी हमें सहिष्णुता का पाठ पढ़ा रही है। गर्मी, सर्दी, बरसात की ऋतुएँ, भूख, प्यास, निद्रा आदि कक आवेग प्रकृति द्वारा निर्मित किये गये हैं, जिन्हें इच्छा या अनिच्छा से सहन किये बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता।

जैसा कि ऊपर कहा गया है सब मनुष्यों के आचार-विचार, स्वभाव, रुचि आदि में भेद हुआ करता है। आचार-विचारों में मतभेद होते हुए भी हमें किसी के साथ द्वेष-भाव नहीं रखना चाहिए। हमें यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि हमारे ही आचार-विचार सबसे श्रेष्ठ हैं और अन्य सब लोग गलत मार्ग पर जा रहे हैं। इस प्रकार की भावना हमारे अहंकार की सूचक और पोषक कहलायेगी। हमें यह मानकर कि दूसरे व्यक्तियों के विचारों में भी कुछ सचाई हो सकती है, नम्रतापूर्वक उन्हें सहन करने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति किसी कारणवश या अज्ञानवश हमें कटु वचन कहता है, गाली-गलौज करता है या ताड़ना देता है तो उसके प्रति क्षमाभाव दर्शाते हुए उसे हमें सहन करना चाहिए। क्षमाभाव के प्रभाव से हृदय के भीतर आध्यात्मिक प्रकाश का उदय होता है और शान्ति की मात्रा बढ़ती है। जो व्यक्ति यह सोचता है कि अमुक व्यक्ति ने उसका अपमान किया या उसको किसी प्रकार कष्ट दिया अतः हमें उसका बदला चुकाना चाहिए, वह व्यक्ति स्वप्न में भी मानसिक शान्ति नहीं पा सकता और न आध्यात्मिक मार्ग में ही अग्रसर हो सकता है जिसमें प्रतिहिंसा की भावना भरी हुई है, जो बदले की भावना के कारण अस्थिर एवं क्षुब्ध है, ऐसे विचारग्रस्त हृदय में सच्ची शान्ति किस प्रकार रह सकती है ?

दुष्ट, दुराचारी, उच्छृंखल, अनाचारी, आततायियों को सुधारने के लिए प्रयत्न आवश्यक है। उनकी उपेक्षा करने या क्षमा करने से वे और भी अधिक उच्छृंखल बन जाते हैं और अपनी सफलता पर मदान्ध होकर आगे अपनी दुष्टता को और भी अधिक बढ़ा सकते हैं, इसलिए उनका प्रतिरोध करने के लिए राजसत्ता, सामाजिक सहयोग अथवा व्यक्तिगत संघर्ष का मार्ग अपनाना पड़ता है। यह कठोर कार्य हाथ में लेते हुए भी रोगी की चिकित्सा करने जैसी उदार भावनायें ही मन में रखनी चाहिए। घृणा और द्वेष, पापों से करना चाहिए पापी से नहीं। गन्दगी को सफाई करने जैसे स्वच्छ भाव से अनीति का प्रतिरोध किया जा सकता है। इस उपाय को गाँधीजी ने एक व्यापक आन्दोलन के रूप में आरम्भ किया था और उस शक्ति द्वारा ब्रिटिश सरकार जैसे शक्तिशाली शत्रु को परास्त करने में सफलता मिली।

घृणा और शत्रुता के, असहिष्णुता एवं विक्षोभ के भाव जितनी हानि प्रतिपक्षी को पहुँचाते हैं, उससे अधिक अपनी हानि करते हैं। आग जहाँ रहती है पहले उसी को जलाती है। दुर्भाव रखने वाला उससे अधिक हानि उठाता है जितना कि जिसके प्रति दुर्भाव है उसे हानि होती है। इसलिए संघर्ष भी यदि आवश्यक हो तो उसे उदारता और सहिष्णुता की भावनायें रखकर ही करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हम सहिष्णुता से ही आत्मिक उन्नति कर सकते हैं। ईश्वर हमारी परीक्षा लेने के लिए ही प्रतिकूलताओं एवं कठिनाइयों को हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। अतः हम प्रतिकूलतायें देखकर घबरायें नहीं वरन् उन्हें हिम्मत के साथ आनन्दपूर्वक सहन करने की आदत डालें। हमें कठिनाइयों के बीच रहने में, उन्हें सहर्ष झेलने में आनन्द आना चाहिए। जो व्यक्ति कष्ट, अपमान, पीड़ा, दुःख, हानि, वियोग को हँसते हुए सहन कर सकता है, वही सच्चा सहिष्णु है, वही सच्चा आध्यात्मिक है और वही सच्चा ईश्वर परायण है। हमें किसी के दुर्वचनों को सुनकर क्रोध नहीं करना चाहिए। बल्कि उस व्यक्ति को अशान्त एवं दयापात्र समझकर उस पर क्षमाभाव दर्शाना चाहिए। हम अपने आत्मस्वरूप का विस्मरण न करते हुए मान-अपमान, सुख-दुःख, हानि-लाभ और संयोग वियोग में सदा समबुद्धि रखें और क्रोध को अपना महान् शत्रु मानकर उससे अलग रहें तभी हमारा जीवन सुखी हो सकता है। बदला लेने की, प्रतिहिंसा की शक्ति न होने से अनिच्छापूर्वक सहन कर लेना सच्ची सहिष्णुता नहीं है। यदि मन में प्रतिहिंसा की भावना बनी रही तो हमारी सहिष्णुता, सहिष्णुता नहीं दुर्बलता या कायरता ही होगी और प्रतिहिंसा की भावना अन्दर ही अन्दर हमारे चित्त को विषाक्त बना देगी। इस प्रकार विकारयुक्त चित्त में वैभव अपने घर बना लेता है, जिसके कारण चित्त की सारी कुप्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। यह अटल सत्य है कि हिंसा से नष्ट नहीं कर सकते उसे प्रेम, सहिष्णुता और क्षमा द्वारा ही जीता जा सकता है। जहाँ प्रतिहिंसा घुटने टेक देती है, वहाँ सहिष्णुता, क्षमा और प्रेम सफल होते हैं, यह अनुभवजन्य सत्य है।

सबसे खेद और परिताप की बात तो यह है कि जो धर्म हमें प्रेम, सहिष्णुता, दया, क्षमा, करुणा और मैत्री का पाठ पढ़ा रहे हैं, उन्हीं धर्मों को लेकर हम आपस में विरोध, निन्दा और घोर असहिष्णुता का वातावरण बनाये हुए हैं। धर्म जो मनुष्य को शान्ति प्रदान करने के लिए बनाये गये थे, आपस में टकराकर अशान्ति के आगार बने हुए हैं। आज पानी में ही आग लगी दिखाई देती है। हम अपने ऊँचे आदर्श से पतन के गहरे गर्त में गिर रहे हैं और वह भी परम पवित्र धर्म के नाम पर। कैसी लज्जाजनक बात है। आज प्रत्येक परिवार, संस्था, संगठन, समाज में असहिष्णुता, दलबन्दी, फूट, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों का बोलबाला है, जिससे न केवल हमारा वैयक्तिक, पारिवारिक जीवन ही छिन्न-भिन्न और अशान्त बना हुआ है, बल्कि हमारा राष्ट्रीय जीवन भी पामान हो गया है। सबके हृदय में घोर असहिष्णुता का तांडव चल रहा है, जिसके कारण हमने इस स्वर्गसम वसुन्धरा को घोर नरक-कुण्ड बना रखा है और सबसे आश्चर्य तो यह है कि असहिष्णुता के दुष्परिणामों को देखते हुए भी हमारी आँखें अब तक नहीं खुल पा रही हैं। हम यह जरा भी नहीं सोचते कि यह क्षणभंगुर नश्वर देह क्या इसी कलह और ईर्ष्या की अग्नि में जलाने के लिए है ? क्या इस देवदुर्लभ मानुषपतन को जो अनेक पूर्व जन्मों के पुण्य से प्राप्त हुआ है, इन्हीं क्षुद्र झगड़े बखेड़ों में लगाकर सारा जीवन अशान्ति में ही व्यतीत करें ? क्यों हम जीवन की इस अमूल्य निधि का यह दुरुपयोग कर रहे हैं ? क्यों हम आनन्दमय संसार को, इस प्रेम के नन्दन-वन को असहिष्णुता की ज्वाला से जलाकर खाक कर रहे हैं ?

सहिष्णुता का ही दूसरा नाम तप है। यदि कोई प्रशंसा करे तो फूलकर कुप्पा न होना और यदि कोई गालियाँ दे तो गुस्से से लाल न हो जाना, दोनों अवस्थाओं में एक समान रहना, यह है सच्ची सहिष्णुता जिसमें यह सहनशक्ति होती है, उसके जीवन में एक अनोखी मिठास, अपूर्व शान्ति, अद्भुत सन्तोष और एक दिव्य अनुभूति का संचार होता है जो कि बुरे व्यक्तियों को बदल देती है। सहनशीलता में वह जादू की शक्ति है। महात्मा सुकरात का विवाह एक ऐसी स्त्री के साथ हो गया जो बड़ी लड़ाका थी। सदैव क्रुद्ध रहती थी। बिना गाली कभी सीधे मुँह से बात नहीं करती थी। सुकरात के शिष्यों ने कई बार कहा—"गुरुजी यह कैसा संकट आपने पल्ले बाँध रखा है। इसे छोड़िये। हम आपका दूसरा विवाह करा देते हैं।" सन्त सुकरात कहते—"यह मेरी परीक्षा का साधन है। यह मेरी सहिष्णुता की परीक्षा है कि मैंने क्रोध पर विजय पाई या नहीं।"

सहानुभूति, मनुष्य का दैवी गुण

सहानुभूति मनुष्यता का एक विशेष लक्षण है। दूसरे की वेदना को अनुभव कर सकना, दुःख से दयार्द्र हो सकना मनुष्य का ही अधिकार है। यह विशेषता किन्हीं अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती। सहानुभूति से रहित मनुष्य को उसकी संज्ञा के अनुरूप नहीं समझा जा सकता। यह केवल मनुष्य ही है जो किसी प्राणी की पीड़ा देखकर हृदय भर लेता है। एक पशु किसी दूसरे का दर्द कदाचित ही अनुभव कर पाता है। कोई भी पशु पास ही पड़े दर्द अथवा दुःख से कराहते दूसरे पशु को देखता हुआ भी यथावत या तो खड़ा रहता अथवा चरता रहता है।

सहानुभूति मनुष्य के हृदय में निवास करने वाली वह कोमलता है जिसका निर्माण संवेदना, दया प्रेम तथा करुणा के सम्मिश्रण से होता है। सहानुभूति केवल एक कोमल अनुभव ही नहीं है जिसे कि कोई हृदयवान अपने अन्दर तरंगित होता हुआ पाता है। बल्कि यह आत्मा की निःशब्द भाषा भी है जिसे संसार का प्रत्येक प्राणी सहज ही समझ लेता है। किसी पीड़ित पशु-पक्षी को प्रेम से देखिये, पुकारिये या उस पर हाथ फेरिये वह आपके इस भाव को तत्काल समझ लेगा और आपसे एकात्मकता का अनुभव करने लगेगा सहानुभूति के आधार पर एक अनजान एवं अबोध प्राणी तक अपने बन जाते हैं।

इस गुण का आधिक्य किसी भी मनुष्य को ऊँचा उठा देता है। उसमें दैवी अनुभूतियों का समावेश होने लगता है। सहानुभूति की अधिकता के कारण कवि और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कलाकार अन्य साधारण कोटि के लोगों से अलग और ऊपर माने जाते हैं। उनकी रचनायें सहज ही दूसरों का हृदय हरण कर सकने में समर्थ होती है। सहानुभूतिरहित रचना प्राणहीन रहकर किसी को आकर्षित कर सकने में असमर्थ होती है। इस गुण की एक विशेषता यह भी है कि जहाँ सहानुभूति प्रधान हृदय के मूल भावों को कोई दूसरा सहज ही अनुभव कर लेता और समझ लेता है वहाँ सहानुभूति एवं संवेदनशील मनुष्य दूसरे के हृदय की बात अपने हृदय में अनुभव कर लेता है। उसे बिल्कुल वैसा ही अनुभव होता है जैसा कि वह अनुभव करता है, जिसके लिए सहानुभूति का भाव जाग्रत हुआ होता है। सहानुभूति की भावात्मकता को व्यक्त करते हुये स्विटमैन ने एक स्थान पर लिखा है—

"मुझे किसी पीड़ित व्यक्ति से यह पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि वह अपने में कैसा अनुभव कर रहा है या उसे कैसा लग रहा है, बल्कि मैं ठीक उसी की भाँति पीड़ित हो उठता हूँ और उसकी वेदना को अपने अन्दर अनुभव करने लगता हूँ।"

कहना न होगा कि इस प्रकार की तद्रूपता, एकात्मकता अथवा संवेदना का भाव ही सच्ची सहानुभूति है। आज की सभ्यता में सहानुभूति प्रदर्शन करने का एक रिवाज चल पड़ा है। लोग पीड़ित अथवा दुःखी व्यक्ति के पास जाकर उसकी वेदना, दुःख अथवा दर्द के विषय में पूछताछ करते हैं। सहानुभूति व्यक्त करने का यह शाब्दिक कर्त्तव्य वास्तविक सहानुभूति नहीं है। सच्चे सहानुभावक को किसी का दुःख दर्द पूछने की आवश्यकता नहीं होती। वह पीड़ित को देखते ही उससे तादात्म्य अनुभव करने लगता है और उसके हृदय से स्नेह का अजस्र स्रोत निकलकर चुपचाप पीड़ित को शान्ति एवं सान्त्वना देने लगता है।

कृत्रिम सहानुभूति का प्रदर्शन करना किसी के प्रति निर्दयता व्यक्त करना ही है। किसी की पीड़ा को स्वयं अनुभूत न करने वाला जब उसकी वेदना के विषय में पूछताछ करता है, तब वह यही प्रकट करता है कि यह व्यक्ति मौखिक सहानुभूति का संदेशवाहक ही है, सच्चा अनुभावक नहीं है।

आये दिन लोग लेखों, भाषणों तथा समाजों में मानव-जाति, देश, राष्ट्र तथा समाज के पीड़ित, दुःखी व्यक्तियों के लिए सहानुभूति का प्रदर्शन करते रहते हैं किन्तु क्या वे वास्तव में सहानुभावक होते भी हैं ? इस प्रकार की कृत्रिम सहानुभूति दिखलाने वाले व्यक्ति अन्दर से बड़े ही कठोर तथा चतुर होते हैं। वे अपनी मौखिक सहानुभूति के आधार पर दूसरों की सद्भावना को ठगने का प्रयत्न करते हैं।

अनेक लोग बाहर समाज में जन-जन के प्रति सहानुभूति, संवदेना, स्नेह, सौहार्द्र, दया तथा दाक्षिण्य का भाव बात-बात में दिखाया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि इनका हृदय हमेशा दूसरों की पीड़ा से ही भरा रहता है। पर क्या वे वास्तव में वैसा होते हैं ? बाहर दया, विनम्रता, सहानुभूति अथवा कोमलता दिखलाने वाले यदि अपने घरों में पत्नी को डाँटते, बच्चों को मारते-पीटते, अपने आश्रितों के प्रति आक्रमण भाव दिखाते और कठोर व्यवहार करते हैं तो निश्चय ही वे मिथ्याचारी ही हैं। ऊपर से कितने ही कमल-कोमल क्यों न दीखते हों अन्दर पाषाण ही होते हैं। ऐसे लोगों का कोई भी भद्र अथवा आर्द्रभाव विश्वास के योग्य नहीं होता।

इस प्रवृत्ति के नकली अनुभावकों के प्रति विद्वान इमर्सन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'इन बाहरी लोगों के लिए मेरा यही कहना होगा कि वे जायें और अपने बच्चों से प्रेम करना सीखें, पत्नी मे व्यवहार करें, आश्रितों तथा पड़ोसियों को अपनी विनम्रता से शीतल बनायें, अपने हृदय का परिमार्जन कर मानसिक गरिमा का भाव जगायें। अन्य लोगों के साथ नकली सहानुभूति दिखलाने से कहीं अच्छा है कि वे पहले अपने तथा अपनों के प्रति सहानुभूति का अभ्यास करें और मानवता के उदात्त गुणों को अपने अन्दर विकसित करने का ईमानदारी से प्रयत्न करें। कृत्रिम सहानुभूति न तो किसी का भला कर सकती है और न उनको समाज का विश्वास दिला सकती है।"

सच्ची सहानुभूति का परिसार सीमित नहीं होता। जो यथार्थ रूप से संवेदनशील है, सहानुभावक है वह आत्मीयजनों के प्रति ही भद्र एवं भावपूर्ण न रहकर संसार के प्रत्येक प्राणी के प्रति संवेदनशील रहता है। उसकी करुणा, कोमलता तथा दयार्द्रता स्त्री, पुरुष, जड़-चेतन, राष्ट्र, धर्म, काले-गोरे, ऊँच-नीच, निर्बल तथा बलवान में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं मानती। समान रूप से सबके लिए प्रवाहित होती रहती है। ऊँचे हृदय और सच्ची सहानुभूति वाले लोग तो शत्रु की विपत्ति से भी विचलित होकर उसकी सहायता करने के लिए उत्सुक हो उठते हैं।

मात्र हृदय की भावुकता तक ही सीमित रहने वाली सहानुभूति भी अधिक सराहनीय नहीं मानी जा सकती। सजीव होते हुए भी वह एक जड़ प्रतिक्रया ही मानी जायेगी। सराहनीय सहानुभूति का भाव वही है जो हृदय में उठते ही क्रिया रूप में गतिशील होने लगे। किसी की पीड़ा देखकर यों ही किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े-खड़े आहें भरते रहना अथवा आँसू बहाते रहना कोरी भावुकता है सार्थक सहानुभूति नहीं। यह भावुकता तभी सहानुभूति—सच्ची सहानुभूति—अथवा संवेदना की श्रेणी में आ सकती है जब पीड़ित की पीड़ा दूर करने के लिये यथासाध्य कुछ भी किया जाये। निश्चय ही वह व्यक्ति सच्चा सहानुभावक तथा संवेदनशील है, जो किसी की चोट देखकर उसी प्रकार तड़प उठे जिस प्रकार वह पीड़ित तड़पा है और उसी प्रकार आप से आप तकलीफ दूर या कम करने का प्रयत्न करने में लग जायें जिस प्रकार चोट खाया व्यक्ति बिना बाह्य प्रेरणा से आप से आप लग जाता है।

मनुष्य में सहानुभूति एक ऐसा गुण है जो विकास एवं सार्थकता पाकर उसे देवत्व के स्तर तक पहुँचा सकता है। सहानुभूति की ऊष्मा पत्थर को भी पिघलाकर मोम बना देती है और उसकी शीतल तरंगें शोक से जलते हृदयों में जीवन का संचार कर देती हैं। सहानुभूति एक संवेदना के बल पर मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परायों को अपना बना लेता है। कठोर को कोमल और निर्दयी को दयावान बना लेना सहानुभूति-हृदयी व्यक्ति के लिए किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सरल तथा सुगम है। बहुत बार देखा जा सकता है कि कम योग्यता का संवेदनशील व्यक्ति दूसरों के बीच उस अधिक योग्यता वाले व्यक्ति से अच्छा स्थान बना लेता है जो असंवेदनशील अथवा सहानुभूति से रहित होता है। सहानुभूति प्रधान व्यक्तियों के प्रति लोग उसी प्रकार खिंचते चले आते हैं जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों की ओर समुद्र की तरंगें खिंचा करती हैं।

सहानुभूति कोई दुर्लभ गुण नहीं है। यह तो मनुष्य को नैसर्गिक रूप में यों ही मिल जाता है और यदि एक बार इसकी कमी का आभास हो तो विकसित भी किया जा सकता है। स्वार्थ, लोभ तथा दम्भ की भावना त्याग देने और उसके स्थान पर सेवा तथा विनम्रता को स्थान देने से सहानुभूति का गुण अभावुक हृदय में भी उत्पन्न हो सकता है ? दूसरे की पीड़ा उसका हर्ष और सुख-दुःख को अपना मानकर चलने और व्यवहार करने वाले सहज ही संवदेनशील बन जाया करते हैं। एक बार यदि सहानुभूति का भाव हृदय में जाग गया तो यही समझना चाहिये कि हमारे आत्म-कल्याण का द्वार उन्मुक्त हो गया। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुये प्रसिद्ध विद्वान बालजक ने एक स्थान पर कहा है—

"सहानुभूति गरीबों तथा पीड़ितों के प्रति खींचती है। उनकी भूख तथा पीड़ा अपनी भूख तथा पीड़ा अनुभव होंती है। सहानुभूति का आर्द्रभाव अनुभावक को तद्रूप बना देता है। दीन-दुःखी को देख वह उस समय तक स्वयं भी दीन-दुःखी बना रहता है जब तक कि उसका दुःख-दर्द दूर करने के लिए कुछ कर नहीं लेता। किसी की सेवा सहायता में किया हुआ अपना काम वह परमात्मा की उपासना में किया कर्तव्य ही मानता और ऐसा ही अनुभव करता है। प्राणिमात्र से इस प्रकार की एकात्मता, अध्यात्म योग की वह कोटि है जो बड़े-बड़े जप, तप तथा साधना-उपासना से भी कठिनाईपूर्वक पाई जा सकती है।"

सांसारिक सफलता, आत्म-शान्ति तथा अध्यात्मिक लाभों के लिये सहानुभूति का भाव अमोघ उपाय है। इससे अपनी जेब से खर्च तो कुछ भी नहीं होता किन्तु इसके बदले में जो प्रेम, आशीर्वाद तथा आर्द्रता प्राप्त होती है वह कुबेर के कोष से भी बढ़कर है। सहानुभूति देना और पाना प्राणिमात्र का कर्तव्य तथा अधिकार है। हम अपनी वेदना सहानुभूति पाने के लिए अपनी दूसरे के सामने व्यक्त करते हैं। बच्चा सहानुभूति पाने के लिए चोट दिखलाता है। सहानुभूति पाने के लिए ही लोग अपनी हानियों तथा हृदय की पीड़ाओं को दूसरों के सामने खोलकर रखते हैं। ऐसी दशा में यदि हम परस्पर सहानुभूति का आदान-प्रदान नहीं करते तो सच्चे अर्थों में मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं।

हमारे हृदय सहानुभूति से भरे रहें

सहानुभूति मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों में से एक है। सहानुभूति मनुष्य के हृदय में निवास करने वाली वह कोमलता है जिसका निर्माण संवदेना, दया, प्रेम और करुणा के सम्मिश्रण से होता है। वह आत्मा की निःस्वार्थ भाषा है जिसकी वाणी मूक है किन्तु हर हृदयवान उसे समझ लेता है। जीवन में मानसिक, शारीरिक या अन्य उथल-पुथल पैदा होने के कारण ही यही है कि हम उपरोक्त शक्तियों को सत्यतापूर्वक न अपनाकर उनका निरादर भी करते हैं।

विधाता की बनाई अद्भुत कृति, मनुष्य, ऐसा प्राणी है जो बगैर, दया, प्रेम या करुणा के जीवन को ज्यादा समय तक नहीं चला सकता फिर सहानुभूति तो इन सबका सम्मिश्रण है उसके अभाव में तो निश्चित कुछ खोया खोया-सा लगेगा।

प्रेम, दया एवं करुणा ऐसे मानवीय गुण हैं कि इनके अभाव में एक पल चलना भी भारी हो जाता है। किन्तु आज का विचारवान मनुष्य इन पर गहन रूप से ध्यान नहीं देता है। प्रेम के अभाव में जीवन वीरान हो सकता है, करुणा, दया, सहयोग के अभाव में समाज या परिवार ढाँचा भी नहीं बन सकता।

इसे हमें विडम्बना ही कहना पड़ेगा कि मनुष्य आत्मिक गुणों को पाने या देने में अपनी झोली से कुछ खर्च नहीं करता परन्तु फिर भी एक कंजूस की भाँति रहता है। वर्तमान में हम अपेक्षा तो बड़ी करते हैं पर जब उसके प्रतिदान का प्रश्न आता है तो सर्प के समान पलटी खाने लगते हैं किन्तु जब हम स्वयं पीड़ित होते हैं तो अपेक्षा और आदर्श का रिकार्ड लगा देते हैं।

कितना सुन्दर हो जो मनुष्य जीवन के उन सत्यों को मानले और पालन करते हुए चले जिनके अभाव में न केवल जीवन क्रम खत्म हो सकता है बल्कि समाज का ढाँचा भी बदल सकता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन होना एक असम्भव बात दृष्टिगोचर होती है।

एकान्त मनुष्य को पागल बना देता है। मनुष्य स्वभाव एकान्त में रह नहीं सकता एकाकी मनुष्य की शक्ति भी बड़ी सीमित और स्वल्प होती है। इसलिये मनुष्य से वह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह केवल अपनी ही सोचे या बात करें बल्कि असमर्थ को समर्थवान बना दे यह अपेक्षित हैं। यही महानता का द्योतक है जो गिरों को उठा लेता है उठे हुओं को उठाना उतना कठिन नहीं है।

हर मनुष्य सहानुभूति का भूखा होता है दुःख में संवेदना दया किसी कीमती दवा से कम नहीं है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इस ओर शोध कार्य करने भी शुरू कर दिये हैं। दया, करुणा, ममता, प्रेम आदि का हमारे मन एवं स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। आपत्ति के समय प्रेम के सांत्वना के दो शब्द शान्ति देते हैं। इसका अनुभव हर व्यक्ति को होगा। इतना आभास या विश्वास कि किसी की सहानुभूति मेरे से है, यह अनुभव मात्र मनुष्य को साहस प्रदान करता है चाहे शारीरिक या आर्थिक भौतिक रूप में वह सहानुभूति प्रगट हुई हो या नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई प्रसंग ऐसे आते हैं जब हम यह कहते हुए पाये जाते हैं कि अरे आपके आने से एक दम वातावरण में महक आ गई। आपके शब्दों से शान्ति मिली, साहस मिला। यह बताते हैं कि सहानुभूति, प्रेम, दया की मूक भाषायें मन और मस्तिष्क पर गहन असर डालती हैं, जिनका हमारे स्वास्थ्य से भी गहरा सम्बन्ध है। दुःख में हमारी भूख मर जाती है खुशी समय हम दो रोटी ज्यादा खाते हैं, यह सिद्ध करता है कि इन महान् विचारों और गुणों का शरीर पर मन पर कितना गहन असर पड़ता है ?

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है सहानुभूति लेने और देने वाले दोनों की उम्र बढ़ती है। वह हृदय को शक्ति और भावनाओं को विशालता प्रदान करती है। कुत्तों और बिल्लियों पर प्रयोग किये गये, उनसे यह सिद्ध हुआ कि सहानुभूति का स्पर्श होते ही फेंफड़े गर्म हो जाते हैं।

सहानुभूति अगर मानव हृदय का जन्म जात गुण न होता तो सच मानिये संसार का नक्शा ही कुछ और होता हमारा न केवल विकास क्रम रुक जाता बल्कि नरक जैसा भी बन जाता सहानुभूति के लोप में मनुष्य न केवल ब्रह्महत्या ही करता बल्कि वह सामूहिक आत्म हत्या भी शुरू कर देता। आत्मा से आत्मा की बात केवल सहानुभूति से लबालब हृदय ही कर सकता है।

कन्फ्यूशियस, फ्रान्सिस, बेकन तथा माओत्से तुंग आदि ने प्रारम्भ में सहानुभूति को ठगा जाने वाला तत्व माना था किन्तु बाद में जब जीवन के तत्वों और सत्यों की गहराई में उतरे तो पता चला कि मनुष्य केवल सहानुभूति के कारण जिन्दा है। इस सत्य का अनुभव हम हमारे परिवार में भी कर सकते हैं। बच्चे को रोज ताड़ना देना शुरू कर दीजिये आप देखिये सहानुभूति के अभाव में कुछ दिन बाद बच्चा पागलों जैसा हो जायगा। हर अहंकारी, घमण्डी पूँजीपति, क्रान्तिकारी को अन्त में मानवीय गुणों के आगे घुटने टेकते पाया है आत्मा की भूख मिटाने के लिये भीख माँगते पाया ही सुना है क्रान्तिकारी माओत्से तुंग अब सहानुभूति की एक बूँद के लिये तरसते हैं।

सहानुभूति के बारे में ऐला कॉक्स ने लिखा है कि जब दूसरों की तरफ देखों तो नम्रता से काम लो पर जब अपनी तरफ देखो तो सख्ती से काम तो फ्रेन्स मनोविद्या विशारद् गोबानियाँ लिखते है कि सहानुभूति की भावना मानसिक उत्थान की बड़ी प्रेरक शक्ति है, मानसिक रोगों की बड़ी भारी दवा है।

खुशी की बात है कि मनुष्य के लिये यह पुण्य निःशुल्क और असीम है, वरना इस महँगाई के युग में खर्च का तर्क उपस्थित कर सकता था।

सहानुभूति प्रेम से भी बड़ी चीज है। प्रेम प्रतिदान माँगता है। सहानुभूति उससे भी की जा सकती है जो हम से नहीं करते। संसार में कष्टों से पीड़ित वर्ग सहानुभूति के मरहम से प्रगति कर रहा है। आत्म सन्तोष एवं प्रेम पाने के लिये सहानुभूति सबसे अचूक उपाय है। जिस हृदय में सहानुभूति होती है वह महान् है और जो प्रदान करता है वह उससे भी महान् है। ऐसा देश समाज जहाँ सहानुभूति से पूर्ण हृदयों की गंगा बह रही हो वहाँ का मानव जीवन कभी बन्जर नहीं हो सकता।

स्नेह और सहानुभूति— आत्मा की भूख और प्यास

दूसरों की सहानुभूति, स्नेह, आत्मीयता पाने की स्वाभाविक आकांक्षा मनुष्य मात्र में होती है। इसी की पूर्ति के लिए मनुष्य मैत्री करता, परिवार बसाता है। मित्रों की सहजता, सुख-दुःख में हाथ बँटाने की प्रवृत्ति, मिलने वाली सहानुभूति से उसे मानसिक एवं आत्मिक सन्तुष्टि मिलती है। परिवार बसाने, पत्नी, बच्चों का जाल-जंजाल मोल लेने के पीछे एक ही मनौवैज्ञानिक तथ्य है कि निकटता के द्वारा अधिक से अधिक स्नेह, सहयोग, सहानुभूति अर्जित करना। बच्चों से मिलने वाले वात्सल्य की कीमत पर वह बड़े से बड़ा त्याग करने में भी नहीं हिचकता। निकटवर्ती आत्मीय व्यक्तियों को सहयोग करने पर भौतिक दृष्टि से तो घाटा ही घाटा दिखायी पड़ती है, पर इसके बदले में मिलने वाली आत्मीयता के लिए वह यह घाटा सहर्ष स्वीकार करता है। मित्रता में भौतिक वस्तुएँ नहीं, मित्रों का स्नेह ही मिलता है। उनके उन्मुक्त सान्निध्य से मिलने वाले अनिवर्चनीय आनन्द के लिए कीमती वस्तुएँ भी छोड़ दी जाती हैं। पार्टियाँ इसीलिए आयोजित की जाती हैं कि हितैषी मित्रों की सहानुभूति अधिक से अधिक अर्जित की जा सके।

मनुष्य एक चेतन प्राणी है। वह मात्र भौतिक वस्तुओं से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अन्तर्निहित चेतना को दूसरों का स्नेह-आत्मीयता पाने की आकांक्षा होती है। पाने पर ही वह तुष्ट होती है। पूर्ति न होने पर खिन्न, अतृप्त बनी रहती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को जानकर ही परिवार बसाने, समाज गठित करने की योजना ऋषियों ने बनायी होगी। पारिवारिकता एवं सामाजिकता के जहाँ भौतिक लाभ हैं, वहीं इस आत्मिक आवश्यकता की भी पूर्ति अपने आप होती रहती है। पर्व, त्यौहार, बड़े आयोजनों में समूह को एकत्रित करने के पीछे यही तथ्य निहित है कि परस्पर एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता उभरे—सहानुभूति का आदान-प्रदान चले। सहृदयता एवं सेवा का भाव उमड़े।

सामान्यतया मान्यता यह है कि दूसरों की सेवा, परोपकार, परमार्थ भौतिक वस्तुओं द्वारा ही किये जा सकते हैं, पर यह एक सीमा तक सच है। वास्तविकता तो यह है कि सहृदयता, स्नेह-सहानुभूति से भरे-पूरे शब्द, आश्वासन दूसरों के लिए कहीं अधिक प्रेरणादायक एवं लाभप्रद सिद्ध होते हैं जबकि इनके अभाव में उपेक्षा अन्यमनस्कता से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया गया सहयोग भी उतना प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाता। उपयोगी बनने के लिए उसमें आत्मीयता का पुट जोड़ना होता है। कितनी बार तो सहानुभूति का चमत्कारी प्रभाव पड़ते देखा गया है। मनोचिकित्सा का सम्पूर्ण काय-कलेवर इसी तथ्य पर अवलम्बित है। मानसिक रूप से विक्षुब्ध मनोरोगी भी स्नेह एवं सम्वेदना का अवलम्बन पाकर ठीक होते देखे गये हैं। मनोचिकित्सक अपनी सहानुभूति दर्शाकर, बिश्वास अर्जित कर कठिन मनोरोगों की भी चिकित्सा करने में सफल होते हैं। आत्मीयता पाकर रोगी के मन में आशा का संचार होने लगता है। असाध्य समझे जाने वाले मनोरोग भी कई बार ठीक होते देखे गये हैं। मनोचिकित्सा की सफलता में उपचार प्रक्रिया का कम, चिकित्सक के अन्तरंग से छलकने वाली सहृदयता का अधिक योगदान होता है, जिसका चमत्कारी प्रभाव रोगी के ऊपर पड़ता है।

सहृदयता स्वयं में एक बड़ी शक्ति है–समग्र उपचार पद्धति है। सन्त, महात्मा, ऋषि, देवदूत इसी के पुंज होते हैं। उनके हृदय के अन्तराल से निकलने वाली सहानुभूति की किरणें निकटवर्ती व्यक्तियों पर चमत्कारी प्रभाव डालती है। उनके आशीर्वाद–आश्वासन से कठिन रोग भी ठीक होते देखे गये हैं। आश्वासन पाकर रोगी का मनोबल बढ़ जाता है। दुर्बल मनःस्थिति ही समस्त रोगों की जड़ है। जिसके रहते कोई भी उपचार पद्धति सफल नहीं होती। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य से अवगत सन्त, महात्मा रोगी के मनोवल को ही बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। उनके आश्वासन एवं आशीर्वाद के चमत्कारी प्रभाव के पीछे मनोवल का बढ़ाना ही प्रमुख कारण होता है जिससे रोगी भविष्य के प्रति आशान्वित हो जाता है।

सहानुभूति की आवश्यकता रोगी को ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को होती है। मनुष्य की यह मौलिक आवश्यकता है जिसकी आपूर्ति वह चाहता है। नर-नारी, बच्चे, युवक, वृद्ध सभी को अपेक्षा होती है कि उनसे अन्य लोग सहानुभूति रखें। स्नेह, सम्मान दें। दुःखों में हिस्सा बँटायें। इसकी पूर्ति जहाँ जितनी मात्रा में होती रहती है, वहाँ की परिस्थितियाँ भी उतनी ही श्रेष्ठ, स्नेह-सद्भाव से भरी-पूरी होती हैं। व्यक्ति की सहृदयता ही पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की शालीनता एवं सुव्यवस्था का मूल आधार है। सेवा, सहयोग के अधिकाधिक भावों से ही आत्मीयता का विस्तार होता है। सुख-साधनों की बहुलता भी, उपेक्षा के रहते मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं कर सकती। मनोरोगियों के पर्यवेक्षण अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला है कि अधिकांश का जीवन उपेक्षित रहा। वांछित सहानुभूति न मिल पाने के कारण वे छोटे-छोटे आघातों को भी सहन करने में असमर्थ रहे। प्रेरणाओं के अभाव में वे भविष्य के प्रति निराशावादी बन गये। सामने आयी प्रतिकूलताओं को चिरस्थायी मान लेने किसी से सहयोग का आश्वासन न मिलने से वे अपना सन्तुलन खो देते हैं जिससे सामने आये अवरोध जिनको थोड़े प्रयास से टाला जा सकता था, वे भी असम्भव बन जाते हैं।

सहृदयता मानवी गरिमा का मेरुदण्ड है जिसका सम्बल पाकर ही व्यक्ति एवं समाज ऊँचे उठते मानवी गुणों से भरपूर बनते हैं। इसका अभाव निष्ठुरता, आतंक, असहिष्णुता जैसी प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट होता है। पारिवारिक विग्रहों एवं सामाजिक विघटनों में परस्पर की आत्मीयता का अभाव एवं इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पनपने वाली संकीर्ण स्वार्थपरता का प्रमुख योगदान होता है। चिन्ता, कुण्ठा, आत्महीनता, आवेश, उत्तेजना जैसे मनोरोगों में परिस्थितियों का कम उपेक्षा का अधिक योगदान होता है। स्नेह, आश्वासन के अभाव से निराशावादी चिन्तन चंचलता तथा भविष्य अन्धकारमय दिखायी पड़ता है।

मानसिक स्वास्थ्य का एकमात्र आधार है—मनुष्य स्नेह एवं आनन्द का अनुभव करे तथा अन्यों को भी अपने स्नेह आनन्द में सहभागी बनाये। मूर्धन्य मनोविश्लेषक डा. 'सिगमण्ड फ्रायड' का कहना है कि "समस्त मानसिक विकृतियों का कारण स्नेह का अभाव है। स्नेह स्वीकार करने की तथा स्नेह देने की तत्परता मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण है।" आदान-प्रदान का यह क्रम जिस भी परिवार अथवा समाज में जितना ही अधिक चलेगा वह उतना ही सभ्य एवं समुन्नत होगा। समस्याओं की अधिकता एवं परिस्थितियों की विकटता आज चरम सीमा पर है। मनुष्य के बीच सौहार्द्र के बन्धन टूटते जा रहे हैं। अविश्वास एवं निराशा का ही साम्राज्य दिखायी पड़ता है। स्वार्थपरता, संकीर्णता की प्रवृत्ति आग की तरह फैलती जा रही है। यह इस बात के प्रमाण हैं कि भाव-सम्वेदनाओं की दृष्टि से मनुष्य खोखला होता जा रहा है। मानवी गरिमा के टूटते हुए इस मेरुदण्ड को हर कीमत पर बचाया जाना चाहिए। सहृदयता विकसित करने, उभारने, स्नेह, सहानुभूति बिखेरने के लिए हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

बुद्धिमान ही नहीं, संवेदनशील भी बनें

भौतिक उपलब्धियाँ कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों वे तब तक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकतीं जब तक उनमें सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ न जुड़ी हों। ध्वंस में प्रयुक्त होने वाले साधन तो सामूहिक विनाश के कारण बनते हैं। आग भोजन पकाने, मशीनें चलाने तथा अन्यान्य कार्यों में प्रयुक्त होती हैं ? सृजन की दिशा में उसका प्रयोग मानव मात्र के लिए उपयोगी बनता है। ध्वंस में प्रयुक्त हो तो वही आग कुछ क्षणों में दावानल का स्वरूप ग्रहण करके अगाध सम्पत्ति को नष्ट कर डालती है। रचनात्मक कार्यों में आने वाली एक वस्तु उपयोगी बन जाती है। वही ध्वंस में प्रयोग होने पर विनाश का दृश्य उपस्थित करती है।

मानवी व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर उसमें दोनों ही प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। बुद्धि का योगदान तो इन दोनों में ही होता है किन्तु एक के साथ सम्वेदनाओं का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुट जुड़े होने से रचनात्मक बनकर मानव मात्र के लिए उपयोगी बनती है। वहीं दूसरी प्रखर होते हुए भी सम्वेदनाओं से रहित होने के कारण स्वार्थी, संकीर्ण बनकर संकट ही खड़ा करती हैं।

महत्व उपलब्धियों का नहीं उनके साथ जुड़े उद्देश्यों का है। आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए प्रयुक्त होने वाले साधन ही मानवी विकास के आधार बनते। भले ही वे अल्प क्यों न हों, किन्तु महत्व उनका ही है, जो सदुद्देश्य के लिए प्रयुक्त हों। सही अर्थों में वे ही सामाजिक विकास के कारण होते हैं। बढ़े हुए साधन व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगी हो सकते हैं किन्तु आदर्शों के अभाव में तो वे संकट ही खड़ा करते हैं। समीक्षा की जाय तो बुद्धि का सही उपयोग जिस कारण बन पड़ता है—वह है मानवी सम्वेदना। उससे जुड़कर बुद्धि सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ अपनाती तथा सबके लिए उपयोगी बनती हैं। साधनों का प्रयोग श्रेष्ठ कार्यों के लिए तभी हो पाता है। व्यक्ति तथा समाज का उत्थान-पतन इसी आधार पर निर्भर करता है।

बुद्धि के अनुदान भौतिक उपलब्धियों के रूप में सर्वत्र परिलक्षित हो रहे हैं। प्रकृति के एक से बढ़कर एक रहस्य इसके द्वारा खोले जा रहे हैं। वैज्ञानिक शोधों में इसकी ही प्रखरता दिखायी पड़ती है। बहिरंग जगत की सम्पन्नताएँ इसी के द्वारा बढ़ी हैं। किन्तु इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि मनुष्य बुद्धि एवं साधनों की दृष्टि से कितना भी विकसित क्यों न हो गया हो, मानवी गुणों की दृष्टि से उसका पतन ही हुआ है। इसका एक ही कारण है—जिस आधार पर व्यक्तित्व की श्रेष्ठता विनर्मित होती है, उसकी उपेक्षा करना। दिव्य सम्वेदनाओं से रहित होने पर तो पशु-प्रवृत्तियों को ही प्रोत्साहन मिलता है। निरंकुश बुद्धि स्वार्थी, संकीर्ण बनकर सामाजिक विग्रह खड़ा करती है।

उद्देश्यों के अनुरूप मनुष्य की विचारणा चलती तथा उसकी पूर्ति के लिए अनेकों जाल-जंजाल खड़े करती है। मानवी आदर्श यदि भौतिक साधनों की प्राप्ति तक ही सिमटकर रह गया है तो स्पष्ट है कि उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य नीति, अनीति पर ध्यान दिये बिना वह मार्ग अपनायेगा जो उसकी गरिमा के अनुकूल नहीं है। फलस्वरूप संकीर्णता बढ़ेगी। अधिक संग्रह करने की होड़ चल पड़ेगी। मानवोचित आदर्शों से समाज विमुख हो जायेगा। स्पष्ट है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने से परस्पर असहिष्णुता, ईर्ष्या की भावना को ही पोषण मिलेगा। पशु-प्रवृत्तियाँ पनपने तथा नर-पशुओं की संख्या ही बढ़ती जायगी।

इसे समय का अभिशाप ही कहा जाना चाहिए कि बुद्धि ने भौतिक उपलब्धियों को ही अपना आदर्श माना। उसे पाने के लिए सारी सामर्थ्य झोंक दी। प्रयत्न करने पर सफलता का मिलना असंदिग्ध है। सम्पन्नताएँ अनुगामी हुईं, किन्तु इतने मात्र से मनुष्य सन्तुष्ट न हो सका। अधिक प्राप्त करने एवं संग्रह की लचक बनी रही। प्रकृति के सीमित साधनों को यदि एक मनुष्य की झोली में डाल दिया जाय तो भी उसकी असीम तृष्णा की पूर्ति सम्भव नहीं है। अपूर्तिनीय तृष्णा की पूर्ति के लिए बुद्धि ने वह मार्ग अपनाया जो समस्त मानव जाति के लिए हानिकारक है।

अस्त्र-शस्त्रों एवं अन्यान्य विनाशकारी यन्त्रों के निर्माण में बात सुरक्षा की होती तो समझ में भी आती। किन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा इन विनाशकारी यन्त्रों पर नहीं टिकी हैं। उसके लिए तो सामान्य अस्त्र, शस्त्र एवं कुशल सैनिक भी पर्याप्त होते हैं। उनके शौर्य, पराक्रम के विकास से ही राष्ट्र को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा जा सकता है। विनाशकारी बमों तथा अन्यान्य विस्फोटक यन्त्रों में तो बुद्धि की कुटिलता ही झाँकती दिखायी देती है।

समाज में जैसा भी आदर्श होगा, उसके अनुरूप ही प्रवृत्तियाँ पनपेंगी एवं गतिविधियाँ चल पड़ेगी। आदर्श विलासिता और सम्पन्नता को बनाया गया। फलस्वरूप संसार उसी ओर चल पड़ा। श्रेष्ठ आदर्शों एवं सिद्धान्तों के अभाव में गतिविधियों में उत्कृष्टता का समावेश नहीं रहा। कारणों की गहराई में जाने पर एक ही तथ्य का पता लगता है, वह है—बुद्धि द्वारा मानवी सम्वेदना की उपेक्षा की जाना। बुद्धि की निरंकुशता इसी कारण बढ़ी। संकीर्णताओं को प्रोत्साहन मिला। ध्वंसात्मक गतिविधियाँ अपनाकर व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध करने का सिलसिला चल पड़ा।

बुद्धि का महत्व एवं उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है किन्तु यह तभी बन पड़ती है जब उसके साथ सम्वेदनाओं का संयोग हो। बुद्धि की उच्चतम स्थिति को 'प्रज्ञा' के नाम से विभूषित किया गया है। सघन सम्वेदनाओं के साथ जुड़कर ही वह इस उच्चतम स्थिति तक पहुँचती है। सृजनात्मक प्रवृत्तियों को इसी के द्वारा प्रोत्साहन मिलता है। सांस्कृतिक विकास की सारी सम्भावनाएँ इसी पर आधारित हैं। बुद्धि की प्रखरता एवं उससे मिलने वाले भौतिक अनुदानों का सही उपयोग विकसित भाव-सम्वेदनाओं द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

महापुरुषों द्वारा छेड़े जाने वाले अभियानों में इस तत्व को विकसित करने का ही महान् लक्ष्य अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। वे इस तथ्य से परिचित होते हैं कि इसको उभारे बिना मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर नहीं मोड़ा जा सकता। वे साधनों के विकास की उपेक्षा तो नहीं करते किन्तु उनको अधिक प्रधानता भी नहीं देते। उनकी सामर्थ्य मानवोचित गुणों के विकास के लिए ही प्रयुक्त होती है। साधना एवं अन्य आध्यात्मिक उपचारों के पीछे भी इसी उद्देश्य की पूर्ति ही निहित होती है।

आदर्शवादी भाव-सम्पन्नता से ही भौतिक उपलब्धियाँ भी मानव मात्र के लिए उपयोगी बन सकती हैं। बुद्धि की प्रखरता भावनाओं की उदात्तता से जुड़कर ही सर्वतोमुखी विकास का आधार प्रस्तुत कर सकती है। इस तथ्य को हृदयंगम कर उसे विकसित करने के लिए हर सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संवेदनाओं के स्रोत सूखने न पायें

अब्राहम लिंकन को एक सभा में भाषण देने के लिए शीघ्र ही पहुँचना था। उन दिनों वे राष्ट्रपति का कार्यभार सँभाल चुके थे। मोटरकार में बैठे ही उनकी निगाह सड़क के किनारे लेटे एक भिखारी पर पड़ी। उसके दोनों पैर लगभग बेकार हो चुके थे। वह कुष्ठ रोग से ग्रस्त था तथा उसके पैरों से रक्त एवं मवाद बह रहा था। भयंकर पीड़ा से वह छटपटा रहा था। लिंकन ने ड्राईवर को गाड़ी रोकने का आदेश दिया। गाड़ी से उतरकर वे रोगी के निकट पहुँचे। रोगी ने कातर दृष्टि से लिंकन की ओर देखा जैसे सहयोग के लिए मूक रूप से याचना कर रहा हो। इसी बीच निजी सचिव ने लिंकन को याद दिलाया कि सभा में निर्धारित समय पर पहुँचने में विलम्ब हो रहा है। उसमें महत्त्वपूर्ण निर्धारण होने एवं निर्णय लिए जाने हैं। अतएव वहाँ अविलम्ब पहुँचना अनिवार्य है।

लिंकन ने सचिव की बात को अनसुनी करते हुए कहा "महोदय ! इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है। सभा से सम्बन्धित विषयों पर निर्णय तो कुछ घण्टों के बाद भी लिए जा सकते हैं किन्तु पीड़ा से कराहते इस भाई की देखभाल न की गई तो यह दम तोड़ देगा। मनुष्य होने के नाते मानवी दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य एवं दायित्व सामने प्रस्तुत है जिसका निर्वाह अविलम्ब किया जाना आवश्यक है।" लिंकन ने बिना किसी हिचक के उसके रुग्ण शरीर एवं गन्दगी की परवाह न करके कन्धे को सहारा दिया और उसे जीप में बिठा लिया। समीपवर्ती अस्पताल में रोगी की भर्ती कराकर तथा देखरेख उपचार की आवश्यक व्यवस्था बनाकर रोगी से विदा लेने पहुँचे। रोगी की आँखों से कृतज्ञता के आँसू बह चले। लिंकन ने उसक मस्तक सहलाया और सभा में सम्मिलित होने के लिए चल पड़े।

मानवी गुणों में सहृदयता का सर्वोपरि स्थान है। धन, बुद्धि, प्रतिभा, योग्यता सम्पन्न होते हुए भी जिस व्यक्ति में इसका अभाव है उसे पिछड़ा, एकांगी और अपूर्ण ही माना जाएगा। समृद्धि, वैभव एवं बौद्धिक प्रखरता मनुष्य के लिए साधन मात्र जुटा सकते हैं किन्तु वे आधार नहीं दे पाते जिनसे परस्पर एक-दूसरे के प्रति समस्त समाज के प्रति आत्मीयता उमड़ती हो—पीड़ा पतन को देखकर सेवा-सहयोग के लिए हृदय मचलता हो। संसार भर में जितनी भी महापुरुष अथवा महामानव हुए हैं उनके साथ चाहे अन्य कोई विशेषतायें भले न जुड़ी रही हों किन्तु सहृदयता प्रचुर परिमाण में थी। दया, करुणा के भाव से उनका हृदय लबालब भरा रहता था। फलस्वरूप अपनी इस विशेषता के सहारे दूसरों के हृदय को जीतने में समर्थ हो सके। दुःख, दर्दों को—पीड़ा पतन को देखकर उनकी करुणा फूट पड़ती थी।

ईश्वरचन्द विद्यासागर नियत समय पर अध्यापन कार्य के लिए विद्यालय जा रहे थे। एक गरीब बालक ने एक पैसा माँगा। वे चलते-चलते रुक गए और बच्चे से पूछा—"तुम पैसे का क्या करोगे ?" लड़के ने कहा मैं भूखा हूँ—चना खरीदकर खाऊँगा। ईश्वरचन्द्र ने फिर पूछा—यदि हम दो पैसा दे दें तो क्या करोगे ? लड़का प्रसन्न होकर बोला एक पैसा का चना खाऊँगा और दूसरे से खाने की कुछ वस्तुएँ लेकर माँ को दे दूँगा। उन्होंने पुनः प्रश्न किया अगर हम तुम्हें दो आने दे दूँ, तब ? लड़का कहने लगा तब में उसके आम खरीदकर बेचूँगा और जो आमदनी होगी उससे अपना तथा माँ का पेट भरूँगा। विद्यासागर उसकी मातृभक्ति एवं भविष्य के प्रति सही दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने एक रुपया जेब से निकालकर दिया और चल दिए।

कुछ वर्ष बाद वे बाजार से होकर जा रहे थे इतने में एक लड़के ने सामने से आकर उनके पैर छुए। पूछने पर मालूम हुआ कि यह वही लड़का है जिसको वर्षों पूर्व इश्वरचन्द्र ने एक रुपया दिया था। वह एक छोटी दुकान खोलकर उसकी आय से अपना तथा अपनी माता का निर्वाह सम्मानपूर्वक कर रहा था। रुँधे स्वर में वह बोला "बाबूजी यह सब आपके ही आशीर्वाद अनुदान का प्रतिफल है। उस दिन आपने जो एक रुपया दिया था उसी से सामानों की खरीद-बिक्री करता रहा और अपनी पूँजी बढ़ाता रहा। अब वह स्थिति बन गई है कि अपना गुजारा सम्मानपूर्वक कर सकूँ। मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा।"

साधनों के अभाव में भी कितने व्यक्ति आगे नहीं बढ़ पाते। उपरोक्त अनुकरणीय उदाहरण तो कितने समर्थ और सम्पन्न प्रस्तुत कर सकते हैं। इस दिशा में कदम उठाने में मात्र हृदय की कठोरता ही आड़े आती है।

ऐसे सुयोग एवं सुअवसर हर मनुष्य के जीवन में कभी न कभी आते हैं। अपने ही स्वार्थ की बात सोचते रहने वाले संकीर्णमना निष्ठुर व्यक्ति ऐसे अवसरों से कन्नी काटने का प्रयास करते हैं जबकि हृदय सम्पन्नों की करुणा उन्हें बड़े से बड़ा जोखिम उठाने को भी बाध्य करती है। घटना नई दिल्ली की है जब पंजाबी सूबा को लेकर साम्प्रदायिकता का विष फूट पड़ा था और इस क्षेत्र में हिंसा का नंगा नाच होने लगा। सैकड़ों व्यक्ति मारे गये। एक अशिक्षित रिक्शा चालक एक महिला तथा नन्हे शिशु को लिए मुख्य सड़क से निकल रहा था। साथ में महिला का सामान भी था। दंगा शुरू होते ही महिला अपना सारा सामान छोड़कर चाँदनी चौक की एक गली में दौड़कर भाग गई। उसका सामान तो दूर रहा बच्चे का भी ध्यान न रहा। चारों ओर से पत्थर फिक रहे थे। कहीं-कहीं से गोलियों की आवाज भी गूँज रही थी। चाहता तो भागकर रिक्शा चालक भी अपनी सुरक्षा कर सकता था किन्तु रिक्शे पर एकवर्षीय मासूम बच्चे की सुरक्षा का प्रश्न था, उसने सोचा फेंके जाने वाले पत्थरों से बच्चे की जान भी जा सकती है। अविलम्ब उपाय सोचना होगा। बच्चे को गोद में लेकर अपने सिर को ढाल का काम लेते हुए वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

रिक्शे पर ही बैठ गया। निकट से होकर भागने वालों ने समझाया कि क्यों अपनी जान देने पर तुला है। किन्तु रिक्शे वाले के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बीच सड़क में होने के कारण चारों ओर से पत्थर रिक्शा चालक के ऊपर फिकने लगे। शरीर के विभिन्न भागों से खून की धार बह चली। बच्चे की गोद में ही लिये हुए वह अचेत हो गया। घण्टों बाद जब उसे होश आया तो अपने को पुलिस से घिरा हुआ पाया। सामने ही सजल नेत्रों से वह महिला देख रही थी। रुँधे गले से वह बोली—"भैया तुमने मेरे बच्चे को आज नया जीवन दिया है। मैं जीवनपर्यन्त तुम्हारी ऋणी रहूँगी।" कुछ पैसे निकालकर महिला ने रिक्शा चालक को देने चाहे किन्तु उसने यह कहते हुए लेने से इन्कार कर दिया कि "मनुष्य होने के नाते यह तो मेरा कर्तव्य था।"

यह आन्तरिक करुणा ही मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है। शरीर बल, बुद्धि बल एवं धन की दृष्टि से समर्थ होते हुए भी जिसका अन्तःकरण सूखा और कठोर है—पीड़ा और पतन को देखकर पिघलता नहीं, यह समझना चाहिए कि यह सही अर्थों में मानव कहलाने का अधिकारी नहीं। स्वामी विवेकानन्द ने इस तथ्य को अपने एक भाषण में इस प्रकार प्रस्तुत किया था "बुद्धिमान होना अच्छी बात है। बुद्धिमान और भाव सम्पन्न होना और भी अच्छी बात है किन्तु यदि दोनों में चयन की बात आये तो मैं बुद्धिमान होने की तुलना में भाव सम्पन्न बनना अधिक पसन्द करूँगा। हृदय की संवेदनशीलता के अभाव में बुद्धि निरंकुश और कठोर बन जाती है।"

विश्व के मूर्धन्य महामानवों, महापुरुषों ने हृदय की महानता को विकसित करने पर जोर दिया है। उनके प्रयास भी अन्तः संवेदनाओं को उभारने और उसे सत्प्रयोजनों में—पीड़ा-पतन के निवारण में नियोजित करने के लिए ही अधिक लगे रहे हैं। यही वह आधार है, जिसके सम्बल से मानवता गौरवान्वित होती है और समाज में सुख-शान्ति से भरी-पूरी परिस्थितियाँ विनिर्मित होती हैं। हर व्यक्ति को अपनी इस आन्तरिक विशेषता को उभारने एवं विकसित करने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिये।

सौजन्यता की अभ्यर्थना

व्यक्ति और राष्ट्रों के जीवन में श्री-शक्ति, समृद्धि, आत्म-सुख, आत्म-सन्तोष, की दिव्य शक्तियों का अवतरण मानवता की जिस पृष्ठभूमि पर आधारित है उसका नाम है—सौजन्यता। दया, उदारता, प्रेम, सहानुभूतिमय जीवन की सरलता का नाम ही सौजन्यता है। मनुष्य के आन्तरिक सौन्दर्य की व्यावहारिक अभिव्यक्ति का नाम ही सौजन्यता है।

सौजन्यता के उच्चस्तरीय वातावरण में राष्ट्र फलते-फूलते हैं। भूगोल में जापान इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। लोगों का अनुमान और सत्यता भी यही है कि उन्नति के पूर्व वहाँ के लोगों ने नैतिकता और ईमानदारी का उच्च स्तरीय वातावरण तैयार किया। वह परिस्थितयाँ विनिर्मित कीं जिनसे मानवीय अन्तःकरण से भलाई का स्रोत उमड़ने लगे। यह स्थिति जब बनी तो लोगों में शक्ति, चैतन्यता, क्रियाशीलता, पवित्रता, कर्मनिष्ठा भी जगी। गुण और कर्मठता के सात्विक समन्वय ने जापान को ऊँचे उठा दिया।

हमारे लिये तो वह समग्र इतिहास है। भारत का अतीत सौजन्यता की प्रतिकृति रहा है। इसी से यहाँ का राष्ट्रीय जीवन भी खुशहाल रहा है। आज की परिस्थितियाँ विकृत हैं पर उन शक्तियों का अवतरण पुनः संभाव्य है जो पहले थीं और विकास तथा विश्व शान्ति के लिये अब जिनकी सर्वोच्च आवश्यकता है।

जापान ने उसके लिये प्रयत्न किया है। परिस्थितियाँ अनायास नहीं उभर पड़ीं। उभारी गई हैं। सौजन्यता पैतृक नहीं शोध की गई उसे सँवारा गया है। जापान ने शोध की है। हम उसे आध्यात्मिक स्तर पर और भी सुन्दर रूप में उसे प्रतिष्ठित कर सकते हैं। यह कोई असम्भव बात नहीं है।

भ्रष्टाचार, अनैतिकता, बेईमानी जापान में भी थी। एक दिन ऐसा था कि वहाँ बुराइयाँ पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थीं। लोगों में परस्पर अविश्वास था। खुदगर्जी इतनी थी कि किसी दूसरे के हित की किसी को परवाह ही न थी। राह चलते महिलाओं पर लोग शब्दकसी करते थे। चोरी रिश्वतखोरी आम बात थी। सार्वजनिक स्थानों पर निषेध होने पर भी धूम्रपान करते थे। मिलावट होती थी, कम तोला जाता था आदि, अनैतिकता का बाजार गर्म था।

सौजन्यता आन्दोलन के जनक नाओटाका हयाशी ने एक दिन देखा मजदूर लोग बस की टिकट के लिये एकत्रित हैं। किसी को अपने नम्बर और क्रम की चिन्ता न थी। कोई अनुशासन न था। कोई किसी की सुनता न था। अपने नम्बर के लिये धक्का-मुक्की हो रही थी। हयाशी ने एक मजदूर को हाथ पकड़कर समझाया—"भाई यदि पंक्तिबद्ध होकर अपना काम करलो तो सहूलियत और सुविधा से शीघ्र ही सबको टिकट मिल जायें।" इसके बदले में हयाशी को जोर का घूँसा मिला। नाक टूटते-टूटते बची।

यह एक सामान्य घटना थी। पर लगता है कि सामान्य शब्द मूढ़जन्यों के लिये बना है। विचारशील व्यक्ति छोटी से छोटी घटना को भी असामान्य मानते हैं। हयाशी ने अनुभव किया कि राष्ट्र की अनुशासनहीनता और दुश्चरित्रता एक दिन उसे चौपट कर सकती है। समृद्धि और सफलता की विद्यमान परिस्थितियों को भी कुचल कर रख दे सकती है। हयाशी 'अपराधों के लिये दण्ड' के पक्ष में थे और उन्होंने इतने भर को नाकाफी समझा। उन्होंने तब नागरिकों के अन्तःकरणों की स्वतः स्वच्छता और पवित्रता को जगाने की आवश्यकता अनुभव की। जापान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के जीवन में एक नये अध्याय की शुरूआत यहीं से हुई। देश के प्रबुद्ध लोगों ने इस आन्दोलन को पूर्ण समर्थन और सहयोग प्रदान किया जिससे असम्भव दीखने वाले महत्तर आयोजनों की सफलता असंदिग्ध हो गई और लोगों का उसमें विश्वास बढ़ता गया। विचारशील लोगों के संगठित प्रयत्नों में बड़ी शक्ति होती है। जब संगठित प्रयास शुरू हुये तो वहाँ पूरब से पश्चिम को चलने वाली हवा का रुख भी बदल गया। बुराइयों के स्थान पर अच्छाइयों की पहल प्रारम्भ हुई। हयाशी ने उस घटना की रिपोर्ट थाने में कर दी। अखबारों ने इस घटना को शीर्ष स्थान देकर छापा ऐसे ही जैसे किसी अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के अथवा रोमाण्टिक घटना के समाचार मोटे हैडिंग में छापे जाते हैं।

इस समाचार को लेकर टोक्यो विश्वविद्यालय के कुलपति कामासेई जी, प्रसिद्ध प्रकाश संस्था मेनिची प्रेस के अध्यक्ष, रासायनिक उद्योग एसोसियेशन के प्रधान, जापान के भूतपूर्व वित्तमन्त्री, टोक्यो महिला विद्यालय की भूतपूर्व उपलकुलपति और अन्य कई विद्वानों ने एक विचार गोष्ठी की और बढ़ती हुई अनैतिकता पर रचनात्मक दृष्टिकोण रखकर विचार-विनिमय किया।

प्रबुद्ध व्यक्तियों के विचार यदि निरुद्देश्य न हों तो उनमें बड़ी शक्ति होती है। संगठित प्रयत्नों का तो कहना ही क्या ? विद्वान मंडली ने 'सौजन्यता आन्दोलन' को जन्म दिया। देश के नागरिकों को अच्छे, अनुकरणीय और प्रेरक समाचार, घटनायें ढूँढ़ने और भेजने का आग्रह किया गया ताकि अच्छाइयों को उभारा जा सके।

लोक-यश, सम्मान और प्रतिष्ठा एक बहुत बड़ी शक्ति है यदि इसके लिये लोग बुरे से बुरे कार्य कर सकते हैं तो अच्छे काम भी अवश्य कर सकते हैं। शर्त यही है कि लोगों को अच्छे कार्यों के लिये सम्मान भी मिलना चाहिये। यह बात आज की स्थिति से और भी स्पष्ट है। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं में हत्या, लूट-पाट, व्यभिचार और बुराइयों के समाचारों को प्रचुर स्थान मिलता है। सिनेमाओं के प्लाट बुराइयों पर ही बने हुये जान पड़ते हैं। सार्वजनिक जीवन में अच्छे अवतरणों के लिये इतना कम स्थान मिलता है कि वह लोगों की निगाहों तक भी नहीं पहुँच पाते। फलस्वरूप अच्छे कार्यों से जो अच्छी प्रेरणायें उत्पन्न होनी चाहिये थीं, वह दबी की दबी रह जाती हैं और बुरे समाचार और उनकी दुर्द्धर्ष शक्तियाँ प्रखर होती चली जाती हैं। अच्छाइयाँ दबती रहती हैं और बुराइयाँ उभरती जाती हैं। ऐसा केवल इसलिये होता है कि बुराइयों का प्रबल विज्ञापन बिना मूल्य होता है। अच्छे समाचारों को न ढंग का स्थान मिलता है न उन पर आकर्षक रंग चढ़ाया जाता है।

अच्छी घटनायें न होती हों तो बात नहीं। दुनिया में अभी भी अच्छाइयाँ अधिक हैं। ढूँढ़ने वालों को इसका पता चलता है। जापान में जब लोगों को ऐसे समाचार भेजने का आग्रह किया गया तो नागरिकों के दृष्टिकोण भी बदलने लगे। करने वालों ने आत्म-प्रतिष्ठा के लिये अच्छे काम शुरू किये और उस सम्मान की सूचना देने का सहभाग पाने के लिये दूसरे लोगों ने समाचार प्रकाशनों को भेजने प्रारम्भ किये।

'छोटे मोटे सौजन्य' आन्दोलन को प्रसारित करने के लिये एक समिति नियुक्त की गई। यह कार्यालय काँडा मुहल्ले में अभी भी काम कर रहा है। इसके डायरेक्टर टोमीत्सुकाहारा हैं। इस समिति के स्थायी और अस्थायी सदस्य भी बनाये जाते हैं। अच्छे काम करने वालों को इनाम भी दिया जाता है और सम्मान भी। समाचार भेजने वालों को एक 'बिल्ला' दिया जाता है। यह कहने वाली बात नहीं कि इससे लोगों की अच्छे कामों में आस्था बढ़ती है, विश्वास बढ़ता है। जापान की वर्तमान स्थिति तो है ही उसी का सत्परिणाम।

सौजन्यता आन्दोलन में जापानी जनता ने खुलकर साथ दिया। लोगों ने प्रेरक समाचार भेजे और अच्छे कामों में निष्ठायें भी व्यक्त कीं। एक अमेरिकी पर्यटक जापान गये। साथ में उनकी धर्मपत्नी भी थीं। उन्होंने एक जापानी से किसी स्टेशन तक पहुँचने का रास्ता पूछा। उस व्यक्ति ने रास्ता तो बता दिया पर उसने अनुभव किया रास्ता अस्पष्ट-सा है कहीं यह लोग भटक न जायें। यद्यपि उसे अत्याधिक आवश्यक काम था पर अपने देश की नैतिक स्तर को उच्च साबित करने के लिये उसने उस दिन घाटा सहा और उन दम्पत्ति को साथ लेकर स्टेशन तक पहुँचाया।

एक स्त्री रेलवे का सफर कर रही थी। सामने की सीट पर बैठा व्यक्ति ऊँघ रहा था। उसका टिकट गिर गया। स्त्री ने उसका टिकट उठाकर सुरक्षित रखा और नींद टूटने पर वापस कर दिया। उसके सामान की भी उसने तब तक पूरी चौकसी रखी।

एक निर्धन परिवार का लँगड़ा लड़का स्कूल जाता था। पैदल चलने में बच्चा बहुत कष्ट पाता था। इसका पता एक टैक्सी ड्राइवर को चला। उसने अपनी साथियों से बातचीत की। १२५ टैक्सी ड्राइवरों ने मिलकर क्रम वार बच्चे को प्रतिदिन स्कूल पहुँचाने की व्यवस्था कर दी।

इन छोटे-छोटे उदारता, दया और सौजन्यता पूर्ण कार्यों का बच्चों तक में प्रभाव पड़ा। उन्होंने और भी उत्साह व्यक्त किया। एक दस वर्षीय बच्ची कहीं जा रही थी। रास्ते में एक स्त्री जा रही थी उसकी पीठ पर सोये बच्चे की टोपी उड़कर गिर गई। उस बालिका ने दौड़कर टोपी उठाई और उक्त बच्चे वाली महिला को सौंप दिया।

यह घटनायें बहुत छोटी थीं पर सौजन्यता को उभारने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनसे लोगों को आध्यात्मिक सुख मिला फलतः ५ वर्ष में ही जापान के लोगों में ईमानदारी, अनुशासन, न्यायप्रियता, उदारता और दया की आस्थायें सुदृढ़ हो चलीं।

इस आन्दोलन की सर्वोच्च प्राथमिकता देशवासियों ने अनुभव की और पूर्ण सहयोग दिया। कार्यक्रम और अपीलें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभिन्न उपायों द्वारा प्रसारित की गईं जिससे वहाँ की जनता इस दिशा में जाग पड़ी। लोग अच्छे कामों में गर्व अनुभव करने लगे। ठीक ही है यदि लोग बुरे कामों का प्रदर्शन करने में घमण्ड व्यक्त करते हैं तो अच्छाइयों के प्रति स्वाभिमान और गर्व होना सन्तोषप्रद क्यों न होगा ?

जापान की यह शोध हमारे लिये भी अनुकरणीय हैं। छोटे-छोटे दयापूर्ण कार्यों को सम्मान और प्रतिष्ठा देकर हम संसार में अच्छाई का अभिवर्द्धन कर सकते हैं। यह इस युग का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इससे राष्ट्र की श्री शक्ति और समृद्धि को भी प्रखर बनाया जा सकता है। आध्यात्मिक सुख तो उससे सहज और स्वाभाविक तौर पर ही मिलने वाला है।

जड़ता छोड़ें—प्रगतिशीलता अपनाएँ

प्रगतिशीलता जीवन का लक्षण है और जड़ता मृत्यु का। जो राष्ट्र और समाज प्रगतिशीलता के हामी होते और उसको अपने आचार-विचार में क्रियान्वित करते हैं, वे संसार में अग्रणी बने रहते हैं। अन्य समाजों एवं राष्ट्रों पर उनका प्रभाव बना रहता है। ऐसे प्रभावशाली राष्ट्रों एवं समाजों के व्यक्ति संसार के जिस कोने में जाते हैं, आदर पाते हैं। प्रगतिशील राष्ट्रों की ही सभ्यता-संस्कृति संसार में प्रसार पाती है और इतिहास के अक्षरों से लेकर धरती के वक्षःस्थल पर प्रगतिशील राष्ट्र व समाज अनन्त काल तक चिरजीवी बनकर अमिट रहते हैं।

संसार में शायद ही कोई ऐसा राष्ट्र व समाज हो, जो चिरन्तन आयु और अपनी सभ्यता-संस्कृति का प्रसार इस धरा-धाम में न चाहता हो। किन्तु यह सौभाग्य कोई-कोई पाता है। यह सौभाग्य पाने वालों में होते नहीं समाज एवं राष्ट्र हैं, जो प्रगतिशील होते हैं। एक बार यदि संसार के सारे राष्ट्र व समाज समान रूप से प्रगतिशील बन जायें तो शीघ्र ही संसार से शोषण, उत्पीड़न और गुलामी के दोष दूर हो जायें। किन्तु मुश्किल तो यह है कि एक समय में कुछेक राष्ट्र व समाज प्रगतिशील हो पाते हैं, बाकी अपनी सड़ी-गली पुरातन परम्परा की बेड़ी में जकड़े यथास्थान घसिटते रहते हैं, जिसका फल यह होता है कि वे कतिपय प्रगतिशील समाज व राष्ट्र शेष संसार पर हावी हो बैठते हैं और उसे मनमाने ढंग से हाँकते और उसका शोषण किया करते हैं। ऐसी दशा में शोक-सन्तापों की अभिवृद्धि के कारण यह संसार जलता हुआ नरक-कुण्ड बना रहता है।

प्रगतिशील बनने के लिये इसका ठीक-ठीक अर्थ समझ लेना भी आवश्यक है क्योंकि इसके नाम पर आज बहुत-सी कुप्रवृत्तियों को आश्रय दिया जाने लगा है। आज लोग आदर्शवाद को छोड़कर भोगवाद और सारल्य सौम्यता को त्यागकर प्रदर्शनवाद को ही प्रगतिशीलता मानने लगे हैं। मनमाने ढंग से जीवन बिताना और किसी सामान्य सामाजिक अनुशासन को मानना भी प्रगतिशीलता का लक्षण माना जाने लगा है जबकि यह प्रगतिशीलता नहीं, बल्कि उच्छृंखलता है।

वास्तविक प्रगतिशीलता उस क्रियाशील विवेक बुद्धि को कहते हैं, जो मनुष्य को आगे देखने और सानुकूल उन्नतिपथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा और शक्ति सामर्थ्य प्रदान कर सके। जिन मनुष्यों को अपने प्रत्येक व्यवहार में उसके अच्छे बुरे परिणाम का ध्यान रहता है, जिनको यह ज्ञान रहता है कि वे क्या करना चाहते हैं, क्या कर रहे हैं, किसलिये कर रहे हैं और उसका क्या लाभ है ? वे वास्तव में प्रगतिशील व्यक्ति हैं। जिसको कोई व्यवहार करते समय उसके हानि-लाभ का ज्ञान न हो और केवल आदतन, देखा-देखी अथवा परम्परा पालन रूप करता चला जाये वह प्रगतिशील नहीं, जड़-मात्र ही माना जायेगा।

आज भारतीय समाज निःसन्देह इन मानों में बहुत कुछ जड़ हो गया है। उसकी बौद्धिक प्रगतिशीलता कुण्ठित हो गई है। उसका वह स्वतन्त्र चिन्तन धूमिल हो गया, जिसके बल पर वह आज की वास्तविक आवश्यकतायें समझ सके और उनको पूरा करने के लिये प्रयत्न कर सके। आज शताब्दियों से वह जिस दुर्गति के गर्त में पड़ा सड़ रहा है, उसी में पड़े रहने में सन्तोष अनुभव कर रहा है। जीवन को अच्छी प्रकार की एक सुव्यवस्थित ढंग से जीने की प्रौढ़ चेतना उसमें दृष्टिगोचर नहीं होती। वह जैसे-तैसे अस्तव्यस्तता के साथ बहुमूल्य जीवन को ठेलकर ठिकाने भर लगा देना ही जिन्दगी का लक्ष्य समझ रहा है। उसे संसार में आगे बढ़ना है दूसरे के प्रभाव से मुक्त होना है, अपने में उन्नति एवं विकास की परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी है और एक ऐसा आदर्श जीवन जीना है, जो दूसरों के लिये अनुकरणीय बनकर उनको वास्तविक सुख-शान्ति की ओर ले जा सके।

भारतीय समाज में जब तक जड़ता बनी रहेगी, वह किसी भी क्षेत्र में उन्नति न कर सकेगा। स्वतन्त्र हो जाने पर भी अन्य लोग उसकी अप्रगतिशीलता से लाभ उठाते हुए अपने प्रभाव में रखे रहेंगे, उसे डराते, धमकाते और विविध प्रकार की कुटिल एवं कूटनीतियों से उसका शोषण करते रहेंगे। केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता-भर मिल जाने से ही समाज व राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। राजनीतिक स्वतन्त्रता तो उन्नति एवं विकास करने का एक अवसर मात्र है, जिसका उपयोग करके उन्नति तो भारतीय समाज को अपने सत्प्रयत्नों के बल पर ही करनी होगी।

भारतीय समाज की गणना आज संसार के पिछड़े समाजों में की जाती है और ईमानदारी की बात तो यह है कि हमारा समाज वास्तव में एक पिछड़ा समाज है। इस सत्य को स्वीकार करते हुए आज भारतीयों का प्रमुख कर्तव्य है कि वह इस कलंक को अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन पर से धो डालें।

संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों के समकक्ष होने, उनसे बराबरी का व्यवहार पाने और अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान को निरापद करने के लिये आवश्यक है कि हम अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक दुर्बलताओं को दूर करें और अपने में वास्तविक प्रगतिशीलता का गुण उत्पन्न करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रगतिशीलता की प्राप्ति अपने में स्वतन्त्र चिन्तन विकसित किये बिना नहीं हो सकती, परम्पराओं, प्रथाओं एवं चली आ रही पुरानी रीति, नीतियों एवं अन्ध-परम्पराओं से प्रेरित होकर चलना छोड़कर किसी रीति-नीति को अपनी स्वतन्त्र-चिन्तन से औचित्य के तराजू पर तोल कर अपनाना ही प्रगतिशीलता है। कोई परम्परा अथवा प्रथा केवल इसलिये अपनाये रहना कि वह प्राचीन काल से चली आ रही है अथवा किसी रीति-नीति को केवल इसलिये अपना लेना कि वह आधुनिक है, अप्रगतिशीलता है। प्रगतिशीलता तो इसमें है कि हम किसी भी रीति-नीति को प्राचीनता अथवा अर्वाचीनता के आधार पर न अपनाकर उसकी उपयोगिता के आधार पर अपनायें। अनुपयोगी प्राचीन परम्परा को छोड़ने और उपयोगी आधुनिकता को अपनाने का साहस रखने वाले ही प्रगतिशील कहे जा सकते हैं।

आज यदि भारतीय समाज को उन्नति करना है, एक सबल एवं सशक्त राष्ट्र बनकर, दूसरों के प्रभाव एवं निर्भरता से मुक्त होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्राप्त करना है, संसार के अन्य उन्नत राष्ट्रों के समकक्ष अपना सम्मानपूर्ण स्थान बनाना है, तो उसे प्रगतिशील बनकर अपनी सारी अन्ध-परम्पराओं को निकाल फेंकना होगा अनुपयोगी एवं हानिकारक प्रथाओं को त्यागना होगा और तिलांजलि देनी ही होगी उन कुरीतियों को जो प्रगति-पथ पर चट्टान की तरह अड़ी हुई मार्ग रोके हुए हैं।

आज केवल अतीत गौरव के नशे में झूमते रहने से काम नहीं चलेगा। आज संसार की परिस्थिति को खुली आँखों से देखना होगा और वस्तु-स्थिति को स्वतन्त्र बुद्धि से समझना ही होगा, तभी हममें यह चेतना जागृत हो सकेगी, जिसके प्रकाश में अपने कर्तव्य को ठीक-ठीक देख सकेंगे और यदि अतीत की समीपता हमें वांछनीय है तो फिर हमको निकट अतीत तक ही नहीं, अपने देश के आदिम अतीत तक की यात्रा करनी होगी और अपने समाज की नव-रचना के लिये उन वैदिक युगीन परम्पराओं एवं रीतियों-नीतियों को लाना होगा, जो आज के समय की आवश्यकता पूरी कर सके और एक उज्जवल सामाजिक भविष्य के लिये उपयोगी हो सकें।

चार-छः सौ साल अथवा हजार-दो-हजार वर्ष तक के अतीत काल को वर्तमान अथवा भविष्य के लिये सामाजिक आधार बनाना ठीक न होगा क्योंकि यह अवधि भारत का अन्धकार युग है और इस समय में शुद्ध, सात्विक तथा उपयोगी वैदिक रीति-नीतियाँ, आक्रान्ताओं के षड्यन्त्रों एवं मतमतान्तरों के दूषित प्रभाव से विकृत हो गई है और आज तक उसी परम्परा में हमारे समाज को जकड़े चली आ रही हैं।

अब भारत स्वाधीन हो गया है। जिस प्रकार पराधीनता के अन्ध-युग की परम्पराओं एवं सामाजिक विकृतियों को हम विवशतापूर्वक अब तक ढोते चले आये हैं, उसी प्रकार उनको आज के स्वाधीन प्रकाश में त्याग दें। इसी में उन्नति है, प्रगति है और कल्याण है।

व्यक्ति का ही नहीं समाज का भी निर्माण

आज हम जिधर दृष्टिपात करते हैं उधर ही भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, कर्त्तव्यहीनता, दुर्व्यसन, फैशन परस्ती और असंयम् का नग्न-नृत्य दृष्टिगोचर हो रहा है। मानव दानव बना हुआ है। उसके सोचने के दृष्टिकोण बदल रहे हैं। वह अनेक विकृतियों और भ्रान्तियों का शिकार हो रहा है। इसका मूल कारण सामाजिक विकृतियाँ ही हैं। न परम्पराएँ सही हैं और न रीति-रिवाजों में ही शुद्धता और मौलिकता रही है।

यदि विचार किया जाय तो यह जानने में तनिक भी विलम्ब नहीं लगेगा कि विकृतियाँ और अनैतिकता के प्रचार-प्रसार के लिए हमारे यहाँ प्रत्यक्ष रूप से कोई पाठशाला नहीं चलती है। स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रमाण और साधन दृष्टिगोचर नहीं होने पर भी, एक-दूसरे के क्रिया-कलापों के अनुकरणों से अनैतिक प्रशिक्षण मिल रहा है।

चोरी और अनैतिकता के अपराध में पकड़ा एक व्यक्ति जाता है और सजा का भागीदार भी वही होता है, परन्तु क्या आप इसमें उस व्यक्ति का ही एक मात्र दोष मानते हैं ? चोरी और अनैतिकता की प्रवृत्ति क्या उस व्यक्ति विशेष की है ? क्या समाज का इसमें कोई अनुदान नहीं ? यह बात नहीं मानी जा सकती कि यह केवल उस व्यक्ति का ही दोष है जिसने चोरी की है।

मानवीय दृष्टि से देखा जाय तो चोर में चोरी की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव समाज से ही हुआ है। मनुष्य अनुकरणप्रिय प्राणी है। जैसा देखेगा और सुनेगा वैसा ही करने लगेगा। समाज को सुधारना ही व्यक्ति को सुधारना है। बालकों की समुचित शिक्षा-दीक्षा न होना, उन्हें नैतिक ढाँचें में न ढालना आदि दोष व्यक्ति मात्र के नहीं हो सकते समाज ही का तो दोष है। आज झूठ बोलकर छल एवं धोखा देकर धनपति बन जाने पर भी, उसका समाज में सम्मान होता है। वहीं दूसरी ओर सज्जन और ईमानदार व्यक्ति के पेट भरने की यथोचित व्यवस्था भी नहीं होती। इस प्रकार के अनेक कारण कम बुद्धि वाले लोगों में अनैतिकता की बातें भर देते हैं।

जिस व्यक्ति को बाल्यकाल से ही तीखे-चटपटे, बासी तथा गरिष्ठ खाद्य पदार्थ खाने को मिले हैं और परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य, उसका मन विकृत हो रहा हो तो—इसमें व्यक्ति का क्या दोष ? यह सारा दोष उसके निर्माण करने वाले समाज का ही है जिसने अपनी प्रारम्भिक पाठशाला में उस बालक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया।

जिन घरों में बीड़ी और शराब पी जाती हो तथा जिनमें चोरी, जुआ, छल, फरेबी द्वारा धन का उपार्जन किया जाता हो उस घर के बालकों में उपर्युक्त दुर्व्यसन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं अवगुण अवश्य ही आवेंगे। उन घरों के बालकों को कोई सदाचारी देखना चाहे तो कभी सम्भव नहीं हो सकता।

सुधार प्रक्रिया जीवनारम्भ से ही लागू होती तो इससे कुछ लाभ भी होता पर एक व्यक्ति समाज के कुसंस्कार लेकर कुसंस्कारी बन गया तो इसमें व्यक्ति विशेष को ही इतना दोष देना बुद्धि संगति प्रतीत नहीं होता। इन दोषों के निर्माण में समाज का हाथ था, जिसने इनको व्यक्ति में परिपक्व होने का अवसर प्रदान किया।

मानव की बौद्धिक एवं भौतिक उपलब्धियों के निर्माण में जो श्रेय सम्मान सामाजिकता को दिया जा सकता है, उसकी अवनति और पतन का उत्तरदायी भी समाज ही होगा। क्या मनुष्य जन्म से खराब और कुसंस्कारी होता है ? नहीं अधिकतर संस्कार-निर्माण में उसके वातावरण का हाथ मुख्य रूप से रहता है। बाल्यकाल में उसे जो कुछ खिलाया-पिलाया जाता है, वह खाने-पीने लगता है जिन संस्कारों में उसका लालन-पालन होता है उसी के अनुकूल वह जीवन पर्यन्त चलता है। यहाँ तक कि खाने पीने से लेकर वस्त्र पहनने, उठने, बैठने, आचार, व्यवहार करने का अनुसरण बड़ों की आदतों के अनुसार ही बालक करने लगता है। गुण, कर्म और स्वभाव का विकास कुटुम्ब और समाज की पाठशाला में ही होता है।

माता-पिता और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संस्कार स्वयमेव ही बालकों में आते हैं। जो संस्कार और आदत बचपन में पड़ जाती है, उसका प्रभाव जीवन भर रहता है। जैसा समाज का ढाँचा और स्तर होता है, उसके नागरिक उसी ढाँचे और स्तर में विकसित होते हैं।

मनुष्य ने आज जितनी भी प्रगति की है, उसका सम्पूर्ण श्रेय समाज को है। सृष्टि के अन्य सम्पूर्ण प्राणी तो जन्म से ही स्वावलम्बी हो जाते हैं परन्तु विचारा मनुष्य तो बहुत अधिक समय तक पराश्रयी और परावलम्बी रहता है। वह कच्चा शरीर, कच्ची बुद्धि लेकर जन्म लेता है और समाज का रस पी, पीकर बड़ा होता है। माँ उसे दूध पिलाती है। पिता कपड़े पहनाता है। घर पर भाइयों और बहनों से वह आदतें सीखता है, अध्यापक और गुरुजन उसे शिक्षा देकर सुसंस्कारवान बनाते हैं। पुस्तकें उसकी प्रतिभा को प्रखर करती है।

ऐसी अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व जब समाज उठाता है—तभी मनुष्य कुछ स्वतन्त्र चिन्तन, श्रेष्ठ कार्य अथवा आविष्कार और अन्वेषण करने में समर्थ हो पाता है। बिना समांज के एक पग भी आगे बढ़ना कठिन-सा है।

इसी कारण हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने समाज की गरिमा को गम्भीरता से अनुभव किया और मानवीय प्रगति में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान माना। सामाजिकता ही मानवीय प्रगति की एक मात्र जननी है। इससे वे भली-भाँति परिचित थे। मानवीय मनोविज्ञान का गहन अध्ययन उनका विषय था। इसीलिए समाज द्वारा उन पर पढ़ने वाले प्रभाव को गहनता से आँका।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अनुकरण से अधिक सीखता है। एक-दूसरे के आचरण को धीरे-धीरे जीवन में ढालता चलता है। इसीलिए जब आज हम मनुष्य को अनैतिक अपराध करते देखते हैं तो उस पर न खीजकर सम्पूर्ण समाज को दोष देने लगते हैं। संसार के सभी महापुरुष-ईसा, बुद्ध, गाँधी, दयानन्द, मार्टिन लूथर तथा ज्ञानेश्वर ने अपना जीवन समाज-सुधार में लगाया और यह माना कि समाज-सुधार से ही मानव-सुधार सम्भव है। अकेले मनुष्य के भले बन जाने से पूरा मानव समाज नहीं बदल सकता। मनुष्य के तौर-तरीके, आचार-विचार, हाव-भाव और व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए समाज को परिष्कृत करना होगा। आज की परिस्थितियों को बदलने और मनुष्यों में सद्प्रवृत्तियों के प्रादुर्भाव के लिए सामाजिक संस्कारों पर ध्यान देना होगा। जैसी सामाजिक संस्कारों की त्रिवेणी प्राचीन काल में बही थी वैसी ही सुसंस्कारों की भागीरथी वर्तमान काल में प्रवाहित करनी पड़ेगी।

यह तो निर्विवाद ही है कि मुट्ठी भर आदमियों द्वारा ईश्वरोपासना करने, सत्य बोलने, सदाचारी बनने और चरित्रवान होने मात्र से यह पृथ्वी स्वर्ग नहीं बन सकती। जहाँ दुष्प्रवृत्तियों की भीषण आग जल रही हो उसमें एक लोटा जल डाल देना पर्याप्त नहीं होगा। यह उसकी भीषण गर्मी को शान्त नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि आज समाज में सदाचारी और कर्त्तव्यपरायण व्यक्तियों का मजाक उठाया जाता है। दुराचारी व्यक्ति अपने लिए ही नहीं भले और सदाचारी व्यक्तियों के लिए भी अभिशाप बनते हैं। थोड़े भले और सदाचारी व्यक्तियों की आवाज ढेर सारे दुराचारियों की आवाज में नक्कार खाने में तूती की आवाज के समान परिलक्षित हो रही है। इसीलिए कुछ आदमियों के निर्माण की बात सोचने की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज के निर्माण की बात सोचनी होगी।

समाज और राष्ट्र की खुशहाली और सुख-समृद्धि के लिए समाज की गर्हित अवस्था को सुधारा जाना होगा। शादी विवाह से लेकर पारिवारिक जीवन में व्याप्त विश्रृंखलताओं को दूर किये बिना भावी उन्नति की आशा करना केवल कपोल कल्पना ही होगी। समाज सुधर जायेगा तो उसमें देव पुरुषों का प्रादुर्भाव स्वतः ही होने लगेगा अतः सामाजिक पुनरोत्थान नितान्त आवश्यक है।

इसके लिए हमें प्राचीनकाल में अपनाई गई ऋषि महात्माओं की धार्मिक और अध्यात्मिक योजनाओं को समझना पड़ेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना ही नहीं कुछ समाज का भी हित, साधन करें

अन्य जीव अपने आप में पूर्ण हैं। अपनी आवश्यकतायें, अपने बलबूते स्वयं पूरी कर लेते हैं। आहार, निवास आदि के लिए वे किसी दूसरे पर निर्भर नहीं। पर मनुष्य की स्थिति ऐसी नहीं, उसका निर्वाह, विकास एवं स्थायित्व दूसरों की सहायता पर पूर्णतया आश्रित है। अन्य जीवों के बच्चे जन्म के कुछ ही समय बाद अपने पैरों खड़े हो जाते हैं पर मनुष्य का बालक, दूध पीने, करवट लेने तक में समर्थ नहीं होता। उसकी विभिन्न व्यवस्थायें माता न जुटायें तो जीवित रह सकना सम्भव नहीं। अपने पैरों पर खड़ा होने लायक तो वह कहीं, बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में बनता है। तब तक उसे अभिभावकों की कृपा पर अवलम्बित रहना पड़ता है। भोजन, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, विवाह आदि का प्रबन्ध वे ही करते हैं। बोलना, बात करना वह दूसरों का उच्चरण सुनकर करता है। शिक्षा दूसरों के संग्रहीत ज्ञान के आधार पर होती है। किसी की लड़की आकर अपना घर बसाती है। चिकित्सा के लिये दूसरों के ज्ञान पर अवलम्बित रहना पड़ता है। कला-कौशल दूसरे सिखाते हैं। लाखों वर्षों से करोड़ों मनुष्यों द्वारा उपार्जित एवं संग्रहित ज्ञान हमें मिलता है और तब कहीं कुछ सीख-समझकर किसी योग्य बन पाते हैं।

रेल, तार, डाक, प्रेस आदि आविष्कारों के आधार पर हमारी सुविधायें टिकी हुई हैं। व्यापार जिन साधनों से चलता है, वे अगणित मनुष्यों की सूझबूझ, मेहनत के परिणाम हैं। छोटी-सी दियासलाई बनाने में जितनी यन्त्र, श्रम, साधन एवं ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है, उनकी एक-एक प्रक्रिया का विकास लाखों-करोड़ों के सहयोग से ही सम्भव हुआ, होता है। जंगलों और गुफाओं में रहने वाले साधु-महात्माओं को भी वस्त्र, माला, कमण्डल, कुल्हाड़ी, दियासलाई, कम्बल, खड़ाऊँ आदि की आवश्यकता पड़ती है। इसके बिना उनका भी निर्वाह नहीं होता। यह वस्तुयें भी समाज के असंख्य व्यक्तियों के सहयोग, श्रम, ज्ञान से ही उपलब्ध होती हैं। कहने का तात्पर्य इतना भर है कि मनुष्य ने जो कुछ पाया, कमाया, बढ़ाया है, वह सब कुछ दूसरों के सहयोग एवं अनुग्रह का फल है। मनुष्य पूर्णतया सामाजिक प्राणी है। उसकी स्थिति एवं प्रगति सब कुछ सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर है, इसलिये उसका स्वार्थ इस बात में समाया हुआ है कि सामाजिक वातावरण उत्तम बना रहे। यदि समाज में किसी तरह विपन्नता उत्पन्न होगी तो उसका प्रभाव अपने ऊपर पड़े बिना भी न रहेगा। मुहल्ले में दुष्ट, दुराचारी भरे पड़े हों तो अपनी इज्जत-आबरू तथा सुरक्षा खतरे में है। गाँव में हैजा फैले तो उसका प्रभाव अपने घर में भी जान-जोखिम खड़ी करेगा। पड़ौसी के छप्पर में आग लगे तो अपना छप्पर भी सुरक्षित न रहेगा। इसलिये हमें अपने-अपने बच्चों के स्वार्थों की रक्षा के लिए सामाजिक जीवन के वातावरण को उत्कृष्ट बनाये रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। ऐसे प्रयत्न इसलिए भी आवश्यक हैं, जिस समाज की सहायता से हमने अनेक सुविधायें प्राप्त की हैं, स्थिरता एवं प्रगति के उपहार पाये हैं, उसके प्रत्युपकार में प्रवृत्त होकर अपनी मानवोचित कृतज्ञता प्रकट करें। जिससे कुछ पाया है, उसे देना भी चाहिये, तभी ऋण से मुक्ति मिलती है। समाज सेवा के लिए कुछ निरन्तर करते रहने का व्रत लेकर हमें समाज ऋण से किसी कदर उऋण होने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

पेट पालने के प्रयत्नों में जीवन की बहुमूल्य विभूति समाप्त नहीं कर दी जानी चाहिये। स्त्री, बच्चों की आवश्यकतायें पूरी करते रहने में हमारी सारी क्षमता खर्च नहीं हो जानी चाहिये। पेट और परिवार से बाहर भी अपनत्व का विस्तार होना चाहिये। आत्म-विकास का यही रास्ता है कि हम अपनी आत्मीयता को व्यापक क्षेत्र में विस्तृत करें। दूसरे के सुख को अपना सुख और दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानकर कुछ ऐसा भी सोचें, कुछ ऐसा भी करें जिससे दूसरों का दुःख घटे और सुख बढ़े। निश्चय ही किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं कि लोगों के अभाव अपनी सारी सम्पत्ति देकर भी पूरे कर सकें। इसी प्रकार चौबीसों घण्टे समय लोगों की सेवा करने में लगा दिया जाय तो बहुत थोड़े लोगों की तनिक-सी आवश्यकतायें पूरी हो सकेंगी। इसलिये अन्न, वस्त्र, जल, दवा आदि बाँटकर समाज का पिछड़ापन, कष्ट, अभाव एवं अवसाद दूर होने की कल्पना की नहीं जा सकती है। संसार में सारे कष्ट दुर्बुद्धि एवं दुष्प्रवृत्तियों के कारण हैं। इसलिये रोग के मूल कारण को समझकर जड़ पर ही कुठाराघात करना चाहिये। समाज-सेवा का सर्वोत्तम तरीका यह है कि लोगों की विचारणा एवं प्रवृत्तियों को निकृष्टता की स्थिति से उबारकर उत्कृष्टता की दिशा में मोड़ा जाय। लोग अपना रवैया और ढर्रा बदल दें तो अपने भीतर भरी हुई प्रचण्ड सामर्थ्य के आधार पर वे स्वयं ही अपने पिछड़ेपन एवं कष्टों का निवारण कर सकते हैं। हमें अपना सहयोग उनकी प्रवृत्तियों को इस ओर मोड़ने के लिए देना चाहिये। उनका ऐसा नेतृत्व करना चाहिये कि विघातक प्रवृत्तियों को छोड़कर वे रचनात्मक प्रवृत्तियों में रस लेने लगें और उनके अभ्यस्त बनकर अपना तथा असंख्य दूसरों का भला कर सकें।

आज संसार ने उत्कृष्टता के आभूषण उतार दिये हैं और निकृष्टता का चोला धारण कर लिया है। विचार पद्धति और कार्य प्रणाली में निकृष्टता घुस पड़ने के कारण प्रेत-पिशाचों जैसे जीवन बन गये हैं और मरघट जैसा वीभत्स वातावरण बन गया है। धीरे-धीरे हम अन्तर्द्वन्द्वों में—गृह कलह में—परस्पर उत्पीड़न में निरत होकर सामूहिक आत्महत्या की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। इन परिस्थितियों में मानव जाति की एक ही सेवा हो सकती है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि उसे बुद्धि, भ्रम, अविवेक एवं अशुभ चिन्तन से बचाकर नीर-क्षीर विवेचना ऋतम्भरा प्रज्ञा का आश्रय लेने के लिए तत्पर किया जाय। आज की स्थिति में समाज की यही सबसे बड़ी सेवा है। विचार-क्रान्ति ही वर्तमान दुर्दशा को पलटकर धरती पर स्वर्ग का अवतरण सम्भव कर सकेगी।

विचार-क्रान्ति के लिए आदर्शवादी विचारधारा का प्रतिपादन करने वाले पुस्तकालयों की सबसे बड़ी आवश्यकता है। देव-मन्दिरों की तरह आज ज्ञान-मन्दिरों की—पुस्तकालयों की स्थापना नितान्त आवश्यक है जिनसे जीवन को आदर्शमय बनाने और सामयिक उलझनों को सुलझाने वाला प्रकाश मिल सके ऐसी पुस्तकें पत्र-पत्रिकायें जहाँ आती हैं, लोगों के पास तक उस साहित्य को पहुँचाने और लाने का प्रबन्ध सम्भव हो, ऐसे पुस्तकालयों की हर जगह भारी आवश्यकता है। धनीमानी इस कार्य में अपना दान देकर अपनी कमाई को धन्य बना सकते हैं। पूर्वजों की स्मृति किसी को बनाती हो तो उनके नाम पर पुस्तकालय ही स्थापित करना चाहिये। परस्पर मिल-जुलकर चन्दे से भी ऐसी संस्था स्थापित की जा सकती है। कोई प्रबन्ध न हो सके तो व्यक्तिगत रूप से भी 'झोला पुस्तकालय' बनाकर घर-घर प्रेरक साहित्य पहुँचाने का पुण्य परमार्थ किया जा सकता है।

अपने देश में शिक्षा की बड़ी कमी है। लोग अभी भी शिक्षा की उपयोगिता समझ नहीं पाये हैं। देहातों में बहुत लोग अपने लड़कों को पढ़ने नहीं भेजते। लड़कियों को पढ़ाने का रिवाज तो बहुत कम है। हमें टोलियाँ बनाकर घरों में जाना चाहिये और शिक्षा योग्य लड़के-लड़कियों को स्कूल भिजवाने की प्रेरणा देनी चाहिये। सरकारी और गैर-सरकारी स्कूल खुलवाने चाहिये। वयस्क पुरुषों के लिए तथा महिलाओं के लिए तीसरे पहर अथवा रात्रि को चलने वाली प्रौढ़ पाठशालायें स्थापित करनी चाहियें, पैसा या श्रम देकर ऐसी शिक्षा संस्थायें लोग हर जगह चला सकते हैं। इन कार्यों के लिए सार्वजनिक धन संग्रह भी किया जा सकता हैं। काम से लगे हुए व्यक्ति आगे पढ़ने के लिए जिनमें सुविधा प्राप्त कर सके, ऐसे रात्रि विद्यालय तथा छात्रों की सहायता करने वाले कोचिंग स्कूल हर जगह चलने चाहिये। छोटे बच्चों के लिए मुहल्ले-मुहल्ले में शिशु-मन्दिर होने चाहिये। शिक्षा का जितना विकास सम्भव हो सके सरकारी और गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर इसके लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अपने ८० प्रतिशत अशिक्षित देशवासियों को साक्षर बनाकर ही हम उन्हें अविवेक रूढ़िवादिता के चंगुल से निकाल सकते हैं।

आज की ज्वलन्त समस्याओं का स्वरूप समझने और उनका हल प्राप्त करने के लिए समय-समय पर—स्थान-स्थान पर विचारगोष्ठियों के आयोजन होते रहने चाहिये, जिनमें प्रश्न और उत्तर के रूप में आज वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं का निराकरण समझने की सुविधा सर्वसाधारण को मिल सके।

समाज सेवा का सबसे पहला कार्य जनमानस में विवेकशीलता जगानी है, ताकि लोग अपनी अवांछनीय आदतें और अवांछनीय रूढ़ियों को छोड़कर औचित्य अपनाने और सन्मार्ग पर चलने के लिए तत्पर हो सकें। यह कार्य जिन प्रयत्नों से हो सकता हो उन्हें सर्वोत्तम समाज-सेवा माना जायगा। हममें से हर भावनाशील व्यक्ति को मन में इस प्रकार के कार्यों की व्यवस्था करने में संलग्न होकर अपना परम पवित्र समाजिक कर्त्तव्य पालन करना चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्रीय प्रगति के कुछ अनिवार्य मापदण्ड

राष्ट्र निर्माण प्रचण्ड पुरुषार्थ से ही सम्भव

किसी भी समाज अथवा देश के निर्माण एवं विकास में प्रकृति अनुकूलताओं, उपलब्ध परिस्थितियों का एक सीमा तक ही योगदान हो सकता है। अधिक से अधिक भौतिक समृद्धि बढ़ सकती है। पर सर्वांगीण विकास अभीष्ट हो तो प्रगति के मेरुदण्ड व्यक्तियों की गलाई-ढलाई करनी होगी, जिनके सहयोग से देश की स्थायी प्रगति समुन्नति की बात बनती है। विश्व में ऐसे देशों की कमी नहीं जिन्हें प्रकृति ने उन्मुक्त हस्त से विपुल सम्पदाएँ प्रदान की हैं। विशेष कर आज की दुनियाँ में सबसे मूल्यवान समझी जाने वाली वस्तुओं पेट्रोलियम खनिज-सम्पदा का उन देशों में बाहुल्य है। इसके बावजूद भी वे देश पिछड़े हुए हैं। उपलब्ध अनुकूल परिस्थितियों तथा सम्पदाओं के सुनियोजन की बुद्धि के अभाव में उनकी स्थिति अधिक बेहतर नहीं है। अनायास प्रकृति सम्पदाएँ हाथ लगने से उन देशों के नागरिकों में विलासिता की प्रवृत्ति ही बढ़ी' है। सांस्कृतिक नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से तो उनका अवमूल्यन ही हुआ है। मुफ्त की सम्पत्ति न केवल अकर्मण्यता, आलस्य और प्रमाद को बढ़ावा देती है। वरन् उपभोगकर्ता को उद्धत अहंकारी तथा बर्वर भी बनाती है। कटु सच्चाई होते हुए भी यह कहने में हिचक न होगी कि पेट्रोलियम प्रधान अरब देशों की स्थिति ऐसी ही है। विपुल सम्पदा के स्वामी होते हुए भी वे असंस्कृत हैं।

इसके विपरीत ऐसे छोटे-छोटे देश भी हैं जिनके सामने परिस्थितियाँ सर्वथा प्रतिकूल थीं। प्रकृति ने भी उनके साथ अनुदारता बरती है। पर इन सबके बावजूद भी वे अपने पुरुषार्थ, मनोयोग, बुद्धि एवं परस्पर-सहकार, नैतिकता एवं चरित्रनिष्ठा के बल पर निरन्तर आगे बढ़े हैं और द्रुतगति से आगे बढ़ते ही जा रहे हैं। लड़ाकू होते हुए भी इसराइल के नागरिकों की, जापान के उद्यमियों, डेनमार्क के ग्वालों तथा स्वीडेन के छोटे तकनिशियनों की प्रशंसा इसलिए करनी होगी, क्योंकि उन्होंने अपनी व्यक्तिगत योग्यता एवं पुरुषार्थ को राष्ट्र की एक सामूहिक शक्ति का अभिन्न अंग मानकर विकास कार्यों में नियोजन किया। फलतः वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय समुन्नति का लाभ मिला। उगते हुए सूर्य की तरह इनका भौतिक वर्चस्व अब फैलने लगा है।

शिक्षा वह प्रमुख आधार है जिससे न केवल बुद्धि का योग्यता एवं प्रतिभा का विकास होता है वरन् वह सूझ-बूझ विकसित होती है। जिससे क्षमताओं का सुनियोजन हो सके। जो देश प्रगति की ओर बढ़े हैं, उन्होंने सर्वप्रथम देश में शिक्षा के विस्तार के लिए हर सम्भव प्रयास किये हैं। ऐसी शिक्षा जो न केवल अक्षर ज्ञान प्रदान करे कि वह दक्षता भी प्रदान करे जिससे विद्यार्थी स्वावलम्बी बन सकें, साथ ही समाज से जुड़े दायित्वों का निर्वाह भी भली भाँति कर सकें। शिक्षा की वह समन्वयात्मक पद्धति जिसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही का समावेश हो, ही समर्थ स्वावलम्बी तथा चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों की ढलाई कर सकने में समर्थ हो सकती है। आत्म विश्वास के जगाने पुरुषार्थ को उभारने तथा समय सम्पदा बुद्धि सम्पदा की मूल्यांकन दृष्टि प्रदान करने में ऐसी ही शिक्षा सक्षम हो सकती है।

उभरते हुए छोटे किन्तु प्रगतिशील उपरोक्त देशों की श्रृँखला में क्यूबा का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि उससे भी बहुत कुछ प्रेरणाएँ आगे बढ़ने की दिशा में ली जा सकती हैं रिपब्लिक ऑफ क्यूबा ४२ हजार ८ सौ २७ वर्ग मील में बसा हुआ है। वर्ष १९७० में उसकी कुल आबादी ८५ लाख ५३ हजार ४ सौ थी। अब लगभग एक करोड़ है। देश का ग्रास नेशनल प्रोडक्ट १९७४ के बाजार मूल्य के अनुसार ५ अरब ७८ करोड़ यू० एस० डालर था। प्रति व्यक्ति की औसत आय ८०० डालर के लगभग है। कुल भूमि का क्षेत्रफल एक करोड़ १४ लाख ५२ हजार हेक्टर है पर उसमें कृषि योग्य भूमि मात्र ३१.४ प्रतिशत है।

क्यूबा गणराज्य द्वीप समूहों का देश है जिसमें कुल ३ हजार ७ सौ १५ द्वीप हैं। ये द्वीप ट्रॉपिक ऑफ कैंसर के दक्षिण तथा गल्फ आफ मैक्सिको के प्रवेश द्वार पर अवस्थिति हैं। द्वीप समूह पूर्व से दक्षिण तक फैला तथा कैरेबियन समुद्र से जुड़ा हुआ है। समुद्री बेल्ट होने के कारण जून से अक्टूबर तक देश को भयंकर समुद्री तूफानों का सामना करना पड़ता है। तूफानों की भयंकरता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कितनी बार १६३ मील प्रति घण्टा से लेकर २०० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से तूफान आते हैं। २४ घण्टे के भीतर १२ इंच तक भारी वर्षा होती है। इससे पूरे देश को असाधारण क्षति उठानी पड़ती है।

भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन, विश्लेषण करना इसलिए आवश्यक था कि उसकी प्रतिकूल परिस्थितियों की थोड़ी झाँकी मिल सके तथा यह तथ्य समझा जा सके कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियाँ ही सब कुछ नहीं हैं वरन् देश की वास्तविक सम्पदा समर्थ व्यक्तियों का वह पुरुषार्थ है जिसके नियोजित होते ही प्रतिकूलताओं के बदलते देरी नहीं लगती। कहा जा चुका है कि प्रगति में शिक्षा विस्तार का सर्वाधिक योगदान होता है। क्यूबा के विचारशील वर्ग ने इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझा। समझा ही नहीं देश को साक्षर बनाने तथा साक्षरों को योग्य बनाने के लिए बहुमुखी योजनाएँ बनायीं। सरकारी एवं गैर-सरकारी दोनों ही स्तरों पर युद्धस्तरीय प्रयास चले। निरक्षरता दूर करने के लिए जन-जन के मन में उमंग उठी, सरकार ने भी प्रमुखता दी।

वर्ष १९६१ शिक्षा वर्ष घोषित हुआ। सभी स्तर की शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी। साथ ही गरीब विद्यार्थियों तथा प्रतिभावान छात्रों के लिए स्कॉलरशिप की स्थायी व्यवस्था बनायी गयी। राष्ट्रपति फिडेल कैस्ट्रो ने नारा दिया कि "शिक्षा एक क्रान्ति है, पूर्ण साक्षरता हमारा लक्ष्य है, हर शिक्षित विचारशील का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह अपना सहयोग दे।"

अप्रत्याशित प्रभाव पड़ा कैस्ट्रो के इस उद्‌बोधन का। वर्ष १९५९ में क्यूबा के विद्यालयों में मात्र दस लाख छात्र थे जबकि १९७६ में उनकी संख्या ३१ लाख से भी बढ़ गयी। पढ़ाई के साथ हर विद्यार्थी को स्वास्थ्य संरक्षण, कुटीर उद्योग तथा समाज सेवा की अतिरिक्त शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। स्कूलों में छात्र सफाई तथा वस्तुओं, फर्नीचर के टूट-फूट की मरम्मत तथा बागवानी स्वयं करते हैं। इससे उनमें श्रमशीलता, स्वावलम्बन की प्रवृत्ति विकसित होती हैं।

छुट्टियों में ऐसी व्यवस्था बनायी गयी है कि हर छात्र ग्रामीण क्षेत्र में जाकर खेतों में काम करे। थोड़े बड़े बच्चों के जिम्मे प्रौढ़ों को पढ़ाने का दायित्व सौंपा गया है । यह उनके शिक्षण का अनिवार्य अंग है। तकनीकी क्षेत्र के विशेषज्ञ मुफ्त में तकनीकी ज्ञान की शिक्षा जन सामान्य को देने के लिए अपने समय का एक भाग खर्च करते हैं। वे अपने ज्ञान का लाभ मजदूरों, कृषकों को देने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में जाते हैं। आधुनिक उपकरणों के सहारे अच्छी खेती करके उत्पादन कैसे बढ़ाया जा सकता है, इसकी व्यावहारिक शिक्षा देते हैं। कार्य को छोटा-बड़ा मानने की दुष्प्रवृत्ति नहीं है। हर व्यक्ति कार्य के स्तर को बढ़ाने में ही अपनी प्रतिष्ठा मानता है।

किसी देश का गुणगान करना अपने प्रतिपादन का लक्ष्य नहीं है न ही उनकी सभी नीतियों का अनुकरण करने की बात कही जा रही है वरन् संकेत उन सत्प्रवृत्तियों के अनुसरण की ओर है जो किसी भी देश की प्रगति में सहायक है। अन्य प्रगतिशील देशों की भाँति अपने देश में शिक्षा का स्तर बढ़े साथ ही श्रम, पुरुषार्थ एवं समय का सही नियोजन हो सके तो आसन्न विपन्नताओं, अभावों के मिटने में देरी नहीं लगेगी। सचमुच ही देश का सर्वांगीण विकास अभीष्ट हो तो दूसरे देशों की श्रमशीलता, कार्य कुशलता, तथा प्रचण्ड पुरुषार्थ का प्रशिक्षण सार्थक शिक्षा के परिवेश में लेना होगा।

प्रगति का एक ही आधार— प्रचण्ड पुरुषार्थ

किसी समाज अथवा देश का भविष्य कैसा होगा ? इसका अनुमान उसमें निवास करने वाले व्यक्तियों की तत्परता, जागरूकता, सजगता, कर्मठता की मात्रा को देखकर लगाया जा सकता है। ये गुण जिस भी समाज में जितने ही अधिक होंगे, वह उतना ही अधिक प्रगति करेगा सम्पदाओं, प्रकृति प्रदत्त अनुकूलताओं का अपना महत्त्व है। पर इनके रहते हुए भी जो जाति आलस्य और प्रमाद में पड़ी होगी, उसका पतन सुनिश्चित है। रोम की सभ्यता किसी समय शिखर पर थी। इस श्रृंखला में कभी वेबोलिन की संस्कृति का भी नाम लिया जाता था। अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के लिए भारत भी विश्व विख्यात था। यूनानी सभ्यता की समुन्नति की जानकारी भी इतिहास के पृष्ठों से मिलती है। पर आज ये सभी देश अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। प्रगति एवं समुन्नति के शिखर पर जा पहुँचने वाले देश कालान्तर में इतने पिछड़ क्यों गये ? अवनति के कूप में कैसे जा पड़े ? कारणों की खोजबीन करने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि अपनी तत्परता कर्मठता की उन सत्प्रवृत्तियों को गँवा बैठे जो कभी उनकी प्रगति के कारण बने थे। अतिशय भोग विलास की प्रवृत्ति ने उनकी क्षमताओं को खोखला कर दिया। दिन-प्रतिदिन आलसी और प्रमादी बनते गये। धीरे-धीरे वह वैभव भी जाता रहा जो पुरुषार्थ के बल पर उपजा और बढ़ा था।

सभी सरकारें किसी भी देश के उत्थान-पतन के विविध कारण बताती हैं। कुछ राजनीतिक मुद्दों को कारण मानते हैं। कुछ प्राकृतिक अनुकूलताओं अथवा प्रतिकूलताओं को महत्त्व देते हैं। उत्थान-पतन में इनकी महत्ता को नकारा नहीं जा सकता, पर एकाकी उन्हें ही एकमात्र कारण मानना विवेक सम्मत नहीं है। गहराई से खोज-बीन की जाय तो यह सत्य ही उभरकर सामने आयेगा कि परिस्थितियों की तो सीमित ही भूमिका उत्थान-पतन में हो सकती है। प्रमुख तो जनमानस की वह मनःस्थिति होती है जिसमें उत्साह उमंग प्रस्फुटित होते रहने से प्रचण्ड पुरुषार्थ का दर्शन होता तथा प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। जब वह प्रमाद ग्रस्त होती है तो अकर्मण्यता को जन्म देती तथा पतन का मार्ग खोल देती है। मनोबल देश की सर्वोपरि सम्पदा है। वह टूट जाय तो आगे बढ़ने के सभी दरवाजे अपने आप बन्द हो जाते हैं। अवांछनीय तत्वों, आततायियों को भी चढ़ दौड़ने तथा अपनी मनसा पूरी करने का सुअवसर मिला जाता है दैनन्दिन जीवन में भी इस सत्य के प्रमाण पग-पग पर मिलते हैं। दुष्ट, दुराचारी, आततायी वहीं सफल होते हैं, जहाँ जन समूह कायरता से ग्रस्त होता है। उनका विरोध नहीं होता। उसका मौन परोक्ष समर्थन की भूमिका अदा करता है। अवांछनीय तत्त्वों का दुस्साहस बढ़ता तथा गिरे होते हुए भी विपुल जनसमूह के मुँह पर लानत का तेज थप्पड़ मारकर अपना प्रयोजन पूरा कर चलते बनते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हजारों, लाखों मील दूर मुट्ठी पर लुटेरे, रेगिस्तान, पहाड़ों, नदी-नालों को लाँघते, भीषण प्रतिकूलताओं का सामना करते भारत आये और लूट-खसोट करके, नर संहार मचाते अपने साथ विपुल सम्पत्ति लेकर चलते बने। तैमूर, नादिर, चंगेज, सिकन्दर आदि की वीर गाथा सुनाते इतिहासकार नहीं थकते पर दुर्भाग्य कि वे उस कायरता की भर्त्सना नहीं करते जो उन आतताइयों की विजय का वास्तविक कारण बनी। सचमुच ही थोड़ा भी संगठित विरोध उभरा होता तो इतिहास कुछ और ही होता। पुरुषार्थहीनता की वह दास्तानें नहीं सुननी पड़ती कि सोमनाथ का स्वर्ण मन्दिर लुटता रहा और विपुल जन समुदाय नपुंसक बना अपनी सांस्कृतिक निधि को लुटते देखता रहा। वह टूटा मनोबल ही था जिसने अँग्रेजों के मुँह में भी पानी भर दिया तथा कूटनीतिक दाँव-पेच रचकर अपने साम्राज्य की नींव जमाने के लिए मूक रूप से आह्वान किया। प्रमाद की वह पराकाष्ठा ही थी कि स्वर्गादपि गरीयसी से विभूषित शस्य श्यामला भारत भूमि की समुन्नति बढ़ाने के झाँसे में आकर अँग्रेजों को अपने साम्राज्य की जड़ें गहरी जमाने का अवसर प्रदान किया। अन्यथा देश में न तो साधनों की कमी थी और न ही प्रतिभाओं की। योजनाबद्ध उनका सुनियोजन हो सका होता तो असाधारण प्रगति की सम्भावना बन सकती थी तथा आज विश्व में भारत का स्थान कुछ और होता। यह एक बड़ी विडम्बना थी कि अपने देश की प्रगति का जिम्मा विदेशियों पर छोड़कर तात्कालिक शहंशाहों ने गुरुत्तर दायित्वों से छुट्टी लेली। सामयिक वह प्रमाद कितना महँगा कितना हानिकारक तथा कितना दुःखदायी सिद्ध हुआ, उसका लेखा-जोखा प्रस्तुत पंक्तियों में प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। जिन्हें इसका विवरण प्राप्त करना हो, उन्हें इतिहास के पन्ने उलटना चाहिए।

प्रसुप्त मनोबल के करवट लेते तथा घोर तन्द्रा की नींद से जागते ही एक भूचाल-सा आया। थोड़े से व्यक्तियों को अनुभव हुआ कि परतन्त्रता के रहते कभी देश की प्रगति सम्भव नहीं है। अनुभूति पीड़ा में बदली—मन में कसक उठी, सोये पुरुषार्थ ने अँगड़ाई ली। उन थोड़े व्यक्तियों की थोड़ी जागृति का प्रतिफल क्रान्ति के बीजारोपण के रूप में हुआ। समीक्षाकारों का कहना है कि उस बीज को समुचित खाद-पानी मिला होता तो देश एक सदी पूर्व ही स्वतन्त्र हो गया होता। १८५७ की गदर रंग लाती और उसी समय अँग्रेजों को सिर पर पैर रखकर भागना पड़ता। पर दुर्भाग्य कि क्रान्ति की उस चिंगारी को भीगी लकड़ियाँ ही मिल सकीं, देश का प्रसुप्त मनोबल उस अग्नि के ताप से नहीं जग सका। एक सदी के लिए गुलामी की अवधि बढ़ गयी। इस काल में वह क्रान्ति-बीज अंकुरित तथा परिपुष्ट होता रहा। स्वतन्त्रता के दो दशकों पूर्व वह वृक्ष के रूप में सामने आया। फल के रूप में क्रान्तिकारियों एवं शान्ति समर्थक असहयोग आन्दोलनकारियों की अलग-अलग विशाल सेनाएँ परतंत्रता को तोड़ने सामने आयीं। अँग्रेजों को यह कल्पना भी न थी कि देश का जीवन इतने प्रचण्ड रूप में उभरकर सामने आयेगा, पर जो सामने आया उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उन्हें सदा-सर्वदा के लिए भारत छोड़ना पड़ा।

अन्यान्य देशों के स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास भी लगभग एक जैसा ही है। उनकी घटनाओं में अन्तर हो सकता है पर मूल विशेषताएँ एक जैसी ही थीं। जो मनोबल सोया हुआ था उसके जागरण ने ही जेहाद छेड़ा और अन्ततः सफलता का कारण बना। कल परसों स्वतन्त्र हुए छोटे-छोटे मुल्कों ने अपनी स्वतन्त्रता को सही रूप में संजोया है। नव जागृति की जो लहर स्वाधीनता का कारण बनी उसे उन्होंने और भी प्रचण्ड किया। फलतः दिन-दूनी रात चौगुनी गति से प्रगति करते गये। प्रगति तो भारत ने भी की है पर उसकी गति अत्यन्त मन्द रही है। कारण कि देशवासी स्वाधीनता का मात्र मोद मनाते रहे। जागृति के दावानल को सतत् पुरुषार्थ का ईंधन न दे सके। इसका ही परिणाम है कि आज भी हम भौतिक क्षेत्र में इतने पिछड़े हुए हैं। जबकि जापान, ताइवान, कनाडा, डेनमार्क, कोरिया, हांगकांग जैसे छोटे-छोटे देश प्रकृति प्रतिकूलताओं से जूझते हुए भी निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं। आवश्यकता उनसे भी इस बात की प्रेरणा लेने की है कि पुरुषार्थ को पंगु बनाने वाले आलस्य-प्रमाद जैसे शत्रुओं के चंगुल से निकला एवं प्रचण्ड तत्परता, कर्मठता का प्रगति के कार्यों में परिचय दिया जाय।

समृद्धि का मूलमंत्र प्रचण्ड पुरुषार्थ

प्रकृति प्रदत्त अनुकूलताओं का अपना महत्त्व है—पुरुषार्थ का अपना। दोनों का संयोग बन जाने से समृद्धि की वर्षा होने लगती है। प्रकृति जड़ है—पुरुषार्थ, चेतना की सक्रिय हलचल। प्रकृति के गर्भ में यह हलचल जितनी तीव्र होगी प्रगति की गति उतनी ही तेज होगी। अनगढ़ प्रकृति को सँवारने तथा उससे महत्त्वपूर्ण सम्पदायें प्राप्त करने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करना पड़ता है। जो इस तथ्य को समझते तथा व्यवहार में उतारते हैं उनके पास न सम्पदा की कमी रहती है और न साधनों की। समृद्धि बढ़ाने के ये ही मूलभूत सिद्धान्त हैं जिसे अपनाकर गरीबी के पिछड़ेपन की स्थिति से मुक्ति पाई जा सकती है।

पुरुषार्थ के अभाव का नाम ही गरीबी है। दरिद्रता, अभावग्रस्त जड़ता की आड़ में पनपती है तथा अकर्मण्यता का खाद, पानी पाकर फूलती-फलती है अन्यथा फूट पड़े पुरुषार्थ तो घोर प्राकृतिक प्रतिकूलताओं में भी जीने योग्य साधन निकाले जा सकते हैं। कितने ही देशों के उदाहरण सामने हैं, जिन्होंने असाधारण श्रमनिष्ठा का परिचय देकर अपने समाज एवं देश की समृद्धि बढ़ाई है। औद्योगिक राष्ट्रों में जापान, डेनमार्क, स्वीडेन बहुचर्चित हैं, उनका उल्लेख करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। इसराइल जैसे कृषि प्रधान देश का एक उदाहरण देना ही समीचीन होगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसने अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ का परिचय देकर यह सिद्ध कर दिया कि मानवी जीवन के समक्ष प्रकृति प्रतिकूलताओं का भी कोई विशेष महत्त्व नहीं। प्रयास चल पड़े तो प्रकृति की भी प्रतिकूलता को बदला और अनुकूल बनाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि मरुस्थलीय प्रकृति वाले इस देश की बहुसंख्य आबादी के अधिकांश व्यक्तियों की आजीविका का साधन कृषि है। कृषि योग्य भूमि भी ऐसी, जिसका अधिकांश भाग पथरीला, रेतीला अथवा बंजर है। इसराइल के दक्षिण भाग में मृतसागर से लेकर इलात की खाड़ी तक की लंबी घाटी का प्रदेश तो लगभग ऐसा ही है। दो दशक पूर्व तक इस क्षेत्र में फसल के नाम पर कुछ भी नहीं होता था। अन्न की कमी के कारण देश को भयंकर संकटों का सामना करना पड़ता था। इसराइल के इस सुनसान क्षेत्र ने वहाँ के नागरिकों के पुरुषार्थ को चुनौती दी।

न्यूनतम वर्षा और अधिकतम गर्मी वाली इस मरुभूमि को उपजाऊ बनाने की योजना तो सरकार ने सन् १९६१ में बनाई पर उसे व्यावहारिक स्वरूप दिया वहाँ के नागरिकों ने। सरकार ने अपने हिस्से का काम लिया साधन जुटाने का और जनसामान्य को इस यज्ञीय कार्य में सहयोग के लिए आह्वान किया। इस सुनसान घाटी को हरीतिमा से सुसज्जित करने के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता थी पानी की। आधुनिक संयन्त्रों के माध्यम से पानी के जहाँ स्रोत थे उनका पता तो लग गया पर कठिनाई सामने आई भूमि के समतल और एकरूप न होने की। एक ही क्षेत्र में भूमि कहीं पथरीली थी तो कहीं रेतीली और कहीं ऊबड़-खाबड़ बंजर। पानी के स्रोत से वे स्थान ऊँचाई पर पड़ते थे। ऐसी हालत में यंत्रों के अभाव में वहाँ तक पानी पहुँचाना भी कठिन था। पर कहते हैं कि पुरुषार्थी के लिए कुछ भी कर गुजरना असम्भव नहीं है। सामूहिक प्रयासों द्वारा भूमि को जितना समतल बनाया जा सकता था, किया गया। पथरीली, रेतीली तथ बंजर तीनों तरह की भूमियों को अलग-अलग भागों में विभक्त कर चारों ओर से मेड़ बनाई गयीं। जहाँ पानी के स्रोत थे उनसे लम्बी और गहरी नहरें निकालकर दूरवर्ती खेतों में पहुँचाया गया। 'ड्रिप इरीगेशन' की आधुनिक तकनीक की व्यवस्था सरकारी तन्त्र ने बनाई। मेड़ों पर वृक्ष लगा दिये गये तथा स्थानीय क्षेत्र में वृक्षों की चहारदीवारी खड़ी कर दी गई। सरकारी एवं गैर सरकारी सामूहिक प्रयासों का प्रतिफल यह निकला है कि वहाँ की मरुभूमि ने अपनी प्रकृति बदल दी है। इस प्रदेश में चारों ओर अब मनमोहक हरियाली और लहलहाती फसलों को देखा जा सकता है। विशेषज्ञों का मत है कि इसरायल के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अब इस क्षेत्र में फसल की मात्रा दुगुनी पैदा होती है तथा वर्षा भी अब अच्छी होने लगी है।

यूरोप के बाजारों में इसरायल की इस घाटी में पैदा होने वाले टमाटर, ककड़ी, बड़ा तरबूज और स्वीटकार्न की बड़ी माँग रहती है। कारण है उनमें पौष्टिकता एवं मिठास का अधिक होना। एक समय जहाँ सुनसान रेगिस्तान था, वहाँ अब हरियाली की सुषमा को देखकर सहज ही किसी को विश्वास नहीं होता कि यह प्रदेश बीहड़ रेगिस्तान से आच्छादित रहा होगा। आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, अर्जेन्टाइना, ब्राजील, मैक्सिको आदि के विशेषज्ञों ने वहाँ जाकर इसरायलवासियों के प्रगति-प्रयासों से प्रेरणा ली है तथा अपने यहाँ की बेकार पड़ी भूमियों के सुधार एवं सदुपयोग की योजना आरम्भ कर दी है।

अपने देश की आर्थिक आय का एक बड़ा स्रोत भी कृषि ही है। लगभग पचास प्रतिशत से भी अधिक राष्ट्रीय आय कृषि पर अवलम्बित है। एक अनुमान के अनुसार जितनी भूमि बेकार पड़ी है यदि उसका सदुपयोग बन पड़े तो राष्ट्रीय आय को कृषि से ही शत-प्रतिशत पहुँचाया जा सकता है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार भारत में कुल ३ अरब २८ करोड़ हेक्टर भूमि कृषि योग्य है। जिसमें मात्र वर्तमान समय में एक अरब ४३ करोड़ जमीन ही कृषि के लिए जोती जाती है। विविध कारणों से शेष भूमि का उपयोग नहीं हो पाता। १५ करोड़ हेक्टर भूमि का क्षरण पानी और हवा की अधिकता के कारण हो जाता है। साठ लाख हेक्टर में पानी भरा रहता है। ४५ लाख हेक्टेयर जमीन समुद्र के कारण खारी हो जाती है। २५ लाख हेक्टयर जमीन क्षारीय होने के कारण बेकार पड़ी रहती है। २४ लाख हेक्टेयर जमीन नदी के समीप होने से बेकार पड़ी रहती है। ६६ लाख हेक्टर जमीन बंजर है। यह सब मिलाकर ७७ करोड़ ५० लाख हेक्टेयर जमीन ऐसी है जिसे थोड़े प्रयत्नों द्वारा उपजाऊ बनाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त लाखों एकड़ क्षेत्र में बीहड़ तथा रेगिस्तान फैले हुए हैं। उनका कुछ हिस्सा ऐसा है जिसमें थोड़ा सुधार करके कृषि योग्य बनाना सम्भव है। पर्वतीय क्षेत्रों में भी लाखों एकड़ भूमि ऐसी है, जिसे छोटी-छोटी क्यारियों के रूप में बदलकर एक परत मिट्टी की बिछा दी जाय तो वह खेती के काम में आ सकती है।

खाद्यान्न के लिए अभी भी देश को दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ता है—पूरी तरह से स्वावलम्बन की स्थिति नहीं बन पाई है। कारण एक ही है सुनियोजन का अभाव। सरकारी एवं गैर-सरकारी—सामूहिक दोनों ही स्तरों पर इस दिशा में ठोस कदम उठाये जा सकते हैं। आरम्भ में कुछ पूँजी लगने की सम्भावना है पर यह सुनिश्चित है कि इस प्रयास का प्रतिफल दूरगामी सत्परिणामों को लेकर प्रस्तुत होगा। साधनों का अभाव प्रगति के मार्ग में उतना अवरोध खड़ा नहीं कर सकता जितना कि पुरुषार्थ का अभाव। इसरायल जैसे प्रकृति प्रतिकूलताओं से जूझकर उन पर विजय पाने वाले राष्ट्र का उदाहरण हमारे सामने है। देश का प्रसुप्त पुरुषार्थ यदि जग पड़े तो अभी भी प्रकृति के गर्भ में से असीम सम्पदा खींच निकालने की गुंजाइश है। गरीबी से उबरने, देश की समृद्धि को बढ़ाने के लिए हर पुरुषार्थी का भाव भरा सहयोग अभीष्ट है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रगति और कर्मठता एक ही तथ्य के दो पक्ष

क्षेत्रफल, जनसंख्या एवं प्रकृति सम्पदा के आधार पर कोई देश समर्थ एवं समृद्ध हो सकता है यह मान्यता आंशिक रूप से ही सही कही जा सकती है। जिसके पास पूर्वजों की छोड़ी विपुल सम्पदा हो उसे ठाट-बाट से रहने में क्या अड़चन हो सकती है ? विशिष्टता के तथ्य तब उभरकर आते हैं, जब सामान्य अथवा हेय परिस्थितियों के बीच भी ऊँचा उठने—आगे बढ़ने का प्रयत्न सफल करके दिखाया जाता है। इसमें तत्परता और तन्मयता की ही प्रधान भूमिका रहती है। परिस्थिति ही सब कुछ नहीं होती। साधनों का बाहुल्य ही प्रगति का एकमात्र कारण नहीं है। देखा यह भी जाता है कि कर्मठता और सूझ-बूझ के सहारे विपन्नता के बीच भी सम्पन्नता उत्पन्न करने के सुयोग्य बनते हैं।

कितने ही राष्ट्र इस बात के प्रमाण हैं कि उन्होंने प्रतिकूलताओं के बीच भी पराक्रम के बल पर अनुकूलता उत्पन्न की है और आश्चर्यचकित करने वाली सफलता उपलब्ध की है।

द्वितीय महायुद्ध में हारने के उपरान्त जर्मनी, इटली, जापान आदि की स्थिति दयनीय हो गई थी, पर वहाँ के नागरिकों ने कठोर श्रम और प्रचण्ड संकल्प के आधार पर कुछ ही वर्षों में पुरानी समर्थ स्थिति पुनः प्राप्त करली। जीतने वाले देशों में भी रूस, ब्रिटेन जैसे देशों में बुरा हाल था। मनोबल गँवा दिया होता तो शताब्दियों तक उन्हें दयनीय स्थिति में पड़ा रहना पड़ता। कठोर श्रम और भाव भरा उत्साह ही है जिसके सहारे वे न केवल उठ खड़े हुए वरन् पहले से भी अधिक अच्छी स्थिति प्राप्त कर सके।

योरोप के कुछ बहुत छोटे देशों की स्थिति और प्रगति के बीच तालमेल बिठाने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। स्वल्प साधनों और प्रतिकूलताओं के बीच रहते हुए उनकी प्रगति और समृद्धि इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि साधनों की तुलना में संकल्पों की परिणति कहीं अधिक चमत्कारी होती है।

नीदरलैण्ड का क्षेत्रफल बारह हजार पाँच सौ अट्ठाइस वर्गमील है। उसकी वर्तमान जनसंख्या १ करोड़, ३८ लाख ६८ हजार है। अर्थात प्रति वर्गमील में औसतन नौ सौ व्यक्ति निवास करते हैं। इसका ४० प्रतिशत भू-भाग समुद्र सतह से नीचे है। आये दिन इन्हें समुद्र का प्रकोप झेलना ही पड़ता है, पर मेहनत, मनोबल, साहस के धनी डचों ने, नीची सतह युक्त भूमि को चारों ओर से मजबूत बाँधों से घेर दिया है। जनसंख्या वृद्धि दर प्रतिवर्ष ७-३% है। यहाँ की औसत आय प्रति व्यक्ति, प्रतिवर्ष ६२०० डालर है (लगभग ५५८०० रुपये) है। इनकी औसत आयु ७२ वर्ष होती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इसकी कमर बुरी तरह टूट गई थी। चार वर्ष तक उसे जर्मन सेना के अधीन रहना पड़ा। आर्थिक व्यवस्था बिल्कुल चरमरा गई, किन्तु पुरुषार्थ के धनी डच जर्मनी के चंगुल से निकलने के बाद तुरन्त ही फिर से राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा कर देने में समर्थ हो गए। वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्रों में द्रुतगति से विकास हुआ। कृषि की वैज्ञानिक प्रणाली का विकास किया गया। देश की १७ प्रतिशत श्रमशक्ति कृषि कार्य में संलग्न है। कृषि योग्य भूमि कम होते हुए भी उपज इतनी अधिक हो जाती है कि खाद्यान्न बाहर निर्यात भी किए जाते हैं। यह उनके प्रचण्ड पुरुषार्थ का ही परिणाम है।

बेल्जियम, नीदरलैण्ड की तुलना में अत्यन्त छोटा देश है—विस्तार और आबादी दोनों मामलों में। क्षेत्रफल १०७७६ वर्गमील है। आबादी करीब एक करोड़ है। २० प्रतिशत लोग कृषि कार्य में संलग्न रहते हैं। कुल राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत कृषि से प्राप्त होता है। ७० प्रतिशत जनशक्ति खानों, कारखानों, निर्माण कार्यों, व्यापार एवं यातायात में लगी है। यहाँ प्रति व्यक्ति की वार्षिक आय औसतन सात हजार डालर (साठ हजार रुपये) है। द्वितीय विश्व युद्ध में यह राष्ट्र भी बुरी तरह थक चुका था। अर्थतन्त्र बेतरह लड़खड़ा गया था, पर अपने परिश्रम, निष्ठा, लगन व देश के प्रति सच्ची आस्था ने इन्हें पुनः कुछ ही दिनों में उस स्थान पर ला खड़ा किया, जहाँ वे पहले थे।

स्वीट्जरलैण्ड का क्षेत्रफल १५ हजार ५ सौ ४१ वर्ग मील है। सन् १९७९ में वहाँ की कुल आबादी ६२ लाख ६८ हजार थी। प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय सन् १९७६ में ८ हजार ८८० डालर थी। सन् १९८२ में यह आय ९ हजार तक पहुँच चुकी थी। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण कृषि योग्य भूमि अत्यल्प है। आय का प्रमुख स्रोत लघु उद्योग व व्यापार है। इस राष्ट्र के साथ विडम्बना यह है कि इसके समीप न तो कोई बन्दरगाह है, न समुद्री किनारा। किन्तु फिर भी उसका व्यापार प्रतिवर्ष ५ अरब डालर से भी अधिक है। प्रति व्यक्ति आय भी समृद्ध देशों जितनी है। ऊर्जा का किसी प्रकार का कोई खनिज स्रोत वहाँ मौजूद नहीं। कारखाने व रेलगाड़ियाँ जल विद्युत से चलती हैं, जिसका उत्पादन पहाड़ी जलधाराओं से किया जाता है। इस प्रकार अभावग्रस्तता होने के बावजूद भी अपने को विकासशील स्तर का बना लेना वहाँ के नागरिकों की देश के प्रति सच्ची निष्ठा एवं परिश्रमशीलता का ही परिणाम है। यहाँ ५० प्रतिशत लोग श्रमिक हैं। इनमें से आधे कारखानों में एवं अन्य उद्योगों में लगे हुए हैं। इस प्रकार वहाँ की प्रगति देशवासियों के श्रमनिष्ठ होने का परिचायक है।

स्वीडेन को विश्व में सर्वाधिक संगठित देश माना जाता है। इसके लगभग ८० प्रतिशत श्रमिक व्यापार संगठन में शामिल हुए पाये गये हैं। साथ ही यहाँ की एक विशेषता यह है कि कर्मचारी व मालिकों के बीच

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अच्छा सुदृढ़ सम्बन्ध कायम है। किसी माँग की पूर्ति की समस्या को अशान्त वातावरण में नहीं वरन् मिल बैठकर आपसी विचार-विमर्श द्वारा सुलझा लिया जाता है।

६७ वर्ष की आयु के उपरान्त व्यक्ति को राष्ट्रीय पेन्शन प्रदान की जाती है। अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा योजना से हर नागरिक प्रभावित होता है। स्वीडिश लोगों का अच्छा स्वास्थ्य वहाँ की अच्छी जलवायु तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निःशुल्क चिकित्सा प्रबन्ध का एक प्रमाण है।

पुरुषों व महिलाओं के बीच समानता का आन्दोलन स्वीडेन में लम्बे समय से चला आ रहा है। परिणामस्वरूप केन्द्रों, उच्च शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं की अधिक संख्या में भागीदारी दृष्टिगोचर होती है। उन्हें मजदूरी में भी समानता मिली हुई है। यहाँ रोजगार में संलग्न विवाहित महिलाओं का प्रतिशत १९५० के २५ से बढ़कर १९७० में ५० तक एवं १९८२ में ६२ तक पहुँच गया है।

स्वीडिश शिक्षा व्यवस्था की एक विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति जो कार्यरत होने के उपरान्त भी शिक्षा चालू रखना चाहता है उसे सुविधा प्रदान की जाती है।

डेनमार्क भी एक छोटा देश है। क्षेत्रफल १६ हजार ५५७ वर्गमील है। जनसंख्या उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार लगभग ६१ लाख। राष्ट्रीय आय का २५ प्रतिशत भाग व्यापार एवं यातायात से प्राप्त होता है। कृषि कार्य में २० प्रतिशत लगे रहते हैं। ३० प्रतिशत औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत हैं। लघु कुटीर उद्योग बड़ी संख्या में हैं। आय का एक बड़ा भाग छोटे उद्योगों से प्राप्त होता है खेती एवं पशुपालन की दृष्टि से यह राष्ट्र बहुत आगे है। डेरी फार्मों की संख्या भी सर्वाधिक है। अनुमान है कि स्विट्जरलैंड की तरह डेनमार्क भी कुल दुग्ध उत्पादन का चालीस प्रतिशत दूसरे देशों को निर्यात करता है। खनिज पदार्थों का अत्यन्त अभाव है। इनका आयात करना पड़ता है। फिर भी निर्यात लगभग ५ अरब डालर का होता है।

यदि देशवासियों का पुरुषार्थ जीवन्त हो तो सीमित साधनों द्वारा भी असामान्य प्रगति की जा सकती है—इसका अच्छा उदाहरण डेनमार्क है। सन् १९४८ में यहाँ प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ८०० डालर थी, जो बढ़कर सन् १९६० में १२०० डालर हो गई। सन् १९७६ में और भी बढ़ी और ७ हजार छः सौ डालर जा पहुँची। लगातार बढ़ती वार्षिक आय इसी बात का परिचायक है कि वहाँ के नागरिकों में श्रमशीलता अभी भी शेष है।

फिनलैण्ड स्वीडेन के पूर्व में स्थित अत्यन्त छोटा राष्ट्र है। १९३९ में रूस ने युद्ध में उसके एक बड़े भाग पर कब्जा कर लिया। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी के शोषण का शिकार बना। आर्थिक व्यवस्था बुरी तरह डगमगा गई थी। युद्ध में शरणार्थियों का भरण-पोषण एवं निवास का अतिरिक्त बोझ कन्धे पर आ पड़ा, फिर भी देशवासियों ने अपने मनोबल को टूटने नहीं दिया और दुगुने उत्साह से परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। इसी कारण उसकी स्थिति अब इतनी अच्छी बन पायी है।

यहाँ का कुछ क्षेत्रफल १ लाख ३० हजार १२० वर्गमील है। आबादी ४८ लाख। ५० प्रतिशत व्यक्ति श्रमिक है। सन् १९४८ में वार्षिक आय प्रति व्यक्ति औसतन ८०० डालर थी। अब ६३०० डालर के निकट है।

जापान की कुल जनसंख्या ११ करोड़ ३० लाख है। द्वितीय विश्वयुद्ध में इसकी भी बुरी गति हुई। हिरोशिमा और नागाशाकी में गिराये बमों का दुष्प्रभावों अब तक बना हुआ है। अर्थव्यवस्था बुरी तरह गड़बड़ा गई थी, किन्तु राष्ट्र प्रेम, लगन व अथक परिश्रम के बल पर आज पुनः वह औद्योगिक रूप से विकसित देशों की पंक्ति में आ खड़ा हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक्स में भी कॉटेज इण्डस्ट्री का बहुत प्रचलन है। जापानियों की श्रमनिष्ठा से ही विगत दो दशकों में देश की आमदनी ५ गुनी बढ़ी। वहाँ प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष औसत आय ७७३० डालर है।

इसराइल भी जापान की तरह एक छोटा-सा देश है। संयुक्त कौटुम्बिक प्रणाली का यहाँ अनुकरणीय उदाहरण देखने को मिलता है। इसका प्रथम प्रयोग फिलिस्तीन में १९१० में आरम्भ किया गया। संयुक्त रूप से कृषि कार्यों में काम करने तथा आवश्यकतानुसार उपयोग करने का यह अभिनव प्रयोग छोटें स्तर पर सीमित व्यक्तियों को लेकर किया गया, पर वह अत्यन्त सफल रहा। यहाँ इस कम्यून (संयुक्त कौटुम्बिक) व्यवस्था को 'क्वुत्सा या दर्गेनिया' कहा जाता है।

इस व्यवस्था के प्रयोग अन्यत्र भी चल पड़े। १९६० तक ऐसे गाँवों की संख्या ५०० तक जा पहुँची। अनुमान है कि इसराइल के १०० गाँव संयुक्त कौटुम्बिक प्रणाली की व्यवस्था द्वारा परिचालित हैं।

क्यूबा में भी कम्यून प्रणाली के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध होते हैं। उनके सदस्य एक साथ रहते, साथ-साथ काम करते तथा उपार्जित सम्पदा का, मिल बाँटकर उपभोग करते हैं।

इन उदाहरणों से एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि कर्मठता संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। उसका उपयोग जहाँ भी, जिस मात्रा में हो रहा होगा वहाँ पग-पग पर सफलता मिलेगी। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी की कमी पड़ने पर ही अवगति की लानत सहन करनी पड़ती है। इसी कारण व्यक्ति पिछड़े रहते हैं और देशों को अवगतिजन्य कष्ट सहने पड़ते हैं। राष्ट्रों सम्बन्धी ये सभी तथ्य मानव पर उसके एकाकी जीवन में भी लागू होते हैं। जो इन सिद्धान्तों का परिपालन करता है, वह उतना ही आगे बढ़ता है अपने समाज परिकर के विकास में सहायक सिद्ध होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नागरिकों के स्तर पर राष्ट्र की प्रगति निर्भर

किसी भी देश की प्रगति एवं समृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ के नागरिकों का स्तर कैसा है ? राष्ट्रीय विकास के लिए बनने वाली योजनाओं की अपनी उपयोगिता है पर उनकी सफलता नागरिकों की चरित्र-निष्ठा के ऊपर निर्भर करती है। योजनाएँ कितनी भी सशक्त एवं समर्थ क्यों न हों, उनकी सफलता तब तक संदिग्ध बनी रहेगी जब तक व्यक्तियों का नैतिक स्तर गिरा हुआ है अस्तु, समाज एवं देश की स्थायी प्रगति एवं समृद्धि के लिए सर्वप्रथम नैतिक आधारों को सुदृढ़ बनाना आवश्यक हो जाता है।

नैतिकता के अन्तर्गत वे सारे तत्त्व समाहित हैं, जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में योगदान देते हों। श्रमशीलता, ईमानदारी, प्रामाणिकता उसके बाह्य पक्ष हैं, तो शालीनता, शिष्टता, उदारता, मिलनसारिता अन्तरंग। कोई व्यक्ति अपने काम के प्रति ईमानदार है पर सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कर रहा है तो उसे नीतिवान, चरित्रवान नहीं कहा जा सकता। नैतिकता समस्त समाज की बात सोचने, सनकी प्रगति के लिए तदनुरूप आचरण करने का ही पर्याय है, जो व्यक्तिगत परिधि तक सीमित न रहकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रेम के रूप में प्रस्फुटित होती है फलतः समग्र प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है।

समाज एवं देश प्रेम का तूफानी झोंका बीसवीं सदी के आरम्भ में आया था। समाज सेवियों, अनुपम अविस्मरणीय त्याग-बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करने वाले क्रान्तिकारियों, देश प्रेमियों की एक समर्थ एवं सशक्त टोली पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए उठ खड़ी हुई। असामान्य ही नहीं सामान्य व्यक्तियों के मन में भी देश प्रेम की लहरें हिलोरें ले रही थीं। सबने अपने-अपने स्तर पर प्रयास किया। फलतः सैकड़ों वर्षों से चली आ रही गुलामी की जंजीरें टूट कर छिन्न-भिन्न हो गईं और अँग्रेजों को भागना पड़ा। राष्ट्रीय चरित्र का, देश-प्रेम का एक अनूठा और ऐतिहासिक उदाहरण उन दिनों प्रस्तुत हुआ जिसे यादकर आज भी रोमांच हो जाता है।

प्रगति के लिए द्वितीय चरण उठाने की आवश्यकता थी। उत्कृष्टता का जो आवेग एवं आवेश उन दिनों प्रकट हुआ तथा स्वाधीनता का कारण बना, वह चिरन्तन रहा होता—नव निर्माण के प्रयासों में उसी प्रचण्ड वेग के साथ नियोजित रहा होता तो आज देश की स्थिति कुछ और ही होती। असमर्थता एवं अभावग्रस्तता का जो रोना पड़ रहा है यह स्थिति न आती। टालने के लिए, मन बहलाने के लिए कुछ भी बहानेबाजी की जा सकती है, कि देश में साधनों का अभाव है—अशिक्षा का प्रकोप है आदि अवगति के कारणों में एक सीमा तक इनका भी योगदान हो सकता है पर पूर्णतया इन्हें ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इस तथ्य से कोई भी विचारशील इन्कार नहीं कर सकता कि पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय चरित्र का बुरी तरह अवमूल्यन हुआ है। स्वतन्त्रता संग्राम में देश की कर्मठता, चरित्रनिष्ठा, देश-प्रेम की भावना जागी वह स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद एकाएक ही विलुप्त हो गई। नैतिक अवमूल्यन का प्रतिफल सामने आया। काम के प्रति अवमानना, सामाजिक दायित्वों की उपेक्षा, कामचोरी, हरामखोरी की बढ़ती हुई प्रवृत्ति, अहमन्यता, अन्यमनस्कता प्रकारान्तर से नैतिक पतन की ही परिणति है जिसने देश के विकास में भारी अवरोध पैदा किया है।

भारत और जापान ने अपनी विकास यात्रा करीब-करीब एक साथ आरम्भ की है भारत पर अँग्रेजों का प्रभुत्व था। द्वितीय विश्व-युद्ध में जकड़ा 'ग्रेट' ब्रिटेन भारत में बन रही परिस्थितियों एवं स्वयं की अन्तर्राष्ट्रीय उलझनों के कारण जहाँ भारत को १९४७ में स्वतन्त्र करने पर विवश हुआ, वहाँ जापान को भी इसी युद्ध में जर्मनी के साथी होने की परिणति के रूप में हिरोशिमा, नागाशाकी के आणविक विस्फोट की प्रलय विभीषिका के उपरान्त अपना अभ्युत्थान नये सिरे से करना पड़ा। गत पैंतीस वर्षों में सारे विश्व ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। फिर भी जिस क्रम से इस छोटे से राष्ट्र जापान ने नैतिक एवं भौतिक दोनों ही दृष्टि से प्रगति की है, वह अनायास ही सबके लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई है।

कलात्मक वस्तुएँ, तकनीकी सामान, मोटर पार्टस, घड़ी, रेडियो, इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में जापान विश्व भर में अग्रणी है। विश्व के प्रसिद्ध औद्योगिक राष्ट्रों में जापान का औद्योगिक उत्पादन सबसे अधिक है। प्रतिवर्ष ५-३ प्रतिशत की दर से उसमें अभिवृद्धि हो रही है। बेरोजगारी नहीं के बराबर है। मात्र कामयोग्य व्यक्तियों में से एक प्रतिशत बेकार हैं। वर्तमान में जापान विश्व में स्टील एवं मोटर का सबसे बड़ा उत्पादक है। दैनिक अँग्रेजी पत्र स्टेट्स मैन में पीटर हेजल हर्थ द्वारा प्रकाशित २८ दिसम्बर १९८० के एक आँकड़े के अनुसार वर्ष १९८० में जापान में १ करोड़ १० लाख मोटर कारें बनीं। यह संख्या अमेरिका के इस वर्ष के कुल उत्पादन से ३० लाख अधिक है। इस्पात का उत्पादन ११ करोड़ ५७ लाख टन हुआ जो अमेरिका उत्पादन से १ करोड़ ५७ लाख टन अधिक है। उल्लेखनीय है कि उनके निर्माण के लिए अधिकांश कच्चा माल बाहर से मँगाया जाता है।

मोटर साइकिल एवं इलेक्ट्रानिक्स कम्प्यूटर्स आदि के उत्पादन में भी जापान सभी देशों से आगे है। स्वीट्जरलैण्ड कभी घड़ियों के लिए प्रख्यात था किन्तु जापान ने उसकी यह ख्याति छीन ली है। स्वीट्जरलैण्ड की ८६७ कम्पनियों में जितनी घड़ियाँ बनती हैं उससे ६० लाख अधिक मात्र जापान की कम्पनियाँ बना देती हैं। विश्व भर में जितने जहाज बन रहे हैं उनका ४६ प्रतिशत जहाज बनाने का आर्डर अकेले जापान ने लिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फोटोग्राफी कैमरा अच्छे किस्म के जर्मनी में बनते थे किन्तु अपने पुरुषार्थ और मनोयोग के बलबूते जापान इस क्षेत्र में भी जर्मनी से कहीं आगे निकल गया। वर्ष १९८० में हवाई जहाज उद्योग एवं आधुनिकतम कम्प्यूटर तकनीक में भी जापान ने विश्व के सभी देशों को पीछे छोड़ दिया।

पीटर हेजल हर्थ ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि 'निश्चित ही यह आश्चर्यजनक बात है कि विश्व की कुल जनसंख्या का मात्र ३ प्रतिशत वाला देश जापान मात्र कुल भूभाग के दशमलव तीन प्रतिशत भू-भाग पर बसा हुआ है किन्तु समूचे विश्व की १० प्रतिशत आर्थिक गतिविधियों का संचालन करता है।" जापान की इस प्रगति को देखते हुए हट्सन इन्स्टीट्यूट अमेरिका के भविष्य विज्ञानी प्रो० हरमन कान ने भविष्यवाणी की है कि इस शताब्दी के अन्त तक जापान का व्यापार ४ लाख करोड़ रुपये तक पहुँच जायेगा।

जापान की इस चमत्कारी प्रगति के कारणों पर विचार करने पर एक ही तथ्य हाथ लगता है कि देशवासियों के उत्कृष्ट चरित्र ने ही उन्हें वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है। प्रामाणिकता, ईमानदारी, सहिष्णुता, श्रमशीलता की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी है। हर व्यक्ति व्यक्तिगत लाभ की तुलना में राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि महत्त्व देता है। प्रस्तुत बहुचर्चित घटना क्रमों में उनकी देशभक्ति स्पष्ट झलकती है।

अभी द्वितीय विश्वयुद्ध को बीते कुछ ही दिन हुए थे। जापानवासियों पर युद्ध ने जो कहर ढाया था उसकी क्षतिपूर्ति के लिए वे खून-पसीना एक कर रहे थे। एक अमेरिका फर्म के संचालक ने अपने फर्म में काम कर रहे जापानी श्रमिकों की सुविधा के लिए उनके श्रम के दिनों में कटौती करके काम के सप्ताह को छै दिनों के स्थान पर पाँच दिनों का कर दिया। दूसरे ही दिन अप्रत्याशित प्रतिक्रिया सामने आयी। सभी जापानी कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। संचालक ने कारण का पता लगाया। कर्मचारी ट्रेड यूनियन के अध्यक्ष ने सदस्यों द्वारा पारित किया गया प्रस्ताव फर्म के संचालक के समक्ष प्रस्तुत किया जिसमें प्रतिवेदन था कि "युद्ध ने हमारी आर्थिक व्यवस्था को नष्ट कर दिया है। हमें अपनी बिगड़ी स्थिति को सुधारने के लिए जी-तोड़ मेहनत करनी होगी। ऐसे में संचालक महोदय द्वारा श्रम के दिनों में कटौती कर दर्शायी गयी हमदर्दी हमारे देश की प्रगति के लिए हानिकारक है। अस्तु कृपया अपने निर्णय को वापिस लें और हमें उठने के लिए अधिक श्रम करने का मौका दें।" संचालक को अपना निर्णय वापिस लेना पड़ा। जिस देश के नागरिकों में देश-प्रेम इतना उच्चस्तरीय हो भला वह देश पीछे कैसे रह सकता है।

समृद्धि की चोटी पर पहुँचने के बाद भी जापान के नागरिकों में देशभक्ति की भावना में किसी भी प्रकार कमी नहीं आयी है। हर व्यक्ति श्रम की अवमानना, कामचोरी, हरामखोरी को नैतिक अपराध मानता है। इन दिनों विश्वभर में अधिकारों की माँग एवं उनकी आपूर्ति के लिए सामूहिक हड़तालों का एक सिलसिला चल पड़ा है। कानूनी दृष्टि से निर्धारित नियमों के अन्तर्गत आने पर हड़तालों को वैध भी माना जाता है। इतने पर भी जापान की स्थिति सर्वथा भिन्न है। वहाँ लम्बी हड़तालों को नैतिक अपराध की श्रेणी में गिना जाता है।

टोकियो के सूफीजी विभाग में विश्व का सबसे आधुनिकतम प्लान्ट अवस्थित है जिसमें हजारों की संख्या में कर्मचारी काम करते हैं। इस प्रेस से आशीसिम्बुन नामक प्रमुख समाचार पत्र का प्रकाशन होता है। १ करोड़ २० लाख प्रतियाँ प्रतिदिन प्रायः एवं सायं संस्करण के रूप में निकलती हैं। पत्र के प्रकाशक हैं—दाताशी कितनी। एक इन्टरव्यू में उनसे कर्मचारियों के हड़ताल के विषय में पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया कि विगत पाँच वर्षों में दो बार हड़ताल हुई थी। एक बार एक घण्टे की जिसमें कुछ भी नुकसान नहीं हुआ क्योंकि हड़ताल काम के घण्टों में नहीं हुई थी। दूसरी हड़ताल वर्ष १९७९ में कर्मचारी यूनियन द्वारा चाय की छुट्टी के समय में की गई जो मात्र १५ मिनट की थी। प्रकाशक के अनुसार इस पत्र का प्रकाशन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कभी भी नहीं बन्द हुआ।

२१ अप्रैल, १९८१ के हिन्दुस्तान टाइम्स में एक व्यक्ति ने अपना एक रोचक संस्मरण लिखा था कि "उन्हें जापान से भारत हवाई जहाज द्वारा वापिस लौटना था। जिस दिन का टिकट था उसी दिन सूचना मिली कि हवाई सेवा के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी है। उन्हें चिन्ता हुई। पैसे भी समाप्त हो चले थे जिसके कारण अधिक दिनों तक रुकना संभव न था। सम्बन्धित अधिकारियों से पता लगाने पर आश्चर्यजनक बात मालूम हुई। अधिकारियों ने बताया कि हमारे देश में दो दिनों से अधिक की हड़ताल नहीं होती क्योंकि इससे देश को भारी क्षति उठानी पड़ती है। इससे भाई श्री दिनकर को प्रसन्नता हुई और साथ ही आश्चर्य भी। प्रसन्नता का कारण यह था कि हड़ताल दो दिनों से अधिक नहीं चलेगी। चिन्ता से मुक्ति मिली। आश्चर्य इस बात का था कि जापान के प्रति व्यक्ति की औसत आय ८ हजार डालर प्रतिवर्ष से भी अधिक है। सामान्यतः व्यक्तिगत आर्थिक क्षति अधिक न उठानी पड़े इसलिए हड़ताल समाप्त की जाती है पर जापान के कर्मचारियों के साथ तो ऐसी कोई मजबूरी न थी। वे चाहते तो अधिक दिनों तक हड़ताल चला सकते थे। निस्सन्देह यह जापानवासियों का देश के प्रति उत्कट आदर्श एवं प्रेम का परिचायक था। जिसके कारण हर व्यक्ति देश के प्रति अपने नैतिक दायित्वों को समझता एवं निर्वाह के लिए प्रयत्नशील रहता है।"

एक ओर जापानवासियों के देश-प्रेम को देखकर हृदय गद्गद् हो उठता है वहीं दूसरी ओर अपने देश की स्थिति को देखकर भारी निराशा होती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के तैंतीस वर्षों बाद भी स्वावलम्बन की दिशा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आशाजनक एवं अपेक्षित प्रगति नहीं हुई है। प्रति व्यक्ति की औसत आय प्रतिवर्ष १२०० रुपये है। इस विषम स्थिति में भी यहाँ किसी भी सरकारी एवं गैर सरकारी विभाग में महीनों तक हड़ताल चलना एक सामान्य-सी बात है। जापान में दो दिनों से अधिक हड़ताल चलाना देश के लिए हानिकारक समझा जाता है। जबकि हमारे यहाँ प्राप्त आँकड़ों के अनुसार वर्ष १९७९ में मात्र हड़ताल के कारण ४ करोड़ ३० लाख श्रमदिनों की क्षति हुई। अनुमानतः १९७९ में एक भी हड़ताल नहीं होती तो उससे होने वाले लाभ से हजारों व्यक्तियों को रोजगार देने के साधन जुटा लिए जाते।

ये तो हड़ताल के कारण होने वाली क्षति के आँकड़े हैं। बेमन से, आधे-अधूरे रूप में किए जाने से काम के स्तर एवं मात्रा दोनों में कमी आती है। कामचोरी की इस घातक मनोवृत्ति का भी लेखा-जोखा लिया जाय तो मालूम होगा कि हड़ताल से होने वाली क्षति की तुलना में इसकी क्षति कहीं अधिक है। बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति से उत्पादन घटता तथा काम का स्तर गिरता है। फलतः व्यक्ति और समाज दोनों को ही समान रूप से नुकसान उठाना पड़ता है। प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होता है। जिस देश में समृद्धि के मूलभूत स्रोत 'श्रम' की अवमानना की जाती हो और काम न करना बड़प्पन का चिन्ह माना जाता हो उसकी प्रगति कैसे सम्भव है ? अपने देश में पिछले दिनों यही घातक भूल होती रही है।

सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों को गौण मानकर उपेक्षा करने एवं व्यक्तिगत हितों को अत्यधिक महत्त्व देने की दुष्प्रवृत्ति की एक कड़ी और जुड़ जाने से संकीर्ण स्वार्थपरता को ही प्रोत्साहन मिला। शिष्टता, शालीनता के नागरिक नियमों की अवमानना तो एक सामान्य-सी बात हो गई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रास्ते चलते हाट-बाजारों में, मोटर-रेलगाड़ी में सफर करते हुए देखा जा सकता है। अनुशासनहीनता एवं स्वेच्छाचार को स्वतन्त्रता का पर्याय समझने की दुष्प्रवृत्ति से सामाजिक सुव्यवस्था एवं सन्तुलन बुरी तरह डगमगा गया है।

इस तथ्य को भली भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए कि किसी भी देश के विकास में उपलब्ध भौतिक साधनों का उतना महत्त्व नहीं होता जितना कि नागरिकों के चारित्रिक स्तर का, विकास के लिए परिस्थितियाँ विपन्न होते हुए भी नागरिकों का नैतिक आधार सुदृढ़ हो और हर व्यक्ति देश एवं समाज के प्रति अपने दायित्त्वों को समझकर उनके निर्वाह के लिए जुट पड़े तो कोई कारण नहीं है कि प्रगति का पथ प्रशस्त न हो सके और पिछड़ेपन का, अभावग्रस्तता का अभिशाप जुड़ा रहे। छोटे-छोटे देशों के ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने हैं। प्रकृति प्रदत्त साधनों की दृष्टि से, जलवायु की दृष्टि से उनकी स्थिति अपने देश से अधिक अच्छी नहीं है फिर भी वे द्रुतगति से आगे बढ़े हैं। जापान, इसराइल, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेनमार्क जैसे छोटे-छोटे देशों की चन्द वर्षों में चमत्कारी प्रगति को देखते हैं, तो उस सफलता के पीछे एक ही कारण नजर आता है कि वहाँ के निवासियों के उत्कृष्ट चरित्र, देश-प्रेम की उदात्त भावना ने ही उन्हें वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है। इसके विपरीत अरब राष्ट्रों का उदाहरण हमारे सामने है कि प्रकृति प्रदत्त तेल का विपुल भण्डार होते हुए वे सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी स्थिति में पड़े हुए हैं। सर्वाधिक आन्तरिक दंगे फसाद एवं संघर्ष आये दिन इन्हीं देशों में होते रहते हैं।

उनकी श्रम निष्ठा अनुकरणीय है

"समाज एवं राष्ट्र के हित में व्यक्ति का हित भी सुरक्षित है", समाजशास्त्र का यह सिद्धान्त शत-प्रतिशत सही है। उतना ही सच यह भी है कि व्यक्तिगत स्वार्थों के समक्ष सामूहिक एवं राष्ट्रीय हितों को बलि देने वाले समाज का अधःपतन सुनिश्चित है। सर्वांगीण प्रगति के शाश्वत तथा मूल सिद्धान्तों को समझा तथा व्यवहृत किया जा सके तो कोई कारण नहीं कि अभावग्रस्तता, गरीबी, पिछड़ेपन के अभिशाप से ग्रस्त रहना पड़े। प्रगति एवं समुन्नति की ओर बढ़ने में असमंजस, संकीर्ण स्वार्थपरता का ही पड़ता है, जिसके कारण अधिक से अधिक व्यक्तिगत उपभोग की बात सूझती तथा आलस्य-प्रमाद से अभिप्रेरित कामचोरी, हरामखोरी की घृणित मनोवृत्ति पनपती है।

उपरोक्त सिद्धान्त में एक आवश्यक कड़ी यह भी जुड़ती है कि श्रमशीलता, ईमानदारी एवं जिम्मेदारी की सत्प्रवृत्ति से ही प्रगति एवं समुन्नति की बात बनती है। नागरिकों में ये गुण विद्यमान हों तो उस मान्यता को भी झुठलाया जा सकता है कि अनुकूलताओं में ही समाज एवं देश को आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। व्यक्तियों के सामूहिक भाव भरे पुरुषार्थ से अवरोध बनी प्रगति पथ की समस्त कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। इस सच्चाई की परख करनी हो तो उन देशों का अध्ययन करना चाहिए, जिन पर संकटों के बादल कहर बनकर बरसे पर अपने अदम्य मनोबल, पुरुषार्थ के सहारे उन्होंने उनका डटकर मुकाबला किया और अन्ततः उन्हें चीरते हुए प्रगति पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ने में सफल हुए।

जापान उन्हीं 'सेल्फमेड' देशों में से एक है। ईश्वर की दी हुई श्रम, बुद्धि और समयरूपी तीन विभूतियाँ ऐसी हैं, जिनके सदुपयोग से सब कुछ अर्जित किया जा सकता है, जापानियों ने इसे मात्र समझा ही नहीं, प्रत्यक्ष साकार भी किया है। उभरते हुए इस छोटे राष्ट्र को महाविनाश के कगार पर ला खड़ा किया द्वितीय विश्वयुद्ध ने। जितनी जनशक्ति-धनशक्ति नष्ट हुई, दूसरा कोई देश होता तो सदा के लिए अपना मनोबल, धैर्य गँवा बैठता पर उनकी प्रशंसा करनी होगी कि उन संकटों के समक्ष वे झुके नहीं। राष्ट्रीय भावना की छत्रछाया में उन्होंने अपने श्रम को और भी प्रखर-पैना किया। उनके अद्भुत मनोयोग, श्रमशीलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ही परिणाम है कि औद्योगिक एवं तकनीकी क्षेत्र में आज जापान की ही धूम है। जापानी वस्तुएँ सस्तेपन के साथ क्वालिटी की पर्याय बन चुकी हैं। अन्य औद्योगिक राष्ट्रों की तरह जापान में भी कच्चे माल की कमी, ऊर्जा संकट, मुद्रास्फीति जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं, पर आश्चर्य यह है कि इनसे जूझते हुए भी जापानी उत्पादन एवं स्तर में निरन्तर सुधार होता जा रहा है, वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ख्याति प्राप्त करता जा रहा है।

मई १९८२ में एक प्रमुख अँग्रेजी पत्र ने इण्टरनेशनल सिम्पोजियम आयोजित किया था, जिसमें विश्व के उत्कृष्ट तकनीकी ज्ञान का प्रदर्शन किया गया था। जापान भी भाग लेने वालों में से एक था। उपस्थित विशेषज्ञों ने एक स्वर से जापानी तकनीकी ज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा कि वह समूचे विश्व में अग्रणी है।

जापान का विकास बहुमुखी क्षेत्र में हुआ है, पर सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रगति माइक्रो इलेक्ट्रोनिक, मिकेट्रोनिक्स तथा ऑप्टिक्स क्षेत्र में की है। अमेरिकन ऑटोमोबाइल कम्पनी द्वारा किये गये अनुसन्धान के अनुसार अमरीका तथा योरोप की अपेक्षा जापान की उत्पादकता तीन गुनी है। उत्पादन बढ़ने से स्तर गिरने की बात जापानियों के साथ लागू नहीं होती। जिस काम को पूरा करने के लिए अमरीका के प्लाण्ट-१ में ४३४ तथा प्लाण्ट-२ में २५२ लोगों की जरूरत पड़ती है वहाँ जापान में कुल मिलाकर १०० लोगों से ही काम चल जाता है। यह जापानियों की प्रखर श्रमशीलता का ही परिचायक है। एक दूसरे अनुसन्धान के अनुसार अमरीकी ऑटोमोबाइल कम्पनी में जिस पुर्जे को बनाने के लिए ४ से ५ घण्टे लग जाते हैं, उसी काम को इलैक्ट्रोनिक रोबोटों के माध्यम से जापान में पाँच मिनट में पूरा कर लिया जाता है।

इस तत्परता एवं कार्य कुशलता का कारण है, समय की पाबन्दी, उत्पादन में—"जस्ट इन टाइम प्रोडक्शन" तथा तुरन्त वितरण—"एमीनेन्टरी डिलीवरी"। जापानी भाषा में इस व्यवस्था को 'कनवन सिस्टम' कहते हैं। जो प्रत्येक औद्योगिक प्रतिष्ठान का 'मोटो' है। समय साधन एवं माल-सामान का कोई भी अंश बेकार न जाने पाये, इस पर कड़ी निगरानी रखी जाती है। इतना ही नहीं, वर्कर की कार्यक्षमता का पूरा-पूरा उपयोग करने पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

ऐसी सरकारी तथा गैर-सरकारी कम्पनियाँ भी जापान में कार्यशील हैं, जो छोटे-बड़े औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए योजनाएँ बनाती, मशीनरी, साधन जुटाती तथा बैंकों से कम ब्याज पर ऋण दिलवाती हैं। साथ ही वे उत्पादन के स्तर पर कड़ी निगरानी भी रखती हैं। सर्वाधिक ध्यान वर्कफोर्स पर दिया जाता है। उनको आपसी सहकार पैदा करने तथा हिल-मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। एक विशेषज्ञ का मत है कि कार्यों में जितनी सघन सहकारिता जापानियों में देखी जाती है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ स्तर को ऊँचा रखने में यह सत्प्रवृत्ति भी प्रमुख भूमिका निभाती है। जापान के लेबर फोर्स को नौकरी छिनने, असमय बाहर निकाले जाने का डर नहीं रहता। कारण कि जब तक वे कार्य में समर्थ बने रहते हैं नौकरी से नहीं निकाले जाते। इतनी ईमानदारी मालिक भी निभाते हैं।

लेबर यूनियन जापान में भी कार्यरत है, पर उनकी नीतियाँ तथा लक्ष्य अन्य देशों से सर्वथा भिन्न हैं। कर्मचारियों की कठिनाइयों का वे हल तो निकालते ही हैं पर इस बात पर उनका सबसे अधिक ध्यान रहता है कि श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा कुशलता कैसे बढ़े ? अधिक से अधिक उत्पादन तथा स्तर बढ़ाकर देश की प्रतिष्ठा कैसे कायम की जाय ? अपने देश की तरह लेबर यूनियन श्रमिकों, कर्मचारियों से हड़ताल नहीं करवातीं वरन् संभावित हड़तालों की रोकथाम के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। प्रायः विश्व के अधिकांश लेबर यूनियन कम्पनी एवं देश के लाभ की अपेक्षा श्रमिकों के व्यक्तिगत हितों पर अधिक ध्यान देते हैं पर जापानी लेबर यूनियन समस्त समाज एवं राष्ट्र के हितों को अधिक महत्त्व देते हैं।

बड़ी से बड़ी कीमत देकर भी जापानी विदेशी आधुनिक तकनीकी ज्ञान को आयात करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। जिस ज्ञान को वे आयात करते हैं, कुछ ही महीनों में निर्यात करने की स्थिति में आ जाते हैं। यूरोपीय तथा अमरीका जैसे औद्योगिक देश जो उत्पादन करते हैं, उसमें उन्हें दूसरे देशवासियों की अभिरुचि का ध्यान नहीं रखना पड़ता। वे अपने दृष्टिकोण से उत्पादन करते हैं। पर जापान के साथ ऐसी बात नहीं है। विश्व बाजार में उन्हें कड़ी परीक्षा, स्पर्धा का सामना करना पड़ता है। लोगों की बदलती रुचियों को ध्यान में रखकर ही वे अपनी उत्पादन नीतियों में समय-समय पर हेर-फेर करते—तदनुरूप निर्माण करते हैं। अपनी उत्कृष्टता के कारण कितनी ही जापानी कम्पनियाँ विश्व बाजार में मोनोपॉली रखती हैं। इसमें सोनी एवं वेक्टर कम्पनी का उदाहरण उल्लेखनीय है। जिसके टेपरिकार्डर संसार भर में प्रख्यात हैं।

प्रतिभा, बौद्धिक क्षमता जन्मजात ही नहीं पाई जाती, प्रयत्नों से कमाई भी जाती है, जापानियों ने यह सत्य साकार कर दिखाया है। अनवरत् प्रयत्नों से उनकी कार्यक्षमता, प्रतिभा बढ़ी है। एक अनुसंधान में पाया गया कि जापानियों की बुद्धिलब्धि संसार में सर्वाधिक है। कभी यह श्रेय अमरीका को प्राप्त था। पर जापान ने वह स्थान अब ले लिया है। कालरिन राज्य के न्यू यूनिवर्सिटी आफ ओलसर के रिचार्ड लिन तथा मिशिगन विश्वविद्यालय के हेरोल्ड डब्ल्यू० स्टिवेंसन ने अमरीकी तथा जापानी बच्चों की बौद्धिक क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि जापानी बच्चे अमरीकी बच्चों से आगे हैं। जापानियों की बौद्धिक क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। उपरोक्त अध्ययन निष्कर्ष के अनुसार बीसवीं सदी के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूर्वार्द्ध में औसतन जापानी बच्चों की बुद्धिलब्धि १०२ से १०५ रही, जबकि उत्तरार्ध में १९८० तक १०८ से लेकर ११५ पाई गई। विगत एक दशक में अमरीका की अपेक्षा जापानी शिक्षार्थियों की बुद्धिलब्धि में औसतन ७ प्वाइन्ट की वृद्धि हुई। परीक्षण में यह भी पाया गया कि गणित, विज्ञान की जानकारियों में जापानी अमरीकी नागरिकों से काफी आगे हैं।

अनुसन्धानकर्ताओं ने इस अन्तर का एक कारण यह बताया कि जापानी बालक बचपन से ही श्रमशील, समय के पाबन्द होते हैं। इस मनोवृत्ति को विकसित करने में अभिभावकों एवं शिक्षकों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। शिक्षक तथा अभिभावक दोनों का ही यह प्रयत्न रहता है कि बच्चे सभी बेकार न रहें, उन्हें किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखा जाय। जबकि अमरीकी बालकों के अभिभावक तथा शिक्षक उन पर उतना ध्यान नहीं देते। वे साधन जुटाकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेते हैं। इस उपेक्षा का परिणाम ही है कि अमरीकी पीढ़ी अपनी प्रखरता गँवाती जा रही है।

तथ्यों का गहराई में जाकर परीक्षण करने वाले आनुवंशिकी विशेषज्ञों ने चौंकाने वाले निष्कर्ष निकाले जो मनःशास्त्रियों के सहयोग से प्राप्त हुए हैं। दोनों के सम्मिलित शोध निष्कर्षों का सार है कि "अद्भुत मनोयोग तथा प्रचण्ड पुरुषार्थ के कारण जापानियों का आनुवंशिक स्तर भी प्रभावित हो रहा है। अपनी कमाई प्रतिभा को सूक्ष्म आनुवंशिक रूप से वे जन्मने वाले शिशुओं को विरासत में दे जाते हैं। बड़े होने पर वे बच्चे उस सम्पत्ति को गँवाते नहीं बढ़ाते हैं तथा अगली पीढ़ी को दे जाते हैं। यही कारण है कि जापानियों की कौशल तथा सामर्थ्य आगे बढ़ रही है।"

इंगलैण्ड के प्रख्यात विचारक लार्ड सी० पी० स्नो अपनी पुस्तक 'दी फिजीसिस्ट' में लिखते हैं कि—जापान की उल्लेखनीय प्रगति में वहाँ के नागरिकों के मनोबल, उत्साह, ईमानदारी तथा श्रम की मनोवृत्ति का सबसे बड़ा योगदान है। जापान के वैज्ञानिकों, टैकनीशियनों में अपनी मौलिक प्रतिभा दिखाई पड़ती है, जो उन्होंने अपने प्रयास से उपार्जित की है। वे अपनी कार्यकुशलता तथा ईमानदारी में बेमिसाल हैं। उनकी विशेषताएँ अनुकरणीय हैं। विशेषकर उन देशों के लिए जो प्रगति की आकांक्षा रखते हैं, पर उपरोक्त गुणों के अभाव में आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। सचमुच ही विकास अभीष्ट है, तो बड़ी योजनाएँ बनाने के पूर्व किसी भी राष्ट्र को अपने नागरिकों के भीतर वे विशेषताएँ पैदा करनी चाहिए जो जापानियों ने पुरुषार्थ द्वारा अर्जित की हैं। सफलताएँ कभी आसमान से नहीं टपकतीं, कमाई जाती हैं।

व्यक्ति की प्रगति समाज की उन्नति में

आज हम जिधर दृष्टिपात करते हैं उधर ही भ्रष्टाचार रिश्वतखोरी, कर्तव्यहीनता, दुर्व्यसन, फैशन परस्ती और असंयम का नग्न-नृत्य दृष्टिगोचर हो रहा है। मानव दानव बना हुआ है। उसके सोचने-विचारने के दृष्टिकोण बदल रहे हैं। वह अनेक विकृतियों और भ्रान्तियों का शिकार हो रहा है। इसका मूल कारण सामाजिक विकृतियाँ ही हैं। न परम्पराएँ सही हैं और न रीति-रिवाजों में ही शुद्धता और मौलिकता रही है।

यदि विचार किया जाय तो यह जानने में तनिक भी विलम्ब नहीं लगेगा कि विकृतियाँ और अनैतिकता के प्रचार-प्रसार के लिए हमारे यहाँ प्रत्यक्ष रूप से कोई पाठशाला नहीं चलती है। स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रमाण और साधन दृष्टिगोचर नहीं होने पर भी, एक-दूसरे के क्रिया-कलापों के अनुकरण से अनैतिक प्रशिक्षण मिल रहा है।

चोरी और अनैतिकता के अपराध में पकड़ा एक व्यक्ति जाता है और सजा का भागीदार भी वही होता है, परन्तु क्या आप इसमें उस व्यक्ति का ही एक मात्र दोष मानते हैं ? चोरी और अनैतिकता की प्रवृत्ति क्या उस व्यक्ति की है ? क्या समाज का इसमें कोई अनुदान नहीं ? यह बात नहीं मानी जा सकती कि यह केवल उस व्यक्ति का ही दोष है जिसने चोरी की है।

मानवीय दृष्टि से देखा जाय तो चोर में चोरी की प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव समाज से ही हुआ है। मनुष्य अनुकरण प्रिय प्राणी है। जैसा देखेगा और सुनेगा वैसा ही करने लगेगा समाज को सुधारना ही व्यक्ति को सुधारना है। बालकों की समुचित शिक्षा-दीक्षा न होना, उन्हें नैतिक ढाँचे में न ढालना आदि दोष व्यक्ति मात्र के नहीं हो सकते समाज ही का तो दोष है। आज झूँठ बोलकर छल एवं धोखा देकर धनपति बन जाने पर भी , उसका समाज में सम्मान होता है। वहीं दूसरी और सज्जन और ईमानदार व्यक्ति के पेट भरने की यथोचित व्यवस्था भी नहीं होती। इस प्रकार के अनेक कारण कम बुद्धि वाले लोगों में अनैतिकता की बातें भर देते हैं।

जिस व्यक्ति को बाल्यकाल से ही तीखे-चटपटे, बासी तथा गरिष्ठ खाद्य पदार्थ खाने को मिले हैं और परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य, उसका मन विकृत हो रहा हो तो—इसमें व्यक्ति का क्या दोष ? यह सारा दोष उसके निर्माण करने वाले समाज का ही है, जिसने अपनी प्रारम्भिक पाठशाला में उस बालक की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया।

जिन घरों में बीड़ी और शराब पी जाती हो तथा जिनमें चोरी, जुआ, छल-फरेबी द्वारा धन का उपार्जन किया जाता हो उस घर के बालकों में उपुर्युक्त दुर्व्यसन एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवगुण ही आवेंगे। उन घरों के बालकों को कोई सदाचारी देखना चाहे तो कभी सम्भव नहीं हो सकता।

सुधार की प्रक्रिया जो जीवनारम्भ से ही लागू रही होती तो इससे कुछ लाभ भी होता है पर एक व्यक्ति समाज के कुसंस्कार लेकर कुसंस्कारी बन गया तो इसमें व्यक्ति विशेष को ही इतना दोष देना बुद्धिसंगति प्रतीत नहीं होता इन दोषों के निर्माण में समाज का हाथ था जिसने इनको व्यक्ति में परिपक्व होने का अवसर प्रदान किया।

मानव की बौद्धिक एवं भौतिक उपलब्धियों के निर्माण में जो श्रेय-सम्मान सामाजिकता को दिया जा सकता है, उसकी अवनति और पतन का उत्तरदायी भी समाज ही होगा। क्या मनुष्य जन्म से खराब और कुसंस्कारी होता है ? नहीं, अधिकतर संस्कार-निर्माण में उसके वातावरण का हाथ भी रहता है। बाल्यकाल में उसे जो कुछ खिलाया-पिलाया जाता है, वह खाने-पीने लगता है, जिन संस्कारों में उसका लालन-पालन होता है उसी के अनुकूल वह जीवन-पर्यन्त चलता है। जहाँ तक कि खाने-पीने से लेकर वस्त्र पहनने, उठने, बैठने, आचार, व्यवहार करने का अनुसरण बड़ों की आदतों के अनुसार ही बालक करने लगता है। गुण, कर्म और स्वभाव का विकास कुटुम्ब और समाज की पाठशाला में ही होता है।

माता-पिता और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के संस्कार स्वयमेव ही बालकों में आते हैं। जो संस्कार और आदत बचपन में पड़ जाती है, उनका प्रभाव जीवन भर रहता है। जैसा समाज का ढाँचा और स्तर होता है, उसके नागरिक उसी ढाँचे और स्तर में विकसित होते हैं।

मनुष्य ने आज जितनी भी प्रगति की है, उसका सम्पूर्ण श्रेय समाज को है। सृष्टि के अन्य सम्पूर्ण प्राणी तो जन्म से ही स्वावलम्बी हो जाते हैं परन्तु विचारा मनुष्य तो बहुत अधिक समय तक पराश्रयी और परावलम्बी रहता है, वह कच्चा शरीर, कच्ची बुद्धि लेकर जन्म लेता है और समाज का रस पी-पीकर बड़ा होता है। माँ उसे दूध पिलाती है। पिता कपड़े पहनाता है। घर पर भाईयों और बहिनों से वह आदतें सीखता है, अध्यापक और गुरुजन उसे शिक्षा देकर सुसंस्कारवान बनाते हैं। पुस्तकें उसकी प्रतिभा को प्रखर करती हैं।

ऐसी अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व जब समाज उठाता है—तभी मनुष्य कुछ स्वतन्त्र चिन्तन, श्रेष्ठ कार्य अथवा आविष्कार और अन्वेषण करने में समर्थ हो पाता है। बिना समाज के एक पग भी आगे बढ़ना कठिन सा है।

इसी कारण हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने समाज की गरिमा को गम्भीरता से अनुभव किया और मानवीय प्रगति में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान माना। सामाजिकता ही मानवीय प्रगति की एकमात्र जननी है। इससे वे भली-भाँति परिचित थे। मानवीय मनोविज्ञान का गहन अध्ययन उनका विषय था। इसीलिए समाज द्वारा उन पर पड़ने वाले प्रभाव को गहनता से आँका।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अनुकरण से अधिक सीखता है। एक-दूसरे के आचरण को धीरे-धीरे जीवन में ढालता चलता है। इसीलिए जब आज हम मनुष्य को अनैतिक अपराध करते देखते हैं तो उस पर न खीजकर सम्पूर्ण समाज को दोष देने लगते हैं। संसार के सभी महापुरुष ईसा, बुद्ध, गाँधी, दयानन्द, मार्टिन लूथर तथा ज्ञानेश्वर ने अपना जीवन समाज-सुधार में लगाया और यह माना कि समाज-सुधार से ही मानव-सुधार सम्भव है। अकेले मनुष्य के भले बन जाने से पूरा मानव समाज नहीं बदल सकता। मनुष्य के तौर-तरीके, आचार-विचार हाव-भाव और व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए समाज को परिष्कृत करना होगा। आज की परिस्थितियों को बदलने और मनुष्यों में सद्प्रवृत्तियों के प्रादुर्भाव के लिए सामाजिक संस्कारों पर ध्यान देना होगा। जैसी सामाजिक संस्कारों की त्रिवेणी प्राचीनकाल में बही थी वैसी ही सुसंस्कारों की भागीरथी वर्तमान काल में प्रवाहित करनी पड़ेगी।

यदि अपनी स्थिति पर खेद करते रहने के बजाय उसके कारणों पर विचार किया जाये, तो पता चलेगा कि हमने जो विचार और कार्य पद्धति अपना रखी है, वह ही ठीक नहीं है और इसलिये हम उन्नति और विकास से वंचित बने हुये हैं। हम सोचते यह है कि संसार की सारी सम्पदा, सारा वैभव और सारे सुख-साधन हमें ही प्राप्त हो जायें। हमें ह्रास-विलास और आमोद-प्रमोद की परिस्थितियाँ मिलें, हम समाज में सबसे अधिक धनवान और शक्तिशाली बनें, समाज में हमारी पूजा-प्रतिष्ठा हो।

न केवल इस प्रकार सोचते ही हैं बल्कि उसके अनुरूप अपने आचरण का भी व्यवहार करते हैं। व्यापार में अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। नौकरियों में दूसरों को पीछे धकेलकर आगे बढ़ जाना चाहते हैं सार्वजनिक स्थानों पर दूसरों की चिन्ता नहीं करते। जहाँ भी रहते और जहाँ भी जाते हैं, अपनी ही सुख-सुविधा और लाभ पर ध्यान रखते हैं। दूसरे की सुविधा-असुविधा अथवा सुख-दुःख का कोई ध्यान नहीं रखते। हमारे ये स्वार्थपरक विचार और कार्य ही हमारी उन्नति एवं प्रगति में बाधक बने हुए हैं।

हम यह नहीं सोच पाते कि हम केवल एक अकेले व्यक्ति नहीं हैं। हमारा अस्तित्व सामाजिक है। हमारा सर्वस्व अभिन्न रूप से हमारे समाज के साथ जुड़ा हुआ है। जितनी देर तक हम अपने को एक अलग इकाई मानकर अपनी उन्नति और विकास के लिए सोचते और कार्य करते रहेंगे, हमें निराश ही रहना पड़ेगा। जब तक हमारा जीवन-कोण और कार्य-पद्धति समष्टिगत न होकर व्यक्तिगत रहेगा हमें अपनी स्थिति पर इसी प्रकार खेद करते रहने पर विवश होना पड़ेगा।

हमारा जीवन समाज का दिया हुआ है। वह हमारी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है। समाज की एक धरोहर है। इनका उपयोग समाज के कल्याण और उसके हित के लिये ही होना चाहिए। इस तथ्य को तब ही चरितार्थ किया जा सकता है, जब हम यह आधार लेकर चलें कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हमारा जीवन अपने व्यक्तिगत रूप में भले ही कुछ कष्टपूर्ण क्यों न हो पर दूसरों के लिये यह हितकारी है। दूसरों का सुख और दूसरों की सुविधा ही हमारी सुख-सुविधा है और दूसरों का दुःख-क्लेश, हमारा दुःख-क्लेश है—यह परमार्थ भाव मनुष्य में जिस व्यक्तित्व का विकास करता है, वह बड़ा आकर्षक होता है। इतना आकर्षक कि समाज की शक्ति और विकास मूलक सद्भावनायें आपसे आप खिंचती चली आती हैं। पूरा समाज उसका अपना परिवार बन जाता है, कुटुम्ब के रूप में बदल जाता है। ऐसी बड़ी उपलब्धि मनुष्य को किसी ऊँचाई पर नहीं पहुँचा सकती।

किन्तु यहाँ पर भी एक सावधानी बरतने की आवश्यकता है। बहुत बार लोग प्रारम्भ में सामाजिक बने रहते हैं। समाज के लिये सोचते और बहुत कुछ करते हैं, किन्तु जब उस परमार्थ के परिणामस्वरूप किसी पद पर पहुँच जाते हैं, तो स्वार्थ में पड़ जाते हैं। लोभ में आकर अपने लिये संचय एवं संग्रह करने लगते हैं। वे समाज के उस अनुग्रह को अपना अधिकार और अपनी सम्पत्ति मानकर चलने लगते हैं। बस यहीं से उनका पतन प्रारम्भ हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई भी शक्ति, सम्पदा, पद अथवा प्रतिष्ठा, वह चाहे सद्व्यवहार के परिणामस्वरूप समाज के बीच से अर्जित हुई हो अथवा संयोगवश उत्तराधिकार में मिल गई हो, कभी भी अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न मानी जानी चाहिए।

हम जियें। खूब हँसी-खुशी और आनन्दपूर्वक जियें, यह ठीक भी है और इसका हमें अधिकार भी है। तथापि हमें अपनी हँसी-खुशी में दूसरों को भी भाग देना चाहिए। हम तो आमोद-प्रमोद और आनन्द मंगल चलें और हमारे आस-पास का समाज दुःख के आँसुओं से भीगता रहे, तो हमारी हँसी-खुशी एक सामाजिक अपराध है। हमें अपने व्यक्तिगत आमोद-प्रमोद में इस सीमा तक नहीं डूबा रहना चाहिए कि आस-पास का क्रन्दन ही सुनाई न दे। आस-पास के क्रन्दन के बीच में भी जो उपेक्षा भाव से खुशियाँ मनाता रहता है, उसे तो क्रूर और अकरुण व्यक्ति मानना होगा। ऐसे समाज के विरोधी व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि उसकी यह क्रूर पाशविक वृत्ति शीघ्र ही उसकी सारी हँसी-खुशी छीन लेगी। हँसी-खुशी तो उसी की स्थायी और सुरक्षित रह पाती है, जो अपने साथ दूसरों को भी उसमें भागीदार बनाकर मंगल मनाया करता है।

संसार के अन्य समाजों की बात तो नहीं कही जा सकती पर अपने भारतीय समाज की यह पद्धति कभी नहीं रही कि दूसरों के कष्ट-क्लेशों की उपेक्षा करके आनन्द मनाया जाये। आनन्द जीवन की सहज प्रवृत्ति है। यह सुर-दुर्लभ मानव शरीर मिला ही अनन्त आनन्द को पाने और मानने के लिए है। फिर भी एकाकी आनन्द मानने का निषेध भी है। दूसरों के साथ मिलकर ही आनन्द का उपभोग वास्तविक उपभोग है। अन्यथा वह एक अन्याय है, अनुचित है और चोरी जैसी बात है। हमें आनन्द का संयोग मिला है, उसकी सुविधा उपलब्ध है, तो हमें उसे जन-जन को साथ लेकर मनाना चाहिए। भारतीय संस्कृति और धर्म में सामूहिक मेले, त्यौहार, पर्व और पारिवारिक उत्सव मिल-जुलकर मनाने का नियम है। नीतिकारों ने व्यक्तिगत, एकाकी आनन्दोपभोग को अनुचित कहा है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जिन पर्वों, त्यौहारों मेलों एवं उत्सवों की व्यवस्था की गई है, उन सबको सामाजिक आधार पर मनाने का निर्देश भी किया गया है।

इस सामूहिक आनन्दोपभोग के पीछे एक बड़ा कल्याणकारी मन्तव्य सन्निहित है। वह यह कि इससे समाज में संगठन, सद्भावना, शक्ति और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि होती है। लोगों में बन्धुत्व की भावना का विकास होता है। समाज को पीछे ढकेलने वाली ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थ की विकृतियों का हतोत्साहन होता है। समाज में अमन-चैन और सुख-शांति के वातावरण की स्थिति होती है। व्यक्ति और व्यक्तियों के साथ पूरा समाज उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर होता चलता है। संसार में प्रतिष्ठा और नेकनामी का गौरव प्राप्त होता है।

इस प्रकार जिस दिन हमारे प्रयत्नों और प्रवृत्तियों का आधार 'बहुजन हिताय' की भावना में बह न जायेगा, हमें अपनी प्रगति एवं विकास के लिए विचलित न होना होगा, समाज स्वयं ही हमें हाथों-हाथ ऊपर उठा लेगा। हमें सहयोग और सहायता की कमी न रहेगी। हम न स्वयं एकाकी रह जायेंगे और न हमारे प्रश्न और हमारी समस्यायें ही हमारी मात्र रह जायेंगी वे सबकी पूरे समाज की बन जायेंगी और पूरा समाज उन्हें हल करने में हमारा साथ देने लगेगा। इसीलिए तो वेदों में स्थान-स्थान पर कहा गया है—

'समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः'—तुम्हारे खाने-पीने के अन्न और स्थान एक जैसा हो। **'समानी व आकूतिः समानो हृदयानिवः'**—तुम्हारे हृदय के संकल्प भावनायें एक जैसी हों। **'संगच्छध्वम् सम्वदध्वम्'**—तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो—आदि-आदि।

इस प्रकार सामूहिक और सामाजिक भावना को जीवन में स्थान देने पर व्यक्ति एवं समाज दोनों की उन्नति एक साथ और एक समान होती चलती है। अस्तु व्यक्तिगत विकास के लिए भी सामाजिक वृत्ति का विकास करना होगा।

राष्ट्र की प्रगति का मूल आधार—चरित्रनिष्ठा

मनुष्य की सर्वोपरि सम्पदा उसकी चरित्रनिष्ठा है। यह एक ऐसा शब्द है, जो मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उद्बोधन करता है। व्यक्तिगत जीवन में कर्तव्य परायण, सत्यनिष्ठा, पारिवारिक जीवन में स्नेह-सद्भाव एवं सामाजिक जीवन में शिष्टता-शालीनता, नागरिकता आदि आदर्शों के प्रति जिस व्यक्ति में अगाध निष्ठा है और जो प्रतिफल इन आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् रखता है, उसे चरित्रवान कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति का आधार वहाँ के भौतिक साधन, खनिज सम्पदा या उर्वर भूमि नहीं होते, वरन् किसी देश का उत्कर्ष उसके चरित्रवान नागरिकों पर निर्भर करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चरित्रवान व्यक्तियों की प्रामाणिकता पर हर कोई विश्वास करता है तथा उन्हें सम्मान देता है। यही नहीं, उनके प्रति श्रद्धा भी लोगों के हृदय में उमड़ती रहती है। यह श्रद्धा ही उनकी मूल्यवान सामाजिक सम्पत्ति होती है। स्वामी विवेकानन्द ने इस संदर्भ में कहा है—"संसार का इतिहास उन थोड़े-से व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है, जिनके पास चरित्रबल का उत्कृष्ट भण्डार था। यों कई योद्धा और विजेता हुए हैं, बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं, किन्तु इतिहास ने केवल उन्हीं व्यक्तियों को अपने हृदय में स्थान दिया है, जिनका व्यक्तित्व समाज के लिये, मानव जाति के लिये एक प्रकाश स्तंभ का काम कर सका है।"

चरित्रवान व्यक्ति के लिये अपना स्वार्थ नहीं, दूसरों का समाज का हित मुख्य रहता है। इसी कारण वे सामूहिक हितों या परमार्थ प्रयोजनों के लिये अपने स्वार्थ का ही नहीं, अपने अस्तित्व का भी परित्याग कर देते हैं। घटना पेरिस में हुई राज्य क्रान्ति के समय की है। तब क्रान्तिकारियों का दमन कर दिया गया था और उन्हें जेल में बन्द किया जा चुका था। उन्मत्त विपक्षी सैनिकों ने एक कैदखाने में घुसकर उसमें कैद बन्दियों को गाजर-मूली की तरह काटना शुरु कर दिया। विद्रोही सैनिकों ने उनमें से एक को पहचाना। जिसका नाम था—ऑवी सिफार्ड। वह एक प्रख्यात पादरी था। सैनिकों ने सहज श्रद्धावश उन्हें निकल जाने को कहा। इस पर सिफार्ड ने कहा—"यदि तुम लोग मेरे बदले उस तरुण स्त्री को निकल जाने दो, जो गर्भवती है, तो मुझे मरकर भी प्रसन्नता होगी। माना कि हम लोगों ने राजनियम भंग किया है, किन्तु उस नारी के गर्भ में पल रहे मासूम जीव को तो उसकी निर्दोषिता का पुरस्कार मिलना ही चाहिए। दमनकारियों ने पादरी का प्रस्ताव माना या नहीं, यह और बात है, परन्तु पादरी ने जिस करुणा और दयार्द्रता का परिचय दिया—उसने ऑवी सिफार्ड को इतिहास में अमर कर दिया।

जन्म लेने के कारण मृत्यु का होना तो निश्चित है। सामान्य व्यक्ति के लिये मृत्यु एक दुःखदायी घटना है, किन्तु चरित्रवान आदर्शों के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति मरण को भी त्यौहार बना लेते हैं। युद्ध में बुरी तरह घायल होकर कराहने वाले फिलिप सिडनी को कौन भुलायेगा, जिन्होंने एक घायल सिपाही की प्यास को अपने जीवन से भी अधिक महत्व दिया। घटना तो विख्यात है कि सिडनी को बड़े जोर की प्यास लगी थी और पानी के लिये कराहने पर एक प्याला जल लाया गया था। इसी बीच एक और घायल सिपाही को वहाँ लाया गया, जो पानी के लिये छटपटा रहा था। उसकी अतृप्त दृष्टि सिडनी के लिये लाये गये पानी के प्याले पर पड़ी। सिडनी ने यह देखकर पानी का वह प्याला सिपाही को देने का आग्रह किया और कहा—"मेरी अपेक्षा उसे पानी की ज्यादा जरूरत है।" इसके पश्चात ही उनके प्राणपेखरू उड़ गये। संभव है यदि उनको पीने को पानी मिल जाता तो वे कुछ घण्टों और जी जाते, किन्तु तब शायद ही किसी को मालूम होता कि सर फिलिप सिडनी नामक कोई सैनिक अधिकारी भी हुए थे।

आदर्शवादी चरित्रवान व्यक्ति स्वयं अपना जीवन तो धन्य बना ही लेते हैं, समाज में भी एक ऐसी स्वस्थ परिपाटी आरम्भ कर जाते हैं कि उसका लाभ समाज को लम्बे समय तक मिलता रहता है। रूसी राज्य क्रान्ति के समय की घटना है जब वहाँ के नागरिकों ने अत्याचारी और अन्यायी शासन तंत्र को उखाड़ फेंका था। तब क्रान्ति की तैयारियाँ चल ही रही थीं। मास्को के एक पादरी रेवरैण्ड मुलन वर्ग ने अचानक ही अपने जीवन की दिशा बदल दी। जो आजीवन लोगों को शान्ति, क्षमा और ईसा की उस शिक्षा का उपदेश देता रहता था, जिसमें कहा गया था कि यदि कोई तुम्हारे बाँये गाल पर एक तमाचा मारे तो तुम दूसरा भी उसके आगे कर दो—वह क्रान्ति की बात करने लगा। मास्को की एक धर्म सभा में उन्होंने कहा—"हर चीज का एक समय होता है। धर्मोपदेश और प्रार्थना का भी एक समय होता है, पर अब वह समय नहीं है। समय बदल गया है और अब समय लड़ने का है, संघर्ष करने का है। हमें अन्याय और अत्याचार से जूझना चाहिए। इसे युग धर्म कहते हैं। यह कहकर उन्होंने अपनी धार्मिक वेशभूषा उतार दी और क्रान्तिकारी का वेश पहनकर धर्म सभा में आ गये। उनके इस कथन का लोगों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि कुछ ही समय में उनके साथ क्रान्तिकारियों का एक बड़ा दल सम्मिलित हो गया। रेवरैण्ड ने पहले क्रान्ति में और फिर विश्वयुद्ध के समय जर्मन सेनाओं का मुकाबला करने में वीरता दिखाई तो उन्हें मेजर जनरल की उपाधि से विभूषित किया गया।

आदर्शों के प्रति निष्ठा, सामाजिक हितों के लिये उत्सर्ग का साहस व्यक्तित्व को इतना तेजस्वी बनाता है कि अनायास ही उस व्यक्ति के प्रति लोकश्रद्धा का उफान उमड़ने लगता है। जब किसी समाज या राष्ट्र पर संकटों के बादल घिर आते हैं तो जनसमुदाय ऐसे चरित्रवान, उत्साही और साहसी व्यक्तियों से ही मार्ग दर्शन की अपेक्षा करता है और उसे अपना नेतृत्व सौंपता है। जब रोमन साम्राज्य पर संकट आया था तो शासन सभा के सदस्यों ने एक ऐसे व्यक्ति को व्यवस्था का सूत्र संचालन सौंपा था, जो सक्रिय राजनीति से संन्यास लेकर सामान्य जीवन व्यतीत कर रहा था। नाम था उसका—सिनसिनेट्स। वह अपने तेजस्वी व्यक्तित्व और आदर्श चरित्र के बल पर एक बार पहले भी राज प्रमुख के पद पर पहुँच चुका था और कई वर्षों तक अपने राष्ट्र का नेतृत्व करता रहा था। जब संकट की घड़ियाँ आईं तो एक बार फिर सभासद उसके पास पहुँचे। उस समय सिनसिनेट्स अपने खेत में काम कर रहा था। सभासदों ने उसके सम्मुख समस्त परिस्थितियों का विश्लेषण किया और उसे असीमित अधिकार दिये। राष्ट्रीय संकट की इन घड़ियों में देश की जनता ने उसके प्रति जो विश्वास व्यक्त किया, उसने उसे न केवल कायम रखा, वरन् उसे और भी पुष्ट बनाया। देश जब संकट के दौर को पार कर चुका, उसने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तराधिकारियों को वापस अपने अधिकार सौंप दिये और स्वयं शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

देशभक्ति या राष्ट्र प्रेम व्यक्ति के चरित्र का एक अनिवार्य अंग है और जिन देशवासियों में अपने राष्ट्र के प्रति जितनी गाढ़ी भक्ति होगी, उसमें सुव्यवस्था, शांति और समुन्नति के आधार उतने ही पुष्ट होते चले जायेंगे। राष्ट्र का अर्थ—अपना समाज, देश परिवार ही तो है। हम सभी उसकी एक-एक इकाई हैं। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि इन दिनों अपने देश-समाज में सर्वत्र स्वार्थपरता, बेईमानी, बदनीयती और भ्रष्टाचार ही संव्याप्त है। चरित्रनिष्ठ आदर्श नेतृत्वों का एक प्रकार से अभाव ही दीखता है। जन सामान्य में भी चारित्रिक मूल्यों के प्रति आस्था कम होती जा रही है और आदर्शों की अवहेलना की जाने लगी है। यह अवहेलना-उपेक्षा ही व्यक्तिगत प्रगति एवं राष्ट्र की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है।

वस्तुतः इतिहास ने उन महापुरुषों का ही गुणगान किया है, जिन्होंने अपने समाज को, राष्ट्र को नये जीवन-मूल्य, चरित्र के नये मापदण्ड दिये और आदर्शों की समयानुकूल परिभाषा अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से की है। चरित्र-मानवीय सद्गुणों के उस समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति के समग्र जीवन को आच्छादित करते हैं और जीवन तथा व्यवहार के सभी क्षेत्रों में उसे प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। चरित्र साधना से व्यक्तिगत जीवन में सरसता तथा सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था आती है, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय प्रगति की संभावना बढ़ती है।

व्यक्ति और समाज का सर्वोपरि बल—चरित्र

चरित्र एक ऐसा शब्द है जो मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उद्बोधन करता है। व्यक्तिगत जीवन में कर्तव्य परायणता, सत्यनिष्ठा, पारिवारिक जीवन में स्नेह, सद्भाव, सामाजिक जीवन में शिष्टता, नागरिकता आदि आदर्शों के प्रति जिस व्यक्ति में अगाध निष्ठा है और जो प्रतिपल इन आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् रखता है उसे चरित्रवान कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति का आधार वहाँ के भौतिक साधन, खनिज सम्पदा या उर्वर भूमि नहीं होती वरन् किसी देश का उत्कर्ष उसके चरित्रवान नागरिकों पर निर्भर करता है।

एशिया के एक छोटे-से देश जापान ने दो-दो महायुद्धों में पूरी तरह तहस-नहस हो जाने के बाद भी आज विश्व इतिहास में दीप्तिमान स्थान प्राप्त कर लिया। उसका एक ही कारण है वहाँ के चरित्रवान नागरिक। देश-भक्त और ईमानदार नागरिक।

पहले विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों द्वारा पूरी तरह कुचल दिये जाने के बाद कुछ ही वर्षों में जापान ने चमत्कारी उन्नति कर दिखाई वह दुनिया भर के देशों में मिशाल के तौर पर कही-सुनी जाती है। विजेता राष्ट्र विजय का उपहार लेकर भी युद्ध में हुई क्षति को पूरा नहीं कर पाये थे कि पराजित जापान ने हार के बावजूद अपने यहाँ अर्थतन्त्र की रीढ़ को पुनः मजबूत बना लिया। कारण एक ही था वहाँ के निवासियों की देशभक्ति। जिन दिनों जापान में बनी चीजें दूसरे देशों के बाजारों में बहुत ही सस्ती बेची जाती थीं, उन दिनों जापानवासी स्वयं उन्हीं वस्तुओं का उपयोग करने के लिए महँगी कीमत चुकाते थे। विदेशी बाजार में अपनी वस्तुओं की धाक जमाने के लिए तब जापानी लागत से भी कम दाम पर उनका विक्रय करते थे। स्पष्ट ही घाटा होता और इस घाटे को वे स्वयं महँगे दाम देकर पूरा करते थे।

ऐसे व्यक्ति जनहित के लिए कोई भी उत्सर्ग करने के लिए हँसते-खेलते तैयार हो जाते हैं। कहा जाता है कि—एक बार अमेरिका में किन्हीं रोगों के उपचार का प्रयोग करने के लिए जीवित मनुष्यों के शरीर की चीर-फाड़ आवश्यक अनुभव की गयी। वैज्ञानिक जीवित मनुष्य की देह चीर कर कुछ प्रयोग करना चाहते थे अतः समाचार पत्रों में विज्ञापन दिये गये कि जो व्यक्ति इसके लिए स्वयं को प्रस्तुत करेंगे उनके परिवार को पर्याप्त धन दिया जायेगा। राष्ट्रीयता और जनहित की भावना से प्रेरित होकर सैकड़ों व्यक्तियों ने स्वयं को प्रस्तुत किया और इस उत्सर्ग की परम्परा का महत्व रुपयों के बदले कम नहीं होने दिया। परिणामस्वरूप कई असह्य रोगों की चिकित्सा के उपाय खोजे जा सके।

सर्वविदित है कि अब से दो सौ वर्ष पूर्व अमेरिका ने जार्ज वाशिंगटन के नेतृत्व में स्वतन्त्रता प्राप्त की थी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद वर्षों तक वाशिंगटन ने अमेरिका का शासनसूत्र भी सम्हाला और बाद में राजनीति से विरत होकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अमेरिका और फ्रान्स में युद्ध छिड़ा था उस विषम बेला में लोगों ने एक बार फिर वाशिंगटन को याद किया। अपने शासन काल में जार्ज वाशिंगटन ने अपनी कर्तव्यनिष्ठा, सूझ-बूझ और चारित्रिक गुणों की ऐसी धाक जमा ली थी कि तत्कालीन प्रेसीडेण्ट मि० एडम्स ने उन्हें देश की बागडोर सँभालने के लिए कहा। उस समय के एक प्रमुख नेता ने उन्हें पत्र में लिखा था कि—"अमेरिका की समस्त जनता का आप पर पूरा विश्वास है। यूरोप का एक भी राज्य सिंहासन ऐसा नहीं है जो वाशिंगटन के चरित्र बल के सामने टिक सके।"

चरित्रवान व्यक्तियों की प्रामाणिकता पर हर कोई विश्वास करता है तथा उन्हें सम्मान देता है। यही नहीं उनके प्रति श्रद्धा भी लोगों के हृदय में उमड़ती रहती है। यह श्रद्धा ही उनकी मूल्यवान सामाजिक सम्पत्ति होती है। स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर कहा है कि—"संसार का इतिहास उन थोड़े-से व्यक्तियों द्वारा बनाया गया है जिनके पास चरित्र बल का उत्कृष्ट भण्डार था। यों कई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योद्धा और विजेता हुए हैं, बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं। किन्तु इतिहास ने केवल उन्हीं व्यक्तियों को अपने हृदय में स्थान दिया है, जिनका व्यक्तित्व समाज के लिए एक प्रकाशस्तम्भ का काम कर सका है।"

वस्तुतः इतिहास ने उन महापुरुषों का ही गुणगान किया है जिन्होंने अपने समाज को नये जीवन मूल्य, चरित्र के नये मानदण्ड दिये और आदर्शों की समयानुकूल परिभाषा अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से की है। चरित्र—मानवीय गुणों के उस समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति के समग्र जीवन को आच्छादित करते हैं और जीवन तथा व्यवहार के सभी क्षेत्रों में उसे प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। इन दिनों अपने देश-समाज में स्वार्थपरता, बेईमानी, बदनीयती और भ्रष्टाचार व्याप्त है तो उसका मात्र यही कारण है कि जनमानस में चारित्रिक मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है और उनकी अवहेलना की जाने लगी है। यह अवहेलना-उपेक्षा ही व्यक्तिगत प्रगति और राष्ट्र की उन्नति में दीवार बनकर खड़ी है जब तक व्यक्ति उस दीवार को तोड़ने का प्रयत्न नहीं करता हमारे राष्ट्र की प्रगतिधारा मन्द और अवरुद्ध ही रहेगी।

इस दिशा में शुभारम्भ यहाँ से करना चाहिए कि अगर व्यक्ति महापुरुष नहीं बन सकता तो न बने किन्तु चारित्रिक मूल्यों का अपने जीवन में समावेश तो आरम्भ करे। माना कि प्रत्येक व्यक्ति हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी नहीं बन सकता किन्तु अकारण बोले जाने वाले झूठ से तो बच सकता है। दधीचि की तरह अपनी अस्थियाँ परोपकार में लगाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव न हो परन्तु दूसरों का बुरा करने से तो बचा जा सकता है और भलाई का कोई न कोई छोटा-मोटा काम भी करते रहा जा सकता है। ईमानदारी, कर्तव्य पालन, उदारता, सद्व्यवहार, परदुःख कातरता आदि ऐसे गुण हैं जिसका अध्याय छोटे रूप में भी आरम्भ किया जा सकता है और चरित्र साधना के क्षेत्र में क्रमशः आगे बढ़ते रहा जा सकता है। इससे व्यक्तिगत जीवन में सरसता और सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था आने लगेगी तो निश्चय ही राष्ट्रीय प्रगति की सम्भावना भी बलवती होगी।

सच्चरित्रता संसार की सर्वोपरि सम्पत्ति है

चरित्र का आरम्भ साहस तथा निर्भयता से होकर आनन्द तथा आह्लाद पर समाप्त होता है। जहाँ अन्य सभी गुणों की विद्यमानता पर भी जीवन में मुदिता तथा आनन्द का आविर्भाव न हो तो वहाँ समझो कि अभी स्वस्थ-जीवन दूर है। अर्थात चरित्र के किसी न किसी पक्ष में कोई दोष व त्रुटि अवश्य शेष रह गई है।

प्रसन्नता केवल हमारा एक पवित्र कर्तव्य ही नहीं वरन् हमारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य का दूसरा नाम है। जहाँ मुदिता नहीं वहाँ आध्यात्मिकता कहाँ ? क्योंकि जीवन का परम निगूढ़ रहस्य आनन्द ही तो है। शास्त्र में कहा गया है कि "आनन्द से ही इन प्राणियों की उत्पत्ति होती है, आनन्द के सहारे ही यह जीते तथा आनन्द की ओर ही लौटते हैं।" आनन्द के प्रकाश का नाम ही तो प्रसन्नता है। यदि आनन्द का अभाव है तो निश्चय ही सम्यक् ज्ञान का भी अभाव है इस प्रकार का यदि ज्ञान हो तो वह कल्पना मात्र है, यथार्थ नहीं। ऐसा प्रेम है तो वह केवल भावुकता है और यदि ऐसी सेवा है तो वह दिखावटी व स्वार्थमूलक है।

बाह्य नीति निरानन्द हो सकती है तथा प्रसन्नता—विहीन फीकी आध्यात्मिकता भी सम्भव है। किन्तु यथार्थ तथा सर्वांगपूर्ण चरित्र कभी आनन्दरहित नहीं होता। यदि भीतर आनन्द, मुख पर प्रसन्नता, कार्य में आह्लाद, बर्ताव में भव्यता तथा चाल-ढाल में सुन्दरता और उत्कृष्टता पाई जायँ, तब मौखिक उपदेश करने की आवश्यकता ही न होगी। हमारा जीना ही प्रभावजनक तथा कार्यकर उपदेश होगा। संसार को वही लोग ऊपर उठाते तथा जीवन प्रदान किया करते हैं, जो अन्य ग्रन्थ लिखने की अपेक्षा अपना जीवन-ग्रन्थ पीछे छोड़ जाते हैं। जहाँ कहीं भी आत्मा की तीनों शक्तियाँ (ज्ञान, प्रेम, इच्छा) सम्मिलित रूप से अपना कार्य करती हैं, वहाँ आनन्द अवश्य ही विद्यमान होता है।

मनुष्य चाहे जिस जाति, धर्म, सम्प्रदाय, देश, समाज या दल का हो और उसके जो भी विचार या सिद्धान्त हों, ऊँचा उठने और जीवन का सच्चा रस प्राप्त करने के लिए उसमें चरित्रबल का होना आवश्यक है। चरित्र शब्द बड़ा व्यापक है और उसके अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु मोटे तौर पर उसका अभिप्राय अपने प्रति सच्चा और ईमानदार होना है। जो अपने प्रति ईमानदार होता है, वही दूसरों के प्रति भी ईमानदार हो सकता है। इसलिए इस एक बात में ही अनेक बातों का समावेश हो जाता है।

ज्ञान जब आचरण में व्यक्त होता है तभी चरित्र बनता है। चरित्रशून्य ज्ञान कौड़ी का है। वह भयानक है। चरित्र हमारे अन्तर का दीपक है जो एकान्त, भयावने और अन्धेरे मार्गों पर, जहाँ चलने में बड़े-बड़े काँप जाते हैं, यात्री के पाँव स्थिर रखता है और उसे ठीक रास्ता दिखाता है। यह जीवन का नवनीत है, इसके बिना मानव एक पशुमात्र है।

चरित्र का मेरुदण्ड अपने प्रति ईमानदारी है। यह अपने प्रति ईमानदारी तभी आती है जब हम हर कदम पर अपने को देखते-परखते और तौलते चलते हैं। इस दृष्टि से आत्म-निरीक्षण चरित्र की जड़ है। इसी से मनुष्य अपनी दुर्बलताओं को देखता और अनुभव करता है और इसी की प्रेरणा से उन्हें दूर करने, अपने को बदलने, दूसरों के लिए उपयोगी बनने का निश्चय करता है। ऐसा आदमी तब तक चुप नहीं बैठता जब तक उसके जीवन में आत्मा की शक्ति स्थापित न हो जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन, विद्या और यश महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु इनके बिना भी मानव उठ सकता है, इनके बिना भी वह उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर सकता है, परन्तु चरित्र बल के बिना तो वह केवल माँस का एक लोथड़ा है। जहाँ चरित्र नहीं वहाँ धन विष है, वहाँ विद्या घातक है, वहाँ यश पाखण्ड है। शुद्ध चरित्र वाला मनुष्य दरिद्र होने पर भी वास्तव में मनुष्यों में सिरमौर है।

चरित्र के बिना मनुष्य को सच्ची खुशी तो दूर परितोष भी नहीं मिल सकता। शान्ति आत्म-लाभ में है और आनन्द आत्म-प्रकाश में पाया जाता है। केवल कल्पनात्मक अथवा आनुमानिक आत्मज्ञान न केवल निष्प्रयोजन है, बल्कि यथार्थ आत्मज्ञान की प्राप्ति में एक बड़ी रुकावट है।

जब कोई बीज फूटना आरम्भ होता है तो बाहर से सामग्री इसलिए लेता है कि उसकी सहायता से अपने स्वाभाविक गुणों को प्रकट कर सके। ठीक इसी प्रकार मनुष्य के भीतर आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है, जबकि वह बाह्य पदार्थों और घटनाओं को, अपने आत्मिक गुणों (ज्ञान, प्रेम, पवित्रता, सौन्दर्य) के प्रकट करने का साधन बनाता है। इसी प्रकटीकरण का नाम चरित्र है।

वह धर्म सच्चा धर्म नहीं कहा जा सकता जो ईश्वर व आध्यात्मिकता को इस लोक अथवा परलोक में धन-मान की प्राप्ति का साधन बतलाता है। वह तो एक प्रकार की छिपी हुई भौतिकता तथा पाशविकता ही है। धर्म की आवश्यकता तो जगत में इसीलिए है कि वह मनुष्य को आत्म-लाभ तथा आत्म-प्रकाश का मार्ग दिखला दे।

चरित्र सभी के लिए कल्याणकर होता हुआ इस नारकीय संसार को परम स्वर्ग में बदल सकता है। चरित्र प्रत्येक व्यक्ति को स्वाधीन तथा विराट बना देता है। चरित्र ही इस पृथ्वी पर यथार्थ सभ्यता स्थापित कर सकता है। चरित्र ही यथार्थ स्वराज्य, जीवनमुक्ति तथा आध्यात्मिकता है, और यही मानवता का व्यापक धर्म है। चरित्र है तो सभी कुछ है, चरित्र नहीं तो कुछ भी नहीं।

धन की अपेक्षा सच्चरित्रता की पूँजी कहीं श्रेष्ठतर है—चाँदी और सोने की अपेक्षा प्रेम और दया अधिक महत्त्व रखते हैं। सफलता वह नहीं है जिसे संसार साधारणतया सफलता बतलाता है। असली सफलता का परिणाम अपना हृदय ही बतला सकता है। एक विशाल इमारत की ऊँचाई संसार की दृष्टि में वही है जो उसके शिखर से पृथ्वी तक दिखाई पड़ती है। परन्तु इमारत का वह सुदृढ़ अंश (नींव) जो पृथ्वी में गढ़ा है और किसी को दिखलाई नहीं देता उसका सबसे महत्वपूर्ण भाग है। अन्य मनुष्य तुम्हारे बाहरी गुण देख सकते हैं। तुम्हारे श्रम, तुम्हारे धन, तुम्हारे कारवार, तुम्हारे घर की सजावट को देखकर लोग तुम्हारे जीवन की सफलता का माप बतला सकते हैं। परन्तु तुम्हारे आन्तरिक भाव, उदारता, उपकार बुद्धि, जो सफलता के मुख्य कारण हैं, वे तुम्हीं को दिखलाई दे सकते हैं।

सौजन्य, सच्चरित्रता का आकर्षण ऊपर की ओर गति करता है और दुनियादारी या लालच का आकर्षण नीचे की ओर जाता है। स्कूल और कालेजों में इस तथ्य का अनुभव प्रायः हुआ करता है। वहाँ जो विद्यार्थी आरम्भ में बहुत तेज तर्रार और प्रभावशाली जान पड़ते हैं वे प्रायः सच्चरित्रता के अभाव से कुछ वर्षों बाद नीचे गिर जाते हैं। इसके विपरीत सरल और शान्त प्रकृति के विद्यार्थी जिनकी आरम्भ में अन्य लड़के प्रायः हँसी उड़ाया करते हैं, बुद्धू बनाया करते हैं, अपने चरित्रबल से उन्नति कर जाते हैं और आगे चलकर जीवन में उल्लेखनीय कार्य करके दिखाते हैं। एक प्रसिद्ध अँग्रेज लेखक ने कहा है—"प्रकृति ने कतिपय मनुष्यों के चेहरे पर विश्वास की एक ऐसी हुण्डी लिख दी है, कि वे जिससे और जहाँ मिलें वह हुण्डी सकारी जा सकती है। ऐसे मनुष्यों पर विश्वास किये बिना नहीं रहा जा सकता। कहने की आवश्यकता नहीं कि हुण्डी उनकी सच्चरित्रता ही होती है, जिसके प्रभाव से, उनकी उपस्थिति मात्र से सबको विश्वास हो जाता है।"

चरित्र बल बढ़े तो राष्ट्र ऊँचा उठे

सदियों की गुलामी की जंजीरें तोड़कर हम स्वतन्त्र हुए हैं। स्वतन्त्रता का लाभ तभी है जब हम प्रत्येक दिशा में विकास की समुचित व्यवस्था जुटावें। प्रसन्नता की बात है कि उस दिशा में कुछ प्रयत्न भी हो रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि औद्योगिक विकास से खूब अच्छी-अच्छी वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था होने लगे, कृषि में विकास हो, उपज बढ़े, स्वास्थ्य और आरोग्य के साधन बढ़े, वैज्ञानिक शोधों में हिस्सा लें। साथ ही एक बात इनसे भी आवश्यक है और वह है राष्ट्र के चरित्र का विकास। भौतिक समृद्धि के साथ नैतिकता का अवगाहन न किया गया तो वह स्थिति हमारे लिये विनाश का कारण बन सकती है।

चरित्र-बल मानवीय शक्ति का मूलाधार है। पारस्परिक सहयोग द्वारा उद्देगों को आगे बढ़ाना और अर्थव्यवस्था को सुधारना समाज सुधार के एक अधिक आवश्यक अंग की पूर्ति करना है। समाज का वास्तविक उत्थान तभी हो सकता है, जब जन-जन में कर्तव्य परायणता, धार्मिक सहिष्णुता, सचाई और सच्चरित्रता की भावनाओं का भरपूर समावेश हो जाय। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता रही है कि लोग स्वयं का संयम करना सीखें। बढ़ी हुई शक्तियों को सीधे-से पचा ले जाना यह संयम से ही संभव है। केवल साधनों की तृष्णा बढ़ती रहे और गुण विकास न हो तो उन्नति का मूल उद्देश्य नष्ट होकर दुर्भावनाओं का विकास होने लगेगा। साधन होगें पर लोग सुखी न होंगे।

गीताकार ने अपना यह कठोर निर्णय दिया है कि सुखाकांक्षी का जीवन शुद्ध और उसका प्रत्येक कर्म यज्ञीय भावना के साथ होना चाहिए। स्वार्थ के साथ परमार्थ का भी पर्याप्त होना आवश्यक है। मनुष्य सदा समाज का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋणी रहता है। जन्म से ही अगणित ऋणों का देनदार है। परमार्थ ऋण चुकाने की भावना को कहते हैं। मनुष्य के हित की दृष्टि से उसके सामाजिक जीवन में परमार्थ का आयोजन बना रहे तो उसमें सबका कल्याण रहता है। यह अपेक्षाकृत अधिक सरल मार्ग है जिसमें मनुष्य स्वल्प साधनों में भी विपुल सुख प्राप्त कर लेता है। सामाजिक जिम्मेदारी पूरी न करने का नाम है—कामचोरी। कर्त्तव्य से परामुख होना निठल्लापन और बेईमानी है राष्ट्र की समृद्धि में भरपूर श्रम और पुरुषार्थ में परमार्थ की भावना प्रमुख रूप से बनी रहनी चाहिए।

लोग कहते हैं—बड़ा दुर्भाग्य है, रोटी नहीं मिलती, कपड़ा नहीं मिलता, जरूरतें पूरी नहीं होतीं, बड़ी असमानता है, यह नहीं होता, वह नहीं होता। कुछ हद तक संभव है ऐसा भी हो किन्तु अधिकांश कमी यह है कि लोग अपना दोष स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। संघर्ष यह है कि जरूरतें आवश्यकता से अधिक बढ़ गई हैं। अनैतिकता पर कोई नियन्त्रण नहीं है। मन स्वतन्त्र है, इन्द्रियाँ स्वतन्त्र हैं। कामनाओं के दल-बल स्वच्छ विचरण कर रहे हैं, संयम मूलक प्रवृत्तियों के नष्ट हो जाने के कारण ही यह अभाव घिरे हैं अन्यथा न तो उत्पादन कम हुआ है न जरूरत की चीजें कम पड़ी हैं। सब कुछ पहले से अधिक है पर क्या करें लोगों की भूख इतनी बढ़ गई है, वासनायें इतनी घिर गई हैं कि बढ़े हुए साधनों से भी काम्य प्रयोजन पूरे नहीं हो पा रहे। इस देश में आत्मदर्शी ऋषियों की परम्परायें चलती आई हैं। आरम्भ, परिग्रह और भोग से दूर रहकर उन्होंने जो सत्य पाया, समाधान पाया, सुख और शान्ति का अनुभव पाया, उसी को यहाँ के जन-जीवन में उतारा है। उसका सम्पूर्ण सार है—चरित्र बल। चरित्र में ही सुखी जीवन के सारे रहस्य छिपे हुये हैं। चरित्र ही मनुष्य की श्रेष्ठता का उत्तम मापदंड है।

एक ओर मनुष्य के साथ स्वार्थ भावना है तो दूसरी ओर उसका जिन-जिन के साथ सम्बन्ध आता है, उनके प्रति कर्त्तव्य भी है। कर्त्तव्य बुद्धि द्वारा स्वार्थ का नियन्त्रण होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि दूसरा कोई उसके साथ छल-कपट का व्यवहार न करे, झूठ न बोले, धोखा न दे, सताये नहीं, दबाने की चेष्टा न करे। ऐसी अवस्था में उसका भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह भी मन, वचन और क्रिया द्वारा सचाई का ही प्रदर्शन करे। हमारे अन्तःकरण की वृत्तियाँ सत्यमय हो जाती हैं, व्यवहार शुद्ध हो जाता है तो उसमें औरों का भला तो होता ही है खुद अपना बहुत भला होता है। ईमानदारी और सचाई में सबका फायदा है, व्यावहारिक जीवन में यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए।

जो नीतियाँ उन्नत समाज के लिये कही जाती हैं वे चरित्र के अन्तर्गत ही आ जाती हैं। नेकी, ईमानदारी, व्यवहार, बुद्धि, सत्य, सहयोग और सहानुभूति यह सब उसके अंग हैं। भारतीय जीवन में जब तक यह श्रेष्ठता विद्यमान रही तब तक यह देश प्रत्येक क्षेत्र में संसार-भर का मुखिया बना रहा किन्तु पिछले दिनों यहाँ कई संस्कृतियों ने प्रभाव डाला, कई तरह के शासक वर्ग आये और उन्होंने यहाँ की जीवन गति को ही अशुद्ध बना डाला। जो सिद्धान्त मानवता के विपरीत पड़ते हैं, पश्चिमी-सभ्यता के प्रभाव से वह अधिक तेजी से विकसित हुये। धन-दौलत को अधिक महत्त्व दिया गया। जिससे अर्थ यहाँ के आकर्षण का मूल बिन्दु बन गया। इस गलत दृष्टिकोण के कारण अनेक समाज-विरोधी कुप्रवृत्तियाँ पनप उठीं। भ्रष्टाचार की इन दिनों व्यापक चर्चा हो रही है। सरकारी मशीनरी उसे रोकने के लिए लगी भी हुई है किन्तु उसके सुधार की कोई सम्भावना नजर नहीं आती, प्रश्न यह बन गया है कि जो रक्षक हैं या जिसके हाथ में उत्तरदायित्व है वही भ्रष्ट हो गये हैं, ऐसी दशा में नैतिक जीवन का कोई मूल्य नहीं रह गया है इसलिए विकास के अनेक साधन जुटाने पर भी मूल समस्या ज्यों की त्यों उलझी हुई है। समाज के संतुलन और उसकी सुव्यवस्था का आधार व्यक्ति-निर्माण है। व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज बनता है। जिस समाज के लोग परिश्रमी, ईमानदार, सत्यनिष्ठ एवं आदर्शप्रिय होंगे वह अपने आप उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जायगा और राष्ट्र के विकास का वातावरण निखरता हुआ चला आयेगा।

पीछे जो हमें सिखाया गया है वह हितकर नहीं है। पारस्परिक मतभेद, ईर्ष्या-द्वेष, फूट-कलह का तन्तु जाल हमारा अपना बनाया नहीं है। परिस्थितियों के विक्षेप और विदेशी सत्ता के कारण ऐसा करने को हम मजबूर हुये हैं। आज बात-बात पर भाषावाद, जाति-भेद, पदलोलुपता, प्रान्तवाद के नाम लोग लड़ने-झगड़ने लगते हैं, क्या इससे संगठन शक्ति अक्षुण्ण रह सकती है ? क्या इससे कोई विकास की समस्या हल हो सकती है ? राष्ट्र का जीवन व्यक्तियों के जीवन से विनिर्मित होता है। राष्ट्र की गरिमा में व्यक्तियों का आत्म-बल, मनोबल और शरीर बल गिना जाता है पर यह तभी संभव है, जब राष्ट्र के नागरिक चरित्रवान और आत्मजयी हों। राष्ट्र को धन या रुपया, पैसा ऊँचा नहीं उठाता, वहाँ के नागरिकों की चरित्रनिष्ठा में वह शक्ति होती है, जो उसके गौरव को ऊँचा उठाती है, शिरोमणि बनाती है।

राष्ट्र विकास की इस चर्चा में आर्थिक समुन्नति का ध्यान रहे यह ठीक है, हमें गरीबी को मिटाना ही चाहिए पर यह नहीं भूलना चाहिए कि चारित्रिक विकास के बिना कोई भी भौतिक सफलता स्थिर नहीं रह सकती है। बढ़ी हुई शक्ति का सन्तुलन, उदार हृदय, चौड़े मस्तिष्क और आत्म-निष्ठा के साथ हो तो ही उनका लाभ प्राप्त किया जा सकता है अन्यथा भौतिक उन्नति का कुछ लाभ न निकलेगा। उससे हमारी परेशानियाँ ही बढ़ेंगी। राष्ट्र का गौरव बढ़ाने के लिए अन्य साधनों के साथ चरित्र बल बढ़ाना आवश्यक अंग बन गया है। चरित्र सम्पूर्ण विकास की जड़ है उसका अभिसिंचन होना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चरित्र-उत्थान के बिना राष्ट्रोन्नति असम्भव

यह एक गम्भीर बात है कि आजकल हम ईश्वर को भूलते जा रहे हैं। यही विचार कार्लाइल ने उस समय व्यक्त किये थे जब विज्ञान की आशातीत उन्नति और नये-नये उपनिवेशी साम्राज्य के फैलाव ने पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों को मदांध कर दिया था। पश्चिमी राष्ट्र उस समय ईश्वर को भूलते जा रहे थे और भौतिकवाद के अनन्य भक्त बन गये। उपनिवेशी साम्राज्य अब लगभग समाप्त ही हो गया है और विज्ञान भी अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है और इससे पश्चिमी राष्ट्रों की आँखें खुल गई हैं और ईश्वर के प्रति भक्ति की एक नई लहर पुनः पैदा हो गई है। कार्यालय का उक्त कथन आज भारत पर लागू हो रहा है। ईश्वर की शक्ति को भुलाकर मानव के उत्कर्ष के लिए उठाया गया कोई कदम सफल नहीं हो सकता।

किसी भी राष्ट्र की उन्नति चरित्र पर भी उतनी ही निर्भर करती है जितनी कि दिमाग और शारीरिक शक्ति पर। मैं चाहता हूँ कि विचारशील व्यक्ति इस तथ्य पर मनन करें, इसकी सत्यता स्वयं ही स्पष्ट हो जायगी। मेरे विचार में तो राष्ट्रोन्नति में दिमाग और शारीरिक शक्ति की अपेक्षा चरित्र का स्थान कहीं ज्यादा ऊँचा है। शारीरिक शक्ति एवं दिमाग शासन चलाने एवं बाहरी आक्रमणों से देश की रक्षा के लिए निस्संदेह ही आवश्यक है, लेकिन चरित्र तो पहली चीज है जो व्यक्तियों के प्रतिदिन एक-दूसरे से व्यवहार करने में प्रयोग आता है और जिसके बिना किसी भी प्रकार की उन्नति एवं उत्थान संभव ही नहीं है। चरित्र तो भूमि है जिस पर दूसरी चीजें पैदा होती हैं और यदि चरित्र ही दोषपूर्ण है तो किसी उन्नति की आशा करना ही व्यर्थ है। व्यक्तियों को ईमानदार, वचन का पक्का, एक दूसरे के प्रति उदारहृदय होना चाहिए। अपने कर्तव्यों के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए और व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा सामाजिक की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। इन आदर्शों के बिना सामाजिक प्रगति कतई संभव नहीं है। सिर्फ शिक्षा प्राप्त कर लेने से ही चरित्र का निर्माण नहीं हो जाता। आजकल के वातावरण को देखते हुए भारत का भविष्य अन्धकारमय ही दिखाई देता है। शिक्षा के क्षेत्र से निकलते ही आजकल के नवयुवक धन कमाने के पीछे बुरी तरह पड़ जाते हैं। यहाँ तक कि अपने आदर्शों को भी भुला देते हैं। राष्ट्रपिता गाँधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक तरीके से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भारत के नवयुवकों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि भारत की प्राचीन संस्कृति व अपनी परम्पराओं को भुलाते हुये वे जीवन के प्रति इतना गलत दृष्टिकोण भी अपना सकते हैं।

इस तथ्य से कोई भी विचारशील व्यक्ति इंकार नहीं कर सकता कि आजकल शिक्षित नवयुवकों में कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता की भावना की अत्यन्त ही कमी है और उनमें कर्त्तव्य के प्रति लगन पैदा करने की आज परम आवश्यकता है। भौतिकवाद की ओर उनके झुकाव को अध्यात्मवाद की ओर मोड़ना अत्यन्त ही आवश्यक है। और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये शिक्षा सम्बन्धी नीति में परिवर्तन और सुधार नितांत आवश्यक है।

यदि हम सभ्य देशों के प्राचीन इतिहास को देखें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि उनकी उन्नति एवं विकास में धर्म ने सबसे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। धर्म के माध्यम से ही चरित्र निर्माण संभव है, जिस पर राष्ट्रोन्नति निर्भर करती है।

सभी विचारशील व्यक्ति इस तथ्य की सत्यता को महसूस करते हैं लेकिन यह अत्यन्त ही खेद का विषय है कि इस दिशा में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। नवयुवकों में धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों को पनपाने के लिए हमारे द्वारा कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है और जब इनके अभाव में अनुशासनहीनता की भावना नवयुवकों के अपरिपक्व दिमाग में विकसित होने लगती है तो हम सारा दोष नवयुवकों पर ही मढ़ कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। क्या इसमें हमारी कोई भी जिम्मेदारी नहीं है ? हमारे ही नहीं वरन् सारे सभ्य राष्ट्रों के प्राचीन पुरुष हमेशा यह समझते थे कि इस सृष्टि का संचालन सर्वसाधन सम्पन्न एवं अमर शक्ति, चाहे उसे परमात्मा कहिए या और कुछ द्वारा किया जाता है और उस अमर शक्ति के मनन से ही उनमें इतनी क्षमता आ जाती थी वे दूसरों का मार्गदर्शन कर सकें। लेकिन आजकल वातावरण बिल्कुल ही बदल गया है और उसके लिये हम ही दोषी हैं। यह वातावरण, जिसमें धर्म के लिये कोई स्थान नहीं है, चरित्र निर्माण में अत्यन्त ही बाधक है।

ब्रिटेन में, जो वैज्ञानिक खोज की प्रगति में किसी अन्य राष्ट्र से पीछे नहीं अथवा जो धर्मान्धता के विरुद्ध संघर्ष में किसी से पीछे नहीं, वहाँ पर भी स्कूलों में चाहे उन्हें सरकारी सहायता मिलती हो या नहीं, बालकों को धार्मिक शिक्षा दी जाती है। जब तक कि बालक के पिता की ओर से कोई आपत्ति न की जाय तब तक स्कूलों में आयोजित नित्य की धार्मिक पूजा व प्रवचन में बालकों को भाग लेना पड़ता है। निजी स्कूलों में भी धार्मिक शिक्षा की सुविधायें हैं लेकिन देहात के स्कूलों में तो ईसाई धर्म की विधिवत् शिक्षा दी जाती है। इंग्लैण्ड व वेल्स में एक तिहाई स्कूल प्रायवेट हैं। स्कूलों के गिर्जों में भाग लेना व धार्मिक शिक्षा ग्रहण करना स्कूली जीवन का एक आवश्यक अंग है। मैंने स्कूलों का यह सब विवरण सरकारी प्रकाशन के आधार पर ही दिया है।

भारत में हम धर्म के नाम से एक प्रकार डरे से हैं। हमने निष्पक्षता का उच्च आदर्श बनाया है लेकिन हम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

उस पर जब अमल करने को बैठते तो उसका नकारात्मक स्वरूप सामने रख लेते हैं। यह रवैया शायद हमारे पुराने हिन्दू मुसलिम विवाह के संघर्ष तथा समानता में हमारी अटूट निष्ठा का परिणाम है। लेकिन यह समय है कि हम इस व्यर्थ के भय को दूर करदें और विश्वास की सक्रिय नीति को अपनायें।

राष्ट्रपिता गाँधीजी ने हमें बताया था कि सभी धर्म हमारी श्रद्धा के पात्र हैं और उनके आदर्श एक से ही हैं। प्रत्येक धर्म के विकसित होने से विभिन्न सम्प्रदाओं के समर्थकों के बीच एक-दूसरे को अच्छी तरह से समझने की भावना जागृत होगी। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य नवयुवकों में कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता की भावना पैदा करना है और विभिन्न धर्मों के विकास से इस उद्देश्य की प्राप्ति में काफी सहायता मिलेगी।

राष्ट्र के विकास कार्यों की सफलता हमारे चरित्र पर निर्भर करती है। विकास कार्यों के प्रति हमें अपने कर्त्तव्य को पूर्णतया निभाना है, व्यक्तिगत स्वार्थों के बजाय राष्ट्र के हित को दृष्टि में रखना है और कार्य को पूरी जिम्मेदारी से निभाना है। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा को बन्द करके क्या ये अच्छाइयाँ नवयुवकों में पैदा की जा सकती हैं ? धर्म के बिना चरित्र निर्माण संभव ही नहीं है। धर्म से आत्मा को प्रेरणा मिलती है। यदि बुद्ध को यह मान लिया जाय कि वे एक साधारण व्यक्ति थे तो बौद्ध धर्म में कुछ नहीं रह जायगा। पैगम्बर, गौतमबुद्ध, जैसस क्राइस्ट आदि महान आत्मा थे और उन्हें ईश्वर से प्रेरणा प्राप्त थी। यदि धार्मिक उपदेशों को ईश्वरीय प्रेरणा से अलग समझा जाय तो उनमें कुछ तथ्य नहीं रह जाता है। इसी प्रेरणा से चरित्र निर्माण हो सकता है।

यदि हम यह नहीं चाहते कि हमारा राष्ट्रीय चरित्र तेजी से गिरता चला जाय, तो यह नितान्त आवश्यक है कि धार्मिक मान्यताओं के वातावरण में नवयुवकों को शिक्षा दी जाय जिससे उनका अध्यात्मवाद की ओर ज्यादा झुकाव हो और वे सारे गुण एवं विशेषताएँ पूर्ण रूप से विकसित हो सकें जो राष्ट्र के निर्माण के लिए जरूरी हैं।

विज्ञान जो कुछ समय पहले धर्म का प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होता था, अब धर्म का सबसे बड़ा सहायक सिद्ध हो रहा है। उच्चस्तरीय विज्ञान उतना ही आध्यात्मिक है, जितने कि हमारे उपनिषद् आदि। अतः विज्ञान की प्रगति भी धार्मिक वृत्तियों के विकास में योग ही देगी।

ईश्वर को भुलाकर मानव का विकास संभव नहीं है। अतएव धार्मिक मान्यताओं की शिक्षा को स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा का एक अभिन्न अंग बना दिया जाना चाहिए और तभी हमारे शिक्षित नवयुवक एवं नवयुवतियों का चरित्र इतना सुदृढ़ हो सकेगा कि एक सुखद एवं समृद्ध राष्ट्र का उस पर निर्माण किया जा सके।

राष्ट्रीय-चरित्र भी विकसित किया जाय

अजमेर, राजस्थान के एक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक अपने कुछ विद्यार्थियों के साथ भारत भ्रमण को निकले। भारत की वर्तमान आर्थिक समृद्धि की आँखों देखी जानकारी पाना उनके इस भ्रमण का उद्देश्य था। इसी यात्रा के दौरान वे सोवियत संघ के सहयोग से चलाये गये विस्तृत कृषि के प्रयोगात्मक फार्म, सूरतगढ़ फार्म भी देखने गये।

वे सूरतगढ़ फार्म पर पहुँचे तो कोई एक बज गया था। जून की दोपहरी और ऊपर से राजस्थान का इलाका, गर्मी की मार असह्य हो उठी थी। वे यह सोच ही रहे थे कि यहाँ कुछ देर उपयुक्त स्थल खोजकर विश्राम किया जाय। किन्तु उन्हें ये देखकर हैरानी हुई कि ऐसी तपती धूप में भी कुछ रूसी कर्मचारी खेत में खड़े ट्रेक्टर को ठीक कर रहे थे। वे भी गर्मी से बुरी तरह त्रस्त थे किन्तु उसकी परवाह नहीं करते हुए अपने काम में जुटे थे। 'एक तो ठण्डे देश के रहने वाले दूसरे यह भयंकर गर्मी फिर भी वे अविचलित भाव से काम कर सकते हैं तो क्या हम इसी देश के रहने वाले इस समय घूम-फिर कर फार्म नहीं देख सकते।' इस विचार से उन्होंने उसी समय फार्म को देखने का निश्चय कर लिया।

वे जब उसे देखकर वापस उसी स्थान पर लौटे जहाँ उन्होंने रूसी कर्मचारियों को दत्तचित्त हो काम करते देखा था। तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि वे अभी भी अपने काम में जुटे थे। उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि उन्होंने पूरे फार्म पर जहाँ-तहाँ इस गर्म जलवायु के अनभ्यस्त रूसी कर्मचारियों को ही काम करते देखा था भारतीय कर्मचारी मजे से अपने क्वार्टस में आराम कर रहे थे। उन्होंने इसका कारण उन रूसियों से पूछा—"आप लोग ऐसी कड़ी धूप व झुलसा देने वाली गर्मी में काम क्यों कर रहे हैं जबकि भारतवासी जिनके राष्ट्रीय हित के लिये यह फार्म बनाया गया है वे मजे से आराम कर रहे हैं।"

उनके इस प्रश्न पर उन सोवियत संघीय नागरिकों से जो उत्तर मिला वह बड़ा ही मार्मिक था। वे बोले—"वे लोग अपना दायित्व अनुभव करें न करें, इससे हमें उतना सरोकार नहीं जितना इस फार्म की सफलता-असफलता से है। हमें यह जलवायु अनुकूल नहीं पड़ती, ऐसी धूप में काम करते कष्ट भी कम नहीं होता किन्तु इसे तो हम सह सकते हैं किन्तु यदि यह असफल हुआ तो हमारे देश की बदनामी होगी। इसलिए हमें कष्ट सहन करना तो क्या काम करते हुए मर भी जाना पड़े तो हमें दुःख नहीं होगा क्योंकि यह हमारे देश की इज्जत का सवाल है।"

यह था उन लोगों का राष्ट्रीय चरित्र जिसके आगे उन अध्यापक महोदय और उनके शिष्यों को श्रद्धान्त हो जाना पड़ा। व्यक्ति जिस प्रकार चरित्र खोकर अपना सम्मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खो देता है, उसी प्रकार राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में देश का व देशवासियों का सम्मान भी टिका नहीं रह सकता। व्यक्तिगत चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र समाजरूपी शरीर के दो फेफड़ों की तरह हैं यदि इनमें विकृति आ जाय तो समाज रुग्ण हो जाता है और इस विकृति के बढ़ते जाने पर एक दिन मृत्यु का ग्रास भी बन जाना पड़ता है।

शारीरिक शक्ति मनुष्य के लिये आवश्यक तो है किन्तु वह चरित्र के साथ ही शुभ हो सकती है। चरित्र के अभाव में शारीरिक शक्ति पशुबल मात्र रह जाती है। ठीक उसी प्रकार राष्ट्र की आर्थिक व भौतिक प्रगति भी राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में उसी प्रकार असम्मान का ही कारण बन सकती है सम्मान का हेतु नहीं। उसका सदुपयोग सम्भव नहीं हो सकता।

यह बड़ा चिन्तनीय तथ्य है कि पिछले दिनों एक भारतवासी को जापान प्रवास के दौरान यह बात सुननी पड़ी कि भारतवासी मेहनत करना पसन्द नहीं करते। सांस्कृतिक दृष्टि से भारतवर्ष ने जापान को बहुत कुछ दिया है। बौद्ध धर्म भारत से पनप कर जापान में फैला है। इस दृष्टि से व अपने को भारत का ऋणी मानते हुए भी भारतवासियों को उस सम्मान की दृष्टि से नहीं देख पाते।

पुराणों में एक कथा आती है जो चरित्र की महत्ता प्रतिपादित करती है। भक्तराज प्रह्लाद अपने संचित पुण्यों के प्रभाव से इन्द्र को अपदस्थ कर स्वयं देवताओं के राजा बन गये। इस पर इन्द्र बहुत दुःखी हुए। वे अपने गुरु वृहस्पति के पास पहुँचे और उनसे अपनी वेदना बताते हुए पूछने लगे—"गुरुदेव ऐसा उपाय बताइये कि मैं अपने खोये राज्य को पुनः पा सकूँ।" वृहस्पति ने बताया—"प्रह्लाद बड़ा दानी है। वह प्रातःकाल याचकों को इच्छादान दिया करता है उस समय वे जो कुछ माँगते हैं उन्हें मिलता है। तुम भी एक साधरण याचक बनकर उसके दरबार में उपस्थित हो जाओ और उससे उसका शील (चरित्र) माँग लो तो तुम्हें अपना राज्य पुनः मिल सकता है।"

इन्द्र ने अपने गुरु के कहने के अनुसार ही प्रह्लाद से उसका शील माँग लिया। प्रह्लाद ने उससे पूछा—"तुम मेरा शील ही क्यों माँगते हो।" "बस मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है।" "मैंने अपना शील तुम्हें दिया।" यह कहते ही प्रह्लाद की तेजस्वी आकृति राहु ग्रसे सूर्य की तरह क्षीण हो गयी। उसमें से एक तेजस्वी छाया-पुरुष निकलकर याचक के शरीर में प्रविष्ट हो गयी। प्रह्लाद ने पूछा—"तुम कौन हो मुझे त्याग कर याचक के पास क्यों जा रहे हो ?"

"मैं तुम्हारा शील हूँ। तुम मुझे याचक को दे चुके हो।"

शील के जाते ही शौर्य, विवेक, श्री, मेधा आदि शक्तियाँ भी एक-एक करके उसका अनुसरण करने लगीं और प्रह्लाद की सम्पूर्ण सत्ता व वैभव समाप्त हो गया। इन्द्र पुनः उसे अपदस्थ करके देव लोक का राजा बन गया।

यह कथा चरित्र की महत्ता प्रतिपादित करने में पूरी तरह समर्थ है। चरित्र के बिना व्यक्ति का कोई मूल्य, कोई सम्मान नहीं रहता। यही चरित्र बल जब राष्ट्र के चरित्र बल के रूप में विकसित होता है तो वह राष्ट्र विश्व में अपना सम्मान—अपना गौरव स्थापित करके रहता है।

राष्ट्रीय भावना व्यक्ति की प्रगति को—सम्मान को एक स्थायी आधार प्रदान करती है उसकी एक तस्वीर उपस्थित करती है। 'भारतीय' कहलाने के साथ ही उस व्यक्ति से भारतीय सभ्यता, संस्कृति और वहाँ की विशेषताओं का आभास परिचय भी दूसरे देशवासी को मिले कि वह उससे अप्रभावित हुए बिना न रहे जैसे कि अजमेर के प्राध्यापक महोदय व उनके विद्यार्थीगण उन रूसी नागरिकों से प्रभावित हुए थे। बाहर से आने वाले विदेशी पर्यटकों को भी यहाँ वैसा कुछ देखने को मिले जिससे वे भारतवासियों के लिये अपने हृदय में उच्च भावना लेकर जायँ।

आवश्यकता इस बात की है कि हम चरित्र निर्माण पर अधिक से अधिक ध्यान दें। इसे व्यक्ति को मापने की पहली कसौटी माना जाय। व्यक्तिगत चरित्र ज्यों-ज्यों बढ़ेगा—समाज में सच्चरित्र लोगों को महत्व दिया जाने लगेगा, उनकी संख्या में वृद्धि होने लगेगी उसके साथ ही साथ राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण भी होता जायेगा। भावी पीढ़ी के चरित्र निर्माण पर पूरा-पूरा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है साथ ही उसे राष्ट्रीय भावना के साथ जोड़ने की भी।

तात्कालिक नहीं दूरवर्ती हितों को प्रश्रय मिले

अनीति का तुरन्त लाभ मिलते देखकर प्रत्यक्षवादियों का कहना है कि ईमानदारी क्यों अपनायी जाय—उत्कृष्टता का समर्थन क्यों किया जाय ? इससे तत्काल तो घाटा ही दीखता है फिर क्यों न उस रास्ते पर चला जाय जिससे कम समय एवं श्रम में अधिक लाभ पहुँचता हो। यह मान्यता एकांगी, अधूरी एवं अविवेकपूर्ण है। दूरगामी एवं स्थायी परिणामों पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि उत्कृष्टता के पक्षधर हर क्षेत्र में प्रत्यक्षवादियों—अनीति के मार्ग पर चलकर तात्कालिक लाभ सोचने वालों की तुलना में कहीं अधिक सफल रहे हैं। भौतिक अथवा आध्यात्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सफलता के शिखर पर जा पहुँचने वाले व्यक्ति उत्कृष्टता के न केवल समर्थक रहे हैं वरन् अपने प्रत्येक क्रिया-कलाप में, व्यवहार में उसका समावेश किया।

नीति के मार्ग पर चलने वालों को अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ, मनोयोग एवं धैर्य तीनों की आवश्यकता पड़ती है। असफलताएँ नीति के अवलम्बन के कारण नहीं प्रस्तुत होती हैं बल्कि उनके मूल में इन तीनों का अभाव ही प्रधान कारण होता है। जिन्हें भौतिक सम्पन्नता ही अभीष्ट हो वे भी नीति पर चलते हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रमशीलता, मनोयोग एवं धैर्य का आश्रय लेकर अपने उद्देश्य में सफल हो सकते हैं। भौतिक सम्पन्नता में ईमानदारी बाधक सिद्ध होती है, यह मान्यता उन लोगों की है जो पुरुषार्थ से जी चुराते हैं। येन-केन प्रकारेण कम समय एवं कम श्रम में अधिक से अधिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति से ही अनीति को प्रोत्साहन मिलता तथा लम्बे समय तक सफलता के लिए इन्तजार करते नहीं बनता है। फलतः थोड़ा तात्कालिक लाभ भले ही उठा लें—महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से सदा वंचित ही बने रहते हैं। देखा जाय तो भौतिक सम्पन्नता के क्षेत्र में शिखर पर वही पहुँचे हैं, जो नीति के—ईमानदारी के समर्थक रहे हैं—पुरुषार्थी रहे हैं। विश्व के मूर्धन्य भौतिक सम्पन्न व्यक्तियों के जीवन क्रम पर दृष्टिपात करने पर यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है। ईमानदारी, पुरुषार्थ के—मनोयोग एवं असीम धैर्य के सहारे ही वे सामान्य स्तर से असामान्य स्थिति तक जा पहुँचे।

अमेरिका के प्रसिद्ध पूँजीपति राकफेलर ने एक छोटे से व्यापारी के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया। घर की स्थिति ऐसी नहीं थी कि व्यापार में पूँजी का योगदान मिल सके। पर अपनी प्रामाणिकता, गहन अभिरुचि एवं नम्रता के कारण एक मित्र से इतना सहयोग प्राप्त करने में सफल हो गये कि किसी प्रकार छोटा-मोटा व्यवसाय आरम्भ हो सके। लगन, पुरुषार्थ के कारण वे आगे बढ़ते गये। प्रामाणिकता के कारण उन्हें कर्ज के रूप में अन्य बड़े व्यापारियों का भी योगदान मिलने लगा। निर्धारित समय पर उधार का पैसा मिल जाने के कारण राकफेलर की प्रामाणिकता व्यवसाय क्षेत्र में बढ़ती गई। अपनी श्रमशीलता, असाधारण मनोयोग एवं चरित्रनिष्ठा के कारण राकफेलर का नाम इन दिनों यूरोप के मूर्धन्य सम्पन्नों में गिना जाता है। राकफेलर की 'एक्सन' एवं स्टेन्डर्ड तेल कम्पनियाँ आज संसार के सबसे बड़े ५०० निगमों में से एक गिनी जाती हैं। एक प्रेस इन्टरव्यू में अपनी सफलता का रहस्योद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा कि 'विषम परिस्थितियों, असफलताओं में भी हमने अपना धैर्य कभी नहीं खोया। अपनी प्रामाणिकता पर कभी आँच नहीं आने दी। अपने ऊपर आत्मविश्वास बना रहा। यही हमारी सफलता का रहस्य है।

कितने ही व्यक्ति सम्पन्न बनना चाहते हैं। अभीष्ट लक्ष्य के प्रति आरम्भिक उत्साह भी रहता है, पर छोटी-मोटी असफलताओं के कारण प्रयास छोड़ बैठते हैं। इतना धैर्य नहीं रहता कि असफलता से प्रेरणा लें—कारणों की ढूँढ़-खोज करें तथा नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ कर दें। अप्रामाणिकता भी असफलता का कारण बनती है। झूठ-फरेब के बलबूते थोड़ा लाभ आरम्भ में उठाया तो जा सकता है, पर जन-सामान्य को मालूम पड़ जाने पर विश्वास समाप्त हो जाता है तथा वह व्यक्ति सहयोग से वंचित रह जाता है। अनीतिपूर्वक सफलताएँ प्राप्त करने के इच्छुक अन्ततः घाटे में ही रहते हैं। महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ तो ईमानदार, श्रमशील व्यक्ति के ही हिस्से में आती हैं।

एक युवक ने जब हैनरी फोर्ड से कहा कि 'मैं भी हैनरी फोर्ड के समान सम्पन्न बनना चाहता हूँ। कृपया मेरा मार्गदर्शन कीजिये। हैनरीफोर्ड ने जो उत्तर दिया वह हर भौतिक महत्वाकांक्षी को प्रेरणा दे सकता है। फोर्ड ने उत्तर दिया 'किसी भी कीमत पर अपनी प्रामाणिकता बनाये रखो, मनोयोग एवं सतत् श्रम का अवलम्बन लेकर व्यवसाय के क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हो।' एक सामान्य से आटोमोबाइल मैकेनिक के रूप में फोर्ड को अपना जीवन क्रम आरम्भ किया तथा पुरुषार्थ के सहारे सफलता की चोटी पर जा पहुँचे। फोर्ड को आटोमोबाइल उद्योग का संस्थापक माना जाता है। मोटर कारखानों की स्थापना के समय उसकी इच्छा थी कि इतनी सस्ती कारों का निर्माण करे कि प्रत्येक कर्मचारी को उपलब्ध हो सके। सन् १९३० में फोर्ड कम्पनी से निकलने वाली कार की कीमत मात्र ३०० डालर थी। फोर्ड कम्पनी के सामने हर समय ७०,००० कारें खड़ी रहती हैं जो मात्र कम्पनी में कार्य करने वाले कर्मचारियों की हैं। सन् १९३० में फोर्ड कम्पनी में लगी पूँजी आठ अरब रुपये आँकी गई थी। १९३७ में मृत्यु के समय हैनरी' विश्व के सबसे सम्पन्न व्यक्ति माने गये। फोर्ड शान्ति के पक्षपाती थे। उन्होंने फोर्ड फाउन्डेशन की स्थापना द्वारा अपने करुण हृदय का परिचय दिया। खरबों डालर की राशि से स्थापित यह संस्था मानवतावादी कार्यों में लगी है।

अमेरिका के ही जान जैकोव एस्टर को कितनी ही असफलताओं का सामना करना पड़ा, पर कभी भी उन्होंने अपना सन्तुलन नहीं खोया। परिश्रम एवं ईमानदारी के प्रति अटूट निष्ठा ने उन्हें अमेरिका के मूर्धन्य पूँजीपतियों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा उन्होंने व्यवसाय के क्षेत्र में एक सामान्य से व्यापारी के रूप में चाय एवं चन्दन खरीदने-बेचने का कार्य छोटे पैमाने पर आरम्भ किया। व्यापारिक क्षेत्र में अपनी ईमानदारी के कारण वे सदा विख्यात रहे। फलतः जन-सहयोग भी मिला। इस छोटे-से व्यापार से एस्टर ने क्रमिक विकास करते हुए अमेरिका में बहुत बड़ा व्यापारिक साम्राज्य स्थापित कर लिया। व्यापार के विस्तार होते देखकर उन्होंने न्यूयार्क का एक बड़ा भाग खरीद लिया तथा नियन्त्रण के लिए स्थायी केन्द्र की स्थापना की। इन दिनों अनेकों देशों में उनका व्यवसाय फैला है।

ब्रिटेन के प्रसिद्ध कार निर्माता न्यूफील्ड एक सामान्य मैकेनिक था। अपनी श्रमशीलता, लगन एवं प्रामाणिकता के कारण वह ब्रिटेन का सबसे बड़ा कार निर्माता बना। न्यूफील्ड का कहना है कि अपने भाग्य का निर्माण हमने पुरुषार्थ एवं चरित्रनिष्ठा के आधार पर किया है। असफलताओं से भी प्रेरणा लेकर मैं अपने लक्ष्य की ओर सतत् तत्पर रहा। फलतः वर्तमान स्थिति तक पहुँच सका हूँ।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लम्बी-चौड़ी योजनाएँ बनाने की अपेक्षा अपने पास मौजूद साधनों को लेकर ही छोटे-मोटे कार्यों में जुट जाया जाय तो भी प्रगति का सशक्त आधार बन सकता है। परिस्थितियाँ अनुकूल होंगी—साधनों का बाहुल्य होगा, तब व्यवसाय आरम्भ करेंगे, यह सोचते रहने की तुलना में अपने अल्प साधनों को लेकर काम में जुटा जाना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। काम छोटा हो अथवा बड़ा उसमें सफलता के कारण साधन नहीं अथक पुरुषार्थ, लगन एवं प्रामाणिकता बनते हैं। देखा जाय तो विश्व के सभी मूर्धन्य सम्पन्न सामान्य स्थिति से उठकर असामान्य तक जा पहुँचे। साधन एवं परिस्थितियाँ तो प्रतिकूल ही थीं, पर अपनी श्रमनिष्ठा एवं मनोयोग के सहारे सफलता के शिखर पर जा चढ़े। वे यदि परिस्थितियों का रोना रोते रहते तो अन्य व्यक्तियों के समान ही हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते और सम्पन्न बनने की कल्पना में मन बहलाते रहते।

बाटा एक सामान्य मोची था। पैतृक सम्पत्ति के रूप में उसे जूते बनाने की कला प्राप्त हुई। जिस तल्लीनता के साथ वह जूते की मरम्मत करता था, वह देखते बनती थी। अपने काम एवं मजदूरी के प्रति इतना ईमानदार था कि ग्राहकों का ताँता लगा रहता था। उचित मजदूरी एवं निश्चित समय पर ग्राहकों को जूते मरम्मत करके देना उसकी विशेषता थी। इस लगन एवं प्रामाणिकता के कारण ही उसकी ख्याति हुई। व्यवसाय बढ़ने लगा। कार्य के विस्तार को देखते हुए उसे अन्य सहयोगी रखने पड़े और अन्ततः कम्पनी का रूप देना पड़ा। "बाटा शू कम्पनी" आज अपनी प्रामाणिकता के कारण विश्वविख्यात है। गई-गुजरी स्थिति से उठकर अश्वपति की श्रेणी में जा पहुँचने वाले विश्वविख्यात 'बाटा शू कम्पनी' के निर्माता का जीवन वृतान्त भौतिक सम्पन्नता प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को प्रेरणा दे सकता है।

गली-गली में जाकर दैनिक उपयोगी छोटे-छोटे सामान बेचने वाले 'बिरला' किस प्रकार भारत के मूर्धन्य व्यवसायी बने, इस रहस्य को जानने के इच्छुक व्यक्तियों को उनके खर्च, व्यवसाय, विस्तार को नहीं उन विशेषताओं का अध्ययन करना होगा जिनके बलबूते वैभव के स्वामी बने। उनकी श्रमनिष्ठा एवं प्रामाणिकता उल्लेखनीय थी। असफलताओं में भी उन्होंने निराशा को पास नहीं फटकने दिया। चरित्रनिष्ठा पर आँच नहीं आने दी। फलस्वरूप व्यवसाय फूलता-फैलता गया। सम्पूर्ण भारत में इन दिनों विरला का व्यवसाय छाया हुआ है।

उत्कृष्टता के अनेकानेक पक्ष हैं। नीति का अवलम्बन उसका एक पक्ष है। इसका अवलम्बन लेकर प्रामाणिकता, श्रमशीलता एवं मनोयोग के सहारे किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ा जा सकता है। जिन्हें भौतिक सफलताएँ ही अभीष्ट हो, वे भी इन विशेषताओं का अवलम्बन लेकर अपने लक्ष्य में सफल हो सकते हैं। उपरोक्त उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण हैं जो इस दिशा में सफलता के इच्छुक व्यक्तियों का मार्ग-दर्शन करने में समर्थ हैं।

राष्ट्रोत्थान में नैतिकता की अनिवार्य आवश्यकता

किसी भी मनुष्य, समाज या राष्ट्र की उन्नति का लक्षण है—सुख, शांति और सम्पन्नता। यह तीनों बातें एक-दूसरे पर उसी प्रकार निर्भर हैं जिस प्रकार किरणें सूर्य पर और सूर्य किरणों पर निर्भर है। जिस प्रकार किरणों के अभाव में सूर्य का अस्तित्व नहीं और सूर्य के अभाव में किरणों का अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार सुख-शान्ति के अभाव में सम्पन्नता की सम्भावना नहीं और बिना सम्पन्नता के सुख-शान्ति का अभाव रहता है।

यदि गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि आरामदेह जीवन की सुविधायें सुख-शान्ति का कारण नहीं हैं बल्कि निर्विघ्न तथा निर्द्वन्द्व जीवन प्रवाह की स्निग्ध गति ही सुख शान्ति का हेतु है। जिसका जीवन एक स्निग्ध तथा स्वाभाविक गति से ही बहता चलता जा रहा है सुख-शान्ति उसी को प्राप्त होती है। इसके विपरीत जो अस्वाभाविक एवं उद्वेगपूर्ण जीवनयापन करता है वह दुःखी तथा अशान्त रहता है। विविध प्रकार के कष्ट और क्लेश उसे घेरे रहते हैं। ऐसा व्यक्ति एक क्षण के लिए भी सुख-चैन के लिये तरसता रहता है। कभी उसे शारीरिक व्याधियाँ व्यस्त करती हैं तो कभी वह मानसिक यातनाओं से पीड़ित होता है।

जो बेचैन है, अशान्त है, पीड़ित है, वह सम्पन्नता उपार्जित करने के संसाधन जुटा ही नहीं सकता। उसे यातनाओं से संघर्ष करने से अवकाश ही नहीं मिलेगा। फिर भला वह सम्पन्नता का स्वप्न किस प्रकार पूर्ण कर सकता है ? जो शान्त है, स्थिर है, निर्द्वन्द्व है वही कुछ कर सकने में समर्थ हो सकता है। यदि परिस्थितिवश अथवा संयोगवश किसी को सम्पन्नता प्राप्त हो भी जाये तो अशान्त एवं व्यग्र व्यक्ति के लिए उसका कोई उपयोग नहीं। जिस वस्तु का जीवन में कोई उपयोग नहीं, जो वस्तु किसी के काम नहीं आती उसका होना भी उसके लिये न होने के समान ही है। अस्तु सम्पन्नता प्राप्त करने के लिये शान्तिपूर्ण परिस्थितियों की आवश्यकता है और सुख-शान्ति के लिये सम्पन्नता की अपेक्षा है।

इस सम्पन्नता का अर्थ बहुत अधिक धन-दौलत से न होने पर भी आवश्यकताओं की सहज पूर्ति से तो है ही। जो नितान्त निर्धन है, दरिद्री है, वह सुख-शान्ति के लिये कितना ही मानसिक उद्योग क्यों न करे उसे प्राप्त नहीं कर सकता। जब भूख लगेगी तब वह किसी साधन, समाधि अथवा भजन-पूजन से दूर न होगी। क्षुधित मनुष्य कब तक अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखेगा, कब तक उसका विवेक उसे विफल होने से बचा सकेगा ? एक सीमा के बाद प्रज्ञावान् व्यक्ति भी विचलित हो उठेगा। उपयुक्त आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति और मनुष्य का अपना संतोष दोनों मिलकर किसी भी बुद्धिमान व्यक्ति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये सम्पन्नता ही है। जो निःस्वार्थ, निर्लोभ, अलोलुप है वही वास्तव में सम्पन्न है। इसके विपरीत जो लालची है, अतिकामी है, लिप्सालु है, वह धनवान होने पर भी दरिद्री है, असम्पन्न है।

उन्नत जीवन के लिये जिस सुख-शान्ति एवं सम्पन्नता की आवश्यकता है उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्राकृतिक अनुशासन में रहकर ही क्रियाशील होना पड़ेगा। मनुष्य-जीवन की तुलना में यदि इस प्रकृति के जीवन, उसके अस्तित्व को देखें तो पता चलेगा कि जड़ होते हुए भी प्रकृति कितनी हरी-भरी और फल-फूलों से सम्पन्न है। किन्तु मनुष्य सचेतन प्राणी होते हुए भी कितना दीन और दुःखी है ?

इसका मूल कारण प्रकृति का निश्चित नियमों के अन्तर्गत अनुशासित होकर चलना है। समस्त नक्षत्र, तारे तथा ग्रह-उपग्रह एक सुनिश्चित अवस्था तथा विधान के अनुसार ही क्रियाशील रहते हैं। वे अपने निश्चित विधान का व्यतिक्रम नहीं करते। कोई लाख प्रयत्न क्यों न करे, कोई भी ग्रह अथवा उपग्रह अपने उदय, अस्त एवं परिभ्रमण की गतिविधि में कोई परिवर्तन न करेगा। लाख घड़ों से सींचने पर भी कोई पेड़-पौधा बिना ऋतु के फल-फूल उत्पन्न न करेगा।

जो विश्व-विधान समस्त सृष्टि पर लागू है, उसका एक अंश होने से वही विश्व-विधान मनुष्य पर भी लागू है। जिस प्रकार निश्चित नियम का उल्लंघन करते ही सितारे टूट पड़ते हैं, धरती हिल उठती है, उसी प्रकार अपने नैतिक नियमों का उल्लंघन करने पर मनुष्य का सारा जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, मानसिक शान्ति समाप्त हो जाती है और आत्मा का अधःपतन हो जाता है। मनुष्य सुख-शान्ति का पात्र बनने के स्थान पर दुःख-दर्द और कष्ट-क्लेशों का भण्डार बन जाता है।

मनुष्य को सृष्टि एवं साधन के रूप में जो कुछ मिला है वह समुचित उपयोग के लिये ही मिला है। वह सब इसलिये है कि इसकी सहायता से मनुष्य जीवन को अधिकाधिक समुन्नत तथा सुन्दर बनाये, सुख-शान्तिपूर्वक अपनी पूरी आयु का उपयोग करे। मनुष्य-जीवन अल्पायु अथवा अरूपता के लिये नहीं मिला है। वह अपने में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की उपलब्धि करने के लिये ही प्राप्त हुआ है। नियामक ने मनुष्य को विवेक शक्ति देकर अवश्य ही यह अपेक्षा की होगी कि वह संसार का सबसे स्वस्थ, सुन्दर और शक्ति-सम्पन्न प्रतीक बने। वह अपने कर्त्तव्य से संसार को सुन्दरतम बनाये और निर्माता का सच्चा प्रतिनिधित्व करे। किन्तु मनुष्य का स्वरूप तथा उसका कार्यकलाप इस अपेक्षा से बिल्कुल विपरीत दृष्टिगोचर होता है। यह दिन-दिन अस्वस्थ, असुन्दर, अस्त-व्यस्त होता जा रहा है।

यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य जब तक नियति-नियमों के अनुशासन में होकर नहीं चलेगा तब तक दिन-दिन उसका पतन ही होता जायेगा वह दिन-दिन और अधिक विपन्नतापूर्ण अशान्ति से घिरता जायेगा। वह यों ही रोयेगा-चिल्लायेगा और पग-पग पर नारकीय यातना पाता हुआ कीड़े-मकोड़े की तरह मरता रहेगा।

जब सृष्टि के सारे साधन, सारे उपकरण और समस्त सम्पदायें सुख-साधन करने के लिये ही मिली हैं तो क्या कारण है कि उनके रहते, उनका उपयोग करते हुए भी मनुष्य दीनता, दयनीयता और दुःख को प्राप्त होता जा रहा है जो दूध, दही, घी अन्न आदि पदार्थ मनुष्य को बच्चे से बड़ाकर जवान कर देते हैं, स्वास्थ्य एवं सुन्दरता प्रदान करते हैं एक दिन मनुष्य उन्हीं का उपयोग करता-करता रोगी बन जाता है, क्षीण हो जाता है और सारी शक्ति खो देता है।

इसका कारण है मनुष्य का असंयम एवं नियति नियमों के प्रति विद्रोह। जो विद्युत-शक्ति मनुष्य के बड़े-बड़े कार्य सम्पादित करती है, वही बिजली अनियमपूर्वक छूने अथवा अनियमित रूप से उपयोग करने पर विनाश का कारण बन जाती है। जो अन्न मनुष्य को जीवन देता है, उसको प्राण कहा जाता है उसका अनियमित उपयोग प्राणों का संकट बन जाता है।

नियति-नियमनों के अनुकूल चलने और नैसर्गिक अनुशासन मानने पर ही मनुष्य उन्नति एवं समृद्धि की दिशा में अग्रसर हो सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई उपाय नहीं है जो मनुष्य को सुखी एवं शान्त बना सके।

मनुष्य की केवल दो ही गतियाँ हैं। या तो वह ऊपर चढ़ेगा या नीचे गिरेगा। उसके लिये बीच का कोई मार्ग नहीं है। मनुष्य-जीवन को यह छूट नहीं है कि वह कुछ अनुशासन में रहकर और कुछ अनुशासनहीन होकर बिना विशेष कष्ट-क्लेशों के चुपचाप मध्य मार्ग से निकल जाये। मनुष्य-जीवन या तो उत्कृष्ट ही होगा अथवा निकृष्ट। जो उत्कृष्ट नहीं है वह अवश्य ही निकृष्ट है। उत्कृष्टता और निकृष्टता के बीच उसकी कोई स्थिति नहीं है।

जब मनुष्य जीवन का उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट ही होना निश्चित है तो उत्कृष्टता प्राप्त करने को बुद्धिमत्ता कहा जायेगा। ऐसा कौन अभागा होगा जो सहज, सुलभ, उत्कृष्ट अथवा निकृष्ट जीवनों में से उत्कृष्ट जीवन को न चुने।

उत्कृष्ट जीवन प्राप्त करने के लिए मनुष्य को नियति-चक्र का अनुसरण और नैतिक नियमों का पालन करना ही होगा। इसके अतिरिक्त उसके सामने कोई उपाय नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि वह शुभ संकल्पी, शुभदर्शी और शुभाचार वाला बने। अतिचार तथा अत्याचार को त्यागकर परोपकारी, परिश्रमी तथा पुरुषार्थी बने। जो आचरण शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक हानि करे उन्हें छोड़कर ऐसे आचार-विचार अपनाने चाहिए जिनसे इन चारों तथ्यों का विकास हो। नैतिकता ही किसी देश की वास्तविक प्रगति का मूल है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुशासन का उल्लंघन न करें

सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा एवं अन्य सभी ग्रह-उपग्रह ठीक-ठीक नियम व्यवस्था और विधान के अनुसार काम करते हैं। पेड़ों का उगना, फलना-फूलना, ऋतुओं का परिवर्तन, जीवों का जन्म-मरण आदि भी एक विशेष नियम की प्रेरणा से नियत विधान के अनुसार होता है। संसार की प्रत्येक छोटी से लेकर बड़ी घटनाओं के पीछे एक नियामक विधान ही काम करता है। समस्त ब्रह्माण्ड का संचालन-नियमन करने वाला विधान ही पिण्ड में, अणु-अणु में काम करते देखा जा सकता है। प्रत्येक अणु अपने में गतिशील है, उसके भी चारों ओर कई परमाणु चक्कर लगाते हैं। मनुष्य का जीवन भी इस विश्वनियम से अलग नहीं है वरन् जीवन की प्रत्येक गतिविधि का नियमन भी इसी से होता है।

प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने लिखा है—"आकाश के नक्षत्रों से लेकर अणु-परमाणु के कार्यकलाप और संसार की प्रत्येक घटना के पीछे, मनुष्य की प्रत्येक क्रिया के पीछे एक अमर चेतन सत्ता का नियमित विधान काम कर रहा है, जिस तरह किसी ग्रह के पथ-भ्रष्ट हो जाने पर सृष्टि में खलबली मच सकती है, उसी तरह विश्व-नियम, नियति के विधान के विरुद्ध चलने पर मनुष्य के आंतरिक जीवन में भयंकर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उसका परिणाम बाह्य जीवन में विनाश, हानि के रूप में ही प्राप्त होता है। विश्व-नियत, नियति चक्र, शांति और विकास का रास्ता है, जिसके अनुसार चलने पर मनुष्य के स्वास्थ्य एवं प्रतिभा का विकास होता है, जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त होती है।"

संसार में काम करने वाला नैतिक विधान एक विवेकपूर्ण तथ्य है जो विभिन्न शक्तियों, पदार्थों, क्रियाओं में सन्तुलन पैदा करता है। प्रत्येक क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया विश्व नियामक तथ्यों की प्रेरणा से ही होती है। मन के सूक्ष्म भाव, संकल्प-विकल्प, उतार-चढ़ाव, उसमें सन्तुलन-असन्तुलन भी इसी विश्व-नियति की प्रतिक्रिया का अंग है।

एडिंगटन ने लिखा है—जिस तरह मनुष्य के कार्य-कलापों के पीछे मन की शक्ति कार्य करती है, ठीक उसी तरह सृष्टि के मूल में भी एक चेतन सत्ता कार्य करती है, जो पूर्ण व्यवस्थित और नियामक है। पहले स्थूल दृष्टि से देखने पर जड़-जगत का कार्य भी एक मशीन की तरह दिखाई देता है किन्तु गम्भीर विचार, चिन्तन द्वारा देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि जगत और इसके प्रत्येक कार्यकलाप के पीछे एक चेतन सत्ता काम कर रही है, जो नियमपूर्वक है। भारतीय मनीषियों ने तो बहुत पहले ही इस तथ्य की अनुभूति प्राप्त कर ली थी। भारतीय दर्शन तो पग-पग पर इस विश्व-विधायक सत्ता को स्वीकार करके ही आगे बढ़ता है।

नियतिचक्र, विश्व विधान, नैतिक विधान एवं विवेकपूर्ण, व्यवस्थित, सुनियोजित तथ्य है, जिसका स्वभाव सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की रचना, सृजन करना है। यह इतना ही सत्य है जितना यह विश्व और मानव शरीर में काम करने वाली अमर चेतना। साथ ही यह उतना ही सूक्ष्म और दुरूह भी है। इसे जानना-समझना उसी तरह क्लिष्ट है जैसे शरीर में आत्मा को जानना। यही कारण है कि अधिकांश लोग इसे समझ नहीं पाते। खासकर व्यक्ति अपने सीमित ज्ञान, तुच्छ दृष्टिकोण से इस असीमित, सर्वव्यापी तथ्य को बहुधा समझ नहीं पाते।

विश्व-विधान नियतिचक्र की अनुभूति के लिये विवेक युक्त, निरपेक्ष बुद्धि की आवश्यकता है। अविवेकी, अज्ञ मनुष्य अपने जीवन की समस्याओं का ही हल नहीं निकाल सकता तो इस संसार के मूल नियम, मूल विधान को समझने की बात तो और भी दुरूह है। इस तरह के अज्ञानी जन-जीवन की बाह्य घटना और उनके अच्छे-बुरे परिणामों से ही सुखी-दुःखी होते रहते हैं। वे नहीं समझते कि उन्हें सुधारने के लिये ही दुःख एवं कष्ट दण्ड रूप में किसी नियत की प्रेरणा से मिलते हैं। इसी तरह के अच्छे कार्यों का परिणाम सुख, शान्ति, प्रफुल्लता, उल्लास, वरदान के रूप में मिलता है।

गम्भीर चिन्तन के द्वारा मनुष्य विचार करे तो उसे भौतिक बाह्य जगत के प्रत्येक क्रियाकलाप के अन्तर्गत एक शक्ति काम करती हुई मालूम पड़ेगी। एक नियत विधान के अनुसार संसार के कार्यों का नियमन, संचालन होता दिखाई देगा। आग छूने पर जला देती है, पानी गीला कर देता है, विद्युत छूने पर प्राण हरण कर लेती है, बर्फ ठण्डी लगती है। कदाचित् नक्षत्र टकरा जायें तो विश्व में खलबली मच जाय। इसी तरह कई नियम देखे जा सकते हैं। ये बाह्य जगत् में काम करते हैं इसलिये उन्हें भौतिक नियम कहा जायगा। सूक्ष्म जगत में काम करने वाले नैतिक नियम कहलाते हैं। प्रत्यक्ष रूप में इन्हीं इन्द्रियों के संयोग से इनको नहीं जाना जा सकता किन्तु गंभीरतापूर्वक सूक्ष्म दृष्टि के साथ देखने पर इन्हें उसी तरह जाना जा सकता है जैसे किसी भौतिक नियम को।

नियतिचक्र की अनुकूल दिशा में चलकर ही व्यक्ति और समाज की उन्नति व विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत चलना विश्वनियम का उल्लंघन करना अपनी अवनति और पतन को निमंत्रण देना है। विद्युत का सदुपयोग करके उससे बड़े महत्त्वपूर्ण काम लिये जा सकते हैं। मशीनों, इंजिनों, पंखे, रेडियो तथा अन्य उपकरणों को गति मिलती है। सुन्दर, सुरुचिपूर्ण प्रकाश प्राप्त किया जाता है। सचमुच विद्युत ने संसार का नक्शा ही बदल दिया है। इसी बिजली को यदि गलत ढंग से छू लिया जाय तो यह प्राणघातक तक बन जाती है। आग का उपयोग मनुष्य की बहुत-सी समस्याओं को हल कर देता है। अग्नि मनुष्य की जीवनदाता है, किन्तु गलत ढंग से, नियम विरुद्ध होने पर यही प्राणलेवा बन जाती है। परमाणु शक्ति संसार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभाव, गरीबी, अनेकों समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है, किन्तु उसके गलत उपयोग से संसार का कुछ ही समय में नाश भी किया जा सकता है।

नियतिचक्र विश्व-विधान भी ठीक इसी तरह है। इसके अनुरूप चलने पर मनुष्य की उन्नति, विकास, समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है और इसके विरुद्ध चलने पर मनुष्य को असीम दुःख, परेशानी, विपरीतताओं का सामना करना पड़ता है। विश्व-नियम, नियतिचक्र किसी के सुख-दुःख का ध्यान नहीं रखता। वह एक नियम है जो सब पर लागू है। यह दुधारी तलवार है। सामने चलाकर जीवन-मरण में विजय पाई जा सकती है और विपरीत दिशा में चलाकर अपना ही नाश किया जा सकता है। बुरे आचरण करना, बुरे कर्म करना, नियति के विरुद्ध चलना, अपने लिये बुरे परिणाम पैदा करना है। ऐसी स्थिति में सुखमय, शुभ हितकर परिणामों की आशा करना व्यर्थ है। बुराई का परिणाम कालान्तर में बुरा ही होता है।

बबूल के बीज बोने पर काँटेदार वृक्ष का पैदा होना निश्चित है। किसी भी तरह का अनैतिक बुरा कार्य करने पर शारीरिक अवज्ञा, मानसिक रोग या किसी बाह्य दण्ड विपत्ति का सामना करना पड़े तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। नियतिचक्र, नैतिक मर्यादाओं के विरुद्ध आचरण करने पर मनुष्य का मनोबल क्षीण हो जाता है। कई तरह के कुविचार, कुकल्पनायें उसके मन में घुस जाती हैं जिनसे बाह्य जीवन भी प्रभावित होता है और उसके फलस्वरूप कई दुष्परिणाम मिलते हैं। मानसिक द्वन्द्वों में मनुष्य घुल-घुलकर विनाश को प्राप्त होने लगता है। अनैतिक आचरण से मनुष्य का विवेक, नैतिक बुद्धि प्रबल नहीं होता और उसे उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं रहता। फलस्वरूप गलत निर्णय होते हैं और इससे मनुष्य भयंकर दुःखद परिस्थितियों में पड़ जाता है।

इसका यह भी अर्थ नहीं कि विश्वनियामक विधान की मर्यादा तोड़ने वाले मनुष्यों से कोई दुश्मनी हो। यह सुधारात्मक सन्तुलन पैदा करने वाला तत्त्व है। जिस तरह किसी रोग के बाह्य लक्षण उस रोग को प्रकृति द्वारा शरीर से बाहर निकालने का प्रयत्न है उसी तरह नियतिक्रम के विरुद्ध आचरण करने से मिलने वाला शरीरिक या मानसिक दण्ड अनैतिक कार्य करने वाले को उस ओर से विरत करने के लिये ही एक प्रयत्न है। अभिमानी, दुराचारी अपनी असहाय दीन अवस्था में अपने अनैतिक कार्यों के लिये बहुत पश्चाताप करते हैं। नियति की ठोकर खाकर ही मनुष्य को कुछ होश आता है और वह अपने दुष्कर्मों के बारे में समझने लगता है। भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प भी करता है। खासकर परेशानी की स्थिति में तो वह दुष्कर्म नहीं ही करता। ऐसी स्थिति में कई सुधार भी किये जाते हैं, अनैतिक कार्य छोड़ देते हैं। विश्वनियामक सत्ता का अनुभव करने लगते हैं और उन्हें यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि कोई सत्ता हमसे भी प्रबल है, जो हमारे कर्मों का लेखा-जोखा लेती है। इतिहास साक्षी है कि जब स्थिति की ठोकर लगी, विश्व विधान के अनुसार प्रतिक्रिया पैदा हुई तो बड़े-बड़े महारथी, दिग्गज बलवानों को यह सोचने के लिये मजबूर होना पड़ा कि कोई हमसे भी शक्तिशाली सत्ता है जो हमारा लेखा-जोखा लेती है उनका गर्व काफूर हो गया।

विश्वव्यापी नैतिक विधान एक अनिवार्य और अकाट्य नियम है जो संसार के समस्त कार्य-कलापों का नियमन-संचालन करता है। वह सर्वत्र व्याप्त एक नियम-व्यवस्था है। जड़-पदार्थ और अविकसित प्राणियों का तो यह प्रकृति के माध्यम से सीमा नियमन करता है पशु-पक्षी प्रकृति की प्रेरणाओं से ही जीवन व्यापार चलाते रहते हैं। मनुष्य का एक विकसित बुद्धि प्रधान प्राणी होने के नाते यह केवल नियमन करता है, संचालन नहीं, मनुष्य अच्छा-बुरा सब कुछ करने को स्वतन्त्र है किन्तु इन सबका परिणाम नियतिचक्र के अनुसार ही मिलता है। ठीक इसी तरह समाज में अच्छे कार्यों के लिये मनुष्य पुरस्कृत और प्रशंसित होता है तो बुरे कार्यों के लिये दण्डित और उपेक्षित।

मनुष्य अपनी चालाकी, चतुराई, कूटनीति के द्वारा भौतिक जगत के सामाजिक, राजनैतिक दण्ड से बच सकता है, किन्तु नियतिचक्र की निगाह से, विश्व-विधायक के दण्ड से वह नहीं बच सकता। यह दण्ड उसे भोगना ही पड़ता है। अनैतिक कार्यों के लिये अन्तर्द्वन्द्व, आत्म-भर्त्सना होने लगती है समय पर उसका दुष्परिणाम तो मिलता ही है। असंयमी, दुराचारी, शरीर के साथ ज्यादती करने वाले इन कामों के लिये स्वतन्त्र हैं। किन्तु नियत के दण्ड स्वरूप अस्वस्थ्य, रोग, दुर्बलता का दंड उन्हें भोगना ही पड़ता है। संसार की कोई शक्ति उन्हें इससे नहीं बचा सकती। अत्याचार, अनाचार, स्वेच्छाचार के परिणाम विनाश, असफलता, हानि के रूप में ही मिलते हैं तो सदाचार, पुण्य-परमार्थ जैसे अच्छे कार्यों के परिणाम आत्मसंतोष, प्रसन्नता, शान्ति आदि वरदान के रूप में मिलते हैं। बुरे कार्यों के परिणाम बुरे, अच्छे के परिणाम अच्छे रूप में ही मिलते हैं यह एक निश्चित तथ्य है। दुनिया की खुली पुस्तक में यह सहज ही पढ़ा जा सकता है।

संसार का सबसे विकसित और उत्कृष्ट प्राणी होने के नाते मनुष्य को कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह कुछ भी कर सकता है। किन्तु नैतिक तथ्य, नियतिचक्र और विश्व नियम के विरुद्ध आचरण करने की छूट नहीं है। इस पर तो उसे दंड मिलना अवश्यम्भावी ही है। वह इससे बच नहीं सकता। यह अटल सत्य है।

कर्त्तव्य-धर्म की मर्यादा मत तोड़िये

परमात्मा ने मनुष्य को अन्य प्राणियों की अपेक्षा बुद्धि की विशेष शक्ति दी है। इस संसार में जितनी भी महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं उनमें बुद्धि, शक्ति ही सर्वोपरि है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव-जाति की अब तक की इतनी उन्नति के पीछे उसकी बौद्धिक विशेषता का चमत्कार ही सन्निहित है।

इतनी बड़ी शक्ति देकर मनुष्य को परमात्मा ने कुछ उत्तरदायित्वों में भी बाँधा है ताकि दी हुई शक्ति का दुरुपयोग न हो। इन उत्तरदायित्वों का नाम है—कर्त्तव्य-धर्म।

रेलगाड़ी के इंजिन में विशेष शक्ति होती है, यह अपने मार्ग से भटक पड़े तो अनर्थ उत्पन्न कर सकता है। इसलिये जमीन पर दो पटरी बिछा दी गई हैं और इंजिन को उसी पर चलते रहने की व्यवस्था बनाई गई है। बिजली में बहुत शक्ति रहती है वह शक्ति इधर-उधर न बिखर पड़े इसलिये उसका नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह प्रबन्ध किया गया है कि बिजली तार में ही होकर प्रवाहित हो और वह तार भी ऊपर से ढका रहे। नहर में पानी की तेज धारा बहती है। उस पानी को नियन्त्रण में न रखा जाय तो उससे गाँव डूब सकते हैं। इस खतरे की सुरक्षा के लिये नहर की दोनों पटरियाँ काफी चौड़ी मजबूत बनाई जाती हैं। हर शक्तिशाली तत्त्व पर नियन्त्रण आवश्यक होता है। अनियन्त्रित रहने देने पर तो शक्तिशाली वस्तुएँ अनर्थ ही पैदा कर सकती हैं। मनुष्य को यदि परमात्मा ने अनियन्त्रित रखा होता, उस पर धर्म कर्त्तव्यों का उत्तरदायित्व न रखा होता तो निश्चय ही मानव-प्राणी इस सृष्टि का सबसे भयंकर, सबसे अनर्थकारी प्राणी सिद्ध हुआ होता।

अशक्त या स्वल्प शक्ति वाले पदार्थ या जीव अनियन्त्रित रह सकते हैं क्योंकि उनके द्वारा बहुत थोड़ी हानि की सम्भावना रहती है। फिर जिनको वे हानि कर सकते हैं उन्हें अपनी सुरक्षा के लिये आवश्यक शक्ति मिली होती है। इसलिए उस स्वच्छन्दता में नियन्त्रण और सन्तुलन का नियम काम करता रहता है। कीड़े-मकोड़े, मक्खी-मच्छर, कुत्ता-बिल्ली प्रभृति छोटे जीवों पर कोई बन्धन नहीं रहते, पर बैल, घोड़ा, ऊँट, हाथी आदि बड़े जानवरों को रस्सी (नाथ), लगाम, नकेल, अंकुश आदि के आधार पर नियन्त्रण में रखा जाता है, यदि यह प्रतिबन्ध न हो तो वह शक्तिशाली जानवर लाभकर सिद्ध होने की अपेक्षा हानि ही उत्पन्न करेंगे।

अनियन्त्रित मनुष्य कितना घातक हो सकता है इसकी कल्पना मात्र से सिहरन होती है। जिन असुरों, दानवों, दस्युओं, दुरात्माओं के कुकृत्यों से मानव जाति कलंकित होती है वे शक्ल-सूरत से तो मनुष्य ही थे पर उन्होंने स्वेच्छाचार अपनाया मर्यादाओं को तोड़ा, न धर्म का विचार किया, न कर्तव्य का। शक्तियों के मद में जो कुछ उन्हें सूझा, जिसमें लाभ दीखा वही करते रहे फलस्वरूप उनका जीवन सब प्रकार घृणित और निकृष्ट बना। उनके द्वारा असंख्यों का उत्पीड़न हुआ और समाज की शांति व्यवस्था में भारी व्यवधान उत्पन्न होता रहा। असुरता का अर्थ ही उच्छृंखलता है।

मर्यादाओं का उल्लंघन करने की घटनायें, दुर्घटनायें कहलाती हैं और उनके फलस्वरूप सर्वत्र विक्षोभ ही उत्पन्न होता है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी सभी अपनी नियत कक्षा और धुरी पर घूमते हैं, एक-दूसरे के साथ आकर्षण शक्ति से बँधे रहते हैं और एक नियत व्यवस्था के अनुरूप अपना कार्यक्रम जारी रखते हैं। यदि वे नियत नियन्त्रण को तोड़कर स्वेच्छाचार बरतने की चेष्टा करें तो उसका परिणाम प्रलय ही हो सकता है। यह ग्रह मार्ग में भटक जायेंगे और एक-दूसरे से टकराकर विनाश की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देंगे। मनुष्य भी जब अपने कर्तव्य मार्ग से भटकता है तो अपना ही नहीं दूसरे अनेकों का भी नाश कर सकता है।

परमात्मा ने हर मनुष्य की अन्तरात्मा में एक मार्ग दर्शक चेतना की प्रतिष्ठा की है, जो उसे उचित कर्म करने की प्रेरणा एवं अनुचित करने पर भर्त्सना करती है। कर्त्तव्य पालन के कार्य धर्म या पुण्य कहलाते हैं, उनके करते ही तत्क्षण करने वाले को प्रसन्नता एवं शांति का अनुभव होता है। इसके विपरीत यदि स्वेच्छाचार बरता गया है, धर्म मर्यादाओं को तोड़ा गया है, स्वार्थ के लिए अनीति का आचरण किया है तो अन्तरात्मा में लज्जा, संकोच, पश्चाताप, भय और ग्लानि का भाव उत्पन्न होगा। भीतर ही भीतर अशान्ति रहेगी और ऐसा लगेगा मानो अपना अन्तरात्मा ही अपने को धिक्कार रहा है। इस आत्म-प्रतारणा की पीड़ा को भुलाने के लिये अपराधी प्रवृत्ति के लोग नशेबाजी का सहारा लेते हैं। फिर भी चैन कहाँ, पाप वृत्तियाँ जलती हुई अग्नि की तरह हैं। जो पहले ही जलन पैदा किया करती हैं जहाँ उसे स्थान मिलता है।

शरीर में क्षय, उपदंश, दमा, गठिया, कुष्ठ, लकवा आदि रोग हो जाने पर स्वास्थ्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है अशांति और बेचैनी बनी रहती है। रुग्ण शरीर को लेकर मनुष्य कुछ नहीं कर पाता घर वाले परेशान होते हैं, आर्थिक स्थिति बिगड़ती है और यदि रोग की स्थिति सुधरे नहीं तो जीवन भार रूप हो जाता है। शरीर की तरह मन में भी कोई रोग उत्पन्न होते हैं और वे सारे मानसिक संस्थान की स्वस्थता को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। आत्म-प्रतारणा सबसे बड़ी मानसिक व्याधि है। जिसका मन अपने दुष्कर्मों के लिये अपने आपको धिक्कारता रहेगा वह कभी भी आन्तरिक दृष्टि से सशक्त न रह सकेगा। उसे अनेक मानसिक दोष-दुर्गुण घेरेंगे और धीरे-धीरे अनेक मनोविकारों से ग्रस्त होता जायगा।

अनिद्रा, दुःस्वप्न, चिड़-चिड़ापन, आवेश, उत्तेजना, क्रोध, चिन्ता, भय, ईर्ष्या, आशंका, संशय, अविश्वास, आलस्य, निराशा आदि कितने ही मानसिक रोग आत्म-प्रतारणा की व्यथा से पीड़ित मनुष्य को लग जाते हैं। पाप कर्मों के लिये अपना अन्तरात्मा धिक्कारता और प्रताड़ित करता रहता है, वह मनुष्य सोते, जागते कभी चैन नहीं पा सकता। मृग-तृष्णा और दर्द के रोगी की भाँति पापी को भी न रात में न दिन में कभी चैन नहीं मिलता है। भीतर ही भीतर अपने आप ही अपनी शांति को कुतरता रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मर्यादाओं का उल्लंघन करके लोग तात्कालिक थोड़ा लाभ उठाते देखे जाते हैं। दूरगामी परिणामों को न सोचकर लोग तुरन्त लाभ को देखते हैं। बेईमानी से धन कमाने, दम्भ से अहंकार बढ़ाने और अनुपयुक्त भोगों के भोगने से जो क्षणिक सुख मिलता है वह परिणाम में भारी विपत्ति बनकर सामने आता है। मानसिक स्वास्थ्य को नष्ट कर डालने और आध्यात्मिक महत्ता एवं विशेषताओं को समाप्त करने में सबसे बड़ा कारण आत्म-प्रतारणा है। ओले पड़ने से जिस प्रकार खेती की फसल नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आत्म-प्रतारणा की चोटें पड़ने से मन और अन्तःकरण के सभी श्रेष्ठ तत्व नष्ट हो जाते हैं और ऐसा मनुष्य प्रेत-पिशाचों जैसी श्मशान मनोभूमि लेकर निरन्तर विक्षुब्ध विचरता रहता है।

धर्म कर्त्तव्यों की मर्यादा को तोड़ने वाले उच्छृंखल, कुमार्गगामी मनुष्य की गतिविधियों को रोकने के लिये उन्हें दण्ड देने के लिए समाज और शासन की ओर से जो प्रतिरोधात्मक व्यवस्था हुई है, उससे सर्वथा बचे रहना सम्भव नहीं। धूर्तता के बल पर आज कितने ही अपराधी प्रवृत्ति के लोग सामाजिक भर्त्सना से और कानूनी दण्ड से बच निकलने में सफल होते रहते हैं, पर यही चाल सदा सफल होती रहेगी ऐसी बात नहीं है। असत्य का आवरण अन्ततः फटता ही है और अनीति अपनाने वाले के सामने न सही पीछे उनकी निन्दा होती है। जनमानस में व्याप्त घृणा का सूक्ष्म प्रभाव उस मनुष्य पर अदृश्य रूप से पड़ता है। जिससे अहित परिणाम ही सामने आते हैं। राजदण्ड से बचे रहने के लिये ऐसे लोग रिश्वत में बहुत खर्च करते हैं, निरन्तर डरे और दबे रहते हैं, उनका कोई सच्चा मित्र नहीं रहता। जो लोग उनसे लाभ उठाते हैं वे भीतर ही भीतर घृणा करते हैं और समय आने पर शत्रु बन जाते हैं। जिसका आत्म धिक्कारेगा उसके लिये देर-सबेरे में सभी कोई धिक्कारने वाले बन जायेंगे। ऐसी धिक्कार एकत्रित करके यदि मनुष्य जीवित रहा तो उसका जीवन न जीने के बराबर है।

नियन्त्रण में रहना आवश्यक है। मनुष्य के लिये यही उचित है कि वह ईश्वरीय मर्यादाओं का पालन करे। अपने उत्तरदायित्वों को समझे और कर्त्तव्यों को निभाये। नीति, सदाचार और धर्म का पालन करते हुए सीमित लाभ में सन्तोष करना पड़ सकता है, गरीबी और सादगी का जीवन बिताना पड़ सकता है, पर उसमें चैन अधिक है। अनीति अपनाकर अधिक धन एकत्रित कर लेना सम्भव है, पर ऐसा धन अपने साथ इतने उपद्रव लेकर आता है कि उनसे निपटना भारी त्रासदायक सिद्ध होता है। दम्भ और अहंकार का प्रदर्शन करके लोगों के ऊपर जो रौब जमाया जाता है, उससे आतंक और कौतूहल हो पर श्रद्धा और प्रतिष्ठा का दर्शन भी दुर्लभ रहेगा। विलासिता, वासना का अनुपयुक्त भोग भोगने वाला अपना शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सन्तुलन नष्ट करके खोखला ही बनता जाता है। परलोक और पुनर्जन्म को अन्धकारमय बनाकर आत्मा को सन्तुष्ट और परमात्मा को अप्रसन्न रखकर क्षणिक सुखों के लिए अनीति का मार्ग अपनाना किसी भी दृष्टि से दूरदर्शिता नहीं कहा जा सकता।

बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम धर्म का, कर्तव्य पालन का महत्व समझें, सदाचार की मर्यादाओं का उल्लंघन न करें। स्वयं शांतिपूर्वक जियें और दूसरों को सुखपूर्वक जीने दें। यह सब नियन्त्रण की नीति को अपनाने से ही सम्भव हो सकता है। कर्तव्य और धर्म का अंकुश परमात्मा ने हमारे ऊपर इसलिये रखा है कि सन्मार्ग से भटकें नहीं। इन नियन्त्रणों को तोड़ने की चेष्टा करना अपने और दूसरों के लिये महती विपत्तियों को आमन्त्रित करने की मूर्खता करना ही गिना जायगा।

अनुशासन में रहा कीजिये

जीवन की समस्त गतिविधियों को नियन्त्रित और व्यवस्थित रखना, उन्हें मानवीय आदर्शों की परिधि में केन्द्रित रखना अनुशासन कहलाता है। अनुशासन जीवन जीने का एक निश्चित और नियमित तरीका है, जिसमें मनुष्यों का रहन-सहन, खान-पान, चाल-ढाल, बात-चीत करना, काम करना सभी व्यवस्थित और सुन्दरतापूर्ण होते हैं। अनुशासन जीवन जीने की एक कलापूर्ण पद्धति है जिससे जीवन के नक्शे में प्रत्येक पहलू, रंग-रूप यथास्थान चित्रित किये जाते हैं और मानवीय गुण, आदर्शों का सुन्दर रंग भरा जाता है, जिससे अलौकिकता छिटकने लगती है।

सभी प्रकार की उन्नति, सफलता, विकास, प्रगति के लिये अनुशासित जीवन बिताने की आवश्यकता है। अनुशासनहीनता से असफलता के सिवा कुछ भी नहीं मिलता। अनुशासन मानव समाज की एक आवश्यक इकाई के रूप में हर समय, हर परिस्थिति में, प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है। अनुशासन का मनुष्य के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अनुशासनहीनता से मनुष्य के आन्तरिक और उसके फलस्वरूप बाह्य जीवन में अव्यवस्था फैल जाती है और इस अव्यवस्था से मनुष्य की शक्तियाँ परस्पर लड़ बैठती हैं, आपस में टकराने लगाती हैं। सड़क पर चलने वाले ताँगे, मोटर, साइकिलें, रिक्शे, स्कूटर, गाड़ी आदि सभी व्यवस्थित और बिना कानून-कायदे के चलने लगें तो परस्पर टकराव और दुर्घटनायें ही होंगी। इसी तरह जीवन के असंख्यों सूक्ष्म पहलुओं में अव्यवस्था होने पर वे आपस में टकरायेंगे और इससे मनुष्य के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पराजय का ही सामना करना पड़ेगा, जिससे अशांति, बेचैनी ही बढ़ेगी। शान्ति, प्रसन्नता, सन्तोष उसी स्थिति में मिलते हैं जब मनुष्य अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करता रहे। उसकी विकास यात्रा जारी रहे। जीवन के सभी पहलुओं का स्वस्थ विकास होता रहे। किन्तु यह सब अनुशासनबद्ध जीवन में ही सम्भव है। अनुशासन से कार्यक्रम में व्यवस्था और गति पैदा होती रहती है जिससे प्रगति होती है। मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ परस्पर न टकराकर संगठित होकर पुरोगामी बनती हैं, जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य आगे बढ़ कर सफलता का वरण करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः आसुरी और देवी सत्ता के बीच का सेतु ही तो है। उसमें पशुता के गुण भी बीज रूप में उतने ही विद्यमान हैं जितने कि उत्कृष्टता के। अनुकूल परिस्थितियाँ और निरवरोध वातावरण पाकर ही एक प्रकृति दूसरी प्रकृति को दबाकर आगे बढ़ जाती है। कहना नहीं होगा कि पशुस्तर पर विकसित हुई मानवीय चेतना व्यक्तिगत जीवन में अस्त-व्यस्तता, पारिवारिक जीवन में क्लेश-कलह और सामाजिक जीवन में अवांछनीयता को हो बढ़ावा देगी।

उदाहरण के लिए शराब पीने के बाद की स्थिति को ही लें। शराबी व्यक्ति नशे में धुत होकर अपनी इन्द्रियों पर काबू खो बैठता है, ऊटपटांग बकता-झकता है न उसके पैर सही दिशा में चल पाते हैं और न उसका मस्तिष्क सही ढंग से सोच पाता है। उसके वैयक्तिक जीवन में आयी वह अस्त-व्यस्तता उसे हास्यास्पद बना देती है। परिवार में कलह से लेकर बाहरी लोगों के लड़ने-झगड़ने तक का उसका उतारूपन पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में क्लेश-कलह और अवांछनीयता फैलाता है। कहने का अर्थ यह कि इस प्रकार मानवीयता की मर्यादाओं को तोड़ने से रोकने के लिए बनाई गयी विधि व्यवस्था अनुशासन है। शराब का नशा ही नहीं अन्य कई कारणों से भी व्यक्ति इन मर्यादाओं को तोड़ने पर उतारू हो जाता है।

उनमें से एक बड़ा कारण है स्वार्थ। एक व्यक्ति यदि अपने स्वार्थ के कारण दूसरे लोगों को भ्रमित करता है या सामाजिक नियमों, मर्यादाओं को भंग करता है तो असामाजिकता की ओर अग्रसर हुई उसकी गतिविधियाँ असंदिग्ध रूप से खतरनाक हो जायेंगी। बेईमानी, कम नाप तौल, भ्रष्टाचार, चोरी आदि आर्थिक अपराध हैं। ये भी अनुशासनहीनता में आते हैं बल्कि उससे गम्भीरतम हैं इसलिए अपराध हैं। पर जब सामाजिक नियमों और मर्यादाओं को—नैतिक नियमों को कोई व्यक्ति तोड़ता है, तथा प्रत्यक्षतः उसका तत्कालिक प्रभाव नहीं दिखाई देता है लेकिन उसका दुष्परिणाम तो होता ही है—वह मर्यादा-भंग अनुशासनहीन बन जाता है।

कहा जा चुका है कि सृष्टि का चक्र एक नियम, एक मर्यादा और एक व्यवस्था के अनुसार चलता है। जिसके कारण ही विभिन्न शक्तियों, पदार्थों और क्रियाओं में सन्तुलन बना रहता है। जड़ हो या चेतन उसकी प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया के पीछे उन तथ्यों की ही प्रेरणा रहती है। इसी स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक एभिगंटन ने लिखा है—"जिस तरह मनुष्य के कार्यकलापों के पीछे मन की शक्ति कार्य करती है, ठीक इसी तरह सृष्टि के मूल में भी एक चेतना संज्ञा कार्य करती है जो पूर्ण व्यवस्थित और नियामक है। पहले स्थूल दृष्टि से देखने पर जड़ जगत का कार्य भी एक मशीन की तरह दिखाई देता है किन्तु गम्भीर विचार, चिन्तन द्वारा देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि जगत और इसके प्रत्येक कार्यकलाप के पीछे एक चेतन सत्ता काम कर रही है जो नियामक है।"

प्रश्न उठता है कि जब नियामक सत्ता स्वयं सारी व्यवस्था प्रक्रिया को सुचारू रूप से चला रही है तो मनुष्य के लिए अनुशासन के नियमों मर्यादाओं के बन्धन-प्रतिबन्धों के निर्धारण की क्या आवश्यकता है ? स्मरणीय है जड़ तत्त्वों और मनुष्येतर प्राणियों में विचारशक्ति नहीं होती अतः वे अपने नियम निर्धारित स्वभाव के अनुसार ही बर्तते हैं। जबकि मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और उसे तदनुसार विचार शक्ति भी मिली हुई है। वह अपने क्रिया-कलापों और गतिविधियों का स्वयं निर्धारण तथा संचालन कर सकता है अतः आवश्यक हो जाता है कि उसके लिए नीति-नियमों और सामाजिक मर्यादाओं की व्यवस्था की जाय। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए मनीषी, विचारकों और समाज नियन्ताओं ने कुछ मर्यादायें निर्धारित की हैं—जिन्हें अनुशासन कहते हैं।

उन मर्यादाओं की प्रेरणा-स्फुरणा मनुष्य को अन्तर्जगत से भी उठती हुई अनुभव होती है। शान्त मन और गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो पता चलेगा कि न केवल बाह्य-भौतिक जगत में ही कोई नियंत्रण व्यवस्था काम नहीं कर रही है वरन् उसकी अन्तश्चेतना में भी वही चेतना काम करती है। उसे गलत काम करने पर टोकती-रोकती है। उसे बताती है कि यह काम समाज के साथ द्रोह तो है ही अपने लिए भी कम घातक नहीं है।

मनुष्य वैसे भी नियामक सत्ता की मर्यादाओं के उल्लंघनों का दुष्परिणाम अनुभव करता है। वह देखता है आग को अगर छू लिया जाय तो वह जला देती है। पानी में अगर छलाँग लगा दी जाय तो सारा शरीर भीग जाता है। बिजली के खुले तारों को छू लिया जाय तो विद्युत प्राण हर लेती है। बर्फ गला देती है और यहाँ तक कि वाहन टकरा जाये तो भयंकर हानि उठानी पड़ती है। यह सब होता है मर्यादाओं का उल्लंघन करने के कारण मर्यादायें तोड़ने का—अनुशासन भंग करने का दुष्परिणाम हर किसी को भोगना पड़ता है।

रामायण में स्वर्णमृग के शिकार के प्रसंग में हम अच्छी तरह देखते हैं कि भगवती सीता भी मर्यादा उल्लंघन के दुष्परिणाम से नहीं बच सकी थी। भ्रम के शिकार होकर लक्ष्मण जब राम की सहायता के लिए जाने लगे तो उन्होंने पर्णकुटी के द्वार पर एक रेखा खींच दी और सीता से कहा—आप इस रेखा के अन्दर रहेंगी तो आपको कोई खतरा नहीं होगा और रेखा से बाहर निकलने पर सुरक्षा पर आँच आ सकती है।

हुआ भी यही। छद्म वेशधारी रावण को भिक्षा देने के लिए सीता ने लक्ष्मण रेखा से बाहर कदम रखा तभी उनका हरण सम्भव हो सका। इस प्रसंग द्वारा अलंकारिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः आसुरी और देवी सत्ता के बीच का सेतु ही तो है। उसमें पशुता के गुण भी बीज रूप में उतने ही विद्यमान हैं जितने कि उत्कृष्टता के। अनुकूल परिस्थितियाँ और निरवरोध वातावरण पाकर ही एक प्रकृति दूसरी प्रकृति को दबाकर आगे बढ़ जाती है। कहना नहीं होगा कि पशुस्तर पर विकसित हुई मानवीय चेतना व्यक्तिगत जीवन में अस्त-व्यस्तता, पारिवारिक जीवन में क्लेश-कलह और सामाजिक जीवन में अवांछनीयता को हो बढ़ावा देगी।

उदाहरण के लिए शराब पीने के बाद की स्थिति को ही लें। शराबी व्यक्ति नशे में धुत होकर अपनी इन्द्रियों पर काबू खो बैठता है, ऊटपटांग बकता-झकता है न उसके पैर सही दिशा में चल पाते हैं और न उसका मस्तिष्क सही ढंग से सोच पाता है। उसके वैयक्तिक जीवन में आयी वह अस्त-व्यस्तता उसे हास्यास्पद बना देती है। परिवार में कलह से लेकर बाहरी लोगों के लड़ने-झगड़ने तक का उसका उतारूपन पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में क्लेश-कलह और अवांछनीयता फैलाता है। कहने का अर्थ यह कि इस प्रकार मानवीयता की मर्यादाओं को तोड़ने से रोकने के लिए बनाई गयी विधि व्यवस्था अनुशासन है। शराब का नशा ही नहीं अन्य कई कारणों से भी व्यक्ति इन मर्यादाओं को तोड़ने पर उतारू हो जाता है।

उनमें से एक बड़ा कारण है स्वार्थ। एक व्यक्ति यदि अपने स्वार्थ के कारण दूसरे लोगों को भ्रमित करता है या सामाजिक नियमों, मर्यादाओं को भंग करता है तो असामाजिकता की ओर अग्रसर हुई उसकी गतिविधियाँ असंदिग्ध रूप से खतरनाक हो जायेंगी। बेईमानी, कम नाप तौल, भ्रष्टाचार, चोरी आदि आर्थिक अपराध हैं। ये भी अनुशासनहीनता में आते हैं बल्कि उससे गम्भीरतम हैं इसलिए अपराध हैं। पर जब सामाजिक नियमों और मर्यादाओं को—नैतिक नियमों को कोई व्यक्ति तोड़ता है, तथा प्रत्यक्षतः उसका तत्कालिक प्रभाव नहीं दिखाई देता है लेकिन उसका दुष्परिणाम तो होता ही है—वह मर्यादा-भंग अनुशासनहीन बन जाता है।

कहा जा चुका है कि सृष्टि का चक्र एक नियम, एक मर्यादा और एक व्यवस्था के अनुसार चलता है। जिसके कारण ही विभिन्न शक्तियों, पदार्थों और क्रियाओं में सन्तुलन बना रहता है। जड़ हो या चेतन उसकी प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया के पीछे उन तथ्यों की ही प्रेरणा रहती है। इसी स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक एभिगंटन ने लिखा है—"जिस तरह मनुष्य के कार्यकलापों के पीछे मन की शक्ति कार्य करती है, ठीक इसी तरह सृष्टि के मूल में भी एक चेतना संज्ञा कार्य करती है जो पूर्ण व्यवस्थित और नियामक है। पहले स्थूल दृष्टि से देखने पर जड़ जगत का कार्य भी एक मशीन की तरह दिखाई देता है किन्तु गम्भीर विचार, चिन्तन द्वारा देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि जगत और इसके प्रत्येक कार्यकलाप के पीछे एक चेतन सत्ता काम कर रही है जो नियामक है।"

प्रश्न उठता है कि जब नियामक सत्ता स्वयं सारी व्यवस्था प्रक्रिया को सुचारू रूप से चला रही है तो मनुष्य के लिए अनुशासन के नियमों मर्यादाओं के बन्धन-प्रतिबन्धों के निर्धारण की क्या आवश्यकता है ? स्मरणीय है जड़ तत्त्वों और मनुष्येतर प्राणियों में विचारशक्ति नहीं होती अतः वे अपने नियम निर्धारित स्वभाव के अनुसार ही बर्तते हैं। जबकि मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और उसे तदनुसार विचार शक्ति भी मिली हुई है। वह अपने क्रिया-कलापों और गतिविधियों का स्वयं निर्धारण तथा संचालन कर सकता है अतः आवश्यक हो जाता है कि उसके लिए नीति-नियमों और सामाजिक मर्यादाओं की व्यवस्था की जाय। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए मनीषी, विचारकों और समाज नियन्ताओं ने कुछ मर्यादायें निर्धारित की हैं—जिन्हें अनुशासन कहते हैं।

उन मर्यादाओं की प्रेरणा-स्फुरणा मनुष्य को अन्तर्जगत से भी उठती हुई अनुभव होती है। शान्त मन और गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो पता चलेगा कि न केवल बाह्य-भौतिक जगत में ही कोई नियंत्रण व्यवस्था काम नहीं कर रही है वरन् उसकी अन्तश्चेतना में भी वही चेतना काम करती है। उसे गलत काम करने पर टोकती-रोकती है। उसे बताती है कि यह काम समाज के साथ द्रोह तो है ही अपने लिए भी कम घातक नहीं है।

मनुष्य वैसे भी नियामक सत्ता की मर्यादाओं के उल्लंघनों का दुष्परिणाम अनुभव करता है। वह देखता है आग को अगर छू लिया जाय तो वह जला देती है। पानी में अगर छलाँग लगा दी जाय तो सारा शरीर भीग जाता है। बिजली के खुले तारों को छू लिया जाय तो विद्युत प्राण हर लेती है। बर्फ गला देती है और यहाँ तक कि वाहन टकरा जाये तो भयंकर हानि उठानी पड़ती है। यह सब होता है मर्यादाओं का उल्लंघन करने के कारण मर्यादायें तोड़ने का—अनुशासन भंग करने का दुष्परिणाम हर किसी को भोगना पड़ता है।

रामायण में स्वर्णमृग के शिकार के प्रसंग में हम अच्छी तरह देखते हैं कि भगवती सीता भी मर्यादा उल्लंघन के दुष्परिणाम से नहीं बच सकी थी। भ्रम के शिकार होकर लक्ष्मण जब राम की सहायता के लिए जाने लगे तो उन्होंने पर्णकुटी के द्वार पर एक रेखा खींच दी और सीता से कहा—आप इस रेखा के अन्दर रहेंगी तो आपको कोई खतरा नहीं होगा और रेखा से बाहर निकलने पर सुरक्षा पर आँच आ सकती है।

हुआ भी यही। छद्म वेशधारी रावण को भिक्षा देने के लिए सीता ने लक्ष्मण रेखा से बाहर कदम रखा तभी उनका हरण सम्भव हो सका। इस प्रसंग द्वारा अलंकारिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः आसुरी और देवी सत्ता के बीच का सेतु ही तो है। उसमें पशुता के गुण भी बीज रूप में उतने ही विद्यमान हैं जितने कि उत्कृष्टता के। अनुकूल परिस्थितियाँ और निरवरोध वातावरण पाकर ही एक प्रकृति दूसरी प्रकृति को दबाकर आगे बढ़ जाती है। कहना नहीं होगा कि पशुस्तर पर विकसित हुई मानवीय चेतना व्यक्तिगत जीवन में अस्त-व्यस्तता, पारिवारिक जीवन में क्लेश-कलह और सामाजिक जीवन में अवांछनीयता को हो बढ़ावा देगी।

उदाहरण के लिए शराब पीने के बाद की स्थिति को ही लें। शराबी व्यक्ति नशे में धुत होकर अपनी इन्द्रियों पर काबू खो बैठता है, ऊटपटांग बकता-झकता है न उसके पैर सही दिशा में चल पाते हैं और न उसका मस्तिष्क सही ढंग से सोच पाता है। उसके वैयक्तिक जीवन में आयी वह अस्त-व्यस्तता उसे हास्यास्पद बना देती है। परिवार में कलह से लेकर बाहरी लोगों के लड़ने-झगड़ने तक का उसका उतारूपन पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में क्लेश-कलह और अवांछनीयता फैलाता है। कहने का अर्थ यह कि इस प्रकार मानवीयता की मर्यादाओं को तोड़ने से रोकने के लिए बनाई गयी विधि व्यवस्था अनुशासन है। शराब का नशा ही नहीं अन्य कई कारणों से भी व्यक्ति इन मर्यादाओं को तोड़ने पर उतारू हो जाता है।

उनमें से एक बड़ा कारण है स्वार्थ। एक व्यक्ति यदि अपने स्वार्थ के कारण दूसरे लोगों को भ्रमित करता है या सामाजिक नियमों, मर्यादाओं को भंग करता है तो असामाजिकता की ओर अग्रसर हुई उसकी गतिविधियाँ असंदिग्ध रूप से खतरनाक हो जायेंगी। बेईमानी, कम नाप तौल, भ्रष्टाचार, चोरी आदि आर्थिक अपराध हैं। ये भी अनुशासनहीनता में आते हैं बल्कि उससे गम्भीरतम हैं इसलिए अपराध हैं। पर जब सामाजिक नियमों और मर्यादाओं को—नैतिक नियमों को कोई व्यक्ति तोड़ता है, तथा प्रत्यक्षतः उसका तत्कालिक प्रभाव नहीं दिखाई देता है लेकिन उसका दुष्परिणाम तो होता ही है—वह मर्यादा-भंग अनुशासनहीन बन जाता है।

कहा जा चुका है कि सृष्टि का चक्र एक नियम, एक मर्यादा और एक व्यवस्था के अनुसार चलता है। जिसके कारण ही विभिन्न शक्तियों, पदार्थों और क्रियाओं में सन्तुलन बना रहता है। जड़ हो या चेतन उसकी प्रत्येक क्रिया प्रतिक्रिया के पीछे उन तथ्यों की ही प्रेरणा रहती है। इसी स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक एभिगंटन ने लिखा है—"जिस तरह मनुष्य के कार्यकलापों के पीछे मन की शक्ति कार्य करती है, ठीक इसी तरह सृष्टि के मूल में भी एक चेतना संज्ञा कार्य करती है जो पूर्ण व्यवस्थित और नियामक है। पहले स्थूल दृष्टि से देखने पर जड़ जगत का कार्य भी एक मशीन की तरह दिखाई देता है किन्तु गम्भीर विचार, चिन्तन द्वारा देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि जगत और इसके प्रत्येक कार्यकलाप के पीछे एक चेतन सत्ता काम कर रही है जो नियामक है।"

प्रश्न उठता है कि जब नियामक सत्ता स्वयं सारी व्यवस्था प्रक्रिया को सुचारू रूप से चला रही है तो मनुष्य के लिए अनुशासन के नियमों मर्यादाओं के बन्धन-प्रतिबन्धों के निर्धारण की क्या आवश्यकता है ? स्मरणीय है जड़ तत्त्वों और मनुष्येतर प्राणियों में विचारशक्ति नहीं होती अतः वे अपने नियम निर्धारित स्वभाव के अनुसार ही बर्तते हैं। जबकि मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और उसे तदनुसार विचार शक्ति भी मिली हुई है। वह अपने क्रिया-कलापों और गतिविधियों का स्वयं निर्धारण तथा संचालन कर सकता है अतः आवश्यक हो जाता है कि उसके लिए नीति-नियमों और सामाजिक मर्यादाओं की व्यवस्था की जाय। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए मनीषी, विचारकों और समाज नियन्ताओं ने कुछ मर्यादायें निर्धारित की हैं—जिन्हें अनुशासन कहते हैं।

उन मर्यादाओं की प्रेरणा-स्फुरणा मनुष्य को अन्तर्जगत से भी उठती हुई अनुभव होती है। शान्त मन और गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो पता चलेगा कि न केवल बाह्य-भौतिक जगत में ही कोई नियंत्रण व्यवस्था काम नहीं कर रही है वरन् उसकी अन्तश्चेतना में भी वही चेतना काम करती है। उसे गलत काम करने पर टोकती-रोकती है। उसे बताती है कि यह काम समाज के साथ द्रोह तो है ही अपने लिए भी कम घातक नहीं है।

मनुष्य वैसे भी नियामक सत्ता की मर्यादाओं के उल्लंघनों का दुष्परिणाम अनुभव करता है। वह देखता है आग को अगर छू लिया जाय तो वह जला देती है। पानी में अगर छलाँग लगा दी जाय तो सारा शरीर भीग जाता है। बिजली के खुले तारों को छू लिया जाय तो विद्युत प्राण हर लेती है। बर्फ गला देती है और यहाँ तक कि वाहन टकरा जाये तो भयंकर हानि उठानी पड़ती है। यह सब होता है मर्यादाओं का उल्लंघन करने के कारण मर्यादायें तोड़ने का—अनुशासन भंग करने का दुष्परिणाम हर किसी को भोगना पड़ता है।

रामायण में स्वर्णमृग के शिकार के प्रसंग में हम अच्छी तरह देखते हैं कि भगवती सीता भी मर्यादा उल्लंघन के दुष्परिणाम से नहीं बच सकी थी। भ्रम के शिकार होकर लक्ष्मण जब राम की सहायता के लिए जाने लगे तो उन्होंने पर्णकुटी के द्वार पर एक रेखा खींच दी और सीता से कहा—आप इस रेखा के अन्दर रहेंगी तो आपको कोई खतरा नहीं होगा और रेखा से बाहर निकलने पर सुरक्षा पर आँच आ सकती है।

हुआ भी यही। छद्म वेशधारी रावण को भिक्षा देने के लिए सीता ने लक्ष्मण रेखा से बाहर कदम रखा तभी उनका हरण सम्भव हो सका। इस प्रसंग द्वारा अलंकारिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ढंग से मर्यादाओं का उल्लंघन न करने की शिक्षा दी गयी है और इसीलिए अन्तिम मर्यादा सीमा के लिए 'लक्ष्मण रेखा' का शब्द प्रचलित हुआ है। व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा से प्रेरित मर्यादाओं, चेतावनियों का पालन करे, उन्हें सुने तो जीवन सुख-शान्तिपूर्वक व्यतीत हो सकता है और स्वतः पालित उन मर्यादाओं का अनुशासन भी ऊँचे स्तर का आत्मानुशासन बन जाता है और वह आत्मानुशासन व्यक्ति के उच्चस्तरीय आत्मविकास के साथ-साथ समाज में भी उसे आदर्श व्यक्ति बनाता है।

कदाचित अन्तरात्मा की प्रेरणा किसी को न सुनाई देती हो क्योंकि स्वच्छ, स्पष्ट और स्फटिक हृदय में ही उसकी अनुभूति होती है। अन्तःक्षेत्र में जमे कषाय-कल्मष अन्तरात्मा की आवाज को उसी प्रकार हमारे कानों तक नहीं पहुँचने देते जिस प्रकार एक बन्द कोठरी में होने वाली आवाज बाहर के व्यक्ति को नहीं सुनाई देती है, सुनाई भी देती है तो अस्पष्ट। लेकिन मनुष्य अपने आस-पास की दुनिया से तो अनुशासन सीख सकता है। समाज का मार्गदर्शन करने वाले प्रकाश पुञ्ज, उसका नियंत्रण करने वाले मनीषी व्यक्ति को उन नियमों और मर्यादाओं से भली भाँति अवगत कराते रहे हैं।

कानून, नागरिक के नियम और कर्त्तव्य, नैतिकता का सिद्धान्त सर्वविदित है। स्वार्थ के कारण हो या किसी के बहकाये जाने पर उनका उल्लंघन किसी कीमत पर नहीं करना चाहिए इन नियमों और मर्यादाओं के अनुकूल रहने पर ही व्यक्ति तथा समाज की प्रगति और उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत चलने से, नियमों का उल्लंघन करने से, अनुशासन भंग करने से अवनति और पतन ही होता है।

चेतना एक शक्ति है और मनुष्य उससे सम्पन्न होने के कारण उस शक्ति का स्वामी है। शक्ति का सदुपयोग जहाँ सुखदायक और आनन्दवर्द्धक होता है वहीं दुरुपयोग कष्टकारक और पीड़ादायी बन जाता है। उदाहरण के लिए विद्युत को ही लें। विद्युत का सदुपयोग यदि किया जाय तो उससे बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण काम लिये जा सकते हैं और लिये जाते भी हैं। मशीनें, पंखे, इंजिन, रेडियो आदि उपकरण मनुष्य के श्रम को घटाती हैं और जीवन की रिक्तता को समाप्त करती हैं। सुन्दर, सुरुचिपूर्ण प्रकाश मिलता है। विद्युत शक्ति ने सचमुच संसार का नक्शा ही बदल दिया है। यदि इसी शक्ति को ढंग से उपयोग न किया जाय तो यही विद्युत प्राणघातक बन जाती है। आग की सहायता से मनुष्य ने अपनी कितनी कठिनाइयों का हल कर लिया है, इसीलिए उसे जीवन दाता भी कहा गया है किन्तु गलत ढंग से, नियम विरुद्ध उसका उपयोग भी भीषण परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है। मानवीय चेतना को नियम से, मर्यादित ढंग से उपयोग—जिसे अनुशासन कहते हैं समाज में सुव्यवस्था और जीवन में सुख-शान्ति का अवतरण लाती है पर यदि दुर्बुद्धिग्रस्त होकर उसका उपयोग किया जाय तो सुख-शान्ति और सुव्यवस्था स्वप्न मात्र बनकर रह जाती है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि अनुशासन-नागरिक मर्यादाओं का पालन करें और दूसरों के सामने भी अपने आचरण से अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें।

नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन न करें

मनुष्य की नैतिक सीमायें ही उसकी सफलता की सीमा है। यह इतना स्पष्ट सत्य है कि किसी व्यक्ति के नैतिक स्तर की जानकारी करके उसकी सफलता या असफलता का सही-सही परिणाम उसी तरह बताया जा सकता है जैसे गणित के सिद्धान्तों के आधार पर किसी सवाल का उत्तर।

जिस तरह आकाश में फेंकी गई वस्तु का जमीन पर लौट आना सत्य है उसी तरह अच्छा या बुरा काम भी लौटकर कर्ता पर ही आता है। प्रत्येक अनैतिक कार्य का परिणाम पराजय, असफलता, लक्ष्य से दूर हट जाना ही होता है इसके विपरीत प्रत्येक नैतिक कार्य समृद्धि, सफलता और लक्ष्य प्राप्ति के सुन्दर भवन का निर्माण करता है। किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का उत्थान उनकी नैतिक शक्ति और ज्ञान के विकास से ही होता है। इसके विपरीत नैतिक पतन ही पराभव का तथा पतन का मुख्य कारण है। नैतिकता ही विकास का दूसरा नाम है। नैतिकता सर्वत्र निर्मात्री-धात्री का काम करती है।

कोई भी बुरा काम करने पर मनुष्य का हृदय धक-धक करने लगता है। रक्त-संचार बढ़ जाता है। उसके पाँव लड़खड़ाने लगते हैं। शरीर में पसीना आने लगता है ऐसा लगता है मानो कोई रोक रहा है। कोई भी बुरा काम करने पर आत्म-भर्त्सना होने लगती है। मनुष्य का मन आत्म-ग्लानि, पश्चात्ताप में डूब जाता है। यह सब नैतिक भाव के कारण ही होता है, जो उनके अन्तःक्षेत्र में स्थित है। यह नैतिकता का भाव मनुष्य के बाह्य मन की वस्तु नहीं। नैतिकता की आवाज को तर्क, बुद्धि, चातुर्य शान्त नहीं कर पाते। नैतिकता भी चेतना का ही अंग है, जो किसी कृत्रिम प्रयत्न का परिणाम नहीं वरन् जीवात्मा के एक लम्बे समय के संस्कार, अभ्यास और सृष्टि में काम कर रहे दैवी विधान का व्यापक नियम है।

नैतिकता की अवहेलना करने पर सामाजिक अथवा राजनैतिक न्याय व्यवस्था के अनुसार मनुष्य को विभिन्न रूपों में दण्ड प्राप्त होता ही है। सरकार और समाज के दण्ड से मनुष्य किसी प्रकार बच सकता है, किन्तु नियति के विधान से नहीं बच सकता। जिसका निर्णायक कहीं बाहर नहीं, मनुष्य के स्वयं के अन्दर ही विद्यमान होता है—उसके चारों ओर भी, सर्वत्र ही। इसके अनुसार मनुष्य कई शारीरिक और मानसिक कष्टों को सहन करता है। आन्तरिक अथवा बाह्य परिस्थितियों की उलझनों, विपरीतताओं में जो क्लेश, कष्ट, दुःखद अनुभूतियाँ होती हैं वे उक्त दोनों प्रकार के बाह्य दण्डों से भी अधिक कष्टकारक हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नैतिक भाव, अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध आचरण करने पर मनुष्य की आत्म-भर्त्सना होने लगती है, जिससे मानसिक शक्तियाँ, इच्छा-शक्ति निर्बल होने लगती है और मनुष्य दीन बन जाता है। आन्तरिक जीवन की ही छाया मनुष्य के बाह्य जीवन पर पड़ती है। इस तरह अन्तर-बाह्य सभी प्रकार से मनुष्य दीन-हीन बन जाता है।

मनुष्य अपनी चालाकी, शब्द चातुर्य एवं विविधि प्रयत्नों से अपने अनैतिक कार्यों को छिपाने का असफल प्रयास करता है। बाह्य जगत में वह सफल भी हो सकता है किन्तु नियति को धोखा नहीं दे सकता। कई बार मनुष्य अपनी धर्म-बुद्धि, नैतिक आवाज को दबाने, पाप को ढालने के लिए मनचाहे तर्क और विचारों का अवलम्बन लेता है और अपने आचरणों के औचित्य को सिद्ध कर मन में सन्तुष्ट होने का प्रयत्न करता है। किन्तु नियति का नियम दूसरे ही ढंग से पाप के दण्ड और उसके प्रकाशित होने का मार्ग बना देता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दुःख, शोक, हानि, पीड़ा, क्लेश की आड़ में मनुष्य के अनैतिक कार्यों का परिणाम मिलता है दूसरों की नींद हराम करने वाले चैन से सो नहीं सकते। चोर, लुटेरे, गुण्डों, तस्करों को घर बसाकर सुख-शान्ति का जीवन बिताते नहीं देखा जाता। आज नहीं तो कल, देर-सबेर में अनैतिकता का परिणाम दुःखदायी और विनाशकारी ही होता है।

यदि मनुष्य नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता रहे तो जीवन में आने वाली अनिश्चित घटनाओं, तूफान, उलझनपूर्ण समस्याओं में भी सम्पूर्ण सुरक्षा, शान्ति, विश्वास के साथ ही जीवन में समृद्धि विकास प्राप्त कर सकता है।

नागरिकता और नैतिकता की आधारशिला

परस्पर दुर्भाव की धारणाओं के कारण संघर्ष और विद्वेष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके फलस्वरूप अवांछनीय, अनैतिक और अशोभनीय घटनाएँ आये दिन घटित होती हैं। आज सर्वत्र अधिकारों की माँग प्रबल हो रही है, दूसरों से अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो यह अपेक्षा की जाती है, पर कर्त्तव्यों का किसी को ध्यान नहीं। कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हुए अधिकारों की माँग करने से कलह का जन्म होता है। शान्ति का तरीका यह है कि अधिकारों की उपेक्षा करते हुए, कर्त्तव्यों का पूरी तरह पालन किया जाय।

नागरिक जीवन की सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हर व्यक्ति दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह पालन करें, अपनी नैतिक जिम्मेदारियों को तत्परता के साथ निभाने के लिए कटिबद्ध रहें। सामाजिक सुख-शान्ति और प्रगति का यही आधार है। जिस देश में नागरिक अपने कर्त्तव्यों का ठीक तरह पालन करते रहते हैं। वही सबल राष्ट्र कहलाता है, जिस समाज में चरित्रवान लोगों का बाहुल्य रहता है, वही सभ्य कहा जाता है। किसी व्यक्ति या समूह की उत्कृष्टता केवल इसी आधार पर नापी जा सकती है कि उसमें कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के प्रति कितनी आस्था है ? झूठे और लवार, चालाक और बेईमान, धूर्त और ढोंगी, आलसी और कायर लोग चाहे कितने ही साधन सम्पन्न क्यों न हों उनका तथा उनके समूह का स्तर सदा गिरा हुआ ही रहेगा। चिरस्थायी उन्नति, संतुष्टि और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकना उनके लिए कदापि सम्भव न हो सकेगा।

एक-दूसरे के प्रति सद्व्यवहार करने से परस्पर स्नेह, संतोष, सद्भाव और प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रेम का उद्गम सज्जनता और सद्व्यवहार होता है। दुष्टता और दुर्बुद्धि की भावनाएँ मन में रहें तो किसी के प्रति सच्चा सद्व्यवहार बन ही न पड़ेगा। नीति और चतुरता के माध्यम से जो नकली, बनावटी एवं झूठा शिष्टाचार बरता जाता है, वह देर तक किसी को भ्रम में नहीं रख सकता। उसकी कलई सहज ही खुल जाती है। किन्तु जहाँ स्वाभाविक, सरल एवं सच्ची सद्भावनाएँ रहती हैं वहाँ प्रेम विश्वास स्वयमेव उत्पन्न होता है। जब कुछ व्यक्तियों के बीच प्रेम और विश्वास का सम्बन्ध बन जाता है तो वे आपस में मित्र कहलाते हैं और सच्चे मित्रों द्वारा एक दूसरे के प्रति बरते जाने वाले व्यवहार से जितना अधिक सुख मिलता है उसकी तुलना संसार के और किसी सुख से नहीं की जा सकती। कुटुम्ब, रिश्तेदारी, मैत्री या विवाह अपने आप में कोई गुण-दोष नहीं रखते, निकट समीपता एवं सद्भावना से उत्पन्न प्रेम ही आत्मीयता का कारण बनता है। अनेकों कुटुम्बी ऐसे हैं जहाँ पिता-पुत्र में, भाई-भाई में जानी दुश्मनी देखी जाती है। पति-पत्नी के बीच कई बार इतना बढ़ा-चढ़ा मनोमालिन्य देखा जाता है कि एक-दूसरे के साथ रहने में दुःख ही अनुभव नहीं करते वरन् कई बार तो एक-दूसरे की जान के गाहक तक बन जाते हैं। रिश्तेदारों में भी कितनी ही जगह लोकाचार जितना ही दिखावटी व्यवहार पाया जाता है। मित्रों में अधिकांश मतलब के होते हैं। काम निकलते ही आँखें फेर लेते हैं। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि आन्तरिक सद्भावना के अभाव में जो पारस्परिक सम्बन्ध मैत्री, कुटुम्ब, विवाह, रिश्तेदारी आदि के माध्यम बनते हैं वे भी अवास्तविक सिद्ध होते हैं। उसके विपरीत इन बन्धनों में न बँधे हुए लोग भी केवल मानवता और सज्जनता के नाम पर एक-दूसरे के प्रति बहुत कुछ कर गुजरते हैं और इतना गहरा सद्व्यवहार रखते हैं कि उसकी तुलना में रिश्तेदारी आदि का सम्बन्ध बिल्कुल तुच्छ होता है। पारस्परिक सच्चे प्रेम से उत्पन्न होने वाला सुख निसन्देह इस संसार का सबसे बड़ा वरदान है। वह जिसे भी प्राप्त होता है उसे निश्चय ही बड़भागी माना जायगा। यह सौभाग्य प्राप्त कर सकना या वंचित रहना किसी भी मनुष्य के लिए उसके अपने हाथ की बात है। अपने भीतर यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों के साथ आत्मीयता और ममतापूर्ण सद्व्यवहार करने की प्रवृत्ति समुचित मात्रा में जागृत हो तो उसके फलस्वरूप जो भी व्यक्ति सम्पर्क में आवेगा मिठास और सन्तोष अनुभव करेगा। उसके अभाव में बनावटी शिष्टाचार आसानी से ताड़ लिया जा सकता है। उसका प्रभाव उतना ही सीमित होता है जितना कि उथले मन से किये हुए व्यवहार का।

जो प्रेम सद्भाव दाम्पत्ति जीवन में, सन्तान के साथ, रिश्तेदारी या मैत्री में बरता जाता है उसे ही थोड़ा सा विकसित करके अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों के साथ व्यवहार में लाया जाय तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श पूरा करते हुए हम सच्चे अर्थों में 'उदार चरित' कहलाने के अधिकारी बन सकेंगे। जो सुख, साहस और विश्वास एक मित्र से दूसरे मित्र को या एक सम्बन्धी से दूसरे सम्बन्धी को प्राप्त होता है, वही सम्बन्ध विकसित होकर सारे समाज में व्यापक बन सके तो एक मनुष्य के सम्पर्क से दूसरा मनुष्य असाधारण प्रसन्नता और प्रफुल्लता अनुभव करेगा। एकता और आत्मीयता के स्नेह सम्बन्ध जब लोगों की मनोभूमि में व्यापक रूप धारण कर रहे होंगे तो इसका प्रतिफल इस धरती पर साकार स्वर्ग के प्रत्यक्ष दर्शन के रूप में ही परिलक्षित हो सकता है। इससे सारी दुनिया सुख-शान्ति से ओत-प्रोत बन सकती है।

कानून, शासन, समाज व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि मनुष्य परस्पर टकराने की स्थिति से बचें और स्नेह सद्भाव की परिस्थितियाँ बढ़ावें, संस्थाओं और संगठनों का निर्माण इसी दृष्टि से होता है। सभा-सम्मेलनों, प्रीतिभोज गोष्ठी, आदि का आयोजन यही सोचकर होता है कि एकत्रित लोगों के बीच सहयोग एवं निकटता के बीज उत्पन्न हों। सांस्कृतिक कार्यक्रम, क्लब, सहभोज, पार्टियाँ प्रीतिभोज आदि जाने क्या-क्या कार्यक्रम परस्पर प्रेम-भाव पैदा करने के लिए सोचे और किये जाते हैं। नागरिकता और शिष्टाचार का शास्त्र ही इस भावना को लेकर विकसित हुआ है। मनुष्य एक-दूसरे के लिये हानिकारक क्षोभ करने वाले सिद्ध न हों वरन् परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता एवं सज्जनता का व्यवहार करते हुए उपयोगी और सहायक बनकर रहें। यह प्रयत्न जब जितने अंशों में सफल होते हैं तब उनका प्रभाव समाज की उन्नति एवं व्यक्तिगत, विकास के रूप में तुरन्त दिखाई देने लगता है।

आम शिकायत यह सुनी जाती है कि लोग अपने नागरिकता के कर्त्तव्यों पर ध्यान नहीं देते, व्यक्ति का समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है और उसे किस प्रकार निभाया जाना चाहिए यह नहीं सोचते। सड़कों पर बाईं ओर न चलने, गलियों में घर का कूड़ा फेंक देने, बच्चों को नालियों पर टट्टी कराने, रास्ते में केले, नारंगी, आलू के छिलके फेंक देने, रेलों में अनुचित परिणाम स्थान घेरकर बैठने, वचन के अनुसार नियत समय पर उपस्थित न रहने, वस्तुएँ लौटाने का वायदा न पूरा करने, अशिष्टता बरतने, आदि बातें इस बात की प्रतीक मानी जाती हैं कि नागरिकता सभ्यता की मर्यादाओं को तोड़ा जा रहा है। उठने, बैठने, बोलने, खाने, नहाने, कपड़ा पहनने, कुल्ला करने आदि में लोग उच्छृंखलता बरतते हैं। असभ्य आचरण करने में गर्व अनुभव करते हैं। इन बुराइयों को दूर करने के लिए नागरिक शिक्षा और शिष्टाचार का प्रचलन होना आवश्यक किया जाने लगा है।

सामाजिक मर्यादाओं का पालन करना मनुष्यत्व का और उच्छृंखलता बरतना पशुता का चिन्ह माना गया है। इसलिए यह उचित ही है कि मानवीय उत्तरदायित्व की रक्षा करने के लिये दूसरों का ध्यान रखते हुए अपने आचरण को ऐसा रखा जाय जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में असुविधाजनक न हो। शिष्टाचार सिखाने की कई पुस्तकें भी मिलती हैं, और अच्छे लोगों के आचरणों को देखकर एवं उनके प्रवचनों को सुनकर भी इसे सीखा जा सकता है। इस प्रकार सद्व्यवहार को एक अच्छी आदत के रूप में एक सीमा तक अपनाया जा सकना सरल हो सकता है।

इस संसार में सद्भाव और सौजन्य बढ़े, अपराधों और पापों की सत्ता घटे, इसका एक ही आधार हो सकता है वह है सज्जनता की अभिव्यक्ति। सच्ची नागरिकता और वास्तविक नैतिकता इसी को कहते हैं। विश्व शान्ति की समस्या का हल इसी आधार पर संभव है। मनुष्य, मनुष्य के बीच अटल हुए सद्भाव को रोकने के लिए, पारस्परिक सद्भाव की अभिवृद्धि से प्राप्त होने वाले आनन्द को बढ़ाने के लिए आत्मीयता को व्यापक बनाया जाना आवश्यक है। मानवीय सद्गुण ही बाह्य जीवन में सुख-शान्ति की परिस्थितियाँ उत्पन्न किया करते हैं।

नैतिकता को ऊँची उठाओ

महात्मा एपिक्टेटस कहा करते थे कि भेड़ें जो घास-पात खाती हैं। उसका ऊन बनाती हैं और अगर इंसान अन्न खाकर कुछ भी पैदा न करे तो वह पशुओं से भी बदतर है। संसार में जो प्राणी अपने आपको जीवित रहते हुए अधिक उपयोगी सिद्ध करते हैं उनकी नस्ल बनी रहती है और दूसरे काट डाले जाते हैं। बकरे को ही लीजिए। बकरा न तो दूध देने के काम का है और न बोझा ढोने का, इसलिए वह काट डाला जाता है पर बकरी दूध देती है इसलिए बकरियाँ कम काटी जाती हैं। अतएव यदि हम चाहते हैं कि हम संसार में भली-भाँति बने रहें तो हमें चाहिए कि हम अपने आपको दूसरों के लिए उपयोगी साबित करें और अपनी उपयोगिता तथा सेवा-शक्ति को दिन प्रतिदिन बढ़ाते रहें।

यदि हमारा जीवन उपयोगी है और जनता भी हमारी उपयोगिता को स्वीकार करती है तो हमें अपनी जीवन यात्रा के लिए सम्बल (पाथेय) कहीं भी मिल जायगा। उपयोगी व्यक्ति जहाँ कहीं भी जाता है वहीं उसे उसकी जीवन यात्रा के लिए मार्ग-व्यय मिल जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके लिए उसे चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आप यदि अपने पास की वस्तु दूसरों को देने के लिए सदा उत्सुक रहेंगे तो आपको बदले में जीवन-यात्रा के लिए कुछ मिलता भी है इसकी चिंता करने की अधिक जरूरत न पड़ेगी। आप अपना कर्म करते जाइये, जो कुछ बने समाज को भेंट करते जाइये, आपको गुजर के लिए पैसा मिलता जायगा। क्योंकि जैसा कि महात्मा इमरसन ने कहा है कि "उपयोगी मनुष्य की संसार को इतनी जरूरत है कि यदि वह जंगल में भी डेरा डालेगा तो लोग जंगल तक एक पक्का रास्ता तैयार कर लेंगे" तो क्या फिर भी उस व्यक्ति को उदरपोषण की चिन्ता से परेशान होना पड़ेगा ?

लोग कहेंगे कि महाशय यह आपका कोरा आदर्शवाद है। यथार्थता की कसौटी पर कसे जाने पर यह बात खरी नहीं उतरती। इस आक्षेप को हम स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि बहुधा संसार का हित करने वाले लोग सूली पर चढ़ाए जाते हैं और मक्कारों की आव-भगत होती है। पहले जमाने में सुकरात, ईसा, मुहम्मद और दयानन्द जैसे समाज-सुधारकों के साथ लोगों ने जैसा व्यवहार किया वह तो लोग जानते ही हैं पर आज भी हम देखते हैं कि जिनका सिद्धान्त है कि 'रोटी खाओ शक्कर से और दुनिया लूटो मक्कर से' वे ही लोग संसार में ऐश-आराम करते हैं और दूसरे सत्य-प्रिय लोगों को खड़े होने के लिए भी जगह नहीं मिलती। वेश्याएँ जो दुनिया को बिगाड़ती हैं मजे मारती हैं पर सती स्त्रियों को भोजन, वस्त्र भी कठिनता से मिलता है। जनता को उसकी लाचारी के कारण लूटने वाले लोग गुलछर्रे उड़ाते हैं पर जी-तोड़कर रात-दिन परिश्रम करने वाले लोगों को मुँह के नेवाले भी नसीब नहीं होते। लोग कहेंगे कि वह अपना-अपना भाग्य है—पर हम पूछते हैं कि क्या यह दरअसल में अपना अपना भाग्य है अथवा भाग्य और ईश्वर की आड़ में समाज का पाप है ? हम तो समझते हैं कि वेश्या इसलिए ऐश लूटती है कि समाज में पाप-प्रबलता अधिक है। और उसके अनेकों व्यक्ति व्यभिचारप्रिय हैं। ईमानदार व्यवसायी की अपेक्षा नशीली वस्तुएँ बेचने वाला इसलिए अधिक धन-धान्य सम्पन्न है कि समाज का नैतिक धरातल अत्यन्त नीचा है, वह नादान है और हित-प्रद वस्तुओं की अपेक्षा अपना नाश करने वाली वस्तुओं का अधिक मूल्य चुकाता है। समाज अपने अविवेक के कारण जिन दूषित वस्तुओं में सुख मानता है उसकी ये लोग पूर्ति करते हैं इसलिए ये लोग ऐश लूटते हैं। समाज को यदि व्यभिचार-सुख, और नशीली वस्तुओं की आवश्यकता न रह जावे तो आपको सती स्त्रियाँ कंगाल और ईमानदार व्यवसायी कभी गरीब न दिखाई देंगे। 'उपयोगी व्यक्ति सुखी होते हैं' यह सिद्धान्त तो अक्षरशः सबके सम्बन्ध में भी सत्य उतरता है। प्रश्न केवल यह रह जाता है कि समाज द्वारा उपयोगिता का अर्थ क्या लगाया जाता है। समाज जिसे अधिक उपयोगी समझता है उसे अधिक धन-धान्य-सम्पन्न कर देता है।

आज हमारी निगाहों में चेतन की अपेक्षा जड़ का अधिक मूल्य है। हम आध्यात्मिक सुख की अपेक्षा भौतिक सुख को अधिक महत्त्व देते हैं और भौतिक ऐश्वर्य भोगने वाले का, आध्यात्मिक पुरुषार्थ करने वालों की अपेक्षा अधिक सम्मान करते हैं अतएव यही कारण है कि मौलिक सुख-सामग्रियों को उत्पन्न करने वाले लोगों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति अध्यात्म पुरुषार्थियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है। अतएव यदि किसी आत्मपुरुषार्थी का किसी समृद्धिशाली की अपेक्षा कम सम्मान होता है तो भूल समाज की है। इससे आत्मपुरुषार्थी की उपयोगिता कम नहीं होती। उसकी अवहेलना तो समाज की ही अज्ञानता का परिचायक है। अतएव केवल उपयोगी बनने से ही काम न चलेगा। आपको यह भी देखना होगा कि समाज का नैतिक धरातल ऊँचा उठता है और आपकी उपयोगिता समाज द्वारा स्वीकृत होती है। आप समाज को जो कुछ देते हैं समाज में उसको ग्रहण करने की योग्यता होने पर ही आप समाज द्वारा समाहृत हो सकते हैं। इसलिए समाज का नैतिक धरातल ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना भी आवश्यक है।

यदि समाज का नैतिक धरातल ऊँचा है तो उपयोगी बनना ही सच्चा धनी होना है। उपयोगिता एक ऐसी हुण्डी है जिसे सर्वत्र भुनाया जा सकता है। प्राचीनकाल में ब्राह्मण इतना उपयोगी था कि उसके राज दरबार में हाजिर होते ही राजा खड़ा होकर उसका अभिवादन करता था। ब्राह्मण नंगे पैर यात्रा करता था पर क्या हम कह सकते हैं कि उसे धन-धान्य की कमी थी ? राजा उससे धन-धान्य स्वीकार करने की याचना करता था पर यह उसे स्वीकार न था। वह साक्षात् भू देव था। जहाँ वह जाता वहीं उसको लक्ष्मी मिल सकती थी इसलिए वह उसे लिए-लिए फिरने की मूर्खता क्यों करता ? इस तरह हम देखते हैं कि अच्छे समाज में हमारी सेवा-शक्ति व हमारी उपयोगिता ही हमारा सच्चा धन है। इस समय हम अपनी सेवाओं के मूल्य की चिंता न कर केवल उपयोगिता के सहारे ही निश्चित दुर्भाग्य से आज हम सच्चे अर्थ में धनी होना भूल गए हैं। हम आज अपने धन को अपने सच्चे पुरुषार्थ और योग्यता का मापदण्ड नहीं कह सकते। आज हम अपनी उपयोगिता के कारण धनी नहीं बल्कि लोगों को कष्ट दे सकने के कारण अथवा खोटा माल दे सकने के कारण धनी बनते हैं। जिस अफसर से लोगों को अधिक हानि हो सकती है वह धनी बन जाता है। व्यापारी भी जनता को कष्ट देकर ही धनी बनते हैं। एक समृद्ध व्यापारी सारे देश का नमक खरीद लेता है और जब नमक की कमी के कारण भाव तेज हो जाता है तो बेच देता है। दूसरा व्यापारी घी में आलू या वनस्पति घी मिलाकर लाखों बना लेता है। इस तरह उपयोगी बनने के स्थान में जनता पर अभिशाप बनकर आज लोग धनी बनते हैं। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावें जब लोग अपनी सेवा-शक्ति को ही अपनी अमूल्य सम्पत्ति मानेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिखावटी और वास्तविक नैतिकता

मनुष्य का स्वभाव दो तत्त्वों का बना हुआ है—एक पाशविक और दूसरा दैविक। पाशविक स्वभाव के कारण वह वैसा ही आचरण करता है जिस प्रकार संसार के दूसरे प्राणी आचरण करते हैं। जिस प्रकार संसार के अन्य प्राणियों में अनेक प्रकार की शरीर पोषण और सुख की इच्छायें हैं, उसी प्रकार मनुष्य में भी ये इच्छायें हैं। शरीर के रक्षा और उसके सुख की वृद्धि करने वाली जन्मजात प्रवृत्तियों को मूल प्रवृत्तियाँ कहा जाता है। ये प्रवृत्तियाँ प्रकृति की, प्राणी मात्र की देन हैं। इनकी उत्पत्ति जीवन के परम्परागत अभ्यास से होती है। मूल प्रवृत्ति प्राणी की रक्षा करती है और उनकी वृद्धि करती हैं। इन मूल प्रवृत्तियों का मुख्य ध्येय वैयक्तिक जीवन की वृद्धि है।

नैतिकता का हेतु मनुष्य को अपने व्यापक स्वभाव का ज्ञान करना है। नैतिकता अपने आपको वैयक्तिक जीवन से ऊपर उठाने का साधन है। नैतिकता का आधार प्राकृतिक प्रवृत्तियाँ बताई जाती हैं। प्रवृत्तिवादी मानव-आचरण को दूसरे प्राणियों के आचरण से भिन्न नहीं मानते। जिस प्रकार दूसरे प्राणियों के आचरण का मूल श्रोत उन प्राणियों की सुख की चाह और दुःख से बचाव है, उसी प्रकार मनुष्य के आचरण का भी मूल प्रेरक सुख की चाह और दुःख से बचाव होता है। पर इस प्रकार मनुष्य के आचरण को समझाना मनुष्य स्वभाव की विशेषता को दृष्टि से ओझल करना है। मनुष्य विवेक युक्त प्राण है। मनुष्य का विवेक उसके व्यक्तित्व का प्रसार करता है। विवेक के कारण मनुष्य दूसरे व्यक्तियों के सुख में अपना सुख देखने लगता है और वह अपने आपकी पूर्णता का तब तक अनुभव नहीं करता जब तक दूसरे लोगों का उससे लाभ न हो।

पशुओं में अपने आवेश के रोकने की शक्ति नहीं रहती, उसे जिस ओर प्रकृति ले जाती है अर्थात जिस ओर उसकी मूल प्रवृत्तियाँ प्रेरित करती हैं उसी ओर वह जाने लगता है। मनुष्य अपने आपको रोक सकता है, वह जन्मजात प्रकृति के प्रतिकूल आचरण कर सकता है। वह अपने वैयक्तिक स्वार्थ का त्याग करके परमार्थ के काम में अपने आपको लगा सकता है। नैतिकता का आधार मनुष्य की यही आत्म-नियंत्रण की शक्ति है। मनुष्य में यह शक्ति उसी प्रकार जन्म के साथ आती है जिस प्रकार उसकी मूल प्रवृत्तियाँ उसके जन्म के साथ आती हैं। इसका विकास अनुभव की वृद्धि के साथ अवश्य होता है, पर यह अनुभव से उत्पन्न नहीं होती। बहुत-से मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मनुष्य की अपने आपको रोकने की शक्ति उसी प्रकार प्राकृतिक शक्ति है जिस प्रकार उसकी मूल प्रवृत्तियाँ प्राकृतिक शक्ति हैं। मूल प्रवृत्तियों से ही आत्म-नियंत्रण की शक्ति का विकास होता है और इस विकास का साधन व्यक्ति का अनुभव है। एक मूल प्रवृत्ति दूसरी मूल प्रवृत्ति की सहायता करती अथवा उसे रोकती है। मूल प्रवृत्तियों को रोकने वाली मूल प्रवृत्तियों से अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं।

यदि हम उक्त सिद्धान्त को मान लें तो नैतिकता को एक प्रकार की चतुराई के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानना पड़ेगा। नैतिकता व्यक्तित्व के प्रसार का हेतु भले ही हो, उसकी सीमा को पार करने का साधन नहीं माना जा सकता। पर नैतिकता को मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तित रूप मानना न्यायसंगत नहीं। यदि नैतिकता मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तित रूप मात्र होती तो वह प्राकृतिक आचरण से भिन्न वस्तु न होती। पर वास्तव में नैतिकता प्राकृतिक आचरण से भिन्न वस्तु है। यह मनुष्य की नैतिकता के लिये अपने आपका बलिदान कर देने से प्रमाणित होता है। नैतिकता चतुराई का नाम नहीं, वरन् आत्मसमर्पण का नाम है।

मनोवेत्ता डॉक्टर फ्रायड और उनके कुछ अनुयायी नैतिकता को कृत्रिम वस्तु मानते हैं। इसका आधार न तो मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ हैं और न कोई दूसरा जन्मजात तत्व। इसका आधार समाज में, प्रचलित भावनायें ही हैं। ये भावनाएँ मनुष्य के प्राकृतिक स्वभाव पर नियंत्रण करती हैं और उसका दमन करती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक प्रकार के रोग इसी दमन के कारण उत्पन्न होते हैं। मनुष्य में शम का भाव नैतिकता के कारण ही आता है। नैतिकता मानव स्वभाव पर ऊपर से लादी गई वस्तु है। पहले पहल नैतिकता प्रलोभन और दण्ड की सहायता से लादी जाती है पीछे वह स्वभाव का अंग बन जाती है। मनुष्य के मन में मानसिक द्वन्द्व तब तक रहता है, जब तक उसके मन में नैतिकता के भाव प्रबल होते हैं। नैतिक भावना ही अन्तप्रेरणा का रूप धारण कर लेती है और मनुष्य में आत्म-भर्त्सना की मनोवृत्ति उत्पन्न करती है। यदि नैतिकता का प्रतिबन्ध मनुष्य के मन से उठा लिया जाय तो उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का अन्त हो जाय।

उक्त सिद्धान्त उसी प्रकार विवेचना युक्त बुद्धि से रहित है जैसा प्रकृतिवाद का सिद्धान्त। यदि मनुष्य के स्वभाव में नैतिकता न होती तो वह समाज में कैसे आ जाती है ? मानव-समाज व्यक्तियों का ही बना है। अतएव मानव-समाज में उस तत्व की उपस्थिति की सम्भावना नहीं जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति में न हो। यह सम्भव है कि हम समाज के किसी विशेष व्यक्ति को बड़ा मानते हों पर बड़े मानने की प्रवृत्ति जब तक हमारे स्वभाव में पहले से ही न हो तब तक हम किसी को बड़ा और छोटा न मानेंगे। वास्तव में अपने आपके भाव ही हम समाज पर आरोपित करते हैं और फिर समाज से हम अपनी ही उधार दी हुई वस्तु वापस लेते हैं। मनुष्य का मन एक भारी भूल भुलैया है। मनुष्य अपने आपको सीधे प्रकाशित नहीं करता। वह अपने आपको भूला हुआ रहता है और अपने ही गुण अथवा दोषों को दूसरों पर आरोपित करके उनसे परिचित होता है। सत्य, सौंदर्य और नैतिकता का उदय मनुष्य के मन से ही होता है पर वह यह नहीं जानता है। वह इन्हें किसी बाह्य पदार्थ के ऊपर आरोपित करके पहचानता है। जिस प्रकार मनुष्य अपने चरित्र के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोषों को दूसरों पर आरोपित करता है इसी प्रकार वह अपनी पूर्णता को भी दूसरों पर आरोपित करता है और जिस प्रकार अपने आये दोषों के लिये वह दूसरे व्यक्तियों को कारण मानता है, इसी प्रकार अपने आप में पैदा हुई खूबियों का कारण भी वह किसी बाह्य सत्ता को जान लेता है। धार्मिक लोग ईश्वर को इसका कारण मानते हैं, प्रकृतिवादी प्रकृति को और मनोवैज्ञानिक समाज को कारण मान लेते हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति को अध्यास (इन्ट्रोजेक्शन) कहा जाता है। हम अपनी बड़ाई को दूसरे को देकर फिर हम उससे उधार लेते हैं। यह एक विस्मयजनक मानसिक व्यापार है। इस प्रकार का भ्रम अपने आन्तरिक स्वभाव को न जानने के कारण ही होता है।

पर कुछ लोग नैतिकता को भली वस्तु न मानकर उसे बुरी वस्तु ही मानते हैं। इसी के कारण समाज में अनेक प्रकार की झंझटें उत्पन्न होती हैं और वैयक्तिक अन्तर्द्वन्द्व होता है। पर यदि उसे बुरा माना जाय तो भी उसे मानव स्वभाव का आवश्यक अंग ही मानना होगा और उसकी जड़ अपने आन्तरिक मन में माननी पड़ेगी। नैतिकता के प्रतिकूल आचरण करने से जो कार्य का भाव अथवा आत्मग्लानि उत्पन्न होती है वह मनोविश्लेषण के विद्वानों के कथनानुसार पिछले दण्ड के संस्कारों के कारण ही होती है। जैसे बचपन में अनुचित काम के लिये पिता दण्ड देता है उसी प्रकार प्रौढ़ावस्था के अनुचित आचरण के लिये हमारी अन्तरात्मा दण्ड देने लगती है, पर नैतिकता का आधार दण्ड का, भय, चाहे वह बाहरी दण्ड का भय हो अथवा भीतरी दण्ड का, नैतिकता को वास्तव में निकृष्ट वस्तु बना देता है। भय मुनष्य की इच्छा शक्ति को कमजोर करता है और यदि नैतिकता का आधार भय है तो मनुष्य में किसी भी चरित्र के भले गुण का विकास कैसे हो सकता है ? चरित्र के गुणों का आधार भय नहीं वरन् प्रेम है। भय प्रेम का विनाशक है और यदि नैतिकता का आधार भय है तो वह त्याज्य वस्तु है।

हमारा विचार है कि सच्ची नैतिकता का आधार प्रेम ही है। नैतिकता में त्याग की आवश्यकता होती है। यह त्याग बिना प्रेम के सम्भव नहीं। भयवश किया गया स्थायी त्याग नहीं होता, प्रेम वश किया गया त्याग स्थायी त्याग होता है। ठोस चरित्र की नींव भी प्रेम है, प्रेम से इच्छा शक्ति बलवती होती और भय से कमजोर होती है। जिस व्यक्ति की इच्छा शक्ति बलवान नहीं उसका चरित्र ऊँचा कैसे हो सकता है ? जहाँ प्रेम है वहीं बल है और वहाँ भय का अभाव होता है, चाहे यह भय समाज का हो, ईश्वर का हो अथवा अन्तरात्मा का, सभी प्रकार के भय बुरे होते हैं।

भय के ऊपर जिन लोगों का सदाचार निर्भर करता है, वे भय के चले जाने पर दुराचारी बन जाते हैं। यही कारण है कि अपने आपको कठोर नियंत्रण में रखने वाले व्यक्तियों के मन में भारी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व रहता है जो बाहरी संघर्ष में आरोपण के रूप में प्रकाशित होता है। अपने आप पर अत्याचार करने वाला और अपने आपको डराकर सदाचारी बनाये रखने वाला व्यक्ति कभी भी आन्तरिक मन में सुखी नहीं रहता। उसे किसी न किसी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक परेशानी बनी ही रहती है। जब तक मनुष्य के भीतरी और बाहरी मन में एकता का भाव नहीं आ जाता, तब तक उसकी परेशानियों का अन्त नहीं होता। यह एकता का भाव मनुष्य की नैतिक धारणाओं और उसकी सुख की प्रवृत्तियों में साम्य स्थापित करने से आता है। कठोर तप का जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के मन में आन्तरिक शान्ति नहीं रहती। इस आन्तरिक अशान्ति को वह किसी प्रकार भुलाने की चेष्टा करता है। जब तपस्वी व्यक्ति की संसार के लोग प्रशंसा करने लगते हैं तो वह मिथ्या आत्मसंतोष प्राप्त करता है। फिर जगत की प्रशंसा प्राप्त करने का भाव ही घोर तप का कारण बन जाता है।

सच्ची नैतिकता की नीति प्रेम और आत्मसंतोष है। जब किसी भोग का त्याग कोई मनुष्य आन्तरिक अथवा बाह्य भय के कारण नहीं वरन् प्रेम के कारण अथवा प्रेम जनित आत्मसंतोष के कारण करता है तो उसे दूसरे किसी प्रकार के पुरस्कार की अपेक्षा नहीं रहती। प्रेम की भावना ही उस सुख को देती है जो वह भोगेच्छाओं को संतुष्ट न करने के कारण खो देता है। प्रेम पर आधारित नैतिकता में इच्छाओं का दमन नहीं होता, वे प्रेम के प्रवाह से ही तृप्त हो जाती हैं। प्रेम से प्रेरित नैतिकता में किसी प्रकार का दिखावटीपन अथवा अतिक्रम नहीं होता। मनुष्य धीरे-धीरे अपने आप पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वास्तव में यह विजय विजय ही नहीं है यह तो नैतिक और ऐच्छुक मन में प्रेम व्यवहार है। मनुष्य अपने आपको भुलाकर अथवा उसकी अवहेलना करके अपने आप पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, वह अपने आपको जानकर ही अपने आप पर विजय प्राप्त कर सकता है।

राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में आपका योग

आज चारों ओर चारित्रिक और सामाजिक दृष्टि से क्षोभ और निराशा का वातावरण दिखाई देता है। हम और आप सभी इस वातावरण को बदलना चाहते हैं परन्तु इस कार्य में अपने को असमर्थ पाते हैं। इन समस्त दुःखद परिस्थितियों के लिए हम सरकार को, समाज को और अन्य जनों को दोष देते हैं, हम भूलकर भी अपने दिल को नहीं खोजते। हम कभी भी यह नहीं सोचते कि इन दूषित परिस्थितियों को उत्पन्न करने में हमारा क्या योग है ? यदि एक बार आप अपने विचारों और कार्यों का मूल्यांकन करने लगें, तो आपकी समझ में तुरन्त आ जायगा कि दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। स्वयं अपने में कुछ दोष हैं और उन्हें यदि निकाल दिया जाय तो आप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत कुछ कर सकते हैं। यदि आप अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने लगें, तो आप एक सही दिशा की ओर चलने लगेंगे। यह न सोचें कि 'अकेला चना क्या भाड़ फोड़ेगा' बहुत-से लोग अपना काम इसलिए ठीक से नहीं करते कि वे अन्य कर्त्तव्यहीन जनों के कृत्यों को देखकर सोचते हैं कि जब सभी लोग ईमानदारी से काम नहीं करते, तो हमारी ईमानदारी से क्या लाभ होगा ?

आप यह निश्चित रूप से जान लें कि आपकी अकेली ईमानदारी में बहुत बड़ा बल है। हाँ, वह ईमानदारी पत्थर की चट्टान की तरह दृढ और अभेद्य होनी चाहिए। एक व्यक्ति में कितनी शक्ति होती है, इसे समझना है तो राम, कृष्ण, गौतम, ईसा, मोहम्मद और गाँधी की शक्ति को देखिए। अपने चारों ओर की प्रतिकूल परिस्थितियों की परवाह न करके यह लोग अकेले ईमानदारी के साथ कर्त्तव्यपरायण हुए। फलस्वरूप उनका अनुगमन करने वाले अनेक बन गये, सारी दुनिया बदल गयी। तालाब के निश्चल जल में एक ही कंकड़ फेंका जाता है परन्तु उसके प्रभाव से उठने वाली असंख्य तरंगें, जल की सतह पर उठने लगती हैं। उसी प्रकार अकेले आपके ईमानदार होने से, घर में पास-पड़ौस में, व्यवसाय में और सभी क्षेत्रों में जहाँ आप प्रवेश करते हैं वहीं, कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है।

आप अपने घर के एक सदस्य हैं। यदि परिवार में आप सबसे बड़े हैं, आप उस छोटे से समाज में 'प्रमुख' या 'प्रधान' हैं तो आप बहुत कुछ कर सकते हैं। अपने आश्रित जनों के साथ निष्पक्ष और निष्कपट व्यवहार करके आप सबका जीवन सुखमय बना सकते हैं। सबके लिए उचित साधन जुटाकर सबको उन्नति करने का समान अवसर दे सकते हैं बच्चों और युवकों को (जो आपके परिवार के हैं उनकी शिक्षा के विषय में उचित परामर्श और पथ-प्रदर्शन दे सकते हैं, परिवार एक प्रकार की नर्सरी है। जैसे नर्सरी में फूलों के पौधे उगाये जाते हैं और बड़े होने पर वही पौधे बँगलों और उद्यानों की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार परिवार में जो बच्चे जन्म लेते हैं, पलते हैं और शिक्षा पाकर बड़े होते हैं, वही आगे चलकर देश के उत्तम नागरिक बनते हैं जिनकी कार्यकुशलता, ईमानदारी और कर्त्तव्यपालन पर देश का भाग्य निर्भर होता है। सच पूछिये तो आप इस प्रकार राष्ट्र की शानदार इमारत की ईंट तैयार करते हैं।

आज हमारे परिवारों की दशा बहुत गिरी हुई है। गरीबी और उत्तम सांस्कृतिक वातावरण की कमी के कारण, पारिवारिक जीवन दूषित होता चला जा रहा है। उसी के कारण मनुष्य में स्वार्थपरता, व्यक्तिगत सुख की होड़ के भाव प्रबल हो जाते हैं, जिससे सामाजिक जीवन को क्षति पहुँचती है। इन दूषित प्रवृत्तियों को नष्ट करने के लिए कानून नहीं बनाये जा सकते और यदि बनाये भी जायँ, तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। हम देखते हैं कि हमारे देश में कानून बनते हैं परन्तु उनसे जो सुधार होने चाहिए, नहीं हो पाते। एक ओर कानून बनता है और दूसरी ओर कानून का उल्लंघन करने के उपाय लोग निकाल लेते हैं। राष्ट्रीय चरित्र कानूनों की सहायता से नहीं सुधारा जा सकता। उसका बनाना हमारे आपके हाथ में है। यदि हर एक व्यक्ति अपना सुधार करले तो सारा देश अपने आप सुधर जायगा।

सामाजिक जीवन आदान-प्रदान की नींव पर खड़ा होता है। हमको दूसरों से सुख-सुविधाएँ मिलती हैं और हम दूसरों को सुख-सुविधाएँ पहुँचाते हैं। तभी सामाजिक जीवन कायदे से चलता है और सुख की वृद्धि होती है। सामाजिक जीवन के क्रम को भंग न होने देना हमारे हाथ की बात है। इस समय एक बहुत बड़ी कठिनाई यह उपस्थित है कि हम और आप तमाम सुख-सुविधाएँ पाना चाहते हैं परन्तु दूसरों को अपनी और से सुख-सुविधाएँ देना नहीं चाहते। हम 'आदान' चाहते हैं परन्तु 'प्रदान' नहीं। जहाँ प्रदान नहीं होता, वहाँ आदान केवल थोड़े दिन चलता है। अपनी ओर से प्रदान का क्रम भंग होते ही, दूसरे लोगों से आदान नहीं प्राप्त होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक जीवन की विकास और विनाश की कुन्जी आपके ही हाथ में हैं। आप उसका प्रयोग करके बहुत कुछ समाज का उपकार कर सकते हैं। समाज के प्रति आपका जो भी 'देय' है, निष्ठापूर्वक दीजिए, आपका जो भी उत्तरदायित्व है, उसे पूरा करिए।

इसी प्रकार समाज में व्याप्त अनेक दोषों को आप नष्ट कर सकते हैं। होता यह है कि आप अनेक सामाजिक बुराइयों को या तो स्वार्थवश दूर नहीं करते या कायरता से उनकी ओर से उदासीन रहते हैं। आपके पास-पड़ौस में कोई दुष्ट तथा अपराधी-प्रवृत्ति का व्यक्ति रहता है। आप साहसपूर्वक उसका विरोध नहीं करते और कभी-कभी तो स्वार्थवश उसके साथ सहयोग करने लगते हैं। ऐसी दशा में अपराध का उन्मूलन नहीं हो सकता। वास्तव में अपराधों के बढ़ाने में आप सहायक होते हैं। आपके पास-पड़ोस में यदि गंदगी है, छूत की बीमारियाँ फैलती हैं, फिर भी आप सफाई की ओर न तो स्वयं ध्यान देते हैं और न दूसरों का ध्यान आकर्षित करते हैं। हमारे देश में अभी काफी अज्ञानता है। पास-पड़ौस में यदि आप पढ़े-लिखे हैं, तो निरक्षर जनों तक कुछ ज्ञान का प्रकाश फैलाइये। मोहल्लों में सबेरे म्यूनिसिपैलिटी के कर्मचारी गलियों की सफाई कर जाते हैं, नालियाँ धो दी जाती हैं, परन्तु आपके घर की स्त्रियाँ और पास-पड़ौस के अशिक्षित जन अपने बच्चों से नालियों में मल-मूत्र त्याग कराते हैं, घर का तमाम कूड़ा-कचरा बाहर गली में कर देते हैं। आपके पास में सार्वजनिक नल लगा है। वह खुला पड़ा रहता है और पानी नष्ट हुआ करता है। राष्ट्रीय धन का अपव्यय होता साथ ही नमी फैलती है। यह सब छोटी-छोटी बातें बड़े महत्त्व की हैं। केवल इन छोटी-मोटी बातों की ओर ध्यान न देने से राष्ट्र के अपार धन की क्षति होती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब आप अपने व्यवसाय की बात लीजिए। हमारे देश में प्रायः व्यवसाय के प्रति लोगों का दृष्टिकोण स्वस्थ नहीं है। आप चाहे नौकरी करें या मजदूरी या दुकानदारी, उसमें अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं। आप यह भूल जाते हैं कि अनुचित मुनाफागिरी के कारण आपके व्यवसाय से लाभ उठाने वाले उपभोक्ताओं पर क्या प्रभाव पड़ता है ? हम सभी युद्धकालीन 'काला बाजार' से परिचित हैं। व्यापारी वर्ग अपनी वस्तुओं को बेचकर उचित नफा उठाने के साथ-साथ और भी अधिक अनुचित लाभ लेना चाहता है। व्यापार को अपने परिश्रम का उचित लाभ उठाने का हक है परन्तु दूसरों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना भी उसका कर्त्तव्य है।

यदि आप सरकारी कर्मचारी हैं तो आपको अपने पद के अनुकूल कर्त्तव्य का निर्वाह करना है। अधिकारी और कर्मचारी वर्ग भी अपने पेशे में ईमानदार नहीं रहे। मुनाफाखोरी करने वालों के प्रलोभनों से उन्हें बचना चाहिए। अधिकारी होने के नाते, वे उपभोक्ता जनता के संरक्षक हैं। स्वार्थ के लिये न्याय की हत्या करके किन्हीं को अनुचित अवसर प्रदान करना उनके लिए निश्चित रूप से लज्जास्पद है। मजदूर वर्ग को भी अपने पेशे में ईमानदार रहना चाहिए। यदि आप मजदूर हैं, तो आप जिस कारखाने में काम करते हैं, वहाँ अपने काम की उत्तमता बढ़ावें, उत्पादन की मात्रा बढ़ावें। ऐसा करने से ही राष्ट्रीय आय बढ़ेगी और आपकी भी आय साथ में बढ़ेगी।

उपर्युक्त कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है कि देश और समाज का भविष्य हमारे आपके हाथों में हैं। हम अनेक बुराइयों को दूर करने का बोझ स्वयं स्वीकार करें और सरकार का मुँह न ताकें। तभी उन्नति की दिशा में हम अग्रसर हो सकते हैं।

राष्ट्र का आर्थिक अभ्युदय एवं नैतिक मूल्य

भारत गाँवों का देश है, यहाँ की अस्सी प्रतिशत जनता देहातों में बसती है। इतने बड़े समुदाय की उन्नति तभी संभव है, जब उनमें संव्याप्त निर्धनता एवं अशिक्षा-निवारण के साथ ही जीवन स्तर को ऊँचा उठाने को प्राथमिकता मिले। ग्रामीण विकास की योजनाओं का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करके बहुत कुछ इस समस्या पर काबू पाया जा सकता है। इस संदर्भ में पिछले दिनों विविध क्षेत्रों से संबद्ध मूर्धन्य मनीषियों, वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों का एक सम्मेलन बंगलौर में सम्पन्न हुआ, जिसमें आगामी बीस वर्षों के स्वरूप का निर्धारण करते हुए देश के उज्ज्वल भविष्य की एक झाँकी प्रस्तुत की गई। इसके लिए विभिन्न प्रकार के सामुदायिक विकास आन्दोलनों का प्रारूप सुनिश्चित किया गया। निष्कर्ष निकाला गया कि राजनैतिक जीवन में नैतिकता के ह्रास एवं स्वार्थी प्रवृत्ति ने गाँवों की स्थिति सुधारने के बजाय उसे मात्र अपना उल्लू सीधा करने तक सीमाबद्ध कर दिया है। आर्थिक उन्नति ही देहातों का कायाकल्प कर सकती है, जो अभी न के बराबर ही कही जा सकती है।

प्रकारान्तर से चली आ रही विषम परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए विशेषज्ञों ने कहा है कि अभी भी गाँवों का भविष्य अंधकारमय है। इसका प्रधान कारण हमारी बढ़ती हुई आबादी है। सन् २००० तक देहातों की आबादी ६० करोड़ से लेकर ७० करोड़ तक जा पहुँचने का अनुमान है, जबकि कृषि योग्य भूमि सीमाबद्ध है। यदि निजी क्षेत्र एवं आवश्यकता से अधिक पैतृक भूमियों पर किसी प्रकार कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा तो जोत की सीमाएँ और भी अधिक टुकड़ों-टुकड़ों में बँटती चली जायेंगी और एक स्थिति ऐसी आयेगी जिसमें कृषि की इकाइयों को अलाभकारी घोषित करना पड़ेगा। ऐसी दशा में छोटे किसानों की उत्पादन क्षमता में निरन्तर कमी होती चली जायगी। इतने पर भी आशावादिता एवं उद्यमशीलता मनुष्य के प्रमुख गुण हैं, जो यह बताते हैं कि सन् २००० तक ३० से ४० प्रतिशत गाँवों को राजनैतिक व्यवस्था, मानवीय कल्याण की सुविधा-सहायता तथा परिशोधित उच्च तकनीकी जानकारियों से अवगत कराया जा सकेगा। जीवन स्तर को सुधारे बिना प्रगति संभव नहीं हो सकती।

देहात प्रधान भारत में अभी भी लगभग आधी आबादी गरीबी का जीवन जीने को विवश है। अधिकांश किसान एवं मजदूरों को बेकारी में प्रायः आधा समय गुजारना पड़ता है। बेकारी और गरीबी दोनों अभिन्न सहचरी हैं। जहाँ एक रहेगी वहाँ दूसरी को उपस्थित पाया ही जायेगा। पोषण विज्ञानियों द्वारा हमारे यहाँ न्यूनतम उपयुक्त पोषण स्तर में प्रत्येक व्यक्ति के लिए हर दिन २४०० कैलोरी और ३१०० कैलोरी के बीच की मात्रा सन्तुलित आहार के लिए सुनिश्चित की गई है। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए देश को २१ करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन प्रतिवर्ष करना होगा। जबकि आँकड़े बताते हैं कि अगले बीस-पच्चीस वर्षों में १० करोड़ टन मात्र खाद्यान्न की अभिवृद्धि हो सकेगी और हमें आयातित अनाजों पर निर्भर रहना पड़ेगा। देहातों में बेरोजगारी भी एक बहुत बड़ी समस्या है। किसानों एवं मजदूरों को वर्ष में ३-४ महीने व्यर्थ में हाथ पर हाथ धरे बैठे बीत जाते हैं और वे महानगरों की ओर रोजगार के लिए भागने लगते हैं, जहाँ निवास, स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ जुटाना भी दुष्कर हो रहा है। फलतः वातावरण की विषाक्तता एवं अपराध जैसी सामाजिक बुराइयाँ अपना फन फैलाती और भले चंगों को भी अपना ग्रास बनाती चली जाती हैं। यह सब सामाजिक असमानता एवं सबको न्याय न मिल पाने का ही प्रतिफल है। इसे मिटाये बिना कहने लायक प्रगति कैसे सम्भव हो सकती है ?

उक्त मनीषियों एवं विशेषज्ञों का निष्कर्ष है कि आर्थिक असमानताओं के उन्मूलन हेतु कोई न कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास का विकल्प अवश्य ही ढूँढ़ना होगा। इसके लिए सबसे पहली जरूरत लोगों की जीवन शैली में परिवर्तन लाना है और यह तभी संभव है जब धन एवं साधनों का समान वितरण हो तथा गैर-उपयोगी उपभोग पर कड़ाई के साथ प्रतिबन्ध लगे। आर्थिक ढाँचा कहीं लड़खड़ा न जाये, इसके लिए उपभोक्ता समितियों का निर्माण करना जरूरी है। इसकी पूर्ति सहकारी संगठनों द्वारा ही संभव है जो उत्पादन एवं उपभोग की क्षमताओं के विकेन्द्रीकरण में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकती है। इससे लोगों की क्रय शक्ति बढ़ेगी, साथ-साथ निर्यात के भी सुअवसर उपलब्ध किए जा सकेंगे। गाँवों और शहरों तथा कृषि और उद्योगों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए नव तकनीकी आर्थिक विकास की नीति को क्रियान्वित करने के प्रयत्न चल भी पड़े हैं और परिणाम भी उत्साहवर्धक सामने आये हैं।

सामाजिक विधि-व्यवस्था को पूरी तरह ध्यान में रखते हुए निर्धारित की गयी आर्थिक नीतियाँ ही करोड़ों की संख्या में बैठे बेरोजगार लोगों को व्यवस्थित एवं सुविधायुक्त जीवनयापन का अवसर दिला सकती हैं। इस उद्देश्य की बहुत कुछ पूर्ति कृषि को प्राथमिकता प्रदान करने से तथा छोटे एवं मध्यम किसानों को प्रोत्साहित करने से हो सकती है। अपने देश में छोटी जोतों का आकार अधिक है। अतः मशीनों की अपेक्षा श्रमिकों को काम देना ही बेहतर होगा, साथ ही उन्हें समुचित प्रशिक्षण भी इस क्षेत्र में देना होगा, जिससे वे उपार्जन एवं हरीतिमा संवर्द्धन के समन्वित उपक्रम को समझ सकें। जिन स्थानों पर कृषि कार्य संभव नहीं है, वहाँ लघु-काय गृह उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। यह बेकारी के निवारणार्थ एक बहुत ही प्रभावी उपाय है। जो व्यक्ति काम की अभावग्रस्तता में शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं, उन्हें लघु उद्योगों में आसानी से खपाया जा सकता है। कृषि में उत्तम बीज, उर्वरक, सिंचाई साधनों की सुविधा, चकबन्दी तथा उचित बाजार व्यवस्था से उत्पादन क्षमता में तो विशेष प्रकार से अभिवृद्धि होगी ही, इसके साथ-साथ लोगों की प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ेगी, जिसके फलस्वरूप जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ने के कारण मुद्रा प्रसार की प्रवृत्तियों को आसानी से रोका जा सकता है। उपभोक्ताओं की माँग की पूर्ति तो होगी ही, साथ-साथ छोटे-छोटे कस्बों का स्वरूप भी विकसित होने लगेगा जहाँ पर लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना सुगमतापूर्वक की जा सकती है। शहरी एवं ग्रामीण इकाइयों को एक-दूसरे का विरोधी नहीं, वरन् पूरक समझा जाय और दोनों को समान रूप से सरकारी सहायता मिले, तो देश का कायाकल्प होते देर न लगेगी।

समाजशास्त्रियों के अनुसार क्षेत्रीय विषमताओं को दूर करना ही सामाजिक न्याय है। आज देश को उच्चस्तरीय शिक्षा की अपेक्षा तकनीकी प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता है। शिक्षा वही सार्थक हो सकती है, जो मनुष्य तथा समाज के लिए उपयोगी हो। देश की आधी जनसंख्या—नारी वर्ग अभी भी पिछड़ी स्थिति में जीवन जीने को बाध्य है। अशिक्षा इसका प्रमुख कारण है। उन्हें अनपढ़ एवं अनगढ़ रखकर मनुष्य को कुछ मिला नहीं, वरन् हानि ही पग-पग पर उठानी पड़ी है। शिक्षा एवं सांस्कृतिक वातावरण से नारी वर्ग को जब तक परिचित नहीं कराया जाता, तब तक समाज निर्माण की सभी संभावनाएँ अनिश्चित ही बनी रहेंगी। इसे सुखद संभावना ही कहा जाना चाहिए कि विचारशीलों का ध्यान अब इस ओर आकृष्ट हुआ है और नारी-उत्थान के लिए संसार में प्रायः सभी ओर बहुमुखी प्रयास चल पड़े हैं।

प्रगति के लिए, उन्नति के लिए आवश्यकता आज इस बात की है कि अनावश्यक उपभोग की प्रवृत्तियों पर पूर्ण रूप से अंकुश लगे अन्यथा भ्रष्टाचार एवं काला धन जैसे सामाजिक नासूर को प्रोत्साहन मिलेगा। गरीबी और अमीरी के बीच खाई गहरी होती चली जायेगी और सर्वत्र अनैतिकता के ही दर्शन होंगे। एक ओर अभी जहाँ तक सीमित वर्ग विलासितापूर्ण जीवन जी रहा है, वहीं दूसरी ओर बहुसंख्य आबादी अभावग्रस्तता एवं कुपोषण का शिकार है। धन के असमान वितरण पर प्रतिबंध हेतु निम्न वर्ग के लोगों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना तथा समानता के सिद्धान्तों का परिपूर्ण निष्ठा के साथ पालन करना, यही उपभोग की नैतिकता का स्वरूप है। गाँधीजी का मत है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को कम कर देना चाहिए और भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं के लिए ही आर्थिक साधनों का सदुपयोग किया जाना चाहिए, तभी राष्ट्रीय प्रगति संभव है। उत्पादन प्रणाली में आवश्यक सुधार एवं उपलब्ध सुविधा-साधनों का नैतिक उपभोग—दोनों में सामंजस्य का होना वर्तमान युग की एक महती आवश्यकता है।

व्यक्ति और समाज की समृद्धि के शाश्वत आधार

जनमानस में एक भ्रान्ति यह बैठी हुई है कि नीति और ईमानदारी के मार्ग पर चलने वाला भौतिक दृष्टि से घाटे में रहता है जबकि बेईमानी-अनीति की आड़ में अधिक कमाया जा सकता है। यह प्रतिपादन उन अदूरदर्शी व्यक्तियों का है जो भौतिक प्रगति के शाश्वत नियमों से अपरिचित हैं अथवा बेईमानी को लाभदायक ठहराने का समर्थन करते हैं जो आलसी और प्रमादी हैं। कठोर श्रम से जी चुराते हैं। ऐसे व्यक्ति सम्पन्नता हासिल करने के लिए 'शार्टकट' के रूप में बेईमानी को ही आदर्श बना लेते हैं और यह कहते फिरते हैं कि आज न तो ईमानदारी का युग रहा है और न ही ईमानदार व्यक्तियों का। सचमुच ही ऐसे व्यक्तियों को अदूरदर्शी ही कहा जाएगा।

यह तथ्य भली भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए कि मात्र करते रहने भर से ईमानदारी की बातों का समर्थन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भर करने से अभीष्ट परिणाम में सफलता नहीं मिल जाती। प्रामाणिकता, श्रमनिष्ठा तथा कार्य कुशलता भौतिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं। ये विशेषतायें ईमानदारी के अभिन्न अंग हैं। जहाँ कहीं भी—जिस भी दिशा में इनका प्रयोग किया जायेगा, चमत्कारी परिणाम निकलेंगे और समृद्धि का पथ प्रशस्त होगा। बाजार में निकलते ही हर व्यक्ति ऐसी दुकान की खोजबीन करता है जहाँ वस्तुएँ सही कीमत पर टिकाऊ और अच्छे स्तर की मिलें। ऐसी ही दुकानें चलती भी हैं जहाँ वस्तुएँ प्रामाणिक एवं उचित कीमत पर मिलती हैं। कितने ही दुकानों के नाम-टाइटिल लाखों-करोड़ों रुपयों में बिक जाते हैं। इसका कारण दुकानदार द्वारा उपार्जित की गई प्रामाणिकता की वह 'साख' होती है तो 'टाइटिल' के खरीददार के लिए विशेष लाभकारी सिद्ध होती है।

ईमानदारी का मार्गावलम्बन व्यक्ति और समाज दोनों ही के लिए लाभप्रद है, इस सत्य को समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के नियमों द्वारा भी समझा जा सकता है। घटिया स्तर की अनुचित कीमत पर वस्तुएँ बेचने वाले दुकानदार अथवा निर्यात करने वाली फर्में कुछ समय तक ही दूसरों को धोखा दे सकती हैं। ठगे गए व्यक्ति उनसे दुबारा वस्तुएँ नहीं खरीदते जबकि अपनी प्रामाणिकता का सिक्का जमा लेने वालों की बिक्री दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। इस तरह बेईमान दुकानदार जहाँ अधिक कीमत लेकर सीमित वस्तुओं की बिक्री कर पाता है, उचित लाभांश लेने वाला ईमानदार दुकानदार अधिक बेच लेता है और कुल आर्थिक लाभ की दृष्टि से नफे में रहता है। उसे अतिरिक्त फायदा यह होता है कि ग्राहकों की संख्या बढ़ती जाती है। प्रकारान्तर से उसे समाज सेवा एवं देश सेवा का श्रेय भी मिल जाता है। उचित कीमत पर प्रामाणिक एवं ऊँचे स्तर की वस्तुएँ समाज को उपलब्ध करा देना एक व्यवसाय होते हुए भी समाज सेवा ही कही जायेगी। किसी देश की भौतिक प्रगति भी इस बात पर अवलम्बित है कि देश में उत्पादन का स्तर कैसा है तथा उनमें कितनी अधिक प्रामाणिकता जुड़ी हुई है। इस तरह ईमानदारी के अवलम्बन पर ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों ही की प्रगति एवं समुन्नति निर्भर करती है। इस तथ्य की जितनी उपेक्षा होगी वह समाज एवं देश उतना ही पिछड़ जाएगा।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों ही की प्रगति में ईमानदारी कितनी अधिक लाभकारी हो सकती है इसे एक छोटे-से देश जापान में देखा जा सकता है। ११ करोड़ की जनसंख्या तथा १,४३,५७४ वर्गमील के क्षेत्रफल वाले इस देश को द्वितीय विश्वयुद्ध ने बर्बाद कर दिया था। देश की आर्थिक व्यवस्था चरमरा-सी गई थी। पर अपने कठोर पुरुषार्थ द्वारा मात्र तीन दशकों में ही जापान विश्व के मूर्धन्य सम्पन्न राष्ट्रों में जा खड़ा हुआ है। विश्व बाजार में दिनोंदिन जापान की साख देशवासियों की श्रमनिष्ठा एवं प्रामाणिकता के कारण बढ़ती ही जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय साझा बाजार में सर्वाधिक माँग एवं खपत जापान की विनिर्मित वस्तुओं की है यह ख्याति उसे यों ही नहीं मिली है वरन् उसने इसके लिए पूरी-पूरी कीमत चुकाई है। विश्व के मूर्धन्य व्यावसायिक राष्ट्रों के विशेषज्ञों ने जापान की व्यापारिक एवं आर्थिक सफलता का रहस्योद्घाटन करने पर एक ही तथ्य पाया कि उनकी श्रमनिष्ठा एवं ईमानदारी ही बढ़ती हुई लोकप्रियता का प्रमुख कारण है।

दूसरे महायुद्ध के बाद लड़खड़ाई औद्योगिक स्थिति को पुनः स्थापित करने के लिए वहाँ के व्यापारियों एवं उद्योगपतियों ने विश्वभर के पेटेण्ट्स तथा टेक्नोलाजियों को छान मारा। लक्ष्य था—कम से कम कीमत पर बढ़िया से बढ़िया स्तर की टिकाऊ वस्तुएँ किस तरह विनिर्मित की जा सकती हैं ? जापानवासी हर नई सर्वोत्तम तकनीक को सीखने-जानने के लिये सदा उत्सुक एवं तत्पर रहते हैं। उनके क्रियान्वयन के लिए वे कठोर श्रम करते हैं। व्यक्तियों की उन्नति समाज की सामूहिक उन्नति पर निर्भर है, हर व्यक्ति को यह सुदृढ़ विश्वास है। मूर्धन्य व्यवसाइयों एवं उद्योगपतियों की नीति अपने देश की भाँति यह नहीं रहती कि शेयर होल्डरों को कितना अधिक लाभांश दिया जा सकता है। अपितु यह रहती है कि लम्बे समय तक बाजार में तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी व्यावसायिक प्रतिष्ठा कैसे कायम रखी जा सकती है। इसके लिये वे वस्तुओं का स्तर बढ़ाने, सुन्दर एवं टिकाऊ बनाने के लिये हर संभव प्रयास करते हैं। लाभांश कम से कम लेने से वस्तुओं की माँग विश्व बाजार में अधिक होगी यह ध्यान रखते हुए ही उनके मूल्य का निर्धारण किया जाता है। विनिर्मित वस्तुओं का 'क्वालिटी कन्ट्रोल' जापान का प्रमुख लक्ष्य है। हर कर्मचारी, हर मजदूर—अपना नैतिक कर्त्तव्य मानता है और उसके लिये तन-मन से प्रयत्नशील रहता है।

अपनी तकनीकी विशेषताओं के लिए कभी अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी जैसे देश विश्वविख्यात थे। वे अधिक से अधिक वस्तुओं का निर्यात भी करते थे। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन्हीं का पहले बोलवाला था किन्तु जापान ने इन सभी औद्योगिक राष्ट्रों को अब पीछे धकेल दिया है। स्वस्थ व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में वह सबसे आगे निकल गया है। स्थिति यहाँ तक जा पहुँची है कि उपरोक्त देशों में विनिर्मित वस्तुओं की माँग एवं निर्यात कम हो जाने से उनकी आर्थिक व्यवस्था लड़खड़ा गई है। अमेरिका एवं ब्रिटेन जैसे औद्योगिक देशों में भी जापान में बनी वस्तुओं की माँग निरन्तर बढ़ती जा रही है। एक आँकड़े के अनुसार अकेले अमेरिका में प्रतिदिन छः हजार जापानी मोटरगाड़ियों का आयात होता है अमेरिकी कार बाजार में जापान २३ प्रतिशत का साझीदार है। वेल्जियम के एक तिहाई बाजार पर जापान ने कब्जा कर रखा है। 'ग्रेट ब्रिटेन' तथा स्वीडेन की हर छः गाड़ियों में से एक जापानी है। टोयोटा, माजदा, होंडा जैसी मोटरगाड़ियों की माँग जापान से विश्व भर में बढ़ती जा रही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्य छोटी-छोटी जापान की बनी वस्तुएँ सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक प्रामाणिक मानी जा रही हैं। टेलीविजन, कैमरा, मोटर पार्टस्, मशीनें, घड़ियाँ तथा इलेक्ट्रॉनिक्स के सामान निर्यात करने में जापान अग्रणी है। विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं है जो स्तर की दृष्टि से जापान का मुकाबला कर सके। कम कीमत और ऊँचे स्तर के कारण ही यूरोपीय आर्थिक समुदाय के द्वारा जापान प्रतिदिन सात लाख टेलीविजन सैट बेचता है, प्रतिवर्ष अकेले पश्चिम जर्मनी लगभग १५ लाख टेलीविजन सैट जापान से आयात करता है। उल्लेखनीय है कि कभी पश्चिम जर्मनी इन वस्तुओं के निर्यात के लिए विश्वविख्यात था। यूरोपीय साझा बाजार के पर्यवेक्षण से प्राप्त एक रिपोर्ट के अनुसार यूरोप के देश ६० प्रतिशत मशीनें जापान से खरीदते हैं। वर्ष १९८० में यूरोप में जापानी मोटरगाड़ियों की माँग कुल खपत की ५ प्रतिशत थी अब वह २५ प्रतिशत जा पहुँची है। कई यूरोपीय देशों ने तो अपनी औद्योगिक स्थिति सन्तुलित बनाये रखने के लिए अब जापानी सामानों के आयात पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाना आरम्भ कर दिया है। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में भाग लेने वाले कितने ही पश्चिमी व्यापारियों ने जापान की बढ़ती ख्याति को देखकर उसे 'जायन्ट कार्टेल'—कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया है। इस वाक्य का अर्थ यह है कि समूचे विश्व के उद्योग तन्त्र पर जापान हावी होता जा रहा है तथा उससे प्रतियोगिता करना असंभव है।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय जापान की बढ़ती लोकप्रियता से चिन्तित हो उठा है। कारण यह है कि जापान स्वयं तो वस्तुओं का दूसरों देशों से कम से कम आयात करता है पर अपनी वस्तुओं का अधिक से अधिक निर्यात विकसित, औद्योगिक देशों को भी करने लगा है जिनकी कीमत तो कम होती ही है, उनका स्तर भी अधिक उत्तम होता है अपेक्षाकृत उन देशों में बनने वाली वस्तुओं के। इस तरह इन देशों द्वारा उत्पादित सामानों की तुलना में वे ही वस्तुएँ आयातित जापानी सामानों की गुणवत्ता एवं कम कीमत के कारण अधिक लोकप्रिय बन रही हैं।

अपने कठोर श्रम एवं बेमिसाल ईमानदारी के कारण जापान ने मात्र तीन दशकों से कुछ ही अधिक वर्षों में ही असाधारण भौतिक प्रगति की है। सामूहिक प्रगति में—देश की उन्नति में अपनी भी उन्नति सन्निहित है। जापानवासियों ने इस तथ्य को भली भाँति समझा और उसके लिये प्रयत्न किया है। काम के प्रति अटूट निष्ठा और ईमानदारी का अवलम्बन ही समाज एवं देश की प्रगति का स्थाई आधार है, इस सत्य को जापानवासियों ने पूरी तरह साकार कर दिखाया है। परिणाम सामने है। हर व्यक्ति की व्यक्तिगत आय भी बढ़ी है। द्वितीय महायुद्ध के बाद जापान के लिये भोजन एवं वस्त्र की व्यवस्था जुटा पाना भी कठिन पड़ रहा था। आज प्रति व्यक्ति वार्षिक आय ५ हजार डालर है। समृद्धि के साथ-साथ अपनी प्रामाणिकता के कारण जापान ने असाधारण ख्याति अर्जित की है।

देश ही नहीं विश्व के मूर्धन्य समृद्ध व्यक्ति भी अपनी ईमानदारी के कारण ही आगे बढ़े हैं। टाटा, बाटा, फोर्ड, राकफेलर जैसे विश्व के प्रख्यात उद्योगपतियों ने प्रामाणिकता एवं श्रमशीलता को अपना अभिन्न सहचर बनाया और क्रमशः भौतिक क्षेत्र में आगे बढ़े। आज भी भौतिक सफलता के ये सिद्धान्त शाश्वत हैं। प्रगति का मार्ग हर किसी के लिए खुला पड़ा है बशर्ते कि वह कीमत चुकाने के लिए तैयार हो।

बेईमानी के शार्टकट द्वारा सम्पन्न बनने की अदूरदर्शिता हर दृष्टि से हानिकारक है। ऐसे व्यक्ति नीति-अनीति का भी ध्यान नहीं रखते। एक बार में ही अधिक कमाने की ललक उनसे कितने ही ऐसे कृत्य करा देती है, जिन्हें अपराध की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। मिलावट के धन्धे के कारण कितने ही निरपराधों को जीवन तक से हाथ धोना पड़ता है। अन्ततः लाभ उनका भी नहीं होता। अप्रामाणिकता की पोल खुलते ही हर व्यक्ति उनसे घृणा करता है और एक न एक दिन व्यवसाय ठप्प पड़ जाता है। यही बात अधिक कीमत लेने वाले, वस्तुओं के निर्माण का रास्ता गिराने वाले के साथ लागू होती है। भौतिक क्षेत्र में स्थायी रूप से वे ही आगे बढ़ते हैं जो प्रामाणिक तथा ईमानदार हैं—श्रमशीलता जिनका आदर्श है। अपने देश के भौतिक क्षेत्र में पिछड़ेपन का भी कारण यही है कि श्रम की अवमानना तथा प्रामाणिकता का अभाव। दुकानदार, कर्मचारी, व्यवसायी उद्योगपति भी अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह ठीक प्रकार करने लगें तो कोई कारण नहीं है कि देश की समृद्धि न बढ़े। व्यक्ति की भौतिक प्रगति भी इस लक्ष्य की पूर्ति पर ही निर्भर करती है।

लोकमानस का परिष्कार आवश्यक

व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित अगणित समस्याओं का उद्भव एक ही स्रोत से होता है। यह है—व्यक्तियों का बौना हो जाना। चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की दृष्टि से घटिया रहना। गरिमाओं के अवधारण की उपेक्षा करना। मर्यादाओं का व्यतिरेक और वर्जनाओं का उल्लंघन करना। आदर्शों से रहित व्यक्ति अनाचार पर उतरता है और उस राह पर चलता है जो कंटीले झाड़-झंखड़ों की तरह उलझाती, भटकाती है। भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट कर्तव्य ही वह कारण है जिससे असहयोग, अवरोध एवं विग्रहों का पग-पग पर सामना करना पड़ता है। अपना ओछापन ही बीज रूप में विकसित होकर वह विष वृक्ष बनता है, जिसके सान्निध्य में विपत्ति ही विपत्ति है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहने को तो विरोधियों, आक्रामकों, अभावों परिस्थितियों को कारण मानकर मन समझाया जा सकता है। भाग्य का प्रतिकूल होना कहकर किसी प्रकार अन्तर का बोझ हल्का किया जा सकता है। किन्तु इतने भर से किसी प्रकार का समाधान नहीं होता। काँटे से काँटा निकलता है। विष से विष मरता है। कठिनाइयाँ समाधान ढूँढ़े और किए बिना अपने आप ही तिरोहित नहीं हो जातीं। उनसे निपटने के लिए साहसिक पुरुषार्थ करना पड़ता है। सामान्य जनों की स्थिति नर-वानरों जैसी होती है। उनका मन निरर्थक और अनर्थमूलक कार्यों में ही उलझा रहता है। इनका नियमन और मार्गदर्शन आवश्यक है। बैल, घोड़े, ऊँट, हाथी आदि पशुओं को सीधी तरह चलने और उपयोगी कार्य करने के लिए तत्पर करने के लिए नाथ, लगाम, नकेल, अंकुश आदि नियंत्रणों की आवश्यकता पड़ती रहती है। इसके बिना उनकी समर्थता उच्छृंखलता में बदल जाती है और लाभ के स्थान पर हानि ही पहुँचती है।

संसार में अनगढ़ों का बाहुल्य है। उन्हें सन्मार्ग पर चलाने के लिए ऐसे मार्गदर्शकों की आवश्यकता पड़ती है जो उन्हें मात्र परामर्श ही न देते रहें वरन् अपना अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करके जनसाधरण को प्रगतिशीलता की, उत्कृष्टता की प्रेरणा दे सकें।

यों समर्थता और सम्पन्नता के लिए बलिष्ठता, शिक्षा, सभ्यता और सेवा आदि की आवश्यकता पड़ती है। पर सबसे प्रमुख और बड़ी बात है औचित्य का अधिग्रहण, सन्मार्ग का अनुसरण। इस आधार पर जो समर्थता अर्जित की जाती है, उससे दुहरा प्रयोजन सिद्ध होता है। एक यह कि विग्रह टलें और दूसरा यह कि प्रगति के द्वार खुलें। एक हाथ से ताली नहीं बजती। एक पहिये की गाड़ी भार वहन नहीं करती। इसी प्रकार दूसरों के द्वारा उत्पन्न किये व्यवधान ही समस्त अनर्थों की जड़ नहीं होते। खोट अपना भी रहता है। उसे सुधार सकना हर मनुष्य के अपने वश की बात है। व्यापक दुष्टता में तो तालमेल बिठाने और संघर्ष करने के दो मार्ग ही शेष रह जाते हैं। इन सभी प्रयोजनों की पूर्ति तब होती है जब व्यक्तित्व में समाहित घटियापन छटे और श्रेष्ठता का उन्नयन बन पड़े।

यह कार्य स्वयं नहीं हो जाता, वरन् प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य अनादिकाल से एक वर्ग विशेष करता आया है। उसे सन्त, ब्राह्मण, परिव्राजक, वानप्रस्थ, लोकसेवी आदि के नाम से पुकारा जाता रहा है। यह वर्ग अनगढ़ों को सुगढ़ बनाने का दायित्व सँभालता है। कुशल माली की तरह समाज को फलते-फूलते उद्यान की तरह लगाता और बढ़ाकर सुरम्य बनाता है।

सत्प्रवृत्तियों का महत्त्व लोग समझते तो हैं पर उन्हें अपनाते नहीं। दुष्प्रवृत्तियों के दुष्परिणामों की जानकारी तो नहीं होती पर उन्हें छोड़ते नहीं। इसका कारण निज की दूरदर्शिता का अभाव तो है ही साथ ही लोक प्रचलन भी एक बड़ा कारण है। मनुष्य स्वभाव अनुकरणप्रिय है। ऐसे लोग अँगुलियों पर गिनने जितने ही होते हैं जो उचित-अनुचित का गम्भीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करें और साहसपूर्वक उसी को अपनायें जो मानवीय गरिमा के अनुरूप है। होता यह है कि सम्पर्क क्षेत्र में जो कुछ होता रहता है उसी को स्वाभाविक और सरल मानकर अपना लिया जाता है।

संसार में विवेकवान कम और अनुकरणप्रिय अधिक हैं। ऐसी रीति-नीति अपनाने में बुद्धि पर दबाव नहीं पड़ता। अपनाने-छोड़ने के लिए स्वभाव को बदलना नहीं पड़ता। पृथक् राह चुनने और उस पर एकाकी चलने का साहस भी नहीं जुटाना पड़ता। इस सरलता के कारण लोग उसी राह पर चलते हैं जिस पर भीड़ का समूह चल रहा है। कहा जा चुका है कि संसार में पिछड़े, अनगढ़ और अदूरदर्शी ही भरे पड़े हैं। जिनका तात्कालिक लाभ ही सब कुछ होता है। भले ही उसके लिए अकर्म करना और पीछे पछताना पड़े। इस समुदाय का अनुसरण करने वाले सामान्य मनोभूमि के लोग भीड़ द्वारा अपनाई गई राह पर पदार्पण करते हैं और उन्हीं जैसा असंस्कृत क्रिया-कलाप अपनाकर स्वयं दुःख भोगते और समाज को दुर्गतिग्रस्त बनाते हैं। जहाँ ओछे-बौने लोगों का बाहुल्य होता है। वहाँ सुख-शान्ति की परिस्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती। प्रगति और सुरक्षा का माहौल नहीं हो सकता।

लोकमानस का परिष्कार सर्वतोमुखी समाधान का एकमात्र उपाय है। यह करना तो हर किसी को स्वयं पड़ता है। पर इसे कराने वाले अग्रगामी आगे बढ़कर बागडोर संभालें, तब काम चले। विशाल भवन, पुल, बाँध आदि बनाये तो मजदूरों द्वारा ही जाते हैं, पर उनका ढाँचा खड़ा करने, स्वरूप गढ़ने और शिल्पियों से काम कराने की जिम्मेदारी कुशल इन्जीनियर, आर्टिस्ट आदि ही उठाते हैं। इसके बिना श्रमिकों को मनमर्जी से काम करने की छूट देने पर तो जो बन पड़ेगा वह दोष युक्त, दिशाविहीन, निरर्थक स्तर का होगा।

जब समाज को स्वच्छंद छोड़ देने में उसका लक्ष्य तक पहुँच सकना कठिन है। रेल चल पड़े पर उसमें ड्राइवर न हो तो उस वाहन में भरपूर क्षमता होते हुए भी दुर्घटना ही बन पड़ेगी। लोगों को अपराधी प्रवृत्तियों से रोकने के लिए शासन तन्त्र द्वारा प्रयत्न किये जाते हैं, पुलिस, कचहरी, कानून आदि के साधन जुटाये जाते हैं। इसी के समकक्ष व्यक्तित्व को विनिर्मित करने वाले चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को कुमार्गगामी बनने से रोकने के लिए धर्म तन्त्र की समर्थता आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये जनमानस को दिशा देने वाले उस वर्ग की बड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें लोकसेवी, धर्म प्रचारक अथवा साधु-ब्राह्मण कहते हैं। उस समुदाय का अभिवर्द्धन व्यक्ति और समाज के अभ्युत्थान का आधारभूत कारण है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्त्व लोकमानस के परिष्कार का भी समझें

रोजी-रोटी का प्रश्न कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो पर हर किसी को वही सर्वोपरि मानने और उसी एक प्रयोजन को पकड़कर बैठने से काम नहीं चलेगा। यदि ऐसा ही सीमा बन्धन कस लिया जाय तो फिर चिकित्सा, वैज्ञानिक अनुसन्धान, सैन्य सज्जा, शिक्षा, कला, संगीत, संस्कृति जैसे उन सभी प्रयोगों को तिलाञ्जलि देनी होगी जो प्रत्यक्षतः रोजी-रोटी उपार्जन में सहायता करते प्रतीत नहीं होते। परोक्ष में रोजी-रोटी की समस्या हल करने में तो तत्त्वदर्शन की भी महती भूमिका देखी जा सकती है। श्रमशील, मितव्ययी, सद्गुणी, सुसंस्कृत जीवनक्रम अपनाने से भी रोजी-रोटी के प्रश्न का उतना ही सम्बन्ध है, जितना कि कृषि उद्योगों के माध्यम से दैनिक आवश्यकता की सामग्री उगाने का। दुर्गुणी व्यक्ति तो रोजी-रोटी का बाहुल्य होने पर भी उससे अपने लिए और दूसरों के लिए मात्र संकट ही उत्पन्न करते रहते हैं।

रोजी-रोटी के प्रश्न की उपेक्षा, अवहेलना, अवमानना न करते हुए भी यह समझना होगा कि चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश पेट भरने से कम महत्त्व का नहीं है। शरीर को जीवित रहना चाहिए, यह ठीक है पर यह भी गलत नहीं है कि आत्मा को तो न मरने-सड़ने देना चाहिए और न व्यक्तित्व का पतित पिछड़ा, गया-गुजरा रहना ही सहन होना चाहिए। प्रयत्न होना चाहिए कि दोनों को ही स्वस्थ-समर्थ रहने का अवसर मिले।

प्रमुखता व्यक्तित्व को परिष्कृत करने—अन्तराल को सद्गुणों से सम्पन्न करने—जीवनचर्या की आदर्शवादिता अपनाते हुए गौरवान्वित करने की बात को मिलनी चाहिए। इसलिए यदि कुछ युग मनीषी उसी को अपना कार्यक्षेत्र चुनें और रोजी-रोटी का प्रश्न राजनीतिज्ञों, धनाध्यक्षों, वैज्ञानिक तथा अगणित क्रियाकुशल लोगों के लिए छोड़ दें तो हर्ज नहीं। सैनिक जिस महत्त्वपूर्ण सुरक्षा कृत्य में संलग्न हैं, उसे देखते हुए उन पर कोई यह लांछन नहीं लगा सकता कि वे धन सम्पदा कमाने और कृषि उद्योग बढ़ाने में क्यों नहीं लगते ? सैनिक उत्तर भले ही न दें पर दूरदर्शिता कह सकती है कि यदि सैनिकों के अभाव में सुरक्षा पंक्ति कमजोर होगी तो शत्रुओं के आक्रमण, अन्तःविग्रह जैसे संकट खड़े होने और जो कमाया जा चुका है वह भी हाथ से चला जायगा। इसलिए उत्पादन बढ़ाने की तरह ही सुरक्षा पंक्ति को मजबूत करने के लिए सेना में भर्ती होना और युद्ध कौशल में प्रवीण होना भी आवश्यक है। ठीक यही बात युग मनीषा पर लागू होती है। उसके लिए लोकमानस के परिष्कार को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाने और एकात्म भाव से उसमें तन्मय-तत्पर होने के लिए अनुरोध करने में ही दूरदर्शिता है।

किया क्या जाय ? इसका उत्तर एक ही है कि मानवी अन्तराल में आदर्शवादी आस्थाओं का बीजारोपण—अभिवर्द्धन करने की बात को सामयिक समस्याओं का समाधान मानकर चला जाय। सड़ी कीचड़ से ही मक्खी, मच्छर, कृमि-कीटक, दुर्गन्ध भरे विषाणु उत्पन्न होते हैं। उनमें से एक-एक को बीन-बीनकर मारते रहने का, थकाने और निराश करने वाले काम हाथ में लेने की अपेक्षा यही अधिक अच्छा है कि हिम्मत करके एक बार सड़ी नाली को पूरी तरह बुहार दिया जाय। आहार-विहार का असंयम न छूटा तो रुग्णता और दुर्बलता भी पल्ले बँधी ही रहेगी। भले ही टॉनिकों और इन्जेक्शनों पर पर्वत जितनी धनराशि खर्च की जाती रहे। अन्यान्य प्राणी प्रकृति-परायण मर्यादित जीवन जीते और स्वस्थ, प्रसन्न जीवन जीते हैं, यही बात यदि मनुष्य के गले उतारी जा सके तो वह गरीबी में भी वनवासी, आदिवासियों की तरह परिपुष्ट दीर्घ जीवन सहज ही उपलब्ध कर सकता है। अन्यान्य समस्याओं के सम्बन्ध में यही बात है। मानसिक असन्तुलन, उद्वेग, तनाव परिस्थितियों के कारण नहीं मनःस्थिति की विपन्नता के कारण उत्पन्न होता है। दरिद्रता स्वनिर्मित है। आलसी, प्रमादी, अपव्ययी ही प्रायः आर्थिक कठिनाइयों का रोना रोते देखे जाते हैं। पुरुषार्थी तो पहाड़ की चोटियों पर धान उगाते और चट्टानें तोड़कर जलस्रोत उभारते देखे गये हैं। पारिवारिक कलह में कुसंस्कारी वातावरण और गलत रीति-नीति का अवलम्बन ही प्रमुख कारण होता है। हर परिजन को यदि आरम्भ से ही सुसंस्कारी, स्वावलम्बी, शिक्षित और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने वाले ढाँचे में ढाला जाय तो कोई कारण नहीं कि कुटुम्बीजन हिल-मिलकर रहने, एक दूसरे को स्नेह, सम्मान, सहयोग प्रदान करने में कोताही दिखायें। समाज में प्रचलित भ्रष्ट परम्पराएँ और अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ जड़ें तभी जमाती हैं, पैर वहीं अड़ाती हैं जहाँ कुकर्मी और कायर लोग उन्हें सहन करते, समर्थन देते हैं। जहाँ चरित्रनिष्ठा जीवन्त होगी वहाँ सामाजिक कुप्रचलनों को उगने-पलने की नौबत ही न आयेगी।

इस दृष्टि से व्यक्ति और समाज के सम्मुख उपस्थित सभी समस्याओं का एक ही कारण सिद्ध होता है—व्यक्ति का ओछा दृष्टिकोण और घिनौना चरित्र यदि इस मर्मस्थल को सुधारा जा सके तो समझना चाहिए कि समस्त समस्याओं का हल मिल गया। "एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।" वाली उक्ति इस प्रसंग में शत प्रतिशत सही सिद्ध होती है। यदि आस्था संकट से निपटा जा सके तो समझना चाहिए हर क्षेत्र को विपन्न बनाने वाले पतन-पराभव से—शोक-सन्ताप से सदा सर्वदा के लिए पीछा छुड़ाने वाला हल मिल गया।

इस सन्दर्भ में प्रत्यक्षतः क्या-क्या किया जाना चाहिए ? व्यावहारिक कदम क्या उठने चाहिए ? कार्य का बीजारोपण, अभिवर्द्धन और उपलब्धियों का संग्रह संकलन किस क्रम से होना चाहिए ? इन प्रश्नों का उत्तर एक ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो सकता है कि उन सभी अवलम्बनों को अपनाया जाय जो मानवी चिन्तन को प्रभावित करके, दृष्टिकोण एवं स्वभाव बनाने की भूमिका सम्पन्न करते हैं।

जन-जन को यह सुझाया जाना चाहिए कि वह किसान, विद्यार्थी, व्यापारी, पहलवान से यह शिक्षा ग्रहण करे कि भविष्य की सुखद सम्भावना को महत्त्व दिया जाय और इसके लिए प्रारम्भ में कुछ बोना, लगाना, सहना पड़ता है, उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जाय। वह आतुरता न बरती जाय जिसके कारण चिड़िया जाल में—मछली काँटे में—चींटी चासनी में फँसती और बेमौत मरती है। इतने भर के लिए यदि लोक चिन्तन को सहमत किया जा सके और इस कसौटी पर अपनी मान्यताओं-आदतों और गतिविधियों की जाँच-पड़ताल करने का उत्साह जग पड़े तो समझना चाहिए कि विचार क्रान्ति आरम्भ हुई। विघातक अवांछनीयता से पीछा छूटा और सुखद सम्भावना से भरा-पूरा प्रभाव उगा।

यह समझदारी कैसे उगे ? इसका एक ही उपाय है कि भले और बुरे दोनों पक्षों को सामने रखकर यह समझने का अवसर दिया जाय कि उनके दूरगामी परिणाम क्या होते हैं ? सच तो यह है कि दो में से एक को चुनने का इन दिनों अवसर ही नहीं रहा। सर्वत्र एक ही प्रकार की विडम्बना का साम्राज्य है। आदर्शवाद की सुखद सम्भावनाओं को समझने-समझाने का जब कोई आधार ही नहीं रहा तो फिर अभ्यस्त अनाचार के दुष्परिणामों की ओर ध्यान ही क्यों हो। अभ्यास तो ऐसी बुरी बला है कि मनुष्य सड़न और घुटन तक को छोड़ने में आना-कानी करता है। युग मनीषा को अवांछनीयता के प्रति लोकमान्यताओं के दुराग्रह के विरुद्ध व्यापक मोर्चा खड़ा करना है।

चिन्तन को—दृष्टिकोण को प्रभावित करने के लिए जिन आदर्शवादी प्रतिपादनों की आवश्यकता है, उन्हें चार माध्यमों से प्रस्तुत किये जाने की परम्परा है। यदि उनका निर्वाह ठीक तरह बन पड़े तो फिर हृदयंगम करने में भी बहुत हद तक सफलता मिल सकती है। यह चार आधार इस प्रकार हैं—(१) प्रवचन परामर्श, (२) साहित्य अध्ययन, (३) दृश्य घटनाक्रम, (४) अनुरूप कृत्यों में सम्मिलित होने, हाथ बँटाने का उपक्रम। यह चारों अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने स्तर की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और व्यक्ति को किसी भी दिशा में मोड़ने-मरोड़ने में बहुत हद तक सफल होकर रहते हैं।

विश्ववसुधा के मुकुट पर चमकते ये मुक्तकमणि

सिद्धान्तों-आदर्शों की चर्चा करना एक बात है और उनका परिपालन दूसरी। चर्चा एवं व्यवहार में इनकी एकरूपता स्थापित हो जाने पर महानता के पथ पर अग्रसर होने का सुदृढ़ आधार बन जाता है। यह न हुआ तो स्थिति उपहासास्पद हो जाती है। सिद्धान्त एवं आदर्श आचरण में न उतर पाने के कारण कोई प्रभाव नहीं दिखा पाते और वाक् विलास के साधन मात्र बनकर रह जाते हैं। इसके विपरीत जब ये वाणी तक ही सीमित न रह कर चरित्र में घुलकर व्यवहार के अंग हो जाते हैं, तो जनमानस को सत्प्रेरणा देने के सशक्त आधार बन जाते हैं।

ईमानदारी, प्रामाणिकता, चरित्रनिष्ठा की परख तो विशिष्ट अवसरों पर हुआ करती है। परीक्षा की घड़ियों से गुजरने के पूर्व तो हर व्यक्ति ईमानदार, चरित्रनिष्ठ है। किन्तु इस यथार्थता का बोध कसौटी पर कसने से होता है। सोने की वास्तविक परख अग्नि में तपने के बाद होती है। आग से दूर रहकर तो हर चमकदार वस्तु सोना होने का दावा कर सकती है, किन्तु अग्नि-परीक्षा से गुजरने के बाद यह प्रामाणित होता है कि वस्तुओं का दम्भ कितना मिथ्या था। प्रायः अधिकांश व्यक्ति बातें आदर्शों एवं सिद्धान्तों की करते हैं। किन्तु देखा यह जाता है कि अवसर प्रस्तुत होते ही उनमें से अधिकतर टिके नहीं रह पाते। लोभ-मोह के प्रवाह उन्हें बहा ले जाते हैं। उस समय तात्कालिक लाभ ही सूझता और उपयोगी प्रतीत होता है। लाभ उठाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। इस युग प्रवाह में डूबते-उतरते-बहते समाज के विपुल समुदाय को आज सर्वत्र देखा जा सकता है।

थोड़े से व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनकी ईमानदारी अडिग और अटूट होती है। बड़ी से बड़ी हानि उठाकर भी वे अपनी इस विशेषता की रक्षा करते हैं। लोभ-मोह के अवसर उन्हें विचलित नहीं कर पाते। अपनी प्रामाणिकता को हर कीमत पर अक्षुण्ण रखने का प्रयास करते हैं, चाहे उन्हें इसके लिए कितनी भी कष्ट-कठिनाइयाँ क्यों न उठानी पड़ें। यह वर्ग ही समाज का मेरुदण्ड होता है। देश-जाति और इतिहास ऐसे ही व्यक्तियों से धन्य बनता और आगामी पीढ़ियों के श्रद्धा सुमन चढ़ते हैं।

प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ जीवन-भर घोर विपन्नता और अभावों से ग्रस्त रहे। यहाँ तक कि पेट भरने के लिए भोजन और ठंड से बचाव के लिए वस्त्रों तक की आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में न हो सकी। जीवन-भर कठोर श्रम करते हुए किसी तरह आजीविका का प्रबन्ध करते रहे। वे चाहते तो अपनी साहित्य कृतियों के आधार पर सम्पदा अर्जित कर सकते थे लेकिन यह तो उनके आदर्शों के खिलाफ था। उन्हीं दिनों राबर्ट वाल्पोल अपनी पार्टी के प्रचार के लिए ५० हजार पौंड प्रतिवर्ष लेखन कार्य पर खर्च करता था। उसने गोल्डस्मिथ को भी इस कार्य के लिए आमंत्रित किया। तब गोल्डस्मिथ ने उत्तर दिया—'किसी पार्टी के लिए अपनी कलम बेचने की अपेक्षा मैं अपनी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी कर सकता हूँ। आपकी सहायता की मुझे कोई जरूरत नहीं।'

चार्ल्स द्वितीय ने अपने ऐश्वर्य-विलास के साधन जुटाने के लिए राजकीय सम्पत्ति को बेचना आरम्भ किया। उसने चंद चाँदी के टुकड़ों के सहारे राज्य के सभी प्रमुख

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों को अपने साथ मिला लिया। लेकिन संसद सदस्य मार्बल एक ऐसा दृढ़ चरित्र सम्पन्न व्यक्ति था, जिसे चार्ल्स का कोई भी प्रलोभन नहीं खरीद सका। उसने राजा की अनैतिक गतिविधियों के विरुद्ध जन आन्दोलन खड़ा किया। चार्ल्स के संकेत पर राज्य के कोषाध्यक्ष ने मार्बल को भारी रकम देकर डिगाना चाहा। एक हजार पौंड की उस समय बड़ी कीमत थी—उसे लौटाते हुए मार्बल ने कहा—"मुझे पता है आप मुझ पर यह कृपा क्यों कर रहे हैं, लेकिन मैं भी कर्त्तव्य पथ से किसी कीमत पर विचलित नहीं हो सकता। ईश्वर ने जीवन-निर्वाह की पर्याप्त सामर्थ्य मुझे दी है।" मार्बल मृत्युपर्यन्त अवांछनीयता के विरुद्ध लड़ता रहा। उसकी समाधि पर अब भी ये शब्द अंकित हैं—"सदाचारी व्यक्ति उसके प्रति श्रद्धा रखते थे लेकिन दुराचारी डरते थे। कई लोग उसके अनुयायी थे लेकिन उसकी महानता की तुलना कोई नहीं कर सकता।"

वैज्ञानिकों के इतिहास में सर हेंफरी डेबी और फैराडे ने ऐसा आदर्श चरित्र प्रस्तुत किया जिस पर मानव जाति के श्रद्धा सुमन सदैव चढ़ते रहेंगे। हेफरी डेबी ने खदानों में काम करने वाले मजदूरों को आजीविका उपार्जन के लिए जब जीवन-मृत्यु के बीच झूलते देखा तो सिंहर उठे। सोचने लगे—क्या इनके असुरक्षित जीवन के लिए कुछ किया जा सकता है ? इसी दिशा में निरन्तर चिन्तन, प्रयोग-परीक्षण और संकल्पबल के सहारे 'सेफ्टीलैंप' के आविष्कार में अन्ततः सफलता प्राप्त करली।

उन्होंने उसे पेटेन्ट करवा कर धन कमाने के बजाय जनता में बिना किसी मूल्य के प्रचलित कर दिया। इस पर उनके मित्र ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"यदि तुम इसे पेटेन्ट करवा देते, तो पाँच या दस हजार वार्षिक कमा सकते थे।" तब डेबी ने उत्तर दिया—"मेरा तो उद्देश्य मानवता की सेवा करना है न कि धन कमाना। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मेरे अपने दो हाथ पर्याप्त हैं। अधिक धन मुझे पथ-भ्रष्ट कर देगा, धन-सम्पत्ति से न तो मनुष्य को यश मिलता है और न ही आन्तरिक सन्तोष।"

डेवी का शिष्य फैराडे भी विज्ञान का महान साधक था। उसने भी अपने सभी आविष्कारों को पेटेन्ट न करवा कर निर्धनता को ही स्वीकार किया। मेडम क्यूरी व पेरी क्यूरी ने भी रेडियम के आविष्कार को जन-सामान्य में प्रचलित कर दिया। क्यूरी दम्पत्ति ने केवल आविष्कारक थे वरन् महान् जनसेवी भी थे। वे अपने आविष्कार से लाखों की सम्पत्ति कमा सकते थे लेकिन उन्होंने अभावपूर्ण जीवन को हँसते-हँसते स्वीकार किया। उन्होंने स्वयं अपने हाथों से कितने ही गरीब रोगियों की उपचार व सेवा-सुश्रूषा की।

फ्रांस के प्रसिद्ध वकील चेमिलार्ड के जीवन की एक घटना से उनकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। चेमिलार्ड एक मुकदमा इसलिए हार गये क्योंकि उन्होंने भूलवश एक महत्त्वपूर्ण कागज अदालत को नहीं दिखाया। चेमिलार्ड स्वयं अनभिज्ञ थे कि वह कागज उनके पास है। मुवक्किल हानि का यह आघात सहन नहीं कर सका। उसने क्षोभ और क्रोध में भरकर कहा कि "आपकी छोटी-सी गलती से मैं बरबाद हो गया।" बाद में ढूँढ़ने पर वह कागज उन्हें अपने बैग में मिल गया। परन्तु उस मुकदमे की पुनः कोई अपील न हो सकी। इस पर वकील ने मुवक्किल की क्षतिपूर्ति अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देकर की लेकिन प्रामाणिकता पर किसी प्रकार की आँच न आने दी।

ग्राह्म ने घड़ी निर्माण के क्षेत्र में कुछ ही दिनों में प्रसिद्धि प्राप्त करली। उसकी यह विशेषता थी कि काम करते समय उसका पूरा ध्यान अपनी बनाई वस्तु के गुण और उपयोगिता पर रहता था। जब तक वह अपने काम को सर्वोत्तम ढंग से नहीं कर लेता तब तक उसे सन्तोष नहीं मिलता। एक बार एक भारतीय ने उससे एक घड़ी खरीदी। ग्राह्म ने घड़ी बेचते हुए कहा "यदि आप इसमें कुछ मिनटों का भी अन्तर पायें तो मैं आपके दाम लौटा दूँगा" सात वर्ष बाद वह व्यक्ति भारत से लौटा। उसने ग्राह्म से कहा—"घड़ी में कुछ सैकेण्डों का अन्तर हो जाता है फिर भी घड़ी बहुत अच्छी है अन्तः इसे वापस नहीं करूँगा।" लेकिन ईमानदारी की कसौटी पर हर बार खरा सिद्ध होने वाला ग्राह्म इस पर कैसे सन्तोष करता ? बहुत कहने समझाने के बावजूद भी ग्राह्म ने घड़ी वापस ले ली और उसके दाम लौटा दिये।

ईमानदारी, प्रामाणिकता और चरित्रनिष्ठा की कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यक्ति जनसामान्य के बीच प्रकाशस्तम्भ की तरह होते हैं। अपनी दृढ़ चरित्रनिष्ठा पर स्वयं गौरव और आत्मसन्तोष तो अनुभव करते ही हैं, देश, जाति और इतिहास भी ऐसे व्यक्तियों से धन्य बनता है।

सम्मान आदर्शवादिता को ही मिलना चाहिए

अच्छे-बुरे उपायों से, जिस प्रकार भी सम्भव हो, उसी प्रकार लोग धन अर्जित करने के लिये क्यों लालायित रहते हैं ? इसलिए कि इन दिनों धनवान होना सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का माध्यम बन गया है। किसने कैसे कमाया ? इसका कहीं विश्लेषण नहीं किया जाता। देखा यह जाता है कि कौन कितना सम्पन्न है ? किसके पास विलासिता और ऐश्वर्य के कितने साधन उपलब्ध हैं ? इस कसौटी पर जो धन सम्पन्न दिखाई देता है, लोग उसी का आदर करने लगते हैं तथा उसी का दबदबा मानने लगते हैं। धन और सम्पन्नता को मिलने वाली प्रतिष्ठा देखकर वे लोग भी भले-बुरे उपायों से अर्थोपार्जन करने लगते हैं, जो कम सम्पन्न हैं या जिनकी आर्थिक स्थिति दुर्बल है।

सम्पन्नता को सम्मान मिलना बुरी बात नहीं है। उसका होना इस बात का द्योतक है कि व्यक्ति परिश्रमी, उद्यमी, पुरुषार्थी और साहसी है। लोग उसके इन गुणों का आदर करें, यह उचित है परन्तु जब केवल सम्पन्नता को ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मान का एकमात्र आधार मान लिया जाता है तो अनर्थ वहीं से होने लगता है। वैसे सम्पन्न व्यक्ति को प्रतिष्ठा अर्जित करने, सम्मान और यश प्राप्त करने का कोई विशेष अधिकार नहीं है। सम्पन्न व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से धन कमायें और उससे मौज उड़ायें, इसी से उनके पुरुषार्थ का पुरस्कार मिल जाता है, जो पर्याप्त है। उन्हें थोड़ा-बहुत आदर दिया जा सकता है किन्तु सम्पन्नता की चकाचौंध से चकित होकर जो व्यक्ति ऐसे लोगों को किसी बहाने विशेष सम्मान या यश देने का प्रयत्न करते हैं, वे देवग्रास को देवताओं से छीनकर कौरवों को देने जैसी विडम्बना रचता है। इसी प्रकार सम्पन्न व्यक्ति केवल अपने वैभव के आधार पर ही प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह भी अनुचित है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि सम्मान एक प्रकार का प्रोत्साहन है और यश लोगों को उस दिशा में प्रयत्नशील होने के लिये उत्तेजित करता है, जिसमें कि यश मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह ललक छिपी रहती है कि उसे सम्मान मिले, यश प्राप्त हो, लोग उसे सराहें तथा आदर की दृष्टि से देखें। जब किसी को सम्मान मिलता है तो लोग देखते हैं कि यह आदर किसलिये दिया जा रहा है। उनमें भी वही कुछ करने और वैसा बनने की उमंग उठती है, जिससे कि सम्मान प्राप्त हुआ। दुर्भाग्य से इन दिनों धन, सम्मान और प्रतिष्ठा का मापदण्ड बना हुआ है इसलिये हर किसी में धनवान बनने की होड़ मची हुई है। सम्पन्नता के लिय प्रयत्न करना अनुचित नहीं है, अनुचित है इसके लिये भले-बुरे सभी तरह के उचित-अनुचित उपायों का अपनाया जाना और जब धन को प्रतिष्ठा मिलने लगी तो नैतिक मूल्यों को भी ताक पर रखा जाने लगा है।

मध्यकाल में विजेता, सामन्त, जागीरदार यश और सम्मान के पात्र समझे जाते थे। उन्होंने अपनी यशगाथायें लिखाईं और इसके लिये भाटों, चारणों को आजीविका दी। प्रशंसकों को पैसे के बल पर खरीदा। आदर्श के लिये युद्ध करना और उसमें विजय प्राप्त करना अथवा खेत रहना तो अभिनन्दनीय हो सकता है पर दूसरे पड़ौसी को निर्बल पाकर उसकी सम्पदा लूटने तथा युवा लड़कियों को, कुल-वधुओं को अपहृत कर ले जाने, प्रजा को रौंद डालने, स्वस्थ नर-नारियों को पकड़ कर ले जाने तथा उन्हें गुलाम बनाकर रखने की प्रवृत्ति हर दृष्टि से गर्हित ही है किन्तु उनकी प्रशंसा में जब काव्य लिखे जाने लगे, यशोगान गाये जाने लगे तो सामान्य जनों में भी वैसी ही दुष्प्रवृत्तियाँ पनपीं। परिणामस्वरूप मध्यकाल का अन्धकार युग आया जिसमें भारतीय समाज हर दृष्टि से दीन-दुर्बल बना। कई कुरीतियाँ पैदा हुईं और लोगों के नैतिक एवं चारित्रिक स्तर में गिरावट आई।

सम्मान एक प्रकार का मूल्यांकन है और उपहार भी। मूल्यांकन इस बात का कि उस सम्मान का आदर्श क्या है और उपहार उसके लिये जिसने बिना कोई प्रत्यक्ष लाभ उठाये वह काम किया जिसके लिये वह सम्मानित हुआ। प्राचीनकाल के स्वर्ण युग में सम्मान न तो विजेता सामन्तों या सम्राटों को दिया जाता था और न ही धनिकों को। मनीषियों ने उन दिनों यह परम्परा निर्धारित की थी कि अभिनन्दन और अभिवन्दन केवल साधु-ब्राह्मणों का ही किया जाये। साधु अर्थात् पारमार्थिक प्रयोजनों के लिये पूर्णतया समर्पित लोकसेवी और ब्राह्मण अर्थात् चरित्रवान मानवी आदर्श का प्रतिनिधि। इन दो के अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य लोकसम्मान या अभिनन्दन की दृष्टि से निषिद्ध ही रहे हैं।

शासक के पास सत्ता है, पद है, भय और लोभ से दूसरों को प्रभावित करने की सामर्थ्य है। उसके लिये बस इतना ही पर्याप्त है। लोक अभिनन्दन प्राप्त करने के लिये उसे लालायित नहीं होना चाहिये और न ही विचारशील व्यक्तियों को उसे अभिनन्दित करने की चेष्टा करनी चाहिए। धनिकों के लिये भी यही बात लागू होती है। कोई व्यक्ति अमीर बना, सम्पत्ति कमाई, धनवान और भाग्यवान कहलाया, उस अर्जित सम्पदा से उसके अहंकार की पूर्ति हुई, विलास-वैभव के साधन मिले। इसमें यश की क्या बात ? कोई उसकी प्रशंसा क्यों करे ? उनसे कोई क्यों प्रभावित हो ? उन्होंने जो कुछ प्रयत्न-पुरुषार्थ किया, उसका लाभ उन्हें मिल गया।

सम्मान उन्हें दिया जाना चाहिए जिन्होंने अपनी भौतिक महत्वाकांक्षाओं से मुँह मोड़कर परमार्थ प्रयोजनों के लिये अपनी सामर्थ्य जुटा दी। जिन्होंने अपनी सारी सामर्थ्य, महत्वाकांक्षा तथा सम्भावनाओं को परमार्थ के लिये लुटा दिया, अभिनन्दन उनका किया जाना चाहिए। जिनका पुरुषार्थ अपने निज के लिये नहीं दूसरों के लिये काम आया और उच्च आदर्शों के लिये जिन्होंने स्वयं को खाली हाथ रखने के लिये तैयार रखा, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर कम से कम कुछ तो यह भार हलका किया जाना चाहिए। यह इस बात का भी द्योतक होगा कि जनमानस में उत्कृष्टता के लिये कम से कम श्रद्धा दे सकने की वृत्ति तो जीवित है। इससे उन त्यागी, परमार्थ परायण नर शार्दूलों को भी सन्तोष होगा कि उनकी सेवा-साधना और निज समर्पण को स्वीकारा तथा महत्त्व दिया गया है।

इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आदर्शवादिता को जीवित रखने के लिये उसका उपहार लोकश्रद्धा के रूप में पूर्णतया सुरक्षित रहना चाहिए। सम्मान और प्रतिष्ठा केवल उन्हें ही मिले जिन्होंने मानवीय आदर्शों को जीवित रखने के लिये अपनी महत्वाकांक्षाओं का गला घोंटा। कहा जा चुका है कि सम्मान एक प्रोत्साहन है जो प्रस्तुत दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। इसके लिये आदर्शवादिता को अभिनन्दित करने की परिपाटी चलानी चाहिए तथा ऐसे आयोजनों का व्यापक प्रचलन करना चाहिए, जिनमें आदर्शों को अपनाने वाले व्यक्तियों का सम्मान किया जाये ताकि अन्य लोगों को भी इस दिशा में बढ़ चलने की प्रेरणा मिल सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भव हो तो इस तरह का अभिनन्दन क्रम चलाने के लिये कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों की एक समिति बनाई जाये और ऐसी विभूतियों को ढूँढकर तलाश लिया जाये जिन्होंने लोकमंगल के लिये त्याग और बलिदान करने का साहस दिखाया। ऐसी विभूतियों को तलाश कर कम से कम ऐसे आंतरिक आयोजन तो किये ही जा सकते हैं जिसमें लोग उनके सत्कार्यों के लिये अपनी श्रद्धा समर्पित करने के लिये कम से कम पुष्पहार, गुलदस्ते तो अर्पित करें ही।

यह अभिनन्दन न केवल उन व्यक्तियों का है जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से समाज को उपकृत किया बल्कि उस प्रक्रिया प्रवृत्ति का भी सम्मान है, जिस पर लोगों को अग्रसर करने की आवश्यकता है। दिवंगत विभूतियों के जन्मदिन, जयन्ती, उत्सव और पुण्यस्मरण का प्रचलन किया जा सकता है। उनकी यशगाथा पुस्तकों और पत्रिकाओं में प्रकाशित करानी चाहिए। ऐसे महामानवों की स्मृति में मुहल्लों, सड़कों, स्कूलों, पुस्तकालयों और उद्यानों के नाम रखे जा सकते हैं। उनके नाम पर वृक्ष लगाये जा सकते हैं। ऐसे आयोजन किये जा सकते हैं, जिनमें उन महापुरुषों के कार्यों की चर्चा की जाए। इस तरह उन महापुरुषों के चरणों में भावभरी श्रद्धा प्रस्तुत करने के व्यापक प्रयत्न चलने चाहिए। सम्मान और अभिनन्दन का यह क्रम चल पड़े तो लोगों को आदर्शवादिता का अनुकरण करने के लिये सहज ही प्रेरित-प्रोत्साहित किया जा सकता है।

आदर्शों की पराकाष्ठा हमारी सांस्कृतिक धरोहर

लोगों द्वारा आदर्शवादिता की बात करने और बड़े-बड़े तर्क देने के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था—"तुम आदर्शों की बात करो और उससे व्यवहार में न उतारो तो तुमसे चोर-डाकू और लुटेरे अच्छे हैं। क्योंकि उनके जीवन में कथनी और करनी का अन्तर तो नहीं रहता।" इस उक्ति के सन्दर्भ में आज भी ज्ञान जग जाय तो यह शत प्रतिशत सही सिद्ध होगी। लोग आदर्शों तथा सिद्धान्तों का चिल्लाकर समर्थन करते हैं पर अपने सामान्य जीवन में उन आदर्शों को कहीं छूते तक नहीं।

आदर्शवादिता की प्रवंचना करने वाले लोगों की कमी नहीं है। बल्कि कहा जाना चाहिए अधिक है। उदाहरण के लिए आज के समय में दहेज प्रथा का विरोध करने वालों को ही लिया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि इस प्रथा का अन्त किया जाना चाहिए, मानता और कहता भी है। पर कितने लोग हैं जो इस कथनी को करनी में भी निभाते हैं। जब अवसर आता है तो मजबूरी कहकर या दूसरे पक्ष का दबाव बताकर अपने बचाव का रास्ता खोजते हैं। कन्या के सम्बन्ध में तो मजबूरी किसी प्रकार समझ भी आती है पर पुत्र के विवाह में क्या मजबूरी आ जाती है। उस समय लोग कह देते हैं कि उसकी माँ ने दबाव डाला था या घर के अन्य दूसरे सदस्य ने मजबूरी उत्पन्न कर दी थी।

जो भी हो यह है प्रवंचनापूर्ण और न केवल दहेज के सम्बन्ध में वरन् व्यक्तिगत दोष-दुर्गुणों से लेकर सामाजिक कुरीतियों तक के आगे घुटने टेक देने में; यह दोहरी नीति आदर्श और व्यवहार के बीच में खाई उत्पन्न कर देती है। उस तरह जैसे कहने की बात कोई दूसरी होती है और करने की दूसरी। जबकि आदर्श होते ही जीवन में उतारने के लिए हैं। कहा जा सकता है उनकी प्रतिष्ठा ही जीवन जीने के एक ढंग की तरह होती है। उनमें ही जीवन की सार्थकता खोजी जाती है और वे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को सुख-शान्ति सम्पन्न बनाने के लिए ही स्थापित किये जाते हैं।

लेकिन हम उनकी प्रवंचना करते हैं कि हम समझते हैं आदर्श जीवन की बोझिल और क्लान्त बनाते हैं। जीवन को खुशहाल बनाने के लिए हम आदर्शों को एक कोने में डाल कर उस पुण्य धाम में कूड़ा-कबाड़ा इकट्ठा करते रहते हैं। सत्य, न्याय, त्याग, प्रेम, पवित्रता, उदारता, सहिष्णुता, करुणा, क्षमा जैसे आदर्शों से जीवन उदात्त और आनन्दपूर्ण बनता है। इन आदर्शों को अपनाने वाला व्यक्ति अपनी चेतना में आनन्द और शांति की ऐसी धारा प्रवाहित करता है, जिसमें नहा कर अन्य लोग भी प्रफुल्लित हो उठते हैं। इनके विपरीत असत्य, अन्याय, स्वार्थ, रुक्षता, मलीनता, कृपणता, आवेश, क्रूरता और प्रतिहिंसा की भावनायें न जागते जीने देती हैं और न सोते चैन लेने देती हैं।

आदर्शों के लिए हमारे मनीषियों ने एक अनूठा शब्द खोजा है—जीवन मूल्य अर्थात् जीवन ही जिसका मूल्य है। उनके महत्त्व की कल्पना या तुलना इससे कम में की ही नहीं जा सकती। मनुष्य को सबसे बढ़कर जीवन ही प्रिय है। चाहे करोड़ों रुपया हो पर जीवन संकट में पड़ा हो तो उसे बचाने के लिए सारी सम्पत्ति भी खोने को आदमी तैयार हो जाता है। धन-सम्पत्ति ही नहीं, विद्या, अधिकार, ज्ञान, परिवार, पत्नी, बच्चे, समाज सब कुछ जीवन की तुलना में गौण लगता है और यह विस्मय-विमुग्ध कर देने वाली बात है कि जिस जीवन की तुलना में सब कुछ तुच्छ हैं वह जीवन आदर्शों के लिए बलि चढ़ा देना श्लाघनीय समझा गया है। यही है हमारी संस्कृति की धरोहर—आदर्शों की पराकाष्ठा।

भारतीय संस्कृति के इतिहास का पन्ना-पन्ना इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। जिन लोगों ने जीवन के लिए की जाने वाली कुर्बानियों को आदर्शों के लिए कर दिया, उन्होंने भी भारतीय-धर्म ने अवतार कह कर सम्मानित किया। भगवान राम ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए राजमहल में उपलब्ध होने वाली सुख-सुविधाओं का त्याग किया और जंगल में वनवासी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनकर रहे। लक्ष्मण ने अपने भाई के प्रति कर्तव्य पालन के लिए तमाम सुख-सुविधाओं को छोड़ दिया। भ्रातृ प्रेम का इतना अनूठा उदाहरण संसार में कहीं और देखने को नहीं मिलेगा और राम का सारा जीवन तो आदर्शों के पालन के लिए, त्याग और उत्सर्ग का है। दुराचारी रावण का अन्त करने के लिए एकाकी रहते हुए भी उन्होंने कितना बड़ा खतरा मोल ले लिया था।

राम को तो हम भगवान मानते हैं और समझते हैं कि उनका जन्म ही इन आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए हुआ था। भगवान होने के कारण उनके अनुकरण को हम अपनी सामर्थ्य से बाहर का भी समझें तो श्रवणकुमार जैसे छोटे से बालक का उदाहरण सामने है। जिसने अपने माता-पिता की आकांक्षा पूरी करने के लिए उन्हें पूरे भारत में कन्धे पर रखकर घुमाया।

अपने मनोविकारों पर विजय प्राप्त करने के भी अनूठे उदाहरण भारतीय इतिहास में मिलते हैं। किसी लेखक के कामोद्दीप्त वातावरण में शुक की अचलता का चित्र इस प्रकार खींचा है—'वसन्त ऋतु अपना सारा उन्माद और वैभव वहाँ फैला देती है। कोकिल उत्कट प्रेम भावना से कुहू-कुहू करती है। फूलों से खुशबू निकल रही है। प्रसन्न हवा बह रही है। नये पल्लव और कोंपले फूटी हुई हैं। मानो सारा वातावरण मादक हो रहा है और वहाँ अप्रतिम सुन्दरी रम्भा अनेकों विलासी हाव-भाव बताती हुई खड़ी है। उसके वस्त्र हवा के झोंकों में उड़ रहे हैं, जैसे सारी सृष्टि आसमान तक सुन्दरता से ओत-प्रोत हो रही है। रम्भा शुक को आलिंगन भी करती है पर शुक का एक रोम भी खड़ा नहीं होता।'

शिवाजी द्वारा लूट में लायी गयी स्त्री को यह कहकर बाहर वापस भेज देना कि काश मेरी माँ भी इतनी सुन्दर होती तो मैं भी सुन्दर होता।' छत्रसाल से प्रणय प्रस्ताव करने वाली युवती को यह जवाब मिलना कि—पता नहीं मुझ-सा सुन्दर पुत्र जन्म ले या न ले, तो तुम मुझे ही अपना पुत्र क्यों नहीं मान लेतीं।

सत्य के लिए अपना सारा जीवन होम देने वाले राजा हरिश्चन्द्र तब तक अमर रहेंगे जब तक लोगों को सत्य का नाम भी याद रहेगा। कहा जाता है कि वे केवल स्वप्न में ही अपना राजपाट दे बैठे थे और जागने पर भी—उसका पालन अन्तिम क्षण तक किया। दान के बाद दक्षिणा माँगी तो हरिश्चन्द्र खजाने से देने लगे पर याचक ने यह कहकर रोक दिया कि राजपाट और कोष को तो तुम मुझे दान कर चुके। अब वहाँ तुम्हारा क्या रहा हरिश्चन्द्र को जैसे अपनी भूल का ज्ञान हुआ और उन्होंने श्मसान में नौकरी कर दक्षिणा चुकायी, परीक्षा ने वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा और पुत्र की मृत्यु का दारुण दृश्य अपनी आँखों के सामने देखकर उनका हृदय दहल उठा होगा पर कर्तव्य यहाँ भी विस्मृत नहीं हुआ। जब तक उनकी पत्नी ने मुर्दे जलाने का कर चुका नहीं दिया तब तक उन्होंने शव को यों ही पड़ा रहने दिया।

महारथी कर्ण और राजा बलि ने दान धर्म की पराकाष्ठा तक उसके आदर्श का स्पर्श किया। कर्ण जानते थे कि कवच कुण्डल देने से वे मर भी सकते हैं। पर इन्द्र जब याचक बनकर सामने खड़े हों और इन्द्र ही क्यों चाहे कोई भी क्यों न हो देने का व्रत लेकर 'ना' कहना सीखे ही नहीं थे। कर्ण के पिता सूर्य ने जब इस षड़यन्त्र का भंडाफोड़ करते हुए कर्ण को सचेत किया तो उनका यही उत्तर था—मैं भी व्यावहारिकता का पालन कर रहा हूँ। आप जिसे व्यावहारिकता कह रहे हैं उसका अर्थ है थोड़ी चीज देकर अधिक प्राप्त करना। यह नश्वर शरीर तो एक दिन नष्ट होगा ही। आज हो या कल—क्या फर्क पड़ता है और मैं इसके बदले अमर कीर्ति आदर्श की पराकाष्ठा प्राप्त कर रहा हूँ तो क्या घाटे की बात है। वामन ने तीन पग जमीन माँगी थी और बलि द्वारा वह दिये जाने पर उन्होंने दो पग में सारा संसार, भूलोक अन्तरिक्ष नाप लिया। अब तीसरा पैर कहाँ रखे तो बलि ने अपना सिर आगे कर दिया और वामन ने बलि के सिर पर पैर रखकर उन्हें पाताल में पहुँचा दिया।

नियम और अनुशासन की मर्यादा कायम करने के लिए राजा हंसध्वज ने अपने पुत्र को भी नहीं बख्शा। जब स्वतन्त्रता की रक्षा का प्रश्न उठा तो उन्होंने राज्य के हर युवा व्यक्ति को समर में जाने की आज्ञा कर दी। सब लोग तो युद्ध में चले गये पर पता चला कि उनका पुत्र सुधन्वा अपनी पत्नी के साथ प्रणय लीला में मग्न है। राजपुत्र होने के साथ-साथ सुधन्वा नवविवाहित भी थे। हंस ध्वज चाहते तो पुत्र को क्षमा कर सकते थे। पर कर्तव्य सो कर्तव्य, नियम सो नियम राजाज्ञा का उल्लंघन करने वालों को जो दण्ड दिया जाता था, वही उन्होंने अपने पुत्र को भी दिया। उस समय अनुशासन भंग करने वालों को गरम तेल में डाल देने का दंड था। सो सुधन्वा को भी यही दंड मिला।

शरणागत की रक्षा हमारे देश की अमूल्य धरोहर रही है। राजा शिवि को अपनी शरण आये पक्षी की रक्षा के लिए उसका शिकार कर रहे बाज को जाँघ का माँस काट कर देना पड़ा। मयूरध्वज ने अपने पुत्र का माँस खिलाकर अभ्यागत की इच्छा पूरी की। इस तरह के प्रसंगों में वैचित्र्य के साथ-साथ अस्वाभाविकता है। पर जिन लोगों ने मृत्यु के आर-पार देखा है, उनके लिए कुछ भी विचित्र नहीं है, जो भी कुछ है सो व्यावहारिक है। जब जीवन क्षणभंगुर है और एक न एक दिन शरीर को मिटना है तो क्यों न आदर्शों के लिए ही मरें। नियतिगत मरण की अपेक्षा सोद्देश्य मृत्यु का नाम ही तो उत्सर्ग है और जब बिना कुछ गँवाये उत्सर्ग का श्रेय मिल रहा हो तो क्यों न लिया जाय।

मृत्यु का रहस्य समझने वालों के लिए उत्सर्ग उसी प्रकार है जिस प्रकार सामान्य आदमी लाख रुपये की आशा में एक रुपये का लाटरी टिकट खरीद लेता है। लॉटरी में तो लखपति बनने की सम्भावना नहीं के बराबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है पर आदर्शों के लिए उत्सर्ग करने वाला अपने प्राप्तव्य के सम्बन्ध में शत प्रतिशत निश्चित रहता है और निश्चिन्तता की सम्भावना धूमिल पड़ती भी नहीं। सिडनी में लड़ते-लड़ते मर जाने वाले उन सैनिकों को आज कौन याद करता, जिन्होंने अपने सामने आया पानी दूसरे प्यासे के पास भिजवा दिया और अन्तिम समय में उभर कर आयी करुणा ने ही उन्हें अमर बना दिया।

भारतीय इतिहास का एक-एक अध्याय उज्ज्वल आदर्शों से भरा पड़ा है। अशोक ने कहीं अपने शिला लेखों में लिखवाया है कि यदि रात्रि दिन की एक चौथाई रहती तो अच्छा था ताकि मैं और अधिक लोगों का दुःख-दर्द सुनता और दूर करता। राजा हर्ष प्रति पाँचवे वर्ष अपना सारा कोष जन कल्याण के लिए खर्च कर दिया करते थे। प्रताप चाहते तो अकबर की केवल अधीनता स्वीकार कर निर्बाध राजमहलों में सुख भोग कर सकते थे। पर स्वतंत्रता प्रेमी इस वीर ने जंगलों में रहकर कंद-मूल खाना बेहतर समझा अपेक्षा केवल मौखिक रूप से ही अकबर को अपना संरक्षक मान लेने के।

'पर द्रव्येषु लोष्ठवत्' की आदर्श मर्यादा भी यहाँ जैसी अन्यत्र दुर्लभ है। तेज भूख लगने के कारण दादाजी कोण्डदेव ने एक बार किसी बगीचे से फल तोड़ लिया था, पर अपने व्रत की जब याद आयी तो पश्चाताप स्वरूप उन्होंने अपने हाथ ही कटवा डाले। इस युग में भी एक से एक त्यागी और आदर्शनिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। महात्मागाँधी, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षि देवेन्द्र ठाकुर, स्वामी श्रद्धानंद, रविशंकर महाराज, रबीन्द्रनाथ टैगोर, निराला, प्रेमचन्द, माखनलाल चतुर्वेदी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, तिलक, गोखले, महामना मालवीय, सुभाषचन्द्र बोस, सरदार पटेल, श्री प्रकाश, लाला लाजपतराय, सम्पूर्णानन्द, सरोजिनी नायडू, डा० राजेन्द्रप्रसाद, राज गोपालाचार्य, डा० राधाकृष्णन, मौलाना आजाद, सरसैय्यद अहमद खाँ, मीराबेन, जवाहरलाल नेहरू आदि अगणित नाम हैं।

स्मरणीय और ध्यातव्य है कि आदर्शनिष्ठा हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। हम भी उसी ऋषि परम्परा की संतान हैं तथा यह हमारे लिए नितांत अशोभनीय है कि आदर्शों के साथ प्रवंचना करें। आदर्शों की प्रवंचना अपने आपको छलने के सिवा और कुछ नहीं है। इस छलना से बचने के लिए आदर्शों का अनुसरण और व्यवहार में उतारने की दृढ़ता बरतकर ही हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रख सकते हैं। अन्यथा अपना जीवन बर्बाद करने के साथ-साथ अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर के नष्ट होने का खतरा समुपस्थित है।

आदर्शों की कथनी ही नहीं, करनी भी

सिद्धान्तों की जानकारी को स्मृति तक पहुँचाकर उसे आगे बढ़ने से रोक देना ऐसा ही है, जैसे थाली में रसोई परसी हो, उसे हाथ से उलटा-पलटा जा रहा हो, पर मुँह में ग्रास डालने और चबाकर पेट में उतारने से ही बचा जा रहा हो।

बुद्धि का गुण सीखना है, निर्णय करना भी। वह विचारों, परमार्शों की छानबीन करने में प्रवीण होती है। व्यावसायिक मामले में उसकी सूझ-बूझ भली प्रकार काम करती है। आलोचना, समीक्षा का प्रसंग आता है तो भी वह अपना कमाल दिखाती है। छिद्रान्वेषण में उसका कमाल देखने ही योग्य होता है। जहाँ तात्कालिक लाभ दीखता है वहाँ भी उसकी पकड़ खूब काम करती है। दुस्साहस भी उसका ऐसा देखा जाता है कि मर्यादाओं और वर्जनाओं को कैसे तोड़ा जाय ? पापों पर पर्दा कैसे डाला जाय, इसका चातुर्य भी कम नहीं होता। शासन, समाज और सम्पर्क क्षेत्र को चकमा देकर किस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाय ? इस विद्या को एक दूसरे को अन्यान्यों को प्रवीण-पारंगत बनाने में बुद्धि अपना कौशल आये दिन दिखाती रहती है। उसकी इन विलक्षण क्षमताओं को जितना सराहा जाय उतना ही कम है। इसीलिए बुद्धिमानों को सम्मान पाते और सम्पदा-सफलता अर्जित करते देखा और सराहा जाता है।

इतना होते हुए भी एक प्रसंग ऐसा ही है जिसे अपनाने में बुद्धि आना-कानी करती है। देर तक प्रतीक्षा करना उसे सहन नहीं। बालबुद्धि की तरह तात्कालिक आकर्षण एवं लाभ उसे चाहिए। इतना विवेक भी नहीं होता कि दूरगामी परिणामों को सोच सके। प्रचलित ढर्रे को बदलने के लिए वह उत्कंठा नहीं जगती। इसका परिणाम यह होता है कि हमारा बुद्धि-वैभव कुछ खेल खेलों का ही स्वाँग कर पाता है। अभ्यास और साहस के अभाव में समुद्र की गहराई में उतर कर बहुमूल्य मणि-मुक्तक ढूँढ़ लाने की क्षमता अर्जित कराने की न उसकी इच्छा होती है और न चेष्टा। फलस्वरूप तथाकथित बुद्धिमान भी बहुश्रुत, बहुपठित होकर रह जाते हैं। जीवन निर्माण की दिशा में ऐसा कुछ नहीं कर पाते, जिसे अनुकरणीय एवं अभिनंदनीय कहा जा सके।

बिल्ली के गले में घंटी बाँधने के लिए चूहों की पंचायत का एक भी सदस्य तैयार नहीं हुआ था। इसी प्रकार अनेकानेक बुद्धि-कौशल भी ऐसे सम्मिलित प्रयास नहीं कर पाते कि जिन आदर्शों की महिमा और गरिमा शास्त्रकारों, आप्तजनों और महान उदाहरणों से सुनी है। उसे स्मरण रखने और चर्चा का विषय बनाने तक ही सीमित न रखा जाय। वरन् एक कदम आगे बढ़ाकर उसे जीवनक्रम में, स्वभाव, अभ्यास में सम्मिलित करने का उपाय भी सोचा और अन्तराल तक पहुँचाया जाय।

ज्ञान कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, पर यदि वह बातचीत अथवा जानकारी तक ही सीमित रह जाय तो समझना चाहिए कि ऐसा ही दुर्भाग्य आ अड़ा मानो थाली में भोजन परोसा गया हो, पर उसे पेट में पहुँचाने के लिए प्रयत्न नहीं हुआ। मौखिक रूप से वक्तृत्व का अभ्यास कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेने वाले बड़ी-बड़ी ऊँची बातें कहते और धुँआधार प्रवचन करते देखे गये हैं। पर जब उस कथनी को अपनी निज की करनी में उतारने का प्रसंग आता है, तो अपना रुख ही बदल लेते हैं और ऐसा व्यवहार करते हैं मानो किसी प्रसंग की चर्चा करना ही पर्याप्त हो।

वक्तृत्व एक कला है, पर आदर्शों को जीवन में उतारना तो लोहे के चने चबाना जैसा है। अपने को गलाना और ढालना धातु उपकरण बनाने से कठिन है। उस कसौटी को जो कोई पार कर सके उसी को सच्चा शूरवीर कहना चाहिए। उन्हें तो पुस्तकों के भार से लदा हुआ गधा ही कहना चाहिए, जिनके मस्तिष्क पर ज्ञान का बोझ तो बहुत लदा है पर वे स्वयं उससे कुछ लाभ नहीं उठा पाते।

व्यक्ति एवं समाज निर्माण का केन्द्र-बिन्दु उत्कृष्टतावादी जीवन दर्शन

सामाजिक प्रगति की जब चर्चा की जाती है तो कई अदृश्य पहलुओं पर विचार करना होता है। समाज एक इकाई है, व्यक्तियों से मिलकर ही जिसका निर्माण होता है। जो प्रवृत्तियाँ, संस्कार व्यक्ति, परिवार को जकड़े रहते हैं प्रकारान्तर से वे ही समाज के अभ्युदय में भी बाधक एवं सहायक सिद्ध होते हैं। समाज का विकास क्रम बताता है कि मनुष्य आदिम युग से चलकर आधुनिक युग तक प्रगति करते-करते अपनी मूल प्रवृत्तियों को छोड़ता व मानवोचित सुसंस्कारों को ग्रहण करता चला आया है। इस तरह यह नहीं मानकर चलना चाहिए कि कुसंस्कार कभी नहीं छूटते, सामाजिक अवांछनीयताएँ कभी नहीं मिटतीं। यदि ऐसा होता तो वन्य पशुओं का सरकस में कलाकारों जैसा करतब दिखा सकना कैसे सम्भव हो पाता ? माँसाहारी प्रकृति के कुत्ते, बिल्ली क्यों मनुष्य के साथ घुल-मिल कर वैसे ही आहार-विहार के आदी बनते ?

वंशानुक्रम तथा परिवार परिसर का भी अपना प्रभाव है। वातावरण का प्रभाव तो रहता ही है और इसी आधार पर व्यक्तित्व बनते-ढलते रहते हैं। फिर भी इसे पत्थर की लकीर नहीं कहा जा सकता। हेय परिस्थितियों में जन्मे-पले लोगों में से असंख्यों ऐसे हुए हैं, जिनने संचित कुसंस्कारों की केंचुली को साहसपूर्वक उतार फेंका और दिशा बदल कर उस ओर चल पड़े जिस ओर कि उस समुदाय का कदाचित ही कोई चला हो। रैदास, कबीर, दादू, नानक आदि सन्तों और बुद्ध, गाँधी, समर्थ आदि महामानवों में से एक भी ऐसा नहीं था जिनकी महानता का श्रेय उनकी आरम्भिक परिस्थितियों को मिल सके। कुछ तो ढलती आयु में बदले हैं और इसी जन्म के अभ्यस्त कुसंस्कारों को तिनके की तरह तोड़ने में समर्थ हुए हैं। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, चण्ड, अशोक, अजामिल, विल्वमंगल आदि की लम्बी नामावली ऐसे अप्रत्याशित परिवर्तन की सम्भावना सिद्ध करने के लिए साक्षी रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

यह सब इसलिए कहा जा रहा है कि जीवन दर्शन में उत्कृष्टता का समावेश करने, दृष्टिकोण में आदर्शवादी मान्यताओं को स्थान दिलाने की अनिवार्यता महत्ता को समाज को दिशा दिखाने वाले मनीषी भली प्रकार समझलें, यह एक शाश्वत एवं सामयिक आवश्यकता है, जिसे इन दिनों हर कीमत पर पूर्ण किया जाना है, अन्यथा लोक प्रवाह जिस दिशा में बह रहा है उसे देखते हुए स्वार्थपरता और आक्रामकता की बढ़ती हुई प्रवृत्तियाँ सारे वातावरण को विषाक्त किये बिना न रहेंगी। यह विषाक्तता अन्ततः अराजकता की गृह-युद्ध जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगी। फलस्वरूप सामूहिक आत्महत्या जैसा महाविनाश का दृश्य उत्पन्न होगा। आवश्यक नहीं कि इसके लिए परमाणुबम ही बरसे। आपाधापी की यादवी ने एक दूसरे को चीर खाने के लिए उत्साहित किया है। विजयी, पराजित दोनों ही अपना अस्तित्व गँवा बैठे हैं। इस तथ्य की साक्षी में प्राणिजगत के अनेकों उद्धत समुदायों के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जो कभी बहुत समर्थ रहे हों किन्तु अब उनका कोई अता-पता शेष नहीं। मनुष्य भी इसका अपवाद नहीं हो सकता। वह शालीनता और उदार सहकारिता की नीति अपनाकर आगे बढ़ा है। नीति उलटेगी तो प्रगति भी अवगति में वापस होगी। सृष्टि का मुकुटमणि समझा जाने वाला मनुष्य इसी आदिम युग में जा पहुँचेगा जहाँ डार्विन के अनुसार उसके पूर्वज पेड़ों पर उलटे लटका कर पत्थरों से शिकार मारकर अपना निर्वाह वनमानुष स्तर का किया करते थे। भावना क्षेत्र में दुष्ट दुर्बुद्धि का समावेश कितनी समस्याएँ और विभीषिकाएँ उत्पन्न करता है, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हम अपने चारों ओर पग-पग पर उपस्थित देखते हैं।

शालीनता ही एकमात्र वह आधार है जिसे अपना कर मनुष्य सुखी, संतुष्ट रह सकता है और प्रगति पथ पर अनवरत क्रम से समूचे समुदाय के साथ आगे बढ़ता रह सकता है। उसकी जितनी उपेक्षा होगी दुष्परिणामों की उतनी ही वृद्धि होगी। आज के लाभ भर की बात समझने वाले सशक्त जीवधारी भी स्तर की दृष्टि से उपहासास्पद बने हुए हैं। मनुष्य भी यदि दूरदर्शिता, विवेकशीलता, न्याय निष्ठा, सहकारिता, संयमशीलता जैसी गरिमामयी सत्प्रवृत्तियों का अवलम्बन त्यागता है तो प्रस्तुत सम्पदा एवं चतुरता भी उसे दुर्गति से बचा नहीं सकेगी। बढ़े हुए साधन उसे अधिक तेजी से महाविनाश के गर्त में गिराने की भूमिका प्रस्तुत करेंगे।

सामयिक एवं भावी विपत्ति से बचने का शांति एवं प्रगति का उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक ही मार्ग है कि लोकचिन्तन एवं लोक व्यवहार में सदाशयता का उच्चस्तरीय समावेश हो। समाज में ऐसी परम्पराएँ चलें जिससे एक दूसरे के प्रति स्नेह-सम्मान का प्रतिदान करे और संयमशीलता, सच्चरित्रता में, उदार सहयोग में एक दूसरे से आगे बढ़ने की प्रतिद्वन्द्विता करता दीख पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन दिनों इसकी आवश्यकता तो समझी जा रही है, किन्तु उसके लिए जो प्रयत्न हो रहे हैं वे सर्वथा उथले, अधूरे, कागजी एवं सतही हैं। प्रवचन, लेखन से आदर्शों की महत्ता बताने के प्रयत्न होते रहते हैं मानो किसी को इससे पूर्व उन बातों की जानकारी ही न रही हो। सच तो यह है कि जिन्हें उपदेश किये जाते हैं वे भी उसी तरह की शिक्षाएँ अपने से छोटों को दिया करते हैं। फिर एक दूसरे के साथ इस प्रकार खिलवाड़ जैसे विनोद कौतुक करने की विडम्बना रचता रहे तो इससे बनेगा क्या ? लोकचेतना में अवांछनीयता का असाधारण समावेश प्रचलन द्वारा उसका समर्थन पोषण ऐसा संकट है, जिससे उबरने के लिए क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे। राजक्रान्ति कुशल योद्धाओं की रणनीति द्वारा सफल हो सकती है। अर्थक्रान्ति के लिए यदि उत्पादन-उपयोग के दोनों पक्ष उस क्षेत्र के मूर्धन्य लोग सम्हाल सकें तो उतने भर से सम्पन्नता न सही निर्वाह की सुविधा तो निश्चित रूप से बैठ सकती है। जापान की अर्थ नीति और प्रगति इसका उदाहरण है। लेनिन अमानुल्ला, गाँधी जैसे कुछेक लोग क्रान्तियाँ करके दिखाते रहे हैं। पर उस सामाजिक क्रान्ति के लिए असाधारण व्यूह रचना कराने एवं साधन जुटाने की आवश्यकता पड़ेगी। जिसमें नैतिक और बौद्धिक, क्रांति के उत्कृष्टतावादी तत्वों का समुचित समावेश हो।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक प्रगति की बात सोचते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि राष्ट्र या समाज का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वे व्यक्तियों के समुच्चय का एक कल्पित नाम हैं। वस्तुतः इनकी प्रगति की, समृद्धि की, प्रखरता, समर्थता की बात सोचना हो तो उस क्षेत्र में निवास करने वाले के व्यक्तित्व का स्तर समझना होगा और उस क्षेत्र की विकृतियों को निरस्त एवं सत्प्रवृत्तियों को प्रखर बनाने की योजना बनानी होगी। इससे कम में बात बननी ही नहीं। साधनों से सुविधा बढ़ती है यह ठीक है। सुविधा सभी को चाहिए यह भी ठीक है पर यह उससे ज्यादा ठीक है कि यदि व्यक्तित्व में निकृष्टता घुसी रहे तो बढ़ी सम्पदा का दुरुपयोग होगा और फलस्वरूप उतनी विपत्तियाँ बढ़नी निश्चित है, जितनी कि अभावग्रस्त स्थिति में सहन न करनी पड़तीं।

उलझी आँटी का छोर तलाश करते-करते बात वहीं आकर रुकती है, जहाँ व्यक्तित्व स्तर का केन्द्र बिन्दु है मनुष्य की सामर्थ्य असीम है पर उसे सत्प्रयोजनों में लगाने का अवसर भी तो मिले। यह कार्य कौन करे ? निश्चित रूप से यह सामर्थ्य जीवन के उत्कृष्टतावादी दर्शन में ही है। दर्शन से तात्पर्य उस आस्था से है जो अन्तराल की गहन परतों का स्पर्श करती है। कानूनी नियम और बौद्धिक प्रशिक्षण तो इस दिशा में बहुत थोड़ी सहायता कर पाते हैं। सच तो यह है कि अन्तराल की आस्थाओं के निर्देशन, विचारणा और क्रिया-प्रक्रिया का बलात् अनुकरण करना होता है। कानून और धर्मोपदेश दोनों ही उस स्थिति में अपंग बने रहते हैं। आस्था केन्द्र ही व्यक्तित्व का ध्रुवनाभिक है। उस क्षेत्र को स्पर्श किये बिना व्यक्तित्व को उत्कृष्टतावादी नहीं बनाया जा सकता। संक्षेप में दर्शन की इस सामर्थ्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया जा सकता है और उसे व्यक्ति एवं समाज का भाग्य विधाता कहा जा सकता है।

जीवन दर्शन जैसा भी भला या बुरा हो उसके अनुरूप ही अन्तःकरण का स्तर, स्वरूप, प्रवाह एवं अभ्यास बनता है। इसी फिनर की ताकत से घड़ी के अन्यान्य कलपुर्जे अपना-अपना काम करने लगते हैं। व्यक्ति या विश्व की प्रगति-अवनति के प्रश्न पर विचार करना हो तो तत्वदर्शी लोगों को उथले उपचारों को अनावश्यक महत्त्व न देकर वहाँ पहुँचना चाहिए जहाँ आस्थाओं का निर्माण, निर्धारण, परिपोषण होता है, वहाँ वे परिपुष्ट बनकर अपना पराक्रम दिखा सकने में समर्थ होती हैं।

कृषि, शिक्षा, कला, चिकित्सा, व्यवसाय, विनोद, सुरक्षा, व्यवस्था जैसे अनेकों महत्त्वपूर्ण विषयों पर जिस प्रकार मूर्धन्य प्रतिभाएँ ध्यान देती हैं, उसी प्रकार उन्हें यह भी सोचना होगा। उपरोक्त सभी समस्याओं को सुलझाने के लिए व्यक्तित्व के उद्गम केन्द्र मानवी अन्तराल को भी सही स्थिति में रखे जाने की आवश्यकता है। यह काम इतना सरल नहीं है जिसके लिए लेखनी-वाणी का तनिक सा चमत्कार दिखाकर जादू की छड़ी घुमाने की तरह चुटकी बजाते पूरा किया जा सके। इसके लिए दूरगामी परिणाम उत्पन्न कर सकने वाले उपाय खोजने होंगे और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए सामर्थ्यवान तन्त्र खड़े करने होंगे। कच्चे लोहे को शोधने और समर्थ धातु कहला सकने योग्य बनाने हेतु विशालकाय भट्टियाँ बनानी होती हैं। गलाईढलाई का काम उसी विशालता के अनुपात से होता है। ४५० करोड़ मनुष्यों के अन्तराल की निकृष्टताएँ निरस्त करने और उसे उत्कृष्टता के साथ जोड़ देने का काम है तो बड़ा, पर ऐसा नहीं जिसे असम्भव कहा जा सके। बड़े काम बड़े साधनों और बड़े निर्धारणों की अपेक्षा रखते हैं। वह तो इस प्रयोजन के लिये भी जुटाने पड़ेंगे।

पतन और पराभव का वर्तमान वातावरण बनने में अवांछनीय प्रचलनों को लोक मान्यता दिलाने में मानवी प्रतिभा-परम्परा एवं श्रमशीलता का प्रचुर परिमाण में उपयोग हुआ है। नशेबाजी, विलासिता, विषमता, उच्छृंखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ आसमान से नहीं टपकी हैं। उन्हें भी मनुष्य ने ही शिक्षा, चिकित्सा की तरह बड़े परिश्रम से गाढ़ा और मनोयोगपूर्वक जन-जन के गले उतारा है, भले ही वह कार्य ढोल बजाकर न सही व्यभिचार की तरह पर्दे के पीछे ही क्यों न किया जाता रहा है। मानव समाज में इन दिनों अनेकानेक अवांछनीय प्रचलनों की इसीलिए भरमार है।

रंग, जाति और लिंग के नाम पर चलने वाली विषमता इसका एक उदाहरण है। भाषा, सम्प्रदाय, क्षेत्र के नाम पर चलने वाली गुटबन्दी सामने है। अर्थ उपार्जन में घुसे हुए भ्रष्टाचार से सभी परिचित हैं। संग्रह और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपव्यय की प्रवृत्ति से हर कोई प्रभावित है। दर्प-परिपोषण में उद्धत आकुलता देखते ही बनती है। यही हैं वे मूलभूत दुष्प्रवृत्तियाँ जिन्होंने वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में एक प्रकार से विप्लव खड़ा कर दिया है।

स्थिर समाधान ढूँढ़ना यदि वस्तुतः अभीष्ट हो और सुख-शांति की खोज में यदि ईमानदारी बरती जा रही हो तो फिर देर-सबेर में इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि मानवी आस्थाओं को प्रभावित करने वाले दर्शन एवं वातावरण में ऐसा परिवर्तन किया जाय, जिससे अवांछनीयताओं को उखाड़ने और सदाशयता को जड़ जमाने का अवसर मिल सके। यह कार्य दार्शनिक है इसलिए उसकी मीनार खड़ी होना या रैली निकालना तो कठिन है, पर उसे बिना शोर-शराबे के भी दूरगामी निर्धारण और सुनियोजित कार्यक्रम अपनाकर सुनिश्चित रूप से सम्पन्न किया जा सकता है। कठिन कार्य वे हैं जिनके प्रति जिम्मेदारी, ईमानदारी बरती जाय और गम्भीरतापूर्वक तन्मयता, तत्परता न बरती जाय। इन अवरोधों के हटा देने के उपरान्त हर दूरदर्शी निर्धारण सुनिश्चित रूप से सम्पन्न हो सकता है। मानवी सामर्थ्य का मूल्यांकन कर सकने वाले इस तथ्य से भली प्रकार अवगत एवं आश्वस्त रहते रहे हैं।

भूतकाल का स्वर्णिम युग कपोल कल्पना नहीं एक इतिहास समर्थित सच्चाई है। उन दिनों मनुष्य आस्थावान थे, उन्हें देव संस्कृति से परिचित, प्रशिक्षित एवं अभ्यस्त होने का अवसर मिलता था। फलतः वे इसी धरती पर स्वर्गीय वातावरण बनाते और अपने निजी जीवन में महामानवों जैसे भरे-पूरे विभूतिवानों का यश-गौरव पाते रहे हैं। उसकी पुनरावृत्ति करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। भूले को स्मरण कर लेना कठिन नहीं है। मनुष्य में देवत्व के उदय की आवश्यकता को यदि फिर पूर्वकाल की तरह गम्भीरतापूर्वक अनुभव किया जा सके और उसके लिए भावभरी तत्परता बरती जा सके तो कोई कारण नहीं कि धरती पर स्वर्ग के अवतरण का स्वप्न साकार होते इन्हीं आँखों से न देखा जा सके।

व्यक्ति और समाज की प्रगति का आधार सहयोग-सहकार

व्यक्ति एवं समाज की प्रगति इस बात पर अवलम्बित है कि उसमें सहयोग-सहकार की प्रवृत्तियाँ हों। यह जिस भी समाज में जितनी ही अधिक मात्रा में होगी, वह उतना ही प्रगतिशील, सभ्य एवं सुसंस्कृत होगा। अलग दीखते हुए भी मनुष्य, समाज का अभिन्न अंग है। इस कारण उसकी प्रगति एवं अवगति भी समाज के साथ जुड़ी हुई है। वह जैसा भी सोचेगा एवं करेगा, उसका प्रभाव न केवल उसके ऊपर वरन् समाज पर भी पड़ेगा। मात्र अपना स्वार्थ साधने की बात सोचते रहने से तो वह समाज का भारी अहित करता है। शारीरिक निर्वाह के लिए आवश्यक साधन जुटाये जाने चाहिए। व्यक्तिगत स्वार्थ की मर्यादा सीमा यहीं तक है। इससे आगे की बात सोचने से सामाजिक हितों पर अतिक्रमण होता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का चिन्तन एवं क्रियाकलाप मानवीय परिधि से निकल कर नरपशु की श्रेणी में जा पहुँचता है।

एकमात्र स्वार्थपरायण व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ऐसे-ऐसे अनुचित मार्गों का अवलम्बन लेने लगता है, जिसे देख, सुनकर मनुष्यता का सिर लज्जा से नीचा हो जाता है। जब उचित-अनुचित का विचार छोड़कर कोई मनुष्य जैसे भी बने अपना स्वार्थ सिद्ध करने की नीति अपनाने लगता है, तब समाज की सुख-शांति में आग लगने लगती है। किसी एक व्यक्ति की देखा-देखी दूसरे व्यक्ति भी स्वार्थपरायण होकर उसकी अनुचित नीति का अनुसरण करने लगते हैं। धीरे-धीरे स्वार्थी व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगती है और कोई भी सभ्य समाज असभ्यता की ओर बढ़ने लगता है। समाज में छीना-झपटी आपा-धापी, छल-कपट, शोषण-संघर्ष की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। जिसके परिणामस्वरूप समाज विश्रृंखल, निर्बल और अरक्षित हो जाता है। दूसरे समुदाय ऐसे अवसर का लाभ उठाते हैं और प्रयत्न करते हैं कि उस मूर्ख समाज को अपने अधीन कर लें, उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लें।

इतिहास साक्षी है कि हमारे अपने समाज में जब-जब स्वार्थपरता का घातक विष फैला तब-तब इसी प्रकार दुर्दिन देखने पड़े। स्वार्थी और दम्भी लोगों ने अपनी भयंकर नीति से समाज से संघर्ष उत्पन्न किया, उसकी एकता और संगठन शक्ति को नष्ट किया। समाज निर्बल बना और उस पर आपत्तियों के पहाड़ टूटने लगे। विदेशियों ने समाज की इस निर्बलता से लाभ उठाकर ही हमारे देश को लूटा और उस पर अपनी सत्ता स्थापित की।

इस दीर्घजीवी आपत्ति का कारण समाज के वे थोड़े से स्वार्थी व्यक्ति ही तो थे, जिन्हें अपने व्यक्तिगत लाभ की अन्धता में न तो देश का भविष्य दिखलाई दिया और न समाज का अमंगल। स्वार्थपरता का विष इतना भयानक होता है कि किसी भी क्षेत्र में उसका अस्तित्व सम्पूर्ण समाज को विषाक्त बनाकर जर्जर कर देता है।

पता नहीं स्वार्थान्ध व्यक्ति यह क्यों नहीं सोच पाते कि जब वे अपनी अनुचित रीति से समाज को निर्बल-विश्रृंखल और अव्यवस्थित बना देंगे तो उसकी सुरक्षा खतरे में पड़ जायेगी और तब उसके साथ ही उनका अस्तित्व भी सुरक्षित न रह पायेगा। कमजोर और असमर्थ समाज न अपनी ही सामूहिक रक्षा कर पाता है और न व्यक्ति की। अपने निम्न स्वार्थ के लिए समाज की इतनी बड़ी हानि करने वाले व्यक्ति को और कुछ भले ही कहा जाय, मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वार्थ से प्रेरित जब किसी एक दिशा में शोषण-चक्र चलता है, तब उसके कुत्सित प्रभाव से कोई भी दिशा नहीं बच पाती। बुराई एक संक्रामक रोग की तरह होती है। अंकुर पाते ही यह बरसाती वनस्पति की तरह फैल कर शीघ्र ही पूरे समाज को ग्रसित कर लिया करती है। सामूहिक भावना अथवा सामाजिक चेतना से शून्य होकर जब कोई स्वार्थी व्यक्ति किसी एक का शोषण करता है, तब वह शोषित व्यक्ति उसके बदले में अपने से कमजोर का शोषण करने लगता है और इस प्रकार यह शोषण एक सामाजिक परम्परा बन जाती है। फलतः समाज के सदस्यों के बीच परस्पर विश्वास तथा सहयोग की भावना उठ जाती है।

उन्नति के इन स्तम्भों के टूटते ही समाज खण्डहर की तरह भर-भराकर गिर पड़ता है। उसकी बहुमूल्य विचार-धारायें, सुन्दर संस्कृति और उज्ज्वल सभ्यता या तो नष्ट हो जाती है या संसार में उपहासास्पद बन जाती है। सामाजिक जीवन में स्वार्थ बड़ा घातक विष है। इससे सदैव ही समाज की रक्षा करते रहना चाहिए अन्यथा यह स्वार्थी को तो मिटा ही देता है, समाज को भी कहीं का नहीं रखता।

स्वार्थ के दोष से बड़े-बड़े बलवानों और शक्तिमन्तों को धूल में मिलते देर न लगी। कंस, जरासंध, हिरण्यकश्यप, हिरण्याक्ष, नहुष, वेन आदि न जाने कितने प्रतापी राजा बात की बात में नष्ट हो गये। इतना ही नहीं, स्वार्थ ने इस सीमा तक उनका पतन कर दिया कि वे मनुष्य शरीर में भी असुर और राक्षस बन गये। स्वार्थसिद्धि के लिए ऐसे-ऐसे जघन्य काम किये कि जिसके लिए आज तक जन-भर्त्सना के पात्र बने हुए हैं। लोभ और स्वार्थ सभी पापों की जड़ मानी गयी है। इसका कुचक्र जिस पर भी चलता है, वह सदा के लिए मिट जाता है फिर चाहे वह व्यक्ति हो, समाज हो अथवा राष्ट्र।

जिस परमात्मा ने मनुष्य को जन्म दिया उसी ने उस के जीवन के साधन भी संसार में उत्पन्न किये। उसका इस निर्माण में कभी भी यह अन्यायपूर्ण मन्तव्य नहीं रहा है कि कुछ व्यक्ति तो साधनों की प्रचुर मात्रा बिना किसी आवश्यकता के अपने अधिकार में कर लें और अन्य बहुसंख्यक जीवनयापन की अनिवार्य वस्तुओं से भी वंचित रहें। परमात्मा को तो अपनी सभी सन्तान समान रूप से प्रिय हैं। वह क्यों न चाहेगा कि जन-जन समान रूप से उसके लिए साधनों का उपभोग करे। किन्तु खेद है कि समाज के स्वार्थी व्यक्ति प्रभु की इस मंगल इच्छा में भी विघ्न डालते हैं। यद्यपि वे अपने इस अपराध के लिए रोगों, दोषों, शोक-सन्तापों, निन्दा, भर्त्सना और राजनियमों द्वारा दण्डित होते रहते हैं, तथापि अपनी करनी से बाज नहीं आते।

स्वार्थी व्यक्ति मानवाकार में पशुवत् होता है। उस का न तो कोई आदर्श होता है और न सिद्धान्त। नैतिक गुणों से भी उसका जीवन शून्य होता है। जिस व्यक्ति से उसका स्वार्थ सिद्ध होने की आशा होती है, उसकी पग-धूलि भी वह अपने सिर पर चढ़ा लेने में संकोच नहीं करता, फिर चाहे वह व्यक्ति कितना ही निकृष्ट तथा दुराचारी क्यों न हो। कोई भी बुरे से बुरा मार्ग स्वार्थी व्यक्ति अपने लाभ के लिए अपना सकता है, चाहे वह विशुद्ध पापमय ही क्यों न हो। स्वार्थी में न केवल दीनता का ही दोष होता है। उसमें छल, कपट, झूठ-फरेब, मक्कारी और विश्वासघात जैसे और भी न जाने कितने दोष होते हैं। स्वार्थी व्यक्ति अपने धर्म, देश, राष्ट्र और समाज तक को बेच डालने में संकोच नहीं करता।

स्वार्थवृत्ति एक जहरीले साँप की तरह होती है। यह जब अपना फन फैलाती है तो शत्रु-मित्र का विचार किये बिना समान रूप से सबको डस लेती है। एक स्वार्थवृत्ति से ही मनुष्य में न जाने और कितनी दूषित वृत्तियाँ आ जाती हैं। ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि के अनर्थकारी विकार एक स्वार्थ की ही सन्तति समझने चाहिए।

इतिहास के पर्यवेक्षण, अवलोकन करने पर इस तथ्य की पुष्टि होती है कि व्यक्ति की संकीर्ण स्वार्थपरता समाज के अधःपतन का कारण बनी है। स्वार्थों से अभिप्रेरित व्यक्तियों ने सामाजिक भावनाओं को बुरी तरह रौंदा और वह मार्ग अपनाया जिसे अमानवीय अथवा दानवी स्तर का कहा जा सकता है। लाभ अन्ततः उन्हें भी नहीं हुआ। सामाजिक प्रताड़ना, घृणा एसं असन्तोष को साथ लेकर मरे। स्वार्थपरता न उनके लिए लाभकारी सिद्ध हुई और न ही समाज के लिए।

जिसमें समाज का भी हित जुड़ा हो—मनुष्य को वह मार्ग अपनाना होगा। इसके लिए संकीर्ण स्वार्थों की परिधि से निकल कर सहयोग एवं सहकार की प्रवृत्ति को अपनाने से ही व्यक्ति एवं समाज दोनों की प्रगति सम्भव है।

मानवी प्रगति का एक ही आधार—सहयोग-सहकार

सहयोग करने पर मिलने वाले लाभ से सभी बुद्धिमान परिचित हैं। मूर्ख ही ऐसा सोचते हैं कि अपने मतलब से मतलब रखना चाहिए, क्यों किसी के झगड़े-झंझट में पड़े ? क्यों किसी की सेवा-सहायता में अपना समय और पैसा खर्च करें ? दूसरे जब सुखी होते हैं तो कौन हमें अपनी सम्पदा का एक भाग दे जाते हैं ? जब किसी को हमारी परवाह नहीं, तो हमीं क्यों किसी की परवाह करें। अपनी जेब में पैसा होगा तो बीसियों सहयोगी पैसा देकर खरीद लेंगे। जब जेब खाली होगी तो दूसरे मिन्नतें करने पर भी सहायता करने न आयेंगे। जब यही प्रचलन जमाने का है तो हम भी क्यों न उसी ढर्रे को अपनायें। अपनी सामर्थ्य अपने लिये ही क्यों न सीमित रखें ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह दलील व्यावहारिक बुद्धि से तो उपयोगी जँचती है, पर जब बारीकी में उतरते हैं तो प्रतीत होता है कि कोई एकाकी व्यक्ति प्रगति के पथ पर अग्रसर होना तो दूर अपना निर्वाह तक नहीं कर सकता। अपनी मान्यता भीतर ही छिपाये रखें, किसी पर प्रकट न होने दें तो बात दूसरी है। अन्यथा संकीर्ण स्वार्थपरता का पता चलने पर दूसरे भी उसी के अनुरूप अपना मन सिकोड़ लेंगे। ऊसर भूमि में कोई बीज नहीं बोता क्योंकि उसकी उदार उर्वरता पर से भरोसा उठ जाता है। कोई उसे जोतने-सींचने पर भी ध्यान नहीं देता, बीज बोना तो आगे की बात है। ऊसर भूमि किसी को लाभ नहीं पहुँचाती। किसी की सेवा सहायता के लिये उद्यत नहीं होती। ऐसी दशा में लोग भी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और उसकी न तो कुछ सहायता करते हैं और न आशा भरी आँख उठाकर उसे देखते हैं। बबूल के पेड़ कोई बोता नहीं। अपने भाग्य से उसका बीज कहीं पड़ जाय और उग आवे तो बात दूसरी है। आम के पेड़ हर जगह लगाये जाते हैं। उनके लिये खाद-पानी का प्रबन्ध करते हैं। रखवाली के लिये बाड़ बनाते हैं और बढ़ते चलने पर आशा भरी दृष्टि से देखते हैं, प्रसन्न होते हैं। यह जन सम्मान इस बात पर टिका हुआ है कि आम के पेड़ सघन छाया देते हैं, मूल्यवान मधुर फल मालिकों को सहज स्वभाव देते रहते हैं। उनकी लकड़ी तक काम आती है। जो झाड़-झंखाड़ एक भी प्रयोजन सिद्ध नहीं करते, उनका बढ़ना, फैलना सभी की आँखों में अखरता है और एक दिन वह आता है कि जलावन के निमित्त उन्हें काटकर धराशायी बना दिया जाता है।

दूसरों की सहायता करना वस्तुतः अपनी सहायता के लिये सुदृढ़ आधार खड़ा करना है। गाय दूध देती है और बछड़े कृषि योजना में अपना श्रम नियोजित करते हैं। फलतः गो-वंश की पूजा होती है। उनके पालन-पोषण में पुण्य माना जाता है। चारे-दाने का भी उपयुक्त प्रबन्ध किया जाता है। इसके विपरीत बकरे, भैंस के कटरे किसी के काम नहीं आते। फलतः उन्हें पूरी आयु तक जी सकने का अवसर ही नहीं मिलता। माँसाहारी उन्हें काटपीट कर उठती उम्र में ही समाप्त कर देते हैं खर-पतवार, झाड़-झंखाड़ भी इसी दुर्गति के भागीदार बनते हैं। बूढ़े पशु किसी की सहायता कर सकने योग्य नहीं रहते। ऐसी दशा में संसार का प्रचलन उन्हें कसाई के हाथों सौंप देता है।

जो दूसरों की सहायता न करेगा वह चुप न बैठेगा। किसी न किसी को कुछ न कुछ हानि कर रहा होगा। निठल्ले व्यक्ति खाते-पहनते तो हैं ही। यह तभी उपलब्ध होता है, जब बदले में अन्यों की सहायता की जाती है। श्रम करने के बदले में ही मजूरी का पैसा मिलता है। यह आदान-प्रदान का उपक्रम है। एक पक्ष अपने ढंग से सहायता करता है, दूसरा दूसरे ढंग से। जहाँ यह ताल-मेल जब तक ठीक बैठा रहता है, तब तक आदान-प्रदान का दुहरा आनन्द मिलता रहा है। आप कमाना, आप पकाना, आप खाना संभव तो है किन्तु इस नीति को अपनाने पर जीवन बड़ा कष्टसाध्य और नीरस हो जाता है। संयुक्त परिवार में अपने-अने ढंग से सभी परस्पर एक-दूसरों की प्रगति और प्रसन्नता में सहायता करते हैं। इसीलिये घर-आँगन में स्वर्ग खेलते देखा जाता है। परिवार की व्यवस्था बनाने में अनेकानेक झंझट रहते हैं तो भी जी यही करता है कि मिल-जुलकर साथ-साथ रहें। मजबूरी में जब अलग-अलग चूल्हे बनाने और घर बसाने पड़ते हैं, तो संयुक्त कुल-परिवार की सम्पदा, प्रतिष्ठा और सशक्तता में कितनी कमी पड़ती है, इसे सहज अनुभव किया जा सकता है। बँधी बुहारी की शोभा उपयोगिता सर्वविदित है पर जब सींकें बिखर जाती हैं, जो उन्हें कचरा भर मान कर ठिकाने लगा दिया जाता है।

जीवन यात्रा इसलिए ठीक प्रकार चल पाती है कि काया के सभी अवयव अपना उपार्जन दूसरे के हवाले करते रहते हैं। यदि कोई किसी की सहायता न करे। अपनी सामर्थ्य मात्र अपने लिये ही नियोजित रखे तो जीवन संकट अधिक दिन आगे न चल सकेगा। हाथ कमाते हैं, मुँह को खिलाते हैं। मुँह पेट को देता है। पेट के पाचन से विनिर्मित हुआ रक्त हृदय तक पहुँचता है। वहाँ से नाड़ियों द्वारा समस्त शरीर में वितरित होता है। इस प्रक्रिया से हाथ भी लाभान्वित होते हैं। यही है जीवन प्रवाह की गतिशीलता। यदि इस चक्र में व्यवधान पड़े, तो सभी अवयवों में से प्रत्येक को बेमौत मरना पड़ेगा। न केवल वे स्वयं नष्ट होंगे वरन् समूचे जीवन क्रम को ही समाप्त कर बैठेंगे।

स्वार्थ का अर्थ है—विनाश। पति-पत्नी एक-दूसरे के लिये समर्पित होकर न रहें और अपने-अपने श्रम-सहयोग का तत्काल मुआवजा माँगे तो फिर दाम्पत्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ वफादारी भरा विश्वास किस प्रकार उभरेगा। जब पति-पत्नी दोनों मात्र अपने-आप स्वार्थ की बात सोचें तो घर होटल मात्र बन कर रह जायगा। कभी भी कोई किसी का साथ छोड़ सकता है। दाँव लगने पर घर के वैभव को लेकर भाग खड़ा हो सकता है। ऐसी दशा में विवाह बन्धन में बँधने की अपेक्षा स्वतंत्र रहने की बात सोची जाने लगेगी। स्त्रियाँ किसी का वंश चलाने, घर सँभालने, गर्भ धारण करने की मुसीबत में क्यों फँसेंगी ? क्यों न वे अपनी स्वतंत्र कमाई करके स्वतंत्र जीवन जीयेंगी ? पारस्परिक-स्नेह सहयोग की उदार भावना ही दाम्पत्य जीवन में स्वर्गीय आनन्द, विश्वास और सहयोग उत्पन्न करती है। उसी के आधार पर सृष्टि क्रम चल रहा है। यदि मात्र स्वार्थ ही सर्वोपरि बन चले तो परिवार परम्परा का समापन हो जायेगा। समाज में अपनी सुस्थिरता और सुसम्बद्धता गँवा बैठेगा।

मनुष्य की विशेषता यों उसकी बुद्धिमत्ता की मानी जाती है, पर वस्तुतः वैसा है नहीं। सहयोग की वृत्ति ही मानवी विशेषता का आधार स्तम्भ है। उसके द्वारा प्राप्त उपलब्धियों से ही दूसरे ने ज्ञान पाया, अनुभव लिया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org

www.vicharkrantibooks.org

आदान-प्रदान की राह पर चलते हुए उस स्थान तक पहुँच सकना संभव हुआ जिस पर आज वह है और सृष्टि का मुकुटमणि माना जाता है। हर कोई यदि अपने ज्ञान, श्रम और वैभव को अपने लिये ही सीमाबद्ध रखे रहता तो उन महान कार्यों में से एक भी न बन पड़ता जिनमें सामूहिक श्रम का बढ़-चढ़ कर नियोजन हुआ है।

दैनिक जीवन में काम आने वाली प्रायः सभी वस्तुयें ऐसी हैं जो अनेकानेकों के श्रम, सहयोग से उपयोग में आ सकने योग्य बनी हैं। जिस कपड़े को हम पहनते हैं, वह कपास बोने वाले, सूत कातने वाले, बुनने-सीने वाले के सहयोग से बना है। इन प्रयोजनों में जिस उपकरणों का प्रयोग हुआ है वे भी अनायास ही नहीं बन गये। अनेक हाथों से अपने प्रकार के कौशल दिखाये जाने पर ही उनका निर्माण होता है और कपड़ा पहने जाने की स्थिति तक पहुँचता है। किसान द्वारा अन्न उपजाने से लेकर उसकी रोटी बनाने तक की प्रक्रिया इतनी लम्बी है कि उतनी दूरी पार करने में ही निर्माण, परिवहन में काम आने वाले अनेकानेक माध्यम तब बन जाते हैं, जब अनेकों का अनेक प्रकार का सहयोग एकीभूत हो जाता है। सहयोग मनुष्य जीवन का प्राण है और प्रगति का सुविधा का आधार। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

उदार सहकारिता से ही हमारी उलझनें सुलझेंगी

अकेला व्यक्ति कितना ही प्रतिभावान क्यों न हो, अपने ही बलबूते पर बहुत कुछ नहीं कर सकता। हाथी, सिंह, घोड़ा, गुरिल्ला आदि बलवान जानवर भी अपनी शक्ति से केवल अपना निर्वाह ही कर सकते हैं। समग्र प्रगति तो हमेशा सम्मिलित शक्ति से ही होती है। मनुष्य ने अन्य जीवों की तुलना में जो असाधारण प्रगति की है, उसका प्रधान कारण उसकी बुद्धिमत्ता ही नहीं, दूरदर्शिता भी है, जिसके आधार पर सहकारिता की शक्ति के उसने पहचाना और मिल-जुल कर काम करने के लिए तैयार हो गया। यदि एकाकी जीवन पर ही उसका विश्वास रहा होता, संयुक्त प्रयत्नों की दिशा में उसकी प्रगति न मुड़ी होती तो सृष्टि के अनेक मानसिक क्षमता सम्पन्न प्राणियों की तरह मनुष्य भी केवल अपने शरीर निर्वाह मात्र की समस्यायें सुलझाने तक सीमित रह गया होता।

सहकारिता की प्रवृत्ति में आध्यात्मिक आदर्श जुड़े हुए हैं। मिल-जुलकर कमाना, मिल-जुलकर खाना, मिल-जुलकर रहना, मिल-जुलकर पारस्परिक समस्याओं को सुलझाना और मिल-जुलकर दुःख-सुख के भार को बाँट लेना, यह उदार हृदय अपनेपन को व्यापक बना सकने वाले सद्भाव सम्पन्न मनुष्यों के लिए ही सम्भव है। आध्यात्मिक आदर्श हमें इसी दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रकाश देते और प्रोत्साहित करते हैं। अपनी ही समस्याओं में उलझा, अपनी ही प्रगति और सुख-सुविधा चाहने वाला, आप ही कमाने और आप ही खाने वाला, अपनी ही चिन्ता में डूबा रहने वाला व्यक्ति संस्कृत में 'कृपण' और लौकिक भाषा में 'स्वार्थी' कहा जाता है। स्वार्थी व्यक्ति कितना ही सम्पन्न क्यों न हो, लोगों की दृष्टि में घृणास्पद ही बना रहेगा।

सम्मिलित शक्ति का महत्त्व हम सभी जानते हैं। कमजोर सींक एकाकी होने पर अति दुर्बल होती है, जरा से आघात से टूट सकती है पर उन्हें इकट्ठा करके बनाई गई बुहारी झाड़ने-बुहारने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध करती है। सूत के कच्चे धागे क्या सामर्थ्य रखते हैं ? पर जब वे इकट्ठे हो जाते हैं तो इतना मजबूत रस्सा बन जाता है, जो हाथी को बाँध सके। बूँदें इकट्ठी होने से समुद्र बना है। अणुओं का पारस्परिक संघटन विशालकाय पर्वत के रूप में दृष्टिगोचर होता है। एक दिशा में साथ-साथ उड़ने वाली टिड्डियाँ गजब के करतब दिखाती हैं। मधुमक्खियों की सहकारिता शहद का भण्डार जमा करने में सफल होती है। अनुशासित और संघबद्ध सैनिक आक्रमणकारी शत्रुओं के दाँत खट्टे करते हैं। किन्तु यदि उपरोक्त तत्त्व एकाकी बिखरे पड़े हों, कोई किसी का सहयोग न करे। तो अपनी ढपली अपना राग बेसुरा बजने लगे। आठ कनौजिया नौ चूल्हे की उक्ति जैसा उपहास हो। डेढ़ चावल की अलग खिचड़ी पकाने के प्रयत्न करते हुए हर किसी को असफलता हाथ लगे।

थोड़े-से डाकू मिलकर एक विशाल क्षेत्र की जनता को आतंकित कर सकते हैं, तब सज्जनों का सच्चा सहयोग यदि इकट्ठा किया जा सके तो अपना चमत्कार क्यों न दिखायेगा। सज्जन हमेशा मिटते इसलिए रहे हैं कि वे अपनी व्यक्तिगत उत्कृष्टता मात्र से संतुष्ट हो जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि सम्मिलित शक्ति का कितना अधिक महत्त्व है। उसके बिना सज्जनता भी अधूरी रहती है। सज्जनता की परिभाषा में सत्प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का संघबद्ध होना भी आता है। एकाकी जीवन से जो भी संतुष्ट हो जायेगा और अपनी विचारणा तथा गतिविधियों को अपने सीमित दायरे तक अवरुद्ध कर लेगा, वह कोई भी क्यों न हो—असफलता और अभाव का कष्ट सहने के लिए विवश होगा।

मनुष्य की अब तक की वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक, पारिवारिक प्रगति का सारा श्रेय पारस्परिक सहयोग को दिया जा सकता है। यदि एक ने अपनी योग्यता का लाभ दूसरे को न दिया होता और सहयोग का क्रम अपनाया न होता तो हम अभी भी आदिम युग की जंगली दशा में विचरण कर रहे होते। यह तथ्य हम जानते हैं पर मानते नहीं। समय आ गया कि संघबद्धता की शक्ति को समझें और वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए उसका उपयोग करें। इस प्रजातन्त्र के युग में तो यही शक्ति सर्वोपरि है। जनसमूह के विद्रोह ने अँग्रेजों को भगा दिया और जन समर्थन के आधार पर काँग्रेस पार्टी राज्य सिंहासन पर जा विराजी। संघबद्धता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना इस युग में कोई गति नहीं। इस तथ्य को हम जितनी जल्दी समझ लें, उतना ही उत्तम है। शास्त्रकार ने **'संघे शक्ति कलौ युगे'** की सूक्ति में वर्तमान युग की सर्वोपरि शक्ति 'संगठन' को घोषित करके सामयिक तथ्य का ही उद्घाटन किया है।

सहकारिता की प्रवृत्ति हर क्षेत्र में विकसित होनी चाहिए। कृषि, व्यवसाय, उद्योग, उत्पादन जिस सरलता और सफलता के साथ सामूहिक प्रयत्नों से बढ़ सकते हैं, उस स्तर की सम्भावना एकाकी प्रयत्नों से कदापि सम्भव नहीं हो सकती। विदेशों में जहाँ श्रम बहुत महँगा है और व्यवसाय के लिए बड़ी पूँजी अपेक्षित होती है वहाँ सहकारिता के आधार पर ही सारे उद्योग-धन्धे चलते हैं। बड़े-बड़े फर्म, उद्योग और मिल शेयरों के आधार पर चलते हैं। छोटे पैमाने पर अब उत्पादन और व्यवसाय का जमाना धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। प्रतिस्पर्धा के अनेक व्यवधान अब ऐसे पैदा हो गये हैं, जिनके कारण एकाकी प्रयत्न से किया गया छुटपुट उत्पादन महँगा पड़ता है और उसकी निकासी स्वल्प प्रयास से छोटे क्षेत्र में सम्भव नहीं हो पाती, फलस्वरूप घाटा उठाना पड़ता है। विकल्प में यदि थोड़ी-थोड़ी पूँजी और थोड़े-थोड़े श्रम का एकीकरण कर लिया जाय तो वह क्षमता इस स्तर की हो जायगी कि पूँजीपतियों के एकाधिकार को चुनौती दी जा सके। लाभ एक व्यक्ति को न मिलकर समूह को मिले, इस प्रयोजन की पूर्ति केवल सहकारिता ही कर सकती है। भारत को कभी समृद्ध-सम्पन्न बनाना होगा तो उसके मूल में सहकारिता की उदीयमान शक्ति ही काम कर रही होगी।

सार्वजनिक क्षेत्र की अगणित समस्यायें उलझी पड़ी हैं। इन्हें सुलझाने में ब्रह्मास्त्र केवल सहयोग ही सिद्ध होगा। ग्रामीण जीवन में स्वच्छता की समस्या अति विकट है। गन्दगी ने उस प्राकृतिक वातावरण में बसे जनसंकुलों को दुर्गन्ध, घृणा और रुग्णता का घर बना दिया है। खेल-कूदों और व्यायामशालाओं की अभिरुचि घट जाने से शारीरिक और मानसिक स्तर गिर गया। अशिक्षा ने हमें पशुवत् बना दिया है। अपराधों और उच्छृंखलता की वृद्धि ने सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। पूँजीपतियों का शोषण अपने ढंग से चलता है। कष्टों के लिए की गई फरियाद कोई सुनता नहीं। सामाजिक कुरीतियाँ जर्जर बनाये दे रही हैं और अनैतिक दुष्प्रवृत्तियाँ प्रतिरोध के अभाव में आँधी-तूफान की तरह तीव्र होती चली जा रही हैं। इन सब समस्याओं का हल इस बात पर निर्भर है कि लोकमंगल का उद्देश्य आगे रखकर सज्जन प्रवृत्ति के लोग संगठित होते हैं या नहीं। यदि उनमें सहकारिता और सेवा की प्रवृत्ति जाग पड़े और थोड़ा-थोड़ा समय, श्रम तथा धन लोक-कल्याण के लिए नियोजित करने लगें तो वह स्वयंसेवक सेना चमत्कार उत्पन्न कर सकती है। उपरोक्त स्तर की हर कठिनाई से यह संगठन सहज ही निपट सकता है। शक्ति का प्रदर्शन होने से ही लोग झुक जाते हैं, अक्सर शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता कम ही पड़ती है। आवश्यकता शक्ति के उद्भव की है और वह इस युग में बहुत करके संगठन पर ही निर्भर है।

हम एक हजार वर्ष की लम्बी गुलामी से उठे हैं। इस अन्धकार युग ने हमें अगणित बौद्धिक एवं सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का दास बना दिया है। अतीत का गौरवपूर्ण इतिहास तो है पर आज उसी अनुपात से हम दुर्दशाग्रस्त हो रहे हैं। यदि किसी को सुधार के लिए दर्द और परिवर्तन के लिए उत्साह उठता हो तो सबसे पहला काम यह हाथ में लेना चाहिए कि सेवाभावी सज्जनों को संगठित कर डालें और उनके सामूहिक सत्प्रयत्नों को हर क्षेत्र में नियोजित करने के लिए प्रेरित करता रहे। युग-निर्माण योजना का यही प्रयत्न है। इन प्रयत्नों को अभीष्ट सहयोग मिल सका तो संगठन और सहकारिता की सम्मिलित शक्ति से हर दिशा में प्रगति और समृद्धि का सत्परिणाम प्रस्तुत किया जा सकता है। उचित यही है कि उदार सहकारिता को अंगीकार करें, अपना और समस्त मानव जाति का भला करें।

सत्प्रवृत्तियों में मूर्धन्य सहकारिता

प्राणिजगत के विकासक्रम के आधारभूत कारणों में दो प्रमुख हैं। एक 'स्व' केन्द्रित आकांक्षा और दूसरी 'पर' केन्द्रित सामूहिकता। आकांक्षा को स्वार्थ एवं सामूहिक सहकारिता को परमार्थ कहते हैं। उन्हीं को अध्यात्म की भाषा में आत्मकल्याण एवं लोक कल्याण के नाम से भी कहा सुना जाता है।

आकांक्षा की प्रवृत्ति कितनी सशक्त, प्रेरणाप्रद एवं चमत्कारी है। इसके प्रभाव परिणाम हर क्षेत्र में पग-पग पर उपलब्ध होते हैं। संकल्प की, श्रद्धा की, इच्छा की परिणति किस प्रकार प्रचण्ड पुरुषार्थ, पराक्रम में होती है और बिखरे चिन्तन एवं पुरुषार्थ को एकाग्रचित्त करने से उसके चमत्कार कितने अद्भुत होते हैं, इसके अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं। इस पर भी यह नहीं मान बैठना चाहिए कि इतने भर में प्रगति का पथ प्रशस्त हो गया। इसमें एक पक्ष की ही पूर्ति होती है जिसे परिष्कृत व्यक्तित्व कह सकते हैं। यह गाड़ी के एक पहिये के समान है। दूसरा पहिया सक्षम न हो तो बात कैसे बने ? दूसरा पक्ष है—सामूहिकता या सहकारिता इस आदान-प्रदान के बिना बहुत छोटे स्तर के अदृश्य प्राणी ही जीवित रह सकते हैं। अन्यथा हर विकसित प्राणी को अन्य सहयोगियों का सहकार उपलब्ध करना और उसके बदले में अपना सहकार प्रदान करना पड़ता है। गर्भावस्था में भ्रूण की स्थिति हो या अंडे की, शुक्राणु इकाई के रूप में केन्द्रित जीव कण में माता का सहकार अनुदान चाहिए ही। इसके उपरान्त प्रसव से लेकर अपने बलबूते जीवनचर्या चलाने योग्य होने तक की स्थिति प्राप्त करने के लिए जन्मदात्री का संरक्षण परिपोषण चाहिए। सर्वथा हेय स्तर के जीव ही बिना माता के सहयोग के स्वावलम्बी रहते देखे गये हैं। अन्य अन्यथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनका थोड़ा भी विकास हो चुका है उनमें से चींटी से हाथी तक के समस्त जीवधारियों को आरम्भिक अशक्तता दूर होने तक माता के अंचल का आश्रय तथा आहार के लिए अनुदान चाहिए ही।

प्राणियों को जो क्षमता, सुविधा अनुकूलता उपलब्ध होती है, उसका एक सीमित अंश ही उनका स्वउपार्जित होता है। शेष तो सहचरत्व के साथ चलने वाले आदान-प्रदान का ही प्रतिफल होता है। चींटी, दीमक, मधुमक्खी जैसे छोटे जीव अपनी जीवनचर्या एवं कार्य पद्धति की दृष्टि से असाधरण प्रतिभा, दक्षता एवं समर्थता का परिचय देते हैं। इस विशिष्टता में उनका परोक्ष अंश ही पैतृक एवं परम्परागत होता है। क्रिया कलाप का समूचा कर्म क्षेत्र तो पारस्परिक सहयोग से ही विकसित होता है। उन प्राणियों को समूह से पृथक करके अलग एक रहने के लिए बाधित कर दिया जाय तो वे अपनी पैतृक विशिष्टता को भी क्रियान्वित न कर सकेंगे और उमंगों को चरितार्थ न कर पाने की विवशता अनुभव करते हुए जीवन लीला समाप्त कर लेंगे।

बड़े प्राणी समूह बनाकर रहते हैं। उनके अपने परिवार होते हैं। पक्षियों को वन्य पशुओं को झुण्डों में रहते देखा जाता है। यों वे आपस में उलझते-सुलझते भी रहते हैं, फिर भी एकाकी रहने का साहस नहीं करते। क्योंकि सामूहिकता की छत्रछाया में उन्हें अधिक सुविधा सुरक्षा सुनिश्चितता की अनुभूति होती है। एक दूसरे से बहुत कुछ सीखते-सिखाते हैं। इतना ही नहीं अप्रत्यक्ष आदान-प्रदान से उनकी जीवनचर्या में असाधारण रूप से सहायक भी होते हैं। जो प्राणी परस्पर सहकारिता के लाभ से जितने वंचित रहे, उन्हें उपयोगी होते हुये भी अपने अस्तित्त्व का खतरा उसी अनुपात से उठाना पड़ा। इसके विपरीत जो झुण्ड बना कर रहे वे बन्दर जैसे हानिकारक होते हुये भी अपनी स्थिति मनुष्य के साथ वैर विरोध मोल लेकर भी बनाये रहे। प्रत्यक्ष है कि सिंह-व्याघ्र जैसे स्ववर्ग द्रोही क्रमशः घटते और संसार से अपना अस्तित्त्व समाप्त करते चले जा रहे हैं।

मनुष्य की प्रगति में आकांक्षा के उपरान्त दूसरी अद्‌भुत क्षमता सहकारिता ही है। इसी प्रवृत्ति ने उसे आदिमकाल की वनमानुष जैसी वीभत्स स्थिति से उबार कर वर्तमान सभ्य एवं सम्पन्न स्तर के प्रतिभाशील गौरवान्वित मनुष्य के स्तर तक पहुँचाया है। उच्चारण, भाषा लिपि, चिन्तन उसका अपना निज का उपार्जन नहीं है। इसके पीछे चिरकाल की असंख्यों अनुभूतियों एवं उपलब्धियों का, अनुदान क्रम चला आ रहा है। मिट्टी के उपलों पर आड़ी-टेढ़ी लकीरें बनाने की प्रक्रिया के सहारे एक दूसरे को अपने विचारों से अवगत कराने का जो थोड़ा सिलसिला चला, वही आज सुव्यवस्थित लिपि, भाषा शब्द कोष आदि के रूप में सामने है। अन्न उगाने पेड़ लगाने, पशु पालने, आग जलाने, वस्त्र बनाने, घर घरौंदे खड़े करने की विद्या भी अतीत काल में आज बिजली के आविष्कारों जैसी ही उत्साहवर्द्धक उपयोगी सिद्ध हुयी थी। वह समस्त उपार्जन किसी व्यक्ति के नहीं थे वरन् अनुभवों का लाभ एक दूसरे को मिलते-मिलते उस स्थिति तक पहुँचना संभव हुआ कि उपरोक्त सुविधा-साधनों से लाभ उठाया जा सके। पहियेदार गाड़ी-तैरती नाव, कागज, दीपक आदि का जिन दिनों आविष्कार हुआ होगा, उन दिनों आदमी फूला न समाया होगा और अन्य साथी प्राणियों की तुलना में एक बारगी सहस्त्रों योजन आगे बढ़ गया होगा। यह सर्वथा स्मरणीय है कि उन वरदानों को प्राप्त करने का श्रेय उस सहकारिता की प्रवृत्ति को ही रहा होगा जिसे स्नेह-सहयोग, परमार्थ आदि के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

समाज की संरचना इसी आधार पर हुयी है। कुटुम्ब इसी प्रेरणा से बने अन्यथा मनुष्य भी मात्र बन्दरों की तरह झुण्डों में तो रहता पर आदान-प्रदान का द्वार न खुलने से आद्यावधि पूर्वजों की तरह ही नर वानर बना रहता।

यहाँ पिछले प्रगतिक्रम पर दृष्टिपात इसलिए किया जा रहा है कि भावी प्रगति में सामूहिकता का महत्त्व अधिक अच्छी तरह समझा जा सके और उसकी अपार सामर्थ्य का उपयोग आज के संदर्भ में कर सकना संभव हो सके। आज की समाज संरचना, वर्ग संगठन, जातीयता शासन व्यवस्था में सामूहिकता की प्रवृत्ति को एक सुनियोजित निर्धारण ही समझा जा सकता है।

सर्वतोमुखी प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि सहकारिता को हर क्षेत्र में अधिक वास्तविक, अधिक स्नेहसिक्त और अधिक व्यापक, व्यावहारिक बनाया जाय। आर्थिक क्षेत्र में अब धीरे-धीरे यह मान्यता जड़ जमाती जा रही है कि सम्पदा उपार्जन में सहकारी सिद्धान्त ही अन्ततः फलप्रद सिद्ध होंगे। ग्रामीण क्षेत्र में विकास के लिए देश में सहकारी बैंकों का विकास किया जा रहा है और वे प्रयत्नशील हैं कि सहकारी प्रयास से चलने वाले उत्पादनों में पूँजी जुटाने में, उपार्जन को उचित मूल्य पर बिकवाने में, बिक्री न होने तक सामान को जमा रखने में, कुशलता बढ़ाने में वे अपनी पूँजी से सहकारी अर्थ संगठनों की यथासंभव सहायता करें। इसके अतिरिक्त बड़े कारखाने भी एक प्रकार से श्रमिकों के समन्वित प्रयत्नों के फलस्वरूप ही चल पाते हैं।

साम्यवाद इससे भी बड़ा प्रयोग है। इसमें प्रजाजनों का समूचा उत्पादन शासन संस्था के स्वामित्व में जमा माना जाता है और उसका कितना अंश किसी के पास रखा जाना है, किसे कितनी आवश्यकता है, इसका निर्धारण करके उसे उतने सुविधा साधन प्रदान कर दिये जाते हैं। व्यवस्था एवं व्यवहार में भूल-चूक रहती हो तो बात दूसरी है पर इस व्यवस्था में सहकारिता का सिद्धान्त ही काम करता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन क्षेत्र मात्र अर्थ और शासन तक ही सीमित नहीं है। इसके साथ और भी कितने ही पक्ष जुड़े हुये हैं। उदाहरण के लिए कुटुम्ब, विनोद एवं प्रशिक्षण जैसे तन्त्रों पर दृष्टि डाली जा सकती है। इसमें से एक भी ऐसा नहीं है, जो एकाकी पुरुषार्थ के सहारे चल सके। कोई व्यक्ति कितना ही समर्थ, सुयोग्य एवं सम्पन्न क्यों न हो उपरोक्त क्षेत्रों में बिना दूसरों का सहयोग अर्जित किये एक इन्च भी आगे बढ़ नहीं सकता।

नये परिवार का आरम्भ विवाह से होता है। विवाह का अर्थ है दो व्यक्तियों को अभिन्न सहयोगी बनकर एक दूसरे का पूरक बनना और संयुक्त शक्ति उपार्जित करना। यही है वह मूलभूत सिद्धान्त जो परिवार के अन्यान्य सदस्यों पर उनके स्तर के अनुरूप क्रियान्वित किया जाता है। माता और संतान, बालक और अभिभावकों के बीच जो आत्मीयता पाई जाती है उसे उदारता या उच्चस्तरीय सहायता ही कह सकते हैं। अभिभावक बालकों के लिए सुरक्षा-सुविधा के साधन जुटाते और बालक अभिभावकों की आत्म-विस्तार की सेवा-साधना की आन्तरिक प्यास को पूरी करके कृत-कृत्य बनाता है। ऐसा न होता तो अभिभावक एकपक्षीय आत्मीयता न बरसाते और अपने स्वार्थ पर आघात होने की बात विचार कर सन्तानोत्पादन के झंझट से दूर रहने लगते।

विनोद कोई अकेला नहीं कर सकता। उसके लिए मनचाहे साथी चाहिए। ताश-शतरंज से लेकर खेलकूद प्रतियोगिताओं तक के अनेकों मनोरंजन हैं। उनका आनन्द लेने के लिए सहयोगी तलाश करने के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं। पार्टियाँ, प्रीतिभोज, सभा-सम्मेलन, नाटक, सिनेमा जैसे सभी स्तर के विनोद आकर्षणों में कलाकारों एवं दर्शकों की भीड़ जुड़ती और प्रतिभा खपती है। जब ईश्वर तक को मनोरंजन की आवश्यकता पड़ने पर सुविस्तृत सृष्टि गढ़नी और प्राणियों की, देव-दानवों को चतुरंगिणी खड़ी करनी पड़ी तो फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है, पशु-पक्षी तक झुण्ड बनाते और मिल-जुलकर भौंड़ा कल्लोल करते पाये जाते हैं।

उत्पादन, व्यवस्था, परिवार, विनोद, शिक्षण जैसे जीवनचर्या के साथ गुथे हुये अनेकानेक प्रसंगों में पारस्परिक सहयोग की भूमिका का ही वर्चस्व दीखता है। अन्य पक्षों में भी सहयोग के बिना एक कदम आगे बढ़ने से बात नहीं बनतीं। दैनिक जीवन में काम आने वाले साधनों, उपकरणों में से एक भी ऐसा नहीं है जो एकाकी प्रयत्न से बन पड़े। अब वह समय चला गया जब अन्न उगाने से लेकर आटा पीसने और रोटी बनाने तक के काम आदमी स्वयं कर लेता था। पत्तों से या चमड़े से तन ढक लेता था। पढ़ने की आवश्यकता थी नहीं। भूमि, तालाब एवं वृक्ष व वनस्पति भर का सहारा लेकर दिन कट जाते थे अब माचिस, कपड़ा, जूता, भोजन पकाने के बर्तन, तेल-साबुन, नमक-मिर्च, कुँये से पानी निकालने का घड़ा, रस्सा जैसे घोर वन्य प्रदेशों में भी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के लिए अन्यान्य लोगों का सहारा लेना पड़ता है। वस्तु विनिमय के लिए मुद्रा को उपयोग में लाना पड़ता है। यह सभी वस्तुयें ऐसी हैं जिनमें सहकारिता की चमत्कारी शक्ति ही अग्रिम पंक्ति में खड़ी दीखती है।

भूत पर दृष्टिपात करें अथवा वर्तमान का पर्यवेक्षण। प्रस्तुत संकटों से निवृत्ति की बात सोचें या उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण की। हर हालत में सहकारिता की शक्ति को विकसित एवं व्यवस्थित करने का प्रसंग सामने आता है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रगति चिन्तन चाहे व्यक्तिगत आधार पर किया जाये, चाहे सामूहिक उत्कर्ष की बात सोची जाय तो यही तथ्य अकाट्य होकर सामने आता है कि सहकारिता की जितनी उपेक्षा होगी उतनी ही अनुपात में पिछड़ापन सिर पर लदता चला जायेगा। उत्कर्ष की बात सोचनी हो तो लगे हाथों इस वास्तविकता को भी ध्यान में रखना होगा कि जिस प्रकार व्यक्तिगत रूप से आकांक्षा का उभार आवश्यक है उसी प्रकार लोकव्यवहार में जनसहयोग की आवश्यकता अनुभव करने पर सहकारिता की प्रवृत्ति को असाधारण महत्त्व देना और उसे उच्चस्तरीय सिद्धान्तों के अनुरूप बनाकर लोक चिन्तन में गहराई तक उतारने का प्रबन्ध करना होगा।

सहकार पर निर्भर सुख-समुन्नति

छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु, छोटे से छोटे करोड़ों-अरबों कणों से बनी होती हैं, जिन्हें अणु कहा जाता है। उन अणुओं के परस्पर सघन सहयोग पर ही उस वस्तु का अस्तित्त्व या व्यवस्था प्रक्रिया निर्भर रहती है। यदि एक क्षण को भी वह सहयोग हट जाये या बन्द हो जाय तो अस्तित्त्व खतरे में पड़ सकता है। उसी प्रकार शरीर के अंग-प्रत्यंग भी अपना जीवन पूरे शरीर के साथ सहयोग करते हुए व्यतीत करते हैं। मुँह भोजन का ग्रास होता है, दाँत चबाते हैं, जीभ उसमें रस घोलती है, आमाशय पाचन करता है और उससे बनी सारी ऊर्जा शरीर के अंग-प्रत्यंग में वितरित कर दी जाती है। कहने का अर्थ यह कि जड़ वस्तुएँ भी कोई काम केवल अपनी निजता और एकाकी रूप से नहीं करती। अणु-परमाणुओं और शरीर के अंग-प्रत्यंगों को अपने आप में जड़ माना जाय तो वे अपने अस्तित्त्व की रक्षा और विकास परस्पर सहयोग से करती हैं तथा यदि उनमें चेतना मानी जाय तो भी।

चेतन तो मनुष्य भी है। अतः उसे भी सहयोग और सहकार का महत्त्व जानना तथा समझना चाहिए। इसी आधार पर सुख-शान्ति का भवन खड़ा किया जा सकता है तथा उपलब्ध सुव्यवस्था को अधिक काल तक स्थिर रखा जा सकता है । हमें अपनी उलझनें सुलझानी और समस्याओं का समाधान करना हो तो इस बात के लिए तत्पर रहना चाहिए कि हम सहकारिता के महत्त्व को समझें और स्वीकार करें। जो कार्य एकाकी प्रयासों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक कठिन और श्रम की माँग रखते हैं वे सामूहिकता द्वारा बड़ी आसानी से निबटाये जा सकते हैं। अकेले व्यक्ति द्वारा मुश्किल से उठाया जाने वाला वजन चार पाँच व्यक्ति मिल कर उठायें तो हाथों हाथ लिया जा सकता है। एक ही व्यक्ति कोई दुकान लगाये तो समूची पूँजी उसे ही लगानी पड़ेगी और दिन रात उसे ही दुकान पर बैठना पड़ेगा। यदि चार-पाँच व्यक्ति मिल कर उस काम को करें, तो सभी की थोड़ी-थोड़ी पूँजी लगकर दुकान तैयार की जा सकती है और उससे मुनाफा कमाया जा सकता है। यही बात अन्य कार्यों के लिए भी लागू होती है।

कहा जा सकता है कि अकेले व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी श्रम उसे अधिक लाभ भी तो पहुँचाता है यह ठीक है कि पाँच सौ रुपये की पूँजी ने लगायी गयी कोई भी दुकान यदि दस रुपये रोज की आमदनी देती है तो वह अकेले व्यक्ति को ही मिलेगी। जबकि पाँच व्यक्तियों द्वारा लगायी गयी दुकान पर होने वाली आमदनी प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में दो-दो रुपये ही आती है। लेकिन सहकारिता के आदर्श से अभिप्रेरित होकर दो-दो सौ रुपये इकट्ठे कर एक हजार की लागत से लगायी गयी कोई भी दुकान प्रत्येक सदस्य को दस-दस रुपये का लाभ पहुँचा सकती है। क्योंकि उसमें पाँच व्यक्तियों की बुद्धि लगेगी, पाँच व्यक्तियों का श्रम और शक्ति लगेगी तथा इतने ही व्यक्तियों द्वारा उसके प्रचार, प्रबन्ध तथा व्यवस्था के साथ-साथ लाभ में भी योगदान मिलेगा।

इस तथ्य को यों आसानी से समझा जा सकता है कि एक व्यक्ति दिन भर श्रम करके जितना लाभ अर्जित करता है दस व्यक्ति मिल कर उतना श्रम करें तो प्रत्येक के हिस्से में एकाकी श्रम की अपेक्षा दुगना लाभ हो सकता है। क्योंकि व्यक्ति के श्रम की शक्ति की एक सीमा है और उस श्रम को यदि पूरा का पूरा ही किसी कार्य में झोंक दिया जाय तो दुबारा उस श्रमशक्ति का उपयोग करने में एक विश्रान्ति काल की आवश्यकता होगी। जबकि अधिक लोगों द्वारा प्रवाहित किया गया श्रम और कर्म का प्रवाह अनवरत अविश्रान्त अपने सत्परिणाम प्रस्तुत करता रहेगा।

आर्थिक उन्नति इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अधिकांश लोग गरीबी से भी निम्न स्तर का जीवन जी रहे हैं। सहकारिता का प्रयोग उनके लिए पारस और कल्पवृक्ष का काम दे सकता है। इसके लिए स्थान-स्थान पर सहकारी समितियाँ खोली जायें, मिल-जुलकर लोग एक सहकारी भण्डार खोलें और रोजमर्रा की आवश्यक वस्तुयें अच्छे स्तर और उचित मूल्य पर वहाँ बेची जायें। मिलावट, जमाखोरी, मुनाफाखोरी का भी यह एक अच्छा समाधान बन सकता है। 'प्रामाणिक वस्तुयें उचित दाम पर'—की नीति अपनाकर सहकारी स्टोरों को लोकप्रिय बनाया जा सकता है फिर अधिकांश लोग वहीं से अपनी दैनन्दिन आवश्यक वस्तुएँ खरीदते रहेंगे। सही नाप-तौल, देख-भाल, जाँच-परख करते-करते ग्राहकों को कई दुकानों पर भटकना पड़ता है। तब किसी प्रामाणिक केन्द्र पर अच्छी, सही माप में और आवश्यक वस्तुयें प्राप्त करने के लिए ग्राहक बिना कहीं भटके सहकारी स्टोर पर आयेंगे और आवश्यक वस्तुयें खरीदेंगे। मिल-जुलकर इस प्रकार के प्रयास चलाने में अनेक लाभ होंगे। सहकारी समिति के सदस्य जब एक स्थान पर मिल-जुलकर बैठेंगे तो उन्हें सोचने और विचार करने का अवसर मिलेगा तथा वे अपनी बुद्धि का उपयोग व्यवसाय को उन्नत करने में करेंगे। फलस्वरूप अन्य एकाकी प्रयासों की तुलना में उन समितियों द्वारा खोले जाने वाले भण्डारों को अधिक लाभ तो होगा ही, व्यक्तिगत घनिष्ठता बढ़ने और एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठाने का अवसर अतिरिक्त रूप से मिलेगा।

छोटे-छोटे उद्योग धन्धे और कुटीर व्यवसाय अलग-अलग चलाये जाते हैं। सहकारिता की नीति कुटीर उद्योग में भी अधिक लाभदायक और सफल हो सकती है। उदाहरण के लिए, बुनकरों के व्यवसाय को ही लिया जाय। अलग-अलग बुनकरों को कपास जुटाने, रूई निकालने और सूत कातने का श्रम करना पड़ता है। हर व्यक्ति को सूत तैयार करने और आवश्यक साधन जुटाने तथा सूत बनाने में बराबर-बराबर समय लगाना पड़ता है। फलतः मूल उत्पादन में एक तिहाई श्रम और समय ही लग पाता है। यदि ऐसा न करते हुए एक गाँव के सभी बुनकर मिलकर एक सहकारी समिति बना लें तो उनमें से पाँच-सात व्यक्ति कपास रूई जुटाने तथा सूत बनाने का काम सम्हाल सकते हैं। यदि बुनकरों की संख्या अधिक हो तो कपड़ा तैयार करने का काम भी वहीं आरम्भ किया जा सकता है और आसानी से चलाया जा सकता है। इस प्रकार हर व्यक्ति को दो तिहाई श्रम और समय जो अतिरिक्त कार्यों में लगना पड़ता है, वह बच सकता है और थोड़े से व्यक्ति ही अपना सारा समय लगा कर पूरे गाँव के सभी बुनकरों का अलग-अलग लगने वाला समय और श्रम बचा सकते हैं। यह नीति विशुद्ध लाभदायक रहेगी।

खेती को ही लें। दस-बीस बीघे जमीन रखने वाले किसान को भी अलग-अलग बैल और खेती के औजार रखने पड़ते हैं। सिंचाई तथा खलिहान का भी अपना अपना अलग प्रबन्ध करना पड़ता है। यदि दस किसान भी मिल जायें और सौ बीघा जमीन में भी सहकारी खेती करें तो बैल, खेती के औजार, सिंचाई, रखवाली तथा अन्यान्य कार्यों में लगने वाली शक्ति और पैसा बच सकता है। बची हुई वह शक्ति, श्रम और पैसा कृषि को उन्नत बनाने के लिए लगायी जाय तो अधिक लाभ होगा और निरर्थक खर्च होने वाली पूँजी भी बर्बाद न होगी।

पूँजी बढ़ के कारण कई देशों में छोटे पूँजी से कोई काम आरम्भ करना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो गया है। फलस्वरूप एक-एक दुकान या उद्योग के लिए जो व्यक्तिगत रूप से आरम्भ किये जाते हैं अधिक पूँजी लगाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है। जिसका अधिकांश भाग भाड़े-किराये और मजदूरी में ही खर्च हो जाता है। विकासशील देशों में भी यही स्थिति बन रही है। कम साधन और कम पूँजी में कोई कारोबार चलाना असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है। ऐसे स्थानों पर सहकारिता ही एकमात्र समाधान रह जाता है, जिसकी लोकप्रियता भी बढ़ रही है। वहाँ यह प्रक्रिया चल पड़ी है कि पैसे वाले पूँजी एकत्र करते हैं, व्यापार-उद्योग खोलते हैं, श्रमिक अपना संघ बना कर काम का ठेका लेते हैं। व्यक्तिगत रूप से कोई व्यक्ति बड़ी पूँजी नहीं लगाता और संगठित होकर सामूहिक रूप से प्रयास करता है। इस प्रकार साधनहीन लोगों द्वारा भी बड़े उद्योग स्थापित करने के कल्पनातीत उदाहरण कई देशों में सामने आ रहे हैं।

सहकारिता का प्रचलन तो इतना तीव्रगति से बढ़ रहा है कि कई देशों में भोजन के मामले में भी इसका उपयोग किया जा रहा है। एक मुहल्ले के सभी परिवारों का भोजन एक स्थान पर बनता है और शेष सब खा पी कर अपने-अपने काम में लग जाते हैं। ठीक भी है, एक मुहल्ले में ५० परिवार हैं तो क्या जरूरी है कि सबका अलग-अलग चूल्हा जले और चौका बर्तन हो। इस प्रकार एक-एक परिवार में एक-एक सदस्य इस काम पर रहता है। पचास स्त्रियाँ दो सौ व्यक्तियों की भोजन बनाने में लगें और कुछ न करें यह श्रम और शक्ति का अपव्यय ही तो कहा जायेगा। दो सौ व्यक्तियों की भोजन व्यवस्था पाँच-सात व्यक्ति मिल कर आसानी से पूरी कर सकते हैं। जबकि उस काम के लिए पचास व्यक्ति अपना समय बर्बाद करते हैं। ऐसा न होने देकर यदि सहकारी व्यवस्था बना ली जाय तो पैंतालीस अतिरिक्त व्यक्तियों को उत्पादक कामों में लगाया जा सकता है। परम्परागत भारतीय संयुक्त परिवार भी एक प्रकार से सहकारी प्रतिष्ठान ही कहे जा सकते हैं। पिता, माता, उनके पुत्र और पत्नियाँ तथा उनकी संतानें मिलकर २०-२५ व्यक्ति हो जाते हैं और घर परिवार की कुछ ही महिलायें भोजन व्यवस्था में लगती हैं। आज भले ही ऐसा न होता हो पर संयुक्त परिवार का प्रारम्भिक प्रचलन इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए किया गया था कि सम्मिलित व्यवस्था कम खर्च में और सुनियोजित ढंग से बने तथा चलती रहे।

यही बात सार्वजनिक उत्कर्ष के लिए भी लागू होती है। व्यक्ति कितना ही समर्थ और योग्य क्यों न हो जब तक अन्य लोगों का सहयोग नहीं मिलता तब तक कोई भी रचनात्मक कार्यक्रम सफल नहीं होता। भगवान राम जैसे योग्य और अवतारी पुरुष को भी आततायी असुरता का दमन करने के लिए रीछ, वानरों का सहयोग एकत्रित करना पड़ा था। कृष्ण ने भी कंस और कौरवों को परास्त करने के लिए गोप-गोपियों और छोटे-छोटे सामन्तों को संगठित किया था। करुणा और प्रेम का सन्देश घर-घर पहुँचाने के लिए महात्मा बुद्ध ने लाखों भिक्षुओं को धर्म विहारों और भिक्षु संघों में संगठित किया। महात्मा गाँधी ने भी अँग्रेजों को भगाने के लिए छोटे-छोटे आदमियों से राष्ट्रीय आन्दोलन चलवाया। संगठन और कुछ नहीं अधिक से अधिक व्यक्तियों की शक्ति को एक ही दिशा में उन्मुख करने का प्रयास है। सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों और विकृतियों के निराकरण तथा समाज कल्याण की सम्भावनाओं के साकार करने के लिए संगठित प्रयास ही सफल हो सकते हैं। एकाकी प्रयत्न कभी-भी सफल नहीं हो सकते, कदापि सफल नहीं होते। अच्छे से अच्छा और छोटे से छोटा प्रयास भी सहकार से ही फलीभूत होता है।

हमें रचनात्मक कार्यक्रमों से लेकर आर्थिक उन्नयन तक—सबको सफल बनाने के लिए सहकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए और व्यक्तिगत रूप से इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठा कर अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। सूक्ष्म रूप से भी हमारा अस्तित्व अन्य लोगों के सहकार और सहयोग पर टिका है। प्रकृति अपने प्रत्येक स्पन्दन से पुकार-पुकार कर सहकारिता का सन्देश सुना रही है। हम उसे सुने-समझें और व्यवहृत करें।

संघर्ष पर उतरें या सहयोग करें

सृष्टि में संघर्ष का नहीं, सहयोग का अस्तित्व है। संघर्ष से तो अराजकता, अव्यवस्था फैलती और विकसित जातियाँ भी पतन के गर्त में मिल जाती हैं। सतत् लड़ने-मरने पर उतारू जातियाँ आपस में ही भिड़कर समाप्त हो जाती हैं। इस तथ्य को प्राणिजगत के पिछले इतिहास के विकास एवं अवसान की घटनाओं के अध्ययन से भली-भाँति समझा जा सकता है। मनुष्येत्तर जीवों की कितनी ही बलिष्ठ एवं समर्थ जातियाँ केवल उस कारण लुप्त हो गईं कि उनमें मरने-मारने की हिंसात्मक प्रवृत्ति अधिक थी। उन्होंने आपस में ही लड़कर अपना अस्तित्व समाप्त कर लिया। पूर्वकाल में शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से एक से बढ़कर एक जीव थे। पर उनके आपसी संघर्ष ने उन्हें जीवित नहीं रहने दिया, 'डिप्लोडोकस' नब्बे फीट लम्बा था। 'ब्रेकियोसोरस' का वजन पचास टन था तथा ऊँचाई बीस फीट थी जो लगभग मकान के दूसरी मंजिल तक ऊँचा दिखाई पड़ता था। ट्रायनोसोरस के शरीर की लम्बाई बीस फीट तथा दाँत की ६ फीट थी।

ये सभी 'सरीसृप समूह' के नाम से विख्यात थे तथा सारे भूमण्डल पर छाये हुए थे। इनमें से कुछ पानी में, कुछ पृथ्वी पर तथा कुछ आकाश में भी उड़ने वाले भी जीव थे। शक्ति की दृष्टि से ये महादानव थे। किन्तु आपसी संघर्ष के कारण लुप्त होते चले गये। कुछ तो परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण अपना सामंजस बिठा पाने में असमर्थ रहे। इसका प्रधान कारण परिस्थितियों की प्रतिकूलता नहीं, आपसी सहयोग का अभाव था। एक तो वातावरण की प्रतिकूलता-दूसरे संघर्ष की प्रकृति-दोनों के सम्मिलित प्रहार ने उनका अस्तित्व ही समाप्त कर दिया। विकासवादी एकमात्र इसका कारण परिस्थितियों को बताते हैं पर इसे पूर्णतया सही नहीं माना जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैज्ञानिक शोध इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जीवों में विषम से विषम स्थिति में सामंजस्य स्थापित करने की अद्‌भुत सामर्थ्य विद्यमान है। स्पष्ट है कि आपसी सहयोग रहा होता तो विषमताओं में भी अपना अस्तित्व सुरक्षित रखा जा सकता था। किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका। जबकि शक्ति-सामर्थ्य की दृष्टि से नगण्य जीव आपसी सहयोग के कारण जीवित बने रहे। मनुष्य का स्वरूप भूत में जो भी रहा हो पर यह तो सुनिश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसमें आपसी सहयोग-सहकार की प्रवृत्ति थी उसी कारण उसने अपना अस्तित्व बनाए रखा। अपनी इस विशेषता के कारण वह न केवल समूह रूप में सुरक्षित रहा वरन् प्रगति के सोपानों पर क्रमशः चढ़ता गया। तर्कशील इस प्रगति को बुद्धि एवं विचारशीलता की परिणिति कह कर सन्तोष कर सकते हैं, पर तथ्य यह है कि सहयोग एवं सहकार रूपी विचारशीलता ने ही उसे वर्तमान स्थिति तक पहुँचाया है।

अन्य जीवों की तरह मनुष्य ने भी संघर्ष को ही महत्त्व दिया होता तो वह भी आपस में लड़-मरकर समाप्त हो गया होता। विकासवाद के जनक 'डार्विन' ने जीवन के लिए संघर्ष का जो सिद्धान्त दिया, उसका अर्थ संकुचित रूप में लिया गया। इस सिद्धान्त की समग्रता भी तभी बनती है जब उसे स्थूल संघर्षों के अर्थ में नहीं जीवन संघर्ष एवं विकास के लिए सतत् प्रयास के रूप में लिया जाय। संघर्ष का व्यापक अर्थ यह है कि "विभिन्न प्राणी एवं मनुष्य मजबूत एवं समर्थ बनें। यह तथ्य स्थूल कम सूक्ष्म अधिक है। तात्पर्य व्यक्ति से नहीं परिस्थिति से है।"

डार्विन ने स्वयं भी यह सिद्धान्त स्वीकार किया है कि "प्राणियों का अस्तित्त्व परस्पर एक दूसरे के ऊपर निर्भर है।" व्याख्याकारों ने इसका अर्थ संघर्ष के रूप में लिया तथा कहा कि अपने अस्तित्त्व को बनाए रखने के लिए शक्तिशाली जीव असमर्थों को समाप्त कर देते हैं। परिस्थितियों की महत्ता प्रतिपादित करने की दृष्टि से सम्भव है 'डार्विन' ने भी इस सिद्धान्त को संकुचित अर्थों में प्रयुक्त किया हो, पर वह एकपक्षीय एवं एकाकी है। उसे शाश्वत सिद्धान्त के रूप में तो तभी स्वीकारा जा सकता है जबकि वह सर्वत्र शाश्वत सत्य के रूप में लागू होता हो।

'जीवन संघर्ष' का अर्थ आपसी टकराव से नहीं था। इसकी पुष्टि स्वयं डार्विन ने 'मनुष्य का अवतरण' नामक पुस्तक में की है। वे लिखते हैं कि "विकास के क्रम में असंख्य प्राणि समूहों में पृथक्-पृथक् प्राणियों का आपसी संघर्ष मिट जाता है—संघर्ष का स्थान सहयोग ले लेता है और इसके फलस्वरूप उनका बौद्धिक एवं नैतिक विकास होता है। इस विकास से ही उन प्राणियों का अस्तित्व बने रहने के लिए अत्यन्त अनुकूल अवस्था पैदा होती है।" 'सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' की व्याख्या करते हुए डार्विन इस पुस्तक में स्वयं कहते हैं कि "ऐसे समुदायों में योग्यतम वे नहीं कहे जाते जो सबसे अधिक बलवान या चालाक हैं। वरन् समर्थ वे हैं जो अपने समाज के हित के लिए—निर्बल एवं बलवान सभी की शक्ति को इस तरह संगठित करना जानते हों कि वे एक-दूसरे के पोषक हों। जिन समुदायों में एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखने वाले प्राणियों की अधिकता होगी, वे ही सबसे अधिक उन्नत होंगे और फूले-फलेंगे।" वर्तमान में सर्वाधिक विकसित एवं प्रगतिशील समाज के विशद् अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि उनके परस्पर स्नेह-सहयोग एवं सहकार की भावना ने ही उन्हें उस स्तर तक बढ़ाया है अविकसित, पिछड़ी, असभ्य जातियों का गहराई से अध्ययन करने पर एक ही तथ्य हाथ लगता है कि पिछड़ेपन का एकमात्र कारण है—आपसी सहयोग, स्नेह एवं सहकार का अभाव।

जो पशु अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं, उसका कारण भी उनकी सहयोग भावना है। रूसो का कहना है कि "प्रकृति में प्रेम, शान्ति और सहयोग कूट-कूटकर भरा है। पशुओं को इन प्रवृत्तियों से रहित समझने वाले व्यक्तियों को जंगलों का पर्यवेक्षण करना चाहिए। उनकी यह विचारधारा निर्मूल सिद्ध होगी कि पशुओं में सामाजिकता का अभाव है।" डार्विन के सिद्धान्त की सर्वश्रेष्ठ व्याख्या रूसी प्रोफेसर 'केसलर' ने की है। उन्होंने माना है कि "सहयोग प्रकृति का नियम और विकास का मूल अंग है।" जनवरी १८८० में अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व रूसी प्रकृतिवादियों के समक्ष उन्होंने अपने ये विचार व्यक्त किए थे।

जीवन संघर्ष के सिद्धान्त का दुरुपयोग होते देखकर 'केसलर' ने उसका वास्तविक स्वरूप जन-सामान्य के समक्ष रखना अपना कर्तव्य समझा। उनका कहना था कि "प्राणी शात्र और मनुष्य सम्बन्धी अन्य दूसरे शास्त्र सदा उस नियम पर जोर देते हैं, जिसे वे अपनी भाषा में जीवन संघर्ष का निष्ठुर नियम कहते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति एक दूसरे नियम के अस्तित्व को भूल जाते हैं, जिसे हम पारस्परिक सहयोग का नियम कह सकते हैं। प्रो० केसलर ने बताया कि "किस प्रकार वन्य प्राणी भी परस्पर सहकार की भावना से समूहों में रहते, बच्चे पैदा करते तथा उनके लिए व्यवस्था जुटाते हैं। एक साथ रहने पर वे अपने साथियों को सहयोग भी करते हैं।"

अपने भाषण के अन्त में प्रो० 'केसलर' ने कहा कि "मैं जीवन संघर्ष के अस्तित्व से इन्कार नहीं करता। किन्तु मेरा कहना यह है कि पारस्परिक संघर्ष द्वारा नहीं बल्कि सहयोग द्वारा प्राणी संसार एवं मानव जाति का विकास सम्भव हुआ है। प्राणियों की दो प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। एक तो भोजन प्राप्त करना दूसरा अपने जाति की वृद्धि करना। इसमें पहली आवश्यकता संघर्ष को जन्म देती है जबकि दूसरी परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित करती है। किन्तु मेरा विश्वास है कि विकास के लिए दूसरी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं शाश्वत है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रो० 'केसलर' के विचारों का उल्लेख रूप से प्रसिद्ध विचारक 'प्रिंस क्रोपाटकिन, ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में किया है। जीवन संघर्ष की तथाकथित व्याख्या पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं कि 'मैं अपने मित्र प्राणि-विशेषज्ञ 'पोलियाकोफ' के साथ साइबेरिया के घने जंगलों में गया। डार्विन के सिद्धान्त का हम दोनों पर नया-नया असर था। हम दोनों यह आशा लगाये बैठे थे कि हमें एक ही जाति के प्राणियों में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा देखने को मिलेगी किन्तु वहाँ इसका कोई नामोनिशान नहीं था।"

जीवन में संघर्ष की स्थिति आती है इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु वह सृष्टि के सिद्धान्त का रूप नहीं ले सकता। हिंसक जीवों से लेकर चोर-डाकुओं, आतताइयों से सामना करने के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ता है। यह उचित है और आवश्यक भी। पर यह अपवाद है। आपत्तिकालीन परिस्थितियों में ही इसका अवलम्बन लिया जाता है। संघर्ष जीवन का 'दर्शन' नहीं बन सकता। यदि होगा भी तो अनन्तः दुष्प्रवृत्तियों के लिए। अपनी दुष्प्रवृत्तियों से तो मनुष्य को सतत् लड़ना होता है। परिस्थितियों के अनुकूलन के लिए भी अथक् प्रयत्न करना होता है। चाहें तो इसी को जीवन संघर्ष की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु यही जब बाह्य जीवन में अपने सजातियों के प्रति प्रकट होने लगेगा तो भारी संकट उत्पन्न हो जायेगा। उस स्थिति की कल्पना करें कि संघर्ष को जीवन का सिद्धान्त मानकर हर व्यक्ति अपनाने लगे तो कैसी स्थिति होगी। निश्चित ही "जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली" उक्ति चरितार्थ होगी। 'मत्स्य न्याय' की यह परम्परा मनुष्य को पाषाण युग के आदमखोर मनुष्य के तुल्य बना देगी और कुछ दिनों में सभ्यता लड़-मरकर समाप्त हो जायेगी।

पारिवारिक जीवन में यह परम्परा चल पड़े तो स्नेह आत्मीयता के पावन सूत्रों में बँधे रिश्तों को टूटते देर न लगेगी। जो शारीरिक दृष्टि से बलवान होगा, वह कमजोरों पर अपना स्वार्थ साधने के लिए अनेकों प्रकार के अत्याचार करेगा। 'संघर्ष' के जीवन दर्शन बन जाने पर कौन माँ निरीह बच्चों का, कौन पिता अनाथ सदस्यों का पालन-पोषण करेंगे ? बच्चे की सुरक्षा के लिए अपने जान की बाजी लगा देने वाली माँ क्यों कर यह उदात्त त्याग करेगी ? बच्चों के हितों के लिए अपने सुखों पर लात-मारने वाला पिता कभी भी त्याग-बलिदान से भरा कष्टसाध्य जीवन स्वीकार न करेगा। क्रूरता मानवी भाव-संवेदनाओं की—सेवा, दया, करुणा की प्रवृत्तियों को रौंदती हुई चली जायेगी। स्थूल परिप्रेक्ष्य में जीवन संघर्ष को सृष्टि का अनिवार्य नियम मान लेने पर तो हृदय विदारक स्थिति ही प्रस्तुत होगी।

समाज की प्रगति एवं सुव्यवस्था आपसी सहयोग एवं सहकार पर टिकी हुई है। संघर्ष यदि सफलता का आधार बन जाये तो सामाजिक व्यवस्था को विश्रृंखलित होते देर न लगेगी। अनीति, अत्याचार से, शरीर बल से हर व्यक्ति अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। नैतिक पुरुषार्थ की कोई महत्ता न होगी। फलतः प्रगतिशील मानव समाज की भी वही दुर्दशा होगी जो विलुप्त जीवों एवं आदिम जातियों की हुई। स्पष्ट है कि अस्तित्व संघर्ष का नहीं सहयोग का है—सहकार का है। मनुष्य जाति को, सभ्यता एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए जीवन-दर्शन के रूप में सहयोग एवं सहकार को स्वीकार करना होगा न कि संघर्ष को। जीवों के विकास एवं अवसान के तथ्यों के पर्यवेक्षण से भी यही तथ्य स्पष्ट होता है कि जिनमें यह प्रवृत्ति जितनी अधिक रही वह उतना ही आगे बढ़ते गये और प्रगति के उच्चतम सोपानों पर चढ़ते गये। सहयोग एवं सहकारिता रूपी उत्कृष्टता जीवन दर्शन को विचारशील मनुष्य जाति को अपनाना ही होगा। तभी वह अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रख सकते हैं।

संसार उपयोगितावाद पर नहीं, सहयोग और सद्भाव पर जीवित

उपयोगितावाद (यूटिलिटेरियनिज्म) सिद्धान्त के विश्वविख्यात प्रवर्तक जान स्टुअर्ट मिल ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—"संसार में सबको सुख या आनन्द की खोज है। सुख जीवन का लक्ष्य है और यह स्वाभाविक है कि मनुष्य आजीवन उसकी खोज करे। कई बार ऐसी परिस्थिति आती हैं, जब हमें एक सुख दूसरे से अधिक अच्छा लगे तो हमारे लिए वही इष्ट हो जाता है, भले ही उसको प्राप्त करने में अशांति का सामना करना पड़े। मनुष्य सुख चाहता है, वस्तुयें चूँकि उन सुखों की माध्यम हैं, इसलिए हम वस्तुओं का संग्रह करते समय भी केवल सुख प्राप्ति का प्रयत्न करते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि आनन्द मनुष्य जीवन में प्रमुख है, आचरण अप्रमुख।"

अर्थात् यदि माँस खाने से सुख की वृद्धि हो सकती है तो माँस खाना बुरा नहीं। यदि काम वासना की अधिक तृप्ति के लिए सामाजिक मर्यादायें तोड़ी जा सकती हैं तो वैसा करना पाप नहीं। धन अधिक और अधिक सुख देने में सहायक है, इसलिए अधिक से अधिक धन कमाने में यदि प्रत्यक्ष किसी पर दबाव न पड़ता हो तो वैसा किया जा सकता है, अर्थात झूँठ बोलकर, कम तौलकर, मिलावट आदि जितने भी व्यापार के भ्रष्ट नियम हैं, वह पाप नहीं हैं, यदि हमारे सुख की मात्रा उससे बढ़ती हो। बड़ी बलवान् शक्तियों द्वारा कमजोर छोटी शक्तियों का पोषण इस सिद्धान्त का ही समर्थित व्यवहार है। जान स्टुअर्ट और उनके सब अनुयायी इसके लिए प्रकृति को प्रत्यक्ष स्वायम्भू उदाहरण देते हैं और कहते हैं, बड़ी मछली छोटी को खाकर अपनी शक्ति बढ़ाती है। बड़ा वृक्ष छोटे वृक्ष की भी खुराक हड़प कर लेता है आदि। इन सब बातों को देखकर मनुष्य के लिए भी उपयोगितावाद सिद्धान्त का समर्थन होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ तक सुख की चाह का प्रश्न है, जान स्टुअर्ट के सिद्धान्त का कोई भी विचारशील व्यक्ति खण्डन नहीं करेगा। हम दिन-रात आनन्द के लिये भटकते हैं पर हमने शुद्ध आनन्द की व्याख्या और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न किये कहाँ ? दुःख के प्रमुख कारण हैं—(१) अशक्ति, (२) अज्ञान और (३) अभाव। यदि सम्पूर्ण जीवन को इकाई मानकर देखें और इन तीनों कारणों को दूर करने के प्रयत्नों पर विचार करें तो संयम, स्वाध्याय आदि के द्वारा ज्ञान वृद्धि और श्रम एवं क्रमिक विकास ही वह उपयुक्त साधन दिखाई देते हैं, जिनके अभ्यास से उन्हें दूर किया जा सकता है और आनन्द प्राप्ति की अपनी क्षमताओं का विकास किया जा सकता है।

आनन्द वृद्धि के लिए उपयोगितावादी सिद्धान्त हमें निरन्तर भौतिकता की ओर अग्रसर करते हैं और हमारी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को उस तरह भुलावा देते हैं, जैसे रेगिस्तान के शुतुरमुर्ग शिकारी को देखकर अपना मुख बालू में छिपाकर अपनी सुरक्षा अनुभव करते हैं। आज के संसार में बढ़ रहीं अशांति और असुरक्षा इस सिद्धान्त की ही देन हैं।

प्रकृति में बड़ी शक्तियों द्वारा छोटी शक्तियों के शोषण के सिद्धान्त अपवाद मात्र हैं। अधिकांश संसार तो सहयोग और सामूहिकता के सिद्धान्त पर जीवित है। उस क्षण की कल्पना करें, जब सारे संसार के लोग बुद्धि-भ्रष्ट हो जायें और परस्पर शोषण पर उतर आयें तो सृष्टि का विनाश एक क्षण में हो जाय। हम प्रकृति को सूक्ष्मता से देखें तो पायेंगे कि उसका अन्तर्जीवन कितना करुणाशील है। छोटे-छोटे जीव-जन्तु, वृक्ष-वनस्पतियाँ भी किस प्रकार परस्पर सहयोग और मैत्री का जीवनयापन कर रहे हैं। मानवीय सभ्यता तो जीवित ही इसलिए है कि इतने भौतिक विकास के बाद भी हम मनुष्य, मनुष्य के प्रति प्रेम, दया, करुणा, उदारता, सहयोग और सामूहिकता के सम्बन्ध को तोड़ नहीं सकते।

गाँवों के किसानों से कोई पूछे कि वे एक खेत में कई फसलें मिलाकर क्यों बोते हैं ? तो उपयोगितावाद के सिद्धान्त का खण्डन करने वाले तथ्य ही सामने आयेंगे। ज्वार और अरहर साथ-साथ बोई जाती हैं। मूँग, उड़द और लोबिया आदि दालें भी ज्वार के साथ बोई जाती हैं। ज्वार का पौधा बड़ा होता है, यदि उपयोगितावाद प्रकृतिगत या ईश्वरीय नियम होता तो वह इन दालों को पनपने न देता। होता यह है कि दालों को ज्वार के पौधों में बढ़ने और हृष्ट-पुष्ट होने में सहायता मिलती है। उधर ज्वार को नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है, सो वह काम अरहर पूरा करती है। वह वायुमण्डल से नाइट्रोजन खींचकर कुछ अपने लिये रख लेती है, शेष ज्वार को दे देती है, जिससे वह भी बढ़ती और अच्छा दाना पैदा करने की शक्ति ग्रहण करती रहती है। हमारे देश का सामाजिक ढाँचा इसी दृष्टि से बनाया गया था। वर्ग बँटे थे। लुहार अपना काम करता था, बढ़ई अपना, नाई, तेली, मोची, भंगी सब अपना-अपना काम करते थे और अपने जीवनयापन के साधनों को परस्पर विनिमय के द्वारा बाँट लेते थे।

इस तरह परस्पर स्नेह, आत्मीयता और प्रेम-भाव बना रहता था। तब मुद्राओं का ऐसा प्रचलन न था। आज मुद्रा स्वयं ही एक समस्या बन गई है और इस प्रकार का सहयोग न होने से आर्थिक खींचा-तानी पैदा हो रही है। साम्यवाद और पूँजीवाद का संघर्ष—परस्पर सहयोग के सिद्धान्त की अवहेलना के फलस्वरूप ही है।

पान की वेल आम के वृक्षों के सहारे ही बड़े अच्छे ढंग से बढ़ती है। उन्हें किसी घने वृक्ष की छाया न मिले तो बेचारी का जीवन ही संकट में पड़ जाये। यहाँ बड़ा छोटे के हितों की रक्षा करता है। अमरबेल बेचारी जड़ हीन होने से स्वयं सीधे आहार नहीं ले सकती, इसके लिए उसे बड़े वृक्षों का ही संरक्षण मिलता है। जिनके पास भी साधन और संपत्तियाँ हैं, वे उसे अपनी ही न समझकर समस्त वसुधा की समझकर आवश्यकतानुसार उदारतापूर्वक अल्पविकसितों को बाँटते रहें तो विषमता उत्पन्न ही क्यों हो ? आर्थिक साधन ही नहीं, विद्या, बुद्धि, कला-कौशल, स्वास्थ्य, सौन्दर्य आदि मानवीय विशेषतायें भी एकस्थ नहीं होनी चाहिए, हमारे पास जो भी योग्यता हो उसे पिछड़े वर्ग के विकास में स्वेच्छापूर्वक दान करना चाहिए।

बड़ी शक्तियाँ छोटी शक्तियों का शोषण करें, यह प्राकृतिक नियम नहीं। प्रकृति आश्रित को जीवन देने और उसके विकास में सहायता करने का कार्य करती है। 'छोटी पीपल' महत्त्वपूर्ण औषधि है, वह अपना विकास किसी घने छायादार वृक्ष के नीचे ही कर सकती है। इलायची नारियल के वृक्ष की छाया में बढ़ती है। बड़ा पेड़ अपने नीचे के छोटे पेड़ों को खा ही जाय यह कोई सार्वभौम नियम नहीं है।

एक गाँव में एक अन्धा रहता था, दूसरा लँगड़ा। एक दिन अकस्मात गाँव में आग लग गई। समर्थ लोग अपना-अपना सामान लेकर सुरक्षित भाग निकले। लँगड़ा और अन्धा दो व्यक्ति ही ऐसे रहे, जिन बेचारों के लिये बाहर निकलना सम्भव न था। एकाएक अन्धे को एक उपाय सूझा। उसने लँगड़े से कहा—यदि आप मुझे रास्ता बताते चलें तो मैं आपको कन्धे पर बैठाकर यहाँ से निकल सकता हूँ और इस तरह हम दोनों भी यहाँ से सुरक्षित बच सकते हैं। लँगड़े को योजना पसन्द आ गई। अन्धे ने उसे कन्धों पर बैठाया। लँगड़ा उसे दिशा दिखाता चला और इस तरह दोनों एक रास्ते से आग की लपटों से बचकर बाहर आ गये।

अन्धे और लँगड़े की यह कहानी मनुष्य समाज की सुरक्षा और सुख के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यहाँ कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं, सब अपूर्ण हैं। डॉक्टर औषधिशास्त्र का पण्डित हो सकता है, कानून-शास्त्र का नहीं। इन्जीनियर मशीनों का ज्ञाता होकर भी व्यापार शास्त्र की दृष्टि से निरा बालक रहता है। वैज्ञानिक के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने ही बच्चों का शिक्षण आप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर लें उसके लिये, उसे प्रशिक्षित अध्यापकों वाले कॉलेज का ही सहयोग लेना पड़ेगा। अपूर्णताओं वाले संसार में यदि उपयोगितावाद को खुला समर्थन दिया जाने लगे तो सबके सब अपने को उपयोगी मानकर छल-कपट, शोषण और अत्याचार करने लगें, ऐसी स्थिति में अशिक्षित किन्तु स्वस्थ और बलिष्ठ भी अपने शरीर की उपयोगिता सिद्ध करना चाहेगा। वह चोरी, डकैती और दूसरी तरह के अपराध करेगा क्योंकि उसे न्याय और नियन्त्रण में रखने वाली बौद्धिक शक्ति स्वयं पंगु हो चुकी होती है। यदि सब उदारतापूर्वक एक दूसरे से सहयोग का मार्ग अपना लें तो हर कोई स्वल्प साधनों में भी आनन्द की उपलब्धि कर ले। आज की स्थिति जो गड़बड़ है, उसका दोष इस उपयोगितावाद को ही दिया जा सकता है।

समुद्र में शंख पाया जाता है। उसका कीड़ा निकल जाता है, तब 'आर्थ्रोपोडा वर्ग का हरमिट 'क्रेब' नामक जल-जन्तु उसमें जा बैठता है। सोचता तो वह यह था कि यहाँ वह सुरक्षित रहेगा, किन्तु यहाँ भी उसे शत्रु का भय बना रहता है। मछलियाँ उसे कभी भी पकड़कर खा जाती हैं। यदि उपयोगितावाद का सिद्धान्त ही सत्य और व्यावहारिक रहा होता तो इसे कीड़े की वंशावली ही समाप्त हो गई होती।

पर प्रकृति ने उसे सहयोग के लिए प्रेरित किया। वहीं पर 'फाइसेलिया' नामक एक जानवर पड़ा होता है। बेचारा अपने आहार के लिये चल फिर नहीं सकता। आर्थ्रोपोडा उसे अपने शंख की पीठ पर बैठा लेता है और उसे यहाँ से वहाँ घुमाता रहता है। प्रत्युपकार में फाइसेलिया उस आर्थ्रोपोडा की रक्षा का भार स्वयं वहन करता है। फाइसेलिया अपने शरीर से काई की तरह का एक दुर्गन्धित पदार्थ निकालता रहता है, फलस्वरूप वह जहाँ भी रहता है, मछलियाँ भयभीत होकर पास नहीं आतीं और यही द्रव छोटे-छोटे जन्तुओं के मारने के काम आता है और इस फाइसेलिया और हरमिट क्रेब दोनों को भोजन भी मिल जाता है और इस तरह आर्थ्रोपोडा का जीवन सुरक्षित बना रहता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकृति ने यदि सहयोग और सद्भाव की प्रेरणा अन्तरंग से न दी होती तो सृष्टि के सम्पूर्ण प्राणियों का अस्तित्त्व ही समाप्त हो जाता।

एककोशीय जीवों को प्रोटोजोन्स कहते हैं। इनके हाथ-पैर, मुख आदि कुछ नहीं होते। एक नाभिक (न्यूक्लिस) होता है और उसके आस-पास 'साइटोप्लाज्म'। अमीबा एक ऐसा ही प्रोटोजोन है। इसी की जाति का 'पैरामीसियम' नामक जीव, जब थक जाते हैं और जीवन शक्ति बहुत कम पड़ती जाती है या बुढ़ापा अनुभव करते हैं, तब दो पैरामीसियम मिलकर एक दूसरे से साइटोप्लाज्म (एक प्रकार का द्रव-सा होता है जिसमें पानी के अतिरिक्त गैसें, खनिज, धातुयें, लवण, पोटेसियम, फॉस्फोरस आदि विभिन्न तत्त्व होते हैं) अदल-बदल लेते हैं, इससे उनमें पुनः एक नई शक्ति आ जाती है। जबकि मनुष्य समाज अपने माता-पिता और बुजुर्गों का केवल इसीलिये तिरस्कार करते रहते हैं, क्योंकि वे शक्ति और आजीविका की दृष्टि से अनुपयोगी हो जाते हैं। प्रकृति हमें इस बुराई के विरुद्ध चेतावनी देती है और यह बताती है कि यदि मनुष्य स्वयं औरों से सहयोग सहानुभूति आदि प्राप्त करे तो उसे भी इस मानवीय सदाचरण का परिपूर्ण निष्ठा के साथ पालन करना चाहिए और अपनी प्रगति तथा सुख-शांति का पथ प्रशस्त करना चाहिए।

जीवन का माधुर्य सहकारिता में है

क्या वास्तव में ही प्रकृति में बड़ों के बड़े महत्त्व का सिद्धान्त कार्य करता है, प्रिन्स क्रोपाटकिन ने जान स्टुअर्टमिल के इस उपयोगितावाद (डयूटेलिरिज्म) सिद्धान्त की शव परीक्षा का निश्चय किया। वे प्रकृति की पुस्तक खोल कर बैठ गये फिर उन्होंने जो पढ़ा और जो निष्कर्ष निकाले वे न केवल उक्त तथ्य का खण्डन, प्रकृति में सहयोग और सहजीवन के सिद्धान्त का समर्थन करते हैं अपितु उन घटनाओं से जो उन्होंने अपनी पुस्तक सहयोग और संघर्ष में संकलित की हैं, पढ़ कर मानव मन की जीव मात्र के प्रति उदारता की, सहयोग की, सहायता की प्रेरणा मिलती है।

ऐसे उदाहरण स्थान-स्थान पर, प्रत्येक जीव की सृष्टि में देखने को मिलते हैं—जिनसे पता चलता है यह संसार परस्पर विश्वास, आत्मीयता, सहयोग तथा जियो और जीने दो के सिद्धान्त का पालन करता है। सामूहिकता की भावना चीतलों में बहुत अधिक पाई जाती है। देहरादून के समीप बने कार्बट नेशलन पार्क में देखा गया है कि कई बार गाँवों से चरने आये जानवरों में भी वे अपनी इसी भावना के साथ घुल मिल जाते हैं और साथ-साथ चरने लगते हैं।

चीतलों और बन्दरों की दोस्ती भी दिलचस्प होती है। गर्मियों के दिनों में जब जंगल में तरह-तरह के फल लगते हैं यह मैत्री अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाती है। मित्रता प्रायः चीतल ही करते हैं। उसका कारण यह है कि यह बन्दर पेड़ों पर चढ़ जाते हैं, चीतल चढ़ नहीं पाते। बन्दर उनके लिये ऊपर से फल गिराते हैं; जिन्हें मित्र चीतल मण्डली प्रेमपूर्वक खाती है। बन्दर चीतल समुदाय की दोस्ती ठुकरा सकते हैं किन्तु वे इस बात को नहीं भूलते कि एक ही जंगल में रहने के नाते वे भी उनके भाई और सहयोग के पात्र हैं।

राजगीध आकाश में एक सांकेतिक गति से उड़ान भर कर दूर-दूर तक के अपने साथियों को मृतक जीव की दावत का संकेत देते हैं। थोड़ी ही देर में सैकड़ों गिद्ध एकत्र हो जाते हैं किन्तु भोज की शुरूआत वही गीध करता है जो अन्यों को आमन्त्रित करता हैं। यही नहीं मृतक जीव के शरीर का क्रोमल भाग उसे ही खाने को मिलता है शेष शरीर के अन्य अंगों के माँस पर सन्तोष करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक भावना शेरों में भी होती है साथ ही अनुशासन की प्रवृत्ति भी। अक्सर हठ या चंचलता व्यक्त करे बालक को शेरनी ही डपटती है, पर कई बार शेर भी दंगा करने वाले की पिटाई कर देता है। बन्दरिया अपने बच्चे की ताड़ना हलकी चिकोटी काट कर करती है। अनुशासन के नाम पर दण्ड दिया जाना अमानवीय कृत्य नहीं वरन् वह तो आवश्यकता है और उससे भी प्रकारान्तर से अन्यों के प्रति भलाई की ही भावना का पोषण होता है।

पाश्चात्य देशों में कामकाजी महिलाओं ने अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिये 'बैबी-सिटिंग' परम्परा चलाई है। एक मुहल्ले की काम पर जाने वाली महिलायें किसी कुशल दाई को वेतन पर इस कार्य के लिये नियुक्त कर लेती हैं, जितने समय वे दफ्तरों में काम करती हैं यह नर्स ही बच्चों की देखभाल करती है। लगता है पश्चिमी देशों ने यह परम्परा जीवों का अनुकरण करके अपनाई है। कोयल तो बिना कुछ कीमत दिये चालाकी से यह कार्य कौवे से करा लेती है किन्तु शेर, जिराफ, हाथी प्रायः अपने क्षेत्रों में पाये जाने वाले विश्वसनीय जानवरों के संरक्षण में बच्चों को छोड़कर निकल जाते हैं। ऐसे जानवर आश्रयदाता पर कभी आक्रमण नहीं करते। जाय एडम्सन जिन्होंने केन्या में खूँख्वार शेर तक पालने का करिश्मा दिखाया है ने अपनी पुस्तक में एक ऐसे शुतुरमुर्ग का उल्लेख किया है जो दूसरी विभिन्न जातियों के १२० बालकों की देखभाल करती थी। उन्हें खिलाने-पिलाने से लेकर भटकने से बचाने तक की सारी जिम्मेदारी वह कुशलता से निवाहती थी।

किसी समय भारतीय परिवार सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली के लिये विश्वविख्यात थे, किन्तु आज यह परम्परा धीरे-धीरे नष्ट हो चली। आधुनिक सभ्यता के नाम पर नवदम्पत्ति न केवल अलग रहना पसन्द करते हैं अपितु वे परिवार के बुजुर्गों यहाँ तक कि अपने माता-पिता को भी अनुपयोगी कहकर उनसे घृणा करने लगे हैं। किन्तु यह वृद्ध कितने उपयोगी होते हैं इसका पता नव गृहणी के प्रसव आदि के समय चलता है, जबकि दादी-मातायें ही उन्हें शिशु-पोषण के इस कठिन दायित्व से मुक्त रखती और बच्चों के पोषण जैसे दुस्तर कार्य को वे खुशी-खुशी, भावनापूर्वक मेहतरानी की तरह करती हुई भी प्रसन्न और प्रफुल्ल रहती हैं। वे कितना बड़ा बोझ उठाती हैं यह सहज समझ में आने वाली बात है।

मनुष्य जाति इस प्रथा को भूलकर अमानवीय आचरण पर उतर रही है किन्तु अनेक जीव अब भी इस उपयोगी परम्परा को कायम किये हैं। सम्भवतः वे अन्त तक इस कार्य में निष्ठा बनाये रखेंगे। डोल्पिन जाति की मछलियों में चिरकाल से यह परम्परा चली आ रही है। डॉल्फिन जब गर्भावस्था में होती है तब उसी जाति की कोई वृद्ध मादा बहू और नाती की सुरक्षा के लिए उन्हें अपनी पीठ पर तब तक चढ़ाये घूमती है जब तक शिशु जन्म न ले ले। शेरों में ऐसी प्रथा है कि दूसरी शेरनी प्रसूता की सहायता करती और उसके बालकों की देखभाल करती है कदाचित कभी शेरनी का निधन हो जाये तो वही पालिका उनकी माँ बन जाती है और उनका पालन विमाता की तरह नहीं सगी माता की तरह व्यवस्था और लाड़-प्यार से करती है किन्तु मनुष्यों में विमाता के प्रति सामान्य दृष्टि कितनी संकीर्ण है यह सभी जानते हैं सभी मामलों में यह भले ही न हो तो भी प्रायः वैसा ही होता है जैसी मान्यता बन गई है।

बोनीलिया मादा नर की अपेक्षा इतनी बड़ी होती है कि वर्षों तक जीवशास्त्री इन्हें दो जाति के जन्तु समझते रहे। मादा अपने नर को आजीवन अपने पेट की थैली में रखती है। यहीं उसे आहार, विश्राम आदि सभी कुछ मिलता रहता है। इस गुण के कारण ही वर्षों अध्ययन के बाद यह पता लगाया जा सका कि दोनों ही जन्तु एक ही जाति के नर व मादा हैं।

अपेक्षाकृत अपने से कृशकाय पति का भार आजीवन ढोने वाली बोनीलिया सहकारी जीवन का एक अनूठा उदाहरण है और इस बात की प्रेरणा कि संसार में मैत्री का आधार समान हित, समान स्वार्थ साधक ही नहीं कष्ट सहकर भी दूसरों का कल्याण, भावनात्मक आदान-प्रदान होना चाहिए उससे जीवन में कहीं अधिक गति और रस आता है।

'लाइकेन' जीवविज्ञान का एक ऐसा शब्द है जो प्रकृति के सहजीवन का उद्घोष करता है। बरसात के दिनों में जहाँ-तहाँ उगने वाले कुकुरमुत्तों को तुलसीदास ने 'सुकृत' की उपमा दी है। वास्तव में यह है भी ऐसा ही। देखने में तो यह लगता है कि कुकुरमुत्ता जिस पेड़ पर या पत्थर की चट्टान पर उगा है वही उसका आश्रय और पोषक है पर तथ्य इससे विपरीत है इसके कोमल तने के अन्दर जल शैवाल नाम का कोश-समुदाय निवास करता है वह कुकुरमुत्ते के भीतर न केवल सुरक्षित बना रहता है अपितु कुकुरमुत्ते के इस उपकार का बदला वह उसे प्रकृति से जीवन तत्त्व खींचकर कुकुरमुत्ते को दे देता है, जिससे उसका भी विकास होता है। इसी तरह का सम्बन्ध घोंघे में रहने वाले कर्कट तथा 'सी एनीमोन' के बीच पाया जाता है। कर्कट आजीवन इन्हें पीठ पर बैठाये घूमता रहता है। यह जीव इस उपकार का बदला कर्कट की जीवन रक्षा में सहायता के रूप करते हैं। कर्कट अनेक जल जीवों का प्रिय भोजन है किन्तु यह एनीमोन अपने शरीर से एक प्रकार का विषैला द्रव निकालते रहते हैं, जिसके भय से आक्रामक जीव कर्कट से कोसों दूर भागते हैं।

जैसा कि नाम से जाना जा सकता है फ्रांस में पाया जाने वाला मेल मिड वाइफ टोड नामक मेंढ़क मादा को, बच्चे को सेने का कष्ट नहीं देता। वह अन्डों को स्वयं अपनी टाँगों में तब तक चिपकाये रहता है जब तक उनसे बच्चे न निकल आयें। इस तरह वह न केवल अपनी पारिवारिकता का परिचय देता है अपितु आदर्श दाम्पत्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्ठा का भी। परस्पर एक दूसरे के प्रति इस तरह उदार और सहायक बने रहने से इस मेढ़क परिवार की तरह चाहें तो मनुष्य भी अपने पारिवारिक जीवन को आदर्श और आनन्दपूर्ण बनाये रख सकते हैं।

जिराफ और जेबरा की दोस्ती जीव जगत की एक अनौखी घटना है। जिराफ जेबरे को खाना खिलाता है जेबरा न केवल-संकट के समय जिराफ को उसकी पूर्व जानकारी देता है अपितु उसकी प्राण देकर भी सहायता करता है।

पानी में तैरते दरियाई घोड़े की पीठ पर बैठी चिड़ियों से दोस्ती भी ऐसी है। चिड़िया उसकी पीठ पर बैठ कर न केवल अपने लिये आहार प्राप्त करती हैं; अपितु सैर का भी आनन्द लेती हैं। दरियाई घोड़े का भी उसमें अपना स्वार्थ है अपने शरीर और मुँह पर लगे अवांछनीय तत्त्वों की सफाई वह इन चिड़ियों से करा लेता है। इस तरह उनकी यह मैत्री प्रगाढ़ रूप में चलती रहती है।

सहयोग का यह क्षेत्र जीव-जीव तक ही सीमित नहीं मनुष्य और जीव समुदाय परस्पर भी इस मैत्री और उदार सहकारिता के पुण्य फल लम्बे अर्से से प्राप्त करते चले आ रहे हैं। तोते और मैनाओं के द्वारा चोरों से मालिक की सुरक्षा के दृश्य तो कभी-कभी देखने में आते हैं पर खाकी रंग की ५ इंच की छोटी-सी चिड़िया हनीगाइड का उपकार तो मनुष्य के साथ वर्षों से जुड़ा है। हनीगाइड शहद ढूँढ़ने वालों के लिये गाइड का काम करती है, वह जैसे ही किसी सहदिये (शहद निकालने वाले) को देखती है एक विशेष प्रकार की आवाज करती है उसे अपनी ओर आकर्षित करती है अब वह आदमी उसके पीछे-पीछे चलने लगता है। हनीगाइड उसी तरह चहचहाती एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक चलती हुई उसे उस स्थान तक पहुँचा देती है जहाँ शहद का छत्ता लगा होता है।

इसमें उसका अपना भी स्वार्थ है। मधु-छत्ते का मोम उसका विशेष प्रिय भोजन है। यह सहयोग वह इसी के लिये करती है किन्तु कदाचित सहदिये ने यह भूल की कि छत्ते का मोम उसे खाने के लिये नहीं छोड़ा तो फिर वह उसे जंगल में बहकाकर किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा देगी जहाँ कोई खूँख्वार सर्प या भयानक जंगली जीव होगा। इस भय से मनुष्य को उसके साथ विश्वासघात की हिम्मत नहीं होती। आदमी छत्ता स्वयं ढूँढ़े और हनीगाइड भी वहाँ पहुँच जाये पर मोम न मिले तो वह यह असहिष्णुता नहीं दिखायेगी वह विशुद्ध अपने परिश्रम का ही लाभ लेने की इच्छुक रहती है, पर ऐसी परिस्थिति में भी वह उस व्यक्ति को पहचानने और भविष्य में उससे दोस्ती जोड़ने की दूरदर्शिता से भी चूकती नहीं।

हनीगाइड के शरीर में कोई ऐसा तत्त्व है जो मोम को पिघला देने में सक्षम है। वैज्ञानिक अभी तक उस तत्त्व की खोज नहीं कर पाये। अब ऐसी आशा बँधी है कि हनीगाइड सम्भव है इस कठिनाई का निराकरण कर दे। ऐसा हुआ तो "आर्टरियों स्कलेरोसिस धमनियों के सख्त हो जाने जैसी असाध्य बीमारियों का निदान सम्भव हो जायेगा।"

मनुष्य जीवन अपनी सभ्यता के आदि काल से ही जिन मनुष्येतर प्राणियों से उपकृत हुआ पाराबत या कबूतर उनमें से एक है। मनुष्य के उपकार के लिये उसने अपार संकट सहे, कष्ट झेले पर उसकी सहिष्णुता और कर्त्तव्य-निष्ठा को रत्ती भर आँच नहीं आई। १८७०-७१ में जर्मनी ने फ्रांस में घेरा डाला उस समय पेरिस में कबूतरों की एक विधिवत् 'सिगनल ब्रिगेड' स्थापित की गई थी, संकटग्रस्त और युद्ध पीड़ित क्षेत्रों में सन्देशवाहक का कार्य यह ब्रिगेड ही करती थी। कहना न होगा कि जर्मनी के पंजे से फ्रांस को मुक्ति दिलाने का श्रेय इन कपोतों को ही है। ग्रीकवासी कपोतों को लम्बे अर्से तक अपने डाकियों के रूप में प्रयुक्त करते रहे। भारत के उपनिवेशों में सन्देश भेजने, पाने का कार्य पुर्तगाली शासक इन कबूतरों से ही कराते थे।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि ग्रीक के राजकुमार एंड्रोक्लीस ने एक बार एक शेर के बच्चे के पाँवों से काँटा निकाला था। कुछ दिन बाद शेर बड़ा होकर राजकीय चिड़ियाघर में आ गया। इस बीच एड्रोक्लीस को किसी अपराध में सजा दी गई। उसे मृत्युदण्ड के बतौर उसी शेर के पिंजड़े में फेंका गया किन्तु खूँख्वार शेर ने राजकुमार के शरीर की सुगन्ध से अपने उपकारी को पहचान लिया, कृतज्ञता उमड़ पड़ी। काटना तो दूर वह राजकुमार को इस तरह स्नेह से चाटने लगा जैसे बहुत दिनों बाद कोई बिछड़ा बालक अपनी माँ से मिला हो। खूँख्वार जानवरों में भी जब इस तरह की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं तो यह मानने के लिये विवश होना पड़ता है कि जीवन की गहराइयाँ जिन तत्त्वों से बनी हैं वे मूलतः भाव-सम्वेदनायें हैं। मैत्री, दया, प्रेम, करुणा और उदारता हर किसी को प्रिय हैं भले ही भौतिक दृष्टि से उसका कुछ भी मूल्यांकन क्यों न किया गया हो।

प्रेम, दया, करुणा, उदारता और सहअस्तित्त्व की तरह प्राणियों में ईर्ष्या की भावना भी कम नहीं पाई जाती, किन्तु वह विशुद्ध स्पर्धा के रूप में। कई बार तो उनमें यह स्पर्धा भी अत्यन्त सिद्धान्तपूर्ण होती है। लोब्स्टर (एक प्रकार की मछली) जाति की मादा के शरीर पर एक प्रकार का कड़ा आवरण चढ़ा होता है। गर्भ धारण से पूर्व वह अपना वह खोल उतार फेंकती है। उसे इस स्थिति में पाकर अन्य मादायें ईर्ष्या से जलभुन उठती हैं। यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि उस पर केवल मादायें ही चारों तरफ से आक्रमण कर देती हैं कोई भी नर ऐसा नहीं करता।

मस्कैरट जाति की चुहिया को अपने बच्चों की हिफाजत के लिये एक ओर जहाँ दूसरी शत्रु जाति के जीवों से रक्षा करनी पड़ती है वहीं उन्हें अपने ही नरों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिस्पर्धा का सामना भी करना पड़ता है क्योंकि उन्हें बच्चों का मादा के साथ रहना अच्छा नहीं लगता और द्वेषवश वे स्वयं ही उन्हें मार डालते हैं। कई बार चुहिया यह समझती है कि अब बच्चों की दूसरे जीवों से रक्षा असम्भव हो गई तो वह इस भावना से कि उसके बच्चों का अधिक उत्पीड़न न हो स्वयं ही उन्हें मार डालती है। यह परम्परा ओपोसनम खरगोश आदि कुछ अन्य जीवों में भी पाई जाती है। दक्षिणी अफ्रीका के एडो पार्क में १९६६ के एक दिन ऐसी ही घटना एक हाथी समुदाय में देखने को आई, ७५ वर्ष की एक वृद्ध हथिनी अत्यधिक कृशकाय और बीमार थी, जितनी बार वह उठने और चलने का उपक्रम करती, लड़खड़ा कर गिर जाती। दुबारा फिर हाथियों ने सहारा देकर उठाया पर इस बार भी वैसी ही दशा हुई। इस पर कबीले के एक बड़े दाँतों वाले मुखिया ने आगे बढ़कर उसके पेट में अपना दाँत घुसेड़ कर उसका प्राणान्त कर दिया किन्तु ऐसा करने में भी उनकी कल्याण भावना ही प्रमुख थी। एक बार सारे हाथी मिलकर चीखे मानों वे मृतक की सद्गति की कामना कर रहे हों। इसके बाद उसे विधिवत् घास-फूँस और पत्तों से ढककर वे चले गये। हाथी अपने मृतक का अन्तिम संस्कार इसी तरह करते हैं।

जीवों में प्रतिस्पर्धा सिद्धान्त रूप में ही होती है वे न तो जन्मजात बैर बाँधते हैं न देर तक उसे बैर को मन में रखते हैं एक शेर दूसरे को चित्त कर दे बस उनका फैसला अन्तिम हो गया फिर लड़ाई समाप्त और सन्धि का रास्ता साफ है।

शेर अपने लिये एक क्षेत्र नियत करके रखते हैं और एक-दूसरे की सीमा का अतिक्रमण नहीं करते। यदि एक शेर किसी नये स्थान पर जाये कि यहाँ का साम्राज्य किसी और का है तो वह बिना कोई अपमान अनुभव किये उस क्षेत्र को तुरन्त छोड़ देता है। शेर अपने क्षेत्र की पहचान वृक्षों पर लगाये गये नाखून के निशानों से तथा एक विशेष प्रकार की गन्ध से करते हैं। स्थान-स्थान पर पेशाब करके उसकी गन्ध से भी शेर अपनी सीमा निर्धारित करते पाये गये हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि प्रवासी शेर पंजों के निशान की ऊँचाई से पूर्व निवासी शेर की शक्ति का अनुमान करते हैं और यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाये कि अधिष्ठित दुर्बल श्रेणी का है तो वह भिड़ने के लिये भी तैयार हो जाता है, पर ऐसा बहुधा नहीं होता।

बहुत बुरी तरह ही भूखा न हो तो शेर प्रायः अकेले शिकार खाना पसन्द नहीं करते। शिकार के बाद शेर एक विशेष प्रकार की आवाज से समीपवर्ती जंगल के शेर-शेरनियों को दावत में सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित करता है। प्रत्युत्तर में दूसरे शेर स्वीकृति के स्वर में उसी की तरह की आवाज करता है। आमंत्रित शेर को तब वहाँ तक पहुँचने में कुछ समय भी लगे पर भोज उनके एकत्र हो जाने के बाद ही प्रारम्भ होता है। इस दावत में बच्चों को पूर्ण अनुशासित रहना पड़ता है। यदि वे कुछ चंचलता या ढिठाई करें तो उन्हें शेरनी की ताड़ना का भी सामना करना पड़ता है। शेर एकाकी रहने वाला जीव है पर उसकी सामूहिकता और पारिवारिकता भी प्रौढ़ किस्म की है।

तुच्छ कहे जाने वाले इन जीवों की जीवन दृष्टि बड़ी व्यापक, बड़ी उदार होती है उसे देखकर ही प्रिन्स क्रोपाटकिन ने लिखा है—हमारा जीवन के प्रति मोह इस कारण से है कि उसमें आत्मा को आल्हाद प्रदान करने वाले तत्त्व अधिक हैं। तभी वह जीवन के लिये संघर्ष करता है। यदि उपयोगितावाद ही प्रकृति का सत्य रहा होता तो फिर इस सृष्टि में रहना कौन पसन्द करता।

मानवी प्रगति सहकारिता से ही द्रुतगामी बनेगी

अगले दिनों जब कभी समाज में सुख-शान्ति और सुव्यवस्था का आधार रखा जायेगा और ये स्थितियाँ विनिर्मित होंगी तो वे किसी एक व्यक्ति के बलबूते पर नहीं होंगी। नहीं ऐसा होगा कि बहुत से व्यक्ति अलग-अलग दिशाओं में स्वतन्त्र और एकाकी प्रयास करें तथा समाज में सुख-शान्ति की स्थापना हो जाय। प्रगति और सुख शान्ति का, सुव्यवस्था की स्थिरता का एक ही आधार हो सकता है और वह है सामूहिकता, सहकारिता।

सहकारिता और सामूहिकता का महत्त्व वर्णनातीत है रस्सी के एक-एक रेशे को अलग-अलग एक छोटा-सा बच्चा भी तोड़ देता है। लेकिन वही रेशे एक साथ मिला कर बट दिये जाते हैं, तो उससे हाथी भी बाँधे जा सकते हैं। व्यक्ति की अपनी निजी क्षमता और शक्ति सीमित है। वह एक सीमित क्षेत्र में ही सफलतापूर्वक प्रयुक्त हो सकती है और अपना परिणाम-प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। बड़े प्रयोजन सिद्ध करना हो, पूरे समाज को ऊँचा उठाना हो तो उसके लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों के सम्मलित प्रयास, सामूहिक व्यवस्था और सहकारिता को ही आधार बनाना पड़ेगा।

इतिहास में इस बात को प्रमाणित करने वाले अनेकों तथ्य हैं। मध्यकाल में शिक्षा की व्यवस्था व्यक्तिगत थी। सम्पन्न घराने के लोग अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए घर पर ही अध्यापक नियुक्त कर लेते थे। मध्य वर्ग के थोड़े-बहुत लोग जो पढ़े-लिखे थे वे अपने बच्चों को स्वयं ही पढ़ा लेते थे। इससे अधिकांश लोगों के लिए न तो शिक्षा प्राप्त करना संभव था और जो पढ़ते भी थे उनके लिए यह पढ़ना काफी महँगा सिद्ध होता था किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में जब सामूहिक व्यवस्था की गई तो बहुत आसानी से निम्न वर्ग के लोगों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना संभव हो सका। आज धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित सभी लोग अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा देखना चाहते हैं और इसके लिए स्कूल भेजते हैं तो उन्हें इसमें कोई खास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अड़चन नहीं होती। शिक्षा की सामूहिक व्यवस्था कितनी लाभदायक और कम खर्चीली रही है ? यह बढ़ते हुए शिक्षा के प्रसार को देखकर जाना जा सकता है।

जीव-जन्तुओं में अथवा मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों में सहयोग-सद्भाव को ही क्यों लें ? मनुष्य स्वयं भी अपने समर्थकों, सहयोगियों और अन्यान्य लोगों के सहयोग से आगे बढ़ता है। अब तक ज्ञान का जो विकास हुआ है, उसमें से निन्यानवे प्रतिशत पूर्वजों से विरासत में प्राप्त करता है। मनुष्य अकेले अपने प्रयत्नों से ही सब कुछ नहीं सीख जाता, इसके लिए उसे दूसरों का सहयोग भी प्राप्त करना पड़ता है।

होना यह चाहिए था कि सहयोग और सहकारिता की यह परिधि और विकसित होती तथा सामूहिकता की भावना को आगे बढ़ाया जाता, इसमें मानवी सभ्यता का विकास और द्रुतगति से संभव हो जाता। किन्तु अभी इस दिशा में प्रायः उदासीनता से ही काम लिया जा रहा है। सामूहिक व्यवस्था का एक परिणाम हम शिक्षा क्षेत्र में देख चुके हैं कि किस प्रकार इस व्यवस्था से अगणित लोगों को लाभ पहुँचाने की संभावना बनी है। यह प्रयोग अन्य क्षेत्रों में भी किया जाना चाहिए। विकसित देशों में विचारशील लोग इस दिशा में कुछ प्रयोग कर भी रहे हैं, जैसे पश्चिमी देशों में कामकाजी महिलाओं ने, काम पर चले जाने के बाद अपने बच्चों की देखभाल के लिए बेबी सिटिंग परम्परा का आरम्भ किया है। एक मुहल्ले की काम पर जाने वाली कुछ महिलाएँ किसी कुशल दाई को वेतन पर इस कार्य के लिए नियुक्त कर देती हैं। ये आयायें, उन बच्चों की माँओं की अनुपस्थिति में उनकी पूरी देखभाल करती हैं। इससे उन्हें भी रोजगार मिलता है और काम-काजी महिलाएँ भी निश्चिन्त होकर दफ्तरों में, कारखानों में काम करती हैं।

कुछ स्थानों पर 'कम्यून' के प्रयोग भी हुए हैं। दस बीस परिवारों का एक साथ भोजन बनता है और उससे अधिकांश श्रम की बचत हो जाती है। लार्जर फैमिली, संयुक्त परिवार आदि इसी सिद्धान्त पर आधारित हैं। इन प्रयोगों को व्यापक तौर पर चलाना चाहिए और सहकारिता की शक्ति को उसके महत्त्व और उपयोगिता को समझ कर उससे मनुष्य जाति की प्रगति गति को द्रुतगामी बनाना चाहिए।

सहयोग और सहकार से ही समस्या सुलझेगी

मानव जाति के विकास में सहयोग अथवा संघर्ष में से किसने अधिक योगदान दिया है। इतिहास में इसकी ढूँढ़-खोज करने पर निष्कर्ष सहयोग के पक्ष में ही जाते हैं। इतने पर भी संघर्ष की सर्वथा अनुपयोगिता नहीं सिद्ध की जा सकती। संघर्ष भी अपवाद के रूप में आवश्यक है पर यह कभी-कभी चलने वाली प्रक्रिया है जो विशेष परिस्थितियों में उपयोगी एवं सहायक हो सकती है। चोर, डाकुओं, आततायियों की दुष्टता का दमन करने में संघर्ष की नीति ही सफल होती है। पर ऐसे अवसर तो कभी-कभी ही आते हैं जब संघर्ष का मार्ग अपनाना आवश्यक हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियाँ तो यदा-कदा ही आती हैं।

आदिम युग की पिछड़ी स्थिति से आज की सभ्य स्थिति में मानव जाति को पहुँचाने में सहयोग एवं सहकार की ही प्रमुख भूमिका रही है। "जीवन संघर्षमय है। संसार में पग-पग पर संघर्ष करना पड़ता है, प्रायः इस सिद्धान्त को समझने में भ्रम हो जाता है।" वहाँ संघर्ष से अर्थ परिस्थितियों एवं स्वयं की मनःस्थिति के संघर्ष से है न कि व्यक्तियों के चलने वाले आपसी संघर्ष से है। अस्तु-संघर्ष को सामाजिक सुव्यवस्था एवं विनाश के अनिवार्य साधन के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता। उसकी सीमित आवश्यकता एवं सीमित भूमिका होती है।

कार्लमार्क्स द्वारा प्रतिपादित साम्यवादी विचारधारा का उदय ऐसी ही आपत्तिकालीन परिस्थितियों में हुआ जब मालिकों, पूँजीपतियों का शोषण एवं दमन-चक्र अपनी चरम सीमा पर था। ऐसे समय में विद्रोह का उठना स्वाभाविक था। समाज दो वर्गों में विभाजित था—एक शोषक पूँजीपतियों का वर्ग जिसके हाथों में सत्ता थी—उत्पादन के साधनों पर जिनका आधिपत्य था। दूसरा वर्ग था शोषितों का। मजदूर-किसान, कर्मचारी इसी के अन्तर्गत आते थे। शोषण एवं दमन की नीति के कारण दोनों वर्गों के बीच खाई बढ़ती गई। पूँजीपति और भी समृद्ध होते गए और मजदूर की श्रेणी में आने वालों की स्थिति बदतर होती गई। ऐसी ही विषम परिस्थिति में आपत्ति धर्म के रूप में साम्यवादी विचारधारा का उदय हुआ जिसका लक्ष्य था—समता के आधार पर एक ऐसे वर्गहीन समाज की रचना करना, जिसमें सबको समान न्याय एवं अधिकार मिले। लक्ष्य श्रेष्ठ होते हुए भी उसकी प्रगति के लिए साम्यवाद जिस हिंसक क्रान्ति का—वर्ग संघर्ष का समर्थन करता है वह हर दृष्टि से अहितकर तथा मनुष्य एवं समाज के विकास में अवरोधक है।

संघर्ष-संघर्ष को ही जन्म देता है और इस श्रृंखला का कोई अन्त नहीं होता अतएव 'वर्ग-संघर्ष' को वर्गहीन समाज की स्थापना में एक श्रेष्ठ सिद्धान्त के रूप में नहीं अपनाया जा सकता। इतिहास साक्षी है कि अपवादों को छोड़कर संघर्ष द्वारा कोई स्थायी समाधान निकला हो। उलटे समाज में विघटन, विग्रह, मनोमालिन्य, ईर्ष्या एवं द्वेष का दौर चल पड़ता है। शोषण की प्रवृत्ति को जड़ से समाप्त करने के लिए आत्म अंकुश एवं आत्म नियंत्रण के वे वैचारिक आधार देने होंगे जिनसे अभिप्रेरित होकर मनुष्य स्वयं अपरिग्रह को मानवी धर्म के रूप में अपनाने के लिए बाध्य हो जाय।

यह मान्यता निराधार है कि मालिक, मजदूर के बीच, पूँजीपति और कर्मचारी के बीच परस्पर सहयोग, सहकार के आदान-प्रदान से समस्याओं का हल नहीं निकल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता और इस नीति में अन्ततः मालिक ही नफे में रहता है। वास्तविकता की खोजबीन की जाय तो निष्कर्ष यह निकलते हैं कि दोनों यदि एक दूसरे की कठिनाइयों को समझने एवं सच्चे हमदर्द की भाँति सहयोग की नीति अपना लें तो दोनों ही लाभ में रहते हैं और समाज की सुव्यवस्था भी बनी रहती है, सर्वतोमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। आवश्यकता इस दिशा में बस इतनी भर होती है कि दोनों ही अपने-अपने दायित्वों को समझें तथा निर्वाह के लिए भरपूर प्रयत्न करें।

उत्पादन कार्यों का संचालन करने वाले उद्योगपतियों को उनके महान दायित्वों का बोध कराने के लिए मैंचेस्टर के उद्योगपति 'राबर्ट ओविन' का उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा। स्कॉटलैण्ड के एक कस्बे न्यूलैनार्क में उसने एक कपास का कारखाना खरीदा। उन दिनों इंग्लैण्ड में कारखाने तेजी से बढ़ रहे थे। अन्य मिल मालिकों की भाँति अधिक से अधिक धन संग्रह करना उसका लक्ष्य न था। मजदूरों की दयनीय स्थिति के प्रति उसके हृदय में पीड़ा थी। न्यूलैनार्क कालोनी में मजदूरों के चौदह सौ परिवार थे जो गन्दी बस्तियों में रहते थे। उनके उपार्जन का अधिकांश भाग मद्यपान एवं जुआ खेलने में व्यर्थ चला था। बच्चों के शिक्षा-दीक्षा की कोई व्यवस्था न थी। ओविन ने कारखाने का चार्ज लेते ही यह निश्चय किया कि हमारा लक्ष्य मात्र उपार्जन नहीं है। रोग, शोक, पीड़ा एवं पतन के गर्त में पड़े किन्तु उत्पादन के मेरुदण्ड मजदूर वर्ग की स्थिति न सुधारी गई तो नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से अपराध होगा। मजदूरों का कायाकल्प करने के लिए उन्होंने एक योजना बनाई। मिल की आय का बड़ा हिस्सा उसने मजदूरों के विकास के कार्यक्रमों के लिए निर्धारित किया। सस्ते दाम पर उपलब्ध होने वाले सामानों के लिए उसने सहकारी स्टोर खुलवाये, ऐसे मकानों का निर्माण कराया जिसमें प्रकाश एवं वायु की समुचित व्यवस्था हो। बच्चों की शिक्षा के लिए विद्यालय खोले गये। मद्यपान एवं जुआ, सट्टा पर पूर्ण पाबन्दी लगा दी गई। मजदूरों के सदाचार सम्बन्धी रजिस्टर रखे गये। उनकी वेतन वृद्धि 'चरित्र रिकार्ड' के आधार पर होती थी। विविध अवसरों पर ऐसे चरित्रनिष्ठ मजदूरों, कर्मचारियों को पुरस्कृत भी किया जाता था। ओविन के इन प्रयासों का प्रतिफल यह हुआ कि मजदूरों की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुधरने लगी। कितने ही व्यक्तियों ने ओविन को परामर्श दिया कि इस प्रयास में उसे भारी घाटा उठाना पड़ सकता है पर ओविन ने किसी की बात न मानी। सबसे आश्चर्य की बात यह हुई कि जैसे-जैसे मजदूरों की स्थिति सुधरी, उसी अनुपात में कारखाने का उत्पादन भी बढ़ता गया। अपनी चरित्रनिष्ठा एवं कर्मठता के लिए कारखाने के मजदूर पूरे योरोप में प्रख्यात हुए। समाज सुधार कार्यों में अभिरुचि रखने वाली कितनी सामाजिक संस्थाएँ 'न्यूलैमार्क' के मजदूर दल का अवलोकन करने के लिए आती रहीं और सबने एक स्वर से 'ओविन' की दूरदर्शिता की प्रशंसा की।

यह परस्पर सहयोग एवं सहकार की स्वर्णिम परिणति है। एक की उदारता से दूसरे वर्ग की स्थिति सुधरी—दूसरे ने उस उदारता का प्रतिदान अपनी श्रमशीलता एवं कर्मठता के रूप में चुकाया फलतः कारखाने के उत्पादन में भारी बढ़ोत्तरी हुई। यह अनुकरणीय उदाहरण अन्य उद्योगपति, मिल मालिक अपनाने लगें तो इससे दोनों को ही लाभ होगा, दोनों के बीच बढ़ता हुआ मनोमालिन्य घटेगा तथा परस्पर सहयोग एवं सहकार का दौर चल पड़ेगा। विग्रह, विघटन एवं संघर्ष की परिस्थितियाँ न आने पायेंगी। अधिकारों की माँग को लेकर आये दिन हड़तालों की श्रृंखला चलती तथा प्रतिवर्ष कितनी हानि उठानी पड़ती है विश्वभर का लेखा-जोखा लेने पर यह पता चलता है कि मानवी श्रम का एक बड़ा भाग यों ही व्यर्थ चला गया। यदि उसकी रोकथाम की जा सकी होती तो भौतिक प्रगति में असामान्य योगदान मिल सकता था।

गलती दोनों ही ओर से होती है। मालिक की नीति अपना स्वार्थ साधने की अधिक और मजदूर, कर्मचारियों का दुःख-दर्द समझने की कम रहती है। शोषण एवं दमन के कारण आक्रोश एवं विद्रोह की आग मजदूर के भीतर ही भीतर धधकती रहती है जो कभी-कभी हड़तालों के रूप में निकलती है। फलतः प्रतिवर्ष भारी क्षति उठानी पड़ती है। दोनों के बीच परस्पर सघन सहकार का क्रम चल पड़े तो आपत्तिकालीन परिस्थितियों में भी आपसी सद्भाव के कारण ऐसे समाधान निकल आते हैं जो एक दूसरे के बीच मनोमालिन्य के रहते प्रायः असम्भव ही होते हैं। दो दशकों पूर्व इंग्लैण्ड में एक ऐसा ही भाव-भरा उदाहरण प्रस्तुत हुआ।

इंग्लैण्ड के एक कारखाने में दो हजार व्यक्ति काम करते थे। कारखाने के मजदूर अपनी कर्मठता के लिए विख्यात थे। समकक्ष अन्य कारखानों की तुलना में इसका उत्पादन भी सर्वाधिक होता था। कुछ कारणों से अकस्मात् मिल को भारी घाटा उठाना पड़ा और धीरे-धीरे कर्ज चढ़ने लगा। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि कर्ज चुकाने के लिए मिल को बेचने की नौबत आ गई। मैनेजर ने इस स्थिति से सभी कर्मचारियों को अवगत कराने के लिए एक सूचना प्रसारित कराई कि कर्ज अधिक हो जाने के कारण मिल को बेचना होगा। कर्मचारियों में जिनका पैसा मिल के ऊपर बाकी हो उसका हिसाब दे जायें ताकि मिल बेचकर कर्ज के साथ ही उनका भी भुगतान किया जा सके।" मजदूरों एवं कर्मचारियों के लिए यह अप्रत्याशित घटना थी। जिसके माध्यम से अब तक रोजी-रोटी मिलती रही वह आधार टूट जायेगा, यह सोचकर सभी चिन्तित हुए। मजदूर यूनियन द्वारा एक मीटिंग बुलाई गई ताकि इस समस्या पर विचार-विमर्श किया जा सके। यूनियन के मन्त्री ने यह प्रस्ताव रखा कि क्या मिल के दो हजार कर्मचारी जिनको कारखाने से आजीविका मिलती रही है, इसे बिक्री से रोक नहीं सकते ? विचार मन्थन के उपरान्त निष्कर्ष निकला कि यदि हर कर्मचारी अपने प्रॉवीडेन्ट फण्ड की राशि उधार के रूप में मिल को कर्ज चुकाने के लिए दे दे तो प्रस्तुत समस्या का हल निकल सकता है। सबने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रस्ताव को मानकर 'स्थायी निधि' की राशि मिल को देना स्वीकार कर लिया और अपने इस प्रतिवेदन से मैनेजर को अवगत कराया। इस भावभरी उदारता से कारखाना नीलाम होने से बच गया। कुछ ही वर्षों में मजदूरों की कर्मठता से मिल की स्थिति में उत्तरोत्तर सुधार होता गया। अपनी सामान्य अवस्था में आते ही मिल के व्यवस्थापक ने अतिरिक्त बोनस राशि के साथ सभी कर्मचारियों के पैसे वापस लौटा दिये।

सहयोग की भावभरी उदारता का यह क्रम मालिक मजदूर के बीच सर्वत्र चल पड़े तो इससे अन्ततः दोनों ही नफे में रहेंगे। उत्पादन बढ़ेगा। फलतः देश की प्रगति में योगदान मिलेगा जबकि इसके विपरीत वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को मानने एवं मान्यता देने से तो मनोमालिन्य और विग्रह बढ़ता ही जायेगा। अस्तु, संघर्ष को नहीं सहयोग एवं सहकार के सिद्धान्त को मान्यता देने और अपनाने से ही समस्त समाज की प्रगति एवं समृद्धि सम्भव है।

हम सच्चे अर्थों में सुसंस्कृत बनें

संस्कृति का अर्थ है मनुष्य का भीतरी विकास। उसका परिचय व्यक्ति के निजी चरित्र और दूसरों के साथ किये जाने वाले सद्व्यवहार से मिलता है। दूसरों को ठीक तरह समझ सकने और अपनी स्थिति एवं समझ धैर्यपूर्वक दूसरों को समझा सकने की स्थिति भी उसे योग्यता में सम्मिलित कर सकते हैं जो संस्कृति की देन है।

आदान-प्रदान एक तथ्य है जिसके सहारे मानवी प्रगति के चरण आगे बढ़ते-बढ़ते वर्तमान स्थिति तक पहुँचे हैं। कृषि, पशुपालन, शिक्षा, चिकित्सा, शिल्प, उद्योग, विज्ञान, दर्शन जैसे जीवन की मौलिक आवश्यकताओं के सम्बन्धित प्रसंग किसी एक क्षेत्र या वर्ग की बपौती नहीं है। एक वर्ग की उपलब्धियों से दूसरे क्षेत्र के लोग परिचित हुए हैं। परस्पर आदान-प्रदान चले हैं और भौतिक क्षेत्र में सुविधा सम्वर्द्धन का पथ-प्रशस्त हुआ है। ठीक यही बात धर्म और संस्कृति के सम्बन्ध में भी है। एक ने अपने सम्पर्क क्षेत्र को प्रभावित किया है। एक लहर ने दूसरों को आगे धकेला है। लेन-देन का सिलसिला सर्वत्र चलता रहा है। मिल-जुलकर ही मनुष्य हर क्षेत्र में आगे बढ़ा है। इस समन्वय से धर्म और संस्कृति भी अछूते नहीं रहे हैं। उन्होंने एक-दूसरे को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित किया है।

अब दुनिया में कोई नस्ल ऐसी नहीं बची जो पूरी तरह रक्त शुद्धि का दावा कर सके। जातियों के बीच प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से बेटी व्यवहार चलते रहे हैं और नस्लों के मूल रूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। भारत वंशी लोगों के रक्त में आर्य और द्रविड़ रक्त का सम्मिश्रण इतना अधिक हुआ है कि दोनों से मिलकर एक तीसरी अथवा संयुक्त जाति बन गई है। इसी प्रकार एक सभ्यता पर दूसरी सभ्यता के निकट आने का भारी प्रभाव पड़ा है। भारत में पिछले एक हजार वर्ष से मुस्लिम और ईसाई सभ्यताएँ आती रही हैं। उनके पूर्ण अनुयायी कितने बने यह बात पृथक् है। सामान्य जनमानस ने उनका बहुत कुछ प्रभाव ग्रहण किया है। प्रचलित भारतीय पोशाक ऐसी नहीं है। जिसे दो हजार वर्ष पुरानी कहा जा सके। इसी प्रकार रीति-रिवाजों एवं मान्यताओं में भी अनजाने ऐसे तत्त्वों का समावेश होता रहा है। जिसे खुले मन से न सही हिचकिचाहट के साथ—समन्वय स्वीकार किया जा सके।

यह सभ्यताओं का समन्वय एवं आदान-प्रदान उचित भी है और आवश्यक भी। कट्टरता के कटघरे में मानवी विवेक को कैद रखे रहना असम्भव है। विवेक दृष्टि जागृत होते ही इन कटघरों की दीवारें टूटती हैं और जो रुचिकर या उपयोगी लगता है, उसका बिना किसी प्रचार या दबाव के आदान-प्रदान चल पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए कट्टरपंथी प्रयास सदा से हाथ-पैर पीटते रहे हैं, पर यह कठिन ही रहा है। हवा उन्मुक्त आकाश में बहती है। सर्दी-गर्मी का विस्तार व्यापक क्षेत्र में होता है। इन्हें बन्धनों में बाँध कर कैदियों की तरह अपने ही घर में रुके रहने के लिए बाधित नहीं किया जा सकता। सम्प्रदायों और सभ्यताओं में भी यह आदान-प्रदान अपने ढंग से चुपके-चुपके चलता रहा है। भविष्य में इसकी गति और भी तीव्र होगी।

धर्म और संस्कृति के बारे में तो कुछ-कहना ही व्यर्थ है। वे दोनों ही सार्वभौम हैं उन्हें सर्वजनीन कहा जा सकता है। मनुष्यता के टुकड़े नहीं हो सके। सज्जनता की परिभाषा में बहुत मतभेद नहीं है। शारीरिक संरचना की तरह मानवी अन्तःकरण की मूलसत्ता भी एक ही प्रकार की है। भौतिक प्रवृत्तियाँ भी लगभग एक-सी हैं। एकता व्यापक है और शाश्वत। पृथकता सामयिक है और क्षणिक। हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं। एक ही धरती पर पैदा हुए हैं। एक ही आकाश के नीचे रहते हैं। एक ही सूर्य से गर्मी पाते हैं और बादलों के अनुदान से एक ही तरह अपना गुजारा करते हैं फिर कृत्रिम विभेद से बहुत दिनों तक, बहुत दूरी तक किस प्रकार बँधे रह सकते हैं। औचित्य को आधार मानकर परस्पर आदान-प्रदान का द्वार जितना खोलकर रखा जायगा उतना ही स्वच्छ हवा और रोशनी का लाभ मिलेगा। खिड़कियाँ बन्द रखकर हम अपनी विशेषताओं को न तो सुरक्षित रख सकते हैं और न स्वच्छ हवा और खुली धूप से मिलने वाले लाभों से लाभान्वित हो सकते हैं। संकीर्णता अपनाकर पाया कम और खोया अधिक जाता है।

एकता की दिशा में हम आगे बढ़ें तो इसमें पूर्वजों के प्रति अनास्था नहीं वरन् श्रद्धा की ही अभिव्यक्ति है। पूर्वज अपने पूर्वजों की विरासत को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए भी अपने बुद्धिबल और बाहुबल से नये अनुभव एकत्रित करते, लाभ कमाते और साधन जुटाते रहे हैं। इसमें पूर्वजों को सन्तोष ही हो सकता है। साथ ही गर्व भी। अपनी सन्तान पर कोई अभिभावक यह बन्धन नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगाता कि हममें अधिक शिक्षा या सम्पत्ति सन्तान को नहीं कमानी चाहिए। हमसे अधिक यश या कौशल अर्जित नहीं करना चाहिए। बन्धन लगाना तो दूर समझदार अभिभावक अपने से अधिक प्रगति करने के लिए अपने उत्तराधिकारियों को उत्साहित और उत्तेजित करते हैं। ऐसी दशा में पूर्वजों की तुलना में एकता के क्षेत्र में हम कुछ कदम और आगे बढ़ सके तो इसमें असमन्जस की कोई बात नहीं है। इसमें पूर्वजों की अवज्ञा जैसा कोई प्रश्न उठता ही नहीं। पिताजी यदि ६० वर्ष जिये और बेटा ७० वर्ष जी सके तो इसमें दुःख मानने की कोई बात नहीं है। सदाशयता, शालीनता, एकता और विवेकशीलता की दिशा में प्रगति करना मानवी प्रगति के इतिहास में एक अच्छी कड़ी और जोड़ देना ही कहा जा सकता है।

अब राष्ट्रवाद के दिन लदते जा रहे हैं। देशभक्ति के जौम को अब उतना नहीं उभारा जाता, जिसमें अपने ही क्षेत्र या वर्ग को सर्वोच्च ठहराया जाय अथवा विश्व विजय करके सर्वत्र अपना ही झण्डा फहराने का उन्माद उठ खड़ा हो। ऐसी पक्षपाती और आवेशग्रसित देशभक्ति अब विचारशील वर्ग में नापसन्द की जाती है और विश्व नागरिकता की वसुधैव कुटुम्बकम् की बात को महत्त्व दिया जाता है। विश्व एकता के सिद्धान्त को मान्यता मिली है और राष्ट्रसंघ बना है। इस दिशा में प्रगति के चरण धीमे उठ रहे हैं, यह चिन्ता का प्रसंग है। अपेक्षा यही की जाती है कि संसार की व्यापक समस्याओं का समाधान विश्व एकता के बिना और किसी प्रकार सम्भव न हो सकेगा। एक भाषा, एक राष्ट्र, एक संस्कृति अपना कर ही उज्ज्वल भविष्य की, विश्वशांति की स्थापना हो सकती है। यह तथ्य मानवी विवेक ने स्वीकार कर लिया है और विभेद उभारने वाले तत्त्वों को अमान्य ठहराया जा रहा है। सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में भी ऐसी ही व्यापक एकता उत्पन्न करने के लिए वातावरण बनाना होगा। राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद की तरह सभ्यतावादी की कट्टरता को भी अगले दिनों क्रमशः अधिक शिथिल करते चलने की आवश्यकता पड़ेगी। नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना के लिए ऐसे एकतावादी विवेक को जाग्रत करने की आवश्यकता है जिसमें अपने ही पक्ष को सर्वोपरि ठहराये जाने का आग्रह न हो। अपने-पराये का भेदभाव न करके औचित्य, न्याय, तथ्य और विवेक को ही जब मान्यता दी जायगी तो फिर उपयोगिता स्वीकार करने की मनःस्थिति बन जायगी तब जहाँ से भी—जितनी मात्रा में तथ्य दृष्टिगोचर होगा स्वीकार किया जायगा। इसके लिए किसी को खेद मनाने की आवश्यकता न होगी कि हमारी अमुक मान्यताओं को सर्वांश में जाग्रत विवेक ने स्वीकार नहीं किया। पिछला पैर उठाकर ही अगला पैर आगे रखा जाता है। लम्बी मंजिल इसी प्रकार पूरी होती है। आगे बढ़ना है तो पीछे का पैर अपने स्थान पर जमे रहने का आग्रह नहीं चल सकता।

अँग्रेजी में संस्कृति का अर्थ बोधक शब्द है 'कल्चर' इसका तात्पर्य है—सभ्यता। रहन-सहन एवं सोचने-विचारने का तरीका। अपने नाम, रूप, धन, परिवार, क्षेत्र, भाषा, धर्म आदि की तरह ही अपने रहन-सहन की पद्धति भी लोगों को प्रिय लगती है। यह प्रियता बहुधा पक्षपात के रूप में बदल जाती है। अपने को श्रेष्ठ दूसरों को निकृष्ट मानने की तरह है। अपने परिकर एवं सरंजाम के सम्बन्ध में भी वैसी ही मान्यता बन जाती है। इसमें पूर्वाग्रह और पक्षपात का गहरा पुट रहता है। यद्यपि वह लगता ऐसा है मानो सत्य अपने ही हिस्से में आया है और दूसरे सभी गलत सोचते और झूठ बोलते हैं। अन्यान्य मतभेदों की तरह संस्कृति सम्बन्धी मतभेद भी एक है, जिसके लिए बहुत बार भयंकर युद्ध होते रहे। व्यक्तिगत जीवन में भी विद्वेष, घृणा, आक्रमण, प्रतिरक्षा जैसी विडम्बनाएँ अनेक बार संस्कृति के नाम पर भी खड़ी होती रही हैं और उनसे मनुष्य जाति को धन, जन, नीति, सद्भावना, शांति और सुरक्षा की दृष्टि से भारी हानि उठानी पड़ी है। इस प्रकार जहाँ संस्कृति का मूल अस्तित्व व्यक्ति और समाज के कल्याणकारी तत्त्व पर आधारित है वहाँ उसके प्रति अत्युत्साह और दुराग्रह में विद्वेष के विष बीज भी कम मात्रा में भरे हुए नहीं हैं। योरोप में ईसाई धर्म के प्रति और एशिया में इस्लाम धर्म के प्रति अत्युत्साह ने जिस निष्ठुरता का परिचय दिया है, उससे उन संस्कृति प्रेमियों का गौरव बढ़ा नहीं। उन धर्मों की गरिमा अन्तःकरण की गहराई में प्रवेश न कर सकी यद्यपि बहुतों ने भयभीत होकर अथवा लोभ लाभ की दृष्टि से उन्हें स्वीकार अवश्य कर लिया।

संस्कृति शब्द को सभ्यता से पृथक रखा जा सके तो अर्थ का अनर्थ होने से बच सकता है। धर्म और सम्प्रदाय के सम्बन्ध में भी यही बात होनी चाहिए। धर्म एक चीज है और सम्प्रदाय दूसरी। सम्प्रदायवाद-धर्म तत्त्व के समर्थक ही हों यह आवश्यक नहीं। बहुत-सी रिवाजें एवं मान्यताएँ ऐसी हो सकती हैं, जो प्राचीन होने के साथ-साथ लोकप्रिय बन गई हों और अनेकों व्यक्ति उसके समर्थक, अनुयायी हों, इतने पर भी उनका बहुत-सा पक्ष, धर्म भावना के मूल सिद्धान्तों से मेल न खाता हो। भारतीय समाज को ही लें। जाति-पाँति के नाम पर ऊँच-नीच की भावना और नर-नारी की असमानता की मान्यता गहराई तक लोगों के मनों में उतर गई है। नीति और न्याय की दृष्टि से उसका तनिक भी औचित्य नहीं है। फिर भी परम्परागत अभ्यास के कारण उसकी जड़ें इतनी नीची चली गई हैं जो काटे नहीं कटतीं। इसी प्रकार हिन्दू धर्म में अथवा अन्य धर्मों में ऐसे ही प्रचलन हो सकते हैं। देवताओं के सामने पशुबलि चढ़ाया जाना, धर्म की मूल मान्यताओं से, उच्चस्तरीय आदर्शों से मेल नहीं खाता फिर भी उसे अनेक धर्मों में मान्यता प्राप्त है।

जिस प्रकार सम्प्रदाय को धर्म का कलेवर भर कह सकते हैं वैसे ही सभ्यताओं में संस्कृति के कुछ तत्त्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झाँकते हुए देखे जा सकते हैं। वस्त्र, आभूषण, वेश-विन्यास देख कर किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारियाँ मिल सकती हैं, फिर भी उस आवरण को पूरा व्यक्तित्व नहीं कहा जा सकता। धर्म एक तत्त्वज्ञान है जिसमें उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व की दिशा में मनुष्य को अग्रगामी बनाने के लिए कुछ नीति-नियमों का निर्धारण है। सम्प्रदाय उस दृष्टिकोण को मानने वाले समुदाय के रहन-सहन का तरीका है। यह तरीका मात्र आदर्शों से ही प्रेरित नहीं होता वरन् परिस्थितियों, साधनों एवं परम्पराओं पर आधारित होता है। उसमें तत्त्व के सिद्धान्त भी किसी मात्रा में घुले-मिले हो सकते हैं, पर कोई समूचा सम्प्रदाय समूचे धर्म तत्त्व का प्रतिनिधित्व नहीं करता। उसमें दूसरी चीजों का भी समावेश हो सकता है। किसी सम्प्रदाय का कट्टर अनुयायी सच्चे अर्थों में धर्मात्मा भी होगा यह नहीं कहा जा सकता। ठीक इसी प्रकार अनेकानेक सम्पदाओं में भी मानवी संस्कृति की झलक मिल सकती है, पर कोई सभ्यता पूरी तरह सुसंस्कृत होने का दावा नहीं कर सकती। यदि ऐसा ही होता तो फिर पृथकता से लेकर विरोध तक के ऐसे तत्त्व कहीं दिखाई न पड़ते जिनसे टकराव की स्थिति पैदा होती हो।

संस्कृति देश और जाति में विभाजित नहीं हो सकती। वह दानवी है और सार्वभौम है। दूसरे अर्थों में उसे मनुष्यता—मानवी गरिमा के अनुरूप उच्चस्तरीय श्रद्धा, सद्भावना कह सकते हैं। इसके प्रकाश में मनुष्य परस्पर स्नेह-सौजन्य के बन्धनों में बँधते हैं। सहिष्णु बनते हैं। एक-दूसरे के निकट आते और समझने का प्रयत्न करते हैं। विभेद की खाई पाटते हैं, पर सभ्यताओं के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे क्षेत्रों, जातियों, मान्यताओं और परिस्थितियों का कलेवर ओढ़े रहने से स्पष्टतः एक दूसरे से बहुत हद तक पृथक् दीखती हैं और कितनी ही बातों में उनके बीच आसाधारण मतभेद भी है। सभ्यताएँ टकराती हैं। एक सभ्यता के अनुयायी दूसरे लोगों को अपने झण्डे के तले लाने के लिए उचित ही नहीं अनुचित उपाय भी काम में लाते हैं। अपनी सभ्यता को दूसरों की सभ्यता के आक्रमण से बचाने के लिए लोग सुरक्षा के लिए भारी प्रयत्न करते हैं। ऐसे उपाये सोचते हैं जिनसे परस्पर घुलने-मिलने और आदान-प्रदान के अवसर न आने पावें। धर्मों के बीच कट्टरता इस हद तक देखी जाती है कि दूसरे धर्म के पूजा-उपचारों में सम्मिलित होने पर भी प्रतिबन्ध रहता है। इसी प्रकार एक सभ्यता वाले अपने लोगों को दूसरी सभ्यता वालों के वेष विन्यास तक को अस्वीकार करते हैं। विचारों की तुलनात्मक समीक्षा करने की तो उनमें गुंजायश ही नहीं रहती। अपना सो सर्वश्रेष्ठ, दूसरों का सो निकृष्टतम। यही अहंकार बुरी तरह छाया रहता है। सभ्यतानुयायी और धर्मावलम्बी कहलाने वाले व्यक्ति ही इस पक्षपात के सर्वाधिक शिकार पाये जाते हैं।

संस्कृति सौन्दर्योपासना है। एक भावभरी उदात्त दृष्टि रहे। वन, उपवनों, नदी, तालाबों, प्राणियों, बादलों, तारकों जैसी सामान्य वस्तुओं को जब सौन्दर्य पारखी दृष्टि से देखा जाता है तो वे अन्तरात्मा में आह्लाद उत्पन्न करती है। श्रद्धा के आरोपण से पत्थर में भगवान पैदा होते हैं। सांस्कृतिक चिन्तन से हम इस संसार को भगवान का विराट् स्वरूप और अपने कलेवर को ईश्वर के मन्दिर जैसा पवित्र अनुभव कर सकते हैं। जहाँ ऐसी दृष्टि होगी वहाँ दूसरों से सद्व्यवहार करने और अपनी उत्कृष्टता बनाये रखने की ही आकांक्षा बनी रहेगी और उसे जितना कार्यान्वित करना बन पड़ेगा; उतना ही अपना और दूसरों का सच्चा हित साधन बन पड़ेगा। सुसंस्कृत दृष्टिकोण अपनाकर मनुष्य अपने देवत्व को विकसित करने और वातावरण को सुख-शांति से भरा-पूरा बनाने में आशाजनक सफलता प्राप्त कर सकता है।

विचारक इलियट ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृति का पर्यवेक्षण' में लिखा है—संस्कृति का स्वरूप आचरण करने के लिए विवश करने वाली आस्था है। जिसका अन्तःकरण इस रंग में जितनी गहराई तक रंगा हुआ है वह उतना ही सुसंस्कृत है।

हम अपने उत्तरदायित्व समझें और उन्हें निबाहें

व्यक्तिगत और पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए प्रयत्नशील रहना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है। इसके लिए यथाशक्य सभी को समुचित प्रयत्न करना चाहिए, पर इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस क्षेत्र की आवश्यकताएँ अथवा महत्वाकांक्षाएँ इतनी अधिक न बढ़ जायँ कि समाजगत उत्तरदायित्वों को पूरा करने की दिशा में समय, श्रम, मन तथा धन का कुछ भी अंश बच न सके। कई बार तो लोग अपना निजी भार इतना अधिक बढ़ा लेते हैं कि उसे नीतिपूर्वक वहन कर सकना सम्भव ही नहीं रहता। चोरी, चालाकी के द्वारा ही उसकी पूर्ति करनी पड़ती है। जिनकी विलासी आदतें बढ़ गई हैं, जिन्हें फिजूलखर्ची की लत पड़ गई है उनके लिए न्यायोपार्जित आजीविका प्रायः कम ही पड़ती है। उन्हें अवांछनीय आधार अपनाकर उसकी पूर्ति करनी पड़ती है।

पारिवारिक कर्त्तव्य बताते हैं कि जो सदस्य अपने हाथ, पैर, नाक, कान की तरह संयुक्त कुटुम्ब के उत्तरदायित्व से बँधे हुए हैं, उन सबकी आवश्यकताओं एवं सुविधाओं का उचित ध्यान रखा जाय। अक्सर कमाऊ लोग अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए मनमाना खर्च करते हैं और जो बचता है उसे घरवालों पर बहुत एहसान जताते हुए देते हैं। यह अनुचित है। कमाने का यह अर्थ नहीं कि उसी को खाने का अधिकार है। उपार्जन एक कर्त्तव्य है जो हर कमा सकने योग्य व्यक्ति को पूरी तत्परता के साथ करना चाहिए किन्तु उसमें से खर्च उतना ही करना चाहिए, जो नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि अधिक समझदारी और अधिक जिम्मेदारी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तकाजा यह है कि वह पारिवारिक एकता की रीढ़, श्रद्धा, सद्भावना को बनाये रखने के लिए अपने लिए अपेक्षाकृत कम खर्च करे। इससे सुविधा में कमी भले ही पड़े, पर घर का सहज सम्मान बरसेगा और उस उपलब्धि से पूरे परिवार पर भावनात्मक शासन कर सकना—अपने प्रभाव से उन्हें सुसंस्कृत बना सकना कहीं अधिक मात्रा में सम्भव हो जायगा।

मनुष्य जाति का सभ्य सदस्य होने के नाते हर व्यक्ति को अपने नागरिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए। अपनी सुविधा और समाज की सुविधा का जहाँ भी तुलनात्मक प्रश्न उपस्थित होता हो, वहाँ समाज को प्रथम और अपने को गौण रखना चाहिए। अपने को थोड़ी असुविधा भले ही हो, पर सामाजिक सुव्यवस्था की परम्पराओं का उल्लंघन न होने पावे, यह तथ्य सदा सामने रहना चाहिए। अक्सर लोग सार्वजनिक स्थानों, वस्तुओं तथा साधनों को लावारिसी मानकर उनका मनमाना उपयोग करते हैं और उन्हें दूसरों के लिए कुरुचिपूर्ण, अस्त-व्यस्त तथा अव्यवहारणीय बना देते हैं, यह असामाजिक आदत है। रेलगाड़ी के डिब्बे, प्लेटफार्म, सड़क, धर्मशाला आदि स्थानों का उपयोग करते समय लोग यह भूल जाते हैं कि वे उन्हें गन्दा तो नहीं बना रहे हैं। उतनी जगह तो नहीं घेर रहे हैं जिससे दूसरों को असुविधा उत्पन्न हो। रास्ता चलते केले खाना और उनके छिलके सड़क पर डाल देना दूसरों के पैर फिसलने का—टाँग टूटने का—कारण बन सकता है इसे कोई विरले ही समझते हैं। सड़क के बाईं ओर चलना—जहाँ भीड़ हो वहाँ लाइन बना लेना एक अच्छा नियम है, पर आमतौर से लोग मनमानी बरतते हैं और धक्का-मुक्की करते देखे जाते हैं। घर का कूड़ा सड़क पर पटक देना—बच्चों को गली की नाली पर टट्टी के लिए बिठा देना उन लोगों के लिए सुविधाजनक हो सकता है, पर दूसरों को इससे कितनी असुविधा होती है इसका विचार उन्हें कहाँ आता है ?

सामाजिक सुविधा एवं व्यवस्था को कायम रखने के लिए अपने उचित अधिकार तक सीमित रहना पड़ता है कि कहीं उच्छृंखल आचरण न बन पड़े, इसके लिए कठोर आत्म-नियन्त्रण करना पड़ता है। नागरिक कर्त्तव्यों का यही तकाजा है, शिष्टाचार की सारी मर्यादाएँ ऐसी सीमा में आती हैं, जो उनका पालन करने में जितनी उपेक्षा, आना-कानी करता है वह उतना ही असभ्य माना जाता है।

जल ही मछली का जीवन है। जलाशय की स्थिति के ऊपर ही उसकी सुविधा जुड़ी हुई है। समाज एक तालाब है और व्यक्ति उसी में निर्वाह करने वाली मछली। उसे यह ध्यान रखना ही चाहिए कि कीचड़ में लोट-पोट कर पानी को गन्दा न करे अन्यथा उसका स्वयं का तथा दूसरी मछलियों का निर्वाह कठिन हो जायगा। मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में बोलने, सोचने, लिखने, पढ़ने, कृषि, उद्योग, चिकित्सा, शासन आदि की सुविधाएँ प्राप्त हैं वह असंख्य मनुष्यों द्वारा उपार्जित क्रमिक विकास से एक दूसरे के लाभान्वित होते चलने का ही प्रतिफल है। यदि अनुदान की इस शृंखला का लाभ हमें न मिला होता तो निश्चय ही सघन वन प्रदेश में रहने वाले पशु स्तर के मनुष्यों में ही हमारी भी गणना हुई होती। हमें आज जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं वे सभी असंख्य लोगों के श्रम, सहयोग से ही बनती और मिलती हैं। हमें जो लाभ दूसरों से मिलता है वह दूसरों को हमें भी देना चाहिए और आदान-प्रदान की शृंखला को सजीव बनाये रहना चाहिए। एकाकी सुख-सुविधा और प्रगति की बात सोचना एक असम्भव कल्पना है। मनुष्य समाज का विकास सामूहिकता के आधार पर हुआ है, प्रगति के इस मूलभूत आधार को बनाये रहना और बढ़ाते चलना हर मनुष्य का सामाजिक प्राणी होने के नाते—परम पवित्र कर्त्तव्य है। स्वार्थ की निन्दा और परमार्थ की प्रशंसा इसीलिए की गई है कि स्वार्थी व्यक्ति समाज सेवा के—लोकमंगल के—प्रसंगों में कृपणता बरतता है और व्यक्तिगत सुविधाएँ संग्रह करने में मरता, खपता रहता है। परमार्थ को स्वर्ग, यश और सन्तोष देने वाला पुण्य माना गया है; क्योंकि उस नीति को अपनाकर मनुष्य अधिक उदार, दूरदर्शी एवं लोकोपयोगी बनता है। यही आत्मकल्याण का मार्ग है और उसी पर चलते हुए समाज कल्याण का महान प्रयोजन पूरा होता है। जिस प्रकार हमें व्यक्तिगत और पारिवारिक सुविधाओं का ध्यान रहता है, उसी प्रकार सामाजिक प्रगति एवं सुव्यवस्था का ध्यान रखना चाहिए। इसलिए जितनी अधिक मात्रा में लोकोपयोगी कार्य बन पड़ें—उनमें अपनी शक्ति-सामर्थ्य का नियोजन हो सके उतना ही अधिक प्रयत्न करना चाहिए।

समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले—भ्रष्ट परम्पराएँ प्रचलित करने वाले अनाचार-अपराधों से दूर रहना चाहिए और दूसरों को भी वैसा करने से रोकना चाहिए। सामाजिक सुव्यवस्था एक सार्वजनिक सम्पत्ति है, उसे सुरक्षित रखने में मनुष्य समाज के हर सदस्य को प्राण-प्रण से प्रयत्न करना चाहिए। अपने को उच्छृंखल आचरण नहीं करने देना चाहिए और न दूसरों को वैसा करने की छूट देनी चाहिए। प्रयास यही होना चाहिए कि उदार सहयोग की परम्पराओं में प्रोत्साहन देने वाले लोकोपयोगी कार्य स्वयं करें और दूसरों को वैसा ही करने के लिए प्रोत्साहित करें। यह हमारे सामाजिक कर्त्तव्य हैं जिन्हें पालन करने के लिए सजग तत्परता बनाये रहनी चाहिए।

राष्ट्रीय कर्त्तव्यों में लोकतन्त्र की जनता के विशेष कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व हैं। राजतन्त्र एवं अधिनायकवाद में सारी सत्ता शासकों के हाथ में केन्द्रित रहती है इसलिए प्रजा की अपनी मर्जी से नहीं शासन की इच्छानुसार गतिविधियाँ अपनानी पड़ती हैं। उस विवशता में प्रजा को सोचने के लिए कुछ अधिक नहीं बचता और नियत ढर्रे के अतिरिक्त कुछ और करने की भी गुन्जायश नहीं रहती। प्रजातन्त्रीय शासन में प्रजाजनों को बोलने, सोचने, करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की बहुत कुछ सुविधा होती है और संविधान में व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की मान्यता दी हुई होती है। चिन्तन और कर्तृत्व की कोई भी धारा अपनाने की उसे सुविधा रहती है। इतना लाभ लेने वाली प्रजा के ऊपर कुछ विशेष कर्त्तव्य उत्तरदायित्व भी आते हैं। वे आत्म-नियन्त्रण के हैं। उपलब्ध अधिकारों का समाजद्रोही क्रिया-कलापों में उपयोग किसी भी प्रकार नहीं करना चाहिए। कानूनी प्रतिबन्धों से भी अधिक प्रजातन्त्र के प्रजाजनों को आत्म-नियन्त्रण बरतना चाहिए। हर व्यक्ति को एक पुलिस मैन होकर रहना चाहिए जिसका पवित्र कर्त्तव्य नैतिक और सामाजिक स्वस्थ परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रहना है।

प्रजातन्त्र में शासन सत्ता प्रत्येक प्रजाजन के हाथ में सौंपी हुई होती है। वही राष्ट्र का वास्तविक स्वामी होता है। अपने इस अधिकार को वह अपने किसी प्रतिनिधि को हस्तान्तरित करता है और अपने स्थान पर उसे शासन की बागडोर सँभालने का भार सौंपता है। यह पुनीत प्रक्रिया सामान्य समय में तो सिद्धान्त मान्यता तक ही सीमित रहती है, पर मतदान के समय वह मूर्त रूप धारण करती है। उस दिन उसका व्यवहार रूप सामने आता है। प्रजातन्त्र का उत्तरदायित्व समझने वाली प्रजा का कर्त्तव्य है कि अपने वोट को समूचे राष्ट्र की पवित्रतम धरोहर समझे उसके साथ समूचे देश का भविष्य बनता, बिगड़ता देखे और हजार बार सोच-समझने के बाद ही किसी के पक्ष में अपना वोट डाले। जाति-बिरादरी के नाम पर—निजी लोभ, लाभ के आधार पर—किसी की खुशामद, चापलूसी, प्रोपेगण्डा या बहकावे से पूरी तरह अपना बचाव करते हुए मात्र हर दृष्टि से खरे व्यक्तियों को ही वोट दें, अन्धाधुन्ध खर्च करने वालों से सावधान रहें क्योंकि जो समय देने—सेवा करने का आश्वासन देकर उस आर्थिक लाभ रहित उत्तरदायित्व को सँभालने के लिए पैसा भी लुटा रहा है वह अवश्य ही कुछ दुरभिसंधि सँजोये हुए होगा। इस अवसर पर रँगे सियारों से विशेष रूप से सावधान रहने की आवश्यकता है अन्यथा वोट का दुरुपयोग राष्ट्रघाती, आत्मघाती दुष्परिणाम उत्पन्न करेगा। प्रजातन्त्र के नागरिकों को जितने मौलिक अधिकार उपलब्ध हैं, उससे भी भारी उनके कर्त्तव्य हैं। हर नागरिक को प्रशासकीय और प्रगतिशील व्यवस्था बनाने की दृष्टि से अपने आपको अघोषित राष्ट्राध्यक्ष मानकर चलना चाहिए। तभी प्रजातन्त्रीय परम्परा का वास्तविक लाभ किसी देश को मिल सकता है। उपलब्ध अधिकारों का दुरुपयोग होने लगे तो प्रजातन्त्र असफल और उलटा हानिकारक सिद्ध होगा।

ईश्वर प्रदत्त कर्त्तव्य इतने अधिक हैं कि उन्हीं को निभा लेना कम गौरव की बात नहीं है। नये उत्तरदायित्वों का भार अपने ऊपर जितना कम बढ़ाया जाय उतना ही उत्तम है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, मस्तिष्क को सुविकसित करने के लिए, व्यक्तित्व को परिष्कृत करने के लिए, माता-पिता, भाई-बहनों की साज-सँभाल, समाज और संस्कृति पर छाई हुई विकृतियों का निराकरण करने के लिए प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को अपने ऊपर हजारों मन कर्त्तव्यों का बोझ लदा दिखाई पड़ेगा। विमूढ़ लोग जिन्हें पेट और प्रजनन के अतिरिक्त और कुछ दीखता-सूझता ही नहीं—अन्धी भेड़ों जैसी भीड़ जिस राह पर चल रही है उस पर लुढ़कते चलने के अतिरिक्त जिनके अन्तरंग में कोई प्रकाश उठता ही नहीं, उन नर-पामरों की चर्चा करना व्यर्थ है। वे तो कीट-पतंगों की तरह रोते-कलपते, पिटते, पिसते किसी प्रकार मौत के दिन पूरे ही करेंगे।

तब लज्जा से सिर झुक जाता है जब अपना पेट पाल सकने में—अपने स्वास्थ्य को सँभाले रहने में असमर्थ व्यक्ति भी विवाह, शादी करने पर मात्र कामकौतुक की दृष्टि से उतारू हो जाते हैं और बेचारी निरीह पत्नी को आजीवन दयनीय जीवन की विवशता में जकड़ते हैं। यह किसी निरीह आत्मा के साथ क्रूरता भरा व्यवहार है। जो लोग आर्थिक, शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, जिनके लिए अपना भार वहन करना भी कठिन पड़ रहा है, वे आये दिन बच्चे जनते चले जाते हैं तो लगता है कुत्ते और शूकरों से ऊँची इनकी विचारशीलता बढ़ नहीं सकी है। ये घृणित प्राणी अपने काम-कौतुक भर की बात सोचते हैं और यह नहीं देखते कि अविवेकपूर्ण रति-क्रिया जो बच्चे उत्पन्न करेगी उनका भविष्य क्या होगा और साज-सँभाल करने में उनकी माता पर क्या बीतेगी ? यदि इतना भर वे सोच पाते और दूरगामी दुष्परिणामों पर विचार करके वे सोचते तो आत्म-नियन्त्रण की बात सूझती। कम से कम मनुष्य तो ऐसा कर ही सकता है। विवाह करने और औलाद जनने से पूर्व हर नर-नारी को हजार बार विचार करना चाहिए कि क्या ऐसा करना नितान्त अनिवार्य है ? यदि प्रस्तुत उत्तरदायित्वों को पूरा करने के अतिरिक्त फालतू शक्ति बचती हो तो नया बोझ सिर पर लादना और उस नये कोल्हू में जुतना उचित है। अन्यथा मानव जीवन के अलभ्य अवसर का समुचित लाभ उठाने के लिए—महत्त्वपूर्ण लक्ष्य प्रयोजनों में ही जुट पड़ना चाहिए और अपनी क्षमता को उस केन्द्र पर नियोजित करना चहिए जिस पर व्यक्ति और समाज की सर्वतोमुखी प्रगति एवं सुख-शान्ति अवलम्बित है।

समाज के ऋण को भी चुकाया जाय

संसार का सर्वाधिक गौरव-प्राप्त प्राणी होने की विशेषता के साथ ही मनुष्य कितना छोटा है ? यह हमें उस समय स्पष्ट दिखाई देता है जब हम उसे जीवन के प्रारम्भ से निर्वाण तक परावलम्बित-निर्भर ही पाते हैं। मनुष्य का कितना असहाय, दीन-हीन स्वरूप उभर कर सामने आता है ? उसके जीवन का कोई अंश कहीं से भी पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं है। संसार के अन्य प्राणी जन्म के कुछ समय बाद ही आत्मनिर्भर हो जाते हैं पर मनुष्य, मनुष्य तो वर्षों की लम्बी सेवा-सुश्रूषा लेकर भी पूर्ण स्वावलम्बी नहीं बन पाता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य रूप धारण करने की प्रक्रिया में मातृशक्ति का सहारा पाता है। शिशु काल में धाय माँ, कुटुम्ब, परिवार की दया तथा स्नेह पाकर बढ़ता है। बालक बनकर माता-पिता, मित्रों तथा गुरुजनों की दया पर संस्कृत होता है। किशोर तथा युवा अवस्थाओं में भी उसे अभिभावकों की कमाई, देखभाल द्वारा ही स्वावलम्बी बनने की दिशा प्राप्त होती है। अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बनने तक वह पूर्ण आश्रित ही रहता है। इस निर्भरता से मुक्ति पाना भी तो उसके वश की बात नहीं है। उसे इस सामाजिक सहयोग-सद्भावना का सदा ही आभारी रहना है। यह ऋण उसके निर्माण की गरिमा के साथ कितना भारी है यह तो मनुष्य अपनी-अपनी स्थिति-दशा के अनुसार समझ ही सकता है।

कुछ कर सकने की योग्यता पाकर क्या वह आत्मनिर्भर बन जाता है ? शरीर को चलाने के लिए उसे भोजन चाहिए। भोजन जीवन को जाग्रत ही रखता है उसकी रक्षा नहीं कर सकता। जीवन-ज्वाला की जागृति मनुष्य के अस्तित्व हेतु अति आवश्यक है। किन्तु यदि उसे वस्त्र, निवास आदि सहित रक्षा के साधन न प्राप्त हुए तो वह जीवित कैसे रह सकता है ? उसका जीना असम्भव यदि नहीं तो कठिन अवश्य हो जायगा। पेट भरा होने पर भी, ग्रीष्म की लू-लपट, शीत की बर्फीली ठण्ड तथा वर्षा की अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि से रक्षा के साधनों से हीन कितने ही मनुष्य प्रति-वर्ष जीवन से हाथ धो बैठते हैं। भोजन द्वारा पोषित-जीवन को सुरक्षित तथा गतिमान रखने के लिए मनुष्य को अन्य अनेक साधनों की आवश्यकता है। इन साधनों का भी मनुष्य के जीवन में महत्त्व है।

गति-मान, प्रगतिशील जीवन के लिए बहुत कुछ चाहिए और वह सब उसे एक साथ चाहिए, तभी यह गाड़ी चलेगी। अन्यथा केवल पेट्रोल तेल से भरी उस मोटर-गाड़ी की-सी दशा होगी, जिसके ऊपर न कोई ड्राइवर था और न छाया की व्यवस्था। कुछ दिनों बाद ही उसके कल-पुर्जे जम गये, तेल भी जमने लगा और चलने वाली मोटर-गाड़ी अचल बन कर कबाड़ के रूप में नीलाम कर दी गई। कबाड़ी चतुर था। पूरी मोटर-गाड़ी की धुलाई-सफाई कराकर जाँच लिया। जमा हुआ तेल निकलवाकर गाड़ी पर छाया की व्यवस्था के साथ-साथ अच्छा पेट्रोल तथा तेल भरवा दिया। चलाना वह स्वयं जानता था, प्रयास करने पर गाड़ी चलने लगी। अब वह सवारियाँ ढोती थी। अच्छा लाभ होता देख स्वामी भी सुखी था। इस शरीर रूपी गाड़ी को भी सुचारू रूप से चलाने के लिये इसकी प्रकृति के अनुकूल अनिवार्य साधनों की आवश्यकता है। शिक्षा, उचित देखभाल और सुरक्षा भी तो महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं।

शरीर की रक्षा, सज्जा तथा लोक मर्यादा के निर्वाह हेतु मनुष्य को वस्त्र चाहिए। वस्त्रों का निर्माण, वृक्षों की छाल, पशु-चर्म, ऊँट, भेड़ आदि पशुओं के बाल, रेशम के कीड़ों, वृक्षों के दूध, लकड़ी, बाँस, कपास आदि के अलावा कृत्रिम-यार्न द्वारा भी होता है। इनके लिये बड़े-बड़े कल-कारखानों की स्थापना की गई है। औद्योगीकरण की दिशा यही से प्रारम्भ होती है। बड़े शहरों में कपड़ा मिलों का जाल फैला हुआ है और देहातों में हाथ से वस्त्र-उद्योग चलता है। इस सबमें लगे कर्मचारी, प्रशासक, नियन्त्रण, निरीक्षक आदि और इसके द्वारा फैलने वाले वायु-दूषण से प्रभावित नागरिकों का योगदान वस्त्र धारण करने वाले मनुष्य के जीवन में ही है। इतना तो वस्त्र के सादे रूप में ही है। उसकी काट-छाँट, साज-सज्जा तथा सिलाई में भी अलग-अलग शिल्पकारों का सहयोग लेना होगा। इस सहयोग का प्रतिफल मनुष्य को देना ही है। इस दिशा में भी हम किसी न किसी स्तर पर ऋणी हो रहे हैं।

आवास के लिए झोंपड़ी ही बनाई जाय तो क्या किसी अवलम्ब की आवश्यकता नहीं होगी ? किसी न किसी पर आश्रित तो होना ही पड़ेगा। हवेली बनाने में बड़े-बड़े सहयोग-सहारे चाहिए तो झोंपड़ी के लिये भी तो कुछ सहयोग-सहारा अवश्य ही लेना होगा। जिन अवलम्बों की देन आवास जैसी महान वस्तु के रूप में हो मनुष्य उन अवलम्बों का ऋणी ही कहलायेगा। हम उनके ऋण को नकार नहीं सकते। ऐसी स्थिति में हमारा मानवीय कर्तव्य होता है कि हम उस ऋण का भुगतान भी कर दें।

भावनात्मक ऋण की माप-तौल और उसका मूल्यांकन बुद्धिमानी की बात नहीं है। उपकार का कोई मूल्य नहीं हो सकता। सद्भावना, सहयोगवृत्ति की जाग्रति में छिपे हृदय, दया तथा ममत्व जैसे कोमल भावों का मूल्य आँकना सर्वथा उपहासास्पद ही है। गणित के सूत्र में तो ऋण तथा धन के अंकों की समानता शून्य का परिणाम देती है। यह गणित की शैली हमारे दैवी गुणों की सूक्ष्मता को छूने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकती। अतः जब परम्परा गुण तथा स्वरूप से रहित अदृश्य भावना की तौल करनी है, तो वह हमारी भावानुभूति पर आधारित आन्तरिक सन्तुष्टि के रूप में ही हो सकती है। जितना लिया है उतना ही देंगे, यह बात इस सम्बन्ध में कभी नहीं लागू होती। इस सबके लिए हृदय की उदात्त भावना से प्रेरित सद्विचारों के संकल्प का निर्वाह कार्यों में कर देना ही सीधा और सरल उपाय है। इस उपाय द्वारा मनुष्यता को ऋण मुक्त कर के देवत्व में बदला जा सकता है।

कहा जा सकता है कि ऋण किसका और कैसा ? प्रकृति प्रदत्त गुणों के द्वारा या ईश्वर की प्रेरणा से सब अपने कर्तव्यों का पालन अलग-अलग रुचि तथा ढंग से कर रहे हैं। ठीक है कर्तव्यों के पालन का ही निर्वाह तो वांछित है फिर तो हमारा ऋण चुकाने का हल स्वयं प्रस्तुत हो जायगा। पड़ौसी का बच्चा चोट खाने वाला था कि आपने उसे झपट कर बचा लिया। हो सकता था कि आप झपट कर क्रिया करने में स्वयं चोट खा जाते पर उस समय आपको अपने लिये सोचने का अवसर ही न था। एक क्षण भी रुक कर अपना हित-अनहित सोचे बिना ही कर्तव्य बोध और निर्वाह स्तुत्य हैं। किसी ने किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असहाय को सहायता दी, निःशुल्क पाठशालाओं द्वारा निर्धनों की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया तो क्या वह अपना ऋण चुकाने में नहीं लगा हुआ है।

मनुष्य की भावनात्मक दृष्टि में समस्त संसार का हित निहित है। मनुष्य को अपने जाग्रत अन्तःकरण द्वारा प्राणिजगत मात्र की सेवा हेतु स्पष्ट संकेत मिलते रहते हैं। इस सेवा भावना का ऋणी प्रत्येक मनुष्य है। समाज-सेवित जब समाजसेवी का स्पष्ट रूप प्रदर्शित करता हुआ अपना अस्तित्व समाज में आवश्यक सिद्ध कर देता है तो समाज उसकी प्रशंसा करता नहीं अघाता। उपकार के बदले उपकार ही की भावना निकृष्ट बात है। यह बिल्कुल साधारण स्तर तक ही सीमित है। यही प्रत्युपकार की भावना है। विचारों में केवल कल्याणकारी कार्यों द्वारा लाभ, हित तथा सुख पहुँचाने की दृढ़ता ही श्रेष्ठ है। यथेष्ठ भी यही है। अँग्रेजी कहावत 'जिओ और जीने दो' की भावना इसी आधार पर परिकल्पित है। मनुष्य इस सबको समझता, पढ़ता, सुनता, दुहराता, देखता हुआ भी अपने कर्मों की अनुरूपता देकर अपना बोझ नहीं उतारता। संकोच, लोभ, भय आदि के भूतों द्वारा वह आन्तरिक शुद्ध-प्रेरणा से विलग ही कर्मरत रहता है।

मर्यादा का निर्वाह तथा उत्कृष्टता की स्थापना अपने उत्तरदायित्वों तथा दायित्वों के निर्वाह द्वारा ही होती है। इसके लिए कठोर साधना से सधा हुआ तन और मन चाहिए। विवेक का तराजू देकर ईश्वर ने मनुष्य में अपनी स्थिति बनाई है। फिर हम उसका निर्वाह करने में पीछे क्यों रहें ? क्यों न आलस्य, निद्रा, मोह, त्याग कर अदम्य साहस और श्रम द्वारा समाज को युग-बोध, युग-निर्माण की सज्जा के उपयुक्त बना डालें।

जनशक्ति को नवसृजन में जुटाया जाय

सौरमण्डल तथा विश्व ब्रह्माण्ड में अगणित ग्रह-नक्षत्र विद्यमान हैं। उनमें सर्वश्रेष्ठ और सुरम्य यह पृथ्वी ही क्यों बनी ? इसके उत्तर में जहाँ प्रकृति संरचना को श्रेय दिया जायगा, वहाँ मानवी कौशल को भी कम नहीं सराहा जायेगा। पदार्थ में गति और ऊर्जा है, पर वह स्थिति अन्य लोकों में भी तो है। इस चित्र-सी सुसज्जित और गुड़िया-सी आकर्षक बनी हुई पृथ्वी को वर्तमान स्तर तक पहुँचाने में मानवी क्षमता और कुशलता ने कम योगदान नहीं दिया है। यदि वैसा न बन पड़ा होता तो इस धरती का स्वरूप भी खाई-खड्डों से भरे हुए चन्द्रमा की तरह किसी अनगढ़ जैसा ही बना रहता। उस पर वन्य जीव ही निवास करते। सभ्यता और सुव्यवस्था तो मानवी सूझ-बूझ का प्रतिफल है। इसकी महत्ता स्रष्टा की संरचना से यत्किंचित ही कम है।

बुद्धि और श्रम के समन्वय से विनिर्मित होने वाले मानवी कौशल को जिस भी भले-बुरे प्रयोजनों में निरत किया जाता है, उसी में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। बात रुझान भर की है। उसके मुड़ते ही शक्ति की अजस्र धारा बहने लगती है और देखते-देखते अपने कर्तृत्व का आश्चर्यजनक परिचय देने लगती है। समुदायों के संयुक्त प्रयासों की परिणति है कि यहाँ अनेकानेक सुयोग-संयोग बने और सफलताओं के पर्वत खड़े हो गए। शिक्षा, चिकित्सा, कृषि, पशुपालन, व्यवसाय, कला, विज्ञान आदि के अनेकों उपयोगी प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें मनुष्य जाति के वर्ग विशेषज्ञों ने अपने रुझान, कौशल को तत्परतापूर्वक नियोजित किए रहकर खोजा और समुन्नत बनाया। शास्त्रकार ने सच ही कहा है कि "एक रहस्य बताते हैं—मनुष्य से बढ़कर इस संसार में और कुछ नहीं। और कुछ नहीं, के शब्द से यह ध्वनि भी निकलती है कि परमेश्वर भी नहीं।" परमेश्वर ने यह विश्व ब्रह्माण्ड सृजा है, यह सही है। पर गलत यह भी नहीं है कि परमेश्वर को वर्तमान स्तर की मान्यता प्रदान करने में मानवी कल्पना एवं स्थापना को ही श्रेय दिया जायेगा। अन्यथा वह विश्वव्यवस्था की एक अदृश्य एवं अविज्ञात शक्ति भर बना रहता। अन्य प्राणियों की तरह मनुष्य भी उससे अपरिचित ही बना रहता। संसार में गतिशील सत्प्रवृत्तियों के रूप में परमेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन किया जाता है। यह भी मनुष्य की अपनी संरचना शक्ति का एक महान उपहार है।

इस प्रसंग पर जितना अधिक विचार किया जाय उतना ही यह तथ्य उभरता आता है कि मानवी सृजन क्षमता अद्भुत है। उसका जितना गुणगान किया जाय उतना ही कम है। न केवल सत्प्रवृत्तियों के रूप में वरन् दुष्प्रवृत्तियाँ उभारने में भी उसी ने कमाल किया है। उदाहरण के लिए जीभ का चटोरपन, कामुकता का दर्शन, छल-प्रपंचों का कुचक्र, आक्रामकता का विधान भी उसी का अपना चमत्कार है। मात्र भाषा, कला, दर्शन, धर्म, सम्प्रदाय ही उसने नहीं सृजे हैं। पदार्थ विज्ञान की तरह अध्यात्म विज्ञान का ढाँचा खड़ा करने और उसके प्रयोगों को क्रियान्वित करने में प्रयुक्त हुए मानवी पुरुषार्थ को शतमुख से सराहा जायेगा। वन्दनीय भगवान ही नहीं है, मनुष्य का सृजन-कौशल भी है। सामर्थ्य की दृष्टि से भी वह कुछ ही हलका पड़ता है। स्रष्टा ने यह धरती बनाई—यह सही है पर परमाणु युद्ध की जैसी तैयारी चल रही है, उसे देखते हुए यह कहने में भी अतिशयोक्ति नहीं कि वह प्रस्तुत विनाश-साधनों का प्रयोग करके कुछ ही क्षण में इस भूलोक को धूलि के रूप में परिणत कर सकता है और अन्तरिक्ष के किसी कोने में धुँए का बादल बनकर भ्रमण करने लगने के लिए विवश कर सकता है। यह स्रष्टा की समता न सही, प्रतिद्वन्द्विता तो हो गई न ?

मानवी गरिमा की प्रशंसा में एक और उदाहरण शासनतंत्र खड़ा करने का है। अस्त-व्यस्तता को व्यवस्था में बदलने, प्रगति के द्वार सुनियोजित ढंग से खोलने तथा उद्दण्डता पर अंकुश रखने जैसे प्रगति और शान्ति के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक कार्यों में सरकार का असाधारण योगदान रहता है। सुधार का आक्रोश व्यक्त करने वाले भी यह जानते हैं कि अराजकता का न तो प्रतिपादन हो सकता है और न उस स्थिति में निर्वाह चल सकता है। शासन की उपयोगिता और क्षमता से सभी परिचित हैं, फलतः आलोचक भी उसमें प्रवेश पाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। सरकार से अनेकानेक अपेक्षाएँ की जाती हैं। किन्तु उसकी अपनी सीमाएँ और दुर्बलताएँ हैं। फलतः सृजन और सुधार की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की शतप्रतिशत पूर्ति के लिए उसी का आश्रय तकते रहने से काम नहीं चलेगा।

सुरक्षा, व्यवस्था, प्रगति, नियमन जैसे काम ही अब क्रमशः इतने भारी हो गये हैं कि सरकार के लिए उतना बोझिल संकट खींच सकना ही कठिन पड़ता है। बढ़ती हुई जनसंख्या, महत्वाकांक्षा एवं आवश्यकता का तालमेल बिठाने की सारी जिम्मेदारी सरकार पर ही नहीं छोड़ी जा सकती। तानाशाही में भी जनसहयोग ही उभारना पड़ता है। फिर प्रजातन्त्र में तो यह और भी आवश्यक है कि प्रबुद्ध और स्वतन्त्र जनता अपने बलबूते भी प्रस्तुत उत्तरदायित्वों का एक बड़ा भाग अपने कंधों पर उठाए और सरकार को अपने सीमित उत्तरदायित्वों को ही सही रूप में सम्पन्न करने की सुविधा प्रदान करे।

वैसे भी सब काम सरकार कहाँ करती है। किसका गृह प्रबन्ध सरकार करती है ? किसकी दिनचर्या में उसका हस्तक्षेप होता है ? विवाह-शादियाँ सरकार थोड़े ही करती है ? भली या बुरी राह अपनाने के लिए सरकार किस-किस को कंधे पर बिठाये फिरती है ? स्वच्छता, आजीविका, प्रजनन, रुझान, स्वभाव, अभ्यास मनुष्य की अपनी मर्जी पर निर्धारित रहते हैं। इन्हीं प्रयासों में दुष्प्रवृत्तियाँ का उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन भी सम्मिलित है। जनमानस के समर्थन उत्साह की न्यूनाधिकता से ही उनमें घटोत्तरी-बढ़ोत्तरी होती है। अतिक्रमण का नियमन ही सरकार का काम है, अधिक से अधिक यह हो सकता है कि वह सुविधा-संवर्द्धन के कुछ ढाँचे खड़े करे, सरंजाम जुटाये पर उनकी सफलता का श्रेय भी जनसहयोग पर निर्भर रहता है। वह न मिले तो अकेले अफसर ही सारा काम कहाँ कर सकेंगे ?

बढ़ती हुई सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए जागृत जनमानस को अपनी भूमिका निभानी चाहिए और जनशक्ति को उस प्रसंग के लिए उत्साहित एवं संगठित करना चाहिए। स्मरण रहे सूर्य, पवन जैसे प्रकृति उपहारों की तरह जन शक्ति का रुझान एवं प्रवाह भी तूफानी क्षमता से भरपूर है। उपेक्षा होती रहे, तो बात दूसरी है, अन्यथा उसके सहारे कठिन से कठिन कार्य सरल हो सकते हैं। बिखरी रही तो वह अस्तव्यस्त भी रह सकती है। ध्वंस में लगते वह विनाश के घटाटोप भी खड़े कर सकती है। साथ ही यह भी तथ्य है कि यदि उसे सृजन प्रयोजनों में लगा दिया जाय, तो देखते-देखते सतयुग जैसे दृश्य खड़े हो सकते हैं। मनुष्य का देवत्व उभारने का प्रवाह यदि बह चले, तो धरती पर स्वर्ग जैसे वातावरण के अवतरण में तनिक भी सन्देह न रहे।

इसके लिए किसी व्यक्ति विशेष या तंत्र पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है। शक्ति के उद्गम का आश्रय लेना पड़ेगा। यह उद्गम और कुछ नहीं जनसमुदाय के रुझान एवं प्रयास का समन्वय भर है, यही है दुर्दान्त दैत्य। यही है विभूतिवान् देव। यह दोनों ही जन शक्ति के प्रवाह भर हैं। उनकी सामर्थ्य प्रचण्ड तूफानों से बढ़कर उन्हें वर्षा, शीत, ग्रीष्म जैसे मौसम कहा जा सकता है, जो देखते-देखते परिस्थितियों को उलट-पुलट करके रख दे। महान् क्रान्तियों के इतिहास में इसी को बाजीगर की भूमिका निभाते और और कठपुतली के चित्र-विचित्र तमाशे दिखाते पाया गया है।

आज दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन का एक महायुद्ध लड़ने जैसा प्रसंग सामने है। नयी आवश्यकताओं के अनुरूप नये सृजन उपक्रमों को बड़े परिमाण में खड़े किये जाने का काम भी युग चुनौती के रूप में प्रस्तुत है। उन्हें लंकाकाण्ड और महाभारत के समतुल्य माना जा सकता है। गोवर्धन उठाने और समुद्र सेतु बाँधने से यह किसी प्रकार भी कम नहीं है। ऐसे-ऐसे अनेकों प्रयोजनों के लिए जिस अवतार की आवश्यकता है वह जनशक्ति की सृजनात्मक क्षमता का उभार ही हो सकता है। इसी के अवतरण की अभ्यर्थना जागृत आत्माओं को मिल-जुलकर करनी चाहिए। समूची विश्व व्यवस्था को प्रभावित करने वाले महान् प्रयोजन इससे कम में नहीं सध सकते। यह हस्तगत हो सके तो समझना चाहिए कि असम्भव नाम की कोई बात इस दुनिया में रह नहीं गई। मनुष्य समुद्र की लहरों और सूर्य की किरणों की सामर्थ्य से संसार की ऊर्जा आवश्यकता जुटा लेने की बात सोचता है। उसे यह भी सोचना चाहिए कि शक्ति का प्रवाह दिशा विशेष में मोड़ देने भर से समुद्र मंथन जैसी पुनरावृत्ति हो सकती है और एक से एक बढ़कर सुखद संभावनाओं के बहुमूल्य रत्न निकाले जा सकते हैं। जहाँ-तहाँ भटकने की अपेक्षा हमें इसी कल्पवृक्ष का आश्रय लेना और प्रस्तुत विभीषिकाओं से निपटने के लिए जन शक्ति के वरिष्ठ पक्ष का द्वार खटखटाना चाहिए।

शासन तंत्र खड़ा करने के आवश्यक साधन जनता ही टैक्स देकर जुटाती है। उसकी सामर्थ्य इतनी सीमित नहीं है कि टैक्स देने के अतिरिक्त और कुछ बनता ही नहीं। धर्म का स्वरूप भले ही विडम्बना जैसा रह गया हो, फिर भी उसके लिए अपने देश में अरबों-खरबों की धनराशि हर साल लगती है। साठ लाख बाबाओं का तो धर्म ही व्यवसाय है। मन्दिर-मठों, पंडे-पुरोहितों, अनुष्ठान-समारोहों का खर्च इसके अतिरिक्ति है। जनता इसे स्वेच्छापूर्वक वहन करती है। यह भार शासन पर होने वाले व्यय जितना ही जा पहुँचता है।

इसके अतिरिक्त नशेबाजी का लेखा-जोखा लिया जाये, तो उस निमित्त भी प्रायः उतनी धन शक्ति और जन शक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का नियोजन होता है, जितना कि सरकार चलाने में। अन्धविश्वासों, कुरीतियों और अवांछनीयताओं के निमित्त लगने वाली जन शक्ति का मूल्यांकन करने पर प्रतीत होता है कि इनका खर्च भी असाधारण है। इस स्वेच्छापूर्वक अपनाये और उठाये जाने वाले भार को जन शक्ति प्रसन्नतापूर्वक अभ्यस्त ढर्रे के अनुरूप अनयास ही वहन करती है। उसमें इसके अतिरिक्त भी इतनी गुंजायश है कि नवसृजन के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, उन्हें तनिक-सा दिशा निर्देश मिलने और उत्साह उभरने पर सहज ही प्रस्तुत कर सके। फिल्म देखने, जेवर पहनने, सजधज-ठाठबट बनाने पर जितना समय और धन खर्च होता है, उतना भी यदि समय की महती आवश्यकताओं की पूर्ति में नियोजित हो सके, तो समझना चाहिए कि युग बदल गया। विनाश का संकट टल गया और उज्ज्वल भविष्य का सुनिश्चित सरंजाम जुट गया।

जन शक्ति अपने ढंग से अस्तव्यस्त दिशा में बहती है। हवा के झोंके उसे हलके पत्ते की तरह इधर-उधर उड़ाते-झुकाते रहते हैं। पर यदि उसे कोई मूर्धन्य चेतना उपयुक्त दिशा दे सके तो समझना चाहिए कि वह गोली की तरह सनसनाती हुई लक्ष्य बेधने में निश्चित रूप से सफल होकर रहेगी। मनस्वियों ने समय-समय पर लोकमानस को दिशा दी है। सम्प्रदाय इसी आधार पर बने हैं। संस्कृतियों का सृजन किन्हीं मूर्धन्यों के नेतृत्व में हुआ है। राजक्रान्तियों के लिए इसी ने सिगनल गिराये और इंजन दौड़ाये हैं। प्रचलित कुप्रथाओं और अवांछनीयताओं का इतिहास खोजना हो, तो प्रतीत होगा कि इसके पीछे भी कुछ ऐसे बाजीगर छिपे बैठे हैं, जिन्होंने जनमानस को उकसाया और रीछ-बन्दरों की तरह नचाया है। यदि दुष्प्रयोजनों के लिए यह सब हो सकता है तो कोई कारण नहीं कि सृजनात्मक सत्प्रयोजनों के लिए इस प्रवाह को न मोड़ा-मरोड़ा जा सके।

कुछ तात्कालिक आवश्यकताएँ ऐसी हैं जो अनिवार्य स्तर की हैं और अविलम्ब अपना हल माँगती हैं। (१) निरक्षरता निवारण, (२) दरिद्रता का निष्कासन, (३) हरीतिमा अभिवर्द्धन, (४) स्वास्थ्य संवर्धन, (५) सहकारिता प्रचलन। इनके लिए कुछ सृजानात्मक प्रयास इन्हीं दिनों आरम्भ करने होंगे। प्रौढ़ पाठशालाओं की स्थापना, गृह उद्योगों की सहकारी व्यवस्था, घरेलू शाक-वाटिका से लेकर धान्य उत्पादन एवं वृक्षारोपण तक में उत्साह, व्यायामशालाओं से लेकर स्वच्छता-सुव्यवस्था का अभियान, सहकारी प्रवृत्तियों का विस्तार, संगठन के सृजन तंत्र जैसे कार्यों को इन्हीं दिनों हाथ में लिया जाना है। यह सभी कार्य कोई एकाकी नहीं कर सकता। जनता के विज्ञपक्ष की सद्भावनाएँ उभारकर उन्हें सृजन सेवातंत्र के अन्तर्गत संगठित और प्रयत्नरत किया जा सकता है।

उन्मूलन के क्षेत्र में नशेबाजी, खर्चीली शादियाँ, जातिगत ऊँच-नीच नर और नारी की मध्यवर्ती खाई, मूढ़-मान्यताएँ, अनीतिजन्य विभीषिकाएँ जैसे कितने ही मोर्चे ऐसे हैं जिन पर अविलम्ब मोर्चा खोलने की आवश्यकता है। स्मरण रहे—सृजन और उन्मूलन की उभयपक्षीय विधि व्यवस्थाएँ ऐसी हैं जिनके लिए सरकार, सम्पन्न और विद्वान अपनी सीमित सामर्थ्य के आधार पर सम्पन्न नहीं कर सकते। इसके लिए लोक चेतना के सृजनात्मक तत्त्वों को ढूँढ़ना-उभारना और जुटा देना यदि बन पड़े, तो समझना चाहिए कि निराशा को आशा में बदल देने वाली व्यवस्था बन गई। तमिस्रा को निरस्त करने वाली प्रभात वेला आ गई। इससे कम में छुटपुट प्रयासों से स्थानीय एवं सामयिक समस्याओं के तात्कालिक हल भले ही निकलते रहें, स्थायी समाधान संभव न हो सकेंगे।

दफ्तरों में बैठकर कागजी योजनाएँ बनाने और लिखने-बोलने के साथ कर्तव्यों की इतिश्री कर लेने की विडम्बना लम्बे समय से चलती रही है। उस विडम्बना की विडम्बना भी सर्वविदित है। फिर क्यों उसी पिसे को पीसते रहा जाय ? क्यों न जन सम्पर्क में उतरा जाय ? क्यों न पुरातन काल जैसे घर-घर अलख जगाने वाली प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया जाय ? यह हो सकता है। यही होना भी चाहिए। प्रश्न एक ही रह जाता है कि इसे करे कौन ? इसका उत्तर पाने के लिए भी जिस-तिस की मनुहार करने की आवश्यकता नहीं। कार्तिकी अमावस्या की तमिस्रा दूर करने के लिए जब सूर्य-चन्द्र ने उपेक्षा दिखायी तो छद्म मूल्य वाले दीपकों ने जलने का व्रत लिया था और दीवाली के पुण्यपर्व का शुभारम्भ किया था। प्रज्ञा परिजनों की जागृत आत्माएँ क्यों उस उत्तरदायित्व का वहन नहीं कर सकतीं ? इतने महान् प्रयोजन के लिए लोभ और व्यामोह की क्षुद्रता पर थोड़ा अंकुश क्यों नहीं लगा सकती ? समय की समस्याओं के समाधान हेतु जन-शक्ति जुटाने की भागीरथी संसाधना में हमें स्वयं ही संलग्न होना चाहिए।

राष्ट्र धर्म

कर्त्तव्य धर्मों में तीन प्रमुख माने गये हैं—वैयक्तिक धर्म, समाज धर्म और राष्ट्र धर्म। वैयक्तिक धर्म व्यक्ति की सुख-सुविधा और विकास हेतु होता है। समाज धर्म में व्यक्ति और समाज की गति-प्रगति की बात सोची जाती है जबकि राष्ट्र धर्म में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों की उन्नति निहित होती है। अतः सिर्फ एक राष्ट्र धर्म के पालन से शेष दोनों धर्मों का निर्वाह स्वतः होता रहता है। इसलिए तीनों धर्मों में राष्ट्र धर्म को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। अस्तु तन, मन, धन, श्रम, साधन, व्यवसाय, विचार, कला, विज्ञान और धर्म, अध्यात्म के प्रसार द्वारा राष्ट्र की सेवा करना, उसकी सुख-शांति, समृद्धि-प्रगति बढ़ाने का निष्ठापूर्वक प्रयास करना यह राष्ट्र धर्म है। इसे आज का सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। प्रस्तुत समय में इसका परिपालन और भी आवश्यक है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य जिस राष्ट्रभूमि की गोद में पलता, बढ़ता, विकास करता है, जिसकी संस्कृति से जीवन को सभ्य सुसंस्कृत बनाता है, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जिसके अनेकानेक उपकारों, अनुदानों से अनुगृहीत होता व प्रगति करता है, उस राष्ट्र के प्रति हमारा भी कर्त्तव्य होता है कि हम उसके उन्नयन-विकास की बात सोचें और ऐसी रीति-नीति अपनाइये, जिसमें उसका हित-साधन समाहित हो, तभी हम सच्चे अर्थों में उस राष्ट्र ऋण से उऋण हो सकते हैं, जो जीवन भर हम पर लदते रहते हैं। ऋण चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसे चुकाने में ही कृतज्ञता मानी जाती है। माँ-बाप शिशु का पालन-पोषण करते हैं, कुछ बड़ा होने पर शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करते और तब तक उनकी देख-रेख और सहयोग-सहकार करते हैं, जब तक बड़े होकर वे इस योग्य न बन जायें कि अपने पैरों खड़े हो सकें। इस ऋण का बदला बेटा बुढ़ापे का सहारा बन कर चुकाता है, जब माँ-बाप हर प्रकार से असहाय-असमर्थ बन जाते हैं।

मातृ-भूमि को जननी के समतुल्य माना गया है। जिस देश के हम नागरिक हैं, जिस धरती ने हमें जन्म दिया, साधन-सुविधायें दीं और मनुष्य कहलाने योग्य बनाया, वह भूमि निश्चय ही 'माँ' कहलाने योग्य है, तभी तो अपने देश को हम 'भारत माता' कहकर पुकारते हैं। माँ की मदद यदि शिशु को आरम्भ में न मिले तो क्या वह जीवित रह पायेगा ? कदाचित् रह भी जाय, तो वह 'रामू भेड़िये' जैसा ही होगा। तात्पर्य यह कि नवजात शिशु से लेकर बड़ा वयस्क बनने तक में माता-पिता की जो भूमिका होती है, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इसमें भी प्रथम अनुदान शिशु को माँ से प्राप्त होता है, अतएव वह और भी श्रेष्ठ कहलाती है।

यही बात मातृभूमि के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। मनुष्य जिस देश का नागरिक होता है, वहीं उसे प्रथम शिक्षा मिलती है। उसके निर्माण में, प्रगति, समृद्धि में उस राष्ट्र की ही साधन-सम्पदा काम आती है और उसी से वह एक सुयोग्य नागरिक बन पाता है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो जननी और जन्मभूमि की भूमिकायें समान होती हैं। इसीलिए जननी और जन्मभूमि को एक ही श्रेणी में रखते हुए उन्हें स्वर्ग से भी महान बताया गया है, क्योंकि स्वर्ग में तो सिर्फ आनन्द-लाभ की प्राप्ति होती है, जबकि माँ और मातृभूमि के समीप रहना स्वयं में आनन्ददायक तो होता ही है, वह सुयोग्य सन्तान और नागरिक भी गढ़ती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जिन कार्यों से युग-धर्म का निर्वाह होता हो, देश प्रगतिशील बनता हो, समाज में एकता-समता, स्नेह, प्रेम की आधारशिला खड़ी होती हो, उन सबको राष्ट्रधर्म माना गया है। हर व्यक्ति को ऐसे कार्यों में संलग्न होकर सेवा धर्म का निर्वाह और राष्ट्र धर्म का परिपालन करना चाहिए। इसे आपत्तिकाल का सबसे बड़ा पुण्य-परमार्थ माना गया है।

राष्ट्र के उत्थान हेतु मनीषा आगे आयें

राष्ट्र के नव-निर्माण में अनेकों घटकों का योगदान होता है। प्रगति एवं उत्कर्ष के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास चलते और उसके अनुरूप सफलताएँ-असफलताएँ भी मिलती हैं। परिष्कृत एवं सुसंस्कृत समाज के निर्माण में समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों, राजनेताओं, कुशल प्रशासकों, श्रमिकों, किसानों, अध्यापकों की भूमिका होती है। अवगति को प्रगति में, आर्थिक विपन्नता को सम्पन्नता में बदलने के लिए इन सभी का योगदान होना आवश्यक है। पर एक वर्ग और भी है जिस पर समाज की प्रगति निर्भर करती है, जिससे समाज को चिन्तन एवं उपयोगी विचार सम्पदा प्राप्त होती है—वह है मनीषी वर्ग। सामाजिक उत्थान-पतन में इस वर्ग का ही अधिक योगदान होता है।

हर युग की अपनी अलग समस्याएँ होती हैं। उनके समाधान के लिए प्रयास भी चलते हैं। किसी समय भौतिक अभाव अधिक था। उसे दूर करने के लिए अनेकानेक प्रयास भी चले। एक सीमा तक इस दिशा में सफलता भी मिली है। समृद्धि बढ़ी है एवं भौतिक अभाव उतना नहीं रहा। पर इन दिनों सबसे बड़ी कमी उत्कृष्ट विचारों की है। मानवी चिन्तन ही समाज का स्वरूप गढ़ता है। वह जैसा भी वैसा ही बनेगा। प्रवाह उत्कृष्ट रहा तो समाज शालीन एवं सुसंस्कृत बनेगा एवं निकृष्ट होने पर अधःपतन का कारण बनेगा।

चिन्तन की दृष्टि से मानव जाति का इतना अधःपतन पहले कभी नहीं हुआ है। भौतिक प्रगति का दम्भ जब विचारों के आन्तरिक खोखलेपन के रूप में प्रकट होता है तो आदिम युग के मनुष्यों एवं वर्तमान प्रगतिशीलों में विशेष अन्तर नहीं दिखायी पड़ता है। सर्वविदित तथ्य है कि चिन्तन के अनुरूप ही गतिविधियाँ चलतीं तथा भले-बुरे चरित्र के रूप में प्रकट होती हैं। अभाव उत्कृष्ट सद्विचारणा का है तो सुसंस्कृत समाज की कल्पना करना अस्वाभाविक है। चिन्तन की इस दरिद्रता की आपूर्ति मात्र 'मनीषा' ही कर सकती है।

सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप समस्याओं के निदान की व्यवस्था बनायी जाती है। पहले मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से इतना विकसित नहीं था। भाव-प्रधान होने के कारण बौद्धिक कुटिलताओं की भी समस्या न थी। अभाव भौतिक था। उसे दूर करने के लिए भौतिक स्तर पर ही प्रयास चलते रहे। पर इन दिनों समस्या दूसरी है। मानवी बुद्धि का तेजी से विकास हुआ है। भौतिकवाद ने मनुष्य की भाव सम्पदा को बुरी तरह रौंदा है। बुद्धिवाद ने प्रत्यक्षवाद के सहारे अपने को सर्वोपरि ठहराया है। बात यहीं तक सीमित रहती तो कोई विशेष समस्या नहीं थी। पर जब मानवी गरिमा के मेरुदण्ड स्नेह, सहयोग, सेवा, दया, करुणा, शुचिता, समता, एकता जैसे नैतिक तत्त्वों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवहेलना होने लगी तो अनेकानेक विभीषिकाओं का प्रस्तुत हो जाना स्वाभाविक ही था। चिन्तन में व्यक्तिवाद और चरित्र में भोगवाद की भर-मार का परिणाम विश्व स्तर पर फैली उच्छृंखलताओं, अनैतिकताओं के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है।

बुद्धिवाद की इस उच्छृंखलता को बढ़ावा देने में समाज की विभूतियों, कलाकारों, साहित्यकारों, विचारकों, वैज्ञानिकों का भी एक सीमा तक योगदान रहा है। विचार शक्ति, चिन्तन शक्ति, भाव शक्ति ईश्वर की दी हुई सर्वोत्तम विभूति है। जिसका उपयोग किसी भी दिशा में किया जा सकता है। निकृष्ट कार्यों के लिए भी और श्रेष्ठ प्रयोजनों के लिए भी समाज के चिन्तन एवं चरित्र को ऊँचा उछालने, श्रेष्ठ बनाने में अथवा अधःपतित कर देने में सामाजिक विभूतियों की दिशा जिधर भी होगी जन-प्रवाह का उधर ही चल पड़ना स्वाभाविक है। समाज में तो बड़ा वर्ग ऐसे व्यक्तियों का है जो अंधानुकरण करता है। उसका स्वयं का कोई चिन्तन नहीं होता है। अगर होता भी है तो किसी श्रेष्ठ दिशा में चल पड़ने का मनोबल नहीं जुट पाता। अधिकांश लोग तो मात्र अनुसरण ही करते हैं।

बनाने-बिगाड़ने में, ऊँचा उठाने अथवा नीचे गिराने में तो परोक्ष किन्तु महत्त्वपूर्ण योगदान मनीषा का ही होता है। विचारक, कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक वर्ग की गतिविधियाँ ही अनुकरणीय बनती हैं। उनके विचार ही समाज में प्रतिबिम्बित होते हैं। यह वर्ग ही समाज का मेरुदण्ड है। जिसके श्रेष्ठ बने रहने पर ही मेरुदण्ड के सहारे टिके शरीर के विभिन्न अंगों की तरह समाज के विभिन्न घटक ठीक एवं सुव्यवस्थित बने रहते हैं।

इतिहास साक्षी है कि इस मूर्धन्य वर्ग ने अपने समय के सामाजिक स्वरूप को गढ़ने में विशेष भूमिका निभाई है। इतिहास के बदलते हुए काले-सुनहरे पृष्ठ वैज्ञानिक उत्थान-पतन की कहानियाँ हैं, जिन्हें पढ़ने से तात्कालिक परिस्थितियों की जानकारी तो मिलती है पर प्रमुख रूप से इस बात का पता लगता है कि मनीषा की दिशा क्या थी। लम्बे समय तक चले साम्राज्यवाद की नींव रखने, उसे पोषण देते रहने में साम्राज्यवादी विचारों का सहयोग रहा। जिन्होंने हर प्रकार से सामाजिक सुव्यवस्था एवं प्रगति के लिए उसे उपयोगी ठहराया और यह कहा कि मनुष्य समुदाय पर पूर्णतया शासन का नियन्त्रण रखकर ही समाज को समुन्नत बनाया जा सकता है। इस तरह के प्रतिपादन ने तदनुरूप लोकमानस बनाया। राजा ही सर्वोपरि सत्ता है। धर्म-अधर्म को भी उसकी शासन व्यवस्था के साथ जोड़ा गया। फलस्वरूप राजा एक दूसरा भगवान बन बैठा। सर्वविदित है कि इस प्रणाली ने चिर अतीत में कभी मनुष्य के विकास में योगदान भले ही दिया हो किन्तु कालान्तर में वह विकृतियों से भर गई। शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अनाचार से भरे निरंकुश शासन ने मानवता का कितना अहित किया है इसे इतिहासवेत्ता जानते हैं। मध्यकालीन युग की कालिमा मनुष्य के वैज्ञानिक पतन की खुली दास्तान है।

मनीषा जिधर भी मुड़ी उसने समाज को गढ़ने में आसामान्य भूमिका निभाई। चरित्रवान बनी रहने पर तो साम्राज्यवाद भी कल्याणकारी बना रहा। पर उसके पथ भ्रष्ट होने पर तो अनैतिकता को ही बढ़ावा मिला। उसकी क्षमताएँ शासकों के गुणगान करने, हीनवृत्तियों को उभारने, भोगवाद को प्रोत्साहन देने में नियोजित हुईं। फलस्वरूप समाज का भारी अधःपतन हुआ।

इस वर्ग ने मानव समाज को ऊँचा उठाने में भी योगदान दिया है। अन्धकार की तमिस्रा में डूबे मनोबल एवं आत्मबल की दृष्टि के जराजीर्ण बने समाज को तुलसी एवं सूर की भक्तिरस की धाराओं ने अवलम्बन दिया। नास्तिकता की ओर बढ़ रहे जनमानस को एक नया सहारा मिला स्नेह, वात्सल्य, दया, करुणा, सेवा, सहयोग जैसे तत्त्वों को अपने अन्दर समाहित किये रामायण के प्रेरक प्रसंगों ने अन्धकार युग की तमिस्रा से भारतीय समाज को उबारा। मानवता के मेरुदण्ड नैतिक मूल्यों, भाव संवेदनाओं को नष्ट करने पर उतारू नास्तिकवाद को निरस्त करने में रामायण की भाव-भरी भूमिका को नहीं भुलाया जा सकता। विकृतियाँ हर क्षेत्र में आती हैं। भक्ति भावना की आड़ में पनपते हुए अन्धविश्वास एवं पाखण्ड को उखाड़ने में कबीर की विचारधाराओं का असामान्य योगदान रहा है। मन्दिर, मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान, ईश्वर, खुदा के झगड़े ने जिस साम्प्रदायिक भावना को जन्म दिया उससे धर्म के शाश्वत स्वरूप को विशेष आघात पहुँचा। कबीर ने अपने सशक्त विचारों-संरचनाओं द्वारा जनसमूह को प्रभावित किया। धर्म का वास्तविक स्वरूप एवं लक्ष्य बताया। फलतः समाज को सही दिशा मिली।

कालान्तर में उपयोगी चीजें भी अनुपयोगी बन जाती हैं। विकृतियों के घुस जाने के कारण उनमें अंधविश्वास एवं पाखण्ड का समावेश होने लगता है। ऐसे अवसरों पर मनीषा सतर्क न हो, अपनी भूमिका न निभाये तो समाज का पतन सुनिश्चित है। उसका प्रमुख कार्य है युग की आवश्यकता के अनुरूप समाज को श्रेष्ठ, शालीन एवं समुन्नत बनाने के लिए उपयोगी आधार एवं सशक्त विचार देना। बात केवल विचारों से भी नहीं बनेगी। वरन् उनकी दिशा धारा क्या है सृजनात्मक तत्त्वों का समावेश है या नहीं, विचारों की उपयोगिता उनके विधेयात्मक स्वरूप पर ही निर्भर करती है। सशक्त तो नास्तिकवादी विचार भी हो सकते हैं पर उससे प्रगति नहीं अवगति, उत्थान नहीं पतन का मार्ग ही प्रशस्त होता है। प्रत्यक्षवाद एवं उपभोगवाद की दृष्टि से देखा जाय तो विचारक चर्वाक, नीत्से एवं फ्रायड भी थे। उनके विचार सशक्त थे और तर्क सम्मत भी। पर वे मनुष्य जाति के विकास में सहायक नहीं बाधक ही सिद्ध हुए हैं। उनके विचारों में तात्कालिक समाज की विकृतियों के प्रति आक्रोश स्पष्ट झलकता है। सम्भव है उन्हीं से अभिप्रेरित होकर उन्होंने नास्तिकवादी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तत्त्वों का प्रतिपादन किया हो। पर इससे काम नहीं बनता। विचारों का निषेधात्मक प्रयोग तो पतन का कारण ही बनेगा। परिस्थितियाँ क्या हैं उनके निराकरण के लिए क्या उपाय हो ? मनीषा का दायित्व इन पक्षों पर ही विचार करना है न कि उल्टे सामाजिक विकृतियों को उधेड़ना और उनको और भी नंगा चित्रित करना। विकृतियाँ तो वैसे भी सभी को दिखाई पड़ जाती हैं। उन्हीं का बढ़-चढ़कर प्रतिपादन किया जाय तो मनीषा की गरिमा कहाँ रही। सच्चा विचारक तो मात्र सृजन की बात सोचता है। वह मात्र वैज्ञानिक सम्पदा से भरपूर नहीं होता वरन् हृदय की करुणा से भी ओत-प्रोत होता है। तभी वह समाज के दुःख-दर्द को, पीड़ा और पतन को समझ पाता है और उनके निवारण के लिए तत्पर होता है। समाज के उत्कर्ष के लिए क्या उपाय हो सकते हैं—क्या प्रयास चलने चाहिए, इसके लिए उपयोगी विचार देने का दायित्व-विचारक, मनीषी, वैज्ञानिक, कलाकार, कवि, साहित्यकार वर्ग के ऊपर आता है। रूसो, कार्लमार्क्स, गाँधी जैसे विचारक अपने समय में इसी आवश्यकता की आपूर्ति में संलग्न रहे। उनकी समस्त गतिविधियाँ समाज के उत्कर्ष के लिए ही नियोजित रहीं। फलतः समाज को असामान्य योगदान मिला और स्वयं भी उन्हें सन्तुष्टि मिली।

प्रस्तुत नैतिक संकटों की बेला में मनीषी वर्ग पर दायित्व और भी बढ़ जाता है। निषेधात्मक पक्षों को उभारने में संलग्न मनीषा को अपनी गरिमा समझनी चाहिए। उसकी क्षमता का सृजनात्मक दिशा में उपयोग होना आज की सर्वोपरि आवश्यकता है अथवा उत्कृष्ट चिन्तन का है—नैतिक तत्त्वों का है तो प्रयास भी इसी दिशा में चलना चाहिए। ईश्वर प्रदत्त सर्वोपरि उपलब्धि हीन वृत्तियों को उभारने, प्रोत्साहन देने अथवा अपना संकीर्ण स्वार्थ सिद्ध करने तक सीमित रह गई तो भारी दुरुपयोग होगा। प्रतिपादन मानवी मूल्यों का होना चाहिए, चिन्तन को ऊर्ध्वगामी बनाने की भूमिका मनीषा ही सम्पन्न कर सकती है। इससे सुसंस्कृत समाज के निर्माण का प्रयोजन तो सिद्ध होगा ही आत्मसन्तोष, जिसे जीवन की सर्वोपरि उपलब्धि कहा गया है का भी लाभ मिल सकेगा। तब आत्म सन्तुष्टि का यह भाव स्तर वाल्टर स्कॉट के शब्दों में इस प्रकार फूट पड़ेगा। "मैं अपने जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं लिखा है जिसके लिए आत्मग्लानि हो। जो भी विचार किया उसमें मनुष्य के उत्थान का लक्ष्य निहित था। मरते समय मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ कि ईश्वर प्रदत्त क्षमता का सही उपयोग कर सका।"

विभूतिवान आगे आयें, नवसृजन की बागडोर संभालें

वसन्त का आगमन होते ही कोयलें, भौंरे, तितलियाँ और मधुमक्खियाँ अधिक सक्रिय हो जातीं और प्रकृति में आये वसन्त उभार को सार्थक बनाने में अपनी असामान्य भूमिका सम्पादित करती हैं। सैनिकों को जगाने, पंक्तिबद्ध करके कूच का निर्देश देने में बिगुल का जो महत्त्व है यही वसन्त में कोयल का है। यों तो बोलते सभी प्राणधारी हैं पर कोयल की वाणी में कुछ विचित्र आवेश, उत्तेजना, दर्द, उभार एवं रस का सम्मिश्रण भरा रहता है। उसे सुनकर हरेक की अन्तःचेतना में जागरूकता आती है।

भौंरे का मन्द गुंजन, सुनने वालों की भावतरंगों को लहराता है। पुष्पों के खिलने एवं फलित होने में उस स्वर लहरी से अदृश्य किन्तु विशिष्ट उत्तेजन मिलता है। तितलियाँ अपने सौन्दर्य से फूलों की शोभा को द्विगुणित करतीं और दर्शकों को अपनी उपस्थिति से दुहरा आनन्द देती हैं। प्राणिशास्त्र जानते हैं कि नर और मादा—पुष्पों के परागों के एकत्रित होने का अवसर तितलियाँ, मधुमक्खियाँ एवं उसी बिरादरी के अन्य सदस्यों के सहारे सम्पन्न होता है। यदि वे फूल का पराग अपने पर पंखों में लपेट कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक न पहुँचायें तो निषेचन का प्रयोजन ही पूरा न हो सके—गर्भधारण का अवसर ही न मिले और फूलों को फलित होने के लिए आतुर उमंग को मन-मसोसकर ही समाप्त होना पड़े।

ऐसे विभूतिवान भाग्यशाली जीवधारी थोड़े से ही होते हैं जिनकी विशेषता प्रखर होती और जन-जन में चर्चा के विषय बनते हैं। वे प्राणी स्वयं धन्य होते और प्रकृति प्रयोजन को पूर्ण करने में अपनी मूर्धन्य भूमिका से एक से एक चमत्कारी योगदान देते हैं। सम्भवतः नियति ने उन्हें अतिरिक्त विभूतियाँ देने के साथ-साथ उनके सदुपयोग की चेतावनी दी है और वे जागरूकों की तरह उसका समुचित निर्वाह भी करते हैं।

मनुष्यों में भी कई प्रकार के विभूतिवान पाये जाते हैं। वे अपनी कौशल-विशेषताएँ प्रायः साथ ही लेकर जन्मते हैं। मूलभूत साधन-सामग्री होने पर उसे निखारने, सजाने की बात तो सहज ही बुद्धि और परिस्थिति सहयोग से बनती और बढ़ती रहती है। मनुष्यों में विभूतिवानों की यों तो कितनी ही बिरादरियाँ हैं किन्तु प्रमुख हैं—प्रतिभावान, धनवान, भावनाशील, कलाकार। इनमें से प्रत्येक की कई-कई शाखाएँ, उपशाखाएँ हैं। फिर भी सामान्यतया दूसरों को प्रभावित कर सकने वाली संभाषण शैली—सौन्दर्य, मनोबल, मिलनसारिता-सुसंस्कारिता, पुरुषार्थ परायणता, सद्गुणों के समुच्चय को प्रतिभा कहते हैं। प्रतिभाशाली असंख्यों को दिशा देने और मोड़ने-मरोड़ने में सफल होते हैं। धन की उपयोगिता और क्षमता से सभी परिचित हैं। उसका सही उपयोग सम्भव हो सके तो कोई रोज कुआँ खोदने और रोज पानी पीने वाला भी अपने उपार्जन से असंख्यों के लिए अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर सकता है।

कलाकारों में साहित्य सृजेता, वक्ता, गायक, चित्रकार प्रभृति विशेषताओं से सम्पन्न लोगों की गणना होती है। वे अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कुछ ऐसे ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिससे प्रसुप्तों को जगाने का—जागृतों को तरंगित होने और तरंगित को प्रयत्नरत होने की प्रचण्ड प्रेरणा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलती है। कला को भगवती सरस्वती का प्रत्यक्ष स्वरूप माना गया है और वीणा को संगीत का, पुस्तक को साहित्य का, मयूर को चित्र का प्रतीक मानकर, उन्हें भगवती की क्षमता का माध्यम निर्धारित किया है। सरस्वती इन्हीं साधनों के सहारे अपनी दैवी क्षमता प्रकट एवं गतिशील करती हैं।

भविष्यवक्ताओं ने आगामी बीस वर्षों को मानवी भाग्य का निर्धारण वर्ष माना है। जिसमें प्राणवान जागरूकों, विभूतिवानों को अपने विशिष्ट भूमिका सम्पादित करनी होगी। नव-निर्माण की प्रखर गतिविधियाँ इन्हीं दिनों चलेंगी। सभी जानते हैं कि नव-निर्माण में कितने साधन जुटाने पड़ते हैं। फिर युग निर्माण जैसे समस्त संसार का प्रवाह बदलने के लिए चल रहे महान कार्य के लिए कितने साधनों की आवश्यकता पड़ेगी इसे सभी विचारशीलों को जानना चाहिए। इसमें भामाशाहों की ही नहीं—बालों में बालू लपेटने वाली गिलहरी और श्रमसीकरों की श्रद्धांजलि लेकर उपस्थित होने वाले वानरों और केवटों की भी आवश्यकता पड़ेगी। साधन, श्रम और समय को भी कहते हैं और पैसे को भी। इनमें से जो जिसके पास हो उसे नव निर्माण के महती प्रयोजन में नियोजित करना चाहिए।

लोकमानस की निकृष्ट चिन्तन पद्धति एवं गतिविधियाँ ही समस्त समस्याओं एवं विक्षोभों का कारण हैं, इसे उलटने-पलटने के लिए असंख्यों माध्यम खड़े करने होंगे। चिन्तन धारा को अभीष्ट दिशा में मोड़ने के लिए चिन्तन को प्रभावित करने वाले उन मंत्रों का ही उपयोग करना होगा जो इन दिनों जन-जन के मानस पटल पर छाये एवं निम्नगामी प्रवृत्तियों के लिए प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। वे यदि सत्प्रवृत्तियों के प्रति जनश्रद्धा उभारने में निरत रहे होते तो आज यह विपन्न-विक्षोभ भरी परिस्थितियाँ नहीं दिखाई पड़तीं। उलटे प्रवाह को उलट कर सही दिशा में नियोजित करने—नव-निर्माण के लिए प्रयुक्त करने की जिम्मेदारी विभूतिवानों की होती है। करने को तो कितने ही काम पड़े हैं जिनमें हर प्रकार के विभूति सम्पन्न अपने अनुरूप भूमिका निभा सकते हैं। साहित्य प्रकाशन, फिल्म उद्योग, गायन, अभिनय तन्त्र, प्रेरणाप्रद प्रदर्शन, मेलों को अभिनव स्वरूप दिया जाना है जिससे वे अधिकाधिक लोकोपयोगी—सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन का माध्यम बन सकें। इन कार्यों के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ेगी। जो समर्थ एवं सम्पन्न हैं वे इन तन्त्रों के विकास में अपनी पूँजी नियोजित करने का भावभरा साहस जुटा सकें तो उनकी पूँजी तो बनी ही रहेगी—नवनिर्माण का अभीष्ट वातावरण बनाने में असामान्य योगदान मिलेगा। ऐसा सम्भव हो सके तो सम्पदा और उपार्जनकर्ता दोनों ही सच्चे अर्थों में कृतकृत्य हो सकते हैं।

भाव सम्पदा भी दिव्य विभूति है। यह जिन्हें भी मिली हो उन्हें चाहिए कि नवनिर्माण के लिए अर्पित करें। अपने समय में हनुमान, अर्जुन, गुरुगोविन्दसिंह, समर्थ रामदास, विवेकानन्द, दयानन्द, गाँधी, विनोबा ने लोकसेवा को युग की सर्वोपरि साधना मानकर अपनाया और जनश्रद्धा के भी भागी बने। भावनाशीलों के जिम्मे एक ही काम हर युग में रहा है और आज भी है कि "धर्मतन्त्र को तात्कालिक परिवेश के अनुरूप पुनर्जीवित कर उसके दिव्य आलोक से जन-जन को अनुप्राणित करना।" इससे बढ़कर और कोई पुण्य-परमार्थ नहीं हो सकता। मानव जाति आज विनाश के कगार पर खड़ी है। उसे बचाने के लिए सस्ते दान की वाहवाही लूटने और विज्ञापनबाजी का ढकोसला रचने की तुलना में दूरदर्शी, भाव भरी रीति-नीति अपनानी होगी।

प्रतिभावानों को अपनी क्षमता, विशेषता का परिचय इसी रूप में देना चाहिए कि वे आगे आयें—सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन और अवांछनीयता उन्मूलन के लिए वातावरण बनायें। जहाँ भी सदाशयता जीवित मिले उसे जगायें—एकत्रित करके योजनाबद्ध रूप में उसे नवसृजन में लगायें। उत्कृष्टता अभी पूर्णतया मरी नहीं है। आदर्शों को व्यवहार में उतारने वाली जीवट अभी भी मौजूद है। ये तत्त्व बिखरे एवं दबे पड़े हैं इसलिए उनका अस्तित्व सामने नहीं आता। इसे समेटा और नवसृजन के लिय उभारा जा सके तो उत्कृष्टता के पक्षधरों की बड़ी सेना नवनिर्माण के लिये खड़ी हो सकती है। प्रतिभावानों का समय एवं श्रम मिल सके तो इससे बहुत बड़ा काम हो सकता है। हजारी किसान ने अपने साथियों की सद्भावना उभार कर कन्धे से कन्धा मिलाकर आम्र उद्यान लगाने का व्रत लिया था। फलस्वरूप सम्मिलित पुरुषार्थ का प्रतिफल सामने आया—'हजारी बाग' जिसका नामकरण उस यशगाथा को चिरकाल तक अमर बनाये रहेगा। हर कोई यह अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। स्मरण रखने की बात एक ही है कि इन दिनों सद्भावना को बिखेरा न जाय।

इसके अतिरिक्त कलाकार वर्ग के विभूतिवान आते हैं जिन्हें अपनी कला की कीमत सिक्कों के रूप में पूरी-पूरी वसूलनी है, उसका उपयोग विलासिता के लिए करना है, उन कलाकारों से तो कुछ भी नहीं कहना है। कहा उनसे जा रहा है जो सरस्वती के उपासक हैं और जो कला को दैवी वरदान मानते हैं, पर मार्गदर्शन के अभाव में भटक रहे हैं और निहित स्वार्थियों के हाथ पड़कर अपनी दैवी क्षमता का दुरुपयोग अनजाने में कर रहे हैं। कहा उनसे भी जा रहा है जो सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए इधर-उधर बिखरे, छिटपुट रूप से अपने स्तर से लगे हुए हैं। किन्तु बिखराव के कारण कोई विशेष प्रयोजन नहीं पूरा हो पाता। यदि योजनाबद्ध रूप से उनकी क्षमतायें नियोजित हो सकें तो थोड़े ही समय में चमत्कारी परिणाम निकल सकता है। इन दिनों कलापुत्रों को एक झण्डे तले एकत्रित होकर—एक योजना का अंग बनकर—एकजुट होकर काम करना चाहिए। इसी में उनकी—सरस्वती की सार्थकता है। सरस्वती का अर्थ है—"ऐसी कला-कारिता जो उदार सेवा साधना माने और पुण्य-परमार्थ की तरह उस उपलब्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरिमा को महान प्रयोजनों के लिये नियोजित करे।" इन दिनों कला का आह्वान इसी प्रयोजन के लिये हो रहा है। उसे इन दिनों वेश्या का कलेवर नहीं लपेटना चाहिए—देवी के रूप में प्रकट होना चाहिए। वेश्या अपना तन बेचती है। देवी अपनी गरिमा से जन-मन को लाभान्वित करती है। अम्बपाली ने चोला बदला था। कला को इस अवसर पर ऐसा ही कायाकल्प करके अपनी उत्कृष्टता का परिचय देना चाहिए।

यह कार्य कौन—किस प्रकार कहाँ करे, इसका निर्धारण कर सकना हर व्यक्ति के वश की बात नहीं है। इसे युग प्रवाह का नेतृत्व करने वाले तत्वदर्शी ही कर पाते हैं। इसका अभिनव नव निर्धारण 'युग निर्माण योजना' की युगान्तरीय चेतना द्वारा हुआ है, जिसमें हर स्तर के—हर प्रकार के विभूतिवान अपनी क्षमता के अनुरूप सुनियोजित एवं सुनिश्चित कार्य पद्धति में यह चयन कर सकते हैं कि वे क्या कर सकते हैं। नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति के लिए ऐसे असंख्यों भावनाशील विभूतिवानों की आवश्यकता इन दिनों है। इनसे वही जनमानस के परिष्कार का कार्य असीम सामर्थ्य के साथ द्रुतगति से अग्रसर हो सकता है। यों तो मण्डी में मुँह-माँगा दाम देकर भी अभीष्ट कार्य के योग्य प्रतिभा खरीदी जा सकती है किन्तु महान परिवर्तन का प्रयोजन खरीदी गई योग्यता द्वारा पूरा न हो सकेगा। इसके लिये तो आन्तरिक श्रद्धा ही कारगर सिद्ध ही हो सकती है क्योंकि उच्चस्तरीय प्रभाव का उद्गम केन्द्र कलाकार की श्रद्धा ही होती है। मीरा, सूरदास, चैतन्य की गायन-वादन की योग्यता नहीं वरन् उनकी श्रद्धा ही प्रमुख भूमिका निभा सकी। चित्रकला के सम्बन्ध में भी यही बात है। युग सृजन के लिये—विश्व निर्माण के लिये साहित्यकार, कवि, वादक, गायक, अभिनेता, चित्रकार स्तर के अनेकों योग्यताओं वाले कलाकार बड़ी संख्या में चाहिए। पर होना चाहिए श्रद्धासिक्त ही। अन्यथा उनकी मूल प्रवृत्ति उस कला में प्राण नहीं भर सकेगी और निष्णात प्रस्तुतीकरण जनमानस में उच्चस्तरीय प्रेरणायें उभार सकने में समर्थ न हो सकेगा।

निर्वाह से बचा धन सृजन प्रयोजन में लग सके—प्रतिभा, प्रखरता एवं भाव-संवेदना को लोकमानस का भावपक्ष उभारने पर ध्यान केन्द्रित हो सके—श्रम और समय को सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन में नियोजित कर सकें तो देखते-देखते गगनचुम्बी सफलता का वातावरण बनने को आधार खड़े होने में कोई अवरोध शेष न रहेगा। विभूतियाँ सदा-सर्वदा से महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों को पूर्ण करने का श्रेय पाती रही हैं। परिवर्तन एवं नवनिर्माण की इस बेला में जबकि समस्त मानव जाति का नव निर्धारण होना है, उन्हें इन्हीं दिनों अपनी सजीवता का परिचय देना है। संवेदना, सम्पन्नता, प्रखरता तथा कलाकारिता जहाँ भी जिस स्तर की भी हो, उसे अपने मस्तिष्क एवं वर्चस्व का परिचय देने के लिए आगे आना ही चाहिए।

समाज परिवर्तन में बुद्धिजीवियों की भूमिका

राष्ट्रों, राज्यों और जातियों के जीवन में आदि काल से उल्लेखनीय धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक-क्रान्तियाँ हुई हैं। उन परिवर्तनों में श्रेय भले ही एक व्यक्ति या वर्ग के मार्गदर्शन को मिला हो, सच्ची बात यह रही है कि बुद्धिजीवियों, विचारवान व्यक्तियों ने उन क्रान्तियों को फैलाया, जन-जन तक फैलाया और सफल बनाया।

सर्वसामान्य जनता में विवेचन की शक्ति नहीं होती। आहार-विहार जैसे मोटे विषयों में उचित-अनुचित, संयम असंयम, लाभ-अलाभ का साधारण ज्ञान भी जिन्हें न हो उन्हें व्यापक उन्नति, सार्वभौमिक परिस्थितियों और उच्चतर जीवन प्रणाली की आचार-संहिता समझना कोई साधारण बात नहीं है। यह कार्य दो वस्तुओं में धुरी की तरह केवल प्रबुद्ध व्यक्ति ही कर सकते हैं। समुद्र अपने आप में अथाह है, अगम्य है पर वह स्वतः धरती की प्यास बुझाने में असमर्थ है। उसके लिए मध्यस्थ जलधर की आवश्यकता होती है।

बादल समुद्र से जल लेकर प्यासी भूमि की तृषा हरते हैं। भूमि सूर्य किरणों से जीवन प्राप्त कर अन्न उगा देती है। पौधे धरती से रस लेकर मधुर फल देते हैं। पहाड़ का जल लेकर नदियाँ चलती हैं और सारे प्रान्तों में बाँट आती हैं। इन मध्यस्थों का महत्त्व अपने उद्गम से कम नहीं, क्रिया शक्ति के सहयोग में उससे कुछ अधिक ही है। प्रकट में तो वही मुख्य कारण होते हैं।

यह एक सामान्य सिद्धान्त है। उसके स्थूल दर्शन राष्ट्रों के इतिहास में संभव है। संसार में आज जितने प्रगतिशील देश हैं वे सब एकाएक ही इतने समृद्ध और उन्नतशील नहीं बन गये, उन्हें प्रबुद्ध व्यक्तियों ने उठाया है इसके इतिहास विद्यमान हैं।

रूस की सामाजिक अर्थव्यवस्था, शिक्षा, वैज्ञानिक प्रगति की मिसाल दी जाती है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि इस शताब्दी के पूर्व वहाँ तीन-चौथाई जनता से भी अधिक लोग अशिक्षित थे, निर्धन और वैज्ञानिक क्षेत्र में बिल्कुल पिछड़े थे। एकाएक तीव्र परिवर्तन हुआ, जिसके पीछे बुद्धिजीवियों की एक सुव्यवस्थित क्रान्ति टिकी हुई है। पढ़े लिखे लोगों के त्याग-लगन और परिश्रम का चमकता हुआ अध्याय जुड़ा हुआ है।

१९२० से लेकर १९६० तक केवल शिक्षा जगत में जो क्रान्ति हुई उसका लेखा प्रस्तुत करते हुये विद्वान रूसी लेखक ए. पुत्को ने एक स्थान पर बताया है कि १९२० में १० लाख में केवल ३००० व्यक्ति ऐसे थे, जिन्होंने उच्चतर स्कूल की शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बाद प्रबुद्ध व्यक्तियों के माध्यम से सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का संगठन हुआ और देश में अकाल विनाश की परिस्थितियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भी निरक्षरता उन्मूलन के पाठ्यक्रम गाँवों में, क्लबों, निवास गृहों और औद्योगिक संस्थाओं में प्रसारित किये गये। तथाकथित सांस्कृतिक क्रान्ति का उद्देश्य राष्ट्र में वैज्ञानिकों, लेखकों और कलाकारों की आवश्यकता की पूर्ति करना भी था। इस आन्दोलन में लेनिन, कोन्सतान्तिन त्सियोल्कोवस्को एवं इवान पवलोव जैसे अगुआ थे पर सफलता का श्रेय थोड़े से व्यक्तियों को दिया जाता है, जिन्होंने सम-विचारक पैदा करने और सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रसार करने में अथकपरिश्रम और त्याग दिखाया। फल यह हुआ १९४० में ११०००० और १९६० तक उच्चस्तर शिक्षितों की संख्या ३३४००० तक पहुँची, इन्हें विशेषज्ञ स्नातक कहा जाता है।

यह उत्पादन केवल शिक्षा का. है विज्ञान, उद्योग विकास, इंजीनियरिंग, कला, संस्कृति के क्षेत्र में रूस ने जो उन्नति की वह भी आज सारी दुनिया के सामने है। रूस यह बात मानता है कि यह परिवर्तन थोड़े से बुद्धिजीवियों के श्रम और सहयोग से ही संभव हुआ है।

विश्व का दूसरा समृद्ध और सम्भ्रान्त राष्ट्र अमेरिका है। वहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक, कानूनी, औद्योगिक, शिक्षा और वैज्ञानिक क्षेत्र में जो तीव्र परिवर्तन हुये हैं। उसका इतिहास भी काफी पुराना नहीं है।

लगभग १९१० में अमेरिका के कुल ९ व्यक्ति राजधानी वाशिंगटन में 'सरकारी अनुसंधान संस्थान' की रूपरेखा लेकर एकत्रित हुए थे। इन्होंने 'बुकिंग इन्स्टीट्यूशन' नामक संस्था की स्थापना की। इसमें सरकार उलटने के कहीं कोई बात न थी, संस्थान का उद्देश्य अमेरिका की कानूनी प्रशासन, शिक्षा, विज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना था। इन क्रान्तिकारी कार्यक्रमों को 'बुकिंग इन्स्टीट्यूशन' ने केवल व्यवस्थित ढाँचा देकर प्रकाशित किया और उसे उभारा वहाँ के प्रबुद्ध व्यक्तियों ने। इस अभियान ने अमेरिका में बौब बुड, जौन गार्डनर, चाली हौर जैसे कर्मठ और प्रभावशाली व्यक्ति पैदा कर दिये। कहा जाता है कि इन लोगों ने क्रान्ति को वैसा ही मोड़ दिया जैसे कुछ समय पूर्व ब्रिटेन में 'प्रोटेस्टेन्टों' ने किया था। चूँकि संस्थान के विषय सार्वजनिक नीति, अर्थव्यवस्था, परिवहन, निर्वाचन, कानून, सरकारी नौकरी, मालिक-मजदूरों के सम्बन्ध आदि थे इसलिये कोई भी व्यक्ति उससे अछूता न रहा और ऐसी आँधी आई कि कानूनी मामले ही नहीं सामाजिक रहन-सहन, और राष्ट्रीय प्रगति में ठोस परिवर्तन हुये। अमेरिका की इस प्रगति का इतिहास भी प्रबुद्धों के पंसीने से लिखा गया है।

इन राष्ट्रों ने राष्ट्रीय समस्याओं, नये सृजन, नये आविष्कारों के समाधान के लिये बौद्धिक शक्ति का उपयोग किया और उससे बहुमुखी विकास का वातावरण बनाया। आज दोनों देश समृद्धि के उच्च शिखर पर हैं।

क्यूबा एक छोटा सा देश है। उसकी शक्तियाँ सीमित थीं पर बुद्धिजीवियों की शिक्षा व्यवस्था ने कमाल का इतिहास प्रस्तुत किया। जितने पढ़े-लिखे लोग थे अशिक्षितों को ढूँढ-ढूँढ कर पढ़ाने में लग गये। आज क्यूबा में एक अशिक्षित व्यक्ति नहीं है। निरक्षरता क्यूबा से निर्वासित कर दी गई—यदि पूछा जाय किसने ? तो एक ही उत्तर मिलेगा प्रबुद्ध नागरिकों ने।

चीन और जापान में भी जो राजनैतिक परिवर्तन और सामाजिक सुधार हुए हैं, उनमें बुद्धिजीवियों का ही योगदान मुख्य रहा है। सच बात तो यह है कि सृष्टि के आदि से अब तक समाज की रीति-नीति, व्यवस्था आदि का संचालन प्रबुद्ध व्यक्तियों के ही हाथ रहा है। उनकी मनोदशा कैसी रही ? मार्ग-दर्शन कैसा रहा ? उपलब्धियों का स्वरूप क्या रहा ? इन सब विषयों में तर्क और विवाद हो सकता है पर यह निर्विवाद सत्य है कि अच्छी बुरी जैसी भी परिस्थितियाँ उठी हैं। उनको प्रसारित बुद्धिजीवियों ने किया है।

समस्त क्षमताओं की तुलना में विवेचन की क्षमता मनुष्य की बुद्धि से सबसे अधिक घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित है। इसलिए प्रबुद्ध व्यक्ति कठिन और मार्गदर्शक जटिल समाधानों को भी सम्बद्ध व्यक्ति के लिए सरल बना देता है। अथवा उसे अपने समीप वातावरण की बौद्धिक बनावट, रीति-रिवाज, रहन-सहन का अधिक पता होता है इसलिए वह महापुरुषों के क्रान्तिकारी कार्यक्रमों को सरल बनाकर प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा लेता है। यह भूमिका ही किसी भी देश व परिस्थितियों के उत्थान व पतन में मुख्य सहयोगिनी रही है, चाहे वह रूस की शिक्षा और सांस्कृतिक क्रान्ति रही हो, चाहे अमेरिका की औद्योगिक और आर्थिक क्रान्ति।

समाज की कुंठाओं को काटने की तेजी भी यदि किसी में हो सकती है तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति ही हो सकते हैं, उन्हें छोड़ कर या उनके बिना कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना सम्भव नहीं।

प्रबुद्ध व्यक्ति अपना महत्त्व और दायित्व समझें

मनुष्य सृष्टि के अन्य प्राणियों से केवल उसकी बौद्धिक क्षमता के कारण ही भिन्न और विशिष्ट समझा जाता है। यदि उसमें बुद्धि न रही होती तो न वह सभ्यता का निर्माण कर सकता और न ही आज की उपलब्धियों का आकाश चूम सकता था। उसकी समस्त वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति की सम्भावनायें इस बात पर निर्भर हैं कि उसकी विचारणा तथा कार्य पद्धति की दिशा क्या है ? समस्याओं का समाधान भी इसी विशेषता पर निर्भर करता है। यों किसी दीन-दुःखी को सहायता कर किसी समस्या में राहत भले ही पहुँचायी जा सके पर उसकी समस्या का समाधान नहीं होता। बीमार व्यक्ति को दवा और औषधि देकर तात्कालिक आराम भले ही प्राप्त कर लिया जाय पर रोग तो संयम-नियम साधन से ही दूर होगा। डाक्टर कितनी अच्छी दवा दे पर रोगी यदि परहेज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न रखे तो मरीज की बीमारी फिर लौट कर आती रहती है। भूखे व्यक्ति को भोजन देकर उस समय के लिए क्षुधा तृप्ति भले ही करा दी जाय पर इस सहायता से उसकी गरीबी तो दूर नहीं हो जायगी। स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता भी केवल कार्य पद्धति तथा दिनचर्या में आवश्यक हेर-फेर से ही अर्जित की जा सकती है।

और व्यक्ति आज अगणित समस्याओं से त्रस्त है। उन सभी समस्याओं में स्थूल सहायता क्षणिक राहत ही पहुँचा सकती है। उनके मूल में निहित मनोविकारों का जब तक शोधन नहीं किया जायेगा तब तक व्यक्ति कितनी ही सहायता प्राप्त करता रहे, उसकी समस्याएँ दूर नहीं होंगी। इन दिनों हर एक आपत्तियों और समस्याओं की उलझनों से त्रस्त है। व्यक्तिगत जीवन में कोई बीमारी से घिरा है तो कोई पारिवारिक चिन्ताओं से। आर्थिक तंगी बच्चों के ब्याह की समस्या, जहाँ के तहाँ ही पड़े रहने और कोई प्रगति न कर पाने का मलाल तो किसी को पारिवारिक जीवन में, तो किसी को मित्रों के जीवन में सन्देह, आशंका, दुराव, उच्छृंखलता, कृतघ्नता और असहयोग का दौर पूरे वेग पर है। व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में ही नहीं सामाजिक जीवन में भी कितनी ही समस्यायें व्याप्त हैं। कारण है समाज उन्हीं व्यक्तियों से तो बना है जो विभिन्न चिन्ताओं और उलझनों से ग्रस्त कुण्ठित होकर जी रहे हैं। गलत लोग सही समाज कहाँ से बनायेंगे।

विचारपूर्वक मनन करने से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि इन समस्याओं के कारण बौद्धिक या वैचारिक ही हैं यदि मनुष्य के विचार सही दिशा में आस्थाओं के रूप में परिपक्व हों तो उसकी रीति-नीति और क्रिया-कलापों का निर्धारण उन्हीं के अनुसार होता है। बुरे कार्यों में प्रवृत्त और कुकर्मों में लिप्त लोगों को दुर्बुद्धि-ग्रस्त ही कहा जाता है। अन्याय, अपराध, आलस्य, असंयम और आवेश मनुष्य को तभी पथ भ्रष्ट करते हैं जबकि उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। दुर्भाग्य से आज विश्व में इसी स्तर के लोग अधिक हैं और यह आशंका दिन प्रतिदिन बलवान होती जा रही है कि यदि यही स्थिति बनी रही तो वह दिन दूर नहीं जब अणु-आयुधों के कारण मनुष्य सामूहिक आत्महत्या कर ले।

ऐसी परिस्थितियों में विचारशील व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे वर्तमान विभीषिका का हल करने के लिए कोई प्रभावशाली कदम उठायें। इन दिनों निस्संदेह भौतिक प्रगति पिछले सभी युगों से अधिक हुई है। भौतिक उन्नति की दृष्टि से यह युग निस्संदेह अभूतपूर्व युग कहा जाना चाहिए। लेकिन इसकी शिक्षा चिन्ताजनक रूप से भ्रान्त है। इस प्रगति ने वैयक्तिक एवं सामाजिक सुख-शान्ति को बढ़ाने की अपेक्षा घटाया है बाह्य जीवन के साथ-साथ आन्तरिक जीवन का विकास होने का ही यह परिणाम है। जीवन के दो पक्ष हैं एक आत्मिक और दूसरा भौतिक। दोनों में से किसी को एक पर अधिक और किसी पर कम ध्यान देने से सन्तुलन डगमगा जाता है। दुर्योग से इन दिनों सन्तुलन बिगड़ा है यह गम्भीरता से जानने और मानने की आवश्यकता है कि अकेले भौतिक पदार्थों की प्रचुरता से ही सुख-शान्ति नहीं मिलती उसके लिए उत्कृष्ट विचारणायें और आदर्शवादी आस्थायें भी उतनी ही आवश्यक हैं।

दूसरे पक्ष को गौण कर देने से इन दिनों जो भौतिक और बौद्धिक उत्कर्ष हुआ है वह कमजोर नींव पर विशाल भवन खड़ा करने जैसा है। जो अन्धड़ और तूफान में कभी भी ध्वस्त हो सकता है और जीवन में आँधी तूफान तो आते ही रहते हैं। भौतिक सुविधाओं और बौद्धिक क्षमताओं का शरीर सुख के लिए अनियमित उपयोग किया जाता रहे तो कुछ ही समय में शरीर टूट जायगा। इसी प्रकार शिक्षा एवं विचारणा का लाभ यदि अपने अहं का पोषण करने में ही लगाया जाता रहे तो मनःस्तर भी चकनाचूर हो जायगा।

मनुष्य जन्मतः तो एक कोरे कागज की तरह होता है। जिस पर परिस्थितियों और वातावरण के संस्कार लिख जाते हैं। बच्चा अपने माता-पिता का प्रभाव लेता है और किशोर आयु का होने पर अपने परिवेश से संस्कार ग्रहण करता है। तो यह मानना चाहिए कि उस पर जिस स्तर के संस्कार अपना प्रभाव छोड़ेंगे, उसी स्तर की दिशायें वह ग्रहण करेगा और उनकी ओर उन्मुख होगा। ये संस्कार बौद्धिक उपकरणों से भी अपनी छाप छोड़ते हैं। यथा आज का युवा वर्ग सिनेमा, नाटक, अभिनय, साहित्य, संगीत व रेडियो से जितने संस्कार ले रहा है सम्भवतया उतने ही क्रिया-कलाप उसी दिशा में अपना रहा है। वर्तमान उपकरणों, मनोरंजन के साधनों से विचार निर्माण कर आज के युवक में कामुकता तथा अश्लीलता जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। तो उसमें दिशाहीनता का भाव भी पैदा कर रही है। कदाचित इन उपकरणों का उपयोग सदाचार, कर्त्तव्य पालन, आदर्शवाद और स्नेह, सेवा जैसी धर्मभावनाओं के प्रसारण में लगाया जाय तो जन भावना में कुछ ही वर्षों के भीतर देवत्व परिलक्षित होगा।

उपरोक्त विचार निर्माण के साधनों का सूत्रधार प्रबुद्ध वर्ग को ही कहा जाना चाहिए। किसी भी समाज का प्राण प्रबुद्ध वर्ग को ही कहा जाना चाहिए और खेद है कि आज का प्रबुद्ध वर्ग अपनी शक्ति और क्षमता का उपयोग आदर्शवादिता के उन्नयन की अपेक्षा व्यावसायिक मनोवृत्ति से ही अधिक कर रहा है। ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है जो अपना उत्तरदायित्व समझते हैं तथा उसे पूरा करने के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं। अधिकांशतः तो अपनी क्षमता का प्रयोग दोनों हाथ से धन बटोरने और अधिक से अधिक नाम व यश कमाने में ही करते हैं।

जनसामान्य अपने आप अपनी दिशाओं का निर्धारण इसलिए नहीं करता कि एक तो उसमें इतनी बौद्धिक क्षमता नहीं रहती और दूसरे उसमें जो कुछ सामर्थ्य भी होती है, वह रोटी कमाने और बच्चों के होने से कन्धे पर आने वाली जिम्मेदारियों को वहन करने में ही खर्च हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है। वैसे भी महँगाई कम नहीं है, फिर लोगों की आवश्यकताएँ भी नित निरन्तर बढ़ती रहती हैं। उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ही उस वर्ग के स्वल्प साधन तथा छोटी सी योग्यता खर्च हो जाती है। तो आदर्शवादी लक्ष्य बनाने और देश तथा समाज की बात सोचने की उन्हें कहाँ सूझे। बुद्धि और मन की सारी परिधि जीवन निर्वाह, पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा अधिक से अधिक रिश्ते-नाते निभाने तक ही सीमित रह जाती है।

पर यह वर्ग अनुकरण की दृष्टि से बढ़-चढ़ कर है। अपनों से ऊँचे लोगों को जैसा सोचते व करते पाता है तत्काल उसकी नकल करने की होड़ लगा बैठता है। यह वर्ग या तो अपने से बुद्धिमान व्यक्तियों की नकल करता है अथवा अपने से धनवान की। धनवानों की नकल कर पाना और उनके समान जीवन व्यतीत करना जरा कठिन ही है इसलिए बुद्धिमान उन्हें शीघ्र प्रभावित कर सकते हैं। एक तो प्रबुद्ध वर्ग आर्थिक दृष्टि से भी उनके निकटतम ऊँची स्थिति में रहता है। दूसरे लोग अपनी समस्याओं का हल ढूँढ़ने और परामर्श लेने के लिए भी उन्हीं के पास जाते हैं। गाँवों में या मुहल्ले में जहाँ लगभग सभी लोग अशिक्षित रहते हैं थोड़े पढ़े-लिखे प्रबुद्ध व्यक्ति उनका नेतृत्व करते हैं और गाँव वाले उनके परामर्श से चलते हैं।

कहना चाहिए प्रबुद्ध वर्ग समाज का कर्णधार है। प्रबुद्ध व्यक्ति की निखरी हुई पहचान यह है कि यह अपनी आकांक्षाओं और स्वार्थ की सीमा से आगे बढ़ कर देश, धर्म, समाज तथा संस्कृति के सम्बन्ध में भी कुछ सोचने और करने की सामर्थ्य रखता है। यह बात और है कि वह प्रभावशाली ढंग से सोचता है या नहीं। क्योंकि कई लोग मनोरंजन की दृष्टि से या दो चार मित्र इकट्ठे हुए हों तो कुछ बातचीत करनी चाहिए इसलिए देश, धर्म और समाज की बातें करने लगते हैं।

प्रबुद्ध व्यक्तियों को यदि अपने महत्त्व का भान हो जाय और वे यह मानने लगें कि हम देश और समाज के कर्णधार हैं तो सार्थक चिन्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगेगी। देखा जा सकता है कि संसार में जितने भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, जितनी भी राज्य क्रान्तियाँ, सामाजिक क्रान्तियाँ, धार्मिक और आर्थिक क्रान्तियाँ हुई हैं उनमें थोड़े से प्रबुद्ध लोगों का व्यक्तित्व ही काम करता रहा है। वैज्ञानिक अन्वेषणों का सारा श्रेय इस वर्ग को है। इतिहास यही सिद्ध करता है। थोड़े से प्रबुद्ध व्यक्तियों ने समय की माँग को समझा तो स्वार्थ और विलास को ठोकर मारकर कुछ हजार भिक्षु भी उठे और देखते ही देखते बौद्ध धर्म का प्रसार सारे एशिया में हो गया। दो हजार वर्ष में विश्व की एक तिहाई जनता को ईसाई धर्म में दीक्षित करने का श्रेय ईसा के कुछ प्रबुद्ध शिष्यों को ही है। थोड़े से प्रबुद्ध व्यक्तियों ने भारतीय स्वतन्त्रता के बीज बोये और देखते ही देखते वह बीज अंकुरित होकर बड़ा हो गया तथा अपने फल भी देने लगा। महात्मा गाँधी ने अपने सौ साथियों को लेकर देश भर में ऐसी प्रचण्ड हलचल मचा दी कि समर्थ अँग्रेजों को यहाँ से भागना ही पड़ा। मार्क्स जब मरा था तब उसे दफनाने के लिए पाँच दस व्यक्ति ही गये थे। पर जब प्रबुद्ध व्यक्तियों ने उसके विचारों का महत्त्व समझा तो विश्व का बहुत बड़ा भू-भाग साम्यवादी हो गया तथा इतर देशों के लोगों में भी उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ।

वस्तुतः कोई भी देश कला, कौशल या शिक्षा साधन के बल पर समृद्ध नहीं बनता है तथा नहीं ऊँचा उठता है। वह समृद्ध होता है उस देश के प्रबुद्ध व्यक्तियों की सामर्थ्य और दिशा पर। भारत में हमेशा से करोड़ों लोग रहे हैं। वर्तमान में उसके निर्माण में भी सभी लोगों का किसी न किसी रूप में हाथ रहा है। पर इतिहास का निर्माण प्राचीनकाल में वशिष्ठ, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, जमदग्नि, व्यास, नारद, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, कर्ण, मोरध्वज, युधिष्ठिर जैसे महापुरुषों ने, और आधुनिक काल में विवेकानन्द रामकृष्ण, गाँधी, दयानन्द, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र, गोखले, तिलक, लाजपतराय, मालवीय, दास, सुभाष, नेहरू, पटेल, आजाद, बिस्मल, भगतसिंह, अरविंद जैसे तपःपूत महामानवों ने ही किया।

ये सब प्रबुद्ध वर्ग से ही आये थे। प्रबुद्ध व्यक्तियों की आज कोई कमी पड़ रही हो ऐसी बात नहीं है। प्रबुद्ध व्यक्ति आज भी हैं पर निखरे और सुलझे दृष्टिकोण का अभाव है। आवश्यक यह है कि वे अपने हृदय में समाज के निर्माण की कसक उत्पन्न करें और अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित कर समाज की विभिन्न गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करें।

प्रत्येक व्यक्ति में अपार शक्ति भरी पड़ी है। सामान्य व्यक्तियों में तो वह निष्क्रिय रहती है पर प्रबुद्धजन उसको जागृत कर लेते हैं। लेकिन इस समय वे भी उसका खर्च इन्द्रिय तृप्ति और संकीर्ण स्वार्थपरता में कर रहे हैं। यह सोचना चाहिए कि हम स्थूल सम्पदायें अपने पास पर्याप्त मात्रा में एकत्रित भी कर लें तो उनका परिणाम आने वाली पीढ़ियों को निकम्मा बना जाने के अतिरिक्त और क्या होगा अतः यह अनुभव किया जाना चाहिए कि अपना दायित्व पूरा करने के लिए समय और समाज उन्हें पुकार रहा है। वे अपनी क्षमताओं और शक्तियों के बल पर जनमानस को सही दिशा दें तथा अपने माध्यम से उदाहरण प्रस्तुत कर जनसामान्य को आदर्शों की दिशा में अग्रसर करें। तभी चतुर्दिक सुख-शांति की शीतल बयार बह सकेगी।

समाज सुधार के लिए प्रबुद्ध वर्ग आगे बढ़े

आज समाज ही नहीं संसार की दशा किसी से छिपी नहीं है। क्या अमीर, क्या गरीब, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित, इस यथार्थ के विषय में सभी एक मत हैं कि आज का समाज बुरी तरह विकृत हो चुका है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संसार ऐसे विषम बिन्दु पर पहुँच गया है कि यदि उसकी इस गति को यहीं पर रोक कर ठीक दिशा में न बढ़ाया गया तो युग-युग की संचित मानवीय सभ्यता का विनाश अवश्यम्भावी है।

वर्तमान दशा और परिवर्तन किसी आँख-कान से परे नहीं है। आज के असहनीय कष्ट सभी देखते, सुनते और अनुभव कर रहे हैं किन्तु इस परिवर्तन की माँग को पूरा करने के लिए कौन आगे बढ़े, यह प्रश्न सामने खड़ा होकर स्तब्धता की स्थिति उपस्थित कर देता है। निःसन्देह इस संक्रामक काल में परिवर्तन पूर्ण करने के लिए, सम्पूर्ण समाज का कर्त्तव्य है कि यह योगदान करे। किन्तु यह सर्वथा सम्भव नहीं। इस परिवर्तन को प्रस्तुत करने के लिए समाज के एक विशिष्ट वर्ग को ही आगे बढ़ना होगा।

समाज में तीन प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। एक तो सर्व-सामान्य जिन्हें रोटी कमाने और पेट भर लेने के अतिरिक्त दीन-दुनिया की खबर नहीं रहती। संसार में रोटी ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। समाज किधर जा रहा है, उसमें किन-किन सुधारों की आवश्यकता है, इस चिन्ता से उनका कोई सरोकार नहीं होता। आराम से भोजन, वस्त्र मिल गया तो प्रसन्न, उसमें घाटा आ गया तो दुखी हो गये। बस यही उनका जीवन और यही उनका ध्येय होता है। ऐसे आदमियों को जड़ एवं अभावुक कहा जा सकता है। अन्य पशु-पक्षियों और उनके जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। संसार में ऐसे लोगों की ही बहुतायत हुआ करती है। इनमें भोजन एवं प्रजनन क्रिया की प्राकृतिक प्रेरणा के अतिरिक्त कोई विशेष चेतना नहीं होती। बहुत अधिक हुआ तो अपने बाल-बच्चों की खोज-खबर की चिन्ता कर ली। समाज क्या है, राष्ट्र क्या होता है, सभ्यता एवं संस्कृति किसे कहते हैं, संसार में इन सबका क्या मूल्य-महत्त्व है, ऐसे उच्चाशयता पूर्ण विचारों से वे न तो जरा भी परिचित होते और न उसकी चिन्ता कर पाते हैं।

इतना ही नहीं समाज में फैलने वाली विकृतियाँ इसी जड़ वर्ग में जन्म लेती और पनपती हैं। यही वह जन साधारण है जो अपनी जड़ता के कारण रोग, शोक, गरीबी, बेकारी, शोषण एवं सन्तापों से ग्रस्त रहता है और जिसके दुःख से अन्य चेतनावान व्यक्तियों को दुखी एवं चिन्तित होना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त समाज में एक दूसरा वर्ग भी होता है जो उपर्युक्त वर्ग की तरह पाशविक तो नहीं होता, अपेक्षाकृत अधिक सजग एवं सक्रिय होता है। किन्तु होता है यह वर्ग बड़ा ही भयंकर। इस वर्ग में वे लोग होते हैं जिनकी विद्या, बल और बुद्धि तथा साधन-सुविधायें एकमात्र अपने निकृष्ट एवं अवांछनीय स्वार्थों में लगी रहती हैं। इस वर्ग का उद्देश्य यही रहता है कि संसार की सारी सम्पत्तियाँ, भोग तथा सुविधायें अधिक से अधिक उसी के पास रहें। वह और उनका परिवार सबसे अधिक सुखी एवं सम्पन्न रहे। ऐसे स्वार्थी लोग अपनी अनुचित आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उचित-अनुचित सभी प्रकार के काम किया करते हैं। अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये किसी का बड़े से बड़ा अहित कर देने में जरा भी संकोच नहीं करते। अपनी मस्ती, मौज और सुख, स्वार्थ के लिए दूसरों का हिस्सा एवं अधिकार अपहरण कर लेना वे अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते हैं। ऐसे ही स्वार्थी पशु समाज में चोरी, डकैती तथा अन्य प्रकार के भ्रष्टाचारों को करते और बढ़ाते हैं। इन्हीं के कारण समाज के अन्य लोग दुःखी एवं संत्रस्त रहा करते हैं। शान्ति एवं सुरक्षा के वातावरण को सबसे अधिक क्षति इसी वर्ग से पहुँचती है। भोले-भाले, दीन-दुःखी और निर्बलों को सताना इनके लिए एक साधारण बात होती है। समाज से सब कुछ लेकर उसके बदले में उसे शोक, सन्ताप एवं कष्ट-क्लेश देना ही धर्म बन जाता है। ऐसे लोग बड़े ही क्रूर-कपटी, अकरुण एवं कृपण होते हैं। अपने और अपने प्रिय-जनों के अतिरिक्त किसी का हित चाहना इनकी विचार परिधि से परे होता है। ऐसे लोगों को दुराचारी अथवा दुष्ट कहा जा सकता है। ऐसे लोगों की संख्या पहले वर्ग से कम अवश्य होती है किन्तु समाज को सन्त्रस्त करने के लिए काफी होती है।

इस प्रकार जड़ एवं दुष्ट जन-समूह की ही समाज में बहुतायत होती है। यह दोनों प्रकार के मनुष्य सामाजिकता पूर्ण नागरिक भावना से शून्य होते हैं। इनसे किसी सुधार, उपकार अथवा आदर्श कार्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती। जो स्वयं बुरा है, व्यर्थ है, वह किसी को क्या सुधार सकता है और क्या उपयोगी हो सकता है ? यथार्थ बात यह है कि यही दोनों वर्ग समाज में विकृतियों के कारण होते हैं और समाज सुधार के लिए इन्हें ही सुधारने, ठीक रास्ते पर लाने के लिये प्रकाश एवं प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

इन दोनों के अतिरिक्त समाज में एक वर्ग और होता है, जिसे प्रबुद्ध वर्ग कह सकते हैं। यद्यपि यह वर्ग उन दो वर्गों से संख्या में बहुत कम होता है किन्तु यदि काम में लायें, तो इसकी शक्ति उनसे कहीं अधिक होती है। इस वर्ग की विचारधारा संकीर्ण एवं पाशविक वृत्तियों से उठी हुई होती है। देश, धर्म, समाज एवं राष्ट्र के प्रति इस वर्ग की भावनायें अधिक तीव्र एवं चिन्ता पूर्ण होती हैं। जिन-जिन देशों में सुधारात्मक क्रान्तियाँ हुई हैं उनमें किसी ऐसे ही वर्ग की चेतना काम करती रही है।

प्रबुद्ध वर्ग को किसी भी समाज की जीवनी शक्ति कहा गया है। जिस समाज का यह वर्ग प्रमाद में पड़कर चिन्ता एवं प्रयत्न करना छोड़ देता है, वह समाज अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाता। इसके विपरीत जिस देश अथवा समाज का यह वर्ग सतेज, सक्रिय एवं सजग रहता है उस समाज में पहले तो विकृतियाँ आती ही नहीं और यदि आ भी जाती हैं तो यह वर्ग उन्हें झाड़-बुहार कर साफ कर देता है। जनता को आदर्श का प्रकाश देना और उसे ठीक राह पर लाने वाला यह प्रबुद्ध वर्ग ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार से भारतीय समाज में सत्ता से प्रबुद्ध वर्ग रहा है आज भी है। किन्तु फिर भी सामाजिक सुधार का कार्य नहीं हो रहा है। इसका कारण यही है कि आज भारतीय समाज का प्रबुद्ध वर्ग स्वार्थी तो नहीं हुआ किन्तु प्रमादी अवश्य हो गया है। वह समाज की चिन्ता तो करता है किन्तु सक्रिय कार्यक्रमों को चलाने के लिए आगे नहीं बढ़ रहा है। जहाँ-तहाँ लोग समाज की दशा और उसके सुधार की आवश्यकता पर बात करते तो देखे जाते हैं किन्तु एक होकर सुधार कार्य में रुचिवान होते नहीं दीखते।

समाज सुधार के लिए प्रबुद्ध वर्ग में जो उदासीनता दिखाई देती है उसके दो ही कारण समझ में आते हैं। एक तो आजीविका और दूसरा समाज की अति पतित अवस्था। आजीविका के विषय में आज के समय को बहुत कठिन समय कहा जा सकता है। ईमानदार आदमी को दिन भर काम करने के बाद परिवार के गुजारे के योग्य मुश्किल से मिल पाता है। वह सोचता है कि यदि वह अपना समय समाज सुधार के कार्यक्रमों में देने लगा तो उसें आजीविका की पूर्ति करने में कठिनाई पड़ने लगेगी। साथ ही समाज का सर्वांगीण पतन देख कर कार्य क्षेत्र में उतरते उसका साहस नहीं होता। उसे शंका रहती है कि यदि आज के बुरे युग में वह अच्छाई का संदेश लेकर जाता है तो कोई भी उसकी न सुनेगा और असफल होकर हताश अथवा उपहासस्पद होना होगा।

किन्तु लोगों की यह दोनों धारणाएँ निराधार हैं। जहाँ तक भोजन का प्रश्न है, अधिकतर लोग आजीविका के लिए आठ-दस घण्टे काम किया करते हैं। दस घण्टे काम करने के लिए रखे जायें और दस घण्टे सोने आदि के लिए मान लिये जायें तब भी किसी के भी पास चार घण्टे का समय ऐसा बच सकता है, जिसमें समाज सेवा का बहुत सा काम लिया जा सकता है। समाज सेवा के लिए समय न होना बहाना मात्र है वस्तुतः इसमें कोई तथ्य नहीं है।

जहाँ तक समाज की भयावह स्थिति का प्रश्न है, उसके लिए साहस करना ही शोभनीय है। बाढ़, आग आदि की आपत्ति आ जाने पर यदि उसकी भयंकरता से डर कर हाथ-पाँव छोड़ कर एक तरफ हो जाया जाय तो इसका परिणाम सर्वनाश के सिवाय और क्या हो सकता है ? उस महाभयंकर आपत्ति काल में लोग हिम्मत बाँधते और प्रयत्न करते ही हैं। उन्हें इसका फल आपत्ति निवारण के रूप में मिलता ही है। किसी सत्कार्य को करने के लिए उसके फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ईमानदारी और लगन से अपना कर्त्तव्य करे और फल भगवान के ऊपर छोड़ दे यही गीता के कर्म योग का सन्देश है। इसे हर श्रेष्ठ व्यक्ति को हृदयगंम रखना चाहिए।

आज तो केवल सामाजिक विकृतियों से लड़ना है—कुछ समय पूर्व जब महात्मा गाँधी देशोद्धार के क्षेत्र में उतरे थे तो सामाजिक विकृतियाँ तो इस प्रकार थी हीं साथ ही समाज के पैरों में अँग्रेजी दासता की श्रृंखला भी पड़ी हुई थी। महात्मा गाँधी ने तो आज से भी अधिक भयावह परिस्थिति में बिना किसी साधन के स्वाधीनता संग्राम छेड़ा था और अपने साहस, लगन एवं अध्यवसाय के बल पर सफल होकर संसार के सामने एक उदाहरण उपस्थित कर दिया। विकृतियाँ देखने में ही भयावह मालुम होती हैं वस्तुतः उनमें कोई शक्ति नहीं होती। सत्प्रवृत्तियों का प्रकाश होते ही उनका अन्धकार तो आप से आप दूर होने लगता है। प्रबुद्ध वर्ग को हर प्रकार की शंकायें एवं भयों को त्यागकर समाज सुधार के कार्य में लग ही जाना चाहिए।

वह हर भाग्यवान व्यक्ति अपने को प्रबुद्ध वर्ग का नैसर्गिक सदस्य समझे, जिसकी अन्तरात्मा में परमात्मा ने देश धर्म के प्रति जागरूकता और मनः मस्तिष्क में समाज की दयनीय दशा की पीड़ा पैदा की है। जो बुद्धिमान अपने अन्दर आदर्श-वादिता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, सामाजिकता एवं मानवता का कोई अंश समझता है और देश तथा समाज की वर्तमान दशा से क्षुब्ध होता है, जिसके हृदय में कुछ न कुछ उपाय करने की जिज्ञासा होती है वह हर व्यक्ति अपने को प्रबुद्ध वर्ग का समझे और तदनुसार अपने कर्त्तव्य में यह समझ कर लग जाये कि यदि परमात्मा हम से इस पावन कर्त्तव्य की अपेक्षा न करता तो हमारी आत्मा में इस प्रकार की मंगलमयी जागरूकता न भरता।

आज समय की माँग है कि समाज के प्रबुद्ध व्यक्ति एक या अनेक होकर समाज सुधार के किसी काम को लेकर आगे बढ़ने की प्रेरणा दें। संसार की सारी क्रान्तियाँ तथा परिवर्तन प्रबुद्ध वर्ग ही कर सकता है और उसे करना भी चाहिए।

समाज के नवनिर्माण में मनीषी समुदाय की भूमिका

मनुष्य के भीतर एक ऐसा मर्मस्थल है जिसे छुआ, जगाया और उभारा जा सके तो वह अभीष्ट प्रेरणा के अनुरूप सृजन-ध्वंस के दोनों ही प्रयोजन पूरे कर सकता है। अन्तःकरण से उठने वाली प्रेरणाओं में अपार शक्ति होती है। भाव प्रवाह जिधर भी बह चले चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और देखते ही देखते आश्चर्यजनक परिस्थितियाँ पैदा कर सकता है। यही वह मर्मस्थल है जिसे छूकर और निश्चित दिशा में मोड़कर चाहे जो प्रयोजन पूरा किया जा सकता है। सृजन और ध्वंस के बीज संवेदनात्मक उभारों में सन्निहित होते हैं जिन्हें जिधर चाहे मोड़ना संभव है।

यह सच है कि मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा उसकी वैचारिक शक्ति है किन्तु इसके साथ यह तथ्य भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है कि भले-बुरे विचारों का उद्भव संवेदनाओं के स्वरूप स्तर और प्रेरणाओं पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवलम्बित होता है। विचार भी उनकी प्रेरणा के अनुरूप ही गतिशील होते और अपना प्रभाव दिखाते हैं। क्रान्तिकारी परिवर्तनों, ऐतिहासिक घटनाक्रमों में भावनात्मक उभार ही उफनता-उछलता बहकर गुजरता है जो कभी असंभव जान पड़ता था।

कभी इस मर्मस्थल को झकझोरने, जगाने और श्रेष्ठ दिशा में नियोजित करने की भूमिका सन्त, ऋषि सम्पन्न किया करते थे। कालान्तर में ऐसे सद्भावों एवं श्रेष्ठ व्यक्तित्व के सम्पन्न महापुरुषों, ऋषियों का अभाव पड़ गया जो समाज की इस महाशक्ति को अपनी भाव सम्पदा द्वारा जगाकर सत्प्रयोजनों में नियोजित रखते थे। भौतिक प्रगति के इस युग में प्रचार तन्त्रों का असामान्य गति से प्रसार हुआ। बुद्धि का विकास हुआ। वैचारिक प्रेरणा के केन्द्र बिन्दु बने प्रचार तन्त्र, पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो-टेलीविजन, नेता, वक्ता, सामाजिक कार्यकर्ता आदि।

समाज को सामान्यतया दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक वर्ग ऐसा होता है जिसे विचारशील, विभूतिवान कहा जा सकता है, जिनमें सोचने-समझने की, औचित्य-अनौचित्य के मूल्यांकन की क्षमता होती है। दूसरा वर्ग वह है जो मौलिक विचारणा की दृष्टि से असमर्थ होता है। इनकी समाज में बहुतायत होती है। जिनके स्वयं का चिन्तन बहिर्मुखी तत्त्वों पर अवलम्बित होता है। अनुमानतः ९० प्रतिशत संख्या ऐसे व्यक्तियों की होती है। पहला वर्ग ही इनके प्रेरणा का स्रोत होता है जो वैचारिक क्षेत्र का नेतृत्त्व करता है। साहित्यकार, कवि, कलाकार, पत्रकार, गायक, वादक, नेता, सामाजिक कार्यकर्ता उस प्रथम वर्ग के अन्तर्गत आते हैं जिनके हाथों में प्रचार तन्त्र की कमान है और उन पर उनका प्रभुत्व है। जन सामान्य के मर्मस्थल को भावनात्मक केन्द्र बिन्दु को वे विभूतिवान अपनी प्रतिभा के विभिन्न माध्यमों द्वारा छूते और मनचाही दिशा में मोड़ने में सफल होते हैं। अतएव इन विभूतिवानों और इनसे सम्बन्धित प्रचार साधनों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। ये जैसी भी प्रेरणाएँ देंगे वैसी ही समूह की विचारणा होगी और तदनुरूप उनकी गतिविधियाँ होंगी।

आज की परिस्थितियों का अध्ययन, पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि अधिकांश लोगों की गतिविधियाँ विनाशकारी बनी हुई हैं। चिन्तन क्षमता सृजन की तुलना में ध्वंस की ओर अधिक लगी है। हर व्यक्ति के मन में असन्तोष और विद्रोह भरा हुआ है, जो समय-समय पर आपसी मतभेदों और मन-मुटावों से उत्पन्न होने वाले संघर्षों तथा हिंसात्मक गतिविधियों के रूप में प्रस्फुटित होता है। अपराध, हिंसा, बलात्कार की घटनाओं में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति में अन्यान्य कारणों का भी योगदान हो सकता है किन्तु इस सत्य को भी नहीं नकारा जा सकता है कि प्रचार साधनों और विभूतिवान कहे जाने वाले व्यक्तियों द्वारा संप्रेषित निषेधात्मक चिन्तन का सबसे बड़ा सहयोग है। इन दिनों पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो-टेलीविजन जैसे सशक्त प्रचार तंत्र समाज के उस काले पक्ष को उभारने, प्रकाशित करने में अधिक लगे हैं जो मनुष्य की भावनाओं को उभार कर निकृष्ट दिशा में नियोजित करते हैं। अधिकांशतः पत्र-पत्रिकाएँ इसी बलबूते पर चल रही हैं कि उनमें मनुष्य की हीन मनोवृत्तियों को पोषण देने एवं बढ़ाने वाले तत्त्व अधिक होते हैं। सस्पेन्स, अपराध, चोरी, डकैती, हत्या की घटनाओं से भरे पत्रों एवं पत्रिकाओं की बिक्री सर्वाधिक है। दैनिक-पत्रों में भी ऐसे समाचारों की बहुतायत होती है जो समाज में भय, ईर्ष्या, आक्रोश, अविश्वास, असहयोग और असहिष्णुता की भावना अधिक पैदा करते हैं। परस्पर सहयोग, सद्भाव, सहकार और आत्मीयता की भावना को उभारने वाले समाचारों अथवा रचनाओं का अभाव होता है जिनसे समाज में उपरोक्त भावों का उद्भव होता है और सुख-शांति की परिस्थितियाँ विनिर्मित होती हैं।

कलाकार, कवि, साहित्यकार, वक्ता, नेता भी उन्हीं पक्षों को अधिक उभारने का प्रयास करते हैं, जिनसे निषेधात्मक चिन्तन और निकृष्ट गतिविधियों को पोषण मिलता है। ऐसे उँगली पर गिने जाने वाले विरले ही हैं जो नवनिर्माण की बात सोचते हैं और अपनी प्रतिभा को अभीष्ट सत्प्रयोजनों नियोजित करने और समाज को इस दिशा में मोड़ने के लिए प्रयत्नशील हैं। अधिकांशतः तो उस काले पक्ष के नग्न, प्रकाशन, प्रतिपादन और उभारने में पूरे मनोयोग से तत्पर हैं। परिणाम सामने है। मनुष्य-मनुष्य के बीच आपसी स्नेह, सद्भाव समाप्त होता जा रहा है और उसी अनुपात में घृणा, द्वेष, ईर्ष्या की भावना बढ़ती जा रही है।

विचार करने पर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि क्या समाज से अच्छाइयाँ सर्वथा विलुप्त हो गई हैं। भले व्यक्ति नहीं रहे। सर्वत्र बुराइयों का ही साम्राज्य है। सेवा, सहयोग, सहकार, करुणा, दया से ओत-प्रोत अन्तःकरण नहीं रहे। क्या ऐसी घटनाएँ नहीं घटित होती हैं जिनसे मानवी तत्त्वों को, सेवा, सहकार, उदारता जैसी सत्प्रवृत्तियों का पोषण मिलता हो ? निस्सन्देह अभी वह स्थिति नहीं आई है कि बुराइयों के बलबूते ही संसार का काम चल रहा हो। अच्छाइयाँ न रहें तो आज का दिखाई पड़ने वाला सुन्दर संसार कुछ ही दिनों में श्मशान में परिणत हो जाएगा। फिर कारण क्या है कि विचारशील और विभूतिवान निषेधात्मक पक्षों को ही उभारने में संलग्न हैं जिनसे जनसमूह का भावनात्मक प्रवाह निम्नगामी बनता हो ? इसका एक ही उत्तर समझ में आता है वह है उनकी व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता, जो उन्हें समाज की सामूहिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ को बाध्य करती है। अधिकांशतः व्यक्ति इस सत्य को समझने में असमर्थ होते हैं और उस प्रवाह में बहने के लिए बाध्य होते हैं जो ध्वंस की ओर ले जाता है अथवा सामाजिक विग्रह और संघर्षों को जन्म देता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

समाज के निम्नगामी प्रवाह को श्रेष्ठ दिशा में मोड़ने के लिए विभूतिवानों को आगे आना होगा। उनके ऊपर नवनिर्माण का नैतिक दायित्व है। इनकी क्षमताएँ जन समूह के संवेदनशील मर्मस्थल को उभारें किन्तु सत्य प्रयोजनों में नियोजित करने के लिए, नवनिर्माण की प्रेरणा भरने के लिए न कि ध्वंस की ओर मोड़ने में। नेतृत्व करने वाला यह वर्ग अपना गुरुतर दायित्व समझकर नवनिर्माण में जुट पड़े तो आज के निम्नगामी जन प्रवाह को उलटा श्रेष्ठ दिशा में मोड़ा जा सकता है। समाज के अभिनव नवनिर्माण का लक्ष्य संवेदनाओं को छूने-उभारने और सत्प्रयोजनों में नियुक्त करने से ही संभव हो सकेगा।

राष्ट्र निर्माण जागरूक बुद्धिजीवियों से ही सम्भव

जनसाधारण उन्हीं बातों को मानते हैं और अपनाते हैं जो उनकी समझ में आ जाती हैं। पर प्रत्येक बात को समझने और उसकी तह में जाकर वस्तुस्थिति का विश्लेषण करने की सामर्थ्य हर व्यक्ति में नहीं होती। इसके बावजूद भी मापदण्ड बदलते रहते हैं, व्यवस्थाओं का ढाँचा बदलता रहता है और समय-समय पर ऐसी उथल-पुथल मचती रहती है, जिसे क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है। राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की धारा मोड़ने वाली न जाने कितनी क्रान्तियाँ हुई हैं और होती रहेंगी। उन क्रान्तियों का केन्द्रीय तत्त्व यह रहा है कि लोगों ने प्रचलित मानदण्डों को व्यर्थ समझ लिया और उन्हें नकार दिया। एक अर्थ में लोगों ने नये जीवन मूल्यों को अपनाया।

जब सामान्य आदमी वस्तुस्थिति का विश्लेषण करने तथा प्रचलित मान्यताओं और परम्पराओं की उपयोगिता, अनुपयोगिता को समझने में समर्थ नहीं है तो प्रश्न उठता है कि अब तक इतने परिवर्तन इतनी क्रान्तियाँ किस प्रकार सम्भव हो सकीं। इसका उत्तर यह है कि समाज के मस्तिष्क कहे जाने वाले बुद्धिजीवी जनसमाज को जिस प्रकार का मार्गदर्शन देते हैं, लोकजीवन तब वैसी ही धारा अपनाता है। दुनिया के अन्य देशों का इतिहास लें, आर्य युग से लेकर ब्रिटिश काल तक और अब भी समाज का मार्गदर्शन चन्द बुद्धिजीवियों ने किया है। प्राचीनकाल में तो बुद्धिजीवियों का एक वर्ग विशेष ही बना हुआ था। जिसे समाज में सर्वोपरि महत्त्व का स्थान मिला हुआ था। समाज को एक शरीर की उपमा देते हुए उसका सिर ब्राह्मण को बताया गया था, जो सोचता-विचारता है तथा शरीर के अंग-प्रत्यंगों की गतिविधियों का संचालन और नियन्त्रण करता है। ब्राह्मण तब जन्म से पैदा होने वाले वंश परम्परा के व्यक्ति का नाम नहीं था, वह पदवी तो हर उस व्यक्ति को मिल जाती थी, जो समाज के मार्गदर्शन करने की बौद्धिक क्षमता से सम्पन्न होता था।

समाज का वैचारिक दिशा निर्देश करने वाले व्यक्ति को चाहे ब्राह्मण कह लें, चाहे विचारक, चाहे बुद्धिजीवी कह लें चाहे प्रबुद्ध व्यक्ति, समाज को ऊँचा उठाने का श्रेय उन्हीं को रहता है। संसार में आज जितने भी उन्नत और विकासशील देश हैं वे सब एकाएक ही उन्नत या समृद्ध नहीं हो गए वरन् उन्हें ऊँचा उठाने के लिए कितने ही प्रबुद्ध व्यक्तियों ने काम किया है तथा अपना असाधारण योगदान दिया है।

प्राचीनकाल में ब्राह्मण जीवन की निश्चित निर्धारित मर्यादायें थीं। समाज का मस्तिष्क कहे जाने वाले इस वर्ग के व्यक्ति अपने घर में अगले दिन का धान्य नहीं रखते थे। अपरिग्रह व्रत का कठोरतापूर्वक पालन करने वाले ब्राह्मणों को क्या किन्हीं अभावों का सामना करना पड़ा ? नहीं। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने उपार्जन में ब्राह्मण का एक भाग अलग रखता था और उसके निर्वाह के लिए सौंपता था। पर ब्राह्मणों के मस्तिष्क में जब स्वार्थ लिप्सा ने प्रवेश किया तो वे लोगों को दिग्भ्रान्त करने लगे। दान-पुण्य की महिमा बताकर जनता का अनुचित शोषण किया गया, नैतिक नियमों को ढीलाकर दान से ही सबका सब प्रकार का कल्याण होने की बातें समझाई जाने लगीं। परिणाम यह हुआ कि जनसाधारण नैतिक आदर्शों की उपेक्षा करने लगा। निष्ठा और समाज देवता के प्रति भक्ति-भाव में इससे जो कमजोरी आयी उसका फल हजार वर्षों की गुलामी के रूप में भुगतना पड़ा। तब क्या ब्राह्मण सुरक्षित रह सके ? नहीं। आक्रान्ताओं ने सर्वप्रथम उन्हें कमजोर करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

वे जन-जागरण के लिए प्रयत्नशील हुए तथा जनता के रक्त में उबाल लाने के लिए संघर्ष करते रहे तो उसके सुखद परिणाम भी सामने आये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही वह आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि लक्ष्य प्राप्ति का यह तो एक पड़ाव भर है, अभी बहुत कुछ करना है।

वस्तुतः यह पहलू खेदजनक ही है कि प्रबुद्ध व्यक्ति पुनः तन्द्राग्रस्त हो गये और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्वार्थलिप्सा की गिरफ्त में जकड़े जाने लगे। यह कोई शुभ लक्षण नहीं है और जल्दी ही इस तन्द्रा को तोड़ा नहीं गया तो और भी भयावह परिणाम सामने आ सकते हैं। कहा जा चुका है कि प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक देश में होने वाले परिवर्तन में बुद्धिजीवियों की भूमिका प्रमुख रहती है। आदि काल से लेकर अब तक समाज व्यवस्था, रीति-रिवाज और प्रथा-परम्पराओं का निर्धारण तथा संचालन प्रबुद्ध व्यक्तियों के ही हाथ में रहा है। होने वाले परिवर्तनों के परिणाम की सम्भावना इस अध्ययन से आँकी जा सकती है कि प्रबुद्ध व्यक्तियों की मनोदशा कैसी रही ? उपलब्धियों का स्वरूप क्या रहा और बुद्धिजीवियों का झुकाव किस ओर रहा ?

यह निर्विवाद सत्य है कि विवेचन और विश्लेषण के रूप में ही मनुष्य अपनी शक्ति का सार्थक, अनर्थक और निरर्थक उपयोग कर सकता है। इस उपयोग का नेतृत्व वे लोग करते हैं जो बौद्धिक दृष्टि से प्रतिभा सम्पन्न हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिए प्रबुद्ध व्यक्तियों को चाहिए कि वे अपने स्वरूप तथा स्थान के अनुसार अपने दायित्व को पहचानें तथा अपने आस-पास के वातावरण, जन समाज की मानसिक बनावट, उनके रहन-सहन और रीति-रिवाजों का अध्ययन करें तथा कर्त्तव्य निबाहें ताकि समाज में सुखद परिवर्तन लाये जा सकें। भारत की प्रगति, नैतिक मूल्यों में उत्थान इसी वर्ग की जागरूकता पर निर्भर है।

राष्ट्रोत्कर्ष हेतु संत-समाज का योगदान अपेक्षित

साधु और समाज का सम्बन्ध फूल तथा सुगन्ध के समान है। समाज फूल है तो साधु उसकी सुरभि है। अनादि काल से साधु समाज का दिशासूचक यंत्र रहा है। वह समाज के लिए प्रेरणा का निर्झर रहा है। जिसमें समाज अपने आप को सदैव निर्मल बनाता रहा है। वह धर्म की प्रतिमूर्ति है। धर्म की ध्वजा उसी के कंधों पर फहराती है। देश, काल, परिस्थिति के अनुसार वह धर्म के आदेशों में संशोधन, संवर्द्धन करके समाज के नूतन तथा प्राणवान मार्ग दर्शाता रहा है। वह समाज का शाश्वत प्रकाश स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में समाज अहर्निश प्रकाश की किरणें पाता रहा है। समाज के कोनों-कोनों में छाये हुए अंधकार को नीलकंठ के समान साधु निगल जाता है और बदले में अच्छाइयों के रूप में अमृत प्रदान करता है। साधु तो समाज का दर्पण है। इस दर्पण में समाज सदैव अपना आत्मनिरीक्षण करके अपना सौन्दर्य सँवारता है तथा कुरूपता हटाता है।

यदि दर्पण स्वयं ही मटमैला, गन्दा, टूटा-फूटा, अस्त व्यस्त हो जावे तो उसमें कैसे प्रतिबिम्ब का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है। वही हालत वर्तमान काल में साधु समुदाय की हो गई है। उसमें भीतरी प्रकाश अस्त हो गया है। मात्रा बाहरी आडम्बर शेष रहा है। जो तिलक, छापा, गेरूए वस्त्र के रूप में दिखाई देता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि सभी साधु ऐसे हैं। देश में ६५ लाख साधु हैं। इस बहुत बड़ी जमात में कुछ अवश्य ही पहुँचे हुए हैं। किन्तु वे अपना सम्पूर्ण जीवन एकान्त साधना में व्यतीत कर देते हैं। समाज को उनसे केवल सूक्ष्म निर्देश मिलते रहते हैं, जिन्हें पकड़ने की समाज में सामर्थ्य नहीं रहती है। वैसे कुछ साधु गार्हस्थ्य धर्म को पालन करते हुए भी समाज को दिशा देने में अधिक समर्थ हैं। कारण कि अकेले साधु से नारी समाज को कुछ भय सा बना रहता है क्योंकि आये दिन अनेक ऐसे किस्से घटित होते रहते हैं। इसलिए गृहस्थ वानप्रस्थ वर्तमान काल में अधिक उपयोगी, कारगर सिद्ध हो सकते हैं।

क्योंकि साधु कोई वेशभूषा नहीं है, प्रत्युत एक वृत्ति है, कोई भी व्यक्ति अपनी उपासना के माध्यम से इस वृत्ति को अपने आप में पैदा कर सकता है। उपासक वृत्ति गृहस्थ को भी साधु बना सकती है। यह तो और ही अच्छा है कि गृहस्थ-साधु सांसारिक कार्यों में भी अच्छाई फैलाकर समाज में आदर्श स्थापित करेगा। पुरुष वर्ग को स्वयं तथा उसकी पत्नी नारी वर्ग को दिशा प्रदान करने का काम कर सकती है। उसकी पत्नी तो सारे समाज में वात्सल्य जिसमें उपासना की शक्ति भरी हुई है में भाव भरकर परोपकारिता का विकास कर सकती है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में बुद्धि पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि मनुष्य अपने व्यवहारों से रूखा, बेलोच हो गया है। यदि साधु पत्नी से इस प्रकार का मातृप्रेम समाज को मिलता रहे तो हृदय का संतुलन स्थापित होने पर संतुलित व्यक्ति तथा संतुलित समाज निर्मित हो सकते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि गृहस्थ साधु को समाज छोड़ कर अन्यत्र जाकर उपासना करनी चाहिए। वह तो संसार के साथ रहते हुए अपनी अध्यात्म-शक्ति का अर्जन करता है। जब अपने आपको पत्नी सहित अध्यात्म-शक्ति से परिपूर्ण कर ले तो अपना सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पुत्र-पौत्र पर छोड़कर समाज के कल्याण में लग जावे। इस कार्य हेतु उन्हें कहीं बाहर नहीं जाना है। अपितु अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में ही अनेकों ऐसे सेवा प्रधान सामाजिक कार्य हैं जिन्हें दिशा की आवश्यकता रहती है। उन्हें वे मनोयोग से दिशा प्रदान कर सकते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि साधु न हों किन्तु वे अपने भीतरी अध्यात्म-शक्ति से सम्पन्न होकर समाज के सामने स्वच्छ दर्पण बनकर उतर आवें तो देश को आत्म निर्भर बनने में देर नहीं लगेगी। बल्कि सारे विश्व के लिए एक प्रकाश स्तम्भ भी भारत बन सकता है।

साधु-तपस्वियों, ऋषियों के आदर्श जीवन के उद्देश्य का उल्लेख करते हुए वेद कहता है—

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुपनिसेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।

—अथर्व० १९/४१

"सुख और कल्याण की कामना करते हुए सुख के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले ऋषियों ने पहले तप और दीक्षा का अनुष्ठान किया। उस तप और दीक्षा साधना के पश्चात राष्ट्रीय भावना, बल और सामर्थ्य प्रकट हुआ। इसलिए विद्वान लोग इसके लिए सिर झुकायें।"

उक्त मंत्र में ऋषियों के आदर्श जीवन उद्देश्य का विवेचन है। इससे ज्ञात होता है कि वे न केवल अपने सुख और कल्याण को ही जीवनोद्देश समझते थे वरन् राष्ट्र एवं समाज का नेतृत्व कर उसमें नया बल, साहस उत्साह एवं राष्ट्रीय भावनाओं का विकास करते थे। यह उक्त वेद मंत्र में बताया गया है।

मंत्र के प्रारम्भ में आया है कि "सुख और कल्याण की इच्छा करते हुए उसके यथार्थ स्वरूप को जानने वाले ऋषियों के हृदय में भी अन्य मनुष्यों की तरह सुख और कल्याण की कामना उत्पन्न हुई। मानव की यह स्वाभाविक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानसिक भूख होती है। प्रत्येक मनुष्य सुख के लिए ही अपना क्रियाकलाप चलाये रखते हैं। सभी इस केन्द्र पर चक्कर लगाये रहते हैं कि येन-केन-प्रकारेण उन्हें सुख मिले, कोई धन संग्रह करके सुख प्राप्त करना चाहता है कोई-कोई योग साधन, पूजा-उपासना, सम्पन्नता, कीर्ति, चाहना आदि से सुख चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सुख प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करता है। किन्तु इस विभिन्नता के दलदल में वास्तविक सुख के मार्ग को अपनाकर उस पर चलना ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

ऋषियों ने सुख के वास्तविक स्वरूप को जाना था। उन्होंने अपने जीवन के वास्तविक सुख और आत्मकल्याण का मार्ग राष्ट्र एवं समाज की सेवा में ही पाया। जैसा कि वेदमंत्र के अन्त में आया है। ऋषियों ने राष्ट्रीय भावना, बल, सामर्थ्य का विकास किया और इसी में उन्होंने वास्तविक सुख और कल्याण को प्राप्त किया यह वेद भगवान की साक्षी स्पष्ट सिद्ध है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सच्चा सुख और कल्याण का पवित्र राजपथ राष्ट्र की सेवा में ही है, जब हृदय में समाजसेवा, जनजागरण एवं राष्ट्रोत्थान के लिये तीव्र भावनायें उदय होती हैं तब एक मीठे दर्द भरे अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है जिसमें भाव विभोर होकर मनुष्य अपने निष्काम कर्म साधना से राष्ट्र में नव प्राण, बल, नवीन उत्साह एवं पुरुषार्थ को फूँकता है। सोये राष्ट्र में नव चेतना का संचार करता है। एक नहीं अनेकों व्यक्ति उस मानवता के पुजारी के सत्प्रयत्नों एवं मार्गदर्शन से वास्तविक सुख एवं कल्याण प्राप्त करते हैं। ऐसा व्यक्ति स्वयं देवदूत होता है, राष्ट्र और जाति का प्राण होता है। उसके जीवन का समस्त क्रियाकलाप इसी महान साधना के लिए होता है। ऋषि अपने लिए कुछ नहीं करते। उनका जीवन दूसरों के लिए ही होता है यही उनके जीवन का महान आदर्श है।

हमारे ऋषियों का जीवन भी ठीक इसी क्रम से होता था। उन्होंने वास्तविक सुख एवं कल्याण का मार्ग जन सेवा में ही समझा और वह सेवा कार्य भी उच्च श्रेणी का किसी को धन एवं शारीरिक आवश्यकता पूर्ति के साधन प्रदान कर देना कोई महत्त्वपूर्ण सेवा कार्य नहीं है सबसे महत्वपूर्ण सेवा कार्य है बुरे विचारों को हटाकर सद्विचारों को प्रतिष्ठापित करना, मनुष्य को आत्मकल्याण के लिये मार्गदर्शन करना आदि-आदि। इसी प्रकार समाज को भी पथ प्रदर्शन करना। ऋषियों ने इसी पवित्र पथ का अवलम्बन किया था।

जब ऋषियों ने वास्तविक सुख और आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग राष्ट्र सेवा एवं समाजोत्थान में ही देखा तो इसके लिए उन्होंने सर्वप्रथम तप और दीक्षा का अनुष्ठान किया। इसमें उन्होंने स्वयं की जीवन निष्ठा-आदर्श एवं आत्म बल का संचय किया। क्योंकि उन्होंने उस मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझ लिया था जिसके अनुसार कार्य प्रारम्भ करने पहले शक्ति और साधन जुटा लिये जायें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिसका स्वयं का जीवन आदर्श, नैष्ठिक एवं पवित्र नहीं है वह दूसरों को प्रभावित नहीं कर सकता। जो स्वयं प्रकाशित नहीं है वह दूसरों को प्रकाशित नहीं कर सकता। ठीक इसी तथ्य के आधार पर ऋषियों ने पहले तप और दीक्षा का अनुष्ठान किया जिसमें स्वयं के आदर्श, पवित्र-जीवन का निर्माण, आत्म बल, बुद्धि, सहनशीलता, ज्ञान-विज्ञान की अखण्ड साधना का अनुभव आदि को आत्मसात किया।

उक्त तप और दीक्षा के पश्चात ऋषियों ने राष्ट्रीय भावना, बल, साहस, सामर्थ्य का विकास किया। उनकी ऋचायें आज भी नवीन प्रेरणा, अनंत शक्ति-सामर्थ्य एवं राष्ट्रीय भावनाओं को हमारे हृदय में झंकृत करती हैं। उन्होंने राष्ट्र में नये बल, बुद्धि, विज्ञान, कला-कौशल, साहस, पुरुषार्थ को जागृत किया था। जाति में नव चेतना का आह्वान किया था। यही कारण है कि वैदिक काल का स्वर्ण युग विश्व इतिहास में अपना एक उच्च स्थान रखता है। जिस सतयुग की भव्य कल्पना करके ही हम आत्मविभोर एवं उल्लसित हो उठते हैं, वह उन राष्ट्र हित चिन्तक, समाज सेवक जन कल्याणकारी हमारे पूर्वज ऋषियों की ही देन है। जिनके लिए नमन करने, उनका अनुसरण करने की आज्ञा वेद भगवान ने दी है। विद्वान पुरुषों को उनका अनुसरण करना ईश्वरीय आज्ञा है।

यह निर्भान्त सत्य है कि जिस देश में इन ऋषियों की मर्यादाओं एवं कर्त्तव्यों का क्रम चलता रहता है वह देश प्रगति एवं उत्थान की ओर बढ़ता रहता है। कालान्तर में हमारे देश की जो स्थिति हुई वह इसके ऋषियों से विहीन हो जाने के परिणामस्वरूप ही है। लम्बे अरसे की गुलामी, आध्यात्मिक एवं नैतिक पतन, कमजोरी, दुर्बलता एवं हीनत्व आदि ने भारत में अपना घर किया इसलिए ऋषि परम्परायें समाप्त हो गईं। राष्ट्र का पथ प्रदर्शक ऋषि नहीं रहा अतः यह राष्ट्र अवनति के गर्त में गिरा। सौभाग्य से पुनः ऋषि आत्माओं का इस भूमि पर अवतरण हुआ जिन्होंने अपने जीवन को जला-जलाकर अपना बलिदान कर, सर्वस्व निछावर कर इसे स्वतंत्र किया किन्तु अभी ऋषि परम्परा का कार्य समाप्त नहीं हुआ है। गुलामी की लम्बी नींद से जगा हुआ यह अर्ध निद्रित भारत अभी आलस्य, प्रमाद, शैतानी विचारधारा, अंध स्मृति से ग्रसित है उस पर भी भौतिकता की विनाशकारी लहरों में थपेड़े खा रहा है। भौतिकता की इन भयंकर लहरों से बचाने, नवीन प्राण एवं चेतना का संचार करने, जन-जन में जागरण का सन्देश सुनाने, सोई हुई भारतीय जनता को जगाने, अन्ध प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए ऋषि परम्पराओं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राष्ट्र का विकास बिना आत्म-बलिदान के नहीं हो सकता

महर्षि अरविन्द का कहना है कि आत्म-बलिदान का भाव सब राष्ट्रों और सभी व्यक्तियों में साधारण रूप में नहीं पाया जाता। यह भाव बड़ा दुर्लभ और उच्चकोटि का है। यह मनुष्य जाति की नैतिक उन्नति का पुष्पित रूप है अथवा स्वार्थयुक्त पशु-भाव से स्वार्थरहित देव-भाव की ओर अग्रसर होना है। जिस मनुष्य में आत्म-बलिदान की सामर्थ्य है उसने पशुत्व को अपने से दूर हटा दिया है, चाहे उसमें अन्य प्रकार के पाप कितने भी क्यों न हों। उसमें भावी और उच्चतर मानवता के निर्माण की सामग्री है। जो राष्ट्र, राष्ट्रीय तौर पर आत्म-बलिदान करने का सामर्थ्य रखता है उसका भविष्य सुरक्षित है।

आत्म-बलिदान चाहे इच्छारहित हो और चाहे स्वार्थयुक्त हो वह हमारे जीवन की एक आवश्यक शर्त है। मानवता में इसकी वृद्धि क्रमशः हुई है। प्रथम बलिदान ही स्वार्थमय होते हैं—उनमें अपनी उन्नति के लिए दूसरों का बलिदान समाविष्ट रहता है। एक माता में, जो अपने बच्चे के लिए अपना जीवन बलिदान करने को तैयार है, पाशविक प्रेम की सहज-प्रवृत्ति पहला कदम आगे बढ़ा लेती है। उसी प्रकार एक पुरुष में जो अपनी स्त्री के लिए अपने जीवन की बलि देने को तैयार है, रक्षा की सहज-प्रवृत्ति पहला कदम आगे बढ़ा लेती है। यह प्रवृत्ति इस बात का सबूत है कि आत्मा के सम्बन्ध में हमारा मानसिक विचार विस्मृत हो गया है। जब तक मनुष्य अपने शरीर और उसकी इच्छाओं को ही अपना 'मैं' करके जानता है तब तक जीव की अवस्था पाशविक ही समझनी चाहिए। जब यह 'मैं' की परिधि विस्तृत हो कर स्त्री-पुत्र को अपने अन्तर्गत कर लेती है, तभी प्रगति संभव हो पाती है। यह मनुष्यता की सबसे पहली अवस्था है। किन्तु इसमें भी पशुत्व की कुछ मात्रा बची रहती है, क्योंकि इसमें स्त्री और बच्चों के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार का विचार रहता है कि ये मनुष्य के लिए अपने सुख, बल, शान, आराम के साधन और सम्पत्ति रूप हैं। पर इस दृष्टि से देखे जाने पर भी परिवार सभ्यता का आधार बनता है, क्योंकि इसी से सामाजिक जीवन सम्भव बनता है। परन्तु मनुष्य में देवत्व का आविर्भाव उसी समय आरम्भ माना जा सकता है जब वह अपने शरीर का ध्यान छोड़कर परिवार के लिए अपने आराम तथा जीवन तक का उत्सर्ग करने को तैयार हो जाय। जब मनुष्य स्त्री के समान अथवा घर की सुरक्षा के लिए जीवन उत्सर्ग करने को तैयार हो जाता है, तो निस्संदेह यह एक ऊँचे दर्जे का काम समझा जायगा। पर इससे बहुत ऊँचा वह तब उठता है जब वह अपने समाज या संघ के लिए आत्म-बलिदान करने को प्रस्तुत हो जाता है। इस बात को भली प्रकार समझ लेना कि मनुष्य पर परिवार के दावे की अपेक्षा समाज का, जन-समुदाय का दावा अधिक बड़ा है, सामाजिक प्रगति की प्रथम और अनिवार्य शर्त है।

इससे अगला कदम है राष्ट्रगत आत्मा की अनुभूति और उसके लिए आत्म-बलिदान। राष्ट्र का विकास एक ऐसी प्रगति है जो आधुनिक अवस्था में मानवता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। संसार की वर्तमान स्थिति में मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ को, विशालतर राष्ट्रीय स्वार्थ में विलुप्त कर देना अवश्य सीखना होगा। इसी से मानव-जाति में भगवान का क्रम विकास होगा। इसलिए राष्ट्रवाद इस युग का धर्म है और भारतमाता ही हमारे के लिए भगवान का प्रतीक है।

इससे भी अधिक ऊँची एक पूर्णता है, जिसके लिए कुछ व्यक्तियों ने ही अपने को तैयार दिखलाया है। वह है आत्मा का इतना अधिक विस्तार कि जिसमें सारी मानवता का समावेश हो जाय। मानवता के आदर्शों पर अभी तक कुछ व्यक्तियों ने निजी स्वार्थ की बलि चढ़ा दी है और इससे इस दिशा में एक कदम बढ़ाया जा चुका हैं। पर मानवता के हित के नाम पर राष्ट्र के हितों का बलिदान कर देना एक ऐसा कार्य है जिसके लिए मानवता अभी समष्टि रूप से तैयार व समर्थ नहीं हुई है। परमेश्वर तैयारी करता है पर वह फल को उसकी ऋतु से पहले पकाने की जल्दी नहीं करता। एक समय आवेगा जब यह भी सम्भव होगा, परन्तु वह समय अभी नहीं है और न यह बात मानवता के लिए कल्याणकारी है, क्योंकि नीचे की सीढ़ी पर पूरा-पूरा पैर जमाये बिना ऊपर की सीढ़ी पर पैर रखना गलत काम है और इसका नतीजा यह होगा कि हम फिर नीचे लुढ़क पड़ेंगे। इसलिए जब तक राष्ट्रीयता का भली प्रकार अध्ययन न हो जाय और उसके निमित्त स्वार्थ-त्याग करना हम न सीखलें तब तक मानवता के लिए आत्म-बलिदान की चर्चा निरर्थक ही है।

राष्ट्र-हित का यह भी अर्थ हो सकता है कि वह एक प्रकार की सामूहिक स्वार्थपरता ही है। हम देश के लिए धन-दौलत और आराम का बलिदान करने को इसलिए भी तैयार हो सकते हैं, क्योंकि राष्ट्र के शक्तिशाली और समर्थ रहने से ही हमारा घर-बार तथा परिवार सुरक्षित रह सकता है। हम राष्ट्र के लिए इस कारण भी बलिदान कर सकते हैं, क्योंकि उसकी महत्ता, वैभव, ऐश्वर्य का अर्थ होता है हमारे वर्ग या हमारे संग के वैभव और ऐश्वर्य की वृद्धि। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए भी, हम अपने राष्ट्र को बलशाली, साम्राज्यशाली देखने के लिए भी अपनी सभी चीजों का बलिदान करने को तैयार हो सकते हैं। ये सब स्वार्थ के ही रूप हैं, जो मनुष्य का उस विशालतर जीवन में पीछा करते हैं, जिसका उद्देश्य उसे स्वार्थ से मुक्त करना होना चाहिए। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद प्रभृति जो महारोग आधुनिक राष्ट्रों को पीड़ित कर रहे हैं, उनका मूल यह दृढ़ स्वार्थपरता ही है। इसी स्वार्थपरता के कारण बड़े राष्ट्रों में अभिमान, मद और अन्याय की भावना उत्पन्न होती है, जिसके वशीभूत होकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वे अन्य राष्ट्रों की सत्ता पर आघात करते हैं। इसके फल से क्रोधावेश होता है और क्रोध से अन्ध-सम्मोह-जो दोषी राष्ट्रों के संहार के लिए ईश्वर का साधन अथवा विधान है। इस बुराई से बचने का एक यही उपाय है कि राष्ट्र को सर्व समान मानवता की एक आवश्यक इकाई समझा जाय, दूसरों से महान या श्रेष्ठ होने की कल्पना न की जाय।

इस प्रकार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए आत्म-बलिदान का भाव ही मानवता का सबसे बड़ा आदर्श है और इसी के आधार पर वे साधारण मनुष्यों से उच्चतर या विशालतर स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। जब यह बलिदान का भाव निःस्वार्थ रूप ग्रहण कर लेता है तो वह मानवत्व से उठकर देवत्व की श्रेणी में पहुँच जाता है।

भारतमाता की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा के लिए

भारतमाता पर होने वाला प्रत्यक्ष या परोक्ष आक्रमण उसके प्रत्येक सपूत के लिए एक चुनौती है। माता को पद-दलित एवं अपमानित होते देख कर भी जिसका खून न खौलता हो, जिसके मन में क्षोभ और प्रतिकार की भावनाएँ न उठती हों उसे मनुष्य शरीर में विचरण करने वाला नरपशु ही कहना चाहिए।

कमाने, खाने और उलझनों को सुलझाने में लोग पूरी जिन्दगी ही समाप्त कर देते हैं। ऐसे अवसर किन्हीं विरलों के ही जीवन में आते हैं, जिनमें जीवन की सार्थकता का सौभाग्य प्राप्त होता हो। मौत हर किसी की आती है, देर सबेर में सभी को मरना पड़ता है, पर लोक और परलोक को प्रशस्त करने वाली, यश को अमर बनाने वाली, कर्त्तव्य पालन के आदर्श संसार के सामने उपस्थित करने वाली मौत किसी भाग्यवान को ही मिलती है। जिनके नाम शहीदों की स्वर्णिम पंक्तियों में इतिहासकारों ने लिखे हैं उन्हें पढ़ते समय हर भावनाशील अन्तःकरण में यह विचार उठते हैं कि काश, हमें भी ऐसा अवसर मिला होता, तो मनुष्य शरीर धारण करना सचमुच ही धन्य हो जाता। आज हमारा सौभाग्य ही है कि चीनी आक्रमण ने भारत के प्रत्येक सपूत के सामने त्याग और बलिदान की पुकार पर अपना शौर्य प्रदर्शित करने का अलभ्य अवसर प्रस्तुत कर दिया है।

इतिहास पढ़ते समय हम उस अँधेरी स्थिति का भी कहीं-कहीं परिचय पाते हैं जब थोड़े से विदेशियों ने आक्रमण करके हमारे इतने बड़े देश को पददलित किया था। इतना ही नहीं उन्होंने वे बर्बर अत्याचार भी किये थे जिनके सुनने मात्र से रोमांच खड़े हो जाते हैं। भारत में उस समय भी जन शक्ति का, शौर्य का, साधनों का अभाव न था। यदि राष्ट्र संगठित और भावनाशील रहा होता और उन नगण्य संख्या में आये हुए आक्रमणकारियों पर एक-एक मुट्ठी धूलि डाल दी जाती तो वे उसी में दबकर मर गये होते। किन्तु अपना दुर्भाग्य ही था कि आन्तरिक दुर्बलताओं में देश ग्रस्त रहा और आक्रमणकारी सैकड़ों वर्षों तक मनचीती करते रहे। सन् १८५७ में आजादी के लिए सशस्त्र विद्रोह हुआ था पर उसमें भी अपनी आन्तरिक दुर्बलताएँ ही बाधक रहीं और वह राज्य क्रान्ति सफल न हो सकी।

इन दुःखद पृष्ठों को पढ़ते समय उस समय के उत्तरदायी लोगों की अकर्मण्यता पर क्षोभ होता है। जो लोग प्रबुद्ध थे वे शिवाजी, राणा प्रताप, बन्दा बैरागी, गुरु गोविन्द सिंह आदि की तरह राष्ट्र रक्षा को अपना जीवन लक्ष्य बनाकर यदि जुट गये होते तो असंख्य जनता उनके पीछे होती और भारत की एकता और वीरता के माथे पर कलंक का टीका न लगता। इन प्रसंगों पर विचार करते समय भावनाशील हृदयों में यह भाव भी उठते हैं कि यदि हम उस समय रहे होते तो कमाने खाने के गोरख धंधे में न लगे रह कर देश धर्म के लिए अपना प्राण देने वालों में—माता को पराधीनता के बन्धनों से मुक्त करने में सबसे अग्रणी रहते। इस मार्ग पर चलने में जो भी कष्ट उठाने पड़ते उन्हें सहर्ष उठाते।

इसी प्रकार जो लड़के अभी किशोरावस्था को पार कर रहे हैं और पिछले स्वाधीनता संग्रामों में त्याग, बलिदान करने वालों की गौरवमयी गाथाएँ पढ़ते-सुनते हैं तो वे मन मसोस कर रह जाते हैं कि ऐसा अवसर हमें अब मिलने वाला नहीं है। यदि स्वाधीनता संग्राम के दिनों में हम भी रहे होते तो किसी त्यागी और बलिदानी से कम जौहर न दिखाते। पिछली शताब्दियों में मातृभूमि में आन-बान-शान की रखवाली के लिए असंख्य देशभक्तों का रक्त बहा है। जिन्हें यह सौभाग्य मिला उनकी आत्मा स्वर्ग में अपनी कर्त्तव्य परायणता के लिए गौरवान्वित हो रही होगी और उन्हीं दिनों जो कमाने-खाने और शौक-मौज करने की लानत भरी जिन्दगी किसी प्रकार गुजार रह थे, जो कुछ हो रहा था उसे देखने से आँखों बंद किये हुए थे वे जीते तो रहे होंगे, समय आने पर उन्हें भी आगे पीछे मरना तो पड़ा ही होगा, पर युग की पुकार अनसुनी करने के अपराध में उनकी आत्मा धिक्कारते-धिक्कारते ही मरी होगी। इतिहास तो उन पर कायरता और हीनता का घृणास्पद लांछन सदा ही लगाता रहेगा। ऐसे व्यक्ति जहाँ कहीं भी होंगे उस समय की काहिली पर खेद और पश्चाताप ही प्रकट कर रहे होंगे। वे सोचते होंगे कि हमने तुच्छ बातों में जिन्दगी गुजारते हुए एक अलभ्य अवसर हाथ से खो दिया।

आज समय ने पुनः वही परिस्थितियाँ हमारे सामने पैदा कर दी हैं। वीरता और कायरता की प्रत्यक्ष चुनौती अनायास ही सामने आ खड़ी हुई है और हमें विवश कर दिया है कि किसी एक को चुन लें। पड़ौसी देश पाकिस्तान ने जो परोक्ष आक्रमण करके उसी मनोवृत्ति को दुहराया है, जिससे प्रेरित होकर पिछली शताब्दियों में आक्रमणकारी भारत पर हमले करते रहे हैं। लूट, शोषण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और साम्राज्य ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। पिछले दिनों चीन के लिए भी भारत पर आक्रमण का और कोई कारण न था। लाखों वर्षों से जहाँ कभी मनुष्यों का निवास नहीं रहा, घास-पत्ता भी जहाँ नहीं जमता, पानी की ढलान के आधार पर प्रकृति ने जहाँ स्वयं ही सीमा रेखा बना दी है, इतिहास जिसके संबंध में साक्षी है उस भूमि को अपनी बनाने का बहाना करके छिपे हुए चीते की तरह शान्ति से चरती हुई गाय के ऊपर आक्रमण कर बैठने वाली नीति को अपनाकर चीन ने जो कुछ किया था उसके पीछे बहाने वाला कारण तो प्रचार मात्र था। उसका वास्तविक उद्देश्य दूसरा ही था। भारत को अस्तव्यस्त कर देना, उसे पददलित बनाने की दुरभिसंधि ही इसका वास्तविक उद्देश्य हो सकता है।

क्या हमारे लिए उचित होगा कि इन आक्रमणों को चुपचाप, आँखें बन्द करके देखते रहें और अखबार में खबरें मात्र पढ़ लेने से संतुष्ट हो जायँ ? अथवा यह सोचें कि लड़ाई का काम फौजी सिपाहियों का है। वे जानें, उनका काम जाने हम क्या कर सकते हैं ? ऐसा सोचना किसी भी प्रकार उचित न होगा। क्योंकि अब युद्ध केवल सैनिकों से नहीं लड़े जाते। इस जमाने में गोला-बारूद से ही विजय प्राप्त नहीं होती। वरन् युद्धरत देशों के हर नागरिक को लड़ाई में अपना योगदान देना होता है। इसी योगदान के ऊपर अन्तिम जीत-हार निर्भर रहती है। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी, इटली, जापान आदि देश गोला-बारूद की दृष्टि से हारे थे, पर वहाँ की जनता जागृत होने से उन पराजितों को भी गुलाम न बनाया जा सका। वे देश भी आज स्वाधीनों की ही पंक्ति में खड़े हैं। इसके विपरीत जहाँ की जनता प्रबुद्ध नहीं हुई है वहाँ कुछ दिन पहले तक अफ्रीका महाद्वीप के अधिकांश भाग पर गोरे उसी प्रकार शासन करते रहे हैं, जैसा कि सामंतवादी जमाने में निरीह जनता पर किया जाया करता था।

देशभक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत नागरिक भी आज के जमाने में युद्ध मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिकों की तरह ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। लड़ाई केवल मोर्चे पर ही नहीं जीती जाती वरन् वास्तविक युद्धस्थल खेतों-खलिहानों, कारखानों और जनता के हौंसले में सन्निहित होता है। आज के जमाने में युद्ध बड़े खर्चीले होते हैं। इसलिए उसका प्रभाव हर नागरिक पर पड़ता है। युद्ध साधनों को जुटाने के लिए हर नागरिक को अपने जरूरी खर्चों को घटा कर रक्षा व्यवस्था की पूर्ति करनी पड़ती है। यदि इसमें ढील रहे तो आर्थिक संतुलन अस्त-व्यस्त हो जाने से युद्ध मोर्चे पर उसका प्रभाव पड़ता है और जीत की संभावना घटती जाती है।

आर्थिक साधनों का युद्ध जीतने पर आज भारी प्रभाव पड़ता है, इसलिए नागरिकों को दान या टैक्स के रूप में उसे जुटाना ही पड़ता है। यह प्रक्रिया भार रूप समझकर नहीं वरन् देशभक्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत होकर की जानी चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि समय आने पर गरीब और मध्यम श्रेणी के नागरिक इस परीक्षण में अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते रहे हैं। विदेशों से युद्ध सामिग्री मँगाने के लिए स्वर्ण की आवश्यकता पड़ी है तो भारत की ललनाएँ अपनी सजावट शोभा को देश की स्वाधीनता की तुलना में तुच्छ समझकर प्रसन्नतापूर्वक आभूषणों का दान करती रही हैं। गरीब भी अपने रोटी, कपड़े में कमी करके राष्ट्ररक्षा के लिए यथा सम्भव देने में कुछ कमी नहीं रहने देते हैं।

धन शक्ति के समान ही जन शक्ति की आवश्यकता युद्ध में रहती है। सैनिकों के द्वारा ही तो मोर्चे सँभाले जाते हैं और वे ही तो शत्रु की गोली के आगे सीना तान कर चलते हैं। दुश्मन के जहरीले दाँत तोड़ने का उत्तरदायित्व उन्हीं के भुज दंडों पर निर्भर रहता है। सेना की क्षमता, साहस और युद्ध कौशल द्वारा ही तो आक्रमणकारियों का मुँह मोड़ा जाता है। इस कार्य के लिए नारियाँ अपने सुहाग सर्वस्व पति को भारत माता के लिए अर्पित करती हैं। माताएँ अपने से अधिक पूज्य भारत माता की लाज बचाने के लिए अपने गोदी के खिलाये बच्चों को मंगल तिलक करके रणस्थल में भेजते हुए गर्व अनुभव करती हैं। जो लड़ाई पर नहीं जा पाते वे अपने शरीर का एक अंश-रक्त-घायल सैनिकों के शरीर में डालने के लिए देते हैं और मरणासन्नों को पुनः जीवन देकर उन्हें पुनः युद्ध मोर्चे पर जा सकने योग्य बनाते हैं।

धन-जन की, तन-मन की सहायताएँ चारों ओर से जुटाये जाने पर राष्ट्र की युद्ध शक्ति सबल होती है और उसी के बल पर विजय की संभावना सुनिश्चित बनती है। आज प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए देशभक्ति की परीक्षा का समय है। ये समय जीवन में कभी-कभी आते हैं। इतिहास की पुनरावृत्ति के क्षण अब पुनः सामने आ पहुँचे हैं। मातृ भूमि की स्वाधीनता और प्रतिष्ठा बचाने के लिए शिवाजी, प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह, लक्ष्मीबाई, नाना साहब, आदि बनने के लिए हममें से प्रत्येक को अवसर आज प्राप्त है। जो इस समय में स्वार्थ और व्यामोह में पड़े रहेंगे वे अवसर चूकेंगे और उन्हें पीछे पश्चाताप ही करते रहना पड़ेगा।

देशभक्त नव-निर्माण के कार्य में जुट जायें

अपना समाज पिछले दो हजार वर्ष से अवसादग्रस्त चला आया है। आन्तरिक दोष-दुर्गुण जैसे-जैसे बढ़ते चले गये वैसे-वैसे बाह्य परिस्थितियाँ भी उलझती चली गईं और पग-पग पर कठिनाइयाँ बढ़ीं। व्यक्तियों के दोष-दुर्गुणों के कारण समाज कमजोर हो जाता है और कमजोर समाज का शोषण करने के लिए कोई न कोई आक्रमणकारी कहीं न कहीं से आ ही कूदता है। अपना भी यही हुआ। गिरे में लात जमाने के लिये विदेशी आक्रमणकारी यहाँ आते रहे और अपने-अपने ढंग से रोमांचकारी शोषण करते रहे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस पराधीनता ने उन दोष-दुर्गुणों को और भी बढ़ाया, जिनके कारण अनेक प्रकार की दुर्बलताएँ और विपत्तियाँ पहले से ही उत्पन्न हो रही थीं। अभी स्वाधीनता मिली है पर हमारे जातीय दोष-दुर्गुण जहाँ के तहाँ हैं। फलस्वरूप संसार के स्वतन्त्र राष्ट्र जिस प्रकार उन्नति कर रहे हैं उसकी तुलना में हमारा पिछड़ापन नगण्य ही सुधरा है।

सरकार अपराधियों को दण्ड देने और आर्थिक प्रगति के थोड़े साधन जुटा सकती है। व्यक्तिगत मूढ़ता एवं दुष्टता को—सामाजिक भ्रष्टता एवं अस्त-व्यस्तता को—मिटाना उसके बलबूते की बात नहीं। अधिनायकवाद की बात दूसरी है। प्रजातन्त्र में यह सम्भव नहीं। प्रजातन्त्र में व्यक्ति अथवा समाज में सुधार का कार्य लोकसेवियों पर निर्भर रहता है। उन्हीं की सत्ता, व्यक्ति और समाज का स्तर ऊँचा उठा सकने में समर्थ हो सकती है। प्राचीन काल में देश का गौरव उच्च शिखर पर पहुँचाये रखने का सारा श्रेय यहाँ के लोकसेवियों को है। वे अपना सारा समय दो कार्यों में खर्च करते थे। (१) अपना व्यक्तित्व अति उच्चकोटि का विनिर्मित करना ताकि जनता पर उनका उचित प्रभाव पड़ सके। (२) निरन्तर अथक् परिश्रम एवं अनवरत उत्साह के साथ-जन मानस में उत्कृष्टता भरने के लिए संलग्न रहना। साधु-ब्राह्मण और वानप्रस्थों की यही परम्परा एवं कर्म-पद्धति थी। उनकी संख्या जितनी बढ़ती थी उसी अनुपात से राष्ट्रीय जीवन की हर दिशा में समृद्धि का अभिवर्द्धन होता चलता था। यही रहस्य था अपने गौरवमय इतिहास का। दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि वे तीनों ही संस्थाएँ आज नष्ट हो गईं। ब्राह्मण, साधु और वानप्रस्थ तीनों ही दिखाई नहीं पड़ते। उनकी तस्वीरें और प्रतिमाएँ बड़ी संख्या में घूमती फिरती नजर आती हैं पर उनका लक्ष्य, आदर्श और कर्तृत्व सर्वथा अपरीत हो गया ऐसी दशा में उनकी उपयोगिता भी नष्ट हो गई।

दुर्भाग्य का रोना रोने से काम न चलेगा। अभाव की पूर्ति दूसरी तरह करनी होगी। हम गृहस्थ लोग ही थोड़ा-थोड़ा समय निकाल कर लोक-मंगल की सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्द्धन करना अपना धर्म कर्त्तव्य समझें और उसके लिए निरन्तर कुछ न कुछ योगदान देने के लिये तत्परता प्रकट करने लगें तो उस आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है जिस पर प्रगति का सारा आधार अवलम्बित है। यदि हमारे मन में राष्ट्रीय प्रगति और सामाजिक उन्नति के लिए व्यक्तिगत लाभों जैसी दिलचस्पी पैदा हो जांय तो हम व्यस्त दिखाई देने वाले लोग भी थोड़ा-थोड़ा योगदान देकर ऐसे सामूहिक अभियान चला सकते हैं, जिनसे वर्तमान दुर्दशा का कायाकल्प होने में देर न लगे। आवश्यकता ऐसे लोगों की है जिनके अन्तःकरण में देशभक्ति, समाज सेवा, परमार्थ एवं लोक-मंगल के लिए कुछ करने की उमंग भरी भावनाएँ लहरा रही हों। ऐसे ही नर रत्न अपना जीवन धन्य करते हैं और अपने समय की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ सम्पादित करते हैं।

यों राजनैतिक पार्टियों के पास अभी भी बहुत कार्यकर्त्ता हैं पर वे राजनीति को ही सब कुछ मान बैठे हैं। सत्ता संघर्ष में, यश पद पाने में ही उनकी प्रधान अभिरुचि है। कूटनीति में जिस तरह की तिकड़में भिड़ानी एवं विडम्बनायें जुटानी पड़ती हैं उन सबके अभ्यस्त होने से वे व्यक्तिगत आत्म-बल भी खो बैठते हैं और ऐसे रचनात्मक कार्यों में उनकी रुचि भी नहीं रहती है। उनका ढर्रा भी सन्त-महन्तों की तरह अपनी पूजा-महिमा और गद्दी बनाने की दिशा में ही लुढ़कने लगता है। जो जिस ढाँचे में ढल गया उसके लिए बदलना मुश्किल पड़ता है। इसलिए राजनीति क्षेत्र में लगे हुए लोगों से भी उनकी मनोभूमि को देखते हुए यह आशा करना कठिन है कि देश की प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक जन-मानस का परिष्कार—रचनात्मक का अभिवर्द्धन—व्यक्ति और समाज की दिशाएँ मोड़ने का अभियान—उसके द्वारा सम्भव हो सकेगा। यह नया कार्य एक नये ही वर्ग को करना चाहिए। धार्मिकता के सहारे भावनात्मक नव-निर्माण की दिशा में जो जुट सकें—साधु-ब्राह्मण की परम्परा को गृहस्थ रहकर भी निवाह सकें—ऐसे व्यक्तित्वों की आज नितान्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे पहले हमें ही आगे आना चाहिए कि ताकि दूसरों को भी उसी मार्ग पर अनुगमन करने की प्रेरणा मिल सके।

भावनात्मक नव-निर्माण की आवश्यकता का महत्त्व समझने वाले और उसके लिये कुछ त्याग-बलिदान करने की हिम्मत करने वाले लोगों का एक वर्ग हर जगह ढूँढ़ा जाना चाहिए। उसे संगठित किया जाना चाहिए। क्योंकि एकाकी प्रयत्नों का परिणाम बहुत थोड़ा होता है। सम्मिलित शक्ति द्वारा किये गये संगठित प्रयत्नों का चमत्कार सदा से होता रहा है। उसी की आवश्यकता आज भी है। लोक-मंगल के लिए किये गये सामूहिक सत्प्रयत्न यदि सज्जनों द्वारा आरम्भ किये जायँ तो उनसे जन-मानस के परिष्कार में—भावनात्मक नव-निर्माण में—भारी सहायता मिले और प्रगति के पथ का सबसे बड़ा अवरोध सहज ही दूर हो जाय।

कितने ही काम हैं जो ऐसे सत्प्रयत्नों द्वारा सम्पन्न किये जा सकते हैं। (१) प्रेरक विचारधारा प्रस्तुत करने वाले ज्ञान मन्दिरों की—प्रेरक पुस्तकालयों की व्यापक श्रृंखला का निर्माण इस दिशा में सबसे पहला काम है। यदि व्यवस्थित रूप से वह प्रक्रिया पूरी की जा सकी तो विचार क्रान्ति का महायज्ञ बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न होगा और उससे प्रबुद्ध पीढ़ी विनिर्मित होते हुए और उसके कर्तृत्व से वर्तमान दुर्दशा समाप्त होते हुए हम अपनी आँखों देखेंगे। (२) अशिक्षा दूर करने—८० प्रतिशत अशिक्षित लोगों को साक्षर बनाने का काम बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए सरकारी, गैर-सरकारी प्रयत्नों से विभिन्न स्तर के शिक्षण प्रयत्नों की वृद्धि होनी चाहिए। प्रौढ़ पाठशालाओं और रात्रि पाठशालाओं की इस संदर्भ में महती आवश्यकता है। (३) व्यायामशालाएँ, खेलकूद, शस्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचालन और शरीर बल प्रदर्शन की प्रतियोगिताएँ। (४) देहाती क्षेत्रों में स्वच्छता आन्दोलन। नये ढंग के टट्टी घर, पेशाबघर, सोख्ता नाली, कूड़े के लिए गड्ढे, गोबर न जलाने, मिल-जुलकर गाँव की सफाई करने जैसी प्रवृत्तियाँ पैदा करके ग्रामीण जीवन में व्याप्त गन्दगी को दूर करने का अभियान। (५) खर्चीली विवाह-शादियों के स्थान पर बिना खर्च के आदर्श विवाहों का प्रचलन। मृत्यु भोज, भूत, पलीत, भिक्षावृत्ति, पर्दा, ऊँच-नीच, बाल-विवाह जैसी अगणित सामाजिक कुरीतियों को हटाने के लिए विभिन्न स्तरों के प्रचार, विरोध एवं प्रतिरोधात्मक आन्दोलनों का सृजन एवं नेतृत्व। (६) भावनात्मक नव-निर्माण के लिए, साहित्य, संगीत, कला, अभिनय, चित्र, प्रदर्शनी, प्रवचन, सम्मेलन आदि के समस्त प्रचार साधनों का सभारम्भ एवं अभिवर्द्धन। (७) शाक, फूल, फल, वृक्ष आदि उगाने, अन्न बचाने, जूँठन न छोड़ने, दावतों पर नियन्त्रण, सुधरे ढंग की कृषि, पकाने तथा खाने सम्बन्धी जानकारी, कम ईंधन से जलने वाले चूल्हे आदि के द्वारा खाद्य समस्याओं का समाधान। (८) धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा के लिए व्यापक एवं प्रखर प्रशिक्षण व्यवस्था। व्यक्तिगत जीवन में सत्प्रवृत्तियों के समावेश को प्रोत्साहन, सत्कार्यों का अभिनन्दन। (९) जीव दया, पशु-पक्षियों के साथ सद्व्यवहार। (१०) गृह-उद्योगों का व्यापक प्रचलन। फैशन, फिजूलखर्ची एवं अपव्यय को निरुत्साहित करना।

इन दस सूत्री कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में हमें अपनी परिस्थिति एवं सुविधा के अनुरूप योजनाएँ बनाकर कार्य संलग्न होना चाहिए। इस दिशा में किये गये प्रयत्न ही राष्ट्रीय प्रगति के आधार बनेंगे।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत:स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रात:काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुन: एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org
गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्राय: ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे—

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org